

['जामुनी' से 'नंद' तक]

शब्द १२४६८

हिंदी-शब्दसागर

अर्थात्

हिंदी भाषा का एक बृहत् कोश

[तीसरा खंड]

संपादक

श्यामसुंदरदास वी० ए०

सहायक संपादक

रामचंद्र शुक्ल

जगन्मोहन वर्मा

अमीरसिंह

भगवानदीन

रामचंद्र वर्मा ।

प्रकाशक

काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा ।

इंडियन प्रेस, प्रयाग, में मुद्रित ।

१९१९

अनवरुद्र भैरवदास ऐटिया ।

जैन सन्देश ।

वीरानंद, (राजपूताना)

डाकव्यय अतिरिक्त

संकेतान्नरा का विवरण ।

अं० = अंगरेजी भाषा
अ० = अरबी भाषा
अनु० = अनुकरण शब्द
अने० = अनेकार्यनाममाळा
अप० = अपभ्रंश
अयोध्या = अयोध्यासिंह उपाध्याय
अद्धमा० = अद्धमागधी
अल्प० = अल्पार्थक प्रयोग
अभ्य० = अभ्यय
आनंदघन = कवि आनंदघन
इय० = इब्रानी भाषा
उ० = उदाहरण
उत्तरपरित = उत्तररामचरित
उप० = उपसर्ग
उभ० = उभयलिङ्ग
कठ० उप० = कठवह्नी उपनिषद्
कवीर = कवीरदास
केशव = केशवदास
कौंक = कौंक्य देश की भाषा
क्रि० = क्रिया
क्रि०अ० = क्रिया अकर्मक
क्रि०प्र० = क्रियाप्रयोग
क्रि०वि० = क्रियाविशेष्य
क्रि०स० = क्रिया सकर्मक
क० = कश्चित् अर्थान् इसका प्रयोग बहुत कम देखने में आया है ।
खानखाना = अहमदुर्रहीम खानखाना
गि०दा० वा गि०दास = गिरिधर-
दास (बा० गोपालचंद्र)
गिरिधर = गिरिधरराय (कुंठ-
लियावाले)
गुज० = गुजराती भाषा

गुमान = गुमानमिश्र
गोपाल = गिरिधरदास (बा०
गोपालचंद्र)
चरय = चरयचंद्रिका
चिंतामयि = कवि चिंतामयि
त्रिपाठी
छीत = छीतखामी
जायसी = मलिक मुहम्मद जायसी
जावा० = जावा द्वीप की भाषा
ज्यो० = ज्योतिष
डि० = डिंगल भाषा
गु० = गुरुकी भाषा
गुलसी = गुलसीदास
तोप = कवि तोप
दादू = दादूदयाल
दीनदयालु = कवि दीनदयालु गिरि
दूल्ह = कवि दूल्ह
दे० = देश
देव = देव कवि (मंगपुरीवाले)
देश० = देशज
द्विवेदी = महावीरप्रसाद द्विवेदी
नागरी = नागरीदास
नाभा = नाभादास
निश्रल = निश्रलदास
पं० = पंजाबी भाषा
पद्याकर = पद्याकर भट्ट
पर्या० = पर्याय
पा० = पाली भाषा
पुं० = पुंलिङ्ग
पु० हिं० = पुरानी हिंदी
पुचं० = पुचंगाली भाषा
पू० हिं० = पूर्वी हिंदी

मताप = प्रतापनारायण मिश्र
प्रत्य० = प्रत्यय
प्रा० = प्राकृत भाषा
प्रिया = प्रियादास
प्रे० = प्रेरणार्थक
प्रे० सा० = प्रेमसागर
फ० = फ्रांसीसी भाषा
फ० = फारसी भाषा
बंग० = बंगाल भाषा
बरमी० = बरमी भाषा
बहु० = बहुवचन
बिहारी = कवि बिहारीलाल
बुं० खं० = बुंदेलखंडी बोली
बेनी = कवि बेनी प्रवीण
भाव० = भाववाचक
भूपण = कवि भूपण त्रिपाठी
भतिराम = कवि भतिराम त्रिपाठी
भला० = भलायलम भाषा
मलूक = मलूकदाम
मि० = मित्राश्री
मुहा० = मुहाविर
यू० = यूनानी भाषा
यौ० = यौगिक तथा दो वा अधिक
शब्दों के पद
रघु० दा० = रघुनाथदास
रघुनाथ = रघुनाथ बंदीजन
रघुराज = महाराज रघुराजसिंह
रीवांनरेश
रसखान = सैयद इमाहीम
रसनधि = राजा घुस्वीसिंह
रहीम = अहमदुर्रहीम खानखाना
लक्ष्मणसिंह = राजा लक्ष्मणसिंह

लहू = लहू जाब
लरा० = लराकरी भाषा अर्थात्
हिंदुस्तानी जहाजियों
की बोली
लाल = लाल कवि (धनप्रकाश
वाले)
लै० = लैटिन भाषा
वि० = विशेष्य
विश्राम = विश्रामसागर
व्यंग्यार्थ = व्यंग्यार्थकौमुदी
व्या० = व्याकरण
व्यास = श्रयिकादत्त व्यास
शं० दि० = शंकर दिग्विजय
शं० सत० = शंकार सतसई
सं० = संज्ञक
संयो० = संयोगक अभ्यय
संयो० क्रि० = संयोग्य क्रिया
स० = सकर्मक
सखल = सखलसिंह बाहान
सभा० वि० = सभाचिन्तास
सर्व० = सर्वनाम
सुधाकर = सुधाकर द्विपेदी
सूदन = सूदनकवि(भरतपुरवाले)
सूर = सूरदास
खि० = खियों द्वारा प्रयुक्त
खी० = खीलिङ्ग
स्वे० = स्पेनी भाषा
हिं० = हिंदी भाषा
हनुमान = हनुमानचंद्र
हरिदास = स्वामी हरिदास
हरिचंद्र = भारतेंदु हरिचंद्र

* यह चिह्न इस बात को सूचित करता है कि यह शब्द केवल पद्य में प्रयुक्त है ।

† यह चिह्न इस बात को सूचित करता है कि इस शब्द का प्रयोग प्रांतिक है

‡ यह चिह्न इस बात को सूचित करता है कि शब्द का यह रूप प्रात्य है ।

सूचना ।

इस कोश में स्थान स्थान पर जाति संबंधी शब्द आए हैं । उनका जो वर्णन दिया गया है उसके संबंध में कई लोगों ने अनेक अवसरों पर आपत्ति उपस्थित की है । हमारा उद्देश्य किसी जाति को ऊँचा या नीचा बनाना नहीं है और न यह कोश इस संबंध में कोई व्यवस्था ही दे सकता है । अतएव जहाँ कहीं “नीच” या “उच्च” शब्द किसी जाति के साथ में आए हों, वहाँ “जाति विशेष” बना लेना चाहिए ।

सम्पादक, हिंदी-शब्दसागर ।

खरादे तथा खेती के सामान बनाने के काम में धाती है। इसका फल फल खाया जाता है। फलों के रस का सिरका भी बनना है जो तिही की दवा है। गोमा में इससे एक प्रकार की शराय भी बनती है। इसकी गुच्छी पट्टमूत्र के रोगी के लिये अत्यंत उपकारी है। वैद खोग जामुन के पेड़ को पवित्र मानते हैं। वैद्यक में जामुन का फल प्रादी, रूपा, तथा कफ पित्त और द्राघ को दूर करनेवाला माना जाता है।

पर्या०—जंघू। सुरभिप्रभा। नीलफला। श्यामला। महात्कंधा।

राजादा। राजफला। शुक्रप्रिया। मोदमादिनी। जंबुल।

जामुनी-वि० [हि० जामुन] जामुन के रंग का। जामुन की तरह दिवानी या काला। जैसे, जामुनी रंग।

जामिय-संज्ञा पुं० [सं०] भागिनये। भांजा। बहिन का लडका।

जामेदार-संज्ञा पुं० [देग०] (१) एक प्रकार का दुखाला जिसकी सारी जमीन पर चेल घूटे रहते हैं। (२) एक प्रकार की छोट जिसकी घूटी दुखाले की चाल की होती है।

जाय^१-अर्थ० [फा० जा = टैक] वृथा। निष्फल। व्यर्थ। ३०—

(क) जाय जीव विनु देह सुहाई। यदि मोर सव विनु सुहाई।—तुलसी। (ख) तात जाय जिन करहु गलानी। ईस अथनी जीवगति जानी।—तुलसी। (ग)

जेहि देह सनेह न राखे सो पैरी देह धराद जो जाय जिये।—तुलसी।

जायक-संज्ञा पुं० [सं०] पीला चंदन।

जायका-संज्ञा पुं० [फा०] खाने पीने की चीजों का मन्ना। स्वाद। लज्जत।

क्रि० प्र०—जेना।

जायकदार-वि० [फा० जायका + फा० दार] स्वादिष्ट। मनुवार। जो खाने या पीने में अथवा जान पड़े।

जायचा-संज्ञा पुं० [फा०] जन्मकुंडली। जन्मपत्री

जायज-वि० [फा०] यथार्थ। वधित। मुनासिब। ठीक। वाञ्छित।

क्रि० प्र०—खलना।

जायजा-संज्ञा पुं० [फा०] (१) जांच। पड़ताल।

मुदा०—जायजा देना = हिजाय समझाना। जायजा जेना = पड़ताल करना। जानना।

(२) हाजिरी। गिनती।

जायजुर-संज्ञा पुं० [फा० जा + फा० जुर] टटी। पाखाना।

जायद-वि० [फा०] ज्यादा। अधिक। फालतू।

जायदाद-संज्ञा स्त्री० [फा०] भूमि, धन वा सामान आदि जिसपर किसी का अधिकार हो। संपत्ति।

विशेष—कानून के अनुसार जायदाद दो प्रकार की है, मनहूला और गैरमनहूला। मनहूला जायदाद उसे कहते हैं जो एक स्थान से दूसरे स्थान पर हटाई जा सके। जैसे, धरतन, फसल, असबाब आदि। जायदाद गैरमनहूला उसे कहते

१४४

हैं जो स्थानांतरित न की जा सके। जैसे, मकान, बाग, खेत, कुर्चा आदि।

जायदाद गैरमनहूला-संज्ञा स्त्री० दे० “जायदाद”।

जायदाद जौजियत-संज्ञा स्त्री० [फा०] वह संपत्ति जिस पर स्त्री का अधिकार हो। स्त्री-धन।

जायदाद मफ्फूला-संज्ञा स्त्री० [फा० + फा०] वह संपत्ति जो किसी प्रकार रहन वा बंधक हो।

जायदाद मनहूला-संज्ञा स्त्री० दे० “जायदाद”।

जायदाद मुतनाजिन्ना-संज्ञा स्त्री० [फा०] विवाद-मूल संपत्ति।

वह संपत्ति जिसके अधिकार आदि के विषय में कोई झगड़ा हो।

जायदाद चौहरी-संज्ञा स्त्री० [फा०] वह संपत्ति जो स्त्री को बतके पति से मिले।

जायनमाज-संज्ञा स्त्री० [फा०] वह छोटी दूरी, फाल्जिन या हसी प्रकार का धीर कोई विद्युनी जिसपर बँध कर मुसलमान नमाज पढ़ते हैं। बहुधा इसपर चुनाव या छपा हुआ मसजिद का चित्र होता है। सुसज्जा।

जायपत्री-संज्ञा स्त्री० दे० “जायित्री”।

जायफरा-संज्ञा पुं० दे० “जायफल”।

जायफल-संज्ञा पुं० [सं० जलीकल] ब्रह्मरोट की तरह का पर बसेले छोटा (प्रायः जामुन के बराबर) एक प्रकार का सुगंधित फल जिसका व्यवहार औषध और मसाले आदि में होता है। इसके छोटे छोटे टुकड़े पान के साथ भी खाए जाते हैं। वैद्यक में इसे कटुधा, तीक्ष्ण, गरम, रेचक, हलका, चरपरा, अग्निदीपक, मज्ज-रोधक, यक्ष-यक्षक, तथा त्रिदोष, मुल की विरसता, खाँसी, बमन, पीनस और हृद्दोष आदि को दूर करनेवाला माना है।

पर्या०—कोपक। सुमनफल। कोरा। जातिरास्य। शालूक।

मालतीफल। मन्मसार। जातिसार। पुट।

विशेष—जायफल का पेड़ प्रायः ३०—३५ हाथ ऊँचा और सदा-बहार होता है, तथा मलका, जावा और बरोविया आदि द्वीपों में पाया जाता है। दक्षिण भारत के नीलगिरी पर्वत के कुछ भागों में भी इसके पेड़ उत्पन्न किए जाते हैं। ताजे बीज योकर इसके पेड़ उत्पन्न किए जाते हैं। इसके छोटे पौधों की तेज धूप आदि से रक्षा की जाती है और गरमी के दिनों में उन्हें निल साँचने की आवश्यकता होती है। जब पौधे ठेक दो हाथ ऊँचे हो जाते हैं तब उन्हें १५—२० हाथ की दूरी पर अलग अलग रोप देते हैं। यदि उनकी जड़ों के पास पानी टहरे तो दिया जाय अथवा व्यर्थ घास पात उगने दिया जाय तो ये पौधे बहुत जल्दी नष्ट हो जाते हैं। इसके नर और मादा पेड़ अलग अलग होते हैं। जत्र पेड़ फलने लगते हैं तब दोनों जातियों के पेड़ों को अलग अलग कर देते हैं और प्रति आठ

दस मादा पेड़ों के पास उस और एक नर पेड़ लगा देते हैं जिसपर संख्या अधिक आती है। इस प्रकार नर पीपों का पुं पराग बढ़ कर मादा पेड़ों के छी रज तक पहुँचता है और पेड़ फलने लगते हैं। प्रायः सातवें वर्ष पेड़ फलने लगते हैं और पंद्रहवें वर्ष तक उनका फलना बराबर चरता जाता है। एक चन्द्र पेड़ में प्रति वर्ष प्रायः डेढ़ दो हजार फल लगते हैं। फल बहुधा रात के समय स्वयं पेड़ों से गिर पड़ते हैं और हाथों से चुन लिए जाते हैं। फल के ऊपर एक प्रकार का छिन्नका होता है जो उतार कर भ्रजग सुखा लिया जाता है। इसी सूखे हुए ऊपरी छिन्नके को जावित्री कहते हैं। छिन्नका उतारने के बाद उसके अंदर एक और बहुत बड़ा छिन्नका निकलता है। छिन्नके को तोड़ने पर अंदर से जायफल निकलता है जो पृष्ठ में सुखा लिया जाता है। सूखने पर फल उस रूप में हो जाते हैं जिसमें वे बाजार में बिकने जाते हैं। जायफल में से एक प्रकार का सुगंधित तेल और धरक भी निकाला जाता है जिसका व्यवहार दूसरी चीजों की सुगंधि बढ़ाने के लिये भी होता है। भारतवर्ष में जायफल और जावित्री का व्यवहार बहुत प्राचीन काल से होता आया है।

जायक-वि० [फा०] विनष्ट । जिसका नाश हो गया हो ।

जायस-उंशा पु० शयबरेली जिले का एक प्रसिद्ध प्राचीन और ऐतिहासिक नगर बाढ़ों बहुत दिनों से सूखी फकीरों की बारी है। यहाँ सुसज्जमान विद्वान बहुत दिनों से होते आये हैं। बहुत ही आतिथ्य भ्रपना आदि स्थान इसी नगर को घाताती हैं। पद्मनाभय के रचयिता प्रसिद्ध कवि मलिक मुहम्मद यही के निवासी थे ।

जाया-उंशा शी० [सं०] (१) विवाहिता स्त्री । पत्नी । जोर । विरोधनः यह स्त्री जो किसी पात्रक को जन्म दे चुकी हो । ४०—जाता मरण तो रहित भ्रमाया । मात पिता सुत यंभु न आया ।—रु। (२) उन्माति श्रुत का सातवर्ष भेद जिसके पदपे हीन पार्ष्णी में (ज त ज ग ग) ३१ ३३ ३४ ३३ और पीपे शरय में (स त ज ग ग) ३३ ३५ ३४ ३५ होता है । (३) जन्म-कुंडली में अन्न से सातवाँ स्थान अर्द्ध से पत्नी के संबंध की गणना की जाती है ।

जाया-वि० [पा०] सातव । मर । मर्या । लोया हुआ ।

क्रि० प्र०—करना ।—जाना ।—होना ।

जायाघ्न-उंशा पु० [सं०] (१) अंगतिप में अर्द्ध का एक योग । यह योग हम समय होता है जब जन्म-कुंडली में रात से मानवे स्थान पर मंगल या शुक ग्रह रहता है । जिस मनुष्य की कुंडली में यह योग पड़ता है वह अंगतिप के अनुयाय

वस मनुष्य की छी नहीं जीती । (२) वह मनुष्य जिसकी कुंडली में यह योग हो । (३) शरीर में का तिल ।

जायाजीव-उंशा पु० [सं०] (१) बगला पक्षी । (२) भ्रपनी जाया (घा) के द्वारा जीविका उपार्जित करनेवाला नट । घेरया-पति ।

जायानुजीवी-उंशा पु० दे० "जायाजीव" ।

जायी-उंशा पु० [सं० अविन्] संगीत में भ्रुपद की जाति का एक प्रकार का ताल ।

जायु-उंशा पु० [सं०] औपध । दवा ।

वि० जीतनेवाला । जेता ।

जार-उंशा पु० [सं०] यह पुरुष जिसके साथ किसी दूसरे की विवाहिता स्त्री का प्रेम वा अनुचित संबंध हो । उपपति । पराई स्त्री से प्रेम करनेवाला पुरुष । यार । धाराणा ।

वि० मारनेवाला । नाश करनेवाला ।

जार-उंशा पु० [के० सीतर] रूस के सम्राट की उपाधि ।

जारकर्म-उंशा पु० [सं०] व्यभिचार । छिनाला ।

जारज-उंशा पु० [सं०] किसी स्त्री की वह संतान जो उसके जार या उपपति से उत्पन्न हुई हो ।

विशेष—धर्मशास्त्रों में जारज दो प्रकार के माने गए हैं । जो संतान स्त्री के विवाहित पति के जीवन काल में उसके उपपति से उत्पन्न हो वह "कुंड" और जो विवाहित पति के मर जाने पर उत्पन्न हो वह "मालक" कहलाती है । जारज पुत्र किसी प्रकार के धर्म-कार्य या पिंडदान आदि का अधिकारी नहीं होता ।

जारज योग-उंशा पु० [सं०] फलित ज्योतिष में किसी बालक के जन्मकाल में पढ़नेवाला एक प्रकार का योग जिससे यह सिद्धत निकाला जाता है कि वह बालक अपने असली पिता के धर्म से नहीं उत्पन्न हुआ है बल्कि अपनी माता के जार या उपपति के धर्म से उत्पन्न है । ३०—चित्त पितृ घातक जोग छलि भयो भये सुत सोग । फिर हुलस्यो जिय जोतवी समकथो जारज जोग ।—विहारी ।

विशेष—बालक की जन्म-कुंडली में यदि लग्न या चंद्रमा पर बृहस्पति की दृष्टि न हो अथवा सूर्य के साथ चंद्रमा युक्त न हो और पापयुक्त चंद्रमा के साथ सूर्य युक्त हो तो यह योग माना जाता है । द्वितीय, सप्तमी, और द्वादशी तिथि में रवि शनि या मंगलवार के दिन यदि हस्तिका, मृगशिरा, पुनर्वसु, उत्तराषाढ़ा, धनिष्ठा और पूर्वा भाद्रपद में से कोई एक नक्षत्र हो तो भी जारज योग होता है । इसके अतिरिक्त इन चरस्थानों में कुछ भ्रपवाद् भी है जिनकी उपस्थिति में जारज योग होने पर भी यह बालक जारज नहीं माना जाता ।

जारजात-उंशा पु० [सं०] जारज ।

जारण्य—संज्ञा पुं० [सं०] (१) पारे का ग्वारपूर्वा संस्कार । (२) जलाना । भस्म करना ।

विशेष—वैद्यक में सेना, चंदी, ताँबा, लोहा, पारा आदि धातुओं को शोधन के काम के लिये कई बार कुछ विरोध क्रियाओं से छूँक कर भस्म करने को जारण्य कहते हैं ।

जारणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] बड़ा जीरा । सफेद जीरा ।

जारद्वयी—संज्ञा स्त्री० [सं०] ज्योतिष में मध्य मार्ग की एक यथी का नाम जिसमें बराहमिहिर के अनुसार श्रवण, धनिष्ठा, और शतभिषा तथा विष्णुप्राण्य के अनुसार विराहा, अनुत्प्राणा और ज्येष्ठा नक्षत्र हैं ।

जारनी—संज्ञा पुं० [हिं० जलना] (१) जलाने की छकड़ी । हैं धन । (२) जलाने की क्रिया या भाव ।

जारना—क्रि० सं० दे० “जलाना” ।

जारा—संज्ञा पुं० [हिं० जलना] सेनार आदि की भट्टी का वह भाग जिसमें धाग रहती है और जिसमें रखकर कोई चीज गलाई या तपाई जाती है । इसके नीचे एक छोटा छेद होता है जिसमें से होकर भाषी की दवा जाती है ।

संज्ञा पुं० दे० “जाला” ।

जारिणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जिसका किसी दूसरे रुपर के साथ अनुचित संबंध हो । दुरचरित्रा स्त्री ।

जारी—वि० [सं०] (१) बढ़ता हुआ । प्रवाहित । जैसे, खून जारी होना । (२) चलता हुआ । प्रचलित । जैसे, वह अखबार जारी है या बंद हो गया ?

क्रि० प्र०—करना ।—रखना ।—होना ।

संज्ञा पुं० [दे०] (१) झरवरी का पैसा । (२) एक प्रकार का गीत जिसे मुहूर्त में साजियों के सामने श्रिया जाती है ।

संज्ञा स्त्री० [सं० जार + ई (प्रत्य०)] पर-खी-गमन । जार की क्रिया या भाव ।

जारधि—संज्ञा पुं० [सं०] भागवत के अनुसार एक पर्वत का नाम जो सुमेरु पर्वत के छुके का केसर माना जाता है ।

जारधी—संज्ञा स्त्री० [सं०] हरिवंश के अनुसार एक प्राचीन भगरी का नाम ।

जारुण्य—संज्ञा पुं० दे० “जारुण्य” ।

जारुण्य—संज्ञा पुं० [सं०] वह अरवमेघ यज्ञ जिसमें त्रिगुनी क्षपिणा दी जाय ।

जारोष—संज्ञा स्त्री० [सं०] झाड़ू । घोहरी । छूँचा ।

जारोषकश—संज्ञा पुं० [सं०] झाड़ू देनेवाला । धमार ।

जार्यक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का मृग ।

जालंधर—संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक शक्ति का नाम । (२) जलंधर नाम का दैत्य ।

जालंधरी विद्या—संज्ञा स्त्री० [सं० जलंधर + दैत्य] मायिक विद्या । माया । इंद्रजाल ।

जाल—संज्ञा पुं० [सं०] (१) किसी प्रकार के तार या सूत आदि का बहुत दूर दूर पर घुना हुआ पट जिसका व्यवहार मछलियों और चिड़ियों आदि को पकड़ने के लिये होता है ।

विशेष—जाल में बहुत से सूतों, रस्सियों या तारों आदि को सड़े और आड़े फैला कर इस प्रकार बुनते हैं कि बीच में बहुत से बड़े बड़े छेद छूट जाते हैं ।

क्रि० प्र०—बनाना ।—घुनना ।

मुद्दा—जाल ढालना या फँसाना = मछलियाँ आदि पकड़ने, कोई वस्तु निकालने अथवा इसी प्रकार के किसी और काम के लिये जल में जाल डोढ़ना । जाल फैलाना या विद्याना = चिड़ियों आदि को फँसाने के लिये जाल लगाना ।

(२) एक में श्रोतयों से युक्त या गुप्ते हुए बहुत से तारों अथवा रेशों का समूह । (३) वह युक्ति जो किसी को फँसाने या घस में करने के लिये की जाय । जैसे, तुम उनके जाल से नहीं बच सकते ।

मुद्दा—जाल फैलाना या विद्याना = किसी को फँसाने के लिये युक्ति करना ।

(४) मकड़ी का जाल । (५) समूह । जैसे, पक्ष-जाल ।

(६) इंद्रजाल (७) गवाण । भरोखा । (८) अहंकार । अभिमान । (९) बसव्यति आदि को जलाकर उसकी राख से तैयार किया हुआ ममक । चार । खार । (१०) कदम का पेड़ । (११) एक प्रकार की तोप । २०—जाल अंजाल दयनाल गयनाल हूँ धान नीसान फहरान लागे ।—सूदन । (१२) फूल की कली । (१३) दे० “जाली” ।

संज्ञा पुं० [सं० जल + मि० सं० जाल] वह उपाय या कृत्य जो किसी को धोखा देने या ठगने आदि के अभिप्राय से हो । धोखा । धोखा । मूठी कारवाई ।

क्रि० प्र०—करना ।—बनाना ।—बचना ।

जालक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) जाल । (२) कली । (३) समूह । (४) गवाण । भरोखा । (५) मोतियों का बना हुआ एक प्रकार का आभूषण । (६) केजा । (७) चिड़ियों का धोखा । (८) धोखा । अभिमान ।

जालकारक—संज्ञा पुं० [सं०] मकड़ा ।

जालकि—संज्ञा पुं० [सं०] शर्बों से अपनी जीविका निर्वाह करनेवाला मनुष्य ।

जालकिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] मकड़ी ।

जालकिरत्व—संज्ञा स्त्री० [हिं० जल + किरत्व] परतला मिली हुई वह पेटी जिसके साथ तलवार भी छगी हो ।

जालकीट—संज्ञा पुं० [सं०] (१) मकड़ा । (२) वह कीड़ा जो मकड़ी के जाल में फँसा हो ।

जालगर्दभ—संज्ञा पुं० [सं०] सुसूत के अनुसार एक प्रकार का छद्म रोग जिसमें किसी स्थान पर कुछ सूजन हो जाती है

और बिना पके ही जिसमें जलन उत्पन्न होती है। इस रोग में रोगी को ज्वर भी हो जाता है।

जालजीवी-संज्ञा पुं० [सं०] धीवर। मधुमा।

जालदार-वि० [सं० जाल + हिं० दार] जिसमें जाल की तरह पास पास बहुत से छेद हों।

जालपाद-संज्ञा पुं० [सं०] (१) हंस। (२) जायालि श्रृंगि के एक शिष्य का नाम। (३) एक प्राचीन देश का नाम।

वि० बहु पशु या पक्षी जिसके पैर की उँगलियाँ जालदार झिल्ली से ढँकी हों।

जालप्राया-संज्ञा स्त्री० [सं०] कवच। जिरह बकतर। सँतोया।

जालवंद-संज्ञा पुं० [हिं० जाल + फ्रा० वंद] एक प्रकार का गलीचा जिसमें जाल की तरह की बेलें धनी होती हैं।

जाल-बन्धुरक-संज्ञा पुं० [सं०] बन्धुल की जाति का एक प्रकार का बड़े जिसमें छोटी छोटी बालियाँ होती हैं।

जालव-संज्ञा पुं० [सं०] पुरायानुसार एक दैत्य का नाम जो बलबल का पुत्र था और जिसका बलदेव जी ने बध किया था।

जालसाज-संज्ञा पुं० [सं० जाल + फ्रा० साज] वह जो दूसरों को धोखा देने के लिये किसी प्रकार भ्रूटी कार्रवाई करे।

जालसाजी-संज्ञा स्त्री० [फ्रा०] फरेव या जाल करने का काम। दगाधानी।

जाला-संज्ञा पुं० [सं० जाल] (१) मकड़ी का बुना हुआ बहुत पतले पतले तारों का वह जाल जिसमें वह अपने खाने के लिये मक्खनों और दूसरे कीड़े मकोड़ों आदि को फँसाती है। इस प्रकार के जाले बहुधा गंदे मकानों की दीवारों और छतों आदि पर लगे रहते हैं। विशेष-दे० "मकड़ी"।

(२) अलि का एक रोग जिसमें पुतली के ऊपर एक सफेद परदा या झिल्ली सी पड़ जाती है और जिसके कारण दिखाई कम पड़ता है। यह रोग प्रायः कुछ विशेष प्रकार की मेल आदि के जमने के कारण होता है और ज्यों ज्यों झिल्ली मोटी होती जाती है व्यों रोगी की दृष्टि नष्ट होती जाती है। झिल्ली अधिक मोटी होने के कारण जब यह रोग बढ़ जाता है तब उसे माड़ा कहते हैं। (३) सूत या सन आदि का बना हुआ वह जाल जिसमें पास भूसा आदि पदार्थ बांधे जाते हैं। (४) एक प्रकार का सरपत जिससे चीनी साफ की जाती है। (५) पानी रखने का एक प्रकार का मिट्टी का बड़ा बरतन। (६) दे० "जाल"।

जालाश-संज्ञा पुं० [सं०] अतोला। गवाच।

जालिक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कैंच। जाल बुननेवाला। (२) जाल से मृगादि जंतुओं को फँसानेवाला। कर्कटक। (३) इंद्रजालिक। मद्गरी। भाजीगर। (४) मकड़ी। [हिं०]

जालिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) पाश। फँदा। (२) जाली।

(३) विधवा स्त्री। (४) कवच। जिरहयकतर। सँतोया। (५) मकड़ी। (६) लोहा।

जालिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) तरौड़े। घिया। (२) यह स्थान जहाँ चित्र बनते हैं। चित्रशाला। (३) परबल की लता। (४) पिड़िका रोग का एक भेद जिसमें रोगी के शरीर के मांसल स्थानों में दाह-शुष्क फुंसियाँ हो जाती हैं। यह केवल प्रमेह के रोगियों को होता है।

जालिनी फल-संज्ञा पुं० [सं०] तरौड़े। घिया।

जालिम-वि० [सं०] जुलम करनेवाला। जो बहुत ही अन्यायपूर्ण या निर्दयता का व्यवहार करता हो। प्रत्याचारी।

जालिया-वि० [हिं० जाल = फरेव + इया (प्रत्य०)] जालसाज। फरेव करने या धोखा देनेवाला।

† संज्ञा पुं० [हिं० जाल + इया (प्रत्य०)] जाल की सहायता से मजदूरी पकड़नेवाला। धीमर।

जाली-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) तरौड़े। (२) परबल।

संज्ञा स्त्री० [हिं० जाल] (१) किसी चीज विशेषतः लकड़ी, पत्थर या पालु की चादर आदि में पना हुआ बहुत से छोटे छोटे छेदों का समूह।

क्रि० प्र०—काटना।—घनाना।

(२) कसौदे का एक प्रकार का काम जिसमें किसी कूल्ह या पत्ती आदि के बीच में बहुत छोटे छोटे छेद बनाए जाते हैं।

क्रि० प्र०—काटना।—निकालना।—डालना।—भरना।—घनाना।

(३) एक प्रकार का कपड़ा जिसमें केवल बहुत से छोटे छोटे छेद ही होते हैं। इसे जालीलेट भी कहते हैं।

(४) वह लकड़ी जो चारा काटने के गँड़से के दस्ते पर लगी रहती है। (५) कच्चे धाम के अंदर गुठली के ऊपर का यह संतु-समूह जो पकने से कुछ पहले उत्पन्न होता और पीछे से कड़ा हो जाता है। इसके ऊपन होने के बराबर धाम के फल का पकना आरंभ हो जाता है।

क्रि० प्र०—पड़ना।

(६) दे० "जाला (३)"

संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की छोटी नाव।

वि० [सं० जल] नकली। यनावटी। झूठा। जैसे, जाली सिक्का। जाली दस्तावेज।

जालीदार-वि० [दे०] जिसमें जाली धनी या पड़ी हो।

जालीलेट-संज्ञा पुं० [हिं० जाली] एक प्रकार का कपड़ा जिसकी सारी बुनावट में बहुत से छोटे छोटे छेद होते हैं।

जालीलेट-संज्ञा पुं० दे० "जालीलेट"।

जालम-वि० [सं०] (१) पामर। नीच। (२) मूर्ख। बेवकूफ।

जालमक-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो अपने मित्र, गुरु या धार्मिक के साथ द्वेष करे।

जाव्य-संज्ञा पुं० [सं०] शिव । महादेव ।
 जावक-संज्ञा पुं० [सं० जावक] खाद से बना हुआ पैरों में लगाने का लाल रंग । श्रवता । महावर ।
 जावत-अर्थ० दे० "जावत्" ।
 जावन-संज्ञा पुं० [हिं०] दे० "जामन" । उ०—(क) नई दोहनी पोलि पखारी घरि निरुम खीर परतायो । तामें मिलि मिथि मिश्री करिहैं कष्टुट जावन नायो ।—सूर । (ख) तोप मरुत तप छमा जुझावह । एति सम जावन देह जमावह ।—गुलसी ।
 जावित्री-संज्ञा स्त्री० [सं० जावित्री] जायफल के ऊपर का द्रव्य जो बहुत सुगंधित होता है और औषध के काम में आता है । वैद्यक में इसे दलका, चरपरा, खाद्रिट, गरम, रुचिकारक और कफ, खासी, वमन, श्वास, रुपा, रुमि तथा विष का नाशक माना है । दे० "जायफल" ।
 जायक-संज्ञा पुं० [सं०] पीला चंदन ।
 जायनी-संज्ञा पुं०-दे० "जायिणी" । उ०—रायौ करी जायनी पूजा । चहे सुभाव द्रिपयै दूजा ।—जायसी ।
 जासु-संज्ञा पुं० [हिं०] जिसका ।
 जासु-संज्ञा पुं० [दे०] ये पान जो उस धरती में मिलाने के लिये काटे जाते हैं जिससे मदक बनता है ।
 जासु-दे० "जासु" ।
 जासु-संज्ञा पुं० [सं०] गुप्त रूप से किसी बात विरोधतः धारण आदि का पता लगानेवाला । भेदिया । गुलबंद ।
 जासु-संज्ञा पुं० [हिं०] गुप्त रूप से किसी बात का पता लगाने की क्रिया । जासुस का काम ।
 जासु-संज्ञा पुं० [सं०] जागना । जवाई । दामाद ।
 जासु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) गिरगिट । (२) जोक । (३) बिक्रीना । बिस्तर । (४) घोषा ।
 जासु-संज्ञा पुं०-दे० "जासु" ।
 जासु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) जो छिपा न हो । जो सबके सामने हो । प्रकट । प्रकाशित । खुला हुआ । (२) विदित । जाना हुआ ।
 जासु-संज्ञा पुं०-दे० "जासु" ।
 जासु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) जासुस । जासुस ।
 जासु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) देलने में । प्रकट रूप में । प्रत्यक्ष में । जैसे, जासुस तो यह बात नहीं मालूम होती भागे ईश्वर जाने ।
 जासु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मूर्ख । अज्ञानी । अज्ञान । ना समझ । (२) अनपढ़ । विद्याहीन । जो कुछ पढ़ा लिखा न हो ।
 जासु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) धर्मकी की जाति का एक प्रकार का सुगंधित फूल । (२) एक प्रकार की आतिशबाजी ।
 जासु-संज्ञा पुं० [सं०] जड़, श्रुति से उत्पन्न, गंगा ।

जिक-संज्ञा स्त्री० [सं०] जल का धार । यह धार देखने में सफ़ेद रंग का होता है और रंग रोगन और दवा के काम में आता है । यह ह्योराइड थाक जिक, वा सलफेट थाक जिक को सोडियम, बेरियम वा कलसियम सलफाइड में घोलने या हल करने से बनता है । सलफाइड के नीचे तलवट पैदा जाती है जिसे निकाल कर सुखाने के बाद लाल रंग में तपा कर ठंडे पानी में बुका लेते हैं । इसके बाद यह खरल में पीसी जाती है और यागारों में बिकती है । इसे सफ़ेदा भी कहते हैं । गुलाब जल वा पानी में घोल कर इसे शरबों में ढाकते हैं जिससे शरब की जलन और दर्द दूर हो जाती है ।
 जिंगनी, जिंगिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] जिंगिन का पेड़ ।
 जिंद-संज्ञा पुं० [सं०] मृत प्रेत । मुलतमान मृत । दे० "जिन" ।
 संज्ञा पुं० दे० "जिंद" ।
 जिंदगानी-संज्ञा स्त्री० [सं०] जीवन । जिंदगी ।
 जिंदगी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) जीवन ।
 मुहा०—जिंदगी से हाथ धोना = जीने से निराशा होना ।
 (२) जीवन काल । श्रावु ।
 मुहा०—जिंदगी का दिन पूरा करना वा भरना = (१) दिन काटना । जीवन विठाना । (२) मरने से । होना । आसन्न-मृत्यु होना ।
 जिंदा-संज्ञा पुं० [सं०] जीवित । जीता हुआ ।
 यौ०—जिंदा दिख ।
 जिंदा दिख-संज्ञा पुं० [सं०] (संज्ञा जिंदा दिखी) सुरा मिनाज । हँसोद । दिहागीयाज । विनेदमिय ।
 जिंदा-संज्ञा पुं०-दे० "जिंदा" ।
 जिंस-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) प्रकार । किस । मति । (२) वस्तु । द्रव्य । (३) सामग्री । सामान । (४) अनाज । गडा । रसद ।
 यौ०—जिंसवार ।
 जिंसवार-संज्ञा पुं० [सं०] पदवारियों का एक कागज जिसमें ये अपने हलके के प्रत्येक खेत में बोए हुए अन्न का नाम परताल करते समय लिखते हैं ।
 जिंघाना-संज्ञा पुं०-दे० "जिंघाना" । उ०—तासों धैर कबहुँ नहिं कीजै । मारे भरिय जिंघाप जीजै ।—गुलरी ।
 जिंघा-संज्ञा पुं० दे० "जीव" ।
 जिंघका-संज्ञा पुं० दे० "जीविका" ।
 जिंघकिया-संज्ञा पुं० [हिं० अंतिक वा जिंघका] (१) जीविका करनेवाला । रोजगारी । (२) पहाड़ी लोग जो दुर्गम जंगलों और पर्वतों से अन्नक प्रकार की व्यापार की वस्तुएँ, जैसे चंवर, कस्तूरी, शिबानीत, शेर के बच्चे, तथा जड़ी पौड़ी आदि से व्यापार नगरों में बेचते हैं ।

जिउतिया—संज्ञा स्त्री० [सं० जिता वा जीमूत] एक वृत् जो आग्नि कृष्णाष्टमी के दिन होता है। इस वृत् को वे खियाँ जिनके पुत्र होने हैं करती हैं। इसमें गले में एक धागा बाँधा जाता है जिसमें अन्त की तरह गाँठें होती हैं। कहीं कहीं यह वृत् आग्नि शुक्राष्टमी के दिन किया जाता है। दे० “जिताष्टमी”।

जिउलेवा—वि० दे० “जिउलेवा”।

जिउरि—संज्ञा पुं० दे० “जिउरि”।

जिउरि—संज्ञा पुं० [अ०] चर्चा। यातचीत। प्रसंग।

कि० प्र०—आना।—करना।—चलना।—चलाना।—

दिङना।—घेङ्गना।

यो०—जिउरि मजदूर = यातचीत। चर्चा।

जिगन—संज्ञा स्त्री० दे० “जिगिन”।

जिगर—संज्ञा पुं० [फ्रा० जि० सं० यकृत] [वि० जिगरी] (१) कलेजा। (२) चित्त। मन। जीव। (३) साहस। हिम्मत। (४) गुदा। सत्त। सार। (५) मध्य। सार भाग। जैसे, लकड़ी का जिगर। (६) पुत्र। लड़का। (प्यार से)

जिगरकीड़ा—संज्ञा पुं० [फ्रा० जिगर + हि० कीड़ा] मेंढों का एक रोग जिसमें उनके कलेजे में कीड़े पड़ जाते हैं।

जिगरा—संज्ञा पुं० [हि० जिगर] साहस। हिम्मत। जीवट।

जिगरी—वि० [फ्रा०] (१) दिल्ली। भीतरी। (२) अलस पण्डित। अभिन्न-हृदय। जैसे, जिगरी दोस्त।

जिगिन—संज्ञा स्त्री० [सं० जिगिनी] एक ऊँचा अंगली पेड़। इसके पत्ते महुए या तुन के पत्तों के समान होते हैं और टहनी में जोड़ के रूप में इधर उधर लगते हैं। यह पहाड़ों और तराई के जंगलों में होता है। इसके फूल सफेद और फल बेर के बराबर होते हैं। वैद्यक में इसका स्वाद चरपरा और कसेला लिखा है। इसकी प्रकृति गरम बतलाई गई है और वात ग्रन्थ अतीसार और हृदय के रोगों में इसका प्रयोग लाभकारी कहा गया है। इसकी वृत्तव अचड़ी होती है और सुख की दुर्गंध को दूर करती है।

पर्या०—जिगिनी। भिगिनी। किंगी। मुनिपर्यासा। प्रमोदिनी। पार्वती। कृष्णशालमली।

जिगीया—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) जय की इच्छा। विजय प्राप्त करने की कामना। (२) उद्योग। उद्यम।

जिगुरन—संज्ञा पुं० [देग०] एक प्रकार का चोटीदार चकोर जो हिमालय में गढ़वाल से हजारा तक मिलता है। इसे जधी, सिंग मोनाल, और जेवर भी कहते हैं। इसकी मादा बोदल कहलाती है।

जिउ, जिउ—संज्ञा स्त्री० [?] (१) बेवसी। तंगी। मजदूरी। (२) शतरंज में शाह की वह अवस्था जब उसे चखने का कोई धर न हो और न अर्धव दूने को मोहरा हो। (३) शतरंज में खेल की वह अवस्था जिसमें किसी एक पक्ष को कोई मोहरा चखने की जगह न हो।

वि० [?] विवश। मजदूर। तंग।

जिजिया—संज्ञा स्त्री० [हि० जेया] वहिन।

संज्ञा पुं० [फ्रा० जेयिक] (१) कर। महसूल। (२) वह कर या महसूल जो मुसलमानी आमलदारी में उन लोगों पर लगता था जो मुसलमान नहीं होते थे।

जिद्रासा—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) जानने की इच्छा। ज्ञान प्राप्त करने की कामना। (२) पूछ ताँछ। प्रश्न। परिप्रश्न। तहकीकात।

कि० प्र०—करना।

जिद्रासु—वि० [सं०] जानने की इच्छा रखनेवाला। ज्ञान प्राप्ति के लिये इच्छुक। खोजी।

जिद्रासु—वि० दे० “जिद्रासु”।

जिद्रास्य—वि० [सं०] जिसकी जिद्रासा की जाय। जिसे जानना हो। जिसके संबंध में पूछ ताँछ की जाय।

जिड्राई—संज्ञा स्त्री० दे० “जेड्राई”।

जिडरानी—संज्ञा स्त्री० दे० “जेडरानी”।

जित्—वि० [सं०] जीतनेवाला। जीता।

विशेष—इस अर्थ में यह शब्द समासित में आता है। जैसे, इंद्रजित्, शत्रुजित्, विश्वजित् इत्यादि।

जित—वि० [सं०] जीता हुआ। पराजित। जिसे दूसरे ने जीता हो। संज्ञा पुं० [सं०] जीत। विजय।

कि० वि० [सं० यज] जिघरा। जिस श्रोत। उ०—जात है जित याजि कैयौ जात हैं तित लोग।—केशव।

जितना—वि० [हि० जित + तना (प्रत्य०)] [स्त्री० जितनी] जिस मात्रा का। जिस परिमाण का। जैसे, उसके पास जितने आम थे सय सड़ गए।

कि० वि० [सं०] जिस मात्रा में। जिस परिमाण में। जैसे, जितना मैं देवता हूँ उतना तुम नहीं देवता सकते।

विशेष—संख्या सूचित करने के लिये बहुवचन रूप ‘जितने’ का प्रयोग होता है। ‘जितना’ के पीछे ‘उतना’ का प्रयोग संबंध पूरा करने के लिये किया जाता है। जैसे, जितना मीठा वह आम था उतना यह नहीं है।

जितरारा—संज्ञा पुं० [हि० जितरा] वह हलवाहा जिसे चेतन या मजदूरी नहीं दी जाती बल्कि खेत जोतने के लिये हल बैल दिए जाते हैं।

जितलोका—वि० [सं०] जितने पुण्य कर्म से स्वर्गादि लोक प्राप्त किया हो।

जितवना—कि० प्र० [सं०] जताना। प्रकट करना। उ०—चितवत जितवत दित हिदु किपु रिरीदे नैन। भीजे सन दोऊ कैयों क्यौं हू जप निबर न।—बिहारी।

जितवानी—कि० प्र० [हि० जितना का प्रे०] जीतने देना। जीतने में सपर्यं या उचित करना।

जितवार-वि० [हि० जेतना] जीतनेवाला । विजयी । उ०—जैद
हो प्रसेस कुमार । रनभूमि को जितवार । सुन्द ।

जितवेर्या-वि० [हि० जेतना + वेर्या (पू० प्रत्य०)] जीतनेवाला ।

जितारा-संज्ञा पु० [हि० जेतना वा जेतना] वह सहायता जो किसान
लेगा खेत की जोताई बोधाई में एक दूसरे को देते हैं ।
हूँड़ ।

जितारमा-वि० [सं० विरात्मन्] जितेंद्रिय ।

संज्ञा पु० एक देवता जिसे श्राद्ध में भाग दिया जाता है ।

जिताना-क्रि० सं० [हि० 'जितना' का प्रे०] जीतने में समर्थ या
व्यक्त करना । उ०—ताही समै दूँज छल कीन्हों है छुवाली
संग, देव विपरीत धमि युक्त पहेली यात । पूछें जो पियारी
साहि जागत अमान पिय, थापु पछी प्यारी को जताह के
जिताह जात ।—देव ।

जितारा-वि० [सं० जितार] (१) जीतनेवाला । विजयी । (२)
धनी । जो जीत सके । (३) अधिक । भारी । धनी ।
(प्रायः पलड़े पर रखी हुई वस्तु के संबंध में बोलते हैं) ।

जितारि-वि० [सं०] (१) शत्रुजिद । (२) कामादि शत्रुओं को
जीतनेवाला ।

संज्ञा पु० सुन्दरेव का नाम ।

जिताष्टमी-संज्ञा स्त्री० [सं०] हिंदुओं का एक व्रत जिसे पुत्रवती
द्विर्वा करती हैं । यह व्रत श्रावित्य कृष्णाष्टमी के दिन पक्ता
है । इस दिन द्विर्वा सायंकाल के समय जलाशय में स्नान
कर जीमूत-बाहन की पूजा करती हैं और भोजन नहीं
करतीं । इस व्रत के लिये वदया तिथि ली जाती है । इस
को मित्रतिया भी कहते हैं ।

जिति-संज्ञा स्त्री० [सं०] जीत । विजय ।

जितुम-संज्ञा पु० [यू० विडुमई] मिथुन राशि ।

जितेंद्रिय-वि० [सं०] (१) जिसने अपनी इंद्रियों को जीत लिया
हो । जिसकी इंद्रियाँ उस के बरा में हों । जो इंद्रियासक्त न
हो । मनुस्मृति में ऐसे सुदुर के जितेंद्रिय माना है जिसे
सुनने, छूने, देखने, घाने और सूँघने से हर्ष या विषाद न
हो । (२) शांत । सम वृत्तिवाला ।

जिते-वि० [हि० जित-वे] जितने (संप्रत्या-सूचक) । उ०—वत
विदेस रहे हो जिते दिन देहू तिते मकुतानि की माला ।
—पद्माकर ।

जिते-क्रि० वि० [सं० यत्, प्र० यत्] जिघर । जिस शोर ।
उ०—साजल जिते चितवै तिय वै, तिय लौं लौं चितौति
सासन की घोरौ ।—वेव ।

जितो-वि० [हि० जित] जितना । (परिमाण-सूचक) ।
उ०—(क) बँडि मद्रा सतसंग हीमें विपमानि विषय रस कीसिं
सदाही । लौं पद्माकर भूट जितो जग जानि सुगुनादि के अष-
गार्हो ।—पद्माकर । (ख) नख सिलर सुंदरना अयलोकक, कशो न
परात सुप होत जितो री ।—सुजसी ।

विशेष—संख्या सूचित करने के लिये बहु वचन रूप 'जिते' का
प्रयोग होता है ।

क्रि० वि० जिस मात्रा से । जितना ।

जित्तम-संज्ञा पु० [यू० विडुमई] मिथुन राशि ।

जित्य-संज्ञा पु० [सं०] [स्त्री० जित्या] बड़ा हल ।

जित्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] हँगा ।

जितवर-वि० [सं०] नेता । जीतनेवाला । विजयी ।

जिद-संज्ञा स्त्री० [ष०] [वि० जिरी] (१) उलटी बात या वस्तु ।

विदह वातु या वात

† (२) वैर । शत्रुता ।

क्रि० प्र०—करना ।—पानना ।—रखना ।

(३) हठ । अड़ । दुरामह ।

क्रि० प्र०—खाना ।—करना ।—बाँचना ।—रखना ।

मुहा०—जिद पर खाना = हठ करना । खड़ना । जिद खड़ना =
हठ घटना । जिद पकड़ना = हठ करना ।

जिदियाना-क्रि० प्र० [हि० जिद] जिद बाँचना । हठ करना ।

जिदा-संज्ञा स्त्री० दे० "जिद" ।

जिदो-वि० [फा०] (१) जिद करनेवाला । हठी । अड़नेवाला ।
जैसे, जिरी खडुका । (२) दुरामही । दूसरे की बात न
माननेवाला ।

जिघर-क्रि० वि० [हिं० जिघ् + धर (प्रत्य०)] जिस शोर । जहाँ ।

मुहा०—जिघर तिघर = (१) जहाँ वहाँ । इधर उधर । (अर्थ
इधका कम प्रयोग है) । (२) बेठिकाने । बिना ठौर ठिकाने ।

विशेष—समन्वय में इसके साथ 'उधर' का प्रयोग होता है
जैसे, जिघर देखना हूँ उधर तू ही तू ही ।

जिन-संज्ञा पु० [सं०] (१) विष्णु । (२) सूर्य । (३) बुद्ध ।

(४) जैनों के तीर्थंकर ।

वि० [सं० जाने] 'जित' का बहु वचन ।

सर्वे 'जित' का बहु वचन ।

संज्ञा पु० [ष०] मुसलमान मूल ।

जिना-संज्ञा पु० [ष०] ध्यभिचार । जिनाखा ।

क्रि० प्र०—करना ।

यो०—जिनाका । जिना विजय ।

जिनाकार-वि० [फा०] [संज्ञा जिनाकारी] ध्यभिचारी ।

जिनाकारी-संज्ञा स्त्री० [फा०] पर-प्री-मानन । ध्यभिचार ।

जिना विजय-संज्ञा पु० [ष०] किसी स्त्री के साथ उसकी हत्या
और सम्पत्ति के विदह यज्ञार्थ संयोग करना ।

जिनिस-संज्ञा स्त्री० दे० "जित" ।

जिनिसवार-संज्ञा पु० दे० "जितवार" ।

जिन्दा-संज्ञा स्त्री० दे० "जित" ।

जिम्मा-संज्ञा स्त्री० दे० "जित्ना" ।

जिम्माला—वि० [हि० जीम + ला (प्रत्य०)] चटोरा । चट्टू ।
जिम्मा^१—संज्ञा स्त्री० दे० “जिम्मा” ।
जिम्मानास्टिक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की कसरत जो काठ के दोहरे वहाँ वा छुट्टों आदि के ऊपर की जाती है । शंकरजी कसरत ।

जिम्माना—कि० सं० [हि० जीमया] खाना खिलाता । भोजन करना ।

जिम्मि—कि० वि० [हि० जिम + इमि] जिस प्रकार से । जैसे । यथा । ज्यों । उ०—(क) कानिहि नारि पियारि जिमि, सोभिहि प्रिय जिमि दाम।—गुलसी । (ख) जिमि जिमि तापस कथं बढ़ासा । तिमि तिमि गृहपिं उपज पिभासा ।—गुलसी ।

विशेष—समन्वय सूचित करने के लिये इस शब्द के प्रागे ‘तिमि’ का प्रयोग होता है ।

जिम्मादार—संज्ञा पुं० दे० “जम्मादार” ।

जिम्मा—संज्ञा पुं० [सं०] (१) इस बात का भार ग्रहण कि कोई बात या कोई काम अवश्य होगा और यदि न होगा तो उसका दोष भार ग्रहण करनेवाले के ऊपर होगा । किसी ऐसी बात के होने या न होने का दोष अपने ऊपर लेने की प्रतिज्ञा जिसका संन्येव अपने से या दूसरे से हो । उत्तर-दायित्व एवं प्रतिज्ञा । जवाब-दिही । जैसे, (क) मैं इस बात का जिम्मा लेता हूँ कि फल चापको चीज मिल जायगी । (ख) इस बात का जिम्मा मेरा है कि ये एक महीने के भीतर चापका रुपया चुका दूँगे । (ग) क्या रोज रोज खिलाते का रोज जिम्मा लिया है ?

कि० प्र०—करना।—लेना ।

मुहा०—कोई काम किसी के जिम्मे करना = किसी काम को करने का भार किसी के ऊपर रोजना । किसी के जिम्मे रूपया धाना, निकलना या होना = किसी के ऊपर रुपया भ्रूण स्वरूप होना । देना ठहरना । जैसे, हिसाब करने पर ५ गुम्हारे जिम्मे निकलते हैं । किसी के जिम्मे रुपया ढालना = किसी के ऊपर भ्रूण या देना ठहरना ।

विशेष—जिम्मा धार वादा में यह शंकर है कि धादा अपने ही विषय में किया जाता है पर जिम्मा दूसरे के विषय में भी होता है ।

(२) सुपुर्दगी । देल रेल । संरपा । जैसे, ये सब चीजें मैं गुम्हारे जिम्मे छोड़ जाता हूँ, कहीं इधर उधर न होने पावें ।

जिम्मादार—संज्ञा पुं० दे० “जिम्मादार” ।

जिम्मादारी—संज्ञा स्त्री० दे० “जिम्मादारी” ।

जिम्मावार—संज्ञा पुं० [सं०] जवाबदेह । उत्तरदाता । यह जो किसी बात के लिये प्रतिज्ञा-बद्ध हो ।

जिम्मावारी—संज्ञा पुं० [हि० जिम्मावार] (१) उत्तरदायित्व । जवाब-दिही । किसी बात के करने या किये जाने का भार । (२) सुपुर्दगी । संरपा । उ०—हम इन चीजों को गुम्हारी जिम्मावारी पर छोड़ जाते हैं ।

जिम्मेदार—संज्ञा पुं० दे० “जिम्मावार” ।

जिम्मेदारी—संज्ञा स्त्री० दे० “जिम्मावारी” ।

जिम्मेवार—संज्ञा पुं० दे० “जिम्मावार” ।

जिम्मेवारी—संज्ञा स्त्री० दे० “जिम्मावारी” ।

जिया—संज्ञा पुं० [सं० जीव] मन । चित्त । जी । उ०—यस जिय जानि मुनहु सिल भाहें । करहु मातु पितु पद सेवकाई ।—गुलसी ।

जियन—संज्ञा पुं० [हि० जीवन] जीवन । जिंदगी ।

जियरा—संज्ञा पुं० [हि० जीव] जीव । उ०—मेरो स्वभाव चित्तै को माहें री खाल निहारी कै यंती बजाहें । वा दिन तें गंदि लागी टोरी ली लोग कहें फोट बापरी धाहें । वें रसखानि विवावो सिगरो प्रज जानत वे कि मेरो जिवरा है । जो कोट चाहे भलो अपनेता तो सनेह न काहू सेतें कीजिय माहें ।—रसखान ।

जिया जंतु—संज्ञा पुं० दे० “जीव जंतु”

जियादती—संज्ञा स्त्री० दे० “ज्यादती” ।

जियादा—वि० दे० “ज्यादा” ।

जियान—संज्ञा पुं० [सं०] धादा । टोटा । नुकसान । दानि । घति । कि० प्र०—करना ।—उठाना ।

जियाना—संज्ञा पुं० [हि० जीवन] (१) खिलाता । उ०—अपहें करि माया जिय केरी । मोहिं जिपाव देहु पिय मेरी ।—जायसी । (२) पाजगा । पोसना । उ०—याय बसुनि के गाय जियावत, बाघिनि पै सुरभी सुत पोपे ।—गुमान ।

जिया पोता—संज्ञा पुं० [हि० जिज्ञाना + पूत] पुत्रजीवा का पेड़ । पतजिव ।

जियाफत—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) घातिष्य । मेदमानदारी । (२) भोज । दावत ।

मुदा—जियाफत करना = (१) धादर खकार करना । (२) खाना खिलाना । भोज देना ।

जियारत—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) दरंग । (२) तीर्थ दरंग ।

मुहा०—जियारत लागना = भेजा लागना । दरंग के लिये दरीकें की भीड़ होना ।

जियारतगाह—संज्ञा पुं० [सं०] (१) पवित्र स्थान । तीर्थ । (२) दरवार । दरगाह (३) दरंगों की भीड़ या जमघट ।

जियारती—वि० [सं०] (१) दरंग । (२) तीर्थयात्री ।

जियारी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) जीवन । जिंदगी । उ०—बनके खे मान कियो घादी में प्रमान भयो । पयो जो पै जाह लौही ती जियारी है ।—प्रिया । (२) जीविका ।

३०—राकापति बाँका तिया बसै पुर पँहुर में डर में न चाह नेहुँ रीति कहु न्यारिये । लकरीन बीनि करि जीविका नवीन करै, धरै हरि रूप दिये, ताही साँ निवारि यै।—प्रिया।

(२) जीवट । जिरगा । हृदय की दृढ़ता । साहस ।

जिरगा—संज्ञा पुं० [फा०] (१) कुँड । गरोह । (२) मंदली ।

जिरह—संज्ञा पुं० [फ० जुए] (१) हुज्जत । खुचुर (२) फेर कार के प्रश्न जिनसे उत्तरदाता घबड़ा जावे और सची यात को छिपा न सके । ऐसी पृष्ठ ताउ जो किसी से उसकी कही हुई बातों की सत्यता की आँच के लिये की जाय ।

क्रि० प्र०—करना।—होना ।

मुदा—जिरह काटना या निकालना = लौद विनोद करना । बहुत अधिक पूछ ताउ करना । बात में बात निकालना । खुचुर निश्चयना ।

(३) वह सूत की डोरी जो बैसर में ऊपर नीचे पय के गाँवने के लिये खगी रहती है । (जुलाहे) ।

जिरह—संज्ञा स्त्री० [फा०] लोहे की कड़ियों से बना हुआ कवच । धर्म । बकतर ।

धौ—जिरह पोय = जो बकतर पहने हे । कवची ।

जिरही—वि० [हिं० जिरह] जो जिरह पहने हे । कवचधारी ।

जिरामत—संज्ञा स्त्री० [फ०] सेती । कृषि कर्म ।

क्रि० प्र०—करना ।

धौ—जिरामत पेया—खेतित्तर । कितान । कृषक ।

जिरामत—संज्ञा स्त्री० दे० “जिरामत” ।

जिराफा—संज्ञा पुं० [फ० जराफ] मरु भूमि का एक वन्य पशु । यह अफ्रीका की मरु भूमि में कुँडों में फिरा करता है । इसके पैरों में खुर होते हैं और इसका आगला धड़ पिलुके से भारी होता है । गर्दन इसकी ऊँट की सी लंबी होती है । यह अठारह फुट ऊँचा होता है । इसके सिर पर दो छोटे छोटे सींग होते हैं जो रोपुंदार चमड़े से ढके रहते हैं । इसकी आँखें खुदर और उभरी होती हैं जिनसे यह बिना सिर सोढ़े पीछे देख सकता है । इसकी नाक की बनावट ऐसी होती है कि यह जब चाहे उसे बंद कर सकता है । जीम इसकी हतनी लंबी होती है कि यह उसे सुँह से सत्रह इंच बाहर निकाल सकता है । इसके शरीर पर हिरन के से रोपुँ और बड़ी बड़ी चिचियाँ होती हैं । यह ताड़ों और खजूरों की पत्तियाँ खाता है ।

जिरिया—संज्ञा पुं० [हिं० जौरा] एक प्रकार का धान जो जिर की तरह पतला और लंबा होता है ।

जिरा—संज्ञा स्त्री० [फ०] (१) चमक दमक । शोष । पानी ।

मुदा—जिरा करना या देना = किसी वस्तु को मौज कर तथा रोगन आदि चढ़ा कर चमकाना । सिकली करना । जैसे, हथियारों पर जिरा देना, लखवार पर जिरा देना ।

धौ०—जिलाकार = सिकलीगर ।

(२) मौज कर तथा रोगन आदि चढ़ा कर चमकाने का कार्य । चमकाने की क्रिया । शोष देने का कार्य ।

जिला—संज्ञा पुं० [फ०] (१) प्रांत । प्रदेश । (२) भारतवर्ष में किसी प्रांत का वह भाग जो एक कलक्टर वा डिप्टी कमिश्नर के प्रबंध में हो । (३) किसी इलाके का छोटा विभाग वा शंख । धौ०—जिलादार ।

(४) किसी जमींदार के इलाके के बीच बना हुआ वह मकान जिसमें वह या उसके आदमी तहसील वसूल आदि के लिये ठरहते हैं ।

जिलाट—संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का एक नाम जिस पर चमड़ा मड़ा होता था और जो धाप से बजाया जाता था ।

जिलादार—संज्ञा पुं० [फा०] (१) सरबराहकार । सजावज । (२) वह अफसर जिसे जमींदार अपने इलाके के किसी भाग में खगान वसूल करने के लिये नियत करता है । (३) वह छोटा अफसर जो नहर, अफीम आदि सर्वेची किसी इलाके में काम करने के लिये नियत हो ।

जिलादारी—संज्ञा स्त्री० [फा०] जिलेदार का काम ।

जिलाना—क्रि० सं० [हिं० जैना का सं०] (१) जीवन देना । जी खालना । जिंदा करना । जीवित करना । जैसे, मुर्दा जिलाना । (२) पालना । पालना । जैसे, सेता जिलाना, कुचा जिलाना । (इस क्रिया का प्रयोग प्रायः ऐसे ही पशुओं वा जीवों के लिये होता है जिनसे मनुष्य कोई काम नहीं करता, केवल मनोरंजन के लिये पालता है । जैसे कुचा, पिछी, सेता, रोर, आदि । घोड़े, हाथी, ऊँट, गाय, बैल, आदि के लिये इसका प्रयोग नहीं होता ।) (३) मरने से बचाना । मरने न देना । प्राय रचा करना । जैसे, सरकार ने अकाल में लाखों आदमियों को जिला लिया । (४) धातु के मस को फिर धातु के रूप में लाना । मूर्च्छित धातु को पुनः जीवित करना ।

जिलासाज—संज्ञा पुं० [फा०] सिकलीगर । हथियारों पर शोष चढ़ानेवाला ।

जिलाह—संज्ञा पुं० [फ० जट्ट ?] अत्याचारी । व०—ज्याला की जलन सी, अल्लाक जंग जालन की, जोर की जमा है जोग खुलम जिलाहे की।—पद्माकर ।

जिलेदार—संज्ञा पुं० दे० “जिलादार” ।

जिलेधी—संज्ञा स्त्री० दे० “अलेधी” ।

जिदद—संज्ञा स्त्री० [फ०] [वि० जिदी] (१) खाल । चमड़ा । खलड़ी । (२) ऊपर का चमड़ा । खवा । जैसे, जिदद की धीमारी । (३) वह पट्टा या दुपती जो किसी किताब की सिलाई खुलवेंदी आदि फरके उसके ऊपर उसकी रचा के लिये खगाई जाती है ।

क्रि० प्र०—बनाना।—बाँधना ।

धा०—जिल्दबंध । जिल्दसाग ।

(४) पुस्तक की एक प्रति ।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग उस समय होता है जब पुस्तकें का प्रहय सख्या के अनुसार होता है । जैसे, दस जिल्द पद्यावत, एक जिल्द रामायण ।

(*) किसी पुस्तक का वह भाग जो प्रथम सिला हो । भाग । जैसे, दाबूदफाल की बानी दो जिल्दों में छपी है ।

जिल्दगर—संज्ञा पुं० [फा०] जिल्दबंध ।

जिल्दबंध—संज्ञा पुं० [फा०] वह जो किताबों की जिल्द बांधता हो । जिल्द बांधनेवाला ।

जिल्दबंधी—संज्ञा स्त्री० [फा०] पुस्तकों की जिल्द बांधने का काम । जिल्दबंधाई ।

जिल्दसाज—संज्ञा पुं० [फा०] [सजा जिल्दसाजी] जिल्दबंध

जिल्दसाजी—संज्ञा स्त्री० [फा०] जिल्दबंधी । किताबों पर जिल्द बांधने का काम ।

जिल्दी—वि० [फा०] लक संबंधी । लकवा वा चमड़े से संबंध रखनेवाला । जैसे, जिल्दी धीमारी ।

जिल्दत—संज्ञा स्त्री० [फा०] (१) अनादर । अपमान । तिरस्कार । बेहजती ।

मुहा०—जिल्दत बढ़ाना = (१) अपमानित होना । (२) तुच्छ होना । हेटा ठहरना । जिल्दत देना = (१) अपमानित करना । (२) सजित करना । हतक करना । हेटा ठहराना । जिल्दत पाना = अपमानित होना ।

(२) दुर्गति । दुर्दशा । हीन दशा । जैसे, जिल्दत में पड़ना वा फँसना ।

जिल्हो—संज्ञा पुं० [दे०] एक प्रकार का शॉट जो आसाम में होता है और घर की छानन आदि में लगता है ।

जिल्होर—संज्ञा पुं० [दे०] एक प्रकार का घान जो अगहन में काटा जाता है ।

जिघा—संज्ञा पुं० दे० 'जीव' ।

जिवाजिघ—संज्ञा पुं० [सं०] चकौर पत्ती ।

जिष्णु—वि० [सं०] जीतनेवाला । विजय प्राप्त करनेवाला । विजयी ।

संज्ञा पुं० [सं०] (१) विलय । (२) इंद्र । (३) अशुन ।

(४) सूर्य । (५) यमु ।

जिस-वि० [सं० घ, यस्] 'जो' का वह रूप जो वस्ते विभक्ति-युक्त विशेष्य के साथ आने से प्राप्त होता है । जैसे, जिस पुरुष ने, जिस लड़के को, जिस छड़ी से, जिस घोड़े पर, जिस घर में, इत्यादि ।

सर्वे 'जो' का वह रूप जो वस्ते विभक्ति खरने के पहले प्राप्त होता है । जैसे, जिसने, जिसको, जिससे, जिसका, जिस पर, जिसमें ।

विशेष—संबंध पूरा करने के लिये 'जिस' के पीछे 'वस्ते' का प्रयोग होता है । जैसे, जिसको दूँगे वस्ते लेंगे । पहले 'वस्ते' के स्थान पर 'तिस' का प्रयोग होता था ।

जिसिम—संज्ञा पुं० दे० 'जिसम' ।

जिस्ता—संज्ञा पुं० (१) दे० 'जस्ता' । † (२) दे० 'दस्ता' ।

जिस्म—संज्ञा पुं० [फा] शरीर । देह ।

जिह—संज्ञा स्त्री० [फा० नद, सं० ज्या] चिह्ना । रोदा । ज्या । (धनुष) । ३०—तिय कित कमलैती पढ़ी मिन जिह भौह कमल । चित चख येके सुकति नहिं बंक बिलोकनि धान ।—विहारी ।

जिहन—संज्ञा पुं० [फा०] समझ । बुद्धि । धारणा

मुहा०—जिहन खुलना = बुद्धि का विकास होना । जिहन लड़ना = बुद्धि का काम करना । बुद्धि पहुँचना । जिहन लड़ाना = सोचना । बुद्धि दौड़ाना । ऊहापोह करना ।

जिहाद—संज्ञा पुं० [फा०] (१) धर्म के लिये युद्ध । मजहदी लड़ाई । धार्मिक युद्ध । (२) वह लड़ाई जो मुसलमान लोग अन्य धर्मावलंबियों से अपने धर्म के प्रचार आदि के लिये करते थे ।

मुहा०—जिहाद का फंडा = वह पताका जो मुसलमान लोग भिन्न धर्मावलंबी से युद्ध करने के लिये लेकर चखते थे । जिहाद का फंडा करना = मजहद के नाम पर लड़ाई छेड़ना ।

जिहालत—संज्ञा स्त्री० [फा० जहालत] मूर्खता । अज्ञानता ।

जिहासा—संज्ञा स्त्री० [सं०] त्याग करने की इच्छा ।

जिहासु—वि० [सं०] त्याग करने की इच्छा करनेवाला ।

जिहीपु—संज्ञा स्त्री० [सं०] हरे की इच्छा । लेने की इच्छा । हरण करने की कामना ।

जिहीपु—वि० [सं०] हरण करने की इच्छा रखनेवाला ।

जिह्वा—वि० [सं०] (१) बक । टेढ़ा । (२) दुष्ट । क्रूर प्रकृतिवाला । कुटिल । कपटी । (३) अग्रसख । खिर । (४) मंद । संज्ञा पुं० (१) तगर का फूल । (२) अग्रमं ।

जिह्वागति—वि० [सं०] (१) कुटिल गतिवाला । टेढ़ी चाल चलनेवाला । (२) मंदगति । धीमा । (३) कुटिल । कपटी । चालबाज ।

संज्ञा पुं० साँप ।

जिह्वागति—संज्ञा पुं० [सं०] साँप ।

जिह्वागामी—वि० [सं० जिह्वागामि] [स्त्री० जिह्वागामिनी] (१) टेढ़ा चलनेवाला । (२) कुटिल । कपटी । चालबाज । (३) मंदगामी । सुस्त । धीमा ।

जिह्वाता—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) टेढ़ापन । चकता । (२) मंदता ।

धीमापन । (३) कुटिलता । कपट । चालबाजी ।

जिह्वामेहन—संज्ञा पुं० [सं०] भेड़क ।

जिह्वाशय्य—संज्ञा पुं० [सं०] खैर । खदिर । कर्पा ।

जिह्वित-वि० [सं०] धूमा हुआ । फिरा हुआ । चकित । विस्मित ।

जिह्वोद्यत-वि० [सं०] झुकिया हुआ । टेढ़ा किया हुआ ।

जिह्वक-संज्ञा पु० [सं०] एक प्रकार का सविपात जिसमें जीभ में कटि पड़ जाते हैं, रोगी से स्पष्ट बोझा नहीं जाता, जीभ लक्ष्मणवर्ती है । इसकी श्रवणि सोलह दिन की है । इसमें श्वास काल आदि भी हो जाते हैं । इस रोग में रोगी प्रायः गूँगे वा बहरे हो जाते हैं ।

जिह्वल-वि० [सं०] जिनला । चट्ट । चटारा ।

जिह्वा-संज्ञा स्त्री० [सं०] जीभ ।

जिह्वाम्र-संज्ञा पु० [सं०] जीभ की मोक । टूँड़ ।

मुहा०—जिह्वाम्र करना = कठरप करना । बुधानी याद करना ।

किसी विषय को इस प्रकार बताना या घोलना कि उसे जय चाहे तब फट बाधे । जिह्वाम्र होना = बुधानी याद होना ।

जिह्वाजप-संज्ञा पु० [सं०] संग्रानुसार एक प्रकार का जप जिसमें केवल जिह्वा ही हिलने का विधान है ।

जिह्वप-संज्ञा पु० [सं०] वे पशु जो जीभ से पानी पिया करते हैं । जैसे कुत्ते, बिल्ली, सिंह, आदि ।

जिह्वामूल-संज्ञा पु० [सं०] [वि० जिह्वामूलीय] जीभ की जड़ वा पिल्लवा स्थान ।

जिह्वामूलीय-वि० [सं०] जो जिह्वा के मूल से संबंध रखता हो । संज्ञा पु० वह धर्म जिमका उच्चारण जिह्वामूल से हो । शिष्या के अनुसार ऐसे धर्म श्रयोपवाद होते हैं और वे संख्या में दो हैं—(क) और (ख) । क और ख के पहले विषर्ग आने से वे जिह्वामूलीय हो जाते हैं । कोई कोई वैयाकरण कर्मगं मात्र को जिह्वामूलीय मानते हैं ।

जिह्वारद-संज्ञा पु० [सं०] पची ।

जिह्वारोग-संज्ञा पु० [सं०] जीभ का रोग । सुष्ठु के मत से यह पाँच प्रकार का होता है । तीन प्रकार के कंठक जो वात पित्त और कफ के प्रकोप से जीभ पर पड़ जाते हैं, वैद्यक अनास जिसमें जीभ के नीचे सूजन हो जाती है और पाँचवाँ शपिजिह्विका जिसमें जिह्वा के मूल में सूजन हो जाती है और छात्र टपकती है । इन पाँचों में अनास असाध्य है । इसमें जीभ के छले की सूजन बड़ कर पक जाती है ।

जिह्वालिङ्ग-संज्ञा पु० [सं०] कुत्ता ।

जिह्वालय-संज्ञा पु० [सं०] शिविर । सैर । कस्या ।

जिह्विका-संज्ञा स्त्री० [सं०] जीभी ।

ऑंगना-संज्ञा पु० [सं०] बुग्या । खोलत । जुगम् । व०—दूध दूध दिवि जेति जगामगी होति अनुपम ऑंगन जाखन की।—गीग । (ख) विरह जरी कलि ऑंगनमि कही सुपद के धार । धरी धार उदि भीरै धरसत धान कीगार ।—विहारी ।

जी-संज्ञा पु० [सं० जीव] (१) मन । दिल । तवीयत । चित्त । व०—(क) कहत नसाह होइ हिय नीकी । रीमन राम जानि जन जी की।—तुलसी । (२) हिममत । दम । जीयत । (३) संकल्प । विचार । इच्छा । चाह ।

मुहा०—जी श्रच्छा होना = चित्त स्वयं होना । रोग आदि की पीड़ा वा वेदनी न रहना । नीरोग होना । व०—दो तीन दिन तक सुखार रहा, ध्यान जी श्रच्छा है । किसी पर जी आना = किसी से प्रेम होना । हृदय का किसी के प्रेम में अनुरक्त होना । जी उकतना = चित्त का उचाट होना । चित्त न लगना । एक ही अवस्था में बहुत काल तक रहने रहते परिवर्तन के विषे चित्त व्यग्र होना । तवीयत धनधाना । जैसे, तुम्हारी बातें सुनते सुनते तो जी उकता गया । जी उचटना = चित्त न लगना । चित्त का मृत्त न होना । मन हटना । किसी कार्य, यत्न वा स्थान आदि से विरक्त होना । व०—धय तो इस काम से मेरा जी उचट गया । जी उटना = दे० “जी उचटना” । जी उटना = चित्त हटना । मन फेर लेना । विरक्त होना । अनुरक्त न रहना । जी बड़ जाना = मय आशंका आदि से चित्त बहुधा व्यग्र हो जाना । चित्त चंचल हो जाना । धैर्य जाता रहना । जी में धराहट होना । व०—उसकी बीमारी का हाल सुनते ही मेरा तो जी बड़ गया । जी बदास होना = चित्त विरत होना । जी बदास जाना = (१) मन का बरा में न रहना । चित्त चंचल और अव्यवस्थित हो जाना । चित्त विक्षिप्त हो जाना । होरा हुआ जाता रहना । (२) मन फिर जाना । चित्त विरक्त होना । जी करना = (१) हिममत करना । हैसुप्रा करना । साहस करना । (२) जी चाहना । इच्छा होना । जैसे, धय तो जी करता है कि यहाँ से चला दें । जी कपिना = मय आशंका आदि से कतेमा धक धरु करना । हृदय धराना । डर लगना । जैसे, यहाँ जाने का नाम सुनते ही जी कपिना है । जी का सुखार निकालना = हृदय का उद्वेग वाहर करना । क्रोध, शोक दुःख आदि के वेग को रोक करना वा बक मफ कर शान्त करना । ऐसे क्रोध वा दुःख को शब्दों द्वारा प्रकट करना जो बहुत दिनों से चित्त को संतप्त करता रहा हो । जी का योग्य हलका होना = ऐसी बात का दूर होना जिधरी किता चित्त में बराबर रहती आरंभ हो । खटका मिटना । किता दूर होना । जी की गमान मंगना = प्राप्य रक्षा की प्रतिश की प्रार्थना करना । किसी काम के करने वा किसी बात के कहने के पहले उस मनुष्य से प्राप्य रक्षा करने वा श्रयण प्रना करने की प्रार्थना करना जिसके विषय में यह विचार हो कि उसे उस काम के होने वा उस बात के सुनने से श्रयण दुःख पहुँचेगा । जैसे, यदि किसी राजा से कोई अग्रिय बात करनी हुई तो लोग पहले यह कह लेंगे कि “जी का भमान पारने तो कहूँ” । जी की सा लगना = प्राप्य पर था

बनना। प्राण्य वचना कठिन हो जाना। ऐसे भारी मर्मद या संकट में फँस जाना कि पीड़ा छुड़ाना कठिन हो जाय। जी की निकालना = (१) मन की उमंग पूरी करना। दिल की हृदय निकालना। मनोरथ पूरा करना। (२) हृदय का उद्धार निकालना। क्रोध, दुःख द्वेष आदि उद्वेग को बक मक कर शांत करना। बदला लेने की इच्छा पूरी करना। जी की जी में रहना = स्मरणों का पूरा न होना। मन में ठानी सोची या चाही हुई बातों का न होना। जी की पढ़ना = प्राण्य वचने की चिंता होना। प्राण्य वचना कठिन हो जाना। ऐसे भारी मर्मद या संकट में फँस जाना कि पीड़ा छुड़ाना कठिन हो जाय। ३०—सय शसवाय दाढ़ो मैन काडो तैन काडो जिय की परी समारै सहन भँडार को।—तुलसी। जी का = जीयव्यक्त। निगोव्यक्त। साहसी। हिम्मतवर। दमदार। ३०—धनी धरनी के नीके आगुनी अनी के संग आबिं सुरि जीके मो नजी के गरजी के सों।—गोपाल। (किसी के) जी को जी सम्मन्ना = किसी के विषय में यह सम्मन्ना कि यह भी जीव है, उसे भी कष्ट होगा। दूरे के कष्ट को सम्मन्ना। दूरे को कलेस न पहुँचाना। दूरे पर दया करना। जी को मारना = (१) मन की इच्छाओं को रोकना। चित्त के उत्साहों को न पूरा करना। (२) संताप धारण करना। जी को न लगाना = (१) चित्त में अतुल्य होना। हृदय में वेदना होना। लक्षणभूति होना। जैसे, दूसरों की पीड़ा आदि किसी के जी को नहीं लगती। (२) मिय लगाना। भाना। अच्छा लगाना। जी लटकना = (१) चित्त में लटकना या संदेह उत्पन्न होना। (२) हानि आदि की आशंका से (किसी काम के करने से) जी हिलकना। (किसी से या किसी की शेर से) जी लटका करना = मन फेर देना। चित्त में घृणा या विरक्ति उत्पन्न कर देना। चित्त विरक्त करना। हृदय में दुर्भाव उत्पन्न करना। ३०—गुहों ने मेरी शेर से बनका जी लटका कर दिया है। (किसी से या किसी की शेर से) जी लटका होना = चित्त हट जाना। मन फिर जाना या विरक्त होना। अतुल्य न रहना। घृणा होना। जैसे, उस एक घात से बनकी शेर से मेरा जी लटका हो गया। जी लक्षण = (१) चित्त लम्बा चलना। (किसी काम में) जी लगाना। निताड दृष्टिपण होना। जी तोड़ कर किसी काम में लगाना। (२) प्राण्य देना। अत्यंत कष्ट उठाना। जी खलना = संशय हट जाना। भटक छुन्न जाना। किसी काम के करने में हिलक न रह जाना। जी खोज कर = (१) वेष्टक। विना किसी संशय के। विना किसी प्रयत्न के मत्त या क्षत्र के। विना हिलके। जैसे, जो कुछ सुनई कहना हो जी खोज कर कहे। (२) किना जी पड़े। निन्द अनी शेर से केरं कमी किय। मन मना। दण्ड। ३०—गुन हमें जी खोज कर गालियाँ

दे, कोई चिंता नहीं। जी गैवाना = प्राण्य देना। जान लेना। जी गिरा जाना = जी बैठ जाना। तवीयत सुल होती जाना। शिष्यजता आती जाना। जी वपराना = (१) चित्त अङ्कुर होना। मन व्यग्र होना। (२) मन न लगना। जी जवना। जी चलना = (१) जी चाहना। इच्छा होना। (२) जी आना। चित्त मोहित होना। जी चला = (१) वीर। दिनेर। बहादुर। शूर। शूरमा। (२) दानवीर। दाता। दानी। उदार। दानशूर। (३) रतिक। सहृदय। जी चलाना = (१) इच्छा करना। मन दौड़ाना। चाह करना। (२) हिम्मत बंधना। साहस करना। होशला बढ़ाना। जी चाहना = मोहितना होना। मन चलना। इच्छा होना। जी चाहे = (१) यदि इच्छा हो। यदि मन में आवे। जी सुराना = किसी काम या बात से बचने के लिये हीला हवाली करना या युक्ति रचना। किसी काम से भागना। जैसे, यह नौकर काम से जी सुरता है। जी छुपाना = दे० “जी सुराना”। जी छटना = (१) हृदय की दृढ़ता न रहना। साहस दूर होना। निराशा होना। नाउम्मेदी होना। उत्साह जाता रहना। (२) थकलप होना। शिथिलता आना। जी छोटा करना = (१) हृदय का उत्साह कम करना। मन उदास करना। (२) हृदय संकुचित करना। दान देने का साहस कम करना। उदारता छोड़ना। फुंसी करना। जी छोड़ना = (१) प्राण्य त्याग करना। मरना। (२) हृदय की दृढ़ता खोना। साहस गँवाना। हिम्मत हारना। जी छोड़ कर भागना = हिम्मत हार कर बड़े योग से भागना। एकदम भागना। ऐसा भागना कि दम लेने के लिये भी न ठहरना। जी जलना = (१) चित्त संतप्त होना। हृदय में संताप होना। चित्त में कुड़ना और दुःख होना। क्रोध आना। गुस्सा लगना। (२) शर्षा होना। डाह होना। जी जवाना = (१) चित्त संतप्त करना। हृदय में क्रोध उत्पन्न करना। कुड़ना। चिढ़ाना। (२) हृदय में दुःख उत्पन्न करना। रंज पहुँचाना। दुली करना। चित्त व्यथित करना। सताना। (३) शर्षा या दाह उत्पन्न करना। जी जानता है = हृदय ही अनुभव करता है, कहा नहीं जा सकता। सही हुई कठिनार्थ, तुल्य पीड़ा आदि वर्षों के बाहर है। जैसे, (क) मार्ग में जो जो कष्ट हुए जी ही जानता है। (ख) वसने हजनी मार खाई है कि जी ही जानता होगा। (‘जी जानता होगा’ भी योक्त जात है)। जी जान लड़ाना = मन लगाना। दसचित्त होना। जी जान से लगना = हृदय से प्रवृत्त होना। सारा ध्यान लगा देना। एकाम चित्त होकर उत्तर होना। ३०—वह जी जान से इस काम में लगा है। किसी को जी जान से खरी है = कोई हृदय से तप रहे। किसी की धार इच्छा और प्रयत्न है। कोई सारा ध्यान लगा कर उत्पन्न है। कोई बराबर ही निंता और उपयोग में है। ३०—वसे जी जान से खरी है कि महान्त वन

जाय । जी दूट जाना = बरखाई भंग हो जाना । उर्मग या होमका न रह जाना । नैराश्य होना । उदासीनता होना । ३०—उनकी बातों से हमारा जी दूट गया, अथ कुछ न करेंगे । जी टेंगा रहना, होना = चिन्म में ध्यान वा चिन्ता रहना । जी में खटकना वना रहना । चित्त चिन्तित रहना । ३०—(क) अब तक तुम झोटा कर नहीं धाराधो मेरा जी टेंगा रहेगा । (ख) बसका कोई पत्र नहीं आया, जी टेंगा है । जी टेंगा होना = (१) चित्त शांत और संतुष्ट होना । अभिप्राय पूरी होने से हृदय प्रफुल्लित होना । चिन्म में संतोष और प्रसन्नता होना । ३०—वह यहाँ से निकाल दिया गया, अथ तो तुम्हारा जी टेंगा हुआ । जी टुकना = (१) मन के संतोष होना । चित्त स्थिर होना । (२) चित्त में दृढ़ता होना । साहस होना । हिम्मत वैयना । दे० “छाती टुकना” । जी डालना = (१) शरीर में प्राण डालना । जीवित करना । (२) प्राणरक्षा करना । मरने से बचना । (३) हृदय मिलाना । प्रेम करना । जी डूबना = (१) बेधेरा होना । मूर्ख होना । चित्त विह्वल होना । (२) चित्त स्थिर न रहना । पत्राष्ट और वैचैनी होना । चित्त व्याकुल होना । जी दहा जाना = दे० “जी वैठा जाना” । जी तपना = जी जानना । चित्त क्रोध से संकट होना । क्रोध चढ़ना । ३०—सुनि गज अह अधिक जिड तपा । सिंह जात कहुँ रह गदि” द्रुप ।—जायसी । जी तरसना = किसी वस्तु वा बात के आभास से चित्त व्याकुल होना । किसी वस्तु की प्राप्ति के लिये चित्त अर्पीर या लुली होना । किसी बात की इच्छा पूरी न होने का कष्ट होना । जैसे—(क) तुम्हारे दरान के लिये जी तरसता था । (ख) अब तक बंगाल में ये रोटी के लिये जी तरस गया । जी बहलना = भय वा आशंका से चित्त दविडोड होना । डर से हृदय कांपना । डर के मारे जी टिकाने न रहना । अत्यंत मय लगना । जी-दान = प्राणदान । प्राण-रक्षा । जीदार = जीवदयता । दृढ़ हृदय का । साहसी । हिम्मत-पर । बहादुर । बड़े दिग्ग का । जी दुखना = चित्त के कष्ट पहुँचना । हृदय में दुःख होना । ३०—ऐसी बात क्यों योसले हो जिससे किसी का जी दुखे । जी दुखाना = चित्त व्यथित करना । हृदय का कष्ट पहुँचना । दुःख देना । खतना । ३०—व्यर्थ किसी का जी दुखाने से क्या काम ? जी देना = (१) प्राण खेना । मरना । (२) दूरी की प्रसन्नता वा रक्षा के लिये प्राण देने के लिये प्रस्तुत रहना । प्राण से बूढ़ कर प्रिय धममना । अत्यंत प्रेम करना । ३०—वह हम पर जी देता है और हम उससे भागे फिरते हैं । जी दाइना = मन चतना । इच्छा होना । साधना होना । जी पेंसा जाना = दे० “जी वैठा जाना” जी धक्कना = (१) भय वा आशंका से चित्त स्थिर न रहना । फनेना धक धक करना । डर के मारे हृदय में पत्राष्ट होना । डर लगना । (२) चित्त में दृढ़ता न होना । साहस न पड़ना ।

हिम्मत न पड़ना । ३०—घार ऐसे पास से निकालते जी धक्कता है । जी धक धक करना = फलेने का भय आदि के आविग से जोर जोर उल्लुभना । जी धक्कना । डर लगना । जी धक धक होना = दे० “जी धक धक करना” । जी निकलना = (१) प्राण छूटना । प्राण निकलना । मृत्यु होना । (२) भय से चित्त व्याकुल होना । डर लगना । प्राण सूखना । ३०—अथ तो अथर जाते इसका जी निकलता है । (३) प्राणांत कष्ट होना । कष्ट बोध होना । ३०—तुम्हारा खपया तो नहीं जाता है, तुम्हारा क्यों जी निकलता है ? जी निडाल होना = चित्त का स्थिर न रहना । चित्त टिकाने न रहना । चित्त विह्वल होना । हृदय व्याकुल होना । जी पक जाना = किसी अस्त्रिय बात का नियत देखते देखने वा सुनते सुनते चित्त दुली हो जाना । किसी बार बार होनेवाली बात का चित्त का अस्थ हो जाना । और अधिक सहने की सामर्थ्य चित्त में न रहना । ३०—निलय तुम्हारी जली कटी बातें सुनते सुनते जी पक गया । जी पड़ना = (१) शरीर में प्राण का संचार होना । जैसे, गर्भ के शालक को जी पड़ना । (२) मूलक के शरीर में प्राण का संचार होना । मरे हुए में जान आना । जी पकड़ खेना = कलेजा घामना । किसी अस्थय दुःख के वेग के दवाने के लिये हृदय वा छाती पर हाथ रख खेना । जी पकड़ जाना = मन में संदेह पड़ जाना । माया टनकना । कोई भारी खटका पैदा हो जाना । कोई भारी आशंका चित्त में उठना । (खि०) ३०—तार आते ही मेरा तो जी पकड़ा गया । जी पर धा बनना = प्राणाँ पर धा बनना । प्राण यचना फटिन हो जाना ऐसे मारो संकट वा भ्रंशट में फँट जाना कि पादा छुड़ाना फटिन हो जाय । जी पर खेनना = प्राण का संकट में धातना । जान के आफत में धातना । जान पर जेलो उठाना । ऐसा काम करना जिसमें प्राण जाने का भय हो । जी पानी करना = (१) लहू पानी एक करना । प्राण देने और खेने की नैवत धना । भारी आशंका खड़ी करना । (२) चित्त केमत्र वा द्यार्द करना । जी पानी होना = चित्त केमत्र वा द्यार्द होना । जी पिपबना = (१) दया से हृदय द्रवित होना । चित्त का द्यार्द होना । (२) हृदय का प्रेमार्द होना । चित्त में स्नेह का संचार होना । जी पीछे पड़ना = दिग्ग रहना । चित्त वैठना । मन का किसी ओर लग जाना जिसमें दुःख की बात छुड़ भूज जाय । (खि०) । जी फट जाना = हृदय मिला न रहना । चित्त में पड़ने का वा उदभाव या प्रेमभाव न रह जाना । प्रीति भंग होना । प्रेम में अंतर पड़ जाना । चित्त विरक्त होना । किसी की ओर से चित्त विरक्त हो जाना । जी फिर जाना = मन दूट जाना । चित्त विरक्त हो जाना । चित्त अस्तुक्त न रहना । हृदय में पूषा वा अरवि उल्लुभ हो जाना । ३०—अथ किसी से जी फिर जाता है तब फिर पड़ बात चीन नहीं रह जाती । जी

किसलना=चित्त का (किसी की ओर) आकर्षित होना। मन लिये चला। हृदय अतुरक्त होना। मन मोहित होना। मन लुभाना। जी फीका होना=दे० "जी खटा होना"। जी बँटना=(१) जी बहुज्ञाना। चित्त का किसी ओर इस प्रकार लग जाना कि कोई दुःख वा चिंता की बात भूल जाय। (२) चित्त का एकत्र न रहना। चित्त का एक विषय में पूर्ण रूप से न लगा रहना, दुसरी बातों की ओर भी चला जाना। ध्यान स्थिर न रहना। ध्यान भंग होना। मन उच्यतना। जैसे, काम करते समय यदि कोई कुछ बोलने लगता है तो जी बँट जाता है। (३) एकाग्र प्रेम न रहना। एक व्यक्ति के अतिरिक्त दूसरे व्यक्ति से भी प्रेम हो जाना। अन्य प्रेम न रहना। जी बंद होना=दे० "जी फिरना"। जी बड़ना=(१) चित्त प्रसन्न वा उत्साहित होना। होसहा बढ़ना। (२) साहस बढ़ना। हिम्मत आना। जी बढ़ाना=(१) उत्साह बढ़ाना। किसी विषय में प्रवृत्त करने के लिये उत्तेजित करना। प्रशंसा पुरस्कार आदि द्वारा किसी काम में अधिक रुचि उत्पन्न करना। होसहा बढ़ाना। जैसे, लड़कों का जी बढ़ाने के लिये इनाम दिया जाता है। (२) किसी कार्य की सफलता की आशा बँधा कर अधिक उत्साह उत्पन्न करना। किसी कार्य में होनेवाली बाधा या कठिनाई के दूर होने का निश्चय दिला कर उसकी ओर अधिक प्रवृत्ति उत्पन्न करना। साहस दिलाना। हिम्मत बँधाना। जी यहलाना=(१) चित्त का किसी विषय में लग कर आनंद अनुभव करना। चित्त का आनंदपूर्वक लीन होना। मनोरंजन होना। जैसे, धोड़ो देर खेल खेने से जी यहल जाता है। (२) चित्त के किसी विषय में लग जाने से दुःख वा चिंता की बात भूल जाना। जैसे, मित्रों के यहाँ धा जाने से कुछ जी यहल जाता है, नहीं तो दिन रात उस बात का दुःख बना रहता है। जी यहलाना=(१) रुचि के अनुकूल किसी विषय में लग कर चित्त प्रसन्न करना। ध्यान वगैरे किसी ओर लगा कर आनंद अनुभव करना। मनोरंजन करना। उ०—कभी कभी जी यहलाने के लिये तास भी खेल खेते हैं। (२) चित्त को किसी ओर लग कर दुःख वा चिंता की बात भूल जाना। जी विसरना=(१) चित्त ठिकाने न रहना। मन विह्वल होना। (२) मूर्च्छा होना। बेहोशी होना। जी विगड़ना=(१) जी मचलाना। मगली छूटना। ऊँ करने की इच्छा होना। (२) मिटकना। घृणा करना। पिन मालूम होना। जी बुरा करना=ऊँ करना। उल्टी करना। बमन करना। (किसी की ओर से) जी बुरा करना=किसी के प्रति अच्छा भाव न रखना। किसी के प्रति घृणी धारणा रखना। किसी के प्रति घृणा वा मोघ करना। (किसी की ओर से दूसरे का) जी बुरा करना=दूसरे का ख्यात पत्र वा करना। घृणी धारणा उत्पन्न करना। मोघ घृणा वा गुर्भाव उत्पन्न करना। जी बुरा

होना=(१) ऊँ होना। उल्टी होना। (२) ख्यात पत्र वा होना। चित्त में गुर्भाव वा घृणा उत्पन्न होना। जी बुरा जाना=(१) चित्त विह्वल होना जाना। चित्त ठिकाने न रहना। चेतना न रहना। मूर्च्छा सी आना। उ०—आज न जाने क्यों बड़ी कमजोरी जान पड़ती है और जी बँटा जाता है। (२) मन मरना। उदासी होना। जी भिटकना=चित्त में घृणा होना। पिन मालूम होना। जी भरना (कि० ध०)= (१) चित्त संतुष्ट होना। तुष्टि होना। तृप्ति होना। मन खपाना। और अधिक की इच्छा न रह जाना। जैसे, (क) सब जी भर गया और न खाएगे। (ख) तुम्हारी बातों ही से जी भर गया, अब जाते हैं। (घंघंय)। (२) मन की अभिलाषा पूरी होने से आनंद और संतोष होना। जैसे, जो मैं आज यहाँ से चला जाता हूँ, अब तो तुम्हारा जी भरा। (३) रुचि के अनुकूल होना। मन मानना। मन में घृणा न होना। उ०—पैसे गंदे धातन में पानी पीते हो, न जाने कैसे तुम्हारा जी भरता है। जी भर कर=चित्त और जहाँ तक जी चाहे। मन माना। थपेट। उ०—तुम हमें जी भर कर गालियाँ दो, कोई परवाह नहीं। जी भरना (कि० स०)=चित्त विश्वासपूर्वक करना। चित्त का संदेह दूर करना। चित्त से किसी बात की सुराई या धोला आदि खाने की आशंका दूर करना। खटका मिटाना। इतमीनान करना। दिल जमाई करना। उ०—यों तो चेन्ने में कोई येव नहीं है पर थाप दस बादमियों से पल्लु कर अपना जी भर लीजिए। जी भर आना=हृदय का कर्षण वा शोक के श्रावेग से पूर्ण होना। चित्त में दुःख वा कर्षण का उद्रेक होना। दुःख वा दया उमड़ना। हृदय में इतने दुःख वा दया का वेग उठना कि आँसों में आँसू आ जाय। हृदय का कर्षण से विह्वल होना। जी भरभरा बटना=रोमांच होना। हृदय के किसी आकस्मिक श्रावेग से चित्त विह्वल हो जाना। (अपना) जी भारी करना=चित्त लिये वा दुखी करना। जी भारी होना=तवीयत अच्छी न होना। किसी रोग वा पांडा आदि के कारण सुस्ती जान पड़ना। शरीर अच्छा न रहना। जी भुरभुराना=किसी की ओर चित्त आकर्षित होना। मन लुभाना। मन मोहित होना। जी मचलाना=दे० "जी मचलाना"। जी मतलाना=चित्त में उल्टी वा ऊँ करने की इच्छा होना। बमन करने को जी चाहना। जी मर जाना=मन में उमंग न रह जाना। हृदय का उत्साह नष्ट होना। मन उदास हो जाना। जी मलमलाना=चित्त में दुःख वा पड़तावा होना। अफसोस होना। जैसे, गाँव के चार पैसे निकालते जी मलमलता है। जी मारना=(१) चित्त की उमंग को रोकना। हृदय का उत्साह नष्ट करना। (२) संतोष धारण करना। घट्ट करना। (किसी से) जी मिलना=चित्त के भाव का परस्पर समान होना। हृदय का भाव एक होना। समान प्रवृत्ति

होना। एक मनुष्य के भावों का दूसरे मनुष्य के भावों के अनुकूल होना। चित पटना। जी में खाना = (१) मन में भाव उठना। चित में विचार उत्पन्न होना। (२) मन में इच्छा होना। जी चाहना। शरादा होना। संकल्प होना। उ०—मुहारे जो जी में भावे करे। जी में घर करना = भ्रम में रहना करना। हृदय में किसी का ध्यान बन जाना। हृदय में बराबर किसी का ध्यान बना रहना। जी में गड़ना या धुपना = (१) चित में जम जाना। हृदय पर गहुर प्रभाव करना। मर्म भेदना। (२) हृदय में अंकित हो जाना। चित में बराबर ध्यान बना रहना। उ०—माधव मूर्ति जिय में छुभी।—सूर। जी में जलना = (१) हृदय में क्रोध के कारण संताप होना। मन में कुटना। (२) मन ही मन ईर्ष्या करना। डाह करना। जी में जी खाना = चित टिकाने होना। चित की परबहुट दूर होना। चित शांत और स्थिर होना। चित की चिंता या व्यग्रता दूर होना। किसी बात की आशंका या भय मिट जाना। उ०—जब वह उस स्थान से सज्जराब लौट आया तब मेरे जी में जी आया। जी में जी खलना = (१) चित संतुष्ट और स्थिर करना। चित का खटक दूर करना। चिंता मिटाना। (२) विश्वास दिखाना। इतमीनान करना। दिलनमई करना। जी में खलना = मन में विचार छानना। सोचना। जैसे, मैं मुहारे साथ कोई बुराई करूँगा ऐसी बात कभी जी में न खलना। जी में घरना = (१) मन में निश्चिन्ता। चित में किसी बात का इत्कलिये ध्यान बनाए रहना जिसमें आगे चक्र कर उसके अनुकार कोई कार्य करे। ख्यात करना। (२) मन में बुरा मानना। नाराज होना। वैर रखना। उ०—माधव नूजो जन ते विगरे। सउ कृपालु करुणा-मय कैशव प्रसु नहिं जीय धरे।—सूर। जी में पैटना = (१) चित में जम जाना। हृदय पर गहुरा प्रभाव करना। मर्म भेदना। (२) ध्यान में अंकित होना। बराबर ध्यान में बना रहना। चित से न हटना या भूलना। जी में पैटना = (१) मन में स्थिर होना। चित में निश्चय होना। चित में निश्चित धारणा होना। मन में सत्य प्रतीत होना। उ०—बन्होने जो बातें कहैं ये मेरे जी में बैठ गईं। (२) हृदय पर गहुरा प्रभाव करना। (३) हृदय पर अंकित हो जाना। ध्यान में बराबर बना रहना। जी में रखना = (१) चित में विचार धारणा करना। ख्यात बनाए रखना। चित में इत्कलिये किसी बात का ध्यान बनाए रहना जिसमें आगे चक्र कर उसके अनुकार कोई कार्य करे। (२) मन में बुरा मानना। वैर रखना। द्वेष रखना। कौना रखना। उ०—उसे पादे जो कहेर यह कोई बात जी में नहीं रखता। (३) हृदय में गुल रखना। हृदय के भाव को बाहर न प्रकट करना। मन में छिपे रहना। उ०—हस बात को जी में रक्षो, किसी से कहे मत। (किसी का) जी

रखना = (किसी का) मन रखना। मन की बात होने देना। मन की अभिप्राया पूरी करना। इच्छा पूरी करना। उल्लाह भंग न करना। प्रव्रत करना। संतुष्ट करना। उ०—जब वह बारवार इतके लिये कहता है तब उसका भी जी रख दो। जी रुकना = (१) जी धरपटना। (२) जी हितकरना। चित प्रवृत्त न होना। जी लगना = चित तत्पर होना। मन का किसी विषय में योग देना। चित प्रवृत्त होना। उ०—पढ़ने में उसका जी नहीं लगता। (किसी से) जी लगना = चित का प्रेमासक्त होना। किसी से प्रेम होना। जी लगाना = (१) तत्पर होना। दत्तचित होना। जी लगा रहना, होना = चित में ध्यान बना रहना। जी में सटका लगा रहना। चित चिंतित रहना या होना। उ०—बहुत दिनों से कोई पत्र नहीं आया जी लगा है। किसी से जी लगाना = किसी से प्रेम करना। जी लड़ना = (१) प्राण जाने की भी परवाह न करके किसी विषय में संतर होना। (२) मन का पूर्ण रूप से योग देना। पूरा ध्यान देना। सारा ध्यान लगा देना। जी खरजना = दे० “जी कोपना”। जी खलचना = (१) जी में हताश होना। चित में किसी बात के लिये प्रसन्न इच्छा होना। किसी वस्तु की प्राप्ति आदि की गहरी लालसा होना। किसी चीज के पाने के लिये जी तरसना। उ०—वहाँ की सुंदर सुंदर वस्तुओं को देख कर जी खलच गया। (२) चित आकर्षित होना। मन लुभाना। मन मोहित होना। जी खलचाना = (१) (कि० अ०) दे० “जी खलचना”। (२) (कि० स०) दूसरे के चित में लालस उत्पन्न करना। किसी बात के लिये प्रव्रत इच्छा उत्पन्न करना। किसी वस्तु के लिये जी तरसना। उ०—दूर से दिखा कर क्यों उसका जी खलचाते हो, देना हो तो दे दो। (३) मन लुभाना। मन मोहित करना। जी लुटना = मन मोहित होना। मन सुन्न होना। हृदय प्रेमासक्त होना। जी लुभाना = (१) (कि० स०) चित आकर्षित करना। मन मोहित करना। हृदय में प्रीति उपजाना। सौंदर्य आदि गुणों के द्वारा मन खींचना। (२) (कि० अ०) चित आकर्षित होना। मन मोहित होना। उ०—उसे देखते ही जी लुभा जाता है। जी लुटना = मन मोहित करना। चित आकर्षित करना। जी लोना = जी चाहना। जी करना। चित का इच्छुक होना। उ०—वहाँ जाने को हमारा जी नहीं लोता। (दूसरे का) जी लोना = प्राण हारना करना। मार डालना। जी लोटना = भी छुटपटना। किसी वस्तु की प्राप्ति या और किसी बात के लिये चित व्याकुल होना। चित का अत्यंत इच्छुक होना। देखी इच्छा होना कि रहाने जाय। जी सन होना = मय आशंका आदि से चित सन्न हो जाना। जी धरना जाना। डर के मारे चित टिकाने न रहना। होरा उड़ जाना। जैसे, उसे सामने देखते ही जी सन हो गया। जी सनसनाना = (१) चित

स्वप्न होना। मय, आशंका, स्त्रीपता, आदि से श्रंगों की गति शिथिल हो जाना। चित्त विह्वल होना। जी साथ साथ करना=दे० "जी सनसनाना"। जी से=जी लगा कर। प्यान देकर। पूर्ण रूप से दत्तचित्त होकर। उ०—जी से जो काम किया जायगा वह क्यों न अच्छा होगा। (किसी वस्तु वा व्यक्ति का) जी से उतर जाना=दृष्टि से गिर जाना। (किसी वस्तु वा व्यक्ति की) इच्छा वा चाह न रह जाना। किसी व्यक्ति पर स्नेह वा भ्रम न रह जाना। (किसी वस्तु वा व्यक्ति के प्रति) चित्त में विरक्ति हो जाना। भ्रम न आना। ह्येय वा तुच्छ हो जाना। वेकदर हो जाना। जी से जाना=प्राप्य विह्वल होना। मरना। जान खो बैठना। उ०—बकरी अपने जी से गई, खानेवाले को स्वाद ही न मिला। जी से जी मिलना=(१) हृदय के भाव परस्पर एक होना। एक के चित्त का दूसरे के चित्त के अनुकूल होना। मैत्री का व्यवहार होना। (२) चित्त में एक दूसरे से प्रेम होना। परस्पर प्रीति होना। (किसी व्यक्ति वा वस्तु से) जी हट जाना=चित्त विरक्त हो जाना। चित्त प्रवृत्त वा अनुरक्त न रह जाना। इच्छा वा चाह न रह जाना। उ०—(क) ऐसे कामों से शय हमारा जी हट गया। (ख) उससे मेरा जी एक दम हट गया। जी हवा होना=प्राप्य निकल जाना। मृत्यु होना। जी हवा हो जाना=किसी मय वा आशंका की बात से चित्त ठिकाने न रह जाना। किसी मय दुःख वा शोक के सहाय उपस्थित होने पर चित्त तत्त्व हो जाना। चित्त विह्वल हो जाना। जी घबरा जाना। चित्त व्याकुल हो जाना। (किसी का) जी हाथ में रखना=(१) किसी का भाव अपने प्रति अच्छा रखना। किसी को प्रशन्न रखना। राखी रखना। मन मैला न होने देना। (२) जी में किसी प्रकार का खटकाना न पैदा होने देना। दिक्षाष्टा दिए रहना। जी हाथ में लेना=दे० "जी हाथ में रखना"। जी हारना=(१) किसी काम से घबरा या ऊब जाना। हारना होना। पल होना। (२) हिम्मत हारना। साहज छोड़ना। जी हिलना=(१) मय से हृदय कंपना। जी दहलना। (२) करुणा से हृदय जुव्व होना। दया से चित्त उद्विग्न होना। अय्यु [सं० जित्, प्रा० जिव=विजयी वा सं० (श्री) युज्, प्रा० जुक्, हिं० ज्] एक सम्मानसूचक शब्द जो किसी के नाम वा खल के आगे लगाया जाता है अथवा किसी बड़े के कथन प्रशन या संवोधन के उत्तर रूप में जो संक्षिप्त प्रति-संवोधन होता है उसमें प्रयुक्त होता है। उ०—(क) श्री रामचन्द्र जी, पंडित जी, त्रिपाठी जी, बाबा जी, हत्यादि। (ख) कथन—ये काम कैसे सीठे हैं। उत्तर—जी हाँ, बेराक। (ग) प्रश्न—तुम वहाँ गए थे या नहीं? उत्तर—जी नहीं। (घ) किसी ने पुकारा—रामदास ! उत्तर—जी हाँ। (पा केवल) जी।

विशेष—प्रश्न वा केवल संवोधन में "जी" का प्रयोग बड़ों के लिये नहीं होता, जैसे किसी बड़े के प्रति यह नहीं कहा जाता कि (क) क्यों जी ! तुम कहाँ थे ? अथवा (ख) देलो जी ! यह जाने न पावे। स्वीकार करने या हामी भरने के अर्थ में "जी हाँ" के स्थान में कभी कभी केवल "जी" बोलाते हैं; जैसे प्रश्न—तुम वहाँ गए थे ? उत्तर—जी। (अर्थात् हाँ)।

जीअर-संज्ञा पुं० दे० "जी" "जीव"।

जीअनर्क-संज्ञा पुं० दे० "जीवन"।

जीउ-संज्ञा पुं० दे० "जीव"।

जीगा-संज्ञा पुं० [तु०] सुरा। सिरपेच। कलगी।

जीजा-संज्ञा पुं० [हिं० जीजा] बड़ी बहिन का पति। बड़ा बहनेई।

जीजी-संज्ञा स्त्री० [सं० देवी, हिं० देई, दैती] बड़ी बहिन। उ०—कीजे कहा जीजी जू ! मुमित्रा परि पायें कईं तुजसी सहाई विधि सोई सहियत है।—तुलसी।

जीजुराना-संज्ञा पुं० [दे०] एक विद्विष का नाम।

जीन-संज्ञा स्त्री० [सं० जित्, वैदिक० जीति] (१) युद्ध वा लड़ाई में विपरी के विरुद्ध सफलता। जय। विजय। फ़तह।

क्रि० प्र०—होना।

(२) किसी ऐसे कार्य में सफलता जिसमें दो वा अधिक विरुद्ध पक्ष हों। जैसे, मुकदमें में जीत, खेल में जीत, धात्री में जीत। (३) धाम। फायदा। उ०—गुहारी तो हर तरह से जीत है, इधर से भी खो उधर से भी।

संज्ञा स्त्री० [?] जहाज़ में पाल का हुताम (जरा०)।

संज्ञा० स्त्री० दे० "जीति"।

जीतना-क्रि० सं० [हिं० जीत + ना (प्रत्य०)] (१) युद्ध वा लड़ाई में विपरी के विरुद्ध सफलता प्राप्त करना। शत्रु को हराना। विजय प्राप्त करना। जैसे, लड़ाई जीतना, शत्रु को जीतना। उ०—रिपुवन जीति सुजस सुर गावत। सीता अनुज सहित प्रभु धावत।—तुलसी। (२) किसी ऐसे कार्य में सफलता प्राप्त करना जिसमें दो वा अधिक परस्पर विरुद्ध पक्ष हों। जैसे, मुकदमा जीतना, खेल में जीतना, धात्री जीतना, जुए में रुपया जीतना।

जीता-वि० [हिं० जीना] (१) जीवित। जो मरा न हो। (२) तौल वा नाप में ठीक से कुछ बढ़ा हुआ। जैसे, ज़रा जीता तौलो।

जीतालू-संज्ञा पुं० [सं० जालू] धरारोट।

जीना लोटा-संज्ञा पुं० [हिं० जीना + लोटा] चुंबक। मेकनातीस।

जीति-संज्ञा स्त्री० [दे०] एक खता का नाम। यह जमुना के किनारे से नैपाल तक तथा अथवा बिहार और छोटा नागपुर में होती है। इसके रेवे बहुत मजबूत होते हैं और रस्ती बनाने के काम में आते हैं। इन रेवों को टोगुस कहते हैं। इन रेवों से धनुष की टोरी बनती है।

जीन-संज्ञा पुं० [फ्रा०] (१) चोड़े की पीठ पर रखने की गद्दी । चारमासा काटी ।

यो०—जीनपोदा ।

(२) पकाना । कजाना । (३) एक प्रकार का बहुत मोटा सूती कपड़ा ।

वि० [सं० जीर्ण] (१) पुराना । जर्जर । कटा फटा । (२) घृष्ट ।

जीनत-संज्ञा स्त्री [फ्रा०] (१) योग्या । क्षुधि । खबसूरती । (२) सजावट । श्रृंगार ।

जीनपोदा-संज्ञा पुं० [फ्रा०] जीन के ऊपर ठकने का कपड़ा । काटी का बँकना ।

जीनसवारी-संज्ञा स्त्री [दे०] चोड़े पर जीन रख कर चढ़ने का कार्य । व०—जैसे यह चोड़ा जीनसवारी में रहता है ।

जीना-क्रि० घ० [सं० जीवन्] (१) जीवित रहना । सजीव रहना । जिंदा रहना । न मरना । जैसे, (क) यह कुता धरती सरा नहीं है जीता है । (ख) वह धरती बहुत दिन जीया । व०—धरतिद से ध्यान रूप सरंघ धरंदिद बोधन भूंग पिये । मन में न यत्ने ऐसे बाबक जो तुलसी जग में फल कौन जिये ?—तुलसी ।

संयो० क्रि०—ठटना ।—जाना ।

(२) जीवन के दिन गिनाना । जिंदगी काटना । जैसे, ऐसे जैसे से सरता कष्टमा ।

मुद्गा०—जीता धाराया=जीवित और उचैव । मला संगा । जीता बहू=देह से ताना निकला हुआ वृत् । जीती मस्त्री निगलना=(१) जान धूम कर कोई धन्याय या अनुचित कर्म करना । सपत्न देईमानी करना । व०—वसते रूपया पाकर मैं कैसे हुनकार करूँ ? इस तरह जीती मस्त्री तो नहीं निगली जाती । (२) जान धूम कर बुझाई में कैटना । जान धूम कर धारणा का संकट में पड़ना । जीते जी=(१) जीवित अवस्था में । जिंदगी रहते हुए । उपस्थिति में । चने रहते । शाखत । व०—(क) मैंने जीते जी तो ऐसा कमी न होने पायेगा । (घ) बसके जीते जी कोई एक पैसा नहीं पा सकता । (२) जब तक जीवन है । जिंदगी भर । व०—मैं जीते जी धार का उपकार कभी नहीं भूल सकता । जीते जी मर जाना=जीवन में ही मृत्यु से पहले कर कष्ट भोगना । किसी मारी विपत्ति वा मानसिक व्यापत्त से जीवन मारी होना । जीवन का धारा सुख और आनंद जाता रहना । जीवन नष्ट होना । व०—(क) पारो के मरने से तो हम जीते जी मर गए । (ख) इस वीरों से जीते जी मर गए । जीते रहे=एक धारोवादि जो बड़े जी फौर से प्रयाग आदि के उभर में दौरे को दिया जाता है । अब तक जीना तब तक सीना=जिंदगी भर किसी काम में झरो रहना । व०—वेद के

वेदनेगरहि में जय लीं जिपना तब लीं सियना है ।—पद्माकर । जीना मारी हो जाना=जीवन कष्टमय हो जाना । जीवन का सुख और आनंद जाता रहना ।

(३) प्रसन्न होना । प्रफुलित होना । जैसे, उसके नाम पर तो यह जी घटता है ।

संयो० क्रि०—ठटना ।

मुद्गा०—अपनी खुशी जीना=अपने ही सुख से आनंदित होना ।

जीम-संज्ञा स्त्री [सं० जिह्म, म० जिम्म] (१) सुँह के मीसर रखने-वाली लंबे पिपटे मांस पिंड के आकार की वह हृत्पि जिससे कटु, शम्ब, तिक्त हृत्पादि रसों का अनुभव और शब्दों का उच्चारण होता है । जूथान । जिह्वा । रसना ।

विशेष—जीम मांस पेशियों और स्नायुओं से निर्मित है । पीछे की ओर यह नाल के आकार की एक नरम हड्डी से जुड़ी है जिसे जिह्वास्थि कहते हैं । नीचे की ओर यह दाढ़ के मांस से संयुक्त है और ऊपर के भाग की अपेक्षा अधिक पतली किन्हीं से बकी है जिसमें से बराबर धार टूटती रहती है । नीचे के भाग की अपेक्षा ऊपर का भाग अधिक छिद्रयुक्त या कोरामय होता है और उसी पर ये धारा होते हैं जो कटि फइलाते हैं । ये उभार या कटि कोई आकार के होते हैं, कोई धर्द धंदाकार, कोई चिपटे और कोई नेक या शिखा के रूप के होते हैं । जिन मांस पेशियों और स्नायुओं के द्वारा यह दाढ़ के मांस तथा शरीर के और भागों से जुड़ी है वहाँ के यंत्र से यह धार उबर हिल डोल सकती है । स्नायुओं में जो महीन महीन धारणा-स्नायु होती हैं उनके द्वारा स्पर्श तथा शीत शब्द आदि का अनुभव होता है । इस प्रकार के सूक्ष्म स्नायुओं का जाल जिह्वा के थप भाग पर अधिक है इसी से वहाँ स्पर्श वा रस आदि का अनुभव अधिक तीव्र होता है । इन स्नायुओं के उत्तेजित होने से ही स्वाद का बोध होता है । इसी से कोई अधिक मीठी वा सुल्पाद वस्तु सुँह में खेकर कभी खोग जीम चटकारते या दवाते हैं । प्रयोग के संयोग से अल्प एक प्रकार की रासायनिक क्रिया से इन स्नायुओं में उत्तेजना उत्पन्न होती है । १२८ थप भाग जब में एक मिन्ड तक जीम टुटो पर यदि शत पर कोई वस्तु रखी जाय तो छह मीठे आदि का कुछ भी क्षान्द नहीं होता । कई घृष्ट पेटे हैं जिनकी पत्तियाँ धवा खेने से भी थप क्षान्द मोड़ी देर के लिये नष्ट हो जाता है । वास्तुओं का कुछ धरा कटिों में बाग पर और सुख कर दिग्गों के मार्ग से जब सूक्ष्म स्नायुओं में पहुँचता है तभी स्वाद का बोध होता है । अतः यदि कोई वस्तु अल्प त एली, कड़ी है तो उसका स्वाद हमें अच्छी नहीं जान पड़ेगा । दूसरी बात ध्यान देने की यह है कि प्राण का रसना के स्वाद से विशेष संबंध है । कोई वस्तु खाने समय हम बसकी गंध का भी अनुभव करते हैं ।

जिस स्थान पर जीम जात-युक्त मांस और फिन्डी द्वारा दूसरे स्थान के मांस खादि से जुड़ी रहती है वहाँ कई सूत्र वा बंधन होते हैं जो जीम की गति नियत वा स्थिर रखते हैं। इन्हीं बंधनों के कारण जीम की नोक पीछे की ओर बहुत दूर तक नहीं पहुँच सकती। बहुत से बंधनों की जीम में यह बंधन आगे तक बढ़ा रहता है जिससे वे धोल नहीं सकते। बंधनों को हटा देने से वल्चे धोलने लगते हैं। रसास्वादन के अतिरिक्त मनुष्य की जीम का बढ़ा भारी कार्य कंठ से निकले हुए स्वर में अनेक प्रकार के भेद डालना है। इन्ही विभेदों से यणों की उत्पत्ति होती है, जिनसे भाषा का विकास होता है। इसी से जीम को चाणी भी कहते हैं।

पथ्यां—जिह्वा। रसना। रसज्ञा। रसाल। रसिका। चातुल्यवा। रसला। रसांका। लजला।

मुद्रां—जीम करना = बहुत बढ़ कर देना। दिवार्द से उत्तर देना। जीम खोलना = मुँह से कुछ खोलना। शब्द निकालना। ३०—धब जहाँ जीम खोजी कि पिटे। जीम चलना = भिन्न भिन्न वस्तुओं का स्वाद लेने के लिये जीम का हिजना दोखना। स्वाद के अनुभव के लिये जिह्वा चंचल होना। चटोरेपन की इच्छा होना। ३०—जीम चले बल ना चले, वही जीम जरि जाय। जीम थोड़ी करना = कम देना। बकत्वाद कम करना। अधिक न देना। ३०—मोरो गोपाल जनक सो कहा करि जानै दुषि की घोरी। हाय नचावति थावति म्वालिनि जीम न करही घोरी।—सूर। जीम निकालना = (१) जीम बाहर करना। (२) जीम खींचना। जीम उखाड़ देना। जीम पकड़ना = बोलने न देना। बोलने से रोकना। जीम बढाना = चटोरेपन की थादत होना। जीम बंद करना = बोलना बंद करना। जबान न खोलना। चुप रहना। जीम हिलाना = मुँह से कुछ बोलना। छोटै जीम = गतयुं डी। किसी की जीम के नीचे जीम होगा = किसी का धरनी कही हुई बात को बदल जाना। एक बार कही हुई बात पर स्थिर न रहना। (२) जीम के आकार की कोई वस्तु, जैसे निव।

मुद्रां—कलम की जीम = कलम का वह भाग जो झीला कर सुकीला किया रहता है।

जीमा—उंशा पुं० [हिं० जीम] (१) जीम के आकार की कोई वस्तु जैसे, कोलहू का पत्तर। (२) चौपायों की एक धीमारी जिसमें उनकी जीम के कंठि सृज वा बढ़ जाते हैं और उनसे खाते नहीं बनता। बेल्ली। शवार। (३) बेलों की शीख की एक धीमारी जिसमें शीख का मांस बढ़ कर लटक आता है।

जीमी—उंशा स्त्री० [हिं० जीम] (१) धातु की बनी एक पतली लचोली और घुपुपाकार वस्तु जिससे जीम धील कर साफ करते हैं। (२) सैल साफ करने के लिये जीम धोलने की क्रिया।

क्रि० प्र०—करना।

(३) निव। (४) छोटै जीम। गलशुंकी। (५) चौपायों का एक रोग। दे० "जीमा"। (६) लगाम का एक भाग।

जीमीचामा—उंशा पुं० [हिं० जीम + चामना] चौपायों का एक रोग। दे० "जीमा"।

जीमट—उंशा पुं० [सं० जीमूत = पोषण करनेवाला] पेड़ों और पौधों के घड़, शाखा, और टहनियाँ खादि के भीतर का गुदा।

जीमना—क्रि० सं० [सं० जेमन] भोजन करना। आहार करना। खाना। ३०—कावा फिर कारी भया राम जो भया रहैम। मोटा चुन मैदा भया रंति कयोरा जीम।—कवीर।

जीमूत—उंशा पुं० [सं०] (१) पर्यंत। (२) मेव। बादल। (३) मुस्ता। गोपा। नागर गोपा। (४) देवताइ वृष्ट। (५) इंद्र। (६) पोषण करनेवाला। राजी वा जीविका देनेवाला। (७) घोपा जाता। (८) सूर्य। (९) एक क्षत्रि का नाम जिनका इल्लेख महाभारत में है। (१०) एक मत्स्य का नाम जो विराट की सभा में रहता था और भीम के द्वारा मारा गया था। (११) हरिवंश के अनुसार दशार्ह के पौत्र का नाम। (१२) दशार्ह पुराण में शाहमती द्वीप के एक राजा जो धनुष्मत् के पुत्र थे। (१३) शाहमती द्वीप के एक वर्ष का नाम। (१४) एक प्रकार का दूधक वृक्ष जिसके मूलेक परब में दो गणय और ग्यारह राणय होते हैं। यह प्रचित के श्रेतगत है।

जीमूतमुक्ता—उंशा स्त्री० [सं०] मेव से उत्पन्न मोती।

विशेष—रत्नपरीक्षा विषयक प्राचीन ग्रंथों में इस प्रकार के मोती का वर्णन है। बृहत्संहिता, अग्निपुराण, गरुडपुराण, युक्तिरूपतरंग खादि ग्रंथों में भी इस मुक्ता का विवरण मिलता है, पर ऐसा मोती आज तक देखा नहीं गया। बृहत्संहिता में लिखा है कि मेव से जिस प्रकार भोलो उत्पन्न होते हैं वही प्रकार यह मोती भी उत्पन्न होता है। जिस प्रकार भोलो पादल से गिरते हैं वही प्रकार यह मोती भी गिरता है पर देवता लोग इसे बीच ही में बढ़ा लेते हैं। सारांश यह कि यह मुक्ता मनुष्यों को उत्पन्न है। न देखने पर भी प्राचीन आचार्य इसका लक्षण बतलाने से नहीं चूकते हैं और उल्लेख इसे सुरगी के शंभे की तरह गोल, ठोस और बगनी बतलाया है। इसकी कति सूर्य की किन के समान कही गई है। इसे यदि मुच्छ से मुच्छ मनुष्य कभी पा जाय तो सारी पृथ्वी का राजा हो जाय।

जीमूतवाहन—उंशा पुं० [सं०] (१) इंद्र। (२) शालिवाहन राजा का पुत्र। आरविन हृष्यक ऋषी के पुत्र कामनावाजी लियार् हनका पूजन करती हैं। (३) जीमूतकेतु राजा का पुत्र जो प्रसिद्ध नाटक नानादेव का नायक है। (४) धर्मरत्न नामक स्मृति-संग्रहकार।

जीमूतवाही-संज्ञा पुं० [सं० जीमूतवाहिर्] भ्रूज । शुभ ।

जीर्ण-संज्ञा पुं० दे० "जीव" । "जी" ।

जीयट-संज्ञा पुं० दे० "जीयट" ।

जीयति-संज्ञा स्त्री० [हिं० जीना] जीवन । जिंदगी । उ०—
सोहि सोहि कृगि भ्रांतिनि सों भांसे' मिली रहै जीयति को
गढ़े खडा ।—हरिदास ।

जीयदान-संज्ञा पुं० [सं० जीवदान] प्राणदान । जीवनदान ।
प्राणदान । उ०—याक कान धर्म जनि छुंदि राय न ऐसी
कीई हो । तुम मानी बसुदेव देवकी जीयदान इन दीजे
हो ।—सूर ।

जीर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) जीरा । (२) फूल का जीरा । केसर ।
उ०—सुराज पंकज को जीर महि' बेधे हीर धरौं किमि धीर
पावे धीर मन मोर है ।—सुराज । (३) खज । तलवार ।
(४) श्रृणु ।

वि० क्षिप्र । तेज । नरदी चलनेवाला ।

*संज्ञा पुं० [फा० जिहह] जिहह । कवच । उ०—कुंडन के
ऊपर कढ़ाके बँठे दौर हीर, जीरन के ऊपर सड़ाके खड़गान
के ।—भूपय ।

श्वि० [सं० जीर्ण] जीर्ण । पुराना । जर्जर । उ०—मनहु
मरी हूक धर्य की भयो तासु तन जीर । करपत कर महि पर
गिरी गयो सुलाय शरीर ।—सुराज ।

जीरा-संज्ञा पुं० [सं० जीरक, फा० जीर] (१) देड़ दो हाथ ऊँचा
एक पाँचा जिसमें सौंफ की तरह फूलों के चुपड़े लंबी साँकों
में खगते हैं । पत्तियाँ बहुत थारीक और दूध की तरह लंबी
होती हैं । बंगाल और आसाम को छोड़ भारत में यह सर्वत्र
अधिकता से बोया जाता है । खीरों का अनुमान है कि यह
पश्चिम के देशों से लाया गया है । मिला देरा तथा भूमध्य
सागर के माखटा आदि टापुओं में यह जंगली पाया जाता
है । माखटा का जीरा बहुत अच्छा और सुगंधित होता है ।
जीरा कई प्रकार का होता है पर इसके दो मुख्य भेद माने
जाते हैं—सफेद और स्याह भयका श्वेत और कृष्ण जीरक ।
सफेद वा साधारण जीरा भारत में प्रायः सर्वत्र होता है, पर
स्याह जीरा जो अधिक महीन और सुगंधित होता है
काश्मीर, सहाय, अफगानिस्तान, बलूचिस्तान तथा गढ़वाल
और कुमाऊँ से आता है । काश्मीर और अफगानिस्तान में
तो यह छेतों में और तुर्कों के साथ उगता है । माखटा आदि
पश्चिम के देशों से जो एक प्रकार का सफेद जीरा आता है वह
स्याह जीरे की गति का है और उर्ती की तरह छोटा छोटा
और तीव्र गंध का होता है । वैष्णवों में यह कट्ट, रण्य, दीपक
तथा अतीसार, शुद्धयौ, हृमि और कफनाश को दूर करने-
वाला माना जाता है ।

पर्या०—जरय । अजाजी । कष्या । जीर्ण । जीर । दीप्य ।

जीरय । अजाजिका । बहिरिख । भागध । दीपक ।

(२) जीरे के आकार के छोटे छोटे महीन और लंबे बीज ।

(३) फूलों का केसर । फूलों के बीज का महीन सूत ।

जीरक-संज्ञा पुं० [सं०] जीरा ।

जीरय-संज्ञा पुं० [सं०] जीरा ।

*वि० दे० "जीर्ण" ।

जीरिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] बंगपत्री नाम की घास ।

जीरी-संज्ञा पुं० [हिं० जीरा] एक प्रकार का घान जो अगहन में
तीव्र होता है । इसका चावल बहुत दिनों तक रह सकता है ।
यह पंजाब के करनाल जिले में अधिक होता है । इसके दो
भेद हैं—एक रमाली, दूसरा रामजमानी ।

जीरीपटन-संज्ञा पुं० [दे०] एक प्रकार का फूल ।

जीर्ण-वि० [सं०] (१) बहुत बुढ़ा । बुढ़ापे से जर्जर । (२)
पुराना । बहुत दिनों का । जैसे, जीर्ण ज्वर । (३) जो पुराना
होने के कारण टूट फूट गया हो या कमजोर हो गया हो । फटा
पुराना । उ०—(क) जीरय पट कुपीन सतु धारी ।—सूर ।
(ख) का पति लाभ जीर्ण घनु वेरे ।—तुलसी ।

यो०—जीर्ण शीर्ष=फटा पुराना । टूटा फूटा ।

(४) पेट में बरछी तरह पचा हुआ । अंतराग्नि में जिसका
परिपक्व हुआ हो । परिपक्व । जैसे जीर्ण अन्न, अजीर्ण ।
संज्ञा पुं० खीरा ।

जीर्णज्वर-संज्ञा पुं० [सं०] पुराना बुखार । यह ज्वर जिसे रहते
याह दिन से अधिक हो गए हों ।

विशेष—किसी किसी को मत से प्रत्येक ज्वर अपने आरंभ के
दिन से ७ दिनों तक तद्वय, १४ दिनों तक मध्यम और २१
दिनों के पीछे, जब रोगी का शरीर बुखल और सूखा हो जाय
तथा उसे बुधा न सने और उसका पेट सदा भारी रहे 'जीर्ण'
कहलाता है ।

जीर्णता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) बुढ़ापा । बुढ़ाई । (२) पुरानापन ।

जीर्णदाह-संज्ञा पुं० [सं०] बुढ़ापे का दूध । विषादा ।

जीर्णपत्र-संज्ञा पुं० [सं०] पट्टिका लोभ । पठानी लोभ ।

जीर्णपर्ण-संज्ञा पुं० [सं०] कर्द्व का पेड़ ।

जीर्णयज्ञ-संज्ञा पुं० [सं०] वैकृत मणिय ।

जीर्णो-वि० [सं०] बुढ़ा । बुढ़िया ।

संज्ञा स्त्री० काली जीरी ।

जीर्णोत्थि-श्रुत्तिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] हड्डी को गला सड़ा कर
बनाई हुई मिट्टी ।

विशेष—वेसी मिट्टी धनाने की विधि शब्दार्थसिंतामणिय नामक
ग्रंथ में इस प्रकार लिखी है । जहां शिलागीत निकलता हो
यहां एक गहरा गड्ढा खोदे और उसे जानवरों और मनुष्यों
की हड्डियों से भर दे । ऊपर से सज्जीसार, नामक, गंधक और

गरम जल ६ महीने तक डालता जाय । इसके पीछे फिर पत्थर की मिठी दे । तीन वर्ष में ये सब वस्तुएँ एक तिख के रूप में जम जायगी । उस तिख को लेकर चुकनी कर डाले और उसका पात्र बनावे । ऐसे पात्र में भोजन करना बहुत श्रेष्ठ है । भोजन यदि विप आदि द्वारा दूषित होगा तो ऐसे पात्र में पता चल जायगा । यदि महाविप होगा तो यह पात्र टूट जायगा और यदि साधारण होगा तो उसमें छूटने आदि पड़ जायगे ।

जीर्णोद्धार-संज्ञा पुं० [सं०] फटी पुरानी टूटी फूटी वस्तुओं का फिर से सुधार । पुनः संस्कार । मरम्मत ।

विशेष—पूर्व स्थापित शिवालिंग या मंदिर आदि के जीर्णोद्धार की विधि आदि अग्निपुराण में विस्तार से दी हुई है ।

जील-संज्ञा स्त्री० [फा० जीर] (१) धीमा शब्द । मध्यम स्वर । नीचा सुर । (२) तबले या ढोल का धर्या । इ०—जात कहुँ ते कहुँ को चख्यो सुर टीप न खागत तान धरे की । आखर सो समुझे न परे मिलि प्राम रहे जति जील परे की । —रघुनाथ ।

जीला [वि०] [सं० मिळी] [स्त्री० मीठी] (१) मीठा । पतला । (२) महीन । इ०—मिळी तें रसीवी जीली रोटेहुँ की रटलीवी स्वारि तें सवाई भूत भावनी ते आगरी । —केशव ।

जीलानी-संज्ञा पुं० [प०] एक प्रकार का खाल रंग । यह बबूल, मारवेरी, मनीठ, पतंग और लाह को घरावर लेकर और पानी में डबाल कर बनाया जाता है ।

जीर्णजीव-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चक्रे पक्षी । (२) एक वृक्ष का नाम ।

जीर्णत-संज्ञा पुं० [सं०] (१) प्राण । (२) श्रोत्रपि । (३) जीवशाक । वि० जीता जागता ।

जीर्णतिक्रा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक प्रकार की घनस्वति वा पौधा जो दूसरे पेड़ के ऊपर उलपन होता और उसी के आदार से बढ़ता है । बंदा । (२) गुच्छ । गुडूची । (३) जीव शाक । (४) जीवंची खता । (५) एक प्रकार की हड़ जो पीले रंग की होती है । (६) शमी ।

जीर्णती-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक खता जिसकी पत्तियाँ श्रोत्रपथ के काम में आती हैं । इसकी टहनियों में से दूध निकलता है । फल गुच्छों में लगते हैं । यह तीन प्रकार की होती है—बृहज्जीवंची, पीली जीवंची और तिक्त जीवंची । तिक्त जीवंची को बोझी कहते हैं । (२) एक खता जिसके फूलों में मीठा मधु या मकरंद होता है । (३) एक प्रकार की हड़ जो पीली होती है और गुजरात काठियावाड़ की ओर से आती है । इसका गुण बहुत उत्तम माना जाता है (४) बंदा । (५) गुडूची । (६) शमी ।

जीव-संज्ञा पुं० [सं०] (१) प्राणियों का चेतन तत्त्व । जीवात्मा । धारमा । (२) प्राण । जीवनतत्त्व । जान । जैसे, इस हिरन में अथ जीव नहीं है । (३) प्राणी । जीवधारी । इंद्रिय-विशिष्ट शरीरी । जानदार । जैसे, मनुष्य, पशु, पक्षी, कीट पतंग आदि । इ०—(क) जे जड़ चेतन जीव जहाना । —तुलसी । (ख) किसी जीव को सताना श्रेष्ठ नहीं ।

जीवो—जीवजंतु—(१) जानवर । प्राणी । (२) फीड़ा मकौड़ा । (३) जीवन । (४) विष्णु । (५) वृहस्पति । (६) अरुणोपा नक्षत्र । (७) यकापन का पेड़ ।

जीवक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) प्राण्य धारण करनेवाला । (२) धन्यक । (३) सेंपेरा (४) सेवक । (५) ध्यान लेकर जीविका करनेवाला । सूदखोर । (६) पीतसाल वृक्ष । (७) एक अर्धु या पौधा । भाव प्रकाश के अनुसार यह पौधा दिमालय के शिखरों पर होता है । इसका कंद लहसुन के कंद के समान और इसकी पत्तियाँ महीन और सारहीन होती हैं । इसकी टहनियों में बारीक काँटे होते हैं और दूध निकलता है । यह शय काँ श्रोत्रपथ के अंतर्गत है और इसका कंद मधुर बलकारक और कामोद्दीपक होता है । श्रपथ और जीवक दोनों एक ही जाति के गुल्म हैं, भेद केवल इतना ही है कि श्रपथ की शाकृति वैल के सोंग की तरह होती है और जीवक की म्हाड़ की सी ।

पर्याय—कृच्छरीपं । मधुरक । मृग । हस्तांग । जीरन । दीर्घायु । प्राण्यद । मृगान्न । प्रिय । चिरंजीवी । मंगला । थायुपान्न । बलद ।

जीवजीव-संज्ञा पुं० [सं०] चक्रेरपक्षी ।

जीवट-संज्ञा स्त्री० [सं० जीवय] हृद्य फी बढ़ता । जिगा । सादस । हिम्मत । मरदानगी ।

जीवत्तोका-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जिसकी संतति जीती हो । जीवत्पुत्रिका ।

जीवत्पति-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जिसका पति जीवित हो । सधवा स्त्री । सौभाग्यवती स्त्री ।

जीवत्पितृक-संज्ञा पुं० [सं०] वह जिसका पिता जीवित हो । विशेष—ऐसे मनुष्य के लिये अमास्यान, गयाश्राद्ध, दक्षिण-गुप्त भोजन, तथा मूढ़ों सुझाने आदि का निषेध है । ऐसा मनुष्य यदि निरिग्न श्राद्ध है तो उसे वृद्धि सोत्र और कोई श्राद्ध करने का अधिकार नहीं है । साग्निक जीवत्पितृक सब श्राद्ध कर सकता है ।

जीवथ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) प्राण । (२) फूल । (३) मयूर । (४) मेघ ।

वि० (१) धार्मिक । (२) दीर्घायु । चिरजीवी ।

जीवद-संज्ञा पुं० [सं०] (१) जीवनदाता । (२) वैद्य । (३) जीवक पौधा । (४) जीवंची । (५) शमु ।

जीवदान—संज्ञा पुं० [सं०] अपने घर में प्रायः हुए शत्रु या अपराधी को न मारने, या छोड़ देने का कार्य। प्राणदान। प्राणरक्षा। ३०—छत्र है ताहि भगवान् मारन चले हविमयी जेहि कर विनय कीयो। दौष इन कियो गेहि चमा प्रभु कीजिए भद्र करि शरीर जिवदान दीयो।—सूर।

जीवधन—संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह संपत्ति जो जीवों या पशुओं के रूप में हो। जैसे गाय, बैल, भेड़, बकरी, ऊँट आदि।

(२) जीवत धन। प्राणमित्र। प्यारा।

जीवधानी—संज्ञा स्त्री० [सं०] सत्र जीवों की छापात स्वरूप, पृथ्वी।

जीवघारी—संज्ञा पुं० [सं०] प्राणी। जानवर। चेतन जंतु।

जीवन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० जीवित] (१) जीवित रहने की अवस्था। जन्म और मृत्यु के बीच का काल। वह दशा जिस में प्राणी अपनी इन्द्रियों द्वारा चेतन व्यापार करते हैं। जिंदगी। ३०—अपने जीवन में ऐसी घटना मने कभी नहीं देखी थी।

धौ०—जीवनचरित। जीवनचर्या।

मुहा०—जीवन भरना = जीवन व्यतीत करना। जिंदगी के दिन काटना।

(२) जीवित रहने का भाव। जीने का व्यापार या भाव। प्राणधारण। जैसे, छत्र ही से तो मुनुष्य का जीवन है।

धौ०—जीवनदाता। जीवनधन। जीवनमूर्ति।

(३) जीवित रहनेवाली वस्तु। जिसके कारण कोई जीता रहे। प्राण का अवलंब। जैसे, जल ही मुनुष्य का जीवन है। (४) प्राणधारण। परममित्र। प्यारा। (५) वृत्ति। जीविका। (६) जल। पानी। (७) मन्त्र। (८) बात। वातु। (९) ताजा धी या मधुर। (१०) जीवक नामक औषध। (११) पुत्र। (१२) परमेस्वर। (१३) गंगा।

जीवनचरित—संज्ञा पुं० [सं०] (१) जीवन का वृत्तांत। जीवन में किए हुए कार्यों आदि का पद्यन। जिंदगी का हाल। (२) वह पुस्तक जिसमें किसी के जीवन भर का वृत्तांत हो।

जीवनचरित्र—संज्ञा पुं० दे० “जीवनचरित”।

जीवनधन—संज्ञा पुं० [सं०] (१) जीवन का सर्वस्व। जीवन में सबसे मिय वस्तु वा व्यक्ति। (२) प्राणधारण। प्यारा। प्राणमित्र। ३०—मुकुवि सरद-नम मन इहान से। रामभगत जन जीवनधन से।—मुहा०।

जीवनवृद्धि—संज्ञा स्त्री० [सं०] जीवन + वृद्धि। एक पौधा या वृद्धि जिसके विषय में प्रसिद्ध है कि यह मरे हुए आदमी को भी खिला सकती है। संजीवनी।

जीवनमूर्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] जीवन + मूर्ति। (१) संजीवनी नाम की जड़ी। (२) अत्यंत मिय वस्तु वा व्यक्ति। प्यारी। प्राणमित्र।

जीवनवृत्त—संज्ञा पुं० [सं०] जीवनचरित। जीवनवृत्तांत। जीवनी।

जीवनवृत्तांत—संज्ञा पुं० [सं०] जीवनचरित। जिंदगी भर का हाल। जीवनी।

जीवनवृत्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] जीविका। जीवनेपाय। प्राणरक्षा के लिये ध्यम। रोज़ी।

जीवनहेतु—संज्ञा पुं० [सं०] जीवन रक्षा का साधन। जीविका। रोज़ी।

विशेष—गरुड़ पुराण में दस प्रकार की जीविका बतलाई गई है—विद्या, शिल्प, श्रुति, सेवा, गोरक्षा, विपण्य, कृषि, वृत्ति, भिक्षा और छुरादि।

जीवना—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) महीपाप। (२) जीवती सता।

*। कि० ध० दे० “जीना”।

जीवनावास—वि० [सं०] जल में रहनेवाला।

संज्ञा पुं० (१) वरुण। (२) देह। शरीर।

जीवनि—संज्ञा स्त्री० [सं०] जीवनी। (१) संजीवनी वृद्धि (२) जिलानेवाली वस्तु। प्राणधारण। (३) अत्यंत मिय वस्तु।

३०—गहली मरय न कीजिए समय सुहागदि पाय। जिय की जीवन जेठ सो माह न छुई सुहाय।—विहारी।

जीवनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) काठोली। (२) तिक जीवती। जोड़ी। (३) मेद (४) महामेद (५) लूही।

संज्ञा स्त्री० [सं०] जीवन + ई० (मय०)। जीवन भर का वृत्तांत। जीवनचरित। जिंदगी का हाल।

जीवनीय—वि० [सं०] (१) जीवनमद। (२) जीविका करने योग्य। यस्तने योग्य।

संज्ञा पुं० (१) जल। (२) जयंती वृक्ष। (३) दूध। (हिं०)

जीवनीय गण्य—संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक में चक्रकारक औषधों का एक वर्ग जिसके अंतर्गत अष्टवर्ग परिणीत, जीवती, मधूक और जीवन हैं। धारमट्ट के मत से जीवनीय गण्य वे हैं—जीवती, काठोली, मेद, सुदरणी। मापयणी, जपमक, जीवक और मधूक।

जीवनीया—संज्ञा स्त्री० [सं०] जीवती सता।

जीवनेत्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] सँहली वृक्ष।

जीवनेपाय—संज्ञा पुं० [सं०] जीवनेरक्षा का उपाय। जीविका। वृत्ति। रोज़ी।

जीवनौपध—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह औषध जिससे मरता हुआ भी जी जाय।

जीवन्मुक्त—वि० [सं०] जो जीवित दशा में ही आत्मज्ञान द्वारा सांसारिक मायाबंधन से छूट गया हो।

विशेष—वेदांतसार में लिखा है कि जिसने ब्रह्म चैतन्य स्वरूप ब्रह्म के ज्ञान-द्वारा अज्ञान का नाश करके धारमरूप ब्रह्म ब्रह्म का साक्षात्कार किया हो और और अज्ञान तथा अज्ञान के कार्य पाप पुण्य एवं संसार धम आदि के बंधन से निवृत्त हो गया हो वही जीवन्मुक्त है। सत्य और योग

के मत से पुरुष और प्रकृति के बीच विवेक ज्ञान होने से जीवन्मृति प्राप्त होती है, अर्थात् जब मनुष्य को यह ज्ञान हो जाता है कि यह प्रकृति जड़, परिणामिनी और त्रिगुणमयी है और मैं नित्य और चैतन्य स्वरूप हूँ तब यह जीवन्मुक्त हो जाता है।

जीवन्मृत-वि० [सं०] जो जीते ही मरे के तुल्य हो। जिसका जीना और मरना दोनों धापर हो। जिसका जीवन सार्थक या सुखमय न हो।

विशेष—जो अपने कर्तव्य से विमुख और भ्रमरूप हो, जो सदा कष्ट ही भोगता रहे, जो बड़ी कठिनता से अपने पापण्य कर सकता हो, जो प्रतिधि आदि का सत्कार न करता हो ऐसा मनुष्य धर्मशास्त्र में जीवन्मृत कहलाता है।

जीवन्यास-संज्ञा पुं० [सं०] मूर्धियों की प्रायश्चित्ता का मंत्र।
जीवपति-संज्ञा पुं० [सं०] धर्मराज।

-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जिसका पति जीवित हो।
सधवा स्त्री। सौभाग्यवती स्त्री। सुहागिनी स्त्री।

जीवपती-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जिसका पति जीवित हो।
सधवा स्त्री।

जीवपत्नी-संज्ञा स्त्री० [सं०] जीवती।

जीवपुत्रक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पुत्रजीव वृक्ष। जियापोता का पेड़। (२) इंदुदी का वृक्ष।

जीवपुत्रा-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जिसका पुत्र जीवित हो।

जीवपुत्र्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] वृद्धजीवती। बड़ी जीवती।

जीवप्रिया-संज्ञा स्त्री० [सं०] इतीतकी। हृद्।

जीवबंधु-संज्ञा पुं० [सं०] गुल हुएहरिया। बंधुजीव। बंधूक।

जीवभद्रा-संज्ञा स्त्री० [सं०] जीवती लता।

जीवमातृका-संज्ञा स्त्री० [सं०] कुमारी, धनदा, नंदा, विमला, संख्या, यला और पद्मा नाम की सात देवियाँ जो माता के समान जीवों का पालन और कल्याण करती हैं। (विधान-पारिजात)

जीवयाज-संज्ञा पुं० [सं०] पशुओं से किया जानेवाला यज्ञ।

जीवयेनि-संज्ञा स्त्री० [सं०] सजीव सृष्टि। जीव जंतु। जानवर।

जीव-रत्न-संज्ञा पुं० [सं०] जिनमें का रज जो गर्भ धारण के उपयुक्त हुआ हो। (सूत्रों के अनुसार यह पंचमीतिक होता है अर्थात् जिन पंच मूर्तों से जीवों की उत्पत्ति होती है वे इसमें होते हैं)

जीवराभ-संज्ञा पुं० [हिं०] जीव। प्राण। उ०—साईं सेती वेरिया चोरा सेती जुमक। तब जानेगा जीवरा मार परेगी तुमक।—कवीर।

जीवरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] जीव या जीवन। जीवन। प्राण धारण

की शक्ति। उ०—यौन मन माली मदन सुर शान्दवाह यो। प्रेम पय सौंयो पदिक ही सुभग जीवरि द्यो।—सू।

जीवला-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सँहली। (२) सिंहपिपली।

जीवलाक-संज्ञा पुं० [सं०] शूद्राक। पृथ्वीतल। मत्स्यलोका।

जीववल्ली-संज्ञा स्त्री० [सं०] घोरकाकोली।

जीववृत्ति-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) जीव का गुण या ध्यापर। (२) पशु पालने का व्यवसाय।

जीवदाक-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का शाक जो माखवा क्षेत्रों में अधिक होता है। सुसगा।

जीवदुक्ला-संज्ञा स्त्री० [सं०] घोरकाकोली।

जीवसंक्रमण-संज्ञा पुं० [सं०] जीव का एक शरीर से दूसरे शरीर में गमन।

जीवसाधन-संज्ञा पुं० [सं०] धान्य। धान।

जीवसुता-संज्ञा स्त्री० [सं०] यह स्त्री जिसका पुत्र जीता हो।

जीवसू-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जिसकी संतति जीती हो।
जीवचोका।

जीवस्थान-संज्ञा पुं० [सं०] शरीर में वह स्थान जहाँ जीव रहता है। मर्मस्थान। हृदय।

जीवहत्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) प्राणियों का घब। (२) प्राणियों के घब का दोष।

जीवहिंसा-संज्ञा स्त्री० [सं०] प्राणियों की हत्या। जीवों का घब।

जीवातक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) जीवों का घब करनेवाला। (२) भ्याप। पहेलिया।

जीवा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वह स्त्रीवी रेखा जो किसी क्षण के एक सिरे से दूसरे सिरे तक हो। ज्या। (२) धनुष की डोरी।

(३) जीवती। (४) यावधय। धवा। (५) भूमि। (६) जीवन। (७) जीवोपाय। जीविका।

जीवाजून-संज्ञा पुं० [सं०] जीवयेनि। जीव जंतु। प्राणी मात्र। पशु, पक्षी, कीट, पतंग आदि। उ०—पै फाटी पगार हुआ जगो जीवाजून। सध काहूँ को देत है चोच समाना वन।—कवीर।

जीवातुमत्त-संज्ञा पुं० [सं०] घायुकाम वन का एक देवता जिससे घायु की प्रायणा की जाती है। (शारव० श्रौतसूत्रे)

जीवात्मा-संज्ञा पुं० [सं०] प्राणियों की चेतन वृत्ति का कारण स्वरूप पदार्थ। जीव। आत्मा। प्रत्यगात्मा।

विशेष—शरीर से सिद्ध एक जीवात्मा है। इसके अनेक प्रमाण शास्त्रों में दिए गए हैं। सांख्य दर्शन में आत्मा को 'पुरुष' कहा है और वसे नित्य, त्रिगुण-शून्य, चेतन-स्वरूप, साक्षी, शून्य, द्रष्टा, धिक्की, सुख-दुःख-शून्य, मयस्य और बद-लीन माना है। आत्मा या पुरुष अकस्मै है, कोई कार्य नहीं करता, सब कार्य प्रकृति करती है। प्रकृति के कार्य को हम

ध्यान (आत्मा का) कार्य समझते हैं। यह भ्रम है। न आत्मा कुछ काम करता है न सुख दुःखादि फल भोगता है। सुख दुःख आदि भोग करना बुद्धि का धर्म है। आत्मा न यत्न होती है न मुक्त होती है। कठोरनियम में धारणा का परिणाम श्रेष्ठ मात्र लिखा है। इस पर सांख्य के भाष्यकार विशानभिक्षु ने बतलाया है कि श्रेष्ठ मात्र से अभिप्राय अर्थत् सुखम से है। योग और वेदांत दर्शन भी धारणा को सुख दुःख आदि का भोका नहीं मानते। न्याय, वैशेषिक और मीमांसा दर्शन धारणा को कर्मों का कर्ता और फलों का भोका मानते हैं। वेदांत दर्शन में जीवार्त्मा और परमात्मा एक ही माना गया है। उपाधियुक्त होने से ही जीवार्त्मा अपने को धृक् समझता है, पूर्ण ज्ञान प्राप्त होने पर यह भ्रम मिट जाता है और जीवार्त्मा ब्रह्म स्वरूप हो जाता है। सांख्य वेदांत योग आदि सभी जीवार्त्मा को निलय मानते हैं। वैदिक दर्शन के अनुसार जैसे सरन पदार्थ चण्डिक हैं वही प्रकार धारणा भी। जीवार्त्मा एक क्षण में स्वच्छ होता है और दूसरे क्षण में लट हो जाता है। अतः चण्डिक ज्ञान का नाम ही धारणा है। इस चण्डिक ज्ञान के अतिरिक्त कोई नित्य वा स्थिर धारणा नहीं। माध्यमिक ज्ञान के वैदिक तो इस चण्डिक विज्ञान रूप धारणा को भी नहीं स्वीकार करते, सब कुछ शून्य मानते हैं। वे कहते हैं कि यदि कोई वस्तु सत्य होती तो सब अवस्थाओं में यनी रहती। योगाचार शास्त्र के वैदिक धारणा को चण्डिक विज्ञान स्वरूप मानते हैं और इस विज्ञान को दो प्रकार का कहते हैं—एक प्रवृत्ति विज्ञान और दूसरा आलस्य विज्ञान। जाग्रत और सुप्त अवस्था में जो ज्ञान होता है उसे प्रवृत्ति विज्ञान कहते हैं और सुषुप्ति अवस्था में जो ज्ञान होता है उसे आलस्य विज्ञान कहते हैं। यह ज्ञान धारणा ही को होता है। जैन दर्शन भी धारणा को चिरस्थायी और प्रत्येक प्राणी में पृथक् पृथक् मानता है। उपनिषदों में जीवार्त्मा का स्थान हृदय माना गया है पर दार्शनिक परीक्षाओं से यह बात भ्रष्टी तरह प्रकट हो चुकी है कि समस्त चेतन व्यापारों का स्थान मस्तिष्क है। मस्तिष्क को धारणा भी कहते हैं। दे० 'आत्मा'।

पर्याय—पुनर्भयी। जीव। शसुमान्। सत्त्व। देहशुद्ध। चेतन।
 जीवाधार—संज्ञा पुं० [सं०] धारणा का आश्रय स्थान। हृदय।
 (उपनिषदों में जीव का स्थान हृदय माना गया है)
 जीवानुज—संज्ञा पुं० [सं०] गंगाचार्य मुनि जो गृहस्थित के संघ में हुए हैं। किसी के मत से ये गृहस्थित के छोटे भाई भी कहे जाते हैं। उ०—भाष्य इस जीवानुज धानी। जा मैं होइ सकल हुए धानी।—योगशास्त्र।
 जीवास्तिकाय—संज्ञा पुं० [सं०] जैन दर्शन के अनुसार कर्म का करनेवाला, कर्म के फल को भोगनेवाला, किप हुए

कर्म के अनुसार शुभाशुभ गति में जानेवाला और सम्यक् ज्ञानादि के यथ से कर्म समूह का नाम करनेवाला जीव। यह तीन प्रकार का माना गया है, अनादिसिद्ध, सुक्त और यत्न। अनादिसिद्ध अर्हत् हैं जो सब अवस्थाओं में अविद्या आदि के दुःख और बंधन से मुक्त तथा अणिमादि सिद्धियों से संतुष्ट रहते हैं।
 जीविका—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह वस्तु या व्यापार जिससे जीवन का निर्वाह हो। भरण पोषण का साधन। जीवनेपाय। वृत्ति। उ०—जीविका विहीन लोग सिद्धमान, सोच बस कई एक एकनि सों कहा जाइ का करी।—तुलसी।
 क्रि० प्र०—करना।
 मुहा०—जीविका लगना = भरण पोषण का उपाय होना। रेड़ी का ठिकाना होना। जीविका लगना = भरण पोषण का इपाय करना। जीवननिर्वाह का उपाय करना। रेड़ी का ठिकाना करना।
 जीवित—वि० [सं०] जीता हुआ। जिंदा।
 संज्ञा पुं० जीवन। प्राणधारण।
 यौ०—जीवितेर।
 जीवितेश—संज्ञा पुं० [सं०] (१) प्राणनाथ। प्यारा व्यक्ति। प्रायों से बढ़ कर मिय व्यक्ति। (२) यम। (३) इंद्र। (४) सूर्य। (५) देव में स्थित इंद्र और पिं गला नाड़ी।
 जीवी—वि० [सं०] जीवित् (१) जीवनेवाला। प्राणधार। (२) जीविका करनेवाला। जैसे, भ्रमजीवी।
 जीवेदा—संज्ञा पुं० [सं०] परमात्मा। ईश्वर।
 जीवोपाधि—संज्ञा स्त्री० [सं०] स्वप्न सुषुप्ति और जाग्रत इन तीनों अवस्थाओं को जीव की उपाधि कहते हैं।
 जीह—संज्ञा स्त्री० [हिं० जीभ, सं० जिह्वा] जीभ। अयान। उ०—
 (क) जब मन मंजु कंज मधुकर से। जीह असोमति हरि हजवर से।—तुलसी। (ख) राम नाम मनि दीप घर जीह देहरी द्वार। तुलसी भीतर बाहरी जो चाहसि उजियार।—तुलसी। (ग) नाम जीह जपि जागहि जोगी।—तुलसी।
 जीहि—संज्ञा स्त्री० दे० "जीह"।
 जुई—संज्ञा स्त्री० दे० "जुई"।
 जुग—संज्ञा पुं० [सं०] सुदृढ़कर शृङ्ख। विधारा।
 जुडी—संज्ञा स्त्री० दे० "जुहरी"। "जुवा"।
 जुदर—संज्ञा पुं० [?] यंदर का बच्चा। (कसंदरों की बोली)।
 जुवली—संज्ञा स्त्री० [हिं० डुंवा] एक प्रकार की पहाड़ी मेड़।
 जुविदा—संज्ञा स्त्री० [फा०] चाख। गति। हरकत। हिलना खोलना।
 मुहा०—जुंविय खाना = हिलना डोलना।
 जु—वि० दे० "जौ"।

क्रि० वि० दे० "जो" ।
 संज्ञा दे० "जू" ।
जुआ-संज्ञा पुं० [सं० पूका, प्रा० जूआ] [श्री० अण० जुर्] एक छोटा क्रीड़ा जो मैलेपन के कारण सिर के धाँसों में पड़ जाता है । जूँ । वील ।
जुआरी-संज्ञा स्त्री० [हिं० जुआँ] जुआँ । छोटी जुआँ ।
 † संज्ञा स्त्री० दे० "ज्वार" ।
जुआ-संज्ञा पुं० [सं० जूत, पा० जूह] वह खेल जिसमें जीतनेवाले को हारनेवाले से कुछ धन मिलता है । रूपए पैसे की धाबी लगा कर खेला जानेवाला खेल । किसी घटना की संभावना पर हार जीत का खेल । घूत ।
विद्येय-जुआ क्रीड़ा पासे तथा आदि कई वस्तुओं से खेला जाता है, पर भारत में कौड़ियों से खेलने का प्रचार ध्यान कल विद्येय है । इसमें चित्ती कौड़ियों को लेकर फेंकते हैं और चित पड़ी हुई कौड़ियों की संख्या के अनुसार धानों की हार जीत मानते हैं । सोलह चित्ती कौड़ियों से जो जुआ खेला जाता है उसे सोलहरी कहते हैं । उ०-थाढ़ो जनम अकारय गारयो । फरी न मीति कमलबोचन सों जन्म जुआ ज्यों हारयो ।-सूर ।
क्रि० प्र०-खेलना ।-जीतना ।-हारना ।-होना ।
 संज्ञा पुं० [सं० जुन = जोड़ना] (१) गाड़ी छक्के हल आदि की वह लकड़ी जो बैलों के कंधों पर रहती है । (२) जाँते या चक्की की मूँठ ।
जुआचौर-संज्ञा पुं० [हिं० जुआ + चौर] (१) वह जुआरी जो अपना दाँव जीत कर खिसक जाय । (२) धोखेवाला । धोखा देकर दूसरों का माल उड़ा लेनेवाला । ठग । चंचक ।
जुआचोरी-संज्ञा स्त्री० [हिं० जुआ + चोरी] ठगी । धोखेवाली । चंचकता ।
क्रि० प्र०-करना ।
जुआठा-संज्ञा पुं० [हिं० जुआ + काठ] हल में लगनेवाला वह लकड़ी का ढाँचा जो बैलों के कंधों पर रहता है ।
जुआनी-संज्ञा स्त्री० दे० "जवानी" ।
जुआर-संज्ञा स्त्री० दे० "ज्वार" ।
जुआरदासी-संज्ञा स्त्री० [?] एक प्रकार का पीषा जो फूलों के लिये लगाया जाता है ।
जुआर भाटा-संज्ञा पुं० दे० "ज्वार भाटा" ।
जुआरा-संज्ञा पुं० [हिं० जोआर] जतनी धरती जितनी एक जोड़ी बैल एक दिन में गीत सकें ।
जुआरी-संज्ञा पुं० [हिं० जुआ] जुआ खेलनेवाला ।
जुतना † संज्ञा पुं० [सं० युनि = बंधन या जोड़] धास या फूस की पूँठ कर बनाई हुई रस्सी जो बोनम धाँधने के काम में आती है ।
जुर्द-संज्ञा स्त्री० [हिं० जूँ] (१) छोटी जुआँ । (२) एक छोटा

क्रीड़ा जो मटर, सेम, हल्दीदि की फलियों में लग कर उन्हें नष्ट कर देता है ।
जुर्द-संज्ञा स्त्री० [?] बरछी के आकार का काठ का बना वह पात्र जिससे हवन में धी छोड़ा जाता है । धुवा ।
जुकाम-संज्ञा पुं० [हिं० जुद + काम] अस्वस्थता या बीमारी जो सरदी लगने से होती है और जिसमें शरीर में कफ जमा हो जाने के कारण नाक और मुँह से कफ निकलता है, ज्वरांश रहता है, सिर भारी रहता है और बुद्ध करता है । सरदी ।
क्रि० प्र०-होना ।
मुहा०-मेवकी के जुकाम होना = किसी मनुष्य में कोई ऐसी बात होना जिसकी उसमें कोई संभावना न हो । किसी मनुष्य का कोई ऐसा काम करना जो उसने कभी न किया हो या वह उसके स्वभाव या व्यवस्था के विरुद्ध हो ।
जुग-संज्ञा पुं० [सं० जुग] (१) जुग ।
मुहा०-जुग जुग = चिर काय तक । बहुत दिनों तक । जैसे, जुग जुग जीयो ।
 (२) जोड़ा । अया । गुट । दल । गोल ।
मुहा०-जुग टूटना = (१) किसी समुदाय के मनुष्यों का परस्पर मिला न रहना । अलग अलग हो जाना । दल टूटना । मंडली तितर बितर होना । उ०-सामने शत्रु सेना के दल छड़े थे, पर आक्रमण होते ही वे इधर उधर भागने लगे और हथके जुग टूट गए । (२) किसी दत्त वा मंडली में एकता वा मेल न रहना । जुग फूटना = जोड़ा छँदित होना । साथ रहनेवाले दो मनुष्यों में से किसी एक का न रहना ।
 (३) बीस के खेल में दो गोटियों का एक ही कोठे में इकट्ठा होना । जैसे, जुग टूटा कि गोटी मरी । (४) वह बोरा जिसे शुद्ध तारों को अलग अलग रखने के लिये ताने में डाल देते हैं । (५) डुरत । पीड़ा ।
जुगजुगाना-क्रि० घ० [हिं० जुगना = प्रवृत्त होना] (१) मंद मंद और रह रह कर प्रकाश करना । मंद ज्योति से चमकना । टिमटिमाना । जैसे, तारों का जुगजुगाना । उ०-कोठरी के कोने में एक दीया जुगजुगा रहा था । (२) अचानक वा हीन दया से क्रमशः कुछ उन्नत दया को प्राप्त होना । कुछ कुछ उभरना । कुछ कीर्ति वा समृद्धि प्राप्त करना । कुछ बनना वा नाम करना । जैसे, ये इधर कुछ जुगजुगा रहे थे कि बीच ही में चल गये ।
जुगजुगी-संज्ञा स्त्री० [हिं० जुगजुगाना] एक चिन्तिया जिसे शकर-खोरा भी कहते हैं ।
जुगत-संज्ञा स्त्री० [सं० जुक्ति] (१) युक्ति । उपाय । उद्घवीर ।
हंग ।
क्रि० प्र०-करना ।

मुहा०—जुगत खगाना = जोड़ तीढ़ बैठाना । दंग रचना । उपाय करना । तदर्थ करना ।

(२) व्यवहार-कुशलता । चतुराई । हथकंड़ा । (३) चमकार-पूर्ण शक्ति । सुदकुवा ।

जुगनी—संज्ञा स्त्री० (१) दे० “जुगनु” । (२) एक प्रकार का गाना जो पंजाब में गाया जाता है ।

जुगनु—संज्ञा पुं० [हिं० जुगजुगना] (१) गुबरेले की आति का एक कीड़ा जिसका पिड्डला भाग धाग की चिनगारी की तरह चमकता है । यह कीड़ा घरसात में बहुत दिसाई पड़ना है । सघोत । पटवीजना ।

विद्योप—तिवली, गुबरेले, रेशम के कीड़े खादि की तरह यह कीड़ा भी पहले लोले के रूप में अल्पक होता है । लोले की अवस्था में यह मिट्टी के घर में रहता है और उसमें से दस दिन के उपरांत रूपांतरित होकर गुबरेले के रूप में निकलता है । इसके पिड्डले भाग से फासफूर का प्रकार निकलता है । सब से चमकीले जुगनु दूधिया धमेरिका में होते हैं जिनसे कहीं कहीं लोग घर में दीपक का काम लेते हैं । इन्हें सामने रख कर लोग महीन से महीन धारों की पुस्तकें पढ़ सकते हैं

(२) द्विपों का एक गढ़ना जो पान के काका का होता है । और गले में पहना जाता है । रामनामी ।

जुगल—वि० दे० “जुगल” ।

जुगलिया—संज्ञा पुं० [?] जैन कथाओं के अनुसार यह मनुष्य जिसके ४०३१ पात्र मिल कर भ्राज कल के मनुष्यों के एक पात्र के बराबर हो ।

जुगवना—क्रि० सं० [सं० जेग + वना (मल०)] (१) संचित रखना । पकट करना । जोड़ जोड़ कर रखना कि समय पर काम आवे । (२) दिग्भाजत से रखना । सुरक्षित रखना । पत्र और रंग पूर्ण रखना ।

जुगादरी—वि० [सं० जुगादरीय] बहुत पुराना । बहुत दिनों का ।

जुगाना—क्रि० सं० दे० “जुगवना” ।

जुगालना—क्रि० प्र० [सं० जुगलना = उगलना] सांगवाले चौपायों का निगले हुए चारे को थोड़ा थोड़ा करके गले से निकाल ऊँह में छेक पित से धीरे धीरे खाना । पाणुर करना ।

जुगाली—संज्ञा स्त्री० [हिं० जुगालना] सांगवाले चौपायों की निगले हुए चारे को गले से थोड़ा थोड़ा निकाल निकाल पित से खाने की क्रिया । पाणुर । रोमप ।

क्रि० प्र०—करना ।

जुगुत—संज्ञा स्त्री० दे० “जुगत” ।

जुगुप्सक—वि० [सं०] व्यर्थ दूसरे की निंदा करनेवाला ।

जुगुप्सन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० जुगुप्स, जुगुप्सित] निंदा करना । दूसरे की बुराई करना ।

जुगुप्सा—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) निंदा । गहंथा । बुराई । (२) अक्षय । प्यास ।

विद्योप—साहित्य में यह यौमत्स रस का स्थायी भाव है और शत रस का व्यभिचारी । पतञ्जल के अनुसार शौच वा शुद्धि खाम कर लेने पर अपने अंगों तक से जो घृणा हो जाती है और जिसके कारण सांसारिक प्राणियों का संसर्ग थपछा नहीं खगता उसका नाम “जुगुप्सा” है ।

जुगुप्सित—वि० [सं०] निंदित । घृणित ।

जुगुप्स—वि० [सं०] निंदक । बुराई करनेवाला ।

जुजु—संज्ञा पुं० [फा० मि० सं० जुज्] फागन के ८ पृष्ठों वा १९ पृष्ठों का समूह । एक फासम ।

यौ०—जुजुवंदी ।

जुजुवंदी—संज्ञा स्त्री० [फा०] किताब की सिखाई जिसमें षाठ षाठ पन्ने एक साथ लिप्य जाते हैं ।

क्रि० प्र०—करना ।

जुजूवी—वि० [फा०] (१) बहुतों में से कोई एक । बहुत कम । कुछ थोड़े से । (२) बहुत छोटे शेर का । जैसे, जुजूवी हिल्लेवार ।

जुजूठील—संज्ञा पुं० [सं० जुषिठिर] राजा युधिष्ठिर । (हिं०) ।

जुज्ज—संज्ञा स्त्री० [सं० युज्, प्रा० जुज्ज] युद्ध । लड़ाई ।

जुभक्ताना—क्रि० सं० [हिं० जुभक्ताना] (१) लड़ने के लिये प्रोत्साहित करना । लड़ा देना । (२) लड़ा कर मरवा डालना ।

जुभाऊ—वि० [हिं० जुज्ज, जुफ् + भाऊ (मल०)] (१) युद्ध का । युद्ध संबंधी । जिसका व्यवहार रथसेत्र में हो । लड़ाई में काम आनेवाला । (२) युद्ध के लिये ससाहित करनेवाला ।

जैसे, जुभाऊ बाजा । जुभाऊ राग । व०—नामहिं जोल निसान जुभाऊ । सुनि सुनि शोय भजन मन बाजा—जुज्जसी ।

जुभारत—वि० [हिं० जुज्ज + भात (मल०)] लड़ाका । सुरमा ।

थोर । बौद्धा । बहादुर । व०—सकल सुमासुर बरहिं जुभाता । रामहिं समर को जीतनद्वारा ।—जुज्जसी ।

जुट—संज्ञा स्त्री० [सं० जुक, प्रा० जुप] (१) दो परस्पर मिली हुई वस्तुएँ । एक साथ के दो चादमी या वस्तु । जोड़ी । जुग ।

(२) एक साथ यँधी या खगी हुई वस्तुओं का समूह । ढाट । थोक । (३) जुट । अंकली । जथा । दल । (४) ऐसे दो मनुष्य जिन में वृष मेल हो । जैसे, वन दोनों की एक जुट है ।

(५) जोड़ का चादमी या वस्तु ।

जुटना—क्रि० प्र० [सं० जुक, प्रा० जुप + ना (मल०)] या सं० जुप = जँधी] (१) दो वा अधिक वस्तुओं का परस्पर इस प्रकार मिलना कि एक का कोई पार्वक वा अंग दूसरे के किसी

पार्वक वा अंग के साथ टकतापूर्वक खगा रहे । एक वस्तु का

जुटना—क्रि० प्र० [सं० जुक, प्रा० जुप + ना (मल०)] या सं० जुप = जँधी] (१) दो वा अधिक वस्तुओं का परस्पर इस प्रकार

मिलना कि एक का कोई पार्वक वा अंग दूसरे के किसी

पार्वक वा अंग के साथ टकतापूर्वक खगा रहे । एक वस्तु का

जुटना—क्रि० प्र० [सं० जुक, प्रा० जुप + ना (मल०)] या सं० जुप = जँधी] (१) दो वा अधिक वस्तुओं का परस्पर इस प्रकार

मिलना कि एक का कोई पार्वक वा अंग दूसरे के किसी

पार्वक वा अंग के साथ टकतापूर्वक खगा रहे । एक वस्तु का

जुटना—क्रि० प्र० [सं० जुक, प्रा० जुप + ना (मल०)] या सं० जुप = जँधी] (१) दो वा अधिक वस्तुओं का परस्पर इस प्रकार

मिलना कि एक का कोई पार्वक वा अंग दूसरे के किसी

पार्वक वा अंग के साथ टकतापूर्वक खगा रहे । एक वस्तु का

दूसरी वस्तु के साथ इस प्रकार सटना कि बिना प्रयास या धायात के वे श्रलग न हो सकें। दो वस्तुओं का बँधने चिपकने सिलने या जड़ने के कारण परस्पर मिलकर एक होना। संयुक्त होना। संरिखट होना। जुड़ना। जैसे, इस खिलौने का टूटा सिर गोंद से नहीं जुटता, गिर गिर पड़ता है।

संयोग क्रि०—जाना।

विशेष—मिल कर एक रूप हो जानेवाले द्रव या चूर्ण पदार्थों के संबंध में इस क्रिया का प्रयोग नहीं होता।

(२) एक वस्तु का दूसरी वस्तु के इतने पास होना कि दोनों के बीच श्रवण न रहे। दो वस्तुओं का परस्पर इतने निकट होना कि एक का कोई पारखे दूसरे के किसी पारखे से छू जाय। मिड़ना। सटना। लगा रहना। जैसे, मेज इस प्रकार रखो कि चारपाई से जुटी न रहे। (३) लिपटना। चिमटना। गुपना। जैसे, दोनों एक दूसरे से जुटे हुए खूब लात धूँसे चला रहे हैं। (४) संभोग करना। प्रसंग करना। (५) एक ही स्थान पर कई वस्तुओं या व्यक्तियों का शाना या होना। एकत्र होना। इकट्ठा होना। जमा होना। जैसे, भीड़ जुटना, आदिमियों का जुटना, सामान जुटना। (६) किसी कार्य में योग देने के लिये उपस्थित होना। जैसे, आप निरिच्छत रहें हम मौके पर जुट जायेंगे। (७) किसी कार्य में जो जान से लगना। प्रयुक्त होना। तत्पर होना। जैसे, ये जिस काम के पीछे जुटते हैं उसे कर ही के छोड़ते हैं। (८) एकमत होना। अभिसंधि करना। जैसे, दोनों ने जुट कर यह सब उपवचन सड़ा किया है।

जुटली-वि० [सं० जुट] जुड़वाला। जिसे लंबे लंबे बालों की खट हो। उ०—सली री नंदनदन देखु। धूरि धूसर जटा जुटली हरि किए हंर मेपु।—सूर।

जुटाना-क्रि० सं० [हिं० जुटाना] (१) दो या अधिक वस्तुओं को परस्पर इस प्रकार मिलाना कि एक का कोई पारखे या श्रंग दूसरे के किसी पारखे या श्रंग के साथ बड़तापूर्वक लगा रहे। जोड़ना।

संयोग क्रि०—देना।

(२) एक वस्तु को दूसरी वस्तु के इतने पास करना कि एक का कोई भाग दूसरे के किसी भाग से छू जाय। मिड़ाना। सटना। (३) इकट्ठा करना। एकत्र करना। जमा करना। जुटिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) शिरा। सुंदी। सुंदिया। (२) गुच्छा। षट। जूड़ी। जुड़ी। (३) एक प्रकार का कपूर। जुट्टी-संज्ञा स्त्री० [हिं० जुट्टा] (१) घास, पतियों या टहनियों का एक में बँधा हुआ छोटा पल्ला। झटिया। जूरी। जैसे, संबाड़ की जुट्टी, जुट्टी की जुट्टी। (२) सूत यादि के नप करले जो बँधे हुए निकलते हैं। (३) तले ऊपर रखी हुई एक ही प्रकार की कई चिपटी (पत्तर वा परत के आकार की) वस्तुओं का समूह। गड्डी। जैसे, रेशियों की जुट्टी,

रूपों की जुट्टी, पैतों की जुट्टी। †(४) एक पकवान जो शाक या पत्तों को बेसन, पीठी आदि में खपेट कर तलने से बनता है।

वि० जुटी वा मिली हुई। जैसे, जुटी भैं।

जुठारना-क्रि० सं० [हिं० जुठ] (१) किसी खाने पीने की वस्तु को कुछ खाकर छोड़ देना। किसी खानेपीने की वस्तु में जुँट लगा कर उसे अपवित्र वा दूसरेके व्यवहार के श्रयोग करना। उच्छिद्य करना। (हिं० आचार के अनुसार जुटी वस्तु का खाना निषिद्ध समझा जाता है)।

संयोग क्रि०—हालना।—देना।

(२) किसी वस्तु को भाग करके उसे दूसरे के व्यवहार के श्रयोग कर देना।

जुठिहारा-संज्ञा पुं० [हिं० जुठ + हारा] [स्त्री० जुठिहारी] जुठ खानेवाला। उ०—सूर दास प्रभु नैद नंदन कईं हम ग्वालन जुठिहारे।—सूर।

जुड़ना-क्रि० श्र० [हिं० जुड़ना वा सं० जुड़ = बँधना] (१) दो या अधिक वस्तुओं का परस्पर इस प्रकार मिलना कि एक का कोई पारखे या श्रंग दूसरे के किसी पारखे या श्रंग के साथ बड़तापूर्वक लगा रहे। दो वस्तुओं का बँधने, चिपकने सिलने वा जुड़े जाने के कारण परस्पर मिल कर एक होना। संयुक्त होना। संरिखट होना। संयुक्त होना। उ०—दाग श्ररभक्त टूटत कुटुम श्रत चतुर सँग प्रीति। परति गांठि जुजंग हिये दर्द नईं यह रीति।—विहारी।

क्रि० प्र०—जाना।

(२) संयोग करना। संभोग करना। प्रसंग करना। †(३) इकट्ठा होना। एकत्र होना। (४) किसी कार्य में योग देने के लिये उपस्थित होना। (५) उपलब्ध होना। प्राप्त होना। मिलना। मयस्सर होना। जैसे, कपड़े लते जुड़ना। उ०—उसे तो चने भी नहीं जुड़ते। (६) गाड़ी आदि में बँध लगना। जुतना।

जुड़पिस्ती-संज्ञा स्त्री० [हिं० जुड़ + पिच] शीत और पित से उत्पन्न एक रोग जिसमें शरीर में खुजली उठती है और बड़े बड़े चकत्ते पड़ जाते हैं।

जुड़वाँ-वि० [हिं० जुड़ना] जुड़े हुए। यमल। गर्म काल से ही एक में सटे हुए। जैसे, जुड़वाँ बच्चे। (इस शब्द का प्रयोग गर्भजात बच्चों के लिये ही होता है)।

संज्ञा पुं० एक ही साथ उत्पन्न दो या अधिक बच्चे।

जुड़वाई-संज्ञा स्त्री० दे० "जोड़वाई"।
जुड़वाना-क्रि० सं० [हिं० जुड़] (१) ठंडा करना। शीतल करना। (२) शांत करना। सुखी करना। जैसे, छाती जुड़वाना।

क्रि० सं० दे० "जोड़वाना" ।
 सुझाई-संज्ञा स्त्री० दे० "जोड़नाई" ।
 सुझाना-क्रि० अ० [हिं० जुड़] (१) ठंडा होना । शीतल होना (२) शांत होना । वृत्त होना । प्रसन्न होना । संतुष्ट होना ।
 संयो० क्रि०-जाना ।
 क्रि० सं० (१) ठंडा करना । शीतल करना । (२) शांत और संतुष्ट करना । वृत्त करना । प्रसन्न करना । ३०-सोचत रहेंगे तोहि सुतपाती । भाखु निपाति सुझावहुँ छाती ।— सुलसी ।
 संयो० क्रि०-बालना ।—देना ।—लेना ।
 सुझावना-क्रि० सं० दे० "सुझाना" ।
 सुझौया-वि० संज्ञा पुं० दे० "सुझवा" ।
 सुझौवाल-वि० [अं०] क्षीवानी वा फौजदारी संबंधी । न्याय-संबंधी ।
 सुतना-क्रि० अ० [सं० सुक्त, प्रा० सुच] (१) बेल, घोड़े आदि का गाड़ी, हल आदि में खराना । नथाना । (२) किसी काम में परिश्रमपूर्वक लगना । किसी परिश्रम के कार्य में तपस्व वा संलग्न होना । जैसे, यह दिन भर काम में जुता रहता है । (३) लड़ाई में लगना । गुप्तना । सुतना । (४) जोता जाना । हल चलाने के कारण जमीन का खुदकर सुरसुरी हो जाना । जैसे, यह खेत दिन भर में सुत जायगा ।
 सुतवाना-क्रि० सं० [हिं० जोतना] (१) दूसरे से जोतने का काम कराना । दूसरे से हल चलवाना । जैसे, जमीन सुतवाना, खेत सुतवाना ।
 संयो० क्रि०-देना ।
 (२) बेल घोड़े आदि को गाड़ी हल आदि में खींचने के लिये खगवाना । नथवाना । (इस क्रिया का प्रयोग जो पशु जोते जाते हैं तथा जिस वस्तु में जोते जाते हैं दोनों के लिये होता है । जैसे घोड़े सुतवाना, गाड़ी सुतवाना ।)
 संयो० क्रि०-देना ।
 सुतार-संज्ञा स्त्री० दे० "जोतार" ।
 सुताना-क्रि० सं० दे० "जोताना" ।
 सुतियाना-क्रि० सं० [हिं० जुता + इयाना (भाव०)] (१) जुता मारना । जूते से मारना । जूते खगाना । (२) चालूत निरा-दर करना । अपमानित करना ।
 सुतियौमल-संज्ञा स्त्री० [हिं० जुता] परस्पर जूते की मार ।
 क्रि० प्र०-होना ।
 सुतय-संज्ञा पुं० दे० "सूत" ।
 सुथाली-संज्ञा स्त्री० [दे०] एक छोटी चिड़िया जिसकी छाती और गर्दन का कुछ भेरा सफेद और बाकी भूरा होता है ।
 सुदा-वि० [फा०] [स्त्री० सुदी] (१) शुष्क । अन्नय ।

क्रि० प्र०-करना ।—होना ।
 सुहा-संज्ञा स्त्री० दे० "सुहा" ।
 सुहा-संज्ञा स्त्री० [फा०] विद्वेह । वियोग । दो व्यक्तियों के एक दूसरे से अलग होने का भाव ।
 क्रि० प्र०-होना ।
 सुदी-वि० स्त्री० दे० "सुदा" ।
 सुद्ध-संज्ञा पुं० दे० "सुद्ध" ।
 सुनिवर-संज्ञा पुं० [अं०] एक प्रकार का शंखरेजी कुल जो कई रंगों का होता है ।
 सुनुन-संज्ञा पुं० [फा०] पागलपन । सनक ।
 सुनुही-संज्ञा स्त्री० [सं० यनल] ज्वार नाम का अन्न ।
 सुन्हारी-संज्ञा स्त्री [सं० ज्वारना, प्रा० जेन्हा] (१) चंदनी । चंद्रिका । (२) चंद्रमा ।
 सुन्हारी-संज्ञा स्त्री० [सं० यनल] ज्वार नाम का अन्न ।
 सुन्हैया-संज्ञा स्त्री० [सं० ज्वारना, प्रा० जेन्हा, हिं० जेन्ही + यैया] (१) चंदनी । चंद्रिका । चंद्रमा का उजाला । (२) चंद्रमा । ३०-अहित धर्मसे ऐसी कौन बपहास याते सोचन खरी मैं परी जोवति सुन्हैया को ।—पद्माकर ।
 सुचराज-संज्ञा पुं० दे० "सुचराज" ।
 सुचली-संज्ञा स्त्री० [अं० वा इयानी योवच] किसी महत्वपूर्ण घटना का स्मारक महोत्सव । जरन । यज्ञा सलसा ।
 सुधान-संज्ञा स्त्री० दे० "जवान" ।
 सुधानी-वि० दे० "जवानी" ।
 सुमाना-संज्ञा पुं० [दे०] खेत में पस या खाद देने का एक ढंग जिसके अनुसार कटी हुई मृदाभियाँ और पेटे पीपों को खेत में बिछा कर जला देते हैं और यही बुद्धे राख को मिट्टी में मिला देते हैं ।
 सुमला-वि० [फा०] सय । कुल । सयके सय ।
 संज्ञा पुं० वह पूरा वाक्य जिससे पूरा अर्थ निकलता हो ।
 सुमा-संज्ञा पुं० [अं०] शुक्वार ।
 धी०-सुमामसजिद ।
 सुमामसजिद-संज्ञा स्त्री० [अं०] यह मसजिद जिसमें जमा होकर मुसलमान लोग शुक्रवार के दिन दोपहर की नमाज पढ़ते हैं ।
 सुमिल-संज्ञा पुं० [हिं० ?] एक प्रकार का घोड़ा । ३०-गुराँ मुंड सुमिल दरियाई ।—रघुनाथ ।
 सुमिहा-संज्ञा पुं० [हिं० ?] वह सूँटा जो सपेटन की बाईं ओर गड़ा रहता है और जिसमें सपेटन छगी रहती है । (जुगाहों की बोली) ।
 सुमुकना-क्रि० अ० [सं० यनक] (१) निकट था जाना । पास या जाना । (२) सुपना । इकट्ठा होना ।

जुमेरात-संज्ञा स्त्री० [अ०] वृहस्पति । शुक्रवार । चीकै ।

जुम्मा-संज्ञा पुं० दे० "जुमा" ।

संज्ञा पुं० दे० "जिम्मा" ।

जुगाम-संज्ञा पुं० [दे०] एक प्रकार की जंगली जाति । इस जाति के लोग सिंधभूम के दक्षिण उड़ीसा में पाए जाते हैं और कोलों से मिलते जुलते होते हैं ।

जुहमत-संज्ञा स्त्री० [फा०] साहस । हिम्मत । हियाव । जवहा ।

जुहसुरी-संज्ञा स्त्री० [सं० ज्वर वा जूर्ण + हि० मरकराना] (१)

हलकी गरमी जो ज्वर के आदि में जान पड़ती है । ज्वरोंश । हारात । (२) ज्वर के आदि की कंपकंपी । शरीतकंप ।

जुहना-संज्ञा-क्रि० सं० दे० "जुहना" ।

जुहवाना-संज्ञा पुं० दे० "जुरमाना" ।

जुरमाना-संज्ञा पुं० [फा०] अर्थे दंड । धन दंड । वह दंड जिसके अनुसार अपराधी को कुछ धन देना पड़े ।

क्रि० प्र०-करना ।-देना ।-लेना ।-लगना ।-होना ।

जुराफा-संज्ञा पुं० [अ० जुराफा] अफ्रीका का एक जंगली पशु ।

इसके खुर घैल के से, टाँगें और गदंन ऊँट की सी लंबी, सिर दिहन का सा, पर सँग बहुत छोटे, पूँछ गाय की सी, चमड़े का रंग नारंगी का सा जिस पर बड़े बड़े काले धब्बे से होते हैं । सप्तर भर में सबसे जैचा पशु यही है । १५ या १६ फुट की उँचाई तक के तो सवही होते हैं पर कोई कोई १८ फुट तक की उँचाई के भी होते हैं । इसकी आँखें ऐसी बड़ी और उभरी हुई होती हैं कि बिना सिर फेरे हुए ही यह अपने चारों ओर देख सकता है । इसी से इसका पकड़ना या शिकार करना बहुत कठिन है । इसके नथुनों की बनावट ऐसी विचित्र होती है कि जब यह चाहे उन्हें बंद कर ले सकता है । इसकी जीम १७ इंच तक लंबी होती है । यह प्रायः घुर्छों की पत्तियाँ खाता है और मैदानों में झुंड बांध कर रहता है । चरते समय झुंड के चारों ओर चारं श्राफे पहरे पर रहते हैं जो शत्रु के आगे की सूचना सुरंत सुनके दे देते हैं । शिकारी लोग घोड़ों पर सवार होकर इसका शिकार करते हैं परंतु बहुत निकट नहीं जाते, क्योंकि इस के खात की चोट बड़ी कड़ी होती है । इसका चमड़ा हतना सफल होता है कि उस पर गोली असर नहीं करती । इसका मांस खाया जाता है ।

विशेष—यह पशु सुंड बांध कर परिवारिक रीति से रहता है, इसी से हिंदी कवियों ने इसके जोड़े में अत्यंत प्रेम मान कर इसका काव्य में उल्लेख किया है । परंतु समझने में कुछ भ्रम हुआ है और इसके पशु की जगह पशु समझा है ।

३०—(क) मिल्कि बिहरत बिहरत मरत बंपति कति रस लकी । नूतन विधि हेमंत की जगत जुराफा कीन ।—बिहारी ।
(ख) जगह जुराफा हें जियत तन्यो तैन निज आनु । रस रहे हम पशु में यह धीं कौन सयानु ।—पद्माकर ।

जुरी-संज्ञा स्त्री० [सं० री = ज्वर] धीमा ज्वर । हारात ।

जुर्म-संज्ञा पुं० [अ०] अपाप । वह कार्य जिसके दंड का विधान राजनियम के अनुसार हो ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

जुरी-संज्ञा पुं० [फा०] नर बाज ।

जुरीब-संज्ञा स्त्री० [तु०] मोड़ा । पायतावा ।

जुल-संज्ञा पुं० [सं० छत्र ?] घोखा । दम । फाँस । पट्टे । छलछंद ।

क्रि० प्र०—देना ।—में आना ।

धौ०—जुलबाज़ । जुलबाज़ी ।

जुलना-क्रि० सं० [हि० जुड़ना] (१) मिलना । सम्मिलित होना ।

(२) मिलना । भेट करना ।

विशेष—यह क्रिया अथ फरेली नहीं बोली जाती है । जैसे, (क) मिल जुल कर रहे । (ख) जिससे मिलना हो मिल जुल आये ।

जुलबाज़-वि० [हि० जुल + फा० बाज़] घोखेबाज़ । छत्री । धूर्त । चालाक ।

जुलबाज़ी-संज्ञा स्त्री० [हि० जुलबाज़] घोखेबाज़ी । छल । धूर्तता । चालाकी ।

जुलमा-संज्ञा पुं० दे० "जुल्म" ।

जुलाई-संज्ञा स्त्री० [अ०] एक अंगरेजी महीना जो जेठ या असाढ़ में पड़ता है । यह अंगरेजी का ७ वाँ महीना है और ३१ दिन का होता है । इस मास की १३ वीं या १४ वीं तारीख को कर्क की संक्रांति पड़ती है ।

जुलाहा-संज्ञा पुं० [फा० जुलाल, अ० जुलान] (१) रचन । दस्त ।

क्रि० प्र०—लगाना ।

(२) रचक श्रापथ । दस्त खानेवाली दया ।

क्रि० प्र०—देना ।—लेना ।

मुहा०—जुलाय पचना = किसी दस्त खानेवाली दया का दस्त न खाना वरं पच जाना जिससे अनेक दोष उत्पन्न होते हैं ।

विशेष—विद्वानों का मत है कि यह शब्द वास्तव में फा० गुलाब से अरबी साँचे में डाल कर बना लिया गया है । गुलाब दस्तावर दवाओं में से है ।

जुलाहा-संज्ञा पुं० [फा० जुलाह] (१) कपड़ा बुननेवाला । संतु-याव । संतुकार ।

विशेष—भारतवर्ष में जुलाहे कहलायेवाले सुसलमान हैं । हिंदू कपड़ा बुननेवाले कोली आदि निम्न श्रेणी नामों से पुकारे जाते हैं ।

(२) पानी पर तैरनेवाला एक कीड़ा । (३) एक बरसाती कीड़ा जिसका शरीर गावदुम और सुँह भर की तरह मोल होता है ।

जुलफा—संज्ञा स्त्री० दे० “जुलफ” ।
 जुलुमा—संज्ञा पुं० दे० “जुलम” ।
 जुलफ—संज्ञा स्त्री० [फा०] सिर के वे लंबे बाल जो पीछे की ओर लटकते हैं । पहा । कुल्ले ।
 जुलफा—संज्ञा स्त्री० [फा० जुलफ] जुलफ । पहा ।
 जुलम—संज्ञा पुं० [अ०] शत्याचार । शत्याय । अनिति ।
 कि० प्र०—करना ।—होना ।
 मुहा०—जुलम दटना = चाफत था पड़ना । जुलम दाना = (१) अत्याचार करना । (२) कोई अद्भुत काम करना ।
 जुलूस—संज्ञा पुं० [अ०] (१) सिंहासनारोहण । (२) किसी वस्त्र का समारोह । (३) वस्त्र और समारोह की यात्रा ।
 धूम धाम की सवारी ।
 कि० प्र०—निकलना ।
 जुहाव—संज्ञा पुं० [अ०] (१) रेचन । दस्त ।
 कि० प्र०—लगना ।
 (२) रेचक औषध ।
 कि० प्र०—देना ।—लेना ।
 विशेष—दे० “जुहाव” ।
 जुवा—संज्ञा पुं० दे० “जुवा” ।
 जुवाना—संज्ञा पुं० दे० “जवान” ।
 जुवानी—संज्ञा पुं० दे० “जवानी” ।
 जुवार—संज्ञा स्त्री० दे० “ज्वार” ।
 जुवारी—संज्ञा पुं० दे० “जुवारी” ।
 जुलतजू—संज्ञा स्त्री० [फा०] सलाख । खोज ।
 जुवाना—कि० सं० [सं०] सूय, प्रा० जूर + जाला (प्रत्य०)]
 (१) एकत्र करना । (२) संचित करना । जोड़ जोड़ कर एक जगह रखना ।
 संयो० कि०—देना ।—लेना ।
 जुहार—संज्ञा स्त्री० [सं०] अजहार = युद्ध का रुकना वा बंद होना । राज-पूतों या पत्रियों में मण्डित एक प्रकार का प्रणाम । अभि-धंदन । सलाम । बंदगी ।
 जुहारना—कि० सं० [सं०] अजहार = प्रकार वा उल्लास । किसी से कुछ सहायता माँगना । किसी का पदसलाम देना ।
 जुहावना—कि० सं० दे० “जुहाना” ।
 जुही—संज्ञा स्त्री० [सं०] पुत्री । एक छोटा माड़ या पौधा जो बहुत धना होता है और जिसकी पत्तियाँ छोटी तथा ऊपर सीचे चुकीली होती हैं । यह अपने सफेद सुगंधित फूलों के लिये बागिचों में लगाया जाता है । ये फूल बरसात में लगते हैं । उनकी सुगंध घनेली से मिलती जुलती बहुत हलकी और मीठी होती है ।
 विशेष—दे० “जूही” ।

जुह—संज्ञा पुं० [सं०] (१) पलारा की लकड़ी का धना हुआ एक धड़ें चंदाकार यज्ञपात्र । (२) पूर्ण दिशा ।
 जुष्टता—संज्ञा पुं० [सं०] जुष्टन । यज्ञ में श्राद्धति देनेवाला ।
 जू—संज्ञा स्त्री० [सं०] युका] एक छोटा खेदक कीड़ा जो दूसरे जीवों के शरीर के आश्रय से रहता है । ये कीड़े बालों में पड़ जाते हैं और काले रंग के होते हैं । आगे की ओर इनके छे पुर होते हैं और इनका पिछला भाग कई गाँठों में विभक्त होता है । इनके मुँह में एक सूई होती है जो नेक पर सुकी होती है । ये कीड़े इसी सूई को जानवरों के शरीर में खुभो कर उनके शरीर से रक्त चूस कर अपना जीवन निर्वाह करते हैं । चीलर भी इसी की जाति का कीड़ा है पर वह सफेद रंग का होता है और कपड़ों में पड़ता है । जू बहुत श्रद्धे देती हैं । ये श्रद्धे बालों में चिपके रहते हैं और दो ही तीन दिन में एक जाते हैं और छोटे छोटे कीड़े निकल पड़ते हैं । ये कीड़े बहुत सूक्ष्म होते हैं और थोड़े ही दिनों में रक्त चूस कर बड़े हो जाते हैं । भिन्न भिन्न प्राणियों के शरीर पर की जू भिन्न भिन्न आकृति और रंग की होती हैं । लोगों का कथन है कि कोढ़ियों के शरीर पर जू नहीं पड़ती ।
 कि० प्र०—पड़ना ।
 यौ०—जूसुहा ।
 मुहा०—कानों पर जू रँगना = चेत होना । स्थिति का शान होना । सतर्कता होना । होरा होना । जू की चाल = बहुत धीमी चाल । बहुत सुस्त चाल ।
 जूँट—वि०, संज्ञा पुं० दे० “जूटा” ।
 जूँठन—संज्ञा स्त्री० दे० “जूठन” ।
 जूँड़िहा—संज्ञा पुं० [हिं०] कुंज] वह बँध जो बँधों के मुँह के आगे चबूटा है ।
 जूँदन—संज्ञा पुं० [देग०] [की०] जूँदनी] बंदर । (मदारी) ।
 जूँमुहा—वि० [हिं०] जूँ + मुँह] यह जो देहने में सीधा सादा पर बासल में बड़ा पूर्ण हो ।
 जू—अव्य० [सं० (श्री) युक्त] (१) एक आदरसूचक शब्द जो भ्रम उद्देश्यवत् राजपूताना आदि में बड़े लोगों के नाम के साथ लगाया जाता है । जी । जैसे, कन्हैया जू । (२) संबोधन का शब्द । दे० “जू” ।
 अव्य० [देग०] एक निरर्थक शब्द जो बँधों या मैसों को खण्ड करने के लिये बोला जाता है ।
 संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सरस्वती । (२) वायुमंडल । वायु । (३) बँध या पोट्टे के मल्ल पर का टीका ।
 जूमा—संज्ञा पुं० [सं०] जुग] (१) रथ वा गाड़ी के आगे हारल में बँधी या जड़ी हुई वह लकड़ी जो बँधों के कंधे पर रहती है ।
 कि० प्र०—बाँधना ।

(२) जुयागा। (३) चकी में छागी हुई वह लकड़ी जिसे पकड़ कर वह फिराई जाती है।

संज्ञा पुं० [सं० पूत, प्रा० जूष] यह खेल जिससे जीतने वाले को हारनेवाले से कुछ धन मिलता है। किसी घटना की संभावना पर हार जीत का खेल। घृत।

क्रि० प्र०—खेलना।—जीतना।—हारना।—होना।
विशेष—दे० “जुआ”।

जूक—संज्ञा पुं० [व्ना० जूकस] गुला राशि।

जूजू—संज्ञा पुं० [अनु०] एक कल्पित भयंकर जीव जिसका नाम लोग लड़कों के डराने के लिये लेते हैं। हाक।

जूभ*—संज्ञा स्त्री० [सं० युद्ध, प्रा० जुम्फ] युद्ध। लड़ाई। मगड़ा।
उ०—(क) पाई नाहिं जूक हठ कीन्दे। जे पावा से छागुहि चीन्दे।—जायसी। (ख) केने परा न लूटिहै सुष रे जीव अरुम्ह। कविर मॉड़ मैदान में करि इन्द्रिन सों जूम्ह।—कवीर।

जूम्हना।#—क्रि० अ० [सं० युद्ध वा हिं० जूम्ह] (१) लड़ना। (२) लड़ कर मर जाना। युद्ध में प्राण त्याग करना।
उ०—जूम्हे सकल सुभट करि करनी। बंधु समेत परयो नृप धरनी।—तुलसी।

जूट—संज्ञा पुं० [सं०] (१) जटा की गाँठ। जूड़ा। (२) लट। जटा। (३) शिव की जटा। (४) पटसन। (५) पटसन का बना बपड़ा।

जूटी—वि० (१) दे० “जूटन”। (२) दे० “जूटा”।

जूटन—संज्ञा स्त्री० [हिं० जूट] (१) वह खाने पीने की वस्तु जिसे किसी ने खाकर छोड़ दिया हो। वह भोजन जिसमें से कुछ श्रय किसी ने मुँह लगा कर खाया हो। किसी के आगे का बचा हुआ भोजन। उच्छिष्ट भोजन।

क्रि० प्र०—खाना।

(२) वह पदार्थ जिसका व्यवहार किसी ने एक दो बार कर लिया हो। मुक्त पदार्थ। दे० “जूटा”।

जूटा—वि० [सं० जुठ, प्रा० जुड] [स्त्री० जूठी] क्रि० जुठारना।
(१) (भोजन) जिसे किसी ने खाया हो। जिसमें किसी ने खाने के लिये मुँह लगाया हो। किसी के खाने से बचा हुआ। उच्छिष्ट। जैसे, जूटा अन्न, जूटा भात, जूठी पत्तल।
उ०—विनती राय प्रवीन की सुनिष्ट साह सुजान। जूठी पातरि भस्तर हैं धारी, चायस खान।

यिदोय—हिंदू आचार के अनुसार जूठा भोजन खाना निषिद्ध है।

(२) जिसका स्वयं मुँह अपना किसी जूठे पदार्थ से हुआ हो। जैसे, जूठा हाथ, जूठा धरतन।

मुहा०—जूठे हाथ से कुत्ता न मारना = बहुत अधिक क्रोध देना।

(३) जिसे किसी ने व्यवहार करके दूसरे के व्यवहार के अयोग्य कर दिया हो। जिसे किसी ने भोग करके अशुद्ध कर दिया हो। मुक्त। जैसे, जूठी स्त्री।

संज्ञा पुं० वह खाने पीने की वस्तु जिसे किसी ने खाकर छोड़ दिया हो। वह भोजन जिसमें से कुछ किसी ने मुँह लगा कर खाया हो। किसी के आगे का बचा हुआ भोजन। उच्छन। उच्छिष्ट भोजन।

क्रि० प्र०—खाना।—घाटना।

जूठी—वि० स्त्री० दे० “जूठा”।

जूड़ा—वि० [सं० जट] [क्रि० जुठाना, जुठवाना] ठंडा। शीतल।
संज्ञा पुं० दे० “जूठा”।

जूड़ा—संज्ञा पुं० [सं० जट] (१) सिर के बालों की वह गाँठ जिसे शिखा बालों को एक साथ बाँधे कर अपने सिर के ऊपर बांधती हैं। जटाधारी साधु लोग भी जिन्हें अपने बालों की सजावट का विशेष ध्यान नहीं रहता अपने सिर पर इस प्रकार बालों को बाँधे कर गाँठ बनाते हैं।

क्रि० प्र०—धाँचना।—खोलना।

(२) चोटी। कलगी। जैसे, कचूर वा बुलबुल का जूड़ा।
(३) पगड़ी का पिछला भाग। (४) सूँज धादि का पूला। मुँजारी। (५) पानी के घड़े के नीचे रखने की घास धादि की बाँधे कर बनाई हुई गड्ढी।

संज्ञा पुं० [हिं० जूट] [स्त्री० जूठी] बच्चों का एक रोग जिसमें सरदी के कारण साँस जल्दी जल्दी चलने लगती है और कौशल में साँस लेते समय गहड़ा पड़ जाता है। कभी कभी पेट में पीड़ा भी होती है और बच्चा सुस्त पड़ा रहता है।

जूड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० जूट] एक प्रकार का ज्वर जिसमें ज्वर अपने को पहले रोगी को जाड़ा मालूम होने लगता है और उसका शरीर घंटों काँपा करता है। यह ज्वर कई प्रकार का होता है। कोई नित्य आता है, कोई दूसरे दिन, कोई तीसरे दिन और कोई चौथे दिन आता है। नित्य के इस प्रकार के ज्वर को जूड़ी, दूसरे दिनवाले को शंतरा, तीसरे दिनवाले को तिसरा और चौथे दिनवाले को चौथिया कहते हैं। यह रोग प्रायः मलेरिया से उत्पन्न होता है। उ०—जो काहू की सुनहिं बड़ाई। स्वास लेहिं जनु जूड़ी आई।—तुलसी।

क्रि० प्र०—घाना।

संज्ञा स्त्री० [हिं० जुठना] जुटी।

जूत—संज्ञा पुं० [हिं० जूता] (१) जूता। (२) बड़ा जूता।

जूता—संज्ञा पुं० [सं० जुक्त, प्रा० जुत्] चमड़े धादि का बना हुआ पैरों के आकार का वह ढाँचा जिसे दोनों पैरों में लोग बाँधे धादि से बचने के लिये पहनते हैं। जोड़ा। पनही। पद-प्राप। उपाजह।

विशेष—जूता दो या दो से अधिक चमड़े के टुकड़ों को

एक में लीकर बनाया जाता है। वह भाग जो तलवे के नीचे रहता है तला कहलाता है। ऊपर के भाग को डपछा कहते हैं। तले का पिछला भाग पेंडू या पेंडू और अगला भाग नेक या ठोकर कहलाता है। उपर के वे धंरा जो पैर के दोनों ओर चपड़े बन्दे रहते हैं शीवार कहलाते हैं। वह चमड़े की पटी जो चपड़े के ऊपर दोनों शीवारों के जोड़ पर लगी रहती है लँगोट कहलाती है। देखी जूते कई प्रकार के होते हैं। जैसे, पंजाबी, दिल्लीवाल, सलीमशाही, गुरगाबी, घेतला, चट्टी इत्यादि। धंगरीबी जूतों के भी कई भेद हैं जैसे, बट, खिलपर, पंप इत्यादि।

महाभारत के अनुशासन पर्व में छाते और जूते के आधिपकार के संबंध में एक इत्याख्यान है। युधिष्ठिर ने भीष्म से पूछा कि श्राद्ध आदि कर्मों में छाता और जूता दान करने का जो विधान है उसे किसने निकाला। भीष्मजी ने कहा कि एक बार जमदग्नि ऋषि सोड़ा वरा धनुष पर बाण चढ़ा चढ़ा कर छोड़ते थे और इनकी पत्नी रेणुका फेंके हुए बाणों को ला ला कर बन्हें देती थी। धीरे धीरे दोषहर हो गई और कपड़े धूप पड़ने लगी। प्रकृति उसी प्रकार बाण छोड़ते गए। पतिव्रता रेणुका जब बाण लाने गई तब धूप से बसका सिर चकसाने लगा और पैर चलने लगे। वह शिथिल हो कर कुड़ कुड़ तक एक घुंघु की छाया के नीचे बैठ गई। इसके उपरांत वह बाणों को एकत्र करके ऋषि के पास लाई। ऋषि क्रुद्ध हो कर धार धार देर होने का कारण पूछने लगे। रेणुका ने सब व्यवस्था ठीक ठीक कह सुनाई। तब तो जमदग्नि जी सूर्य पर अत्यंत क्रुद्ध हुए और धनुष पर बाण चढ़ा कर सूर्य को मार गिराने पर तैयार हुए। इसपर सूर्य ब्राह्मण के वेद में ऋषि के पास आए और कहने लगे—“सूर्य ने आपका क्या विगाड़ा है जो आप उन्हें मार गिराने को प्रस्तुत हुए हैं। सूर्य से लोक का कितना उपकार होता है।” जब इसपर भी ऋषि का श्रोत्र शांत न हुआ तब ब्राह्मण वेदधारी सूर्य ने कहा कि “सूर्य तो सदा वेग के साथ चलते रहते हैं। आपका लक्ष्य ठीक कैसे बैठेगा” ऋषि ने कहा कि “जब मध्याह्न में कुछ घण विभ्राम के लिये वे ठहर जाते हैं तब मैं माहंगा”। इसपर सूर्य ऋषि की शरण में आए। तब ऋषि ने कहा कि “धृष्टा ! अब कोई ऐसा उपाय बतलाओ जिसमें हमारी पंजरी के मार्ग में धूप का फट न हो।” इस पर सूर्य ने एक जोड़ा जूता और एक छाता देकर कहा कि मेरे ताप से सिर और पैर की रक्षा के लिये वे दोनों पदार्थ हैं, इन्हें आप प्रदक्ष करें।” तब से छाते और जूते का दान बढ़ा फलदायक माना जाने लगा।

धा०—जूताखोर।

मुहा०—जूता उठाना = मारने के लिये जूता हाथ में लेना। जूता

मारने के लिये तैयार होना। (किसी का) जूता उठाना = (१) किसी का दाखल करना। किसी की हानि से हानि देना करना। (२) लुशामद करना। चापझी करना। जूता बछलना या चलना = (१) जूतों से मार पीट होना। (२) छड़ई दंगा होना। मगड़ा होना। जूता खाना = (१) जूतों की मार खाना। जूतों का प्रहार सहना। (२) बुरा भला सुनना। ऊँचा नीचा सुनना। तिरस्कृत होना। जूता गाँठना = (१) फटा हुआ जूता धीना। (२) चमार का काम करना। नीच काम करना। जूता घाटना = अपनी प्रतिया का प्यान न रख कर दूसरे की शुश्रूषा करना। लुशामद करना। चापझी करना। जूता जड़ना = जूता मारना। जूता देना = जूता मारना। जूता पड़ना = (१) जूतों की मार पड़ना। उपनाह प्रहार होना। (२) मुँह तोड़ जवाब मिलना। किसी अनुचित बात का कडा और सममेदी उत्तर मिलना। ऐसा उत्तर मिलना कि फिर कुछ कहते सुनते न बने। (३) घाटा होना। मुकसान होना। हानि होना। जैसे, बैठे बैठे १० रुपया का जूता पड़ गया। जूता पहनना = (१) जूता पैर में डालना। (२) जूता माल लेना। जूता पहनाना = (१) दूसरे के पैर में जूता डालना। (२) जूता माल ले देना। जूता खरीद देना। जूता धरसना = दे० “जूता पड़ना (१)।” जूता बैठना = जूते की मार पड़ना। दे० “जूता पड़ना।” जूता मारना = (१) जूते से मारना। (२) मुँह तोड़ जवाब देना। किसी अनुचित बात का ऐसा कडा उत्तर देना कि दूसरे से फिर कुछ कहते सुनते न बने। जूता लगना = (१) जूते की मार पड़ना। (२) मुँह तोड़ जवाब मिलना। (३) किसी अनुचित कार्य का बुरा फल प्राप्त होना। जैसा बुरा काम किया हो तत्काल वैसा ही बुरा फल मिलना। किसी अनुचित कार्य का तुरंत ऐसा परिणाम होना जिससे उसके करनेवाले को दण्डित होना पड़े। जूता लगाना = जूते से मारना। जूते का झारमी = ऐसा श्राद्धमी जो विना जूता खाए टिक काम न करे। विना कटोर दंड वा शासन के उचित व्यवहार न करनेवाला मनुष्य। जूते से खपर लेना = जूते से मारना। जूतों दाख बैठना = आपस में छड़ई मगड़ा होना। परस्पर वैर विरोध होना। अनपन होना। जूतों से खाना = जूते से मारना। जूते लगाना। जूते से मारने के लिये तैयार होना। जूतों से बात करना = जूते से मारना। जूता लगाना।

जूताखोर—वि० [हि० जूता + खोर] (१) जो जूता खाया करे। (२) जो निर्लज्जता के कारण मार या गाली की कुछ परवाह न करे। निर्लज्ज। वैह्या।

जूती—संज्ञा पुं० [सं०] वेग। तेजी।

जूती—संज्ञा स्त्री० [हि० जूता] (१) कियों का जूता। (२) जूता।

धा०—जूतीकारी। जूतीखोर। जूतीखुशई। जूती पैजार।

मुहा०—जूतियाँ उठाना = नीच देना। दाखल करना।

जूती की नोक पर मारना = कुछ न समझना । (कुछ समझना । कुछ परवाह न करना । जैसे, ऐसा खयाल मैं जूती की नोक पर मारता हूँ । जूती की नोक से = बला से । कुछ परवाह नहीं । (खि०) । उ०—यह यहाँ नहीं धाती है तो मेरी जूती की नोक से । जूती के धाराय = अर्थ त तुच्छ । बहुत नाचीज़ । (किसी की) जूती के धाराय न होना = किसी की अपेक्षा अर्थ त तुच्छ होना । किसी के सामने बहुत नाचीज़ होना । (सुयामद वा नम्रता से भी कमी कमी लोग इस धाव्य का प्रयोग करते हैं । जैसे, मैं तो धार की जूती के धाराय भी नहीं हूँ) । जूतियाँ खाना = (१) जूतियों से पिटना । (२) जैँका नीचा मुनना । भला बुरा मुनना । कड़ी बातें सहना । (३) अपमान सहना । जूतियाँ गाटना = (१) फटी हुई जूतियों को सीना । (२) चमार का काम करना । अर्थ त तुच्छ काम करना । निकट व्यवसाय करना । जूतियाँ चटकाते फिरना = (१) वीनता वरा इधर उधर मारा मारा फिरना । दुर्दशाग्रस्त होकर घूमना । (फटे पुराने जूते को घसीटने से चट चट शब्द होता है) । (२) व्यर्थ इधर उधर घूमना । जूती चटना = खुसामद करना । चान्दशी करना । जूतियों दाल बँटना = आपस में छड़ाई मगड़ा होना । वैर विरोध होना । फूट होना । जूती देना = जूती से मारना । जूतियाँ पड़ना = जूतियों की मार पड़ना । जूती पर जूती चढ़ना = यात्रा का आराम दिलाई पड़ना । (जब जूती पर जूती चढ़ जाती है तब लोग यह शकुन समझते हैं कि जिसकी जूती है उसे कहीं यात्रा करनी होगी) । जूती पर मारना = दे० “जूती की नोक पर मारना” । जूती पर रख कर रोटी देना = अपमान के साथ खाने पीने को देना । निपटार के साथ रखना या पालना । जूती पहनना = (१) जूती में पैर बाधना । (२) नया जूता मेल लेना । जूती पहनाना = (१) दूधरे के पैर में जूती बाधना । (२) नया जूता मेल ले देना । जूतियाँ बागल में बंधाना = जूतियों उतार कर भागना जिसमें पैर की आहट न सुनाई दे । चुनचाप भागना । धिरे से चलावना बनना । लिखकना । जूतियाँ मारना = (१) जूतियों से मारना । (२) कड़ी बातें कहना । अपमानित करना । तिरस्कृत करना । (३) कड़ा उत्तर देना । हुँह बोल जवाब देना । जूतियाँ लगाना = जूतियों से मारना । जूतियाँ सीधी करना = अर्थ त नीच सेवा करना । दाखल करना । जूती से = दे० “जूती की नोक से” ।

जूतीकारी-संज्ञा स्त्री० [हि० जूती + कार] जूतों की मार ।

कि० प्र०—करना ।—होना ।

जूतीखोर-वि० [हि० जूती + खोर] (१) जो जूतों की मार धाया करे । (२) जो निर्लेजता से मार और गाली की परवाह न करे । निर्लेज । बेहया ।

जूतीछुपाई-संज्ञा स्त्री० [हि० जूती + छुपना] (१) विवाह में एक रसम । धियाँ कोहवार से घर के चक्के सामने धर का जूता छिपा देती हैं और तब तक नहीं देतीं जब तक वह जूते के लिये कुछ नेग न दे । यह काम प्रायः वे छियाँ करती हैं जो माते में धूप की यहिन होती हैं । (२) वह नेग जो जूतों को घर जूते छुपाई में देता है ।

जूती पैजार-संज्ञा स्त्री० [हि० जूती + फा० पैजार] (१) जूतों की मार पीट । पील घण्ट । (२) लड़ाई दंगा । कहर । मगड़ा ।

कि० प्र०—करना ।—होना ।

जूथ-संज्ञा पुं० [हि० “जूथ”]

जूना-संज्ञा पुं० [सं० युवन् = पथ्य] समय । काल । पेड़ा ।

संज्ञा पुं० [सं० जूथ = एक वृष] मूय । घास । तिनका । उ०—का छति खाम जूल धनु तोरे । देखा राम नये के मोरे ।—सुखती ।

संज्ञा पुं० [सं०] धंगरेजी पथ्य का छटा महीना जो जेठ के लगभग पड़ता है ।

संज्ञा पुं० [सं० यवन्] एक जाति जो सिंधु और सतलज के बीच के प्रदेशों में रहती है और गाय, बैल, ऊँट आदि पालती है ।

जूना-संज्ञा पुं० [सं० जूथ = एक वृष] (१) घास वा घूस की बट कर पनाई हुई रस्सी जो बोझ आदि बांधने के काम में प्रयुगी है । (२) घास घूस का लच्छा या पूजा जिससे बरतन मँजते या मजते हैं । इसका उ. बरतन ।

जूनियर-वि० [सं०] काल क्रम से पिछला । जो पीछे का हो । छोटा ।

जूप-संज्ञा पुं० [सं० दृत्, प्रा० जूष वा जूष] (१) जूषा । सुत । उ०—जैसे, थप रूप, विन्दु गाँठ धन जूप की, ज्यों हीन सुणु आया है न हीय जब पान की ।—हनुमान । (२) विवाह में एक रीति जिसमें घर और धूप परस्पर जूषा खेलेते हैं । पास । उ०—कर कँपे कंगन नहि टूटे । खेलत जूप युगल सुवतिन में हारे रघुपति जीति जनक की ।—सूर ।

संज्ञा पुं० दे० “जूप” ।

जूमाना-कि० अ० [सं० जमा] इकट्ठा होना । जुटना । एकत्र होना । उ०—(क) लागो हुतो हाव एक मदन धनी को जहाँ गोपिन को बुंद रखो जूमि चहुँ घाई में ।—देव । (ख) गिरधर दास भूमि जूमि धामु घदि, बाज लैं दारान लोहि परन दयाय के ।—नोपाल ।

जूर-संज्ञा पुं० [हि० जुरा] जोड़ । संघ । उ०—दान आदि सब दरब क जूर । दान लाभ होह धवि मूर ।—जायसी । जूरना-कि० सं० [हि० जेठना] जोड़ना । उ०—अवध में संतन

रुह दूरि.....बंशु सखा शुभ कहत राम को नाते बहुते-
क जूरी।—देव स्वामी ।

जूरा—संज्ञा पुं० दे० 'जूड़ा' ।

जूरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० जुरा] (१) घास पत्तों या टहनियों का एक में बँधा हुआ छोटा पल्ला । जुट्टी । जैसे, तमाहू की जूरी । (२) सूत आदि के नए कपड़े जो बँधे निकलते हैं । (३) एक प्रकार का पीछों के नए बँधे हुए कपड़ों को गीले येवन में खपेट कर धी में तलने से बनता है । (४) एक प्रकार का पीछा या झाड़ू जिससे चार बनता है । यह पीछा सुगरात करवाँची आदि के पत्तों दलदलों में होता है ।

संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार के पंच जो अद्राक्षत में जन के साथ बँट कर सुकदमों के फँसले में सहायता देते हैं ।

जूरा—संज्ञा पुं० दे० 'जूरा' ।

जूरा—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का नृत्य ।

पर्याय—उलूक । डलप ।

जूरा—संज्ञा पुं० [सं०] देवधान्य ।

जूरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वेग । (२) आदित्य । (३) देह । (४) मझा । (५) क्रोध । (६) क्रियों का एक रोग । वि० (१) वेगयुक्त । वेगयान् । तेज् । (२) द्रवित । गला हुआ । (३) ताप देनेवाला । (४) स्तुति करने में कुशल ।

जूरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] ऊपर ।

जूरा—संज्ञा पुं० [सं०] (१) किसी उवाली या पकाई हुई पल्लु का पानी । भोल । रसा । (२) उवाली या पकाई हुई दाल का पानी ।

जूरा—संज्ञा पुं० [सं०] धाय नामक पेड़ जो फूलों के लिये खगाया जाता है ।

जूरा—संज्ञा पुं० [सं० जूर] (१) मूँग धरहर आदि की पत्ती हुई दाल का पानी जो प्रायः रोगियों के पच्य रूप में दिया जाता है ।

मुहा०—जूरा देना = उवाली हुई दाल का पानी बिना । जूस लेना = (१) उवाली हुई दाल का पानी पीना । (२) रोगी का कुछ खराक होकर खाने पीने लायक होना । (३) उवाली हुई चीज का रस । रसा ।

वि० प्र०—काढ़ना ।—निकाढ़ना ।

संज्ञा पुं० [सं० जुरा, सं० जूर] युगम संख्या । सम संख्या । ताक का डलवा । जैसे, २, ४, ६, ८ ।

श्या०—जूरा ताक ।

जूरा ताक—संज्ञा पुं० [हिं० जूर + का० एक] एक प्रकार का जूरा जिसे लकड़के खोलते हैं ।

विद्योय—एक लकड़का अपनी सुट्टी में दिया कर कुछ कौड़ियाँ ले जाता है और दूसरे से पूछता है कि 'जूरा कि ताक ?'

अर्थात् कौड़ियों की संख्या सम है वा विषम । यदि दूसरा लकड़का ठीक ठीक बूक लेता है तो जीत जाता है और यदि नहीं बूकना तो उसे हार कर अपनी ही कौड़ियाँ खुफानेवाले को देनी पड़ती हैं जितनी उसकी सुट्टी में होती हैं ।

जूरा—संज्ञा स्त्री० [हिं० जूर] यह गाढ़ा लकीला रस जो हँच के पकते रस को पुड़ के रूप में टोस होने के पदले उतार कर रख देने से उसमें से छूटता है । खाँड़ का पसेव । चोटा ।

जूरा—संज्ञा पुं० [सं० जूर, प्रा० जूर] सुँट । समूह ।

जूरा—संज्ञा पुं० [हिं० जीव + हर ?] राजपूतों की एक प्रथा जिसके अनुसार दुर्गों में शत्रु का प्रवेश निश्चित जान बिर्या चिन्ता पर बँट कर जल जाती थी और पुरुष दुर्गों के बाहर लड़ने के लिये निकल पड़ते थे ।

विद्योय—दे० 'जीहर' ।

जूरी—संज्ञा स्त्री० [सं० जूरी] (१) एक फँसनेवाला झाड़ू या पीछा जो बहुत पना होता है और जिसकी पत्तियाँ छोटी तथा ऊपर नीचे चुकीली होती हैं । यह हिमाञ्चल के शंखल में घास से आप उगता है । यह पीछा फूलों के लिये दगीचों में लगाया जाता है । इसके फूल सफेद चमेली में मिलते जुलते पर बहुत छोटे होते हैं । सुगंध इसकी चमेली ही की तरह हलकी मीठी और मनभावनी होती है । ये फूल घरसात में लगते हैं । जूरी को कहीं कहीं पहाड़ी चमेली भी कहते हैं । पर जूरी का पीछा देखने में चमेली ने नहीं मिलता, कुँद से मिलता है । चमेली की पत्तियाँ सीधे को देनों और पत्तियों में लगती हैं पर इसकी नहीं । जूरी के फूल का अंतर बनता है । (२) एक प्रकार की आतरायानी जिसके छूटने पर छोटे छोटे फूल से झड़ते दिखाई पड़ते हैं ।

संज्ञा स्त्री० [सं० जूर] एक प्रकार का कौड़ा जो सम, मटर आदि की पत्तियों में खगता है । जूरी ।

जूरा—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० जूरा । वि० जूरक] (१) जैमाई । जयुहाई । (२) धालस्य ।

जूरा—संज्ञा पुं० [सं०] जैमाई होनेवाला ।

संज्ञा पुं० (१) हृद गणों में एक । (२) एक अथ जिनके पल्लवों से शत्रु निद्रामयल होकर लड़ना छोड़ जमाई कोने-लगते, मो जाते या शिथिल पड़ जाते थे ।

विद्योय—जप राम ने साड़का भादि को मारा था तत्र विधामिय ने प्रसन्न होकर मंत्र सहित यह अथ बहूँ दिया था । विधामिय को यह अथ धार तपस्या के उपासक भगिन से प्राप्त हुआ था ।

जूरा—संज्ञा पुं० [सं०] जैमाई केना ।

जूरा—संज्ञा पुं० [सं०] (१) जैमाई लेता हुआ या जैमाई कोने-पाला । (२) प्रकारमान ।

जूरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) जैमाई । (२) धालस्य का प्रमाद से बयस जड़ता । (३) एक शक्ति का नाम ।

जृमिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) शालस्य । (२) जृभा । जैभाई । (३) एक रोग जिससे मनुष्य शिथिल पड़ जाता है और बार बार जैभाई खिचा करता है । यह रोग निद्रा के अथवा रोष करने से उत्पन्न होता है ।

जृमिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्लापण लता ।

जृमित—वि० [सं०] (१) वेष्टित । (२) प्रवृद्ध । (३) स्फुटित ।
संज्ञा पुं० [सं०] रंभा । (२) स्फोटन । (३) खियों की ईहा वा इच्छा ।

जैगरा—संज्ञा पुं० [दे०] उई, सूँग, मोथी, ज्वार, धात्रे आदि के डंठल जो दाना निकाल लेने के बाद रोप रह जाते हैं । जैगर ।

जैताफ—संज्ञा पुं० [सं०] रोगी के शरीर में पसीना लाकर दूषित श्वास और विकार आदि निकालने की एक क्रिया । भफारा ।

जैवना—क्रि० सं० [सं०] भोजन । भोजन करना । खाना । भक्ष्य करना ।

† संज्ञा पुं० भोजन । खाने का पदार्थ । वह जो कुछ खाया जाय ।

जैवनार—संज्ञा स्त्री० दे० “जैवनार” ।

जैवाना—क्रि० सं० [हिं०] जैवना । भोजन करना । खिलाना । जिमाना ।

जै*†—सर्व० [सं०] ‘जो’ का बहुवचन । दे० ‘जो’ ।

जै*†—सर्व० दे० ‘जो’ ।

जैउ, जैऊ*†—सर्व० दे० ‘जो’ ।

जैठ—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) समूह । घूय । वेर । (२) रोडियों की सही । (३) मिट्टी के बर्तनों का वह समूह जिसमें वे एक दूसरे के ऊपर रखे हैं । (४) गोद । कोरा ।

जैठी—संज्ञा स्त्री० [अ०] नदी या समुद्र के किनारे पर घना हुआ वह बड़ा चवूतरा जिस पर से जहाजों का माल चढ़ाया और उतारा जाता है ।

जैठ—संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक चांद्र मास जो बैसाख और श्रावण के बीच में पड़ता है । जिस दिन इस मास की पूर्णिमा होती है, उस दिन चंद्रमा ज्येष्ठा नक्षत्र में रहता है, इसी से इसे ज्येष्ठ या जैठ कहते हैं । यह श्रावण नक्षत्र का पहला और संवत् का तीसरा मास है । सौर मास के हिसाब से जैठ घृष संक्रांति से श्रावण होकर मिथुन संक्रांति तक रहता है । ज्येष्ठ । (२) [स्त्री०] जैठानी । पति का बड़ा भाई । भसुर । वि० धमज । बड़ा । घ०—जैठ स्वामि सेवक लघु गाई । यह दिनकर शुक्ल रीति सुहाई—तुलसी ।

जैठारा—वि० दे० “जैठ” (वि०) ।
जैठरैयत—संज्ञा पुं० [हिं०] जैठ + अ० रैयत । गाँव का मुखिया, जिसकी सम्मति के अनुसार गाँव के सब लोग कार्य करते हैं ।

जैठवा—संज्ञा पुं० [हिं०] जैठ । एक प्रकार की कपास जो जैठ में तैयार होती है । इसे मुखवा भी कहते हैं ।

विदीय—दे० ‘मुखवा’ ।

जैठा—वि० [सं०] ज्येष्ठ । [स्त्री०] जैठा । (१) धमज । बड़ा । (२) सय से उत्तम । सय से श्रेष्ठ ।

मुहा०—जैठा रंग = वह रंग जो कई बार की रँगई में सय से श्रंतिम बार रँग जाय ।

जैठाई—संज्ञा स्त्री० [हिं०] जैठा । जैठ होने का भाव या दशा । बड़ाई । जैठापन ।

जैठानी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] जैठ । जैठ की स्त्री । पति के बड़े भाई की स्त्री ।

जैठी—वि० [हिं०] जैठ + ई (प्रत्य०) । जैठ संबंधी । जैठ का । जैसे, जैठी धान, जैठी कपास ।

संज्ञा स्त्री० एक प्रकार की कपास जो जैठ में पकती और फूटती है । इसे बार में टिकड़ी या बूड़ी और काठियावाड़ में गेंगी कहते हैं ।

संज्ञा पुं० योरो नाम का धान जो चैत में नदियों के किनारे बोया और जैठ में काटा जाता है ।

जैठीमधु—संज्ञा स्त्री० [सं०] यथेष्ट । सुलेठी ।

जैठुआ—वि० दे० “जैठी” ।

जैठीत, जैठीता—संज्ञा पुं० [सं०] ज्येष्ठ + पुत्र । [स्त्री०] जैठीती । जैठ का लड़का । पति के बड़े भाई का पुत्र । जैठानी का पुत्र ।

जैठवाहा—संज्ञा पुं० दे० “जैठवार” ।

जैठव्य—वि० [सं०] जो जीता जा सके । जैय ।

जैठा—संज्ञा पुं० [सं०] जैठ । (१) जीतनेवाला । विजय करनेवाला । विजयी । (२) विष्णु ।

जैठारा—संज्ञा पुं० दे० “जैठा” ।

जैठिक*†—क्रि० वि० [हिं०] जितना । जितना । जिस कदर । जिस मात्रा में ।

जैठे*†—वि० [सं०] यः, यस् । जितने । जिस कदर ।

जैठे*†—क्रि० वि० [सं०] यः, यस् । जितना । जिस कदर ।

जैना—क्रि० सं० दे० “जोना” ।

जैन्यायसु—संज्ञा पुं० [सं०] (१) ईंद्र । (२) धर्मि ।

जैप्लिन—संज्ञा पुं० [जर्मन०] एक विशेष प्रकार का बहुत बड़ा हवाई जहाज जिस का आविष्कार जर्मनी के कार्टे जैप्लिन नामक एक साहय ने किया था । इसका ऊपरी भाग सिंगार के आकार का लंबोत्तरा होता है जिसके धारों में गैस से भरी हुई बहुत बड़ी बड़ी बल्लियाँ होती हैं । बड़े लंबोत्तरे चौखटे में नीचे की ओर एक या दो संदूक लटकते हुए लगे रहते हैं जिनमें आदमी बँसते हैं और तोपें रली जाती हैं । सय प्रकार के थाकाशयानों से इसका आकार बहुत बड़ा होता है ।

जैब—संज्ञा पुं० [फ़ा०] पढ़ाने के कण्ठों (कोठ, डुरते, कमीज, बंगे आदि) में बगल में या सामने की ओर लगी हुई वह छोटी

धेली या चकती जिसमें स्माल, कागज आदि चीजें रखते हैं। रखी। खरीता। पाकेटें।

क्रि० प्र०—कतरना।—काटना।

घो०—जेवकट। जेवखर्च। जेवघड़ी।

संज्ञा स्त्री० [फ्रा० जेव + हि० शोभा] शोभा। सौंदर्य। फवन

मुद्दा०—जेव देना = शोभित होना।

घो०—जेवदार = तर्जदार। खच्छा। सुंदर।

जेवकट—संज्ञा पुं० [फ्रा० जेव + हि० काटना] वह मनुष्य जो चोरी से दूसरों के जेव से रुपया पैसा लेने के लिये जेव काटता हो। जेवकतरा। गिरहकट।

जेवकतरा—संज्ञा पुं० दे० “जेवकट”।

जेवखर्च—संज्ञा पुं० [फ्रा०] वह धन जो किसी को निज के खर्च के लिये मिलाता हो और जिसका हिसाब लेने का किसी को अधिकार न हो। भोजन वस्त्र आदि के व्यय से भिन्न, निज का और अपनी खर्च।

जेवघड़ी—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० जेव + घड़ी] वह छोटी घड़ी जो जेव में रखी जाती है। जेवीघड़ी। घाच।

जेवदार—वि० [फ्रा०] सुंदर। शोभायुक्त।

जवरा—संज्ञा पुं० [फ्रा०] जवरा नाम का जंगली जानवर।

दे० “जवरा”।

जेवी—वि० [फ्रा०] (१) जेव में रखने योग्य। जो जेव में रखा जा सके। जैसे, जेवी घड़ी। (२) बहुत छोटा।

जेमन—संज्ञा पुं० [सं०] भोजन करना। जीमना।

जेय—वि० [सं०] जीतने योग्य। जो जीता जा सके।

जेर—संज्ञा स्त्री० [दे०] अर्धवत्। यह भिन्ही जिसमें गर्भगत बालक रहता और पुष्ट होता है।

वि० [फ्रा० जेर] [संज्ञा जेरतरी] (१) परास्त। पराजित।

(२) जो बहुत दिक किया जाय। जो बहुत तंग किया जाय।

संज्ञा पुं० [दे०] एक पेड़ जो सुंदरवन में अधिकता से होता है। इसके धार की लकड़ी लाठी लिये सफेद होती है और मजबूत होने के कारण इसकी लकड़ी से सेज, कुर्सी, अरमारी इत्यादि बनती हैं।

जेरपाई—संज्ञा स्त्री० [फ्रा०] (१) जिये के पहनने की जूती। स्त्रीपर। (२) साधारण जूता।

जेरबंद—संज्ञा पुं० [फ्रा०] घोड़े की मोहरी में लगा हुआ वह कपड़ा या चमड़े का तम्बा जो तंग में फैलाया जाता है।

जेरबाद—वि० [फ्रा०] (१) जो किसी विशेष आपत्ति के कारण बहुत तंग और दुखी हो। आपत्ति या दुःख के बोझ से बहुत दया हुआ। (२) छति-मस्त। जिसकी बहुत हानि हुई हो।

जेरवारी—संज्ञा स्त्री० [फ्रा०] (१) आपत्ति या छति के कारण

बहुत दुखी होने की क्रिया। तंगी। (२) हैरानी। परेशानी।

क्रि० प्र०—उग्रना।—सहना।

जेरिया—संज्ञा स्त्री० दे० “जेरी (२) और (३)”

जेरी—संज्ञा स्त्री० [फ्रा०] (१) दे० “जेर”। (२) वह जाड़ी जो घरवाड़े बँटीली भाड़ियाँ इत्यादि हटाने या दबाने के लिये सदा अपने पास रखते हैं। उ०—उतहि सला कर जेरी लीगहे गारी देहिं सकुच तोरी की। इतहि सखी कर पाँस लिये बिच मार मची भोरा भोरी की।—सूर। (३) खेती का एक औजार जो फरदे के आकार का काठ का होता है। इसका व्यवहार अन्न दबाने के समय पुद्गाल हटाने में होता है। सिंचाई के लिये खींचने में भी यह काम में आता है।

जेल—संज्ञा पुं० [फ्रा०] वह स्थान जहाँ राज्य द्वारा दंडित अपराधी आदि कुछ निश्चित समय के लिये रक्ते जाते हैं। कारागार। बंदीगृह

मुद्दा०—जेल काटना या भोगना = जेल में रह कर दंड भोगना।

संज्ञा पुं० [फ्रा० जेल] जंजाल। हैरानी या परेशानी का काम। उ०—खेचल खेल सहैलिन में पर खेल नयेली को जेल हो लागीं।—मतिराम।

जेलखाना—संज्ञा पुं० [फ्रा०] कारागार।

जिरोप—दे० “जेत”।

जेलर—संज्ञा पुं० [फ्रा०] जेलखाने का अध्यक्ष। जेल का थफसर।

जेलट्रीन—संज्ञा स्त्री० [फ्रा०] जानवरों विशेषतः कई प्रकार की मछलियों के मांस हड्डी खाल आदि को उबाल कर तैयार की हुई एक प्रकार की बहुत साफ और बढ़िया सरेस जिसका व्यवहार फोरेम्राफी और चिट्ठियों आदि की नकल करने के लिये पैड बनाने में होता है। यह पशुओं को खिलाई भी जाती है, पर इसमें पोषक द्रव्य बहुत ही थोड़े होते हैं। खूब साफ की हुई जेलट्रीन से आँपों की गोलियाँ भी बनाई जाती हैं।

जेली—संज्ञा स्त्री० [हिं० जेरी] घास वा भूसा इकट्ठा करने का औजार। पाँचा।

जेवड़ी—संज्ञा स्त्री० दे० “जेवरी”।

जेवना—क्रि० सं० दे० “जीमना”।

जेवनार—संज्ञा स्त्री० [हिं० जेवना] (१) बहुत से मनुष्यों का एक साथ बैठ कर भोजन करना। भोज। (२) रसोई। भोजन।

जेवर—संज्ञा पुं० [फ्रा०] घातु या रत्नों आदि की बनी हुई वह वस्तु जो शोभा के लिये रंगों में पहनी जाती है। गहना। आभूषण। अर्धकार। आभरण।

जेवर-संज्ञा पुं० [देव०] एक प्रकार का महोत्सवकी जिसे जधी वा सिंघमोनाल भी कहते हैं। यह शिमले में बहुत पाया जाता है।

संज्ञा स्त्री० दे० "जेवरी"।

जेवरा-संज्ञा पुं० दे० "ज्येरा"।

जेवरी-संज्ञा स्त्री० [सं० जीवा] रस्ती।

जेठ-संज्ञा पुं० [सं० ज्येष्ठ] (१) जेठ मास। (२) जेठ। पति का बड़ा भाई।

वि० [सं० ज्येष्ठ] अग्रज। जेठा। बड़ा।

जेठा-संज्ञा स्त्री० [सं० ज्येष्ठा] दे० "ज्येष्ठा"।

जेह-संज्ञा स्त्री० [फ्रा० जेह = चिन्हा। वि० सं० ज्या] (१) कमान की डोरी में वह स्थान जो शर्राह के पास लगाया जाता है और जिसकी सीध में निशान रहता है। चिह्ना। उ०—तिय कल कमनैती पढ़ी, विन जेह भौंह कमान। चित चल येधे चुकति नहि, यंक त्रिलोकनि वान।—विहारी। (२) दीवार में नीचे की ओर दो सीन हाथ की उँचाई तक पलस्तर या मिट्टी आदि का वह लेप जो दीवार के शेष भाग के पलस्तर या लेप से कुछ अधिक मोटा और उसके तल से अधिक उभरा हुआ होता है। उ०—गदा, पदम थी चक्र संख शक्ति, पंचाक्षर सूचक समुष्मनि धर, इन पांचन की गति हरि के यस यही जात की जेह। भस्म गंग लोचन थहि उमरू पंच-तच धर भौरू, हर के थस पांचउ यह पँवरू जिनसे पिंड डरेह।—देवस्वामी।

फि० प्र०—उत्तरना।—निकालना।

जेहड़-संज्ञा स्त्री० [हिं० जेत + घट] एक पर एक रखे हुए पानी से भरे हुए बहुत से घड़े।

जेहन-संज्ञा पुं० [ज०] [वि० जहीन] बुद्धि। धारणाशक्ति।

जेहरा-संज्ञा स्त्री० [?] पैर में पहनने का धुँधुरदार पात्रोव नाम का जेवर। उ०—(क) पग जेहरि विद्धियन की भूमकनि धलत परपर वाजत।—सूर। (ख) पग जेहरि जंगीरनि जकराथी यह उपाया कलु पावै।—सूर। (ग) शमिल सुमिल सीङ्गी मदन सदन की कि जगामरै पग युग जेहरि जाय की।—केराव।

जेहरि-संज्ञा स्त्री० दे० "जेहर"।

जेहली-संज्ञा स्त्री० [फ्रा० जेहली] [वि० जेहली] हठ। जिद।

संज्ञा पुं० दे० "जेल"।

जेहलखाना-संज्ञा पुं० दे० "जेलखाना" या "जेल"।

जेहली-वि० [फ्रा० जेहल] जो सम्मानने से भी किसी बात की भलाई सुराई न समझे और अपनी हठ न छोड़े। हठी। जिदी।

जेहि-संज्ञा पुं० [सं० ज्येष्ठ] जिसको। उ०—जेहि सुमिरत सिधि होय, गणनायक करिय वदन।—तुलसी।

जैता-संज्ञा पुं० [सं० जयती] जैत का पेड़।

जै-संज्ञा स्त्री० दे० "जय"।

वि० [सं० जयत, प्रा० जाव] जितने। जिस संख्या में।

जैकरी-संज्ञा पुं० दे० "जयकरी"।

जैकार-संज्ञा स्त्री० दे० "जयकार"।

जैगीपय-संज्ञा पुं० [सं०] योग शास्त्र के वेत्ता एक मुनि का नाम।

विशेष—महाभारत में इनकी कथा विस्तार से लिखी है। अस्तित्व देवल नामक एक ऋषि आदित्य तीर्थ में निवास करते थे। एक दिन उनके यहाँ जैगीपय नामक एक ऋषि आए और उन्होंने के आश्रम में निवास करने लगे। थोड़े ही दिनों में जैगीपय योग साधन द्वारा परम सिद्ध हो गए और अस्तित्व देवल सिद्धि लाभ न कर सके। एक दिन जैगीपय कहीं से घूमते फिरते भिक्षु के रूप में देवल के पास आकर बैठे। देवल यथाविधि उनकी पूजा करने लगे। जब बहुत दिन पूजा करते हो गए और जैगीपय अटल भाव से बैठे रहे कुछ योगे चले नहीं तब देवल ऊब कर आकाश पथ से न्तान करने चले गए। समुद्र के किनारे उन्होंने जाकर देखा तो जैगीपय को न्तान करते पाया। आश्चर्य से चकित होकर देवल जवरी से आश्रम को लौट गए। वहाँ पर उन्होंने जैगीपय को उसी प्रकार अटल भाव से बैठे पाया। इस पर देवल आकाश मार्ग में जाकर उनकी गति का निरीक्षण करने लगे। उन्होंने देखा कि आकाशचारी अनेक सिद्ध जैगीपय की पूजा कर रहे हैं, फिर देखा कि वे गाना लोको में स्वेच्छापूर्वक भ्रमण कर रहे हैं। ब्रह्मलोक, गोलोक, पतिव्रतलोक इत्यादि तक तो देवल पीछे पीछे गए पर इसके धारो वे न देख सके कि जैगीपय कहाँ गए। सिद्धों से पूछने पर मालूम हुआ कि वे सारस्वत ब्रह्मलोक में गए हैं जहाँ कोई नहीं जा सकता। इस पर देवल घर लौट आए। वहाँ जैगीपय को उर्षों का लोको बैठे देख उनके आश्चर्य का डिकाना न रहा। इसके उपरांत देवल जैगीपय को शिष्य हुए और उनसे योग शास्त्र की शिक्षा ग्रहण करके सिद्ध हुए।

जैकार-संज्ञा स्त्री० दे० "जयजयकार"।

जैजयती-संज्ञा स्त्री० [सं० जयजयती] भैरव राग की एक रागिनी जो सवेरे गाई जाती है।

जैठक-संज्ञा पुं० [सं० जय + कक] एक प्रकार का बड़ा-ढोल। विजय ढोल। जंगी ढोल।

जैत-संज्ञा स्त्री० [सं० जयति] विजय। जीत। फतह।

संज्ञा पुं० [अ०] (१) जैतून वृक्ष । (२) जैतून की लकड़ी ।
 संज्ञा पुं० [सं० अव्यंती] अगस्त की रात का एक पेड़ जिसमें
 पीले फूल और लंबी लंबी फलियाँ लगती हैं । इन फलियों
 की तरकारी होती है । पत्तियाँ और बीज दवा के काम में
 आते हैं ।

जैतपत्र—संज्ञा पुं० [सं० अव्यंति + पत्र] जयपत्र । जीत की
 सनद ।

जैतवार—संज्ञा पुं० [हिं० जैत + वार] जीतनेवाला । विजयी ।
 विजेता ।

जैतधरी—संज्ञा स्त्री० [सं० अव्यंतिश्री] एक रागिनी ।

जैती—संज्ञा स्त्री० [सं० अव्यंतिजा] एक प्रकार की घास जो रवी की
 फसल में खेतों में आप से आप उगती है ।

जैतून—संज्ञा पुं० [अ०] एक सदा बहार पेड़ जो अरब शाम आदि
 से लेकर युरोप के दक्षिणी भागों तक सर्वत्र होता है । इसकी
 डेढ़ाई अधिक से अधिक ४० फुट तक होती है । इसका
 आकार ऊपर गोलाई लिए होता है । पत्तियाँ इसकी तरफ
 की पत्तियों से मिलती जुलती पर उनसे छोटी होती हैं ।
 ये ऊपर की ओर हरी और नीचे की ओर कुछ सफेदी लिए
 होती हैं । फूल छोटे छोटे होते हैं और गुच्छों में लगते
 हैं । फल कचरी के से होते हैं । परिधम की प्राचीन जातियाँ
 इसे पवित्र मानती थीं । रोमन और यूनानी विजेता इसकी
 पत्तियों की माळा निर में धारण करते थे । अरबवाले भी
 इसे पवित्र मानते थे जिससे मुसलमान लोग अब तक इसकी
 लकड़ी की तसवीह (माळा) बनाते हैं । इस पेड़ के फल
 और बीज दोनों काम में आते हैं । फल पकने पर नीलापन
 लिए काले होते हैं । कच्चे फलों का सुख्खा और अचार
 पड़ता है । धीलों से तेल निकलता है । लकड़ी भी सजावट
 के समान बनाने के काम में आती है । इसकी लकड़ी घूप से
 चिटकती नहीं ।

जैत्र—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० जैत्री] (१) विजेता । विजयी ।

या०—जैत्रय ।

(२) पारा । (३) औषध ।

जैत्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] अव्यंती वृक्ष । जैत का पेड़ ।

जैन—संज्ञा पुं० [सं०] (१) जिन का प्रवर्तित धर्म । भारत का
 एक धर्म संप्रदाय जिसमें अहिंसा परम धर्म माना जाता
 है और कोई ईश्वर या-सृष्टिकर्ता नहीं माना जाता ।

विशेष—जैन धर्म जिनता प्राचीन है ठीक ठीक महावीर का
 सकता । जैन ग्रंथों के अनुसार अंतिम तीर्थंकर महावीर वा
 वर्द्धमान ने ईसा से १२७ वर्ष पूर्व निर्वाण प्राप्त किया था ।
 इसी समय से पीछे कुछ लोग विशेष कर युरोपियन विद्वान्
 जैन धर्म का प्रचलित होना मानते हैं । उनके अनुसार यह
 धर्म यौद्ध के पीछे उसी के कुछ तत्त्वों को लेकर और उनमें

कुछ भाग्य धर्म की शैली मिलाकर खड़ा किया गया । जिस
 प्रकार यौद्धों में २४ बुद्ध हैं उसी प्रकार जैनों में भी २४
 तीर्थंकर हैं । हिंदू धर्म के अनुसार जैनों में भी अपने ग्रंथों
 को आगम और पुराण आदि में विभक्त किया है । पर मो०
 जेठेजी आदि के आधुनिक ग्रन्थेषुओं के अनुसार यह स्थिर
 किया गया है कि जैन धर्म, यौद्ध धर्म से पहले का है ।
 उदय गिरि, जूनागढ़ आदि के शिलालेखों से भी जैन मत
 की प्राचीनता पाई जाती है । ऐसा जान पड़ता है कि यज्ञों
 की हिंसा आदि देव जो विरोध का स्वभाव बहुत पहले
 से होता था रहा था उन्हीं ने आगे चलकर जैन धर्म का
 रूप प्राप्त किया । भारतीय ज्योतिष में यूनानियों की शैली
 का प्रचार विक्रमीय संवत् से तीन सौ वर्ष पीछे हुआ । पर
 जैने के मूल ग्रंथ ग्रंथों में यज्ञ ज्योतिष का कुछ भी आभास
 नहीं है । जिस प्रकार ब्राह्मणों की वेद संहिता में पंचवर्षात्मक
 युग है और सृष्टिका से नक्षत्रों की गणना है उसी प्रकार
 जैने के ग्रंथ ग्रंथों में भी है । इससे उनकी प्राचीनता सिद्ध
 होती है ।

जैन लोग सृष्टिकर्ता ईश्वर को नहीं मानते, जिन वा शब्द ही
 को ईश्वर मानते हैं, उन्हीं की प्रार्थना करते हैं और उन्हीं के
 निमित्त मंदिर आदि बनवाते हैं । जिन २४ हुए हैं जिनके
 नाम ये हैं—श्रवणभद्र, शक्तिनाथ, संभवनाथ, अश्वि-
 नंदन, सुमतिनाथ, पद्मनाभ, सुपार्ष्व, चंद्रप्रभ,
 सुविधिनाथ, शीतलनाथ, श्रेयांतनाथ, वासुपुत्र्य स्वामी,
 विमलनाथ, अनंतनाथ, धर्मेनाथ, शक्तिनाथ, कुंभु-
 नाथ, अरुनाथ, महिनाथ, मुनिमुनत स्वामी, नमिनाथ,
 नमिनाथ, पार्वनाथ, महावीर स्वामी । इनमें से केवल
 महावीर स्वामी ऐतिहासिक पुरुष हैं जिनका ईसा से २२७
 वर्ष पहले होना ग्रंथों से पाया जाता है । शेष के विषय
 में अनेक प्रकार की अलौकिक और प्रकृतिकिरण कथाएँ
 हैं । श्रवण देव की कथा भागवत आदि पुराणों में भी आई
 है और उनकी गणना हिंदुओं के २४ शक्तियों में है । जिस
 प्रकार हिंदुओं में काल मन्वंतर कल्प आदि में विभक्त है
 उसी प्रकार जैन लोगों में काल दो प्रकार का है—उत्सर्पिणी
 और अवसर्पिणी । प्रत्येक उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी में चौबीस
 चौबीस जिन वा तीर्थंकर होते हैं । ऊपर जो २४ तीर्थंकर
 गिनाए गए हैं वे वर्तमान अवसर्पिणी के हैं । जो एक बार
 तीर्थंकर हो जाते हैं वे फिर दूसरी उन्मर्पिणी वा अवसर्पिणी
 में जन्म नहीं लेते । प्रत्येक उत्सर्पिणी या अवसर्पिणी में नए
 नए जीव तीर्थंकर हुआ करते हैं । इन्हीं तीर्थंकरों के उपदेशों को
 लेकर गण्यकर लोग द्वादश ग्रंथों की रचना करते हैं । ये ही
 द्वादशग जैन धर्म के मूल ग्रंथ माने जाते हैं । इनके नाम ये
 हैं—आचारंग, सूत्रकृतांग, स्थानांग, समवायांग, भागवती,

सूत्र, ज्ञाताधर्म कथा, श्वासक दशांग, श्रंतकृत दशांग, अनुसतोपपातिक दशांग, प्ररनव्याकरण, विषाकधुत, दृष्टिवाद । इनमें से ग्यारह श्रंग तो मिलते हैं पर बारहवाँ दृष्टिवाद नहीं मिलता । ये सब श्रंग श्रद्धमागधी प्राकृत में हैं और अधिका से अधिक जोस बाईस सौ वर्ष पुराने हैं । इन श्रंगों वा श्रंगों को श्वेतांबर जैन मानते हैं पर दिगंबर पूरा पूरा नहीं मानते । इनके ग्रंथ संस्कृत में थलाग हैं जिनमें इन तीर्थंकरों की कथाएँ हैं और ज २४ पुराण के नाम से प्रसिद्ध हैं ।

यथार्थ में जैन धर्म के तत्त्वों को संग्रह करके प्रकट करनेवाले महावीर स्वामी ही हुए हैं । उनके प्रधान शिष्य इंद्रभूति वा गौतम थे जिन्हें कुछ पुरोपियन विद्वानों ने भ्रम वश शाक्य मुनि गौतम बुद्ध समझा था । जैन धर्म में दो संप्रदाय हैं—श्वेतांबर और दिगंबर । श्वेतांबर ग्यारह श्रंगों को मुख्य धर्म मानते हैं और दिगंबर अपने २४ पुराणों को । इसके अतिरिक्त श्वेतांबर लोग तीर्थंकरों की मूर्तियों को कच्छु वा लौंगोट पहनाने हैं और दिगंबर लोग नंगी रहते हैं । इन धार्यों के अतिरिक्त तत्व वा सिद्धांतों में कोई भेद नहीं है । श्रद्ध देव ने संसार को द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा से अनादि बताया है । जगत् का न तो कोई कर्ता हर्ता है और न जीवों को कोई सुख दुःख देनेवाला है । अपने अपने कर्मों के अनुसार जीव सुख दुःख पाते हैं । जीव वा आत्मा का मूल स्वभाव शुद्ध, बुद्ध, सच्चिदानंदमय है, केवल पुद्गल वा कर्म के आवरण से उसका मूल स्वरूप आवृद्धादित हो जाता है । जिस समय यह पौद्गलिक भार हट जाता है उस समय आत्मा परमात्मा की उच्च दशा को प्राप्त होता है । जैन मत स्याद्वाद के नाम से भी प्रसिद्ध है । स्याद्वाद का अर्थ है अनेकांतवाद अर्थात् एक ही पक्ष में नित्यत्व और अनित्यत्व, सादृश्य और विरूपत्व, सत्व और असत्व, अभिलाष्यत्व और अनभिलाष्यत्व आदि परस्पर भिन्न धर्मों का सापेक्ष स्वीकार । इन मत के अनुसार आकाश से लेकर दीपक पर्यंत समस्त पदार्थ नित्यत्व और अनित्यत्व आदि उच्च धर्म युक्त हैं ।

(२) जैन धर्म का धनुषायी । जैनी ।

जैनी—संज्ञा पुं० [हिं० जैन] जैन मतावलंबी ।

जैगु—संज्ञा पुं० [हिं० जेवना] भोजन । आहार । उ०—इहाँ रहा जैह जूनि पावै प्रजावासी के जैनु ।—सूर ।

जैपत्र—संज्ञा पुं० दे० "जयपत्र" ।

जैघाँ—क्रि० अ० दे० "जाना" ।

जैमंगल—संज्ञा पुं० [सं० जयमंगल] (१) एक वृक्ष जिसकी लकड़ी मजबूत होती है । इसकी लकड़ी से मेज कुर्सी इत्यादि सजावट की चीजें बनाई जाती हैं । (२) खास राजा की सवारी का हार्थी ।

जैमाल, जैमाला—संज्ञा स्त्री० दे० "जयमाल" ।

जैमिलि—संज्ञा पुं० [सं०] पूर्व भीमांसा के प्रवर्तक एक ऋषि जो प्याथमी के ४ मुख्य शिष्यों में से एक थे । कहते हैं कि इनकी रची एक भारतसंहिता भी थी जिसका कि अत्र केवल अथर्ववेध पर्व मिलता है । यह अथर्ववेध पर्व व्यास के अथर्ववेध पर्व से थड़ा है पर कई नई धार्यों के समावेश के कारण इसकी प्रामाणिकता में संदेह है ।

जैयट—संज्ञा पुं० महाभाष्य के तिलककार कैयट के पिता ।

जैयद—वि० [अ० जरे = दादा] (१) बड़ा भारी । धीर । बहुत बड़ा । जैसे, जैयद पैवच्छु । (२) बहुत धनी । भारी मात्र-दार । जैसे, जैयद श्रसामी ।

जैल—संज्ञा पुं० [अ०] (१) दामन । (२) नीचे का स्थान । निम्न भाग । (३) पंक्ति । सफ़ । समूह । (४) इलाका । हलका ।

घो०—जैलदार ।

जैलदार—संज्ञा पुं० [अ० जैल + दा०] वह सरकारी घोड़े-दार जिसके अधिकार में कई गावों का प्रबंध हो ।

जैव—वि० [सं०] (१) जीव संबंधी । (२) बृहस्पति संबंधी ।

संज्ञा पुं० (१) बृहस्पति के क्षेत्र में घनु राशि और मीन राशि । (२) पुत्र्य नक्षत्र ।

जैवातुक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) कपर । (२) चंद्रमा । (३) शौषध ।

वि० दीर्घायु ।

जैसचार—संज्ञा पुं० [हिं० जायस + चारा] कुर्मियों और कलवाओं का एक भेद ।

जैसा—वि० [सं० यादव, प्रा० जारिस, पैशाची० जइसा] [स्त्री० जैसा] (१) जिस प्रकार का । जिस रूप रंग आकृति वा गुण का । जैसे, (क) जैसा देवता वैसी पूजा । (ख) जैसा राजा वैसी प्रजा । (ग) जैसा कपड़ा है वैसी ही सिजाई भी होनी चाहिए ।

मुहा०—जैसे का तैसा = ज्यों का त्यों । जिसमें किसी प्रकार की घटती बढ़ती या फेर फार आदि न हुआ हो । जैसा पहले था वैसा ही । उ०—(क) दरजी के यहाँ श्रमी कपड़ा जैसे का तैसा इपखा है हाथ भी नहीं लगा है । (ख) खाना जैसे का तैसा पड़ा है किसी ने नहीं खाया । (ग) यह साठ वर्ष का हुआ पर जैसे का तैसा बना हुआ है । जैसे का तैसा = (१) जो जैसा हो उसके साथ वैसा ही व्यवहार करनेवाला । जो जैसा व्यवहार करे उसके साथ वैसा ही व्यवहार करनेवाला । (२) जो जैसा हो उसी की प्रकृति का । एक ही स्वभाव और प्रकृति का । उ०—जैसे का तैसा मिले, मिले नीचे को नीचे । पानी में पानी मिले, मिले नीचे में नीचे । जैसा चाहिए = उपयुक्त । ठीक । जैसा उचित हो । (२) जितना । जिस परिमाण वा मात्रा का । जिस कवर ।

(इम अर्थ में—केवल विशेषण के साथ प्रयुक्त होता है।)

उ०—जैसा धरुदा यह फपवा हे वैसा यह नहीं हे।

विशेष—संबंध पूरा करने के लिये जो दूसरा वाक्य आता है वह 'वैसा' शब्द के साथ आता है।

† (३) समान। सदा। तुल्य। परापर। उ०—उस जैसा धामदी हूँ दे न मिलेगा।

क्रि० वि० नितना। जिस परिमाण या मात्रा में। जैसे, जैसा इस लड़के को याद है वैसा उस लड़के को नहीं।

जैसी—वि० "जैसा" का स्त्री०।

जैसे—क्रि० वि० [हिं० जैसा] जिस प्रकार से। जिस ढंग से। जिस तरीके पर।

मुद्रा०—जैसे जैसे—जिस क्रम से। ज्यों ज्यों। उ०—जैसे जैसे रोग कम होता जायगा वैसे ही वैसे शरीर में शक्ति भी आती जायगी। जैसे तैसे—किसी प्रकार। बहुत यत्न करके। बड़ी कठिनाई से। उ०—दूर जैसे तैसे उनको यहाँ ले आना। जैसे बने, जैसे हो—जिस प्रकार संभव हो। जिस तरह हो। सके। उ०—जैसे बने वैसे कल शाम तक चले आये।

जैसा—वि० दे० "जैसा"।

क्रि० वि० दे० "जैसा"।

जों†—क्रि० वि० [हिं० ज्यों] ज्यों। जैसे। जिस प्रकार से। जिस तरह से। जिस भाँति।

विशेष—दे० "ज्यों"।

जोंक—संज्ञा स्त्री० [सं० जलिका] (१) पानी में रहनेवाला एक प्रसिद्ध कीड़ा जो चिक्कल घैली के आकार का होता है और जो जीवों के शरीर में चिपक कर उनका रक्त चूसता है। इसकी छोटी पढ़ी अनेक जातियाँ हैं जिनमें से अधिकांश साँढावों और छोटी नदियों आदि में, कुछ तर घासों में और बहुत थोड़ी जातियाँ समुद्र में होती हैं। साधारण जोंक छेड़ दो इंच लंबी होती है; पर किसी किसी जाति की समुद्री जोंक ढाढ़े फुट तक लंबी होती है। साधारणतः जोंक का शरीर कुछ चिपटा और कालापन मिले हरे रंग का या भूरा होता है जिन पर या तो धारियाँ या बुंदकियाँ होती हैं। आँसू इसे बहुत सी होती हैं। इसके शरीर के दोनों सिरों पर एकद्वे की शक्ति होती है, पर पाठने और लहू चूसने की शक्ति केवल आगे, मुँह की ओर ही होती है। आकार के विचार से साधारण जोंक तीन प्रकार की मानी जाती हैं—कागजी, मम्बोली और भँसिया। सुष्ठुत ने बारह प्रकार की जोंकें गिनाई हैं—कृष्णा, अलगरा, हँदापुषा, गोचंदना, कबुरा और सामुद्रिक—ये छ प्रकार की जोंकें जहरीली और कपिला, विंगला, शंकु-मुर्खी, मूषिका, पुंढरीकमुर्खी और सावरिका ये छ प्रकार की जोंके पिना जहर की बतलाई हैं। जोंक शरीर के किसी

स्थान में चिपक कर खून चूसने लगती है और पेट में खून भर जाने के कारण खूब भूल उठती है। शरीर में किसी स्थान पर फोड़ा फुँगी या गिलडी आदि हो जाने पर वहाँ का दूधित रक्त निकाल देने के लिये लोग इसे चिपका देते हैं और जब वह खूब खून पी लेती है तब उसे डँगलियों से खूब कस कर दुध लेते हैं जिससे सारा खून उसकी मुद्रा के मार्ग से निकल जाता है। भारत में बहुत प्राचीन काल से इस कार्य के लिये इसका उपयोग होता आया है। कभी कभी पशुओं के जल पीने के समय जल के साथ जोंक भी उनके पेट में चली जाती है।

पय्या०—रकपा। जलूका, जलोरगी। तीक्ष्णा। यमनी। वेथनी। जलसर्पिणी। जलसूधी। जलाटनी। जलाका। पटालुका। बेणोवेथनी। जलामिका।

क्रि० प्र०—लगाना।—लगवाना।

(२) वह मनुष्य जो अपना काम निकालने के लिये बेरतह पीछे पड़ जाय। वह जो पिना अपना काम निकाले पिंड न छोड़े। (३) सेवार का चन्दा हुआ एक प्रकार का धनना जिससे चीनी साफ की जाती है।

जोंकी—संज्ञा स्त्री० [हिं० जोंक] (१) वह जलन जो पशुओं के पेट में पानी के साथ जोंक उतर जाने के कारण होती है। (२) जोड़े का एक प्रकार का कटा जो दो तल्लों का मजदूरी के साथ जोड़ने के काम में आता है। (३) एक प्रकार का लाल रंग का कीड़ा जो पानी में होता है। (४) दे० "जोंक"।

जोंग, जोंगक—संज्ञा पुं० [सं०] अग्र। अग्रुह।

जों-क्रि० वि० दे० "ज्यों ज्यों"।

जोंताला—संज्ञा स्त्री० [सं०] देवधाम्य। पुनेरा।

जों तो—क्रि० वि० दे० "ज्यों त्यों"।

मुद्रा०—जों तों करके = बड़ी कठिनाई से। उ०—गरज जों तों करके दिन तों काटा।—लहलू।

जोंदरा—संज्ञा पुं० दे० "जोंघरी"।

जोंदरी—संज्ञा पुं० दे० "जोंघरी"।

जोंघरा—संज्ञा पुं० [सं० जर्ण] बड़े दानों की ज्वार।

जोंघरी—संज्ञा स्त्री० [सं० जर्ण] (१) छोटी ज्वार। छोटे दानों की ज्वार। (२) भातरा। (वचचित्)।

जोंघैया—संज्ञा स्त्री० [सं० ज्येस्ता] चाँदनी। चंद्रिका।

जो—उर्व० [सं० यः] एक सर्वव्यापक सर्वनाम जिसके द्वारा कही हुई संज्ञा या सर्वनाम के वर्णन में कुछ और वर्णन की योजना की जाती है। जैसे, (क) जो घोड़ा थापने भेजा था वह मर गया। (ख) जो लोग कल यहाँ आए थे वे गए।

विशेष—पुरानी हिंदी में इसके साथ 'सो' का व्यवहार होता था। अथ अथि लोग प्रायः इसके साथ 'सो' योजते हैं पर अथ

इसका व्यवहार कम होता जाता है। जैसे, जो धोवेगा सो काटेगा। श्राद्ध कल बहुधा इसके साथ 'वह' या 'वे' का व्यवहार होता है।

श्रव्य० [स० यद्] यदि। अग्र। (पु० हिं०) उ०—(फ) जो कानी समुक्त प्रशु मेरी। नहि निन्दार कल्प शत फेरी।—तुलसी। (ख) जो बालक कहु अनुचित करहीं। गुरु पितु मातु मोद मन भरहीं।—तुलसी।

विशेष—इस श्रव्य में इसके साथ 'तो' का व्यवहार होता है। जैसे, जो इसमें पानी देना हो तो अभी दे दो।

जोभना * [क्रि० स० दे० "जोवना"]।

जोइसी—संज्ञा स्त्री० [स० जाया] जोरू। पत्नी। भार्या। स्त्री। उ०—विश्व शरु विभाग हू को पतित जो पति होइ। जऊ मूरख होइ रोमी तबै नार्हीं जोइ।—सूर।
†सर्व० दे० "जो"।

जोउ—सर्व० दे० "जो"।

जोक—संज्ञा स्त्री० दे० "जोक"।

जोखा—संज्ञा स्त्री० [हिं०] जोखने का कार्य या भाव। तौल।

जोखता—संज्ञा स्त्री० [स० योगिता] स्त्री। लुगाई।

जोखना—क्रि० स० [सं० लुप = जोचना] तौलना। वजन करना।

जोखम—संज्ञा स्त्री० दे० "जोखिम"।

जोखाना—संज्ञा पुं० [हिं० जोखना] लेखा। हिसाब।

विशेष—इस श्रव्य में इसका व्यवहार बहुधा यौगिक में ही होता है। जैसे, लेखा जोखा।

‡ [स० योग] स्त्री। लुगाई।

जोखानाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० जोखना] (१) जोखने का काम। तौलाई। (२) जोखने या तौलने का भाव। (३) तौलने की मजदूरी।

जोखिम—संज्ञा स्त्री० [हिं० भाऊ, भोंको, जोखें] (१) भारी श्रमिष्ठ या विपत्ति की आशंका अथवा संभावना। भौंकी। जैसे इस काम में बहुत जोखिम है।

मुहा०—जोखिम बढ़ाना या सहना = ऐसा काम करना जिसमें भारी श्रमिष्ठ की आशंका है। जोखिम में पड़ना = जोखिम उठाना। जान जोखिम होना = प्राण जाने का भय होना।

(२) वह पदार्थ जिसके कारण भारी विपत्ति थाने की संभावना हो, सैन, रुपया, पैसा, जेवर आदि। जैसे, तुम्हारी यह जोखिम हम नहीं रख सकते।

जोखुआ—संज्ञा पुं० [हिं० जोखना + उआ (अव्य०)] तौलनेवाला। घण।

जोखुआ—संज्ञा पुं० दे० "जोखुआ"।

जोखी—संज्ञा स्त्री० दे० "जोखिम"।

जोगंधर—संज्ञा पुं० [स० योगंधर] एक बुद्धि जिसके द्वारा शत्रु के चक्रावृत्त हुए अस्त्र से शयना बचाव किया जाता है। यह

बुद्धि श्रीरामचंद्रजी को विश्वामित्र ने सिखवाई थी। उ०—पद्मनाभ अरु महानाम दौध हूँ दूहु नाभ सुवामां। ज्योति निकृत्त निराशर विमल युग जोगंधर बड़ आमा।—रघुनाथ।

जोग—संज्ञा पुं० दे० "योग"।

वि० दे० "योग्य"।

श्रव्य० [स० योग्य] को। के निकट। (पुरा—हिं०)

विशेष—इस शब्द का प्रयोग बहुधा पुरानी परिपाटी की लिट्टियों के आरंभिक वाक्यों में होता है। जैसे,—“स्वमिथ्री भाई परमानंदजी जोग लिखा कारी से सीताराम का राम राम बांचना।” बहुधा यह द्वितीय शीर चतुर्थी विभक्ति के स्थान पर काम में आता है। जैसे, “इनमें से एक साड़ी भाई कृष्णचंद्रजी जोग देना।”

जोगड़ा—संज्ञा पुं० [हिं० जोगी + ढा (अव्य०)] घना हुआ योगी। पाखंडी। जैसे, घर का जोगी जोगड़ा बाहर का जोगी सिद्ध। (कहा०)

जोगता * [संज्ञा स्त्री० दे० "योग्यता"]।

जोगन—संज्ञा स्त्री० दे० "जोगिन"।

जोगनिया—संज्ञा पुं० दे० "जोगिनिया"।

संज्ञा स्त्री० दे० "जोगिनिया"।

जोगमाया—संज्ञा स्त्री० दे० "योगमाया"।

जोगचना—क्रि० स० [सं० योग + अचना (अव्य०)] (१) किसी वस्तु को यत्न से रखना जिसमें वह नष्ट भ्रष्ट न होने पावे। रक्षित रखना। उ०—जिवनमूर्ति जिमि जोगवत रहऊँ। शीप बाति नहिं टारन फहऊँ।—तुलसी। (२) संचित करना। पकत्र करना। थडोरना। (३) लिहाज रखना। आदर करना। उ०—ताड़ुमातु को मन जोगवत यों निज तन-मर्म कुभाउ।—तुलसी। (४) दर गुजर करना। जाने देना। कुछ खयाल न करना। उ०—खेलात संग श्रनुत्र बालक निन जोगवत अनट अयाउ।—तुलसी। (५) पूरा करना। पूर्ण करना। उ०—काय न फलेस। लेस जेत मानि मत की। सुमिरे सकुचि रुचि जोगवत जन की।—तुलसी।

जोगसाधन—संज्ञा पुं० [सं० योगसाधन] तपस्या।

जोगा—संज्ञा पुं० [दे०] अफीम का खूदड़। वह सैल जो अफीम को छानने से बच रहती है।

जोगानल—संज्ञा स्त्री० [सं० योगानल] योग से उत्पन्न धाग। उ०—मिय वेप सती जो क्रीन्ह तेहि अपराध शंकर परिहरी। हर विरह जाइ बहोरी पितु के जाय जोगानल जरी।—तुलसी।

जोगिंद—संज्ञा पुं० [सं० योगिन्द्र] (१) योगिराज। योगिब्रह्म। (२) महादेव। (हिं०)

जोगिन—संज्ञा स्त्री० [सं० योगिनी] (१) जोगी की स्त्री। (२)

विरक्त की। साधुनी। (३) विरागिनी। (४) एक प्रकार की रथ दूँबी जो रथ में कटे मरे मनुष्यों के हड्डियों को देखकर अग्निदित होती है और मुँहों को गोंद घनाकर खेचती है। (५) एक प्रकार का झाड़ीदार पौधा जिसमें नीले रंग के फूल लगते हैं। (६) दे० "योगिनी"।

जोगिनिया—संज्ञा स्त्री० [दे०] (१) लाल रंग की एक प्रकार की ज्वार। (२) एक प्रकार का धान। (३) एक प्रकार का धान जो अग्रहण में तैयार होता है और जिसका चावल वर्षों टहर सकता है।

जोगिनी—संज्ञा स्त्री० (१) दे० "योगिनी"। (२) दे० "जोगिन"। ४०—भूमि प्रति जगमगी जोगिनी सुनि जगी सहस्र फन शेष सा सोस काँधो।—सूर।

जोगिया—वि० [हि० जोगी + ह्य (प्रत्य०)] (१) जोगी संबंधी। जोगी का। जैसे, जोगिया भेष। (२) गेरू के रंग में रंगा हुआ। गेरू घुले हुए पानी में रंगा हुआ। गिरिक। (३) गेरू के रंग का। मटमैलापन लिए लाल रंग का। संज्ञा पुं० (१) दे० "जोगीरू"। (२) "जोगी"।

जोगीरू—संज्ञा पुं० [सं० योगीरू] (१) योगिराज। यद्वा योगी। योगिश्रेष्ठ। (२) शिव। महादेव।

जोगी—संज्ञा पुं० [सं० योगी] (१) 'वद जो योग करता हो। योगी। (२) एक प्रकार के निष्ठुरक जो सारंगी लेकर भट्टहरि के गीत गाते और भील मांगते हैं। इनके कपड़े गेरू रंग के होते हैं।

जोगीड़ा—संज्ञा पुं० [हि० योगी + टा (प्रत्य०)] एक प्रकार का रंगीन या चलता गाना जो प्रायः पर्यंत श्रुत में खेलेक पर गाया जाता है। (२) गाने बजानेवालों का एक समान जिसमें एक गानेवाला लड़का, एक ढोलक बजानेवाला और दो सारंगी बजानेवाले रहते हैं। इनमें गानेवाले लड़के का भेष प्रायः योगियों का सा होता है और वह कुछ ढालंकार आदि भी पहने रहता है। इन का गाना बहुधा देहातों में सुना जाता है। (३) इस समान का कोई आदमी।

जोगीश्वर—संज्ञा पुं० दे० "योगीश्वर"। जोगेश्वर—संज्ञा पुं० [सं० योगेश्वर] (१) धीकृष्य। (२) शिव। (३) देवदेव के पुत्र का नाम। (४) योग का अधिकारी। योग का ज्ञान। सिद्ध योगी।

जोगीटा—वि० [हि० जोगी] जोगी। जोग्य—वि० दे० "योग्य"। जोजन—संज्ञा पुं० दे० "योगज"। जोजनगंधा—संज्ञा स्त्री० दे० "योगजगंधा"। जोट—संज्ञा पुं० [सं० योत्क] (१) जोड़ा। जोड़ी। (२) मापी। संज्ञा स्त्री।

वि० समान। धारावरी का। मेल का।

जोटा—संज्ञा पुं० [सं० योत्क] (१) जोड़ा। युग। ४०—(क) ए दोड़ दसप के जोटा। याल मंराखनि के कल जोटा।—तुलसी। (ख) सखा समेत मनोहर जोटा। लखेव न लखन सयन बन थोटा।—तुलसी। (२) टाट का बना एक बड़ा दोहरा धँला जिसमें अनाज भर कर पैलों पर खादा जाता है। गीन। धुरती।

जोटिंग—संज्ञा पुं० [सं०] मरादेव। शिव।

जोटी—संज्ञा स्त्री० [हि० जेट] (१) जोड़ी। युग्मक। ४०—काँचो दूध पिवागत पचि पचि देत न माखन रोटी। सुरदास चिरजीवदू दोड़ हरि हलधर की जोटी।—सूर। (२) धारावरी का। जोड़ का। समान। (३) जो गुण्य आदि में किसी दूसरे के समान हो। जिसका मेल दूसरे के साथ बैठ जाता हो।

जोड़—संज्ञा पुं० [सं० योग] (१) गणित में कई संख्याओं का योग। जोड़ने की क्रिया। (२) गणित में कई संख्याओं का योगफल। यह संख्या जो कई संख्याओं को जोड़ने से निकले। मोजान। टीक। टोटल।

क्रि० प्र०—देना।—लगाना।

(३) यह स्थान जहाँ दो या अधिक पदार्थ या डुकड़े जुड़े अथवा मिले हों। जैसे, कपड़े में सिबाई के कारण पड़नेवाला जोड़, लोटे या घाली आदि का जोड़।

मुहा०—जोड़ खड़कना = जोड़ का ढोला पड़ जाना। संधि स्थान में कोई ऐसा विकार उत्पन्न होना जिसके कारण जुड़े हुए पदार्थ अलग हो जाँव।

(४) यह डुकड़ा जो किसी चीज में जोड़ा जाय। जैसे, यह चाँदनी कुछ छोटी है, इसमें जोड़ लगा दो। (५) यह पिछ जो दो चीजों के एक में मिलने के कारण संधि स्थान पर पड़ता है। (६) शरीर के दो अथवयवों का संधि स्थान। गाँठ। जैसे, कंधा, घुटना, कलाई, पौर आदि।

मुहा०—जोड़ खड़कना = किसी अवयव के मूल का अगने स्थान से हट जाना। जोड़ घटना = अगने स्थान से हटें हुए अवयव के मूल का अगने स्थान पर आ जाना।

(७) मेल। मिश्रण। (८) धारावरी। समानता। जैसे, तुम्हारा धार बनका कैल जोड़ है ?

विशेष—आयः इस अर्थ में इस शब्द का रूप "जोड़" भी होता है। जैसे, (क) यह गमजा वसके जोड़ का है। (ख) इनके जोड़ का एक लंप ले धारो।

(४) एक ही तरह की अथवा साथ साथ काम में आनेवाली दो चीजें। जोड़ा। जैसे, पहलवानों का जोड़, कपड़ों (पैनी और दुपट्टे) का जोड़।

मुहा०—जोड़ बाँचना = (१) जुगती के सिने धारावरी के दो

पट्टनयनों को जुनना । (२) किसी काम पर अग्रग श्रमण दो दो आदमियों को नियत करना । (३) चौगड़ में दो गोठियों को एक ही घर में रखना ।

(१०) वह जो बराबरी का हो । समान धर्म या गुण आदि वाला । जोड़ा । (११) पहनने के सब कपड़े । पूरी पोशाक । जैसे, उनके पास चार जोड़ कपड़े हैं । (१२) किसी वस्तु या कार्य में प्रयुक्त होनेवाली सब आवश्यक सामग्री । जैसे, पहनने के सब कपड़ों या अंग-प्रत्यंग के आभूषणों का जोड़ ।

(१३) जोड़ने की क्रिया या भाव । (१४) छल । दाँव ।

धा०—जोड़ तोड़ = (१) दाँव पंच । छल कपट । (२) किसी कार्य के लिये विशेष युक्ति । अंग । (बहुधा इस अर्थ में हस्तके साथ "लगाना" "भिड़ना" "लड़ाना" क्रियाओं का व्यवहार होता है) ।

(१२) दे० "जोड़ा" ।

जोड़ती—संज्ञा स्त्री० [हि० जोड़ + ती (प्रत्य०)] गणित में कई संख्याओं का योग । जोड़ ।

जोड़न—संज्ञा स्त्री० [हि० जोड़] वह पदार्थ जो दही जमाने के लिये दूध में डाला जाता है । जावन । जामन ।

जोड़ना—क्रि० घ० [सं० जुड़ = बँधना या सं० युक्त, प्रा० जुड़] (१) दो वस्तुओं को सी धर, मिला कर, चिपका कर अथवा हसी प्रकार के किसी और ढप्या से एक करना । दो चीजों को मजबूती से एक करना । जैसे, लंबाई बढ़ाने के लिये कागज या कपड़ा जोड़ना । (२) किसी टूटी हुई चीज के टुकड़ों को मिलाकर एक करना । उ०—जो अति प्रिय तो करिय डपाई । जोरिय कोड वड गुनी बुलाई—तुलसी । (३) द्रव्य या सामग्री को क्रम से रखना, लगाना, या स्थापित करना । जैसे, अचर जोड़ना, ईंट या पत्थर जोड़ना । (४) एकत्र करना । इकट्ठा करना । संग्रह करना । जैसे, रुपय जोड़ना, हुनवा जोड़ना, सामग्री जोड़ना । (५) कई संख्याओं का योग-फल निकालना । सीजान लगाना । (६) वाक्यों या पदों आदि की योजना करना । वर्णन प्रस्तुत करना । जैसे, कहानी जोड़ना, कविता जोड़ना, बात जोड़ना, तूमर या तूफान जोड़ना (= मूढ़ा दोषारोपण करना) । (७) प्रखलित करना । जलाना । जैसे, आग जोड़ना, दीया जोड़ना । (८) संबंध स्थापित करना । (९) सर्वेक्ष करना । सर्वेक्ष उत्पन्न करना । जैसे, दोस्ती जोड़ना । (१०) † जेतना ।

संघे० क्रि०—देना ।

जोड़ना—वि० [हि० जोड़ + ना (प्रत्य०)] एक ही गर्भ से एक ही समय में जन्मे हुए दो बच्चे । यमज ।

जोड़ना—वि० [हि० जोड़ + ना (प्रत्य०)] वे दो बच्चे जो एक ही समय में और एक ही गर्भ से उत्पन्न हुए हों । यमज ।

जोड़ना—संज्ञा पुं० [हि० जोड़ना] (१) जोड़वाने की क्रिया ।

(२) जोड़वाने का भाव । (३) जोड़वाने की मजदूरी ।

जोड़वाना—क्रि० घ० [हि० जोड़ना का प्रे०] दूसरे को जोड़ने में प्रवृत्त करना । जोड़ने का काम दूसरे से कराना ।

जोड़ा—संज्ञा पुं० [हि० जोड़ना] [स्त्री० जोड़ी] (१) दो समान पदार्थ । एक ही सी दो चीजें । जैसे, पोतियों का जोड़ा, तसवीरों का जोड़ा, गुलदानों का जोड़ा ।

क्रि० प्र०—मिलाना ।—लगाना ।

विशेष—जोड़े में का प्रत्येक पदार्थ भी परस्पर एक दूसरे का जोड़ा कहलाता है । जैसे, किसी एक गुलदान को उसी तरह के दूसरे गुलदान का जोड़ा कहेंगे ।

(२) दोनों पैरों में पहनने के जूते । डपानह । (३) एक साथ या एक मेल में पहने जानेवाले दो कपड़े । जैसे, अंगे और पैजामे का जोड़ा, कोट और पतलून का जोड़ा, सहेँगे और श्रोत्रनी का जोड़ा, घांती और दुपटे का जोड़ा । (४) पहनने के सब कपड़े । पूरी पोशाक । जैसे, (क) उनके पास चार जोड़े कपड़े हैं । (ख) हम तो छोड़े जोड़े से तैयार हैं, तुम्हारी ही देर थी ।

धा०—जोड़ा जामा = (१) वे सब कपड़े जो विवाह में वर पहनता है । (२) पहनने के सब कपड़े । पूरी पोशाक ।

क्रि० प्र०—पहनना ।—बढ़ाना ।

(५) स्त्री और पुरुष । जैसे, वर कन्या का जोड़ा । (६) नर और मादा । (केवल पशुओं और पक्षियों आदि के लिये) । जैसे, सारस का जोड़ा, कबूतर का जोड़ा, कुत्तों का जोड़ा । विशेष—नं० ५ और ६ के अर्थों में ही और पुरुष अथवा नर और मादा में से प्रत्येक को भी एक दूसरे का जोड़ा कहते हैं ।

क्रि० प्र०—मिलाना ।—लगाना ।

मुहा०—जोड़ा खाना = संभोग करना । मैथुन करना । जोड़ा खिलाना = संभोग में प्रवृत्त करना । मैथुन करना । जोड़ा लगाना = नर और मादा को मैथुन में प्रवृत्त करना ।

(७) वह जो बराबरी का हो । जोड़ । (८) दे० "जोड़" ।

जोड़ाई—संज्ञा स्त्री० [हि० जोड़ना + आई (प्रत्य०)] (१) दो या अधिक वस्तुओं को जोड़ने की क्रिया या भाव । (२) जोड़ने की मजदूरी । (३) दीवार आदि धनाने के लिये ईंटों या पत्थरों के टुकड़ों को एक दूसरे पर रख कर उन्हें मसाले से जोड़ने की क्रिया ।

जोड़ासँदेस—संज्ञा पुं० [दे०] एक प्रकार की बंगला मिठाई जो छेने से बनती है ।

जोड़ी—संज्ञा स्त्री० [हि० जोड़ा] (१) दो समान पदार्थ । एक ही सी दो चीजें । जोड़ा । जैसे, शाल की जोड़ी, तसवीरों की जोड़ी, किराड़ों की जोड़ी, घोड़ों या बैलों की जोड़ी ।

क्रि० प्रि०—मिलाना।—खगाना।

यो०—जोड़ीदार = जोड़वाला। जो किसी के साथ में हो।
(किसी काम पर एक साथ नियुक्त होनेवाले दो आदमी परस्पर एक दूसरे को अपना जोड़ीदार कहते हैं।)

विशेष—जोड़ी में से प्रत्येक पदार्थ को भी परस्पर एक दूसरे की जोड़ी कहते हैं। जैसे किसी एक तसवीर को उसी तरह की दूसरी तसवीर की "जोड़ी" कहेंगे।

(२) एक साथ पहनने के सब कपड़े। पूरी पोशाक। जैसे, उनके पास चार जोड़ी कपड़े हैं। (३) की और पुरुष। जैसे, वर क्यू की जोड़ी। (४) नर और मादा। (केवल पशुओं और पक्षियों के लिये)। जैसे, घोड़ों की जोड़ी, सारस की जोड़ी, मोर की जोड़ी।

विशेष—न० ३ और ४ के अर्थ में की और पुरुष अथवा नर और मादा में से प्रत्येक को भी एक दूसरे की जोड़ी कहते हैं।

(४) दो घोड़ों या दो बैलों की गाड़ी। वह गाड़ी जिसे दो घोड़े या दो बैल खींचते हैं। जैसे, जब से आपको ससुआल का साह मिले है तब से आप जोड़ी पर निकलते हैं। (५) दोनों मुगदर जिनसे कसरत करते हैं।

क्रि० प्र०—फेरना।—मोड़ना।—हिजाना।

(७) मँजिरा। ताल।

धा०—जोड़ीवाल = जो गाने बजानेवाला के साथ जोड़ी या मँजिरा बजाता हो।

(म) वह जो बायाँरी का हो। समान धर्म या गुण आदि वाला। जोड़।

जोड़ी की बैठक—संज्ञा स्त्री० [हि० जोड़ी = मुगदर + बैठक = कसरत] वह बैठकी (कसरत) जो मुगदरों की जोड़ी पर हाथ टेक कर की जाती है। मुगदरों के अभाव में हंसों दो लकड़ियों से भी काम लिया जाता है।

जोड़ुआ—संज्ञा पु० [हि० जोड़ा + आ (प्रत्य०)] पैर में पहनने का चार्डी का एक प्रकार का गहना जिसमें एक सिन्धरी में छोट पड़े दो दृश्य लगे रहते हैं। यद्वा छूछा अंगूठे में और छोटा सबसे छोटी बँगली में पहना जाता है। सिकरी धीच की बँगलियों के ऊपर रहती है।

जोड़ु—संज्ञा स्त्री० दे० "जोड़"।

जोत—संज्ञा स्त्री० [हि० जेतना] (१) वह चमड़े का तस्मा या रस्सी जिसका एक सिरा छोड़े बैल आदि जोते जानेवाले जानवरों के गले में और दूसरा सिरा उस चीज़ में बँधा रहता है जिसमें जानवर जोते जाते हैं। जैसे, एक की जोत, गाड़ी, की जोत, मोट या चरसे की जोत।

क्रि० प्र०—बाँधना।—खगाना।

(२) वह रस्सी जिसमें तराजू की हंडी से बँधे हुए उसके पहले

लटकते रहते हैं। (३) उतनी भूमि जितनी एक अस्सामी को जोतने से जोते आदि के लिये मिली हो।

† संज्ञा स्त्री० (१) दे० "ज्योति"। (२) दे० "जोति"।

जोतदार—संज्ञा पु० [हि० जोत + दार] वह अस्सामी जिसे जोतने से जोते के लिये कुछ जमीन (जोत) मिली हो।

जोतना—क्रि० सं० [सं० जेतन या जुक्त, प्रा० जुप्त + ना] (१) रथ, गाड़ी, कोरहू, चरसे आदि को चखाने के लिये उसके प्रागे बैल छोड़े आदि पशु बाँधना। जैसे, घोड़ा जोतना। (२) गाड़ी या रथ आदि को वनों में छोड़े बैल आदि जोत कर चलने के लिये तैयार करना। जैसे गाड़ी जोतना। (३) किसी को जबदस्ती किसी काम में खगाना। (४) हल चलाकर खेती के लिये जमीन की मिट्टी छोड़ना। हल चखाना। जैसे, खेत जोतना।

जोतनी—संज्ञा स्त्री० [हि० जेत या जेतना] वह छोटी रस्सी जो जुप में जुते हुए जानवर के गले के नीचे दोनों ओर बँधी होती है।

जोतसी—संज्ञा पु० दे० "ज्योतिषी"।

जोतात—संज्ञा स्त्री० [हि० जेतना] खेत की मिट्टी की ऊपरी तह। (कुम्हर)।

जोता—संज्ञा पु० [हि० जेतना] (१) लुथाड़े में बँधी हुई वह पतली रस्सी जिसमें बैलों की गद्दन फँसाई जाती है। (२) लुथाड़ों की परिमाण में वह दोनों डोरियाँ जो करघे पर फँसाए हुए ताने के अंतिम सिरे पर उसके सूतों को ठीक रखने वाली कर्मांची या भँजनी के दोनों सिरों पर बँधी हुई होती हैं। इन दोनों डोरियों के दूसरे सिरे आपस में भी एक दूसरे से बंधे और पीछे की ओर तने होते हैं। (३) करघे में सूत की वह डोरी जो बरोछी में बँधी रहती है। (४) वह बहुत बड़ी धरन या शहतीर जो एक ही पंक्ति में लगे हुई कई खंभों पर रखी जाती है और जिसके ऊपर दीवार बसाई जाती है।

(५) वह जो हल जोतता हो। खेती करनेवाला

जोतार—संज्ञा स्त्री० [हि० जेतना + आर (प्रत्य०)] (१) जोतने का काम। (२) जोतने का भाव। (३) जोतने की मजदूरी।

जोतात—संज्ञा स्त्री० दे० "जोतात"।

जोति—संज्ञा स्त्री० [सं० ज्योति] (१) धी का वह दीखा जो किसी देवी या देवता आदि के आगे अथवा उसके उद्देश्य से जलाया जाता है।

क्रि० प्र०—जलाना।—बाजना।

धा०—जोति-भोग = किसी देवता के सामने जोति जलाने और भोग लगाने आदि की क्रिया।

(२) दे० "ज्योति"।

* † संज्ञा स्त्री० [हि० जेतना] जोतने से जोते से जोत भूमि।
उ०—एपै तजि देयो किया देखि जग जुयो होत जोति यहु दई दाम राम मति सानिये।—प्रिया०।

जोतिषी-संज्ञा पुं० दे० "ज्योतिषी" ।
जोतिषिण-संज्ञा पुं० दे० "ज्योतिषिण" ।
जोतिष्य-संज्ञा पुं० दे० "ज्योतिष्य" ।
जोतिषटोम-संज्ञा पुं० दे० "ज्योतिषटोम" ।
जोतिषी-संज्ञा पुं० दे० "ज्योतिषी" ।
जोतिस-संज्ञा पुं० दे० "ज्योतिष्य" ।
जोतिहा-संज्ञा पुं० [हिं० जोतना] जोतनेवाला किसान ।
जोता ।

जोती-संज्ञा स्त्री० दे० (१) "ज्योति" और (२) "जोति" ।
संज्ञा स्त्री० (१) तराजू के परलों की डोरी जो बाँड़ी से बँधी रहती है । जोत । (२) घोड़े की रास । ब्रह्मण ।

जोत्सना-संज्ञा स्त्री० दे० "ज्योत्सना" ।
जोधन-संज्ञा स्त्री० [सं० योग + धन] वह रस्मी जिससे बैल के जुए की ऊपर नीचे की लकड़ियाँ बँधी रहती हैं ।

जोधा-संज्ञा पुं० दे० "योधा" । उ०—(क) प्रगट कपाट बढ़े दोने है यह जोधा रखवारे ।—सूर । (ख) सूर प्रभु सिंह धरनि करत जोधा सरुल जहाँ सँहँ करन धामे बरार्हे ।—सूर ।
संज्ञा पुं० जोता नाम की रस्सी जो जुआटे में बँधी रहती है और जिसमें बैलों के तिर फँसाए जाते हैं ।

जोधार-संज्ञा पुं० [सं० योधा] योधा । शूर । (हिं०) ।
जोन-संज्ञा स्त्री० दे० "योनि" ।

जोनराज-संज्ञा पुं० राजतरंगिणी के द्वितीय लेखक जिन्होंने सं० १२०० के बाद का हाल लिखा है । इनका लिखा हुआ धृष्टीराजविनय नामक एक ग्रंथ और किरातलुनीय की एक टीका भी है ।

जोनरी-संज्ञा स्त्री० [?] ज्वार नामक धान ।
जोनि-संज्ञा स्त्री० दे० "योनि"

जोन्द-संज्ञा स्त्री० [सं० ज्योत्सना] (१) जुन्दाई । चंद्रिका । चाँदनी । ज्योत्सना । (२) चंद्रमा ।

जोन्दरी-संज्ञा स्त्री० [?] ज्वार नामक धान ।
जोन्दार-संज्ञा स्त्री० [सं० ज्योत्सना] (१) चंद्रिका । चाँदनी । चंद्रज्योति । (२) चंद्रमा ।

जोन्दार-संज्ञा पुं० [?] ज्वार नामक धान ।
जोप-संज्ञा पुं० दे० "जूप" ।

जोपे-संज्ञा पुं० [हिं० जो + पर] (१) यदि । अगर । (२) यद्यपि । अगरचे ।

जोफ-संज्ञा पुं० [अ०] (१) बुझाया । धृदावस्था । (२) सुखी । निर्वलता । कमजोरी । नाताकृती । जैसे, जोफ जिगर, जोफ दिमाग ।

जोधन-संज्ञा पुं० [सं० योधन] (१) युवा होने का भाव । यौवन । उ०—धन जोधन अभिमान धरय जल कई कर भापुनी घोरी ।—सूर ।

मुहा०—जोयन लूटना = (किसी स्त्री की) युवावस्था का आनंद लेना ।

(२) सुंदरता, विशेषतः युवावस्था अथवा मध्य काल की सुंदरता । रूप । खूबसूरती ।

क्रि० प्र०—छाना ।—पर आना ।
मुहा०—जोयन उतरना = युवावस्था समाप्त होना । जोयन चढ़ना = युवावस्था का सौंदर्य आना । जोयन उलटना = दे० "जोयन उतरना" ।

(३) रोनाक । बहार । (४) कुच । स्तन । छाती । उ०—रूप दुहुँ जोयन सों लागी ।—जायसी ।

क्रि० प्र०—उटना ।—उभरना ।—ढलना ।
(५) एक प्रकार का फूल ।

जोवना-संज्ञा पुं० दे० "जोवना" ।
जोम-संज्ञा पुं० [अ०] (१) उमंग । उत्साह । (२) जोर । उद्वेग । आवेश । (३) अंधकार । अभिमान । घमंड ।

क्रि० प्र०—दिखाना ।
जोय *-संज्ञा स्त्री० [सं० जाय] जोरू । छी । पत्नी । सर्व पुं० जो । जिस ।

जोयना-संज्ञा पुं० [सं० जाय] (१) यालना । जवाना । उ०—
चौसठ दीवा जोय के चौदह चंद्रा माहि । तिहि घर किसका चाँदना जिहि घर सतगुर नाहि ।—कबीर । (२) दे० "जोवना" ।

जोयसी *-संज्ञा पुं० दे० "ज्योतिषी" ।
जोर-संज्ञा पुं० [फा०] (१) बल । शक्ति । ताकत ।

क्रि० प्र०—आजमाना ।—देखना ।—दिखाना ।—लगना ।—लगाना ।

मुहा०—जोर करना = (१) बल का प्रयोग करना । ताकत लगाना । (२) प्रयत्न करना । कोशिश करना । जोर दटना = बल घटना या नष्ट होना । प्रभाव कम होना । शक्ति घटना । जोर डालना = धोम डालना । दे० "जोर देना" । जोर देना = (१) बल का प्रयोग करना । ताकत लगाना । (२) (शरीर आदि का) धोम डालना । मार देना । जैसे, इस जँगले पर बहुत जोर मत दो नहीं तो वह टूट जायगा । किसी बात पर जोर देना = किसी बात को बहुत ही आवश्यक या महत्वपूर्ण बतलाना । किसी बात को बहुत जरूरी बतलाना । जैसे, उन्होंने इस बात पर बहुत जोर दिया कि सब लोग साथ चले । किसी बात के लिये जोर देना = किसी बात के लिये आग्रह करना । किसी बात के लिये छूट करना । जोर देकर कहना = किसी बात को बहुत अधिक दृढ़ता या आग्रह से कहना । जैसे, मैं जोर देकर कह सकता हूँ कि इस काम में भाप को बहुत फायदा होगा । जोर मारना या लगाना = (१) बल का प्रयोग

करना । ताकत लगाना । (२) बहुत प्रयत्न करना । खूब कोशिश करना । जैसे, वन्दे में बहुतसे जोर मारा पर कुछ भी न हुआ ।

धो०—जोर जुबम = अत्याचार । ज्यादाती ।

(२) प्रयत्नता । तेजी । बढ़ती । जैसे, भाँग का जोर, सुखार का जोर ।

विरोध—कमी कमी लोग इस अर्थ में 'जोर' शब्द का प्रयोग 'से' विभक्ति उठा कर विरोध की तरह और कमी कमी 'का' विभक्ति उठा कर क्रिया विरोध की तरह करते हैं ।

मुहा०—जोर पकड़ना या धाँधना = (१) प्रयत्न होना । तेज होना । जैसे, (क) शमी से इलाज करो नहीं तो यह बीमारी जोर पकड़ेगी । (ख) इस फाड़े ने बहुत जोर धाँधा है । (२) दे० "जोर में आना" । जोर करना या मारना = प्रयत्न दिखलाना । जैसे, (क) रोग का जोर करना, काम का जोर करना । (ख) धाँध धाँधकी मुद्दबत्त ने जोर मारा, सभी धाँध यहाँ थाप रहे हैं । जोर में धाना = ऐसी स्थिति में पहुँचना जहाँ धानाया ही उभरति या इदि हो जाय । जोरों पर होना = (१) पूरे यत्न पर होना । बहुत तेज होना । जैसे, (क) धाँध कल शहर में चेचक बहुत जोरों पर है । (ख) इस समय वहाँ सुखार जोरों पर है । (२) खूब उन्नत दशा में होना ।

(३) बरा । अधिकार । इखतियार । फावू । जैसे, हम क्या करें, हमारा उन पर कोई जोर नहीं है ।

क्रि० प्र०—चलना ।—चलाना ।—जताना ।—होना ।

मुहा०—जोर डाखना = किसी फाम के लिये कुछ अधिकार जतानते हुए विशेष आग्रह करना । दबाव डालना ।

(४) वेग । आघेरा । भेक ।

मुहा०—जोरों पर = बड़े वेग से । बड़ी तेजी से । जैसे, गाड़ी का जोरों पर जाना, नदी का जोरों पर बहना । (२) भरोसा । आसरा । सहाय । जैसे, थाप किसके जोर पर दूँते हैं ?

मुहा०—शतरंज में किसी मोहरे पर जोर देना या पहुँचाना = किसी मोहरे की सहायता के लिये उसके पास कोई ऐसा मोहड़ा ला रखना जिसमें उस पहले मोहरे के मारे जाने की संभावना न रहे जब आपका यदि उस पहले मोहरे के विपरीत अपने किसी मोहरे से मारना चाहे तो उसका वह मोहड़ा भी तुरंत उस मोहरे से मार लिया जा सके जिधसे पहले मोहरे पर जोर पहुँचाया गया है । शतरंज के मोहरे का जोर पर होना = मोहरे का ऐसी स्थिति में होना जिसमें यदि उसे विपरीत फा कोई मोहड़ा मारना चाहे तो वह मारनेवाला मोहड़ा स्वयं भी तुरंत मारा जा सके । किसी के जोर पर दूदना = किसी के अपनी सहायता पर देल कर अपना बल दिखाना । येनोर = जिसकी सहायता पर कोई न है ।

(६) परिश्रम । मेहनत । जैसे, धंधे में पढ़ने से शाली पर जोर पड़ता है ।

क्रि० प्र०—पड़ना ।

(७) ध्यायाम । कसत ।

जोर शोर—संज्ञा पुं० [फा०] बहुत अधिक जोर । बहुत अधिक प्रयत्नता या प्रचंडता । जैसे, कल शाम को जोर शोर से धाँधी छाई थी ।

जोरदार—वि० [फा०] जिसमें बहुत जोर हो । जोरवाला ।
जोरई—संज्ञा स्त्री० [हिं० जोड़ ?] (१) एक ही में बंधे हुए लंबे लंबे और मजबूत दो बाँस जिनके सिरे पर मोटी रस्ती का एक कंदा लगा रहता है और जिनका उपयोग कोहू धोने के समय जाट को रोकने और उसे कोहू में से निकाल कर अलग करने में होता है । जाट का ऊपरी भाग इसके फंदे में फँसा दिया जाता है और तब जाट का निचला भाग दोनों बाँसों की सहायता से उठा कर कोहू के ऊपरी भाग पर रख दिया जाता है । (२) एक प्रकार का हरे रंग का कीड़ा जो फसल की डालियाँ और पत्तियाँ खा जाता है । चने की फसल को यह अधिक हानि पहुँचाता है ।

जोरन—संज्ञा पुं० दे० "जोड़न" ।

जोरना—क्रि० स० (१) दे० "जोड़ना" । उ०—रति रण जानि अरुण नृपति थाप नृपति राजति बल जोरति ।—सूर । † (२) जोतना । जानवर को जुप में नथाना ।

जोरा—संज्ञा पुं० दे० "जोड़ा" ।

जोरा जोरी—संज्ञा स्त्री० [फा० जोर] जवारदही । घोंगा धाँगी । क्रि० वि० जवारदही से । पलपूँक ।

जोरावर—वि० [फा०] यत्नवान । ताकतवर । जवरदस्त ।

जोरावरी—संज्ञा स्त्री० [फा०] (१) जोरावर होने का भाव । (२) जवारदही । घोंगा धाँगी ।

जोरिल्ला—संज्ञा पुं० [दे०] एक प्रकार का गंध विलाव ।

जोरी—संज्ञा स्त्री० दे० "जोड़ी" । उ०—(क) स्वर्गसूर ससि करै अजोरी । तेदि ते अधिक देव केहि जोरी ।—जायसी । (ख) द्रुपत है रुहिमयी इयनों के रूपभातु किजोरी । बरके हर्म दिखसो अपने बाह पने की जोरी ।—सूर ।

संज्ञा स्त्री० [फा० जोर] जोरावरी । जवारदही । उ०—जोरी मारि भजत वठरी को जात यमुन के तीर । इक धावत पीछे उन ही के पायत नहीं अथीर ।—सूर ।

जोरू—संज्ञा स्त्री० [हिं० जोड़ा] स्त्री । पत्नी । भाय्या । पत्न्याली ।

धो०—जोरू जाता = यहूदी । परिवार । पर वार ।

जोलहा—संज्ञा पुं० दे० "जुलाहा" ।

जोलाहल †—संज्ञा स्त्री० [हिं० बला] ज्वाला । अग्नि । धाम । उ०—रोम रोम पावक शिखा करी जोलाहल जोर ।—रघुराज ।
जोलाहा—संज्ञा पुं० दे० "जुलाहा" ।

जोली † संज्ञा स्त्री० [हिं० जोड़ी] वह जो वराचरी का हो । जोड़ । जोड़ी ।

यौ०—हमजोली ।

संज्ञा स्त्री० [हिं० भोली] (१) जाली या किरमिच आदि का बना हुआ एक प्रकार का लटकता विस्तर जिसके दोनों सिरों पर श्रवण की तरह कई रस्तियाँ होती हैं । दोनों ओर की ये रस्तियाँ दो कड़ियों में बँधी होती हैं और दोनों कड़ियाँ दो तरफ खटियों आदि में लटका दी जाती हैं । धीच का विस्तरवाला हिस्सा लटकता रहता है जिस पर आदमी सोते हैं । इसका व्यवहार प्रायः जहाजी लोग जहाजों में करते हैं । (लश०) । (२) वह रस्मी जो तुफान के समय जहाजों के पाल चढ़ाने या उतारने के काम में आती है । (लश०) । (३) एक प्रकार की गाँठ जो रस्ते के सिरे पर बसकी लड़ों से बनाई जाती है ।

जोवना †—क्रि० सं० [सं० जुष्य = सेवन] (१) जोहना । देपना । ताकना । (२) हँडना । तलाश करना । (३) आसरा देवना । रास्ता देखना ।

जोवारी—संज्ञा स्त्री० [दे०] एक प्रकार की मूँना जिसका रंग बहुत चमकीला होता है । यह बहुत अच्छी तरह कई प्रकार की बोलियाँ बोल सकती है, इसी लिये लोग इसे पालते और बोलना सिखाने हैं । यह शत्रुपरिवर्तन के अनुसार निज निज देशों में घूम करती है । फूलों और अनाजों को यह बहुत हानि पहुँचाती है और टिड्डियों का खूब नाश करती है । इसके अंशे बिना चित्ती के और नीले रंग के होते हैं । इसका मांस खाने में बहुत स्वादिष्ट होता है ।

जोश—संज्ञा पुं० [फा०] (१) किसी तरल पदार्थ का आँच या गरमी के कारण उबलना । उफान । उबाल ।

मुहा०—जोश खाना = उबलना । उफनना । खौलना । जोश देना = पानी के साथ उबलना । जैसे, इस दवा को जोश देकर पीओ ।

यौ०—जोशादा = क्वाप । फाड़ा ।

(२) चित्त की तीव्र वृत्ति । मगवेश । आवेश । जैसे, उन्होंने जोश में आकर बहुत ही उलटी सीधी बातें कह डालीं ।

मुहा०—जोश में आना = उत्तेजित हो उठना । आवेश में आना । खून का जोश = प्रेम का यह वेग जो अपने यश या कुल के किसी मनुष्य के लिये उत्पन्न हो । जैसे, खून के जोश ने उन्हें रहने न दिया, वे अपने भाई की मदद के लिये बठ दौड़े ।

यौ०—जोश स्रोश = अधिक आवेश ।

जोशन—संज्ञा पुं० [फा०] (१) सुनाओं पर पहनने का चाँदी या सोने का एक प्रकार का गहना जिसमें छः पहलू या अष्ट पहलूवाले लंबोतरे पाले दानों की पाँच, छः या सात जोड़ियों लंबाई में रेशम या सूत आदि के डोरे में पिरोई रहती

दोनों बाँधों पर दो जोयन पहने जाते हैं । (२) जिह्व बक-तर । कवच । चार आईना ।

जोशादा—संज्ञा पुं० [फा०] दवा के काम के लिये पानी में ब्याली हुई जड़ या पत्तियाँ आदि । क्वाप । फाड़ा ।

जोशी—संज्ञा पुं० दे० “जोशी” ।

जोशीला—वि० [फा० जोग + ईला (प्रत्य०)] जोश से भरा हुआ । जिसमें खूब जोश हो । आवेगपूर्ण । जैसे, उन्होंने कब बड़ी जोशीली बकूता दी थी ।

जोप—[सं०] (१) मीति । प्रेम । (२) सुख । आराम । (३) सेवा ।

संज्ञा स्त्री० [सं० येषा] स्त्री । नारी ।

संज्ञा स्त्री० दे० “जोष” । उ०—पढ़ न पातिक चिन कबहुँ मिय पयोद के दोष । सुलसी प्रेम पयोधि की तातें माप न जोप ।—तुलसी ।

जोषक—संज्ञा पुं० [सं०] सेवक ।

जोषण—संज्ञा पुं० [सं०] (१) मीति । प्रेम । (२) सेवा ।

जोषा—संज्ञा स्त्री० [सं०] नारी । स्त्री ।

जोषिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] स्त्री । नारी । औरत ।

जोषी—संज्ञा पुं० [सं० ज्योतिषी] (१) गुजराती ब्राह्मणों की एक जाति । (२) महाराष्ट्र ब्राह्मणों की एक जाति । (३) पहाड़ी ब्राह्मणों की एक जाति । (४) ज्योतिषी । गणक । (५) उ० ।

जोस †—संज्ञा पुं० दे० “जोश” ।

जोह †—संज्ञा स्त्री० [हिं० जोहना] (१) खोज । तलाश ।

क्रि० प्र०—लगाना ।

(२) इंतजार । प्रतीक्षा । (३) नजर । दृष्टि, विरोधतः कृपा-युक्त दृष्टि ।

क्रि० प्र०—रखना ।

जोहड़—संज्ञा पुं० [दे०] कच्चा तालाब ।

जोहन † *—संज्ञा स्त्री० [हिं० जोहना] (१) देखने या जोहने की क्रिया । उ०—सधन कला तह तर मनमोहन । दक्षिण चरन चरन पर दीन्हें तनु त्रिभंग मृदु जोहन ।—सूर । (२) तलाब । खोज । हँड । (३) प्रतीक्षा । इंतजार ।

जोहना—क्रि० सं० [सं० जुष्य = सेवन] (१) देखना । अवलोकन करना । ताकना । निहारना । उ०—(क) दर्पन शाह भीत तहँ लाब । देखें जोहि करोले थावा ।—जायसी । (ख) जो सय ठौर खँम हू होहि । कथो प्रह्लाद आहि तूँ जोहि ।—सूर । (२) खोजना । हँडना । पता लगाना । उ०—शकद्वीप तेहि आगे सोहा । दक्षिण लख योजन कर जोहा ।—विभ्राम । (३) राह देखना । इंतजार देखना । प्रतीक्षा करना । आसरा देपना । उ०—फूलन सेजरिया कोहरिया विष्टोले बलविरया जोहला तोरी बाट ।—बखशीर ।

जोहार—संज्ञा स्त्री० [दे०] बायली । छोटा तालाब ।
 जोहार—संज्ञा स्त्री० [सं० सुषय = सेवन] अग्निवादन । घंटन ।
 प्रथम । नमस्कार । व०—हुक हुक बाय भोगे सकल तुषति
 पै मानै सब साय कीन्दे जोहारी ।—सूर ।
 संज्ञा पुं० दे० "जोहार" ।
 जोहारना—कि० अ० [हिं०] प्रथम या नमस्कार आदि करना ।
 अग्निवादन करना ।

जौं—अव्य० [सं० यदि] यदि । जो ।
 कि० वि० दे० "जो" ।
 जौकना—कि० सं० [अ०] नीव नीव । बटना । डपटना । क्रुद्ध
 होकर ऊँचे स्वर से कुद्द करना ।

जौची—संज्ञा स्त्री० [दे०] गेहूँ का जौ की फसल का एक रोग
 जिससे बाल काली हो जाती है और इसमें दाने नहीं पड़ते ।
 जौडारा—संज्ञा पुं० दे० "जौता" ।
 जौरा मौरा—संज्ञा पुं० [हिं० मुँदर, मुँदरा] किले या महलों के
 भीतर का बंद गहरा तहखाना जिसमें गुप्त खजाना आदि
 रहता है ।
 संज्ञा पुं० [हिं० जेडा + भीर] दो बालकों का जोड़ा । दो
 रस्वों का जोड़ा । (प्यार का शब्द)

जौरा—कि० वि० [का० जार] निकट । समीप । आसपास ।
 जौ—संज्ञा पुं० [सं० जव] (१) चार पाँच महीने रहनेवाला एक पौधा
 जिसके बीज या दाने की गिनती अनाजों में है । यह पौधा
 पृथ्वी के प्रायः समस्त वृष्य तथा समप्रकृतिस्थ स्थानों में
 होता है । भारतवर्ष में यह मैदानों के अतिरिक्त पहाड़ों पर
 भी १४००० फुट की ऊँचाई तक होता है । इसकी पौष्टिक
 कातिक अग्रहण में होती है और कटाई फागुन चैत में होती
 है । इसका पौधा थिलकुल गेहूँ का सा होता है । अंतर
 इतना होता है कि इसमें जड़ के पास से यहूत से बंटल
 निकलते हैं जिन्हें कभी कभी झुट कर अलग करना पड़ता
 है । इसमें हँददार बाल लगी है जिसमें केसल के साथ विल-
 कुल चिबूके हुए दाने पंक्तियों में गुड़े रहते हैं । दानों के
 ऊपर का कोश कठिनाई से अलग होता है, इसी से यह
 अनाज केवल सहित विकता है, पर कामरौरी में एक प्रकार
 का जौ ग्रिम नाम का होता है जिसके दाने गेहूँ की तरह
 चोरा से अलग रहते हैं । गेहूँ के समान इसके भी आटे का
 व्यवहार होता है । सूखे हुए पौधे का भूसा होता है जो
 पौषाओं के राने के काम में आता है । युरोप में और अरब
 भारतवर्ष के भी कई स्थानों में जौ से एक प्रकार की सराब
 बनाई जाती है । जौ कई प्रकार के होते हैं । इस अन्न के
 मनुष्य जाति अत्यंत प्राचीन काल से जानती है । वेदों में
 इसका उल्लेख आरार है । अरब भी हवन आदि में इस अन्न
 का व्यवहार होता है । ईसा से २००० वर्ष पहले चीन के

यादशाह सिंगन ने जिन पाँच अन्नों को बोधायना या उनमें
 एक जौ भी था । ईसा से १०१२ वर्ष पहले सुलेमान याद-
 शाह के समय में भी जौ का प्रचार खूब था । मध्य एशिया
 के करदंग नामक स्थान के खँदर के नीचे दूबे हुए जौ स्टीन
 साहब को मिले थे । इस खँदर के स्थान पर सातवीं
 शताब्दी में एक अछूता नगर था जो बालू में दब गया ।
 वैद्यक में जौ तीन प्रकार के माने गए हैं, शूक, निःशूक और
 हरित वर्ण । शूक को यव, निःशूक को अतिथव और हरे
 रंग के जौ को श्लोक्य कहते हैं । जौ शीतल, रुखा, धीर्य-
 यर्द्धक, मलरोधक तथा पित्त और कफ को दूर करनेवाला
 माना जाता है । यव से अतिथव और अतिथव से श्लोक्य
 हीन गुणवाला माना जाता है ।

पथ्यां—अव्य० । मेष्य । सितशूक । दिव्य । अचत । कंचुकि ।
 धान्यराज । तीक्ष्णशूक । तुंगाम्रिय । शकु । ह्येष्ट ।
 पथिन धान्य ।
 (२) एक पौधा जिसकी लचीली टहनियों से पंजाब में टोकरे
 काजू आदि बनते हैं । मध्य एशिया के प्राचीन खँदरों में
 मकान के परदों के रूप में इसकी छतियाँ पाई गई हैं ।
 (३) एक लौह जो ६ राई (सरदल) के बराबर मानी
 जाती है ।
 अथ्य० [सं० यद्] यदि । अग्र । व०—जौ लरिका कछु
 अनुचित करवाँ । गुर पितु मातु मेद मन भरही ।—तुलसी ।
 कि० वि० जव ।

पौ—जौ लौं, जौ लगी, जौ लहि = जव तक ।
 जोकराई—संज्ञा स्त्री० [हिं० जो + करार] मटर मिला हुआ जौ ।
 जोख—संज्ञा पुं० [उ० जूक] कुंड । जलवा । फौज । सेना । समूह ।
 भीड़ । पक्षियों की घोषी । आदिमियों की गोल । व०—यनी
 गौरव ये जौख की मौल सोई । पताकानुकेकी पिकी ही
 छोई ।—सूदन ।
 जौगड़या—संज्ञा पुं० [जौगड़ = कोई स्थान] एक प्रकार का
 धान जो अग्रहण के महीने में तैयार होता है । इसका धानवल
 सैकड़ों वर्ष तक रह सकता है ।

जौघनी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] चना मिला हुआ जौ ।
 जौजा—संज्ञा स्त्री० [अ० जौक] जौक । भाव्या । पत्नी ।
 जौतुक—संज्ञा पुं० दे० "जौतुक" ।
 जौथिक—संज्ञा पुं० [सं०] तख़्तार वा पत्त के ३२ धारों में से
 एक । व०—उष्टत प्रथित जौथिक प्रथित ये हाय जानी
 बक्षिती ।—सघुरान ।
 जौना—सर्व [सं०] जो ।
 वि० जो । व०—जौन टार मोहिं आज्ञा होई । ताहि टार
 रीदों में जोई ।—सूर
 संज्ञा पुं० दे० "जवन" ।

जीनाल-संज्ञा स्त्री० [सं० दन् + नास] यह जमीन जिस पर जो
छादि रयी की फसल बोई जाय। रयी का खेत।

जीनह*—संज्ञा स्त्री० दे० "जोन्ह"।

जोपै*—अव्य० [हिं० जो + पै] धगर। यदि।

जोवन*—संज्ञा पुं० दे० "जोवन"।

जौम-संज्ञा पुं० दे० "जौम"।

जौरा-संज्ञा पुं० [हिं० जूरा] यह अनाज जो गावों में नाऊ यात्री
छादि पौनियों को इनके काम के बदले में दिया जाता है।

संज्ञा पुं० [सं० यथा + वेर] बड़ा रस्ता।

जौलार्ह-संज्ञा स्त्री० दे० "जुलार्ह"।

जौलाऊ-संज्ञा पुं० [हिं० जौलाऊ = जारह] प्रति रूपया चारह पैसे।
की रूपया तीन आना। (दखाली)।

जौलाय-वि० [।] चारह। (दखाल)।

जौशान-संज्ञा पुं० [फा०] बाहु पर पहनने का एक आभूषण।
दे० "जौशान"।

जौहर-संज्ञा पुं० [फा० गोहर का पत्थी रूप] (१) रत्न। बहुमूल्य
पत्थर। (२) सार वस्तु। सरास। सत्त्व।

क्रि० प्र०—निकाजना।

(३) तलवार या और किसी लोहे के चारदार हथियार पर
वे सूक्ष्म चिह्न या धारियाँ जिनसे लोहे की वस्तुता प्रकट
होती है। हथियार की झोप। (४) गुण। विशेषता। उत्त-
मता। खूबी। सारीफ की बात। शकप। जैसे, (क) धुलने
पर हस कपड़े का जौहर देखिएगा। (ख) मैदान में वे अपना
जौहर दिखावेंगे।

क्रि० प्र०—दिखाना।

मुहा०—जौहर खुलना = (१) गुण का विकास होना। गुण
प्रकट होना। खूबी जाहिर होना। (२) कतव्य प्रकट होना।
भेद खुलना। गुप्त कार्याई जाहिर होना। जौहर खोलना =
गुण प्रकट करना। उत्कर्ष दिखाना। खूबी जाहिर करना।
कतव्य दिखाना।

संज्ञा पुं० [हिं० जीव + हर] (१) राजपूतों में युद्ध समय की
एक प्रथा जिसके अनुसार नगर या शहर में शत्रु-प्रवेश का
निरोध होने पर उनकी खियाँ और बच्चे दहकती हुई चिता
में जल जाते थे।

विदोष—राजपूत लोग जब देखते थे कि वे शत्रु की रक्षा न कर
सकेंगे और शत्रुओं का अवरण अधिकार होगा तब वे अपनी
खियाँ और बच्चों से विदा लेकर और उन्हें दहकती चिता
में भस्म होने का आदेश देकर धाप युद्ध के लिये सुसज्जित
होकर निकल पड़ते थे। खियाँ भी शत्रु करके बड़े भारी
दहकते कुंड में डूब कर प्राण विसर्जन करती थीं। प्रसिद्ध
है कि जब अकबराद्दीन ने चिचौरगढ़ को घेरा था तब महारानी
पद्मिनी सोलह हजार खियाँ को लेकर भस्म हुई थीं। इसी
प्रकार जब जैसलमेर का दुर्ग घिरा था तब नगर की समस्त

खियाँ और बच्चे अर्थात् २४००० प्राणियों के क्षयभोग क्षय
भर में जल गये थे।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

मुहा०—जौहर होना = चिता पर जल मरना। उ०—जौहर
भँडू सब खीं पुरुष भए संग्राम।—जायसी।

(२) आत्महत्या। प्राणत्याग।

क्रि० प्र०—करना।

(३) यह चिता जो दुर्ग में खियाँ के जलने के लिये बनाई
जाती है। उ०—(क) जौहर कर साजा रनिवासू। जेहि सत
हिये कहां सेहि धाँसू।—जायसी। (ख) भवहूँ जौहर
सजि के कीन्ह चहौं बजियार। होरी खेवउ रन कठिन
कोउ न समेटै छार।—जायसी।

क्रि० प्र०—साजना।

जौहरी-संज्ञा पुं० [फा०] (१) हीराक्षाल छादि बहुमूल्य पत्थर
बँचनेवाला। रत्नविक्रेता। (२) रत्न परखनेवाला। रत्नों
की परीक्षा जाननेवाला। जवाहिरात की पहचान रखनेवाला।
पारखी। परखैया। जँचवैया। (३) किसी वस्तु के गुण दोष
की पहचान रखनेवाला। (४) गुण का चादर करनेवाला।
गुणप्राहक। कुददान।

ज्ञ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) ज्ञान। बोध। (२) ज्ञानी। जाननेवाला।
जैसे, शाश्वत। (३) प्रज्ञा। (४) बुध प्रह। (५) सांख्य
के अनुसार निष्क्रिय निर्वािकार पुरुष जिसको जान लेने से
बंधन फट जाते हैं। (६) मंगल ग्रह। (७) ज और न के
संयोग से बना हुआ संयुक्त अक्षर।

ज्ञापित-वि० [सं०] (१) जाना हुआ। (२) मारा हुआ। (३)
तुट किया हुआ। (४) तेज किया हुआ। चौहा किया
हुआ। (५) जिसकी स्तुति या प्रशंसा की गई हो।

ज्ञप्त-वि० [सं०] जाना हुआ।

ज्ञप्ति-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) जानकारी। (२) बुद्धि। (३)
मारण। (४) तोषण। तुष्टि। (५) स्तुति। (६) जलने
की क्रिया।

ज्ञवार-संज्ञा पुं० [सं०] बुधवार। बुध का दिन।

ज्ञा-संज्ञा स्त्री० [सं०] जानकारी।

ज्ञात-वि० [सं०] विदित। जाना हुआ। अवगत। मालूम।

संज्ञा पुं० ज्ञान।

ज्ञातनेदून-संज्ञा पुं० [सं०] जैनों के तीर्थंकर महावीर स्वामी का
एक नाम।

ज्ञान धौबना-संज्ञा स्त्री० [सं०] सुग्धा नायिका का एक भेद।
यह सुग्धा नरयिका जिसे अपने जीवन का ज्ञान हो। इसके
दो भेद हैं—नवोद्या और विश्रय नवोद्या।

ज्ञातव्य-वि० [सं०] जो जाना जा सके। जिसे जानना हो अथवा
जिसको जानना उचित हो। ज्ञेय। वेद्य। बोधगम्य।

विशेष—श्रुति उपनिषद् आदि में आत्मा ही को एक मात्र ज्ञातव्य माना है। उसे जान लेने से फिर कुछ जानना बाकी नहीं रह जाता।

ज्ञाता—वि० [सं० ज्ञात, ज्ञाता] [खी० ज्ञानी] जाननेवाला। ज्ञान रचनेवाला। जानकार।

ज्ञाति—संज्ञा पुं० [सं०] एक ही गोत्र या वंश का मनुष्य। गोती। भाई बंधु। बांधव। सपिंड समानोदक आदि। जैसे, चचा, चचेरा भाई आदि। उ०—(क) तो मोहि मिले ज्ञात घर अपने में यूँकी तब जात। हँसि हँसि दीरी मिले अंकम भरि हम सुम एक ज्ञाति।—सूर। (ख) अहिर जाति घोड़ी मति कीन्ही। अपनी ज्ञाति प्रकट करि दीन्ही।—सूर।

ज्ञातिपुत्र—संज्ञा पुं० [सं०] (१) गोत्र का पुत्र। (२) जैन तीर्थंकर महावीर स्वामी का नाम।

ज्ञातृत्व—संज्ञा पुं० [सं०] जानकारी। अभिज्ञाता।

ज्ञान—संज्ञा पुं० [सं०] (१) वस्तुओं और विषयों की वह भावना जो मन वा आत्मा को है। बोध। जानकारी। प्रतीति।

क्रि० प्र०—होना।

विशेष—व्याप्य आदि दर्शनों के अनुसार जब विषयों का इंद्रियों के साथ, इंद्रियों का मन के साथ और मन का आत्मा के साथ संबंध होता है तभी ज्ञान उत्पन्न होता है। मान लीजिए कि कहीं पर एक घड़ा रखा है। इंद्रियों ने उस घड़े का साक्षात्कार किया, फिर उस साक्षात्कार की सूचना मन को दी। फिर मन ने आत्मा को सूचित किया और आत्मा ने निश्चित किया कि यह घड़ा है। ये सब व्यापार इतने शीघ्र होते हैं कि इनका अनुमान नहीं हो सकता। एक ही साथ दो विषयों का ज्ञान नहीं हो सकता, ज्ञान सदा अयोग्य रहता है। जैसे यदि मन एक ओर है और हमारे शरीर किसी दूसरी वस्तु की ओर है तो इस दूसरी वस्तु का ज्ञान नहीं होगा। न्याय में जो प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान और शब्द, चार प्रमाण माने गए हैं वही के द्वारा सब प्रकार का ज्ञान होता है। वस्तु, अथवा आदि इंद्रियों द्वारा जो ज्ञान होता है वह प्रत्यक्ष कहलाता है। व्याप्य पदार्थ को देख व्यापक पदार्थ का जो ज्ञान होता है उसे अनुमान कहते हैं। कभी कभी एक वस्तु (व्याप्य) के होने से दूसरी वस्तु (व्यापक) का अभाव नहीं हो सकता ऐसे अवसर पर अनुमान से काम लिया जाता है, जैसे धुएँ को देख कर अग्नि होने का ज्ञान। अनुमान तीन प्रकार का होता है—पूर्ववत्, शेषवत् और सामान्यतोऽपेक्ष। कारण को देख कार्य के अनुमान को पूर्ववत् (व्याकारणलिंगक) अनुमान कहते हैं; जैसे पार्लों का उमड़ना देख होनेवाली धुटि का ज्ञान। कार्य को देख कारण के अनुमान को शेषवत् (या कार्यलिंगक) अनुमान कहते हैं। जैसे, नदी का अन्त बढ़ता हुआ देख धुटि

का ज्ञान। व्याप्य को देख व्यापक के ज्ञान को सामान्यतोऽपेक्ष अनुमान कहते हैं। जैसे, धुएँ को देख अग्नि का ज्ञान, पूर्ण चंद्रमा को देख शुक्ल पक्ष का ज्ञान इत्यादि। प्रसिद्ध वा शत वस्तु के साधर्म्य द्वारा जो दूसरी वस्तु का ज्ञान कराया जाता है उसे उपमान कहते हैं। जैसे, गाय ही के देखी मील गाय होती है। दूसरों के कथन या शब्द के द्वारा जो ज्ञान होता है उसे शब्द कहते हैं। जैसे, गुण का उपदेश आदि। सांख्य प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द—ये तीन ही प्रमाण मानता है, उपमान को इनके श्रेष्ठतम मानता है। ज्ञान दो प्रकार का होता है—प्रमा अर्थात् यथार्थ ज्ञान और अप्रमा अथवायथं ज्ञान। वेदंति में ब्रह्म को ही ज्ञान स्वरूप माना है अतः उसके अनुसार प्रत्येक का ज्ञान प्रत्यक्ष प्रत्यक्ष नहीं हो सकता। एक वस्तु से दूसरी वस्तु में वा एक के ज्ञान से दूसरे के ज्ञान में जो विभिन्नता दिखाई देती है वह विषय रूप उपाधि के कारण है। वास्तविक ज्ञान एक ही है जिसके अनुसार सब विभिन्न दिखाई पड़नेवाले पदार्थों के बीच में केवल एक चिह्न स्वरूप सत्ता वा ब्रह्म का ही बोध होता है।

पारवाच्य दर्शन में भी विषयों के साथ इंद्रियों के संयोग रूप प्रत्यक्ष ज्ञान को ही ज्ञान का मूल वा प्रथम रूप माना है। किसी एक वस्तु के ज्ञान के लिये भी यह भावना आवश्यक है कि वह वस्तु कुछ वस्तुओं के समान और कुछ वस्तुओं से भिन्न है, अर्थात् बिना साधर्म्य और वैषम्य की भावना के किसी प्रकार का ज्ञान होना असंभव है। इस साक्षात्कार रूप ज्ञान से थाने चलकर सिद्धांत रूप ज्ञान के लिये संयोग, सहकालत्व आदि की भावना भी आवश्यक है। जैसे, 'वह पेड़ नदी के किनारे है' इस बात का ज्ञान केवल 'पेड़' 'नदी' और 'किनारा' का साक्षात्कार मात्र नहीं है बल्कि इन तीन प्रयोग भावों का समाहार है।

प्राथमिक विज्ञान के अनुसार खोपड़ी के भीतर जो मज्जा-तंतु जाल (नाड़ियाँ) और कोश हैं, चेतन व्यापार दर्शनों की क्रिया से संबंध रखते हैं। इनमें क्रिया को प्रहय करने और उत्पन्न करने दोनों की शक्ति है। इंद्रियों के साथ विषयों के संयोग द्वारा संचालन नाड़ियों के द्वारा भीतर की ओर जाता है और कोशों को प्रोत्साहित करके परमाणुओं में बदलना उत्पन्न करता है। भूतवादिभेद के अनुसार इन्हें नाड़ियों और कोशों की क्रिया का नाम ही चेतना है, पर अधिकांश लोग चेतना को एक स्वतंत्र शक्ति मानते हैं।

क्रि० प्र०—होना।

मुहा०—ज्ञान दर्शन = अन्तरी विद्या वा जानकारी प्रकट करने के लिये संकीर्ण, चौड़ी बातें करना।

(२) यथावेदान् । सम्यक्ज्ञान । तत्त्वज्ञान । आत्मज्ञान । प्रमा । केवलज्ञान ।

विशेष—मीमांसा को छोड़ प्रायः सब दर्शनों ने ज्ञान से मोच माना है । न्याय में ज्ञान द्वारा मिथ्या ज्ञान का नाश, मिथ्या ज्ञान के नाश से दोष का नाश, दोष न रहने पर प्रकृति से निवृत्ति, प्रकृति के नाश से जन्म से निवृत्ति और जन्म की निवृत्ति से दुःख का नाश और दुःख के नाश से मोच माना है । सांख्य ने पुरुष और प्रकृति के बीच विवेक ज्ञान प्राप्त होने से जय प्रकृति हट जाती है तब मोच का होना बतलाया है । वेदांत का मोच ऊपर लिखा जा चुका है ।

ज्ञानकांड-संज्ञा पुं० [सं०] वेद के तीन कांडों वा विभागों में से एक जिसमें ब्रह्म आदि सूक्ष्म विषयों का विचार है । जैसे, उपनिषद् ।

ज्ञानकृत-वि० [सं०] जो (पाप) जान बूझ कर किया गया हो, भूल से न हुआ हो ।

विशेष—ज्ञानकृत पापों का प्रायश्चित्त द्वां लिखा गया है ।

ज्ञानगम्य-संज्ञा पुं० [सं०] ज्ञान की पहुँच के भीतर । जो जाना जा सके ।

ज्ञानगोचर-वि० [सं०] ज्ञानद्वियों से जानने योग्य । ज्ञानगम्य ।

ज्ञानतः-क्रि० वि० [सं०] जान बूझ कर । जानकारी में । समझ बूझ कर ।

ज्ञानदग्धदेह-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो चतुर्षु आश्रम में हो । संन्यासी ।

विशेष—सृष्टियों में लिखा है कि संन्यासी जीवित अवस्था ही में देह अर्थात् सुख दुःख आदि को ज्ञान द्वारा दग्ध कर डालता है, अतः मृत्यु होने पर उसके दाह कर्म की आवश्यकता नहीं । उसके शरीर को एक गड्ढा खोद कर प्रणव मंत्र के उच्चारण के साथ गाड़ देना चाहिए ।

ज्ञानदाता-संज्ञा पुं० [सं०] ज्ञानदाता । ज्ञान देनेवाला मनुष्य । गुरु ।

ज्ञानप्रस-संज्ञा पुं० [सं०] एक तपागत का नाम ।

ज्ञानमद-संज्ञा पुं० [सं०] ज्ञान का अस्मिमान । ज्ञानी वा ज्ञानकार होने का धर्म ।

ज्ञानमुद्रा-संज्ञा स्त्री० [सं०] तंत्रसार के अनुसार राम की पूजा की एक मुद्रा जिसमें दाहिने हाथ की तर्जनी को अंगुलि से मिलाकर हृदय में रखते हैं और बाएँ हाथ की उँगलियों को कमल संपुट के आकार की करके उनसे सिर से छेकर बाएँ जंघे तक रचा करते हैं ।

ज्ञानयज्ञ-संज्ञा पुं० [सं०] ज्ञान द्वारा अपनी आत्मा का परमात्मा में हवन अर्थात् आत्मा और परमात्मा का संयोग वा अभिदशन । महज्ञान ।

ज्ञानयोग-संज्ञा पुं० [सं०] ज्ञान की प्राप्ति द्वारा मोच का साधन । व०—एक ज्ञानयोग विस्तर । ब्रह्म ज्ञान सत्रमें विस्तार ।—सूर ।

ज्ञानलक्षण-संज्ञा स्त्री० [सं०] न्याय में अलौकिक प्रत्यक्ष का एक भेद ।

विशेष—नैर्वायिकों ने प्रत्यक्ष के दो भेद माने हैं, लौकिक और अलौकिक । अलौकिक प्रत्यक्ष के तीन भेद हैं, समान लक्षण, ज्ञानलक्षण, और योगत । ज्ञानलक्षण वह है जिसमें विशेषण के ज्ञात होने पर विशेष्य का ज्ञान होता है । जैसे घटत्व का ज्ञान होने पर घट शब्द से घटे का ज्ञान ।

ज्ञानयान्-वि० [सं०] जिसे ज्ञान हो । ज्ञानी ।

ज्ञानवृद्ध-वि० [सं०] ज्ञान में वृद्ध । जिसकी जानकारी अधिक हो ।

ज्ञानसाधन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) इंद्रिय । (२) ज्ञानप्राप्ति का प्रयत्न ।

ज्ञानाकर-संज्ञा पुं० [सं०] बुद्ध ।

ज्ञानावरण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) ज्ञान का पद । ज्ञान का बाधक । (२) वह पाप कर्म जिससे ज्ञान का पर्याप्त लाभ जीव को नहीं होता । यह पाँच प्रकार का है, १—अभिज्ञानावरण । २—श्रुत-ज्ञानावरण । ३—अधभिज्ञानावरण । ४—मान-पर्याय-ज्ञानावरण । ५—केवल-ज्ञानावरण । (जैन) ।

ज्ञानावरणीय कर्म-संज्ञा पुं० दे० "ज्ञानावरण" ।

ज्ञानासन-संज्ञा पुं० [सं०] रुद्रयामल के अनुसार योग का एक आसन जिससे योगाभ्यास में शीघ्र सिद्धि होती है । इसमें दहिनी जाँघ पर बाएँ पैर के तलवे को और बाईं जाँघ पर दहिने पैर के तलवे को रखना पड़ता है । इससे पैर की नसें टोली हो जाती हैं ।

ज्ञानी-वि० [सं०] ज्ञानिन् । (१) जिसे ज्ञान हो । ज्ञानवाद् । ज्ञानकार । (२) आत्मज्ञानी । महज्ञानी ।

ज्ञानेंद्रिय-संज्ञा स्त्री० [सं०] वे इंद्रियाँ जिनसे जीवों को विषयों का बोध होता है । ज्ञानेंद्रियाँ ५ हैं—दृशेन्द्रिय, श्रवणेंद्रिय, शार्णेंद्रिय, रसना और स्पर्शेंद्रिय । इन इंद्रियों के गोलक वा धावार क्रमशः आँख, कान, नाक, जीभ और त्वक् हैं । इन पाँचों के अतिरिक्त कोई कोई छठी इंद्रिय मन वा अंतःकरण मानते हैं पर मन केवल ज्ञानेंद्रिय नहीं है कर्मेन्द्रिय भी है, अतः उसे दार्शनिकों ने उभयात्मक माना है ।

ज्ञापक-वि० [सं०] (१) जतानेवाला । जिससे किसी बात का बोध हो या पता चले । सूचक । सूचक । (वस्तु) । (२)

यतानेवाला । सूचित करनेवाला । (व्यक्ति) ।

ज्ञापन-संज्ञा पुं० [सं०] [वि०] ज्ञापित, ज्ञाय । जताने या बताने का कार्य ।

शापित- [सं०] जताया हुआ । पताया हुआ । सूचित ।
 झं य- [सं०] (१) जिसका जानना योग्य वा कर्तव्य हो । जानने योग्य ।

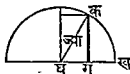
विद्योप-—ब्रह्मज्ञानी लोग एक मात्र ब्रह्म ही को ज्ञेय मानते हैं, जिसको जाने बिना मोक्ष नहीं हो सकता ।

(२) जो जाना जा सके । जिसका जानना संभव हो ।

ज्या-संज्ञा श्री० [सं०] (१) धनुष की ढोरी । (२) वह रेखा जो किसी चाप के एक सिरे से दूसरे सिरे तक हो ।



(३) वह रेखा जो किसी चाप के एक सिरे से उस व्यास पर लंब रूप से गिरी हो जो चाप के दूसरे सिरे से होकर गया हो ।



(४) त्रिकोणमिति में केंद्र पर के कोण के विचार से ऊपर वतबाई हुई रेखा (क ग) और त्रिज्या (क घ) की नियति ।

(५) पृथ्वी । (६) माता ।

ज्यादसी-संज्ञा श्री० [फा०] अधिकता । बहुतायत । अधिकार्थ ।
 ज्यादा-कि० वि० [फा०] अधिक । बहुत ।

ज्यान-संज्ञा पुं० [फा०] जियान । नुकसान । हानि । घाटा ।

ज्याफत-संज्ञा श्री० [अ० नियुक्त] (१) दावत । भोजन । (२) मेहमानी । शातिष्य ।

क्रि० प्र०—पाना ।—देना ।

ज्यामिति-संज्ञा श्री० [सं०] यह गणित विद्या जिससे भूमि के परिमाण, भिन्न भिन्न क्षेत्रों के क्षेत्रों आदि के परस्पर संबंध तथा रेखा, कोण, तल आदि का विचार किया जाता है ।
 क्षेत्रगणित । रेखागणित ।

विद्योप-—इस विद्या में प्राचीन यूनानियों (यवनों) ने बहुत उन्नति की थी । यूनान देश के प्राचीन इतिहासवेत्ता हेरा-डोटस के अनुसार ईसा से १३३० वर्ष पूर्व सिसोस्ट्रस के समय में मिथ देश में इस विद्या का आविर्भाव हुआ । राज-पर निष्पत्ति करने के लिये जय भूमि को मापने की आवश्यकता हुई तब इस विद्या का सूत्रपात्र हुआ । कुछ लोग कहते हैं कि नील नद के चढ़ाव उतार के कारण लोगों की जमीन की एद मिट जाया करती थी इसीसे यह विद्या निकली गई । इजिप्ट के टीकाकार प्रोबलास ने भी लिखा है कि थेसस ने मिस्र में जाकर यह विद्या सीखी थी और यूनान में प्रचलित

की थी । धीरे धीरे यूनानियों ने इस विद्या में बड़ी उन्नति की । पेथागोरस ने सबसे पहले इसके संबंध में सिद्धांत स्वर किए और कई प्रतिज्ञाएँ निकालीं । फिर तो प्लेटो आदि बनेक विद्वान् इस विद्या के अनुशीलन में लगे । प्लेटो के शनैक शिष्यों ने इस विद्या का विस्तार बढ़ाया, जिनमें मुख्य थारस्तु (थारिस्टाटल) और इडोरोसस थे । पर इस विद्या का प्रधान धाचार्य इड्रिबिड (उकलैदस) हुआ जिसका नाम रेखागणित का पर्याय स्वरूप होगया । यह ईसा से २८८ वर्ष पूर्व जीवित था और इसकंदरिया (थलेगें-दिया जो मिस्र में है) के विद्यालय में गणित की शिक्षा देता था । वास्तव में इड्रिबिड ही यूरप में ज्यामिति विद्या का प्रतिष्ठापक हुआ है और इसकंदरिया ही इस विद्या का केंद्र वा पीठ रहा है । जब अरबवालों ने इस नगर पर अधिकार किया तब भी वहाँ इस विद्या का बड़ा प्रचार था ।

प्राचीन हिंदू भी इस विद्या में बहुत पहले क्रमसर हुए थे । वैदिक काल में आर्यों को यज्ञ की वेदियों के परिमाण आकृति आदि निर्धारित करने के लिये इस विद्या का प्रयोजन पड़ा था । ज्यामिति का आभास शुक्लसूत्र, कात्यायन श्रौत सूत्र, शतपथ ब्राह्मण आदि में वेदियों के निर्माण के प्रकरण में पाया जाता है । इस प्रकार यद्यपि इस विद्या का सूत्रपात भारत में ईसा से कई हजार वर्ष पहले हुआ पर इसमें यहाँ कुछ उन्नति नहीं की गई । यूनानियों के संसर्ग के पीछे ब्रह्म-गुप्त और भास्कराचार्य के प्रयोगों में ही ज्यामिति विद्या का विशेष विवरण देखा जाता है । इस प्रकार जब हिंदुओं का ध्यान यवनों के संसर्ग से फिर इस विद्या की ओर हुआ तब उन्होंने उसमें बहुत से नए निरूपण किए । परिधि और व्यास का सूत्र अनुपात (३° १४१६ : १) भास्कराचार्य को विदित था । इस अनुपात को अरबवालों ने हिंदुओं से सीखा, पीछे इसका प्रचार यूरप में (१२ वीं शताब्दी के पीछे) हुआ ।

ज्यारनां०-कि० अ० दे०—“जियाना”, “जिताना” । उ०—शाये फिरि विम नेह खोमहू न पाये कहुँ सरसाये वातें लैं दिखाये स्वाम ज्यायै ।—प्रिया० ।

ज्यावनां०-कि० उ० दे०—“जिलाना” ।

ज्यूँ०-अव्य० दे०—“ज्यै” ।

ज्येष्ठ-वि० [सं०] (१) बड़ा । जेठा । जैसे, ज्येष्ठ भ्राता । (२)

बृद्ध । बड़ा बृद्ध ।

संज्ञा पुं० (१) जेठ का महीना । यह महीना जिसमें जेठा नक्षत्र में पूर्णिमा का चंद्रमा उदय हो । यह वर्ष का तीसरा और प्रीम अक्षु का पहला महीना है । (२) यह वर्ष जिसमें वृद्धवृत्ति का उदय जेठा नक्षत्र में हो । यह वर्ष कँगनी और तावां को दोष और अशुओं के लिये हानिकारक माना जाता

है। इसमें राजा धर्मेज होता है और श्रेष्ठता जाति, कुल और धन से होती है (बृहत्संहिता), (३) सामगान का एक भेद। (४) परमेस्वर। (५) प्राण।

ज्येष्ठता—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) ज्येष्ठ होने का भाव। बढ़ाई। (२) श्रेष्ठता।

ज्येष्ठवला—संज्ञा स्त्री० [सं०] सद्देई नाम की जड़ी जो औषध के काम में आती है।

ज्येष्ठसामग—संज्ञा पुं० [सं०] अल्पक साम का पढ़नेवाला।

ज्येष्ठसामा—संज्ञा पुं० [सं०] ज्येष्ठ साम वेद का पढ़नेवाला।

ज्येष्ठावु—संज्ञा पुं० [सं०] चायलों का धोवन।

ज्येष्ठा—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) २० नक्षत्रों में से अठारहवाँ नक्षत्र जो तीन तारों से मिलकर कुंडल के धाकार का है। इसके देवता चंद्रमा हैं। (२) वह स्त्री जो औरों की श्रमेजा अपने पति को अधिक प्यारी हो। (३) द्विपकली। (४) मध्यमा ङंगली। (५) गंगा। (६) पद्म पुराण के अनुसार श्रवणक्षत्री-देवी जो समुद्र मंथन पर लक्ष्मी के पहले निकली थीं। जब इन्होंने देवताओं से पूछा कि हम कहाँ निवास करें तब इन्होंने देवताओं से कहा कि जिसके घर में सदा कलह हो, जो नित्य गंदी वा बुरी बातें बकें, जो अशुचि रहे इत्यादि उसके यहाँ रहे। लिंगपुराण में लिखा है कि जब देवताओं में से किसी ने इन को ग्रहण नहीं किया तब दुःसह नामक तेजस्वी ब्राह्मण ने इन्हें पत्नी रूप से ग्रहण किया।

वि० स्त्री० बढ़ी।

ज्येष्ठाश्रम—संज्ञा पुं० [सं०] उत्तमाश्रम। गृहस्थाश्रम।

ज्येष्ठाश्रमी—संज्ञा पुं० [सं०] ज्येष्ठाश्रमिन्। गृहस्थ। गृही।

ज्येष्ठो—संज्ञा स्त्री० [सं०] गृहगोष्ठा। पत्नी। द्विपकली।

ज्यो—कि० वि० [सं० यः + इ] (१) जिस प्रकार। जैसे। जिस ङंग से। जिस रूप से। (अथ गद्य में इस शब्द का प्रयोग अकेले नहीं होता केवल कविता में सादर्य दिखाने के लिये होता है)

उ०—(क) तुलसिदास जगद्व-जवास ज्यों अथन आगि लागे डग्न।—तुलसी। (ख) करी न प्रीति द्यामसुंदर से जन्म हुआ ज्यों हारयो।—सूर।

मुदा—ज्यों लो—(१) किसी न किसी प्रकार। किसी ङंग से। मंभट और बलेड़े के साथ। (२) अरुचि के साथ। अच्छी तरह नहीं। ज्यों लो कर के—(१) किसी न किसी प्रकार। किसी दय से। किसी उपाय से। जित प्रकार हो सके उस प्रकार। जैसे, ज्यों लो कर के उसे हमारे पास लाओ। (२) मंभट और बलेड़े के साथ। दिक्कत के साथ। कठिनाई के साथ। उ०—भस्ते में बढ़ी गहरी आंधी आई ज्यों लो कर के घर पहुँचे। ज्यों का लो—(१) जैसे का तैसा। उसी रूप रंग का। तद्गूर। सट्या। (२) जैसा पहले या वैसा ही। जिसमें कुछ फेर फार वा घटती बढ़ती न हुई है। जिसके साथ

कुछ क्रिया न की गई हो। जैसे, सब काम भो, का लो पर है कुछ भी नहीं हुआ है।

विशेष—वाक्य का संबंध पूरा करने के लिये इस शब्द के साथ 'ल्यो' का प्रयोग होता है पर गद्य में नहीं।

(२) जिस घण्य। जैसे ही। जैसे, (क) ज्यों मैं प्राय नि पानी धरसने लगा है। (ख) ज्यों ही मैं पहुँचा वह उ च चला गया।

विशेष—इस अर्थ में इस शब्द का प्रयोग 'ही' के साथ अधिक होता है।

मुदा—ज्यों ज्यों = जित क्रम से। जिस मात्रा से। जित। उ०—जसुना ज्यों ज्यों लागी यादुन। ल्यो ल्यो सुद्वय मुन कलि भूपहि निदरि लगे वहि काढ़न।—तुलसी।

ज्योतिःशास्त्र—संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिष।

ज्योतिःशिखा—संज्ञा स्त्री० [सं०] लघु गुरु वर्षों की गणना के अनुसार विषम वर्षों के एक भेद जिसके पहले दल में ३२ लघु और दूसरे दल में १६ गुरु होते हैं।

ज्योति—संज्ञा स्त्री० [सं०] ज्योतिष्। (१) प्रकाश। उजला। वृत्ति। (२) अग्निशिखा। लपट। लौ।

मुदा—ज्योति जगना = (१) प्रकाश फैलना। (२) किसी देवता के सामने दीपक जलना।

(३) अग्नि। (४) सूर्य। (५) नक्षत्र। (६) मेघी। (७) संगीत में श्रटताज का एक भेद। (८) अक्षि की पुत्रों के मध्य का वह बिंदु या स्थान जो दूरान का प्रधान साधन है। (९) दृष्टि। (१०) अग्निष्टोम यज्ञ की एक संज्ञा का नाम। (११) विष्णु। (१२) वेदांत में परमात्मा का एक नाम।

ज्योतिक—संज्ञा पुं० दे० 'ज्योतिषी'। उ०—धार धार ज्योतिक से धरी वृत्ति आवै। एक जाइ पहुँचे नहि और एक पठावै।—सूर।

ज्योतिरिग—संज्ञा पुं० [सं०] उग्रन्।

ज्योतिरिगय—संज्ञा पुं० [सं०] उग्रन्।

ज्योतिमैय—वि० [सं०] प्रकाशमय। सुतिपूर्वा। जगन्माता हुआ।

ज्योतिर्लिंग—संज्ञा पुं० [सं०] (१) महादेव। शिव।

विशेष—शिव पुराण में लिखा है कि जब विष्णु की नाभि से ब्रह्मा उत्पन्न हुए तब वे धरणा कर कमलनाभ पर हुए से उभर घूमने लगे। विष्णु ने कहा कि तुम सृष्टि बनाने के लिये उत्पन्न किए गए हो। इस पर ब्रह्मा बहुत क्रुद्ध हुए और कहने लगे कि तुम कौन हो ? मुझसे भी तो कौन कम है। जब दोनों में घोर युद्ध होने लगा तब ब्रह्मा विष्णु के लिये एक कालामि सदाश्रम स्थापित किया जिसके चारों ओर भयंकर ज्वालित फैल रही थी। यह ज्योतिर्लिंग आदि मध्य और श्रंत रहित था। इस काल का नाम

प्राय मन्त्रां विष्णु से शिव को श्रेष्ठ सिद्ध करना ही प्रतीत होता है।

(२) भारतवर्ष में प्रतिष्ठित शिव के प्रधान लिंग जो बारह हैं। वैद्यनाथ माहात्म्य में इन बारह लिंगों के नाम इस प्रकार हैं—सोमनाथ सौराष्ट्र में, महिष्कार्जुन श्रीरीव में, महाकाल उज्जयिनी में, घोकार नर्मदा तट पर (धर्मशेर में), केदार हिमालय में, भीमरंकर ढाकिनी में, विशेश्वर काशी में, श्यंबक गोमती किनारे, वैद्यनाथ चिताभूमि में, नागेश्वर हारका में, रामेश्वर सेतुबंध में, घृष्णेश्वर शिवालय में।

ज्योतिर्लोक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) कालचक्र प्रवृत्तक भ्रुव लोको।

(२) उस लोक के अधिपति परमेश्वर या विष्णु।

चिदोप—भागवत में इस लोक को सप्तभि मंडल से १३ लाख योजन और दूर लिखा है। यहाँ पर उत्तानपाद के पुत्र भ्रुव स्थित हैं जिनकी परिक्रमा इंद्र करण्य प्रभापति तथा मद्र नक्षत्र आदि घराण करते रहते हैं।

ज्योतिर्विद्—संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिष जाननेवाला। ज्योतिषी।

ज्योतिर्विद्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] ज्योतिष विद्या।

ज्योतिर्हस्ता—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा।

ज्योतिश्चक्र—संज्ञा पुं० [सं०] नक्षत्र और राशियों का मंडल।

ज्योतिष—संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह विद्या जिससे शंतिरिष में स्थिर ग्रहों, नक्षत्रों आदि की परस्पर दूरी, गति, परिमाण आदि का निश्चय किया जाता है।

विशेष—भारतीय आर्यों में ज्योतिष विद्या का ज्ञान अत्यंत प्राचीन काल से था। यज्ञों की तिथि आदि निश्चित करने में इस विद्या का प्रयोजन पड़ता था। अथर्व चरन के क्रम का पता बराबर वैदिक ग्रंथों में मिलता है। जैसे—युगपंचु से सृगशिरा (अथर्ववेद), सृगशिरा से रोहिण्यो (पैतरेय ब्रा०), रोहिण्यो से कृत्तिका (तैत्ति० सं०), कृत्तिका से भरणी (वेदांग ज्योतिष)। वैदिकी संहिता से पता चलता है कि प्राचीन काल में वास्तव विद्युवहिन कृत्तिका नक्षत्र में पड़ता था। इसी वास्तव विद्युवहिन से वैदिक वर्ष का आरंभ माना जाता था, पर अथर्व की गणना माघ मास से होती थी। इसके पीछे वर्ष की गणना शारद विद्युवहिन से आरंभ हुई। ये दोनों प्रकार की गणनाएँ वैदिक ग्रंथों में पाई जाती हैं। वैदिक काल में कभी वास्तव विद्युवहिन सृगशिरा नक्षत्र में भी पड़ता था। इसे पंडित बाल गंगाधर तिलक ने अथर्ववेद से अनेक प्रमाण देकर सिद्ध किया है। कुछ लोगों ने निरिचत किया है कि वास्तव विद्युवहिन की यह स्थिति ईसा से ३००० वर्ष पहले थी। अतः इसमें कोई संदेह नहीं कि ईसा से पाँच छ हजार वर्ष पहले हिंदुओं का नक्षत्र अथर्व आदि का ज्ञान या और वे यज्ञों के लिये पत्रा वनाते थे। शारद वर्ष के प्रथम मास का नाम क्रमद्वारा

या जिसकी पूर्णिमा सृगशिरा नक्षत्र में पड़ती थी। इसीसे कृष्ण ने कहा है कि 'महीनों में मैं मारुंशीय हूँ'। प्राचीन हिंदुओं ने भ्रुव का पता भी अथर्व प्राचीन काल में बताया था। अथर्व चरन का सिद्धांत भारतीय ज्योतिषियों ने किसी दूसरे देश से नहीं लिया क्योंकि जय कि इसके संबंध में युरोप में विवाद था उसके सात आठ सौ वर्ष पहले ही भारत-वासियों ने इसकी गति आदि का निरूपण किया था।

वराहमिहिर के समय में ज्योतिष के संबंध में पाँच प्रकार के सिद्धांत इस देश में प्रचलित थे—सौर, पैतामह, वासिष्ठ, पौलिया और रोमक। सौर सिद्धांत संबंधी सूर्य सिद्धांत नामक ग्रंथ किसी और प्राचीन ग्रंथ के आधार पर प्रणीत जान पड़ता है। वराहमिहिर और ब्रह्मगुप्त दोनों ने इस ग्रंथ से सहायता ली है। इन सिद्धांत ग्रंथों में ग्रहों के भुजांश, स्थान, युति, उदय, अस्त आदि जानने की क्रियाएँ सविस्तर दी गई हैं। अर्घा और देवांतर का भी विचार है। पूर्व काल में देवांतर संका वा उग्रयिनी से लिया जाता था। भारतीय ज्योतिषी गणना के लिये पृथ्वी ही को केंद्र मान कर चलते थे और ग्रहों की स्पष्ट स्थिति वा गति लेते थे। इससे ग्रहों की कक्षा आदि के संबंध में उनकी और आज कल की गणना में कुछ श्रंतर पड़ता है।

ग्रहों की घूर्णन पदले २८ नक्षत्रों में ही विभक्त किया गया था। राशियों का विभाग पीछे से हुआ है। वैदिक ग्रंथों में राशियों के नाम नहीं पाए जाते। इन राशियों का यज्ञों से भी कोई संबंध नहीं है। बहुत से विद्वानों का मत है कि राशियों और दिनों के नाम यवन (यूनानियों के) संपर्क से पीछे के हैं। अनेक परिभाषिक शब्द भी यूनानियों से लिए हुए हैं, जैसे होरा, दृक्काण केंद्र, इत्यादि।

ज्योतिष के शास्त्रकाल दो विभाग माने जाते हैं—एक सिद्धांत वा गणित ज्योतिष, दूसरा फलित ज्योतिष। फलित में ग्रहों के शुभ अशुभ फल का निरूपण किया जाता है।

(२) अक्षों का एक संहार वा रोक जिससे चलता हुआ अक्ष निष्कल जाता है। इसका उल्लेख वाल्मीकि रामायण में है।

ज्योतिषिक—संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिष शास्त्र का अध्ययन करनेवाला।
वि०—ज्योतिष संबंधी।

ज्योतिषी—संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिष शास्त्र का जाननेवाला मनुष्य। ज्योतिषविद्। वैद्यज्ञ। गणक।

संज्ञा स्त्री० [सं०] तारा।

ज्योतिष्क—संज्ञा पुं० [सं०] (१) मद्र, तारा, नक्षत्र आदि का समूह। (२) मेघी। (३) चित्रक वृष। चीता (४) गनियारी का पेड़। (५) मेघ पर्वत के एक शृंग का नाम। (६) वैन

मत्तानुसार देवताओं का एक भेद जिसके शंतर्गत चंद्र, तारा, ग्रह, नक्षत्र और श्रक हैं ।

ज्योतिष्का—संज्ञा स्त्री० [सं०] मालकैंगनी ।

ज्योतिष्टोम—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का यज्ञ जिसमें १६ ऋत्विक् होते थे । इस यज्ञ के समापनांत में १२०० गोदान का विधान था ।

ज्योतिषपथ—संज्ञा पुं० [सं०] आकाश ।

ज्योतिष्युज—संज्ञा पुं० [सं०] नक्षत्र-समूह ।

ज्योतिष्मती—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मालकैंगनी । (२) रात्रि ।

(३) एक नदी का नाम । (४) एक प्रकार का वैदिक छंद ।

(५) सारंगी की तरह का एक प्राचीन बाजा ।

ज्योतिष्मान्—वि० [सं०] प्रकाशयुक्त ।

संज्ञा पुं० (१) सूर्य । (२) बृहद्वीप के एक पर्वत का नाम ।

ज्योतीरथ—संज्ञा पुं० [सं०] भूध (जिसके आश्रित ज्योतिश्चक्र हैं) ।

ज्योतीरस—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का रस जिसका उल्लेख वाल्मीकीय रामायण और बृहत्संहिता में है ।

ज्योत्स्ना—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) चंद्रमा का प्रकाश । चंद्रिनी । (२) चंद्रिनी रात । (३) सफेद फूल की तोरई । (४) सैफ ।

ज्योत्स्नाकाली—संज्ञा स्त्री० [सं०] सोम की कन्या जो वरुण के पुत्र पुष्कर की पत्नी थी । (महाभारत)

ज्योत्स्नापिप—संज्ञा पुं० [सं०] चकर ।

ज्योत्स्नावृक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] दीपाधार । दीवट । फलीलसोज ।

ज्योतिस्नका—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) चंद्रिनी रात । (२) सफेद फूल की तोरई ।

ज्योत्स्नी—संज्ञा स्त्री० दे० "ज्योत्स्निका" ।

ज्योनार—संज्ञा स्त्री० [सं०] जेमन = खाना । (१) पका हुआ भोजन ।

रसोई ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

(२) भोज । दावत । उपायुक्त ।

क्रि० प्र०—करना ।—देना ।—होना ।

मुहा०—ज्योनार बैठना = अतिथियों का भोजन करने बैठना ।

ज्योनार लगाना = अतिथियों के सामने रखने के लिये व्यंजनों का क्रम से लगाकर रखना ।

ज्योरा—संज्ञा पुं० [सं०] जीव = जीविका । यह अनाज जो फसल तैयार होने पर गावों में नाइयों चमारों आदि को उनके कामों के बदले में दिया जाता है ।

ज्योरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] जीवा । रस्सी । रज्जु । डोरी ।

ज्योहात—संज्ञा पुं० [सं०] जंज + हात] ब्याजहत्या । जीहर । उ०—

केरा गहि करखि जमुना धार दारिहै, सुन्यो नृप नारि पति

कृप्य मारयो । भई ब्याकुल सवै हेतु रोवन लगौ मरन के

हात ज्योहात विचारयो ।—धूर ।

ज्योहरा—संज्ञा पुं० [सं०] जीव + हर] राजपूतों की एक प्रथा जिसके

अनुसार उन की स्त्रियाँ गड़ के शत्रुओं से चिर जाने पर किता में जल कर भरम हो जाती थीं । दे० "जीहर" ।

ज्यौ—क्रि० वि० दे० "ज्यौ" ।

ज्यौ—अन्व० [सं०] यदि । जो । यदि । उ०—जोन जुगुति पिप

मिलन की धूर मुकुति मोहि दीन । ज्यौ लहियै सँग सजन

तौ धरक नरक हू कीन ।—बिहारी ।

ज्योतिष—वि० [सं०] ज्योतिष-संबंधी ।

ज्योतिषिक—संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिषी ।

ज्योनार—संज्ञा पुं० दे० "ज्योनार" ।

ज्योरा—संज्ञा पुं० दे० "ज्योरा" ।

ज्वर—संज्ञा पुं० [सं०] शरीर की वह गामी या ताप जो स्वाभाविक

से अधिक हो और शरीर की अस्वस्थता प्रकट करे । ताप ।

ख़ुषार ।

विशेष—सुश्रुत, चरक आदि ग्रंथों में ज्वर सप्त रोगों का राज

और आठ प्रकार का माना गया है—घातज, पित्तज, कफज,

घातपित्तज, घातकफज, पित्तकफज, साक्षिपातिक और आगंतुज ।

आगंतुज ज्वर वह है जो चोट लगने, विष खाने आदि के

कारण हो जाता है । इन सप्त ज्वरों के संक्षेप और उपचार

मिश्र मिश्र हैं । ज्वर से उठे हुए, घृष्टा वा मिया आहार

विहार करनेवाले मनुष्य का शेष या रहा सहा देण्ड जब

धायु के द्वारा वृद्धि को प्राप्त होकर आमाशय, हृदय, केश, सिर

और संधि इन पाँच कफ स्थानों का आश्रय लेता है सब

उससे शीतरा, तिजरा और चौथिया आदि विषम ज्वर उत्पन्न

होते हैं । प्रलेपक ज्वर से शरीरस्थ धायु सूख जाती है । जब

कई एक दोष कफ स्थान का आश्रय लेते हैं तब विषय्य

नाम का विषम ज्वर उत्पन्न होता है । विषय्य ज्वर वह है

जो एक दिन न आकर दो दिन बराबर आवे । इसी प्रकार

आगंतुज ज्वर के भी कारणों के अनुसार कई भेद किये गए

हैं जैसे, कामज्वर, क्रोधज्वर, शोकज्वर, भयज्वर इत्यादि ।

ज्वर अपने शारंभ दिन से ७ दिनों तक तरल, १४ दिनों

तक मध्यम, २१ दिनों तक प्राचीन और २१ दिनों के बराबर

जीर्णज्वर कहलाता है । जिस ज्वर का वेग अत्यंत अधिक

हो, जिससे शरीर की कांति विगड़ जाय, शरीर स्थिब्ध हो

जाय, नाड़ी जल्दी न मिले उसे कालज्वर कहते हैं । वैद्यक

में गुड़क विरायता पिपली नीम आदि कटु वषट्पुं उत्र के

दूर करने के लिये दी जाती हैं ।

पारचाय मत के अनुसार मनुष्य के शरीर में स्वाभाविक

गरमी ६८° और ६६° के बीच में होती है । शरीर में

गरमी उत्पन्न होते रहने और निकलते रहने का ऐसा हिसाब

है कि इस मात्रा की उष्णता शरीर में बराबर बनी रहती है ।

ज्वर की अवस्था में शरीर में इतनी गरमी उत्पन्न होती है

जितनी निकलने नहीं पाती। यदि गरमी बहुत तेजी से बढ़ने लगती है तो रक्त त्वचा से हटने लगता है जिसके कारण गाढ़ा खगता है और शरीर में कँकड़ी होती है। ज्वर में यद्यपि स्वस्थ दशा की अपेक्षा अधिक गरमी उत्पन्न होती है पर उतनी ही गरमी यदि स्वस्थ शरीर में उत्पन्न हो तो यह बिना किसी प्रकार की अधिक ताप उत्पन्न किए उसे निकाल सकता है। अस्वस्थ शरीर में गरमी निकालने की शक्ति उतनी नहीं रह जाती, क्योंकि शरीर की धातुओं का जो घुप होता है वह पूर्ति की अपेक्षा अधिक होता है। ज्वर में शरीर क्षीय होने लगता है, पेशाब अधिक आता है, नाड़ी और श्वास जल्दी जल्दी चलने लगती है, प्रायः फोहबद्ध भी हो जाता है, प्यास अधिक लगती है, भूख कम हो जाती है, सिर में दर्द तथा श्रोत्रों में विलम्बण पीड़ा होती है। विपरीत कीटाणुओं के शरीर में प्रवेश और घृष्टि, श्रोत्रों की सूजन, पूष आदि के ताप तथा कभी कभी माइक्रोबों या स्नायुओं की अन्ववस्था से भी ज्वर उत्पन्न होता है।

ज्वर के संरूप में हरिवंश में एक कथा लिखी है। अथ कृष्ण के पीर अनिरुद्ध बाष्पासुर के यहाँ यँदी हो गए तब कृष्ण और पाष्पासुर में घोर संग्राम हुआ था। उनी अवसर पर पाष्पासुर की सहायता के लिये शिव ने ज्वर उत्पन्न किया। जब शिव ने बलराम आदि को गिरा दिया और कृष्ण के शरीर में भी प्रवेश किया तब कृष्ण ने भी एक वैष्णव ज्वर उत्पन्न किया जिसने माहेश्वर ज्वर को निकाल कर बाहर किया। माहेश्वर ज्वर के यहुत प्रार्थना करने पर कृष्ण ने वैष्णव ज्वर समेट लिया और माहेश्वर ज्वर को ही पृथ्वी पर रहने दिया। दूसरी कथा यह है कि द्रुप प्रजापति के अग्रमन से क्रुद्ध होकर महादेवजी ने अग्रने श्वास से ज्वर को उत्पन्न किया।

मि० प्र०—धाना।—होना।
मुद्गा—ज्वर उतरना = ज्वर का जाता रहना। सुखार दूर होना।
(किरती को) ज्वर चढ़ना = ज्वर आना। ज्वर का प्रवेश होना।

ज्वरकुटुम्ब—संज्ञा पुं० [सं०] ज्वर के साथ होनेवाले उपद्रव जैसे, प्यास, श्वास, शरद्वि, दिक्की हत्यादि।

ज्वरघ्न—संज्ञा पुं० [सं०] (१) गुडूच। (२) यशुधा।

ज्वरराज—संज्ञा पुं० [सं०] ज्वर की एक रीति जो पारे, मांसिक, मंसिलस, हरताज, गंधक तथा मित्रावै के योग से बनती है।

ज्वरहंती—संज्ञा स्त्री० [सं०] ममीड।

ज्वरकुंडा—संज्ञा पुं० [सं०] (१) ज्वर की एक रीति जो पारे, गंधक, प्रवेक विप और घट्टे के बीजों के योग से बनती है। (२) कुडा की तरह की एक सुगंधित घास जो ब्रह्मतीय भासत में कमाऊँ गड्ढवाल से छेकर पेशाब तक

होती है। इसकी जड़ में से मीठ की सी सुगंध आती है। यह घास चारे के काम की बतनी नहीं होती। इसकी जड़ और डंठलों से एक प्रकार का सुगंधित तेज निकाला जाता है जो शरपत आदि में डाला जाता है।

ज्वरामी—संज्ञा स्त्री० [सं०] भद्रदंती नाम का पौधा।

ज्वरानक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) चिरायवा। (२) अमलतास।

ज्वरा—संज्ञा पुं० [सं०] मूत्र। मीत। उ०—लिपु सत्र आधिप

ध्याधिप संग जरा जय आद्ये ज्वरा की सहेली।—केशव।

ज्वरापह—संज्ञा स्त्री० [सं०] वेलपत्री।

ज्वरार्त्त—वि० [सं०] ज्वरपीडित।

ज्वरित—वि० [सं०] ज्वरयुक्त। जिसे ज्वर चढ़ा हो।

ज्वरी—वि० [सं०] ज्वरि। जिसे ज्वर हो।

ज्वरारी—संज्ञा पुं० दे० "ज्वरारी"। उ०—ज्वरारी पाज बाँसे कुड़ी यहरी लगर लोने, देते जारुटी लीं श्वाचन सानवारे हैं।—रघुराम।

ज्वलंत—वि० [सं०] (१) जलता हुआ। प्रकाशमान्। दीप्त। देदीप्यमान्। (२) प्रकाशित। अत्यंत स्पष्ट। जैसे, ज्वलंत दृष्टत ज्वलंत प्रमाण।

ज्वल—संज्ञा पुं० [सं०] (१) ज्वाला। अग्नि। (२) दीप्ति। प्रकाश।

ज्वलका—संज्ञा स्त्री० [सं०] अग्निशिला। धाग की लपट। लौर।

ज्वलन—संज्ञा पुं० [सं०] (१) जलने का कार्य या भाव। जलन। दाह। उ०—(क) धपर रसन पर लाली मिसी मल्लु। मदन ज्वलन पर सोहति, मानहु भूम। (ख) सुनसा ज्वलन सनेइवा, कारन तोर। शंजन सोहू उर प्रगटत लागि दग केर।—हीम। (२) अग्नि। धाग। (३) लपट। ज्वाला। (४) विप्रक वृक्ष। चीत।

ज्वलतांत—संज्ञा पुं० [सं०] यौद्ध ग्रंथों के अनुसार दस हजार देवयुद्धों का नायक जिसने यौद्ध मंत्र में प्रवेश करते ही बोधि-ज्ञान प्राप्त कर लिया था।

ज्वलित—वि० [सं०] (१) जला हुआ। दग्ध। (२) उज्वल। दीप्सियुक्त। चमकता या मलकता हुआ।

ज्वलितनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] भूवाँ लता। सुरार। मोरुफली।

ज्वाना—वि० दे० "जवान"।

ज्वानो—संज्ञा स्त्री० दे० "जवान"।

ज्वाना—संज्ञा पुं० दे० "जवान"।

ज्वार—संज्ञा स्त्री० [सं०] यमनाह, यमकर का रूप। (१) एक प्रकार की घास जिसकी धाल के दाने मोटे शवानों में गिने जाते हैं। यह अनाज संसार के बहुत से भागों में होता है। भारत, चीन, अरब, अफ्रीका, अमेरिका आदि में इसकी खेती होती है। ज्वार खूबे स्थानों में अधिक होती है, सीढ़ी लिपु हुए स्थानों में बतनी नहीं हो सकती। भारत में राजपूताना, पंजाब,

आदि में इसका व्यवहार बहुत अधिक होता है। बंगाल, मद्रास, यरमा आदि में ज्वार बहुत कम बोई जाती है और बोई भी जाती है तो उसमें दाने अच्छे नहीं पड़ते। इसका पौधा नरकट की तरह एक डंडल के रूप में लीचा २-३ हाथ ऊँचा जाता है। डंडल में सात सात आठ आठ बंगुल पर गठि होती हैं जिनसे हाथ डेढ़ हाथ लंबे तलवार के आकार के पत्ते दोनों ओर निकलते हैं। इसके सिरे पर फूल के जड़े और सफेद दानों के गुच्छे लगते हैं। ये दाने छोटे छोटे होते हैं और गेहूँ की तरह खाने के काम में आते हैं। ज्वार कई प्रकार की होती है जिनके पौधों में विशेष भेद नहीं दिखाई पड़ता। ज्वार की फसल दो प्रकार की होती है, एक रबी दूसरी खरीफ़। मक्का भी इसी का एक भेद है। इसी से कहीं कहीं 'मक्का' भी ज्वार ही कहलता है। ज्वार को जेन्डरी, लुंढी आदि भी कहते हैं। इसके डंडल और गौंधे को चारे के काम में जाते हैं और चरी कहते हैं। इस धन्न के उत्पत्ति स्थान के संबंध में मतभेद है। कोई कोई इसे अरब आदि पश्चिम देशों से आया हुआ मानते हैं और 'ज्वार' शब्द को धरती 'दूरा' से बना हुआ समझते हैं, पर यह मत ठीक नहीं जान पड़ता। ज्वार की पेंती भारत में बहुत प्राचीन काल से होती आई है। पर यह चारे के लिये बोई जाती थी धन्न के लिये नहीं। (२) समुद्र के जल की तरंग का चढ़ाव। लहर की उठान। भाटा का उठना।

विशेष—दे० "ज्वारभाटा"।

ज्वारभाटा—संज्ञा पु० [हि० ज्वार + भाटा] समुद्र के जल का चढ़ाव उतार। लहर का बढ़ना और घटना।

विशेष—समुद्र का जल प्रति दिन दो बार चढ़ता और दो बार उतरता है। इस चढ़ाव उतार का कारण चंद्रमा और सूर्य का आकर्षण है। चंद्रमा के आकर्षण में दूरस्थ के भाग के हिसाब से कमी होती है। पृथ्वी तल के उस भाग के अणु जो चंद्रमा से निकट होगा उस भाग के अणुओं की अपेक्षा जो दूर होगा अधिक आकर्षित होंगे। चंद्रमा की अपेक्षा पृथ्वी से सूर्य की दूरी बहुत अधिक है पर उसका पिंड चंद्रमा से बहुत ही बड़ा है। अतः सूर्य की ज्वार उत्पन्न करनेवाली शक्ति चंद्रमा से बहुत कम नहीं है, ३ के लगभग है। सूर्य की यह शक्ति कभी कभी चंद्रमा की शक्ति के प्रतिबल होती है पर अमावास्या और पूर्णिमा के दिन दोनों की शक्तियाँ परस्पर अनुबल कार्य करती हैं अर्थात् जिस अंश में एक ज्वार उत्पन्न करेगी उसी अंश में दूसरी भी ज्वार उत्पन्न करेगी, इसी प्रकार जिस अंश में एक भाटा उत्पन्न करेगी दूसरी भी उसी में भाटा उत्पन्न करेगी। यही कारण है अमावास्या और पूर्णिमा को और दिनों की अपेक्षा ज्वार अधिक ऊँचा उठता

है। सप्तमी और अष्टमी के दिन चंद्रमा और सूर्य की आकर्षण शक्तियाँ प्रतिबल रूप से कार्य करती हैं अतः इन दोनों तिथियों को ज्वार सबसे कम उठता है।

ज्वाली—संज्ञा पु० दे० "ज्वाली"।

ज्वाल—संज्ञा पु० [सं०] अग्निशिखा । लौ । खपट । धाँव ।

व०—चिंता ज्वाल शरीर मन दावा लगी लगी जाय ।

—गिरिपर ।

ज्वालमाली—संज्ञा पु० [सं० ज्वालाम्बु] सूर्य ।

ज्वाला—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) अग्निशिखा । खपट । (२) विष आदि की गरमी का ताप । (३) गरमी । ताप । जडन ।

मुहूर्त्त—ज्वाला फूंकना = गरमी उत्पन्न करना । शरीर में यह उत्पन्न करना ।

(४) दग्धात्त । (५) तपक की पुत्री ज्वाला जिससे ऋष ने विवाह किया था (महाभारत) ।

ज्वालामुखी—संज्ञा पु० [सं०] (१) अग्नि । आग । (२) एक प्रकार का चित्रक वृक्ष ।

ज्वालादेवी—संज्ञा स्त्री० [सं०] शारदा पीठ में स्थित एक देवी ।

विशेष—इनका स्थान कर्नाटके जिले के धंतगत देग तहसील में है। तंत्र के अनुसार जय सती के शव को लेकर शिवजी घूम रहे थे तब यहाँ पर सती की जिह्वा गिरी थी। यहाँ की देवी 'अंबिका' नाम की और भैरव 'इन्मत्त' नामक हैं। यहाँ पर्वत के एक दरार से भूगर्भस्थ अग्नि के कारण एक प्रकार की जलनेवाली भाप निकला करती है जो दीपक दिखाने से जलने लगती है। इसी को देवी का ज्वलंत मुख कहते हैं।

ज्वालामालिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] तंत्र के अनुसार एक देवी का नाम ।

ज्वालामुखी पर्वत—संज्ञा पु० [सं०] वह पर्वत जिसकी चोटी के पास बड़ा गहरा गड्ढा या मुँह होता है जिसमें से धूम, राख, तथा पिघले या जके हुए पदार्थ बतारत रूपसे समय समय पर निकला करते हैं।

विशेष—ये वेग से बाहर निकलनेवाले पदार्थ भूगर्भ में स्थित प्रबंध अग्नि के द्वारा जलते या पिघलते हैं और संवित भाप के वेग से ऊपर निकलते हैं। ज्वालामुखी पर्वतों से राख, ठोस और पिघली हुई चट्टानें, कीचड़, पानी, धूम आदि पदार्थ निकलते हैं। पर्वत के मुँह के चारों ओर इन वस्तुओं के जमने के कारण कँचूरेदार ऊँचा किनारा सा बन जाता है। कहीं कहीं प्रधान मुख के अतिरिक्त बहुत से छोटे छोटे मुख भी धूम उधर दूर तक फैले हुए होते हैं। ज्वालामुखी पर्वत प्रायः समुद्रों के निकट होते हैं। प्रसिद्ध महासागर (वैसिफिक समुद्र) में जापान से लेकर पूर्वी क्षीप समुद्र तक अनेक छोटे बड़े ज्वालामुखी पर्वत हैं। अनेक

जावा ऐसे छोटे द्वीप में ४३ टीले ज्वालामुखी के हैं। सन् १८८३ में क्रकटोघ्रा टापू में जैसा ज्वालामुखी का भय कर स्फोट हुआ था वैसा कभी नहीं देखा गया था।

टापू के आस पास प्रायः चालीस हजार खादमी समुद्र की घोर हलचल से डूब कर मर गए थे। ज्वाला हलदी-संज्ञा छी० [हि०] रंगने की एक हलदी।

भ

भ-हिंदी व्यंजन वर्णमाला का नवाँ और चवथाँ का चौथा वर्ण जिसका उच्चारण-स्थान तालू है। यह स्पर्श वर्ण है और इस के उच्चारण में संचार, नाद और शेष प्रयत्न होते हैं। च, छ, ज और झ इसके सवर्ण हैं।

भ-संज्ञा पुं० [ऋ०] (१) वह शब्द जो धातु-सदृश के परस्पर टकराने से निकलता है। (२) हयिचारों का शब्द।

भंकरना-क्रि० अ० दे० "भंकरना"।

भंकाड़-संज्ञा पुं० दे० "भंकाड़"।

भंकार-संज्ञा छी० [सं०] (१) भंकरनाहट का शब्द जो किसी धातुसदृश से निकला है। भंकरना शब्द। भंकार। जैसे, पाजेब की भंकार, भंकार की भंकार। (२) भंकार आदि छोटे छोटे जानवरों के बोलने का शब्द जो प्रायः 'भू भू' होता है। भंकार। जैसे, किलियों की भंकार। (३) भंकरना शब्द होने का भाव।

भंकारना-क्रि० सं० [सं० भंकार] धातु-सदृश आदि में से "भंकरना" शब्द उत्पन्न करना। जैसे, भंकारना।

क्रि० अ० "भंकरना" शब्द होना। जैसे, किलियों का भंकारना।

भंकारना-संज्ञा छी० [हि० भंकरना] (१) छोटी चिड़की। कुरोखा। (२) भंकारी। जाली।

भंकारना-संज्ञा पुं० दे० "भंकारना"।

भंकारना-क्रि० अ० दे० "भंकारना"।

भंकारना-क्रि० अ० दे० "भंकारना"।

भंकारना-संज्ञा पुं० दे० "भंकारना"।

भंकरना-क्रि० अ० [हि० खंकरना] बहुत अधिक दुखी होकर पड़ताना और कुड़ना। खंकरना। उ०—(क) बरस दिवस धन रोप के हार परी चित भंकरा ।—जायसी। (ख) पाँच तब का बना पौंजाता सामें सुनियार रहती। उक्ति सुनियार डारी पर बैठे खंकरना लागे सारी दुनिया।—कबीर। (ग) सुरज प्रभु आगत हैं हलधर को नहि लखन भंकरति कहति तो होते संग दोऊ।—सूर।

भंकाटा-वि० दे० "भंकाड़"।

भंकाड़-संज्ञा पुं० [हि० भंकाड़ का ऋ०] (१) घनी और कटिदार भाड़ी या पौधा। (२) ऐसे कटिदार पौधों या झाड़ियों का घना समूह जिसके कारण भूमि या कोई स्थान बँक जाय।

(३) वह वृक्ष जिसके पत्ते झड़ गए हों। (४) व्यर्थ की और रही, विरोधनः काठ की, चीनों का समूह।

भँगरा-संज्ञा पुं० [देग०] एक प्रकार का बाँस का जालदार गोल भाँपा जिसे घोरा भी कहते हैं।

भँगा-संज्ञा पुं० दे० "भँगा"। उ०—(क) नव नील कलेवर पीप भँगा मलकै पुलकै रूप गोद लिए।—गुलसी। (ख)

भँगा खाक ऐसे मनु पीजै लेरी भँगा मेरी खँपिया पीर।—हरिदास।

भँगाया-संज्ञा छी० दे० "भँगुली"।

भँगाया-संज्ञा पुं० [देग०] मठिया नामक गहने में की, कुदनी की ओर से तीसरी चूड़ी। दे० "मठिया"।

भँगुली-संज्ञा पुं० दे० "भँगा"।

भँगुलीया, भँगुलीया-संज्ञा छी० [हि० भगा का रूप०] छोटे बालकों के पहनने का कग्रा या ढीला कुरता। उ०—(क) सुदरन चखत कनक छाँगन में कौराख्या छवि देखत। नील नखिन तनु पीत भँगुलिया घन दामिनि धुति पखत।—सूर। (ख) उठि कद्यो भोर भयो भँगुली दै सुदित महरि लखि आयातसाई।—तुलसी। (ग) कोउ भँगुली कोउ मृदुल बदनिया कोउ लावै रचि ताजा।—रघुराज।

भँगुली-संज्ञा छी० दे० "भँगुली"। उ०—कुन्ही चित्र विचित्र भँगुली। निरलदि मातु सुदित मीति कृती।—तुलसी।

भंभा-संज्ञा पुं० दे० "भंभ"। उ०—कोउ बीणा सुरली पटह चंग मृदंग उपंग। भाजरी भंभ बजाइ कै गवधि तिनके संग।—गोपाल।

भंभट-संज्ञा छी० [ऋ०] व्यर्थ का भगड़ा। टंटा। बखड़ा। प्रपंच।

क्रि० प्र०—उठाना।—में पड़ना या फँसना।

भंभनाना-क्रि० अ० [ऋ०] भंभ भन शब्द होना। भंभ भंभ शब्द होना। भंभनाना। उ०—जेक रहै मति बोलो करवें मति पायनि पंजनिया भंभनैगी।

क्रि० सं० भंभ भन शब्द उत्पन्न करना।

भंभर-संज्ञा पुं० दे० "भंभर"।

संज्ञा छी० दे० "भंभरी"।

भंभरा-संज्ञा पुं० [हि०] मिट्टी का जालीदार ढकना जो रंगले हुए दूध के बनेन पर रखा जाता है।

वि० [श्री० भंभरी] जिसमें बहुत से छोटे छोटे छेद हों। भंभरी।

भँभरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० भरकर से अणु०] (१) किसी चीज़ में बहुत से छोटे छोटे घेदों का समूह। जाली। (२) दीवारों आदि में बनी हुई छोटी जालीदार सिड़की। (३) लोहे का वह गोल जालीदार या छेददार टुकड़ा जो दम चूड़े आदि में रहता है और जिसके ऊपर सुलगते हुए कोयले रहते हैं। जले हुए कोयले की राख इसी के छेदों में से नीचे गिरती है। दमचूड़े की जाली या फरना। (४) लोहे आदि की कोई जालीदार चादर जो प्रायः सिड़कियों या वरामयों में लगाई जाती है। (५) छाटा छानने की छलनी। (६) धाग आदि उठाने का फरना। (७) हुपड़े या घोटी आदि के आंचल में बसके बाने के सूतों का, सुंदरता या रोमा के लिये बनाया हुआ छोटा जाल जो कई प्रकार का होता है। वि० स्त्री० दे० “भँभरा”।

भँभरीदार—वि० [हिं० भँभरी + फा० दार] जालीदार। सुरासदार। जिसमें भँभरी या जाली हो।

भँभरा—संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह तेज आंधी जिसके साथ वर्षा भी हो। उ०—मन की मस्ति मनभावन सों रूति सखी दामिनि को दूषि रही रंभा मुक्ति भँभरा सी।—देव। (२) तेज आंधी। अंधड़। (३) छोटी छोटी बूँदों की वर्षा। (४) भँभर। वि० प्रचंड। तेज। तीव्र।

भँभरानिल—संज्ञा पुं० [सं०] (१) प्रचंड वायु। आंधी। (२) वह आंधी जिसके साथ वर्षा भी हो।

भँभरार—संज्ञा पुं० [सं० भँभरा] धाग की वह सपट जिसमें से कुछ अन्यक्त शब्द के साथ धुआँ और चिनगारियाँ निकलें।

भँभरावात—संज्ञा पुं० [सं०] (१) प्रचंड वायु। आंधी। (२) वह आंधी जिसके साथ पानी भी धरसे।

भँभरी—संज्ञा स्त्री० [दे०] (१) फूटी फौड़ी। (२) दलाली का घन। झगमी। (दलालों की बोली)

भँभोड़ना—क्रि० सं० [सं० भँभन] (१) किसी चीज़ को बहुत वेग और शक्त के साथ हिलाना जिसमें वह टूट फूट जाय-या नष्ट हो जाय। झकझोरना। जैसे, वे सोए हुए थे, इन्होंने जाते ही उन्हें खूब भँभोड़ा। (२) किसी जानवर का अपने से छोटे जानवर को मार डालने के लिये दातों से पकड़ कर खूब भटका देना। झकझोरना। जैसे, कुत्ते या बिल्ली का चूड़े को भँभोड़ना।

भँभोटी, **भँभोटी**—संज्ञा स्त्री० दे० “भँभोटी”।

भँडा—संज्ञा पुं० [सं० ञट] (१) छोटे बालकों के मुंडन के पहले के केश। (२) करील।

भँडा—संज्ञा पुं० [सं० ञपन] (१) तिकेने या चौकोर कपड़े का टुकड़ा जिसका एक सिरा लकड़ी आदि के बंदे में लगा रहता है और जिसका व्यवहार चिह्न प्रकट, संकेत करने, उससे

आदि सूचित करने अथवा इसी प्रकार के अन्य कामों के लिये होता है। यह कपड़ा कई रंगों का होता है और इसपर कई तरह की रेखाएँ, चिह्न या चित्र आदि अंकित होते हैं। प्राचीन काल में भारत में भँडे का कपड़ा केवल तिकेना ही होता था; पर आज कल युरोप अमेरिका आदि के भँडों के कपड़े चौकोर होते हैं। प्रत्येक दल या राज्य आदि का चिह्न प्रकट करने के लिये अलग अलग प्रकार के भँडे होने हैं। किसी एक राज्य की सेना या एक देश की जाति के चिह्न-स्वरूप भी अलग अलग भँडे होते हैं। लंबाई और चौड़ाई में भँडे कई फुट तक के होते हैं। सेनाओं, किलों, सरकारी इमारतों और जहाजों आदि पर प्रायः राजकीय या जातीय भँडे लगे रहते हैं जिनसे इनकी पहचान होती है। संकेत के काम के लिये जो भँडे होते हैं वे अत्यंत सूक्ष्म होते हैं। पताका। निशान। फहरा। ध्वज।

मुहा०—भँडा खड़ा करना = (१) सैनिक आदि एकत्र करने के लिये भँडा स्थापित करके संकेत करना। (२) आंधर करना। (३) दे० “भँडा गाड़ना”। भँडा गाड़ना = (१) किसी स्थान विशेषतः नगर या किले आदि पर अपने अधिकार करने उसके चिह्न स्वरूप भँडा स्थापित करना। (२) पूर्ण रूप से अपना अधिकार जमाना। भँडा फहराना = भँडा गाड़ना। भँडे तले खाना = युद्ध आदि के उद्देश्य से, किसी के बुझाने पर योद्धाओं का निश्चित स्थान पर एकत्र होना। भँडे तले की दोस्ती = बहुत ही साधारण या राह चरते की जान पहचान। “दे पर चड़ना = बदनाम होना। अपने सिर बहुत बदनगी होना। भँडे पर चड़ाना = बहुत बदनाम करना।

(२) ज्वार बाजरे आदि पैतों के ऊपर का नर-भूल। ज़ीरा।

भँडी—संज्ञा स्त्री० [हिं० ‘भडा’ का स्त्री० अणु०] छोटा भँडा जिसका व्यवहार प्रायः संकेत आदि करने के लिये होता है।

मुहा०—भँडी दिखाना = भँडी से संकेत करना।

भँडीदार—वि० [हिं० भँडी + फा० दार] जिसमें भँडी लगी हो। भँडीवाला।

भँडूलना—संज्ञा पुं० दे० “भँडूला”।

भँडूला—वि० [हिं० भँड + ऊला (प्रत्य०)] (१) जिसके सिर पर गर्म के बाल हों। जिसका मुंडन संस्कार न हुआ हो। गर्म के बालोंवाला (बालक)। (२) मुंडन संस्कार से पहले का। गर्म का (बाल)। उ०—उर बघनहा कंठ कंठुला भँडूले वार घेनी लटकन मसि विंदु मुनि मनहर।—सूर। विशेष—इस अर्थ में यह शब्द प्रायः बहुवचन रूप में बोलता जाता है।

(३) घनी पत्तियोंवाला। सघन

संज्ञा पुं० (१) यह बालक जिसके सिर पर गर्म के बाल हों। यह लड़का जिसके गर्म के बाल अभी तक सुँडे न

हों। (२) मुँडन संस्कार से पहले का थाल। गर्भ का थाल जो धमी तक मुँडान गया हो। (३) धनी पतियों-थाला वृष। सयन वृष।

भंग-संज्ञा पुं० [सं०] उल्लाल। फलता। कुदान।

मुह्रा—भंग देना=कूटना। उ०—करी धरने कुल नास बनहि सो धगिन भंग दे आई—सूर।

संज्ञा पुं० [दे०] घोड़ों के गले का एक भूषण। उ०—
तैसे चँवर बनाए औ धाले गल भंग—जायसी।

भंगकना—क्रि० अ० दे० "भंगकना"।

भंगकी—संज्ञा स्त्री० दे० "भंगकी"।

भंगताल—संज्ञा पुं० दे० "भंगताल"।

भंगक—संज्ञा पुं० [सं०] बंदर।

भंगना—क्रि० अ० [सं० भंग] (१) ढँकना। छिपना। झाड़ में होना। (२) उल्लाना। कूटना। लपकना। भंगकना। उ०—(क) छुकि रसाल सौरभ सने मधुर माधुरी रंध।
ठैर ठैर मौरत भंगत भौर भौर मधु रंध—विहारी।
(ख) जबहि भंगति तबहि कँपति विहंगि लगति उरोज।—
सूर। (३) हट पड़ना। एक दम से धा पड़ना। उ०—
जात काल सोवत काल काल भंगे आई। काल चलत काल
फिरत कबहुँ लै जाई—दादू। (४) भंगना। लजित होना।

भंगपरिया, भंगरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० भंगना = ढकना] पालकी को ढाँकने की खोली। गिलाफ़। घोहर। उ०—घाठ केठ-
रिया नौ दरवाना दसये खागि कँवरिया। शिङ्की खोलि
पिया हम देखल ऊपर मौर भंगपरिया।—कवीर।

भंगपान—संज्ञा पुं० [सं० भंग] सवारी के लिये एक प्रकार की खटोली जिसमें दोनों ओर दो घोसे बाँधे होते हैं। इन बाँसों के दोनों ओर बीच में रस्सियाँ बाँधी होती हैं जिनमें छोटे छोटे दो और बाँस पिरोए रहते हैं। इन्हीं बाँसों को चार धादमी धरने कंधे पर रख कर सवारी को चलते हैं। यह सवारी बहुधा पहाड़ की चढ़ाई में काम आती है। मूषान।

भंगवि—[सं० भंग] ढँका हुआ। छिपा हुआ। धराधरादित। छाया हुआ।

भंगपाला—संज्ञा पुं० [हिं० भंगना + पाला (श्ल०)] [स्त्री० भंगन० भंगेकी वा भंगेकीया] छोटा कर्पा या मावा। धावड़ा।

भंगराना—क्रि० अ० [हिं० भंगर] (१) कुड़ काला पड़ना। (२) कुहलाना। सूखना। भिँका पड़ना।

भंग्रा—संज्ञा पुं० दे० "भंग्रा"।

भंग्राना—क्रि० अ० [हिं० भंग्र] (१) भाँवे के रंग का हो जाना। कुड़ काला पड़ जाना। जैसे, धूप न रहने के कारण चेहरा भंग्रा जाना। (२) अग्नि का भंग हो जाना। धारा का कुड़ उँदा हो जाना। (३) किसी चीज का कम हो जाना। घट जाना। (४) कुहलाना। सुरमाना। (५) भाँवे से रंग्रा जाना।

संयोग क्रि०—जाना।

क्रि० सं० (१) भाँवे के रंग का कर देना। कुड़ काला कर देना। जैसे, धूप ने उनका चेहरा भंग्रा दिया। (२) अग्नि को भंग करना। धारा उँटी करना। (३) किसी चीज को कम करना। घटाना। उ०—ज्ञान को अग्निमान किपू मोके हरि पडयो। मेरोई भजन थापि माया सुख भंगयो—सूर। (४) कुहलाना देना। सुरमाना देना। (५) भाँवे से रंग्राना। (६) भाँवे से रंग्राना। उ०—रुक्कत हिये गुलाब के भंग्रा भंग्रावति पाय।—विहारी।

भंग-संज्ञा पुं० [सं०] (१) भंग्रावात। चर्पा मिली हुई तेज धाँपी। (२) सुरगुरु। बृहस्पति। (३) दैत्यराज। (४) ध्वनि। गुंजार शब्द। (५) तीव्र वायु। तेज्र हवा।

भंग्रा—संज्ञा स्त्री० दे० "भंग्रा"। उ०—भरतहि देखि मानु वडि धाई। सुरधित ध्वनि परी भंग्रा आई—गुजरी।

भंग्रा—संज्ञा स्त्री० दे० "भंग्रा"। उ०—को जानै काहू के जिय की धिन धिन होत नई। सुरदास स्वामी के विधुरे लागे प्रेम भंग्रा—सूर।

भंग्रा, भंग्रा—संज्ञा पुं० [हिं० भंग्रा] छाँचा। टोकरा। मावा।

भंग-संज्ञा स्त्री० [अनु०] धुन। सनक। लहर। मौज।

संज्ञा स्त्री० [अनु०] कोई काम करने की ऐसी धुन जिसमें धारा पीड़ा या भला बुरा न सूके। सनक।

क्रि० प्र०—चढ़ना।—लगना।—समाना।—सवार होना।

संज्ञा स्त्री० दे० "भंग"।
वि० चमकीला। साफ़। शोपदार। जैसे, सपुदे भंग।
भंगकेतु—संज्ञा पुं० दे० "भंगकेतु"।

भंगभंग—संज्ञा स्त्री० [अनु०] (१) व्यर्थ की हुजत। फूल भंगना या सकरा। किचकिच। (२) व्यर्थ की बकवाद। निरर्थक वाद विवाद। बकबक।

धौ—बकबक भंगभंग।

भंगभंग—वि० [अनु०] चमकीला। शोपदार। चमकदार।

भंगभंगकाहट—संज्ञा स्त्री० [अनु०] शोप। चमक। जाममाहट।

भंगभंगलना—क्रि० सं० दे० "भंगभोरना"।

भंगभोर—संज्ञा पुं० [अनु०] भंग्रा। भटका। उ०—तान जल पियर वात भा मेरा। तेहि पर विरह देह भंगभोर।—
जायसी।
वि० भंगेदार। तेज। जिसमें खूब भंग्रा हो। उ०—काम शोष समेत गुण्णा पवन अति भंगभोर। नाहि चितवन देति तिय सुत नाम नौका धोर।—सूर।
भंगभोरना—क्रि० सं० [अनु०] किसी चीज को पकड़ कर खूब दिलाता। भंग्रा देना। भटका देना। उ०—(क) सुरदास तिनके भ्रज सुधरी भंगभोरति वर भंग भरे।—सूर। (ख) अधिकाय सुगंधनि सेव चाद मलिंदन को भंगभोरति है।—

सेयक । (१) घातन ते डरपै ये कड़ा भक्तभोरत हूँ व घरी धरसात है ।

भक्तभोरा-संज्ञा पुं० [भु०] भटका । धका । भोका । उ०—मंद विलंद अमोह दलकनि पाह्य हुल भक्तभोका रे ।—तुलसी ।

भक्तभोलना-कि० रा० दे० “भक्तभोरना” ।

भक्तडु-संज्ञा पुं० दे० “भक्तडू” ।

भक्तझी-संज्ञा स्त्री० [दे०] दोहनी । दूध हुहने का घरतन ।

भक्तना-कि० थ० [भु०] (१) वक्याद करना । व्यर्थ की बातें करना । (२) श्लोच में आकर अनुचित पद्यन कहना ।

भक्तर्-संज्ञा पुं० दे० “भक्तर्” ।

भक्तर्-वि० दे० “भक्त” ।

भक्तभक्त-वि० [भु०] चमकीला । जो रूप साफ और चमकता हुआ हो । मलाकल । उज्वल । जैसे, सफेदी होने से यह कमरा मकामक हो गया । उ०—भोकि कं प्रीति से भनी भोरपनि भारि के मकाका मकामक भोकी ।—रघुराज ।

भक्तोर-संज्ञा पुं० [भु०] (१) हवा का भोका । पवन फी हिलोर । हिलकोरा । उ०—(क) चारु जोचन हैमि विलोकनि देखि के चितभोर । मोहनी मोहन जगामन लटक मुकुट भकोर ।—सूर । (ख) पवि पाहन दामिनि गरज भरि भकोर हरि खीमि । रोप न प्रीतन दोष कखि तुलसी रागहि रीमि ।—तुलसी । (ग) धारिहुँ धोर तें पीन भकोर भकोरन घोर घटा घहरानी ।—पद्माकर । (२) भटका । भोका । धका ।

भक्तोरना-कि० थ० [भु०] हवा का भोका मारना । उ०—(क) चहुँ दिसि पवन भकोरत पोरत मेघ घटा गंभीर ।—सूर । (ख) भोकी के भोरपनि हूँ के भकोरति शयटी हूँ में न जात सही ।—देव ।

भक्तोर-संज्ञा पुं० [भु०] हवा का भोका । वायु का येग ।

भक्तोर-संज्ञा पुं० दे० “भक्तोर” या “भक्तोरा” । उ०—स्यु पदनास मंद भवया निज विगलत शीर निचोख । गील पीत सित धरन धज्या चल रीर समीर भक्तोर ।—सूर ।

भक्त-वि० [थ०] खूब साफ और चमकता हुआ । मकामक । शोपदार ।

संज्ञा स्त्री० दे० “भक्त” ।

भक्तडु-संज्ञा पुं० [भु०] तेज आंधी । तूफान । तीव्र वायु । शंभु ।

कि० प्र०—आना ।—उठना ।—चलना ।

वि० दे० “भक्ती” ।

भक्ता-संज्ञा पुं० [भु०] (१) हवा का तेज भोका । (२) भक्त । आंधी । (लश०)

भक्ती-वि० [भु०] (१) व्यर्थ की वक्याद करनेवाला । बहुत

वक्याद करनेवाला । (२) जिसे भक्त सवार हो । जो अपनी धुन के सामने किसी की न सुने । सनकी ।

भक्तधना * १-कि० थ० दे० “भक्तीधना” । उ०—कहू गिरिधर कविराय मातु भक्तये यहि ठाहीं ।—गिरिधर ।

भक्त-संज्ञा स्त्री० [हि० भोका] भोकेने का भाव या क्रिया ।

मुहा०—भक्त मारना = (१) व्यर्थ समय नष्ट करना । वक्त व्यप्य करना । जैसे, आप सवरे से यहाँ बैठे हुए भक्त मार रहे हैं ।

(२) अपनी गिटी खराब करना । (३) विषय होकर बुरी तरह भोखना । खाचार होकर बुरा कुदना । जैसे, (क) तुम्हें भक्त मार कर यह काम करना होगा । (ख) भक्त मारो और यहाँ जाओ ।

भक्तकेतु-संज्ञा पुं० दे० “भक्तकेतु” ।

भक्तना * १-कि० थ० दे० “भोखना” । उ०—(क) बाया नंद भक्तत केहि कारन यह कहि मया भोह परमकप । सूरदास प्रभु मात पिता को तुरतहि दुख बायो विसराय ।—सूर । (ख) ऊचो लुखिया सई यह धाती । मेरो मन रतिक लख्यो नैदुवालेहि भक्तत रहत दिन राती ।—सूर । (ग) सुनि पाहू घरी हरिभू की सुमान तैं छुटिसे को बहु भाति भनी री ।—बैराय । (घ) कवि हरिजन मेरे उर वनमाज तेरे विन गुन माल रेख सेज देखि भरिष्यां ।—हरिजन ।

भक्तनेकेत-संज्ञा पुं० दे० “भक्तनेकेत” ।

भक्तराज-संज्ञा पुं० दे० “भक्तराज” ।

भक्तलगन *—संज्ञा पुं० दे० “भक्तलगन” ।

भक्ती * १-संज्ञा स्त्री० [सं० भ्य] मीन । मछली । मत्स्य । उ०—(क) धावत धन से सार्क देखा मैं गायन मीमक काहू को टोटारी एक शीप मेर पखियां । अतसी कुमुम जैसे चंचल दीरप नैन मानी रस मरी जौं लरत जुगल भवियां ।—सूर । (ख) गोडुल माह में मान करै ते भई तिय धारि विना भवियां हूँ ।

भगड़ा-कि० थ० [हि० भक्तभक्त से भु०] दो आदमियों का आवेश में आकर परस्पर विवाद करना । भगड़ा करना । हुजमत सत्कार करना । लड़ना ।

संज्ञा० कि०—जाना ।—पड़ना ।

भगड़ा-संज्ञा पुं० [हि० भक्तभक्त से भु०] दो मनुष्यों का परस्पर आवेशपूर्ण विवाद । लड़ाई । टंटा । थलेड़ा । कलह । हुजमत । तकरार ।

कि० प्र०—करना ।—उठाना ।—समेटना ।—हालना ।—कैलाना ।—तोड़ना ।—लड़ा करना ।—मचाना ।—लगाना ।

धै०—भगड़ा थलेड़ा ।

भगड़ाहू-वि० [हि० भगड़ा + हू (प्रत्य०)] लड़ाई करनेवाला । कलहप्रिय । भगड़ा थलेड़ा करनेवाला । जो बात बात में भगड़ा करता हो ।

भगड़ी—संज्ञा स्त्री० [हि० भगड़ा] अपने नेग के लिये भगड़ा करनेवाली। उ०—योगमति लटकति पाँव परै। तेरो भलो मनाइहा मगरी तूँ मति मनहि हरै।—सूर।

भगारना पुं० [देग०] एक प्रकार की चिट्ठिया। उ०—नूनी लाज करे सारस भगार तोते सीतर तुममती घटेर गहियत है।—रघुनाथ।

भगरना—कि० अ० दे० “भगदना”।

भगरा * १—संज्ञा पुं० दे० “भगड़ा”।

भगराज * १—वि० दे० “भगदाल”। उ०—याहि कहा मैया सुँह लावति गनति कि एक लींगरि भगराज।—गुलसी।

भगरी * १—संज्ञा स्त्री० दे० “भगड़ी”। उ०—योगमति लटकति पाँव परै। तेरो भलो मनाइहाँ मगरी तूँ मति मनहि हरै।—सूर।

भगला * १—संज्ञा पुं० दे० “भगा”।

भगा—संज्ञा पुं० [?] छोटे वषों के पहनने का कुछ डीला करता। उ०—भगा पगा बरु पाग पिट्टारी टाड़िन को पहिराये। हरि दरियाई कंठ लगाई परदा सात उठाये।—सूर।

भगुलिया * १—संज्ञा स्त्री० [हि० भगा का अण्व०] भगा। उ०—के लिये दे० “भैंगुलिया”।

भगुली * १—संज्ञा स्त्री० दे० “भगुलिया”।

भङ्गभर—संज्ञा पुं० [सं० भङ्गभर] कुछ चौड़े सुँह का पानी रखने का मिट्टी का एक प्रकार का बरतन जिसकी ऊपरी तह पर पानी को ठंडा करने के लिये बोझा सा बालू लगा दिया जाता है। इसकी ऊपरी सतह पर सुंदरता के लिये तरह तरह की नकाशियाँ भी की जाती हैं। इसका व्यवहार प्रायः गरमी के दिनों में जल को अधिक ठंडा करने के लिये होता है।

भङ्गभो—संज्ञा स्त्री० [देग०] (१) छूटी कौड़ी। (२) दलाली का धन। (दवालों की भाषा)

भङ्गभू—संज्ञा स्त्री० [हि० भङ्गभू] (१) भङ्गने की क्रिया या भाव। किसी प्रकार के भय की आशंका से रुकने की क्रिया। चमक। भङ्क। जैसे, अभी इनकी भङ्गक नहीं गई है, इसीसे खुलकर नहीं बोलते।

भङ्ग प्र०—जाना।—भिटना।—होना।

मुह्रां—भङ्गक निकभना = भङ्गक दूर होता। भय का गट्ट होना। भङ्गक निकालना = भङ्गक या भय दूर करना। जैसे, हम चार दिन में इनकी भङ्गक निकाल देंगे।

(२) कुछ धोप से बोलने की क्रिया या भाव। भङ्गलाहट।

(३) किसी पदार्थ में से रह रह कर निकलनेवाली विद्योपतः अथिप गंध।

भङ्ग प्र०—थाना।—निकलना।

(४) रह रह कर होनेवाला पागलपन का हलका दौरा। कभी कभी होनेवाली सनक।

भङ्ग प्र०—थाना।—चढ़ना।—सवार/होना।

भङ्गकन * १—संज्ञा स्त्री० [हि० भङ्गकना] भङ्गकने या भङ्कने का भाव। बर कर हटने या रुकने का भाव। भङ्क। उ०—वह रस की भङ्गकनि, यह महिमा, यह सुसुकनि बैसो संजोग।—सूर।

भङ्गकना—कि० अ० [अणु०] (१) किसी प्रकार के भय की आशंका से थकसमात् किसी काम से रुक जाना। अचानक डरकर ठिठकना। विदकना। चमकना। भङ्कना। उ०—(क) कबहुँ चुंवन देत आकारपंनिय लेति करति बिन चेत सब हेत अपने। मिलति भुज कंठ दै रहति थंग लटकि कै जात दुख दूर है भङ्गक सपने।—सूर। (ख) छाले परिवे के डरन सकै न हाय चुबाई। भङ्गकति हियहि गुलाब के मँया मँयावति पाई।—विहारी।

सेयो० भि०—उठना।—जाना।—पड़ना।

(२) रुंमलाना। खिजलाना। (३) चौक पढ़ना।

भङ्गकाना—कि० सं० [हि० भङ्गकना का प्र०] (१) अचानक किसी प्रकार के भय की आशंका कारके किसी काम से रोक देना। चमकाना। भङ्काना उ०—तुज्यों वरुकि कपिति बदन मुकति विहँसि सत राई। तुज्यों गुलाब मुठी मुठी भङ्गकावत पिय जाई।—विहारी। (२) चौका देना।

भङ्गकार—संज्ञा स्त्री० [हि० भङ्गकारना] भङ्गकारने की क्रिया या भाव।

भङ्गकारना—कि० सं० [अणु०] (१) उपटना। डाँटना। (२) दुरदुराना। (३) अपने मामले कुछ न गिनना। किसी को अपने श्रागे मंद बना देना। उ०—नल माने चंद्रवाय साजि कै भङ्गकारत बर श्रायो। सूरदास मानिनि रथ जीयो समर संग बरि रथ भायो।—सूर।

भट—कि० वि० [सं० भटति] हुरंत। उली समय। तत्पण्य।

कोरन। जैसे, हमारे पट्टे चते ही वे भट उठ कर चले गए।

मुह्रां—भट से = जल्दी से। शीघ्रतापूर्वक।

यो०—भट पट।

भटकना—कि० सं० [हि० भट] (१) किसी चीज को इस प्रकार एकबासी केने से हिलाना कि उस पर पट्टी हुई दूसरी चीज गिर पड़े या खलज हो जाय। भटके से हलका घका देना। भटका देना। उ०—नासिका। खलित चेसरि घना अथर तट सुभग तारक छवि कहि न श्राई। परनि पट पटक कर भटकि सोहदिन भटकि भटकि तद्रीं रीके करदाई।—सूर।

विद्योप—हस श्रय में हस शब्द का प्रयोग उस चीज के लिये भी होता है जो किसी दूसरी चीज पर चढ़ती या पड़ती है और उस चीज के लिये भी होता है जिस पर कोई दूसरी चीज

चड़ती या पड़ती है। जैसे, यदि धोती पर कनखरूता चड़ने लगे तो कहेंगे कि 'धोती भटक दो,' और यदि राम ने कृष्ण का हाथ पकड़ा और कृष्ण ने भटका देकर राम का हाथ अपने हाथ से थलगा कर दिया तो कहेंगे कि "कृष्ण ने राम का हाथ भटक दिया"।

संयोग क्रि०—देना।

(२) किसी चीज को जोर से हिलाना। भोका देना। भटका देना।

संयोग क्रि०—डालना।—देना।

मुहा०—भटक कर = भोके से। भटके से। तेजी से। व०—भटक पड़ति उतरति अटा नेक न थाकति देह। भई रहति नट का बटा अटकी नागरि नेह।—विहारि।

(३) दूधवा डालकर चाखाकी से या जबरदस्ती किसी की चीज लेना। पेंटना। जैसे, (क) अग्र एक बरमास ने रास्ते में दस रुपए वनसे भटक लिए। (ख) पंडित जी अग्र वनसे एक धोती भटक लाए।

संयोग क्रि०—लेना।

मुहा०—भटके का माल = जबरदस्ती छीना या चुराया हुआ माल। क्रि० अ० रोग या दुःख आदि के कारण बहुत दुर्बल या बीया हो जाना। जैसे, चार ही दिन के उखार में वे तो बिलकुल भटक गए।

संयोग क्रि०—जाना।

भटका—संज्ञा पुं० [भु०] (१) भटकने की क्रिया। भोके से दिया हुआ हलका धका। भोका।

क्रि० प्र०—खाना।—देना।—मारना।—लगना।—लगाना। (२) भटकने का भाव। (३) पशु वध का वह प्रकार जिसमें पशु हथियार के एक ही आघात से काट खला जाता है।

धी०—भटके का मांस = उक्त प्रकार से मारे हुए पशु का मांस। (४) अप्रति, रोग या शोक आदि का आघात।

क्रि० प्र०—उठाना।—खाना।—लगाना।

(५) कुश्ती का एक पंच जिसमें विपरी की गरदन उस समय जोर से दोनों हाथों से दबा दी जाती है जब वह भीतरी दाँब करने के ह्रादे से पेट में घुस आता है।

भटकारना—क्रि० स० [भु०] किसी चीज को हल प्रकार हिलाना जिसमें उस पर पड़ी हुई दूसरी चीज गिर पड़े या थलगा हो जाय। भटकना। जैसे, ऊपर पड़ी हुई गर्द साफ करने के लिये चादर भटकारना या किसी का हाथ भटकारना। दे० "भटकना"।

भटपट—अव्य० [हि० भट + भु० पट] अति शीघ्र। तुरंत ही। तत्पश्च। कौरन। बहुत जल्दी। जैसे, तुम भटपट जाकर बाजार से सौदा ले आओ।

भटा—संज्ञा स्त्री० [सं०] भू अचला।

भटाका—क्रि० वि० दे० "भड़का"।

भटारसी—संज्ञा स्त्री० [हिं० भड़] बौद्धार।

भटिका—संज्ञा स्त्री० दे० "भटा"।

भटिति—क्रि० वि० [सं०] (१) भट। घटपट। फौरन। तत्काल। तुरंत। व०—कटत भटिति पुनि नूतन भये। प्रभु बहु बार बाहु सिर हये।—तुलसी। (२) बेचिचार। बिना समझे बूझे।

भट्टा—क्रि० वि० दे० "भट्ट"।

भड़—संज्ञा स्त्री० [हिं० भड़ना] (१) दे० "भड़"। (२) ताजे के भीतर का खटका जो चामकी के आघात से हटता बजता है।

भड़कना—क्रि० स० दे० "भिड़कना"।

भड़काना—संज्ञा पुं० दे० "भड़का"।

भड़भड़ाना—क्रि० स० (१) दे० "भिड़कना"। (२) दे० "भोभोड़ना"।

भड़न—संज्ञा स्त्री० [हिं० भड़ना] (१) जो कुछ भड़ के गिरे। भड़ि हुई चीज। (२) भड़ने की क्रिया या भाव। (३) लगाए हुए धन का मुनाफा या सूद। (व०)

भड़ना—क्रि० अ० [सं० धारण] (१) किसी चीज से उसके छोटे छोटे धंगों या अंगों का टूट टूट कर गिरना। कण या बूँद के रूप में गिरना। जैसे, आकाश से तारे भड़ना, बदन की धूल भड़ना, पेट में से पतियाँ भड़ना।

मुहा०—हल भड़ना = दे० "भूत" के मुहावरे।

(२) अधिक मान या संख्या में गिरना।

संयोग क्रि०—जाना।—पड़ना।

(३) धीरे धीरे पतन होना। (बाजार)।

संयोग क्रि०—जाना।

(४) भड़ना जाना। साफ किया जाना।

भड़प—संज्ञा स्त्री० [भु०] (१) दो जीवों की परस्पर मुठभेड़। लड़ाई। (२) क्रोध। गुस्सा। (३) आवेश। जोश। (४) आग की लौ। लपट। (५) दे० "भड़का"।

भड़पना—क्रि० अ० [भु०] (१) आक्रमण करना। हमला करना। वेग से किसी पर गिरना। (२) छोप लेना। (३) लड़ना। भगड़ना। उलभ पड़ना।

संयोग क्रि०—जाना।—पड़ना।

(४) जबरदस्ती किसी से कुछ छीन लेना। भटकना।

संयोग क्रि०—लेना।

भड़पा भड़पी—संज्ञा स्त्री० [भु०] हाचापाई। गुव्यमगुव्या।

भङ्गपाना-कि० सं० [भृ०] 'दो जीवों विरोधतः पक्षियों को खड़ाना। (ब००)

भङ्गवेरी-संज्ञा स्त्री० [हिं० भङ्ग + वेर] (१) जंगली बेर। (२) जंगली बेर का पौधा।

मुहा०—भङ्गवेरी का कर्ता = लड़ने या उलझनेवाला मनुष्य।
- व्यर्थ भङ्ग करनेवाला मनुष्य।

भङ्गवेरी—संज्ञा स्त्री० दे० "भङ्गवेरी"।

भङ्गवाना-कि० सं० [हिं० भङ्गना का प्रे०] भङ्गने का काम दूसरे से कराना। दूसरे को भङ्गने में प्रवृत्त करना।

भङ्गाक-कि० वि० दे० "भङ्गाक"।

भङ्गाका-संज्ञा पुं० [भृ०] भङ्गप। दो जवों की परस्पर मुटमेट।
कि० वि० जल्दी से। शीघ्रतापूर्वक। चटपट।

भङ्गाभङ्ग-कि० वि० [भृ०] (१) लगातार। बिना रुके।
बराबर। एक के बाद एक। (२) जल्दी जल्दी।

भङ्गी-संज्ञा स्त्री० [हिं० भङ्गना] (१) लगातार भङ्गने की क्रिया।
बूँद या कण्य के रूप में बराबर गिरने का कार्य या भाव।
(२) छोटे बूँदों की बर्षा। (३) लगातार बर्षा। भङ्गी।
बराबर पानी बरसना। (४) बिना रुके हुए लगातार बहुत
सी बातें कहते जाना वा धर्म रखते, देते धरपवा निकालते
जाना। जैसे, उन्होंने धार्तों (या गाकियों) की भङ्गी लगा दी।

कि० प्र०—भङ्गना।—भङ्गना।—लगाता।—लगाता।
(१) ताबे के भीतर का खटका जो धानी के धापात से हटा
बढ़ता है।

भङ्ग-संज्ञा स्त्री० [भृ०] वह शब्द जो किसी धातु-संबंध धादि पर
आपात लगने से होता है। धातु के टुकड़े के बजने की
ध्वनि।

धा०—भङ्गना।

भङ्गक-संज्ञा स्त्री० [भृ०] भङ्गकार का शब्द। भङ्गना का शब्द
जो बहुधा धातु धादि के परस्पर टकराने से होता है। जैसे,
हथियारों की भङ्गक, पाजेब की भङ्गक, चूड़ियों की भङ्गक।

भङ्गकना-कि० प्र० [भृ०] (१) भङ्गकार का शब्द करना।
(२) क्रोध धादि में हाथ पैर पटकना। (३) चिद्रुचिद्राना।
क्रोध में झाँक जेद से, बोल उठना। (४) दे० "भङ्गना"।

भङ्गक भङ्गक-संज्ञा स्त्री० [भृ०] मंद मंद भङ्गकार जो बहुधा
धाम्पयों धादि से उग्न होता है।

भङ्गकपात-संज्ञा स्त्री० [भृ० भङ्गक + सं० वा०] घोड़ों का एक
रोग जिसमें वे आपने पैर को कुछ भटका देकर रखते हैं।

भङ्गकार-संज्ञा स्त्री० दे० "भङ्गकार"। व०—घर भर गोरी दूदी
विलासि करकंठ भङ्गकार।—सूर।

भङ्गकारना-कि० प्र० और प्र० दे० "भङ्गकारना"।

भङ्गभङ्ग-संज्ञा स्त्री० [भृ०] भङ्गना शब्द। भङ्गकार।
भङ्गनाहाट।

भङ्गभङ्गा-संज्ञा पुं० [दे०] एक कीड़ा जो तमाकू की नसों में
छेद कर देता है। इसे 'चनचना' भी कहते हैं।
वि० [भृ०] जिसमें से भङ्गभङ्ग शब्द उग्न हो।

भङ्गभङ्गना-कि० प्र० [भृ०] भङ्गना शब्द होना।
कि० सं० भङ्गभङ्ग शब्द उग्न करना।

भङ्गभङ्गाहट-संज्ञा स्त्री० [भृ०] (१) भङ्गभङ्ग शब्द होने की
क्रिया या भाव। भङ्गकार। (२) मुनमुनी।

भङ्गभौरा-संज्ञा पुं० [दे०] एक प्रकार का पेड़।

भङ्गभन-संज्ञा पुं० [भृ०] भङ्गना शब्द। भङ्गकार।

भङ्गनाना-कि० प्र० और प्र० दे० "भङ्गकारना"।

भङ्गनवा-संज्ञा पुं० [दे०] एक प्रकार का धान।

भङ्गनस-संज्ञा पुं० [?] प्राचीन काल का एक प्रकार का
बाजा जिस पर चमड़ा मड़ा हुआ होता था।

भङ्गाभङ्ग-संज्ञा स्त्री० [भृ०] भङ्गकार। भङ्गना शब्द।

कि० वि० भङ्गभङ्ग शब्द सहित। इस प्रकार जिसमें भङ्गभङ्ग
शब्द हो। जैसे, भङ्गाभङ्ग खिड़ी बजने लगी, भङ्गाभङ्ग ररप
बरसने लगी।

भङ्गिया-वि० दे० "भङ्गिया"। व०—कनक रतन मणि जटित कटि
किंकिन कलित पीत पट भङ्गिया।—सूर।

भङ्गाहट-संज्ञा स्त्री० [भृ०] भङ्गकार का शब्द। भङ्गनाहाट।
व०—हुटे सार सद्माह भङ्गाहटे सौं। परे छूटि के मूमि
खलाहटे सौं।—सूदन।

भङ्ग-कि० वि० [सं० भङ्ग = जल्दी से गिरना, झूटना] जल्दी से।
तुरंत। भट। व०—खोजत खोजत जाइ कदम चडि भङ्ग
यसुना जाइ लीला। सोवत काळी जाइ जगयो फिरि भारत
हरि कीने।—सूर।

धा०—भङ्गना। भङ्गाभङ्ग।

मुहा०—भङ्ग खाना = पंग का जल्दी से पेंदी के चत गिर पड़ना।

भङ्गक-संज्ञा स्त्री० [हिं० भङ्गना] (१) बठना समय जितना पलक
गिरने में लागता है। बहुत थोड़ा समय। (२) पलकों का
परपर मिथना। पलक का गिरना। (३) हलकी नींद।
भङ्गकी। (४) खजना। शर्म। हया। भङ्ग।

भङ्गकना-कि० प्र० [सं० भङ्ग = बर से पड़ना, झूटना] (१) पलक
गिराना। पलकों का परपर मिथना। (२) भङ्गकी लेना।
खैना। (ब००) (३) लेकी से धारी बठना। भङ्गटना। (४)
बकेलना। (५) भङ्गना। शर्मिंदा होना। (६) करना।
सहम जाना।

भूपका—संज्ञा पुं० [भृ०] हवा का मोँका । (लरा०)
 भूपकाना—कि० सं० [भृ०] पलकों को बार बार चंद करना ।
 भूपकी—संज्ञा स्त्री० [भृ०] (१) हलकी नौद । थोड़ी निद्रा ।
 उँचाई । ऊँच । जैसे, जरा भूपकी ले लें तो चले ।

क्रि० प्र०—खाना ।—खाना ।—खाना ।

(२) आँसू भूपकने की क्रिया । (३) बँवरा । यह कपड़ा जिससे अनाज घोसाने या यरसाने में हुवा देते हैं । (४) घोसा । चकमा । बहकाना । व०—कहुँ देत भूपकी भूपकि भूपकहु देत खाली दावँ । यदि जात कहुँ द्रुत बगल है बलगात दक्षिण पावँ ।—रघुराज ।

भूपकौही—स्त्री—वि० [हिं० भूपना] [श्री० भूपकौही] (१) नौद से भरा हुआ (नेत्र) । जिसमें भूपकी धा रही हो (यह धाँस) । भूपकता हुआ । व०—(क) भूपकौहँ पलनि पिया के पीक लीक लवि मुकि महराईहँ न नेकु भ्रुनारौ ल्यौं ।—पद्माकर । (ख) मुकि मुकि भूपकौहँ पलन फिरि फिरि जुरि जमुहाय । जानि पियागम नौद मिस ही सब सखी उठाय ।—मिहारी । (२) मन्ना । नरो में बूर । नरो से भरा । व०—सखि थंथा लट्टी चहुँँ धा पूरी जोति समूरी भाल लसै । दग तुति भूपकौही नौद बडौँही नाक चहुँँही अचर हँसै ।—सूदन ।

भूपट—संज्ञा स्त्री० [सं० भूप = बूटना] भूपटने की क्रिया या भाव ।
 व०—(क) लपट भूपट महराते हहराते यात महराते भट परयो प्रयल परायणे ।—तुलसी । (ख) देखि महीप सकल सकुचाने । बाज भूपट अनु लवा लुकाने ।—तुलसी । (ग) मन रँछी जय लग उठै विषय धामना माहि । ज्ञान बाज की भूपट में तप जगि धाया माहि ।—कबीर ।

धौ०—लपट भूपट = लपटने और भूपटने की क्रिया या भाव ।
 मुहा०—भूपट लेना = बहुत तेजी से बढ़कर छीनना ।

भूपटना—कि० अ० [सं० भूप = बूटना] (१) किसी (वस्तु या व्यक्ति) की धार खोंक के साथ बड़ना । वेग से किसी की धार चलना । (२) पकड़ने या आक्रमण करने के लिये वेग से बड़ना । दटना । धाया करना ।

मुहा०—किसी पर भूपटना = किसी पर आक्रमण करना । जैसे, विष्णु का चूहे पर भूपटना ।

क्रि० सं० बहुत तेजी से बढ़ कर कोई चीज ले लेना । भूपट कर कोई चीज पकड़ या छीन लेना । जैसे, तोते को पिठो भूपट ले गई ।

संयो० क्रि०—लेना ।

भूपटाना—कि० सं० [हिं० भूपटना का प्रे०] धाया कराना । आक्रमण कराना । हमला कराना । दुरितयाज्ञक देना । बार कटाना । छड़ने को भभारना । बसकाना । बड़ना देना । मिट्टी को भूपटने में प्रवृत्त करना ।

भूपट्टी—संज्ञा स्त्री० दे० “भूपट” ।
 भूपट्टी—संज्ञा पुं० दे० “भूपट” ।
 भूपटाटा—संज्ञा पुं० [दे०] संगीत में एक ताल जो पाँच मात्राओं का होता है और जिसमें चार पूर्ण और दो अर्ध होती हैं । इसमें ३ आघात और एक खाली रहता है । इसका मूरंदा का षोल यह है—

$$\begin{matrix} \times & 1 & 0 & 2 & 0 & \times \\ \times & \text{धाग, धारोने, तरे, धारो, ने, धा, } & \times & & \times \\ \times & & & & \times \end{matrix}$$

 का तबले का षोल यह है—

$$\begin{matrix} \times & & & & \times \\ \times & \text{धिन् धा, धिन् धिन् धा, देत} & & & \times \\ \times & & & & \times \end{matrix}$$

 ता तिन तिन ता । धा ।

भूपना—कि० अ० [भृ०] (१) (पलकों का) गिरना । (पलकों का) बंद होना । (२) आँसू भूपकना या बंद होना । (३) मुकना । (३) लजित होना । भूपेना । भूपेना ।

भूपनी—संज्ञा स्त्री० [दे०] (१) टकना । वह जिससे कोई चीज ढकी जाय । (२) पिटारी ।

भूपट्टी—संज्ञा स्त्री० दे० “भूपेना” । व०—अस कहि भूपलैया दिखरायो । शिलपिल्ले को दरस करायो ।—रघुराज ।

भूपवाना—कि० सं० [भृ०] भूपना का प्रेरणार्थक रूप । किसी को भूपने में प्रवृत्त करना ।

भूपस—संज्ञा स्त्री० [हिं० भूपसना] (१) गुंजात होने की क्रिया या भाव । (२) कहारों की परिभाषा में पेड़ की सुकी हुई डाल । (इस का व्यवहार विद्वज्ज कहार को धागे पेड़ की डाल होने की सूचना देने के लिये पहला कहार करता है)

भूपसना—कि० अ० [हिं० भूपेना = बँकना] लता या पेड़ की डालियों का खूब घना होकर फैलना । पेड़ या लता आदि का गुंजाप होना । जैसे, यह लता खूब भूपसी हुई है ।

भूपका—संज्ञा पुं० [हिं० भूप] शीघ्रता । जल्दी ।
 क्रि० वि० जल्दी से । शीघ्रतापूर्वक ।

भूपटा—कि० वि० [हिं० भूप] भूपट । तुरंत । शीघ्र ही ।

भूपटा—संज्ञा पुं० [हिं० भूपट] चपेट । आक्रमण । दे० “भूपट” ।

भूपाना—कि० सं० [हिं० भूपना] (१) भूपना का सकर्मक रूप । सूँटना । बंद करना । (विशेषतः आँसू या पलकों का) (२) सुकाना । (३) दे० “भूपाना” ।

भूप—संज्ञा पुं० [दे०] घाल काटने का एक प्रकार का औजार ।
 भूपित—वि० [हिं० भूपना] (१) मया हुआ । बुँदा हुआ । (२) जिसमें नौद भरी हो । भूपरीदा । उर्नीदा । (नेत्र) । (३) लजित । लज्जामयुक्त । लजालू । व०—कवि पद्माकर छुक्ति भूपित भूपि रहत दंगचल ।—पद्माकर ।

भूपिया—संज्ञा स्त्री० [दे०] (१) गले में पहनने का एक प्रकार का गहन जो हँसुली की तरह का बना होता है और जिससे सोने या चाँदी के बीच में एक अक्षीक जड़ा रहता है । यह गहन प्रायः बौम जाति की दिवाँ पहनती है । (२) पेटारी । पड्डी ।

भूपेट—संज्ञा स्त्री० दे० "भूपेट" ।
 भूपेटना—कि० सं० [भु०] आक्रमण करने दया लेना । चपे-
 टना । द्योचनना । छेप लेना । उ०—सहस्रि सुखल पातनात
 की सुरति करि लवा ज्यो सुकात तुलसी भूपेटे वाज के ।
 —तुलसी ।
 भूपेटा—संज्ञा पुं० [भु०] (१) चपेट । भूपेट । आक्रमण ।
 (२) भूत-भेतादि कृत बाधा या आक्रमण । (३) हवा का
 झोंका । झोंकारा । (लहर)
 भूपोला—संज्ञा पुं० दे० "भूपोला" ।
 भूपोली—संज्ञा स्त्री० दे० "भूपोला" के अंतर्गत "भूपोली" ।
 भूपपड़, भूपपर—संज्ञा पुं० [भु०] भूपपड़ । धूपपड़ ।
 भूप्यान—संज्ञा पुं० [हिं० भूपान] भूपान नाम की एक प्रकार की
 पहाड़ी सवारी जिसे चार आदमी उठा कर ले चलते हैं ।
 भूप्यानो—संज्ञा पुं० [हिं० भूपान] भूपान उठानेवाला कहर या
 मजदूर ।
 भूपभक्षी—संज्ञा स्त्री० [दे०] कान में पहनने का एक प्रकार का
 तिकोना पत्ता । (गहन)
 भूपड्डा—वि० दे० "भूपरा" ।
 भूपधरी—संज्ञा स्त्री० [दे०] एक प्रकार की घास जो गेहूँ को
 हानि पहुँचाती है ।
 भूपरा—वि० [भु०] [स्त्री० भूपरा] चारों तरफ बिल्वे और
 घूमते हुए बड़े बड़े पालोपाला । जिसके बहुत लंबे लंबे
 बिल्वे हुए बाल हैं । जैसे, कयरा कुला ।
 संज्ञा पुं० कलंदरों की भाषा में नर-भाऊ ।
 भूपरीला—वि० [हिं० कपरा + ईला (प्रय०)] [स्त्री० कपरीली]
 कुछ बड़ा, चारों तरफ बिल्वरा और घूमा हुआ (बाल) ।
 भूपरैरा—वि० दे० "भूपरीला" । उ०—कुंतल कुटिल छुवि
 राजत भूपरैरी । लोचन चपल तारे रुचिर भूपरैरी ।—सूर ।
 भूपरा—संज्ञा पुं० दे० "भूपरा" । उ०—(क) सीस फूल धरि पाटी
 बजाइत भूपरादि भूषा निहारत । वदन बिंदु जाइ की बेंदी
 तापर बने सुधारत ।—सूर । (ख) छुहरे तिर पै छुवि मीर
 पला उनकी नय के मुकता पहरं । पहरं पियरो पट बेनी हत
 उनकी लुनरी के भूषा महरं ।—वेनी कवि ।
 भूपरारि, भूपारि—संज्ञा स्त्री० [भु०] टंटा । बरोड़ा । भंगड़ा ।
 उ०—(क) बहुत अचगरी जिन करो भूपरारि तनौ भूपारि ।
 पकरि कंन लै जाइगो कालिखि सूर खपरि ।—सूर । (ख)
 बड़े घर की बहू बेटी करति बूया भूपारि । सूर अंपने थंरा
 पायै जाइ घर भल मारि ।—सूर । (ग) भरि नयन लखहु
 रघुकल कुमार । तजि देहु और जग की भूपारि ।—रघुना ।
 (घ) यह भूपरो भंगरो जग रोचत हृदिपद धति भूपारिगा ।
 तावै सज्जन रसिक-शिरामिषि यह भूपारि सय त्याग्या—
 रघुना ।

भूपिया—संज्ञा स्त्री० [हिं० भूप्या का स्त्री० रूप०] (१) छोटा
 भूप्या । छोटा कुँदना । (२) सोने या चांदी आदि की बनी
 हुई बहुत ही छोटी कटोरी जो बागुलंद, जेशन, हुमेल आदि
 गहनों में सूत या रेशम में पिरो कर रखी जाती है
 जिससे एक भूप्या सा बन जाता है । उ०—मदाना-
 सुर ती तिनरु पर स्याम हुमेलन की भूमके भूपिया ।—
 लाल कवि ।

भूपुपा—वि० दे० "भूपुपा" ।
 भूपुकीना—कि० प्र० [भु०] चमकना । भूमकना । उ०—
 भूपूके उड़ें यो भूपूके फुलेंगा । मनो शशि वेताल नरुँ
 सुलेंगा ।—सूदन ।

भूपुषा—संज्ञा पुं० [भु०] (१) एक ही में बंधे हुए रेशम या सूत
 आदि के बहुत से तारों का गुच्छा जो कपड़ों या गहनों आदि
 में शोभा बढ़ाने के लिये लटकवाया जाता है । जैसे, पगड़ी का
 भूपुषा, धानुर्वंद का भूपुषा, हतारवंद का भूपुषा । (२) एक
 में लगी गंधी या बंधी हुई छोटी छोटी चीजों का समूह ।
 गुच्छा । जैसे, तालियों का भूपुषा, घुँघरुओं का भूपुषा ।

भूमक—संज्ञा स्त्री० [भु०] (१) चमक का अनुकरण । (२)
 प्रकारा । उजला । (३) भूमकम शब्द । उ०—पग जेहरि
 विधियन की भूमकनि चलत परसर बाजत । सूर स्याम
 स्यामा सुख जोरी मण्डि कंचन छुवि लाजत ।—सूर । (४)
 टसक या नखरे की चाज ।

भूमकड़ा—संज्ञा पुं० दे० "भूमक" ।

भूमकना—कि० प्र० [हिं० भूमक] (१) प्रकारा की किरने फेंकना ।
 रह रह कर भूमकना । दमकना । प्रकारा करना । प्रज्वलित
 होना । (२) भूपकना । छाना । उ०—घालस सेो कर कर
 उठावत नैननि सिंद भूमकि रहि भारी । दोउ माता निरखत
 घालस सेो छुवि पर तन मन बरारत यारी ।—सूर । (३)
 भूमकम शब्द होना । भूमकार की ध्वनि होना । (४) भूम
 मम करते हुए उड़लना कुँदना । गहनों की भूमकार के साथ
 हिलना होना । उ०—(क) कपड़क निरुठ देखि बर्षा
 श्रुत मूलत सुरंग हिंभोरे । रमकत भूमकत जनकसुता सँग
 दाव भाव चित बेरे ।—सूर । (ग) ज्यों ज्यों प्रायै निरुठ
 निसि ल्यों लों खरी उताल । भूमकि भूमकि दहलें करं खरी
 रहचटे बाज ।—विहारी । (२) गहनों की भूमकार करते
 हुए नाचना । (६) सफ़ाई में हथियारों का चम-
 कना और खनकना । उ०—भट्ट खरो चमकन खग बरो
 भूमकन मूल खरो दमकन लेग लगे दहरान ।—गौरान ।
 (७) भूमक दिखलाना । तेजी दिखाना । भौंक दिखाना ।
 (८) भूमकम शब्द करना । चमके का सा शब्द करना । उ०—
 तैसिये नन्दो बूँदनि बरततु भूमकि भूमकि भूमरे ।—सूर ।

भ्रमकाना—कि० सं० [हि० भ्रमकाना का सं० रूप] (१) चमकाना । बार बार हिला कर चमक पैद करना । (२) चलने में धाम्प्यथा धादि वजाना और चमकाना । उ०—सदज सिंगार उठत चौवन तन विधि सों हाथ धगई । सूर स्याम आए दिग थापुन घट भरी चलि कमकाई ।—सूर । (३) युद्ध में हथियारों आदि को चमकाना और खलनाना ।

भ्रमकारा—वि० [हि० भ्रमकाम] भ्रमाकाम धरसनेवाला (वाद्दल) । उ०—सोले सिंधु सिंधुर से यंडुर ज्यों विंच्य गंधमादन के बंधु गरज गुरवानि के । कमकारे मूमत गगन घने घूमत पुकारे मुख चूमत पपीहा मोरवान के ।—देव ।

भ्रमभ्रम—संज्ञा स्त्री० [अनु०] (१) भ्रमभ्रम शब्द जो बहुधा धुँ धुरधों आदि के यजने से उत्पन्न होता है । ध्रुमध्रुम । (२) पानी धरसने का शब्द । (३) चमक दमक ।

वि० जिसमें से खूब चमक या धामा निकले । चमकता हुआ । कि० वि० (१) भ्रमभ्रम शब्द के साथ । जैसे, धुँ धुरधों का भ्रमभ्रम बोलना, पानी का भ्रमभ्रम धरसना । (२) चमक दमक के साथ । भ्रमाकाम ।

भ्रमभ्रमाना—कि० अ० [अनु०] (१) भ्रमभ्रम शब्द होना । (२) चमकमाना । चमकना ।

कि० सं० (१) भ्रमभ्रम शब्द उत्पन्न करना । (२) चमकाना ।

भ्रमभ्रमाहट—संज्ञा स्त्री० [अनु०] (१) भ्रमभ्रम शब्द होने की क्रिया या भाव । (२) चमकने की क्रिया या भाव ।

भ्रमना—कि० अ० [अनु०] गम होना । शुकना । दबना । उ०—सुरली स्याम के कर अपर धिय रमी । लेति सरसधु युवतिजन को वदन तें विंदु अमी । पिवति न्यारे गर्व मारे नेकु नही नमी । बोलि शब्द सु सस सुर मिल नाग मुनि गति दमी । महा कठिन कठोर आली बसि वंश जु जमी । सूर परन परसि श्रीमुख नैक नाही भगी ।—सूर ।

भ्रमाका—संज्ञा पुं० [अनु०] (१) भ्रमभ्रम शब्द । पानी धरसने या गहनों के बजने आदि का शब्द । (२) ठसक । मटक । नलरा ।

भ्रमाभ्रम—कि० वि० [अनु०] (१) उज्वल कान्ति के सहित । दमक के साथ । जैसे, सलमे सितारे टँके हुए कपड़ों का भ्रमाभ्रम चमकना । (२) भ्रमभ्रम शब्द सहित । जैसे, पाजेव का भ्रमाभ्रम बोलना, पानी का भ्रमाभ्रम धरसना ।

भ्रमाट—संज्ञा पुं० [अनु०] झुरमुट । उ०—पर्वत के सिर पर क्या देखाता है कि बहुत से सूले झाड़ों के भ्रमाट से बड़ा घटाटोप धूम निकल रहा है ।—ध्यास ।

भ्रमाना—कि० अ० [अनु०] भ्रमकना । छाना । घेरना । उ०—(क) खेलत तुम निसि अधिक गई सुत नैननि नौद भ्रमाई । वदन जैमात श्रंग पँड्रावत जननि पसोडत पाई ।—सूर ।

(ख) लौं पदमाकर भोरि कमाई सुदौरीं सयै हरि पै हक-दाक ।—पद्माकर ।

कि० अ० दे० “भ्रवाना” ।

कि० सं० झुंझा करना । एकत्र करना ।

भ्रमूरा—संज्ञा पुं० [?] (१) घने धालोंवाला पशु । जैसे, रीझ, भबरा कुत्ता आदि । (२) वह लड़का जो बाजीगर के साथ रहता है और बहुत से खेलों में बाजीगर को सहायता देता है । (३) वह वरचा जो वीले डाले कपड़े पहने हो । (४) कोई प्यारा बच्चा ।

भ्रमेला—संज्ञा स्त्री० दे० “भ्रमेला” ।

भ्रमेला—संज्ञा पुं० [अनु० भ्रम भ्रम] (१) बखेड़ा । कंकट । कगाड़ा टंटा । (२) लोगों का झुंड । भीड़ भाड़ । उ०—शय्युन के भ्रमेला वीर पाय शर उला प्राण त्यागि छलचला तन लई काम चेला सो ।—गोपाल ।

भ्रमेलिया—संज्ञा पुं० [हि० भ्रमेश + य (प्रत्य०)] भ्रमेला करनेवाला । कगाड़ालू ।

भ्रर—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) पानी गिरने का स्थान । निर्मल । (२) भरना । सोता । धरमा । पर्वत से निकलता हुआ जलप्रवाह । (३) समूह । (४) तेजी । वेग । उ०—प्रात गई नीके उठि ते घर । मैं बरजी कहां जाति री प्यारी तव स्त्रीकी रिस भर ते ।—सूर । (५) झड़ो । लगातार घुटि । (६) किसी वस्तु की लगातार वर्षा । उ०—(क) वर्षत अथ कवच धर फूटे । मया मेघ माने भर जुटे ।—लाल । (ख) पावक भर ते मेह भर दाहक दुसह बिसलि । दहै देह वाके परस पाहि टगन की देखि ।—बिहारी । (ग) सूरदास तव ही तम नासै ज्ञान अगिन भर फूटै ।—सूर । (७) आँच । ताप । लपट । झाला । झाल । उ०—(क) स्याम श्रंक्रम भरि लीन्हों बिहृ अगिन भर तुरत घुमानी ।—सूर । (ख) श्याम गुणराशि मानिनि मनाई । रहयो रस परस्पर मिटयो तनु बिरह भर भरी आनंद त्रिप उर न माई ।—सूर । (ग) सटपटाति सी ससिमुखी मुख धूँघट पट टांकि । पावक भर सी कमकि के गईं भरोसे मंकि ।—बिहारी । (घ) नेकु न सुरसी बिरह भर नह छाता कुंभिलाति । नित नित होत हरी हरी खरी भलरति जाति ।—बिहारी । (ङ) ताले का खटका । ताले के भीतर की कल । ताले का कुत्ता ।

भ्ररक *—संज्ञा स्त्री० दे० “भ्ररक” ।

भ्ररकना—कि० अ० (१) “भ्ररकना” । उ०—सरल विलास विराजही विद्वम खंम सुजोर । चारु पाटियनि सुरट की भरकत मरकत मोर ।—तुलसी । (२) दे० “भ्रिङ्कना” । उ०—रोवत देखि जननि धकुदानी लियो तुरत नौवा को भरकी ।—सूर ।

भ्ररभ्रर—संज्ञा स्त्री० [अनु०] (१) जल के बहने, धरसने या हवा के चलने आदि का शब्द । (२) किसी प्रकार से उत्पन्न करभर शब्द ।

भरभराना—क्रि० सं० [भृ०] किसी धर्मन में से किसी वस्तु को इस प्रकार भाङ्ग कर गिरा देना कि उस वस्तु के गिरने से भरभर शब्द हो।

भरन—संज्ञा स्त्री० [हिं० भरना] (१) भरने की क्रिया। (२) वह जो कुछ भर कर निकला हो। वह जो भरा हो। (३) दे० “झड़न”

भरना * १-क्रि० अ० [सं० चरण] (१) झड़ना। (२) किसी ऊँचे स्थान से जल की धारा का गिरना। ऊँची गडह से सोते का गिरना। जैसे, पहाड़ों में झरने भर रहे थे। उ०—तंद्रनेदन के बिछुरे श्रिलियाँ उपमा जोग नहीं।..... भरना लों मे भरत रैन दिन उपमा सकल यहीं। सुरदास श्यामा मखिबे की थय घट साँस रहँ।—सूर। (३) धीयं का पतन होना। धीयं स्थिति होना। (पानात्)

विशेष—दे० “झड़ना”।

विशेष—इन शब्दों में इस शब्द का प्रयोग उस पदार्थ के लिये भी होता है जिस में से कोई चीज़ भरती है।

संज्ञा पुं० [सं० भर] ऊँचे स्थान से गिरनेवाला जल-प्रवाह। पानी का यह छोन जो ऊपर से गिरता हो। सेता। घरमा। जैसे, उस पहाड़ पर कई झरने हैं।

संज्ञा पुं० [सं० चरण] [स्त्री० अय० भरनी] (१) सोढ़े या पीतल आदि की बनी हुई एक प्रकार की छलनी जिसमें लंबे लंबे छेद होते हैं और जिसमें रस कर समूचा अनाज छाना जाता है। (२) लंबी टाँपों की वह कारखी या चम्मच जिसका अगला भाग छोटे तवे का सा होता है और जिस में बहुत से छोटे छोटे छेद होते हैं। इससे खुले घी या तेल आदि में तजी जानेवाली चीजों को उलटते, पलटते, यादर निकालते अथवा इसी प्रकार का कोई और काम लेते हैं। भरने पर ओ चीज लो की जाती है उस पर का फालतू घी या तेल उसके छेदों से नीचे गिर जाता है और तब यह चीज निकाल ली जाती है। पौना। (२) पशुओं के खाने की एक प्रकार की घास जो कई वर्षों तक रखी जा सकती है।

वि० [स्त्री० भरनी] (१) भरनेवाला। जो भरता हो। (२) जिसमें से कोई पदार्थ भरता हो। उ०—दे० “भरनी”।

भरनी * १-संज्ञा स्त्री० दे० “भरन”। उ०—यूजर बगन मानि मृग से अर्पण होत मीन होत चरणामृत भरनि को।—चरण।

भरनी—वि० दे० “भरना”। उ०—भरनी सुरस विंदु धरनी सुंदर नू की धरनी सुफल रूप जेत कर्म फाल की। नरनी सुरानी उषरनी घर धानी चार पात तम तरनी भगति नंद खाल की।—गोपाल।

भरप * १-संज्ञा स्त्री० [भृ०] (१) भोका। भूकर। उ०—शंभु कीये मधुप मर्दंभ कीये पुरजन सुमोहयो मन गंधी की

सुरांभ भापन हीं।—श्वे। (२) वेग। तेनी। उ०—घेरि घेरि घदरि घन आप घोर तापें मडा भारत भूकोरत भाप सों।—कमलापति। (३) खाँड़। टेक। किसी चीज को गिरने से बचाने के लिये लगाया हुआ सहारा। (४) चिक। चिकनन। चिक्कनन। परदा। उ०—(क) तामन की गिलमें गलीचा मखवलन के भरपें सुमाऊ रहँ भूमि रंग द्वारी में।—पद्माकर। (ख) काँके झुकी युवती ते मारोपन मुंडनि ते भरपें कर टारी।—सुराज। (५) दे० “भरप”।

भरपना * १-क्रि० अ० [भृ०] (१) भोका देना। बौद्धार मारना। उ०—वर्षत गिरि भरपत ब्रज ऊपर। सं जल जई तहें पूरन शूर।—सूर। (२) दे० “झड़ना (१)”। (३) दे० “झड़ना (२)”। उ०—एने पर कयहूँ जय थावत भरपत करत घनेते।—सूर।

भरपेटा—संज्ञा पुं० दे० “भरप”।

भरखेरी—संज्ञा पुं० दे० “भरखेरी”।

भरखेरी—संज्ञा स्त्री० दे० “भरखेरी”।

भरयाना—क्रि० सं० [हिं० भरना का प्रे०] (१) भराने का काम दूसरे से कराना। दूसरे को भराने में प्रवृत्त करना। (२) दे० “झड़याना”।

भरसना * १-क्रि० अ० [भृ०] (१) दे० “झुलसना”। (२) सूखना। सुरमाना। कुन्डलाना।
क्रि० सं० (१) दे० “झुलसना”। (२) सुखाना। सुरका देना।

भरहरना—१-क्रि० अ० [भृ०] भरभर शब्द करना। उ०—अजहूँ चेत मृदु चहूँ दिसि ते काल अमि उपजत मुकि भरहरि। सूर काल बलि व्याल प्रसत है श्रोपति सरन परत क्यों न कर हरि।—सूर।

भरहरा—वि० दे० “भरहरा”। उ०—मुकि मुकि मूमि मूमि फिल फिल भेल भेल भरहरि भांपन में भमकि भमकि उरें।—पद्माकर।

भरहराना—क्रि० अ० [भृ०] पत्तों का धावु या घर्ष के कारण शब्द करना या शब्द करते हुए गिरना। हवा के भोके से पत्तों का शब्द करना अथवा शब्द सहित गिरना। उ०—भरहरात धन पात गिरत तह धरनि तद्गक तद्गक सुनाई। जल भरपत गिरिवर तर बाचे अथ कैसे गिरि होत सहई ?—सूर।

क्रि० सं० (१) भरभर शब्द सहित किसी चीज को, विशेषतः पेड़ों के पत्तों को गिराना। पेड़ की डाल हिलाना। (२) झड़ना। झड़ना।

भरहिल—संज्ञा स्त्री० [दे०] एक प्रकार की चिट्ठिया।

भर्रा—संज्ञा पुं० [दे०] एक प्रकार का धान जो पानी भरुप पेतों में उत्पन्न होता है।

भराम्बर—क्रि० वि० [भ्रु०] (१) भरम्बर शब्द सहित। (२) लगातार। वराच। (३) वेग सहित। उ०—धो हरिदास के स्वामी स्वामा कुंजविहारी दोउ मिलि बरत भराम्बरि।—हरिदास।

भराम्बर—संज्ञा पुं०, वि० दे० "मूलाबोर"।

भरि—संज्ञा स्त्री० दे० "मूला"।

भरिफ क० १—संज्ञा पुं० [हिं० भरप] चिक। चिलमन। परदा।
भरि—संज्ञा स्त्री० [हिं० भरना] (१) पानी का भरना। स्रोत। चरमा। (२) वह धन जो किसी हाट, धामार या सट्टी खादि में जा कर सौदा बेचनेवाले छोटे छोटे दुकानदारों विशेषतः खोनचेवालों और कुंजों खादि से प्रति दिन किराए के रूप में पहाई के जमींदार या टीकंदार खादि को मिलता है। (३) दे० "मूला"। उ०—(क) कुंजुम अगर धरामा धिर-कहि भरहि गुलाब अघीर। नभ प्रसून भरि पुरी कोलाहल भइ मनभावति भीर।—तुलसी। (ख) दस दिसि रहे धान नभ छाई। मानहु मया मेघ भरि छाई।—तुलसी।

भरुआ—संज्ञा पुं० [दे०] एक प्रकार की घास।

भरोआ—संज्ञा पुं० [भ्रु० भरम्बर = वलु बरने का शब्द + गोल] दीवारों खादि में बनी हुई कंमरीदार छोटी लिङ्गी या मोला जिसे हवा और रोशनी खादि घाने के लिये बनाते हैं। गवाण। गौजा।

भरुआ—संज्ञा पुं० [सं०] (१) हुडक नाम का लकड़ी का धागा जिस पर चमड़ा मड़ा होता है। (२) कलियुग। (३) एक नद का नाम। (४) हिरण्यक के एक पुत्र का नाम। (५) खोदे खादि का बना हुआ करना जिससे कड़ाही में पकनेवाली चीज चलाते हैं। (६) मर्मक। (७) पैर में पहनने का मर्मक या मर्मर नाम का गहना।

भरुआ—संज्ञा पुं० [सं०] कलियुग।

भरुआ—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) तारा देवी का एक नाम। (२) चेरया। रंवी।

भरुआ—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) गंगा। (२) कटसरैया।

भरुआ—संज्ञा स्त्री० [सं०] तारा देवी।

भरुआ—संज्ञा पुं० [सं० भरम्बर] शिष्य।

भरुआ—संज्ञा पुं० [सं०] मर्मक नामक धागा।

भरुआ—संज्ञा पुं० [सं०] (१) देवा। (२) शरीर। (३) चित्र।

भरुआ—संज्ञा पुं० [दे०] (१) धवा पत्ती। (२) एक प्रकार की छोटी चिड़िया।

भरुआ—संज्ञा पुं० [दे०] धवा नाम की चिड़िया।

भरुआ—संज्ञा पुं० [हिं० भर, सं० भर = तप] (१) दाह। जलन। धाक। (२) उग्र कामना। किसी विषय की उत्कट इच्छा। उ०—(क) जीव विलंबा जीव सेो अलख लक्ष्मो नदि जाय। साद्व मिलै न मूल बुकै रहीं बुकय बुकय।—कवीर। (ख)

मज धायै मज दादिने मज ही में ब्यवहार। धागे पाँधे मज जरी रापे सिरजनदार।—कवीर। (३) काम की इच्छा। विषय वा संभोग की कामना। (४) क्रोध। गुस्सा। रिस। (५) समूह। उ०—गुनि धाय सरजू सरित तीर।...
...कहु धायु न धय धय गति चलति। मज पतिवत को जख फलति।—केशव।

भरुआ—संज्ञा स्त्री० [सं० भरिना = चमक] (१) चमक। दमक। प्रकार। प्रभा। धुति। धामा। उ०—मनि संभन प्रवि-थिय भरुआ धुवि धुलकि रहे भरि धागै।—तुलसी। (२) धाकृति का धामास। प्रतियिष्य। जैसे, ये पानी एक मलक दिखाए कर चले गए। उ०—मकराकृत कुंज की मलकें इतहूँ सुजमूल में छाए परी री।—पद्माकर।

भरुआ—वि० [हिं० भरुआ + फा० दार] चमकीला। चमकने-वाला।

भरुआ—क्रि० अ० [सं० भरिना = चमक] (१) चमकना। दमकना। उ०—मलका मलकत पायन्ह कैसे। पंज कोस शोसकन जैसे।—तुलसी। (२) कुछ कुछ प्रकट होना। धामास होना। जैसे, उनकी धाम की धावों से भरुआ धा कि वे कुछ नाराज हैं।

भरुआ—संज्ञा स्त्री० दे० "मूला"। उ०—(क) धवन कुंजल मकर मानो नैन मीन विसाल। सखिल भरुआ रूप धामा देल री नैदाल।—सूर। (ख) मदन मोर के पंद की भरुआ निदरति तन जोति। नील कमल मनि जलद की उपमा कहैं लघु मति होति।—तुलसी।

भरुआ—संज्ञा पुं० [उरु = जलना] चलने वा रागू लगने खादि के कारण शरीर में पड़ा हुआ धागा। उ०—मलका मलकत पायन्ह कैसे। पंज कोस शोसकन जैसे।—तुलसी।

भरुआ—क्रि० सं० [हिं० भरुआ का सं० रूप] (१) चमकाना। दमकाना। जसकाना। (२) दरसाना। दिखलाना। कुछ धामास देना।

भरुआ—संज्ञा स्त्री० दे० "मूला"।

भरुआ—संज्ञा स्त्री० [हिं० भरुआ] चमक। दमक।

क्रि० वि० रह रह कर निरुजनेवाली धामा के साथ। जैसे, मलकत चमकना।

भरुआ—क्रि० अ० [भ्रु०] चमकना। चमकमाना। उ०—मलकत रिस जाल वदनसुत चहुँ दिसि चाहिय।—सूदन।

क्रि० सं० चमकाना। चमकमाना।

भरुआ—संज्ञा स्त्री० [भ्रु०] चमक। दमक।

भरुआ—क्रि० सं० [हिं० भरुआ (दिखना) से भ्रु०] (१) किसी चीज को हिला कर किसी दूसरी चीज पर हवा लगाना या

पहुँ चाना । जैसे, (क) जरा उन्हें पंखा भल दे। (ल) वे मिनखण भल रहे हैं। (२) हवा करने के लिये कोई चीज हिलाना । जैसे, पंखा भलना ।

संयो० क्रि०—देना ।

† (३) दकेलना । ठेलना । धका देकर आगे पड़ाना ।
क्रि० अ० (१) किसी चीज के अगले भाग का हजर उधर हिलना । उ०—मूखि रहे, मूखि रहे, फेजि रहे, फयि रहे, मपि रहे, भलि रहे, खुकि रहे, मूमि रहे ।—पगाकर ।
† (२) शेली चपारना । हॉग हांकना । (३) “भलाना” का अकर्मक रूप । दे० “भलाना” । (४) दे० “भेलना” ।

भलमल-संज्ञा पुं० [सं० भल्ल = शील] (१) शंखेरे के बीच थोड़ा थोड़ा उताला । हलका प्रकार । (२) शंखेरा । (कहारों की परि०) (३) चमक दमक ।
क्रि० वि० दे० “भलभल” ।

भलमला-वि० [हिं० भलमलाना] चमकीला । चमकता हुआ ।
उ०—मोर मकुट अति सोहई श्रवणनि घर कुंडल । जसित कपोलनि भलमले सुंदर अति निर्मल ।—सूर ।

भलमलाना-क्रि० अ० [हिं० भलमल] (१) रह रह कर चमकना । रह रह कर मंद और तीव्र प्रकाश होना । चमकमाना । (२) ज्योति का अस्थिर होना । अस्थिर ज्योति निकलना । ठहर कर बराबर एक तरह न जलना या चमकना । निकलते हुए प्रकाश का हिलना डोलना । जैसे, हवा के भोंके से दीये का भलमलाना । उ०—(क) लोहें ती मा चंद्रा चहँगो । कइ करीं जलपुट भीतर को बाहर थोक गहँगो । यह तो भलमलगत अकर्मोत्तर पँसे कै लु खहँगो ।—सूर । (ख) रपाम धलक बिच मोती मंगा । मानहु भलमलवति सीस मंगा ।—सूर । (ग) बाल बेलि चान बस भलकि भलमलत रोभा की सी दीपदि मोना रूप दीप दिये है ।—तुलसी ।

क्रि० सं० किसी स्थिर ज्योति या लौ को हिलाना डुलाना । हवा के भोंके आदि से प्रकाश को अस्थिर या तुकने के निकट कराना ।

भलराना-क्रि० अ० [हिं० भलर] फैल कर छाना । बढ़ना ।
उ०—दे० “भालराना” ।

भलरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) हुडक नाम का बाज । (२) घमाने की कर्मिका ।

भलवाना-क्रि० सं० [हिं० भलना] (१) भलना का प्रेरणार्थक रूप । भलने का काम दूसरे से कराना । (२) “भलाना” का प्रेरणार्थक रूप । भालने का काम दूसरे से कराना ।

भलहाया-संज्ञा पुं० [हिं० भल] [स्त्री० भलहाई] वह जो डाढ़ धरता हो । हसद करनेवाला धादमी ।

भल्ला-संज्ञा पुं० [हिं० भल्ल] (१) हलकी वर्षा । (२) भल्लर, तोरण या बंदनवार आदि । (३) पंख । चीजना । बेना । (४)

समूह । उ०—मज्जकत शायें मूँद मिजिम भल्लानि मफ्यो, समकत शायें तेगवाही औ तिलाही हैं ।—पद्माकर ।
संज्ञा स्त्री० [सं०] श्रातप । धूप ।

भल्लाभल्ल-वि० [अनु०] खूब भल्लभल्लाता या चमचमाता हुआ । चमाचम । उ०—(क) छोट्टी छोट्टी मँगुली मलामल्ल भल्लकदार छोट्टी सी छुटी को लिप छोट्टे राजदोटे हैं ।—रघुराज । (ख) कंचन के कलस भराए भूरि पन्नन के ताने तुंग तोरन तहाँई भल्लाभल्ल के ।—पद्माकर ।

भल्लाभली-वि० [अनु०] चमकीला । चमकदार । भल्लाभल्ल ।
उ०—जिन्हें लावे भल्लाभली हलाहली हिये लजे ।—गोपाल ।

संज्ञा स्त्री० भल्लाभल्ल होने की क्रिया या भाव ।

भल्लाना-क्रि० सं० दे० “भल्लवाना” ।

भल्लाधार-संज्ञा पुं० [भल्लभल्ल = चमक] (१) कलाबन्नु का गुना हुआ माड़ी आदि का चौड़ा शंखल । (२) कारचोपी । उ०—भल्लाधारे का धंधरा घूम सुमाला तिस पर सच्चे मोती टके हुए ।—जगदल । (३) एक प्रकार की आतिरावाजी ।
† (४) कटा । माड़ी । (५) चमक । दमक ।
वि० [भल्लभल्ल = चमक] चमकीला । शोपदार ।

भल्लाभली-संज्ञा स्त्री० [भल्लभल्ल = चमक] चमक । दमक । उ०—चहुँ दिस लगी है बजार भल्लाभल्ल हो रही, मूमर दोत अघार अघर दोरी लगी ।—कपीर ।
वि० चमकीला । चमक दमकवाला ।

भल्ला-संज्ञा पुं० [सं०] (१) माल्य (= संस्कारहीन) चत्री और सर्वथ छी से उपजत वर्षासंकर जाति । (२) भाड़ या विदूषक । (३) पदद या हुडक नामक बाजा । (४) लपट । ज्वाला ।
संज्ञा स्त्री० [अनु०] भल्ला होने का भाव ।

भल्लकंठ-संज्ञा पुं० [सं०] परेया ।

भल्लक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कर्तै का बना करताल । कर्मक । (२) मँतीरा । जोड़ी ।

भल्लनारी-क्रि० अ० [अनु०] बहुत मूठी मूठी धातें करना । बहुत खींग हाँकना या गल्प बढ़ाना ।

भल्लरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) हुडक नामक बाजा । (२) कर्मक । (३) पत्नीगा । खेद । (४) पत्तेव ।

भल्ला-संज्ञा पुं० [देग०] (१) राजा । बड़ा दोहरा । (२) वर्षा । घटि । (३) बीद्यार । (४) वे दाते जो बड़े हुए तमाल के पत्तों पर पड़ जाते हैं ।

वि० [हिं० जल] बहुत तरल या पतला । जिसमें अस्थिक पानी मिला हो । जो गाढ़ न हो । जैसे, भल्ला रम, भल्ला माँग ।

[हिं० भङ्गाना] † (१) पागल । (२) बहुत बढ़ा
वेबहुक ।

भङ्गाना-किं० अ० [हिं० भङ्ग] बहुत चिड़ना । गिरजलाना । कित-
किटाना ।

किं० स० ऐसा काम करना जिससे कोई बहुत चिड़े ।

भङ्गिका-गंशा छी० [सं०] (१) चढ़न पौढ़ने का रूपड़ा ।
चोगेठा । (२) शरीर की वह मूल जो किसी चीज से मजने या
पौढ़ने से निकले । (३) शीति । प्रकाश । (४) सूर्य की
किरणों का संग ।

भङ्गी-वि० [हिं० भङ्गाना] धानुनिया । गर्गी । चक्रवर्ती ।
संगा री० [सं०] हुदुक की तरह का एक पाजा जिम पर
चमड़ा मड़ा होता था ।

भङ्गलीपक-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का नृत्य ।

भङ्गरी-संज्ञा पुं० [हिं० भङ्ग] भङ्गड़ा ।

भङ्गी-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मस्य । मीन । मड़ली । उ०—सिद्ध
मकर उगम रूप जाती । अति अगाध दुस्तर सब भाँती ।—
गुलामी । (२) मकर । मगर । (३) साप । गरमी । (४) वन ।
(५) मीन राशि । मीन लग्न । (६) दे० “भङ्ग” ।

भङ्गकेतु-संज्ञा पुं० [सं० भङ्गकेतु] कंदर । कामदेव ।

भङ्गनिकेत-संज्ञा पुं० [सं०] (१) जजाराय । (२) समुद्र ।

भङ्गराज-संज्ञा पुं० [सं०] मगर । मकर ।

भङ्गलज-संज्ञा पुं० [सं०] मीनलग्न ।

भङ्गाक-संज्ञा पुं० [सं०] कामदेव ।

भङ्गा-संज्ञा छी० [सं०] नागपत्नी । गुलसठरी ।

भङ्गाशन-संज्ञा पुं० [सं०] विशुमार नामक जलजंतु । सूँस ।

भङ्गादरी-संज्ञा छी० [सं०] व्यास की माता । मस्यगंधा ।

भङ्गनना-किं० अ० [अ०] (१) भङ्गाना । भङ्गाने या सज्जाने
में आना । (२) ‘रोप’ का खड़ा होना । उ०—गहन गहन
लागी गायन मयूरमाला भङ्गन भङ्गन लागे रोम रोम छन
में ।—धीपति । (३) भनभन शब्द करना ।
किं० स० दे० “भङ्गाना” ।

भङ्गनाना-किं० स० [अ०] (१) भङ्गनना का सकर्मक रूप ।
(२) भनकार शब्द करना । भनकारना । उ०—गति गयंद
कुच कुंभ किंकिनी मनहु घंट भङ्गनाये ।—सूर ।

भङ्गरना-†-किं० अ० [अ०] (१) भ्रमर शब्द करना । भङ्गने
का सा शब्द करना । उ०—भङ्गरि भङ्गरि मुकि मीनी भ्र
लाये देव छहरि छहरि छोगी बूँदनि छहरिया ।—देव । (२)
(शरीर आदि का) बहुत शिथिल पड़ना । षीला हो जाना ।

उ०—भङ्गरि भङ्गरि परै पाँसुरी लक्षार देह विरह पसाय हाप
कैमे दूबरे भये ।—रघुनाथ ।

किं० स० भिड़कना । भङ्गाना । उ०—सुनि सजती मैं रही
अकेली विरह यदेली हत गुण जन भङ्गरे ।—सूर ।

भङ्गराना-किं० अ० [अ०] (१) शिथिल हो कर भ्रमर शब्द के
साथ या लक्षणड़ा कर गिरना । उ०—(क) चमुर ले तद सो
पद्मारगो गिरयो तद भङ्गराई । ताल सों तद ताल क्षायो
उठयो वन घहराई ।—सूर । (ख) धातु गप धनशातुं न तद
तर परसन पात उठे भङ्गराई ।—सूर । (ग) छपट भपट भङ्-
राने धात पदराने भट परयो प्रयत्न पराने ।—तुलसी ।

(२) भङ्गाना । कितकिटाना । गिरजलाना । उ०—(क) एक
अभिमान हृदय करि कैडी पते पर भङ्गरानी ।—सूर । (ख)
नागरी हँसति हँसी उर छाया तापर अति भङ्गरानी । अथ
कंप रिस भीह मरोगी मन ही मन भङ्गरानी ।—सूर । (३)
दिलाना । उ०—बाजधी किरावै बार बार भङ्गरावै भरे
धुँदियाँ मी खंक पवित्राह पागि पागिदे ।—तुलसी ।

भङ्गि-संज्ञा छी० [सं०] (१) परछाई । प्रतिबिंब । छाया ।
धामा । कलक । उ०—(क) भङ्गि न मिटन पारै धाप हरि
भारु हँ जब जान्यो गात्र धाह लये जात जल में ।—सूर ।
(ख) मेसरि के मुकुना में भङ्गि बन विराजत चारि । मानो
सुगुरु शुक्र भीम शनि चमकन चंद्र भङ्गारि ।—सूर । (ग)
कह सुपौत्र मुनहु रघुराई । सति मैह प्रकट भूमि की भङ्गि
।—तुलसी (घ) मेरी भवबाधा हरो राधा नागरी सोह ।
जा सन की भङ्गि परे स्वाम हरित दुति होह ।—विहारी ।
(२) चोपकार । चोपरा । उ०—रेरामी सतत शाल लाल
पट लपिटे भ्रह्म भीतरे न शीत रैन की न भङ्गि है ।—देव ।
(३) घोरता । दुल ।

मुहा०—भङ्गि यतना = छन करना । धोला देना ।

पौ०—भङ्गि रूप्य = धोला धड़ी ।

(४) प्रतिशब्द । प्रतिव्यति । उ०—कुहकि उठे वन मोर
कंदरा गरजति भङ्गि । चित चट्टत मृग हँद विषा मनमय
सरसाई ।—नागरीदास । (५) एक प्रकार के हलके काले
धन्ने जो रक्त-विकार से मनुष्यों के शरीर विशेषतः मुँह पर
पड़ जाते हैं ।

भङ्गि-माई-संज्ञा छी० [अ०] वधों का एक खेज जिसमें ये
“भङ्गि-माई” कौयों की बरात आई” कहते जाते और घूमते
जाते हैं ।

मुहा०—भङ्गि-माई होना = नजरो से गायब हो जाना । छुटख
हो जाना ।

भङ्गाक-संज्ञा छी० [हिं० भङ्गाना] भङ्गाने की क्रिया या भाव ।

धा०—बाक भङ्गाक = दे० “ताक भङ्गाक” ।

संज्ञा पुं० दे० "भाँकल" ।

भाँकना—क्रि० प्र० [सं० भ्रष्यन्, प्रा० भ्रष्यन्त = भ्रष्य के सम्बन्ध]

(१) घोट के बगल में से देखना । आँड़ में से सुँह निकाल कर देखना । उ०—(क) जैह तँह उभकि करेला भाँकत जनक नगर की नारी।—सूर । (ख) तुलसी मुदित मन जनक नगर जन भाँकति मरोले लागी सोभा रागी पावती ।—तुलसी । (२) धर वधर मुक कर देखना ।

भाँकनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० भाँकना] (१) भाँकी । दर्राँ । उ०—भाँकनी दे कर भाँकनी की सुनै कानन वैन धनाकनी कीने ।—देव (२) कुर्बा । (कहाराँ की परि०)

भाँकर—संज्ञा पुं० दे० "भाँकड़" ।

भाँका—संज्ञा पुं० [हिं० भाँकना] (१) रटे का खांचा । जालीदार खांचा । (२) करेला । उ०—सभा भाँक नूपदी राखी पति पानिप गुण है जाके । दसन घोट करि फोट विरवंभर परन न पाये भाँके ।

भाँकरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० भाँकना] (१) दर्राँ । श्वलोका । भाँकने या देखने की क्रिया अथवा भाव ।

क्रि० प्र०—करना ।—देना ।—मिलना ।—लेना ।—होना । (२) दृश्य । वह जो कुछ देखा जाय ।

क्रि० प्र०—देखना ।

(३) वह जिसमें से भाँका जाय । मरोला ।

भाँख—संज्ञा पुं० [देग०] एक प्रकार का बड़ा जंगली हिरन । उ०—टाढ़े टिंग बाघ बिग चीते चितवत भाँख भृग शशासृग सब रीमि रीमि रहे हैं ।—देव ।

भाँखना—क्रि० प्र० दे० "भाँखना" । उ०—(क) ईद्री यथा न्यारी परी सुख लूटति भाँखि । सूरदास संग रहैं तेरु भँरँ भाँखि ।—सूर । (ख) एधि विधि राव मनहि मन भाँखे । देखि कुभाँति कुमति मनु भाँखे ।—तुलसी ।

भाँखर—संज्ञा पुं० [हिं० मखाड़] (१) भाँखड़ा । उ०—भाँखर जहाँ सुड़ाइहूँ पंथा । हिलगि मसोय न फारहु कंथा ।—जायसी (२) अरहर की वे लूटियाँ जो फसल काटने के बाद खेत में रह जाती हैं ।

भाँखटा—वि० [देग०] चीन्हा ढाला (फपड़ा) । उ०—पहिर भाँखले पटा पाग सिर टेढ़ी बाँधे । घर में तेल न लौन प्रीत चेरी सों साधे ।—गिरधर ।

भाँगा—संज्ञा पुं० दे० "फगा" । उ०—पीत वसन पहिरे सुदि भाँगा । चबु चपल शलकै अनु नागा ।—विश्राम ।

भाँजान—संज्ञा स्त्री० दे० "भाँकन" ।

भाँक—संज्ञा स्त्री० [सं० भ्रक या भ्रमनन से षु०] (१) मजीरे की तरह के पर उससे बहुत बड़े फाँसे के ढले हुए तरतरी के आकार के दो ऐसे गोलाकार टुकड़ों का जोड़ा, जिनके बीच में कुछ उभार होता है । इसी उभार में एक छेद होता है

जिसमें छोरी पिरोई रहती है । इसका व्यवहार एक टुकड़े से दूसरे टुकड़े पर आघात करके पूजन आदि के समय घड़ियालों और शंखों के साथ यों ही यज्ञाने अथवा तारों और डोल आदि के साथ ताल देने में होता है । भाँक । उ०—मिहड़ी भाँक भाँरना डक पवव सृदंग निसान ।—तुलसी ।

क्रि० प्र०—पीटना ।—यज्ञाना ।

(२) श्लेष । गुस्सा ।

क्रि० प्र०—उतारना ।—चढ़ाना ।—निकालना ।

(३) पाजीपन । शरारत । उ०—रुखो साँकरे कुंज मग फरत भाँक भकरात । मंद मंद माहत तुरंग खूँदन आघत जात ।—विहारी । (४) किसी दुष्ट मनोविकार का आवेग । (५) सूला हुआ कुर्बा या तालवा । (६) भोग की इच्छा । विषय की कामना । (७) दे० "भाँकन" ।

भाँकड़ी—संज्ञा स्त्री० (१) दे० "भाँक" । (२) दे० "भाँकन"

भाँकन—संज्ञा स्त्री० [षु०] कड़े की तरह का पैर में पहनने का एक प्रकार का गहना जो प्रायः चाँदी का बनता है और जिसमें नकारी और जाली बनी होती है । यह भीतर से पोला होता है और इसके अंदर छुरें पड़े होते हैं जिनके कारण पैरों के उठाने और रखने में "भन्नू भन्नू" शब्द होता है । कभी कभी लोग घेरुँ और वैलों आदि को भी रोभा और भन्नूभन्नू शब्द होने के लिये पीतल या तर्पे की भाँकन पहनाते हैं । पैजनी । पायल ।

भाँकरि—संज्ञा स्त्री० [षु०] (१) भाँकन । पैजनी । (२) तुलसी ।

वि० (१) पुराना । जनेर । क्षिप्र भिन्न । फटा टूटा । (२) छेदवाला । क्षिप्रयुक्त उ०—कविरा नाव त भाँकरी बूटा खेवनहार । हलका हलका तरि गया बूडे जिन निर भार ।—कवीर ।

भाँकरि—संज्ञा स्त्री० दे० "भाँकर" ।

भाँकरी—संज्ञा स्त्री० [देग०] (१) भाँक नामक बाजा । भाँक । उ०—यवै भाँकरी शंख नगारे । गण प्रेत सब देव नगारे ।—रघुराज । (२) भाँकन नामक पैर का गहना । उ०—भाँकरियाँ भनकनी खरी तरकमी तनी तन की तन तेरें ।—देव ।

भाँभा—संज्ञा पुं० [हिं० भाँका] (१) एक प्रकार का कड़ा जो बड़ी हुई फसल के पत्तों को बीच बीच में से खा कर बिजकुल भाँका कर देता है । यह छोटा बड़ा कई आकार और प्रकार का होता है और यहूधा तमाहू या सूकली के पत्तों पर पाया जाता है । (२) धी और धीनी के साथ भूली हुई भाँग की फंकी । † (३) सेव छानने का पीना ।

संज्ञा पुं० दे० (१) "भाँक" । (२) भाँकत । बघेड़ा ।

भाभिया-संज्ञा पुं० [हिं० भाभ + इया (प्रत्य०)] भाभक वजानेवाला मनुष्य । धात्रेवालों में से वह जो भाभक बनाता हो ।

भाट-संज्ञा स्त्री० [सं० ऋ, हिं० मट = बाल] (१) पुरुष या स्त्री की मूर्च्छिण पर के बाल । उपस्थ पर के बाल । पशम । शष्प ।

मुहा०—भाट उखाड़ना = (१) बिलकुल व्यर्थ समय नष्ट करना । कुछ भी काम न करना । (२) कुछ भी हानि या फट न पहुँचा सकना । इतनी हानि भी न पहुँचा सकना जितनी एक भाट झलड़ जाने से हो सकती है । भाट जल जाना या जल कर राख हो जाना = किसी का अभिमान आदि की धारों करते देख कर बहुत बुरा मानना होना । (इसका व्यवहार अभिमान करनेवाले को प्रति बहुत अधिक उपेक्षा दिखलाने के लिये किया जाता है ।)

(२) बहुत उच्छ्वस्त । बहुत छोटी या निकम्मी चीज़ ।

मुहा०—भाट बाराबर = (१) बहुत छोटा । (२) अत्यंत उच्छ्वस्त । भाट की भँदुली = अत्यंत उच्छ्वस्त (पदार्थ या मनुष्य) ।

भाटाँ-संज्ञा पुं० [देय०] भँकट ।

भाटि*†-संज्ञा स्त्री० दे० "भाट" । उ०—एकोहं आगुहिं भये द्वितीया दीन्हों काटि । एकोहं कासे कहे महा पुरुष की भाटि ।—कबीर ।

भाँप-संज्ञा स्त्री० [हिं० भाँपना] (१) वह जिससे कोई चीज टाँकी जाय । (२) पड़ी हुई चीज़ों निकालने की बोहो की एक प्रकार की बल । (३) नौद । भयकी । (४) पद । चिक । उ०—झुकि झुकि झूमि झूमि भिल भिल खेल खेल भरहरी भाँपन में झमकि झमकि बढे ।—पद्माकर । (५) निकास । मस्तूल का झुकाव । (लया०)

संज्ञा पुं० [सं० भाँप] उच्छ्वल कूद ।

क्रि० प्र०—देगा । उ०—दे० "भाँप" के अंतर्गत ।

भाँपना-क्रि० सं० [सं० उपापन, हिं० घौपना] (१) टाँकना । आवरण ढालना । श्रोत्र में करना । झाड़ू में करना । उ०—जया गगन घन पटल निहारी । भाँपेउ भातु कहरि कुविचारी ।—तुलसी । (२) भाँपना । लजाना । शरमाना ।

भाँपी-संज्ञा स्त्री० [हिं० भाँपना] (१) टाँकने की टोकरी । (२) भूँज की धनी हुई पिटाई जिसमें कभी कभी चमड़ा भी मड़ा होता है । (३) भयकी । नौद । ऊँच ।

भाँपि-संज्ञा स्त्री० [देय०] (१) धोविन चिट्ठिया । खंजन पत्थी । (२) छिनाल स्त्री । पुंथली ।

भाँपना-क्रि० सं० [हिं० भाँपना] कपड़े से रगड़ कर (हाथ पैर आदि) धोना । उ०—दौं गई भेंट भई न सदेह मैं तारें उखाहट मो मन धायगो । कालिंदी के तट भाँपत पाँय हौं आयो तहाँ लखि रूपे सुभायगो ।—प्रतापसिंह सवाई ।

भाँवर-संज्ञा स्त्री० [हिं० वावर] वह नीची भूति जिसमें वर्षा काल

में जल भर जाता है और जिसमें मोटा शब्द जमता है । वावर । (ऐसी भूमि धान के लिये बहुत उपयुक्त होती है) । † वि० [सं० श्वामत] (१) भाँवों के रंग का । कुछ काला । (२) मलिन । उ०—साँची कहां रावरे सेँ भाँवरे लों तमाल । (३) सुरमाया हुआ । कुहलयाया हुआ । (४) स्थितिल । मंद । सुस्त । उ०—निसि न नौद आँवें दिवस न भोजन भाँवें चितवत मग भई दृष्टि भाँवरी ।—सूर ।

भाँवली-संज्ञा स्त्री० [हिं० भाँव = छया] (१) मलक । (२) घाल की कनली ।

घा०—भाँवलीवाज़ ।

मुहा०—भाँवली देना = आँसु से इशारा करना ।

भाँवाई-संज्ञा पुं० [सं० कामक] जली हुई ईंट । वह ईंट जो जल कर काली हो गई हो । इससे रगड़ कर चीज़ों की, विशेषतः पैरों की मैल छुड़ाने हैं ।

भाँसना-क्रि० सं० [हिं० भाँसा] (१) टगाना । धोखा देना । भाँसा देना । (२) किसी स्त्री को व्यभिचार में प्रवृत्त करना । स्त्री को फँसाना ।

भाँसा-संज्ञा पुं० [सं० श्वास = श्मिया शान, प्रा० श्वासत] श्वाना काम साधने के लिये किसी को वहकाने की क्रिया । धोखा घड़ी । दम जुता । छल ।

क्रि० प्र०—देना ।—प्रताना ।

घा०—भाँसा पठी = धोखा घड़ी ।

मुहा०—भाँसे में धाना = धोखे में आना ।

भाँसिया-संज्ञा पुं० [हिं० भाँसा + इया (प्रत्य०)] भाँसा देनेवाला धोखेवाज़ ।

भाँसी-संज्ञा पुं० [देय०] एक प्रकार का गुदरैला जो दाज और तमावू की फसल को हानि पहुँचाता है ।

भाँस-संज्ञा पुं० [हिं० भाँसा] भाँसा देनेवाला । धोखेवाज़ ।

भा-संज्ञा पुं० [सं० उपाध्याय प्रा० उचक्राणे, हिं० ओमा] मैथिल ब्राह्मणों की एक उपाधि ।

भाई-संज्ञा स्त्री० दे० "भाई" ।

भाऊ-संज्ञा पुं० [सं० भावुक] एक प्रकार का छोटा माड़ जो दक्षिणी एशिया में नदियों के किनारे रेतीले तथा मैदानों में अधिकता से होता है और बहुत जल्दी जल्दी और खूब फैलता है । इसकी पत्तियाँ सरो की पत्तियों से मिलती शकती होती है और गरमी के अंत में इसमें बहुत अधिकता से छोटे छोटे हलके गुलाबी फूल लगते हैं । बहुत कड़ी सरदी में यह माड़ नहीं रह सकता । कुछ देशों में इससे एक प्रकार का रंग निकाला जाता है और इसकी पत्तियों आदि का व्यवहार औषधों में किया जाता है । इसमें से एक प्रकार का चार भी निकलता है । इसकी टहनियों से टोकरीयाँ और

रिसियों आदि बनती हैं और सूखी लकड़ी जलाने के काम में आती है। कहीं कहीं रेगिस्तानों में यह झाड़ बहुत बढ़ कर पेड़ का रूप भी धारण कर लेता है। पिसुल। अफल। बहुम्रिथि।

भांग-संज्ञा पुं० [हिं० गज] पानी आदि का फेन। गाज। फेन।
क्रि० प्र०—उठना।—घूटना।—घोड़ना।—निकालना।—
फेंकना।

भांगड़ * १—संज्ञा पुं० दे० “भांगड़ा”।

भांगना १—क्रि० अ० [हिं० भांग] काग उलपन्न होना। फेन निकलना।

क्रि० स० भांग उलपन्न करना। फेन निकालना।

भाभ १—संज्ञा स्त्री० दे० “भाभ”।

भाटकपट-संज्ञा पुं० [?] एक प्रकार की ताजीन जो राज-
पूताने के राज-दरबारों में अधिक प्रतिष्ठित सरदारों को मिला
करती है।

भाटल-संज्ञा पुं० [सं०] मोला नामक वृक्ष जो सफेद और काला
होने के कारण दो प्रकार का होता है। श्राक की भाँति
इसमें से भी दूध निकलता है। इसके पत्ते बड़े बड़े होते हैं
और फल घंटियों की भाँति लटकते हैं।

भाटा १—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) जूड़ी। (२) मुद्दें आँवला।

भाटिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] मुद्दें आँवला।

भाड़-संज्ञा पुं० [सं० भाट] (१) वह छोटा पेड़ या कुछ बड़ा
पौधा जिसमें पेंड़ी न हो और जिसकी डालियाँ जड़ या
जमीन के बहुत पास से निकल चारों ओर खूब छितराई हुई
हों। पौधे से इसमें शर्करा बढ़ है कि यह कटीला होता है।
(२) भाड़ के आकार का एक प्रकार का रोशनी करने का
सामान जो छत में लटकाना या जमीन पर बँटकी की तरह
रखा जाता है। इनमें कई ऊपर नीचे बूत्तों में बहुत से शीशे
के गिलास लगे हुए होते हैं जिनमें मोमरथी, गैस या बिजली
आदि का प्रकाश होता है। नीचे से ऊपर की ओर के
गिलासों के बूत्त बराबर छोटे होते जाते हैं।

घी०—भाड़ पान्थ = शीशे के भाड़ हाड़ियाँ और गिलास आदि
जिनका व्यवहार रोशनी और सजावट आदि के लिये होता है।
(३) एक प्रकार की आदिशायत्री जो छूटने पर भाड़ या बड़े
पौधे के आकार की जान पड़ती है। (४) धीपियों का एक
प्रकार का छुपा जो प्रायः दस अँगुल चौड़ा और बीस अँगुल
लंबा होता है और जिसमें छोटे पेड़ का भाड़ की आकृति
बनी रहती है। (५) समुद्र में उत्पन्न होनेवाली एक प्रकार
की घास जिसे जरास या जार भी कहते हैं। (सख०)। (६)
मुफ्ता। खपदा।

संज्ञा स्त्री० [हिं० भाड़न] (१) भाड़ने की क्रिया। भटक कर

या भाड़ आदि दे कर साफ करने की क्रिया। (२) बहुत
बड़ या फटकार कर कहीं हुई बात। फटकार। बड़ खपट।
घी०—भाड़ पोंछ = भाड़ और पोंछ कर साफ करने की क्रिया।
विशेष—इस शब्द का प्रयोग धार्मिक शब्दों ही में विशेषतः
होता है।

क्रि० प्र०—देना।—बताना।—सुनना।—सुनाना।

(३) मंत्र से भाड़ने की क्रिया।

घी०—भाड़ फूँक = मंत्रोपचार।

संज्ञा पुं० [हिं० भाड़ना] भटसा। (कुरती)

भाड़खंड-संज्ञा पुं० [हिं० भाड़ + खंड] जंगल। घन। ऐसा वन-
विभाग जिसमें अधिकतर मत्स्येरी आदि के कँटीले भाड़ हो।

भाड़ भँसाड़-संज्ञा पुं० [हिं० भाड़ + भँसाड़] (१) कटिदार
भाड़ियों का समूह। (२) धर्म की निकम्मी चीजों का
समूह।

भाड़दार-वि० [हिं० भाड़ + दार] (१) सघन। घना। (२)
कँटीला। कटिदार। (३) जिस पर भाड़ या बेल घूटे आदि
बने हों।

संज्ञा पुं० (१) एक प्रकार कसीदा जिसमें बड़े बड़े बेल घूटे
बने होते हैं। (२) एक प्रकार का गलीचा जिस पर बड़े बड़े
बेल घूटे बने होते हैं।

भाड़न-संज्ञा स्त्री० [हिं० भाड़ना] (१) वह जो कुछ भाड़ने पर
निकले। (२) वह कारवा आदि जिससे कोई चीज़ गर्द आदि
दूर करने के लिये भाड़ी जाय।

भाड़ना-क्रि० स० [सं० भाण] (१) किसी चीज़ पर पड़ी हुई
गर्द आदि साफ करने या और कोई चीज़ हटाने के लिये उस
चीज़ को उठा कर भटका देना। भटकाना। फटकारना। जैसे,
जरा दूरी और चाँदनी भाड़ दो। (२) भटका देकर किसी
एक चीज़ पर पड़ी हुई किसी दूसरी चीज़ को गिराना। जैसे,
इस शँगोले पर बहुत से चीज़ चिपक गए हैं, जरा बन्दे भाड़
दो। (३) भाड़ू या कपड़े आदि की रगड़ या भटके से
किसी चीज़ पर पड़ी या लगी हुई दूसरी चीज़ गिराना या
हटाना। जैसे, इन किताबों पर की गर्द भाड़ दो। (४)
भाड़ू या कपड़े आदि के द्वारा छपवा और किसी प्रकार गर्द,
मैल या और कोई चीज़ हटा कर कोई दूसरी चीज़ साफ
करना। जैसे, (क) सफेदे उठते ही उन्हें सारा घर भाड़ना
पड़ता है, (ख) दूध मेज को भाड़ दो।

संज्ञा० क्रि०—डाखना।—देना।—लेना।

(५) बल या बुद्धिपूर्वक किसी से घन घुँटना।
भटकना। (क०)

संज्ञा० क्रि०—लेना।

(६) रोग या प्रेत-पाशा आदि दूर करने के लिये किसी को
मंत्र आदि से फूँकना। मंत्रोपचार करना।

संयो० क्रि०—देना ।

(७) विगड़ कर कड़ी कड़ी यातें कहना । फटकारना । डांटना ।

संयो० क्रि०—देना ।

भाड़ फूँक—संज्ञा स्त्री० [हिं० भाड़ना फूँकना] मंत्र आदि से भाड़ने या फूँकने की वह क्रिया जो भूत प्रेत आदि की बाधाओं अथवा रोगों आदि को दूर करने के लिये की जाती है । मंत्र आदि पढ़ कर भाड़ना या फूँकना ।

भाड़ सुहार—संज्ञा स्त्री० [हिं० भाड़ना सुहारना] भाड़ने और सुहारने की क्रिया । सफाई ।

भाड़ा—संज्ञा पुं० [हिं० भाड़ना] (१) भाड़ फूँक । (२) तलाशी । (३) सितार के सब तारों को एक साथ बजाना । (४) मल । (५) मँला ।

मुहा०—भाड़ा फिरना = मलोत्सर्ग करना । हृगना । भाड़ा फिराना = हृगना ।

(१) मलोत्सर्ग का स्थान । पाखाना । टट्टी ।

क्रि० प्र०—जाना ।

भाड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० भाड़] (१) छोटा भाड़ । पीया । (२) बहुत से छोटे छोटे वेदों का समूह या झुमट । (३) सूधार के यालों की कूची । यज्ञौड़ी ।

भाड़ीदार—वि० [हिं० भाड़ी + फा० दार] (१) भाड़ी की तरह का । छोटे भाड़ का सा । (२) कँटीला । कटिदार ।

भाड़ू—संज्ञा स्त्री० [हिं० भाड़ना] (१) यहल ही लंबी सीकें आदि का समूह जिससे जमीन, फसों आदि भाड़ते हैं । कूँचा । बोहारी । सोहनी । यत्रनी ।

मुहा०—भाड़ू देना = भाड़ू की सहायता से कूड़ा करकट षाफ करना । भाड़ू फिरना = सफाया हो जाना । कुच्छ न रहना । भाड़ू फेरना = विलकुल नष्ट कर देना । भाड़ू मारना = (१) धृष्या करना । (२) निरादर करना । (२) पुच्छल तारा । केतु । हुमदार सितारा ।

भाड़ूहुमा—संज्ञा पुं० [हिं० भाड़ू + हुम] यह हाथी जिसकी हुम भाड़ू की तरह फैली हो । ऐसा हाथी ऐसी गिना जाता है ।

भाड़ूबरदार—संज्ञा पुं० [हिं० भाड़ू + फा० बरदार] (१) वह जो भाड़ू देता हो । (२) चमार । भंगी । मेहतर ।

भाड़ूबाला—संज्ञा पुं० [हिं० भाड़ू + बाला] (१) वह जो भाड़ू देता हो । भाड़ूबरदार । (२) भंगी, मेहतर या चमार ।

भापड़—संज्ञा पुं० [सं० बपट] बप्यड़ । पढ़ाका । लप्यड़ । तमाचा ।

क्रि० प्र०—मारना ।—लगाना ।

मुहा०—भापड़ कसना, देना = बप्यड़ मारना ।

भाभर—संज्ञा पुं० [?] दलदली भूमि ।

संज्ञा पुं० दे० “भाभर” । उ०—जुनि भाभर पै भाभर आई । घिरित खाँड़ का कहेँ मिठाई ।—जायसी ।

भाभा—संज्ञा पुं० [हिं० भाँपना = बैकना] (१) टोकरा । खाँचा । रट्टे का थड़ा दौरा । (२) धी तेज आदि तरह पदार्थों के रखने का चमड़े का टोटीदार बरतन । (३) चमड़े का बना हुआ गोल याल जिसमें पंजाब में लोग घोट्टा छानते हैं । इसे सफ़ा कहते हैं । (४) रोशनी का भाड़ जो लटकता जाता है । (५) दे० “भाभा” ।

भाभा—संज्ञा स्त्री० [हिं० भाभा] छोटा भाभा । टोकरा ।

भाभा^१—संज्ञा पुं० [देग०] (१) मन्त्रा । गुच्छा । उ०—सुंदर दसन चिबुक अति सुंदर सुंदर हृदय विराजत दाम । सुंदर सुजा पीतपट सुंदर सुंदर कनक मेखला काम ।—सूर । (२) एक प्रकार की बड़ी कुदाल जिससे कुपूँ की मिट्टी निकालते हैं । (३) बुद्धकी टट्टि । बपट । (४) धोला । छल । कपट ।

भाभक—संज्ञा पुं० [सं०] जली हुई ईंट । भाँवाँ ।

भाभर—संज्ञा पुं० [सं०] (१) टेकुरा रगड़ने की सान । तर्कशाया । सिद्धी । (२) बिरों का पैर में पहनने का एक गहना जो पैजान की तरह का होता है ।

भाभरी—संज्ञा पुं० [हिं० भाभ] धोखेवाज । चालाक । पूर्ण । उ०—(क) सूचे भप जे ईं नर गंगा के अन्दाहवे को काश बदनानी भाभरी कैयक करोर हैं ।—पद्माकर । (ख) जिनके मंत्र न कोऊ कामी । मूठि न वादि न परतिय गामी ।—पद्माकर ।

भाभै—संज्ञा स्त्री० [अनु०] (१) भनकार । भन् भन् शब्द । (२) सहाये में हवा का शब्द । यह शब्द जो किसी सुनसान स्थान में हवा के चलने, तथा गूँज आदि के कारण सुनाई पड़ता है । जैसे, हतना बड़ा सूना घर भाभै भाभै करता है ।

भाभै—संज्ञा स्त्री० [अनु०] (१) बकवाद । बकबक । (२) हुजत । तकरार ।

क्रि० प्र०—करना ।—मचाना ।

भाभार^१—वि० [सं० सभ, प्रा० सारो, हिं० सारा] (१) एक मात्र । निपट । फेबल । उ०—दीये दधि दान को सुकैसे ताहि भावत है बाहि मन भायो मार भगरो गोपाल के ।—पद्माकर । (२) शेषार्थ । कुल । सभ । समस्त । उ०—कै न खेत सिख ली पदमारक आहिरेँ मार सिंगार भयो है ।—पद्माकर । (३) समूह । कुंड ।

संज्ञा स्त्री० [सं० भाभा = ताप] (१) दाह । डाह । जलन । ईर्ष्या । (२) ज्वाला । लपट । शॉच । उ०—(क) जनहुँ छाँड़ में पूष दिखाई । तैसे मार लाग जो धाई ।—जायसी ।

(ख) नाम से चिन्नात विज्जात थकुजात अति तात तात
सौसियत सौसियत मार ही ।—मुजसी । (ग) गरज किलक
आयात उतत मनु दामिनि पावक मार ।—सूर । (घ) फुंदि
धुवीली घरी भुंगारी । भरहे उतत मार की न्यारी ।—सूर ।
(३) माला । चरपरायन ।
छंशा पुं० [हिं० मळ्या] (१) भरना । पैना । (२) एक पेड़
का नाम ।

भारखंड—छंशा पुं० [हिं० भाव + संव] (१) एक पहाड़ जो वैद्यनाथ
होता हुआ जगन्नाथपुरी तक चला गया है ।
विशेष—मुसलमानों ने अपने इतिहास ग्रंथों में धुतीसगड़ और
मौदवाने के उत्तरी भाग को भारखंड के नाम से लिखा है ।
(२) दे० भाड़पंड ।

भारन—कि० सं० [हिं० भाडना] दे० “भाडना” ।
भारना—कि० सं० [सं० भर] (१) चाल साफ करने के लिये
कंपी करना । (२) धाँटना । अलग करना । उदा करना ।
(३) दे० “भाडना” ।

भार पूँका—छंशा छी० दे० “भाड़ पूँक” ।
भार्रा—छंशा पुं० [हिं० भारना] (१) पतली छुनी हुई भाँग । (२)
वह रूप जिससे घर को फटक कर सारसों इत्यादि से घृयक
करते हैं । भरना ।

भारि—छंशा छी० दे० “भार” । व०—कहहु सुमंत विचारि
केहि बालक घोटक गहयो । भरै हूँ अति भारि चरिन कर
न निवास इत ।

भारी—छंशा छी० [हिं० भरना] सुटिया की तरह का एक प्रकार
का लंबोत्तरा पात्र जिसमें जल गिराने के लिये एक थोर एक
टॉटी लगी होती है । इस टॉटी में से धार बँध कर जल
निकलता है । इसका व्यवहार देवताओं पर जल चढ़ाने
अथवा हाथ पैर आदि धुलाने में होता है । व०—(क)
भासन दे चौकी भागे धरि । जपना जल शय्ये भारी
भरि ।—सूर । (ख) श्रापुन भारी माँगि चिर के चरन
पारो । इती दूर अम कियो राव दिज भए दुखारे ।—सूर ।
छंशा छी० [सं० भारि] वह पानी जिसमें धमचूर, जीरा,
नमक आदि घुला हुआ हो । इस का व्यवहार परिचम में
अधिक होता है ।

छंशा छी० दे० “भाड़ी” ।
कि० वि० दे० “भार” ।

भारु—छंशा पुं० दे० “भाड़ू” ।
भारैयाला—वि० [?] पटा खेलनेवाला । पटा, खेती या
खकड़ी चलानेवाला ।

भाल—छंशा पुं० [सं० मळक] काँस का बना हुआ ताड़
बैने का वाद्य ।

छंशा पुं० [दे०] (१) रूहे का बड़ा खँवा । (२) मालने की
क्रिया या भाव ।

छंशा छी० [सं० माला] (१) चरपराहट । तीतापन । तीरणता ।
जैसे, राई की माल, मिरचे की माल । (२) तरंग । मंड ।
खर । (३) कामेच्छा । चुल । प्रसंग करने की कामना ।
मल ।

छंशा छी० [हिं० मड़] दो तीन दिन की लगातार पानी की
मड़ी जो प्रायः जाड़े में होती है । व०—जिन जिन संवख ना
क्रिया असपुर पाटन पाय । माल परे दिन आथये संवख
किया न जाय ।—कवीर ।

कि० प्र०—करना ।
वि०, और छंशा छी० दे० “भार” ।

भालड़—छंशा छी० [सं० मळी] (१) चड़ियाळ जो पूजा आदि के
समय बनाया जाता है । (२) दे० “भालर” ।

भालना—कि० सं० [?] (१) घातु की कमी हुई वस्तुओं में
टाँका दे कर जोड़ लगाना । (२) पीने की चीनी को पोतख
आदि में भर कर ठंडा करने के लिये गरफ या शोरे में रखना ।
संधो० कि०—देना ।

भालर—छंशा छी० [सं० मळी] (१) किसी चीज के किनारे पर
शोभा के लिये बनाया, लगाया या टाँका हुआ वह हाथिया
जो लटकता रहता है । भालर की चौड़ाई प्रायः
हुआ करती है और उसमें सुंदरता के लिये कुछ बेल
वूटे आदि बने रहते हैं । मुख्यतः भालर कपड़े में ही होती
है; पर दूसरी चीजों में भी शोभा के लिये भालर के आकार
की कोई चीज बना या लगा देते हैं । जैसे, गद्दी या तकिप
की भालर, पंखे की भालर, सायबान की भालर, चवूतरे
आदि में पथर की भालर । (२) भालर के आकार की या
किनारे की तरह पर लटकती हुई कोई चीज । (३) किनारा ।
धोर । (ब०) (४) काँस । माल । (५) चड़ियाळ जो
पूजा आदि के समय बनाया जाता है ।

भालरदार—वि० [हिं० भालर + क० दार] जिसमें भालर लगी हो ।

भालरना—कि० अ० दे० “मलराना” । व०—नेक न मुरसी
थिरह भर नेदहता कुंमिवाति । निति निति होति हरी हरी
खरी भालरति जाति ।—विहारी ।

भालरारा—छंशा पुं० [हिं० भालर] एक प्रकार का खहवा
हरी । हुमेज ।

छंशा पुं० [हिं० तळ] चौड़ा कुर्छा । पाखी । कुंड ।
भाला—छंशा पुं० [दे०] राजपूतों की एक जाति जो गुजरात
और मालवा में पाई जाती है ।

भालि—संज्ञा स्त्री० [हिं० भ्रू] पानी की झड़ी। भाल। उ०—
भालि परे दिन धरपु अंतर परि गद् सार्क। बहुत रसिक
के जागते घेरया रहिगै वांछ।—कबीर।

कि० प्र०—छाना।—पड़ना।

संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की कर्जी जो कच्चे आम को
पीस कर उसमें राई नमक और सूती होंग मिला कर बनाई
जाती है। मारी।

भावर—संज्ञा पुं० दे० “भावर”।

भावुक—संज्ञा पुं० [सं०] भाऊ।

भिङ्गा—संज्ञा स्त्री० [सं० भिङ्गक] तरोई। तोरी। सुरई।

भिङ्गन—संज्ञा पुं० [दे०] (१) एक प्रकार का पेड़ जिसकी पत्ती
से खाल रंग बनता है। (२) सारस्वत ब्राह्मणों की एक
जाति।

भिङ्गवा—संज्ञा स्त्री० [सं० विङ्ग] एक प्रकार की छोटी मछली
जिसके मुँह और पूँछ के पास दोनों तरफ पाल होते हैं।

भिङ्गाक—संज्ञा पुं० [सं०] तरोई। तरोई।

भिङ्गिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का जंगली वृक्ष जो बहुत
ऊँचा होता है। इसके पत्ते मनुष्य के समान और शाखाओं में
दोनों ओर लगते हैं। फूल सफेद और फल घेर के समान
होते हैं।

पय्यां—भिङ्गी। भिङ्गिनी। प्रमोदिनी। सुनियांसा।

भिङ्गी—संज्ञा स्त्री० दे० “भिङ्गिनी”।

भिङ्गुली—संज्ञा स्त्री० [हिं० भ्रू] छोटे बच्चों के पहनने का
कुरता। मूया। उ०—पीत मोन भिङ्गुली तन सोही। किल-
कन चितवनि भावति सोही।—तुलसी।

भिङ्गिया—संज्ञा स्त्री० [अनु०] छोटे छोटे छेदोंवाला वह घड़ा
जिसमें दीया बाल कर कुआर के महीने में लड़कियाँ घुमाती
हैं। उ०—जाल रंभ मग हूँ कडै तिय तन दीपति तुंज।
भिङ्गिया कैसे घट भये दिन ही में बनकुंज।—मतिराम।

भिङ्गिरिटा—संज्ञा स्त्री० [सं०] भिङ्गिरिटा नामक पुत्र।

भिङ्गिरिटा—संज्ञा स्त्री० [सं० भिङ्गिरिटा] एक प्रकार का पुष्प।

भिङ्गी—संज्ञा स्त्री० [सं०] झिड़ी। झोंपुर।

भिङ्गोटी—संज्ञा स्त्री० [दे०] संपूर्ण जाति की एक रागिनी जिसमें
सब शुद्ध स्वर लगते हैं। यह दिन के चौथे पहर में गाई
जाती है।

भिङ्गोटी—संज्ञा स्त्री० [सं०] कठसरीया। विद्याधासा।

भिङ्गड़ा—संज्ञा पुं० दे० “भङ्गड़ा”।

भिङ्गक—संज्ञा स्त्री० दे० “भङ्गक”।

भिङ्गकना—कि० अ० दे० “भङ्गकना”। उ०—(क) यरुनीन हूँ

नैन भिङ्गै भिङ्गिकै मनो खंजन मीन पै जाले परे।—शुक्ल।
(ख) तहाँ सचि चले तजि धावुन पै भिङ्गकै कपटी गो
निलाक नहाँ।—घनानंद।

भिङ्गकार—संज्ञा स्त्री० दे० “भङ्गकार”।

भिङ्गकारना—कि० स० (१) दे० “भङ्गकारना”। उ०—योही
दँय तुम रहे कन्हारै सबे उठी भिङ्गकार। लेहु असीस सजन के
सुख से कतदि दिवावत गारि।—सूर। (२) दे० “भङ्गकना”
उ०—रसना मति हत नैना निज गुन लीन। फर तँ विय
भिङ्गकारे अजगति कीन।

भिङ्गकारना—कि० स० दे० “भङ्गकारना” या “भङ्गकना”।

भिङ्गकी—संज्ञा स्त्री० दे० “भिङ्गकी”।

भिङ्गकना—कि० स० [अनु०] (१) अथवा या तिरहकारपूर्वक
विण्डक कर कोई बात कहना। उ०—(क) याते तुमको बीठ
कही। श्यामहि तुम भई किरकनहारी एते पर पुनि हारि
नहीं।—सूर। (ख) भोर जगि प्यारी अथ ऊरप हूँ की घोर
भाषी खिन्कि भिङ्गि उचारि अथ पलकै।—पद्माकर। (२)
अलग संक देना। भङ्गकना। (ब०) उ०—मुहुट शिर धी-
खंड सोई निरखि रही प्रजनारि। कोटि सुर को दंड धामा
भिङ्गि करै वारि।—सूर।

भिङ्गकी—संज्ञा स्त्री० [हिं० भिङ्गकना] (१) वह बात जो भिङ्गक
कर कही जाय। डाँट। फटकार।

कि० प्र०—देना।—मिलना।—सुनना।

(२) भिङ्गकने की क्रिया या भाव।

भिङ्गभिङ्गना—कि० अ० [अनु०] भजा बुरा कहना। कड़ु बचन
कहना। चिड़चिड़ाना।

भिङ्गभिङ्गाहट—संज्ञा स्त्री० [हिं० भिङ्गभिङ्गना] भिङ्गभिङ्गने का
भाव या क्रिया। (ब०)

भिङ्गवा—संज्ञा पुं० [दे०] महीन चावल का धान। उ०—
रायभोग औ काजरानी। भिङ्गवारुद औ दाउद खानी।—
जायसी।

वि० दे० “झीना”।

भिङ्गना—कि० अ० दे० “भङ्गना”।

भिङ्गना—कि० स० [हिं० भङ्गना का स० रूप] हावित्त करना।
शरभिदा करना।

भिङ्गकना—कि० अ० दे० “भङ्गकना”।

भिङ्ग—संज्ञा स्त्री० दे० “भिङ्गी”।

भिङ्गकना—कि० स० दे० “भिङ्गकना”।

भिङ्ग भिङ्ग—कि० वि० [अनु०] (१) मंद मंद। धीरे धीरे। (२)
किर किर शब्द के साथ।

भिङ्गभिरा—वि० [हिं० भरना] बहुत पतला या बारीक (कपड़ा
आदि)। भंगरा। भौना।

भिरभिराना-क्रि० अ० दे० "भिरभिराना" ।

भिरना-क्रि० अ० दे० "भरना" ।

संज्ञा पु० (१) छेद । छिद्र । सुरास । (२) दे० "भरना" ।

भिरा—संज्ञा स्त्री० [हिं० भरना = रस कर निकलना] आमदनी । आय ।

भिरि—संज्ञा स्त्री० [हिं० भरना] (१) छोटा छेद जिससे कोई द्रव पदार्थ धीरे धीरे बह जाय । दरज । शिगाफ । (२) वह गड़ड़ा जिसमें पानी भिर भिर कर झुकता हो । (३) कुएँ के बगल में से निकला हुआ छोटा सोता । (४) गुवार । पाजा । (५) वह फसल जिसे पाजा मार गया हो ।

भिरि—संज्ञा स्त्री० [हिं० भरना वा भिरि] वह छोटा गड़ड़ा जो नाली आदि में पानी रोकने के लिये खोदा जाय । घेरथा ।

भिलंगा—संज्ञा पु० [हिं० बंला + ंग] (१) टूटी हुई खाट का पाष । (२) पैसी खाट जिसकी हुनावट डीली पड़ गई हो । संज्ञा पु० दे० "भौंगा" ।

भिलना-क्रि० अ० [?] (१) बलपूर्वक प्रवेश करना । घँसना । घुसना । उ०—भिलनी फँस प्रतिभट गिरे खाई घाव पर घाव । कुँवर दीरि । पावत चढ़यो बड़यो युद्ध को घाव ।—नाल । (२) घुस होना । घया जाना । उ०—(क) मिले राम कृष्ण, मिले पाइकँ मनोरथ की, हिले रग रुन किये चुरि चुरि चुरि को—प्रिया । (ख) सुके मुकिक भूमि भूमि भिलि भिलि भेलि भेलि भरहरी भौवन में भूमिक भूमिकि उठै ।—पद्माकर । (३) मन होना । सलीन होना । उ०—कट्यों कर चले हरि रंग सौक भिल्ले मानी जानी कसु चूक भौरी यहै उर पारिये ।—प्रिया । (४) (कष्ट, धारित, आदि) भेजा जाना । सदा जाना । सहन होना । उठया जाना । संज्ञा पु० [सं० भिल्ले] भौंगुर ।

भिलम—संज्ञा स्त्री० [हिं० भिलमिल] लोहे का बना हुआ एक प्रकार का कँकरीदार पहरावा जो लड़ाई के समय सिर और हँड पर पहना जाता था । एक प्रकार का लोहे का टेप या खोद । उ०—(क) भलकत थायँ मूंड भिलम कलाजि भयोः समकत थायँ लंगवाही था सिखाई के ।—पद्माकर । (ख) गुरु जन दर सों चतुराई यदनी किल में डार । निधरक प्रीतम बदन तन अखियाँ रहँ निहार ।—रस-निधि ।

भिलमटोप—संज्ञा पु० दे० "भिलम"

भिलमा—संज्ञा पु० [देग०] एक प्रकार का धान जो संयुक्त प्रांत में होता है ।

भिलमिल—संज्ञा स्त्री० [अनु०] (१) कौपनी हुई रोसनी । हिलता हुआ प्रकार । भलमलता हुआ उजाला । (२) ज्योति की अस्थिरता । रह रह कर प्रकार कि घटने बढ़ने की क्रिया ।

उ०—(क) हेरि हेरि थिल में न लीहँ हिल मिल में रही हँ हाय मिल में प्रभा की किलमिल में ।—पद्माकर ।

(ख) पूँछुट के भूमि के सु भूमके जवाहिर के किल-मिल भानर की भूमि लों सुलत जात ।—पद्माकर ।

(३) बड़िया मलमल या तनजेव की तरह का एक प्रकार का धारीक धौर सुलायम कपड़ा । उ०—(क) चँदनाता जो घर डुल भारी । चाँस पूर किलमिल की सारी ।—जायसी । (ख) राम धारती होन लगी है, जगमग जगमंग जेतित जगी है । कंचन भवन रतन सिंहासन । दासत टासे किलमिल दासत । तापर राजत जगत प्रकासन । देखत धुवि मति प्रेम पगी है ।—मन्नालाल ।

वि० रह रह कर चमकता हुआ । भलभलता हुआ । उ०—नदी किनारे में खड़ी पानी किलमिल होय । में मैत्री पिय ऊनरे मिलना किस विधि होय ।

भिलमिला—वि० [अनु०] (१) जो गफ वा गाढ़ा न हो । (२) जिसमें बहुत से छोटे छोटे छेद हों । कँकरा । मीना । (३) जिसमें से रह रह कर हिलता हुआ प्रकार निकले । (४) भल-भलता हुआ । चमकता हुआ । (५) जो बहुत स्पष्ट न हो ।

भिलमिलाना—क्रि० अ० [अनु०] (१) रह रह कर चमकना । उगठगठाना । (२) प्रकार का हिलना । ज्योति का अस्थिर होना ।

क्रि० सं० (१) किसी चीज को इस प्रकार हिलाना कि जिसमें यह रह रह कर चमके । (२) हिलाना । कँराना ।

भिलमिलाहट—संज्ञा स्त्री० [अनु०] किलमिलाने की क्रिया या भाव ।

भिलमिली—संज्ञा स्त्री० [हिं० किलमिल] (१) एक दूसरे पर तिरछी लगी हुई बहुत सी झाड़ी पटरियों का ढाँचा जो किराड़ों और खिड़कियों आदि में जड़ा रहता है । ये सब पटरियाँ पीछे की ओर पतली लंबी लकड़ी या छड़ में जड़ी होती हैं, जिसकी सहायता से किलमिली खोली या बंद की जाती है । इसका व्यवहार बाहर से धानेवाला प्रकार और गर्द आदि रोकने के लिये अथवा इस लिये होता है कि जिसमें बाहर से भीतर का दरय दिखलाई न पड़े । किलमिली के पीछे लगी हुई लकड़ी या छड़ को जरा सा नीचे की ओर रौंचने से एक दूसरे पर पड़ी हुई पटरियाँ अलग बलया पड़ी हो जाती हैं और उन सब के बीच में हतना अथवा एक निकल घाना है जिसमें से प्रकार या यादु आदि अच्छी तरह आ सके । लड़लड़िया ।

क्रि० प्र०—उठाना ।—लोखना ।—गिराना ।—घड़ाना । (२) किल । चिलमन । (३) कान में पहनने का एक प्रकार का गहना ।

मिह्र-संज्ञा पुं० [सं०] नील की जाति का एक प्रकार का पौधा । इसकी छाल और फूल लाल होते हैं और पत्ते और फल बहुत छोटे होते हैं ।

मिह्र-वि० [हिं० मिह्र] (यह कपड़ा) जिसकी बुनावट दूर दूर पर हो । पतला और नैर्भरा (कपड़ा) । गफ का उलटा ।

मिह्र-संज्ञा स्त्री० [दे०] दूरी बुनने के कारये की यह कड़ी लकड़ी जिसमें चूँ का बाँस लगा रहता है । गुरिया ।

मिह्र-वि० [ऋ०] [श्री० मिह्र] (१) पतला । (२) नैर्भरा । जिसमें बहुत से छोटे छोटे छेद हों ।

मिह्र-संज्ञा स्त्री० [सं०] मीगुर । मिह्रली ।

मिह्रली-संज्ञा पुं० [सं०] मीगुर ।

संज्ञा स्त्री० [सं० चैव] (१) किसी चीज की ऐसी पतली तह जिसके ऊपर की चीज दिखाई पड़े । जैसे, चमड़े की मिह्रली । (२) बहुत बारीक छिलका । (३) अर्ध का जाला ।

वि० स्त्री० बहुत पतला । बहुत बारीक ।

मिह्रलीक-संज्ञा पुं० [सं०] मीगुर ।

मिह्रलीदार-वि० [हिं० मिह्रली + दार] जिसके ऊपर किसी चीज की बहुत पतली तह लगी हो । जिस पर मिह्रली हो ।

भौंक-संज्ञा पुं० दे० "भौंका" । ठ०—चोखे चालु अंतया भूमिकि लेहु भिँकवा, देवस भुखल भैया, पाहुन रे की ।—कवीर ।

भौंकना-क्रि० अ० दे० "भौंकना" ।

† क्रि० सं० [दे०] भौंकना । पटकना ।

भौंका-संज्ञा पुं० [दे०] उतना श्रम जितना एक धार पीसने के लिये चक्की में डाला जाता है ।

भौंखना-क्रि० अ० [हिं० खोजना] (१) किसी अनिवाच्य अनिष्ट के कारण दुखी होकर बहुत पछताना और कुड़ना । खीजना ।

(२) दुखड़ा रोना । अपनी विपत्ति का हाव सुनाना ।

संज्ञा पुं० (१) भौंखने की क्रिया या भाव । (२) दुःख का वर्णन । दुखड़ा ।

भौंगट-संज्ञा पुं० [दे०] पतवार धामनेवाला । मल्लाह । कण्ठ-धार । (लश०)

भौंगा-संज्ञा पुं० [सं० विंगट] (१) एक प्रकार की मछली जो प्रायः सारे भारत की नदियों और जलाशयों आदि में पाई जाती है । इसके अगले भाग में छाती के नीचे बहुत पतले पतले और लंबे थाट पैर होते हैं, इसी लिये प्रायः शगबन्ध इसे केकड़े आदि के अंतर्गत मानते हैं । आठ पैरों के अतिरिक्त इसके दो बहुत लंबे धारदार टंक भी होते हैं । इसकी छोटी बड़ी अनेक जातियाँ होती हैं और यह लंबाई में चार शीशों से प्रायः एक हाथ तक होती है । इसका सिर और मुँह मोटा होता है और दुम की तरफ इसकी मोटाई बराबर कम होती जाती है । यह अपना शरीर इस प्रकार मुका सकती है कि सिर के साथ इसकी दुम लग जाती है । इसके

सिर पर डँगलियों के आकार के दो छोटे छोटे अंग होते हैं जिनके सिरों पर अर्धें होती हैं । इन अर्धों से वह बिना मुड़े चारों ओर देख सकती है । यह अपने अंगे सदा अपने पेट के अगले भाग में छाती पर ही रखती है । इसके शरीर के पिछले प्राये भाग पर बहुत कड़े छिलके होते हैं जो समय समय पर आपसे आप साँप की केंचुली की तरह उतर जाते हैं । छिलके उतर जाने पर कुछ समय तक इसका शरीर बहुत कोमल रहता है पर फिर ज्यों का त्यों हो जाता है । इसका मांस खाने में बहुत स्वादिष्ट होता है । बहुधा मांस के लिये यह सुखा कर भी रली जाती है । (२) एक प्रकार का घान, जो अगहन में तैयार होता है । इसका चावल बहुत दिनों तक रह सकता है । (३) एक प्रकार का कीड़ा जो कपास की फसल को हानि पहुँचाता है ।

भौंगुर-संज्ञा पुं० अ० भौं + कर] एक प्रसिद्ध छोटा कीड़ा जिसकी छोटी बड़ी अनेक जातियाँ होती हैं । यह सफेद, काळा और भूरा कई रंगों का होता है । इसकी छुः टाँगें और दो बहुत बड़ी मूँछें होती हैं । यह प्रायः अँधेरे घरों में भी पाया जाता है । तथा खेतों और मैदानों में भी होता है । खेतों में यह कोमल पत्तों आदि को काट डालता है । इसकी आवाज बहुत तेज भौं भौं होती है और प्रायः बरसात में अधिकता से सुनाई देती है । नीच जाति के लोग इसका मांस भी खाते हैं । घुरघुरा । जंजीरा । मिह्री ।

भौंभना-क्रि० अ० [ऋ०] भौंभाना । खिजलाना ।

भौंभो-संज्ञा पुं० [दे०] (१) एक रस जिसमें अग्नि शुद्ध चतुर्दशी को मिट्टी की एक कच्ची हाड़ी में बहुत से छेद कर के उमके बीच में एक दीया बाल कर रखते हैं । इसे कुमारी कन्याएँ हाथ में लेकर अपने संबंधियों के घर जाती हैं और उस दीपक का तेल उनके सिर में लगाती हैं और वे लोग उन्हें कुछ देते हैं । उसी द्रव्य से वे सामग्री मँग कर पूर्व्यामा के दिन पूजन करती और आपस में प्रसाद बाँटती हैं । लोगों का यह भी विश्वास है कि इसका तेल लगाने से सँडूभा रोग नहीं होता अथवा अल्पा हो जाता है । (२) मिट्टी की वह कच्ची हाड़ी जिसमें छेद करके इस काम के लिये दीया रखते हैं ।

भौंभना-क्रि० अ० दे० "भौंभना" ।

भौंभना-क्रि० अ० (१) दे० "भौंभना" । (२) "हँपना" ।

भौंसा-संज्ञा पुं० दे० "भौंसी" ।

भौंसी-संज्ञा स्त्री० [अ० वा हिं० भौंसा = बहुत महीन] फुहार । छोटी छोटी बूँदों की वर्षा । वर्षा की बहुत महीन महीन बूँदें ।

क्रि० प्र०—पड़ना ।

भौखना-कि० अ० दे० "भौखना" । उ०—भोर जगि प्यारी अथ
जख इतै की शोर भाखी किलि भिरकि उपारि अथ
पलकै ।—पद्माकर ।

श्रीत-संज्ञा पुं० [अण०] जहाज के पाल का घटन ।

भौन ङ-वि० दे० "भौना" ।

श्रीना-वि० [सं० षोष्] (१) बहुत महीन । यारीक । पतला ।
व०—प्रकृतित ह्ये के आनि दीन है जसोदा रानि मीनिये
मैगुली तामें कंचन को तगा ।—सूर । (२) जिसमें बहुत से
छेद हों । भौम्फा । (३) दुबला । दुर्बल । (४) मंद । धीमा ।

श्रीमर-संज्ञा पुं० दे० "भौवर" ।

श्रील-संज्ञा शी० [सं० नीर = जल] (१) वह बहुत बड़ा प्राकृतिक
जलाशय जो चारों ओर जमीन से घिरा हो ।

विशेष—भौलें बहुत बड़े मैदानों में होती हैं और प्रायः इनकी
लंबाई और चौड़ाई सैकड़ों मील तक पहुँच जाती है । बहुत
सी भौलें ऐसी होती हैं जिनका सोला इन्हीं के तल में होता
है और जिनमें न तो कहीं बाहर से पानी आता है और न
किसी ओर से निकलता है । ऐसी भौलों के पानी का
निकास बहुधा भाप के रूप में ही होता है । कुछ भौलें
ऐसी भी होती हैं जिनमें नदियाँ आकर गिरती हैं और कुछ
भौलों में से नदियाँ निकलती भी हैं । कभी कभी भौल का
संबंध नदी आदि के द्वारा समुद्र से भी होता है । अमेरिका
के संयुक्त राज्यों में लगातार कई ऐसी भौलें हैं जो आपस में
नदियों द्वारा सय एक दूसरे से संबद्ध हैं । भौलें खारे पानी
की भी होती हैं और मीठे पानी की भी ।

(२) तालाबों आदि से बड़ा कोई प्राकृतिक या बनावटी जला-
शय । बहुत बड़ा तालाब । ताल ।

शालम-संज्ञा शी० दे० "भौलम" ।

शौली ङ-संज्ञा शी० [हिं० भ्रिशी] (१) मलाई ।

(२) दे० "भौही" ।

शौवर-संज्ञा पुं० [सं० धीवर] माँझी । मलाह । मलुया ।

विशेष—दे० "धीवर" ।

शुंकार्य-संज्ञा शी० दे० "भौंकार्य" ।

शुंकराना-कि० त० दे० "भौंकराना" ।

शुंकार-संज्ञा शी० दे० "भौंकार्य" ।

शुंगरा-संज्ञा पुं० [रेण०] सर्वा नामक अन्न ।

शुंभलाना-कि० अ० [अण०] खिम्बलाना । किटकिटाना । बहुत
दुखी और क्रुद्ध होकर कोई बात करना । चिड़चिड़ाता ।

शुंढ-संज्ञा पुं० [सं० वृष] बहुत से मनुष्यों, पशुओं या पक्षियों
आदि का समूह । प्रायियों का समुदाय । वृंद् । गरोह ।
जैसे, भेड़ियों का सुंढ, क्यूतरों का सुंढ ।

मुहा०—शुंढ के सुंढ = संख्या में बहुत अधिक (प्रावी) ।

शुंढ में रहना = अपने ही वारों के दूसरे बहुत से जिवों में
रहना ।

शुंढी-संज्ञा शी० [?] (१) वह खूँटी जो पौधों के
काट लेने के बाद खेतों में खड़ी रह जाती है । (२) चिलमन
या परदा लटकाने का कुलाया जो प्रायः कुं दे में लगा
रहता है ।

शुंकराना-कि० त० दे० "भौंकराना" ।

शुंकरना-कि० अ० [सं० उञ्, उञ्, हिं० उञ्क] (१) किसी खड़ी
चीज के ऊपर के भाग का नीचे की ओर टेढ़ा हो कर लटक
जाना । ऊपरी भाग का नीचे की ओर लटकना । निहुराना ।
नचना । जैसे, धादमी का सिर या कमर झुकना ।

मुहा०—शुंकर झुक पड़ना = नरो या नौद आदि के कारण या किसी
मनुष्य का सोचा या अच्छी तरह खड़ा या बैठा न रह सकना ।
उ०—अभिय हलाहल मद भरे सेत स्वाम रतनार । जिवत
मात मुकि मुकि परत जेदि वितवत एक थार ।

(२) किसी पदार्थ के एक या दोनो सिरों का किसी ओर
प्रयुक्त होना । जैसे, छड़ी का झुकना । (३) किसी खड़े या
सधी पदार्थ का किसी ओर प्रयुक्त होना । जैसे, खंभे या
तख्ते का झुकना । (४) प्रयुक्त होना । दत्त-चित्त होना । रुझ
होना । मुपातिय होना । (५) किसी चीज को लेने के लिये
आगे चढ़ना । (६) नम्र होना । विनीत होना । अवसर पड़ने
पर अभिमान या उग्रता न दिखलाना ।

संयो० कि०—जाना ।—पड़ना ।

(७) झुद्ध होना । रिसाना । उ०—(क) सुनि प्रिय वचन
मलिन मनु जानी । कुकी रानि अबरहु धरगानी ।—तुलसी ।
(ख) अथ यूद्धे अभिमान करति सिय सुकति हमारे ताई ।
सुख ही रहसि मिली रावण को अपने सद्ग सुभाई ।—सूर ।
(ग) अगत यसे निसि की रिसानि उर वर रहयो विसैरि ।
तज क्षात्र थाई मुकत खरे लज्जाई देखि ॥—विहारी ।

शुंकरसुर्त-संज्ञा पुं० [हिं० भौंकरना + सुख] प्रातः काल या संध्या
का वह समय जब कि कोई व्यक्ति स्पष्ट नहीं पहचाना जाता ।
ऐसा अंधेरा समय जब कि किसी व्यक्ति या पदार्थ को
पहचानने में कठिनाता हो । सुषुप्ता ।

शुंकरना-कि० अ० [अण०] शौं सुखाना । खिजलाना ।

शुंकराना-कि० अ० [हिं० भौंका] भौंका खाना । उ०—क्यो
सांकरे कुंजमग करतु भौंका सुकरात । मंद मंद मास्त सुँग
खूँदन आवत जात ।—विहारी ।

शुंकरवार-संज्ञा शी० [हिं० सुकराना] (१) सुकराने की क्रिया या
भाव । (२) सुकराने की मजदूरी ।

शुंकरपाना-कि० त० [हिं० सुकरना] सुकरने का काम दूसरे से कराना ।
किसी को सुकरने में प्रयुक्त करना ।

शुक्रार्ह—संज्ञा स्त्री० [हि० मुक्रना] (१) मुक्राने की क्रिया या भाव ।
(२) मुक्राने की मजदूरी ।

शुक्राना—कि० सं० [हि० मुक्रना] (१) किसी खड़ी चीज के ऊपरी भाग को टेढ़ा करके नीचे की ओर लाना । निहुराना । नथाना । जैसे, पेड़ की डाल शुक्राना । (२) किसी पदार्थ के एक या दोनों सिरों को किसी ओर प्रवृत्त करना । जैसे, घेंत शुक्राना, छड़ शुक्राना । (३) किसी खड़े या सीधे पदार्थ को किसी ओर प्रवृत्त करना । (४) प्रवृत्त करना । रजू करना । (५) नमू करना । विनीत बनाना ।

शुक्रामुखी—संज्ञा स्त्री० दे० “मुकमुख” उ०—जानि मुक्रामुखी भेय छुपाय के गागरी लै धर ते' निकरी ती ।—ठाकुर ।

शुक्रार—संज्ञा पुं० [हि० भुक्रोरा] हवा का भौंका । भुक्रोरा ।

शुक्राच—संज्ञा पुं० [हि० मुक्रना] (१) किसी ओर खटकने, प्रवृत्त होने या मुक्राने की क्रिया । (२) मुक्राने का भाव । (३) डाल । वतार । (४) प्रवृत्ति । मन का किसी ओर लगाना ।

शुक्रावट—संज्ञा स्त्री० [हि० मुक्रना + आवट (प्रत्य०)] (१) मुक्राने या नमू देने की क्रिया या भाव । (२) प्रवृत्ति । चाह । मुक्राव ।

शुटपुटा—संज्ञा पुं० [अ०] कुछ अंधेरा और कुछ उजला समय । ऐसा समय जब कि कुछ अंधकार और कुछ प्रकाश हो । मुकमुल ।

शुटुंग—वि० [हि० शूट] जिसके खड़े खड़े और बिखरे हुए बाल हों । मोटेबाला । जटाबाला । दे० “शूटंग” । उ०—योगिनी शूटुंग मुंड मुंड धनी तापस से तीर तीर बैठी हैं समरसरी धोरि कै ।—सुलसी ।

शुट्टा—वि० दे० “मूटा” ।

शुट्टकाना—कि० सं० [हि० शूठ] (१) मूठी धात कह कर धयवा और किसी प्रकार (विशेषतः बच्चों आदि को) धोखा देना । (२) दे० “मुटलाना” ।

शुट्टलाना—कि० सं० [हि० शूठ + लाना (प्रत्य०)] (१) मूठा ठहराना । मूठा प्रमाथित करना । मूठा बनाना । (२) मूठ कह कर धोखा देना । मुट्टकाना ।

शुट्टार्ह—संज्ञा स्त्री० [हि० शूठ + अर्ह (प्रत्य०)] मूठापन । धसलता । मूठ का भाव । उ०—(क) जानि परत महि' सोच मुट्टार्ह पैन चरावत रहे सुरैया ।—सूर । (ख) आधि मगन मन व्याधि विकल तन बचन मलीन मुट्टार्ह ।—सुलसी ।

शुट्टाना—कि० सं० [हि० शूठ + आना (प्रत्य०)] मूठा ठहराना । मूठा सावित करना । मुट्टलाना ।

शुट्टामूठी—कि० वि० दे० “मूठमूठ” ।

शुट्टालाना—कि० सं० दे० “मुट्टलाना” ।

शुन—संज्ञा स्त्री० [दे०] (१) एक प्रकार की चिड़िया । (२) दे० “शुनमुनी” ।

शुनक—संज्ञा पुं० [अ०] नूपुर का शब्द ।

शुनकना—कि० अ० [अ०] शुनशुन शब्द करना । शुनशुन खेलना या घबना ।
संज्ञा पुं० दे० “शुनमुना” ।

शुनका—संज्ञा पुं० [?] धोखा । छल ।

शुनकार—वि० [हि० शूनी] [स्त्री० शुनकारी] किंकरा । पतला । शूनी । महीन । थारीक । उ०—श्रीगिया शुनकारी रती सितजारी की सेदकनी कुच-रू पर ली ।

शुनशुन—संज्ञा पुं० [अ०] शुन शुन शब्द जो नूपुर आदि के बजने से होता है । उ०—श्रहन तरनि गल ज्योति जगमगित शुनशुन करत पाय पैजनिया ।—सूर ।

शुनशुना—संज्ञा पुं० [हि० शुनशुन से अ०] बच्चों के खेलने का एक प्रकार का खेलौना जो धातु, काठ, ताड़ के पत्तों या कागज आदि से बनाया जाता है । यह कई आकार और प्रकार का होता है; पर साधारणतः इसमें एकदूने के लिये एक छंड़ी होती है जिसके एक या दोनों सिरों पर पोखा गोब लट्टू होता है । इसी लट्टू में कंकड़ या किसी चीज के छोटे छोटे दाने भरे होते हैं जिनके कारण उसे हिलाने या पजाने से शुनशुन शब्द होता है । शुनशुना ।

शुनशुमाना—कि० अ० [अ०] शुन शुन शब्द होना । शूँशुरू के जैसा बोलना ।
कि० सं० शुनशुन शब्द उत्पन्न करना । शुनशुन शब्द निकालना ।

शुनशुनिया—संज्ञा स्त्री० [अ०] सनई का पैपा ।
संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) पैर में पहनने का कोई आभूषण जो शुनशुन शब्द करे । (२) बेड़ी । निगड़ ।
कि० प्र०—पहनना ।—पहनना ।

शुनशुनी—संज्ञा स्त्री० [हि० शुनशुनाना] हाथ या पैर के बहुत देर तक एक स्थिति में मुड़े रहने के कारण उसमें उत्पन्न एक प्रकार की सनसनाहट या घोम ।
कि० प्र०—चड़ना ।

शुनी—संज्ञा स्त्री० [दे०] जलाने की पतली सड़की ।

शुपशुपी—संज्ञा स्त्री० दे० “शुपशुपी” ।

शुपरी—संज्ञा स्त्री० दे० “शुपरी” । उ०—साशुन की शुपरी भली नासाकट के गाँव । चंदन की कूटकी भली ना बखल धन-राय ।—कबीर ।

शुप्या—संज्ञा पुं० (१) दे० “शुप्या” । (२) दे० “मुंड” ।

शुचशुची—संज्ञा स्त्री० [दे०] एक प्रकार का गहना जो देहाती स्त्रियाँ कान में पहनती हैं ।

भूमिका—संज्ञा पुं० [हि० भूमना] (१) कान में पहनने का एक प्रकार का गहना जो छोटी गोल कटोरी के आकार का होता है। इस कटोरी का सुँद नीचे की ओर होता है और इसकी पेंदी में एक डंढा लगा रहता है जिससे सहारे यह कान में नीचे की ओर खटकती रहती है। इसके किनारे पर सोने के तार में गुथे हुए मोतियों आदि की झलक लगी होती है। यह सोने चाँदी या पत्थर आदि का और सादा तथा जड़ाऊ भी होता है। यह अकेला भी कान में पहना जाता है और करवाकूल के नीचे बाटका कर भी। (२) एक प्रकार का पौधा जिसमें भूमके के आकार के फूल खगते हैं। (३) इस पौधे का फूल।

भूमना—वि० [हि० भूमना] भूमनेवाला। हिलनेवाला।

संज्ञा पुं० [देग०] यह बेल जो अपने चूँटे पर बँधा हुआ अपने पिड़ले वर उठा उठा कर भूमना करे। यह एक कुल-पण्य है।

भूमरा—संज्ञा पुं० [देग०] सुहारों का एक प्रकार का घब या बहुत भारी धर्मोद्धार जिसका व्यवहार खान में से जोड़ा निकालने में होता है।

भूमरी—संज्ञा स्त्री० [देग०] (१) काठ की सुँगरी। (२) गध पीठने का यंत्र। पिठना।

भूमरा—वि० [हि० भूमना] भूमनेवाला। जो भूमता है।

भूमना—क्रि० सं० [हि० भूमना का सं० रूप] किसी को भूमने में प्रवृत्त करना। किसी चीज के ऊपरी भाग को धारों और धारे धारे हिलाना।

भुरकुट—वि० [भुर०] (१) सुरमाया हुआ। स्या हुआ। (२) दुपड़ा। कृष्य।

भुरकुटिया—संज्ञा पुं० [देग०] एक प्रकार का पक्का लोहा जिसे खेड़ी कहते हैं।

विशेष—दे० "खेड़ी"।

वि० [भुर०] दुबला पतला। कृष्य।

भुरकुना—संज्ञा पुं० [हि० भृ + कण] किसी चीज के बहुत छोटे छोटे टुकड़े। चूर।

भुरसुरी—संज्ञा स्त्री० [भुर०] (१) कँपकँपी जो जूझी के पहले घाती है। (२) कँपकँपी।

भुरना—क्रि० अ० [हि० भृ, व चूर] (१) सुखना। सुख होना। दे० "भुराना"। उ०—हाड़ गईं सुरि किंगड़ी नसें भईं सव राति। शैव शैव तन सुन उठे कहीं विद्या केहि भाति।—जायसी। (२) बहुत अधिक दुखी होना या शोक करना। उ०—(क) सॉक भईं सुरि सुरि पैष देती। कौन पैँ घरी करी पिष पैरी।—जायसी। (ख) वैसोइ स्य वैसोइ कोइ भावत वतही ते। सुरि सुरि सव मरति विरह गोपीजन

१२४

फीले।—सूर। (ग) इनका योग्य आपके सिर है; आप इनकी खबर न लेंगे तो संसार में इनका कहीं पता न खगेगा। वे बेचारे यों ही सुर सुर कर मर जायेंगे।—धीनिवासदास।

(३) बहुत अधिक चिंता, रोग या परिश्रम आदि के कारण दुर्बल होना। सुलना। उ०—(क) पदोऊ मेरे गाधुचरया। मोल बिसाहि लये तुम को तब दोइ रहै नन्दैया।..... जानि परत नहिं साँच सुटाईं धेनु चरायत रहे सुरैया। सुरदास प्रभु कहति प्योदा मैं चैरी कहि लेत वलैया।—सूर। (ख) सुनौ कँ परम पद, जने कँ अनंत मद् नूनौ कँ नदीस नद् धुँदिरा सुरै परी।—देव। (ग) सिद्धि की सिद्धि दिगापालन की सिद्धि बृद्धि बेघा की समृद्धि सुरसदन सुरै परी।—रघुराज।

संयो० क्रि०—जाना।—पड़ना। (वच०)

भुरसुट—संज्ञा पुं० [सं० सुट=भाँटी] (१) कई भाँटों या पत्तों आदि का पेला समूह जिससे कोई स्थान ढक जाय। एक ही में मिले हुए या पास पास कई भाँट या चूप। ढाल पत्तियों की आड़। (२) बहुत से लोगों का समूह। गरोह। उ०—जन इक मँह सुसुट होइ बीता। दर मँह चड़े रहै सो बीता।—जायसी। (३) चादर या थोड़ने आदि से शरीर को चारों ओर से ढिपा या ढक लेने की क्रिया।

सुहा—सुसुट मारना=चादर या थोड़ने आदि से सारा शरीर इत प्रकार ढक लेना कि जिसमें अर्ली कोई पहचान न सके।

भुरवन—संज्ञा स्त्री० [हि० भ्रुना + वन (प्रत्य०)] वह भ्रंश जो किसी चीज के सुखने के कारण वसमें से निकल जाता है।

भुरवाना—क्रि० सं० [हि० भ्रुना] (१) सुखाने का काम दूसरे से कराना। दूसरे को सुखाने में प्रवृत्त करना। † (२) भुराना। सुखाना।

भुरसाना—क्रि० अ०। सं० दे० "कुलसाना"।

भुरसाना—क्रि० सं० दे० "कुलसाना"।

भुरसुरी—संज्ञा स्त्री० दे० "भुरसुरी"।

भुराना—क्रि० सं० [हि० भ्रुना] सुखाना। सुख करना।

क्रि० अ० (१) सुखना। (२) दुःख या भय से घबरा जाना। दुःख से स्तब्ध होना। उ०—यह धानी सुनि ग्यारि भुरानी। मीन मप माने यिन पानी।—सूर। (३) दुबला होना। चीय होना।

संयो० क्रि०—जाना।

विशेष—दे० "भुरना"।

भुरावन—संज्ञा स्त्री० [हि० भ्रुना + वन (प्रत्य०)] वह भ्रंश जो किसी चीज के सुखाने के कारण उसमें से निकल जाता है।

भूर्ति—संज्ञा स्त्री० [हि० भूर्ति] किसी चीज की सतह पर लंबी रेखा के रूप में उभरा या घँसा हुआ चिह्न जो उस चीज के सुलने मुड़ने या पुरानी हो जाने आदि के कारण पड़ जाता है। सिकुड़न। सिलवट। शिकन। जैसे, धाम पर की भूर्ति, चेहरे पर की भूर्ति।

क्रि० प्र०—पड़ना।

विशेष—यहूथा इसका प्रयोग यहू पचन में ही होता है। जैसे, धय ये बहुत बुद्धे हो गए, उनके सारे शरीर में भूर्तियां पड़ गई हैं।

भुलका—संज्ञा पुं० दे० “भुनभुना”।

भुलना—संज्ञा पुं० [हि० भुलना] छियों के पहनने का एक प्रकार का डीला ढाला कुरता। भूला।

वि० [हि० भुलना] भूलनेवाला। जो भूलता हो।

संज्ञा पुं० दे० “भूला”।

भुलनी—संज्ञा स्त्री० [हि० भुलनी] (१) सीने आदि के तार में गुथा हुआ छोटे छोटे मोतियों का गुच्छा जिसे किर्या शोभा के लिये नाक की नथ में खटका लेती हैं। (२) दे० “भूमर”।

भुलनीधार—संज्ञा पुं० [दे०] धान का यज्ञ। (कहरों की परि०)

भुलमुला—वि० दे० “मिलमिला”। उ०—(क) मीने पट में भुलमुली भूलकति श्राप अषार। सुरतर की मनु सिंधु में खसति सपख वार।—विहारी। (ख) काननि कनिक पत्र पक धमकत धार भ्रमा भुलमुल भूलकति अति सुखदाह।—धेराव।

भुलवा—संज्ञा पुं० [दे०] (१) एक प्रकार की कपास जो बहराइच, यलिया, गान्जीपुर आर गोंडे आदि में उत्पन्न होती है। यह अच्छी जाती की है पर कम निकलती है। यह जेठ में संवार होती है, इस लिये इसे जेठवा भी कहते हैं। † (२) दे० “भूला”।

भुलवाना—क्रि० स० [हि० भुलना] भुलाने का काम दूसरे से कराना। दूसरे को भुलाने में प्रवृत्त करना।

भुलसना—क्रि० अ० [सं० लस + भ्य] (१) किसी पदार्थ के ऊपरी भाग या तल का इस प्रकार धरातः, जल जाना कि उसका रंग काला पड़ जाय। किसी पदार्थ के ऊपरी भाग का अधजला होना। भौंसना। जैसे, यह खटका धराठी पर गिर पड़ा था इसीसे इसका सारा हाथ भुलस गया। (२) बहुत अधिक गरमी पड़ने के कारण किसी चीज के ऊपरी भाग का सूख कर डूङ्ग काला पड़ जाना। जैसे, गरमी के दिनों में केमल पौधों की पत्तियां भुलस जाती हैं।

संज्ञा० क्रि०—जाना।

क्रि० स० (१) किसी पदार्थ के ऊपरी भाग या तल को

इस प्रकार धरातः जलाना कि उस का रंग काला पड़ जाय और तल धरातः हो जाय। भौंसना। जैसे, उग्लों ने जान यूक कर अपना हाथ भुलस लिया। (२) अधिक गरमी से किसी पदार्थ के ऊपरी भाग को सूखा कर अधजला कर देना। जैसे, आज दोपहर की धूप ने सारा शरीर भुलस दिया।

संज्ञा० क्रि०—डलना।—देना।

मुहा०—मुँह भुलसना = देला “मुँह” के मुहावरे।

भुलसवाना—क्रि० स० [हि० भुलसना का प्रे०] भुलसने का काम दूसरे से कराना। दूसरे को भुलसने में प्रवृत्त करना।

भुलसाना—क्रि० स० (१) दे० “भुलसना”। (२) दे० “भुलसवाना”।

भुलाना—क्रि० स० [हि० भुलना] (१) हिंडोले या भूले में बैठा कर हिलाना। किसी को भुलने में प्रवृत्त करना। उ०—रहो रहो नाहीं नाहीं धय ना भुलायो लाल बाबा की लो मेरो ये भुलल जंघ धहरात।—तोष। (२) अघर में खटका या रंग का धूप उधर हिलाना। धार धार मोका देकर हिलाना। (३) कोई चीज देने या कोई काम करने के लिये बहुत अधिक समय तक धासरे में रखना। अनिश्चित या अनिर्णीत अवस्था में रखना। कुछ निश्चित या निश्चय न करना। जैसे, इस कारीगर को कोई चीज मत दो, यह महीना भुलता है।

भुलाघना—क्रि० स० दे० “भुलाना”। उ०—लेइ उठंग कय हूँ क हलरावइ। कबहुँ पालने पालि भुलावइ।—तुलसी।

भुलायनि—क्रि० संज्ञा स्त्री० [हि० भुलाना] भुलाने का भाव या क्रिया।

भुलुआ—संज्ञा पुं० दे० “भूला”।

भुलाघा—संज्ञा पुं० [हि० भुलना = उरता] जनाना कुरता।

वि० [हि० भुलना] जो भूलता था भुलाया जा सकता हो। भूलने या भूल सकनेवाला।

भुला—संज्ञा पुं० दे० “भूला”।

भुलिरना—क्रि० अ० [?] लदना। लादा जाना। उ०—रतन पदार्थ नग जो खलाने। धारन मैह देखे भुलिरने।—जायसी।

भुलिराना—क्रि० स० [?] लादना। धोक रखना।

भूर्क—संज्ञा पुं० दे० “भौंका”। उ०—(क) सुहमद गुरु जो विधि लिखी का कोई लेहि भूर्क। जेहि के आर जग थिर रहा उठे न पवन के भूर्क।—जायसी। (ख) लीं पदमाकर पैग के भूर्कन धवैलिया कृकन को सहि बौहैं।—पदमाकर।

संज्ञा स्त्री० दे० “भौंक”। उ०—किंकिनी की भूमकानि भुलवानि भूर्कनि लो मुकि जान कटी की।—देव।

भूर्कना—क्रि० स० (१) दे० “भौंकना”। (२) दे० “भूलना”।

श्रुतना—कि० था० दे० “श्रुतना” । उ०—अपधि गनत
हृदक मग जोवत तव इतनी महिं श्रुती ।—पूर ।

श्रुतल—संज्ञा श्री० दे० “श्रुतलहाड” ।

श्रुतल—संज्ञा पुं० [हिं० श्रुतल] पुं० । उ०—दे० “श्रुतल” ।
वि० दे० “श्रुतल” ।

श्रुतल—वि०, संज्ञा पुं० दे० “श्रुतल” ।

श्रुतल—संज्ञा श्री० [हिं० श्रुतल] वह संज्ञक जो नील को सड़ाने पर
बच रहता है ।

श्रुतल—संज्ञा पुं० “श्रुतलहाड” ।

श्रुतल—कि० अ० और सं० दे० “श्रुतलसना” ।

श्रुतल—संज्ञा पुं० [दे०] एक प्रकार की घास ।

श्रुतल—संज्ञा श्री० [हिं० श्रुतल + कांठ] छोटी झाड़ी । उ०—(क)
वह श्रुतल तिरस्कृत प्रकृती को अनुसरती है ।—धीघर
पाठक । (ख) जिमि वसंत नव श्रुतल तले लसाई ।—
धीघर पाठक ।

श्रुतल—कि० था० दे० “श्रुतल” उ०—साहब को भावद नहीं
सेा घाट न घुसे रे । साहं सेा सनमुख रहे इस मन से
श्रुती रे ।—दादू ।

श्रुतल—संज्ञा पुं० दे० “श्रुतल” ।

श्रुतल—संज्ञा पुं० [सं० श्रुतल, प्रा० श्रुतल] वह कथन जो वास्तविक
स्थिति के विपरीत हो । वह बात जो यथार्थ न हो । सच
का बलटा ।

श्रुतल—प्र०—कहना ।—बोलना ।

श्रुतल—श्रुतल सच कहना या लगाना = निंदा करना । शिकायत
करना ।

श्रुतल—श्रुतल श्रुतल ।

वि० दे० “श्रुतल” । (क०)

श्रुतल—संज्ञा श्री० दे० “श्रुतल” ।

श्रुतल—संज्ञा श्री० दे० “श्रुतल” ।

श्रुतल—वि० [हिं० श्रुतल + श्रुतल (श्रुतल)] विना किसी वास्तविक
आधार के । श्रुतल ही । यों ही । व्यर्थ । जैसे, उन्होंने श्रुतल श्रुतल
एक बात बना कर कह दी ।

श्रुतल—वि० [हिं० श्रुतल] (१) जो वास्तविक स्थिति के विपरीत
हो । जो श्रुतल हो । जो सच न हो । मिथ्या । असत्य । जैसे,
श्रुतल बात, श्रुतल अभियोग । (२) जो श्रुतल बोलता हो ।
श्रुतल बोलनेवाला । मिथ्यावादी । जैसे, ऐसे श्रुतल आदिमियों
का क्या विश्वास ।

श्रुतल—प्र०—श्रुतलना ।—निकलना ।—बनना ।

(१) जो सचा या असली न हो । जो केवल रूप और
रंग आदि में असली चीज़ के समान हो पर गुण आदि

में नहीं । जो केवल दिखावा और बनावटी हो या किसी
असली चीज़ के स्थान पर यों ही काम देने, सुभीता
अप्पन करने अथवा किसी को धोखे में डालने के लिये बनाया
गया हो । नकली । जैसे, श्रुतल जवाहिरात, श्रुतल गोटा पट्टा,
श्रुतल घड़ी, श्रुतल मसाला या काम (जरदोज़ी का काम),
श्रुतल दस्तावेज़, श्रुतल कागज़ ।

विशेष—इस अर्थ में “श्रुतल” शब्द का प्रयोग कुछ विविध
शब्दों के साथ ही होता है जिनमें से कुछ ऊपर उदाहरण में
दिए गए हैं ।

(४) जो (पुरुष या रंग आदि) विगड़ जाने के कारण ठीक
ठीक काम न दे सकें । जैसे, ताले या खतके आदि का श्रुतल
पड़ जाना, हाथ या पैर का श्रुतल पड़ना ।

श्रुतल—प्र०—पड़ना ।

वि० दे० “श्रुतल” ।

श्रुतल—कि० वि० [हिं० श्रुतल] (१) श्रुतल श्रुतल । यों ही । (२) नाम
मात्र के लिये । कहने भर को । जैसे, वे श्रुतल भी हमें
बुलाने के लिये न आए । उ०—श्रुतल दि दोष लगावे मोहें
राजा ।—गीत ।

श्रुतल—संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार की छुपारी । (२) एक
प्रकार का अशकून ।

श्रुतल—वि० दे० “श्रुतल” । उ०—(क) तव लेा दया बनेा दुसह
दुसह दारिद्र के साधरी को सोहयो छोरियो मूने खस
को ।—मुजली । (ख) तेहि वरा वड़े मूने सुखीकर परम
शरीतल मूण परै ।—रघुराज ।

श्रुतल—संज्ञा श्री० [हिं० श्रुतल] (१) मूमने की क्रिया या भाव ।
(२) ऊँच । उँचाई । ऊपकी । (क०)

श्रुतल—संज्ञा पुं० [हिं० श्रुतल] (१) एक प्रकार का गीत जिसे
होली के दिनों में देशत की बियाँ मूम मूम कर एक घेरे में
गावती हुई जाती हैं । मूमर । मूमकरा उ०—खिए छरी
बेत सौंवे विभाग । घावरी मूमक कहे सतस रागा ।—मुजली ।
(२) इस गीत के साथ होनेवाला नृत्य । (३) एक प्रकार
का पूरवी गीत जो विशेषतः विवाह आदि मंगल अवसरों
पर गाया जाता है । मूमर । उ०—कहूँ मनोरा मूमक होई ।
पर और श्रुतल खिए सच कोई ।—जायसी । (४) गुच्छ ।
(५) चाँदी सोने आदि के छोटे छोटे कुम्भों या मोतियों
आदि के गुच्छों की वह कतार जो साड़ी या भोजनी आदि
के उम भाग में छापी रहती है जो मारने के ठीक ऊपर पड़ता
है । इसका व्यवहार पत्य में अधिक होता है । (६) दे०
“श्रुतल” ।

श्रुतल साड़ी—संज्ञा श्री० [हिं० श्रुतल + साड़ी] वह साड़ी जिसके
सिर पर रहनेवाले भाग में कुम्भे या सोने मोती आदि के

गुच्छे टँके हों। यह लँहगे पर की शोढ़नी जिसमें सिर के पखले पर सोने के पत्ते या मोती के गुच्छे टँके हों। उ०—
लाख टका धर भूमक सारी देहु दाह को नेग।—सूर।

शूरमङ्ग—संज्ञा पु० (१) दे० “भूमिका”। उ०—महवा मयायि
विरोध लाख लटकत सुंदर सुंदर दरावने। मोतिन मालरि
भूमका रामत विच नीलमणि धनु भावने।—सूर।
(२) दे० “भूमक”। उ०—पग पटकत लटकत लटवाहु।
मटकत भौहन हस्त उखाहु। अंचल चंचल भूमका।—
सूर।

शूरमङ्ग—संज्ञा पु० दे० “भूमर”।

शूरमङ्ग—संज्ञा पु० दे० “भूमरा”।

शूरमङ्ग श्यामङ्ग—संज्ञा पु० [हि० श्यमङ्ग] इकोसला। भूमक अर्पच।
निर्पैक विषय। उ०—अपने हाथे करै थापना अजया का
सिर कठी। सो पूजा पर लैगो माली भूरति कुचन चाटी।
हुनिया भूमङ्गि सामङ्गि शरकी।—कबीर।

शूरमना—कि० श्र० [सं० भंप = भूना] (१) थाचार पर स्थित
किसी पदार्थ के ऊपरी भाग या सिर के बा बा बा आगे पीछे
नीचे ऊपर या इधर उधर हिलना। बार बार आगे पीछे नीचे
ऊपर या इधर उधर हिलना। बार बार भोंके खाना। जैसे,
हवा के कारण पेड़ों की टाँगों का भूमना।

मुहा०—बादल भूमना = बादलों का एकत्र होकर मुकना।

(२) किसी खड़े या बैठे हुए जीव का अपने सिर और धड़
को बार बार आगे पीछे और इधर उधर हिलाना। लहराना।
जैसे, हाथी या शीशु का भूमना, नये या नौद में भूमना।
उ०—झाई सुधि प्यारे की विचारि मति टारै तव धारै पग
मग भूमि द्वारावति आए हूँ।—प्रिया।

विशेष—यह क्रिया प्रायः मस्ती, बहुत अधिक प्रसन्नता, नींद
या नये आदि के कारण होती है।

मुहा०—दरावने पर हाथी भूमना = इतना अमीर होना कि
दरावने पर हाथी बैठा हो। इतना सम्यक होना कि हाथी
पाल सके। उ०—भूमत द्वार शनैक सम्यक भोजीर जड़े मद
शंख चुचाते।—गुजरी। भूम भूम कर = सिर और धड़ के
आगे पीछे या इधर उधर लड़ हिला हिला कर। लहरा लहरा
कर। जैसे, भूम भूम कर पढ़ना, नाचना या (भूत प्रेत आदि
माधमों के कारण) खेलना।

संज्ञा पु० बैलों का एक पैर जिसमें से खूँटे पर बँधे बँधे इधर
उधर सिर हिलाया करते हैं।

शूरमर—संज्ञा पु० [हि० भूमना या सं० भुम, प्रा० भुम + र (भव०)]

(१) सिर में पहनने का एक प्रकार का गहना जिसमें प्रायः
एक या देड़ शंख चौड़ी चार पाँच शंख लंबी और भीतर से
पोली सीधी चमया धनुषाकार फंफू पट्टी होती है। यह गहना

प्रायः सोने का ही होता है और इसमें छोटी जंजीरों से बँधे
हुए घुँघरू या कन्वे लटकते रहते हैं। किसी किसी भूम में
जंजीरों से लटकती हुई एक के बाद एक इस प्रकार दो
पटरियाँ भी होती हैं। इसके पिछले भाग के कुंदे में चाँद
के आकार के एक गोले टुकड़े में दूसरी जंजीर या छोटी खगी
होती है जिसके दूसरे सिर के कुंडा सिर की चोटी या माँग के
पास के बालों में अटक दिया जाता है। यह गहना सिर के
अगले बालों या माथे के ऊपरी भाग पर लटकता रहता है
और इसके आगे के लच्छे बराबर हिलते रहते हैं। संयुक्त प्रदेश
में केवल एक ही भूमर पहना जाता है जो सिर पर दाहिनी
ओर रहता है, और यहाँ इसका व्यवहार वेर्याएँ करती हैं,
पर पंजाब में इसका व्यवहार गृहस्थ स्त्रियाँ भी करती हैं और
वहाँ भूमरों की जोड़ी पहनी जाती है जो माथे पर आगे दोनों
ओर लटकती रहती है। (२) कान में पहनने का भूमक नामक
गहना। (३) भूमक नाम का गीत जो होली में गाया जाता
है। (४) इस गीत के साथ होनेवाला नाच। (५) एक प्रकार
का गीत जो बिहार प्रांत में सय श्रद्धों में गाया जाता है।
(६) एक ही तरह की बहुत सी चीजों का एक स्थान पर
इस प्रकार एकत्र होना कि उनके कारण एक गोले घेरा सा
बन जाय। जमघटा। जैसे, नाचों का भूमर।

क्रि० प्र०—डालना।—पढ़ना।

(७) बहुत सी स्त्रियों या पुरुषों का एक साथ मिल कर इस
प्रकार घूम घूम कर नाचना कि उनके कारण एक गोले घेरा
सा बन जाय। (८) भालू का खड़ा करने पर रस्ती लेकर
सागना। (कलंदरों की भाषा) (९) शाहीबानों की मोगरी।
(१०) भूमरा नामक ताल। दे० “भूमरा”। (११)
एक प्रकार का काठ का खिलौना जिसमें एक गोले टुकड़े में
चारों ओर छोटी छोटी गोलियाँ लटकती रहती हैं।

शूरमरा—संज्ञा पु० [हि० शूर] एक प्रकार का ताल जो चौदह
मात्राओं का होता है। इसमें तीन आघत और एक विराम

होता है। वि० वि० तिरकिट, वि० वि० धा धा, तित्ता तिर-
किट, वि० वि० धा धा।

शूरमरि—संज्ञा स्त्री० दे० “भूमर”।

शूरमरी—संज्ञा स्त्री० [दे०] शालक राग के पाँच भेदों में से एक।

शूरप—वि० [हि० शूर या चूर] सूखा। लुरक। शूक।
वि० [हि० शूर] (१) खाली। रीता। (२) व्यर्थ।

वि० [सं० शूर] नृश। उच्छिष्ट।

संज्ञा स्त्री० (१) जलन। दाह। (२) परिताप। दुःख। उ०—
अनहुँ कदै सुनाह कौदै करै कुविजग दूरि। सूर दाहनि मरत
गोपी ह्यरी के भूरि।—सूर।

भूरना—कि० सं० [हि० धार] दे० "भूरना" ।

भूरना—वि० [हि० धार] (१) सुखा । शुष्क । खुरक । (२) खाली ।

३०—किंगरी गहरे बजाये भूरी । भौर साम सिंगी नित

पूरी ।—जायमी । दे० "भूर" ।

संज्ञा पुं० (१) सूखा स्थान । यह स्थान जो पानी से भीगा न हो । (२) जलवृष्टि का अभाव । अवर्षण । सूखा ।

कि० प्र०—पड़ना ।

(३) न्यूनता । कमी । ३०—करी कराह साज सप पूरा । काइहु पूरी परी न भूरा ।—खुराज ।

भूरि—संज्ञा स्त्री० दे० "भूर" ।

भूरि—कि० वि० [हि० धार] ध्वर्य । निम्नयोजन ।

वि० दे० "भूर" । ३०—वाधि पची देरी नहिं पूरे । धार धीजव रिस भूरे ।—सूर ।

भूरल—संज्ञा स्त्री० [हि० धूलना] (१) वह चौकोर कपड़ा जो प्रायः शोभा के लिये धागों की पीठ पर ढाला जाता है । ३०—धोर के समान जब लीन्हें सावधान खान भूलन ढपान जिन योग येप्रमान हैं ।—खुराज ।

विशेष—इस देश में हाथियों और घोड़ों आदि पर जो मूल ढाली जाती है वह प्रायः मयमल की और अधिक दामों की होती है और उस पर कारचोरी आदि का काम किया होता है । बड़े बड़े राजाघों के हाथियों की मूलों में मोतियों की मालतरी तक टँकी होती हैं । जैतों तथा रथों के बैलों पर भी इसी प्रकार की मूले ढाली जाती हैं । आज कल कुत्तों तक पर मूल ढाली जाने लगी है ।

मुहा०—गधे पर मूल पड़ना = बहुत ही व्योग्य या कुल्ल मनुष्य के शरीर पर यह मूल और बड़िया यत्न होना । (व्यंग्य) (२) यह कपड़ा जो पहना जाने पर महा और बेहंगम जान पड़े । (व्यंग्य) (३) दे० "भूला" । ३०—मखल के मूल मुखावत केवव भानु मनेा शनि थक लिपु ।—केवव ।

भूरल—संज्ञा पुं० दे० "भूलदंड" ।

भूरलदंड—संज्ञा पुं० [हि० धूलना + सं० दंड] एक प्रकार की कसरत जिसमें बारी बारी से चैक और तय भूलते हुए दंड करते हैं ।

भूरलन—संज्ञा पुं० [हि० धूलना] (१) एक अवस्य जिसमें धीकृष्ण या रामचंद्र आदि की मूर्तियों को मूले पर बैठ कर सुलाते और उनके सामने नृत्य गीत आदि करते हैं । यह साधारणतः बर्षा ऋतु में और विशेषतः श्रावण शुद्ध एकादशी से पौर्णिमा तक होता है । हिंदोल । (२) एक प्रकार का रंगीन या खलता गाना ।

† संज्ञा स्त्री० मूलने की क्रिया या भाव ।

भूरलना—कि० अ० [सं० दोहन] (१) किसी खटकी हुई वस्तु पर

स्थित होकर अथवा किसी धापाके के सहारे नीचे की ओर खटक कर धार धार आगे पीछे या इधर उधर इतने बढ़ते रहना । खटक कर धार धार इधर उधर हिलना । जैसे, पंखे की रस्ती भूलना, मूले पर बैठ कर भूलना । (२) मूले पर बैठ कर पेंग लेना । ३०—(क) प्रेम रंग बोरी भोरी नवल कितोरी गोरी भूलति हिं बोरे यों सोहाई सखियान में । काम भूली उर में, उरोजन में दाम भूले, स्थाम भूले प्यारी की शन्यारी शंखियान में ।—पद्माकर । (ख) भूली भूली बेली ली नवेली अलबेली बधु भूलति अकेली कामकेली ली बढ़ति है ।—पद्माकर । (३) किसी कार्य के होने की आशा में अधिक समय तक पड़े रहना । आसरे में अथवा अनिर्णीत अवस्था में रहना । जैसे, जो लोग घरतों से मूल रहें हैं उनका काम होता ही नहीं, और आप अभी से जल्दी मचाने लगे ।

वि० भूलनेवाला । जो भूलता हो । जैसे, भूलना पुल ।

संज्ञा पुं० (१) एक छंद जिसके प्रत्येक चरण में ७, ७, ७ और १ के विराम से २६ मात्राएँ और श्रंत में गुण लघु होते हैं । ३०—हरि राम विसु, पावन परम, गोकुल बसत मनमान । (२) इसी छंद का दूसरा भेद जिसके प्रत्येक चरण में १०, १०, १० और ३ के विराम से ३७ मात्राएँ और श्रंत में गण्य होता है । ३०—जैति हिम धालिका असुर कुल धालिका कालिका मालिका सुरस हैव । (३) हिंदोला । भूला । (क०) । ३०—अथवा की डाली तले भाली भूलना डला दे ।—गीत ।

भूलनी बगली—संज्ञा स्त्री० [हि० धूलना + बगली] सुगदर की एक प्रकार की कसरत जो बगली की तरह ही होती है । बगली की अपेक्षा इसमें यह विशेषता है कि पीठ पर से बगल में सुगदर छेड़ते समय पंखे को इस प्रकार उलटना पड़ता है कि सुगदर धरापर भूलता हुआ आता है । इससे कलाई में बहुत जोर आता है ।

भूलनी चैक—संज्ञा स्त्री० [हि० धूलना + चैक = कसरत] एक प्रकार की चैक (कसरत) जिसमें चैक करके एक पैर को हाथी के सूँड़ की तरह भूला कर और तब उसे समेट कर बैठना और फिर उठ कर दूसरे पैर को उसी प्रकार सुलाना पड़ता है । इसमें शरीर को तौलने की विशेष साधना होती है ।

भूलरि—संज्ञा स्त्री० [हि० धूलना] भूलता हुआ छोटा गुच्छा या गुमका । ३०—पर वितान बहु तने उभावन । मनि मालरि भूलरि खटकवन ।—गोपाल ।

भूल्ला—संज्ञा पुं० [सं० दोहा] (१) पेड़ की डाल, छत या किसी और ऊँचे स्थान में बांध कर खटकाई हुई दोहरी या चौहरी रस्सी, जंजीर आदि से चँची पटरी जिस पर बैठ कर भूलते हैं । हिंदोला ।

विशेष—मूला कई प्रकार का होता है। इस प्रांत में लोग साधारणतः वर्षा ऋतु में घरो या पेड़ों की डालों में मूलते हुए रस्ते बांध कर उनके निचले भाग में तखता या पट्टी आदि रख कर उस पर मूलते हैं। दक्षिण भारत में मूले का रवाना बहुत है। वहाँ प्रायः सभी घरों में छतों में चार रस्सियाँ या जूँजीरें लटकवा दी जाती हैं और किसी बड़े तखते या चौकी के चारों कोने से उन रस्सियों को बाँध या जूँजीरों को जड़ देते हैं। मूले का निचला भाग जमीन से कुछ ऊँचा होना चाहिए जिसमें वह सरलता से बराबर मूल सके। मूले के आगे और पीछे जाने और आने का पैग कहते हैं। मूले पर बँध कर पैग देने के लिये या तो जमीन पर पैर को तिरछा करके आघात करते हैं या उसके एक सिरे पर खड़े हो कर भोंके से नीचे कीओर मुकते हैं।

क्रि० प्र०—मूलना।—डोलना।—पड़ना।

(२) बड़े बड़े रस्सों जूँजीरों या तारों आदि का बना हुआ पुल जिसके दोनों सिरे नदी या नाले आदि के दोनों किनारों पर किसी बड़े खंभे, चट्टान या पुर्ज आदि में बँधे होते हैं और जिसके बीच का भाग अथर में लटकता और मूलता रहता है। मूलता हुआ पुल। जैसे, लक्ष्मन मूला।

विशेष—प्राचीन काल में भारतवर्ष में पहाड़ी नदियों आदि पर इसी प्रकार के पुल होते थे। आज कल भी उत्तरी भारत तथा दक्षिणी अमेरिका की छोटी छोटी पहाड़ी नदियों और बड़ी बड़ी खाइयों पर कहीं कहीं जंगली जातियों के बनाए हुए इस प्रकार के पुल पाए जाते हैं। पुरानी चाल के पुल दो तरह के होते हैं। (१) एक बहुत मोटे और मजबूत रस्से के दोनों सिरे नदी या खाई आदि के दोनों किनारों पर की दो बड़ी चट्टानों आदि में बाँध दिए जाते हैं और उनमें बहुत बड़ा दौरा या चौखटा आदि लटका दिया जाता है जो दूसरे किनारे पर से खींच लिया जाता है, ऊपर-जाले रस्से को पकड़कर यात्री हले कमी कमी स्वयं सरकाता चलता है। (२) मोटी मोटी मजबूत रस्सियों का जाल बुन कर अथवा छोटे छोटे डंडे बाँध कर नदी की चौड़ाई के बराबर लंबी और बड़े हाथ चौड़ी एक पट्टी सी बना लेते हैं और उसे रस्सों में लटका कर दोनों ओर रस्सियों से इस प्रकार बाँध देते हैं कि नदी के ऊपर वहाँ रस्सों और रस्सियों की लटकती हुई एक गली सी बन जाती है। इसी में से हो कर आदमी चलते हैं। इसके दोनों सिरे भी नदी के किनारे पर चट्टानों से बँधे होते हैं। आज कल यूरोप अमेरिका आदि की बड़ी बड़ी नदियों पर भी मोटे मोटे तारों और जूँजीरों से इसी प्रकार के बहुत बड़े, बड़िया और मजबूत पुल बनाए जाते हैं।

(३) यह विस्तर जिसके दोनों सिरे रस्सियों में बाँध कर दोनों

ओर दो ऊँची खूंटियों या खंभों आदि में बाँध दिए गए हैं।

विशेष—इस देश में साधारणतः देहाती लोग इस प्रकार के टाट के विस्तर पेड़ों में बाँध देते और उन पर सेते हैं। जहाँमें में खलासी लोग भी इस प्रकार के कमवात के विस्तरों का व्यवहार करते हैं।

(४) पशुओं की पीठ पर डालने की मूला। (५) देहाती स्त्रियों के पहनने का वीला वीला कुरता। (६) भेँका। भटका। (क०)। (७) † तरपून।

श्रुति—संज्ञा पुं० दे० “मूला”।

श्रुली—संज्ञा स्त्री० [हिं० श्रुलना] (१) यह कपड़ा जिससे हवा काके अथ शोसाया जाता है। परती। (२) खलासियों आदि का जहाजी विस्तर जिसके दोनों सिरे रस्सियों से बाँध कर दोनों ओर ऊँची खूंटियों या खंभों आदि में बाँध दिए जाते हैं। दे० “मूला (३)”।

झेपना, झेपना—क्रि० अ० [हिं० झिपना] धरमाना। लजाना। लजित होना।

संयो० क्रि०—जाना।

झेर * †—संज्ञा स्त्री० [फ्रां० देर] (१) विनय। देर। उ०—(क) चलहु तुलत जिनि भेर लगावहु अथही आइ करी विग्राम।—सूर। (ख) काहे को तुम भेर लगावति। दान देहु घर जाहु वेचि दधि तुम ही को यह भावति।—सूर। (२) बलेड़ा। मगाड़ा। उ०—(क) सूरदास प्रभु रासविहारी श्रीधनवारी चृया करत काहे भेरे।—सूर। (ख) मधुकर समना ऐसा धैरन।.....नंदकुमार छुड़ि के लैहै योग दुखन की देरन। जहाँ न परम उदार नंदसुत सुक्त परों किन भेरन।—सूर।

झेरना * †—क्रि० स० [हिं० झेलना] झेलना। सहना। उ०—कइ रूप पद अथ ते गहौ गहे रानि सुख भेरि। मन में भये न मैल कछु लागे सेवन फेरि।—विद्यामान।
क्रि० स० [हिं० झेदना] झेदना। शुरू करना। आरंभ करना। उ०—भेरी बड़ेरी जाहि मेरी मुरली बहुतेरी बनी।—गोपाल।

झेरा—संज्ञा पुं० [फ्रां०] मँकट। बलेड़ा। दे० “भेरा”। उ०—(क) जीव का जनम का जनम का जीव का आप ही आप ले भानि भेरा।—दादू। (ख) दीपक में चरणो यारि देखत मुज भए चारि हारी हौ परति करत दिन दिन को मेरो।—सूर।

झेल—संज्ञा स्त्री० [हिं० झेलना] (१) पानी में तैरने आदि में हाथ पैर से पानी हटाने की क्रिया। (२) हलका धका या हिलोरा। उ०—सुरत समुद्र मगन दंपति रस झेलत अति सुख झेल।—सूर। (३) झेलने की क्रिया या भाव।

संज्ञा शी० विलंब । दे० । दे० "भेरे" । ३०—(क) सब कहीं देखि भूप मण्डि बोले सुगह सकल मम पैना । भप कुमार विवाहन लायक उचित भेल कहु ई ना ।—रघुराज । (ख) भक्तिनि है का मरोला लगी लग लागिने को इहाँ भेल नहीं फिर ।—पद्माकर ।

शैलना—श्री० सं० [सं० वदेन = शिलाना उलाना ?] (१) ऊपर लेना । सहायना । सहाय । परदास्त करना । जैसे, दुःख भेलना, कष्ट भेलना, मुसीबत भेलना, ३०—दूटे परत अकाल को कौन सकत है भेलि ।—कपीर । (२) पानी में तैरने या चलने में हाथ पैर से पानी हटाना । पानी को हाथ पैर से हिलाना । ३०—(क) कर पग गहि अंगुठा सुल भेलत । प्रथु पीढ़े पावने अकेले हरति हरति अपने रँग खेलत । शिव सोचत विधि बुद्धि विचारत बट बाढ़यो सागर जल भेलत ।—सूर । (ख) बाल केलि को विशद परम सुख सुख समुद्र मृग भेलत ।—सूर । (३) पानी में हिलना । हलना । जैसे, कमर तक पानी भेल कर नदी पार करना । (४) टेलना । दबेलना । धागे बढ़ाना । धागे चलाना । ३०—दुहुन की सहाज विसात दुहुँ मिलि सतरजं खेलत । उर, हल, नैन चपल अथ चतुर धारथ भेलत ।—हरिदास ।

† (२) पचाया । हजूम करना ।

शैलनी—संज्ञा शी० [हि० भेलना] एक प्रकार की जंजीर जो कान के आसुपण का भार सँभालने के लिये बालों में अटकवाई जाती है ।

शैली—संज्ञा शी० [हि० भेलना] पच्चा अनते समय स्त्री को विरोध प्रकार से हिलाने हलाने की क्रिया ।

क्रि० प्र०—देना ।

शैक—संज्ञा शी० [सं० युक्त, हि० मुकना] (१) मुकाब । प्रवृत्ति । (२) ताराक के किसी पलड़े का किसी धोर अधिक नीचा होना ।

मुहा०—भेक मारना = डाँड़ो मारना । फम लौभना ।

(३) योग । मार । जैसे, इसकी भेक सब उसी पर पड़ती है । (४) वेग । भटका । तेजी । प्रचंड गति । १४ । जैसे, (क) गाड़ी बड़ी भेक से धा रही थी । (ख) सड़ि धा रहा है कहीं भेक में पड़ जायोगे तो बड़ी घोट आयोगे । (ग) नये की भेक, क्रोध की भेक, लिखने की भेक, मीढ़ की भेक । (४) किसी काम का धूम धाम से रहना । कार्य की गति । जैसे, पहली भेक में उसने हतना काम कर डाला । (६) डाट । सजावट । बाल । धंदाज । ३०—पहिरें राती चुनरी । सिर स्वैत उपरना सोई । कटि लँहगा लीला बयो भेकौ जो देखि मन मोई ।—सूर ।

धौ०—भेक भेक = टाट घाट । धूम धाम ।

(४) पानी का हिलोरा । (८) दे० "भेकना" । (६) दे० लटके जो बेल गाड़ी की मजबूती के लिये दोनों धोर लगे रहते हैं ।

शैकना—क्रि० सं० [हि० भेक] (१) भटके के साथ एक धारणी किसी वस्तु को धागे की धोर फँकना । वेग से सामने की धोर डालना । फेंक कर छोड़ना । जैसे, भाड़ में पत्ते भेकना । ईसन में कौयला भेकना, आँस में धूल भेकना ।

संयो० क्रि०—देना ।

मुहा०—भाड़ भेकना = (१) भाड़ में सुले पत्ते आदि फँकना । (२) दुच्छ व्यथाय करना । जैसे, हतने दिन दिली में रहे, भाड़ भेकते रहे ।

(२) दबेलना । टेलना । जबरदस्ती धागे की धोर बढ़ाना या करना । जैसे, उसने मुझे एकधारणी धागे की धोर भेक दिया । (३) धँधाधुंध खर्च करना । बहुत अधिक व्यय करना । बहुत अधिक किसी काम में लगाना । जैसे, व्याह शादी में रुपया भेकना ।

संयो० क्रि०—देना ।

(४) किसी आपत्ति या दुःख के स्थान में डालना । भय या कष्ट के स्थान में कर देना । बुरी जगह टेलना । जैसे, (क) तुमने हमें कहीं लाकर भेक दिया, दिन रात आपत्त में जात पड़ी रहती है । (ख) उसने अपनी लड़की को बुरे घर भेक दिया । (४) कार्य का बहुत अधिक भार देना । बहुत ज्यादा काम ऊपर डालना । बिना सोचे समझे काम लादना । जैसे, तुम जो काम होता है हमारे ही ऊपर भेक देते हो । (६) बिना विचारे आश्रित करना । दोष आदि मड़ना । (दोष) लगाना । जैसे, सारा कसूर उसी पर भेकते हो ?

शैकचा—संज्ञा पु० [दे०] भट्टे या भाड़ में लड़ पताई भेकने-वाला मनुष्य ।

शैकचाई—संज्ञा शी० [हि० भेकना] (१) भेकने की क्रिया या भाव । (२) भेकवाने की क्रिया या भाव ।

शैकचाना—क्रि० सं० [हि० भेकना का प्रे०] (१) भेकने का काम करना । (२) किसी को धागे की धोर जेर से दाखना ।

शैका—संज्ञा पु० [हि० भेक] (१) वेग से जानेवाली किसी वस्तु के रूपर का आपात । तेजी से चलनेवाली किसी चीज़ के छू जाने से उत्पन्न भटका । धक्का । रेंका । झपट्टा । (२) वेग से चलनेवाली वायु का धावात । हवा का भटका या धक्का । (३) वायु का प्रवाह । हवा का बहाव । झरोता । जैसे, ठंढी हवा का भेका धाया । (४) पानी का हिलोरा । (५) बगल से लगनेवाला ऐसा धक्का जिसके कारण कोई वस्तु गिर पड़े या अपने स्थान से हट जाय । रेंका । (६) इधर से उधर झुकने या हिलने डोलने की क्रिया ।

मुहा०—भेके धाया = नौद के कारण झुक झुक पड़ना । ऊँघ लगना । भेका खाना = किसी आपात या वेग आदि के कारण किसी धोर झुकना । जैसे, भेका खा कर गिरा, नौद से भेके खाना ।

(३) टाट। सत्रावट। चाल। शंदाज। ३०—पहिरें राती चूनरी सिर ठरना सोहै। कटि लहंगा लीलो वयो मोके जो देखि मन मोहै।—सूर। (८) कुरती का एक पंच जो उस समय किया जाता है जब दोनों पहलवानों के हाथ एक दूसरे की कमर पर होते हैं। इसमें एक हाथ विपक्षी के हाथ के बाहर निकाल कर मोढ़े पर चढ़ाते और दूसरा थगल से मोढ़े पर ले जाते, फिर मोका दे कर गिराते हैं।

श्रीकाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० मोकना] (१) मोकने की क्रिया या भाव। (२) मोकने की मजदूरी।

श्रीकिया—संज्ञा पुं० [हिं० मोकना] भाड़ में पताई आदि मोकने-वाला। मोकवा।

श्रीकी—संज्ञा स्त्री० [हिं० मोक] (१) भार। बोझ। जवाबदेही। जैसे, सब मोकी मेरे ही सिर ? (२) भारी अल्पिष्ट या हानि की आशंका। जोखों। जोखिम। जैसे, दूसरे का माल रख कर मोकी कौन सहे।

क्रि० प्र०—सहना।

श्रीक्षी—संज्ञा पुं० [दे०] (१) शोता। घोसला। (२) कुड़ पक्षियों (जैसे, डेक, गीध) के गले की शैली या लटकता हुआ मांस। (३) खुजली। सुरसुराहट। खुल।

मुहा०—मोम मारना = खुजली होना। खुल होना।

श्रीक्षि—संज्ञा पुं० [हिं० मुकलाना] कुंभलाहट। म्रौष। कुहन। गुस्ता।

क्रि० प्र०—घाना।

श्रीट—संज्ञा पुं० [सं० अंड = भाड़ा] (१) झाड़ी। (२) झाड़। सुरसुट। (३) समूह। जूरी। जुटो। (४) दे० “मोटा”।

श्रीटा—संज्ञा पुं० [सं० अंड] (१) बड़े बड़े धालों का समूह। हथर उधर बिलोरे बड़े बड़े धालों का जुटा।

मुहा०—मोटे पकड़ कर मारना, निकालना, घसीटना या इसी प्रकार का और कुयबहार करना = सिर के धाल खींच कर ये सब व्यवहार करना। (छिये के लिये यह अथमान की बात है) मोटे खसोटना = सिर के धाल खींचना।

श्री०—मोटा मोटो = ऐसा लड़ाई मगड़ा या भार पीट जिसमें मोटा पकड़ने की नौबत आवे।

(२) जुटा। पतली लंबी वस्तुओं का इतना बड़ा समूह जो एक बार हाथ में धा सके।

संज्ञा पुं० [हिं० मोका] यह धक्का जो भूले को हथर उधर हिलाने के लिये दिया जाता है। मोका। पंग। ३०—(क) खलिता विशाखा देहि मोटा रीमि शंग न समाति।—सूर।

(ख) एक समय पक्षांत वन में खोल मूखत कुंजबिहारी। मोटा दंत परस्पर अचरि बढ़ावत धारी।—हरिदास।

मुहा० मोटा देना = झूले को बढ़ाने के लिये धक्का देना। पंग मारना। मोटा मारना = दे० “मोटा देना”।

संज्ञा पुं० [हिं० डोय] (१) मँस का पक्का। पढ़वा। (२) मँसा। महिप।

श्रीटी—संज्ञा स्त्री० [हिं० मोटा] मोटा। ३०—सुनि विरुन लसि मल सिल खोटी। लगे घसीटन धरि धरि मोटी।—तुलसी।

यो०—मोटी मोटा = लड़ाई मगड़ा। दे० “मोटा मोटी”। संज्ञा स्त्री० दे० “मोका”।

श्रीपड़ा—संज्ञा पुं० [हिं० लेपना = छाना] [स्त्री० अल्प० भेपड़ी] वह बहुत छोटा सा घर या मनुष्यों के रहने का स्थान जो विशेषतः गांवों या जंगलों आदि में कच्ची मिट्टी की छोटी छोटी दीवारें उठा कर और घास फूस से छाकर बना लेते हैं। कुटी। परेशाला।

मुहा०—शंघा मोपड़ा = पेट। उदर। (फकीर)। शंघे मोपड़े में श्याग लगना = भूल लगना। (फकीर)।

श्रीपड़ो—संज्ञा स्त्री० [हिं० भेपड़ा का स्त्री० अल्प०] छोटा मोपड़ा। कुटिया। परेशाला। मढ़ी। ३०—कंत घीस लोचन धिले-किप कुमंत फल ख्याल लंका छाई कपि राई की स्त्री भेपड़ी।—तुलसी।

श्रीपा—संज्ञा पुं० [हिं० मन्पा] मन्पा। गुच्छा। ३०—मूबहि रतन पाट के मोपा। साज मदन नेहि का कहँ कोपा।—जायसी।

श्रीभर, श्रीभ्रा—संज्ञा पुं० दे० “शोकर”।

श्रीटिंग—वि० [हिं० मोटा] मोटेवाला। जिसके सिर पर बहुत बड़े बड़े और खड़े धाल हों। ३०—मगजहि भूत विशाघ बैताला। प्रमथ महा मोटिंग कराला।—तुलसी।

संज्ञा पुं० बहुत बड़े बड़े और खड़े धालोंवाला। भूत भेत या विशाघ आदि।

श्रीडु—संज्ञा पुं० [सं०] सुपारी का वृक्ष।

श्रीपड़ा—संज्ञा पुं० दे० “मोपड़ा”।

श्रीपड़ो—संज्ञा स्त्री० दे० “मोपड़ी”।

श्रीर—संज्ञा पुं० दे० “मोल”।

श्रीरही—वि० [हिं० मोल] जिसमें मोल हो। रसेदार। ३०—सूर कतरि सरस तोरहै। सेमि सींगरी दुमकि मोरहै।—सूर। संज्ञा स्त्री० [हिं० मोल] रसेदार तपकरी।

श्रीरना—क्रि० सं० [सं० दोहन] (१) मटक देकर हिलाना या कौपाना। ३०—कह्यो कहारनि हमें न सोरि। नयो कहार चलत पग मोरि।—सूर। (२) किसी चीज को इस प्रकार मटक देकर बार बार हिलाना जिसमें उसके साथ लगी हुई दूसरी चीज गिर पड़े। जैसे, वेड़ की दाढ़ मोरना, धाम मोरना, दुमती मोरना। ३०—मोरि से कौन लप धन पाग ये कौन सु धामन के हरियाई।—रसकुसुमाकर।

संयो० क्रि०—डाबना ।—देना ।

(२) इकट्ठा करना । एक करना । (क०) ।

शोरार्थो—संज्ञा पुं० [?] गुच्छा । भयू ।

शोरिर्—संज्ञा स्त्री० दे० "मोली" ।

शोरिर्—संज्ञा स्त्री० [हिं० मोली] (१) मोली । उ०—(क) भाय करी मन की पदमाकर जपरं नाय शरीर की मोरी ।—पदमा-
करं । (ख) हमारे कौन वेद विधि साथे । यदुया मोरी दंड
शपारी हतनेन को धरायै ।—सूर । (२) पेट । मोहर ।
शोहर । उ०—जो धायै अनगनत करोरी । कारैं खाई भरै
नहिं मोरी ।—विभ्राम । (३) एक प्रकार की रोटी । उ०—
रोटी वाटी पोरी मोरी । एक कोरी एक पीव चमोरी ।—
सूर ।

शोल—संज्ञा पुं० [हिं० मालि = आम का पत्रा] (१) तरकारी आदि
का गाढ़ा रस । शोरवा । (२) किसी अन्न के आटे में मसाले
दे कर कढ़ी आदि की तरह पकाई हुई कोई पतली छेई ।
(३) सॉड़ । पीव । (४) मुलम्मा या गिबट जो घातुओं पर
चढ़ाया जाता है ।

क्रि० प्र०—करना ।—चढ़ाना ।—फेरना ।

शो०—मोलदार ।

संज्ञा पुं० [हिं० झुलना] (१) पहने या तागे हुए कपड़ों आदि
में वह श्रेय जो दीला होने के कारण झूल या लटक कर
मोले की तरह हो जाता है । जैसे, झुरते या फोट में का
मोल, घुत की चांदनी में का मोल । (२) कपड़े आदि के
ढीले होने के कारण उसके झूलने या लटकने का भाव या
क्रिया । तनाव या कसाव का उलटा ।

क्रि० प्र०—डाबना ।—निकलना ।—निकालना ।—पड़ना ।

(३) पहा । श्रीचक्र । उ०—कूली फिरत जसोदा घर घर
उपति कान्ह अन्ववाय श्रमोल । तनक बदन दोउ तनक तनक
कर तनक चरन पौंछत पट मोल ।—सूर । (४) पदा ।
शोट । झाड़ू । उ०—अधो सुनत तिरारे मोल । ह्याणु हरि
कुसलात घन्य तुम घर घर पारयो मोल । कहन देहु कहा
करै हमारो बस बढि जैई मोल । श्रावत ही श्राके पहिचान्यो
निपटहि शोषो तोल ।—सूर । (५) हाथी की चाल का
एक ऐसे जिसके कारण वह बिलकुल सीधा न चल कर
पारपर झूलता हुआ चलता है ।

वि० (१) ढीला । जो कमा या हता न हो ।

शो०—मोल माल = दीना दाता ।

(२) निकम्मा । पराव । घुरा ।

संज्ञा पुं० झूल । गलती । जैसे, गदहे की गोन में नौ मन
का मोल । (कहा०) ।

संज्ञा पुं० [हिं० झिल्ली या मोली] (१) वह झिल्ली या झैली

जिसमें गर्म से निकले हुए बच्चे या शंटे रहते हैं । जैसे,
कुतिया का मोल, सुरगी का मोल, मछली का मोल ।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग केवल पशुओं और पक्षियों आदि
के संबंध में ही होता है, मनुष्यों के संबंध में नहीं ।

क्रि० प्र०—निकलना ।—निकाबना ।

मुहा०—मोल बैठना = सुरगी के नीचे सेने के लिये शंटे
रखना ।

(२) गर्म । उ०—भक्ति धीज दिनसै नहीं आप परै जो मोल ।
जो कंचन विद्या परै पटै न ताको मोल ।—कबीर ।

संज्ञा पुं० [सं० माल, हिं० माल] (१) राल । भरम । खाक ।

उ०—(क) तुम बिन कंता घन हई तुन नून धरमा डोल ।
तेहि पर विरह जराई के चहै उड़ाया मोल ।—जायसी ।

(ख) आगि जो खगी समुद्र में डुटि डुटि छसै जो मोल ।
शेयै कविरा विंभिया मोरा हीरा जरै धमोल ।—कबीर ।

(२) दाह । जलन ।

शोलदार—वि० [हिं० माल + फ० दार] (१) जिसमें रसा हो ।
रसदार । (२) जिस पर गिबट या मुलम्मा किया हो । (३)
मोल संबंधी । (४) जिसमें मोल पड़ता हो । ढीला ढाला ।

शोलना—क्रि० ट० [सं० जलन] जलाना । उ०—हमको तुम बिन
सबै सतावत ।.....पूख पूख सरदार सखन के इहि
विधि यहै यद्दाई । तिन अति योल मोलि तनु डारयो अनज
भँपर की नाई ।—सूर ।

शोला—संज्ञा पुं० [हिं० मलना वा सं० चोल] [स्त्री० शय० मोली]
(१) कपड़े की बड़ी मोली या झैली । (२) ढीला ढाला
गिलाफ । खोली । जैसे, थंदक का मोला । (३) साधुओं
का ढीला कुरता । चोला (४) वात का एक रोग जिसमें
कोई श्रेय (जैसे हाथ पैर आदि) ढीला पड़ कर बेकाम हो
जाता है । एक प्रकार का लकवा या पशुघात ।

मुहा०—किसी को मोला मारना = (१) वात रोग से किसी श्रेय
का बेकाम हो जाना । पक्षाघात होना । (२) मुझ पड़ जाना ।
वेकाम हो जाना ।

(३) पेशों के पाला लू आदि के कारण एक धारगी कुम्हला
जाने वा सूख जाने का रोग ।

क्रि० प्र०—मारना ।

(४) मटका । श्रावत । चक्रा । भोका । याथा । श्रापति ।
उ०—पाकी खेती देखि के गरवै कहा किसान । अजहूँ मोला
बहुल है पर धायै तब जान ।—कबीर । (५) हाथ का संकेत ।
हारा । (६) पाल की गोन या रस्सी को मटका देने या
ढीलने की क्रिया ।

शोलिहार—संज्ञा पुं० [हिं० मोली + हार (प्रय०)] (१) मोली
लटकानेवाला । (२) कहार । (सोनों की योली)

शोली—संज्ञा स्त्री० [हि० शूलना] (१) इस प्रकार मोड़ कर हाथ में लिया या लटकाना हुआ कपड़ा कि उसके नीचे का भाग एक गोल बरतन के आकार का हो जाय और उसमें कोई वस्तु रखी जा सके। कपड़े को मोड़ कर बनाई हुई शैली। चोकरी जैसे, गुलाब की मोली, साधुओं की मोली।

विशेष—यह किसी चीखूटे कपड़े के चारों कोनों को लेकर झुकटा बंधने से बन जाती है। कमी कमी इसके नीचे के खुले हुए चारों कोनों को कुछ दूर तक सी भी देते हैं।

मुहा०—मोली छोड़ना = बुढ़ापे के कारण शरीर के चमड़े का झूट जाना। मोली डालना = मित्रा मांगने के लिये मोली उठाना। साधु या भिक्षु हो जलन। मोली भरना = साधु को भरपूर मित्रा देना।

(२) घास र्थांधने का जाल। (३) मोट। चरसा। पुर। (४) यह कपड़ा जिससे खलिहान में धनाज में मिला हुआ मूसा बड़ा कर धलंग किया जाता है। (५) शैला। कुमती का एक पेच जो उस समय किया जाता है जब विपरी किसी प्रकार अपनी पीठ पर आ जाता है। इसमें एक हाथ उलट कर उस की कमर पर देते हैं और दूसरे से उसकी टांगों की संधि पकड़ कर उठाते हैं। (६) सफरी विस्तर जो चारों कोनों पर लगी हुई रस्सियों के द्वारा खंभे पेड़ आदि में बांध कर फैलाया जाता है। (७) रस्सियों का एक प्रकार का फंदा जिनके द्वारा भारी चीजों को ऊपर उठाते हैं।

संज्ञा स्त्री० [सं० शूल या मूला] राव। भस्म।

मुहा०—मोली बुझाना = सब काम हो चुकने पर पीछे उठे करने चानना। कोई बात हो जाने पर व्यर्थ उसके संबंध में कुछ करना। जैसे, पंचायत तो हो चुकी थी क्या मोली बुझाने आप हो।

विशेष—यह मुहा० पर जलने की घटना से लिया गया है अर्थात् जब धा जल कर राख हो गया तब पानी लेकर बुझाने के लिये पहुँचे।

शैलिकट—संज्ञा पुं० दे० “कंकट”।

शैलिकट—संज्ञा पुं० [हि० शैलिक] पेट। उर। उ०—कोई कने विहीन या नासा विन कोई। शैलिक कूटे कोई पड़े स्वासा विनु कोई।—सूदन।

शैलिकट—संज्ञा पुं० [सं० शूल, प्रा० शूल, हि० शूल] (१) छुंड। समूह। उ०—छुकि रसाल सौरभ सने मधुर माधुरी गंध। और और मौरत मरुत मौर मौर मधु श्रंध।—विहारी। (२) शूलों, पत्तियों या छोटे छोटे फलों का गुच्छ। उ०—दाख कैसी मौर मूलकति जोति जोवन की चाटि जाते मौर जो न होती रंग संधा

की। (३) एक प्रकार का गहना जिसमें मोतियों या चांदी सेने के दानों के गुच्छे लटकते रहते हैं। मन्वा।

उ०—कलगी तुरा मौर जग सिरपेच सुकुंडल।—मूर।

(४) पेड़ों या भादियों का घना समूह। म्पास। कुंज।

उ०—यस मौर गंभीर भीतिकर नहिं मूलत दस प्रासा।

—रघुना। दे० “काविर”।

शैराना—कि० अ० [अ०] (१) गुँजना। गुँजाना। उ०—छुकि रसाल सौरभ सने मधुर माधुरी गंध। और और मौरत मौरत मौर मौर मधु श्रंध।—विहारी। (२) दे० “मौराना”।

शैराना—संज्ञा पुं० दे० “मौर”।

शैराना—कि० अ० [हि० शैला या शैला] (१) काविर रंग का हो जाना। बदरंग हो जाना। कासा पड़ जाना। (२) मूरफाना। कुम्हलाना।

शैराना—कि० सं० दे० “मुलसना”। उ०—नाम लै चिलात विलजात भकुलात प्रति तात तात तौसियत मौरसियत म्फारहीं।—मुलसी।

शैरानी—संज्ञा स्त्री० [दे०] टोकरा। दौरी।

शैराना—संज्ञा पुं० [अ० मौर, मौर] (१) कंकट। धलेड़ा। हुजत।

तकरार। शैरा। विवाद। उ०—(क) नहीं टोड नैनन ले शैर।

कितनों में बरजति समकायति उजति करत हैं मौर।—सूर।

(ख) महरि तुम प्रज चाहति कहु शैर। यात एक में कही

कि नाहीं आप छागायति मौर।—सूर। (२) डोट फटकार।

कहा सुनी। ऊँचा नीचा। उ०—शैर को फेतड मौर सदै पै

न यावरी रावरी घास सुलै है।—दिनदेव।

शैराना—कि० सं० [हि० म्पटना] घोष लेना। दवा लेना। मरत कर

पकड़ना। उ०—हती मापि की दुग्ग ल्यों वीर शैरयो।

मृगाघोर ज्यों मृगा के जूह मौरयो।—सूदन।

शैराना—संज्ञा पुं० [अ० मौर, मौर] कंकट। धलेड़ा। हुजत।

तकरार। शैरा। विवाद।

कि० प्र०—करना।—मचाना।

शैरा—शैरा मौरा।

शैरक—कि० वि० [हि० शैर] (१) समीप। पास। निकट। (२)

साथ। संग। उ०—शैर श्रंग मूलत न शैर खोलि शैर

राति आधिक लो राधिका के मौर है खगे रहैं।—देव।

शैराना—संज्ञा पुं० [हि० म्पटना] रहते की बनी हुई यह छोटी दौरी

शिलमें मजदूर लोग लोटी हुई मिट्टी भर कर फँके के लिये

के जाते हैं। खँचिया।

शैराना—कि० अ० [अ०] (१) गुँजना। (२) जोर से

धिड़धिड़ाना।

अ

अ—हिंदी वर्षामाजा का दूसरा व्यंजन जो चवर्ग का पांचवाँ वर्ण है। इसका उच्चारण स्थान ताल और नासिका है। उसका प्रयत्न

स्वरों, घोष अल्पप्राय है।

ट

ट-संस्कृत या हिंदी बर्णमाला में ग्यारहवाँ व्यंजन जो टर्ण का पहला बर्ण है। इसका उच्चारण स्थान मूढ़ा है। इसके उच्चारण करने में तालु से जीम लगानी पड़ती है।

टंक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक तौल जो चार मासे की होती है। कोई कोई इसे तीन मासे या २४ रत्ती की भी मानते हैं। (२) यह नियत मान या भाट जिससे तौल तौल कर घाट टकसाल में सिरके बनाने के लिये दी जाती है। (३) सिका। (४) मोती की तौल जो २१ १/२ रत्ती की मानी जाती है। (५) पत्थर काटने या गढ़ने का औजार। टाँकी। टैनी। (६) कुन्दाड़ी। परशु। फत्सा। (७) कुदाब। (८) लह। तलवार। (९) पत्थर का कटा हुआ टुकड़ा। (१०) टांग। (११) नील कपिल्य। नीला कैय। खटाई (१२) कोप। क्रोध। (१३) दर्प। अग्निमान। (१४) पर्वत का खडू। (१५) सुहागा। (१६) कोप। खजाना। (१७) संपूर्ण जाति का एक राग जो श्री, भैरव और कान्हड़ा के योग से बना है। इसके गाने का समय रात १६ दंड से २० दंड तक है। इसमें कोमल श्वपथ लगता है और इसका सरगम हल मकार है—सा रे ग म प ध नि। हनुमत् के मत से इसका स्वर भ्राम है—स ग म प ध नि सा सा। (१८) म्यान। (१९) एक कटिदार पेड़ जिसमें खेल वा कैय के बराबर फल लागते हैं।

टंकक-संज्ञा पुं० [सं०] चाँदी का सिका या रूपया।

टंकक-शाला-संज्ञा स्त्री० [सं०] टकसाल घर।

टंकटीक-संज्ञा पुं० [सं०] शिव।

टंकण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सुहागा। (२) घाट की धीमू में टाँका मार कर जोड़ लगाने का कार्य। टाँका लगाने का काम। (३) घोड़े की एक जाति। (४) एक देश जिसका नाम यूहस्तंदिता में कोंकण आदि के साथ थाया है।

टँकना-क्रि० अ० [सं० टंकण] (१) टाँका जाना। कील आदि जड़ कर जोड़ा जाना। जैसे, एक छोट्टी सी चिप्टी टँक जायगी तो यह गगरा काम देने लायक हो जायगा।

संयो० क्रि०—जाना।

(२) सिलाई के द्वारा झुनना। सिलना। सिया जाना। जैसे, फटा जुता टँकना, धकती टँकना, गोदा टँकना।

संयो० क्रि०—जाना।

(३) सी कर धँटकाया जाना। सिलाई के द्वारा ऊपर से लगाया जाना। जैसे, आबर में मोती टँके हैं।

संयो० क्रि०—जाना।

(४) रेत की वा सोहन के पतियों का लुकीला होना। रेत की का तेज होना।

संयो० क्रि०—जाना।

(५) अक्षित होना। लिखा जाना। दुर्ग किया जाना। जैसे, यह रूपया धरी पर टँका है या नहीं ?

संयो० क्रि०—जाना।

चिशोप—इस अर्थ में इस क्रिया का प्रयोग ऐसी यल्लु, रुकम या माम के लिये होता है जिसका खेला रखना होता है।

(६) सिल, चकी आदि का टाँकी से गड़वे कर के धुरदुरा किया जाना। झिनना। रेहा जाना। कुटना।

टंकपनि-संज्ञा पुं० [सं०] टकसाल का अधिपति।

टंकवान-संज्ञा पुं० [सं०] एक पहाड़ जिसका नाम चावमीकीय शासक में थाया है।

टँकघाना-क्रि० सं० दे० “टँकाना”।

टँकदाला-संज्ञा स्त्री० [सं०] टकसाल।

टँका-संज्ञा पुं० [सं० टंक] (१) पुराने समय में चाँदी की एक तौल जो एक तोले के बराबर होती थी। (२) तौले का एक पुराना सिक्का। टका।

संज्ञा पुं० [दे०] एक प्रकार का गन्ना या ईल।

संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) जंघा। (२) तारा देवी। (३) संपूर्ण जाति की एक रागिनी जो विपदन और आदि मूर्च्छना युक्त होती है। हनुमत् के अनुसार इसका स्वभाव इस प्रकार है—स रे ग म प ध नि स।

टँकई-संज्ञा स्त्री० [हिं० टँकना] (१) टाँकने की क्रिया या भाव। (२) टाँकने की मजदूरी।

टँकानक-संज्ञा पुं० [सं०] मसदाफ। शब्दत।

टँकाना-क्रि० सं० [हिं० टँकना का प्र०] (१) टाँकी से जोड़वाना या सिलवाना। जैसे जुता टँकाना। (२) सिला कर लगवाना। जैसे, घटन टँकाना। (३) (सिल, जँता, चकी आदि को) धुरदुरा कराना। कुटाना।

टँकाना-क्रि० सं० [सं० टंक = सिका] सिकाँ का परखवाना। सिकाँ की जाँच कराना।

टँकार-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) ठन ठन शब्द जो किसी कसे हुए तार आदि पर रँगली मारने से होता है। (२) यह शब्द जो घनुप की कसी हुई बोरी पर धाय रख कर खींचने से होता है। घनुप की कमी हुई पतंचिका खींच वा तान कर छोड़ने का शब्द। (३) धातुलेख पर आघात लगाने का शब्द। ठनाका। भनकार। (४) विस्मय। (५) कीर्ति। नाम। प्रसिद्धि।

टँकारना-क्रि० सं० [सं० टँकार] घनुप की रोती खींच कर शब्द कराना। पतंचिका तान कर ध्वनि उत्पन्न कराना। चिह्ना खींच कर पठाना। उ०—सुपलक भङ्गि निज घनुप टँकारयो। बीस बापु बाट्टीकहि मारयो।—मोघांज।

टंकारी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक पेड़ जिसकी पत्तियाँ लंबोतरी होती हैं। फूल के भेद से इसकी कई जातियाँ हैं। किसी में खाल फूल लगते हैं, किसी में गुलाबी और किसी में सफेद। फूल गुच्छों में बगते हैं जिनके झड़ने पर छोटे छोटे फलों के गुच्छे लगते हैं। यह पुष्प जंगलों में बहुत होता है। वैद्यक में इसका स्वाद कटु और गुण वात-कफ का नाशक और शनिदीपक लिखा है। टंकारी उदर रोग और विसर्प रोग में भी दी जाती है।

टंकारिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] परयर काटने का औजार। टंकी। छेनी। उ०—सुतर सुजन वन जल सम खल टंकारिका रक्षान। पर हित शनहित सागि सय सांसति सहस समान।—तुलसी।

टंकी—संज्ञा स्त्री० [सं०] श्री राग की एक रागिनी। संज्ञा स्त्री० [सं० टंक = खट्ट वा गड्ढा] (१) दीवार उठा कर बनाया हुआ पानी भरने का छोटा सा कुंड। चौबचा। टंका। (२) पानी भरने का बड़ा धरतन। टय।

टंकोर—संज्ञा पुं० दे० "टंकार"। उ०—प्रसु कीन्ह धनुष टंकोर प्रथम कठोर घोर भयावह।—तुलसी।

टंकोरना—क्रि० [सं० अनु०] (१) टंकारना। धनुष की रस्सी को खींच कर उससे शब्द उत्पन्न करना। (२) ठोकर लगायाना। ठोकर मार कर शब्द उत्पन्न करना। (३) तर्जनी या मध्यमा रँगली को कुड़की घना कर उसकी नाक को थोड़े से दबा कर मत्पुर्वक छोड़ना जिससे किसी वस्तु में जोर से टक्कर लगे।

टंकीरी—संज्ञा स्त्री० [सं० टंक] छोटा कर्टा। सोना चाँदी आदि तौलने का छोटा तराजू। कर्टा।

टंग—संज्ञा पुं० [सं०] (१) टांग। टंगड़ी। (२) कुल्हाड़ी। (३) कुदाल। परख। फरसा। (४) सुहागा। (५) चार माशों की एक तौल।

टंगड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० टंग] टांग। घुटने से ले कर पैड़ी तक का भाग।

मुहा०—टंगड़ी पर बड़ाना = लंग मार कर गिराना। कुत्ती में पैर से पैर फँसा कर गिराना। अङ्गमा मारना।

टंगण—संज्ञा पुं० [सं०] टंकण। सोहागा।

टंगना—क्रि० अ० [सं० टंक्य वा टंगण = जड़ा जना] (१) किसी वस्तु का किसी औँचे आधार पर बहुत थोड़ा सा इस प्रकार अटकना या ठहरा रहना कि उसका प्रायः सय भाग उस आधार से नीचे की ओर गया हो। किसी वस्तु का दूसरी वस्तु से इस प्रकार बँधना या फँसना थपथा उस पर इस प्रकार टिकना या अटकना कि उसका (प्रथम वस्तु का) बहुत सा भाग नीचे की ओर खटकता रहे। खटकना। जैसे, (जूँटी पर) कपड़े टंगना, परदा टंगना, तसवीर टंगना।

विशेष—यदि किसी वस्तु का बहुत सा अंग आधार पर हो और थोड़ा सा अंग आधार के नीचे खटका हो तो इस वस्तु को टंगी हुई नहीं कहेंगे। 'टंगना' और 'खटकना' में यह अंतर है कि 'टंगना' क्रिया में वस्तु के फँसने, टिकने या अटकने का भाव प्रधान है और 'खटकना' में उसके बहुत से अंग का नीचे की ओर अग्र में दूर तक जाने का भाव।

संयो० क्रि०—उठना।—जाना।

(२) फाँसी पर चढ़ना। फाँसी खटकना।

संयो० क्रि०—जाना।

संज्ञा पुं० (१) वह झाड़ी बँधी हुई रस्सी जिस पर कपड़े आदि टंगी या रजे जाते हैं। अलतानी। पिन्नगनी। (२) जुलाहों की वह रस्सी जिसमें कठौनी टंगी जाती हैं।

टंगरी—संज्ञा स्त्री० दे० "टंगड़ी"।

टंगा—संज्ञा पुं० [दे०] खूँज।

टंगारी—संज्ञा स्त्री० [सं० टंग] कुल्हाड़ी। कुदाल।

टंगिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] पाठा।

टंच—क्रि० [सं० चंघ, हिं० चंठ] (१) सूमड़ा। कंगूस। कृपण।

(२) कठोर हृदय। निष्ठुर।

वि० [हिं० टिचन] तैयार। सुसँद।

टंट टंट—संज्ञा पुं० [अनु० टन टन + घंटा] पूजा पाठ का भारी धाड़ें-घर। घड़ी घंटा आदि बजा कर पूजा करने का भारी प्रपंच। मिथ्या धाड़ें-घर।

क्रि० प्र०—करना।—फँसना।

टंटा—संज्ञा पुं० [अनु० टन टन] (१) धाड़ें-घर। प्रपंच। बखेड़ा। खटारा। लंबी चौड़ी प्रक्रिया। उ०—इस दबा के बनाने में तो बड़ा टंटा है। (२) उपद्रव। हलचल। दंगा फसाद।

क्रि० प्र०—मचाना।

मुहा०—टंटा खड़ा करना = उपद्रव उठाना।

(३) भगड़ा। तकरार। लड़ाई। कसह।

यो०—फगड़ा टंटा।

टंडर—संज्ञा पुं० [अ० टंडर] (१) वह कागज जिसके द्वारा कोई मनुष्य किसी दूसरे से कुछ काम करने या कोई माल किसी नियत दर पर बेचने या खरीदने का इकतार करता है। (२) अदाबत का वह आज्ञापत्र जिसके द्वारा कोई मनुष्य किसी के प्रति अपना देना अदाबत में दाखिल करे।

टंडल—संज्ञा पुं० [अ० जनल, हिं० जंटेज] मजदूरों का मेट वा जमादार।

संज्ञा पुं० दे० "टंडर"।

टंझिया—संज्ञा स्त्री० [सं० तंज] यह में पहनने का एक गहना जो अन्नत के आधार का, पर उससे भारी और बिना घुंठी का होता है। टंड़। बहूँटा।

टंडुलिया-संज्ञा स्त्री० [दे०] यन्-चीताई जो कुछ कटिदार होती है । यह साग और दवा दोनों के काम में आती है ।

टंडैल-संज्ञा पुं० दे० "टंडल" ।

टंसरी-संज्ञा स्त्री० [?] एक वीणा ।

टंसहा-संज्ञा पुं० [हिं० टंस + हा] वह बेल जो नरों के सिकुड़ जाने से लँगड़ा हो गया हो ।

ट-संज्ञा पुं० [सं०] (१) नारियल का खोपड़ा । (२) धामन । (३) चौथाई भाग । (४) शब्द ।

टई-संज्ञा स्त्री० दे० "टडी" ।

टक-संज्ञा स्त्री० [सं० टक = बँपना वा सं० शटक] (१) स्थिर दृष्टि । ऐसा ताकना जिसमें बड़ी देर तक पलक न गिरे । किमी शेर जगी या बँधी हुई दृष्टि । गड़ी हुई नजर ।

किं० प्र०—जगना ।—जगाना ।

मुहा०—टक बँपना = स्थिर दृष्टि होना । टक बँपना = किमी शेर स्थिर दृष्टि से देखना । टक टक देखना = निना पत्रक गिराए लगातार कुछ काल तक देखते रहना । टक लगाना = आधा देखते रहना । प्रतीक्षा में रहना ।

(२) लकड़ी आदि भारी बोझों को तोड़नेवाले बड़े तराजू का चौरखटा पलड़ा ।

टकटका * संज्ञा पुं० [हिं० टक वा सं० शटक] [नी० टकटकी] स्थिर दृष्टि । टकटकी । उ०—मुनि सो धात राजा मन जाया । पलक न मार टकटका लागी ।—जायसी ।

वि० स्थिर वा बँधी हुई (दृष्टि) । उ०—रसासक चकोर कवक करि पावक को खात कन । रामचंद्र को रूप निहारत साधि टकटका तकन ।—देव स्वामी ।

टकटकाना †—किं० सं० [हिं० टक] (१) एकटक ताकना । स्थिर दृष्टि से देखना । उ०—टकटकेँ सुख मुकी नैनहीं नागरी, उरहोने देत रुचि ग्रथिक बाड़ी ।—सूर । (२) एकटक शब्द ब्यक्त करना ।

टकटकी-संज्ञा स्त्री० [हिं० टक वा सं० शटक] स्थिर दृष्टि । ऐसी तराई जिसमें बड़ी देर तक पलक न गिरे । अविभेद दृष्टि । गड़ी हुई नजर ।

किं० प्र०—जगना ।—जगाना ।

मुहा०—टकटकी बँपना = स्थिर दृष्टि होना । टकटकी बँपना = स्थिर दृष्टि से देखना । ऐसा ताकना जिसमें कुछ काल तक पलक न गिरे ।

टकटोना-किं० सं० दे० "टकटोलना" । उ०—मुनि पीवत ही कच टकटोवे मूडे जननि रहै ।—सूर ।

टकटोराना †—किं० सं० [सं० लकू = चमड़ा + तोहन = चंदान करना] (१) टटोलना । हाथ से छू कर पता लगाना या जाँचना । सर्पों द्वारा अनुसंधान या परीक्षा करना । उ०—(क) सूर एकहूँ श्रंगन कषी मैं देखी टकटोरे ।—सूर । (ख)

नहिं सयुन पायेव एक मिसु करि एक धनु देवन गपू । टकटोरे कपि ज्येँ नारियर सिर नाह सव बँधत मपू ।—तुलसी । (२) तलाश करना । ढूँढना । खोजना । उ०—मोहि न परवाहु तो टकटोरे देखो पन दे ।—स्वामी हरिदास

टकटोलना-किं० सं० [सं० लकू = चमड़ा + तोहन = चंगल करना] टटोलना । हाथ से छू कर पता लगाना या जाँचना ।

टकटोहन-संज्ञा पुं० [हिं० टकटोना] टटोल कर देखने की क्रिया । सर्पों । उ०—श्याम श्यामा मन रिम्बत पीन कुचन टकटोहन ।—सूर ।

टकटोहना †—किं० सं० दे० "टकटोलना" । उ०—या धानक उपमा दीये को सुकपि कहा टकटोई । देवन श्रेण पको मन में शशि कोटि मदन छवि मोई ।—सूर ।

टकटोत्री-संज्ञा स्त्री० [सं०] सितार के बंग का एक प्राचीन याना ।

टकनार-संज्ञा पुं० [सं० टक = टँग] घुटना ।

किं० अ० दे० "टंकना" ।

टकवीड़ा-संज्ञा पुं० [दे०] एक प्रकार की बँट जो किसानों की शेर से विवाहादि के भवसर पर जमींदारों को दी जाती है । मधवच । शाश्विया ।

टकराना-किं० अ० [हिं० टकर] (१) एक बस्तु का दूसरी वस्तु से इत प्रकार घेग के साथ सहसा मिलना या छू जाना कि दोनों पर गहरा आघात पहुँचे । जोर से मिटना । धका या टोकल होना । जैसे (क) अंधान से टकरा कर भाव चुर हो गई । (ख) अँधेरे में उसका सिर दीवार से टकरा गया ।

संयो० किं०—जाना ।

(२) इधर से उधर मारा मारा फिरना । डाँवाडोल घूमना । कार्यसिद्धि की धारा से कई स्थानों पर कई बार आना जाना । घूमना । जैसे, उसका घर मालूम नहीं, मैं कहां टकराता फिरूंगा । उ०—जँई तँह फितत स्वान की नाईं द्वार द्वार टकरात ।—सूर ।

मुदा०—टकराते फिरना = मारे मारे फिरना । घूमना घूमना ।

किं० रा० एक बस्तु को दूसरी वस्तु पर जोर से मारना । जोर से मिटाना । पटकना ।

मुहा०—साधा टकराना = (१) दूसरे के पैर के पाए सिर पटक कर चिन्ती करना । अत्यंत अनुनय विनय करना । (२) धार प्रयत्न करना । सिर मारना । हैरान होना ।

टकरी-संज्ञा स्त्री० [दे०] एक वेड़ का नाम ।

टकसर-संज्ञा पुं० [दे०] एक प्रकार का बाल जो आसाम, चट्याब और बर्मा में होता है । इससे अनेक प्रकार के सजावट के सामान बनते हैं ।

टकसार-संज्ञा स्त्री० दे० "टकसार" ।

टकसाल—संज्ञा स्त्री० [सं० टकसाळा] (१) यह स्थान जहाँ सिक्के बनाए या धाले जाते हैं। रूपए, पैसे आदि बनने का कार्यालय। उ०—पारस रूपी जीव है लोह रूप संसार। पारस ते पारस भया परल भया टकसार।—कबीर।

मुहा०—**टकसाल का खोटा** = नीच। **हुट**। कमीना। कम-असल। **आशिष्ट**। **टकसाल चढ़ना** = (१) टकसाल में परखा जाना। सिक्के या धातु-खंड की परीक्षा होना। (२) किसी विद्या या कला-कौशल में दक्ष माना जाना। पारंगत माना जाना। (३) बुराई में अग्रपक्ष होना। कुकर्म या दुष्टता में परिपक्व होना। बदमाशी में पक्का होना। निर्दोष होना। **टकसाल बाहर** = (१) (सिक्का) जो राज्य की टकसाल का न होने के कारण प्रामाणिक न माना जाय। जो प्रचार में न हो। जिसका चलन न हो। (२) (वाक्य या शब्द) जो प्रामाणिक न माना जाय। जिसका प्रयोग शिष्ट न माना जाय। (२) **जैची या प्रामाणिक वस्तु**। अखल चीज़। निर्दोष वस्तु। उ०—नष्ट का यह राज है न फरक यरतें हूँक। शार शब्द टकसार है हिरदय मंहि विवेक।—कबीर।

टकसाली—वि० [हि० टकसाल] (१) टकसाल का। टकसाल संबंधी। (२) जो टकसाल का बना हो। खरा। खोला। जैसे, टकसाली शरणा। (३) सर्व-सम्मत। अधिकारियों या विज्ञों द्वारा अनुमोदित। माना हुआ। जैसे, टकसाली भाषा। (४) जैचा हुआ। पक्का। प्रामाणिक। परिचित। जैसे, टकसाली बात।

मुहा०—**टकसाली बात** = जैची सुनी बात। पक्की बात। ठीक बात। ऐसी बात जो अन्यथा न हो। टकसाली बोलनी = सर्वसम्मत भाषा। विज्ञों द्वारा अनुमोदित भाषा। शिष्ट भाषा। ऐसी भाषा जिसमें ग्राम्य आदि दोष न हों।

संज्ञा पुं० टकसाल का अधिकारी। टकसाल का अध्यक्ष।

टकहाई—वि० स्त्री० [हि० टका] जो टके टके पर व्यभिचार करती हो। जो वेश्याओं में नीच हो। जैसे, टकहाई रंकी।

टका—संज्ञा पुं० [सं० टक] (१) चाँदी का एक पुराना सिक्का। रुपया। उ०—(क) रतन सेन हीरा मन चीन्हा। काए टका बाहन कँह दीन्हा।—जायसी। (ख) लाख टका थर मूमक सारी दे दाई को नेग।—सूर। (२) तंबी का एक सिक्का जो दो पैसों के बराबर होता है। शय्यना। दो पैसे। जैसे, अंधेर नगरी चौपट राजा। टके सेर भाजी, टके सेर खाजा।

मुहा०—**टका पास न होना** = निर्धन होना। दरिद्र होना। **टका सा जवाब देना** = (१) खट से जवाब देना। तुरंत अस्वीकार करना। किसी की प्रार्थना, याचना, अनुशास, या आशा को तुरंत अस्वीकार करना। साफ इनकार करना। फेंग जवाब देना।

जैसे, मैंने दो दिन के लिये इनसे घोड़ा माँगा, उन्होंने टका सा जवाब दे दिया। (२) साफ जवाब देना कि मैंने यह काम नहीं किया है या मैं इस बात को नहीं जानता। साफ निरास्र जना। कानो पर हाथ रखना। टका सा मुँह ले कर रह जाना = छेड़ा सा मुँह ले कर रह जाना। लजित हो जाना। खिसिया जाना। टका सी जान = अकेला दम। एकाकी। जीव। (खि०)। टके राज की चाल = सोटी चाल। किशायत से निर्याह। पोड़े खर्च में निर्याह। † टके गिनना = हुक के का गुड़गुड़ गैलना। (३) धन। द्रव्य। रुपया पैसा। जैसे, जब टका पास में रहेगा तब सब सुनौंगे। (४) तीन सोले की तौल। दो बाला-शाही पैसे भर की तौल। चापची छुटका का मान। (वैद्यक)

मुहा०—**टका भर** = (१) तीन तोले का परिमाण। (२) पौड़ा सा। जरा सा।

(२) गड़वाल की एक तौल जो सवा सेर के बराबर होती है।

टकाई—वि० स्त्री० दे० "टकाही" "टकहाई"।

संज्ञा स्त्री० दे० "टकासी"।

टका टकी—संज्ञा स्त्री० दे० "टकटकी"।

टका तोप—संज्ञा स्त्री० [दे०] एक प्रकार की तोप जो जहाजों पर रहती है। (लटा०)।

टकाना—कि० सं० दे० "टँकाना"।

टकानी—संज्ञा स्त्री० [हि० टँकना] बैल गाड़ी का जूथा।

टकासी—संज्ञा स्त्री० [हि०] (१) टके रूप का व्याज। दो पैसे रूप का सूद। (२) वह कर या चंदा जो प्रति मनुष्य से एक एक टके के हिसाब से लिया जाय।

टकाही—वि० स्त्री० [हि० टका] दे० "टकहाई"।

संज्ञा स्त्री० दे० "टकासी"।

टकी—संज्ञा स्त्री० दे० "टकटकी"।

टकुभा—संज्ञा पुं० [सं० तर्कुण, प्रा० तर्कुण] (१) एक प्रकार का सूधा जो चरले में खगा रहता है और जिस पर सूत फाता और खपेटा जाता है। तकरवा। (२) विनोदा निकालने की चरबी में लोहे का एक पुरजा। (३) छोटे तराजू या कटि के पल्लों में बँधा हुआ सागा।

टकुली—संज्ञा स्त्री० [दे०] चपेट सिरीस। पत्ती मारनेवाला एक पेड़ जो हिमालय की तराई में होता है।

संज्ञा स्त्री० [सं० टंक] (१) टाँकी। पत्थर काटने का यंत्र। (२) पेशकरी की तरह का लोहे का एक यंत्र जो नक़्क़ारी बनाने के काम में आता है।

टकुचना—कि० सं० [?] खाना। (दुबाल)

टकैट—वि० दे० "टकैत"।

टकैत वि० [दि० टका + के (मत्व०)] टकेवाला । रूप वैसे-
वाला । घनी ।

टकौर-संज्ञा स्त्री० [सं० टंकर] (१) हलकी चोट । प्रहार । आघात ।
ठेस । थपेड़ ।

क्रि० ६०—देना ।

(२) टंके की चोट । नगाड़े पर का आघात । (३) टंके का
शब्द । नगाड़े की आवाज । (४) धनुष की दोरी खींचने का
शब्द । टंकार । (५) दवा भरी हुई गरम पोटाकी को किसी
शय पर रह रह कर छुलाने की क्रिया । सेंक । (६) दाँतों
की यह टीस जो किसी खट्टी वस्तु के खाने से होती है ।
चमक । दाँतों के मुठले होने का भाव ।

क्रि० प्र०—लगाना ।

(७) माल । परपराइट । व०—कहाँ कौर खात मिरचन की
सामी दसन टंकर ।—सुर ।

क्रि० प्र०—लगाना ।

टकौरना-क्रि० सं० [दि० टकौर] (१) टंकर लगाना । हलका
आघात पहुँचाना । ठेस या थपेड़ मारना । (२) टंके आदि
पर चोट लगाना । यत्नाना । (३) दवा भरी हुई गरम पोटाकी
को किसी शय पर रह रह कर छुलाना । सेंकना । सेंक
धरना ।

टकौरा-संज्ञा पुं० [सं० टकौर] टंके की चोट । नौबत की आवाज ।
टकौरा-संज्ञा पुं० दे० "टका" ।

टकौरी-संज्ञा स्त्री० [सं० टंकर] (१) सोना आदि सौखने का छोटा
संज्ञा । छोटा कटा । (२) दे० "टकारती" ।

टक देश-संज्ञा पुं० [सं०] चनाप और म्यास के बीच के प्रदेश
का प्राचीन नाम ।

विशेष—राजतरंगिणी में टक देश को गुजरात (गुजरात)
राज्य के अंतर्गत लिखा है । टक जाति हिन्दी समय में अत्यंत
प्रतापशालिनी थी और सारे पंजाब में राज्य करती थी ।
चीनी यात्री हुएन्संग ने टक राज्य तथा उसके अधि-
पति मिहिरकुल का उल्लेख किया है । मिहिरकुल का
हृष्य होना इतिहासों में प्रसिद्ध है । ये हृष्य पंजाब और राज-
पूताने में घस गए थे । स्तोत्रधर्मद्वारा मिहिरकुल के परा-
जित होने (२२८ ईसवी) के ७८ वर्ष पीछे हर्षवर्द्धन राज-
सिंहासन पर बैठे थे जिनके राज्यकाल में हुएन्संग आया
था । टक शब्द हृष्य जाति की ही कोई शाला रही हो ।

टकरदेशीय-वि० [सं०] टक देश का । टक देश में उत्पन्न ।

संज्ञा पुं० यथुथा नाम का हाथ ।

टकार-संज्ञा स्त्री० [वृ० टक] (१) यह आघात जो दो वस्तुओं

के वेग के साथ एक दूसरे से मिलने या छू जाने से लगता
है । दो वस्तुओं के भिड़ने का धक्का । ठोकर ।

क्रि० प्र०—लगाना ।

मुहा०—टकर खाना = (१) किसी कड़ी वस्तु के साथ इतने वेग
से भिड़ना या छू जाना कि गहव आघात पहुँचे । जैसे, बटान
से टकर खा कर नाव चूर चूर हो गई । (२) मारा मारा
फिरना । कार्य साधन के लिये इधर से उधर फिरना । जैसे,
नौकरी छूट जाने से यह इधर उधर टकर खाता फिरता है ।
(३) मुकाबिला । मुठभेड़ । भिड़ंत । लड़ाई । जैसे, दिन भर
में दोनों की एक टकर हो जाती है ।

मुहा०—टकर का = जोड़ का । मुकाबिले का । वगवरी का ।
समान । तुल्य । जैसे, वन की टकर का विद्वान् यहाँ कोई नहीं
है । टकर खाना = (१) मुकाबिला करना । समूल्य होना ।
लड़ना । भिड़ना । (२) मुकाबिले का होना । समान होना ।
तुल्य होना । व०—हस् खोरी का काम सच्चे काम से टकर
खाता है । टकर खेना = यार सहना । चोट सहाना । मुकाबिला
करना । लड़ना । भिड़ना । पहाड़ से टकर खेना = बड़े भारी
शत्रु से भिड़ना । अपने से अधिक सामर्थ्यवाने शत्रु से लड़ना ।
(३) जोर से सिर मारने का धक्का । किसी कड़ी वस्तु पर
माथा मारने या पटकने का आघात ।

क्रि० प्र०—लगाना ।

मुहा०—टकर मारना = (१) आघात पहुँचाने के लिये जोर से सिर
मारना या पटकना । सिर से धक्का लगाना । (२) माथा मारना ।
दौपान होना । पार परिश्रम और उद्योग करना । ऐसा प्रयत्न
करना जिसका फल शीघ्र दिखाई न दे । व०—बाख टकर
मारो अब यह तुम्हारे हाथ नहीं आता । टकर लड़ना = दूर
के सिर पर सिर मार कर लड़ना । माथे से माथा भिड़ाना । जैसे,
दोनों में से वे खट्ट टकर लड़ रहे हैं । टकर लड़ाना = सिर से धक्का
मारना ।

(४) घाटा । हानि । नुकसान । धक्का । जैसे, १० की
टकर बड़े बेटाएँ लग गईं ।

क्रि० प्र०—लगाना ।

मुहा०—टकर खेजना = (१) हानि उठाना । नुकसान सहना ।
(२) संकट या आघात सहना ।

टखना-संज्ञा पुं० [सं० टंकर—टंग] पृथ्वी के ऊपर निकली हुई
हड्डियों की गाँठ । मुल्क । पादभंगि । पैर का गट्टा ।

टगटगाना-क्रि० सं० दे० "टकटकाना" ।

टंगधि-संज्ञा पुं० [सं०] माथिक गणों में से एक । यह छः माथाघों
का होता है और इसके १३ उपभेद हैं जैसे, ३३५, ४३५,
इत्यादि ।

टगर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) टंकण । सोहागा । (२) विलास ।
क्रीड़ा । (३) तगर का पेड़ ।

टगरगोड़ा-संज्ञा पुं० [?] लड़कों का एक खेल जिसमें
कुछ कौड़ियाँ चित्त करके जमा देते हैं फिर एक कौड़ी से उन्हें
मारते हैं ।

टगरा-वि० [सं० टेरक] पूँचा लाना । भेंगा ।

टघरना-क्रि० थ्र० [सं० तप = गरम करना + गरण = पिपशाना]
(१) पिपशाना । घी, चरबी, मोम आदि का घ्रांच खाकर
द्रव होना ।

संयो० क्रि०—जाना ।

(२) हृदय का द्रवीभूत होना । चित्त में दया आदि उदय
होना । हृदय पर किसी की प्रार्थना या कष्ट आदि का प्रभाव
पड़ना ।

संयो० क्रि०—जाना ।

टघराना-क्रि० सं० [हिं० टघराना] पिपलाना । घी, मोम, चरबी
आदि को घ्रांच पर रख कर द्रव करना ।

संयो० क्रि०—डालना ।—देना ।—लेना ।

टचटच-क्रि० वि० [हिं० टचना = चमना] धाँय धाँय । धक धक
(आग की लपट का शब्द) । उ०—टच टच तुम विनु धागि
मोहि' जागी । धाँयों दाघ विरह मोहि' जागी ।—जायसी ।

टचनी-संज्ञा स्त्री० [सं० टंक] लोहे का एक औजार जिससे कसेरे
बरतवों पर नक्काशी करते हैं ।

टटका-वि० [सं० तसकाल] [स्त्री० टटकी] (१) तसकाल का ।
तुरंत का प्रस्तुत या उपस्थित । ताम्बा । जिसको वर्तमान रूप
में धाप बहुत देर न हुई हो । हाल का । उ०—(क) मेरे
क्यों हूँ न मितति धाप परी टटकी ।—सूर । (ख) मनिहार
गरे सुकुमार घरे नट भेस अरे पिय को टटको ।—रसलान ।
(२) नया । कोरा ।

टटहरी-संज्ञा स्त्री० [पंजाबी] (१) खोपड़ी । (२) दे० "ठट्टी" ।
(३) दे० "टट्टी" ।

टट्टी-संज्ञा स्त्री० दे० "टट्टी" ।

टटाना-क्रि० थ्र० [हिं० ठँठ] सूख जाना ।

टटलघ टटला-वि० [अनु०] अटसट । अश्रुवह । ऊटपटांग । उ०—
टटल घटल बोल पाटल कपोल देव दीपति पटल मैं अटल हूँ
के अटकी ।—देव ।

टटाघली-संज्ञा स्त्री० [सं० टिट्टावलि] टिट्टिहरी नाम की चिट्ठिया ।
कुररी ।

टटिया-संज्ञा स्त्री० दे० "टट्टी" ।

टटियाना-क्रि० थ्र० [हिं० ठँठ] सूख जाना । सूख कर अकड़ जाना ।
टट्टीवा-संज्ञा पुं० [अनु०] धिनी । चक्कर । उ०—लँचूँ तो आये
नहीं जो छेड़ूँ तो जाय । कबीर मन पड़ूँ रे प्राण टट्टीवा
खाय ।—कबीर ।

क्रि० प्र०—खाना ।

टट्टी-संज्ञा स्त्री० दे० "टिट्टिहरी" ।

टट्ट्या-संज्ञा पुं० दे० "टट्ट" ।

टट्टुरे-संज्ञा स्त्री० [हिं० टट्टूर] मादा टट्टूर ।

टट्टोना-क्रि० सं० दे० "टट्टोलना" ।

टट्टोरना-क्रि० सं० दे० "टट्टोलना" । उ०—कयहूँ कमला चपला
पाह के टेरे टेरे जात । कयहूँक मग मग धीरे टट्टोरत भोजन
को विलसात ।—सूर ।

टट्टोल-संज्ञा स्त्री० [हिं० टट्टोलना] टट्टोलने का भाव । उँगलियों
से छू या दबा कर मालूम करने का भाव या क्रिया । गूढ़
स्पर्श ।

टट्टोलना-क्रि० सं० [सं० लृक् + लोशन = श्रंशान् करना] (१) मालूम
करने के लिये उँगलियों से छूना या दबाना । किसी वस्तु के
तरल की अवस्था धरना उसकी कड़ाई आदि जानने के लिये
उस पर उँगलियाँ फेरना या गड़ाना । गूढ़ स्पर्श करना । जैसे,
ये आम पके हैं, टट्टोल कर देख लो ।

संयो० क्रि०—लेना ।—डालना ।

(२) किसी वस्तु को पाने के लिये इधर उधर हाथ फेरना ।

हूँ घूने या पता लगाने के लिये इधर उधर हाथ रखना । जैसे,

(क) धेंपेरे में क्या टट्टोलते हो ? रुपया गिरा होगा तो
सबेरे मिल जायगा । (ख) वह शंखा टट्टोलता हुआ अपने
घर तक पहुँच जायगा । (ग) घर के सब कोने टट्टोल डाले
कहाँ पुस्तक का पता न लगा ।

संयो० क्रि०—डालना ।

(३) किसी से कुछ बात चीत करके उसके विचार वा धाराय
का इस प्रकार पता लगाना कि उसे मालूम न हो । बातों
ही बातों में किसी को हृदय के भाव का श्रंशान् लेना । हाथ
लेना । घडाना । जैसे, तुम भी उसे टट्टोलो कि पढ़ कहाँ तक
देने के लिये तैयार है ।

मुहा०—मन टट्टोलना = हृदय के भाव का पता लगाना ।

(४) जांच या परीक्षा करना । परखना । श्राममाना । जैसे,

(क) हम उसे खूब टट्टोल चुके हैं, उसमें कुछ चिरोप विया
नहीं है । (ख) मैंने तो सिर्फ़ तुम्हें टट्टोलने के लिये रूप
मार्ग थे, रूप मेरे पास हैं ।

टट्टड़-संज्ञा पुं० दे० "टट्टर" ।

टट्टनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] छिपकली ।

टट्टर-संज्ञा पुं० [सं० तट = जँच कितारा वा सं० साता = जो खम

हो] बाँस की फट्टियों, सरकडों आदि को परस्पर जोड़ कर
बनाया हुआ ढाँचा जो छोट, रोक या रशा के लिये दरवाजे,
दरामदे अथवा धीरे किसी खुले स्थान में लगाया जाता है ।
बाँस की फट्टियों आदि का बना हुआ पल्ला जो परदे, किनाड़े,
छाजन आदि का काम दे । जैसे, कुचा टट्टर खोल कर भोंपड़े
में घुस गया । उ०—टट्टर खोलो निवटू थाप । (कहावत)

मुहा०—टहर देना या लगाना = टहर बंद करना ।

टहरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) बोल का शब्द । नगाड़े आदि का शब्द । (२) लंबी चीड़ी बात । (३) खुदलवाजी । टहटा ।

टहरी—संज्ञा पुं० [सं० तट = ऊँचा किनारा वा सं० स्वता = जो खड़ा हो] [स्त्री० टहरी] (१) टहर । बड़ी टहरी । बाँस की फट्टियों का परदा या पहा । (२) लकड़ी का पहा । बिना पुरतवान का तख्ता । † (३) शंभुकोश । (पंजाबी)

टहरी—संज्ञा स्त्री० [सं० तटी = ऊँचा किनारा वा सं० स्वता = जो खड़ी हो] (१) बाँस की फट्टियों, सरकंडों आदि को परस्पर जोड़ कर बनाया हुआ दाँया जो छाड़, रोक या रफा के लिये दूर-बाने, वामदे अथवा और किसी खुले स्थान में लगाया जाता है । बाँस की फट्टियों आदि का बना पहा जो परदे, किवाड़ या धाजन आदि का काम दे । जैसे, बूँस की टहरी ।

क्रि० प्र०—लगाना ।

मुहा०—टहरी की छाड़ (या थोट) से शिकार खेलना = (१) किसी के विरुद्ध छिप कर कोई बात चतना । किसी के विरुद्ध गुप्त रूप से कोई कार्रवाई करना । (२) छिप कर गुप्त काम करना । लोगों की दृष्टि बचा कर कोई अनुचित कार्य करना । टहरी का शीमा = पहले दस का शीमा । टहरी में छेद करना = छुई करने में किसी प्रकार का परदा न रखना । प्रकृत रूप से हुकम करना । खुल लेना । निर्विकर हो जाना । लोक लज्जा छोड़ देना । टहरी लगाना = (१) आड़ करना । परदा खड़ा करना । (२) किसी के सामने मीठ लगाना । किसी के आगे हठ प्रकट पंक्ति में खड़ा होना कि उसका सामना रुक जाय । जैसे, यहाँ क्या टहरी लगा रखी है, क्या कोई तमाशा हो रहा है ? घोले की टहरी = (१) बड़ टहरी जिसकी आड़ में शिकारी शिकार पर बार करते हैं । (२) ऐसी वस्तु जिसे ऊपर से देखने से उसने होनेवाली छुई का पता न चले । ऐसी वस्तु या बात जिसके कारण लोग धोखा खा कर हानि उठावें । जैसे, उसकी दूकान वगैरः सब घोले की टहरी है, उसे भूल कर भी ख़याल न देना । (३) ऐसी वस्तु जो ऊपर से देखने में कुछ दूर जान पड़े पर काम देनेवाली न हो । चटपट टूट या बिगड़ जानेवाली वस्तु । काजू भोज चीज ।

(२) चिक । चिबलन । (३) पतली दीवार जो परदे के लिये खड़ी की जाती है । (४) पाखाना ।

क्रि० प्र०—जाना ।

(४) कुलवारी का तख्ता जो बारातों में निकलता है । (५) बाँस की फट्टियों आदि की बनी वह दीवार और धाजन जिस पर शंभूर आदि की बेलें चढ़ाई जाती हैं ।

टहर—संज्ञा पुं० [सं०] भेरी का शब्द ।

टह—संज्ञा पुं० [ऋ०] [वि० टहानी, टहरी] (१) छोटे कद का घोड़ा । टगन ।

१२०

मुहा०—टहूँ पार होना = देड़ा पार होना । काम निकल जाना । प्रयोजन सिद्ध हो जाना । भाड़े का टहूँ = खपा ले कर दूसरे की ओर से कोई काम करनेवाला ।

(२) लिगेन्द्रिय । (याज्ञिक)

मुहा०—टहूँ भड़कना = कामोदीपन होना ।

टठिया—संज्ञा स्त्री० दे० "टाठी" ।

संज्ञा स्त्री० एक प्रकार की भाँग ।

टठिया—संज्ञा स्त्री० [सं० तट्ट] बाँह में पहनने का एक गडना जो अर्न्त के आकार का पर उससे मोटा और बिना छुई का होता है । टाँड़ ।

टण—संज्ञा पुं० दे० "टना" ।

टन—संज्ञा स्त्री० [ऋ०] घंटा बजने का शब्द । किसी धातु-खंड पर धाधात पड़ने से उत्पन्न ध्वनि । टनकार । भनकार । जैसे, टन से घंटा बोलता ।

विशेष—'खट' 'पट' आदि शब्दों के समान इस शब्द का प्रयोग भी अधिकतर 'से' विभक्ति के साथ किं० वि० पव ही होता है अतः इसका लिंग वतना निश्चित नहीं है ।

मुहा०—टन हो जाना = चटपट मर जाना ।

संज्ञा पुं० [ऋ०] एक शंभुरेजी लौल जो अट्टाईस मन के लगभग होती है ।

टनकना—क्रि० ऋ० [ऋ० टन] (१) टन टन बजना । (२) धूप या गरमी लगने के कारण सिर में दर्द होना । रह रह कर धाधात पड़ने की सी पीड़ा देना । जैसे, माया टन कना ।

टनटन—संज्ञा स्त्री० [ऋ०] घंटा बजने का शब्द ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

टनटनाना—क्रि० सं० [हिं० टनटन] घंटा बजाना । किसी धातु-खंड पर धाधात कर के उस में से 'टन टन' शब्द निकालना । क्रि० ऋ० टनटन बजना ।

टनमन—संज्ञा पुं० [सं० संव मन्] संव मंत्र । टोना । जादू ।

वि० दे० "टनमना" ।

टनमना—वि० [सं० कनमन्] जो सुन्नत न हो । जिवकी चेष्टा मंद न हो । जिसकी तथैयत हकी हो । जो शिथिल न हो । स्वस्थ । घंटा । 'घनमना' का उलटा ।

टना—संज्ञा पुं० [सं० टुंड] [स्त्री० ऋ० टना] (१) सिमेंट की योनि में बंद निकला हुआ मांस का टुकड़ा जो दोनों किनारों के बीच में होता है । (२) योनि । भग ।

टनाका—संज्ञा पुं० [ऋ० टन] घंटा बजने का शब्द ।

वि० बहुत कड़ा (धाम) । माथा टनकनवाला (धाम) ।

टनाटन—संज्ञा स्त्री० [ऋ०] जगातार घंटा बजने का शब्द ।

टनो—संज्ञा स्त्री० दे० "टना" ।

टनेल—संज्ञा स्त्री० [ऋ०] सुरंग खोद कर बनाया हुआ मार्ग । ऐसा रास्ता जो जमीन या किसी पदार्थ आदि के नीचे हो कर गया हो ।

टप-संज्ञा स्त्री० [हि० टोप, टोप = आच्छादन, जैसे, घटोप] (१) जोड़ी, फिटन, टमटम या हल्सी प्रकार की और खुली गाड़ियों का आहार या सायबान जो हृद्यनुसार चढ़ाया या गिराया जा सकता है। कलंदरा। (२) खटकानेवाले लंप के ऊपर की छतरी।

संज्ञा पुं० [अ० टव] नाद के आकार का पानी रखने का खुला बरतन। टाँका।

संज्ञा पुं० [अ० ट्यूब] जड़ियों की गति का पता लगाने का एक औजार। (लश०)

संज्ञा पुं० [हि० टया] एक औजार जिससे डियरी का पेश घुमावदार बनाया जाता है।

संज्ञा स्त्री० [षनु०] (१) बूँद बूँद टपकने का शब्द। उ०—(क) परत श्रम बूँद टप टपकि आनन बाल भई पेहाल रति मोह भारी।—सूर। (ख) प्यारी विनु कटत न कारी रैन। टप टप टपकत हुल भरे नैन।—हरिश्चंद्र।

धा०—टप टप।

(२) किसी वस्तु के एक धारगी ऊपर से गिर पड़ने का शब्द। जैसे, श्रम टप से टपक पड़ा।

धा०—टप टप।

मुहा०—टप से=चट से। मट से। नड़ी जल्दी। जैसे, (क) विही ने टप से जूड़े को पकड़ लिया। (ख) टप से आश्रो।

विशेष—खट, पट आदि और अनुकरण शब्दों के समान इसका प्रयोग भी अधिकतर 'से' विभक्ति के साथ कि० वि० वत् ही होता है अतः इसका लिंग उतना निश्चित नहीं है।

टपक-संज्ञा स्त्री० [हि० टपकना] (१) टपकने का भाव। (२) बूँद बूँद गिरने का शब्द। (३) एक एक कर होनेवाला दर्द। ठहर ठहर कर बटनेवाली पीड़ा। जैसे, फोड़े की टपक।

टपकना-कि० अ० [षनु० टप टप] (१) बूँद बूँद गिरना। किसी द्रव पदार्थ का विंदु के रूप में ऊपर से थोड़ा थोड़ा पड़ना। घूना। रसना। जैसे, घड़े से पानी टपकना, छत टपकना। (इस क्रिया का प्रयोग जो वस्तु गिरती है तथा जिस वस्तु में से कोई वस्तु गिरती है दोनों के लिये होता है)। जैसे, उ०—टप टप टपकत सुध भरे नैन।—हरिश्चंद्र।)

संज्ञा० कि०—जाना।—पड़ना।

(२) फल का एक एक कर आपसे आप पेड़ से गिरना। जैसे, श्रम टपकना, महुआ टपकना।

संज्ञा० कि०—पड़ना।

(३) किसी वस्तु का ऊपर से एक बारगी सीध में गिरना। ऊपर से सहसा पतित होना। झट पड़ना।

संज्ञा० कि०—पड़ना।

मुहा०—टपक पड़ना=एक बारगी आ पहुँचना। अकस्मात्

आ कर उपस्थित होना। जैसे, हँ, हम बीच में कहाँ से टपक पड़े। आ टपकना=दे० "टपक पड़ना"।

(४) किसी भाव का बहुत अधिक आभास पाया जाना। अधिकता से कोई भाव प्रकट होना। लज्ज, शब्द गेठा या रूप रंग से कोई भाव व्यंजित होना। जाहिर होना। मलकना। जैसे, (क) उसके चेहरे से उदासी टपक रही थी। (ख) महहली में चारों घोर उदासी टपकती है। (ग) उसकी बातों से धर्ममयी टपकती है।

संज्ञा० कि०—पड़ना। जैसे, उसके श्रम श्रंग से यौवन, टपका पड़ता है।

(५) (चित्त का) तुरंत प्रवृत्त होना। (हृदय का) मूढ आकर्षित होना। ढल पड़ना। किसलना। लुभा जाना। मोहित हो जाना।

संज्ञा० कि०—पड़ना।

(६) स्त्री का संभोग की ओर प्रवृत्त होना। ढल पड़ना। (याजारू)

संज्ञा० कि०—पड़ना।

(७) घाव, फोड़े आदि का मवाद आने के कारण रह रह कर दूँद करना। चिलकना। टीस मारना। टीसना। (८) फोड़े का पक कर बहना।

संज्ञा० कि०—पड़ना।

(९) लड़ाई में धायल हो कर गिरना।

संज्ञा० कि०—पड़ना।

टपका-संज्ञा पुं० [हि० टपकना] (१) बूँद बूँद गिरने का भाव। धा०—टपका टपकी।

(२) वह जो बूँद बूँद कर के गिरा हो। टपकी हुई परत। रसाव। (३) एक एक कर आपसे आप गिरा हुआ फल। (४) रह रह कर बटनेवाला दर्द। टीस। (५) बीपानों के लुर का एक रोग। सुटपका।

टपका टपकी-संज्ञा स्त्री० [हि० टपकना] (१) बूँदा बूँदी। (नेद की) हलकी मझी। कुहार। फुही। (२) फलों का लगातार एक एक कर के गिरना। (३) किसी वस्तु को लेने के लिये आदमियों का एक पर एक हटना। (४) एक के पीछे दूसरे की श्यूल। एक एक कर के बहुत से आदमियों की श्यूल। (जैसे हीजे आदि में होती है)

कि० प्र०—लगना।

वि० इका हुकी। भूला भटका। एक साथ। बहुत कम। कोई कोई।

टपकाना-कि० स० [हि०] (१) बूँद बूँद गिराना। लुभाना।

(२) श्रम बतारना। भयके से अर्क खींचना। लुभाना। जैसे, शराय टपकाना।

संज्ञा० कि०—देना।—खेना।

टपकाव-संज्ञा पुं० [हि० टपकाव] टपकाने का भाव ।
 टपना-कि० अ० [हि० तपना] (१) बिना कुछ खाए पिए पटा रहना । बिना दाना पानी के समय काटना । जैसे, सघरे से पड़े टप रहे हैं, कोई पानी पीने को भी नहीं पड़ता । (२) बिना किसी कार्यसिद्धि के बैठा रहना । व्यर्थ आसरे में बैठा रहना । (द्वाराज)
 विदोष-दे० "टापना" ।
 कि० अ० [हि० टाप] (१) कूटना । बड़बना । उचकना । फाँटना । (२) जोड़ा खाना । प्रसंग करना ।
 कि० स० [हि० तोपना] ढाकना । धाँधलादिन करना ।
 टपनामा-संज्ञा पुं० [हि० टपन] जहाज पर का यह रमितर जिसमें समुद्र-यात्रा के समय लूकान गर्मी आदि का खेला रहता है । (लज्जा०) ।
 टपमाल-संज्ञा पुं० [अ० टापमाल] एक बड़ा भारी लोहे का घन जो जहाजों पर काम आता है ।
 टपपरा-संज्ञा पुं० [हि० तोपना] [अ० टपरी, टपरीया] (१) छप्पर । छत्रजन । (२) गोपड़ा ।
 संज्ञा पुं० [हि० टप्या] छोटे छोटे खेतों का विभाग ।
 टपाटप-कि० वि० [अ० टप टप] (१) लगातार टप टप शब्द के साथ (गिरना) । धाराब बूँद बूँद कर के (गिरना) । उ०—छाते पर से टपाटप पानी गिर रहा है । (२) ऋट ऋट । जल्दी जल्दी । एक एक कर के गीयता से । उ०—विरली चूँहों को टपाटप से रही है ।
 टपाना-कि० स० [हि० तपना] (१) बिना दाना पानी के रखना । बिना खिलाए खिलाए पड़ा रहने देना । (२) व्यर्थ आसरे में रखना । निष्प्रयोगन बैठाए रखना । व्यर्थ हैरान करना ।
 कि० स० [हि० टाप] कूटना । फाँटना ।
 टपपरा-संज्ञा पुं० [हि० तोपना] छप्पर । छत्रजन ।
 मुहा०—टपपर उलटना = दे० "टाट उलटना" ।
 टप्या-संज्ञा पुं० [सं० टपयन, हि० याप, टाप] (१) किसी सामने फेंकी हुई वस्तु का जाते हुए बीच बीच में भूमि का स्पर्श । बड़ब उड़ब कर जाती हुई वस्तु का बीच बीच में टिकान । जैसे, गेंद कई टपे खाता हुआ गया है ।
 मुहा०—टप्या खाना = किसी फेंकी हुई वस्तु का बीच में गिर कर जमीन से टू जाना और फिर उछल कर आगे बढ़ना ।
 (२) बतनी दूरी जितनी दूरी पर कोई फेंकी हुई वस्तु जा कर पड़े । किसी फेंकी हुई चीज की पहुँच का फासला । जैसे, गोली का टप्या । (३) उड़ना । कूद । फँद । फलाँग ।
 मुहा०—टप्या देना = लगे लगे डग बटाना । कूटना ।
 (४) निपट दूरी । मुक़र्रं फासला । (५) दो स्थानों के बीच में

पड़नेवाला मैदान । जैसे, इन दोनों गाँवों के बीच में बड़ा भारी टप्या का टप्या पड़ता है । (६) छोटा भूमिभाग । जमीन का छोटा हिस्सा । परगने का हिस्सा । (७) अंतर । बीच । फाँस । उ०—बीर सूना फूल बिन फल बिन सूना राय । एका एकी मानुषा टप्या बीना थाय ।—कबीर ।
 मुहा०—टप्या देना = अंतर डालना । फाँस डालना ।
 (८) दूर दूर की भरी सिलाई । मोटी सीपन । (खि०)
 मुहा०—टपे डालना, भरना, मारना = दूर दूर बखिया करना । मोटी और मदी सिलाई करना । लंगर डालना ।
 (९) पालकी ले जानेवाले कहारों की टिकान जहाँ कहार बदले जाते हैं । पालकीवालों की चौकी या डाक । † (१०) धाकखाना । पोस्ट आफिस । (११) पाल के जोर से चलनेवाला वेड़ा । (१२) एक प्रकार का चलता गाना जो पंजाब से चला है । † (१३) एक प्रकार का टेका जो तिलवाड़ा ताल पर बनाया जाता है । (१४) एक प्रकार का हुक या कंटा ।
 टब-संज्ञा पुं० [अ०] पानी रखने के लिये नदि के आकार का एक लुला यतन ।
 संज्ञा पुं० [हि० टप] जलाने का एक प्रकार का लंप जो दूत या किसी दूसरे ऊँचे स्थान में लटकाया जाता है ।
 टडबरा-संज्ञा पुं० [सं० डडुव] कुटुंब । परिवार । (पंजाब)
 टडमकी-संज्ञा स्त्री० [सं० टंकार] छोटा मगाड़ा जिसे बजा कर किसी प्रकार की घोषणा की जाती है । डगाडुगिया ।
 टडमटम-संज्ञा स्त्री० [अ० टडम] दो ऊँचे ऊँचे पड़ियों की एक लुबी हलकी गाड़ी जिसमें एक घोड़ा लगता है और जिसे सवारी करनेवाला अपने हाथ से हाँकता है ।
 टमटी-संज्ञा स्त्री० [देग०] एक प्रकार का यतन । उ०—प्रधा शरु आधार भत्तं के बहुत खिलौना । परिधा टमटी अतरदान रूपे के सौना ।—सूदन ।
 टमस-संज्ञा स्त्री० [सं० तमसा] टंस नदी । तमसा ।
 टमाटर-संज्ञा पुं० [अ० टमेटो] एक प्रकार का बैसन जिसका फल गोलाई लिए हुए चिपटा, दूधर उयर उमरा हुआ तथा स्वाद में खटा होता है । खिलायती भंडा ।
 टमुकी-संज्ञा स्त्री० "टमकी" ।
 टर-संज्ञा स्त्री० [अ० टर] (१) कर्कश शब्द । कर्कश वाक्य । कर्णकटु वाक्य । अश्रिय शब्द । कटुई बोली ।
 धा०—टर टर ।
 मुहा०—टर टर करना = (१) ठिठार से बोलते जाना । प्रतिवाद में बार बार कुछ कुछ कहते जाना । जवानदुजी करना । जैसे, टर टर करता जायगा न मानेगा । (२) बकवाद करना । व्यर्थ बक बक करना । टर टर लगाना = व्यर्थ बकवाद करना । झूठ मूठ बक बक करना । इतना और इस प्रकार बोलना जो अच्छा न लगे ।
 (३) मेढ़क की बोली ।

थी०—टर टर ।

(३) देंठ । थकड़ । घमंड से भरी यात । अविनीत वचन और चेष्टा । जैसे, शोलों की शोली, पठानों की टर । (४) हठ । जिद । थड़ । (५) तुच्छ बात । पोच बात । वेमेल यात । (६) ईद के बाद का एक मेला । (मुसलमान) । उ०—
ईद पीछे टर, बरान पीछे धौंसा ।

टरकना कि० अ० [हि० टरना] (१) चला जाना । हट जाना । खिसक जाना । टल जाना ।

संयो० कि०—जाना ।

मुहा०—टरक देना = धीरे से चला जाना । चुप चाप हट जाना । जैसे, जब काम का वक आता है तब वह कहीं टरक देता है । *† (२) टर टर करना । फर्कश स्वर से बोलना । उ०—
टर टरकन लगे दुसहु दिसा मंडूक ।—गोपाल ।

टरकनी०—संशा शी० [दे०] ईंख या गन्ने की दूसरी धार की सिं चाई ।

टरकाना—कि० श० [हि० टरकना] (१) एक स्थान से दूसरे स्थान पर कर देना । हटाना । खिसकाना । जैसे, (क) देखते रहे, ये चीजें हथर उधर न टरकाने पावें । (ख) जब कोई डूढ़ने आये तब इस लड़के को कहीं टरका दो । (२) किसी काम से थाप हुए मनुष्य को बिना उसका काम पूरा किए कोई पहाना करके लौटा देना । टाल देना । चलता करना । धता धताना । जैसे, जब हम अपना रुपया मांगने आते हैं तब तुम यों ही टरका देते हो ।

टरकी—संशा पु० [तुर्की] एक प्रकार का मुर्गा जिसकी चोंच के नीचे गले में मांस की लाल झालर रहती है और जिसके काने परों पर छोटी छोटी सुपेदे डूँदकियाँ होती हैं । इस का मांस बहुत स्वादिष्ट माना जाता है । इसे पेरू भी कहते हैं ।

टरगी—संशा पु० [दे०] एक प्रकार की घास जो चारे के काम में आती है । इसे मैंसें बड़े चाव से खाती हैं । यह सुखा कर १२-१३ थरस तक रेशरी जा सकती है और घोड़ों के लिये अत्यंत पुष्ट और लाभदायक होती है । हिंदुस्तान में यह घास हिसार मांडोमरी (पंजाब) आदि स्थानों में होती है पर विलायती के ऐसी सुगंधित नहीं होती । इसे पलवा या पलवन भी कहते हैं ।

टरटराना—कि० श० [हि० टर] (१) थक थक करना । (२) बिटाई से बोलना । टर टर करना ।

टरना०—कि० श० दे० "टलना" । उ०—(क) वृष ते कुलिस कुलिस वृष करई । तासु दूत पग कहु किमि दरई ।—तुलसी । (ख) अस विचारि सोचहि मति माता । सो न दरइ जो रचइ विधाता ।—तुलसी ।

संशा पु० [दे०] तेली के कोरहू में डँका और कतरी से बची हुई रस्ती ।

टरना०—संशा शी० [हि० टलना] टरने का भाव ।

टरा०—वि० [अ० टर टर] (१) टरनेवाला । देंठ कर याते' करनेवाला । अविनीत और कठोर स्वर से उच्चर देनेवाला । घमंड के साथ चिड़ चिड़ कर बोलनेवाला । सीधे न बोलनेवाला । (२) छट । कडुवादी ।

टरना—कि० अ० [अ० टर] देंठ कर याते' करना । अविनीत और कठोर स्वर से उच्चर देना । घमंड के साथ चिड़ चिड़ कर बोलना । सीधे से न बोलना । घमंड लिए हुए कडु वचन कहना ।

टरापन—संशा पु० [हि० टा] बात चीत में अविनीत भाव । कडुवादित ।

टरूँ—संशा पु० [हि० टर टर] (१) टरा आदमी । (२) मेढ़क । (३) घमड़े की किछी मड़ा हुआ एक खिलौना जो घोड़े की पूँछ के बाल से एक लकड़ी में बंधा होता है । इसे घुमाने से मेढ़क की तरह टर टर आवाज निकलती है । मेढ़क । भौरा । कैवा ।

टलना—कि० अ० [सं टलन = विचलित होना] (१) अग्रने स्थान से अलग होना । हटाना । खिसकना । सरकना । जैसे, यह पत्थर तुमसे नहीं टलेगा । उ०—वृष ते कुलिस, कुलिस वृष करई । तासु दूत पग कहु किमि दरई ।—तुलसी ।

मुहा०—अपनी बात से टलना = प्रतिज्ञा न पूरी करना । मुकरना । (२) एक स्थान से दूसरे स्थान पर चला जाना । अनुपस्थित होना । किसी स्थान पर न रहना । जैसे, (क) काम के समय तुम सदा टल जाते हो । (ख) जब इसके आने का समय हो तब तुम कहीं टल जाना ।

संयो० कि०—जाना ।

(३) दूर होना । मिटना । न रह जाना । जैसे, थापित टलना, संकट टलना, बला टलना ।

संयो० कि०—जाना ।

(४) (किसी कार्य के लिये) निश्चित समय से और आगे का समय स्थिर होना । (किसी काम के लिये) मुकरर वक से और आगे का वक ठहराया जाना । मुलतवी होना ।

विशेष—इस क्रिया का प्रयोग समय और कार्य दोनों के लिये होता है, जैसे, तिथि टलना, तारीख टलना, विवाह की समय टलना, दिन टलना, लग्न टलना, विवाह टलना, इम्तहान टलना ।

संयो० कि०—जाना ।

(५) (कितनी बात का) अन्यथा होना । और का और होना ।

ठीक न टहरना। खंडित होना। जैसे, हमारी कही हुई बात कभी नहीं टल सकती। (३) किसी आदेश या अनुरोध का न माना जाना। उल्लंघित होना। पूरा न किया जाना। जैसे, पादशाह का हुक्म नहीं टल सकता है। (४) समय व्यतीत होना। भीतना।

टलहा—वि० [दे०] [स्त्री० टलही] खोटा। खराप। क्षुण्ण।

जैसे, टलहा रूपया, टलही चाँदी।

टलाटली—संज्ञा स्त्री० दे० "टलटल"।

टला—संज्ञा पुं० [अनु०] धक्का। आघात। ठोकर।

मुहा०—टफले मारना = ठोकर प्लाते फिरना। मारा मारा फिरना।

द्वार से उभर निकलत धूमना।

टली—संज्ञा पुं० [दे०] एक प्रकार का बर्तन। दे० "शैली"।

टल्लेनवीसी—संज्ञा स्त्री० दे० "टल्लेनवीसी"।

टधर्ग—संज्ञा पुं० [सं०] ट ड ढ ड थ-इन पंच षण्णों का समूह।

टवार्ह—संज्ञा स्त्री० [सं०] अटन = धूमना] व्यर्थ धूमना। आचारगी।

ड—फेर रहयो डुर करत टवार्ह। मान्यो नहिं जो जननि सिसाई।—रघुराम।

टस—संज्ञा स्त्री० [अनु०] (१) किसी भारी चीज को बिसकने का शब्द। टसकने का शब्द।

मुहा०—टस से मल न होना = (१) किसी भारी चीज का जरा सा भी न जगह टोड़ना। कुल्ल भी न बिसकना। (२) किसी कड़ी बस्तु का (पकाने वा गलाने आदि से) जरा सा भी न गमना। (३) कहने सुनने का कुल्ल भी प्रभाव अनुभव न करना। किसी के अनुकूल कुल्ल भी प्रवृत्त न होना।

(४) कपड़े आदि के फटने का शब्द। मसकने का शब्द।

टसक—संज्ञा स्त्री० [हिं० टसकना] रह रह कर उठनेवाली पीड़ा। कसक। टीस। चसक।

टसकना—कि० अ० [सं०] टस = दक्षेण + करण] (१) किसी भारी चीज का जगह से हटना। बिसकना। जगह से हिलना। जैसे, यह पत्थर जरा सा भी द्वार उपर नहीं टसकना। (२) रह रह कर दुर्द करना। टीस मारना। कसकना (३) प्रभावित होना। हृदय में प्रार्थना या कहने सुनने का प्रभाव अनुभव करना। किसी के अनुकूल कुल्ल प्रवृत्त होना। किसी की बात मानने का कुल्ल लेना होना। जैसे, वससे इतना कहा सुना पर यह ऐसा कठोर हृदय है कि जरा भी न टसका। † (४) पक कर गदराना। गुदारा होना। † (५) रोना घेना। धाँसू बहाना।

टसकाना—कि० सं० [हिं० टसकना] किसी भारी चीज को जगह से हटाना। बिसकाना। सरकाना।

टसना—कि० अ० [अनु० टस] कपड़े आदि का फटना। मसक जाना। द्रकना।

संयो० क्रि०—जाना।

टसर—संज्ञा पुं० [सं०] अक्षर] एक प्रकार का कड़ा और मोटा रेयाम जो बंगाल के बंगलों में होता है।

विद्योप—छोटा नागपुर, मोरभंज, बालेश्वर, बीरभूम, मेदिनीपुर आदि के जंगलों में साखू, बहेड़ा, पिपार, कुसुम, बेर इत्यादि वृक्षों पर टसर के कीड़े पलते हैं। रेयाम के कीड़ों की तरह इन कीड़ों की रक्षा के लिये अधिक यत्न नहीं करना पड़ता। पालनेवालों के जंगल में आपसे आप होनेवाले कीड़ों के केवल बीटियों और चिट्टियों आदि से ध्यान भर पड़ता है। पालनेवाले इनकी वृद्धि के लिये कोरा से निकले हुए उड़नेवाले कीड़ों को जंगल में छोड़ आते हैं, जहाँ अपने जोड़े ढूँढ़ कर वे अपनी वृद्धि करते हैं। मादा कीड़े पेड़ की पत्तियों पर सरसों के पेड़ों पर चिपटे चिपटे अंडे देते हैं जो पत्तियों में चिपक जाते हैं। एक कीड़ा तीन चार दिन के भीतर दो ढाई सौ तक अंडे देता है। अंडे दे कर ये कीड़े मर जाते हैं। दस बारह दिनों में इन अंडों से सूँढ़ी या डोल के आकार के छोटटे छोटटे कीड़े निकल आते हैं और पत्तियाँ चाट चाट कर बहुत जल्दी बढ़ जाते हैं। इस बीच में ये तीन चार बार कलेवर या खोली बदलते हैं। अधिक से अधिक पंद्रह दिन में ये कीड़े अपनी पूरी बाढ़ को पहुँच जाते हैं। उस समय इनका आकार स—१० अंगुल तक होता है। ये मटमैले, भूरे, नीले, पीले, कई रंगों के होते हैं। पूरी बाढ़ को पहुँचने पर ये कीड़े कोरा बनाने में लग जाते हैं और अपने मुँह से एक प्रकार की लार निकालते हैं जो सूख कर सूत के रूप में हो जाती है। सूत निकालते हुए धूम घूम कर ये अपने लिये एक कोरा तैयार कर लेते हैं और इसी में बंद हो जाते हैं। ये कोरा अंडाकार होते हैं। बड़ा कोरा ६—६.५ अंगुल तक लंबा होता है। कोरा के भीतर तीन चार दिनों तक सूत निकाल कर ये कीड़े सुरदे की तरह शुष्प चाप पड़ जाते हैं। पालनेवाले कोरों के पकने पर उन्हें हकड़ा कर लेते हैं, क्योंकि उन्हें भय रहता है कि पर निकलने पर कीड़े सूत को कुतर कुतर कर निकल जायेंगे अतः उड़ने के पहले ही इन कोरों को धार के साथ गरम पानी में डबाल कर वे कीड़ों को मार डालते हैं। जिन कोरों को उबालना नहीं पड़ता उनका टसर सय से अच्छा होता है। जो कोरा पकने के पहले ही उबाले जाते हैं उनका सूत कच्चा और निकम्मा होता है।

टसुआ—संज्ञा पुं० [सं०] अ३, हिं० अ३, अ३] धाँसू। अश्रु। (पंजबी)।

क्रि० प्र०—बहाना।

मुहा०—टसुप बहाना = झूठ मूठ थारा गिराना।

टवार्ह—संज्ञा स्त्री० [हिं० टसक] शरीर के जोड़ों की पीड़ा। रह रह कर उठनेवाली पीड़ा। चसक।

टहकना—क्रि० अ० [हि० टहकना] (१) रह रह कर दर्द करना । चसकना । टीस मारना । (२) (घी, भोम चरबी आदि का) श्रांच खा कर तरल होना या बहना । पिघलना ।

टहकना—क्रि० स० [हि० टहकना] श्रांच से पिघलाना ।

टहटहारा—वि० [हि० टहका] टटका । ताजा ।

टहना—संज्ञा पु० [सं० तद् + क्त = कतना वा शरीर] [स्त्री० टहनी] घुस की पतली शाखा । पतली डाल ।

टहनी—संज्ञा स्त्री० [हि० टहना] घुस की बहुत पतली शाखा । पेड़ की डाल के छोर पर की कोमल, पतली और लचीली उपशाखा जिसमें पत्तियाँ लगती हैं । जैसे, भीम की टहनी ।

टहरकट्टा—संज्ञा पु० [हि० ठहर + काठ] काठ का टुकड़ा जिस पर टह या तकले से उतारा हुआ सूत लपेटा जाता है ।

टहरना—क्रि० अ० दे० "टहलना" ।

टहल—संज्ञा स्त्री० [हि० टहलना] (१) सेवा । शुभ्रपा । खिदमत ।
क्रि० प्र०—करना ।

धौ०—टहल टहई = सेवा शुभ्रपा । उ०—कलि करनी धरनिष् कहां लौं करत फिरत नित टहल टहईहि ।—तुलसी । टहल टहोर = सेवा शुभ्रपा ।

मुहा०—टहल यजाना = सेवा करना ।

(२) नौकरी चाकरी । काम धंधा ।

टहलना—क्रि० अ० [सं० चट + यत्न = चरना] (१) धीरे धीरे चलना । मंद गति से भ्रमण करना । धीरे धीरे कदम रखते हुए फिरना ।

मुहा०—टहल जाना = धीरे से खिसक जाना । चुपचाप अन्वय चला जाना । हट जाना । जान धूम कर उपस्थित न रहना ।

(२) खेलव जी बहलाने के लिये धीरे धीरे चलना या धूमना । सैर करना । हवा खाना । उ०—संख्या को नित्य टहलाने जाते हैं ।

(३) परलोक गमन करना । मर जाना ।

संयो० क्रि०—जाना ।

टहलनी—संज्ञा स्त्री० [हि० टहल] (१) टहल करनेवाली । सेवा करनेवाली । दासी । मजदूरी । लौंडी । चाकरानी । (२) वह लकड़ी जो घसी उकसाने के लिये चिराग में पड़ी रहती है ।

टहलाना—क्रि० स० [हि० टहलना] (१) धीरे धीरे चलाना । धुमाना । फिराना । (२) सैर कराना । हवा खिलाना । (३) हटा देना । दूर करना ।

संयो० क्रि०—देना ।

टहलुआ—संज्ञा पु० [हि० टहल] [स्त्री० टहलुई, टहलनी] टहल करनेवाला । सेवक । नौकर । चाकर । खिदमतगार ।

टहलुई—संज्ञा स्त्री० [हि० टहल] (१) दासी । किंकीरी । लौंडी । चाकरानी । मजदूरी । नौकरानी । (२) वह लकड़ी जो घसी उकसाने के लिये चिराग में पड़ी रहती है ।

टहलुआ—संज्ञा पु० दे० "टहलुआ" ।

टहलु—संज्ञा पु० [हि० टहल] नौकर । चाकर । सेवक ।

टही—संज्ञा स्त्री० [हि० घट, घात] युक्ति । जोड़ । तोड़ । मतलब निकालने का घात । प्रयोजन-सिद्धि का संघ । ताक ।

मुहा०—टही लगाना = जोड़ तोड़ लगाना । टही में रहना = काम निकालने की ताक में रहना ।

टहुआटारी—संज्ञा स्त्री० [देग०] हथर की उपर लगाना । चुगलखोती ।

टहका—संज्ञा पु० [हि० ठक या ठहका] (१) पहेली । (२) चुटकुला । चमत्कार-पूर्ण उक्ति ।

टहोका—संज्ञा पु० [हि० ठोकर] हाथ या पैर से दिया हुआ धक्का । मटकना ।

मुहा०—टहोका देना = हाथ या पैर से धक्का देना । मटकना ।

टकेलना । ठेलना । टहोका खाना = धक्का खाना । ठोकर सहना । उ०—मैंने इनकी ठंडी सांस की फांस का टहोका खा कर झुंझला कर कहा ।—इंद्रा बखला खीं ।

टांक—संज्ञा स्त्री० [सं० टंक] (१) एक प्रकार की तौल जो चार मारो की (किसी किसी के मत से तीन मारो की) होती है । इसका प्रचार जौहरियों में है । (२) धनुष की शक्ति की परीचा के लिये एक तौल जो पचीस सेर की होती थी ।

विशेष—इस तौल के बखरों को धनुष की डोरी में बांध कर लटका देते थे । जितने बखरों बांधने से धनुष की डोरी अपने पूरे संधान या खिंचाव पर पहुँच जाती थी उतनी टांक का वह धनुष समझा जाता था । जैसे, कोई धनुष सवा टांक का, कोई ढेड़ टांक का, यहाँ तक कि कोई कोई दो या तीन टांक तक का होता था जिसे सत्यंत बलवान पुरुष ही चढ़ा सकते थे ।

(३) जांच । कृत । संदान् । आंक । (४) हिस्सेदारों का हिस्सा । यत्तरा ।

संज्ञा स्त्री० [हि० टांकना] (१) लिखावट । लिखने का शक या चिह्न । लिखन । उ०—छूती नेह कागद हिये भई लखावट टांक । विरह तपे उपरयो सु अथ सँहुड़ को सो आंक ।—विहारी । (२) कलम की नेक । लेखनी का टंक । उ०—हरि जाय खेत चित्त, सुखि स्वाही मति जाय, बरि जाय कागद कलम टांक जरि जाय ।—रघुनाथ ।

टांकना—क्रि० स० [सं० टंक] (१) एक वस्तु के साथ दूसरी वस्तु को कील आदि जड़ कर जोड़ना । कील काटि टांक कर एक वस्तु (धातु की चदर आदि) को दूसरी वस्तु से मिलाना या एक वस्तु पर दूसरी वस्तु बँधाना । जैसे, फूटे हुए घरतन पर चिप्पी टांकना ।

संयो० क्रि०—देना ।—लेना ।

(२) सुई के सहारे एकही तागे को दो वस्तुओं के बीच ऊपर

ले जा कर वहाँ एक दूसरे से मिलाना । सिलाई के द्वारा जोड़ना । सीना । जैसे चकती टांकना, गोटा टांकना, फटा चूना टांकना ।

संघो० क्रि०—देना ।—लेना ।

(१) सी कर श्रैटकाना । सुई तागे से एक वस्तु पर दूसरी वस्तु इस प्रकार लगाना या ठहराना कि वह उसपर से न हटे या गिरे । जैसे, बटन टांकना, मोती टांकना ।

संघो० क्रि०—देना ।—लेना ।

(४) सिल, चकी आदि के टांकी से गड़दे कर के छुरदुरा करना । फटना । रेहना । छीगना ।

संघो० क्रि०—देना ।—लेना ।

(४) रैती या रोहन के धतों को चुकीला करना । रैती सेज करना ।

संघो० क्रि०—देना ।—लेना ।

(६) किसी कागज बंदी या पत्रक पर स्मरण रखने के लिये लिखना । दर्ज करना । चढ़ाना । जैसे, वे १० भी बंदी पर टांक सो ।

संघो० क्रि०—देना ।—लेना ।

मुहा०—मन में टांक रखना = स्मरण रखना । याद रखना ।

† (७) लिख कर पेश करना । दाखिल करना । जैसे, धरजी टांकना । (८) खाना । चट कर जाना । उड़ा जाना । (याजार) । जैसे, देखते देखते वह सब मिगई टांक गया ।

संघो० क्रि०—जाना ।

(६) धनुचित रूप से खया पैसा आदि ले लेना । मार लेना । उड़ा लेना । (प्लाल)

टांकली—संघा छी० [सं० टांकली] पाल लपेटने की चिनी या गराड़ी । (लश०)

संघा छी० [सं० टांकली] एक पुराना बाजा जिस पर चमड़ा मड़ा होता था ।

टांका—संघा पु० [सं० टांकना] (१) वह जड़ो हुई कील जिससे दो वस्तुएँ (विशेषतः धातु की चदरें) एक दूसरे से जुड़ी रहती हैं । जोड़ मिलानेवाली कील या फाँटा ।

क्रि० प्र०—उसड़ना ।—निकालना ।—लगाना ।—लगाना ।

(२) सीबन का उतना धंरा जितना सुई को एक बार ऊपर से नीचे धीरे नीचे से ऊपर से जाने में तैयार होता है । सिजाई का प्रथक प्रथक क्रम । सोम । जैसे, दो टांके लगा दो, ज्यारा काम नहीं है ।

क्रि० प्र०—उसड़ना ।—सुलना ।—टूटना ।—लगाना ।—लगाना ।

मुहा०—टांका चलाना = सीने के लिये फाड़े आदि में धार पार सुई धारना । टांका मरना = सुई के छेद फर टांगा फँकना या श्रैटकाना । सीना । सिताई करना । टांका मरना = दे० "टांका मरना" ।

(३) सिलाई । सीबन । (४) टांकी हुई चकती । धिगली । धिप्पी । (५) शरीर पर के धाव या कटे हुए स्थान की सिलाई जो धाव के पूजने के लिये की जाती है । जोड़ ।

क्रि० प्र०—उसड़ना ।—सुलना ।—टूटना ।—लगाना ।—लगाना ।

(६) धातुओं को जोड़ना का मसाला जो उनको गला कर बनाया जाता है ।

क्रि० प्र०—भरना ।

संघा पु० [सं० टांक] [सं० भरप० टांकी] छोड़े की कील जो नीचे की धार चौड़ी धार धारदार होती है धार पथर छीलने या काटने के काम में आती है । पथर काटने की चौड़ी छेनी ।

संघा पु० [सं० टांक = पट्ट या गूदा] (१) दीवार उड़ा कर बनाया हुआ पानी इकट्ठा रखने का छोटा सा कुंड । होड़ा । चहबचा । (२) पानी रखने का बड़ा बरतन । कंढाल ।

टांका टूक-वि० [सं० टांक + तोल] तोल में टांक टांक । बजन में पूरा पूरा । टांक तुला हुआ । (हुकामदार)

टांकी—संघा छी० [सं० टांक] (१) पथर गड़ने का धीड़ा । वह छोड़े की कील जिससे पथर तोड़ते काटते या छीलते हैं । छेनी । उ०—वह तेलिया पखान हठी, फडिनाई पाकी । टूटीं पाके सीस बीस बहु धांकी टांकी ।—दीनदयाल ।

क्रि० प्र०—चलना ।—चलाना ।—बैठना ।—मारना ।—लगाना ।—लगाना ।

मुहा०—टांकी बजना = (१) पथर पर टांकी का आघात पड़ना । (२) पथर की गड़ाई होना । इमारत का काम खमना ।

(२) तरजू या खरजूने के ऊपर छोटा सा चौखूँटा कटाव या छेद जिससे उसके भीतर का (कच्चे, पक्के, सड़े आदि होने का) हाल मालूम होता है । (फल बेचनेवाले प्रायः इस प्रकार थोड़ा सा काट कर तरजू रखते हैं) । (३) काट कर बनाया हुआ छेद । (४) एक प्रकार का फोड़ा । कुँवल । (५) गामी या सूतक का धाव । (६) आरी का दंत । दंता । दंदाना ।

संघा छी० [सं० टांक = पट्ट या गूदा] (१) पानी इकट्ठा रखने का छोटा होड़ा । छोटा टांका । छोटा चहबचा । (२) पानी रखने का बड़ा बरतन । कंढाल ।

टांकीबंद-वि० [सं० टांकी + फा० बंद] (इमारत, सीवार या जोड़ाई) जिसमें छोटे हुए पथर बहुओं या दोनों धोर गड़ने-वाली कीलों के द्वारा एक दूसरे से रूप जुड़े हों । जैसे, टांकी-बंद जोड़ाई, टांकीबंद इमारत ।

विशेष—दो पथरों के जोड़ के दोनों धोर धामने सामने दो छेद किए जाते हैं । इन्हों छेदों में दो धोर जुड़ी हुई कीलों

को टोंक कर छेदों में गला हुआ सीसा भर देते हैं जिससे पत्थर के दोनों टुकड़े एक दूसरे से जकड़ कर मिल जाते हैं। किले की दीवारों, पुल के खंभों आदि में इस प्रकार की जोड़ाई प्रायः होती है।

टाँग-संज्ञा छं० [सं० टंग] (१) शरीर का वह निचला भाग जिस पर धड़ ठहरा रहता है और जिससे प्राणी चलते या झुंझते हैं। साधारणतः जंघे की जड़ से ले कर पृष्ठी तक का अंग जो पतले खंभे या डंडे के रूप में होता है, विशेषतः घुटने से ले कर पृष्ठी तक का अंग। जीवों के चलने फिरने का श्रवण्य (जिसकी संख्या भिन्न भिन्न प्रकार के जीवों में भिन्न भिन्न होती है।)

मुहा०—टाँग अड़ाना = (१) बिना अधिकार के किसी काम में योग देना। किसी का ऐसे काम में हाथ डालना जिसमें उसकी आवश्यकता न हो। फलान् दखल देना। (२) अर्थमा लगाना। निम्न डालना। बाधा उत्थित करना। (३) ऐसे विषय पर कुछ कहना जिसकी कुछ जानकारी न हो। ऐसे विषय में कुछ विचार या मत प्रकट करना जिसका कुछ ज्ञान न हो। अनधिकार चर्चा करना। जैसे, जिस बात को तुम नहीं जानते उसमें क्यों टाँग अड़ाने हो ? टाँग अड़ाना = (१) छी संभोग करना। स्त्री के साथ संभोग करने के लिये प्रयत्न होना। आसन लेना। (२) जल्दी जल्दी पैर बढ़ाना। जल्दी जल्दी चलना। टाँग बढ़ा कर मूलना = कुत्तों की तरह मूलना। टाँग तले से (बा नीचे से) निकलना = दूर मानना। ध्वस्त होना। नीचा देखना। अधीन होना। टाँग तले (बा नीचे) से निकालना = हटाना। ध्वस्त करना। नीचा दिखाना। अधीनता या हीनता स्वीकार करना। टाँग तोड़ना = (१) अंग भंग करना। (२) बेकाम करना। निकामा करना। किसी काम का न रखना। (३) किसी भाषा को थोड़ा या सीध कर उसके टूटे-पूटे या अशुद्ध वाक्य बोलना। जैसे, क्या अँगरेजी की टाँग तोड़ते हो ? (अपनी) टाँग तोड़ना = चञ्चले चञ्चले पैर चकाना। घूमते घूमते हैपन होना। टाँग पसार कर सेना = (१) निरं द्र हो कर सेना। सुल की नींद लेना। निश्चित होना। (२) बिना किसी प्रकार के खटके के चैन से दिन बिताना। टाँग रह जाना = (१) चञ्चले चलते पैर दृढ़ करने लगना। चञ्चले चञ्चले पैरों का शिथिल हो जाना। (२) लकवा या गण्डिया से पैर का बेकाम हो जाना। टाँग खोना = (१) टाँग पकड़ना। (२) कुत्ते आदि का पैर पकड़ कर काट खाना। (३) कुत्ते की तरह काटना। (४) पीछे पड़ जाना। खिर होना। पिंड न छोड़ना। टाँग बराबर = टोटा सा। जैसे, टाँग बराबर खड़का ऐसी ऐसी पातें कहता है। (किसी की) टाँग से टाँग बाँध कर बैठना = किसी के पास से न हटना। उदा। किसी के पास बना रहना। एक धड़ी के लिये भी न छोड़ना। टाँग से टाँग बाँध कर

बैठाना = अपने पास से हटने न देना। उदा। अपने पास बैठाए रहना। एक धड़ी के लिये भी कहीं जाने आने न देना।

(२) झुंझती का एक पेंच जिसमें विपत्ती की टाँग में टाँग मार कर या अड़ा कर उसे चित करते हैं। वह कई प्रकार का होता है। जैसे, (क) पिंजली टाँग = जब विपत्ती पीछे या पीठ की ओर हो तब पीछे से उसके घुटने के पास टाँग मारने को पिंजली टाँग कहते हैं। (ख) बाहरी टाँग = जब दोनों पहलवान धामने सामने झूँझती से झूँझती मिला कर निपटें हों तब विपत्ती के घुटने के पिंजले भाग में जोर से टाँग मारने को बाहरी टाँग कहते हैं। (ग) बगली टाँग = विपत्ती को बगल में पा कर बगल से उसके पैर में टाँग मारने को बगली टाँग कहते हैं। (घ) भीतरी टाँग = जब विपत्ती पीठ पर हो तब मौका पा कर भीतर ही से उसके पैर में पैर फँसा कर मटका देने को भीतरी टाँग कहते हैं। (च) झड़ानी टाँग = विपत्ती को दोनों टाँगों के बीच में टाँग फँसा कर मारने को झड़ानी टाँग कहते हैं। (३) चतुर्भांश। चौथाई भाग। अक्षरम। (दखाल)

टाँगन-संज्ञा पुं० [सं० तुंगम वा हिं० टेंगना] छोटी जाति का घोड़ा। यह घोड़ा जो बहुत कम ऊँचा हो। पहाड़ी टट्ट। विशेष—नेपाल और बर्मा के टाँगन बहुत मजबूत और तेज होते हैं।

टाँगना-क्रि० सं० [हिं० टेंगना] (१) किसी वस्तु को किसी ऊँचे आधार से बहुत थोड़ा सा लगा कर इस प्रकार खटकाना या ठहराना कि उसका प्रायः सब भाग उस आधार से नीचे की ओर हो। किसी वस्तु को दूसरी वस्तु से इस प्रकार बाँधना या फँसाना अथवा उस पर इस प्रकार टिकाना या ठहराना कि उसका (प्रथम वस्तु का) सब (या बहुत सा) भाग नीचे की ओर लटकता रहे। किसी वस्तु को इस प्रकार ऊँचे पर ठहराना कि उसका आश्रय ऊपर की ओर हो। लटकाना। जैसे, (खुँटी पर) कपड़ा टाँगना, परदा टाँगना, भाड़ टाँगना, तसवीर टाँगना।

विशेष—यदि किसी वस्तु का बहुत सा अंग आधार पर हो और थोड़ा सा अंग आधार के नीचे लटकता हो तो उसे 'टाँगना' नहीं कहेंगे। 'टाँगना' और 'लटकाना' में यह अंतर है कि टाँगना क्रिया में वस्तु के फँसाने, टिकाने या ठहराने का भाव प्रधान है और 'लटकाना' में उसके बहुत से अंगों को नीचे की ओर अग्रर में दूर तक पहुँचाने का भाव है। जैसे, 'कूप' में रस्सी लटकाना' कहेंगे 'रस्सी टाँगना' नहीं कहेंगे। पर टाँगना के अर्थ में लटकाना का प्रयोग होता है।

संयो० क्रि०—देना।

(२) फाँसी चढ़ाना। फाँसी लटकाना।

टाँगना-संज्ञा पुं० [सं० टंग] यज्ञी कुहवाड़ी।

संज्ञा पुं० [हिं० टंगना] एक प्रकार की गाड़ी जिसका हाँचा इतना चौड़ा होता है कि वह पीछे की ओर कुछ झुका या खटका रहता है। इसमें सवारी प्रायः पीछे की ओर ही हुई कर के बैठती है और जमीन से इतने पास रहती है कि घोड़े के भड़कने आदि पर ऋट से जमीन पर उतर सकती है। इस गाड़ी के इंचर उधर उलटने का मय भी बहुत कम रहता है। यह प्रायः पहाड़ी रास्तों के लिये बहुत उपयुक्त होती है। इसमें घोड़े या बैल दोनों जोते जाते हैं।

टांगानोचन-संज्ञा स्त्री० [हिं० टंग + नेचन] खींच खसेट। खींचा खींचे। खींचा सानी।

टांगी-संज्ञा स्त्री० [हिं० टंग] कुल्हाड़ी।

टांगुन-संज्ञा स्त्री० [देग०] बाजरे या कँगनी की तरह का एक अनाज जिसकी फसल सावन भादों में एक बार तैयार हो जाती है। इसके दाने महीन पीले रंग के होते हैं। गरीब लोग इस का भात बना कर खाते हैं।

टाँघना-संज्ञा पुं० दे० "टाँघन"।

टाँच-संज्ञा स्त्री० [हिं० टाँच] ऐसा घचन जिससे किसी का चिच किर जाय और वह जो कुछ दूसरे का काम करनेवाला हो उसे न करे। दूसरे का काम दिगाड़नेवाली बात या घचन। भाँजी।

फि० प्र०—मारना।

संज्ञा स्त्री० [हिं० टाँका] (१) टाँका। सिलार्ई। डोम। (२) टाँकी हुई चकती। पियाली। उ०—देह जीव जोग के सखा मृषा टाँच न टाँचा।—तुलसी।

टाँचना-फि० सं० [हिं० टाँच] (१) टाँकना। डोम खाना। सीना। उ०—देह जीव जोग के सखा मृषा टाँच न टाँचा।—तुलसी। (२) काटना। तराशना। झीलना। घाँटना।

फि० अ० फूला फूला फिरना। गुलधरें उड़ाते घूमना।

टाँचो-संज्ञा स्त्री० [सं० टाँक = रूपका] रुपया भरने की लंबी पैली जिसमें रुपय भर कर कमर में बाँध लेते हैं। न्यौली। न्यौली। मिपानी। वसनी।

संज्ञा स्त्री० [हिं० टाँका] भाँजी।

फि० प्र०—मारना।

टाँचु-संज्ञा स्त्री० दे० "टाँच"।

टाँटा-संज्ञा पुं० [हिं० टाँटा] खोपड़ी। कपाल।

मुहा०—टाँट के बाल उड़ना = (१) सिर के बाल मड़ना। (२) सर्वस्व निकल जाना। पास में कुछ न रह जाना। (३) खूब मार पड़ना। मुकुट निकलना। टाँट के बाल बढ़ाना = सिर पर खूब जूने लगाना। मारते मारते सिर पर बाल न रहने देना। टाँट खुजाना = मार खाने का जी चाहना। कोई ऐसा काम करना जिससे मार खाने की नौबत आवे। दंड पाने का काम करना। टाँट गंजी कर देना = (१) मारते मारते सिर गंजा करना। (२)

खूब खंच करवाना। खूब बपप गनवाना। खंच के मारे हैरान कर देना। पास का घन निकलवाना। टाँट गंजी होना = (१) मार खाते खाते सिर गंजा होना। खूब मार पड़ना। (२) खंच के मारे खूब निकलना। खंच करते करते पास में घन न रह जाना।

टाँटटा-संज्ञा पुं० [हिं० टाँट] खोपड़ी। कपाल।

टाँटा-वि० [अनु० टन टन या सं० रथाळ] (१) जो सूत कर कड़ा हो गया हो। करारा। कड़ा। कठोर। उ०—राम सौं साम किसे नित है दित कोमल काज न कीजिए टाँटे।—तुलसी। (२) टड़। बली। तगड़ा। सुट्टंडा।

टाँठा-वि० [हिं० टाँठ] [स्त्री० टाँठे] (१) करारा। कड़ा। कठोर। (२) टड़। हट्ट पुट्ट। तगड़ा।

टाँड़-संज्ञा स्त्री० [सं० रथाळ] (१) लकड़ी के खंभों पर या दो दीवारों के बीच लकड़ी की पटरियाँ या बाँस के लट्टे इत्यादि कर बनाई हुई पाटन जिस पर चीज अथवा वस्तु रखते हैं। परखची। (२) मचान जिस पर बैठ कर खेत की रखवाली करते हैं। (३) गुल्ली-दंडे के खेल में गुल्ली पर दंडे का आयात। टोला।

फि० प्र०—मारना।—खाना।

संज्ञा स्त्री० [सं० ताड़] बाहु पर पहनने का -छियों का एक गहना। टाँड़िया।

संज्ञा पुं० [सं० अटल, हिं० अटला, टाल] (१) ढेर। अटला। टाल। राशिर। (२) समूह। पंक्ति। (३) घोरों की पंक्ति। (४) दे० "टाँड़ा"।

संज्ञा स्त्री० [दे०] कंकड़ मिली मिट्टी। कँकरीली मिट्टी।

टाँड़ा-संज्ञा पुं० [हिं० टाँड़ = समूह] (१) अन्न आदि व्यापार की वस्तुओं से लदे हुए बैलों या पशुओं का झुंड जिसे व्यापारी ले कर चलते हैं। बरदी। बगजारों के बैलों आदि का झुंड। उ०—बनजारे के बैल अँ टाँड़े उतरयो आय।—कवीर। (२) व्यापारियों के माल की चलान। विक्री के माल का खेप। व्यापारी का माल जो लाद कर एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाय। उ०—अति खीन मृगाल के तारहु ते सेहि ऊपर पाँव दे आवनो हे। सुईं भेद सौं येह सकी न तहाँ पर-तीति को टाँड़ों लादावने हे।—भोजा।

मुहा०—टाँड़ा लदना = (१) विक्री का माल लदना। (२) कूच की तैयारी होना। (३) मरने की तैयारी होना। (३) व्यापारियों का चलता समूह। बगजारों का झुंड जो एक स्थान से दूसरे स्थान को जाता हो। (४) नाव पर चढ़ कर इस पार से उस पार जानेवाले पथिकों और व्यापारियों का समूह। उ०—खीजें बेगि निबेरी सूर प्रभु यह पतितन को टाँको।—सूर। (४) कुटुंब। परिवार।

संज्ञा पुं० [सं० हुँड, हिं० हुँड] एक प्रकार का हार कीड़ा जो

गन्ने खादि की जड़ों में लग कर फसल को हानि पहुँचाता है ।

क्रि० प्र०—बागना ।

टांड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० तद + टंन = उदान] टिड्डी । उ०—उमड़ि ररि तुक्कन ख्यो मड़ि । छूटे तीर उड़ति ज्यो टांड़ी ।—खाल ।

टाँय टाँय—संज्ञा स्त्री० [अयु०] (१) कर्कश शब्द । अमिय शब्द । कड़ुई बेली । टें टें (२) थक थक । थकवाद् । प्रभाव ।

मुद्दा—टाँय टाँय किस = (१) थकवाद् बहुत पर फल कुछ नहीं । किसी कार्य के संबंध में यात चीत तो बहुत बड़ चढ़ कर पर परिणाम कुछ नहीं । (२) किसी कार्य के आरंभ में तो थोड़ी भारी तत्परता पर अंत में सिद्धि कुछ भी नहीं । कार्य या आरंभ तो बड़ी धूम धाम के साथ पर अंत में होना जना कुछ नहीं ।

टाँस—संज्ञा स्त्री० [हिं० टानना = खींचना] हाथ या पैर के बहुत देर तक मुड़े रहने के कारण नसों की सिकुड़न या तनाव जिससे फटने की सी असह्य पीड़ा होने लगती है । यह पीड़ा प्रायः पृथिक होती है

क्रि० प्र०—चढ़ना ।

टाँसना—क्रि० सं० दे० “टाँचना”, “टाँकना” ।

टाइटिल पेज—संज्ञा पुं० [अं०] किसी पुस्तक के सव से ऊपर का पृष्ठ जिस पर पुस्तक और प्रथकार का नाम खादि कुछ बड़े अक्षरों में रहता है ।

टाइप—संज्ञा पुं० [अं०] सीसे के टले हुए अक्षर जिनको मिला कर पुस्तकें छापी जाती हैं । कांटे का अक्षर ।

टाइप कास्टिंग मशीन—संज्ञा स्त्री० [अं०] कांटे के अक्षर डालने की कल ।

टाइप मोल्ड—संज्ञा पुं० [अं०] कांटे के अक्षर ढालने का साँचा ।

टाइप-राइटर—संज्ञा पुं० [अं०] एक कल जिसमें फागज रख कर टाइप के से अक्षर छाप सकते हैं । यह दफ्तों और कार्यालयों में चिट्ठी पत्री खादि छापने के काम में आता है ।

टाइफायड ज्वर—संज्ञा पुं० [अं०] एक प्रकार का विषैला और प्रायः घातक ज्वर ।

टाइफोन—संज्ञा पुं० [अं०] एक प्रकार का वृषाम जो चीन के समुद्र में और उसके आस पास धरसात के चार महीनों में आया करता है ।

टाइम—संज्ञा पुं० [अं०] समय । वक्त ।

थी०—टाइम-टेबुल । टाइमपोस ।

टाइम-टेबुल—संज्ञा पुं० [अं०] (१) वह विवरणपत्र या सारिणी जिसमें भिन्न भिन्न कार्यों के लिये निश्चित समय लिखा रहता है । जैसे, स्कूल का टाइम-टेबुल, दफ्तर का टाइम-टेबुल ।

(२) वह पुस्तक या फागज जिसमें रेल गाड़ी के पहुँचने और छूटने का समय लिखा रहता है ।

टाइमपोस—संज्ञा स्त्री० [अं०] कमरे में रहनेवाली वह छोटी घड़ी जो केवल सूइयों के द्वारा समय बताती है, घनती नहीं ।

टाई—संज्ञा स्त्री० [अं०] (१) कपड़े की एक पट्टी जो शंखरेजी पहनाने में कालर के ऊपर गाँठ दे कर बाँधी जाती है । (२) जहाज के ऊपर के पाख की वह रस्सी जिसकी सुड़ी मत्स्य के फेरों में लगाई जाती है ।

टाउन—संज्ञा पुं० [अं०] शहर । कसबा ।

टाउन-डर्टी—संज्ञा स्त्री० [अं०] चुंगी । पॉन्ट्री ।

टाउन हाल—संज्ञा पुं० [अं०] किसी नगर में वह सार्वजनिक भवन जिसमें नगर की सफाई रोशनी खादि के प्रबंधकर्ताओं की तथा दूसरी सर्वसाधारण संबंधी समारोह होती हैं ।

टाऊ—संज्ञा पुं० [सं० टाऊ] टकूआ । तकला । टेकरी ।

टाट—संज्ञा पुं० [सं० टंडु] (१) सन या पट्टु की रस्सियों का बुना हुआ मोटा खुरदुरा कपड़ा जो बिछाने, परदा ढालने खादि के काम में आता है ।

मुद्दा—टाट में मूँज का थरिया = जैरी मही चीज वैली ही उसमें लगी हुई सामग्री या साज । टाट में पाट का बखिया = चीज तो भट्टी और सली पर उद्यम लगी हुई सामग्री बढिया और बहुमूल्य । बेमेल का साज ।

(२) थिरदरी । कुल । (बनिए) । जैसे, वे दूसरे टाट के हैं ।

मुद्दा—एक ही टाट के = (१) एक ही थिरदरी के । (२) एक साथ उठने बैठनेवाले । एक ही मंडली के । एक ही दल के । एक ही विचार के ।

(३) साहूकार के बैठने का विष्णुवन । महाजन की गद्दी ।

मुद्दा—टाट उलटना = दिवाला निकासना । दिवालिया होने की सूचना देना । (पहले यह रीति थी कि जब कोई महाजन दिवाला घोसलता था तब यह अपनी कोठी या दूकान पर का टाट और गद्दी उलट कर रख देता था जिससे व्यवहार करनेवाले लौट जाते थे ।)

वि० [अं० टाट] कसा हुआ । (लख०)

मुद्दा—टाट करना = मत्स्य खड़ा करना ।

टाटका—वि० दे० “टटका” ।

टाटवाणी जूता—संज्ञा पुं० [फा० तरकाफी] कामदार जूता । वह जूता जिस पर कबाबचू का काम हो ।

टाटर—संज्ञा पुं० [सं० टपार = जो खड़ा हो] (१) टटर । टट्टी ।

(२) खोपड़ी । कपाल । सिर की हड्डी या परदा । उ०—टाटर टट, टट सिर तावू ।—जायसी ।

टाटरिक पेसिड—संज्ञा पुं० [अं०] इमली का सत । इमली का चुक ।

टाटिका—संज्ञा स्त्री० [हिं० टाटी] टट्टी । उ०—विरचि हरि मक को वेप वर टाटिका, कपट दल हरित पल्लवनि छावों।— तुलसी ।

टाटो—संज्ञा स्त्री० [सं० रयाशी वा टाटी] टट्टी । छोट्या टटर । उ०— (क) आँधी आई ज्ञान की दही भ्रम की मीति । माया टाटी बढ़ि गई लगी नाम से प्रीति ।—कबीर । (ख) सूरदास प्रभु कहा निहारी मानत रंक त्रास टाटी के ।—सूर ।

टाठी—संज्ञा स्त्री० [सं० रयाशी, = श्रद्धोई, प्रा० ठाळी, टाठी] घाली ।

टाड़—संज्ञा स्त्री० [सं० ताड़] भुजा पर पहनने का एक गहना । टाड़ू । टाड़िया । यहूटा । उ०—बाहु टाड़ कर कंकन पाशुबंध पुरे पर है। तोड़ी ।—सूर ।

टाडर—संज्ञा स्त्री० [दे०] एक चिट्ठिया का नाम ।

टान—संज्ञा स्त्री० [सं० तन = फैलाव, सिंचाव] (१) तनाव । सिंचाव । फैलाव । (२) खींचने की क्रिया । खींच । (३) सितार के परदे पर बँगली रख कर हस प्रकार खींचने की क्रिया जिससे बीच के सव स्वर निकल आये । (४) सर्प के दाँत लगने का एक प्रकार जिसमें दाँत धँसता नहीं केवल छीलता या खरोंच डालता हुआ निकल जाता है ।

संज्ञा पुं० [सं० रयाण्ड = थन या शकड़ा का घेमा] टांडू । मचल ।

टानना—क्रि० सं० [हिं० टान + ना (प्रत्य०)] तानना । खींचना ।

टाप—संज्ञा स्त्री० [सं० रयापन, हिं० थापन, थाप] (१) घोड़े के पैर का वह सव से निचला भाग जो जमीन पर पड़ता है और जिसमें नाखून लगा रहता है । घोड़ों का अर्धचंद्रकार पादतल । सुम । उ०—जै जल चलहिं चलहि की माई । टाप न पड़, वेग अधिकाई ।—तुलसी । (२) घोड़े के पैरों के जमीन पर पड़ने का शब्द । जैसे, दूर पर घोड़ों की टाप सुनाई पड़ी । (३) पलंग के पापु का तल भाग जो पृथ्वी से लगा रहना है और जिसका घेरा उभरा रहता है । (४) घँत या और किसी वेड़ की लचीली टहनियों का बना हुआ मड़ली पकड़ने का माया जिसकी पैदी में एक छेद होता है । मड़ली पकड़ने का खाँचा । (५) सुरगियों के बंद करने का माया ।

टापड़—संज्ञा पुं० [हिं० टप्पा] उत्तर मैदान ।

टापदार—वि० [हिं० टाप + दा०] जिसके सिरों या छोर पर के कुछ भाग का घेरा उभरा हुआ हो । जिसके ऊपर या नीचे का छोर कुछ फैला हुआ हो । जैसे, टापदार पाया ।

टापना—क्रि० अ० [हिं० टाप + ना (प्रत्य०)] (१) घोड़ों का पैर पटकना । (प्रायः जब दाना पाने का समय हो जाता है तब घोड़े टाप पटक कर अपनी भूख की सूचना देते हैं । इससे 'टापने' का अर्थ कभी कभी 'दाना माँगना' भी होता है) । (२)

टकर मारना । किसी वस्तु के लिये हथर हथर हारान फिरना । (३) व्यर्थ हथर उथर फिरना । (४) बढ़लना । हूदना ।

क्रि० सं० हूदना । फाँदना । बढ़ल कर लाँगना । जैसे, दीवार टापना ।

क्रि० अ० [सं० तप] (१) बिना कुछ खाए पिए पड़ा रहना । बिना दाना पानी के समय बिताना । जैसे, सवेरे से बँडे टाप रहे हैं, कोई पानी पीने को भी नहीं पड़ता । (२) ऐसी घात के आसरे में रहना जो होती हुई न दिखाई दे । व्यर्थ प्रतीचा करना । आता में पड़े पड़े बढ़िभ और व्यग्र होना । जैसे, घंटों से बँडे टाप रहे हैं कोई आता जाता नहीं दिखाई देता । (३) किसी घात से निराश और डुरी होना । हया भलना । पड़ताना । उ०—वह चला गया मैं टापता रह गया ।

टापार—संज्ञा पुं० [दे०] चहर । घोड़ने का मोटा कपड़ा ।

संज्ञा पुं० [हिं० टाप] छेटी मोटी सवारी । टट्टू आदि की सवारी ।

टापा—संज्ञा पुं० [सं० रयापन, हिं० थाप] (१) टप्पा । मैदान । (२) उमाड़ मैदान । उत्तर मैदान । (३) बढ़ाल । हूद । छलांग । फाँद ।

मुहा०—टापा देना = धँसे डग भगना । फलांग मारना । उ०—फिरा यह संसार में धने मनुष्य मतिहीन । राम नाम जाना नहीं आए टापा दीन ।—कबीर ।

(४) भाया । किसी वस्तु को ढकने या बंद करने का टोकरा ।

टापू—संज्ञा पुं० [हिं० टपा या टप्पा] (१) खल का वह भाग जिसके चारों ओर जल हो । वह भूखंड जो चारों ओर जल से घिरा हो । द्वीप । † (२) टप्पा । टाप ।

टाचर—संज्ञा पुं० [पञ्जबी टचर] थालक । लड़ाक ।

टाचू—संज्ञा पुं० [दे०] रस्ती की सुनी हुई कटोरे के धाकर की जाली जिसे पैलों के मुँह पर इस लिये चड़ा देते हैं जिसमें वे काम करते समय हथर उथर चर न सकें । जाया ।

टामका—संज्ञा पुं० [अ०] टिमटिमी । टिमटिमी । उ०—दुंदुभि पट्ट खूदंग शोलकी रुफला टामक । मंदरा तबला सुमर सँगरी तबला धामक ।—सुदन ।

टामन—संज्ञा पुं० [सं० तन] तंत्रविधि । टोटका । उ०—जानत हो उ दई उँदरी पाड़ि राम कछु जन टामन कीन्दो ।— हनुमान ।

टार—संज्ञा पुं० [सं०] (१) घोड़ा । (२) गाँव । लौंदा । खंग । (३) जी-शुक्र का संयोग करानेवाला व्यक्ति । कुटना । बढ़ाल । मँधुआ ।

संज्ञा पुं० [सं० अट्टल, हिं० टाल] डेर । राशि । दे० 'टाल' ।

संज्ञा स्त्री० [हिं० टालना] टाल टूल । दे० 'टाल' ।

टारन—संज्ञा पुं० [हिं० टारना] (१) टालने या सरकाने की वस्तु ।

(२) कोल्हू में पड़ा हुआ यह लकड़ी का बंडा जिससे गड़दियाँ चलाई या हिलाई जाती हैं ।

टारना—क्रि० सं० दे० 'टालना' ।

टारपीडो—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का जंगी जहाज जो पानी के भीतर भीतर चल कर मनु के जहाजों का नारा करता है ।

टाल—संज्ञा स्त्री० [सं० अट्टल, हिं० अटाल] (१) नीचे ऊपर रती हुई वस्तुओं का डेर जो दूर तक ऊँचा उठा हो । ऊँचा डेर । भारी राशि । अटाला । गंज । जैसे, लकड़ी की टाल, भुस की टाल, पयाल की टाल, घास की टाल । (२) लकड़ी, भुस, पयाल आदि की बड़ी दुकान । (३) बैल-गाड़ी के पहिये का किनारा ।

मुहा०—टाल मारना = पहिये के किनारों का छीनना ।

संज्ञा स्त्री० [दे०] एक प्रकार का घंटा जो गाय, बैल, हाथी आदि के गले में बांधा जाता है ।

संज्ञा स्त्री० [हिं० टालना] (१) टालने का भाव । (२) किसी बात के लिये आज कल का मूढ़ा याद । ऐसा यद्धाना जिस से किसी समय किसी काम को करने से फोड़ें बच जाय ।

टौ—टालटूल । टालवटाल । टालमटूल ।

संज्ञा पुं० [सं० टू] व्यभिचार के लिये स्त्री मुख का समागम करनेवाला । कुटना । भँडुआ ।

टालटूल—संज्ञा स्त्री० दे० 'टालमटूल' ।

टालना—क्रि० सं० [हिं० टालना] (१) अपने स्थान से अलग करना । हटाना । विसराना । सरकाना । उ०—(क) भूष सहस्र दस पकड़ पाता । लगे उड़ावन टरे न टारा ।—तुलसी । (ख) जियन मूरि जिमि जोगवत रहेऊँ । दीप याति नहिं टारन कहेऊँ ।—तुलसी ।

संज्ञा पुं० क्रि०—देना ।

(२) दूसरे स्थान पर भेज देना । अतृप्तस्थित कर देना । दूर करना । भगा देना । जैसे, जब काम का समय होता है तब हम उसे कहीं टाल देते हो ।

संज्ञा पुं० क्रि०—देना ।

(३) दूर करना । मिटाना । न रहने देना । निवारण करना । जैसे, आपत्ति टालना, संकट टालना, थला टालना । उ०—मुनि प्रसाद चल तात तुम्हारी । ईस अनेक करवैँ टारी ।—तुलसी ।

संज्ञा पुं० क्रि०—देना ।

(४) किसी कार्य के निश्चित समय पर न करके उसके लिये दूसरा समय स्थिर करना । नियत समय से और आगे का समय टढ़ाना । मुलतवी करना ।

विशेष—इस क्रिया का प्रयोग समय और कार्य दोनों के लिये होता है । जैसे, तिथि टालना, दिन टालना, विवाह की सापत या जान टालना, विवाह टालना, इम्तहान टालना ।

संज्ञा पुं० क्रि०—देना ।

(५) समय प्यतीत करना । विसाना । उ०—अतिहि अधिक दरतन की आरति । राम वियोग असेक विटप तर सीप निमेव कल्प सम टारति ।—तुलसी । (६) [किसी आदेश या अनुशेष को] न मानना । न पालन करना । उल्लंघन करना । जैसे, (क) हमारी बात ब्रे कभी नहीं टालेंगे । (ख) रामा की छाया फौन टाल सकत है ? (७) किसी काम को सकल न कर के दूसरे समय पर छोड़ना । मुलतप करना । जैसे, जो काम थावे उसे तुरंत कर लो, कल पर मत टालो । (८) यद्धाना कर के किसी काम से पीछा छुड़ाना । हीला-हवाली कर के किसी काम से बचना । किसी कार्य के संबंध में इस प्रकार की बातें कहना जिसमें यह न करना पड़े ।

संज्ञा पुं० क्रि०—देना ।

मुहा०—किसी पर टालना = तब न करके किसी दूसरे के करने के लिये छोड़ देना । किसी के लिये मढ़ना । जैसे, जो काम उस के पास जाता है वह दूसरों पर टाल देता है ।

(९) किसी बात के लिये आज कल का मूढ़ा याद करना । किसी काम को और आगे चल कर पूरा करने की निष्ठा आरा देना या प्रतिज्ञा करना । जैसे, तुम हसी तरह महीनों से टालते आए हो, आज हम रजवा जरूर लेंगे । (१०) किसी प्रयोगन से आप हुप मनुष्य को निष्कल लौटाना । किसी मनुष्य का कोई काम पूरा न करके उसे दूसरे उजर की यातें कह कर फेर देना । धता यताना । टरकाना । जैसे, इस समय इसे कुछ कह सुन कर टाल दो, फिर मांगने आयेगा तब देता आया । (११) पलटना । फेरना । और का और करना । उ०—थाईं सुधि प्यारे की, विचारै मति टारे तप धारे पग मग कूमि द्वारावति आप हैं ।—प्रिया । (१२) बचा आना । तरह दे जाना । कोई अतृप्तित या अपने विरुद्ध यात देख सुन कर न बोलना ।

संज्ञा पुं० क्रि०—जाना ।

टाल-मटाल—संज्ञा स्त्री० दे० 'टालमटूल' ।

टालम-टाल—क्रि० वि० [दलाली, टाली = अटली] आपे आप । निरक-निरक ।

टालमटूल—संज्ञा पुं० [हिं० टालना] यद्धाना ।

टाला—वि० [स्त्री० टाली] आधा । अर्ध । (दलाल)

टाली—संज्ञा स्त्री० [दे०] (१) गाय बैल आदि के गले में बांधने की घंटी । (२) जवान गाय या बछिया जो तीन वर्ष से कम की हो और बहुत चंचल हो । उ०—पाई पाई दे भैया कुंज

घूँद में टाहली। घब के अपनी हडकि चरावहु जैहें हडकी वाली।—सूर । (३) एक प्रकार का भाजा। (४) धरती। श्राया हय्या। घेली। (दालाल)

टाहली—संज्ञा पुं० [दे०] एक प्रकार का शीशम जिससे पेड़ पंजाब में बहुत होते हैं। इसके हीरे की लकड़ी भूरी और बहुत मजबूत होती है। यह इमारतों में लगती है तथा गाड़ी, खेतों के सामान आदि बनाने के काम में छाती है।

टाहली—संज्ञा पुं० [हिं० टहल] टहल करनेवाला। टहलुवा। दास। सेवक। विद्रुमतार। उ०—कादर को आदर काहू के नाहि देखियत खनि सोहात है सेवा सुजान टाहली।—तुलसी।

टिं चर—संज्ञा पुं० [अं० टिकचर] किसी औषध का सार जो सिरपिट के योग से ताल रूप में बनाया जाता है।

टिं चर आयोहीन—संज्ञा पुं० [अं०] रूजन पर लगाने के लिये लोहे के सार का अर्क।

टिं चर भोपियाई—संज्ञा पुं० [अं०] अफ़ीम का अर्क।

टिं चर कार्डिमम—संज्ञा पुं० [अं०] हलायची का अर्क।

टिं चर स्टील—संज्ञा पुं० [अं०] फौलाद के सार का अर्क।

टिं टिनिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) जल-सिरीस का पेड़। अंबु-शिरिषिका। दाढ़ीन। (२) जोक।

टिं ड—संज्ञा पुं० [सं० टिंडीग] (१) ककड़ी की जाति की एक पेज जिसमें गोल गोल फल लगते हैं। इन फलों की तरकारी बनती है। डेंडरी। डेंडरी। (२) रइट में लगा हुआ वरतन जिसमें पानी भर कर बाहर छाता है। डब्बू।

टिं ड्रा—संज्ञा पुं० [सं० टिंडीग] ककड़ी की जाति की एक पेज जिस में छोटे खसपूने के धरावर गोल गोल फल लगते हैं। इन फलों की तरकारी बनती है। डेंडरी। डेंडरी।

टिं डर—संज्ञा पुं० [सं० टिंडीग] रइट में लगी हुई हंडिया।

टिं डसी—संज्ञा स्त्री० [सं० टिंडीग] टिं ड नाम की तरकारी। डेंडरी।

टिं डिश—संज्ञा पुं० [सं०] टिं डा। डेंडरी। डेंडरी।

टिं डी—संज्ञा स्त्री० [दे०] (१) हल को पकड़ कर दबानेवाली सुदिया। (२) बाता धुमाने का खूँटा।

टिक—संज्ञा पुं० [?] टिकर। लिट। टोकना। प्या।

टिकई—संज्ञा स्त्री० [दे०] टिकेवाली गाय। यह गाय जिसके माये में सुफ़ेद टीका हो।

टिकट—संज्ञा पुं० [अं०] (१) यह कागज का टुकड़ा जो किसी प्रकार का महसूल, भाड़ा, कर या फीस चुकानेवाले को प्रमाण-पत्र के रूप दिया जाय और जिसके द्वारा वह कहीं था जा सके या कोई काम कर सके। जैसे, रेल का टिकट, डाक का टिकट, सिप्टर का टिकट, दंगल का टिकट। (२) कहीं जाने जाने या कोई काम करने के लिये अधिकारपत्र। (३)

यह कर, फीस या महसूल जो किसी काम के करनेवालों पर लगाया जाय। जैसे, स्नान का टिकट, मेले का टिकट।

मुहा०—टिकट लगाना = महसूल लगाना। कर नियत करना। टिकटिक—संज्ञा स्त्री० [अय०] (१) घोड़ों को हान्कने के लिये गुँह से किया हुआ शब्द। (२) घड़ी के घोलने का शब्द।

टिकटिकी—संज्ञा स्त्री० [हिं० टिकटो] (१) तीन तिरछी खड़ी की हुई लकड़ियों का एक ढाँचा जिससे अश्राधियों के हाथ पैर बाँध कर उनके शरीर पर बेंत या कोड़े लगाए जाते हैं। ऊँची तिपाई जिस पर अश्राधियों को खड़ा करके उनके गले में फाँसी लगाते हैं। टिकटी। (२) ऊँची तिपाई। टिकटी।

मुहा०—टिकटिकी पर खड़ा करना = लड़ाई में न हटनेवाले चोट ला कर मरे हुए मुरगे को तीन लकड़ियों पर खड़ा करना। (मुरगों की लड़ाई में जब कोई बहादुर मुरगा लड़ते ही लड़ते चोट खाकर मर जाता है और मरते दम तक नहीं हटता है तब उसके शरीर को तीन लकड़ियों पर खड़ा कर देते हैं। यदि दूसरा मुरगा खात मार कर उसे लकड़ी के नीचे गिरा देता है तो उसकी जीत समझी जाती है और यदि वह किसी और तरफ चला जाता है तो मरे हुए मुरगे की जीत समझी जाती है।)

संज्ञा स्त्री० [दे०] अठ नौ अंगुल लंबी एक चिड़िया जिसका रंग भूरा और पैर कृष्ण खाली जिपू होते हैं। जाड़े में यह सारे भारतवर्ष में देखी जाती है और प्रायः जलाशयों के किनारे की झाड़ियों में घोंसला लगाती है। यह एक धार में चार अंडे देती है।

संज्ञा स्त्री० दे० "टकटकी"।

टिकटी—संज्ञा स्त्री० [सं० तिकाड वा हिं० तीन + काठ] (१) तीन तिरछी खड़ी की हुई लकड़ियों का एक ढाँचा जिससे अश्राधियों के हाथ पैर बाँध कर उनके शरीर पर बेंत या कोड़े लगाए जाते हैं। टिकटिकी। (२) ऊँची तिपाई जिस पर अश्राधियों को खड़ा करके उनके गले में फाँसी का फंदा लगाया जाता है। (३) काठ का आसन जिसमें तीन ऊँचे पाए लगे हों। तिपाई। (४) हुना हुआ कपड़ा फैलाने के लिये दो लकड़ियों का बना हुआ एक ढाँचा। यह कपड़े की चौड़ाई के धरावर फैल सकता है। (सुजाहे)

टिकडू—संज्ञा पुं० [हिं० टिकिया] [स्त्री० अय० टिकड़ी] (१) चिपटा गोल टुकड़ा। धानु, परपर, खरड़े या और किसी कड़ी वस्तु का चक्राकार खंड। (२) आँच पर सँकी हुई घोड़ी मोटी रोटी। बाटी। अंगकडू।

मुहा०—टिकडू खाना = आग पर बाटी चेंटना या पकाना। (३) जट्टाज वा टप्ये के गद्दों में कई नगों को जड़ कर बनाया हुआ एक एक विभाग वा अंग।

टिकड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० टिकड़ा] फेरा टिकड़ा।

टिकना—कि० अ० [सं० विपत + कृ० वा अ = गदी + टिक = चमना]

(१) कुछ काल तक के लिये रहना । उठरना । देना करना । मुकाम करना । उ०—टिकि लीजियो रात में काफू थटा जहाँ सोवत होंय परेवा परे।—लघुप्रथ ।

संयो० कि०—जाना ।—रहना ।—लेना ।

(२) किसी घुली हुई वस्तु का नीचे बैठना । तल में जमना । तलबूट के रूप में नीचे पड़े में हकना होना । (३) ख्यायी रहना । कुछ दिनों तक चलना या पना रहना । कुछ दिनों तक काम देना । जैसे, यह जूता तुम्हारे पैर में कितने दिन टिकेगा ? (४) स्थित रहना । थड़ा रहना । इधर उधर न गिरना । उठरना । सहारे पर रहना । जमना या बैठना । जैसे, (क) यह गोला बंदे की नेक पर टिका हुआ है । (ख) इस पर तो पैर ही नहीं टिकता, कैसे खड़े हों ।

संयो० कि०—जाना ।

टिकुरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० टिकिया] (१) एक नमकीन पकवान जो बेसन और मँदे की दो मीथानदार लोहों का एक में येल कर और धी में तल कर बनाया जाता है । (२) टिकिया । संज्ञा स्त्री० [हिं० टिका] सिर पर पहनने का एक गहना ।

टिकली—संज्ञा स्त्री० [हिं० टिकिया वा टीका] (१) छोटी टिकिया । (२) पत्नी या कर्च की बहुत छोटी बिंदी के आकार की टिकिया जिसे खिर्वा शृंगार के लिये अपने माथे पर चिपकाती हैं । सितारा । चमकी । (३) छोटा टीका । माथे पर पहनने की छोटी बँदी ।

संज्ञा स्त्री० [सं० तर्क, हिं० टकना] सूत घटने की चिरकी । सूत कातने का एक औजार ।

विशेष—यह धाँस या जोड़े की सलाई के सिरे पर लगी हुई काठ की गोल टिकिया होती है जिसे नचाने या फिराने से उसमें छपेटा हुआ सूत फँस कर कड़ा होता जाता है ।

टिकस—संज्ञा पुं० [सं० टैस] महसूल । कर । जैसे, पानी का टिकस, इनकम टिकस ।

मुदा०—टिकस लगना = महसूल या कर नियत होना ।

टिकार्ई—संज्ञा पुं० [हिं० टीका] राजा का वह पुत्र जो राजा के पीछे राजतिलक का अधिकारी हो । युवराज । उत्तराधिकारी राजकुमार ।

टिकाऊ—वि० [हिं० टिकना] टिकनेवाला । कुछ दिनों तक काम देनेवाला । चलनेवाला । पायदार ।

टिकान—संज्ञा स्त्री० [हिं० टिकना] (१) टिकने या उठरने का भाव । (२) टिकने या उठरने का स्थान । पड़ाव । चट्टी ।

टिकाना—कि० उ० [हिं० टिकना] (१) उठराना । रहने के लिये जगह देना । निवास-स्थान देना । कुछ काल तक किसी के रहने के लिये स्थान दीक करना । जैसे, इन्हें तुम अपने यहाँ टिका दो ।

संयो० कि०—देना ।—लेना ।

(२) थड़ाना । उठराना । स्थित करना । सहारे पर खड़ा करना या रोकना । जमाना । जैसे, (क) एक पैर जमीन पर अच्छी तरह टिका हो तब दूसरा पैर बढाये । (ख) इसे दीवार से टिका कर खड़ा कर दो । (ग) इस योग्य को चक्करे पर टिका कर थोड़ा दम ले लो ।

संयो० कि०—देना ।—लेना ।

(३) किसी उड़ाए जाते हुए योग्य में सहारे के लिये हाथ लगाता । योग्य उठाने या ले जाने में सहायता देना । सहारा देना । जैसे, (क) थकेले उससे धारपाई न जायगी तुम भी टिका लो । (ख) चार आदमी जब उसे टिकाते हैं तब वह उठता है ।

संयो० कि०—देना ।—लेना ।

टिकानी—संज्ञा स्त्री० [हिं० टिकाना] एकड़ा गाड़ी की वे दोनो बकड़ियाँ जिनमें पँजनी ढाल कर रस्ती से बाँधते हैं ।

टिकाव—संज्ञा पुं० [हिं० टिकना] (१) स्थिति । उठराव । (२) स्थिरता । स्थायिक । (३) वह स्थान जहाँ यात्री आदि उठरते हैं । पड़ाव ।

टिकिया—संज्ञा स्त्री० [सं० वटिका] (१) गोल और चिपटा छोटा टुकड़ा । गोल और चिपटे आकार की छोटी वस्तु । चक्राकार छोटी मोटी वस्तु । जैसे, दवा की टिकिया, कुनैन की टिकिया । विशेष—चकली और टिकिया में थंतर यह है कि 'टिकिया' का प्रयोग प्रायः ठोस और उमरे हुए मोटे दूब की वस्तुओं के लिये होता है पर चकली का प्रयोग कपड़े चमड़े आदि महीन परत की वस्तुओं के लिये होता है । जैसे, 'कपड़े या चमड़े की चकली', 'मँदे की टिकिया' ।

(२) कोयले की चुकनी को किसी जसीली चीज़ में सान कर बनाया हुआ चिपटा गोल टुकड़ा जिससे चिलम पर आग सुलागते हैं । (३) एक प्रकार की चिपटी गोल मिठाई जो मीथानदार मँदे की छोटी लोई की धी में तलने और धाधनी में हडाने से बनती है । (४) परतन के लिये का जरूरी भाग जिसका सिरा पाहर निकला रहता है । (५) छोटी मोटी रोटी । बाटी । लिट्टी ।

संज्ञा स्त्री० [हिं० टीका] (१) माथा । खंडाट । (२) माथे पर लगी हुई बिंदी । (३) बँगली में चूना, रंग या धाँस कोई वस्तु पोच कर बनाई हुई खड़ी रेखा या चिह्न ।

विशेष—अनपढ़ लोग नियम प्रति के लेन देन की वस्तु का खेला रखने के लिये इस प्रकार के चिह्न प्रायः दीवार पर बनाते हैं ।

टिकुरी—संज्ञा पुं० [शि०] डीला । जोटा ।

टिकुरी—संज्ञा स्त्री० [सं० तर्क, हिं० टकना] सूत घटने या कातने की चिरकी । टिकली ।

संज्ञा पुं० [दे०] निसोय । सुपुं० ।
 टिकुला-संज्ञा पुं० दे० "टिकोरा" ।
 टिकुली-संज्ञा स्त्री० दे० "टिकली" ।
 टिकुया-संज्ञा पुं० दे० "टकुया", "टकुया" ।
 टिकैत-संज्ञा पुं० [हिं० टीका + त (प्रत्य०)] (१) राजा का वह पुत्र जो राजा के पीछे राजतिलक का अधिकारी हो । राजा का उत्तराधिकारी कुमार । सुवर्णरत्न । (२) अधिष्ठाता । सरदार ।
 टिकोर-संज्ञा स्त्री० दे० "टकेर" ।
 टिकोरा-संज्ञा पुं० [सं० बटिका, हिं० टिकिया] धाम का छोटा और कच्चा फल । धाम की बतिया । धाम का वह फल जिसमें जाली न पड़े हो ।
 टिकोला-संज्ञा पुं० दे० "टिकोरा"
 टिकाड़-संज्ञा पुं० [हिं० टिकिया] (१) बड़ी टिकिया । (२) हाथ की बनी छोटी मोटी रोटी जो सेंकी गई हो । बाटी । बिट्टी ।
 थंगाकड़ी । (३) मालपूजा । (साधु) ।
 टिक्रा-संज्ञा पुं० [दे०] मूँगाफली के पीपे का एक रस ।
 टिक्रा स्त्री० [हिं० टीका] [स्त्री० टिको] (१) टीका । तिलक ।
 टिक्री । (२) बैंगली में रंग आदि लगा कर बनाया हुआ खड़ा चिह्न ।
 विद्रोप-दे० "टिड्डी" ।
 (३) सुष । स्मारय । याद ।
 टिक्री-संज्ञा स्त्री० [हिं० टिकिया] (१) टिकिया । गोल और चिपटा छोटा दुकड़ा ।
 मुहा०-टिक्री जमना, बैठना, लगना = प्रयोजन सिद्धि का उपाय होना । मुक्ति लड़ना । प्राप्ति आदि का ढेल होना ।
 मोटी जमना ।
 (२) थंगाकड़ी । बाटी ।
 ठगा स्त्री० [हिं० टीका] (१) बैंगली में रंग या और कोई गीली वस्तु पोत कर बनाया हुआ गोल चिह्न । बिंदी । (२) माथे पर की बिंदी । गोल टीका । (३) बैंगली में गीला चूना या रंग आदि पोत कर दीवार पर बनाई हुई खड़ी रेखा या चिह्न ।
 विद्रोप-यनपड़ शोग मित्य प्रति के जेन देन की वस्तु का लेखा रखने के लिये इस प्रकार के चिह्न प्रायः दीवार पर बनाते हैं ।
 (४) ताया की बूटी । ताया में बना हुआ पान आदि का चिह्न ।
 टिखटिख-संज्ञा स्त्री० दे० "टिकटिक" ।
 टिखलना-किं० थ० [सं० तप + गलन] विचलना । धाँच से दब-भूत होना ।
 विद्रोप-दे० "विचलना" ।
 टिखलाना-किं० थ० [हिं० टिखलना] विचलाना ।
 टिखन-वि० [थ० अंत्यन] (१) तैयार । ठीक । सुरक्षित ।

कि० प्र०-करना।-होना ।

(२) बचत । सुरक्षित ।

कि० प्र०-होना ।

टिटकारना-किं० सं० [षु०] [संज्ञा टिटकारी] टिक टिक शब्द कर के किसी पशु को खलने के लिये उभारना । 'टिक टिक' कर के हाँकना । जैसे, घोड़े को टिटकारना ।
 मुहा०-टिटकारी पर लगना = (पशु का) इशारा या कर काम करना । उक्रेत या कर या बोलती पहचान कर पास खना खाना ।
 टिटटिह, टिटटिहा-संज्ञा पुं० [सं० टिट्टिम] टिटटिहरी चिट्टिया का नर ।
 उ०-(क) देखा टिटटिह टिटटिहरी थाई । चोंचें भरि भरि पानी लाई । (ख) टिटटिहा कही जायें लैं कहीं । यहि ते नीक शेर है जहाँ ।-नारायणदास ।
 टिटटिहरी-संज्ञा स्त्री० [सं० टिट्टिम, हिं० टिट्टिह] पानी के किनारे रहनेवाली एक छोटी चिट्टिया जिसका सिर लाल, गरदन सफेद, पर चितकपड़े, पीठ लैरे रंग की, दुम मिले खुले रंगों की और चोंच काली होती है । इसकी बोली कटुई होती है और सुनने में 'टीं टीं' की ध्वनि के समान जान पड़ती है । स्तुतियों में द्विजातियों के लिये इसके मांस-भक्षण का निषेध है । इस चिट्टिया के संबंध में ऐसा प्रवाद है कि यह रात को इस भय से कि कहीं आकाश न टूट पड़े उसे सोकने के लिये दोनों पैर ऊपर करके चित सोती है ।
 टिटटिहा शेर-संज्ञा पुं० [हिं० टिट्टिहा + शेर] (१) चिहाइट । शेर गुल । (२) रोना पीटना । क्रंदन ।
 टिट्टिम-संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० टिट्टिमी] (१) टिटटिहरी । कुररी ।
 दे० "टिटटिहरी" । उ०-उमा रावनाहि" धस धमिमाना ।
 तिमि टिट्टिम खग सुत उताना ।-सुलरी । (२) टिट्टी ।
 टिट्टिमा-संज्ञा स्त्री० [सं०] टिट्टिम की मादा ।
 टिट्टिमी-संज्ञा स्त्री० [सं० टिट्टिम] टिट्टिम की मादा ।
 टिट्टा-संज्ञा पुं० [सं० टिट्टिम] एक प्रकार का परदार कीड़ा जो खेतों में तथा छोटे पेड़ों या पौधों पर दिखाई पड़ता है । यह चार पाँच शंखुल लंबा और कई तरह का होता है, जैसे, हरा, भूरा, चिसीदार । यह नरम पत्ते खा कर रहता है । गुपरेले, तिलली, रोमन के कीड़े आदि की तरह इसके जीवन में आकृति-परिवर्तन की मिला मिला अवस्थाएँ नहीं होतीं । मन्थियों की तरह इसके मुँह में भी पँसलने के लिये हँच होते हैं ।
 टिट्टी-संज्ञा स्त्री० [सं० टिट्टिम वा सं० तप + टेल = उड़ना] एक जाति का टिट्टिहा या उड़नेवाला कीड़ा जो बड़ा भारी हल या समूह बाँध कर चलता है और मार्ग के पेड़ पौधों और फसल को बड़ी हानि पहुँचाता है । इसका आकार साधारण टिट्टिहे की के समान, पैर और पेट का रंग लाल या मारंगी तथा शरीर भूतपान लिये और चिचिदार होता है । जिस समय

हृत्का दल लाल यादव की घटा के समान बमड़ कर चलता है उस समय आकाश में अंधकार सा हो जाता है और मार्ग के पेड़, पौधों और खेतों में पत्तियाँ नहीं रह जातीं। टिड्डियाँ हजार छेड़ हजार बोस तक की लंबी यात्रा करती हैं और जिन जिन प्रदेशों से हो कर जाती हैं उनकी फसल को नष्ट करती जाती हैं। ये पर्वत की कंदराओं और रेगिस्तानों में रहती हैं और बालू में अपने छेड़े देती हैं। आफ्रिका के उत्तरीय तथा एशिया के दक्षिणी भागों में हृत्का आक्रमण विशेष होता है।

मुहा०—टिड्डी दल = बहुत बड़ा मुँह। बहुत बड़ा सगूँह। बड़ा भारी भौड़ा या सेना।

टिड्विंगा-वि० [हि० टेंडा + सं० वंक] टेंडामेंडा। जो सीधा या सुदौल न हो।

टिप-संज्ञा स्त्री० [हि० टीपना] साँप काटने का एक प्रकार। साँप का ऐसा दंश जिसमें दाँत जुग गप हों और विष रक्त में मिल गया हो।

टिपकरना-क्रि० अ० दे० "टपकरना"।

टिपका-संज्ञा पुं० [हि० टिपकरना] बूँद। कतरा। थिंदु। उ०—नव मन दूध बटेरिया टिपका किया विनास। दूध फाटि काँजी भया भया चीव का नास।—कथोर।

टिप टिप-संज्ञा स्त्री० [अ०] बूँद बूँद गिरने का शब्द। टपकने का शब्द। वद शब्द जो किसी वस्तु पर बूँद के गिरने से होता है।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

मुहा०—टिप टिप करना = बूँद बूँद गिरना या बरसना।

टिपवाना-क्रि० स० [हि० टीपना] (१) दशवाना। चँपवाना। मिसवाना। जैसे, पैर टिपवाना। (२) पिटवाना। धीरे धीरे प्रहार करवाना।

टिपारा-संज्ञा पुं० [हि० टीन + फ० पर = डकड़ा] सुकट के आकार की एक टोपी जिसमें कलगी की तरह तीन शालापूँ निकली होती हैं, एक सिरे पर, दो बगल में। उ०—भोर फूल बीनिये को गप कुलचार्द हैं। सीसनि टिपारो, अपवीत पीत पट कटि, दोना वाम करनि सवोने भेसचार्द हैं।—तुलसी।

टिपुर-संज्ञा पुं० [दे०] (१) गुमान। अग्रिमान। गुस्टर। (२) बहुत अधिक थाचार-विचार। पार्लंड। आरंभ।

टिप्पणी-संज्ञा स्त्री० दे० "टिप्पनी"।

टिप्पन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) टीका। व्याख्या। (२) जन्म-कुंडली। जन्मपत्री।

मुहा०—टिप्पन का मिलान = विवाह-बंधन स्थिर करने के लिये घरकन्या की जन्मत्रियो का मिलान।

टिप्पनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] टीका। व्याख्या। किसी वाक्य या प्रसंग का अर्थ सूचित करनेवाला चित्रण।

टिप्पस-संज्ञा स्त्री० [दे०] युक्ति। अग्रिमप्राय साधन का दंग। क्रि० प्र०—जमाना।—जमाना।—लगाना।

विशेष—दे० "टिक्की"।

टिप्पी-संज्ञा स्त्री० [हि० टीका] (१) बैंगली में रंग आदि पोत कर धाया हुआ चिह्न। (२) तारा की मुट्टी।

विशेष—दे० "टिक्की"।

टिफन-संज्ञा स्त्री० [सं०] अँगरेजों का दोपहर के बाद का जलपान।

टिखरी-संज्ञा स्त्री० [दे०] पहाड़ों की छोटी चोटी।

टिमकी-संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) छोटा मोटा घरतन। (२) बच्चों का पेट।

टिमटिमाना-क्रि० अ० [सं० टिम = टंडा होना] (१) (दीपक का) मंद मंद जलना। चीथ प्रकाश देना। जैसे, केन्डी में एक दीया टिमटिमा रहा था। (२) समान बँधी हुई सौ के साथ न जलना। बुझने पर हो कर जलना। किलमिलाना। जैसे, दीया टिमटिमा रहा है, तुम्हा चाहता है।

मुहा०—आँस टिमटिमाना = आँस को थोड़ा थोड़ा खोल कर फिर बंद कर लेना।

(२) मरने के निकट होना। कुछ ही घड़ी के लिये और जीना।

टिमाक-संज्ञा स्त्री० [दे०] बनाप। सिंगार। ठसक। (क्रि०)

टिमिला-संज्ञा पुं० [दे०] [स्त्री० टिमिली] लड़का। छोकरा।

टिमिली-संज्ञा स्त्री० [दे०] लड़की। छोकरी।

टिम्मा-वि० [दे०] उँगना। यौना। छोटे छील डील का। नाटा।

टिर-संज्ञा स्त्री० दे० "ट्र"।

टिरफिस-संज्ञा स्त्री० [हि० टिर + फिस] चीं चपट। प्रतिवाद। विशेष। बात न मानने की दिहाई। जैसे, सीधे से जो कहते हैं करो, जरा भी टिरफिस करोगे तो मार देंगे।

क्रि० प्र०—करना।

टिरी-वि० दे० "टरी"।

टिराना-क्रि० अ० दे० "टराना"।

टिलटिलाना-क्रि० अ० [अ०] पतला दस्त किरना। दस्त आना।

टिलटिली-संज्ञा स्त्री० [अ०] पतला दस्त किरने की क्रिया या भाव।

क्रि० प्र०—आना।—घुटना।

टिलवा-संज्ञा पुं० [दे०] (१) लकड़ी का वह टुकड़ा जो छोटा गँधला और टेड़ा हो। गँधला और टेड़ा मेड़ा कुंदा। (२) नाटा या उँगना आदमी। (३) चापलूस आदमी।

टिडिया †—संज्ञा स्त्री० [दे०] (१) छोटी मुर्गी। (२) मुर्गी का बच्चा।

टिडली-लिली—संज्ञा स्त्री० [अ०] बीच की डँगली हिला कर चिढ़ाने का शब्द। (लड़कें)

विदोष—जब एक लड़का कोई वस्तु नहीं पाता या किसी बात में श्रुतकार्य होता है, तब दूसरे लड़के उसके सामने हथेली सीधी कर के और बीच की डँगली हिला कर 'टिडली-लिली' कह कर चिढ़ाते हैं।

टिलेहू—संज्ञा पुं० [दे०] एक प्रकार का नेवला जिसके शरीर से दुर्गंध निकलती है। इसका सिर सूअर के ऐसा और हुम बहुत छोटी होती है। यह सबलों के बल चलता है और अपने घूमने से जमीन की मिट्टी सोदाता है। सुमात्रा, जावा आदि टापुओं में यह नेवला पाया जाता है।

टिलेरिया †—संज्ञा स्त्री० [दे०] मुर्गी का बच्चा।

टिल्ला—संज्ञा पुं० [हिं० टेकना] धक्का। टकेर। चोट। (बाजारू) धो—टिक्लेनवीसी।

टिक्लेनवीसी—संज्ञा स्त्री० [हिं० टिक्का + फा० नवीसी] (१) निरुद्ध सेवा। नीच सेवा। (२) व्यर्थ का काम। ऐसा काम जिससे कोई लाभ न हो। निरुत्पादन। (३) हीला हवाली। टालमटोल। बहाना।

क्रि० प्र०—करना।

टिसुआ †—संज्ञा पुं० [सं० अशु] शॉट्। (पंजाबी)

टिडुकना †क्रि० अ० [दे०] (१) टिडकना। (२) चौकना।

टिडुनी †—संज्ञा स्त्री० [सं० हुंटा, हिं० हुटना] (१) हुटना। (२) होहनी।

टिडुक †—संज्ञा स्त्री [दे०] चौकने की क्रिया या भाव। चौक। कम्क। उ०—एक ताग बनवत, दूसर गौल हूटी। चिलरें काटत, बटलि टिडुकी।—कबीर।

टिडुकना †—क्रि० अ० दे० "टिडुकना"।

टौंड—संज्ञा पुं० [सं० टिंडिप = टेंडिंग] रहत में बांधने की हँडिया।

टौंडसी—संज्ञा स्त्री० [सं० टिंडिय] ककड़ी की जाती की एक पेदा जिसमें गोल गोल फल लगते हैं। इन फलों की तस्कारी होती है।

टौंडा—संज्ञा पुं० [दे०] आता घुमाने का खूँटा।

टौंडी †—संज्ञा स्त्री० दे० "टिडु"। उ०—जिमि टौंडी बल गुहा समार्ह।—तुलसी।

टीक—संज्ञा स्त्री० [सं० तिक्क] (१) रात में पहनने का सेने का एक गहना जो ठपेदार या अङ्गूर बनता है। (२) माथे में पहनने का सेने का एक गहना।

टीकठ †—संज्ञा पुं० [हिं० टिकना] रीढ़ की हड्डी।

टीकन—संज्ञा पुं० [हिं० टेकना] घुनी। चाँद। वह खंभा या खड़ी

लकड़ी जो किसी भार को सँभाले रहने या किसी वस्तु को एक स्थिति में रखने के लिये लगाई जाती है।

मुहा०—टीकन देना = बढ़ते हुए पैरों का सीधा और मुड़ौल रखने के लिये घुनी लगाना।

टीकना †—क्रि० अ० [हिं० टीका] (१) टीका लगाना। तिलक देना। (२) डँगली में रंग आदि पोत कर चिह्न या रेखा बनाना।

टीका—संज्ञा पुं० [सं० तिक्क] (१) वह चिह्न जो डँगली में गीला चंदन, रोली, केसर, मिठी आदि पोत कर मलक वाहु आदि धर्मों पर अंगार या साम्प्रदायिक संकेत के लिये लगाया जाता है। तिलक।

क्रि० प्र०—लगाना।

मुहा०—टीका देना = टीका लगाना। माथे पर चिपे हुए चंदन आदि से चिह्न बनाना। (टीका पूजन के समय तथा अनेक शुभ अवसरों पर लगाया जाता है। यात्रा के समय भी जानेवाले के शुभ के लिये बसके माथे में टीका लगाते हैं।)

(२) विवाह स्थिर होने की एक रीति जिसमें कन्यापक्ष के लोग घर के माथे में तिलक लगाते हैं और कुल प्रव्य वरपक्ष के लोगों को देते हैं। इस रीति के हो चुकने पर विवाह का होना निश्चित समझा जाता है। तिलक।

क्रि० प्र०—चढ़ना।—चढ़ाना।—भोजन।

(३) दोनों भाँ के बीच माथे का मध्य भाग (जहाँ टीका लगते हैं)। (४) (किसी समुदाय का) शिरोमणि। (किसी कुल, मंडली या जन-समूह में) श्रेष्ठ पुरुष। उ०—समाधान करि सो सब ही का। गयर जहाँ दिनकर-कुल-टीका।—तुलसी। (५) राजतिलक। राजसिंहासन या गद्दी पर बैठने का कृत्य।

क्रि० प्र०—देना।—होना।

(६) वह राजकुमार जो राजा के पीछे राज्य का वसताधिकारी होनेवाला हो। युवराज। जैसे, टीका साहव। (७) चापिपल का चिह्न। प्रधानता की छाप। जैसे, क्या तुम्हारे ही माथे पर टीका है और किसी का इसका अधिकार नहीं है ?

मुहा०—टीके का = विशेषता रखनेवाला। अनेकता। जैसे, क्या वही एक टीके का है जो सब कुल रख लेगा ? (हिं०) (न) वह भँट जो राजा या जमींदार को ईश्वर या अस्सामी देते हैं। (४) सेने का एक गहना जिसे जिय्राँ माथे पर पहनती हैं। (१०) घोड़ों की दोनों आँखों के बीच माथे का मध्य भाग जहाँ अँवरी होती है। (११) घघ्या। दाग। चिह्न। (१२) किसी रोग से बचाने के लिये बस रोग के घेन या रस को ले कर किसी के शरीर में घुस्यो से जुमा कर प्रविष्ट करने की क्रिया। जैसे, शीतला का टीका, प्लेग का टीका।

विशेष—टीके का व्यवहार विशेषतः शीतला रोग से घबाने के लिये ही इस देश में होता है। पहले इस देश में माली लोग किसी रोगी की शीतला का नीर ले कर रखते थे और स्वस्थ मनुष्यों के शरीर में सुई से गोद कर उसका संचार करते थे। संयाल लोग आग से शरीर में फफोले डाल कर वगैरे फूटने पर शीतला का नीर प्रविष्ट करते हैं। इस प्रकार मनुष्य को शीतला के नीर द्वारा जो टीका लगाया जाता है उसमें ज्वर वेग से आता है, कभी कभी सारे शरीर में शीतला निकल आती है और घर भी रहता है। सन् १०६८ में डाक्टर जेनर नामक एक अंगरेज ने गोपन में इन्धुय शीतला के दातों के नीर से टीका लगाने की युक्ति निकाली जिसमें ज्वर आदि का उतना प्रकोप नहीं होता और न किसी प्रकार का भय रहता है। इंग्लैंड में इस प्रकार के टीके से पड़ी सफलता हुई और धीरे धीरे इस टीके का व्यवहार सारे देशों में फैल गया। भारतवर्ष में इस टीके का प्रचार अंगरेजी शासन काल में हुआ है। कुछ लोगों का मत है कि गोपन-शीतला के द्वारा टीका लगाने की युक्ति प्राचीन भारतवासियों को ज्ञात थी। इस बात के प्रमाण में वे ध्वन्तरि के नाम से प्रसिद्ध एक शाक ग्रंथ का यह श्लोक देते हैं—

धेनुस्त्वन्मसूरिका नराण्यां च मसूरिका ।
तज्जलं माहुमूलाद्य शस्त्रांतेन गृहीतयात् ॥
माहुमूले च शस्त्रायि रक्तोत्पत्तिकरायि च ।
तज्जलं रक्तमिलितं स्फोटकज्वरसंभवम् ॥

संज्ञा शी० [सं०] किसी वाक्य, पद या ग्रंथ का अर्थ स्पष्ट करनेवाला वाक्य या ग्रंथ। व्याख्या। अर्थ का विवरण। विवृति। जैसे, रामायण की टीका, सतसई की टीका।

टीकाकार—संज्ञा पुं० [सं०] व्याख्याकार। किसी ग्रंथ का अर्थ लिखनेवाला। वृत्तिकार।

टीकी—संज्ञा शी० [हिं० टीका] (१) टिकुली। (२) टिकिया। टिकी।

टीकुरी—संज्ञा पुं० [दे०] (१) ऊँची घुन्नी। नदी से बाहर की ऊँची और रेतीली भूमि। (२) जंगल। वन।

टीटा—संज्ञा पुं० [दे०] खियों की योनि में वह मांस जो कुछ बाहर निकला रहता है। टना।

टीडो—संज्ञा शी० दे० "टिडो"।

टीन—संज्ञा पुं० [अ० टिन] (१) रांगा। (२) रांगे की कलई की हुई लोहे की पतली चदर। (३) इस प्रकार की चदर का बना घरतन या टिन्ना।

टीप—संज्ञा शी० [हिं० टीपना] (१) हाथ से दबाने की क्रिया या भाव। दबाव। दाप। (२) हलका प्रहार। धीरे धीरे टाँकने की क्रिया या भाव। (३) गच फूटने का काम। गच की पिटाई। (४) बिना पलस्तर की दीवार में ईंटों के जोड़ों में

मसाला दे कर नहले से बनाई हुई लकीर। (४) टंकार। ध्वनि। घोर शब्द। (६) गाने में ऊँचा स्वर। जोर की सान।

क्रि० प्र०—लगाना।—छगाना।

(७) हाथी के शरीर पर छेप करने की औपच। (८) दूध और पानी का शीरा जिसमें चीनी की मैज डूँटती है। (९) स्मरण के लिये किसी बात को मूठपट लिख लेने की क्रिया। टाँक लेने की क्रिया। टाँक लेने का काम। नेट। (१०) वह फागज जिस पर महाजन को मूल और ध्याज के घदले में फसल के समय अनाज आदि देने का इस्कार लिखा रहता है। (११) दुलावेज। (१२) हुंटी। चक। (१३) सेना का एक भाग। कंपनी। (१४) गंजीके के खेल में बिपची के एक पत्ते को दो पत्तों से मारने की क्रिया। (१५) लड़की या लड़के की जन्मपत्री। कुंडली। टिप्पन।

वि० घोटी का। सय से अछटा। लुनिदा। पड़िया।

(दि०)

टीपटाप—संज्ञा शी० [दे०] ठाठ थाट। सजावट। तड़क भड़क। दिवावट।

टीपना—संज्ञा शी० [हिं० टीपना] शरीर में यह स्थान जहाँ काँटा या कंकड़ चुभने से मांस ऊँचा हो कर कड़ा हो जाता है। गाँठ। टाँका। घटा।

टीपना—क्रि० सं० [सं० टीपन = ऊँकना] (१) हाथ या डँगली से दबाना। चापना। मसकना। जैसे, पैर टीपना। (२) धीरे धीरे टोकना। हलका प्रहार करना। (३) ऊँचे स्वर से गाना। (४) गंजीके के खेल में दो पत्तों से एक पत्ता जीतना।

क्रि० सं० [सं० टिप्पनी] लिख लेना। टाँक लेना। प्रकृत कर लेना। दर्ज कर लेना।

टीवा—संज्ञा पुं० [हिं० टीवा] टीला। इह। भीटा।

टीम—संज्ञा शी० [अ०] खेलनेवालों का दल। जैसे, क्रिकेट की टीम।

टीमटा—संज्ञा शी० [दे०] (१) बनाय सिंगार। सजावट। (२) ठाठ थाट। तड़क भड़क।

टीला—संज्ञा पुं० [सं० अल्ला = उभर] (१) घुन्नी का वह उभरा हुआ भाग जो घास पास के तल से ऊँचा हो। इह। भीटा। (२) मिट्टी या चालू का ऊँचा ढेर। धुस। (३) छोटी पहाड़ी।

टीस—संज्ञा शी० [दे०] लुभती हुई पीड़ा। रह रह कर उठनेवाला दर्द। कसक। चसक। हल।

क्रि० प्र०—होना।

मुहा०—टीस उठना = दर्द शुरू होना। रह रह कर पीड़ा होना।

(घाव आदि का) टोस मारना = रहं रह कर दर्द करना ।
 संज्ञा स्त्री० [सं० टिच] किताय की सिलाई । जुनूबंदी ।
 टोसना—क्रि० प्र० [हिं० टोस] (१) चुभती पीड़ा होना । रह रह कर दर्द उठना । कसक होना । (२) घाव, फोड़े आदि का दर्द करना ।

टुंगना—क्रि० प्र० [हिं० टुंगा] (१) (चौपायों का) टहनी के सिरे की पत्तियों को दात से काटना । कुतरना । (२) कुतर कर चवाना । थोड़ा सा काट कर खाना ।

संयो० क्रि०—जाना ।—वेना ।

टुंच—वि० [सं० टुञ्च] पुञ्ज । मुञ्च । टुञ्चा ।

मुद्दा—टुंच मिटाना = थोड़ी पूँजी से काम करना । टुंच बढ़ाना = (१) थोड़ी सी पूँजी से काम प्रारंभ करना । (२) थोड़ी सी पूँजी से ज्यादा खेजना । धीरे धीरे बँतना ।

टुंटा—वि० [सं० टंटा वा हिं० टुटा] जिसका हाथ कटा हो । विना हाथ का । लूला ।

टुंठु—संज्ञा पुं० [सं०] (१) रसोनाक । सोना पाठा । धाल । टेंडु । (२) काला दैर ।

टुंठुका—संज्ञा स्त्री० [सं०] पाठा ।

टुंठ—संज्ञा पुं० [सं० टंठ = विना सिर का थड़, वा स्याणु = क्लिप्त वृत्त] (१) वह पेड़ जिसकी डाल टहनी आदि फट गई हो । टिन्न वृत्त । टूँठ । (२) वह पेड़ जिसमें पत्तियाँ न हों । (३) कटा हुआ हाथ । (४) एक प्रकार का भेत जिसके विषय में प्रसिद्ध है कि यह थोड़े पर सवार हो कर और थपना कटा हुआ सिर भागे रख कर रात को निकलता है ।

टुंठा—वि० [हिं० टंठ] [स्त्री० टंठी] (१) जिसकी डाल टहनी आदि फट गई हो । टूँठा । (२) जिसका हाथ फट गया हो । विना हाथ का । लूला । लुंजा । (३) (बैल) जिसका एक सोंग हटा हो । एक सोंग का बैल । टूँठा ।

संज्ञा पुं० (१) हाथ कटा आदमी । लूला मनुष्य । (२) एक सोंग का बैल ।

टुंठी—संज्ञा स्त्री० [सं० टुंठी] नामि । बोंबी ।

संज्ञा स्त्री० [सं० टंठ] बाहुदंड । मुज । मुस्क ।

मुद्दा—टुंठियाँ बांधना वा कसना = मुस्कें बांधना । टुंठियाँ लिखना = मुस्कें बँधना । हथकड़ी पढ़ना ।

वि० स्त्री० जिसे हाथ न हो । कटे हाथ की । लूली ।

टुंठ्याँ—संज्ञा स्त्री० [देग०] छोटी जाति का सूया वा सोता । सुग्गी । हसकी थोच पीली और गददर बैगनी रंग की होती है ।

वि० टेंगना । नाटा । बीना ।

हल—संज्ञा स्त्री० [सं० टुल] एक प्रकार का मोटा मुलायम सूती कपड़ा ।

क—वि० [सं० लोका = थोड़ा] थोड़ा । जरा । किंचित् । तनिक ।
 मुद्दा—डुक सा = जरा सा । थोड़ा सा ।

क्रि० वि० थोड़ा । जरा । तनिक । जैसे, डुक हृष देखो ।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग क्रि० वि० वल् ही अधिक होता है । कभी कभी यह यों ही कुछ बेपरवाई या श्रवण सत्तरता सूचित करने के लिये किसी क्रिया के साथ योला जाता है । जैसे, डुक जा कर खेला तो ।

डुकड़ादा—संज्ञा पुं० [हिं० डुकड़ा + दा० गदा] यह मिश्रमंगा जो घर घर रोटी का डुकड़ा माँग कर खाता हो । मिश्रंती । मंगला ।

वि० (१) मुञ्च । (२) अत्यंत निचैन । दरिद्र । कंगाल ।

डुकड़ादाई—संज्ञा पुं० दे० "डुकड़ादा" ।

संज्ञा स्त्री० डुकड़ा माँगने का काम ।

डुकड़तौड़—संज्ञा पुं० [हिं० डुकड़ा + तौड़ना] दूसरे का दिया हुआ डुकड़ा खा कर रहनेवाला धादमी । दूसरे का आश्रित मनुष्य ।

डुकड़ा—संज्ञा पुं० [सं० श्लोक (= थोड़ा), हिं० डुक, डुक + दा० (अर्थ०)] [स्त्री० अर्थ० डुकड़ी] (१) किसी वस्तु का वह भाग जो सबसे दूढ़ दूढ़ या कट छँट कर अलग हो गया हो । खंड । टिन्न अर्थ० रेजा । जैसे, रोटी का डुकड़ा, कागज या कपड़े का डुकड़ा, पत्थर या हँट का डुकड़ा ।

मुद्दा—डुकड़े बढ़ाना = फाट कर कई भाग करना । डुकड़े करना = फाट या तोड़ कर कई भाग करना । खंड करना । डुकड़े डुकड़े बढ़ाना = फाट कर खंड खंड करना । (किसी वस्तु को) डुकड़े डुकड़े करना = इस प्रकार तोड़ना कि कई खंड हो जाय । चूर चूर करना । खंडित करना ।

(२) चिद्र आदि के द्वारा विभक्त अर्थ० भाग । जैसे, खेत का डुकड़ा । (३) रोटी का डुकड़ा । रोटी का तोड़ा हुआ अर्थ० भास । कैर ।

मुद्दा—(दूसरे का) डुकड़ा तोड़ना = दूसरे की दी हुई रोटी खाना । दूसरे के दिए हुए भोजन पर निर्वाह करना । जैसे, वह सुसराल का डुकड़ा तोड़ता है । डुकड़ा तोड़ कर जवाब देना = दे० "डुकड़ा सा जवाब देना" । डुकड़ा देना = मिलमिले को रोटी या खाना देना । (दूसरे के) डुकड़ें पर पड़ना = दूसरे की दी हुई रोटी खा कर रहना । दूसरे के यहाँ के भोजन पर निर्वाह करना । पराई कमाई पर गुजर करना । जैसे, वह सुसराल के डुकड़ों पर पड़ा है । डुकड़ा माँगना = भील माँगना । डुकड़ा सा जवाब देना = मूढ़ और स्पष्ट शब्दों में अस्वीकार करना । संज्ञाच नहीं करना । साक इनकार करना । छापी क्षिप्यी न रखना । कैरा जवाब देना । डुकड़ा सा तोड़ कर हाथ में देना = दे० "डुकड़ा सा जवाब देना" ।

डुकड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० डुकड़ा] (१) छोटा डुकड़ा । खंड । जैसे, एक डुकड़ी नमक, काँच की डुकड़ी । (२) धान । कपड़े का डुकड़ा । (३) समुदाय । मंडली । दल । जैसे, यारों की

दुकड़ी। (४) पशु-पक्षियों का दल। कुँड। गोल। जल्था। जैसे, क्यूँतरीं की दुकड़ी। (५) सेना का एक थंथ। हिस्सा। कंपनी † (६) खर्चों का लहँगा। † (७) कार्तिक के त्नान का मेला।

दुकनी-संज्ञा स्त्री० दे० "दुकनी"।

दुकरी-संज्ञा स्त्री० [हिं० दुकड़ी] (१) सलम की तरह का एक कपड़ा। (२) दुकड़ी।

दुधलाना-क्रि० प्र० [दे०] (१) चुमलाना। मुँह में रख कर धीरे धीरे कूँचना। (२) गुमाली करना।

दुध्या-वि० [सं० दुग्ध] तुच्छ। शोधा। नीच। नीचाशय। छिद्योरा। छुद्र प्रकृति का। कमीना। शोहदा। जैसे, दुधा शायमी।

दुटका-संज्ञा पुं० दे० "दुटका"।

दुटनी-संज्ञा स्त्री० [हिं० दुँधी] भारी या गडुवे की पतली नली। छोटी टेंटी।

दुटपूँजिया-वि० [हिं० दूँध + पूँजी] घोड़ी पूँजी का। जिसके पास किसी काम में लगाने के लिये बहुत थोड़ा धन हो।

दुटरूँ-संज्ञा पुं० [अनु०] छोटी पंहुकी। छोटी फाट्टा।

मुहाँ-दुटरूँ सा = अकेला। एकाकी।

दुटरूँ दूँ-संज्ञा स्त्री० [अनु०] पंहुकी के बोलने का शब्द। पेंडुकी या फ़ारूता की बोली।

वि० (१) अकेला। एकाकी। जैसे, सब लोग अपने अपने घर गए हैं, मैं ही दुटरूँ दूँ रह गया हूँ। (२) दुपला पतला। कमजोर। जैसे, वेचारे दुटरूँ दूँ शायमी कहाँ तक करें।

दुटुका-संज्ञा स्त्री० [दे०] एक धाजा जिस पर चमड़ा मड़ा होता है।

दुटुघाँ-संज्ञा पुं० [दे०] एक चिड़िया का नाम।

दुटेल्ला-वि० [हिं० दुटना] दुटा हुआ। (लखा०)

दुड्डी-संज्ञा स्त्री० [सं० दुँडि] (१) नाभि। ठोड़ी।

संज्ञा स्त्री० [हिं० दुकड़ी] दुकड़ी। बतरी।

दुनका †-संज्ञा पुं० [दे०] बार बार मूँदभाव होने और उसने साथ धातु गिरने का रोग।

दुनकी †-संज्ञा स्त्री० [दे०] एक परदार कीड़ा जो घान को हानि पहुँचाता है।

दुनगा †-संज्ञा पुं० [सं० दुनु = पतला + अय = अग्रा = अन्त]

[स्त्री० दुनगी] ढाल या टहनियों के सिरे का भाग जिसकी पत्तियाँ छोटी और कोमल होती हैं। टहनियों का अगला भाग।

दुनगी-संज्ञा स्त्री० [हिं० दुनगा] ढाल या टहनियों के सिरे पर का भाग जिसकी पत्तियाँ छोटी और कोमल होती हैं। टहनियों का अगला भाग।

दुनदुना †-संज्ञा पुं० [दे०] मैदे का बना हुआ एक नमकीन पकवान। यह मैदे की चिपटी खंबी पत्तियों को धो में तल कर बनाया जाता है।

दुनहाया-संज्ञा पुं० दे० "दुनहाया"।

दुनाका-संज्ञा स्त्री० [सं०] सालमूली। मुसली।

दुनियाँ-संज्ञा स्त्री० [सं० दुँड] मिट्टी का टेंटीदार परतन।

दुनिहाई-संज्ञा स्त्री० दे० "दुनिहाई"।

दुन्ना-संज्ञा पुं० [सं० दुँड] यह नाल जिसमें फल खगते हैं और बरकते हैं, जैसे, कद्दू का दुन्ना।

दुपकना-क्रि० प्र० [अनु०] (१) धीरे से काटना या हँक मारना। (२) किसी के विरुद्ध धीरे से कुछ कह देना। चुगली खाना।

संयो० क्रि०-देना।

दुवी-संज्ञा स्त्री० [हिं० दूबना] गोता। हड्डी।

दुम्मा-संज्ञा पुं० [दे०] रुपय पाने की एक गैरमामूली रसीद।

दुरा-संज्ञा पुं० [?] (१) दुकड़ा। डली। दाना। खा। कष। (२) मोटे अनाज का दाना। ज्वार, बाजरे आदि का दाना।

दुलकना-क्रि० प्र० दे० "दुलकना"।

दुलड़ा-संज्ञा पुं० [दे०] एक प्रकार का बर्तन जो पूरी बंगाल और आसाम में होता है।

दुसकना-क्रि० प्र० दे० "दुसकना"।

दूँ-संज्ञा स्त्री० [अनु०] पादने का शब्द।

दूँक-संज्ञा पुं० दे० "दूँक"।

दूँगना-क्रि० प्र० [हिं० दुनगा] (१) (बैपानों का) टहनियों के सिरे की कोमल पत्तियों को दाँत से काटना। कुतरना। (२) थोड़ा सा काट कर खाना। कुतर कर चबाना।

संयो० क्रि०-जाना।-खेना।

दूँड-संज्ञा पुं० [सं० दुँड] [स्त्री० अरुण दूँडी] मरुदुदु मरुपी, दूँडू आदि कीड़े के मुँह के आगे निकली हुई बाल की तरह की दो पतली नलियाँ जिन्हें घँसा कर वे रक्त आदि बसते हैं। (२) जो, गँहूँ आदि की धाल में दाने के कोश के सिरे पर निकला हुआ बाल की तरह का पतला तुकीला श्रवणव। सीगा। सीगुर।

दूँडी-संज्ञा स्त्री० [सं० दुँड] (१) जो, गँहूँ, घान आदि की धाल में दाने के खोलों के ऊपर निकली हुई बाल की तरह पतली नाक। सीगा। (२) रोड़ी। नाभि। (३) गानज, मूली आदि की नाक। (४) किसी वस्तु की दूर तक निकली हुई नाक।

दृक्—संज्ञा पुं० [सं० स्तोक] दृकड़ा। खंड।

दृकरा—संज्ञा पुं० दे० "दृकड़ा"।

दृक्—संज्ञा पुं० [हिं० दृक] (१) दृकड़ा। खंड। (२) रोटी का दृकड़ा। (३) रोटी का चौपाई भाग। (४) मिर्चा। मीर।

दि० प्र०—सर्गाणा।

दृक्—संज्ञा स्त्री० [हिं० दृक] (१) दृक। खंड। दृकड़ा। (२) शंतिगा के मुककट के ऊपर की चकती।

दृक्—संज्ञा पुं० [?] भादू। (दि०)

दृक्—संज्ञा स्त्री० [हिं० दृक, सं० दृक] (१) यह शंका जो दृट कर बलाग हो गया हो। खंड। दृटन।

धी०—दृट दृट।

(२) दृटने का भाव। (३) किसी लिखावट में यह मूल से छटा हुआ शब्द या वाक्य जो पीछे से किनारे पर लिख दिया जाता है।

† संज्ञा पुं० टोटा। घाटा। कमी।

दृटन—क्रि० प्र० [सं० दृट] (१) किसी वस्तु का धायावत, ब्याव या भटके के द्वारा दो या कई भागों में एक यात्री विभक्त होना। टुकड़े टुकड़े होना। टंठित होना। भाग होना। जैसे, धड़ी दृटना, रस्ती दृटना।

संयो० क्रि०—जाना।

धी०—दृटना दृटना।

विशेष—'दृटना' और 'दृटना' क्रिया में यह अंतर है कि 'दृटना' परी वस्तुओं के लिये बोला जाता है; विशेषतः ऐसी जिनके भीतर अयक्राया या खाकी लगद रहती है, जैसे, घड़ा दृटना, धरतन दृटना, खपड़े दृटना, सिर दृटना। लकड़ी आदि चीमड़ वस्तुओं के लिये 'दृटना' का प्रयोग नहीं होता। पर 'दृटना' के स्थान पर परिचयनी हिंदी में 'दृटना' का प्रयोग होता है, जैसे, घड़ा दृटना।

(२) किसी शंग के जोड़ का उलट जाना। जिसी शंग का चोट खा कर घीका और बेकाम हो जाना। जैसे, हाथ दृटना, पैर दृटना। (३) किसी क्षणांतर चलनेवाली वस्तु का रुक जाना। चलते हुए क्रम का संग होना। लिबरलिखा बंद होना। जारी न रहना। उ०—पानी इस प्रकार गिराओ कि प्रार न दृटे। (४) किसी और पुरुषांगी वेग से जाना। किसी वस्तु पर झरटना। झुकना। जैसे, चीब का मांस पर दृटना, धरुवे का सिडीने पर दृटना।

संयो० क्रि०—पड़ना।

(४) अधिक समूह में घाना। एक यात्री बहुत रा भा पड़ना। पिछ पड़ना। जैसे, दृकान पर भादकें का दृटना, निपति या धायति दृटना।

संयो० क्रि०—पड़ना।

मुहा०—दृट दृट कर बरसना = बहुत अधिक पानी बरसना। मूलाधार बरसना।

(१) दल बांध कर सहसा आक्रमण करना। पुरुबारी धावा करना। जैसे, फौज का दुरमन पर दृटना।

संयो० क्रि०—पड़ना।

(०) घनायास कहीं से आ जाना। चकरमाव प्राप्त होना। जैसे, दो ही महीने में इतनी सम्पत्ति कहीं से दृट पड़ी ? उ०—आयो हमारे मया करि मोहन मोके तो माने महा-निधि दृटी।—वेव। (८) प्रयत्न होना। खजग होना। च्युत होना। मेल में न रहना। जैसे, पंक्ति से दृटना, गवाह का दृट जाना।

संयो० क्रि०—जाना।

(३) सर्वथ दृटना। लागव न रह जाना। जैसे, नाता दृटना, मित्रता दृटना।

संयो० क्रि०—जाना।

(१०) बुदबल होना। दृटा होना। दुबला पड़ना। पीया होना। धम होना। उ०—(क) वर खाने विना दृट गया है। (ख) उमका सारा यल दृट गया।

संयो० क्रि०—जाना।

मुहा०—(छुपे का) पानी दृटना = पानी फम होना।

(११) धनहीन होना। कंगाल होना। विगड़ घाना। जैसे, इस रोजगार में बहुत से मदाजन दृट गए।

संयो० क्रि०—जाना।

(१२) चञ्चल न रहना। बंद हो जाना। किसी संस्था, कार्यालय आदि का न रह जाना। जैसे, स्कूल दृटना, धामार दृटना, फोटी दृटना, मुकदमा दृटना।

संयो० क्रि०—जाना।

(१३) किसी स्थान, जैसे गढ़ आदि का शयु के अधिकार में जाना। युद में किले का ले लिया जाना। जैसे, जिखा दृटना। उ०—मेघनाद तर्क करह लराई। दृट न हार परम फटिनाई।—मुबसी।

संयो० क्रि०—जाना।

(१४) रुपका का यात्री पड़ना। वस्तु न होना। जैसे, धमी दिसाय साक नहीं हुआ, हमारे १०० दृटने हैं। (१५) टोटा होना। घाटा होना। दानि होना। (१६) शरीर में पैंडन या तनाव लिपु दृप पीड़ा होना। जैसे, पुसार चढ़ने पर जोड़ जोड़ दृटता है।

मुहा०—पदन या शंग दृटना = शंगफाद घाना।

(१७) पैरों से फल तोड़ा जाना। फलों का इकट्टा किया जाना। फल बरसना। जैसे, धाम दृटना।

दृटा—वि० [हिं० दृक] [सं० दृक] (१) टुकड़े किया हुआ। मय। टंठित।

भर की धार पैर डेढ़ हाथ तक ऊँचे होते हैं। इसका यदन चितकनरा पर चोंच काली होती है।

टेंटा—संज्ञा पुं० दे० "टेंटा"।

टेंटी—संज्ञा स्त्री० [हिं० टेंट] (१) करील। उ०—सूर कहाँ कैसे रुचि मानै टेंटी के फल खारे।—सूर। (२) करील का फल। कचड़ा।

टेंडु—संज्ञा पुं० [सं० टेंडर] श्योनाक। सोनापाठा।

टेंडुवा—संज्ञा पुं० [देण०] (१) गंला। घेंदू। धीची। (२) घेंदू।

टेंटे—संज्ञा स्त्री० [भनु०] (१) ताँते की बाली। (२) ध्वज की शकवाद। हुजमत। पष्टतापूर्ण यात। जैसे, कहाँ राम राम, कहाँ टेंटे।

क्रि० प्र०—करना।—मचाना।—होना।

टेंड—संज्ञा स्त्री० दे० "टिंड"।

टेंडली—संज्ञा स्त्री० दे० "टिंडली"।

टेड—संज्ञा स्त्री० "टेव"।

टेडकन—संज्ञा पुं० दे० "टेकन"।

टेडकी—संज्ञा स्त्री० [हिं० टेक] (१) किसी वस्तु को छुट्कने पर गिरने से बचाने के लिये उसके नीचे खगाई वस्तु। (२) जुलाहे की वह लकड़ी जो ताने की दाँदों में हलिये लगाई जाती है जिसमें ताना जमीन पर न गिरे, ऊपर उठा रहे।

टेक—संज्ञा स्त्री० [हिं० टिकना] (१) यह लकड़ी या खंभा जो किसी भारी वस्तु को अड़ाए या टिकाए रखने के लिये नीचे या गगल से भिड़ा कर लगाया जाता है। चाँड़। घूनी। धम।

क्रि० प्र०—लगाना।

(२) टिकने या भार देने की वस्तु। थोड़गने की चीज़।

दासना। सहारा। (३) आश्रय। धवलंब। उ०—दूँ सुद्रिका टेक तेहि अवसर सुचि समीरसुत पैर गहेरी।—मुलसी।

(४) बैठने के लिये बना हुआ ऊँचा चबूतरा या बेदी। बैठने का स्थान। जैसे, रामटेक। (५) ऊँचा टीला। छोटी पहाड़ी।

(६) विधि में टिका या पैदा हुआ संकल्प। मग में डाली हुई यात। हड़ संकल्प। अड़। हट। जिद। उ०—सोह गोसाईं जो विधि गति छँकी। सकह को टारि टेक जो टेकी।—मुलसी।

क्रि० प्र०—करना।

मुहा०—टेक निमना = (१) जिस बात के लिये आग्रह या हठ हो उसका पूरा होना। (२) प्रतिभा पूरी होना। टेक रहना = दे० "टेक निमना"। टेक पकड़ना या गिरे, ऊपर = हट करना। विद करजा।

(३) यह बात जो अभ्यास पढ़ जाने के कारण कोई मनुष्य अमर्य रहे। यात। श्राद्ध। संस्कार।

क्रि० प्र०—पड़ना।

(म) गीत का यह पद या टुकड़ा जो धार धार गाया जाय। ख्याती। (६) पृथ्वी की नोक जो पानी में कुछ दूर तक चली गई हो। (लया०)

टेकड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० टेक] (१) टीला। ऊँचा घुसस। (२) छोटी पहाड़ी।

टेकन—संज्ञा पुं० [हिं० टेकना] [स्त्री० टेकनी] यह वस्तु जो भारी या लुढ़कनेवाली वस्तु को टिकाए रखने के लिये उसके नीचे या गगल में लगाई जाय। अटुकन। रोक। जैसे, घड़े के नीचे टेकन लगा दो।

क्रि० प्र०—लगाना।

टेकना—क्रि० सं० [हिं० टेक] (१) खड़े खड़े या बैठे बैठे धम से बचने के लिये शरीर के योग से। किसी वस्तु पर थोड़ा बहुत दालना। सहारे के लिये किसी वस्तु को शरीर के साथ भिड़ाना। सहारा लेना। दासना लेना। आश्रय पनाना। जैसे, दीवार या खंभा टेक कर खड़ा होना।

संयो० क्रि०—जेना।

(२) किसी शंग को सहारे यादि के लिये कहाँ टिकाना। उहराना या रखना।

मुहा०—माया टेकना = प्रयास करना। दंडवत करना।

(३) चलने, चढ़ने, उठने बैठने आदि में शरीर का कुछ भार देने के लिये किसी वस्तु पर हाथ रखना या उसके हाथ से पकड़ना। सहारे के लिये यामना। जैसे, चारपाईं टेक कर उठना बैठना, लाठी टेक कर चलना। उ०—(क) सूर प्रभु कर सेन टेकत कयहुँ टेकत दहरी।—सूर। (ख) नाचत गावत गुन की खानि। समित भए टेकत पिय पानि।—सूर। (३) चलने में गिरने पड़ने से बचने के लिये किसी का हाथ पकड़ना। हाथ का सहारा लेना। उ०—गृह गृह गृह द्वार फिरो गुम को प्रभु छुँदें। श्रंध श्रंध रेकि चलेँ क्यों न परे गाड़े ?—सूर। † * (४) टेक करना। हट करना। ठानना। उ०—सोह गोसाईं जेहि विधि गति छँकी। सकह को टारि टेक जो टेकी।—मुलसी।

संज्ञा पुं० [देण०] एक प्रकार का जंगली धान। चनाव।

टेकनी—संज्ञा स्त्री दे० "टेकन"।

टेकर, टेकरा—संज्ञा पुं० [हिं० टेक] [स्त्री० टेकरी] (१) टीला। उठी हुई भूमि। (२) छोटी पहाड़ी।

टेकरी—संज्ञा स्त्री० दे० "टेकना"।

टेकला † *—संज्ञा स्त्री० [हिं० टेक] धुन। रट। उ०—धन धन पुकारहँ पकला, दाहँ गले विध मेँखला, एक नाम की है टेकला, सोहयत की ताहँ में क्या कलहँ।—कपीर।

टेकली—संज्ञा स्त्री० [हिं० टेक] किसी चीज को बढाने या गिराने का औजार । (लघ०)

टेकान—संज्ञा पुं० [हिं० टेकाना] (१) टेक । यह लकड़ी जो किसी गिनेवाली घरन छत आदि को सँभालने के लिये उसके नीचे खड़ी कर दी जाती है । चाँड़ । (२) यह ऊँचा बधूतरा या लंबा जिस पर योन्ता होनेवाले ध्रपना योन्ता धड़ कर थोड़ी देर सुन्ना लेते हैं । धरन छीहा ।

टेकाना ि—क्रि० सं० [हिं० टेकाना] (१) किसी वस्तु को कहीं से जाने में सहायता देने के लिये पकड़ना । उठा कर ले जाने में सहाय देने के लिये धामना । जैसे, चारपाई को टेका लो, भीतर कर दें ।

संयो० क्रि०—देना ।—लेना ।

(२) बढने बैठने या चलने फिरने में सहायता देने के लिये पकड़ना । सहारा देने के लिये धामना । जैसे, ये इतने कमजोर हो गए हैं कि दो आदमी टेका कर उन्हें भीतर याहर ले जाते हैं ।

टेकानी ि—संज्ञा स्त्री० [हिं० टेकाना] पहिये को रोकने की कील । किल्ली ।

टेकी—संज्ञा पुं० [हिं० टेक] (१) कहीं हुई बात पर जमा रहने-बलदा । मतिज्ञा पर हड़ रहनेवाला । (२) अडूनेवाला । हठी । डुरामही । जिद्दी ।

टेकुन्ना ि—संज्ञा पुं० [सं० तडुकं, प्रा० टुकुण्ड] चारों का तकला जिस पर सुल कात कर लपेटा जाता है ।

संज्ञा पुं० [हिं० टेक] (१) टिकाने या थडाने की वस्तु । थडुकना । (२) सहारे की यह लकड़ी जो एक पहिया निकाल बने पर गाड़ी को ऊपर उहाराए रखने के लिये लगाई जाती है ।

टेकुरा ि—संज्ञा पुं० [दे०] पान ।

टेकुरी—संज्ञा स्त्री० [सं० तडुकु, हिं० टेकुआ] (१) बिक्री की जगह हुआ सूधा जिसके घूमने से फँटी हुई हरे का सूत फत कर लिपटता जाता है । सूत कातने का तकला । (२) बाँस की चाँड़ों के एक घेर पर लाह लगा कर बनाई हुई जोलाहरों की फिरकी जिसकी नाक में रोमन फँसाया रहता है । (३) रस्ती धडने का तकला या औजार । (४) चमारों का सूधा जिससे वे सामा ढींचते और निकालते हैं । (५) गोप नाम का गढ़ना धामने के लिये सोमारों की सलाई जिससे सार खींच कर फँदा दिया जाता है । (६) मूर्ति पगनेवालों का चिपटी धार का एक औजार जिससे वे मूर्ति का तल साफ और चिकना करते हैं ।

टेघरना ि—क्रि० थ० दे० “टिघलना” ।

टेचिन—संज्ञा पुं० [थं० टिचिंग] एक प्रकार का काँटा जिससे एक और भाया होता है और दूसरी धार पेच और चित्री होती

है । यह किसी चीज को थडाने या धामने के काम में आता है । (लघ०) ।

टेडफा—संज्ञा पुं० [सं० तडटक] काम में पहनने का एक गढ़ना ।

टेढ़ा—संज्ञा स्त्री० [हिं० टेड़ा] (१) टेढ़ापन । वकता । (२) अकड़ । पूँड । उजड़पन । नटखटी । शरारत ।

मुहा०—टेढ़ की लेना = नटखटी करना । शरारत करना । उजड़पन करना ।

† वि० दे० “टेड़ा” ।

टेढ़ाविहंगा—वि० [हिं० टेढ़ा + वेहण] टेढ़ा मेढ़ा । टेढ़ा और वेहंगा । बेदील ।

टेढ़ा—वि० [सं० तित् = टेड़ा] [स्त्री० टेड़ी] (१) जो लगातार एक ही दिशा को न गया हो, हूपर उभर झुका या घूमा हो । फेर एा कर गया हुआ । जो सीधा न हो । थक । कुटिल । जैसे, टेड़ी सफ़ीर, टेड़ी छड़ी, टेड़ा रास्ता ।

घी०—टेड़ा मेढ़ा = जो सीधा और सुधील न हो । टेड़ा बाँका = नेक भोक का । बना ठना । छैल चिकानिया ।

मुहा०—टेड़ी चिनचन = टिखी चितवन । माचमरी टट्टि ।

(२) जो अपने आधार पर समकोण बनाता हुआ न गया हो । जो समानांतर न गया हो । तिरछा । (३) जो सुगम न हो । जो सहज न हो । कठिन । टेढ़ा । फेरफार का । मुश्किल । मेचीला । जैसे, टेड़ा काम, टेड़ा प्रश्न, टेड़ा मामला ।

मुहा०—टेड़ी सीर = मुश्किल काम । कठिन कार्य । हुकर कार्य । (इस मुहा० के संबंध में लोग एक कथा कहते हैं । एक आदमी ने एक शंभे से पूछा “दूती लाओगे ?” शंभे ने पूछा “भीर कैसे होती है ?” उस आदमी ने कहा “सभे” । फिर शंभे ने पूछा “सभेद कैसे ?” उसने उत्तर दिया “जैसा धगडा होता है” । शंभे ने पूछा “धगला कैसे होता है ?” इस पर उस आदमी ने हाथ टेढ़ा करके दिखाया । शंभे ने टटोल कर कहा—“यह तो टेड़ी सीर है न खाई जायगी) ।

(४) जो शिट या नम्र न हो । बसत । उग्र । उग्र । हुण्डील । कोपयात् । जैसे, टेड़ा आदमी, टेड़ी बात । घ०—टेड़े आदमी से कोई नदीं बोलता ।

मुहा०—टेड़ा पढ़ना या होना = (१) उग्र रूप धारण करना । विरहना । कुपित होना । क्रोध व्यहार करना । जैसे, कुछ टेड़े पढ़नेगी तभी रूपया निकलेगा, सीधे से मार्गने से नहीं । (२) अकड़ना । पेंटना । टराना । जैसे, यह जरा सी बात में टेड़ा हो जाता है । टेड़ी भाँव से देखना = क्रूर दृष्टि करना । शत्रुता की दृष्टि से देखना । अन्ध्र करने का विचार करना । बुरा व्यवहार करने का विचार करना । टेड़ी भाँव करना = कुपित दृष्टि करना । क्रोध की आकृति बनना । विगड़ना ।

देड़ी सीधी सुनाना = ऊँची नीची सुनाना । खरी लोटी सुनाना । भत्ता धुप कहना । देड़ी सुनाना = दे० "देड़ी सीधी सुनाना" ।

देढ़ाई-संज्ञा स्त्री० [हि० देड़ा] देड़ा होने का भाव । देढ़ापन ।

देढ़ापन-संज्ञा पुं० [हि० देड़ा + पन (प्रत्य०)] देढ़ा होने का भाव ।

देड़े-क्रि० वि० [हि० देड़ा] सीधे नहीं । घुमाव फिटाव के साथ । जैसे, वह देड़े जा रहा है ।

मुहा०—देड़े देड़े जाना = इतराना । घमंड करना । व०—(क) कबहुँ कमला चपला पाप के देड़े देड़े जात । कबहुँ क मग मग धुरी टरोरत, भोजन के थिललात ।—सूर। (ख) जो रहीम छोड़ो थड़े तो अति ही इतराना । प्यादा से फरजी मयो देड़े देड़े जात ।—रहीम ।

टेना-क्रि० स० [हि० टेन + ना (प्रत्य०)] (१) किसी हथियार की धार का तेज करने के लिये उसे पत्थर आदि पर रगड़ना । तेज करने के लिये रगड़ना । व०—डुबरी करी कुबलि कैकेई । कपट हुरी उर-पाहन टेई ।—तुलसी । (२) मूँछ के धालों को खड़ा करने के लिये पेंटना । जैसे, मूँछ टेना ।

टेनिस-संज्ञा पुं० [अ०] गेंद का एक प्रकार का अंगरेजी खेल ।

टेनी-संज्ञा स्त्री० [दे०] छोटी डैंगली ।

मुहा०—टेनी भारतना = सौदा तौलने में उँगली को इस तरह घुमाना फिराना कि चीज कम बचे । (सौदा) कम तौलना ।

टेपारा-संज्ञा पुं० दे० "टिपारा" ।

टेयुल-संज्ञा पुं० [अ०] मेड़ ।

टेम-संज्ञा स्त्री० [हि० टिमराना] दीपगिया । दिप की लौ । दीपक की श्रैति । लाट ।

संज्ञा पुं० [अ० टयम] समय । वक ।

टेमन-संज्ञा पुं० [दे०] एक प्रकार का सर्प ।

टेमा-संज्ञा पुं० [दे०] कटे हुए चारे की छोटी थैलिया ।

टेर-संज्ञा स्त्री० [सं० तार = संगत में ऊँचा स्वर] (१) गाने में ऊँचा स्वर । तान । टीप ।

क्रि० प्र०—लगाना ।

(२) बुलाने का ऊँचा शब्द । पुकारने की आवाज़ । बुलाहट । पुकार । हाँक । व०—(क) टेर लखन सुनि विकल जानकी अति आसुर उठि धाई ।—सूर । (ख) बुआ की डेर सुनी जई फूलि फिरि शत्रुप्र ।—केशव ।

संज्ञा स्त्री० [सं० तार = तै करना] निर्वाह । गुजुर ।

मुहा०—टेर करना = गुजारना । विताना । काटना । जैसे, जिंदगी टेर करना ।

टेरना-क्रि० स० [हि० टेर + ना (प्रत्य०)] (१) ऊँचे स्वर से गाना । तान लगाना । (२) बुलाना । पुकारना । हाँक लगाना ।

व०—(क) भई साँफ जननी डेरत है कहीं गप चारो भाई ।—सूर । (ख) फिरि फिरि राम सीय तन हेरत । रुपित जानि जल लेन लखन गप, भुज उदाय ऊँचे चढ़ि डेरत ।—तुलसी । क्रि० स० [सं० तारण = तै करना] (१) तै करना । चलता करना । निवाहना । पूरा करना । जैसे, योड़ा सा काम और रह गया है किसी प्रकार टेर ले चले । (२) विताना । गुजारना । काटना । जैसे, यह इसी प्रकार जिंदगी टेर ले जायगा ।

संयो० क्रि०—ले चलना ।—ले जाना ।

टेरपा-संज्ञा पुं० [दे०] हुकके की वह नली जिस पर चिलम रखी जाती है ।

टेरा-संज्ञा पुं० [?] (१) टेरा। अंकोज का पेड़ । (२) पेड़ों का ढग । तना । वृक्षस्तंभ । जैसे, केले का टेरा । (३) शाखा ।

वि० [सं० टेर] पूँचाताना । टेपरा । भेंगा ।

टेराकोटा-संज्ञा पुं० [अ०] (१) पकी हुई मिट्टी जिससे मूर्तियाँ, हमारतों में लगाने के लिये पेक्यूटे आदि बनते हैं । (२) पकी हुई मिट्टी का सा रंग । हँटकोहिया रंग ।

टेरी-संज्ञा स्त्री० [दे०] टहनरी । पतली शाखा । जैसे, नीम की टेरी ।

संज्ञा स्त्री० [हि० टेडुडी] दूरी बुनने का सूजा ।

संज्ञा स्त्री० [दे०] (१) एक पौधा जिसकी कलियाँ रंगने और चमड़ा सिमाने में काम आती हैं । इसे 'बलेरी' और 'कुत्ती' भी कहते हैं । (२) बकम की फली ।

टेरो-संज्ञा स्त्री० [दे०] सरसों का एक भेद । बलठी ।

टेलिग्राफ-संज्ञा पुं० [अ०] तार जिसके द्वारा खबरें भेजी जाती हैं । दे० "तार" ।

टेलिग्राम-संज्ञा पुं० [अ०] तार से भेजी हुई खबर ।

टेलिफोन-संज्ञा पुं० [अ०] वह तार जिसके द्वारा एक स्थान पर कहा हुआ शब्द कितने ही फीस दूर के दूसरे स्थान पर सुनाई पड़ता है ।

विशेष—इसकी साधारण युक्ति यह है कि दो चोंगे लो जिनका सुँह एक थोर कागज चमड़े आदि से मढ़ा हो और दूसरी थोर खुला हो । मड़े हुए चमड़े के बीचो बीच से कोड़े का एक लंबा तार ले जा कर दोनों चोंगों के बीच लगा दो । यदि एक चोंगे में कोई बात कही जायगी और दूसरे चोंगे में (जो दूर पर होगा) किसी का कान लगा होगा तो वह बात सुनाई पड़ेगी । पर यह युक्ति थोड़ी ही दूर के लिये काम दे सकती है । अधिक दूर के लिये विज्जी के प्रवाह का सहारा लिया जाता है । युँचक की एक छड़, जिसमें रेखन (या और कोई ऐसा पदार्थ जिससे एक कर विज्जी का प्रवाह न जा सके) से लिपटा हुआ तथै का तार कम्पानी

की तरह घुमा कर जड़ा रहता है, एक नली के भीतर बँटाई रहती है। चूबक के एक छोर के पास लोहे का एक पत्तर बँधा रहता है। यह पत्तर काष्ठ की लोखी में रहता है जिसका मुँह एक छोर चोंगी की तरह खुला रहता है। इस प्रकार दो चोंगी की आवश्यकता टेलिफोन में होती है एक धोलने के लिये, दूसरा सुनने के लिये। इन दोनों चोंगी के बीच तार लगा रहता है। शब्द वायु में उत्पन्न तरंग वा कंप मात्र हैं। मुँह से निकला हुआ शब्द चोंगी के भीतर की वायु को कंपित करता है जिसके कारण बँधे हुए लोहे के पत्तर में भी कंप होता है अर्थात् वह धागे पीछे जल्दी जल्दी हिलता है। इस हिलने से चूबक की शक्ति एक बार घटती और एक बार बढ़ती रहती है। इस प्रकार तार की मँडलाकार कमानों के एक बार एक छोर और दूसरी बार दूसरी छोर विजली उत्पन्न होती रहती है। इसी विजली के प्रवाह द्वारा बहुत दूर के स्थानों पर भी शब्द पहुँचाया जाता है। टेलिफोन के द्वारा स्थल पर सौ सौ कोस दूर तक की और समुद्र में ३०—४० कोस तक की कड़ी बातें सुनाई पड़ती हैं।

टेली—संज्ञा पुं० [दे०] मम्मले धाकार का एक पेड़ जिसकी लकड़ी लाल और मजबूत होती है तथा चारपाई, श्रान्तारों के दस्तें आदि बनाने के काम में आती है। यह पेड़ आसाम, कर्णाट, सिखट्ट और चटर्गाव में बहुत होता है।

टैच—संज्ञा स्त्री० [हिं० टैक] अय्यास। आदत। धान। स्वभाव। प्रकृति। उ०—(क) सुसु मैया याकी टैच लरन की, सऊच घेचि सी खाई।—तुलसी। (ख) तुम तो टैच जानतिहि हैंहैं। तऊ मोहि कहि थावै। प्रात उठत मेरे लाल लखैतहि माखन रोटी भावै।—सूर।

क्रि० प्र०—पड़ना।

टैचकी—संज्ञा स्त्री० [हिं० टैकन, टैकन] (१) दोनो छोरों पर कुछ दूर तक बांस की एक चिरी लकड़ी जो लुलाहों की बाँझी में इसलिये लगी रहती है जिसमें तागा गिरने न पावे। (२) नाव के पालों में से सध से ऊपर का छोटा पाल।

टैचना—क्रि० सं० दे० 'टैना'।

टैचा—संज्ञा पुं० [सं० टिचन] (१) जन्मपत्री। जन्मकुंडली। (२) लग्नपत्र जिसमें विवाह की मिति, दिन, घड़ी आदि लिखी रहती है और जिसे लड़की के धर्मा से शकुन के साथ नाई ले जा कर लड़ने के पिता को विवाह से १० या १२ दिन पहले देता है।

टैचियाँ—संज्ञा पुं० [हिं० टैचना] टैनेवाला। सिल्ली पर धार तेज करनेवाला। घोरला करनेवाला। उ०—जहाँ जमजातन घोर नदी भट कोटि जलचर दंत टैचिया।—तुलसी।

टैसुआ—संज्ञा पुं० दे० 'टैस'।

टैसू—संज्ञा पुं० [सं० किंशुक] (१) पलारा का फूल। दाक का फूल।

विद्योप—इसे अवालने से इसमें से एक बहुत अच्छा पीछा रंग निकलता है जिससे पहले कपड़े बहुत रंगे जाते थे। दे० "पलारा"।

(२) पलारा का पेड़। (३) लड़कों का एक उत्सव जिसमें विजयादशमी के दिन बहुत से लड़के इकट्ठे हो कर घास का एक पुतला सा लेकर निकलते हैं और कुछ गाते हुए घर घर घूमते हैं। प्रत्येक घर से उन्हें कुछ अन्न या पैसा मिलता है। इसी प्रकार पंच दिन तक अर्थात् शरदपूर्णा तक करते और जो कुछ भिधा मिलती उसे इकट्ठा करते जाते हैं। पूर्ण की रात को मिले हुए द्रव्य से बावा मिठाई आदि ले कर वे थोपे हुए खेतों पर जाते हैं जहाँ बहुत से लोग इकट्ठे होते हैं और घनायल की परीचा संबंधी बहुत सी बसरतें और खेज होते हैं। सत्र के अंत में लारा मिठाई लड़कों में बँटती है। टैसू के गीत इस प्रकार के होते हैं। झुली की जड़ से निकली पतंग। नौ सौ भौती नौ सौ रंग। रंग रंग की यनी कमान। टैसू आया घर के द्वारें। खोले रानी चंदन किवार। उ०—जो कच फनक कचोरा भरि भरि सेवत तेल फुलेल। तिन फेसन को भस्म चढ़ावत टैसू के से खेज।—सूर।

टैहला—संज्ञा पुं० [दे०] विवाह के व्यवहार। ग्याह की रीति रसम।

टैयाँ—संज्ञा स्त्री० [दे०] एक प्रकार की छोटी कौड़ी जिसकी पीठ साधारण कौड़ी से कुछ चिपटी होती है और उसपर दो बार उभरे हुए थड़े दाँसे होते हैं। इसका रंग नीलापन लिए नहीं होता। कुछ पीलापन लिए या बिलकुल सफेद होता है। फँकने से यह चित्त अधिक पड़ती है इसलिये इसका व्यवहार जुए में होता है। इसे चित्ती भी कहते हैं।

टैकस—संज्ञा पुं० [थं०] कर वा मद्रसूल जो राज्य की धार से किसी वस्तु पर लगाया जाय। जैसे, इनकम-टैक्स।

टैन—संज्ञा स्त्री० [दे०] एक प्रकार की घास जो चमड़ा सिम्माने के काम में आती है।

टैना—संज्ञा पुं० [दे०] घास का पुतला या उँठे पर रखी हुई काली हाँड़ी आदि जिन्हें खेतों में पशियों को दूराने के लिये रखते हैं।

टैनी—संज्ञा स्त्री० [दे०] भेड़ों का मुँह। (गड़िये)

टैरा—संज्ञा पुं० दे० "टैरा"।

टैरी—संज्ञा स्त्री० दे० "टैरी"।

टोंका—संज्ञा पुं० दे० "टोंका"।

संज्ञा स्त्री० दे० "टोक"।

टोंका—संज्ञा पुं० [सं० स्तोक = योद्धा] (१) छोर। सिरा। किनारा।

(२) नोक । कोना । (३) जमीन जो नदी में कुछ दूर तक चली गई हो । (महाह)

टोगा-संज्ञा पु० दे० "टोगा" ।

टोगू-संज्ञा पु० [दे०] फलनेवाली एक झाड़ी जिसकी छाव के रेशों से रस्सी बनाई जाती है । जिति । जक ।

टोंचना-क्रि० सं० [सं० टंकन] चुभाना । गड़ाना । घँसाना ।

टोंट-संज्ञा स्त्री० [सं० टुंड] ठार । चोंच ।

टोंटरी-संज्ञा स्त्री० दे० "टोंटी" ।

टोंटा-संज्ञा पु० [सं० टुंड] (१) चिट्ठिया की चोंच के आकार की निकली हुई कोई वस्तु । (२) चोंच के आकार के गड़े हुए काठ के बड़े दो हाथ लंबे टुकड़े जो घर की दीवार के बाहर की ओर पंक्ति में बंधी हुई छाजन को सहारा देने के लिये लगाए जाते हैं । घोड़िया । (३) पानी आदि डालने के लिये बरतन में छागी हुई नली ।

टोंटी-संज्ञा स्त्री० [सं० टुंड] (१) पानी आदि डालने के लिये मारी लोटे आदि में लगी हुई नली जो दूर तक निकली रहती है । तुलतुली । (२) पशुओं का धूपन । जैसे, सूअर की टोंटी ।

टोंस-संज्ञा स्त्री० दे० "टोंस" ।

टोभा-संज्ञा पु० [सं० टेय = पत्नी] गद्दा । (पंजाब)

टोहरी-संज्ञा स्त्री० [दे०] छोटी जाति का घूसा जिसकी चोंच पीली होती है और कंठ से ले कर चोंच तक सारा भाग धँगी होता है । तोती ।

टोई-संज्ञा स्त्री० [दे०] पेर । एक गाँव से दूसरी गाँव तक का भाग ।

टोका-संज्ञा पु० [सं० टोक] एक बार में झुँह से निकला हुआ शब्द । किसी पद या शब्द का टुकड़ा । उच्चारण किया हुआ अक्षर । जैसे, एक टोक झुँह से न निकला ।

संज्ञा स्त्री० (१) छोटा सा घाघर जो किसी को कोई काम करते देख उसे टोकने या पूछ ताछ करने के लिये कहा जाय । जैसे, 'क्या करते हो ?', 'कहाँ जाते हो ?' इत्यादि । पूछ ताछ । प्रश्न आदि द्वारा किसी कार्य में बाधा ।

यो०—टोक टाक = पूछ ताछ । प्रश्न आदि द्वारा बाधा । जैसे, थड़े जल्दी काम से जा रहे हैं, टोक टाक न करो । रोक टोक = मनाही । मुमानिष्यव । निषेध ।

(२) नजर । बुरी दृष्टि का प्रभाव । (खि०) ।

मुहा०—टोक में आना = नजर लगानेवाले आदमी के सामने पड़ जाना । जैसे, यथा टोक में आ गया ।

टोकना-क्रि० सं० [हि० टोक] (१) किसी को कोई काम करते हुए देख कर उसे कुछ कह कर रोकना या पूछ ताछ करना । जैसे, 'क्या करते हो ?' 'कहाँ जाते हो ?' इत्यादि । धीच में योल बटना । प्रश्न आदि कर के किसी कार्य में बाधा डालना । व०—योपिन के यह ध्यान कन्हाई । नेकु न

धंतर होय कन्हाई । घाट याट जमुना तट रोके । मारग चलत जहाँ तैह टोके ।—सूर ।

विशेष—यात्रा के समय यदि कोई रोक कर कुछ पूछता है तो यात्री अपने कार्य की सिद्धि के लिये बुरा शकुन समझता है ।

(२) नजर लगाना । बुरी दृष्टि डालना । हँसना । (३) एक पहलवान का दूसरे पहलवान से लड़ने के लिये कहना ।

संज्ञा पु० [?] [खी० टोकनी] (१) टोकरा । डला । (२) पानी रखने का घातु का बड़ा बरतन । एक प्रकार का हंडा ।

टोकनी-संज्ञा स्त्री० [हि० टोकना] (१) टोकरा । डलिया । (२) पानी रखने का छोटा हंडा । (३) बटलोई । देगची ।

टोकरा-संज्ञा पु० [?] [खी० टोकरा] बर्तन की चिरी हुई फट्टियों, धरहर, म्हाज की पतली दहनियों आदि को गाँड़ कर बनाया हुआ गोल और गहरा बरतन जिसमें घास, तारकारी, फल आदि रखते हैं । छायाड़ा । डला । भाया । पचा । मुहा०—टोकरे पर हाथ रहना = हजत बनी रहना । परदा न खुलना । भ्रम बना रहना ।

टोकरिया-संज्ञा स्त्री० दे० "टोकरा" ।

टोकरा-संज्ञा स्त्री० [हि० टोकरा] (१) छोटा टोकरा । छोटा डला या छायाड़ा । भाँपी । म्फोली । (२) देगची । बटलोई ।

टोकरा-संज्ञा पु० [दे०] उपाती लड़का । नरपट लड़का ।

टोकरा-संज्ञा स्त्री० [दे०] नरियरी । मारियल की आधी खोपड़ी ।

टोका-संज्ञा पु० [दे०] एक कीड़ा जो बड़े की फसल को हानि पहुँचाता है ।

संज्ञा पु० दे० "टोका" ।

टोकारा-संज्ञा पु० [हि० टोक] यह संकेत का शब्द जो किसी को कोई बात चेताने या स्मरण दिलाने के लिये कहा जाय । द्वारा के लिये झुँह से निकाला हुआ शब्द ।

टोट-संज्ञा पु० दे० "टोटा" ।

टोटका-संज्ञा पु० [सं० टोटक] (१) किसी भाषा को बूर करने या किसी मनोरथ को सिद्ध करने के लिये कोई ऐसा प्रयोग जो किसी अलौकिक या दैवी शक्ति पर विधास करके किया जाय । टोना । संश्र मंत्र । तांत्रिक प्रयोग । लटका ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

मुहा०—टोटका करने आना = आकर कुछ भी न ठहरना । थोड़ी देर भी न बैठना । तुरंत चला जाना । जैसे, थोड़ा बैठो, क्या टोटका करने आई थी । (खि०) । टोटका होना = किसी बात का च्यपट हो जाना । किसी बात का ऐसी जल्दी होना कि देख कर आश्चर्य हो ।

(२) काली हाँड़ी जिसे खेतों में फसल को नजर से बचाने के लिये रखते हैं ।

टोटकेहार—संज्ञा स्त्री० [हिं० टोटका] टोटका करनेवाली । टोना या जाड़ करनेवाली ।

टोटल—संज्ञा पुं० [अं०] जोड़ । टीक । मीजान ।

मुहा०—टोटल मिलाना=जोड़ टीक करना ।

टोटा—संज्ञा पुं० [सं० तुंड] (१) बाल आदि का कटा हुआ टुकड़ा । (२) मोमपत्ती का जलने से बचा हुआ टुकड़ा ।

(३) कारवल । (४) एक प्रकार की धातुधात्री ।

संज्ञा पुं० [हिं० टूटना, टूटा] (१) घाटा । हानि ।

क्रि० प्र०—ठठाना ।—सड़ना ।

मुहा०—टोटा देना या भरना=नुकसान पूरा करना । घाटा पूरा करना । धरजाना देना ।

(२) कमी । अभाव । जैसे, यहाँ कागज का क्या टोटा है ।

क्रि० प्र०—पड़ना ।

टोड़ा—संज्ञा पुं० [सं० तुंड] चोंच के आकार का गढ़ा हुआ काठ का डेढ़ दो हाथ लंबा टुकड़ा जो घर की दीवार के बाहर की ओर पंक्ति में बड़ी हुई छाजन का सहारा देने के लिये लगाया जाता है । टोंटा ।

टोड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० टोटकी] (१) एक रागिनी जिसके गाने का समय १० दंड से १६ दंड पर्यंत है । इसका स्वरमाम इस प्रकार है—स रे ग म प ध नि स स नि ध प म ग ग रे स । रे सा नि स नि ध ध नि स रे ग रे स नि स नि ध । प ग ग म ग रे ग रे स रे नि स नि ध स रे ग म प ध ध प । म ग म ग रे स नि स रे रे स नि ध ध ध नि स । हनुमत मत से इसका स्वरमाम यह है—म प ध नि स रे ग म श्रयवा स रे ग म प ध नि स । यह संपूर्ण जाति की रागिनी है । इसमें शुद्ध मध्यम और तीव्र मध्यम के अतिरिक्त बाकी सब स्वर कामल होते हैं । यह भैरव राग की स्त्री मानी जाती है और इसका स्वरूप इस प्रकार कहा गया है—हाथ में चीणा लिए हुए, प्रिय के विरह में गायी हुई, श्वेतवस्त्र धारण किए और सुंदर नेत्रोंवाली । (२) चार मात्राओं का एक ताल जिसमें २ आघात और २ खाली रहते हैं । इसका तबले का

+ धोल यह है—धिन् धा, मेदिन, जिनता, मेदिन । धा ।

+ धपवा धेदां केटे, नेदा केटे । धा ।

टोनहार—वि० [हिं० टोना] [स्त्री० टोनही] टोना करनेवाला । जाड़ मारनेवाला ।

टोनहार—संज्ञा स्त्री० [हिं० टोना + हार (प्रत्य०)] (१) टोना करनेवाली । जाड़ मारनेवाली । नजर लगानेवाली । (२) मंत्र और माङ्गलिक करनेवाली ।

टोनहाया—संज्ञा पुं० [हिं० टोना] टोना करनेवाला मनुष्य । जाड़ करनेवाला मनुष्य ।

टोना—संज्ञा पुं० [सं० तंत्र] (१) मंत्र तंत्र का प्रयोग । जाड़ ।

क्रि० प्र०—करना ।—चलाना ।—मारना ।

(२) एक प्रकार का गीत जो विवाह में गाया जाता है और जिसमें 'टोना' शब्द कई बार आता है ।

संज्ञा पुं० [रेंग०] एक शिकारी चिड़िया । उ०—गुरां धाज धांसे, कुड़ी, बहरी, लगर लीन टोने जरकटी ल्यां सचान मानवारे हैं ।—रघुराज ।

† क्रि० सं० [सं० त्वक्=स्पर्शिय + ना (प्रत्य०)] हाथ से टटोलना । छूना । छू कर मालूम करना ।

टोनाहार—संज्ञा स्त्री० दे० "टोनाहार" ।

टोप—संज्ञा पुं० [हिं० तोपना=ढँकना] (१) बड़ी टोपी । सिर का षड़ा पहनावा ।

धा०—कनटोप ।

(२) सिर की रक्षा के लिये लड़ाई में पहनने की लोहे की टोपी । सिरबाण । छेद । हूँड़ । (३) खोल । गिलाफ । (४) श्रृंगुरताना ।

† संज्ञा पुं० [अनु० टप टप वा सं० नोक] बूँद । कतरा ।

टोपन—संज्ञा पुं० [रेंग०] टोकरा ।

टोपरा १—संज्ञा पुं० दे० "टोकरा" ।

टोपरी १—संज्ञा स्त्री० दे० "टोकरा" ।

टोपही १—संज्ञा स्त्री० [हिं० टोप] बरतन के साँचे का सब से ऊपरी भाग जो कटोरे के आकार का होता है ।

टोपा—संज्ञा पुं० [हिं० टोप] बड़ी टोपी ।

† संज्ञा पुं० [हिं० तोपना] टोकरा ।

† संज्ञा पुं० [सं० टकन, हिं० तोपना, छुरपना] टाँका । डोम । सीबन ।

मुहा०—टोपा भरना=तागा भरना । सीना ।

टोपी—संज्ञा स्त्री० [हिं० तोपना=ढाकना] (१) सिर पर का पहनावा । सिर ढाकने के लिये बना हुआ आच्छादन ।

क्रि० प्र०—पहनना ।—लगाना ।

मुहा०—टोपी उड़लना=निरादर होना । श्रेष्ठता होना । टोपी उड़ालना=निरादर करना । श्रेष्ठता करना । टोपी देना=टोपी पहनना । टोपी बदलना=भार्ये भाई का संबंध जोड़ना । भार्येचारा करना । टोपी बदल भाई=वह जिसे टोपी बदल कर भाई का संबंध जोड़ा गया है ।

विशेष—लड़के खेल में जब किसी से मित्रता करते हैं तब अपनी टोपी उसे पहनाते और उसकी टोपी आप पहनते हैं ।

(२) राममुकुट । ताम्र ।

मुहा०—टोपी बदलना = राज्य बदलना। दूसरे राजा का राज्य होना।

(३) टोपी के आकार की कोई गोल और गहरी वस्तु। कटोरी। (४) टोपी के आकार का पातु का गहरा ढकन जिसे बंदूक की निपुल पर चढ़ा कर बोझ गिराने से आग लगती है। बंदूक का पड़का। (५) यह चीज जो सिकारी आगवर के मुँह पर चढ़ाई रहती है। (६) लिंग का अग्र भाग। सुपाटा। (७) मसूल का सिरा। (लश०)

टोपीदार—वि० [हि० टोपी + टार] जिस पर टोपी लगी हो।
- जो टोपी लगाने पर काम दे। जैसे, टोपीदार बंदूक, टोपीदार तमचा।

टोपीवाला—संज्ञा पुं० [हि० टोपी] (१) यह आदमी जो टोपी पहने हो। (२) अदमदराह और नादिराह की सेना के सिपाही जो लाल टोपियाँ पहन कर आए थे, टोपीवाले कहलाते थे। (३) अंगरेज या यूरोपियन जो हेट पहनते हैं।

टोम + संज्ञा पुं० [हि० टोम] टाँका। तोपा। उ०—बैरिनि जीमहि टोम है री मन बैरी को भूँजि के भौन परांगी।—द्वेज।

टोया + संज्ञा पुं० [सं० टोय] गड्डा। (पंजाबी)

टोर + संज्ञा स्त्री० [दे०] कटारी। कटार। उ०—गुन साँ न जोर चोर भूपन के भोर रूप काँकरी को चोर काक मारो है न टोर कै।—दनुमान।

संज्ञा स्त्री० [दे०] टोरे की मिट्टी का वह पानी जो साधारण नमक की कलमें से छान कर निकाल लेने पर बच रहता है और जिसे फिर उबाल और छान कर सोरा निकाला जाता है।

टोरना + कि० सं० [सं० टुट] तोड़ना। उ०—(क) रिफकवार टग देरि के मन मोहन की धोर। भीहन मारत रीमि अनु वारत है तन टोर।—रसनिधि। (ख) फेव फेह टोरन देत न माली। मंगिहु पर मुरके हम खाली।—रघुनाम।

मुहा०—शीर टोरना = क्षत्रा आदि से छिटे छटाना या अन्नग करना। शीर मोड़ना। दष्टि छिपाना। उ०—सूर प्रसु के चरित सखियन कहत सोखन टोरि।—सूर।

टोरा—संज्ञा पुं० [दे०] जुवाहों का सूत सौलने का तराजू। संज्ञा पुं० दे० “टोड़ा”।

† संज्ञा पुं० [सं० टोक] [स्त्री० टोर] लड़का। छोकड़ा।

टोरी + संज्ञा स्त्री० दे० “टोड़ी”।

टोरी—संज्ञा पुं० [सं० टुर] अरहर का यह धिलके सहित खड़ा दाना जो बनाई हुई दाल में रह जाय।

टोल—संज्ञा स्त्री० [सं० टोलिका = गड के चारों ओर का घेरा, बाड़ा] (१) मंडली। समूह। जल्पा। कुंड। उ०—(क) धरने धरने टोल कहत धनवासी धाई। भाय भक्ति से खैर सुदंपति

धासी धाई।—सूर। (ख) दुनिदाई सब टोल में रही उ सैति कहाय। सुनौ पैंचि पिय आय लौं फरी अदोलिल आय।—विहारी। (२) चटसार। पाटशाला।

संज्ञा पुं० संपूर्ण जाति का एक राग जिसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं। इसके गाने का समय २५ दंड से २८ दंड तक है। संज्ञा पुं० [अ० टाल] सड़क का महसूल। मार्ग का कर। सुंगी।

टो—टाल कलकटर = कर लेनेवाला। महसूल वसूल करनेवाला।

टोला—संज्ञा पुं० [सं० टोलिका = किसी स्तंभ या गड के चारों ओर का घेरा, बाड़ा] आदमियों की बड़ी बस्ती का एक भाग। महाड़ा। संज्ञा पुं० [दे०] बड़ी कौड़ी। कौड़ा। टम्पा। संज्ञा पुं० [दे०] (१) शुक्ली पर उठे की चोट।

कि० प्र०—खाना। (२) बँगली को मोड़ कर पीछे निकली हुई हड्डी से मारने की क्रिया। हूँग। (३) पत्थर या ईंट का टुकड़ा। रोड़ा। (४) बेंत आदि के आयात का पड़ा हुआ चिड़ जो कभी लाल और कभी कुछ नीलापन लिए होता है। साँट। नील।

कि० प्र०—पड़ना।

टोलिया—संज्ञा स्त्री० [सं० टोलिका = घेरा, हात] टोली। छोटा महखर।

टोली—संज्ञा स्त्री० [सं० टोलिका = हात, बाड़ा] (१) छोटा महखर। बस्ती का छोटा भाग। उ०—नैन बचाय चबाहन के नहि रैन में छै निकसो यह टोली।—सेवक। (२) समूह। कुंड। जल्पा। मंडली। (३) पत्थर की चौकोर पटिया। सिल। (४) एक जाति का घास जो पूर्वीय हिमालय, मिक्मि और आसाम की ओर होता है। इसकी आकृति कुछ कुछ पेड़ों की होती है और इसमें ऊपर जा कर टहनियाँ निकलती हैं यह घास बहुत सीधा और सुबोला होता है। टोकरे पनाने के लिये यह घास सबसे अच्छा सम्भल जाता है। यह छुपरो में लगता है और चटाईयाँ बनाने के काम में भी धाता है इसे ‘नाल’ और ‘पकोक’ भी कहते हैं।

टोली-धनघा—संज्ञा पुं० [हि० टोली + धन] धान की तरह की एक घास जिसके नरम पत्ते थोड़े और चौपाय बड़े चाव से खाते हैं। इसके दानों को भी कहीं कहीं गरीब लोग खाते हैं।

टोबना—कि० सं० दे० “टोना”।

टोघा—संज्ञा पुं० [दे०] गलदी पर बैठनेवाला वह माम्की जो पानी की गहराई जाँचता है।

टोह—संज्ञा स्त्री० [हि० टोना] (१) टटोल। खोज। ढूँढ़। तलाश पता।

मुहा०—टोह मिलना = पता लगना। टोह में रहना = तलाश में

रहना । हूँ दूते रहना । टोह लगाना, खेना = पता लगाना ।

सुराग लगाना ।

(२) खर । देखमाल ।

मुहा०—टोह रखना = खर रखना । देखमाल रखना ।

टोहना-क्रि० सं० [हि० टोह] (१) हूँ दूना । खोजना । (२) हाथ लगाना । छूना । टोखलना ।

टोहाटार्ई-संज्ञा स्त्री० [हि० टोह] (१) छान धीन । हूँ दू । तलाश । (२) देखमाल ।

टोहिया-वि० [हि० टोह] (१) टोह लगानेवाला । हूँ दूनेवाला । (२) जासूस ।

टोहियाना-क्रि० सं० दे० “टोहना” ।

टोही-वि० [हि० टोह] तलाश करनेवाला । पता लगानेवाला ।

टौंस-संज्ञा स्त्री० [सं० तमसा] (१) एक छोटी नदी जो अयोध्या के परिचम से निकल कर बलिया के पास गंगा में मिलती है । रामायण में लिखी हुई तमसा यही है जहाँ धन को नाते हुए रामचन्द्रजी ने अपना डेरा किया था और जिससे यगो चल कर सोमती और गंगा पड़ी थीं । बालकांड के आदि में तमसा के तट पर बाल्मीकि के आश्रम का होना लिखा है । अयोध्याकांड में प्रयाग से चित्रकूट जाते हुए भी रामचन्द्र को बाल्मीकि का आश्रम मिला था पर वहाँ तमसा का कोई उल्लेख नहीं है । इससे संभव है कि बाल्मीकिजी दो स्थानों पर रहे हों । (२) एक नदी जो मैहर के पास कैमोर पहाड़ से निकल कर रीवाँ होती हुई मिर्जापुर और हलाहाबाद के बीच गंगा में मिलती है । इस नदी के तट पर बाल्मीकि का एक आश्रम बतलाया जाता है जो

सम्भवतः उस आश्रम को सूचित करता है जिसका उल्लेख अयोध्याकांड में है । (३) एक नदी जो जमुनावी पहाड़ से निकल कर देहरी और देहरादून होती हुई जमुना में मिली है ।

टौनहाल-संज्ञा पुं० दे० “टाउनहाल” ।

ट्रंक-संज्ञा पुं० [अं०] लोहे का सफ़ी संदूक ।

ट्रंप-संज्ञा पुं० [अं०] (१) ताश के खेल में वह रंग जो और रंगों के बड़े से बड़े पत्ते को काटने के लिये नियत कर लिया जाता है । हुनम का रंग । (२) ट्रंप का खेल ।

ट्राम-संज्ञा स्त्री० [अं०] बड़े बड़े नगरों में एक प्रकार की लंबी गाड़ी जो लोहे की बिक्री हुई पटरी पर चलती है । इसमें पहले घोड़े लगते थे पर अब यह बिजली के जोर से चलाई जाती है ।

ट्रेड-मार्क-संज्ञा पुं० [अं०] वह चिह्न जो व्यापारी लोग पहचानने के लिये अपने यहाँ के बने या भेजे हुए माल पर लगाते हैं । छाप ।

ट्रेडिल मशीन-संज्ञा स्त्री० [अं०] एक प्रकार की छापने की छोटी कल जिसे एक ही आदमी पैर से चलाता और हाथ से उसमें कागज रखता जाता है । स्याही इसमें छापसे छाप लग जाती है । इसमें (हाफटोन ब्लाक) फोटो की तस्वीरें बहुत साफ और उजम छपती हैं और कार्य बहुत शीघ्रता से होता है ।

ट्रेन-संज्ञा स्त्री० [अं०] (१) रेलगाड़ी में खगी हुई गाड़ियों की पंक्ति । (२) रेलगाड़ी ।

मुहा०—ट्रेन चूटना = रेलगाड़ी का स्टेशन पर से चस देना ।

ठ

ठ-म्यंज्ञाओं में ग्यारहवाँ व्यंजन जिसके ब्चारण का स्थान मूचाँ है । इसके ब्चारण करने में जीभ का मध्य भाग तालू में खगाना पड़ता है ।

ठंड-वि० [सं० रणाणु] जिस की बाल और पत्तियाँ सूख कर या कट कर गिर गई हों । हूँटा । सूखा (पेड़) ।

ठंडनाना-क्रि० अ०, क्रि० सं० दे० “ठनठनाना” ।

ठंडसाँ-संज्ञा स्त्री० [सं० विंशति] ठंडस । बँवूसी ।

ठंडार-वि० [हि० ठंड] खाली । रीता । हूँ छा । व०—जस कछु दीये धरन कहँ आरपन लेहु सँभार । तस सिंगार सय खिन्हेसि कीन्हेसि मोहि ठंडार ।—जायसी ।

ठंडी-संज्ञा स्त्री० [हि० ठंड] वह अन्न जो दाना पीटने के बाद थाल में खगा रहता है । (ज्वार सूँग आदि के लिये) ।

वि० स्त्री० (सूड़ी गाय या भैंस) जिसके बच्चा और बूध देने की संभावना न हो । जैसे, ठंडी गाय ।

ठंड-संज्ञा स्त्री० दे० “ठंड” ।

ठंडक-संज्ञा स्त्री० दे० “ठंडक” ।

ठंडा-वि० दे० “ठंडा” ।

ठंडाई-संज्ञा स्त्री० दे० “ठंडाई” ।

ठंड-संज्ञा स्त्री० [हि० ठंड] शीत । सरदी । जाड़ा ।

मुहा०—ठंड पड़ना = शीत का संचार होना । सरदी फैलना ।

ठंड लगना = शीत का अनुभव होना ।

ठंडई-संज्ञा स्त्री० दे० “ठंडाई” ।

ठंडक-संज्ञा स्त्री० [हि० ठंडा] (१) शीत । सरदी । बर्षता या गरमी का पेसा अभाव जिसका विशेष रूप से अनुभव हो ।

मुहा०—ढंढक पढ़ना = शीत का धंकार होना। सरदी फैलना।
ढंढक लगना = शीत का अनुभव होना। शीत का प्रभाव पढ़ना।

(२) ताप वा जलन की कमी। ताप की शांति। तरी।

क्रि० प्र०—शाना।

(३) म्रिय वस्तु की प्राप्ति या इच्छा की पूर्ति से उत्पन्न संतोष।
सुप्ति। प्रसन्नता। तसली।

क्रि० प्र०—पढ़ना।

(४) किसी उपद्रव या फैले हुए रोग आदि की शांति। किसी
हलचल या फैली हुई बीमारी आदि की कमी या अभाव।
जैसे, इधर शहर में हैजे का बड़ा जोर था पर अय ठंडक
पड़ गई है।

क्रि० प्र०—पढ़ना।

ढंढा-वि० [सं० शब्ध, प्रा० घट, टु] [स्त्री० ढंढी] (१) जिसमें
व्यपता या गरमी का इतना अभाव हो कि उसका अनुभव
शरीर को विशेष रूप से हो। सरदी। शीतल।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

मुहा०—ढंढे ढंढे = ढंढे वक्त में। भूय निकलने के पढ़ने। तड़के।
सबरे। व०—रात भर सोभो सबरे उठ कर ढंढे ढंढे चले
जाना। ढंढी धारा = (१) हिम। बरफ। (२) पाला। हुपार।
ढंढी कलाई = हलवादायी और बनिधो में सय पकवान बना चुकने
के पीछे हलुआ बना कर बटने की रीति। ढंढी मार = भीतरी
मार। ऐसी मार जिसमें ऊपर देखने में कोई श्रंग टूटा पूटा न हो
पर भीतर बहूत चोट आई हो। मुनी मार (जैसे, खात घूसों आदि
की)। ढंढी मिट्टी = (१) ऐसा शरीर जो जल्दी न बड़े। ऐसी
देह जिसमें जधानी के चिह्न जल्दी न माध्यम हों। (२) ऐसा
शरीर जिसमें कामोद्दीपन न हो। ढंढी साँस = ऐसी साँस जो दुःख
या शोक के आवेग के कारण बहूत लंबी कर ली जाती है।
हुल्ल से भी साँस। शोकोच्छ्वास। आह। ढंढी साँस लेना
या भरना = दुःख की साँस लेना।

(२) जो अज्ञता हुआ या दहकता हुआ न हो। बुझा हुआ।
बुता हुआ। जैसे, दीया ढंढा करना।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

(३) जो उदीर न हो। जो उद्विग्न न हो। जो भड़का न हो।
उद्विग्नरहित। जिसका या जिसमें आवेश न हो। शांत।
जैसे, क्रोध ढंढा होना, जोरा ढंढा होना। (इस अर्थ में इस
बन्ध का प्रयोग आवेश और आवेश धारण करनेवाले व्यक्ति
दोनों के लिये होता है, जैसे, क्रोध ढंढा पढ़ना, उसाह ढंढा
पढ़ना, कूद मनुष्य का ढंढा पढ़ना, शल्हाह में आए हुए
मनुष्य का ढंढा पढ़ना)।

क्रि० प्र०—करना।—पढ़ना।—होना।

मुहा०—ढंढा करना = (१) क्रोध शांत करना। (२) दाइस

दे कर शोक कम करना। दाइस धँपना। तसली देना। माता
या शीतला ढंढी करना = शीतला या चंचक के अन्धे होने
पर शीतला की अंतिम पूजा करना।

(४) जिसे कामोद्दीपन न होता हो। नामर्द। नपुंसक।

(५) जो उद्दीगशील वा चंचल न हो। जिसे जल्दी क्रोध
आदि न आता हो। पीर। शांत। गंभीर। (६) जिसमें
उसाह या उमंग न हो। जिसमें तेजी या फुरती न हो।
बिना जोरा का। धीमा। सुस्त। मंद। उदासीन।

मुहा०—ढंढी गरमी = ऊपर की प्रीति। वनाघटी स्नेह का
आवेश।

(७) जो हाथ पैर न हिलाए। जो अपनी इच्छा के प्रतिबद्ध
कोई बात होते देख कर कुछ न बोले। चुपचाप रहनेवाला।
विरोध न करनेवाला। जैसे, वे बहुत इधर उधर करते थे
पर जन राती खरी सुनाई तय ढंढे पड़ गए।

क्रि० प्र०—पढ़ना।—रहना।

मुहा०—ढंढे ढंढे = चुपचाप। बिना चूँ किए। बिना विरोध या
प्रतिवाद किए।

(८) जो म्रिय वस्तु की प्राप्ति या इच्छा की पूर्ति ने संतुष्ट
हो। एस। प्रसन्न। खुश। जैसे, लो धाज यह चला
जायगा, अर तो ढंढे हुए।

क्रि० प्र०—होना।

मुहा०—ढंढे ढंढे = हँसी खुशी से। कुराज थानंद से। ढंढे ढंढे
घर धाना = बहुत तृप्त हो कर लौटना (अर्थात् बसंतुष्ट
होकर या निराश हो कर लौटना) (व्यंग्य)। ढंढे पेठें = हँसी।
खुशी से। प्रसन्नता से। बिना मन मोटाव या लड़ाई मगड़े के।
धीमे से। ढंढा रखना = धारण चैन से रखना। किसी बात की
तकलीक न होने देना। संतुष्ट रखना। (क्रि०)। ढंढे रहो =
प्रसन्न रहो। खुश रहो। (आशीर्वाद)।

(६) निरचेष्ट। जड़। मृत। मरा हुआ।

मुहा०—ढंढा होना = मर जाना। ताजिया ढंढा करना =
ताजिया दफन करना। (सूँचिं या पूजा की सामग्री आदि को)
ढंढा करना = अंत में विचर्जन करना। डुपाना। (किसी पवित्र
या म्रिय वस्तु को) ढंढा करना = फेंकना वा तोड़ना। कोटना।
जैसे, चूड़ियाँ ढंढी करतान।

(१०) जिसमें चहल पहल न हो। जो गुलजार न हो। ये-
रीनक।

मुहा०—धाजार ढंढा होना = वाजार का चनना न होना। वाजार
में लेन देन सूख न होना।

ढंढाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० ढंढा] (१) यह दवा वा मसाला जिसमें
शरीर की गरमी शांत होती है और ढंढक भाती है।

विरोध—संज्ञा, इच्छावधी, ककड़ी, खरपूजे आदि के बीज, गुन्ना

की पलड़ी, गोल मिचै आदि को एक में पीस कर प्रायः ढंढाई बनाई जाती है ।

(२) भांग (जिसमें ऊपर लिखे मसाले डाले जाते हैं) ।

मि० प्र०—पीना ।—लेना ।

ढंढा मुलुम्मा—संज्ञा पुं० [हिं० ढंढा + मुलुम्मा] बिना आंच के सोना चाँदी चढ़ाने की रीति । सोने चाँदी का पानी जो वैदकी के द्वारा या तेजाय की लाग से चढ़ाया जाता है ।

ढंढी—वि० स्त्री० दे० "ढंढा" ।

संज्ञा स्त्री० शीतला । चेचक । (प्रि०)

मुहा०—ढंढी चलना = शीतला के दाने का मुरझाना । चेचक का जोर कम होना । ढंढी निकलना = शीतला के दाने शरीर पर होना । शीतला या चेचक का रोग होना ।

ढ—संज्ञा पुं० [सं०] (१) शिव । (२) महाप्वनि । (३) चंद्रमंडल । (४) मंडल । (५) शून्य । (६) गौचर । इन्द्रियप्राप्त यस्तु ।

ढउर्रां—संज्ञा पुं० दे० "दौर" ।

ढक—संज्ञा स्त्री० [षु०] एक यस्तु पर दूसरी यस्तु को जोर से मारने का शब्द । टोंकने का शब्द ।

वि० श्लघ । भीषण । आश्चर्य या घबराहट से निश्चेष्ट । सवाटे में धारा हुआ ।

मि० प्र०—रह जाना ।—हो जाना ।

संज्ञा पुं० चंद्रदाओं की सजाई या सूजा जिसमें अफीम का कियाम लगा कर संकते हैं ।

ढक ढक—संज्ञा स्त्री० [षु०] कगड़ा । घबेड़ा । ढंढा । कंकट ।

उ०—बड़ि ठक ठक पत्ती कहा पावस के अभिस्तार । आनि परैगी देखि यों दामिनि घन अंधियार ।—विहारी ।

ढकढकाना—कि० सं० [षु०] (१) एक यस्तु पर दूसरी यस्तु बटक कर शब्द करना । सटखटाना । (२) टोंकना फटना ।

ढकढकिया—वि० [षु० ढक ढक] (१) हुज्जती । थोड़ी सी बात के लिये बहुत दलील करनेवाला । तकरार करनेवाला । बखेड़िया ।

ढकडोघा—संज्ञा पुं० [षु०] (१) एक प्रकार की करताल । (२) करताल बसा कर भील मंगिनेवाला । (३) एक प्रकार की छोटी नाव ।

ढकार—संज्ञा पुं० 'ढ' अक्षर ।

ढकुरईं—संज्ञा स्त्री० दे० "ढकुराई" ।

ढकुरसुहाती—संज्ञा स्त्री० [हिं० ढकुर = माणिक + सुहाती] ऐसी बात जो केवल दूसरे को प्रसन्न करने के लिये कही जाय । लहोचप्यो । सुशामद् । तोपामेद् । व०—हमद् कहय भय डकुर सुहाती ।—तुलसी ।

ढकुराहत—संज्ञा स्त्री० दे० "ढकुरायत" ।

ढकुराहना—संज्ञा स्त्री० [हिं० ढकुर] (१) ढकुर की स्त्री । स्वामिनी । मालकिन । उ०—महिं दासी ढकुराहन कोई । जई देयो तैह प्रस है सोई ।—सूर । (२) छत्री की स्त्री । चत्रायणी । (३) नाहन । नाहन । नाई की स्त्री । उ०—देव स्वरूप की रासि निहारति पांय ले सीस लों सीस ते पाहन । है रही ठौर ही ठाड़ी उगी सी हँसे कर टोड़ी दिव ढकुराहन ।—देव ।

ढकुराहसां—संज्ञा स्त्री० दे० "ढकुरायत" ।

ढकुराई—संज्ञा स्त्री० [हिं० ढकुर] (१) आधिपत्य । प्रभुत्व । सरदारी । प्रधानता । उ०—अब तुलसी गिरिधर विनु गोकुल को करिहै ढकुराई ?—तुलसी । (२) ढकुर का अधिकार । स्वामी होने के अधिकार का उपयोग । जैसे, क्षेत्र में कौसी ढकुराई ? उ०—न्याय न किय कीनी ढकुराई । बिना किपु लिखि दीनि घुराई ।—जायसी । (३) वेद प्रदेश जो किसी ढकुर या सरदार के अधिकार में हो । राज्य । रियासत । (४) बचता । बड़प्पन । महत्त्व । पढ़ाई । उ०—हरि के जन की अति ढकुराई । महाराज ऋषिप्राज राजहूँ देखत रहे लजाई ।—सूर ।

ढकुरानी—संज्ञा स्त्री० [हिं० ढकुर] (१) ढकुर या सरदार की स्त्री । जमींदार की स्त्री । (२) रानी । उ०—निज मंदिर लै गई रुमिषी पहनुआई विधि धानी । सूरदास प्रभु तैह पग धारे जैह देउड ढकुरानी ।—सूर । (३) मालकिन । स्वामिनी । अधीश्वरी । (४) चत्रिय की स्त्री । चत्रायणी ।

ढकुराय—संज्ञा पुं० [हिं० ढकुर] छत्रियों का एक भेद । उ०—गहरवार परदार सहारे । कलहंस और ढकुराय जरे ।—जायसी ।

ढकुरायत—संज्ञा स्त्री० [हिं० ढकुर] (१) आधिपत्य । प्रभुत्व । उ०—ढकुरायत गिरिधरचू की साँची । कौरव जीति युधिष्ठिर राजा कीरति तीनि लोक भेद माँची ।—सूर । (२) वह प्रदेश जो किसी ढकुर या सरदार के अधिकार में हो । रियासत ।

ढकोरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० टेकना, टेकना + कोरी (शय०)] (१) सहारा लेने की लकड़ी । उ०—(क) मक । भरोसे राम के निषाक ऊँची दीठ । तिनके करम न खागई राम ढकोरी पीठ ।—कवीर । (ख) देला देली पकरिया गई द्विनक में छूटि । फेड़ विरला जन ठाहरे जासु ढकोरी पठि ।—कवीर ।

विदोप—यह लकड़ी अड़डे के शाकार की होती है । पड़ाई लोग जय बोमक ले करे चलते चलते थक जाते हैं तब इस लकड़ी को पीठ या कमर से बिड़ा कर घसी के बल पर थोड़ी

देर लड़के हो जाते हैं। साधु लोग भी इस प्रकार की लकड़ी सदावा लेने के लिये रखते हैं और कभी कभी इसी के सहारे बैठते हैं। इसे वे वैरागिन या जोगिनी भी कहते हैं।

ठकर-संज्ञा स्त्री० दे० "ठकर"।

ठकुर-संज्ञा पुं० [सं०] देवता। ठकुर। पूज्य प्रतिमा।

ठग-संज्ञा पुं० [सं० ठग] [श्री० ठगना, ठगिन] (१) धोखा दे कर लोगों का धन हरण करनेवाला। वह लुटेरा जो छल और धूर्तता से माल लूटता है। मुलावा देकर लोगों का माल छीननेवाला।

विशेष—ठाकू और ठग में यह अंतर है कि ठाकू प्रायः जबरदस्ती पल दिखा कर माल छीनते हैं पर ठग धनके प्रकार की धूर्तता करते हैं। भारत में इनका एक अलग संप्रदाय सा हो गया था। उ०—जग हटवारा, स्वाद ठग, माया देर्या लाय। राम नाम गाढ़ा गहो जवि कहुँ जाहु टगाय।—कबीर।

मुहा०—ठग लगना—ठगा का आक्रमण करना या पीड़ित पड़ना। जैसे, इन रातों में बहुत ठग आते हैं। ठग के बादू—दे० 'ठगनाइ'।

यो०—ठगमूरी। ठगमोदक। ठगलाहू। ठगविद्या।

(२) छली। धूर्त। धोखेबाज। बंचक। प्रतापक।

ठगई—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठग + ई (अप०)] (१) ठगपना। ठग का काम (२) धोखा। छल।

ठगण-संज्ञा पुं० [सं०] मादिक छुंदों के गणों में से एक। यह ४ मात्राओं का होता है और इसके ८ उपभेद हैं।

ठगना-कि० सं० [हिं० ठग] (१) धोखा दे कर माल लूटना। छल और धूर्तता से धन हरण करना। (२) धोखा देना। छल करना। धूर्तता करना। मुलावे में छलना।

मुहा०—ठगा सा = धोखा खाया हुआ। भूना हुआ। चकित। भैरवका। आरवर्ष से लाव्य। दंग। उ०—(क) यह कहि ठगे नंदकमार। कहा ठगी सी रही बाबा परयो कान चिचार ?—सूर। (ख) करत कछु नाहीं छात्रु बनी। हरि प्राप ही रही ठगी सी जैसे विप्र घनी।—सूर। (ग) चित्र में काढ़ी सी ठाढ़ी ठगी सी रही कछु देख्यो सुन्यो न सुहात है।—मंदरीसवेख।

(३) उच्चि त्ते अचिक्र मूल्य लेना। याविय से बहुत ज्यादा दाम लेना। सोदा येचने में चेईमानी करना। जैसे, यह दुकानदार लोगों को बहुत ठगता है।

संज्ञा० कि०—लेना।

कि० अ० (१) ठगा जाना। धोखा खा कर लूटना। (२) धोखे में थाना। धोखा खाना। प्रतातित होना। (३) चकर में आना। चकित होना। आरवर्ष से लब्ध होना। ठक रह जाना। दंग

रहना। उ०—(क) तेव यह चरित देखि ठगि रहहीं।—तुलसी। (ख) मैं चहूँ ठगि रही कछु कहत न धावै।—सूर। (ग) विनु देखे विन ही मुने ठगत न कोह थाँयो।—सूर।

ठगनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठग] (१) ठग की स्त्री। (२) ठगनेवाली स्त्री। (३) धूर्त स्त्री। छलनेवाली स्त्री। (४) छुटनी।

ठगपना—संज्ञा पुं० [हिं० ठग + पन] (१) ठगने का भाव या काम। (२) धूर्तता। छल। चालाकी।

कि० प्र०—करना।—होना।

ठगमूरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठग + मूरी] वह नगीली जड़ी वृद्धि जिते ठग पथिकों को बेहोस करके उनका धन लूटने के लिये खिलाते थे।

मुहा०—ठगमूरी खाना = मतवाला होना। शेर्या हवास में न रहना। उ०—फाहू तोहि ठगोरी लाई। वृकति सखी सुनति नहिँ नेकहु हुही किर्षा ठगमूरी खाई।—सूर।

ठगमोदक—संज्ञा पुं० [हिं० ठग + सं० मोदक] ठगलाहू। उ०—चलत चितै मुसकाय कै मूदु बचन सुनाए। तेही ठगमोदक भए, मन धीर न, हरि तन छूड़े छिटकाए।—सूर।

ठगलाहू—संज्ञा पुं० [हिं० ठग + लाहू (लट्टू)] ठगों का लट्टू जिसमें नगीली या बेहोशी करनेवाली चीज मिली रहती थी।

विशेष—ऐसा प्रसिद्ध है कि ठग लोग पथिकों से रातों में मिल कर वन्हें किसी यद्धाने से थपना लट्टू खिला देने थे जिसमें विष या कोई नगीली चीज मिली रहती थी। जब लट्टू खा कर पथिक मूर्च्छित या बेहोस हो जाते थे तब वे उनके पास जो कुछ होता था सब ले लेते थे।

मुहा०—ठगलाहू खाना = मतवाला होना। शेर्या हवास में न रहना। वेधुष होना। उ०—(क) मनहु दीन ठगलाहू, देख प्राय तस मीच।—जायसी। (ख) सूर कहा ठगलाहू खाये हत उत फिरत मोह के मातो कवहुँ न सुधि करि हरि वित लायो।—सूर।

ठगवाना—कि० सं० [हिं० ठगना का प्र०] दूसरे से धोखा दिलवाना।

ठगविद्या—संज्ञा स्त्री० [सं० ठग + विद्या] धूर्तता। धोखेबाजी। छल। बंचकता।

ठगहारी—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठग] ठगपना।

ठगहारी—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठग + शरी (अप०)] ठगपना।

ठगहारी—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठग + आई (अप०)] ठगपना।

ठगाठगी—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठग] धोखेबाजी। बंचकता। धोखा धड़ी।

ठगाना—क्रि० अ० [हि० ठगना] (१) ठगा जाना । घोखे में धा कर हानि सहना । (२) किसी वस्तु का अधिक मूल्य दे देना । दुकानदार की बातों में धा कर ज्यादा दाम दे देना । जैसे, इस सौदे में तुम ठगा गए ।

संयोग क्रि०—जाना ।

ठगाही—संज्ञा स्त्री० दे० “ठगाई”, “ठगाहई” । उ०—नाटक नर शूली परि दीन्हों । जिन धन माँहि ठगाही कीन्हो ।—विश्राम ।

ठगिन—संज्ञा स्त्री० [हि० ठग] (१) घोखा दे कर लूटनेवाली स्त्री । लुटेरिन । (२) ठग की स्त्री । (३) धूर्त स्त्री । चालबाज स्त्री ।

ठगिनी—संज्ञा स्त्री० [हि० ठग] (१) लुटेरिन । घोखा दे कर लूटनेवाली स्त्री । उ०—उपति फ्रिति ठगिनी तुम नारी । जोइ थावति सोइ सोइ कहि डारति जाति जनावति दै दे गारी ।—सूर । (२) ठग की स्त्री । (३) धूर्त स्त्री । चालबाज स्त्री ।

ठगिया—संज्ञा पुं० दे० “ठग” ।

ठगी—संज्ञा स्त्री० [हि० ठग] (१) ठग का काम । घोखा दे कर माल लूटने का काम । (२) ठगने का भाव । (३) धूर्तता । घोखेबाजी । चालबाजी ।

ठगोरी—संज्ञा स्त्री० [हि० ठग + गौरी] ठगों की स्त्री जाया । मोहित करने का प्रयोग । मोहिनी । सुधनुष मुलानेवाली शक्ति । टोना । जादू । उ०—(क) जानहु खानै फाहु ठगोरी । खन पुकार खन वाँचै धैरी ।—जायसी । (ख) दसन चमक अघरन अरनाई देखत परी ठगोरी ।—सूर । (ग) राजिव नैन, विधु धदन, टिपारे सिर, नए सिल धंगन ठगोरी डेर डेर है ।—तुलसी ।

क्रि० प्र०—ढालना ।—पढ़ना ।—लगाना ।—लगाना ।

ठट—संज्ञा पुं० [सं० स्वप्ता = जो खड़ा हो] (१) एक स्थान पर स्थित बहुत सी वस्तुओं का समूह । एक स्थान पर रखे बहुत से लोगों की पंक्ति । उ०—देखि न जाइ कपिन के टट । अति विसाल-तनु भालु सुभद्र ।—तुलसी ।

मुद्रा०—ठट के ठट = कुंड के कुंड । बहुत से । ठट लगना = (१) भीड़ जमना । भीड़ खड़ी होना । (२) ढेर लगना । राशि इकट्ठी होना ।

(२) समूह । मुँह । पंक्ति । उ०—श्रंवर अमर हरखत बरखत फूल सनेह सिपिल गोप गाइन के टट है ।—तुलसी । (३) दनाव । रचना । सजावट । उ०—परखत प्रीति प्रतीति पैज पन रहे काज टट ठानि हैं ।—तुलसी ।

ठटकीला—वि० [हि० ठट] सजा हुआ । टाटदार । सजीला । तड़क भड़कवाला । उ०—आड़ी चरननि कंचन लकुट

ठटकील बनमाल कर टेके हुमदार टेड़े ठट्टे बंदबाल वृषि छाई घट घट ।—सूर ।

ठटना—क्रि० सं० [सं० स्वप्ता = जो खड़ा या ठहरा हो । हि० ठट, ठट्ट] (१) ठहराना । निश्चित करना । स्थिर करना । उ०—हेत सु जो खनुनाय ठटी । पचि पचि रहे सिद्ध, साधक, मुनि तत्र पढ़ी न घटी ।—सूर । (२) सजाना । सुसजित करना । तैयार करना । उ०—रूप बन्यो विकट रत्न टाट टटि मारु मारु परु मारु रटि ।—गोपाल ।

मुद्रा०—ठट कर घातें करना = धना धना कर घातें करना । एक एक शब्द पर जोर देते हुए घातें करना ।

(३) ठेड़ना । धारंभ करना । (राग) । उ०—नव निरुंज गृह भवल आगे नवल बीना मधि राग गौरी ठटी ।—हरिदास ।

क्रि० अ० (१) खड़ा रहना । अड़ना । ठटना । उ०—खँचत स्वाइ स्वान पातर ज्यों चातक रटत टटो ।—सूर । (२) सजना । सुसजित होना । तैयार होना । उ०—जबहों थाइ चढ़ै दल टटा । देखत जैसे गगन-धन-घटा ।—जायसी ।

ठटनि—संज्ञा स्त्री० [हि० ठटना] पनाव । रचना । सजावट । उ०—नामि भँवर त्रिवली तरंग गति पुलिन तुलिन टटनी ।—सूर ।

ठटया—संज्ञा पुं० [दे०] एक प्रकार का जंगली जानवर ।

ठटरी—संज्ञा स्त्री० [हि० ठट] (१) हड्डियों का ढाँचा । अस्थि-पंजर ।

मुद्रा०—ठटरी होना = डुगना होना । कुशांग होना ।

(२) घास भूसा आदि धाँधने का जाल । छरिया । खड़िया । (३) किसी वस्तु का ढाँचा । (४) मुरदा उठाने की रीति । अस्थि ।

ठट्टी—संज्ञा पुं० [हि० ठट] दनाव । रचना । सजावट । उ०—परिवृत प्रीति प्रतीति पयज पनु रहे काज ठट्ट ठानि है ।—तुलसी ।

ठट्ट—संज्ञा पुं० [सं० तट, हि० ठट्टी वा सं० स्वप्ता] (१) एक स्थान पर स्थित बहुत सी वस्तुओं का समूह । एक स्थान पर रखे बहुत से लोगों की पंक्ति । (२) समूह । कुंड । समुदाय । पंक्ति । उ०—(क) देखि न जाय कपिन के टट्टा । अति विसाल-तनु भालु सुभद्र ।—तुलसी । (ख) पियत अट्ट के टट अरु गुजरातिन के कुंड ।—हरिरचंद्र ।

ठट्टी—संज्ञा स्त्री० [हि० ठट्ट] ठट्टी । पंजर । हड्डी का ढाँचा । उ०—उर श्रंतर धुंनुआइ जरे जस काँच की भट्टी । रक्त मास जरि जाय रहै पाँजर की ठट्टी ।—गिरिधर ।

ठट्टई—संज्ञा स्त्री० [हि० ठट्ट] ठट्टा । दिलीपी । हँसी ।

ठडा-संज्ञा पुं० [सं० षट्हास वा षट्ठी] हँसी । ब्यहास । दिहणी । मसखरापन । खिही ।

क्रि० प्र०—करना ।

थो०—उट्टेबाज = दिहणीबाज । उट्टेबाजी = दिहणी ।

मुहा०—ठडा बड़ाना = उपहास करना । दिहणी करना । ठडा मारना = खिलखिलाना । अट्टहास करना । ठडा खराना = खिलखिलाना कर. हँसना । ठडा कर हँसना । अट्टहास करना ।

ठड-संज्ञा पुं० दे० 'उट्ट' ।

ठडई-संज्ञा स्त्री० [हिं० ठडा] हँसी । ठडा । मसखरापन । उ०—हुतो न सचिवा सनेह मित्रो मन को संदेह हरि परे उपरि संदेहसु ठडई ।—तुलसी ।

ठडकना-क्रि० प्र० [सं० षट्ट + करण] (१) एक चारगी रूप या उदर जाना । ठिठकना । उ०—(क) ठडकति चली मटकें सुँह मोरै थंकर भौंह चलाई ।—सूर । (ख) डग डुगति ली चलि ठडकि चितई चली निद्वारि । लिये जाति चित चोरटी यहै गोरटी नारि ।—विहारी । (२) स्तमित हो जाना । क्रियाशून्य हो जाना । ठक रह-जाना । उ०—मन में कलु कहन चडै देखत ही ठडकि रहै सूर श्याम निरखत दुरी तन सुधि बिसराय ।—सूर ।

ठडकना-संज्ञा स्त्री० [हिं० ठडकना] ठडकने का भाव ।

ठडना-क्रि० प्र० [सं०, क्रि० अ० दे० "उट्टना"] ।

ठडरी-संज्ञा स्त्री० दे० "उट्टरी" ।

ठडया-संज्ञा पुं० [हिं० उट्ट] एक प्रकार का मोटा कपडा । हकतारा । लभगजा ।

ठडा-संज्ञा पुं० दे० "उट्टा" ।

ठडाना-क्रि० प्र० [अ० ठक ठक] ठँकना । धायात लगाना । पीटना । जोर जोर से मारना । उ०—(क) फलें फूलें फूलें फलें खल, सीदें साधु पल पल, बाती दीपमालिका टाडइयत रूप हैं ।—तुलसी । (ख) दंत टाडइ टाडरे कीने । रहे पठान सकळ भय भीने ।—खाल ।

क्रि० प्र० [सं० षट्हास] खिलखिलाना । अट्टहास करना । कड़कहा लगाना । जोर से हँसना । उ०—हुइ कि होंइ इक संग सुभ्राह् । हँसव ठडाइ कुजावय गाल् ।—तुलसी ।

ठडियार-संज्ञा पुं० [दे०] जंगली चीपायों को चरानेवाला । चरायाह । (नैयाज-सराह) ।

ठडिरिन-संज्ञा स्त्री० [हिं० उट्टे] उट्टेरिन । उट्टे की स्त्री । उ०—ठडिरिन बहुतह टाडर कीन्दी । खली भाहरिन कानर दीन्दी ।—आयमी ।

ठडुकना-क्रि० प्र० दे० "उट्टकना", "ठिठकना" ।

उट्टेर-संज्ञा स्त्री० [हिं० उट्टेरा + सं० मार्जारिका] उट्टेरी की बिल्ही । उ०—बहे धज्यो हरिन भ्रम कहा यजावै धीन । या उट्टे-संगारिका सुर सुनि मोहै गी न ।—दीनदयाल ।

विशेष—उट्टेरी की बिल्ही को सामने रात दिन बरतन पीठे जाने से न तो वह थोड़ी खड़बड़ाहट से बरती है थौर न किसी अच्युत शब्द पर मोहित होती है ।

उट्टेरा-संज्ञा पुं० [अ० उट्टेरा + सं०] [हिं० उट्टेरा + एरा (प्रत्यय)] [स्त्री० उट्टेरिन, उट्टेरी] घातु पीठ पीठ कर बरतन बनानेवाला । बरतन बनानेवाला । कसेरा ।

मुहा०—उट्टेरे उट्टेरे बड़जाई = जैसे का तैसा व्यवहार । एक ही प्रकार के दो मनुष्यों का परस्पर व्यवहार । ऐसे दो आभिप्रेता के बीच व्यवहार जो आत्माकी, धूर्तता, बल आदि में एक दूसरे से कम न हो । उट्टेरी की बिल्ही = ऐसा मनुष्य जो कोई अराचिकर काम देखते देखते या सुनते सुनते अन्वत्ता हो गया हो । ऐसा मनुष्य जो कोई खटके की बात देख कर न चौंके या धरपार । (उट्टेरी की बिल्ही दिन रात बरतन का पीटना सुना करती है इससे यह किसी प्रकार की ब्राह्मण या खटका सुन कर नहीं बरती ।)

संज्ञा पुं० [हिं० उट्टे] ज्वार बाजरे का संज्ञक ।

उट्टेरी-संज्ञा स्त्री० [हिं० उट्टेरा] (१) उट्टेरा की स्त्री । उट्टेरा जाति की स्त्री । (२) उट्टेरे का काम । बरतन बनाने का काम ।

थो०—उट्टेरी बाजार ।

उट्टेरा-संज्ञा पुं० [हिं० उट्टेरा] [स्त्री० उट्टेरिन] (१) उट्टेबाज । विनोदप्रिय । दिहणीबाज । मसखरा । (२) उट्टेरा । हँसी । दिहणी ।

उट्टेरी-संज्ञा स्त्री० [हिं० उट्टेरी] हँसी । दिहणी । मसखरापन । मज़ाक । वह बात जो केवल विनोद के लिये की जाय ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

उट्टुकना-क्रि० प्र० दे० "उट्टकना", "ठिठकना" ।

उट्टु-वि० [सं० श्याव] खड़ा । दंडायमान ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

उट्टिया-संज्ञा पुं० [हिं० उट्टे] यह नैचा जिसकी निगाली बिलकुल खड़ी होती है । (ऐसा नैचा खजानक में बनता है और मिट्टी की करारी में लगाया जाता है । मुसलमान इसका व्यवहार अधिक करते हैं ।)

उट्टा-संज्ञा पुं० [हिं० उट्टा] (१) पीठ की खड़ी हड्डी । रीढ़ ।

थो०—उट्टाहट्टी = जिसकी कमर मुन्नी हो । कुन्नी । (पि०) (२) पतंग में लगी हुई खड़ी कमाची । कर्प का उड्डा ।

उट्टा-वि० [सं० श्याव] खड़ा । दंडायमान ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

ठडिया-संज्ञा स्त्री० [हि० ठड = खड़ा] काठ की वह ऊँची श्रोतली जिसमें पड़े हुए धान को छिराए खड़ी हो कर खूती है ।

ठडियाना-कि० सं० [हि० ठडा = खड़ा] खड़ा करना ।

ठडु, हीं-संज्ञा स्त्री० दे० 'ठडिया' ।

ठन-संज्ञा स्त्री० [अनु०] धातुखंड पर आघात पड़ने का शब्द । धातु के बजने का शब्द ।

थौं-ठन ठन = चमड़े से मड़े हुए बाने का शब्द ।

ठनक-संज्ञा स्त्री० [अनु० ठन ठन] (१) मृदंगादि की ध्वनि । चमड़े से मड़े बाने पर आघात पड़ने का शब्द । उ०-एनक सुरीन की लौं ठनक मृदंगन की रनक मुकुन सुर गुरुर के जाले को।-पञ्चाकर । (२) रह रह कर आघात पड़ने की सी पीड़ा । टीस । चसक ।

ठनकना-कि० अ० [अनु० ठन ठन] (१) ठन ठन शब्द करना । धातुखंड आघात चमड़े से मड़े बाने आदि का आघात पर कर बजना । जैसे, सबला ठनकना । (२) रह रह कर आघात पड़ने की सी पीड़ा होना । जैसे, माथा ठनकना ।

मुढाँ-माथा ठनकना = किन्नी बुरे लक्षणों का देख कर चित्त में धार धारंका उदय होना । गह्वर खटका पैदा होना । जैसे, तार पाते ही माथा ठनका ।

ठनका-संज्ञा पुं० [हि० ठनक] (१) धातुखंड आदि पर आघात पड़ने का शब्द । (२) आघात । ठोकर । (३) रह रह कर आघात पड़ने की सी पीड़ा ।

ठनकाना-कि० सं० [हि० ठनकना] किसी धातुखंड या चमड़े से मड़े बाने पर आघात कर के शब्द निकालना । बजाना । जैसे, बखला ठनकाना, रुपया ठनकाना ।

मुढाँ-रुपय ठनका लेना = रुपया बजा कर ले लेना । रुपया बखल कर लेना । उ०-जैसे, तुमने रुपय तो ठनका लिए मेरा काम हो या न हो ।

ठनकार-संज्ञा पुं० [अनु० ठन ठन] धातुखंड के बजने का शब्द । ठनगन-संज्ञा पुं० [हि० ठनग] विवाह आदि मंगल अवसरों पर नेमियों या पुरस्कार पानेवालों का अधिक पाने के लिये हट या अड़ ।

क्रि० प्र०-करना ।-होना ।

ठनठन-कि० वि० [अनु०] धातुखंड के बजने का शब्द ।

ठनठन गोपाल-संज्ञा पुं० [अनु० ठनठन + गोपाल = कोई व्यक्ति] (१) छूँछी और निःसार बस्तु । वह वस्तु जिसके भीतर कुछ भी न हो । (२) सुख आदमी । निर्धन मनुष्य । वह व्यक्ति जिसके पास कुछ भी न हो ।

ठनठनाना-कि० सं० [अनु०] किसी धातुखंड या चमड़े से मड़े बाने पर आघात करके शब्द निकालना । बजाना ।

क्रि० अ० ठन ठन बजना ।

ठनना-कि० अ० [हि० ठनना] (१) (किसी कार्य का) संपन्न के साथ आरंभ होना । उद् संकल्पपूर्वक आरंभ किया जाना अनुष्ठित होना । समारंभ होना । छिड़ना । जैसे, काम ठनना मगड़ा ठनना, बँर ठनना, युद्ध ठनना, लड़ाई ठनना । (२) (मन में) स्थिर होना । ठहरना । निश्चित होना । पक्का होना । उद् होना । चित्त में दृढ़तापूर्वक धारण किया जाना । संकल्प होना । जैसे, मन में कोई धाम ठनना, हठ ठनना उ०-हरिचंद्र जू थात ठनी तो ठनी गित की कलकामि छुटने है ।-हरिचंद्र । (३) उदरना । लगना । जमना धारण किया जाना । प्रयुक्त होना । उ०-दुखरी कल केकि कंड बनी धूम संजन धंजन भंति ठनी ।-केशव । (४) उष होना । मुसँद होना । सन्नद्ध होना । उ०-रन जीवन का भटन निवाजँ आनंद छाजँ युद्ध ठने ।-गोपाल ।

मुढाँ-किसी बात पर ठनना = किसी बात या काम को करने के लिये उद्यत होना ।

ठनमनना-कि० अ० दे० 'बनमनना' ।

ठनाका-संज्ञा पुं० [अनु० 'ठन'] ठन ठन शब्द । ठनकार ।

ठनाठन-कि० वि० [अनु० ठन ठन] ठन ठन शब्द के साथ । ठनकार के साथ । जैसे, ठनाठन बजना ।

ठपका-संज्ञा पुं० [दे०] धका । ठोकर । ठेस । उ०-यह त काचा कुंभ है लिया फिरै धा साथ । ठपका लाग्या । कृदिय कछू न धया हाथ ।-कवीर ।

ठयना-कि० सं० [सं० अनुष्ठान] (१) ठानना । उद् संकल्प के साथ आरंभ करना । छेड़ना । उ०-(क) दासी सहस्र प्रगट त भई । इंद्रलोक रचना श्रपि उई ।-सूर । (ख) जय नैन प्रीति उई ठग स्याम सें, स्थानी सखी हटि हँ थरजी ।-तुलसी (२) कर चुकना । पूरी तरह से करना । (इतका प्रयोग संयोग क्रि० के रूप में हुआ है) । उ०-देवता निर्दोरे मर मारिय सों कर जोरे जोरानाथ भोरे आपनी सी कहि उई है ।-तुलसी । (३) मन में ठहराना । निश्चित करना । उ०-तुलसिदास कौन आस मिलन की ? कहि गए सो तो प्रक चित्त न उई ।-तुलसी ।

क्रि० अ० (१) ठनना । उद् संकल्प के साथ आरंभ होना । (२) मन में हट होना ।

क्रि० सं० [सं० स्थापन, प्र० ठानन] (१) स्थापित करना । बैठाना । ठहराना । (२) लगाना । प्रयुक्त करना । नियोजित करना । उ०-विधिना अतिही पोच कियो री ।.....शेठ शोचन इकटक करि युवतिन प्रति काई न उयो री ।-सूर ।

क्रि० अ० (१) ठहरना । स्थित होना । बैठना । जमना ।

उ०—राज रख लखि गुरु भूसुर सुधासनन्हि समय समाज की
ठपनि भली उई है ।—तुलसी । (२) प्रयुक्त होना । लगना ।
निवेजित होना ।

उष्ण—संज्ञा पुं० [सं० स्थान, हिं० धोपन, थाप] (१) लकड़ी धातु
मिट्टी आदि का रंग जिस पर किसी प्रकार की आकृति, धूल
घूटे या छपर आदि इस प्रकार छुदे हैं कि वसं किसी दूसरी
वस्तु पर रख कर दधाने या दूसरी वस्तु को उस पर रख कर
दधाने से उस दूसरी वस्तु पर वे आकृतियाँ बेल गूटे या .छपर
उभर आयेँ या बन जाँय । साँचा ।

कि० प्र०—लगाना ।

(२) लकड़ी का टुकड़ा जिस पर उभरे हुए बेल घूटे घने रहते
हैं और जिस पर रंग स्याही आदि पोत कर उन बेल घूटों को
कपड़े आदि पर छापते हैं । छापा । (३) गोटे पट्टे पर बेल
घूटे उभारने का साँचा । (४) साँचे के द्वारा बनाया हुआ
चिह्न, बेलघूटा आदि । छापर । नक़्श । (५) एक प्रकार का
घोड़ा महाराष्ट्रियार गोटा ।

उमोली—संज्ञा स्त्री० दे० “उमोली” ।

उमक—संज्ञा स्त्री० [हिं० उमकना] (१) चलते चलते उदर जाने
का भाव । रुकावट । (२) चलने की उत्सक । चलने में हाव
भाव । लवक ।

उमकना—कि० अ० [सं० उम, हिं० उम + करना] (१) चलते
चलते उदर जाना । टिडकना । रकना । जैसे, (क) तुम
चलते चलते उमक क्यों जाते हो । (ख) उमक उमक कर
चलना । (२) उत्सक के साथ एक एक कर चलना । हाव
भाव दिखाने हुए चलना । धंम मरोड़ते या मटकते हुए
चलना । लचक के साथ चलना ।

उमकाना—कि० सं० [हिं० उमकना] उदराना । चलते चलते
रोकना ।

उमकारना—कि० सं० दे० “उमकाना” ।

उरना—कि० अ० [सं० लम्घ, उर + ना (प्रत्य०)] (१) अर्थात्
धीत से टिट्टाना । सरदी से अकड़ना या सुन्न होना । जैसे,
हाप पाँव उरना ।

संयो० कि०—जाना ।

(२) अर्थात् सरदी पड़ना । बहुत अधिक ठंड पड़ना ।

उरमहारा—वि० [हिं० उर + मारना] जिसे पाला मार गया हो ।
(फलल)

उरघा—वि० [हिं० उर] जिसे पाला मार गया हो । (फलल)

उर्रा—संज्ञा पुं० [हिं० उर्रा = उर्रा] (१) इतना कड़ा बटा हुआ मोटा
सूत जो हाप में लेने से कुछ तना रहे । मोटा सूत । (२)
घड़ी भयपकी ईंट । (३) महुवे की निरूपत धराय । कूज

का उलटा । (४) शींगिया का बंद । तनी । (५) एक प्रकार
का भद्रा जूता । (६) भद्रा और बेडौल मोती ।

उर्रा—संज्ञा स्त्री० [देग०] (१) बिना शंकर उठा हुआ धान का बीज
जो छितरा कर बोया जाता है । (२) बिना शंकर उठे हुए धान
की बोधार्थ ।

उयना—कि० सं० दे० “उयना” ।

उयनि—संज्ञा स्त्री० [सं० उयन, हिं० उयना = बँटना वा सं० स्थान]
(१) बँटक । स्थिति । उ०—राज रख लखि गुरु भूसुर सुधा-
सनन्हि समय समाज की ठपनि भली उई है ।—तुलसी ।
(२) बँटने या छड़े होने का धंग । आसन । मुद्रा । शंग की
स्थिति या संचालन का ढव । शंदाज । उ०—(क) कुंजर
मनि कंठा कलित उर तुलसी की माज । चूपम कंध केहरि
ठपनि धलनिधि याहु विसाख ।—तुलसी । (ख) ठाड़ भप
उठि सइज सुभाप । उयनि जुज मृगराज लजाप ।—तुलसी ।

उयरा—संज्ञा पुं० दे० “ओर” ।

उरा—वि० [सं० स्थान = हृत्ता से जमा हुआ, द्रु] (१) जिसके कण पर-
स्पर इतने मिले हैं कि उसमें उँगली आदि न घँस सके ।
जिसके बीच में कहीं रंग वा अवकाश न हो । जैसे, सुरभुरा,
गीला वा मुलायम न हों । ठोस । कड़ा । जैसे, चरपी का
सूत कर ठस होना, गीले आदे का ठस होना । (२) जो
भीतर से पोला या खाली न हो । भीतर से भरा हुआ ।
(३) जिसके सूत परस्पर एक मिले हों । जिसकी बुनावट
घनी हो । गफ । जैसे, ठस बुनावट, ठस कपड़ा । उ०—
इस बोपी का काम खूब ठस है । (४) इड़ । मजबूत । (५)
मारी । यजनी । गुरु । (६) जो अपने स्थान से जलदी न
उसके । जो हिले खोले नहीं । निश्चिन्त । सुन्न । मट्टर ।
आलसी । (७) (हृषण) जिसकी रून्कार ठीक न हो । जो
खरे तिके के ऐसा न घजे । जो कुछ खोटा होने के कारण
ठीक आवाज न दे । जैसे, ठस हृषण । (८) भरा पूरा ।
लेपल । धनाढ्य । जैसे, ठस अस्थानी । (९) कृषण । कंजूम ।
(१०) हठी । जिद्दी । अड़ करनेवाला ।

उत्सक—संज्ञा स्त्री० [हिं० उत्स] (१) अभिमानपूर्वक हाव भाव ।
गर्वोली चेष्टा । नखरा । उ०—जैसे, वह बड़ी उत्सक से चलती
है । (२) अभिमान । दर्प । शान । उ०—कड़ि गई रैयत के
जिय की कसक सब मिटि गई उत्सक तामा तुरकाने की ।—
भूषण ।

उत्सकदार—वि० [हिं० उत्सक + दा०] (१) घमंडी । अभिमानी ।
(२) शानदार । तट्ठक भडकबाजा । उ०—टीर उठुवाई के
छु ठाडुर उत्सकदार नंद के कन्हाई सो सु नंद को कन्हाई है ।—
पद्माकर ।

उत्सका—संज्ञा पुं० [अजु०] (१) वह खाँसी जिसमें कफ न निकले

और गले से ठन ठन शब्द निकले। सूखी खांसी।
(२) ठोकर। धका।

क्रि० प्र०—खाना।—मारना।—लगाना।

ठसाठस—क्रि० वि० [हि० ठस] ऐसा दबा कर भरा हुआ कि और भरने की जगह न रहे। हूँसकर भरा हुआ। खूब कस कर भरा हुआ। खचाखच। जैसे, (क) यह संदूक कपड़ों से ठसाठस भरा हुआ है। (ख) इस कुप्ये में ठसाठस चीनी भरी हुई है।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग केवल चूयों या ठोस वस्तुओं के लिये ही होता है, पानी आदि तरल पदार्थों के लिये नहीं। जो वस्तु भरी जाती है और जिस वस्तु में भरी जाती है दोनों के संबंध में इस शब्द का व्यवहार होता है। जैसे, संदूक ठसाठस भरा है, कपड़े ठसाठस भरे हैं।

ठस्सा—संज्ञा पु० [दे०] (१) नकाशी धनाने की एक छेटी रखाना। (२) गर्वपूर्ण चेष्टा। अभिमानपूर्ण भाव भाष। ठसक। (३) धमंड। अहंकार। (४) डाट घाट। शान। (५) ध्वनि। मुद्रा। अंदाज।

ठहक—संज्ञा स्त्री० [अनु०] नगारे का शब्द।

ठहरना—क्रि० अ० [अनु०] (१) हिनहिनाना। धोड़ों का बोलना। उ०—नाम अरुढ़ कुरपति छवि छाई। चहुँ दिसि तुरग रहे ठहरनाई।—सखल। (२) धनधनाना। ठनठनाना। घंटे का बजना। उ०—द्वंद्व घंट ध्वनि श्रुति ठहरनाई। मारू राग सहित सहनाई।—सखल।

† क्रि० अ० [सं० रथा, प्रा० ठा] किसी काम को करते हुए सोच विचार करने या बनाने सँवारने के लिये बीच बीच में ठहरना। धीरे धीरे धैर्य के साथ करना। बनाना। सँवारना। किसी काम को करने में खूब जमना।

मुहा०—ठह ठह कर बोलना = हाव भाव के साथ रुक रुक कर बोलना। एक एक शब्द पर जोर दे दे कर बोलना। मठार मठार कर बोलना। ठह कर = अच्छी तरह जम कर।

ठहरा—संज्ञा पु० [सं० स्थर] (१) स्थान। जगह। उ०—ठाकुर महेश ठहराहनि वमा सी जहाँ लोक वेद हूँ विदित महिमा ठहर की।—मुलसी। (२) रसोई के लिये मिट्टी से लीपा हुआ स्थान। चौका। (३) रसोईघर आदि में मिट्टी की लिपाई। पोताई। चौका।

क्रि० प्र०—लगाना।

मुहा०—ठहर देना = चौका लगाना।

ठहरना—क्रि० अ० [सं० स्थेय + ना (स्थ०)] (१) चलना बंद करना। गति में न होना। रुकना। धमना। जैसे, (क) थोड़ा ठहर जाओ पीछे के लोगों को भी आ लेने दो। (ख) रास्ते में कहीं न ठहरना।

संयो० क्रि०—जाना।

(२) विग्राम करना। देरा डालना। टिकना। कुछ काल तक के लिये रहना। जैसे, आप कारी में किस के यहाँ ठहरेंगे ?

संयो० क्रि०—जाना।

(३) स्थित रहना। एक स्थान पर बना रहना। धर धर न होना। स्थिर रहना। जैसे, यह नाकर चार दिन भी किसी के यहाँ नहीं ठहरता।

संयो० क्रि०—जाना।

मुहा०—मन ठहरना = चित्त स्थिर और शांत होना। चित्त की आकुलता दूर होना। उ०—जय धाऊँ साधु संगति कबुक मन ठहराई।—सूर।

(४) नीचे न फिसलना या गिरना। अड़ा रहना। टिक रहना। यदने या गिरने से रुकना। स्थित रहना। जैसे, (क) यह मोला टेंडे की नाक पर ठहरा हुआ है। (ख) यह घड़ा फूटा हुआ है इसमें पानी नहीं ठहरेगा। (ग) बहुत से योगी देर तक अथर में ठहर रहे हैं।

संयो० क्रि०—जाना।

(५) दूर न होना। बना रहना। न मिटना पान नष्ट होना। जैसे, यह रंग ठहरेंगा नहीं, उड़ जायगा। (६) जल्दी न टूटना फूटना। नियत समय के पहले नष्ट न होना। कुछ दिन काम देने लायक रहना। चलना। जैसे, यह जूता मुझारे पैर में दो महीने भी नहीं ठहरेंगा। (७) किसी सुनी हुई वस्तु के नीचे बैठ जाने पर पानी या अर्क का स्थिर और साफ हो कर ऊपर रहना। गिराना। (८) प्रतीक्षा करना। धैर्य धारण करना। धीर रखना। स्थिर भाव से रहना। चंचल या आकुल न होना। जैसे, ठहर जाओ, देते हैं, आफत क्यों भचाए हो। (९) कार्य धारंभ करने में देर करना। प्रतीक्षा करना। आसरा देखना। जैसे, अब ठहरने का वक्त नहीं है ऋषट काम में हाथ लगा दो। (१०) किसी लगातार होनेवाली क्रिया का बंद होना। लगातार होनेवाली बात या काम का रुकना। धमना। जैसे, मेह ठहरना, पानी ठहरना।

संयो० क्रि०—जाना।

(११) निश्चित होना। पका होना। स्थिर होना। ली पाना। करार होना। जैसे, दाम या कीमत ठहरना, भाव ठहरना, बात ठहरना, ब्याह ठहरना।

मुहा०—किसी बात का ठहरना = किसी बात का सफल होना। विचार स्थिर होना। ठनना। जैसे, (क) क्या अब चलने ही की ठहरी ? (ख) गप बहुत हुई, अब खाने की ठहरी ठहरा है। जैसे, (क) वह तुझारा भाई ही ठहरा कहीं तक खबर न

लेगा ? (ख) तुम घर के आदमी ठहरे तुमसे क्या द्रिपाना ।
(ग) अपने संबंधी ठहरे उन्हें क्या कहें । (इस मुहा० का प्रयोग ऐसे स्थलों पर ही होता है जहाँ किसी व्यक्ति या वस्तु के अन्याय होने पर विरुद्ध घटना या व्यवहार की संभावना होती है) ।

ठहराई—संज्ञा स्त्री० [हि० ठहराना] (१) ठहराने की क्रिया । (२) ठहराने की मजदूरी । (३) कब्जा । अधिकार ।

ठहराऊँ—संज्ञा पुं० दे० “ठहराव” ।

ठहराऊ—वि० [हि० ठहरना] (१) ठहरनेवाला । कुछ दिन धना रहनेवाला । जल्दी नष्ट न होनेवाला । (२) टिकाना । चलनेवाला । बढ़ । मजदूर ।

ठहराना—क्रि० सं० [हि० ठहरना] (१) चलने से रोकना । गति बंद करना । स्थिति कराना । जैसे, (क) बड़ चला जा रहा है, उसे ठहराओ । (ख) यह चलता हुआ पदिया ठहरा दे ।
संज्ञा० क्रि०—देना ।—लेना ।

(२) टिकाना । विश्राम कराना । डेरा देना । कुछ काल तक कें लिये निवास देना । जैसे, इन्हें अपने यहाँ ठहराओ । (३) इस प्रकार रचना कि नीचे न लिखके या गिरे । अड़ाना । टिकाना । स्थित रखना । जैसे, डंडे की नोक पर गोला ठहराना ।

संज्ञा० क्रि०—देना ।

(४) स्थिर रखना । इधर उधर न जाने देना । एक स्थान पर बनाए रखना । (५) किसी लगातार होनेवाली क्रिया को बंद करना । किसी होते हुए काम को रोकना ।

संज्ञा० क्रि०—देना ।

(६) निश्चित करना । पक्का करना । स्थिर करना । तै करना । जैसे, चाँत ठहराना, भाव ठहराना, कीमत ठहराना, ब्याह ठहराना ।

ठहराव—संज्ञा पुं० [हि० ठहरना] (१) ठहरने का भाव । स्थिरता ।

(२) निश्चय । निर्धारण । नियति । सुकरंरी ।

ठहराव—संज्ञा पुं० दे० “ठहरा” ।

ठहरावनी—संज्ञा स्त्री० [हि० ठहराना] विवाह में लेज देन का वृत्त ।

ठहराका—संज्ञा पुं० [अ०] अदहास । जोर की हँसी । कड़कड़ा ।

क्रि० प्र०—भारना ।—लगाना ।

वि० चटपट । तुरंत । तड़ से ।

ठहरायाँ—संज्ञा स्त्री० [हि० ठहराव] ठाँव । जगह । टिकाना । स्थान ।

ठाँ—संज्ञा स्त्री० पुं० दे० “ठाँव” ।

संज्ञा पुं० [अ०] बंदूक की आवाज ।

ठाँईं—संज्ञा स्त्री० [हि० ठाँव] (१) स्थान । जगह । (२) ठाँव ।

प्रति । उ०—पान भले मुख नैन रची रुचि आरसी देखि
कहँ हम ठाँईं ।—बैद्यय । (३) समीप । पास । निकट ।

ठाँईं—संज्ञा स्त्री० [सं० स्थान] (१) ठाँव । ठाँव । स्थान । जगह । टिकाना । (२) पास । समीप । उ०—चार मीत जो मुहमद
ठाँईं । जिन्हकिं दीन्दि जग निरमल नाऊँ ।—जायसी ।

ठाँईं—वि० [सं० स्थान] देखा देव धा वस्तु० ठन ठन] (१) जो सूख कर विना रस का हो गया हो । नीरस । (२) (गाय या भैंस) जो दूध न देती हो । दूध न देनेवाला (धोपाया) । जैसे, ठाँट गाय ।

ठाँयँ—संज्ञा पुं० स्त्री० [सं० स्थान, प्रा० ठान] (१) स्थान । जगह । टिकाना ।

विशेष—दे० “ठाँव” ।

(२) समीप । निकट । पास । उ०—विन लागि निज परलोक
विगारयो ते खजात होत ठाँईं ठायँ ।—मुनसी ।

संज्ञा पुं० [अ०] बंदूक छूटने का शब्द । जैसे, ठायँ से गोली मार सी ।

ठाँयँ ठायँ—संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) बंदूक छूटने का शब्द ।
† (२) रगड़ा फगड़ा ।

ठाँव—संज्ञा स्त्री० पुं० [सं० स्थान, प्रा० ठान] स्थान । जगह । टिकाना । उ०—(क) निडर, नीच, निगुन निधन कहँ जग
दूसरो न ठाँवर ठाँव ।—मुनसी । (ख) नादिन मेरे और
कोव बलि, चान कमल विनु ठाँव ।—पूर ।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग प्रायः सप्त कवियों ने पुं० किया है और अधिक स्थानों में पुं० ही बोला भी जाता है पर दिल्ली में टाँव आदि पच्छिमी जिलों में इसे स्त्री० बोलते हैं ।

ठाँसना—क्रि० सं० [सं० स्थान] देखा से देखा हुआ] (१) जोर से घुसाना । कस कर घुसेड़ना । दबा कर प्रविष्ट करना । (२) कस कर भरना । दबा दबा कर भरना । † (३) रोकना । अवरोध करना । मना करना ।

क्रि० अ० ठन ठन शब्द के साथ लाँसना । बिना कफ निकाले हुए लाँसना ।

ठाँहीं—संज्ञा स्त्री० दे० “ठाँईं” ।

ठाकुर—संज्ञा पुं० [सं० ठाकुर] [स्त्री० ठाकुरी, ठाकुरी] (१) देवता, विशेष कर विष्णु या विष्णु के अवतारों की प्रतिमा । देव-मूर्ति ।

घो०—ठाकुरद्वारा । ठाकुरवाड़ी ।

(२) ईश्वर । परमेश्वर । भगवान । (३) पृथ्वी व्यक्ति । (४) किसी प्रदेश का अधिपति । नायक । सरदार । अधिपति । उ०—सप्त कुँवरन फिर चँचा हायू । ठाकुर जैव तो जैवें
सायू ।—जायसी । (५) जमींदार । गाँव का मालिक । (६) पत्तियों की उपाधि । (७) मालिक । स्वामी । उ०—(क)

ठाकुर शंत चढ़े जेहि मारा । तेहि सेवक कर कर्हा बगारा ।
—जायसी । (ख) निबर, मीच, निगुन निधन कहेँ जग
दूमरो न ठाकुर ठाँव ।—तुलसी । (ग) भाइयों की उपाधि ।
नापित ।

ठाकुरद्वारा—संज्ञा पुं० [हिं० ठाकुर + द्वार] (१) किसी देवता
विशेषतः विष्णु का मंदिर । देवालय । देवस्थान । (२) जग-
न्नाथ का मंदिर जो पुरी में है । पुरयोत्तमघाम । (३)
सुरादानद जिले में हिंदुओं का एक तीर्थस्थान ।

ठाकुरप्रसाद—संज्ञा पुं० [हिं०] (१) देवता की निवेदित वस्तु ।
संबेध । (२) एक प्रकार का धान जो भारों महीने के शंत
और बवार के शरारत में हो जाया करता है ।

ठाकुरबाड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठाकुर + बाड़ा या बाड़ी = घर] देवा-
लय । मंदिर ।

ठाकुरसेवा—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठाकुर + सेवा] (१) देवता का
पूजन । (२) वह संपत्ति जो किसी मंदिर के नाम उत्तरों की
गई हो ।

ठाकुरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठाकुर] ठकुराई । स्वामित्व । आधिपत्य ।
शासन । उ०—जम के जसूस विनय जम सेाँ हमेशा करं
तेरी ठाकुरी को ठीक नेकु न निहारा है ।—पद्माकर ।

ठाट—संज्ञा पुं० [सं० रथाट = रथा होनेका] (१) पूस और चाँस
की फट्टियों को एक में बाँध कर बनाया हुआ ढाँचा जो आड़
करने या धाने के काम में आता है । लकड़ी या चाँस की
फट्टियों का घना हुआ परदा । जैसे, हूँ खरल का ठाट जगड़
गया है ।

फि० प्र०—ठाटवंदी । नवट ।

(२) ढाँचा । ढड्डा । पंजर । किसी वस्तु के मूल श्रंगों की
योजना जिनके आधार पर शेष रचना की जाती है ।

मुहा०—ठाट खड़ा करना = ढाँचा तैयार करना । ठाट खड़ा
होना = ढाँचा तैयार होना ।

(३) रचना । घनावट । सजावट । चेरा-विन्यास । सुं गार ।
उ०—(क) प्रज मनारि श्वाल धालक कहेँ कौने ठाट
रच्यो ।—सूर । (ख) पहिरि पितंबर, करि धाहंबर यहु तन
ठाट सिंगारयो ।—सूर ।

फि० प्र०—करना ।—ठटना ।—घनाना ।

मुहा०—ठाट बदलना = (१) चेरा बदलना । नया रूप रंग दिलाना ।
(२) और का और भाव प्रकट करना । प्रयोजन निकालने
या श्रेष्ठता प्रकट करने के लिये छुटे लक्षण दिखाना । (३)
श्रेष्ठता प्रकट करना । झूठ मूठ अधिकार या बह्यन जताना ।
रंग बाँधना । ठाट मानना = दे० "ठाट बदलना (१), (३)" ।
(४) धाहंबर । तड़क । भाड़क । तैयारी । धान चौकत ।
दिलावट । धूम धाम । जैसे, राजा की सचारी बड़े ठाट से
निकली ।

यौ०—ठाट घाट ।

(२) चैन चान । मजा । धाराम ।

मुहा०—ठाट मारना = मौज़ उड़ाना । मजे उड़ाना । चैन करना ।
ठाट से कटना = चैन से दिन बीतना ।

(६) ढंग । शैली । प्रकार । ढव । सज़ । शंदाज । जैसे, (क)
उसके चलने का ठाट ही निराखा है । (ख) यह घोड़ा बड़े
ठाट से चलता है । (७) आयोजन । सामान । तैयारी ।
अनुष्ठान । समारंभ । प्रबंध । बंदोबस्त । उ०—(क) खुबर
कह्यो लखन । भल घाट । करहु कतहुँ अथ टाहर टाट ।—
तुलसी । (ख) पालव घैटि पेड़ पड़ काटा । सुख मँह सोक
ठाट धरि टाटा ।—तुलसी । (ग) कासों कहीं, कहे, कैंसी
करौँ अथ क्यों निवहै यह ठाट जो आयो ।—सुंदरीसंग ।

फि० प्र०—करना ।

(८) सामान । माल अस्वाध । सामग्री । उ०—सब ठाट
पड़ा रह जायेगा जय छान्द चलैना बनजारा ।—नज़र ।
(९) युक्ति । ढव । ढंग । उपाय । ढील । जैसे, (क) किसी
ठाट से अपना रुपया वहाँ से निकालो । (ख) वह ऐसे ठाट
से मिंगता है कि कुछ न कुछ देना ही पड़ता है । उ०—
राज करत बिलु काज ही टटहि जे फूर कुटाट । तुलसी ते
कुराज ज्यो जैहँ वारह बाट ।—तुलसी । (१०) कुरती या
पटैयाजी में रड़े होने या वार करने का ढंग । पैतरा ।

मुहा०—ठाट बदलना = दूसरी मुद्रा से खड़ा होना । पैतरा बद-
लना । ठाट बाँधना = वार करने की मुद्रा से खड़ा होना ।

(११) कयूर या सुरगे का प्रसन्नता से पर फड़फड़ाने या
काड़ने का ढंग ।

मुहा०—ठाट मारना = पर फड़फड़ाना ।

(१२) सितार का तार ।

संज्ञा पुं० [हिं० ठाट] [को० ठाँ] (१) समूह । मुँड ।
उ०—(क) गज के ठाट पचास हजार । लख सहस्र हैं
असवारा ।—रघुराज । (ख) निसरि पराहिँ भाबु कपि
ठाटा ।—तुलसी । † (२) बहुतायत । अधिकता । प्रचुरता ।
(३) धूल या साँड़ की भारदम को ऊपर का बिछा । कुद ।

ठाटना—फि० सं० [हिं० ठाट] (१) रचना । बनाना । निर्मित
करना । संयोजित करना । उ०—यालक को तन टाटिया
निकट सरोवर तीर । सुर नर सुनि सय देखहिँ साधेय धरेउ
सरीर ।—कवीर । (२) अनुष्ठान करना । ठानना । करना ।
आयोजन करना । उ०—(क) महतारी को कद्यो न मानत
कपट चतुरहँ टाटी ।—सूर । (ख) पालव घैटि पेड़ पड़
काटा । सुख मँह सोक ठाट धरि टाटा ।—तुलसी । (३)
सुसजित करना । सजाना । तैयारना ।

ठाटवंदी—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठाट + वंदा] (१) ध्यान वा परदे

आदि के लिये फूस और बाँस की फटियों आदि को परसर जोड़ कर ढाँचा बनाने का काम । (२) इस प्रकार का ढाँचा । टाट । टटर ।

टाट वाट—संज्ञा पुं० [हिं० टाट] (१) सजावट । पनावट । सजघज । (२) तड़क भड़क । आडंबर । शान शौकत । जैसे, आज बड़े टाट वाट से राधा की सवारी निकली ।

टाटर—संज्ञा पुं० [हिं० टाट] (१) बाँस की फटियों और फूस आदि को जोड़ कर बनाया हुआ ढाँचा जो छाजन या परदे के काम में आता है । टाट । टटर । टट्टी । (२) टट्टी । पंजर । (३) ढाँचा । (४) कबूतर आदि के बैठने की छतरी जो टटर के रूप में होती है । (५) टाट वाट । घनाव । सिंगार । सजावट । उ०—उठिरिन पहनुतइ टाटर कीन्हों । चली अहीरिन काजर दीन्हों ।—जायसी ।

टाटो—संज्ञा स्त्री० [हिं० टाट] टट । समूह । श्रेणी । उ०—जस रय रंगि चलइ गज टाटी । बोहित चले समुद्र मे पाटी ।—जायसी ।

ठाट्टा—संज्ञा पुं० दे० “टाट” ।

ठाठा—संज्ञा पुं० दे० “टाट” ।

ठाठना—किं० सं० दे० “ठाटना” ।

ठाटर—संज्ञा पुं० दे० “टाटर” ।

संज्ञा पुं० [दे०] नदी में वह स्थान जहाँ अधिक गहराई के कारण बाँस या लगी न लगे । (महाद्व)

ठाड़ा—संज्ञा पुं० [हिं० ठाड़] रेत की वह जोटाई जिसमें एक बल जोत कर फिर दूसरे बल जोतते हैं ।

वि० दे० “ठाड़ा” ।

ठाढ़ा—वि० दे० “ठाड़ा” ।

ठाढ़ा—वि० [सं० रथाट = जो रथा हो] (१) खड़ा । दंडायमान । किं० प्र०—करना ।—होना ।—रहना ।

(२) जो पिसा या कुटा न हो । समूचा । सावित । उ०—भूँजि समोसा धिउ मँह काड़े । लींवा निचे तेदि मीतर टाड़े ।—जायसी । (३) उपस्थित । उपपन्न । पैदा । उ०—कीन चवट लीला हरि जयहीं । ठाड़ करत हैं कारन तबहीं ।—विश्राम ।

मुहा०—ठाड़ा देना = स्थिर रखना । ठहराना । रखना । ठिकाना ।

उ०—यारह वर्ष द्यो हम ठाड़े यह प्रताप विनु जाने । धय प्रगटे बनुदेव सुवन तुम गाँ धवन परिमाने ।—सूर ।

वि० इहा कहा । हट्ट छुट । पकी । टडांग । मजबूत ।

ठाड़ेदरती—संज्ञा पुं० [हिं० ठाड़ + सं० ईश्वर] एक प्रकार के सातु जो दिन रात लड़े रहते हैं । वे लड़े ही लड़े राते पीते तथा बीना आदि का सहारा लेकर सेते हैं ।

ठादरी—संज्ञा पुं० [दे०] रार । फगड़ा । मुठभेड़ । उ०—देव आपने नहीं सँभारत करत इंदू सों ठादर ।—सूर ।

ठान—संज्ञा स्त्री० [सं० अनुष्ठान] (१) अनुष्ठान । कार्य का प्रायो-जन । समारंभ । काम का छिड़ना । (२) छेड़ा हुआ काम । कार्य । उ०—ज्ञानती इतके तो न ठानती अटान ठान भूजि पथ प्रेम के न एक पग धारती ।—हनुमान । (३) दृढ़ विश्रय । दृढ़ संकल्प । पक्का इरादा । (४) चेष्टा । मुद्रा । अंग स्थिति या संवाजन का ढंग । अंदाज । उ०—पाड़े थंक चिते मधुरें हैंसि घात किए उलटे सुठान सों ।—सूर ।

ठानना—किं० सं० [सं० अनुष्ठान, हिं० ठान] (१) (किसी कार्य में) तत्परता के साथ आरंभ करना । दृढ़ संकल्प के साथ आरंभ करना । अनुष्ठित करना । छेड़ना । जैसे, काम ठानना, भगड़ा ठानना, बैर ठानना, मुद्र ठानना, यज्ञ ठानना । उ०—तिन सों कइयो पुत्र हित हय मल हम दीनो है ठानी ।—रघुराज । (२) (मन में) स्थिर करना । (मन में) ठहराना । निश्चित या ठीक करना । पक्का करना । चित्त में दृढ़तापूर्वक धारण करना । दृढ़ संकल्प करना । जैसे, मन में केई बात ठानना, हठ ठानना । उ०—सदा राम पहि प्रान समाना । कारन कौन कुटिल पन ठाना ।—सुलसी ।

ठाना—किं० सं० [सं० अनुष्ठान] (१) ठानना । दृढ़ संकल्प के साथ आरंभ करना । छेड़ना । करना । उ०—काहे को सोई हजार करो तुम तो कपहुँ अंपराध न ठाये ।—मतिराम । (२) मन में ठहराना । निश्चित करना । दृढ़तापूर्वक चित्त में धारण करना । पक्का विचार करना । उ०—विश्या-मित्र हुली है हँड तुनि करन मदा तप ठाये ।—रघुराज ।

विशेष—दे० “ठयना” ।

(३) स्थापित करना । रखना । धरना । उ०—सुरली तज गोपाकाहि भावति । अति प्राचीन सुजान कनैठे गिरिधर नार मवारति । आयुन पैड़ि अघर सग्या पर कर-पठय प-पहब ठावति ।—सूर ।

† संज्ञा पुं० दे० “ठाना” ।

ठामो—संज्ञा पुं० स्त्री० [सं० स्थान] (१) स्थान । जगह ।

विशेष—दे० “ठाँव” ।

(२) अंगस्थिति या संवाजन का ढंग । स्थिति । मुद्रा । अंदाज । (३) अंगेठ । अंगलेट ।

ठाये—संज्ञा पुं० स्त्री० दे० “ठाँव” “ठाँवे” ।

ठार—संज्ञा पुं० [सं० कल्प, प्रा० टहट, ठं] (१) गहरा जाड़ा । अत्यंत शीत । गहरी सरदी । (२) पाला । हिम ।

किं० प्र०—पड़ना ।

ठाली—संज्ञा स्त्री० [हिं० निठाल] (१) रक्वमाय या कामधेये का अभाव । जीविका का अभाव । पैकारी । बेरोजगारी । (२) खाली बरत । जुरसत । अक्काल ।

वि० जिसे कुछ कामधंधा न हो। खाली। निडरहा।

ठाला—संज्ञा पुं० [हिं० निडरहा] (१) व्यवसाय या कामधंधे का अभाव। बेकारी। रोजगार का न रहना। (२) रोजी या जीविका का अभाव। धामदनी का न होना। वह दूरा जिसमें कुछ प्राप्ति न हो। रूपय पैसे की कमी। जैसे, धाज कल बढ़ा ठाला है कुछ नहीं दे सकते।

मुहा०—ठाला बताना = बिना कुछ दिए चतृता करना। घटा बताना। (दूलाळ)। बँडे ठाले = खाली बँडे हुए। कुछ कामधंधा न रहते हुए। जैसे, बँडे ठाले, यहाँ किया फरे, थच्छा है।

ठाली—वि० [हिं० निडरहा] (१) खाली। जिसे कुछ काम धंधा न हो। निडरहा। बेकाम। उ०—(क) ऐसी को ठाली बँडी है तोसें मूड चरावे। मूडी घात तुसी सी चिनु कन फटकत हाय न थावे।—सूर। (ख) ठाली ग्यालि जानि पठये थलि कसो पद्वारन छुछे।—तुलसी।

ठावै—संज्ञा स्त्री० पुं० दे० 'ठाव'।

ठावना—क्रि० सं० दे० "ठाना"।

ठासा—संज्ञा पुं० [हिं० ठाँसना] लोहारों का एक औजार जिससे तंग जगह में लोहे की फेर निकालते और उभारते हैं।

था०—गोल ठासा = गोल सिरे का ठाला जिससे लोहे की चदर को गढ़ कर गोला बनाते हैं।

ठाहरा—संज्ञा पुं० [सं० स्थल, हिं० ठहर] (१) स्थान। जगह। उ०—शुक-सुता जब थाई थाहर। पाप बसन परे तेहि ठाहर।—सूर। (२) निवास-स्थान। रहने या ठिकने का स्थान। डेरा। उ०—रघुवर कहाँ लखन भल पाहू। करहु कतहूँ धय ठाहर ठाहू।—तुलसी।

ठाहरा—संज्ञा पुं० दे० "ठाहर"।

ठाहरूपक—संज्ञा पुं० [सं० रथा + रूपक] मृदंग का एक ताल जो सात मात्राओं का होता है। इसमें और आठ चैताल में बहुत थोड़ा भेद है।

ठाहीं—संज्ञा स्त्री० दे० "थहीं"।

ठिंगना—वि० [हिं० देठ + ण] [स्त्री० ठिंगनी] जो बँचाई में कम हो। छोटे कद का। छोटे बोल का। नाटा। (जीव-धारियों विशेषतः मनुष्य के लिये)

ठिक—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठिकिया] धातु की चदर का कटा हुआ छोटा टुकड़ा जो जोड़ खाने के काम में आये। पिगली। चकती।

ठिकठैना—संज्ञा पुं० [हिं० ठीक + ठाना] ठीक ठाक। प्रबंध। आयोजन। उ०—आज कछुँ खीरे भपु ठप नप ठिकठैन। चित के हित के सुगत ये नित के होंय न नैन।—विहारी।

ठिकड़ा—संज्ञा पुं० दे० "ठीकरा"।

ठिकाना—क्रि० अ० [सं० रिपत + क] ठिकना। ठहरना। रुकना। अड़ना। उ०—रस भिजपु देज तुहुनि तव ठिकि रहँ टरँ न। छुवि सों छिरकत प्रेम रँग भरि पिचकारी नैन।—विहारी।

संयोग क्रि०—जाना।—रहना।

ठिकरा—संज्ञा पुं० दे० "ठीकरा"।

ठिकरी—संज्ञा स्त्री० दे० "ठीकरी"।

ठिकरौर—संज्ञा स्त्री० [दे०] वह भूमि जहाँ खपड़े ठिकरे प्रादि बहुत से पड़े हों।

ठिकारै—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठीक] पाल के जम कर ठीक ठीक बँटने का भाव। (लश०)

ठिकाना—संज्ञा पुं० दे० "ठिकाना"।

ठिकाना—संज्ञा पुं० [हिं० ठिकान] (१) स्थान। जगह। डैर। (२) रहने की जगह। निवास-स्थान। ठहरने की जगह।

था०—पता ठिकाना।

(१) आश्रय स्थान। निर्वाह करने का स्थान। जीविका का अधवलंब।

मुहा०—ठिकाना करना = (१) बगह करना। स्थान निरिच्छ करना। स्थान नियत करना। जैसे, धरने लिये कहीं बँटने का ठिकाना करो। (२) ठिक्का। देय करना। ठहरना। (३) आश्रय ढूँढ़ना। जीविका लगाना। नौकरी या काम धंधा ठीक करना। जैसे, हुनके लिये भी कहीं ठिकाना करो, पाली बँडे हैं।

(४) व्याह के लिये घर ढूँढ़ना। व्याह ठीक करना। जैसे, हुनका भी कहीं ठिकाना करो, घर बसे। ठिकाना ढूँढ़ना = (१) स्थान ढूँढ़ना। जगह तजारा करना। (२) रहने या ठहरने के लिये स्थान ढूँढ़ना। निवास स्थान ठहराना। (३) नौकरी या काम धंधा ढूँढ़ना।

जीविका खोजना। आश्रय ढूँढ़ना। (४) कन्या के ब्याह के लिये घर ढूँढ़ना। घर खोजना। (किसी का) ठिकाना लगाना = (१) आश्रय-स्थान मिलाना। ठहरने या रहने की जगह मिलाना। उ०—सिपाही जो भागे तो बीच में कहीं ठिकाना न लगा। (२) जीविका का प्रबंध होना। नौकरी या काम धंधा मिलना। निर्वाह का प्रबंध होना। उ०—हुस बाल से तुम्हारा कहीं ठिकाना न लगेगा। ठिकाना लगाना = (१) पता चलाना। ढूँढ़ना। (२) आश्रय देना। नौकरी या काम धंधा ठीक करना। जीविका का प्रबंध करना। ठिकाने खाना =

(१) अपने स्थान पर पहुँचना। नियत या वांछित स्थान पर वास होना। उ०—चलत पंथ फेरत थाके होइ। कहे दूर धरि मरिहे सोई। जो फेरत ताके निकट बतायै। धीरज धरि से ठिकाने आयै।—सूर। (२) ठीक विचार पर पहुँचना। बहुत सोच विचार या यातचित के उपरांत यथार्थ बात करना या संममना। जैसे, बुद्धि ठिकाने आना। उ०—हाँ, इतनी देर

के बाद श्रव टिकाने आए। (३) मूल तत्त्व तक पहुँचना। अरली बात छोड़ना या कहना। प्रयोजन की बात पर आना। मन्त्रय की बात उठाना। टिकाने की बात = (१) ठीक बात। सन्धी बात। यथार्थ बात। प्रामाणिक बात। श्रमली बात। (२) समझदारी की बात। युक्तियुक्त बात। (३) पते की बात। ऐसी बात जिससे कोई भेद खुलते। ऐसी बात जिससे किसी विषय में जानकारी हो जाय। टिकाने न रहना = चंचल हो जाना। जैसे, बुद्धि टिकाने न रहना, रोमा टिकाने न रहना। टिकाने पहुँचाना = (१) यथास्थान पहुँचाना। ठीक जगह पहुँचाना। (२) किसी वस्तु को छुन वा नष्ट कर देना। किसी वस्तु को न रहने देना। (३) मार डालना। टिकाने लगाना = (१) ठीक स्थान पर पहुँचाना। बाँधित स्थान पर पहुँचाना। (२) काम में आना। उपयोग में आना। अच्छी जगह खर्च होना। उ०—चलो अच्छा हुआ, बहुत दिनों से यह चीज पक्की थी टिकाने लग गई। (३) सफल होना। फलीभूत होना। जैसे, मिहनत टिकाने लगाना। (४) परमधाम विचारना। मर जाना। मार जाना। टिकाने लगाना = (१) ठीक जगह पहुँचाना। उपयुक्त या बाँधित स्थान पर ले जाना। (२) काम में लाना। उपयोग में लाना। अच्छी जगह खर्च करना। (३) सार्थक करना। सफल करना। निष्कृत न जाने देना। जैसे, मिहनत टिकाने लगाना। (४) श्रम उपर कर देना। खो देना। छुन कर देना। गन्ध कर देना। नष्ट कर देना। न रहने देना। (५) खर्च कर डालना। (६) आश्रय देना। जीविका का प्रबंध करना। काम धंधों में लगाना। (७) कार्य को समाप्त तक पहुँचाना। पूरा करना। (८) काम तमाम करना। मार डालना। (८) (क) निश्चित बखिल। यथार्थता की संभावना। ठीक। प्रमाण। जैसे, उसकी बात का क्या क्या टिकाना? कसो कुछ कहता है कसो कुछ। (ख) दृढ़ स्थिति। स्थायित्व। स्थिरता। ठहराव। जैसे, इस दृष्टि में का क्या टिकाना दूसरी बनवायो।

विशेष—इन शब्दों में इस शब्द का प्रयोग प्रायः निषेधात्मक या संदेहात्मक वाक्यों ही में होता है। जैसे, सय्या तो हम सब लगाने अथ कि उनकी बात का कुछ टिकाना हो।

(१) प्रबंध। आयोजन। बँदावस्त। डाल। प्रतिष्ठा का द्वार या ढंग। जैसे, (क) पहले खाने पीने का टिकाना करो, धीरे धीरे पीने लगेंगे। (ख) उसे तो खाने का टिकाना नहीं है। उ०—ये! कौन साहू साल की आमदनी का टिकाना हुआ।—शिवप्रसाद।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

मुहा०—टिकाना लगाना = प्रबंध होना। आयोजन होना। प्रतिष्ठा का डौल होना। टिकाना लगाना = प्रबंध करना। ठीक लगाना।

(३) पारावार। अंत। हद। जैसे, (क) यह इतना मूढ़ खोलता है जिसका टिकाना नहीं। (ख) उसकी दौलत का कहीं टिकाना है?

विशेष—इस शब्द में इस शब्द का प्रयोग प्रायः निषेधात्मक वाक्यों ही में होता है।

† क्रि० स० [हि० टिकाना] ठहराना। घड़ाना। स्थित करना।

टिठकना—क्रि० थ० [सं० स्थित + कर्ण] (१) चलते चलते एक-दूसरे से टूटना। एकदम टूट जाना। (२) धंगों की गति बंद करना। स्तम्भित होना। न हिलना न डोलना। ठक रह जाना।

टिठरना—क्रि० थ० [सं० स्थित] अधिक गीत से संतुष्ट होना। सरदी से पेंडना या सिकुड़ना। जाड़े से थकड़ना। बहुत अधिक से खाना। जैसे, हाथ पाँव टिठरना।

ठुठरना †—क्रि० थ० दे० "टिठरना"।

ठिनकना—क्रि० थ० [षुजु] (१) वस्त्रों का रह रह कर रोंके का सा शब्द निकालना। (२) ठसक से रोना। रोंके का मल्लर करना। (त्रि०)

ठियाँ—संज्ञा पु० [सं० स्थित] (१) गाँव की सीमा का बिह। हद का पथर या लट्टा। (२) चाँड़। घूनी। (३) दे० "ठीहा"।

ठिर—संज्ञा स्त्री० [सं० स्थिर वा लम्ब] गहरी सरदी। कठिन शीत। गहरी ठंड। पाला।

क्रि० प्र०—पड़ना।

ठिरना—क्रि० स० [हि० ठिर] सरदी से ठिठरना। जाड़े से थकड़ना।

क्रि० थ० गहरी जाड़ा पड़ना। अत्यंत ठंड पड़ना।

ठिलना—क्रि० थ० [हि० ठेकना] (१) ठेका जाना। ढकेला जाना। बलपूर्वक किसी धोर खिसकाया या बढ़ाया जाना। (२) बलपूर्वक बढ़ना। वेग से किसी धोर मुक पड़ना। घुसना। घँसना। उ०—दुखितन तें बमड़े दोव भाईं। ठिले दीह दख जुहुमि दिवाईं।—छाब। † (३) पैडना। जमना।

ठिलाठिल †—क्रि० वि० [हि० ठिकना] एक पर एक गिरते हुए। धकमधका करते हुए। घने समूह धीरे धीरे वेग के साथ। उ०—किलकिल चीज ठिलाठिल धावे। चहुँ दिव धोर पुखन भहिं पावे।—छाब।

ठिलिया—संज्ञा स्त्री० [सं० रथानी, प्रा० ठली = दंडिया] छोटा पड़ा। पानी भरने का मिट्टी का छोटा बरतन। गगरी।

ठिलुग्रा—वि० [हि० निठल] निठला। निकम्मा। बेकाम। जिसे कुछ काम पंचा न हो। उ०—बहुत से ठिलुग्रा अयना मन पढ़वाने के लिये सीरों की पंचापत ले सँटते हैं।—श्रीनिवा दस।

ठिठ्ठा—संज्ञा पुं० [हि० ठिठिया] [स्त्री० ठिठिया, ठिठी] घड़ा ।
 पानी भरने या रखने का मिट्टी का बरतन । गगरी ।
 ठिठ्ठी—संज्ञा स्त्री० दे० "ठिठिया" ।
 ठिठ्ठी—संज्ञा स्त्री० दे० "ठिठी" ।
 ठिठ्ठारा—वि० [सं० स्थिर] विश्वास करने योग्य । पुतवार के
 लायक ।
 ठिठ्ठारि—संज्ञा स्त्री० [हि० ठहरना] ठहराव । निश्चय । झुंकार ।
 उ०—जैसी हुत्ती हमते गुमते अब होयगी वैसियै प्रीति
 ठिठ्ठारि । चाहत जा चित में हित तो जनि योलिय कुंज
 कुंजविहारी ।—सु० दरीसर्वस्व ।
 ठीक—वि० [हि० ठिकाना] (१) जैसा हो वैसा । यथार्थ । सब ।
 प्रामाणिक । जैसे, तुम्हारी बात ठीक निकली । (२) जैसा
 होता चाहिए वैसा । उपयुक्त । अच्छा । भला । उचित ।
 सुनास्व । योग्य । जैसे, (क) उगका बर्तन ठीक नहीं
 होता । (ख) तुम्हारे लिये ऐसा कहना ठीक नहीं है ।
 मुहा०—ठीक लगना = भला जान पड़ना ।
 (३) जिसमें भूल या अशुद्धि न हो । शुद्ध । सही । जैसे,
 आठ में से तुम्हारे कितने सवाल ठीक हैं ? (४) जो थिगड़ा
 न हो । जो अच्छी दूरा में हो । जिसमें कुछ युक्ति या फलर
 न हो । बुरा । अच्छा । जैसे, (क) यह घड़ी ठीक करने के
 लिये भेज दो । (ख) हमारी तथियत ठीक नहीं है ।
 यो०—ठीक टाक ।
 (१) जो किसी स्थान पर अच्छी तरह बँडे या जमे । जो
 ढोला या कसा न हो । जैसे, यह जूता पैर में ठीक नहीं
 होता ।
 मुहा०—ठीक खाना = ढीला या कसा न होना ।
 (१) जो प्रसिद्ध आचरण न करे । सीधा । सुष्ट । नग्न ।
 जैसे, (क) वह बिना मार खाए ठीक न होगा । (ख) हम
 अभी तुम्हें शा कर ठीक करते हैं ।
 मुहा०—ठीक बनाना = (१) द'ड देकर सीधा करना । राह पर
 लाना । सुसज करना । (२) तंग करना । दुर्गति करना । दुर्दशा
 करना ।
 (३) जो कुछ धारो पीछे हृधर उधर या घटा घड़ा न
 हो । जिसकी आकृति, स्थिति या मात्रा आदि में कुछ
 अंतर न हो । किसी निर्दिष्ट आकार, परिमाण या स्थिति
 का । जिसमें कुछ फर्क न पड़े । निर्दिष्ट । जैसे, (क) हम
 ठीक ब्राह्म वस्त्रे धार्यो । (ख) चिड़िया ठीक तुम्हारे सिर
 के ऊपर है । (ग) यह चीन ठीक वैसी ही है ।
 मुहा०—ठीक बतलना = जितना चाहिए उतना ही ठहरना ।
 अर्थ करने पर न पटना न बढ़ना । जैसे, अनाज तौलने पर
 ठीक उतरा ।
 (न) ठहराया हुआ । नियत । निश्चित । स्थिर । पक्का ।

तै । जैसे, काम करने के लिये आदमी ठीक करना, गाड़ी
 ठीक करना, भाड़ा ठीक करना, विवाह ठीक करना ।
 क्रि० प्र०—करना ।—होना ।
 यो०—ठीक टाक ।
 क्रि० वि० जैसे चाहिये वैसे । उपयुक्त प्रणाली से । उचित
 रीति से । अच्छे ढंग से । जैसे, ठीक चलना, ठीक दौड़ना ।
 उ०—(क) यह घोड़ा ठीक नहीं चलता । (ख) यह बनिप
 ठीक नहीं तौलता ।
 संज्ञा पुं० (१) निश्चय । ठिकाना । स्थिर और शरीरिय
 बात । पक्की बात । दृढ़ बात । जैसे, उनके खाने का कुछ ठीक
 नहीं, शायें या न शायें ।
 यो०—ठीक ठिकाना ।
 मुहा०—ठीक देना = मन में पक्का करना । दृढ़ निश्चय करना ।
 उ०—(क) नीके ठीक दई तुलसी खलव बड़ी उर थालर
 दू की ।—तुलसी । (ख) फर विचार मन दीन्ही ठीका ।
 राम रजायसु थापन नीका ।—तुलसी । (इस मुहा० में 'ठीक'
 शब्द के धारो 'बात' शब्द तुल्य मान कर उसका प्रयोग स्त्री०
 में होता है)
 (२) नियति । ठहराव । स्थिर प्रबंध । पक्का आयोजन ।
 बंदोबस्त । जैसे, खाने पीने का ठीक कर ले, तप
 कहीं जाओ ।
 यो०—ठीक टाक ।
 (३) जोड़ । मीजान । योग । टोटल ।
 मुहा०—ठीक देना, लगाना = जोड़ निकालना । योगफल
 निश्चित करना ।
 ठीक टाक—संज्ञा पुं० [हि० ठीक] (१) निश्चित प्रबंध । बंदोबस्त ।
 आयोजन । जैसे, इनके रहने का कहीं ठीक टाक करो ।
 क्रि० प्र०—करना ।—होना ।
 (२) जीविका का प्रबंध । काम धंधे का बंदोबस्त । धाराधय ।
 ठौर ठिकाना । जैसे, इनका भी कहीं ठीक टाक लगाओ ।
 क्रि० प्र०—करना ।—लगाना ।
 (३) निश्चय । ठहराव । पक्की बात । जैसे, विवाह का ठीक
 टाक हो गया ?
 वि० अच्छी तरह हुदस्त । बन कर तैयार । प्रस्तुत । काम
 देने योग्य ।
 ठीकड़ा—संज्ञा पुं० दे० "ठीकरा" ।
 ठीकरा—संज्ञा पुं० [हि० ठुकरा] [स्त्री० थप्य० ठीकरी] (१) मिट्टी
 के बरतन का बूटा ठुकरा । खपरैल आदि का ठुकरा ।
 सितकी ।
 मुहा०—ठीकरा फोड़ना = दोष लगाना । कलंक लगाना । (किसी
 वस्तु या रूप वैसे आदि को) ठीकरा समझना = कुछ न

समझना । कुछ भी मन्वान् न समझना । अपने किसी काम का न समझना । जैसे, पराए माछ को टीकरा समझना चाहिए ।

मुहा०—(किसी वस्तु का) टीकरा होना = अंधा-धुंधल एवं होना । पानी की तरह बहना जाना ।

(२) बहुत पुराना बरतन । टूटा फूटा बरतन । (३) भीख माँगने का बरतन । भिक्षापत्र ।

टीकरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठीकरा] (१) मिट्टी के बरतन का छोटा फूटा टुकड़ा । (२) टूट्ट वस्तु । निकम्मी चीज़ । (३) मिट्टी का तवा जो चिलम पर रखने हैं । (४) उपस्थ । छियों की योनि का उभरा हुआ तल ।

टीका—संज्ञा पुं० [हिं० ठीक] (१) कुछ धन आदि के बदले में किसी के किसी काम को पूरा करने का जिम्मा । जैसे, मकान बनवाने का टीका, सड़क ठीका करने का टीका । (२) समय समय पर धामदनी देनेवाली वस्तु को कुछ काज तक के लिये इस शर्त पर दूसरे को सुपुर्न करना कि वह धामदनी बसूल कर के और कुछ खपना मुनाफा काट कर बराबर मालिक को देता जायगा । हजारा ।

क्रि० प्र०—देना ।—लेना ।—पर लेना ।

ठीकेदार—संज्ञा पुं० [हिं०] टीका देनेवाला ।

ठीठा—संज्ञा पुं० दे० “ठेठा” ।

ठीठी—संज्ञा स्त्री० [अ०] हँसी का शब्द ।

थै०—हाहा ठीठी ।

ठीलना—क्रि० स० दे० “ठेलना” । उ०—में तो भूलि ज्ञान को आये गयउ हृदये ठीले ।—सूर ।

ठीवन—संज्ञा पुं० [सं० ठंवन] थूक । खलार । कफ । रलेय्या । उ०—आमिष अरिष न चाम को धानन ठीवन तामे भरो अधिकाई ।—रघुराज ।

ठीहँ—संज्ञा स्त्री० [अ०] घोड़ों की हँस । दिनदिनाहट का शब्द । उ०—दुहुँ दल ठीहँ हुरंगनि दीनी । दुहुँ दल बुदि बुद रस भीनी ।—साह ।

ठीहा—संज्ञा पुं० [सं० रथा] (१) जमीन में गड़ा हुआ लकड़ी का कुंदा जिसका घोड़ा सा भाग जमीन के ऊपर रहता है । इस पर वस्तुओं को रख कर जोहार चढ़ई आदि बनें पीठते, झीलते या गड़ते हैं । लोहारों सोतार कसेरे आदि धातु का काम करनेवाले इसी ठीहे में अपनी निहाई गाड़ते हैं । पशुओं को खिलाने का चारा भी ठीहे पर रस कर काटा जाता है । (२) पट्टियों का लकड़ी गड़ने का कुंदा जिसमें एक मोटी लकड़ी में ठातुर्मा गड़ना बना रहता है । (३) बट्टियों का लकड़ी चीरने का कुंदा जिसमें लकड़ी को कस कर चढ़ा कर देते और चीरते हैं । (४) बैठने के लिये कुछ ऊँचा किया हुआ स्थान ।

थेदी । गद्दी । दूकानदार के बैठने की जगह । (५) हद्द । सीमा ।

ठुंठ—संज्ञा पुं० [हिं० टूटना वा सं० ख्याल] (१) सुखा हुआ पेड़ । ऐसे पेड़ की खड़ी लकड़ी जिसकी डाल पत्तियाँ आदि कट या गिर गई हों । (२) कटा हुआ हाथ । वह मनुष्य जिसका हाथ कटा हो । लूला ।

ठुंठ—संज्ञा पुं० दे० “ठुंड” ।

ठुकना—क्रि० प्र० [अ०] (१) ताड़ित होना । टोंका जाना । पिटना । आघात सहना । (२) आघात या कर धँसना । गड़ना । जैसे, खँदा ठुकना ।

संयो० क्रि०—जाना ।

(३) मार खाना । मारा जाना । जैसे, घर पर खूब ठुकेगे । (४) कुर्ती आदि में हड़ना । ध्वस्त होना । पस्त होना । (५) हानि होना । नुकसान होना । चपत बैठना । जैसे, घर से निकलते ही २० की ठुकी । (६) काठ में टोंका जाना । कँद होना । पैर में थैड़ी पहनना । (७) दाखिल होना । जैसे, नालिश ठुकना ।

ठुकराना—क्रि० स० [हिं० ठेकर] (१) ठेकर मारना । ठेकर लगाना । लात मारना । (२) पैर से मार कर किनारे करना । तुच्छ समक कर पैर से हटाना ।

ठुकवाना—क्रि० स० [हिं० ठेकना का प्रे०] (१) ठेकने का काम कराना । पिठवाना । (२) गड़वाना । धँसवाना । (३) संभोग कराना । (अश्लिष्ट)

ठुड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० हुंड] चेहरे में होठ के बीच का भाग । चिबुक । टोड़ी । टुड्डी ।

संज्ञा स्त्री० [हिं० ठड़ा = खड़ा] वह मूना हुआ दाना जो फूट कर खिजा न हो । टोरी । जैसे, मक्के की ठुड्डी ।

ठुनकना—क्रि० प्र० दे० “ठिनकना” ।

क्रि० स० [हिं० ठंकना] धीरे से डँगली से ठोक या मार देना ।

ठुनकाना—क्रि० स० [हिं० ठंकना] धीरे से ठोकना । डँगली से हलकी चोट पहुँचाना ।

ठुन ठुन—संज्ञा पुं० [अ०] (१) धातु के टुकड़ों या बरतनों के बजने का शब्द । (२) बच्चों के रक रक कर रोने का शब्द । मुहा०—ठुन ठुन लगाए रहना = बजरा रोया करना ।

ठुमक—वि० [अ०] (१) (चाल) जिसमें अंगों के कारण जल्दी जल्दी थोड़ी थोड़ी दूर पर पैर पटकते हुए चलते हैं । बच्चों की तरह कुछ कुछ उड़ल हूद या टिक लिए हुए (चाल) । (२) ठसक भरी (चाल) । जैसे, ठुमक चाल ।

ठुमक ठुमक—क्रि० वि० [अ०] जल्दी जल्दी थोड़ी थोड़ी दूर पर पैर पटकते हुए (बच्चों का चलना) । फुटने या रह रह

कर कूदते हुए (चलना) । जैसे, पत्थों का डुमक डुमक चलना ।
 व०—(क) चलत देखि जसुमति सुख पावै । डुमुकु डुमुकु
 चरनी पर रंगत जननी देखि दिखावै ।—सूर । (ख)
 कौराव्या जब बोलन जाई । डुमुकि डुमकि प्रभु चलहिं
 पराई ।—मुलसी । (ग) ध्रुगन मगन धीगना खेचिहैं मिलि
 डुमुकु डुमुकु कब धैरै ।—तुलसी ।

डुमकना—कि० अ० [अ०] (१) बच्चों का वसंग में जवदी
 जवदी थोड़ी थोड़ी दूर पर पैर पटकते हुए चलना । कूदते या
 कुदकते हुए चलना । व०—डुमुकि चलत रामचंद्र पाजत
 पैवनिर्वा ।—तुलसी । (२) नाचने में पैर पटक कर चलना
 जिसमें धुं धुरू बजें ।

डुमका—वि० [दे०] [श्री० डुमका] छोटे ढील का । नाटा ।
 डेंगना । व०—जाति चली प्रज ठाकुर पै डुमका डुमकी डुमकी
 ठकुराइन ।—पद्माकर ।

डुमका पु० [अ०] भटका । धपका । (पतंग)

डुमकारना—कि० अ० [दे०] डेंगली से डोरी खींच कर भटका
 देना । धपका देना । (पतंग)

डुमकी—संज्ञा स्त्री० [दे०] (१) हाथ या डेंगली से खींच कर
 दिया हुआ भटका । धपका । (पतंग) ।

कि० प्र०—देना ।—लगाना ।

(२) ठिक । रूकावट । (३) छोटी खरी पूरी ।

वि० स्त्री० नाटी । छोटे ढील की । छोटी काठी की । व०—
 जाति चली प्रज ठाकुर पै डुमका डुमकी डुमकी ठकुराइन ।—
 पद्माकर ।

डुमरी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] (१) छोटा सा गीत । दो बोलों का
 गीत । यह गीत जो केवल एक स्थान और एक ही श्रंतेरे में
 समाप्त हो ।

यौ०—सिर परदा डुमरी = एक प्रकार की डुमरी जो 'ब्रह्म' ताल
 पर बजाई जाती है ।

(२) बड़ती खबर । गप । अफ़वाह ।

कि० प्र०—बड़ना ।

डुरियाना—कि० अ० [हिं०] टिटुर जाना । सिकुड़ जाना । शीत
 से अकड़ जाना ।

डुरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठड़ा = सड़ा] यह भूना हुआ दाना जो
 भूने पर न खिले ।

डुसकना—कि० अ० दे० (१) 'डिनकना' । (२) डुस शब्द करके
 पादना । डुसकी मारना ।

डुसकी—संज्ञा स्त्री० [अ०] धीरे से पादने की क्रिया ।

डुसना—कि० अ० [हिं० डूसना] (१) कस कर भरा जाना । डुस
 प्रकार समाना या श्रैटना कि कहीं खाली जगह न रहे जाय ।
 जैसे, इस संदूक में कपड़े डुसे हुए हैं । (२) कठिनता से
 घुसना ।

डुसवाना—कि० अ० [हिं० डूसना का प्र०] (१) कस कर भर-
 वाना । (२) जोर से घुसवाना ।

डुसाना—कि० अ० [हिं० डूसना] (१) कस कर भरवाना ।
 (२) जोर से घुसवाना । (३) खूब पेट भर खिलाना ।
 (अश्लिष्ट)

डुंग—संज्ञा स्त्री० [सं० डुण्ड] (१) चोंच । डोर । (२) चोंच से
 मारने की क्रिया । चोंच का प्रहार । (३) डेंगली को मोड़ कर
 पीछे निकली हुई डुंडी की नोक से मारने की क्रिया ।
 डोला ।

कि० प्र०—लगाना ।—मारना ।

डुंगा—संज्ञा पुं० दे० "डुंग" ।

डुँठ—संज्ञा पुं० [हिं० डूटना वा सं० रयाण्ड] (१) ऐसे पेड़ की
 खड़ी लकड़ी जिसकी ढाल पत्तियाँ आदि कट गई हों । पेड़
 का धड़ जिसमें ढाल पत्ते आदि न हों । सूखा पेड़ । (२)
 कटा हुआ हाथ । डुँड । व०—विद्या विद्या हरष
 हित पढ़त होत खल डुँठ । कस्यो निकारो मीन को सुसि
 थायो मुहँ उँट ।—विश्राम । (३) एक प्रकार का कीड़ा
 जो ड्वार, बाजरे, ईंख आदि की फसल में लगता है ।

डुँठा—वि० [हिं० डूँठ वा सं० रयाण्ड] [स्त्री० डूँठ] (१) विना
 पत्तियों और तहनियों का (पेड़) । सूखा (पेड़) । जैसे, डूँठा
 पेड़ । (२) विना हाथ का । जिसका हाथ कटा
 हो । खूला ।

डुँठियाँ—वि० [हिं० डूँठ] (१) खूला लँगड़ा । (२) हिजड़ा ।
 नपुंसक ।

डुँठी—संज्ञा स्त्री० [हिं० डूँठ] ड्वार, बाजरे, अरहर आदि का
 जड़ के पास का बंडल जो खेत फटने पर पड़ा रह जाता है ।
 खूँटी ।

डुँसना—कि० अ० दे० "डूसना" ।

डुँसा—संज्ञा पुं० दे० "डोसा" ।

डुसू—संज्ञा पुं० [दे०] पत्थों की वह टेढ़ी कील जिस पर वे पहने
 श्रैटका कर सन्धें गूँथते हैं ।

डुसोप—यह कील पत्थर में बँटाए हुए खूँटे के सिरे पर लगी
 होती है ।

डूसना—कि० अ० [हिं० डूस] (१) कस कर भरना । डूटना अधिक
 भरना कि हथर उधर जगह न रहे । (२) घुसेड़ना ।
 जोर से घुसाना । (३) खूब पेट भर कर खाना । कस
 कर खाना ।

डेंगना—वि० [हिं० डेंठ + ङंग] [श्री० डेंगनी] छोटे ढील का ।
 जो डेंबाई में पूरा न हो । नाटा । (जीवधारियों विशेषतः
 मनुष्य के बच्चे)

ढेंगा—ढेंगा पुं० [हि० ढेठ + ङंग का षष्ठी] (१) ष्ठीगुल । ठोसा ।
 मुहा०—ढेंगा दिखाना = (१) ष्ठीगुल दिखाना । ठोसा दिखाना ।
 घृष्टता के साथ अस्वीकार करना । घुरी तरह से नहीं करना ।
 (२) चिढ़ाना । ढेंगे से = बगना से । कुछ परवाह नहीं । (जब कोई किसी से किसी बात की धमकी या कुछ करने या होने की सूचना देता है तब दूसरा अपनी बेपरवाही या निर्माकसा प्रकट करने लिये ऐसा कहता है ।)
 (२) किंगडिय । (अशिश्ट) । (३) सोटा । डंडा । गदका ।
 षं०—अवरदस्त का ढेंगा सिर पर ।
 मुहा०—ढेंगा बजना = (१) भार पीट देना । लडाईं देना ।
 (२) व्यर्थ की खंडखंड होना । प्रपन्न निष्कन्न होना । कुछ काम न निकलना । षं०—जिसका काम उसी को साजे । धीर करे तो ढेंगा बाने ।
 (५) वह घर जो विक के माल पर लिया जाता है । चुंगी का महसूल ।
 ढेंगुर—ढेंगा पुं० [हि० ढेंग = सोटा] काट का लंबा लुंदा जो नटपट बीपारियों के गले में इसलिये बांध दिया जाता है जिसमें वे बहुत दीर्घ धीर उड़ल हूँ न सकें ।
 ढेंघा—ढेंगा पुं० दे० “ढेंघा” ।
 ढेंठ—ढेंगा षी० दे० “ढेंठी” ।
 षि० दे० “ढेंठ” ।
 ढेंठी—ढेंगा षी० [दे०] (१) कान की मूँल का लच्छा । कान की मूँल । (२) कान के छेद में लगाई हुई रई, कपड़े आदि की बाट । कान का छेद मूँदने की वस्तु ।
 मुहा०—कान में ढेंठी धागाना = न सुनना ।
 (३) शीरी घेतल आदि का मुँह बंद करने की वस्तु । बाट । काग ।
 ढेंपी—ढेंगा षी० दे० “ढेंठी” ।
 ढेंक—ढेंगा षी० [हि० टिकना] (१) सहरा । यल दे कर टिकाने की वस्तु । झोंटगने की चीज़ । (२) वह वस्तु जो किसी गरी चीज़ को ऊपर उठारने रखने के लिये नीचे से लगाई जाय । टेक । चाँड़ । (३) वह वस्तु जिसे बीच में देने या ठेंकने से कोई चीज़ी वस्तु कल जाय, इधर उधर न हिले । पचाड़ । (४) किसी वस्तु के नीचे का भाग जो जमीन पर टिका रहे । पेंदा । सला । (५) टट्टियों आदि से बिरा हुआ वह स्थान जिसमें बनान भर कर रखा जाता है । (६) घोड़ों की एक घाल । (७) पुढ़ी या छाटी की सामी । (८) धातु के परतन में लगी हुई चकली । (९) एक प्रकार की मोटी महतायी ।
 ढेंकना—कि० षं० [हि० टिकना, टेक] (१) सहरा लेना । आश्रय लेना । चकने या उठने बैठने में अपना यल किसी वस्तु पर

देना । टेकना । (२) आश्रय लेना । टिकना । उठरना । रहना । षं०—नौ, तोह, चौबिस थै एक । परब दखिन कोन तेह ठेंका ।—जायसी ।
 ढिदोप—दे० “ढेंकना” ।
 ढेंकवा चाँस—ढेंगा पुं० [दे०] एक प्रकार का चाँस जो बंगाल और आसाम में होता है और छाजन तथा चलाई आदि के काम में आता है । इसे देव चाँस भी कहते हैं ।
 ढेंका—ढेंगा पुं० [हि० टिकना, टेक] (१) टेक । लहारे की वस्तु । (२) उठरने या उठने की जगह । बैठक । अड्डा । (३) तबला या ढोल बजाने की वह क्रिया जिसमें पूरे घोल न निकाले जायें, केवल ताल दिया जाय । यह चाँद पर बजाया जाता है ।
 कि० प्र०—बजाना ।—देना ।
 मुहा०—ढेंका भरना = धाँड़े का उल्लूक हूँ करना ।
 (५) तबले में बाँपा । (६) कौवाजी ताल । (९) डोक । धका । घपड़ा । षं०—तारल तरंग रांग की राजहि उड़लत पुज लगी ठेंका ।—सुरराज ।
 ढेंगा पुं० [हि० ठेंक] (१) कुछ धन आदि के बदले में किसी के किसी काम को पूरा करने का जिम्मा । जैसे, मरान बनवाने का ठेंका, सड़क तैयार करने का ठेंका । (२) समय समय पर आमदनी देनेवाली वस्तु को कुछ काल तक के लिये इस शर्त पर दूसरे को सुपुर्दे करना कि वह आमदनी वसूल करके धीर कुछ अपना मुनाका काट कर, बराबर मालिक को देता जायगा । इजारा । पहा ।
 कि० प्र०—देना ।—लेना ।—पर लेना ।
 धी०—ढेंका पहा ।
 मुहा०—ढेंका मेट = वह नजर जो किसी वस्तु को ठेंके पर लेनेवाला मालिक को देता है ।
 ढेंकाई—ढेंगा षी० [दे०] कपड़ों की सपाईं में काले हाशिये की सपाईं ।
 ढेंकी—ढेंगा षी० [हि० टेक] (१) टेक । सहरा । (२) विधाम करने के लिये ऊपर लिए हुए घोक को कुछ देर नहीं टिकाने या उठराने की क्रिया ।
 कि० प्र०—सगाना ।—लेना ।
 ढेंगड़ी—ढेंगा पुं० [दे०] कुपा । (हि०)
 ढेंगना—कि० षं० [हि० टेकना] (१) टेकना । सहरा लेना ।
 षं०—पापि देगि मंगुपा काहें । रघुनाथकचितयो शुद पाहें ।
 —सुरराज । (२) रोचना । बरजना । मना करना । षं०—
 भँवर सुयंग कहा तो पीया । हम देगा तुम कान न कीया ।
 —जायसी ।

डेगनी—संज्ञा स्त्री० [हि० डेगना] टेकने की लकड़ी ।

डेघना—कि० सं० दे० "डेगना" ।

डेघनी—संज्ञा स्त्री० [हि० डेघना] टेकने की लकड़ी ।

डेघा—संज्ञा पुं० [हि० डेक] टेक । चाँद । यह संज्ञा या लकड़ी जो सहारे के लिये लगाई जाय । उ०—(क) वरनदि' वरन गगन जस मेया । उठहि' गगन यँडे जनु डेघा ।—जायसी । (घ) विरह बजागि धीम की डेघा । धूम सो उठी स्याम भाप मेघा ।—जायसी । (ग) गाजे गगन चढ़ा जस मेया । पर-सहि बज्र सखिल की डेघा ।—जायसी ।

डेघुना—संज्ञा पुं० दे० "डेहुना" ।

डेठ—वि० [देग०] (१) निपट । निरा । विरकुल । जैसे, डेठ गँवार । (२) पालिस । जिसमें कुछ मेल जाल न हो । जैसे, डेठ बोली, डेठ हिंदी । (३) शुद्ध । निर्मल । निर्लिप्त । उ०—मैं बपफारी डेठ का सत गुण दिया सोहाग । विल दरपन दिसलाय के दूर किया सच ताग । कपीर । (४) धारंग । शुरू । उ०—मैं डेठ से देखता आता हूँ कि आप मुझको देख कर जलते हैं ।—श्रीनिवासदास । संज्ञा स्त्री० सीधी सादी पोती । यह बोली जिसमें साहित्य श्रार्थां लिखने पढ़ने की भाषा के शब्दों का मेल न हो ।

डेप—संज्ञा स्त्री० [देग०] सोने चाँदी का इतना बड़ा टुकड़ा जो थंटी में था सके । (सुनार)

चिरीप—सुनार सेना या चाँदी गायब करने के लिये उसे इस प्रकार थंटी में लेते हैं ।

फि० प्र०—चढ़ाना ।—जगाना ।

ई संज्ञा पुं० [सं० दीप] दीपक । चिराग ।

डेपी—संज्ञा स्त्री० [देग०] टाट । काग, जिससे पोतल या किसी परतन का मुँह बंद किया जाता है ।

डेलना—कि० सं० [हि० डलना] ढकेलना । धक्का दे कर आगे बढ़ाना । रेलना ।

संज्ञा० फि०—देना ।

थी०—डेलमटेल = एक पर एक आगे बढ़ते हुए । डेला डेली = धकम धक्का ।

डेला—संज्ञा पुं० [हि० डेलना] (१) वगल से लगा हुआ धक्का जिसके कारण कोई वस्तु स्थिर कर आगे बढ़े । पारवें का आघात । टकर । (२) एक प्रकार की गाड़ी जिसे आदमी डेल या ढकेल कर चलाते हैं । (३) छिछली नदियों में चलनेवाली नाव जो समी के सहारे चलाई जाती है । (४) बहुत से आदिमियों का एक के ऊपर एक गिरना पड़ना । धकम धक्का । ऐसी भीड़ जिसमें देह से देह रगड़ खाव ।

डेलाडेल—संज्ञा स्त्री० [हि० डेलना] बहुत से आदिमियों का एक के ऊपर एक गिरना । पड़ना । रैला पेल । धकम धक्का । उ०—ठानि प्रज ठाकुर उगोरिन की डेलाडेव मेला के ममार हित देला के भलो गयो ।—पद्माकर ।

डेघवारी—संज्ञा पुं० [सं० रघवक] यह स्थान जहाँ सैत नीचने के लिये पानी गिराया जाता है ।

डेवकी—संज्ञा स्त्री० [हि० डेवका] किसी लुढ़कनेवाली वस्तु को चढ़ाने या टिकाने की वस्तु ।

डेस—संज्ञा स्त्री० [देग०] आघात । घोट । धक्का । टोकर ।

फि० प्र०—देना ।—जगाना ।—लगाना ।

डेसना—कि० सं० दे० "दूसना" ।

डेसमडेस—कि० वि० [हि० डेस] सब पालों को एक पारगी खोले हुए (जहाज का चलना) । (खय०)

डेहरी—संज्ञा स्त्री० [देग०] यह छोटी सी लकड़ी जो दरवाजों के पट्टों की चूल् के नीचे गाड़ी रहती है और जिस पर चूल् धूमती है ।

डेही—संज्ञा स्त्री० [देग०] मारी हुई ईंख ।

डेहुका—संज्ञा पुं० [हि० डेक] यह जानवर जिसके पिछले घुटने चलते समय आपस में रगड़ पाने हैं ।

डेहुना—संज्ञा पुं० [सं० धट्टेवार] घुटना ।

डेकर—संज्ञा पुं० [देग०] नीपू का सा एक लम्बा फल जिसे हलदी के साथ उबाल कर हलका पीला रंग बनाने हैं ।

डेन—संज्ञा स्त्री० [सं० रघन, हि० डैन] जगह । स्थान । बँडने का ठाँव । उ०—मिदित सघन कुंज घृदावन बंठीघट अमुना की ठैन ।—सूर ।

डेयाँ—संज्ञा स्त्री० दे० "डाई" ।

डेरना—कि० सं० दे० "दरना" ।

डेराई—संज्ञा स्त्री० दे० "डहराई" ।

डेराना—कि० सं० दे० "डहराना" ।

डोंक—संज्ञा स्त्री० [हि० टंकना] (१) टोंकने की क्रिया या भाव । प्रहार । आघात । (२) यह लकड़ी जिससे दूरी मुननेवाले सूत टोंक कर ठस करते हैं ।

डोंकना—कि० सं० [अनु० ठक ठक] (१) जोर से घोट मारना । आघात पहुँचाना । प्रहार करना । पीटना । जैसे, इसे हथौड़े से डोंके ।

संज्ञा० फि०—देना ।

(२) मारना पीटना । लात, धूस, बड़े आदि से मारना । जैसे, घर पर जाओ, खूब डोंके जाओगे ।

संज्ञा० फि०—देना ।

(३) ऊपर से चोट लगा कर घँसाना। गाड़ना। जैसे, कील टोकना, पथर टोकना। (४) (नालिया घरसी खादि) दाखिल करना। दायर करना। जैसे, नालिया टोकना, दाया टोकना।

संयो० क्रि०—देना।

(१) फाट में डालना। घेड़ियों से जकड़ना। (२) धीरे धीरे हथेली पटक कर आघात पहुँचाना। हाथ मारना। पपेड़ा देना। थपथपाना। जैसे, पीठ टोकना, ताल टोकना, बधे की टोक कर सुखाना।

संयो० क्रि०—देना।—खेना।

मुहा०—टोक टोक कर लड़ना=ताल टोक कर लड़ना। हट कर लड़ना। लयरदली भगड़ा करना। उ०—दिन दिन देन उरहना भायि ठुँकि ठुँकि करत खरिया।—सूर। टोकना यजाना=हाथ से टटोल कर परीक्षा करना। जाचना। परखना। जैसे, लोग दमघड़ी की हाँड़ी भी टोक बजा कर बेते हैं। उ०—(क) टोकि बजाय लले गजराज, कहीं लौं कहीं केहि लों रद काड़े।—सुलसी। (ख) नंद मन लीजै टोकि बजाय। देहु विदा मिलि जाँदि मझपुरी जई गोकुल के राय।—सूर। पीठ टोकना=दे० "पीठ"। रोटी या धाटी टोकना=आटे की जोई को हाथ से बदा कर रोटी बनाना।

(७) हाथ से मार कर बजाना। जैसे, तबला टोकना। (८) कस कर रँटकाना। लगाना। जड़ना। जैसे, ताला टोकना।

(९) हाथ या लकड़ी से मार कर 'खट खट' शब्द करना। लटखटाना।

टोक्या १—संज्ञा पु० [हि० टोकना] मीठा मिले हुए आटे की मोटी पूरी। गुना।

टोंग-संज्ञा स्त्री० [सं० तुण्ड] (१) घोंच। (२) घोंच की मार। (३) डँगली झुका कर पीछे की ओर निकली हुई नोक से मारने की क्रिया। डँगली की टोकर। खुटका।

टोंगना-क्रि० सं० [हि० टोंग] (१) घोंच मारना। (२) डँगली से टोकर मारना।

टोंचना १—क्रि० सं० दे० "टोंगना"।

टोंडा-संज्ञा पु० [दे०] एक कीड़ा जो ज्वार यानरा और इँध को हानि पहुँचाता है।

टोंडी १—संज्ञा स्त्री० [सं० तुड] (१) चने के दाने का कोश। (२) पोस्ते की डोंडी।

टो १—अव्य० [हि० टैर] एक शब्द जो पुरानी हिंदी में संख्या वाचक शब्दों के आगे लगाया जाता है। संख्या १। श्रद्ध। जैसे, एक टो, दो टो।

टोक्या-संज्ञा पु० [दे०] आम की गुठली के ऊपर का कँड़ा द्विलक या आवरण।

टोकना-क्रि० सं० दे० "टोंकना"।

टोकर-संज्ञा स्त्री० [हि० टोकरना] (१) वह चोट जो किसी श्रेय विरोधतः पैर में किसी कड़ी वस्तु के जोर से टकराने से लगे। आघात जो चलने में कंकड़ पत्थर आदि के धक्के से पैर में लगे। डेस।

क्रि० प्र०—लगाना।

मुहा०—टोकर उठाना=आघात या दुःख सहना। हानि उठाना। टोकर या टोकरें खाना=(१) चलने में रास्ते में पड़े हुए कंकड़ पत्थर की चोट सहना। चलने में एकवारगी किसी पड़ी हुई वस्तु की रकबाट के कारण पैर का चोट खाना और लड़खड़ना। श्रुतकना। श्रुतक कर गिरना। जैसे, जो रँगल कर नहीं चलैगा बर टोकर दा कर गिरेगा। (२) किसी भूल के कारण दुःख या हानि सहना। अनावधानी या चूक के कारण कष्ट या क्षति उठाना। जैसे, टोकर खावे, बुद्धि पावे। (३) थोले में आना। भूल चूक करना। चूक जाना। (४) प्रयोजन-सिद्धि या जीविका आदि के लिये चार्गी और धूमना। हीन दशा में भटकना। इधर उधर मारा मारा फिरना। हर्दशाप्रल हो कर घूमना। दुर्गति सहना। कष्ट सहना। जैसे, यदि वह कुछ काम धंधा नहीं सीखेगा तो घाघ ही टोकर खायेगा। टोकर खाता फिरना=इधर उधर मारा मारा फिरना। टोकर लगना=किसी भूल या चूक के कारण दुःख या हानि पहुँचाना। टोकर लेना=टोकर खाना। श्रुतकना। चलने में पैर का कंकड़ पत्थर आदि किसी कड़ी वस्तु से जोर से टकराना। डेस खाना। जैसे, घोड़े का टोकर लेना।

(२) रास्ते में पड़ा हुआ उभरा पत्थर वा कंकड़ जिसमें पैर रुक कर चोट खाता है।

मुहा०—टोकर उड़ाऊ कदम में=टोकर बचाते हुए। राले का कंकड़ पत्थर बचाने हुए। (पालकी के कहार)। टोकर पहा-द्विया कदम में=थैला हुआ पत्थर या कंकड़ बचाते हुए। (पालकी के कहार)

(३) वह कड़ा आघात जो पैर या जूते के पंजे से किया जाय। जोर का धका जो पैर के अगले भाग से मारा जाय। जैसे, एक टोकर दंगे होश टोक हो जाँवने।

क्रि० प्र०—मारना।—खगाना।

मुहा०—टोकर देना या जड़ना=टोकर मारना। टोकर लगाना=पैर का आघात सहना। लात सहना। पैर के आघात से इधर उधर लुटकना। टोकनों पर पहा रहना=किसी की सेवा करके और मार माली खाकर निर्बाध करना। अयमानित होकर रहना। (५) कड़ा आघात। धका। (६) जूते का अगला भाग। (६) कुस्ती का एक पेच जो दस समय किया जाता है जब विपक्षी (जोड़) लड़े लड़े भीतर सुलता है। इसमें विपक्षी का हाथ

बगल में दबा कर दूसरे हाथ की तरफ से उसकी गरदन पर धोड़ा देते हैं और जिपर का हाथ बगल में दबाया रहता है उधर ही की दांग से धका देते हैं ।

ठोकरी—संज्ञा स्त्री० [दे०] वह माय जिसे बच्चा दिए कई महानि हो चुके हों । इसका दूध गाढ़ा और मीठा होता है ।

ठोकचा—संज्ञा पुं० दे० "ठोकचा" ।

ठोकाना—संज्ञा पुं० [दे०] कियों के हाथ का एक गहना जो चूड़ियों के साथ पहना जाता है । एक प्रकार की पहेली ।

ठोट—वि० [हि० ठूँट] जिसमें कुछ तत्त्व न हो । जड़ । मूर्ख । गावदी ।

ठोठरा—वि० [हि० ठूँट] [स्त्री० ठोठरी] किसी जमी या खमी हुई वस्तु के निकल जाने से खाती पड़ा हुआ । खाली । पोपला । उ०—सात घोस पहि विधि हारे मान बाधि यल-वंत । रातिहु दिनहु ठोठाई के करे ठोठरे दंत ।—लाल ।

ठोड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० ठुंड] चेहरे में होठ के नीचे का भाग जो कुछ मोलाई लिए उभरा होता है । ठुड़ी । चिबुक । दाढ़ी ।

मुहा०—ठोड़ी पर हाथ धर कर बैटना = चिंता में मग्न हो कर बैटना । ठोड़ी पकड़ना, ठोड़ी में हाथ देना = (१) प्यार करना । (२) किसी चिढ़े हुए आदमी को स्नेह का भाव दिखा कर मनाना । मोठी बातों से कोष शांत करना । ठोड़ी तारा = सुंदरी स्त्री की ठुड़ी पर का तिल या गोदान ।

ठोहो—संज्ञा स्त्री० दे० "ठोड़ी" ।

ठोप—संज्ञा पुं० [ऋ० ठप ठप] बूँद । बिंदु ।

ठोर—संज्ञा पुं० [दे०] एक प्रकार की मिठाई या पकवान जो मंदे की मोथनदार बड़ाई हुई होई को पी में तलने और चारनी में पकाने से बनता है । बरलम सेप्रदाय के मंदिरों में इसका भोग प्रायः लगता है ।

† संज्ञा पुं० [सं० ठुंड] जोंच । चंभु ।

ठोला—संज्ञा पुं० [दे०] रेशम फेरनेवालों का एक औजार जो लकड़ी की चौबेतर छोटी पटरी (एक वित्ता लंबी, एक वित्ता चौड़ी) के रूप में होता है । इसमें लकड़ों का एक खूँटा लगा रहता है जिसमें सूत्रा डालने के लिये दो छेद होते हैं ।

संज्ञा पुं० [दे०] [स्त्री० ठोली] मनुष्य । आदमी । (सपरदाई) ।

ठोस—वि० [हि० ठस] (१) जिसके भीतर खाली स्थान न हो । जो भीतर से खाली न हो । जो वेला या खोपला न हो । जो भीतर से भरा पूरा हो । जैसे, ठोस कड़ा । उ०—यह मूर्ति ठोस सोने की है ।

विशेष—'ठस' और 'ठोस' में अंतर यह है कि ठस का प्रयोग या तो चर्र के रूप की बिना मोटाई की वस्तुओं का घनत्व

सूचित करने के लिये अथवा गीले या 'मुलायम' के विरुद्ध कड़ेपन का भाव प्रकट करने के लिये होता है । जैसे, ठस चुनावट, ठस कपड़ा, गीली मिट्टी का खूखर ठस होना । 'ठोस' शब्द का प्रयोग 'पोले' या 'खोखले' के विरुद्ध भाव प्रकट करने के लिये अतः लंबाई चौड़ाई मोटाई वाली (घनारमक) वस्तुओं के संबंध में होता है ।

(२) बड़ा । मजबूत ।

संज्ञा पुं० [दे०] घसक । कुड़न । डाह । उ०—हक हरि के दरसन बिनु मरियत अरु कुयजा के ठोसनि ।—सूर ।

ठोसा—संज्ञा पुं० [दे०] थैंगड़ा । (हाथ का) टेंगा ।

मुहा०—ठोसा दिखाना = थैंगड़ा दिखाना । इनकार करना । ठोसे से = बला से । ठेंगे से । कुछ परवाह नहीं ।

ठोहना—वि० सं० [हि० हूँटना] ठिकाना हूँड़ना । पता लगाना । खोजना । उ०—घ्राये कदा अय ही कहि को हँ । ज्यों अपने पद पाऊँ सो ठोहँ ।—केशव ।

ठोहरा—संज्ञा पुं० [हि० मिठोहर] थकाल । गिरानी । मंदगी ।

ठोका—संज्ञा पुं० [सं० स्थलक, हि० ठाँव + क] वह स्थान जहाँ सिँचाई के लिये तालाब गड्ढे खादि का पानी दौरी से ऊपर उलीक कर गिराते हैं ।

ठोनि—संज्ञा स्त्री० दे० "ठयनि" ।

ठौर—संज्ञा पुं० [सं० स्थान, प्रा० ठान, हि० ठाँव + र] (१) जगह । स्थान । ठिकाना ।

धौ०—ठौर ठिकाना = (१) रहने का स्थान । (२) पता ठिकाना ।

मुहा०—ठौर कुठेर = (१) अच्छी जगह, सुरी जगह । सुँरे ठिकाने । अनुपयुक्त स्थान पर । जैसे, (क) इस प्रकार ठौर कुठैर की चीज न उठा लिया करे । (ख) तुम परयर फँकते हो

किसी को ठौर कुठैर लग जाय तो ? (२) धैमीका । विना

अवसर । ठौर न आना = समीप न आना । पास न फटकना ।

उ०—हरि को भगै सो हरि पद पावै । जन्म मरन तेहि ठौर न थावै ।—सूर । ठौर रखना = उठी, जगह मार कर गिरा

देना । मार डालना । ठौर रहना = (१) जहाँ का तहाँ रह

जाना । पड़ रहना । (२) मर जाना । किसी के ठौर = किसी

के स्थानांतर । किसी के ठूल्य । उ०—कियल के ठौर बाँप

बादसाह साहजहाँ ताको कैद किये माने मक्के श्यामि काई

है ।—भूपय ।

(२) मौका । घात । अवसर । उ०—ठौर पाय पवनपुत्र डादि

मुद्रिका दई ।—केशव ।

ठ्यारपा—वि० [दे०] उपद्रवी । शरारती । उतपाती ।

६

इ-व्यंजनों में तेरहवाँ व्यंजन और टवर्ग का तीसरा वर्ण। इसका उच्चारण धामन्तर प्रत्यय द्वारा तथा जिह्वामध्य को सूझाँ में स्पर्श कराने से होता है।

इंक-संज्ञा पुं० [सं० इंक] (१) मिट्ट, पिच्छ, मधु-मक्खी आदि कीटों के पीछे का जहरीला काँटा जिसे वे मोघ में वा अपने चचाप के लिये जीवों के शरीर में घँसाते हैं।

विशेष—मिड, मधु-मक्खी आदि उड़नेवाले कीटों के पीछे जाँ काँटा होता है वह एक नली के रूप में होता है जिससे होकर जहर की गाँठ से जहर निकल कर चुभे हुए स्थान में प्रवेश करती है। यह काँटा केवल मादा कीटों का होता है।

किं० प्र०—मारना।

(२) कलम की जीम। निय। (३) इंक मारा हुआ स्थान। इंक का घाव।

इंकदार-वि० [हिं० इंक + दार] इंकवाला। काँटेदार।

इंकनाई-किं० श्च० [श्चु०] शब्द करना। गरजना। मयानक शब्द करना। उ०—हथवाले हकिय तोप इंकिय चुनि धमकिय बंद।—सूदन।

इंका-संज्ञा पुं० [सं० इका = इंडुमि का शब्द] एक प्रकार का बाजा जो नाँद के आकार के तारों या लोहे के बरतनों पर चमड़ा मढ़ कर बनाया जाता है। पहले लड़ाई में इंके का जोड़ा उँटों और हाथियों पर चलाता था और उसके साथ कँडा भी रहता था।

किं० प्र०—बजाना।—पिटना।—पीटना।

मुहा०—इंके की सीट कहना = खुलेमखुला कहना। सब को सुना कर कहना। येपुइक कहना। इंका डालना = (१) सुरंग से सुरंग को लगाना। (२) सुरंग का चोच मारना। इंका देना या पीटना = दे० (१) “इंका बजाना”। (२) सुनादो करना। हुगी फेरना। डोङ्गी फेरना। इंका बजाना = हल्ला करके सब को सुनाना। सब पर प्रकट करना। प्रसिद्ध करना। घोषित करना। किसी का इंका बजाना = किसी का शासन या अधिकार होना। किसी की चालती होना।

संज्ञा पुं० [सं० इंक] जड़ानों के उदरने का पक्का घाट।

इंकिनी-संज्ञा स्त्री० दे० “इकिनी”।

इंकियाना-किं० सं० [हिं० इंक + आना (अव०)] इंक मारना।

इंकी-संज्ञा स्त्री० [दे०] (१) डुरती का एक पंच। (२)

मलसंभ की एक कसरत।

† वि० [हिं० इंक] इंकवाला।

इंकीला-वि० [हिं० इंक + ला (अव०)] इंकवाला।

इंकुर-संज्ञा पुं० [हिं० इंका] एक पुराना बाजा जिससे ताल दिया जाता था।

इंकीरी-संज्ञा स्त्री० [हिं० इंक + औरी (अव०)] मिड। बरें। तर्तिया। हदसा।

इंग-संज्ञा पुं० [दे०] अथपका छुदारा।

इंगम-संज्ञा पुं० [दे०] घुप विशेष। यह पेड़ बहुत बढ़ा होता है। हर साल जाड़े के दिनों में इसके पत्ते रुड़ जाते हैं। इसकी लकड़ी भीतर से भूरी, बहुत कड़ी और मजबूत निकलती है। दारजिलिंग के आस पास तथा खसिया की पहाड़ियों में यह अधिक मिलता है।

इंगर-संज्ञा पुं० [दे०] चौराया (जैसे, गाय, भँस)।

इंगरी-संज्ञा पुं० [सं० इंग्रुल] खरबूजा।

इंगरी-संज्ञा स्त्री० [हिं० इंगरा] लंबी ककड़ी। डंगरी।

संज्ञा स्त्री० [हिं० इंगर = इवला] एक प्रकार की चुड़ैल। दाहन। उ०—दाहन इंगरी नरन चयावत। गवन शुमाइ अकास पटावत।—गोपाल।

सज्ञा स्त्री० [दे०] एक प्रकार का मोटा बँत जो पूर्वीय हिमालय, सिक्किम, भूटान से लेकर चटगाँव तक होता है। यह बँत सब से मजबूत होता है और इसमें से बहुत अच्छी छुड़ियाँ और बँडे निकलते हैं। टोकरे बनाने के काम में भी यह आता है।

इंगचारा-संज्ञा पुं० [हिं० इगर = बैल, चौराया] हल बैल आदि की वह महापना जिसे किसान एक दूसरे को देते हैं। जिता।

इंग्रु जवर-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का जवर जिसमें शरीर जकड़ उठता है और उस पर चक्कर पड़ जाते हैं।

इंगारी-संज्ञा स्त्री० [दे०] एक पेड़ जिसकी लकड़ी मजबूत और चमकदार होती है। इसके सजावट के सामान बहुत अच्छे बनते हैं। यह पेड़ आसाम और कछार में बहुतायत से होता है।

इँटे पाँइ-संज्ञा पुं० [हिं० इँटना] इँटनेवाला। इँट बतानेवाला। घुड़कनेवाला। धमकानेवाला। उ०—ताँसति घोर पुकारत आरत कौन सुनै चहुँ और इँटेया।—तुलसी।

इँटरी-संज्ञा स्त्री० दे० “इँटल”।

इँटल-संज्ञा पुं० [सं० इँट] छोटे पाँइ की पेड़ी और गाला। नरम छाल के भाँड़ों और पीछों का धड़ और टहनी। जैसे, जवार का इँटल, मूली का इँटल।

इँटी-संज्ञा स्त्री० [सं० इँट] इँटल।

इँड-संज्ञा पुं० [सं० इँड] (१) इँडा। सोँडा। (२) याहुँइँट। थाँइ। (३) एक प्रकार का व्यायाम जो हाथ घेर के पंजों के

पल पृथ्वी पर पट और सीधा पड़ कर किया जाता है। हाथ पैर के पंजों के बल पट पड़ कर की जानेवाली कसरत।

क्रि० प्र०—करना।

सौ०—हँडपेल।

मुहा०—हँड पेलना = खूब हँड करना।

(१) हँड। सग।

(२) अर्थहँड। सुरमाना। यह रपया जो किसी अपराध या हानि के बदले में दिया जाय।

क्रि० प्र०—देना।—लगाना।—लगाना।

मुहा०—हँड डालना = अर्थहँड नियत करना। सुरमाना करना।

हँड भरना = हानि के बदले में धन देना। सुरमाना या हँड-जाना देना।

(३) घाटा। हानि। नुकसान।

मुहा०—हँड पड़ना = नुकसान होना। व्यर्थ व्यय होना। जैसे, कुछ काम भी नहीं हुआ हतना खपया हँड पड़ा।

(४) घड़ी। हँड। दे० "हँड"।

हँड-संज्ञा पुं० दे० "हँड (३)"।

हँडकानी—संज्ञा पुं० दे० "हँडक"।

हँडकानी—संज्ञा पुं० [हिं० हँडा] सीढ़ी का हँडा।

हँडपेल—संज्ञा पुं० [हिं० हँड + पेलना] (१) खूब हँड करनेवाला। कसरती। पहलवान। (२) पलवान या तगड़ा। धार्मी।

हँडल—संज्ञा स्त्री० [देग०] एक प्रकार की मछली जो बंगाल और बरमा में पाई जाती है। यह मछली पानी के ऊपर अपनी आँखें निकाल कर तैरती है। इसकी लंबाई १८ इंच होती है।

हँडयत्*—संज्ञा पुं० दे० "हँडवत्"।

हँडुवारा—संज्ञा पुं० [हिं० हडि + वार = फिरना] [सं० ह्य० हँडवारी] यह कम ऊँची दीवार जो रोक के लिये या किसी स्थान को घेरने के लिये उठाई जाय। दूर तक गई हुई खुली दीवार।

क्रि० प्र०—उठाना।

मुहा०—हँडुवारा खींचना = हँडुवारा उठाना।

संज्ञा पुं० [हिं० दमिलन + वार (प्रय०)] दक्षिण की वायु। दखनहरा। दखिनैया।

क्रि० प्र०—चलना।

हँडुवारी—संज्ञा स्त्री० [हिं० हँड + वार = फिरना] कम ऊँची दीवार जो रोक के लिये या किसी स्थान को घेरने के लिये उठाई जाती है।

क्रि० प्र०—उठाना।

मुहा०—हँडुवारी खींचना = हँडुवारी या चारदीवारी उठाना।

हँडुयो*—संज्ञा पुं० [देग०] हँड या राजकर देनेवाला। करप।

उ०—हँडयी हाँडु धिन्डु जैह ताहें। धाप हँडवत कीन्ह सवाहें।—ज.यसी।

हँडुहरा—संज्ञा स्त्री० [देग०] एक प्रकार की मछली जो बंगाल मध्य भारत और बरमा में भी पाई जाती है। यह ३ इंच लंबी होती है।

हँडुहरी—संज्ञा स्त्री० [देग०] एक छोटी मछली जो ब्रह्मसम, बंगाल, बड़िया और दक्षिण भारत की नदियों में पाई जाती है।

हँडुडिया—संज्ञा पुं० [हिं० हँडा] यह हँडा जिसमें घेंसों की पीठ पर लदे हुए दो घोंरे फँसाए रहते हैं।

हँडा—संज्ञा पुं० [सं० हँड] (१) लकड़ी या बाँस का सीधा लंबा टुकड़ा। (२) लंबी सीधी लकड़ी या बाँस जिसे हाथ में ले सकें। सोडा। मोटी छड़ी। लाठी।

मुहा०—हँडा खाना = हँडे की मार खाना। हँडा चलाना = हँडे से प्रहार करना। हँडे खेलना = हँडों की छद्मदं वा खेज खेजना। मादायदी चोप को पाठशास्त्रियों के लड़के नई खेल खेजते निकलते हैं। हँडा खजाना = हँडे से प्रहार करना। हँडे देना = विवाह संबंध होने के पीछे मादों बड़ी चोप को वेदीवाले को घेरेवाले के कहाँ चाँदी के पत्तर चढ़े हुए फलम दवात आदि भेजने की रीति करना। हँडा यजाते फिरना = मारा मारा फिरना।

(३) हाँड़। हँडवारा। यह कम ऊँची दीवार जो किसी स्थान को घेरने के लिये उठाई जाय। चारदीवारी।

क्रि० प्र०—उठाना।

मुहा०—हँडा खींचना = चार दीवारी उठाना।

हँडाकरन*—संज्ञा पुं० [सं० दरदकारण] हँडकवन। उ०—पोठे याई सब धन खेड माहा। हँडाकरन धीक धन आहें।—जायसी।

हँडाहोली—संज्ञा स्त्री० [हिं० हडा + होली] लड़कियों का एक खेल जिसमें वे किसी लड़के को दो धाड़ें हँडों पर बैठा कर धूर उधर फिगतें हैं।

क्रि० प्र०—करना।—खेलना।

हँडाल—संज्ञा पुं० [हिं० हँडा] नगारा। दुँडुभी।

हँडिया—संज्ञा स्त्री० [हिं० हँडी = रेखा] (१) छड़ीदार साड़ी। यह साड़ी जिसके बीच में लंबाई के बल मोटे टॉक कर लकीरें बनी हों। उ०—(क) खाल चोली नील हँडिया संग युक्-तिन भीर। सूर प्रभु क्षुधि निखिल रीके मगन भौ मन कीर।—सूर। (ख) नख सिख सजि सिँ गार बूज युवती तन हँडिया खुसुमे भोरी की।—सूर।

विशेष—इसे प्रायः कुआरी लड़कियाँ पहनती हैं। कभी कभी यह रंग विरंगे कई पाट जोड़ कर बनाई जाती है।

(२) मोहों के पौधे में यह लंबी सीकें जिसमें खाल लगी रहती है।

इंशा पुं० [हिं० इंश = अर्धदंड] मनुष्य वस्तु करनेवाला । कर उगाहनेवाला ।

इंडियाना-किं० सं० [हिं० इंडी] किसी कपड़े के दो या अधिक पाठों को सी कर जोड़ना । दो कपड़ों की लंबाई के किनारों को एक में सीना ।

इंडियारा गोला-इंशा पुं० [हिं० इंश + गेश] दोहरे सिरे का लंबा (सोप का) गोला । खडिया । (लघु०)

इंडी-इंशा स्त्री० [हिं० इंदा] (१) छोटी लंबी पतली लकड़ी । (२) हाथ में लेकर व्यवहार की जानेवाली वस्तु का वह लंबा पतला भाग जो मुट्ठी में लिया या पकड़ा जाता है । दस्ता । हथिया । मुठिया । जैसे, छाते की इंडी । (३) तराजू की वह सीपी लकड़ी जिसमें रस्सियां लटक कर पलड़े पाये जाते हैं । डाँड़ी ।

मुहा०—इंडी मारना = चौदा देने में तराजू इस प्रकार मुका देना कि नीच कम चढ़े । तौदा देने में चादाकी से कम तौदाना । (४) वह लंबा बंटन जिसमें पत्ता फूल या फल लगा होता है । माल । जैसे, कमल की इंडी, पान की इंडी । (५) फूल के नीचे का लंबा पतला भाग । जैसे, हारसिंगार की इंडी । (६) हारसिंगार का फूल । (७) धारसी नाम के गहने का वह छेदा जो गैंगली में पड़ा रहता है । (८) बंदे में चैंपी हुई मोली के धाकार की एक सवारी जो ऊँचे पहारों पर चलती है । कम्पास । (९) विंगोदिय । (१०) दंड धारण करनेवाला सैन्यारी ।

वि० [सं० इंड] मगड़ा लगानेवाला । खुगलखोर ।

इंडोर-इंशा स्त्री० [हिं० इंडी] सीपी लकीर ।

इंडोरना-किं० सं० [अनु०] इँदना । हिलोर कर इँदना । उलट पलट कर खोजना । उ०—धबके जब हम दास पायें देहिं धाल करोर । हरि सो दीग खोइ कै हम रहि समुद इँदोर ।—सूर ।

इंडीत-इंशा पुं० दे० "दंबवर" ।

इंधर-इंशा पुं० [सं०] (१) शायोजन । आंधर । ढकोसला । धूमधाम । (२) विस्तार । (३) विकास । (४) एक प्रकार का बंदोबा । चंद्रसूत ।

ध्या०—मेघबंधर = बड़ा शमियाला । दृजबादल । शंवर बंधर = वह जाली जो संध्य के समय आकाश में दिखाई पड़ती है । उ०—विनसत वार न लागई चोद्ये जन की प्राति । शंवर बंधर सार्नक के ग्यों यारू की भीति ।

इंधेल-इंशा पुं० [अनु०] (१) हाथ में लेकर कसरत करने की लाई या लकड़ीकी छुट्टी जिसके दोनों सिरे खट्ट की तरह मोड़ होते हैं । इसे हाथ में लेकर तानते हैं । यह आवश्यकतानुसार भारी और हलकी होती है । (२) वह कसरत जो इस प्रकार के खट्ट से की जाती है ।

किं० प्र०—करना ।

इँपहन्ना-इंशा पुं० [सं० इन्हा] वात का एक रोग जिसमें शरीर के जोड़ अफड़ जाते हैं और उनमें दर्द होता है । पड़िया । उ०—अहंकार अति दुःखद देवहरा । दंभ कपट भद्र मान नहरा ।—मुलसी ।

इँपहन्ना साल-इंशा पुं० [सं० इन्हा + हिं० सालना] धातु या लकड़ी के दो टुकड़ों को मिलाने के लिये एक प्रकार का जोड़ । इसमें एक टुकड़े को एक ओर से चौड़ा और दूसरी ओर से पतला काटते हैं और दूसरे टुकड़े में उसी काट की धार से गड़दा करते हैं और उस कटे हुए थंदा को उसी गट्टे में बँटा देते हैं । यह जोड़ बहुत बड़ होता है और खींचने से नहीं उलड़ता ।

इवांडोल-वि० [हिं० इवॉ इवॉ + डोलना] पंचज । विचलित । धराराय हुआ । जैसे, चित्त इवांडोल होना । उ०—पावक पवन पानी भातु हिस वात जम काल चोकपाल मेरे डर इवांडोल है ।—मुलसी ।

किं० प्र०—रोना ।

इंस-इंशा पुं० [सं० इंस] (१) एक प्रकार का बड़ा मधुर जो बहुत काटा है । धनमरक । जंगली मधुर । डांस । (इसका आकार बड़ी मखली से मिलता जुलता होता है ।) उ०—देव विषय सुख खालसा इंस मसकादि खलु मिल्की रुपादि सब सर्वस्वामी ।—मुलसी । (२) वह स्थान जहाँ बँक खुमा हो या सर्प आदि विपैले कीड़ों का दंत हुआ हो ।

इंसना-किं० सं० दे० "इसना" ।

इक-इंशा पुं० [अनु० इक] (१) एक प्रकार का पतला सफेद टाट (कनवस) जिससे छोटे बल के नद्दों के पाल बनाते हैं । (२) एक प्रकार का मोटा कपड़ा ।

इकहत्त-इंशा पुं० दे० "इकैत" ।

इकई-इंशा पुं० [इक] कले की एक जाति ।

इकरा-इंशा पुं० [देग०] काली मिट्टी जो साल की चँदिया में पानी सूख जाने पर निकलती है और जिसमें दरार पड़े होते हैं ।

इकराना-किं० अनु० [अनु०] चँल या भँसे का मोलना ।

इकयाहारा-इंशा पुं० [हिं० इक] इक का चपरसी । डाकिया ।

इकार-इंशा स्त्री० [अनु०] (१) पेट की वायु का एकवारगी ऊपर की ओर छूट कर कंड से शब्द के साथ निकल पड़ने का शारीरिक व्यापार । मुँह से निकला हुआ वायु का बद्गार ।

किं० प्र०—थाना ।—लेना ।

विशेष—योग आदि के अनुसार इकार नाम वायु की प्रेरणा से धाती है ।

मुहा०—डकार न लेना = (१) किसी का धन या कोई वस्तु उड़ा कर पतना न देना। चुप चाप हजम कर जाना। (२) कोई काम करके उसका पतना न देना।

(२) बाघ सिंह आदि की गरज। दहाड़। गुर्राहट।

क्रि० प्र०—लेना।

डकारना—क्रि० अ० [हि० डकार + ना (प्रत्य०)] (१) पेट की वायु को मुँह से निकालना। डकार लेना। (२) किसी का माल उड़ा कर ले लेना। किसी की वस्तु चुपचाप मार लेना। हजम करना। पचा जाना। जैसे, यह सब माल डकार जायगा।

संयो० क्रि०—जाना।

(३) बाघ सिंह आदि का गरजना। दहाड़ना।

डकैत—संज्ञा पुं० [हि० डका + धेन (प्रत्य०)] डाका मारनेवाला। जबरदस्ती माल छीननेवाला। लुटेरा।

डकैती—संज्ञा स्त्री० [हि० डकैत] डकैत का काम। डाका मारने का काम। जबरदस्ती माल छीनने का काम। लूट मार। छाप।

डकौत—संज्ञा पुं० [देश०] भड़हर। भड्दरी। सामुद्रिक, ज्योतिष आदि का ढोंग रचनेवाला।

विशेष—इनकी एक प्रत्येक जाति है जो अपने को प्राक्षय कहती हैं पर नीच समझी जाती हैं।

डग—संज्ञा पुं० [हि० डैकना वा सं० दग = चलना] (१) चलने में एक स्थान से पैर उठा कर दूसरे स्थान पर रखने की क्रिया की समाप्ति। फाल। कदम। ड०—सुरि सुरि चितवति नंदगली। डग न परत यूननाथ साथ विनु विरह व्यथा मचली।—सूर।

क्रि० प्र०—पड़ना।

मुहा०—डग देना = चपने में आगे की ओर पैर रखना। ड०—पुर तैं निकसी रघुवीर वधू धरि धीर दिये मग ज्यों डग है।—तुलसी। डग भरना = चलने में आगे पैर रखना। कदम बढ़ाना। डग मारना = कदम रखना। लंबे पैर बढ़ाना।

ड०—भारि हरी जब फिरि चली सुंदर बेनि हुई सच श्रंग। मनहुँ चद के धदन सुधा को उड़ि उड़ि खगत भुशंग।—सूर।

(२) चलने में जहाँ से पैर उठाया जाय और जहाँ रखा जाय दोनों स्थानों के बीच की दूरी। यतनी दूरी जितनी पर एक जगह से दूसरी जगह कदम पड़े। पैँड़।

डगडगाना—क्रि० अ० [अ०] हिलना। डगर से डगर हिलना।

मुहा०—डगडगा कर पानी पीना = एक दम में बहुत सा पानी पीना।

डगाडोलना—क्रि० अ० [हि० डग + डोलना] डगमगाना। हिलना। कपना। ड०—भीषम द्रोणं करण सुनै कोव सुखहु न सोळं। प पाँढव क्यों काढ़िये धरना टगडोलै।—सूर।

डगडौर—क्रि० [हि० डग + डोलना] डांवाडोल। हिलनेवाला।

चलायमान। ड०—रयाम को एक लुट्टी जान्यो दुराचरनी और। जैसे घट पूरन न डोलै ब्रधभरो टगडौर।—सूर।

डगण—संज्ञा पुं० [सं०] पिंगल में चार माथाओं का एक गण।

डगना—क्रि० अ० [सं० दग = पकना, हिं० दग] (१) हिलना। टसकना। खसकना। जगह छोड़ना। ड०—डगइ न संसु सरासन कैसे। कामी-वचन सती मन जैसे।—तुलसी।

(२) चूकना। भूल करना। ड०—तुरंग नचावहिँ कुँवर धर अकनि मृदंग निसान। नागर नट चितवहिँ चकित डगहिँ न ताल बंधान।—तुलसी। दे० “डिगना”।

डगमगाना—क्रि० अ० [हिं० डग + मग] (१) डगर उधर हिलना खोलना। कभी इस बल, कभी उस बल भुंकना। स्थिर न रहना। धारयाना। खड़खड़ाना। जैसे, पैर डगमगाना, नाथ डगमगाना। (२) विचलित होना। किसी बात पर हड़ न रहना।

डगर—संज्ञा स्त्री० [हिं० दग] मार्ग। रास्ता। पथ। पैँड़ा।

मुहा०—डगर बताना = (१) रास्ता बताना। (२) उपयय बताना। उपदेश देना।

डगरना—क्रि० अ० [हिं० डगर] चलना। रास्ता होना। धीरे धीरे चलना। ड०—जातें हँतें डगरी द्विजदेव न जानती कान्ह अजौं मग सूँटें।—द्विजदेव।

डगरा—संज्ञा पुं० [हिं० डगर] रास्ता। मार्ग। ड०—गुरु कह्यो राम नाम नीकी मोहिँ जागत राम-राज डगरो सो।—तुलसी। संज्ञा पुं० [देश०] बांस की पतली कटियों का बना हुआ छिड़ुला बरतन। छिड़ुला डगा। डगरा। ज़ायड़ा।

डगराना—क्रि० सं० [हिं० डगरना] (१) रास्ते पर ले जाना। ले चलना। चलाना। (२) हाँकना।

डगरिया—संज्ञा स्त्री० दे० “डगर”।

डगरी—संज्ञा स्त्री० दे० “डगर”।

डगा—संज्ञा पुं० [हिं० डगा] डागा। डुगी बजाने की लकड़ी। नगरा बजाने की लकड़ी। चौप। ड०—हूँँँ सव कबिलह कर पड़नागा। किछु कहि चला तबल देह डगा।—जायसी।

डगाना—क्रि० सं० दे० “डिगाना”।

डगगर—संज्ञा पुं० [सं० घड़] (१) कुत्ते या भेड़िये की तरह का एक मांसाहारी पशु जो रात को शिकार की खोज में निकलता है और कभी कभी बस्ती से कुत्तों, बकरी के बच्चों आदि को उठा ले जाता है। यह कई प्रकार का होता है पर मुख्य भेद दो हैं—चित्तीवाला और धारीवाला। यह एशिया और अफ्रिका के बहुत से भागों में पाया जाता है। यह देखने में पट्टा डरायना जान पड़ता है। इसका पिछला भड़ छोटा और भगवला भारी होता है। गर्दव खंडी और मोटी होती है, कंधे पर खड़े खड़े चाल देते हैं। इसके दाँत बहुत पैने और तेज होते हैं। यह जानकर डरपोक भी बड़ा होता है।

यह सुन्दरे साकर भी रहता है। इसका कलम में गड़े सुन्दरे ले जाना प्रसिद्ध है। (२) लंबी टांगों का दुबला घोड़ा।

दग्गा-संज्ञा पुं० [हिं० दग्] लंबी टांगों का दुबला घोड़ा।

दट-संज्ञा पुं० [देग०] निशाना।

दटना-क्रि० प्र० [सं० दत्त, हिं० दत्त या ठट्] (१) जम कर धरना होना। धरना। धरना रहना। उ०—वे सवरे से मेले में बटे हुए हैं।

संयो० क्रि०—जाना।—जा दटना।

मुहा०—दटा रहना = सामना करने या कठिनाई भेजने के लिये खड़ा रहना। न हटना। मुँह न मोड़ना। दट कर पाना = खप पेट भर खाना।

(२) मिड़ना। लग जाना। छु जाना।

* क्रि० सं० [हिं० दटि, हिं० दट] ताकना। देखना। उ०—

(क) उर मानिक की बरखली दटत घटन दग दाग। फलकत बाहर कटि मनी पिय हिय को भनुराग। (ख) लटक लटक लटक चलत दटन मुकुट की छारि। चरक भरयो नट मिलि गयो दटक भरक दन मरिह।—विहारी।

दटाना-क्रि० सं० [हिं० दटना] (१) एक वस्तु को दूसरी वस्तु से ढगाना। सताना। मिड़ाना। (२) एक वस्तु को दूसरी वस्तु से खगा कर पाने की छोट टेलना। जेस से मिड़ाना। (३) जमाना। धरना करना।

दटारि-संज्ञा स्त्री० [हिं० दटना] (१) दटाने का काम। (२) दटाने की मजदूरी।

दट्टा-संज्ञा पुं० [हिं० दट्टा] (१) डूबके का तेया। देरघा। (२) बाट। काग। गहर। (३) बड़ी खेल। (४) छोट छापने का थपा। सांचा।

डङ्गी-संज्ञा स्त्री० [देग०] एक प्रकार की मसूली।

डङ्गार-वि० [हिं० दङ्गी] बड़ी डाड़ी रखनेवाला। उ०—बिड न रहे डङ्गार पाप धनचर यन दुलिय।—सूदन।

विशीप—बड़ी डाड़ी रखना धीरों का येरा समझा जाता है।

वि० [सं० इद, हिं० डिङ्] दृढ़ हृदय का। साहसी।

दडन-संज्ञा स्त्री० [सं० दन्ध, प्रा० दन्ड] जलन। ताप। उ०—भक्ति जता फैलन धागी दिन दिन होत पाप की दडन।—पंचचामी।

दडना-क्रि० प्र० [सं० दन्ध, प्रा० दन्ड + ना (प्रत्य०)] जलना। मुलजना। यलना। उ०—दई मनु रूप लई इह रूप, गदे निमि रंक हैं मदिमूप।—सूदन।

दडारा-वि० [हिं० दड] (१) डाढ़वाला। जिससे दडू हो। (२) डाढ़ीवाला।

दडारा-वि० [हिं० दड] (१) डाढ़वाला। यह जिसके डाढ़े हैं। दाँतवाला। (२) यह जिसे दाढ़ी हो।

दडियल-वि० [हिं० दड] डाढ़ीवाला। जिसके दाढ़ी दाढ़ी हो।

दडुआ-संज्ञा पुं० [सं० दडू] बरें, गेहूँ, धने का तेल जो मोट में मजसूली के लिये लगाया जाता है।

दडुना-क्रि० सं० [सं० दन्ध, प्रा० दन्ड + ना (प्रत्य०)] जलाना।

दडुगारा-वि० [हिं० दाढ़ी] डाढ़ीवाला। उ०—सित श्रवित

दडुगारे दीह तन सजि सगेह रोसन सगे।—सूदन।

दपट-संज्ञा स्त्री० [सं० दप] हाट। मिड़की। गुड़की।

संज्ञा स्त्री० [हिं० दपट] सेज दीह। घोड़े की सेज खाल। सरपट खाल।

दपटना-क्रि० सं० [हिं० दपट] दटना। क्रोध में जोर से बोलना। कड़े स्वर से बोलना।

क्रि० सं० [हिं० दपटना] सेज दौड़ना। वेग से जाना।

दपोरसंज्ञा-संज्ञा पुं० [भुज० दपोर = दपो + संख] (१) जो कहे बहुत, पर कर कुछ न सके। डोंग मारनेवाला।

विशीप—इस शब्द के संबंध में एक कहानी प्रचलित है। एक प्राहण्य ने दरिद्रता में दुखी हो समुद्र की धाराधना की।

समुद्र ने प्रत्यक्ष हो कर उसे एक बहुत छोटा सा संख दिया और कहा कि यह ५०० रोज तुम्हें दिया करेगा। जब उस प्राहण्य ने उस संख से बहुत सा धन इकट्ठा कर लिया तब एक दिन अपने मुर्खी को बुलाया और बड़ी धूम धाम से उनका साकर किया।

गुरु जी ने उस संख का हाल जान लिया और वे धीरे से बसे उड़ा ले गए। प्राहण्य फिर दरिद्र हो गया और समुद्र के पास गया। समुद्र ने सब हाल सुन कर एक बहुत बड़ा सा संख दिया और कहा कि "तूसे भी गुरु जी के सामने खपा माँगना, यह खूब बड़ बड़ का यारें करेगा पर देगा कुछ नहीं। जब गुरु जी इसे मोगे तो दे देना और पहलेवाला छोटा संख माँग लेना।"

प्राहण्य ने ऐसा ही किया। जब प्राहण्य ने गुरु जी के सामने बस संख से ५००, १० माँगा तब उसने कहा—"५०० क्या माँगते हो इस वीस पचास हजार माँगा।" गुरु जी को यह सुन कर कालज हूई और उन्होंने वह संख ले कर छोटा संख प्राहण्य को लौटा दिया।

गुरु जी एक दिन उस बड़े संख से माँगते बैठे। पर वह उसी प्रकार वीस माँगने के लिये कहता जाता पर देता कुछ नहीं था। जब गुरु जी बहुत व्याम हुए तब उस बड़े संख ने कहा—"गता स शक्तिनि, विप्र। या ते कामान् प्रप्रेमेत्। यद्दं दपोर शंखाख्या बदाग्नि न ददाग्नि ते।"

(२) बड़े डील डील का पर सूतें। देखने में सयाना पर बच्चों की सी समझवाला।

दपु-वि० [देग०] बहुत बड़ा। बहुत मोटा।

दफ-संज्ञा पुं० [सं० दफ] (१) चमड़ा मड़ा हुआ एक प्रकार का पड़ा बाजा जो लकड़ी से पड़ाया जाता है। टफला। (२) लकड़ी के गोले यद्दें मेंदरे पर चमड़ा मड़ कर बनाया जात

है। होली में इसे यज्ञते हुए निकलते हैं,) ड०—(क) दिन डफ ताल मृदंग बनायत गात भारत परस्पर छिन छिन होरी।—खामी हरिदास। (ख) कई पदमाकर खालन के डफ बाजि डटे गल गाजत गाड़े।—पद्माकर। (२) जावनी-बाजों का बाजा। चंग।

डफर—संज्ञा पुं० [अ० डफर] जहाज का एक तरफ का पाल।

डफला—संज्ञा पुं० [अ० दफ] डफ नाम का बाजा।

डफली—संज्ञा स्त्री० [अ० दफ] छोटा डफ। खँजरी।

मुहा०—अपनी अपनी डफली अपना अपना राम = जितने लोग उतनी राय।

डफारा—संज्ञा स्त्री० [अ०] चिम्पाड़, जोर से रोने या चिल्ला बठने का शब्द। ड०—ततलन रतनसेन प्रति धरारा। छाँड़ि डफार पाँव लै परा।—जायसी।

डफारना—कि० अ० [अ०] चिल्लाना। दहाड़ मारना। जोर से रोना या चिल्लाना। ड०—गाय विहंगम समुद्र डफारा। जरे मच्छ, पानी भा खारा।—जायसी

डफालची—संज्ञा पुं० दे० “डफाली”।

डफाली—संज्ञा पुं० [हिं० डफला] डफला धजानेवाला। एक मुसलमान जाति जो डफला धजाली तथा डफ, तारो, ढोल आदि चमड़े के बाजों की मरम्मत करती है।

विशेष—अबध में डफाली डफला बना कर गाजुमियाँ के गीत गाते और भीख मांगते फिरते हैं।

डफारना—कि० अ० [अ०] हाँक देना। चिल्लाना। लल-कारना। गरजना। ड०—वचन चिनीत कहि सीता को प्रयोग करि तुलसी मिष्ट चड़ि कहत डफोरि कै।—तुलसी।

डब—संज्ञा पुं० [हिं० डब्बा] (१) जेब। पैला।

मुहा०—डब पकड़ कर कुछ कराना = गारदन पकड़ कर कुछ काम कराना। गझा दबा कर काम कराना। जैसे, रुपया देगा कैसे नहीं, डब पकड़ कर लूँगा। डब में आना = वरा में शेना। फानू में आना।

(१) कुप्पा बनाने का चमड़ा।

डबकना—कि० स० [हिं० डब] किसी धातु की चहर को कटोरी के आकार का गहरा करना।

कि० अ० [अ०] (१) पीड़ा करना। टपकना। दर्द देना। टीस मारना। (२) लँगड़ा कर चलना।

डबकौर्हा—वि० [अ०] [अ० डबकौरी] धाँसू भरा हुआ। डबडशाया हुआ। गीला। ड०—बिलखी डबकौर्हि चलन तिय खलि गमन बराय। पिय गहबर आया गरी राखी गरी लगाय।—विहारी।

डबडवाना—कि० अ० [अ०] धाँसू से धाँसू भर आना। धाँसू से (धाँसों का) गीला होना। अशुभपूर्ण होना। जैसे, धाँसू डबडवाना। ड०—जय जय सुरति करत तव तव डबडवाइ दोउ लोचन उमगि भरत।—सूर।

संयो० मि०—घाना।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग “आँसू” के साथ तो होता ही है “आँसू” के साथ भी होता है।

डबरा—संज्ञा पुं० [सं० दभ = समुद्र या भोज] [स्त्री० अ० दबरी]

(१) छिड़ला लंबा गड्ढा जिसमें पानी जमा रहे। कुंड। होत। (२) वह नीची भूमि का टुकड़ा जिसमें पानी लगता हो और जिसमें जड़हन के कई खेत हों। (३) खेत का केना जो बोतले में छूट जाता है।

डबरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० डबरा] छोटा गड्ढा या ताल।

डबल—वि० [अ०] दोहरा।

संज्ञा पुं० पैसा। धंगरेड़ी राज्य का पैसा।

डबल रोटी—संज्ञा स्त्री० [अ० डबल + हिं० रोटी] पावरोटी।

डबल विक—वि० [अ०] दोहरी यत्नी।

डबल—संज्ञा पुं० [दे०] मिठी का पुरवा। कुल्हड़। लुकड़।

डब्या—संज्ञा पुं० दे० “डब्या”, “डिब्या”।

डबिया—संज्ञा स्त्री० [हिं० डब्बा] छोटा डिब्या।

डबिरना—कि० स० [दे०] खेत में से भेड़ों को निकाल खाना। (गड़ेरियों की बोली)

डबी—संज्ञा स्त्री० दे० “डबी”, “डिबी”। ड०—कंचन की रूप डबीन में रख धरी मनी नील नगी हैं।—सुंदरी-सर्वस्व।

डबुलिया—संज्ञा स्त्री० [दे०] कुल्हिया। छोटा पुरवा।

डबोना—कि० स० [अ० डब डब] (१) हुषाना। गेला देना। धोरना। मन फरना। (२) धिगाड़ना। नष्ट करना। चौपट करना।

मुहा०—नाम डबोना = नाम में घन्ना लगाना। ख्याति नष्ट करना। बंरा डबोना = बंश की मर्यादा नष्ट करना। कुल में फलक लगाना। लुटिया डबोना = महत्व नष्ट करना। प्रशिक्षण लेना।

डबुल—संज्ञा पुं० दे० “डबल”।

डब्या—संज्ञा पुं० [तैंग] वा सं० डिब = गेला] (१) दहनदार छोटा गहरा परतन जिसमें ढोस या सुरसुरी चीजें रखी जाती हैं। सैपट। (२) रेलगाड़ी की एक गाड़ी जो चलाने हो सकती है।

डब्यू—संज्ञा पुं० [हिं० डब्बा] डाँड़ी लगा हुआ एक प्रकार का कटोरा जिससे परीखने का काम लिया जाता है।

डमकना—कि० अ० [अ० डमडम] पानी में डूबना। उतराना। डुपकी लेना।

डमका—संज्ञा पुं० [हिं० डमकना] कुर्द से टाज़ा निकाला हुआ (पानी)। टाजा।

संज्ञा पुं० [दे०] सूना हुआ मटर या चना जो फूटा न हो। कोंहरा।

डमकौरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० डमकना] उरद की पीठी की धरी जो

विना तले हुए कड़ी में डाल दी जाती है। डमकी। ३०—
पानेदार राहता पकौरी। डमकौरी सुं गड़ी सुठि सैरी।—सूर।

डमकौहा—वि० दे० “डमकौहा”

डम-संज्ञा पुं० [सं०] एक नीच या बर्तनकर जाति जिसे ब्रह्मवैवर्त
पुराण ने छोट और चांडाली से उत्पन्न माना है। डोम।

डमर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) भय से पलायन। भयङ्क। (२)
हलफल। उपद्रव।

डमरघा-संज्ञा पुं० [सं० डमर] घात का एक रोग जिससे
जोड़ों में दर्द होता है। गरिया।

धौ०—डमरघा साज = दे० “दंडरघा साज”।

डमरु-संज्ञा पुं० [सं० डमर] (१) एक बाजा जिसका आकार
धीच में पतला और दोनों सिरों की ओर बराबर चौड़ा होता
जाता है। दोनों सिरों पर चमड़ा मड़ा होता है। इसके बीच
में दो तरफ बराबर बड़ी हुई छोटी बँधी होती है जिसके दोनों
सिरों पर एक एक कौड़ी या गोली बँधी होती है। बीच में
एकदू कर जब बाजा हिलाया जाता है तब दोनों बँधियाँ चमड़े
पर पड़ती हैं और शब्द होता है। यह बाजा शिखरी को बहुत
प्रिय है। बंदर नचानेवाले भी इस प्रकार का एक बाजा



थपने साथ रखते हैं। (२) डमरु
के आकार की कोई वस्तु। ऐसी
वस्तु जो बीच में पतली हो और
दोनों ओर बराबर चौड़ी (उलटी गांधुम) होती गई है।

धौ०—डमरुमध्य।

(१) एक प्रकार का दंडक घुस जिसके प्रत्येक
धार में ३२
छबु बणों होते हैं। ३०—रहत रहत नग नगर न गज तट
गज खल कलगर गरल तरल धर। मिलादीदास ने हसी का
नाम जलहराय जिला है।

डमरुमध्य-संज्ञा पुं० [सं० डमर + मध्य] धरती का यह संग
पतला भाग जो दो बड़े बड़े खंडों को मिलाता है।

धौ०—डमरुमध्य = जल का वह संग पतला भाग जो जल
के दो बड़े बड़े भागों को मिलाता हो।

डमरुघ्न-संज्ञा पुं० [सं० डमरु + घ्न] एक प्रकार का यंत्र या
पात्र जिसमें अर्क खींचे जाते तथा सिंगरफ का पारा, कपूर,
नासादर आदि चढ़ाए जाते हैं।

विशेष—यह दो घड़ों का मुँह मिला कर और कपड़मिट्टी से
जोड़ कर बनाया जाता है। जिस वस्तु का अर्क खींचना
होता है उसे घड़ों का मुँह जोड़ने के पहले पानी के साथ
एक घड़े में रख देते हैं और फिर सारे यंत्र को (चर्मात्
दोनों छड़े हुए घड़ों को) इस प्रकार छाड़ा रखते हैं कि
एक घड़ा अर्क पर रहता है और दूसरा ठंडी जगह पर। अर्क
लगने से वस्तु मिले हुए पानी की भाप उड़ कर दूसरे घड़े में

जा कर टपकती है। यही टपका हुआ जल उस वस्तु का
अर्क होता है। सिंगरफ से पारा उड़ाने के लिये घड़ों को छड़े
यल नीचे ऊपर रखते हैं। नीचे के घड़े के पेंदे में अर्क
लगती है और ऊपर के घड़े के पेंदे को गीला कपड़ा
छादि रख कर ठंडा रखते हैं। अर्क लगने पर सिंगरफ से
पारा उड़ कर ऊपरवाले घड़े के पेंदे में जम जाता है।

डयन-संज्ञा पुं० [सं०] बड़ान्। बड़ने की क्रिया।

डर-संज्ञा पुं० [सं० दर] (१) एक दुःखपूर्ण मनोवेग जो किसी
अनिष्ट या हानि की आशंका से उत्पन्न होता और उस
(अनिष्ट या हानि) से बचने के लिये आकुलता उत्पन्न
करता है। भय। भीति। लौक। प्रास

कि० प्र०—लगना।

मुहा०—डर के मारे = भय के कारण।

(२) अनिष्ट की संभावना का अनुमान। आशंका। जैसे, हमें
डर है कि वह कहाँ भटक न जाय।

डरना-कि० अ० [हिं० डर + ना (प्रत्य०)] (१) किसी अनिष्ट या
हानि की आशंका से आकुल होना। भयभीत होना। लौक
करना। सशंक होना।

संयो० कि०—उटना।—जाना।

(२) आशंका करना। शंदेश करना।

डरपाना-कि० अ० [हिं० डर] डरना। भयभीत होना। ३०—
(क) इंद्र को कबु दूषन माहीं। राजदेवु हरपत मन माहीं।
—सूर। (ख) एकदि डर डपत मन मोरा। प्रभु मोहि देख
साय अति घोरा।—तुलसी।

डरपाना-कि० सं० [हिं० डरपान] डराना। भयभीत करना।

डरपोक-कि० [हिं० डरना + पोका] बहुत डरनेवाला। भीड़।
कायर।

डरपोकना-वि० दे० “डरपोक”।

डरवाना-कि० सं० दे० “डराना”।

कि० सं० दे० “डरवाना”।

डराहरी-संज्ञा स्त्री० [हिं० डर] डर। भय। आशंका। ३०—
जब हानि घेरत कटक काम को तब जीव होत डराहरी।—
खामी हरिदास।

डराना-कि० सं० [हिं० डरना] डर। दिखाना। भयभीत करना।
लौक दिखाना।

संयो० कि०—देना।

डरायन-वि० [हिं० डर] [स्त्री० डरानी] जिससे डर लगे।
जिससे भय उत्पन्न हो। भयानक। भयंकर।

डराया-संज्ञा पुं० [हिं० डराना] वह, एकजी जो फलदार, पेड़ों में
चिड़ियाँ उड़ाने के लिये बँधी रहती है। इसमें एक लंबी
रस्ती बँधी होती है—जिसे खींचने से छट छट शब्द होता है।
खटखटा। धड़का।

हराडुका-वि० [हि० डाना] हरपोक ।
हरिया-संज्ञा स्त्री० दे० "हार", "हाल" । ३०—अथ के राखि
खेहु मंगवान । हम अनाप बँडे हुम हरिया पाराधि साथे
थान ।—सूर ।

हरी-संज्ञा स्त्री० दे० "हली" ।

हरीला-वि० [हिं० हार] हारवाला । शालायुक । दहनीदार ।
३०—दीपन दहीले तरु दूतत हरीले शैल होत हैं फटीले शेष
फन चमहीले हैं ।—रघुराज ।

हरेला-वि० [हिं० हर] डगवाना । भयानक । खौफनाक । ३०—
विदमन श्रंदा परत नाद उचरत हरीले ।—श्रीधर पाठक ।

डल-संज्ञा पुं० [हिं० डल = डकड़] टुकड़ा । खंड ।

मुहा०—डल का डल = दर का दर । बहुत सा ।

संज्ञा स्त्री० [सं० तल्ल] (१) मील । (२) कारमीर की
एक मील ।

डलई-संज्ञा स्त्री० दे० "डलिया" ।

डलना-क्रि० अ० [हिं० डालना] डाला जाना । पढ़ना । जैसे,
मूला डलना ।

डलवा-संज्ञा पुं० दे० "डला" ।

डलवाना-क्रि० सं० [हिं० 'डालना' का प्रे०] डालने का काम
कराना । डालने देना ।

डला-संज्ञा पुं० [सं० दल] [स्त्री० ऋष्य० दली] टुकड़ा । टोंका ।
खंड ।

विशेष—इसका प्रयोग नमक, मिर्ची आदि के लिये अधिक
होता है ।

संज्ञा पुं० [सं० डलक] [स्त्री० ऋष्य० डलिया] घास, घेंत
आदि की पतली फहियों या कमवियों को गाँड़ कर घनाया
हुआ बरतन । टोकरा । दौरा ।

धौ०—डला सुलवाई = रनिथो के यहाँ विवाह की एक रीति
जिनमें दूल्हा दुजहिन के यहाँ एक टोकरा लाता है ।

डलिया-संज्ञा स्त्री० [हिं० डल] छोटा डला । छोटा टोकरा ।
दोरी ।

डली-संज्ञा स्त्री० [हिं० डला] (१) छोटा टुकड़ा । छोटा डेला ।
खंड । जैसे, मिर्ची की डली, नमक की डली । (२)
सुपारी ।

संज्ञा स्त्री० दे० "डलिया" ।

डल्लक-संज्ञा पुं० [सं०] डला । दौरा ।

डवैरु-संज्ञा पुं० दे० "डमरु" ।

डवंहमा-संज्ञा पुं० दे० "डवहनमा" ।

डविरय-संज्ञा पुं० [सं०] काठ का बना हुआ नृग ।

डस-संज्ञा स्त्री० [दे०] (१) एक प्रकार की शराब । रम । (२)
तराजू की दोरी जिसमें पलड़े बँधे रहते हैं । जोती । (३)

पड़के के धान का झोर जिसमें साने और थाने के पूरे तागे
नहीं बुने रहते । झोर ।

डसन-संज्ञा स्त्री० [सं० दसन] (१) डसने की क्रिया या भाव ।
(२) डसने या काटने का ढंग । ३०—यह अघराफ बफ़े बन
कीना । तबक डसन साप में दीना ।—सूर ।

डसना-क्रि० सं० [सं० दसन] (१) किसी घेसे कीड़े का दाँत से
काटना जिसके दाँत में विप हो । साँप आदि जहरीले कीड़ों
का काटना । (२) डंक मारना ।

संयो० क्रि०—लेना ।

संज्ञा पुं० दे० "डसन", "दसन" ।

डसवाना-क्रि० सं० दे० "डसाना" ।

डसा-संज्ञा पुं० [सं० दस] डाढ़ । चामड़ा ।

डसाना-क्रि० सं० [हिं० डसना का प्रे०] दाँत से कटवाना ।
जैसे, साँप से डसाना ।

डसी-संज्ञा स्त्री० दे० "दली" ।

संज्ञा स्त्री०—पदधान या परिचय की वस्तु । पहचान के लिये
दिया हुआ चिह्न । चिन्हानी । निशानी । सददानी ।

डहक-वि० [?] संख्या में छ । ६ । (दलाजी)

डहकाना-क्रि० सं० [हिं० डका] (१) छल करना । धोला देना ।
ठगना । अटना । ३०—डहकि डहकि परचेहु सब काहू ।

अति असह मन सदा उड़ाहू ।—तुलसी । (२) किसी बस्तु
को देने के लिये दिखा कर न देना । लज्जा कर न देना ।
३०—खैरत खात परस्पर डहकत छीनत कहत करत रण-
दिया ।—तुलसी ।

क्रि० अ० [हिं० दहाड़; पड़] (१) रोने में रह रह कर शब्द
निकालना । बिलखना । बिलाप करना । ३०—फाल बदनवे
राखि लीने इंदु गर्व जे खोहू गोपिनी सप ऋषो अगो डहकि
दोने रोह ।—सूर । (२) हुंकारना । डकार लेना । ददाइ
मारना । गरजना । ३०—इक दिन कंस असुर-इक प्रता ।

घावा घटि यगु विराम करे । डहकत फिरत उगावत छारा ।
पकरि सोंग सुरतै प्रभु मारा ।—विद्याम ।

क्रि० अ० [दे०] द्वितराना । द्विटकना । फैलना । ३०—
चंदन कपूर जल धौत कलधौत धाम उजजल उगवाई डहकती
डहकत है ।—देव ।

डहकलाय-वि० [?] सोलह । १६ । (दलाजी)

डहकाना-क्रि० सं० [सं० दस = देना, हिं० डका] लेना ।
गँवाना । नष्ट करना । ३०—नाद विवाद यज्ञ प्रत साथे
कतहू जाय जन्म डहकायै ।—सूर ।

क्रि० अ० किसी के धोखे में आ कर अपने पास का
कुछ लेना । किसी के छल के कारण हानि सहना ।
धोखे में धाना । बंचित या प्रतारित होना । छग

जाना । जैसे, इस सौदे में तुम दहका गए। ३०—
(क) इनके कड़े कौन दहकावे, ऐसी कौन अमाना ?—सूर।
(ख) दहके ते दहकादूधो भंजो जो करिय विचार।—तुलसी।
संयोग क्रि०—जाना ।

क्रि० सं० (१) उगना । घोले से किमी की कोई वस्तु को खेना । घोबा देना । जटना । (२) किसी को कोई वस्तु देने के लिये दिखाना करना । लालचा करना ।

दहदहा-वि० [शत०] [श्लो० दहदही] (१) हरा भरा । ताज़ा । खड़खड़ाता हुआ । जो सुला या मुग्धकाया न हो । (पेड़, पौधे, फूल पत्ते आदि के लिये) । ३०—जो काटै तो दहदही, सोचै तो कुम्हिलाय । यदि गुनवंती येव का कुव गुन कहा न आय ।—कबीर । (२) प्रफुल्लित । प्रसन्न । आनंदित । ३०—(क) तुम सैतनि देखत दहै अपने हिय ते लाज । किरति सचनि में दहदही बड़े भरगजी धाल ।—विहारी । (ख) सेवती चरन पाए सेवती हमारे जान हूँ रही दहदही छदि अनंदकंद को ।—देव । (३) तुरंत का । ताज़ा । ३०—जहलही हँदीचर श्यामता शरीर सोही दहदही चंदन की रेखा राजे भाज में ।—रघुराज ।

दहदहाट १ *—संज्ञा स्त्री० [हिं० दहदहा] हरापन । ताज़गी । प्रफुल्लता । ३०—प्यारी जू के मुख अंजुज की दहदहाट ऐसी प्रागति मने अमृत की सींच ।—स्वामी हरिदास ।

दहदहाना-क्रि० थ० [हिं० दहदहा] (१) हरा भरा होना । ताज़ा होना । (पेड़, पौधे, पत्ते आदि का) । ३०—दूर दमकत श्रवन शोभा जलज युग दहदहत ।—सूर । (२) प्रफुल्लित होना । आनंदित होना ।

दहदहाध-संज्ञा पुं० [हिं० दहदहा] हराभरा होने का भाव । ताज़गी । प्रफुल्लता ।

दहन-संज्ञा पुं० [सं० दहन = उड़ना] देना । पर । पंख । ३०—विषदाना कित देह चैंगुल । जिहि भा मरन दहन धरि चुरा ।—जायसी ।

संज्ञा स्त्री० [सं० दहन] अजन । दाह ।

दहना-संज्ञा पुं० दे० "देना" ?

क्रि० थ० [सं० दहन] (१) जलना । भस्म होना । (२) कुड़ना । विड़ना । द्वेष करना । घुरा मानना ।

क्रि० सं० (१) अजाना । भस्म करना । ३०—रावन खँका ही डही येह मोहिं बमून धाड़ ।—जायसी । (२) संतप्त करना । दुःख पहुँचाना । ३०—यह दू चंद अचंचंदन पीरु । दगध करइ तन विरह गभीरु ।—जायसी ।

दहर १-संज्ञा स्त्री० [हिं० दहर] (१) शरणा । मार्ग । पथ । ३०—जिहि दहरत दहर करत कहरो । चित चरत चोरत चेटक चेटरो ।—रघुराज । (२) आकाशगंगा ।

दहरना-क्रि० थ० [हिं० दहर] चलना । फिरना । दहलना । ३०—जिहि दहरत दहर करत कहरो । चित चरत चोरत चेटक चेटरो ।—रघुराज ।

दहराना १-क्रि० सं० [हिं० दहरना] चलाना । दौड़ाना । फिराना । ३०—कोक निखि रही भाज चंदन एक चित लाई । कोक निखि विजुरी भृकुटि पर नैन दहाई ।—सूर ।
दहु, डहु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) घुपविरोध । छद्म । (२) धड़क ।

डा-संज्ञा स्त्री० [सं०] बाकिनी । डाइन ।

डाँक-संज्ञा स्त्री० [हिं० दमक, दबक] हाँपे या चाँदी का बहुत पतला कागज की तरह का पत्र ।

विद्योप-देशी डाँक चाँदी की होती है जिसे घोंट कर गणों के नीचे बैठते हैं । अथ चाँपे के पत्र की विदेशी डाँक भी बहुत आती है जिसके गोख और चमकीले टुकड़े काट कर कियों की टिकली, कपड़ों पर टाँकने की चमकी आदि बनती हैं । डाँक घोंटने की सामान्य संख्या ३-४ अंगुल चौड़ी पट्टी होती है जिस पर डाँक रख कर चमकाने के लिये घोंटते हैं ।

† संज्ञा स्त्री० [हिं० दँकना] कू । वमन । उलटी ।

क्रि० प्र०—रोना ।

डाँकना १-क्रि० सं० [सं० टंक = चक्कना] (१) कूट कर पार करना । काँपना । फाँदना । (२) वमन करना । उलटी करना ।

डाँग १-संज्ञा पुं० [सं० टंक = पहाड़ का किनारा और चेंबे] (१) पहाड़ी । जंगल । वन । (२) पहाड़ की ऊँची चोटी ।

संज्ञा पुं० [सं० टंक, हिं० दगा] मोटे बाल का ढंढा । लट्ट ।

† संज्ञा पुं० [हिं० दँकना] कूट । फर्जाना ।

डाँगर-वि० [रथ०] (१) चौपाया । ढोर । गाय, भैंस आदि पशु । (२) मरा हुआ चौपाया । (गाय बैज आदि) चौपाय की धारा (पथ) ।

मुह्रा-डाँगर धसीटना = चमारों की तरह मार हुआ चौपाया लाँच कर ले जाना । अशुचि कर्म करना ।

(२) एक नीच जाति का नाम ।

दे० (१) दुबला पतला । जिसकी हड्डी हड्डी निकट ही हो । (२) मूछे । अड़ । गावड़ी ।

डाँगा-संज्ञा पुं० [सं० दंठक] (१) अज्ञान के मस्तूक में रसितों को फैलाने के लिये आड़ी लगी हुई धरन । (२) लंगड़ के बीच का मोटा ढंढा । (धरा०)

डाँट-संज्ञा स्त्री० [सं० दण्ड = दमन, वण्ड] शासन । (१) पत्त । दाव । दबाव । जैसे, (क) इस लड़के को डाँट में रखो । (ख) इस लड़के पर किसी की डाँट नहीं है ।

क्रि० प्र०—मानना ।—रतना ।

मुहा०—डांट में रखना = शासन में रखना । वश में रखना । किसी पर डांट रखना = किसी पर शासन या दबाव रखना । डांट पर = पातश्री के कहारों की एक शैली । (जब तम और ऊँचा नीचा शब्द आगे होता है तब भ्रमज्ञा कहार कुछ घब कर चलने के लिये कहता है "डांट पर")
(२) दराने के लिये क्रोध-पूर्वक कर्कश स्वर से कहा हुआ शब्द । घुड़की । डपट ।

क्रि० प्र०—बताना ।

डाटना—क्रि० सं० [हि० डांट + ना (प्रत्य०)] दराने के लिये क्रोध-पूर्वक कड़े स्वर से बोलना । घुड़कना । डपटना । उ०—(क) जैसे मीन किलकिला दासत ऐसे रहे प्रभु दाटत ।—सूर । (ख) जानै मझ सो विप्रवर भाँखि दिलापदि डाँटि ।—तुलसी ।

संयोग क्रि०—देना ।

डाँट—संज्ञा पुं० [सं० दंठ] दंडज ।

डाँड़—संज्ञा पुं० [सं० दंड] (१) सीधी लकड़ी । दंडा । (२) गदका ।

यी०—डाँड़ पटा । = (१) फटी गन्ना । (२) गन्ने का खेप । (३) नाव खेने का लंबा बह्ना या दंडा । चप्पू ।

क्रि० प्र०—खेना ।—चलाना ।—मारना ।—भरना । (ख०) (४) थंक्का का हथ्या । (५) जुलाहों की वह पोली लकड़ी जिसमें उरी फंसाई रहती है । † (६) सीधी लकीर । (७) रीढ़ की हड्डी । (८) ऊँची उठी हुई संग जमीन जो दूर तक लकीर की तरह चली गई हो । ऊँची मेंड़ ।

मुहा०—डाँड़ मारना = मेंड़ उठाना ।

(१) रोक, आड़ आदि के लिये उठाई हुई कम ऊँची दीवार । (१०) ऊँचा स्थान । छेदा भीटा या टोला । उ०—सो कर लै पंदा दिति गाड़े । उपरयो हुत हुम इक तेहि डाँड़े ।—रघुराज । (११) दो खेतों के बीच की सीमा पर की कुछ ऊँची जमीन जो कुछ दूर तक लकीर की तरह गई हो और जिस पर से लोग आते जाते हों । मेंड़ । (१२) समुद्र का बालुग्रां रेतीला किनारा । (१३) सीमा । हड़ । (१४) वह मैदान जिसमें का जंगल कट गया हो । (१५) अर्धदंड । किसी अचर्या के कारण अचर्या से लिया जानेवाला धन । सुरमाना ।

क्रि० प्र०—लगाना ।

(१६) वह वस्तु या धन जिसे कोई मनुष्य दूसरे से अपनी किसी वस्तु के नष्ट हो जाने या खो जाने पर ले । नुकसान का बदला । हरताना ।

क्रि० प्र०—देना ।—खेना ।

(१७) लंबाई नापने का मान । कट्टा । घाँस ।

डाँड़ना—क्रि० प्र० [हि० डाँड़] धरपें दंड देना । सुरमाना करना । उ०—(क) उदधि अचार बतारवहूँ न लगी बार बेसरी कुमार सो अर्धदं ऐसो डाँड़िगो ।—तुलसी । (ख) पड़ा जो डाँड़ जगत सब डाँड़ा । का निश्चित माटी के भाँड़ा ।—जायसी ।

डाँड़र—संज्ञा पुं० [हि० डाँड़] बाजरे के दंडज का गड़ा हुआ भाग जो फसल कट जाने पर भी खेतों में पड़ा रह जाता है । बाजरे की खूँटी ।

डाँड़ा—संज्ञा पुं० [हि० डाँड़] (१) धुँड़ । दंडा । (२) गदका । उ०—बज्र की साँग बज्र का डाँड़ा । उठी आगि तस बाँरे खाँड़ा ।—जायसी । (३) नाव खेने का डाँड़ा । (४) समुद्र का बालुग्रां रेतीला किनारा । (ख०) । (५) हड़ । सीमा । मेंड़ ।

यी०—डाँड़ा मेंड़ा । डाँड़ा मेंड़ी ।

मुहा०—होजी का डाँड़ा = लकड़ी, पाठ फूल आदि का दंड जो धर्मतंत्रचर्मा के दिन से होखी अज्ञाने के लिये इकट्ठा किया जाने लगता है ।

डाँड़ा मेंड़ा—संज्ञा पुं० [हि० डाँड़ + मेंड़] (१) एक ही डाँड़ या सीमा का श्वेत । परस्पर अत्यंत सामीप्य । लगाव । (२) अनवन । भगाड़ा ।

क्रि० प्र०—रहना ।

डाँड़ा मेंड़ी—संज्ञा स्त्री० दे० "डाँड़ा मेंड़ा" ।

डाँड़ा दाहेल—संज्ञा पुं० [दे०] एक प्रकार का साँव जो बंगाल में होता है ।

डाँड़ी—संज्ञा स्त्री० [हि० डाँड़] (१) लंबी पतली लकड़ी । (२) हाथ में ले कर व्यवहार की जानेवाली वस्तु का वह लंबा पतला भाग जो हाथ में लिया या पकड़ा जाता है । लंबा हथ्या या दस्ता । जैसे, कारखी की डाँड़ी । उ०—हरि वृ की आरंती बनी । प्रति विचित्र रचना रचि शब्दी परति न गिरा गनी । कच्छर अथ आसन शनूप अति, बाँड़ी शेष फनी ।—सूर । (३) तराजू की वह सीधी लकड़ी जिसमें रस्सियाँ लटका कर पलड़े बांधे जाते हैं । बंदी । उ०—साईं मेरा यानिया सहन करे व्यवहार । बिन डाँड़ी बिन पालड़े तौले सत्र संसार ।—कबीर ।

मुहा०—डाँड़ो मारना = सौदा देने में कम तौलना ।

(४) टहनी । पतली शाखा । (५) वह लंबा दंडज जिसमें फूल या फल लगा होता है । नाल । उ०—तेहि डाँड़ी तह कम-कहि तोरी । एक फमज की दूमा जोरी ।—जायसी । (६) हिंडोले में लगी हुई चार सीधी लकड़ियाँ या कोरी की लकड़ें जिनसे लगी हुई बँडने की पट्टी लटकती रहती है । उ०—पट्टो लगे नम भाग । बहुरै रंग बनी बाँड़ी चारि ।

और मोंवे भजि केलि मूवे नवत्र भागर नारि।—सूर ।
 (७) बुझाई की यह लकड़ी जो चरली की धवनी में टाळी जाती है । (८) शहनाई की लकड़ी जिसके नीचे पीतल का घेरा होता है । (९) अनवट नामक गहने का वह भाग जो दूसरी और तीसरी डँगली के नीचे इसलिये निकला रहता है जिसमें अनवट घूम न सके । (१०) बड़ खेनेवाला श्रादमी । (खर०) । (११) मट्टर या सुप्त श्रादमी । (खर०) । † (१२) सीधी लकीर । खकीर । रेला ।

क्रि० प्र०—खीचना ।

(१३) लीक । मर्यादा । (१४) चिट्टियों के बैठने का बट्टा । (१५) फूल के नीचे का लंबा पतला भाग । (१६) पालकी के दोनों धार निकले हुए लंबे बड़े जिन्हें कटार कंधे पर रखते हैं । (१७) पालकी । (१८) बंदे में बंधी हुई झोली के धाकार की एक सवारी जो ऊँचे पहारों पर चलती है ।

रूपान ।

हाइद्री †—संज्ञा स्त्री० [सं० दप, हिं० बटा] मूनी हुई मटर की फली ।

हाइ—संज्ञा पुं० [देण०] एक प्रकार का मरकट जो दलदल में जल्ल होता है ।

हाँवरा—संज्ञा स्त्री० [सं० हँव ?] [स्त्री० हँवरी] लकड़ा । घेरा । पुत्र । उ०—(क) कंचन मनि रतन जड़ित रामचंद्र पवरी । दाहिन सो राम घाम जनक राप हाँवरी ।—देवस्यामी । (ख) बाहिर पैरि न दीजिए पवरी यावरी होय सो हाँवरी बोलै।—देव । दे० “दावरी” ।

हाँवरी †—संज्ञा स्त्री० [हिं० हँवरा] लकड़ी । घेटी ।

हाँवरू †—संज्ञा पुं० [सं० हँव] घाय का घा ।
 हाँवाडोल—वि० [हिं० हँवना] इधर वधर हिलता डोलता हुआ । एक स्थिति पर न रहनेवाला । चंचल । विचलित ।
 हाँविर । जैसे, चित्त हाँवाडोल होगा ।

हाँशपाटिडू—संज्ञा पुं० [देण०] संगीत में रुद्रताल के ग्यारह भेदों में से एक जिसमें ५ आघात के परचाय १ शुभ्य (लाली) होता है ।

हाँस—संज्ञा पुं० [सं० दंग] (१) बड़ा मस्बुड़ । दंश । (२) एक प्रकार की मखली जो पशुओं को बहुत दुःख देती है । (३) कुकुरींघी ।

हाँसर †—संज्ञा पुं० [देण०] हमली का चीत । चिन्ना ।

हाँ—संज्ञा पुं० [भनु०] सितार की गति का एक थोल । उ०—डा टिट्ट डा डा डा डा डा ।

हाँहन—संज्ञा स्त्री० [सं० हाकना] (१) भूतनी । सुडैल । रावली । (२) टेलहाई । यह स्त्री जिसकी दृष्टि श्राद्धि के प्रभाव से बच्चे मर जाते हैं । (३) कुल्ला और दावनी की ।

हाँहरेकटर—संज्ञा पुं० [सं०] (१) प्रबंध चलानेवाला । कार्य-संचालक । सुंतजिम । इंतजाम करनेवाला । (२) मरगन में यह पुराना जिसकी क्रिया से गति बरग्न होती है ।

हाँहरेकटरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह पुस्तक जिसमें किसी नगर या देश के मुख्य निवासियों या व्यापारियों आदि की सूची अथर क्रम से हो ।

हाँई—संज्ञा पुं० [सं०] (१) पासा । (२) ठप्पा । साँचा । (३) रंग ।

हाँईप्रेस—संज्ञा स्त्री० [सं०] ठप्पा उठाने की कल । उमरे हुए अथर उठाने की कल जिससे मोनाग्राम आदि छपते हैं ।

हाँक—संज्ञा पुं० [हिं० उर्धक या उर्धक । वा बँकना = फँदना] (१) सवारी का ऐसा प्रबंध जिसमें एक एक टिकान पर दराथर जानवर आदि बन्दे जाते हैं । घोड़े गाड़ी आदि का जगह जगह इंतजाम ।

हाँका—हाक बैडाना—शीम यात्रा के लिये रूपान रूपान पर सवारी बन्दने की चौकी नियत काना । हाक लगाना—शीम संवाद पहुँचाने या यात्रा करने के लिये मार्ग में रूपान स्थान पर आदिभिया या सवारियों का प्रबंध रहना । हाक लगाना—दे० “हाक बैडाना” ।

हाँ—हाक चौकी—मार्ग में वह रूपान जहाँ यात्रा के घोड़े बन्दे जाय या एक हस्कारा दूसरे हस्कारे को चिट्ठिया का पैता दे ।

(२) राज्य की ओर से चिट्ठियों के धराने जाने की व्यवस्था । वह भरकारी इंतजाम जिसके मुताबिक खत एक जगह से दूसरी जगह बराबर धराने जाते हैं । जैसे, हाक का सुदकम । उ०—यह चिट्ठी हाक में भेजेन नौकर के हाथ नहीं ।

हाँ—हाकखाना । हाकगाड़ी ।

(३) चिट्ठी पत्री । कागज पत्र आदि जो हाक से धावे । हाक से धराने जानेवाली वस्तु । जैसे, तुम्हारी हाक खली है, जो खेना ।

हाँ—संज्ञा स्त्री० [भनु०] बमन । डलटी । कै ।

क्रि० प्र०—होना ।

हाँ—संज्ञा पुं० [सं०] समुद्र के किनारे जहाँ ठहरने का वह स्थान जहाँ सुवाफिर या माल चढ़ाने उतारने के लिये बंध या चबूतरे आदि बने होते हैं ।

हाँ—संज्ञा पुं० [सं० हाकना = चिल्लाना] नीलाम की बोलती । नीलाम की वस्तु खेनेवालों की पुकार जिसके द्वारा वे दाम लगाते हैं ।

हाँकखाना—संज्ञा पुं० [हिं० हाक + खाना] वह स्थान या सवारी दस्तूर जहाँ लोग भिन्न भिन्न स्थानों पर भेजने के लिये चिट्ठी पत्री आदि छोड़ते हैं और जहाँ से धाई हुई चिट्ठियाँ लोगों को बारी जाती हैं ।

डाकगाड़ी—संज्ञा स्त्री० [हि० डाक + गाड़ी] वह रेलगाड़ी जिस पर बिड़ी पत्री आदि भेजने का सरकार की तरफ से इंतजाम हो। डाक ले जानेवाली रेलगाड़ी जो और गाड़ियों से तेज चलती है।

डाकघर—संज्ञा पुं० दे० "डाकखाना"।

डाकना—कि० अ० [हि० डाक] कें करना। बमन करना।

कि० स० [हि० उड़क, डक + ना (प्रत्य०)] फाँदना।

छाँदना। हूद कर पार करना।

संयो० कि०—जाना।

डाक बगला [हि० डाक + बगला] वह बगला या मकान जो सरकार की ओर से परदेसियों के टहरने के लिये बना हो।

विशेष—ईस्ट इंडिया कंपनी के समय में इस प्रकार के बगले स्थान स्थान पर बने थे। पहले जय रेल नहीं थी तब इन्हीं स्थानों पर डाक ली जाती थीर बढ़ती जाती थी। अतः सवारियों का भी यहाँ अट्टा रहता था जिससे मुसाफिरों को टहरने आदि का सुबोता रहता था।

डाक-महसूल—संज्ञा पुं० [हि० डाक + म० महसूल] वह राशं जो चीज को डाक द्वारा भेजने या मँगाने में लगे।

डाकमुंशो—संज्ञा पुं० [हि० डाक + फ्रा० मुशी] डाकघर का अफसर, पोस्टमास्टर।

डाकर—संज्ञा पुं० [दे०] तालों की वह मिट्टी जो पानी खुल जाने पर घिटल कर कड़ी हो जाती है।

डाकयंत्र—संज्ञा स्त्री० [हि० डाक + सं० यंत्र] डाक का यंत्र। डाक-महसूल।

डाका—संज्ञा पुं० [हि० डाकना = कुरना वा सं० दस्यु] वह आक्रमण जो धन हरण करने के लिये सहसा किया जाता है। माल असवार जबरदस्ती छीनने के लिये कई आरमियों का दल बांध कर धावा। बटमारी।

मुद्दा—डाका बालना = छुटने के लिये धावा करना। जबरदस्ती माल छुटने के लिये चट्ट दीटना। डाका पड़ना = छूट के लिये आक्रमण होना। जैसे, वस गाँव पर आज डाका पड़ा। डाका मारना = जबरदस्ती माल छुटाना। बलपूर्वक धन हरण करना।

डाकाजनी—संज्ञा स्त्री० [हि० डाका + फ्रा० जनी] डाका मारने का काम। बटमारी।

डाकिन—संज्ञा स्त्री० दे० "डाकिनी"।

डाकिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक पिशाची या देवी जो काली के गर्भों में समझी जाती है। (२) डाहन। चुड़ैल।

डाकी—संज्ञा स्त्री० [हि० डाक] बमन। कू।

संज्ञा पुं० बहुत खानेवाला। पैट्ट।

वि० सखल। प्रचंड। (दि०)

डाकू—संज्ञा पुं० [हि० डाकना, वा सं० दस्यु] (१) डाक डाजने-

वाला। जबरदस्ती लोगों का माल छुटनेवाला। छुटे। बटमार। (२) अधिक खानेवाला। पैट्ट।

डाकेट—संज्ञा पुं० [अंग०] किसी बड़ी चिट्ठी या आक्षेपत्र आदि का सारांश। चिट्ठी का सुलासा।

डाकोर—संज्ञा पुं० [सं० डाकुर, हि० डाकुर] डाकुर। विष्णुभगवान्। (गुजरात)

डाक्टर—संज्ञा पुं० [अंग०] (१) आचार्य। अध्यापक। विद्वान्। (२) वैद्य। चिकित्सक। हकीम।

डाक्टरी—संज्ञा स्त्री० [अंग० दक्टर + ई (प्रत्य०)] (१) चिकित्साशास्त्र। (२) योग्य का चिकित्साशास्त्र। पारचार्य आयुर्वेद।

डाक्टर—संज्ञा पुं० दे० डाक्टर।

डाख—संज्ञा पुं० [हि० डाक] डाक। पत्तारा। उ०—तापर आई भ्रदि बन डाखा। मई उपत फूल कर साषा।—जायसी।

डाखिपो—संज्ञा पुं० ['] भूला सिंह। (हि०)

डागरी—संज्ञा स्त्री० दे० "दगर"।

डागा—संज्ञा पुं० [सं० दंरक] नगारा बजाने का ढंढा। घोष। उ०—हैं पंक्तिन केर पद्युजागां। कपु कहि चला सख दै डागा।—जायसी।

डागुर—संज्ञा पुं० [दे०] जाटों की एक जाति। उ०—डागुर पदादरे धरि सरोर। बहु नट्टु टट बटे सरोर।—सूदन।

डाट—संज्ञा स्त्री० [सं० दन्ति] (१) वह चंगुल जो किसी चोक को टहराए रखने या किसी बस्तु को छड़ी रखने के लिये लगाई जाती है। टेक। चाँद।

कि० प्र०—लगाना।

(२) वह कील या लूँटा जिसे टोक कर कोई छेद बंद किया जाय। छेद रोकने या बंद करने की बस्तु।

कि० प्र०—लगाना।

(३) योतल शीशी आदि का सुँह बंद करने की बस्तु। उँडी। काग। गद्दा।

कि० प्र०—छलना।—लगाना।

(४) मेहरारू को रोके रखने के लिये ईँटों आदि की भारती। जदाय की रोक। जदाय का डोला।

संज्ञा पुं० दे० "डाँट"।

डाटना—कि०, स० [हि० दट] (१) किसी वस्तु को किसी वस्तु पर रख कर जोर से ठकेलना। एक वस्तु को दूसरी वस्तु पर कस कर दबाना। मिट्टा कर डेलना। जैसे, (क) इसे इस बंदे से बाटो तप पीछे रखकेगा। (ख) इस बंदे को बाटो रहो तब परपर हथर न छुटकेगा।

संयो० कि०—देना।

(२) किसी छाने बंदे आदि को किसी चोक या आंठी खु

को ठहराए रखने के लिये उससे मिठा कर लगाना । टेकना ।
 खाँड़ लगाना (३) छेद या मुँह बंद करना । मुँह कसना ।
 मुँह बंद करना । ठंडी लगाना । (४) कस कर भरना ।
 ठुस कर भरना । कस कर धुनेरुना । (५) खूब पेट भर
 खाना । कस कर खाना । ३०—घामनित तरु फल सुगंध
 मधुर मिष्ट खाते । मनसा करि प्रभुहि अर्पि भोजन को
 खाते ।—सूर । (६) ठाट से कपड़ा गढ़ना आदि पहनना ।
 जैसे, कोट डाटना, शरारता डाटना । (७) डथाना । मिझाना ।
 मिझाना । ३०—रंधन न साथ सुपै सुख की विन राधिके

आधिक लोपन खाते ।—केदार ।
 डाड़ना—कि० अ० दे० “डाड़ना” “धाड़ना” ।

कि० सं० दे० “डाड़ना” ।
 डाढ़—संज्ञा स्त्री० [सं० दृष्ट्वा, प्रा० दृष्ट्] (१) चयन के
 लिये दाँत । चामड़ा । दाढ़ । (२) यद आदि सुर्बों की
 शालाश्रों से नीचे की घोर छटकी हुई जटाएँ । बरोह ।

डाढ़ना—कि० सं० [सं० दृष्य, प्रा० दृष्ट् + ना (प्रत्य०)] जलाना ।
 भस्म करना । ३०—तुलसिदास जगद्वज्रजालस उभौ अथन
 ध्यायि लामे डाढ़न ।—तुलसी ।

डाढ़ा—संज्ञा स्त्री० [सं० दृष्य, प्रा० दृष्ट्] (१) दावानल । वन की
 आग । (२) आग । ३०—सामहृया कपि दृज यज्ञ थाड़ा ।
 जिमि दृन पाह लागि अति डाड़ा ।—तुलसी ।

कि० प्र०—लगना ।
 (३) ताप । दाह । जलन ।
 कि० प्र०—फूँकना ।

डाढ़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० दड़] (१) चेदरे पर सौंड के नीचे का
 गोख बमर हुआ भाग । डोढ़ी । डूढ़ी । चिबुक । (२) डूढ़ी
 और कनपटी पर के बाज । चिबुक और गंडल्यल पर के
 खोम । दाढ़ी । ३०—डाढ़ी के रखैयत की डाढ़ी सी रहति
 छाती बाड़ी मरजाद जप हर हिंदुवाने की ।—भूषण ।

मुहा०—डाढ़ी छोड़ना = डाढ़ी न मुँहडवाना । डाढ़ी बड़ना ।
 डाढ़ी का एक एक राख करना = डाढ़ी उलाह लेना ।
 अरमानित करना । दुर्दशा करना । डाढ़ी को कलप लगाना =
 धूर्ते आदमी को कलक लगाना । श्रेष्ठ और बृद्ध को दोष
 लगाना । पेट में डाढ़ी होना = छोटी ही खरपा में यकें
 की ही जनकारी प्रकट करना या बाँँ करना । पेशाब से डाढ़ी
 मुँहडवाना = अत्यंत अरमान करना । अपठिता करना । दुग्ति
 करना । डाढ़ी फटकारना = (१) ह्राप से डाढ़ी के बाजों
 को फटकरना । (२) शैलप और उलाह प्रकट करना । डाढ़ी
 रखना = डाढ़ी के बाज न मुँहडवाना । डाढ़ी बड़ने देना ।

डाह—संज्ञा स्त्री० [सं० दर्भ] (१) दाम नाम की घास । (२) कच्चा
 नारियल । (३) परतला ।
 डाहक—वि० दे० “दामक” ।

डााधर—संज्ञा पुं० [सं० दध्न = समुद्र या मंडल] (१) नीची जमीन ।
 गहिरा भूमि जहाँ पानी ठहरा रहे । (२) गड्डी । पोखरी ।
 तलैया । गड्ढा जिसमें बरसाती पानी जमा रहता है । ३०—
 (क) सुासर सुमग वनज वनचारी । डााधर जोग कि हंसकु-
 मारी ।—तुलसी । (ख) सो मैं बरनि कहीं विधि कहीं ।
 डााधर कमठ कि मंदर खेहीं ।—तुलसी । (३) हाथ धोने का
 पात्र । चिलमपी । (४) मैला पानी ।
 वि० अटमैला । गड्ढा । कीचड़ मिला । ३०—भूमि परत
 भा डााधर पानी ।—तुलसी ।

डाावा—संज्ञा पुं० दे० “दवा” । ३०—संच सहित धूमन के डाावा ।
 अमल धरप भाजन छुवि डाावा ।—पद्माकर ।

डााधी—संज्ञा स्त्री० [सं० दर्भ] कटी हुई घास या फसल का पूला ।

डाम—संज्ञा पुं० [सं० दर्भ] (१) कुश की जाति की एक घास जो
 प्रायः रेह मिली हुई उत्तर जमीन में अधिक होती है । एक
 प्रकार का कुश । (२) कुश । ३०—अलक दाम, तिज गाल
 यों औसुवन को परवाह । नोर्दिहि देत तिलोत्रली नैना तुम
 विनु नाह ।—सुभारक । (३) आम का मीर । आम की मंत्रती ।
 ३०—अउ छदि आमदि दाम न होई । तउ छदि सुगंध
 बसाय न सोई ।—जायसी । (४) कच्चा नारियल ।

डामक—वि० [अ० डमक टमक] कुप से तुरंत का निकास
 हुआ । ताजा । (पानी) । जैसे, दामक पानी ।

डामचा—संज्ञा पुं० [दे०] खेत में खड़ा किया हुआ वह मचान
 जिस पर से खेत की रखवाली करते हैं । मैड़ा । माचा ।

डामर—संज्ञा पुं० [सं०] (१) शिव कथित माना जानेवाला एक
 संज्ञा जिपके इस भेद किए गए हैं—योगदामर, शिवदामर,
 दुर्गादामर, सायखतदामर, प्रद्वदामर, और गंधर्वदामर ।
 (२) हलचल । धूप । (३) धाँवर । ठाटवाट । (४) चमका ।
 (५) हुग के शुभाशुभ जानने के लिये धनाए जानेवाले
 चक्रों में से एक । (६) ४३ छेपताल शैलों में से एक ।

संज्ञा पुं० [दे०] (१) सान घृष का गौंद । राज । (२)
 एक प्रकार का गौंद या कहलवा जो धरिण में पक्षिमी घाट
 के पहाड़ों पर होनेवाले एक पेड़ से निकलता है और सफेद
 दामर कहलाता है । दे० “कहलवा” । (३) कहलवा की
 तरह का एक प्रकार का छलीला राज या गौंद जो छोटी
 मधु मक्षियों के छूने से निकलता है । (४) वह छोटी
 मधुमक्खी जो इस प्रकार का राज बनाती है ।

डामल—संज्ञा स्त्री० [सं० दग्धुदग्धस] (१) जवमईद । उग्र भा
 के लिये कैद । (२) “देशनिकावा” का दंत ।

विशेष—आगतपर्य में शैलगेरी सरकार मारी भांगि चपराधियो
 को बंधनन टापू में भेजा करती है । वसी को दामल
 करते हैं ।

हामाडोल-वि० दे० 'हामाडोल'

हामिल्ल-संज्ञा पुं० दे० "हामल"

हायं डायं-क्रि० वि० [अनु०] व्यर्थ इधर से उधर (घूमना) । व्यर्थ घूल खानते हुए । जैसे, वह यों ही दिन भर हायं डायं फिरा करता है ।

हायन-संज्ञा स्त्री० [सं० हाकिनी] (१) हाकिनी । पिराचिनी । सुइल । श्रुतिन । (२) कुप्या की ।

हायनाभो-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का छोटा पंजिन जिससे विजली पैदा की जाती है ।

हायरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] यह पुस्तक जिसमें दिन भर के किए हुए कार्य संक्षेपतः लिखे जाय । दिनचर्या । रोजनामवा ।

हायल-संज्ञा पुं० [सं०] घड़ी के सामने का वह गोल भाग जिस के ऊपर शंक्र यने होते हैं और सूर्यवा घूमती हैं । घड़ी का चेहरा ।

हायस-संज्ञा पुं० [सं०] यह ऊँचा स्थान वा चतुरा जिस पर किसी सभा के सभापति का आसन रक्खा जाता है ।

हायमंड-कट-संज्ञा पुं० [सं०] गहने की घातु को इस प्रकार धीलना जिसमें हीरे की सी चतक पैदा हो जाय । हीरे की सी काट । डामल काट ।

हार-संज्ञा स्त्री० [सं० दार = लकड़ो] (१) डाल । शाखा । व०—(क) रत्नजटिन कंकन धारुदं गगन मुद्रिका सोहे । धार धार मनु मनु वटप तर विकच देखि मन मोहे ।—सूर । (ख) जिन दिन देखे वे कुसुम गई सु थोत बहार । श्रव अलि रही मुत्राश में धपत कटीली धार ।—विहारी । (२) फानूस जलाने के लिये दीवार में लगाने की एक तरह की खूँटी । संज्ञा स्त्री० [सं० शक] दलिया । चंगेर । डाली व०—चञ्जी पाउन सष गोहनै फूल धार लंह हाथ । बिस्नुनाथ कह पूजा पदुमावति के साथ ।—जायसी ।

हारना-क्रि० सं० दे० "हारना" ।

हारियास-संज्ञा पुं० [दे०] वायु चंद्र की एक जाति ।

हापी-संज्ञा स्त्री० दे० "हार" "हाल" ।

हाल-संज्ञा स्त्री० [सं० दार = लकड़ो, हिं० डार] (१) पेड़ के धड़ से इधर उधर निकली हुई बड़ लंबी लकड़ी जिसमें पत्तियाँ और फलने होते हैं । शाखा । शाख ।

मुहा०—हाल का दूटा = (१) हाल से एक कर गिरा हुआ राजा (कम) । (२) बढ़िया । श्रेयस्वा । बेफा । जैसे, तुम्हीं एक हाल के दूटे हो जो सब कुछ तुम्हीं का दिया जाय । (३) नया आया हुआ । नयागतुक । हाल का पका = पेड़ छी में पका हुआ । शालवाला = बंदर । शालामुग ।

(२) फानूस जलाने के लिये दीवार में लगी हुई एक प्रकार की खूँटी । (३) तलवार का फल । तलवार के मुड़ के ऊपर का

मुख्य भाग । (४) एक प्रकार का गहना जो मध्य भारत और भारतवाड़ में पहना जाता है ।

संज्ञा स्त्री० [सं० बडक, हिं० डका] (१) दलिया । चंगेरी । (२) फूल फल या खाने पीने की वस्तु जो दलिया में सजा कर किसी के यहाँ भेजी जाय । (३) कपड़ा और गहना जो एक दलिया में रख कर विवाह के समय घर की धोर से बाहर को दिया जाता है ।

डालना-क्रि० सं० [सं० तलन = नीचे रखना] (१) एकड़ो या ठहरी हुई वस्तु को इस प्रकार छोड़ देना कि वह नीचे गिर पड़े । नीचे गिराना । छोड़ना । फेंकना । गेरना । जैसे, ऐसी चीज क्यों हाथ में लिए हो ? उधर डाल दो ।

संयो० वि०—देना ।

मुहा०—डाल रखना = (१) किसी वस्तु को रख छोड़ना । (२) किसी काम को लेकर उसमें हाथ न लगाना । एक रखना । देर लगाना । मुजाना ।

(२) एक वस्तु को दूसरी वस्तु पर कुछ दूर से गिराना । छोड़ना । जैसे, हाथ पर पानी डालना, धूँ पर राख डालना ।

संयो० क्रि०—देना ।

(३) किसी वस्तु को दूसरी वस्तु में रखने, ठहराने या मिजाने के लिये उसमें गिराना । किसी वस्तु को दूसरी वस्तु में इस प्रकार छोड़ना जिसमें वह उसमें ठहर पा सके । स्थित या मिश्रित करना । रखना या मिजाना । जैसे, घड़े में पानी डालना, दूध में चीनी डालना, दाल में घी डालना, धूर्य में नमक डालना ।

संयो० क्रि०—देना ।

(४) घुसाना । घुसेड़ना । प्रविष्ट करना । भीतर कर देना या ले जाना । जैसे, पानी में हाथ डालना, कुएँ में डोल डालना, जेलखाने में डालना, इजारपंड डालना, सुई में डोरा डालना, बिल या सुँह में शाय डालना ।

संयो० क्रि०—देना ।

(५) परित्याग करना । छोड़ना । छोड़ खबर न लेना । मुला देना । उ०—केहि अच औगुन आगेना करि डारि दिया रे ।

—तुलसी । (६) शंकीत करना । बगाना । चिह्नित करना । जैसे, लकीर डालना, चिह्न डालना ।

संयो० क्रि०—देना ।

(७) एक वस्तु के ऊपर दूसरी वस्तु इस प्रकार फैलाना जिस में वह कुछ टक जाय । फैला कर रखना । जैसे, सुँह पर चार डालना, मेज पर कपड़ा डालना, सूखने के लिये गीली धोसी डालना ।

संयो० क्रि०—लेना ।

(८) शरीर पर धारण करना । पहनना । जैसे, कंगरा डालना ।

संयो० क्रि०—लेना ।

(१) किसी के सत्ये छोड़ना । जिम्मे करना । मार देना । जैसे, (क) तुम सब काम मेरे ही ऊपर डाल देते हो । (ख) उसका सारा खर्च मेरे ऊपर डाल दिया गया है ।

संयो० क्रि०—देना ।

(१०) गमन प्राप्त करना । पेट गिराना । (चौपायों के लिये) ।

संयो० क्रि०—देना ।

(११) कै करना । उलटी करना । यमन द्वारा निकाल देना ।

संयो० क्रि०—देना ।

(१२) (छी के) रख लेना । पत्नी की तरह रखना ।

संयो० क्रि०—लेना ।

(१३) खगाना । उपयोग करना । जैसे, किसी व्यापार में हयया डालना ।

विशेष—हस क्रिया का प्रयोग संयो० क्रि० के रूप में भी समाप्ति की ध्वनि व्यंजित करने के लिये सक्रमक क्रियाओं के साथ होता है, जैसे, मार डालना, कर डालना, काट डालना, जला डालना, दे डालना ।

डालफिन—संज्ञा स्त्री० [सं०] ह्वेल मनुष्यी का एक भेद ।

डालर—संज्ञा पुं० [सं०] अमेरिका का एक सिक्का । यह १०० सेंट या टके का होता है जो यहाँ के रुपये से तीन रुपये दे। आने के बराबर हुआ ।

डाला—संज्ञा पुं० दे० "डाला" ।

डाली—संज्ञा स्त्री० [हिं० डला] (१) ढलिया । चंगेरी । (२) फल फूल मेवे तथा और खाने पीने की वस्तुएँ जो ढलिया में सजा कर किसी के पास सम्मानार्थ भेजी जाती हैं । जैसे, बड़े दिन में सादय जोगों के पास बहुत सी ढालियाँ आती हैं ।

क्रि० प्र०—भेजना ।

मुद्दा—ढाली खगाना = ढलिया में मेवे आदि सजा कर भेजना । संज्ञा स्त्री० दे० "डाल" ।

डावड़ा—संज्ञा पुं० [देग०] पिठवन ।

संज्ञा पुं० दे० "डावरा" ।

डावड़ी—संज्ञा स्त्री० दे० "डावरी" ।

डावरा—संज्ञा पुं० [सं० डव ?] [स्त्री० डावरी] खड़का । घेडा । उ०—दावराय को डावरो सबरो प्याहे जनक कुमारी ।—रघुराज ।

डावरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० दावरा] खड़की । घेटी । कन्या । उ०—(क) डावे भए रजुवंशमथि तिमि जनक भूपति डावरी ।—रघुराज । (ख) जिन पानि गहयो हुवो मेरो तवै सव गाय उकी व्रज डावरीया ।—सुन्दरीसर्वस्व ।

डास—संज्ञा पुं० [देग०] चमारों का एक औजार जिससे चमड़े के भीतर का दूध साफ करते हैं ।

डासन—संज्ञा पुं० [सं० दस, हिं० दाम + आसन] विद्याने की चटाई, बख आदि । विद्वानन । विद्वैता । विस्तर । उ०—लोभइ शौद्रन लोभइ दासन । सिलोदर-पर जमपुर-नासन ।—तुलसी ।

डासना—क्रि० सं० [हिं० दासन] विद्याना । डालना । फैलाना । उ०—(क) निज कर दासि नागरिपु छाला । बँडे सहजहि संभु कृपाला ।—तुलसी । (ख) दासत ही गइ धीति निसा सब कबहुँ न नाथ नौद भरि सोयो ।—तुलसी ।

† क्रि० सं० [हिं० दसना] डसना । काटना । उ०—दासी वा विसासी थिय मोहु विपथर उठै आदहू पहर विपै विप की लहर सी ।—देव ।

डासनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० दासन] खाट । पलंग । चारपाई ।

डाह—संज्ञा स्त्री० [सं० दाह] जलन । झुंझा । द्रेप । द्रोह ।

क्रि० प्र०—करना ।—रखना ।

डाहना—क्रि० सं० [सं० दाहन] जलाना । सताना । टिक करना । तंग करना । उ०—काहे को मोहि दाहन आए रँति देत सुख बाको ।—सूर ।

डाहुक—संज्ञा पुं० [देग०] एक पक्षी जो टिटिहरी के आकार का होता है और जलराशियों के निकट रहता है ।

डिंगर—संज्ञा पुं० [सं०] (१) मोटा आदमी । मोटासा । (२) बुद्ध । बदमाश । ठग । (३) दास । गुलाम । नीच मनुष्य । संज्ञा पुं० [देग०] वह काठ जो नटखट चौपायों के गले में बांध दिया जाता है । टिंगुरा । उ०—कविरा माला काठ की पहिरी सुगद हुआय । सुमिरन की सुध है नहीं ज्यों डिंगर बांधी गाय ।—कबीर ।

डिंगल—वि० [सं० डिंगर] नीच । दूषित ।

संज्ञा स्त्री० राजपुताने की वह भाषा जिसमें भाट और चारण काव्य और वंशावली आदि लिखते चले आते हैं ।

डिंगसा—संज्ञा पुं० [देग०] एक प्रकार का चीड़ जिसके पेड़ खसिया पर्वत तथा चटगाँव और थरना की पहाड़ियों में बहुत होते हैं । इससे बहुत बड़िया गोंद या राल निकलती है । सारपीन का तेल भी इससे निकलता है ।

डिंडल—संज्ञा पुं० [सं० डिंडग] डिंड या टिंडली नाम की तरकारी ।

डिंडुली—संज्ञा स्त्री० [सं० डिंडग] टिंड या टिंडली नाम की तरकारी ।

डिंडिम—संज्ञा पुं० [सं०] (१) प्राचीन काल का एक राजा जिस पर चमड़ा मड़ा होता था । डिमडिमी । हुगडुगिया । (२) करौदा । कृष्णपाक फल ।

डिडिमी—संज्ञा स्त्री० दे० "डिडिम" ।

डिडिर—संज्ञा पुं० [सं०] (१) समुद्रपेल । (२) पानी का भाग ।

डिडिरमोदक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) शृंगन । गाजर । (२) खड्डुन ।

डिडिशा—संज्ञा पुं० [सं०] डिंड या डिंडली नाम की सरकारी ।
डेंडली ।

डिंड—संज्ञा पुं० [सं०] (१) हलचल । पुकार । यापैला । भयपथि ।
(२) दंगा । लड़ाई । (३) घेडा । (४) फेकड़ा । फुलकुस ।
(५) प्लीहा । पिलदी । (६) कीड़े का छोटा बच्चा ।

डिंडाहय—संज्ञा पुं० [सं०] सामान्य युद्ध । ऐसी लड़ाई जिसमें
राजा खादि सम्मिलित न हों ।

डिंडिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मदमाती स्त्री । (२) सोलापाठा ।
श्यानाक ।

डिंडि—संज्ञा पुं० [सं०] (१) बच्चा । छोटा बच्चा । व०—अथ व,
हैं डिंडि, सो न युष्मि विलंघ्य चय चयलंय नार्हो धान शरत्त
होँ तैरिपे ।—तुलसी । (२) मूखे वा जड़ अनुप्य ।

डिंडा पुं० [सं० दम्भ] (१) आडंबर । पारदर्श । (२)
अभिमान । धमंड ।

डिंडमक—संज्ञा पुं० [सं०] बच्चा । छोटा बच्चा ।

डिंडिया—वि० [सं० दम्भ, हिं० डिंडि] (१) आडंबर रचनेवाला ।
पारदर्शी । (२) अभिमानी । धमंडी ।

डिंडामाली—संज्ञा स्त्री० [दे०] एक पेड़ जो मध्य भारत तथा
दक्षिण में होता है । इसमें से एक प्रकार की मोदू या राख
निकलती है जो होंग की तरह श्मी रोग में दी जाती है ।
इसके खाने से प्रायः जल्दी सूखता है और उस पर मच्छिका
नहीं बैठती ।

डिंडी—संज्ञा स्त्री० [हिं० पका] (१) सीमेंट का पक्का (जैसा मेडे
देते हैं) । (२) ऋषट । धार । प्राक्रमण ।

डिंडेटोडान—संज्ञा पुं० [सं०] यह वाक्य जो लिखने के लिये बोला
जाय । हुंमवा ।

डिंडी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) आज्ञा । हुक्म । फरमान । (२)
न्यायालय की यह आज्ञा जिसके द्वारा लड़नेवाले पक्षों में से
किसी पक्ष को किसी संपत्ति का अधिकार दिया जाय ।

विशेष—दे० "डिंडी" ।

डिंडानरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] शम्भुकोथा ।

डिंडाना—क्रि० अ० [सं० टिक = रिखना बोलना] (१) हिलना ।
टलना । खसकना । हटना । सरकना । जगह छोड़ना । जैसे,
वस भारी पथर को कई आदमी बढाने गए पर वह जरा भी
न हिला ।

संयो० क्रि०—जाना ।

(२) किसी बात पर स्थिर न रहना । प्रतिज्ञा छोड़ना ।

संक्रय या सिद्धांत पर दृढ़ न रहना । बात पर जमा न
रहना । विचलित होना ।

संयो० क्रि०—जाना ।

डिंडरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) विधविद्यालय की परीक्षा में
हथौथे होने की पदवी ।

क्रि० प्र०—मिजना ।—लेना ।

(२) बंध । कला । समझौते का २-भाग ।

संज्ञा स्त्री० [सं० डिंडे] अदालत का यह कैमला जिसके
जुरिये से किसी फरीक को कोई दफ्तर मिजला है । न्यायालय
की यह छाया जिसके द्वारा लड़नेवाले पक्षों में से किसी
को कोई स्वयं या अधिकार प्राप्त होता है । जैसे, वस मुकदमे
में इसकी डिंडरी होगाई ।

धा०—डिंडरीदार ।

मुद्दा०—डिंडरी जारी कराना = फैसले के मुताबिक किसी जय-
दाद पर कब्जा परोसू करने की कार्यवाई कराना । न्यायालय के
नियमों के अनुसार किसी संघर्ष पर अधिकार करने का उपाय
करना । डिंडरी देना = अभियोग में किसी के पक्ष में नियुक्त
करना । फैसले के जरिये से दफ्तर फायम करना । डिंडरी पाना =
खतने पक्ष में न्यायालय की आज्ञा प्राप्त करना । सर डिंडरी =
वह बच्चा जो अदालत एक फरीक से दूसरे फरीक को दिखाने ।

डिंडरीदार—संज्ञा पुं० [सं० डिंडे + का० दार] वह जिसके पक्ष में
अदालत की डिंडरी हुई हो ।

डिंडिया—संज्ञा पुं० [दे०] एक विधिवा का नाम ।

डिंडाना—क्रि० सं० [हिं० डिंडाना] (१) हटाना । खसकाना ।
जगह से उतारना । सरकाना । हिलाना ।

संयो० क्रि०—देना ।

(२) बात पर जमा न रहना । किसी संक्रय या सिद्धांत पर
स्थिर न रहना । विचलित करना ।

संयो० क्रि०—देना ।

डिंडी—संज्ञा स्त्री० [सं० दीपिक, बँग० दीपी = बावली या तख्त]
तावाप । पोखरा । बावली, जैसे, लावडिंडी ।

† संज्ञा स्त्री० [दे०] हिंस्रत । साहस । जिगर ।

डिंडेकिटव—संज्ञा पुं० [सं०] जातूस । मुलखिर । गुलखर । भेदिया ।

धा०—डिंडेकिटव पुलिस = यह पुलिस जो टिप कर मामलों का
पता लगावे । छुफिना पुलिस ।

डिंडार—वि० [हिं० थंड = नजर] धारितवाला । देखनेवाला । जिसे
सुझाई दे ।

डिंडियारा—वि० [हिं० दीडि + आरा (भय०)] [स्त्री०, डिंडियारी]
दृष्टिवाला । देखनेवाला । धारितवाला । जिसकी धारिस से चूके ।

४०—गुलसी स्वारय सायुधो परमारय तन पीठि । अंध कहे हुल पाहै डिठियारो केहि छीठि ।—गुलसी ।

डिटोहरी—संज्ञा स्त्री० [हि० कौठि + इत्ना] एक जंगली पेड़ के फल का धीज मिले तामे में भिरो कर बच्चों के गले में बन्दे नजर से बचाने के लिये पहनाते हैं ।

विशेष—दे० "नजरबट्ट" या "नजरबट्ट" ।

डिटौना—संज्ञा पुं० [हि० टौठ] काजल का टीका जिसे लड़कों के मस्तक पर नजर से बचाने को खियाँ लगा देती हैं । ४०—
(क) पहिरायो पुनि बसन रंगीला । दीन्हा भाल डिटौना नीला ।—रघुराज । (ख) सखि कंजन को परम सखीना भाल डिटौना देहीं । मनु पंकज कोना पर बँडो अखि छौना मधु लेहीं ।—रघुराज ।

डिडका—संज्ञा स्त्री० [सं०] मुहँसा ।

डिडई—संज्ञा पुं० [दे०] एक प्रकार का घान जो अगहन में तैयार होता है ।

डिडूवा—संज्ञा पुं० [दे०] डिडई नाम का घान जो अगहन में तैयार होता है ।

डिडू—वि० [सं० दड्] पक्का । मजबूत ।

डिडाना—क्रि० सं० [हि० डिड] (१) पक्का करना । मजबूत करना । (२) अन्नना । निश्चित करना । मन में दड् विचार करना ।

डिट्या—संज्ञा स्त्री० [दे०] अत्यंत लालच । लालसा । कामना । मृषा । ४०—सोमह करने की लालसा प्रथज हुई । तो जेरी से, चोरी से, छल से सुरामद से कमाने की दिङ्मा पड़ेगी और खाने लचने के नाम से जान निकल जायगी ।—
धृतिवासदास ।

डिरध—संज्ञा पुं० [सं०] (१) काठ का बना हाथी । (२) विशेष लचणोपाला पुरय ।

विशेष—साँबले, सुंदर, युवा और सर्वसाधनेवा विद्वान् पुरुष को दिव्य कहते हैं ।

डिपटी—संज्ञा पुं० [सं० डिप्टे] नायब । सहायक । सहाकारी । जैसे, डिपटी कब्रकूर, डिपटी पोस्टमास्टर, डिपटी इंस्पेक्टर ।

डिपानिट्ट—संज्ञा पुं० [सं०] धरोहर । अमानत । सहवील ।

डिपार्टमेंट—संज्ञा पुं० [सं०] सुदकमा । सरिता । विभाग ।

डिपो—संज्ञा स्त्री० [सं०] गुदाम । अमानतखाना । जखीरा । भांडार । जैसे, बुक डिपो ।

डिलोमा—संज्ञा पुं० [सं०] विद्यार्थिनी योग्यता का प्रमाणपत्र । सनद् ।

डिलिया—संज्ञा स्त्री० [हि० शिन्धा] यह छोटा दहनदार बरतन जिसके ऊपर दहन अच्छी तरह जम कर बैठ जाय और जिसमें रखी हुई चीज दिलाने छुलाने से न गिरे । छोटा दिग्घा । छोटा संघुट । जैसे, सुरती की डिलिया ।

डिलिया टंगड़ी—संज्ञा स्त्री० कुरती का एक पेच जो उस समय किया जाता है जब जोड़ू (विपरी) कमर पर होता है और उसका दहना हाथ कमर में लिपटा होता है । इसमें विपरी को दहने हाथ से जोड़ू का बायाँ हाथ कमर के पास से दहने जाय तक लीचते हुए और बाएँ हाथ से लँगोट पकड़ते हुए बाएँ पैर से भीतरी टाँग मार कर गिराते हैं ।

डिये चार—संज्ञा पुं० [सं०] (१) यह कागज या दस्तावेज जिसमें कोई अफसर किसी कंपनी या स्टुनिसिपैलिटी आदि के लिए हुए श्रय को स्वीकार करता है । श्रय-स्वीकार पत्र । (२) मात्र की रफूनी को महसूल का रजना । परमट का वलीका । घहती ।

डिद्या—संज्ञा पुं० [तैलंग वा सं० दिग = गोसा] (१) यह छोटा दहनदार बरतन जिसके ऊपर दहन अच्छी तरह जम कर बैठ जाय और जिसमें रखी हुई चीज दिलाने छुलाने से न गिरे । संघुट । (२) रेलगाड़ी की एक गाड़ी । (३) पसली के दुई की बीमारी जो प्रायः बच्चों को हुआ करती है । पवई पखने की बीमारी ।

डिभगना—क्रि० सं० [दे०] मोहित करना । मोहना । छलना । दहनना । ४०—दुरजोषण धर्मिमानहि सयज । पंडव पैर मरम नहि भयज । माया केडिभये सय तामा । उत्तम मध्यम बाजन याजा ।—कथीर ।

डिम—संज्ञा पुं० [सं०] नाटक वा हरय काव्य का एक भेद जिसमें माया, इंद्रजाल, लड़ाई और मोक्ष आदि का समावेश विशेष रूप से होता है । यह रीद्र-रस प्रधान होता है और इसमें चार श्रेक होते हैं । इसके नायक देवता गंधर्व अथवा आदि होते हैं । भूतों और पिशाचों की लीजा इसमें दिखाई जाती है । इसमें शांति, शृंगार और हास्य ये तीनों रस न धरते चादिपे ।

डिमडिमो—संज्ञा स्त्री० [सं० डिडिम] चमड़ा मड़ा हुआ एक जात जो लकड़ी से बनाया जाता है । हुयडुगिया । हुगी । ४०—डिमडिमो पड्डे डोल डफ पीणा मृदंग वणंग चंगतार ।—सूर ।

डिमरेज—संज्ञा पुं० [सं०] शंकरगाढ़ में जहान के उपद्रा दहनने का हज्रा । (२) स्थान पर भाप हुए मात्र के अधिक दिन पड़े रहने का हज्रा जो पानेवाले को देना पड़ता है ।

क्रि० प्र०—लगना ।

डिमार्द—संज्ञा स्त्री० [सं०] कागज वा दुगने की कल की एक नाप जो १८ × १२ इंच होती है ।

डिट्टा—संज्ञा पुं० [दे०] एक प्रकार की घास जो गीली भूमि में बढ़कर होती है । मोया ।

संज्ञा पुं० [सं० दल] जन का लक्ष्य ।
दिलिवरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] डाकघरों में भाई हुई चिट्ठियों,
पासलों मनीआर्डरों की बँटाई जो नियत समय पर
होती है ।

दिल्लु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक छंद जिसके प्रत्येक चरण में
१६ मात्राएँ और अंत में भगव्य होता है । उ०—राम नाम
निसि वासर गावहु । जन्म लेन कर फल जग पावहु ॥ सीख
हमारी जो हिय लावहु । जन्म मरण के फंद नसावहु । (२)
एक वर्षवृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में दो सपाय
(॥६) होते हैं । इसके ध्वन्य नाम तिलका, तिछा और
तिछाना भी हैं । उ०—सखि बाल हारो । शिव भाळ घरो ॥
धमरा हरपे । तिलका निरखे ।
संज्ञा पुं० [हि० टोला] बेलों के कंधे पर उठा हुआ कूपड़ ।
धुव्या । कङ्करप ।

डिस्ट्रिब्यूट करना-कि० सं० [सं०] छापेलाने में कंपोत्र किए
हुए राहों (पत्रों) को कसें (खानों) में अपने अपने स्थान
पर रखना ।

डिसमिस-वि० [सं०] (१) धरलाख । (२) खारिज, जैसे,
अपील डिसमिस करना ।

डिहरी-संज्ञा स्त्री० [दे०] ६००० गाँवों का एक मान जिसके
अनुसार कालीना (मालीची) का दाम लगाया जाता है ।
संज्ञा स्त्री० [सं० दार्प, हिं० दीह, टोह] कच्ची मिट्टी का ऊँचा
यातन जिसमें अनाज भरा जाता है ।

डोंग-संज्ञा स्त्री० [सं० टोङ = उड़ान] लंबी चौड़ी यात । खप पड़
पड़ कर कही हुई यात । अपनी बजाई की सूजी यात ।
अभिमान की यात । शेरूटी । लिट्ट ।

डि० प्र०—उड़ाना ।—मारना ।—हर्कना ।
मुहा०—डोंग की लेना = शेरूटी बपारना ।

डीक-संज्ञा स्त्री० [दे०] मिछी या फाफरी जो श्राव पर पड़ जाती
है । जाला । मोतिघाबिंद ।

डोकरी*—संज्ञा स्त्री० [सं० डिक] बेंटी । कल्या । (हिं०)
डीठ-संज्ञा स्त्री० [सं० दृष्टि०, प्रा० दिष्टि, दिष्टि] (१) दृष्टि । नजर ।
निगाह ।

डि० प्र०—डालना ।—पतारना ।
मुहा०—डीठ बुराना = नजर दिखाना । सामने न ताकना ।
डीठ खिजाना = दे० "डीठ चुगाना" । डीठ जोड़ना । = चार
श्रावें करना । सामने ताकना । डीठ बांधना = नजरबंद करना ।
ऐसी भाषा या जादू करना जिसमें सामने की वस्तु ठीक ठीक न
रहे । डीठ मारना = नजर डालना । चितवन से चित मेहिंद
करना । डीठ रखना = नजर रखना । देख रख रखना ।
निराच्छन्न रखना । डीठ लगाना = नजर लगाना । किसी
अर्चुं वस्तु पर अपनी दृष्टि का बुरा प्रभाव डालना ।

धी०—धीदंबध ।
(२) देखने की शक्ति । (३) ज्ञान । सूक्ष्म । उ०—दूई फोदि
चिनु डीठि हँ, पू विरय-विज्ञोचन ।—गुलसी ।

डीठना [हिं० कि० अ० [हिं० टोठ + ना (प्रत्य०)] दिखाई देना ।
दृष्टि में धराना ।

डीठवंध-संज्ञा पुं० [सं० दृष्टिबंध] (१) ऐसी माया या जादू
जिससे सामने की वस्तु ठीक ठीक न मुभाई दे । नजरबंदी ।
इंद्रजाल । (२) कुछ का कुछ कर दिखानेवाला । इंद्रजाल
करनेवाला । जादूगर ।

डीठि—संज्ञा स्त्री० दे० "डीठ" ।
डीठिमूठि—संज्ञा स्त्री० [हिं० टोठि + मूठ] नजर । टोना । जादू ।
उ०—रोवनि धोवनि धनखनि धनरनि दिठिमूठि निठुर
नसाइहीं ।—गुलसी ।

डीन-संज्ञा स्त्री० [सं०] उड़ान । परिशों की गति ।
विशेष—ऊपर नीचे खादि इसके २६ मंद किए गए हैं ।

डीनुध्रा—संज्ञा पुं० [दे०] पैसा । उ०—बनुध्रा न धवा मोर
भैयन न पावा याक तुपक को न छाया गादि डीनुध्रा न
धवा है ।—सूदन ।

डीमडाम-संज्ञा पुं० [सं० डिब = भूम भ्रम] (१) ठाट । फूँट । तपाक ।
ठसक । शहंकार । उ०—पाग पेंच पेंच देँ खपेट फट फँट
पांघ पड़े पड़े धाय पैने दूटे डीमडाम के ।—दृश्यराम ।
(२) भ्रम धाम । ठाट याट । धाँवर । उ०—दूदुमी बजाई
डोल ताल करानाई बड़े ऊपम मचाइ छल कनी डीमडाम
के ।—दृश्यराम ।

डील-संज्ञा पुं० [हिं० टोला] (१) प्राणियों के शरीर की डँचाई ।
शरीर का विस्तार । कद । उठान । जैसे, वह छोटे डील का
धादमी है ।

धी०—डील डील = (१) देह का लंबाई चौड़ाई । शरीर-
विस्तार । (२) शरीर का ढोला । आकार । आकृति । घाटी ।
(३) शरीर । जिसमें । देह । जैसे, (क) अपने डील से उसने
हवने रुपए पैदा किए । (ख) इनके डील से किसी की
धुराई नहीं हो सकती । (३) व्यक्ति । प्राणी । मनुष्य । जैसे,
सौ डील के लिये भोजन चाहिए । उ०—जेते डील तेते हाथी,
तेतेई खंवाल साधी, कंचन के कुंडल किरटी पुंन छुपी
है ।—दृश्यराम ।

डीला-संज्ञा पुं० [दे०] एक प्रकार का शरकट जो प्रायः परिचमो-
त्तर भारत में पाया जाता है ।

डीह-संज्ञा पुं० [प्रा० देह] (१) गाँव । बग्यादी । वस्ती । (२)
उमड़े हुए गाँव का टीला । (३) प्राय-श्वेतता ।

डीहदारी-संज्ञा स्त्री० [हिं० डीह + दारी] एक तरह का हक
जो उन अमीरों को मिलता है जो अपनी जमीन में चक बाजते
हैं । खरीदार उनको गाँव का कोई अंश देता है जिससे उन
का निर्वाह हो ।

दुर्गा-संज्ञा पुं० [सं० दुर्ग=कैला] (१) डेर । अटला । उ०—
पत्नीं स्वयं अस्मक भाववहुं न आग युष्माय । उच्छिं पत्र
जर्जरुंग वे धूम रहो अग छाया ।—जापसी । (२) टीला ।
भीटा । पहाड़ी ।

दुर्गा-संज्ञा पुं० [सं० दुर्ग] हूँट । पेड़ों की सूखी ढाल जिसमें पत्ते
आदि न हों । उ०—देव नू अन्नंग अंग होमि कै भसम संग
अंग अंग उमहयो अलवर अनीं हुँड मैं ।—देव ।

दुर्ग-संज्ञा पुं० दे० "दुर्गम" ।

दुर्गम-संज्ञा पुं० [सं०] पानी में रहनेवाला साँप जिसमें बहुत
कम विष होता है । डेढ़ा साँप । डगोड़ा साँप ।

दुर्गल-संज्ञा पुं० [सं०] छोटा उखल ।

दुर्क-संज्ञा पुं० [अनु०] घूँसा । सुका ।

दुर्किया-संज्ञा स्त्री० दे० "दोकिना" ।

दुर्कियाना-कि० सं० [हिं० दुर्क] घूँसों से मारना । घूँसा खगाना ।

दुर्गदुर्गाना-कि० सं० [अनु०] किसी चमड़ा-मड़े घाने को
लकड़ी से पजाना ।

दुर्गदुर्गी-संज्ञा स्त्री० [अनु०] चमड़ा मड़ा हुआ एक छोटा बाग ।
होती । दुर्गी ।

कि० प्र०—बजाना ।

मुद्गा—दुर्गदुर्गी पीठना—डौंड़ी बना कर घेरित करना । मुनादी
करना । चोरी चोर प्रकट करना ।

दुर्गी-संज्ञा स्त्री० दे० "दुर्गदुर्गी" ।

दुर्गा-संज्ञा पुं० [सं० दादुर] मेंढक ।

दुर्गका-संज्ञा पुं० [देग०] धान के पौधों का एक रोग ।

दुर्गदुर्गा-संज्ञा पुं० [हिं० दुर्ग] सेत में देर नाखियों (हथैलें) के
बीच की मेंढ ।

दुपटनार्-कि० सं० [हिं० दो + पट] चुनना । चुनियाना । उ०—
अन्वहाइ तन पहिराइ भूपन बसन सुंदर दुपटके को ।—
विधाम ।

दुपट्टा-संज्ञा पुं० "दुपट्टा" ।

दुबकी-संज्ञा स्त्री० [हिं० दुबना] (१) पानी में डूबने की क्रिया ।
डूबनी । गोता । डुबकी ।

कि० प्र०—खाना ।—देना ।—मारना ।—खगाना ।—खेना ।

मुद्गा—दुबकी मारना या खगाना = गायब हो जाना ।

(२) पीठी की बनी हुई बिना तली बरी जो पीठी ही की कढ़ी
में डूबा कर रखी जाती है । (३) एक प्रकार का घटेर ।

दुबवाना-कि० सं० [हिं० दुबना का भे०] डूबाने का काम
कराना ।

दुबाना-कि० सं० [हिं० दुबना] (१) पानी या और किसी द्रव
पदार्थ के भीतर डालना । अमग करना । गोता देना । पारना ।

(२) चौपट करना नष्ट करना । सत्यानास करना । परबाद
करना ।

मुद्गा—नाम डूबाना = नाम को फलौकित करना । यश को
विगाड़ना । किसी कर्म या वृत्ति के द्वारा प्रतिष्ठा नष्ट करना ।
मर्यादा खोना । श्रुतिया डूबाना—महत्त्व खोना । बर्बाद न रखना ।
प्रतिष्ठा नष्ट करना । बंश डूबाना—बंश की मर्यादा नष्ट करना ।
फुल की प्रतिष्ठा खोना ।

दुबाव-संज्ञा पुं० [हिं० दुबना] पानी की हतनी गहराई जितनी
में एक मनुष्य डूब जाय । डूबने भर की गहराई । जैसे, यहाँ
हाथी का डूबाव है ।

दुबोना-कि० सं० दे० "दुबोना" ।

दुबो-संज्ञा स्त्री० दे० "दुबकी" ।

दुबकौरी-संज्ञा स्त्री० [हिं० दुबना, दुबकी + बरी] पीठी की बिना
तली बरी जो पीठी ही के भोल में पकाई और डूबा कर रखी
जाती है । उ०—चौराई तोराई तोराई सुरद सुरब्या भारी
जी । दुबकौरी मुँगवारी रिकवड़ हँदर धीर हँदौरी
जी।—रघुनाथ ।

दुमई-संज्ञा स्त्री० [देग०] एक प्रकार का पायल जो कढ़ार में
होता है ।

दुलना-कि० सं० दे० "दोलना" । उ०—मंद मंद मँगल
मंत्रंग लौं चलेई भले भुजन समेत भुजभूपन डलत
जात ।—पद्माकर ।

दुलाना-कि० सं० [हिं० दोलना] (१) हिलाना । चलाना । गति
में लाना । चलाना करना । जैसे, पंखा डुलाना । (२)
हटाना । भगाना । उ०—कारे भए करि कृप्य को प्यल
दुलाएँ ते काहू के डोलत ना ।—सुंदरीसर्वस्व । (३)
चलाना । फिराना । घुमाना । टहलाना ।

दुलि-संज्ञा स्त्री० [सं०] कमठी । कहुई । कच्छपी ।

दुली-संज्ञा स्त्री० [सं०] चिल्ली साग । लालपत्ती का वधुआ ।

दुँगर-संज्ञा पुं० [सं० दुंग = पहाड़ी] (१) टीला । भीटा । दूह ।
उ०—सुरदास प्रभु रसिक शिरोमणि कैसे दुरत दुराय कई ।
जौं दुँगरन की शोट सुमेर ।—सूर । (२) छोटी पहाड़ी ।
उ०—छिगही में मन धोइ बहावै । दुँगर को कहुँ नायै
न पावै ।—सूर ।

दुँगरफल-संज्ञा पुं० [हिं० दुँगर + फल] बंदाल का फल । देव-
दाली का फल जो बहुत कटुधा होता है और सरदी में
घोड़ों को खिलाया जाता है ।

दुँगरी-संज्ञा स्त्री० [हिं० दुँगर] छोटी पहाड़ी ।

दुँगा-संज्ञा पुं० [सं० द्रोग] (१) चम्मच । चमचा । (२) एक
लकड़ी की नाँव । डौगा । (लश०) । (३) रस्ते का गोल
खपेटा हुआ लकड़ा । (लश०) ।

संज्ञा पुं० [देग०] संगीत की २४ शोभाओं में से एक ।

दुँजा-संज्ञा स्त्री० [देग०] चाँची । सेज हवा । (हिं०)

हुई वह भूमि जो घास के कई शाखाओं में विभक्त होने के कारण तिकोनी होती है ।

डेला-संज्ञा पुं० [सं० दल] डेला । रोड़ा । अंगुल का सफेद उभरा हुआ भाग जिसमें पुतली होती है । अंगुल का कोया ।
संज्ञा पुं० [हिं० डेलना] वह काठ जो नरखट चौपायों के गले में बांध दिया जाता है । टेंगुर ।

डेल्लेगेश-संज्ञा पुं० [सं०] वह प्रतिनिधि जो किसी सभा में किसी स्थान के निवासियों की ओर से मत देने के लिये भेजा जाय ।

डेलिया-संज्ञा पुं० [दे०] एक पौधा जो फूलों के लिये लगाया जाता है । इसका फूल लाल या पीला होता है ।

डेली-संज्ञा स्त्री० [हिं० डला] डलिया । घास की मॉपी । उ०—
बँधिया सुधा करत सुख केली । चूरि पाँख मेलेसि धरि डेली ।—जायसी ।

डेवड़ा-वि० [हिं० डेवड़ा] डेवड़ुना । डेवड़ा । उ०—सुर सेनप वर बहुत उद्याह । विधि ते डेवड़ु सुलोचन जाह ।—मुलसी ।
‡ संज्ञा स्त्री० तार । सिलसिला । क्रम ।

क्रि० प्र०—लगना ।

डेवड़ना-क्रि० अ० [हिं० डेवड़ा] (१) अर्ध पर रखी हुई रोटी का फूलना । (२) कपड़े को मोड़ना । कपड़े की तरह लगाना ।

डेवड़ा-वि० [हिं० डेड़] थापा श्रीर अधिक । किसी पदार्थ से उसका थापा श्रीर ज्यादा । डेड़गुना ।

संज्ञा पुं० (१) ऐसा तंग रास्ता जिसके एक किनारे ढाड़ या गड़वा हो । (पालकी के कहार) । (२) गाने में यह स्वर जो साधारण से कुछ अधिक ऊँचा हो । (३) एक प्रकार का पहाड़ जिसमें क्रम से श्रंखों की डेड़गुनी संख्या बतलाई जाती है ।

डेवड़ी-संज्ञा स्त्री० दे० “हयोड़ी” ।

डेवलप करना-क्रि० अ० [सं० डेवलप + हिं० करना] प्रोद्योगिकी में प्लेट को मसाले मिले हुए जल से धोना जिसमें श्रिकित चित्र का आकार स्पष्ट हो जाय ।

डेस्क-संज्ञा पुं० [सं०] लिखने के लिये छोटा डालुआ मेज ।

डेहरी-संज्ञा स्त्री० [सं० देहरी] दरवाजे के नीचे की बठी हुई जमीन जिस पर चौखट के नीचे की लकड़ी रहती है । दहलीज । लतमर्दा ।

‡ संज्ञा स्त्री० [हिं० देह] अन्न रखने के लिये कच्ची मिट्टी का ऊँचा बरतन ।

डेहल-संज्ञा पुं० [सं० देहली] देहली । दहलीज ।

डेगाना-संज्ञा पुं० [हिं० डग] काठ का लंबा टुकड़ा जो नरखट चौपायों के गले में इसलिये बांध दिया जाता है जिसमें वे अधिक भाग न सकें । टेंगुर । लंगर ।

डेना-संज्ञा पुं० [सं० डयन = उड़ना] चिड़ियों का वह फैलने और सिमटनेवाला श्रेण जिससे वे हवा में उड़ती हैं । पंख । पक्ष । पर । भाजू ।

डेम-संज्ञा पुं० [सं०] एक अंगरेजी गाली । अमगा । नारकी । सखानारपी ।

डेरा-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का अंगरेजी विराम-चिह्न जिसका प्रयोग कई उद्देश्यों से किया जाता है । यदि किसी वाक्य के बीच डेरा देकर कोई वाक्य लिखा जाता है तो उस वाक्य का व्याकरण संबंध मुख्य वाक्य से नहीं होता । जैसे, जो शब्द बोलचाल में आते हैं—चाहे वे फारसी के हों, चाहे धरयी के, चाहे अंगरेजी के—उनका प्रयोग सुरा नहीं कहा जा सकता । डेरा का चिह्न इस प्रकार— \sim का होता है ।

डेंगर-संज्ञा पुं० [सं० डंग = पहाड़ी] [स्त्री० अरण्य डेंगरी] पहाड़ी । टीला । भीटा । उ०—(क) एक चूक विप ज्वाल के जलडोंगर जरि जाहि ।—सूर । (ख) डोंगर के बल उनहिं बतारै । ता पाधे भ्रम रोदि बहाऊँ ।—सूर । (ग) विप्र विचित्र विविध रूप डोलत डोंगर डोंग । अनु पुर वीथिनि विद्वरत धैल सँवारै स्वांग ।—मुलसी ।

डेंगा-संज्ञा पुं० [सं० डेण] [स्त्री० अरण्य डेंगी] (१) विना पाल की नाँव । (२) नाँव ।

डेगी-संज्ञा स्त्री० [हिं० डेंग] (१) विना पाल की छोटी नाँव । (२) छोटी नाँव । (३) वह बरतन जिसमें लोहार लोहा लाल करके बुकाते हैं ।

डेड़ा-संज्ञा पुं० [सं० डेड] (१) यड़ी । हलायची । (२) डोंटा । कारवूस । उ०—चंद्रवायु सत्रपै विराजे । शयु हने सोइ धचे शु भागे । भरि बंदूक अघाह छोड़े । हतने उदिय होय तप छोड़े ।—हनुमान ।

डेडी-संज्ञा स्त्री० [सं० डेड] (१) पोस्ते का फल जिसमें से अफीम निकलती है । (२) अमरा खूँह । डेंटी ।

संज्ञा स्त्री० [सं० डेण] डेंगी । डेंटी नाँव ।

संज्ञा स्त्री० दे० “डेडी” ।

डेई-संज्ञा स्त्री० [हिं० डेकी] काठ की डाँड़ी की बड़ी करड़ी जिससे कड़ाह में दूध, घी, चारानी आदि बत्ताते हैं । (यह पास्तब में लोटे या पीतल का एक कटोरा होता है जिसमें काठ की लंबी डाँड़ी खड़े थल लगी रहती है) ।

डेक-संज्ञा पुं० [दे०] छुहारा जो पक कर पीला हो जाय । पकी हुई खजूर ।

डोकर-संज्ञा पुं० दे० “डोकरा” ।

डोकरडोई-संज्ञा पुं० दे० “डोकरा” ।

डोकरा-संज्ञा पुं० [सं० डुकर, प्रा० डुकर] [स्त्री० डेकी] (१) बुड़ा आदमी । अशक और बूढ़ मनुष्य । † (२) पिला । थाप ।

ढोकरीया—संज्ञा स्त्री० दे० "ढोकरी" ।

ढोकरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० ढेका] बुड्डी स्त्री ।

ढोकरी—संज्ञा पुं० दे० "ढोकरा" ।

ढोका—संज्ञा पुं० [सं० ढ्रोगक] काठ का छोटा धरतन या कटेरा जिसमें सेज, धटना आदि रखते हैं ।

ढोकिया—संज्ञा स्त्री० [हिं० ढेका] काठ का छोटा कटेरा या धरतन जिसमें सेज, धटना आदि रखते हैं ।

ढोही—संज्ञा स्त्री० [हिं० ढेका] काठ का छोटा धरतन या कटेरा जिसमें सेज, धटना आदि रखते हैं ।

ढोगर—संज्ञा पुं० दे० "ढोंगर" ।

ढोज—संज्ञा स्त्री० [सं०] मात्रा । शुरुक । मोताद ।

ढोड्ढी—संज्ञा स्त्री० [हिं० ढडा + ढाय] तबवार । (डि०)

ढोड्ढा—संज्ञा पुं० [सं० डंडम] पानी में रहनेवाला सर्प ।

ढोड़ी—संज्ञा स्त्री० [देग०] एक लता जो शीशय के काम में आती है । वैद्यक के अनुसार यह मधुर, शीतल, नेत्रों को हितकारी, त्रिदोषनाशक और वीर्यवर्द्धक मानी जाती है । इसे जीवंती भी कहते हैं ।

ढोडो—संज्ञा पुं० [सं०] एक चिटिया जो भय नहीं मिळती । यह मारिसस (मिरिच के) दारू में जुलाई १९६१ तक देवी गई थी । इसके चित्र धूप के भिन्न भिन्न स्थानों में रखे मिळते हैं । सन् १९६९ में इसकी बहुत सी हड्डियाँ पाई गई थीं । ढोडो भारी और बेहोने शरीर की चिटिया थी । दीब दौल में बचप के परापर होती थी, न अधिक बड़ सकती थी, न थीर किसी प्रकार धपना बचाव कर सकती थी । यूरोपियनों के यतने पर इस दीन पची का समूह मात्र हो गया ।

ढोब—संज्ञा पुं० [हिं० ढुबना] हुयाने का भाव । गोता । डुबकी ।
मुहा०—ढोब देना = गोता देना । हुयाना । जैसे, कपड़े को रंग में ढो लीन ढोब देना, कलम को स्पाही में ढोब देना ।

ढोबा—संज्ञा पुं० [हिं० ढुबना] गोता । डुबकी ।
मुहा०—ढोबा देना या भरना = हुयाना । गोता देना । जैसे, कपड़े को रंग में ढोबा देना, कलम को स्पाही में ढोबा देना ।

ढोभरी—संज्ञा स्त्री० [देग०] ताजा महुआ ।

ढोम—संज्ञा पुं० [सं० दम] [श्री० डेमिन, डेमनो] (१) एक घट्टरय मीच जाति जो पंजाब से केकर बंगाल तक तारे बचतीय भारत में पाई जाती है । स्मृतियों में इस जाति का वर्णन नहीं मिळता । केवल मत्स्यपुराण में ढोमों को घट्टरय लिखा है । कुछ लोगों का मन है कि ये ढोम यौद्ध हो गए थे और इस धर्म का संस्कार इनमें व्यव तब थाकी है । इसमें कोई संदेह नहीं कि किसी समय यह जाति प्रबल हो गई थी, और कई स्थान ढोमों के स्मिन्कार में था गपू ये । गोरखपुर

के पास डोमनगढ़ का किला डोम राजाओं का बनवाया हुआ था । परमप मह जाति प्रायः निकृष्ट कर्मों ही के द्वारा धपना निर्वाह करती है । शमशान पर शव जलाने के लिये धाम देना, ऊपर का कफन लेना, सूय खजे आदि वैचन्य काम कल ढोमों का काम है । पंजाब के डोम कुछ इनसे भिन्न होते हैं और जंगलों से फल थार जड़ो बूटी काकर घेचते हैं । (२) एक नीच जाति जो मंगल के धयसरो पर लोगों के यहाँ जाती बनाती है । दाढ़ी । मीरासी ।

डोम कीआ—संज्ञा पुं० [हिं० डोम + कीआ] बड़ी जाति का कौआ जिसका सारा शरीर काला होता है ।

डोमड़ा—संज्ञा पुं० दे० "डोम" ।

डोमतमोटा—संज्ञा पुं० [देग०] एक पहाड़ी जाति जो फोतल लिये आदि का काम करती है ।

डोमनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० डोम] (१) डोम जाति की स्त्री । (२) डोम की स्त्री । (३) इस मीच जाति की स्त्री जो ढसचों पर गाने बजाने का काम करती है । ये स्त्रियाँ गाने बजाने के अतिरिक्त कहीं कहीं वेरवायुति भी करती हैं ।

डोमा—संज्ञा पुं० [देग०] एक प्रकार का सर्प ।

डोमिन—संज्ञा स्त्री० [हिं० डोम] (१) डोम जाति की स्त्री । (२) मीरासियों की स्त्री । दे० "डोमनी" । उ०—नडिमि डोमिन बाङ्गिनी सडनापन परकार । निरतत नाद विनेड सेाँ विहँसत खेळत मार ।—जायसी ।

डोर—संज्ञा स्त्री० [सं०] डोरा । तागा । धागा । रस्ती । सूत । उ०—थीठि डोर, मैना दही धिरिक रूप रस रोप । मयि मो घट मीतम लियो मन नबनीत बिलोय ।—रसनिधि ।

मुहा०—डोर पर बगाना = रास्ते पर जाना । प्रयोजन-विधि के धनकूल फलना । दब पर जाना । प्रवृत्त करना । परचाना । डोर भरना = कापड़े के किनारे वेाँ कुछ मीड कर उसके भीतर तागा भर कर घंटा । पंतीला धगधना । डोर मजबूत होना = जीवन का सुख हट होना । जिं दग्गे थाकी रहना । डोर होना = मुख्य होना । मोहित होना । बटू होना ।

विदेश्य—दे० "ढोरी" ।

डोरक—संज्ञा पुं० [सं०] डोरा । तागा । सूत्र । धागा ।

डोरही—संज्ञा स्त्री० [देग०] बड़ी कटार । बड़ी मटरपैया ।

डोरा—संज्ञा पुं० [सं० डेरक] (१) हड्डि, सन, रेशम आदि को बट कर बनाया हुआ ऐसा खंड जो चौड़ा या मोटा न हो पर खंबों में बकीर के समान बूर तक धखा गया हो । सूत्र । सूत । तागा । धागा । जैसे, कपड़ा मरिने का डोरा, माजा नूँधने का डोरा । (२) धारी । बखीर । जैसे, कपड़ा हरा है पीच थीच में खार डोरे हैं ।

डि० प्र०—पड़ना ।—डोना ।

(३) श्रांती की बहुत महीन लाल नसें जो साधारण मनुष्यों की श्रांत में उस समय दिखाई पड़ती हैं जब वे नसे की उमंग में होते हैं या सो कर उठते हैं। जैसे, श्रांतों में लाल छोरे कानों में बालियाँ। (४) तलवार की धार। (५) तपे धी की धार, जो दाल आदि में ऊपर से डालते समय, बँध जाती है।

मुहा०—डोरा देना = तना हुआ धाँ ऊपर से डालना।

(६) एक प्रकार की करछी जिसकी डाँड़ी छोड़े बल लगी होती है और जिससे धी निकालते हैं या दूध आदि कढ़ाह में चलाते हैं। परी। (७) छोँहसूत्र। प्रेम का बंधन। लगन।

मुहा०—डोरा बालना = प्रेमसूत्र में बद्ध करना। प्रेम में फँसना। अपनी ओर प्रवृत्त करना। परधान। डोरा लगना = स्नेह का बंधन होना। प्रीति-बंधन होना।

(८) यह वस्तु जिसका अनुसंधान करने से किसी वस्तु का पता लगे। अनुसंधानसूत्र। सुराग। व०—ब्रुपति जोन्ह में मिल गई नेकु न दंतिल लखाय। सीपे के छोरे लग्यो खली चली सँग जाय।—विहारी। (९) कामल या सुरमे की रेखा। (१०) नृत्य में फंड की गति। नाचने में गरवम हिलाने का भाव।

छंछा पु० [हि० डोड़] पोस्ते आदि का ढोंड़। डोछा।

डोरिया—छंछा पु० [हि० डोरा] (१) एक प्रकार का सूती कपड़ा जिसमें कुछ मोटे सूत की लंबी धारियाँ बनी हैं। (२) एक प्रकार का बपला जिसके पैर हरे होते हैं। यह शत्रु के अनुसर रंग बदलता है। (३) जुलाहों के यहाँ ताँपा उठाने-वाला लड़का। (४) एक नीच जाति जो राजाओं के यहाँ शिकारी कुत्तों की रक्षा पर नियुक्त रहती थी। ये लोग कुत्तों को शिकार पर सघाते थे।

डोरियाना †—कि० सं० [हि० डोरी + ञाना (प्रत्य०)] पशुओं को रस्ती से बाँध कर ले चलाना। थागडोर लगा कर घोड़ों को ले जाना। व०—गवने भरत पयादेहि पाये। कोतल संग आहि डोरियाये।—तुलसी।

डोरिहार—छंछा पु० [हि० डोरी + हारा] [स्त्री० डोरिहारिन] पट्टा।

डोरी—छंछा स्त्री० [हि० डोरा] (१) कई डोरों या तागों को बट कर धनाया हुआ खंड जो लंबाई में दूर तक खकीर के रूप में चला गया हो। रस्ती। रज्जु। जैसे, पानी भरने की डोरी, पंखा खींचने की डोरी।

मुहा०—डोरी खींचना = छुप करके अपने पास दूर से बुलाना। पास बुलाने के लिये स्मरण करना। जैसे, जब भगवती डोरी खींचोगी तब जायगी। (खि०) डोरी लगना = किंगी के पास पहुँचने या उसे उपस्थित करने के लिये लगातार ध्यान बना रहना। जैसे, अथ तो घर की डोरी खगी हुई है।

(२) यह तागा जिसे कपड़े के किनारे को कुछ मोड़ कर उसके भीतर डाल कर मीने हैं।

कि० प्र०—भरना।

(३) यह रस्ती जिसे राजा महाराजाओं या वादराहों की सुवारी के आगे आगे दोपों थोर हद् बंधने के लिये सिपाही लेकर चलते हैं। (यह रास्ता साफ रखने के लिये होता है जिसमें डोरी की हद् के भीतर कोई जा न सके)।

कि० प्र०—थाना।—चलना।

(४) बंधने की डोरी। पाश। बंधन। व०—मैं मेरी करि जन्म मौँवावत जब लागि परत न जन की डोरी।—सूर।

मुहा०—डोरी डोली छोड़ना = देव रख कम करना। चौकसी कम करना। जैसे, जहाँ डोरी डोली छोड़ो कि क्या विगड़ा। (५) बड़ोदार कटोरा जिससे कढ़ाह में दूध चायनी आदि चलाते हैं।

डोरे *—कि० वि० [हि० डोर] साथ पकड़े हुए। साथ साथ। संग संग। व०—(क) श्रुत निचारे कल बोलत निदोरे नैक सखिन के छोरे देव डोलेँ मित तित को।—देव। (ख) यानर फिरत डोरे डोरे श्रध तापसनि शिब को समाज कैपेँ श्रधि को सद्वन है।—केशव।

डोल—छंछा पु० [सं० डोल = झूलना, षटकाना] (१) लोहे का एक गोल धारतन जिसे कुछ पें में लटका कर पानी खींचते हैं। (२) हिँडोला। मूला। पालना। व०—(क) सखन कुंज में डोल यवायो मूलत है पिय प्यारी।—सूर। (ख) प्रशुहिँ चित्तै पुनि चित्तै महि राजत खोचन लोल। खेत मनसिन मीन जुग जनु विधि मंडल डोल।—तुलसी। (३) डोली। पालकी। शिविका। व०—महा डोल दुजहिन के चारी। देहु वताय होहु उपकारी।—सुराज। (४) जहाज का मल्लू। (खरा०)

कि० प्र०—खड़ा करना।

छंछा स्त्री० [दे०] एक प्रकार की काली मिट्टी जो बहुत उपजाऊ होती है।

डोलक—छंछा पु० [सं०] प्राचीन काल का ताल देने का एक धाजा।

डोलची—छंछा स्त्री० [हि० डोल + ची (प्रत्य०)] छोटा डोल।

डोलडाल—छंछा पु० [दे०] (१) चलना फिरना। (२) दिसा के लिये जाना। पालाने जाना।

कि० प्र०—करना।

डोलना—कि० सं० [सं० डोलन = लटकना, हिलना] (१) हिलना। चलाना। गति में होना। (२) चलना। फिरना। टटलना। जैसे, चौपाय चारों थोर डोल रहे हैं।

धौ०—डोहना फिना = पकना । धुमना ।

(३) चला जाना । हटना । दूर होना । जैसे, वह ऐसा थकड़ कर मींगता है कि डुबाने से नहीं डोहता । (४) (चित्त) विचलित होना । (चित्त का) हड़ न रह जाना । (चित्त का किसी बात पर) गमा न रहना । डिंगना । उ०—(क) मर्म वधन वय सीता योगा । हरि प्रेरित खड्गि मन डोला । —तुलसी । (ख) बडुकरि कौटिक कुतर्क जगारिचि योहइ । अचलसुता मनु अचल थगारि कि डोहइ ?—तुलसी । उंठा पु० दे० "डोला" ।

डोहरी १—उंठा छी० [हि० डोह] पलंग । छाट । मोली ।

डोला—उंठा पु० [सं० डोला] [श्री० अल्प० डोली] (१) स्त्रियों के बैठने वह बंध सवारी जिसे कहार कंधों पर ले कर चलाते हैं । पालकी । मियाणा । शिविका ।

मुहा०—(किसी का) डोला (किसी के) सिर पर या चोंड़े पर बजलना = किसी दूसरी छी का संघ या प्रेम किसी छी के पति के साथ होना । डोला देना = (१) किसी राजा या सरदार को भेंट की तरह पर अपनी बेटी देना । (२) अपनी बेटी को घर के घर पर ले जाकर ब्याहना । (यह प्रथा धूम्रों और नीच जातियों में है) । डोला निहालना = दुखदिन को विदा करना । डोला लेना = भेंट में क्या लेना ।

(२) वह भोंका जो मूले में दिया जाता है । पैग ।

डोलाना—कि० सं० [हि० डोलना] (१) डिलाना । चखाना । गति में करना । जैसे, पंखा डोलाना ।

संयो० कि०—देना ।

(२) हटाना । दूर करना । भगाना ।

डोलायंत्र—उंठा पु० दे० "दोलायंत्र" ।

डोली—उंठा छी० [हि० डोला] स्त्रियों के बैठने की एक सवारी जिसे कहार कंधे पर उठा कर ले चलते हैं ।

डोली करना—कि० सं० [हि० डोलना] धता बताना । हटाना । टालना ।

डोल्—उंठा छी० [दे०] (१) हिंदी रेवेंड चीनी ।

विशेष—इसका पेड़ हिमालय के काँगड़ा, नैपाल, सिक्किम आदि प्रदेशों में जंगली होता है । वहाँ से इसकी जड़, जो पीली पीली होती है, नीचे की ओर भेजी जाती है और पाजारों में विक्रती है । पर शुष्ण में यह चीन की रेवेंड (रेवेंड चीनी), सुतन की रेवेंड (रेवेंड तुवाई) या विजायती रेवेंड के समान नहीं होती । इसे पदमचल और चुकरी भी कहते हैं ।

(२) एक प्रकार का बॉस जो पूर्वीय बंगाल आसाम, और भूटान से लेकर बरमा तक होता है । इसकी दो जातियाँ होती हैं—एक छोटी, दूसरी बड़ी । यह चींगे और छाले बनाने के काम में अधिकतर आती है । टोकरे और पान रखने के बले भी इससे बनते हैं ।

डोहरा—उंठा पु० [दे०] काठ का एक परत जिससे कोल्ह से गिरा हुआ रस निकाला जाता है ।

डोही—उंठा छी० दे० "डोही" । उ०—छुबनी चखनी डोहि और करवी यह करवा । —सूदन ।

डौंढाना—कि० अ० [हि० डौंढोल] दर्वातोल रहना । विचलित होना । धराना ।

डौंड़ी—उंठा छी० [सं० डिंमि] (१) एक प्रकार का ढोल जिसे बजा कर किसी बात की घोषणा की जाती है । बिंदौरा । हुगडुगिया ।

कि० प्र०—पीटना । - घचना । - बजाना ।

मुहा०—डौंड़ी देना = (१) दांत बजा कर सब साधारण को सूचित करना । मुनादी करना । (२) सब किसी से कहने फिना । डौंड़ी बजना = (१) घोषणा होना । (२) दुहाई फिना । जनयकार होना । चलती होना । उ०—डौंड़ी के घर डौंड़ी बाजी घोड़े निपट अजाने । —सूर ।

(२) वह सूचना जो सर्व साधारण को डोल बजा कर दी जाय । घोषणा । मुनादी ।

कि० प्र०—फिना । - फेरना ।

डौरा—उंठा पु० [दे०] एक घास जो खेतों में पैदा हो जाती है । इसमें सार्व की तरह घाने पड़ते हैं जो खाने में कड़ूप होते हैं ।

डौरू—उंठा पु० दे० "डमरू" । उ०—नील पाट परोह मणियाण फणिया धोखे जाइ । खुवसुना करि हँसत मोहन नचत डौरु बजाइ । —सूर ।

डौंझा—उंठा पु० [दे०] काठ का चमवा । काठ की डौंड़ी की बड़ी करछी । उ०—लकड़ी डौंझा करहुली सतस काडु अनुदारि । सुपुसु संमहदि परिहरदि सेवक सखा विचारि । —तुलसी ।

डौल—उंठा पु० [हि० डौल ?] (१) किसी रचना का प्रारंभिक रूप । डौंचा । डौल । डडदा । डाट । डटर ।

कि० प्र०—खड़ा करना ।

मुहा०—डौल डालना = दांचा खड़ा करना । रचना का प्रारंभ करना । बनाने में हाथ लगाना । लगाना लगाना । डौल पर खाना = काट छाँट कर सुडोल करना । दुस्त करना ।

(२) बनावट का ढंग । रचना प्रकार । ढय । जैसे, इसी डौल का एक गिलास मेरे लिये भी बना दो ।

मुहा०—डौल से खाना = ठीक क्रम से खाना । इस प्रकार खाना जिसमें देवने में अच्छा ढग ।

(३) तरह । प्रकार । भाँति । किस । तौर । तरीका । (४) अभिप्राय के साधन की युक्ति । उपाय । तर्पार । म्योत । भावोजन । स्तमान ।

या०—दौल हाल ।

मुहा०—दौल पर खाना = अमिषाव-साधन के अनुकूल करना ।
ऐसा करना जिससे कोई मतलब निकल सके । इस प्रकार मृत्यु करना जिससे कुछ प्रयोजन सिद्ध हो सके । दौल बाँचना = दे० "दौल लगाना" । दौल लगाना = ब्याज करना । युक्ति बैठाना । जैसे, कहीं से १०० का दौल खगाओ ।

(२) रंग बंग । लक्ष्य । आयोजन । सामान । जैसे, पानी बरसने का कुछ दौल नहीं दिखाई देता । (३) संदेवस्त में जमा का तक्दमा । तल्मीना ।

संज्ञा स्त्री० खेतों की मेंढ़ । बाँध ।

दौलहाल—संज्ञा पुं० [हिं० दौल] ब्याज । प्रयत्न । युक्ति । व्योत ।

दौलदार—वि० [हिं० दौल + दा० (दाल)] सुदौल । सुंदर । खूबसूरत ।

दौलना—क्रि० सं० [हिं० दौल] गड़ना । किसी वस्तु को काट छूट वा पीट पाट कर किसी ढाँचे पर, खाना । बुरस्त करना ।

दौलियाना—क्रि० सं० [हिं० दौल] (१) डंग पर खाना । कह सुन कर अपनी प्रयोजनसिद्धि के अनुकूल करना । (२) काट छूट कर किसी ठीक आकार का बनाना । गड़ कर बुरस्त करना ।

दौवार—संज्ञा पुं० [दे०] एक चिड़िया जिसके पर, छाती और पीठ सुफेद, दुम काफ़ी, और चोंच लाल होती है ।

दौवा—संज्ञा पुं० दे० "दौवा" ।

डोढ़ा—वि० [हिं० डेढ़] [स्त्री० खोदी] आधा और अधिक । किसी पदार्थ से उसका आधा और ज्यादा । डेढ़गुना ।

संज्ञा पुं० (१) ऐसा तंग रास्ता जिसके एक किनारे ढाल या गड़बा हो (पालकी के कहार) । (२) गाने में वह स्वर जो साधारण से कुछ ऊँचा हो । (३) एक प्रकार का पहाड़ जिसमें क्रम से श्रंको की डेढ़गुनी संख्या बतलाई जाती है ।

डोढ़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० देहली] (१) द्वार के पास की भूमि । वह स्थान जहाँ से होकर किसी घर के भीतर प्रवेश करते हैं । चौखट । दरवाजा । फाटक । (२) वह स्थान जो पटे हुए फाटक के नीचे पड़ता है या वह बाहरी कोठरी जो किसी बड़े मकान में धुलने के पहले ही पड़ती है । दरवाने में धुलते ही पड़नेवाला धादरी कमरा । पैरी ।

यो०—खोदीदार । खोदीवान ।

मुहा०—(किसी की) खोदी खुलना = दरवार में आने की इजाजत मिलना । आने जाने की आशा मिलना । (किसी की) खोदी बंद होना = किसी राजा या सरंघ के यहाँ आने जाने की मनाही होना । आने जाने का निरोध होना । खोदी लगना = द्वार पर दारोपस्त बैठना जो बिना आशा पाए खोगे के भीतर नहीं जाने देता ।

डोढ़ीदार—संज्ञा पुं० दे० "खोदीवान" ।

डोढ़ीवान—संज्ञा पुं० [हिं० खोदी] खोदी पर रहनेवाला सिपाही या पहरेदार । द्वारपाल । दरवान । उ०—जहाँ न खोदीवान पायनामा तन धारे ।—श्रीधर पाठक ।

झांग—संज्ञा स्त्री० [सं०] रेशमों के द्वारा अनेक प्रकार की आकृति बनाने की कला । लकीरों से चित्र या आकृति बनाने की विद्या ।

झाहर—संज्ञा पुं० [सं०] गाढ़ी ढाँकने या चवानेवाला । सवारी चवानेवाला । जैसे, रेल का झाहर ।

झाई-प्रिंटिंग—संज्ञा स्त्री० [सं०] सूखी छपाई । छापेखाने में वह छपाई जो बिना भिगोए हुए सूखे कागज पर की जाती है ।
विदेशी—इस प्रकार की छपाई से कागज की चमक नहीं जाती है और छपाई साफ़ होती है ।

झाफ्ट समैन—संज्ञा पुं० [सं०] नकशा बनानेवाला । स्थूल मानचित्र प्रस्तुत करनेवाला । जैसे, झाफ्टमैन ने मक़ान का नक़शा ईजिनियर के पास भेजा ।

झाम—संज्ञा पुं० [सं०] पानी आदि द्रव पदार्थों को नापने का एक अंगरेजी मान जो तीन माटो के बराबर होता है ।

झिल—संज्ञा स्त्री० [सं०] घड़त से सिपाहियों या लड़कों को कई प्रकार के क्रम से खड़े होने, चलने, श्रंग हिलाने आदि की नियमित शिक्षा । कवायद । जैसे, स्कूल में झिल नहीं होती ।

यो०—झिल मास्टर = कवायद मिलानेवाला ।

झेस करना—क्रि० सं० [सं० डेस + हिं० करना] (१) घाव में दवा आदि भर कर बाँचना । मरहम पटी करना । (२) पत्थर आदि को चिकना और सुदौल करना ।

झूंगून—संज्ञा पुं० [सं०] सवार सिपाही ।

विदेशी—पहले डूंगून पैदल और सवार दोनों का काम देते थे पर अब वे सवार ही होते हैं ।

ढ

ढ--हिं दो वर्षमात्र का चौदहवाँ वर्षजन वर्ष और ठवर्ष का चौथा अक्षर । इसका उच्चारण-स्थान मूर्दा है ।

ढँकन-संज्ञा पुं० दे० "ढकना", "ढकन" ।

ढँकना-क्रि० सं० दे० "ढकना" ।

संज्ञा पुं० दे० "ढकना" ।

ढँकुली-संज्ञा स्त्री० दे० "ढँकली" ।

ढंङ्ग-संज्ञा पुं० [हिं० ढङ्ग] पलारा । ढाङ्ग । ङ०—बहनि धान अस झनी घेपी रन वन ढंङ्ग । सउजहि तन सय रोवाँ पंखिहि तन सव पंख ।—जायसी ।

ढंग-संज्ञा पुं० [सं० ढग (ढगन) = चाल, गति ?] (१) क्रिया प्रणाली । शैली । पद्धति । उव । रीति । तीर । तरीका । जैसे, (क) बोलने चलने का ढंग, बैठने उठने का ढंग । (ख) जिस ढंग से तुम काम करते हो वह बहुत अच्छा है । (२) प्रकार । भाँति । तरह । किसम । (३) रचना । प्रकार । बनावट । गढ़न । । दाँचा । जैसे, वह गिलास और ही ढंग का है । (४) अभिप्राय-साधन का मार्ग । युक्ति । बपाय । तद्विध । ढौल । जैसे, कोई ढंग ऐसा निकालो जिसमें खया मिल जाय । ङ०—चाही के जैए खलाय लौं, यालम ! हँ हुअँ नीके बतावति हँ ढंग ।—देव ।

क्रि० प्र०—करना ।—निकालना ।

मुहा०—ढंग पर चढ़ना = अभिप्राय-साधन के अनुकूल होना । किसी का इस प्रकार प्रवृत्त होना जिससे (दूर के का) कुछ अर्थ निकले । जैसे, उससे भी कुछ खपा लेना चाहता हूँ, पर वह ढंग पर नहीं चढ़ता है । ढंग पर जाना = अभिप्राय साधन के अनुकूल करना । किसी को इस प्रकार प्रवृत्त करना जिससे कुछ मतप्रवृत्त निकले । ढंग का = कार्यकुशल । व्यवहार-दक्ष । चतुर । जैसे, वह बड़े ढंग का छादमी है ।

(२) चाल डाल । आचरण । व्यवहार । बर्ताव । जैसे, वह मार खाने का ढंग है ।

मुहा०—ढंग बर्तना = शिक्षाचार दिखाना । दिखाऊ व्यवहार करना ।

(३) धोखा देने की युक्ति । बहाना । हीजा । पाखंड । जैसे, यह सय तुम्हारा ढंग है ।

क्रि० प्र०—रचना ।

(४) पैसी घात जिससे किसी होनेवाली घात का अनुमान हो । खण्ड । धामास । आसारा ।

धौ०—रंग ढंग = ऐसा आयोजन जिससे किसी घटना का आभास मिले । खण्ड । आसारा । जैसे, रंग ढंग अच्छा नहीं दिखाई देता ।

(५) दया । अकल्या । स्थिति । ङ०—नैनन को ढंग से

धनंग रिचकारिन ते, गातव को रंग परे पातन तेँ जानवी ।—सद्भाकर ।

ढंगउजाड़-संज्ञा पुं० [हिं० ढंग + उजाड़] घोड़ों की तुम के नीचे की एक भीरी जो पैरों में समझी जाती है ।

ढंगलाना-क्रि० सं० [हिं० ढाङ्ग] लुढ़काना ।

ढँगिया-वि० दे० "ढंगी" ।

ढंगी-वि० [हिं० ढंग] चालबाज़ । चतुर । चालाक ।

ढँढरचा-संज्ञा पुं० [हिं० ढंग + रचना] धोखा देने का आयोजन । पाखंड । बहाना । हीजा ।

ढँढस-संज्ञा पुं० दे० "ढँढरच" ।

ढँढार-वि० [दे०] बड़ा बड़्हा । बहुत बड़ा और बेढंगा ।

ढँढोर-संज्ञा पुं० [अ० धयै धयै] (१) आग की लपट । ज्वाला । लौ । ङ०—(क) रहै प्रेम मन वरमा लटा । विरह ढँढोर पराई सिर जटा ।—जायसी । (ख) कंधा जरे अग्नि जनु जाप । विरह ढँढोर जरत न बराप ।—जायसी । (२) काले मुँह का बंदर । लंगूर ।

ढँढोरची-संज्ञा पुं० [हिं० ढँढोर + ची० (प्रत्य०)] ढँढोरा फेरनेवाला । मुनादी फेरनेवाला ।

ढँढोरना-क्रि० सं० [हिं० ढँढरा] टटोल कर ढँढरना । हाथ डाल कर हथर वपर खोजना । ङ०—तेरे बाल मेरो मालन छाये । दुपहर दिवस आनि धर सुनो ढँढोरि थापरी आये ।—सूर ।

ढँढोरा-संज्ञा पुं० [अ० ढम + दोर] (१) घोषणा करने का ढोल । हुगडुगी । ढँढुड़ी ।

मुहा०—ढँढोरा पीटना = ढोल बजा कर चारों ओर बताना । मुनादी करना ।

(२) वह घोषणा जो ढोल बजा कर की जाय । मुनादी ।

मुहा०—ढँढोरा फेरना = दे० "ढँढोरा पीटना" ।

ढँढोरिया-संज्ञा पुं० [हिं० ढँढोरा] ढँढोरा पीटनेवाला । हुगडुगी बजा कर घोषणा करनेवाला । मुनादी करनेवाला ।

ढँपना-क्रि० अ० [हिं० ढँपना] किसी वस्तु के नीचे पड़ कर दिखाई न देना । किसी वस्तु के ऊपर से छेक लेने के कारण उसकी छोट में छिप जाना ।

संयोग क्रि०—जाना ।

संज्ञा पुं० ढाङ्गने की वस्तु । ढङ्गन ।

ढ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बड़ा ढोल । (२) कुत्ता । (३) कुँ की रूँध । (४) च्चनि । नाद । (५) सर्प ।

छई देना-क्रि० अ० [हिं० धरना ?] किसी को यहाँ किसी काम से

पहुँचना और तब तक काम न हो जाय तब तक न हटना । धरना देना ।

दकार-वि० [हि० दका] दके का ।

संज्ञा पु० एक प्रकार का केला जो दके की बोर होता है ।

दकना-संज्ञा पु० [सं० दक = छिपाना] [सं० अल्प = दकनी] वह वस्तु जिसे ऊपर धाल देने या बँटा देने से नीचे की वस्तु छिप जाय या बंद हो जाय । दकन । चपनी ।

कि० अ० किसी वस्तु को नीचे पड़ कर दिखाई न देना । छिपाना । उ०—मिठाई कपड़े से दकी है ।

संज्ञा० कि०—जाना ।

कि० स० दे० "दकना" ।

दकनिया-संज्ञा स्त्री० दे० "दकनी" । उ०—सुभाग दकनिया हाँपि पट जलन राखि छीके समदायो ।—सूर

दकनी-संज्ञा स्त्री० [हि० दकना] (१) दकने की वस्तु । दकन । (२) मूल के आकार का एक प्रकार का गोदना जो धेयेली के पीछे की ओर गोदा जाता है ।

दकपेडर-संज्ञा पु० [दे०] एक चिड़िया का नाम ।

दका-संज्ञा पु० [सं० अदक] सीन सेर की एक लौल या घाट । संज्ञा पु० [सं० दक] घाट । जहाज़ ठहरने का स्थान । (लश०)

दकसंज्ञा पु० [सं० दका] यज्ञ ढोल । उ०—नदत् दुँदुभि दका, यदन माह हंका, चलत लागत घका कहत धामे ।—सुदन ।

दकसंज्ञा पु० [अनु०] धका । टकर । उ०—(क) दकनि दकेलि पेरि सचिव चले से डेलि नाय न चलेगो थल अनल भयावनी ।—तुलसी । (ख) चढ़ि गढ़ मढ़ टड़ कोट के कंगूरे कोपि नेक, दका देहें देहें डेलन की डेरी सी ।—तुलसी ।

दकिला-संज्ञा स्त्री० [हि० दकेलना] एक दूसरे को दकलेते हुए वेग के साथ धावा । चढ़ाई । आक्रमण । उ०—दकिल करी सय ते अधिकाई । थोड़ी शुरु खोगान की घाई ।—लाल कवि ।

दकलना-कि० स० [हि० दका] (१) धके से गिराना । ठेल कर धारों की ओर गिराना ।

संज्ञा० कि०—देना ।

(२) धके से हयाना । ठेल कर सरकाना । जैसे, मीढ़ को पीछे दकलो ।

दकला दकोली-संज्ञा स्त्री० [हि० दकलेना] ठेलमठेला । आपस में धका ।

कि० प्र०—करना ।

दकोसना-कि० स० [अनु० दक दक] एक धारगो पीना । बहुत सा पीना । जैसे, इतना दूध मत दकोस जो कि फूँ हो जाय ।

संज्ञा० कि०—जाना ।—खेना ।

दकोसला-संज्ञा पु० [हि० दंग + सं० कोस] ऐसा आपोजन जिससे लोगों को धोखा हो । धोखा देने या मतलब साधने का ढंग । धाँवर । पाखंड । मिथ्या जाल । कपट व्यवहार ।

कि० प्र०—करना ।—फैलाना ।

दक-संज्ञा पु० [सं०] एक देश का नाम । कदाचित् "दका" । दकन-संज्ञा पु० [सं०] दकने की वस्तु । वह वस्तु जिसे ऊपर से धाल या बँटा देने से कोई वस्तु छिप जाय या बंद हो जाय । जैसे, डिबिया का दकन, बरतन का दकन ।

दका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) बड़ा ढोल । (२) नगरा । हंका । दकी-संज्ञा स्त्री० [हि० दक] पहाड़ की ढाल जिससे होकर खेता चढ़ते बतरते हैं । (पंजाब)

दगगा-संज्ञा पु० [सं०] पिंगल में एक मात्रिक शब्ध जो तीन मात्रायों का होता है । इसके तीन भेद हो सकते हैं, यथा 15, 5, 1, 11, इनमें से पहले की संज्ञा रसवास और ध्वजा, दूसरे की पवन, नंद, ग्वाल, साल और तीसरे की वलय है ।

दचर-संज्ञा पु० [हि० दोंचा] (१) किसी वस्तु को बनाने या ठीक करने का सामान या ढाँचा । आपोजन और सामान ।

कि० प्र०—फैलाना ।—धाँचना ।

(२) टंटा । बलेडा । जंजाल । धंघा । कारवार । (३) धाँवर । मूढा आपोजन । दकोसला ।

कि० प्र०—फैलाना ।

(४) बहुत दुबला पतला और पड़ा ।

दटौंगड़ा-संज्ञा पु० [सं० डिंगर = मोटा अदमी] (१) बड़े ढील ढील का । डोंग । जैसे, इतने बड़े दटौंगड़ हूय पर कुछ शजर न हुआ । (२) हट पट । मुटुंदा । मोटा ताना ।

दटौंगड़ा-संज्ञा पु० दे० "दटौंगड़" ।

दटौंगर-संज्ञा पु० दे० "दटौंगड़" ।

दट्टा-संज्ञा पु० [हि० दड] वह भारी साफा या सुरेडा जो लिर के अतिरिक्त दाढ़ी और फानों को भी ढाँके हो ।

दट्टा संज्ञा पु० [हि० दड] कस कर छेद या मुँह बंद करने की वस्तु । डाट । टेंपी ।

दट्टी-संज्ञा स्त्री० [हि० दड] दाढ़ी धाँधने की पट्टी ।

संज्ञा स्त्री० [हि० दड] किसी छेद को बंद करने की वस्तु । डाट । टेंपी ।

दड्डा-वि० [दे०] बहुत पड़ा । आवरयकता से अधिक बढ़ा । बढ़ा और बेडंगा ।

संज्ञा पु० [हि० दड] (१) ढाँचा । धंगों की वह ह्यूल योजना जो किसी वस्तु की रचना के प्रारंभ में की जाती है ।

कि० प्र०—खड़ा करना ।

(२) धाँवर । दिखाने का सामान । मूढा डाट धाट ।

कि० प्र०—खड़ा करना ।

बद्धो—संज्ञा स्त्री० [हिं० बद्ध] (१) बद्धी स्त्री । बड़ी स्त्री जिसके शरीर में बद्धी का दर्जा ही रह गया हो । (२) बकवादिन स्त्री । (३) मटमैले रंग की एक चिड़िया जिसकी चोंच पीली होती है । यह बहुत लड़की और चिखलाती है । धरती ।

मुहा०—बद्धो का, बद्धोवाला = मूर्ख । बेवकूफ ।

दनमनाना †—कि० अ० [भु०] खुदकना । हुलकना । उ०—मुठिका एक महाकृपि हवी । रुधिर घमट धरनी उनमनी ।—तुलसी ।

दप—संज्ञा पुं० दे० “दफ” ।

दपन—संज्ञा पुं० [हिं० दंपन] टाकने की धतु । दफन ।

दारी—संज्ञा स्त्री० [हिं० दारना] चूड़ीवालों की शरीरी का दकना ।

दपला †—संज्ञा पुं० दे० “दफला” ।

दपली †—संज्ञा स्त्री० दे० “दफली” ।

दप्यु—वि० [दे०] बहूत बड़ा । दददा ।

दफ—संज्ञा पुं० दे० “दफ” । उ०—हंज मुरज दफ साल धासुरी मालर की मंकार ।—सूर ।

दप—संज्ञा पुं० [सं० धर = चक्रण, गति] (१) क्रियाप्रणाली । दंग । रीति । तौर । तरीका । जैसे, काम करने का दप । (२) प्रकार । भाँति । तरह । किम्मा । जैसे, वह न जाने किस दप का आदमी है । (३) रचना-प्रकार । दनादद । गढ़न । दर्जा । जैसे, वह गिलास और ही दप का है । (४) अभिप्राय-साधन का मार्ग । युक्ति । उपाय । सद्बीर । जैसे, किसी दप से रूपाय निकालना चाहिये ।

मुहा०—दप पर चढ़ना = अभिप्राय-साधन के अतुकृत होना ।

किनी का दप प्रकार मूत्रक होना जिससे (दूधरे का) कुछ अर्प सिद्ध हो । किसी का ऐसी अवस्था में होना जिससे कुछ मतत्रय निकले । जैसे, कहीं वह दप पर चढ़ गया तो बहुत काम होगा । दप पर खगाना या जाना = अभिप्राय-साधन के अतुकृत होना । किसी के दप प्रकार प्रवेश करना कि उससे कुछ अर्प सिद्ध हो । अपने मतत्रय का बनना ।

(१) गुण और स्वभाव । प्रकृति । प्राप्त । बान ।

मुहा०—दप डालना = (१) आदत डालना । अग्रहण करना ।

(२) अच्छी आदत डालना । आचार व्यवहार की शिक्षा देना । शक्ति मिलाना ।

दघरा †—वि० दे० “दाघर” ।

दबीला †—वि० [हिं० दब] दब का । दबवाला । चालाक । चतुर ।

दनुप्रा †—संज्ञा पुं० [दे०] खेतों के मवान के ऊपर का कुप्पर ।

संज्ञा पुं० [दे०] पैसा ।

दबैला—वि० [हिं० कबर] मिट्टी और कीचड़ मिला हुआ (पानी) । मटमैला । गढ़ला ।

दमदम—संज्ञा पुं० [भु०] ढोल का या नगारे का शब्द ।

दमलाना †—कि० घ० [दे०] लुटकाना ।

दयना—कि० अ० [सं० ध्वंसन] किसी दीवार, मकान, आदि का गिरना । ध्वस्त होना ।

संयोगे कि०—जाना ।—पढ़ना ।

मुहा०—उप पढ़ना = उतर पढ़ना । सहसा आकर टिक जाना । एकवारगी आकर डेर डाल देना । (स्वयं)

दरकना †—कि० अ० [हिं० दार या दल] (१) पानी या और किसी द्रव पदार्थ का आधा से नीचे गिर पड़ना । टलना । गिर कर बह जाना ।

संयोगे कि०—जाना ।—पढ़ना ।

(२) नीचे की ओर जाना । उ०—(क) सकल समेह सिधिल रघुर के । गए कोस बुद दिनकर दरके ।—तुलसी । (ख) परसत भोजन प्रातहिं ते सय । रवि माये ते दरकि गये धव ।—सूर ।

मुहा०—दिन दरकना = सुशांति होना । दिन डूबना ।

दरका—संज्ञा पुं० [हिं० दरकना] (१) घ्रांस का एक रोग जिसमें घ्रांस से श्वास बहा करता है ।

कि० प्र०—लगाना ।

(२) सिर पर कलम की तरह छुली हुई धाँस की नली जिससे चौपायों के गले में दवा डतारते हैं । (३) धाँस की नली से चौपायों के गले में दवा डतारने की क्रिया ।

कि० प्र०—देना ।

दरकाना †—कि० सं० [हिं० दरकना] पानी या और किसी द्रव पदार्थ को आधा से नीचे गिराना । गिरा कर बहाना । जैसे, पानी दरकाना ।

संयोगे कि०—देना ।

दरकी—संज्ञा स्त्री० [हिं० दरकना] जुलाहे का एक औजार जिससे वे लोग धाने का सूत फँकते हैं । दरकी की आकृति कराड की सी होती है और यह भीतर से पोली रहती है । खाली स्थान में एक फटि पर लपेटा हुआ सूत रक्खा रहता है जब दरकी को इयर से उधर फँकते हैं तब उसमें से सूत चुबकर धाने में भरता जाता है । इसे ‘भरनी’ भी कहते हैं ।

दरना †—कि० अ० दे० “दरना” ।

दरनि—संज्ञा स्त्री० [हिं० दरना] (१) गिरने वा पड़ने की क्रिया । पतन । उ०—सखि पचन सुप कासिका सखि सुदर पासे

दरनि ।—तुलसी । (२) दिखने ढोलने की क्रिया । गति ।

स्पंदन । उ०—कंठसिरी तुलसी दीन की नासा मुक्ता

दरनि ।—स्वामी हरिदास । (३) चित्त की प्रवृत्ति । मुक्ताव ।

उ०—रिस धरु दधि हीं समुक्ति देखिईं बाके मन की

दरनि, धाकी भावती घात चलायईं ।—सूर । (४) किसी

की दशा पर हृदय द्रवीभूत होने की क्रिया । दीन दशा दूर

करने की स्वामाविक प्रवृत्ति । स्वामाविक करुणा । दया-

शीलता । सदन कृपालुता । उ०—(क) राम नाम तीं

प्रतीत प्रीति राखे कष्टक मुलसी दरंगे राम थापनी
दरनि।—तुलसी। (स) कृगसिंधु कोसल धनी सरनागत
पात्रक दरनि थापनी दरिपु।—तुलसी।

दरदरना • १-कि० अ० [हि० दरना] खसकना । सरकना ।
दलाना । मुकना । उ०—दीनदयाल गोपाल गोपपति गाथ
गुण थावत डिग दरहरि।—सूर।

दरहरा-वि० [हि० धार + धार (क्षय०)] [स्त्री० दरहरा] डालुवां ।
वालू।

दरहरी-संज्ञा स्त्री० [देश०] पकौड़ी। उ०—रायभोग लियो भात
पसाई। सूरग दरहरी होंग लगई।—सूर।

वि० स्त्री० [हि० दरहरा] डालू। डालुवां।

दरहरी-संज्ञा स्त्री० दे० “ढलाई”।

दराना-कि० स० (१) दे० “ढलाना”। उ०—सैचि खराइ चढाप
नहीं न सुदार के वारनि मप्य दरापु।—सरदार। (२) दे०
“दरकाना”।

दरारा-वि० [हि० धार] [स्त्री० दरारी] (१) ढलनेवाला। दर-
कनेवाला। गिर कर बह जानेवाला। (२) लुटकनेवाला।
घोड़े थाघत से दृष्टी पर आपसे आप सरकनेवाला। (जैसे,
गोली)

यो०—दरारा रवा = गहना बनाने में रोने चाँदी का वह गोल
दुना जो जमीन पर रखने से लुटक जाय।

(३) शरीर प्रवृत्त होनेवाला। मुक पड़नेवाला। आकर्षित
होनेवाला। चन्नायमान होनेवाला। उ०—जोयन रँग रंगीली,
सोने से गात, दरारे सैना, कंठमेत मखदूली।—स्वामी
हरिदास।

दरैया-संज्ञा पुं० [हि० दारना] ढालनेवाला।

दर-संज्ञा पुं० [हि० धरना] (१) मार्ग। रास्ता। पथ। (२) किसी
कार्य के निर्वाह की प्रणाली। शैली। ढंग। तरीका।

(३) युक्ति। उपाय। तदवीर। जैसे, कोई धरा ऐसा निकालो
जिसमें इन्हें भी कुछ काम हो जाय।

कि० प्र०—निकालना।

(४) आचरण पद्धति। चाल चलन। जैसे, यह लड़का विगड़
रहा है, इसे अच्छे ढर्रे पर लगाओ।

ढलकना-कि० अ० [हि० ढल] (१) पानी या और किसी द्रव
पदार्थ का आधार से नीचे गिर पड़ना। ढलना।

संयो० कि०—जाना।

(२) लुटकना। नीचे ऊपर चकराएते हुए सरकना।

ढलका-संज्ञा पुं० [हि० ढलकना] धाँस का एक रोग जिसमें धाँस
से थारथ पानी बहा करता है।

ढलकाना-कि० स० [हि० ढलकना] (१) पानी या और किसी
द्रव पदार्थ का आधार से नीचे गिराना। (२) लुटकाना।

संयो० कि०—दना।

ढलकी-संज्ञा स्त्री० दे० “ढरकी”।

ढलना-कि० अ० [हि० ढल] (१) पानी या और किसी द्रव
पदार्थ का नीचे की ओर सरक जाना। ढरकना। गिर कर
बहना। जैसे, पत्ते पर की धूँड़ का ढलना। उ०—अधरत
सुभाई लेईं सितारो रस सनिकी न जान देखें हत उन दरि।—
स्वामी हरिदास।

संयो० कि०—जाना।

मुहा०—जवानी ढलना = युवावस्था का जाता रहना। छाती
ढलना = खनो का लटक जाना। जोयन ढलना = युवावस्था
के चिह्न का जाता रहना। जवानी का उतार होना। दिन
ढलना = सूर्यास्त होना। संध्या होना। दिन ढले = संध्या का।
शाम का। सूरज या चाँद ढलना = सूर्य या चंद्रमा का अस्त
होना।

(२) बीतना। गुजरना। निकल जाना। उ०—काई
न प्रगट करी जनुपति सों हुसह दोप की अचधि गई हरि।—
सूर। (३) पानी या और किसी द्रव पदार्थ का आधार से
गिरना। पानी, रस आदि का एक धरतन से दूसरे धरतन में
डाला जाना। उड़ेला जाना।

मुहा०—धेतल ढलना = तृप्त शराय पीया जाना। मद्य पिया जाना।
शराय ढलना = मद्य पिया जाना।

(४) लुटकना। (५) किसी सूत या डोरी में रूप की वस्तु का
इपर से उधर हिलना। लहर खाकर हूधर उधर डोलना।
लहराना। जैसे, चँबर ढलना। (६) किसी फौर आकर्षित
होना। प्रवृत्त होना।

संयो० कि०—पड़ना।

(७) अनुकूल होना। प्रसन्न होना। रीकना। उ०—देत न
थाघत, रीकि जात पात थाक ही के, ओलानाथ जोगी जब
आँदर ढरत है।—तुलसी।

संयो० कि०—जाना।

(८) पिघली या गली हुई। सामग्री से सचि के द्वारा
वनना। सचि में ढाल कर बनाया जाना। ढाला जाना।
जैसे, खिलीने ढलना, धरतन ढलना।

मुहा०—सचि में ढला हुआ = बहुत सुंदर और सुंदर।

ढलवा-वि० [हि० ढलना] जो पिघली हुई धातु आदि की सचि
में ढाल कर बनाया गया हो। जैसे, ढलवा धरतन।

ढलवाना-कि० स० [हि० ढलना का प्र०] ढालने का काम
कराना।

ढलाई-संज्ञा स्त्री० [हि० ढलना] (१) सचि में ढाल कर धरतन
आदि बनाने का काम। ढालने का काम। (२) ढालने की
मजदूरी।

ढलाना—क्रि० सं० दे० "ढलवाना" ।

ढलुपानि—वि० दे० "ढलवाना" ।

ढलैत—संज्ञा पुं० [हिं० ढल] ढाल धरनेवाला । सिपाही ।

ढवरी—संज्ञा स्त्री० [देग०] धुन । दोरी । ली । खगन । २८ ।

३०—सूरदास गोपी यद् भागी । हरि हरान की ढवरी छापी ।—सूर । दे० "ढोरी"

ढहाना—क्रि० थ० [सं० ध्वंसन] (१) ढीवार, मकान आदि का गिर पड़ना । ध्वस्त होना ।

संयो० क्रि०—जाना ।

(२) नष्ट होना । मिट जाना । ३०—तुलसी रसातल को निकसि सलिल थापे, कोबल कलमयवे यदि कमठ को यल गो ।—तुलसी ।

ढहराना—क्रि० सं० [हिं० ढार] (१) लुढ़काना । (२) सूप के धरन में से गोल दाने की कंकड़ी मिट्टी आदि को लुढ़का कर ढलाना करना ।

ढहरी—संज्ञा स्त्री० [सं० देहरी] देहरी । देहली । दहलीज ।

३०—सूर प्रभु कर मेन टेकत कवहुँ टेकत ढहरि ।—सूर ।

संज्ञा स्त्री० [सं०] मिट्टी का भरतन । मटका । ३०—ढगर न देत काहुदि फेरि ढारन ढहरि ।—सूर ।

ढहवाना—क्रि० सं० [हिं० ढहाना का प्रे०] ढहाने का काम कराना । गिरवाना ।

ढहाना—क्रि० सं० [सं० ध्वंसन] ढीवार मकान आदि गिराना ।

ध्वस्त करना । ३०—एक ही धान को पापान को ढोट सय हुतो चहुँ थोर से दियो डहाई ।—सूर ।

ढाँक—संज्ञा पुं० [देग०] कुस्ती के एक वेच का नाम ।

ढाँकना—क्रि० सं० [सं० ढक = ढिपाना (१) किसी वस्तु को दूसरी वस्तु के रूप में प्रकट नीचे करना जिसमें चढ़ दिखाई न दे या उस पर गढ़ आदि न पड़े । ऊपर से कोई वस्तु फेंकना या ढाल कर (किसी वस्तु को) ढोत में करना । कोई वस्तु ऊपर से ढाल कर ढिपाना । जैसे, (क) पानी का सरतन खुला मन छोड़ो ढाँक दो । (ख) मित्राई को कपड़े से ढाँक दो ।

संयो० क्रि०—देना ।

(२) इस प्रकार ऊपर ढालना या फेंकना जिसमें नीचे कोई वस्तु छिप जाय । जैसे, इस पर कपड़ा ढाँक दो ।

संयो० क्रि०—देना ।

ढाँखा—संज्ञा पुं० दे० "ढाक" ।

ढाँगा—वि० [देग०] दे० "ढालुवा" ।

ढाँच—संज्ञा पुं० दे० "ढाँचा" ।

ढाँचा—संज्ञा पुं० [सं० रथात्, हिं० ढट] (१) किसी वस्तु की

रचना की प्रारंभिक अवस्था में स्थूल रूप से संयोजित धंशों की समष्टि । किसी चीज को बनाने के पहले परस्पर जोड़ जाड़ कर बैठाने हुए उसके भिन्न भिन्न भाग जिनसे उस वस्तु का कुछ आकार खड़ा हो जाता है । ढट । ढट्टर । डाल । जैसे, अभी तो इस पालकी का ढाँचा खड़ा हुआ है, तथ्ये आदि नहीं जड़े गए हैं ।

क्रि० प्र०—खड़ा करना ।—बनाना ।

(२) भिन्न भिन्न रूपों से परस्पर इस प्रकार जोड़े हुए लकड़ी आदि के बरले या छड़ कि उनमें बीच में कोई वस्तु जमाई या जड़ी जा सके । जैसे, बीसटा, बिना धुनी चारपाई, डुरसी आदि । (३) पंज । ढट्टरी । (४) धार लकड़ियों का बना हुआ वह खड़ा चौखटा जिसमें जुलाहे नचनी खटकाने हैं । (५) रचना-प्रकार । गढ़न । बनावट । जैसे, इस गिजास का ढाँचा बहुत अच्छा है । (६) प्रकार । भाँति । तरह । जैसे, बंद न जाने किस ढाँचे का आदमी है ।

ढाँपना—क्रि० सं० दे० "ढाँकना" ।

ढाँस—संज्ञा स्त्री० [षुठ०] यह 'ढन ढन' शब्द जो सूखी खाँसी आने पर गले से निकलता है । उसक ।

ढाँसना—क्रि० थ० [हिं० ढाँस] सूखी खाँसी खाँसना ।

ढारें—वि० [सं० अर्द्धद्वितीय, प्रा० अर्द्धाद्य, हिं० ढारै] दो और आधा । जो गिनती में दो से आधा अधिक हो ।

मुहा०—ढारै पड़ो की धाना = चपट मोत धाना । (छि० का कोसना) जैसे, तुम्हें ढारै पड़ो की धाने । ढारै सुखलू लहू पीना = मार डालना । फटिन देह देना (मोघ वाक्य) । जैसे, तेरा ढारै सुखलू लहू पीऊँ तय मुझे फल होगी । ढारै दिन की चादयाहत करना = (१) थोड़े दिनों के लिये खूब ऐश्वर्य भोगना । (२) दूहा बनना ।

संज्ञा स्त्री० [हिं० ढाना] (१) लहड़कों का एक खेल जिसे वे क्रीडियों से खेलते हैं । इसमें क्रीडियों का समूह एक घेरे में रख कर उसे गोलियों से मारते हैं । (२) वह कौड़ी जो इस खेल में रखी जाती है ।

ढाक—संज्ञा पुं० [सं० अपढक = पलाश] पलाश का पेड़ । चिड़िया । ढीउल ।

मुहा०—ढाक के तीन पात = धरा एक सा निर्धन । कमी भरा पूरा नहीं । (निर्धन मनुष्य के संबंध में खोलते हैं) । ढाक तले की छहड़ महुँप तले की सुवड़ = जितके पाव धन नहीं रहवा वह निर्गुणी और धनवाना स्वर्गुण्य सम्यज समझा जाता है ।

संज्ञा पुं० [सं० ढका] लड़ाई का पड़ा ढोल । ३०—गोमुख, ढाक, ढोल, पयवानक । बाजत रव अति होत भयानक ।—सखल ।

ढाकना-संज्ञा पुं० दे० "ढकन" ।

ढाका-संज्ञा पुं० [सं० ढक] पूर्वीय बंगाल का एक नगर जो पुराने समय में महीन सूती कपड़ों के लिये प्रसिद्ध था जैसे, ढाके की चदर, ढाके की मलमल ।

ढाकापाटन-संज्ञा पुं० [दे०] एक प्रकार का फूलदार महीन कपड़ा ।

ढाकेवाला पट्टे-संज्ञा पुं० [हिं० ढक + पट्टे (पथी नाँव)] एक प्रकार की पुरानी नाँव जिसके ऊपर बराबर छप्पर छाया रहता है । छप्पर के नीचे बैठ कर माफ़ी नाँव खेतें हैं ।

ढाटा-संज्ञा पुं० [हिं० ञड़] (१) कपड़े की वह पट्टी जिससे ढाड़ी बाँधी जाती है ।

क्रि० प्र०—बाँधना ।

(२) वह बड़ा साफा जिसका एक फँट ढाड़ी, और गाल से होता हुआ जाता है । (३) वह कपड़ा जिससे सुरदे का मुँह इतलिये बाँध देते हैं जिसमें कफन सरकने से मुँह खुल न जाय ।

ढाड़-संज्ञा स्त्री० [अनु०] (१) चिमवाड़ । चील । गरज (बाघ सिंह आदि की) । दे० "दहाड़" । (२) चिहाड़त ।

मुहा०—ढाड़ मारना = चिह्ला कर रोना ।

विशेष—दे० "धाड़" ।

ढाड़ना-क्रि० सं० दे० "ढाड़ना" । उ०—एक परे गाढ़े एक ढाड़त ही काढ़े एक देखत हैं ढाड़े कहीं पावक भयावना ।—तुलसी ।

ढाड़स-संज्ञा पुं० [सं० ढड़, प्रा० ढिड] (१) संकट कठिनाई या विपत्ति के समय चित्त की स्थिरता । धैर्य । धीरज । शांति ।

आश्रयन । साँवना । तसही ।

क्रि० प्र०—होना ।

मुहा०—ढाड़स देना या बाँधाना = बचनों से हुली चित्त को शांत करना । तसही देना ।

(२) दृढ़ता । साहस । हिम्मत ।

क्रि० प्र०—होना ।

मुहा०—ढाड़स बाँधाना = साहस उत्पन्न करना । उल्लासित करना ।

ढाड़िन-संज्ञा स्त्री० [हिं० ढाड़ी] ढाड़ी की स्त्री ।

ढाड़ी-संज्ञा पुं० [दे०] [स्त्री० ढाड़िन] एक प्रकार के नीच गाँवों जो जन्मोत्सव के अवसर पर लोगों के यहाँ जाकर मचाई आदि के गीत गाते हैं । उ०—ढाड़ी और ढाड़िन गाँवें हरि के ढाड़े पचावैं हरिप असीस देत मस्तक नवाइ के ।—सूर ।

ढाड़ौन-संज्ञा पुं० [सं० ढिडिण] जल सिरिस का पेड़ ।

विशेष—यह पेड़ पानी के किनारे होता है और जंगली सिरिस से कुछ छोटा होता है । बीचक के अनुसार यह त्रिविध, कफ, कुट और बवासीर को दूर करता है ।

ढाना-क्रि० सं० [सं० ध्वंसन, हिं० ढाना] (१) दीवार मकान

आदि को गिराना । जंची उठी हुई पत्तु को तोड़ फोड़ कर गिराना । ध्वस्त करना ।

संज्ञा० क्रि०—देना ।

(२) गिराना । गिरा कर जमीन पर ढालना । जैसे, किसी को मार कर ढाना ।

संज्ञा० क्रि०—देना ।

ढापना-क्रि० सं० दे० "ढापना" ।

ढाबरा-वि० [हिं० ढलर = गड्ढा] मिट्टी और कीचड़ मिला हुआ (पानी) । मटमला । गदला । उ० भूमि परत भा ढाबरा पानी । जसु जीवहि माया लपटानी ।—तुलसी ।

ढाबा-संज्ञा पुं० [दे०] (१) शगवती । (२) जाल । (३) परद्वती । (४) रोटी की बूकान । यह बूकान जहाँ लोग दाम देकर भोजन करते हैं ।

ढामक-संज्ञा पुं० [अनु०] ढोल नगारे आदि का शब्द । उ०—वमकत ढोल ढमाक डफला तपल ढामक जोर ।—सूदन ।

ढामिना-संज्ञा पुं० [दे०] एक प्रकार का साँप ।

ढार-संज्ञा पुं० [सं० धार] (१) वह स्थान जो बराबर क्रमशः नीचा होता गया हो और जिस पर से होकर कोई पत्तु नीचे फिसल या बह सके । उतार । उ०—सकुच सुरत धारभ ही बिछुरी लाज सजाय । दरकि ढार डुरि दिग भई छीठ डिठाई आय ।—विहारी । (२) पथ । मार्ग । प्रणाली । उ०—उरे ढार तेही दरत वृजे ढार दर न । कर्मों हूँ आनन धान सों नैना जागत नैन ।—विहारी । (३) प्रकार । उँचा । ढँस । रचना । बनावट । उ०—(क) दग धाकौंई अधसुले देह धकौंई ढार । सुरत सुखी सी देखित दुखित सरभ के भार ।—विहारी । (ख) तिय के मुख सुंदर धन्यो विधि फेरयो परगार । तिलन बीच की बिंदु है गाल गोल हक ढार ।—सुमारक ।

संज्ञा स्त्री० (१) ढाल के आकार का कान में पहनने का एक गहना । धिरिया । (२) पड़ेली नामक गहना ।

ढारना-क्रि० सं० [सं० धार, हिं० धार + ना (प्रत्य०)] (१) पानी या और किसी द्रव पदार्थ को आधार से नीचे गिराना । गिरा कर बहाना । उ०—(क) उत्तर देइ नहिँ, लेइ उसाम् । नरि चरित करि दारइ श्याम् ।—तुलसी । (ख) उग गारि आये ढाड़ी नैनन दारति नीर ।—सूर । (२) गिराना । ऊपर से छोड़ना । ढालना । जैसे, वास्ता ढारना ।

विशेष—दे० "ढाबना" ।

ढारस-संज्ञा पुं० दे० "ढाड़स" ।

ढाल-संज्ञा स्त्री० [सं०] तलवार, भाले आदि का धार रोकने का अथ जो चमड़े धातु आदि का बना हुआ थाली के आकार का गोल होता है । फरी । चर्म । धाड़ । फलक ।

विशेष—ढाल गँडे के पुट्टे, कण्ठु की खोपड़ी, घातु धादि कई चीजों की बनती है। जिस ओर इसे हाथ से पकड़ते हैं वपर यह गहरी ओर धातो की ओर उभरी हुई होती है। धातो की ओर इसमें ४—१ कटि या मोटी फुलिया बढ़ी होती है।

मुहा०—ढाल धाचना = ढाल हाथ में लेना।
 संज्ञा स्त्री० [सं० धार] (१) वह स्थान जो धातो की ओर क्रमशः इस प्रकार धराधर नीचा होता गया हो कि उसपर पड़ी हुई वस्तु भीचे की ओर खिसक या लुढ़क या बह सके।
 वतार। जैसे, (क) पानी, ढाल की ओर बहेगा। (ख) वह पहाड़ की ढाल पर से फिसल गया। (२) ढंग। प्रकार। तौर। तरीका। उ०—सदा मनि शान में कि वेद कि पुरान में, कि ध्यान, दान मान में सुपेसे एक ढाल है।—सुमान। † (३) उगाही। चंदा। बेहरी। (पंजाब)

ढालना—कि० सं० [सं० धार] (१) पानी या और किसी द्रव पदार्थ को गिराना। डेंडलना। जैसे, (क) हाथ पर पानी ढाल दो। (ख) घड़े का पानी इस बरतन में ढाल दो।
 बोलल की शराय गिलास में ढाल दो।

संज्ञा० कि०—देना।—लेना।

मुहा०—ढालना = शरय पीना। मयपान करना।
 (२) शराय पीना। मयपान करना। जैसे, धात्रकल तो शरय ढालवे हो। (३) बेचना। विक्री करना। (बलाल)।
 (४) थोड़े दाम पर माल निकालना। सस्ता बेचना। लुटाना।
 (५) ताना धोड़ना। धर्मय बोलना। † (६) चंदा वतारना। उगाही करना। (पंजाब)। (७) पिचली हुई धातु धादि को साँचे में ढाल कर बनाना। पिचली हुई सामग्री से साँचे के द्वारा निर्मित करना। जैसे, लोटा ढालना, खिलौने ढालना।

संज्ञा० कि०—देना।—लेना।

ढालवाँ—वि० [हिं० ढाल] [स्त्री० ढालवाँ] जो धातो की ओर क्रमशः इस प्रकार धराधर नीचा होता गया हो कि उसपर पड़ी हुई वस्तु ज़ररी से लुढ़क, फिसल या बह सके। जिसमें ढाल हो। ढालवार। ढाल्। जैसे, यह रास्ता ढालवाँ है। सँभल कर चकवा।

ढालिया—संज्ञा पुं० [हिं० ढालना] कूब, पीतल, ताँबा, जस्ता, इत्यादि पिचली धातुओं को साँचे में ढाल कर बरतन गहने धादि बनानेवाला। भरिया। लुलवा। साँचिया।

ढालुआँ—वि० दे० “ढालवाँ”।

ढालू—वि० दे० “ढालवाँ”।

धाघना—कि० सं० [दे०] गिराना।

धासाँ—संज्ञा पुं० [सं० धस] ढग। लुटेरा। डाँड। उ०—धासर

धासनि के डका रचनी चहुँ दिसि घोर। शंकर निजपुर राखिषे चिति सुलोचन कोर।—तुलसी।

ढासना—संज्ञा पुं० [सं० धा = धारण करना + षासन] (१) वह ऊँची वस्तु जिस पर बैठने में पीठ या शरीर का ऊपरी भाग टिक सके। सहारा। टेक। ढँडगन। (२) तथिया।

ढाहना—कि० सं० [सं० ध्वंसन] शीघर, मकान धादि को गिराना। ध्वस्त करना। धाना। उ०—(क) ढाहत भूप रूप तरु मूला। चली विपति धारिधि अशुकला।—तुलसी।
 (ख) धूप वन काटि महासात ढाहन क्षयो नगर के द्वार दीना गिराई।—सूर।

विशेष—दे० “ढाना”।

ढाहना—संज्ञा पुं० [हिं० ढाहना] नदी का ऊँचा करारा।

ढिँढोरना—कि० सं० [अतु०] (१) गपन करना। गपना। विलोडना। हाथ ढाल कर डूँडना। सोजना। तत्पारा करना। उ०—(क) दयों बचिपु भजिहूँ घन धानेंद यैत्रे रहँ धर पंडि ढिँघोरत।—वनानंद। (ख) भूलि गई सासन की घेरी। सात रहे घर सकल ढिँघोरी।—विभ्राम।

ढिँढोरा—संज्ञा पुं० [अतु० धम + ढल] (१) वह गोल जिसे बजा कर सर्वसाधारण को किसी बात की सूचना दी जाती है। घोषणा करने की बेरी। डुगडुगिया।

मुहा०—ढिँढोरा पीटना या बजाना = दोष बजा कर किसी बात की सूचना सर्वसाधारण को देना। चाँधे ओर धोपित करना। मुनादी करना।

(२) वह सूचना जो ढोल बजा कर सर्वसाधारण को दी जाय। घोषणा। मुनादी। उ०—जो मैं ऐसा जानती मोति कियु बुल होय। नगर ढिँढोरा फेरती, मोति करो जनि कोय। (मचलित)।

कि० प्र०—फेरना।

ढिकचन—संज्ञा पुं० [दे०] गले का एक भेद।

ढिकुली—संज्ञा स्त्री० दे० “ढेकुली”।

ढिग—कि० वि० [सं० दिग् = घोर] पास। समीप। निकट। नजदीक। उ०—मुसली धुनि सुनि सवै ध्यालिनो हरि के दिन बलि धाई।—सूर।

विशेष—यद्यपि यह संज्ञा शब्द है पर इसका प्रयोग सतमी विभक्ति का बोध करके प्रायः कि० वि० यन् ही होता है।

संज्ञा स्त्री० (१) पास। सामीप्य। (२) सट। किनारा। घोर। उ०—सेतुबंध ढिग चडि रगुगई। जितव कृपाउ सिंधु बहुवाड़े।—तुलसी।—(३) कपड़े का किनारा। पाड़। कोर। हाशिया। उ०—(क) छाज ढिगन की तररी ताके पीत भेड़निया कीनी।—सूर। (ख) पट की ढिग कन

ढंपियत सोमित सुभग सुवेस । हृद रददृद ध्रुवि देखियत
सद रददृद की रेख ।—विहारी ।

ढिठार्ई—उंशा छी० [हिं० ढीठ + आई (अव०)] (१) गुरु जनों के
समक्ष व्यवहार की अनुचित स्वच्छंदता । संकोच का अनुचित
अभाव । छटता । चपलता । गुस्ताखी । उ०—दुमिहर्हि
सज्जन मोरि ढिठार्ई ।—मुलसी । (२) लोक वाज्ना का
अभाव । निर्लज्जता । (३) अनुचित साहस ।

ढिठुनी—उंशा छी० [देग०] (१) फल या पत्ते के साथ लगा
हुआ टहनी का पतला नरम भाग । (२) किसी वस्तु के सिरे
पर दाने की तरह उभरा हुआ भाग । डोंडी । (३) कुच का
अग्र भाग । बोंड़ी ।

ढिठ्वरी—उंशा छी० [हिं० डिम्बा] (१) टीन, शीशे, या पकी
मिट्टी की डिबिया जिसके मुँह पर बत्ती लगा कर मिट्टी का
तेल जलाते हैं । मिट्टी का तेल जलाने की छुच्छीदार
डिबिया । (२) धरतन के सचि के पहले के तीन भागों में से
सब से नीचे का भाग । सचि की पेंटी का भाग ।

उंशा छी० [हिं० बपना] (१) किसी कसे जानेवाले पंच के
सिरे पर लगा हुआ सोहारे का चौड़ा टुकड़ा जिससे पंच
बाहर नहीं निकलता । (२) चमड़े या मूँज की वह चकती
जो घरले में हंस लिये लगाई जाती है जिसमें तकला
न चिसे ।

ढिमका—उप० [हिं० धमका का धनु०] [स्त्री० ढिमकी] धमुक ।
धमका । फर्ला । पलाना ।

धी०—कलाना ढिमका=अनुक धमुक मनुथ । ऐसा ऐसा
आदमी ।

ढिलढिला—वि० [हिं० ढीला] (१) ढीला ढाला । (२) (रस धादि)
जो गाढ़ा न हो । पानी की तरह पतला ।

ढिलार्ई—उंशा छी० [हिं० ढीला] (१) ढीला होने का भाव ।
कसा न रहने का भाव । (२) शिथिलता । मुली । आलस्य ।
किसी कार्य के करने में अनुचित बिलंब । जैसे, तुम्हारी ही
ढिलार्ई से यह काम पिछड़ा है ।

उंशा छी० [हिं० ढीलना] ढीलने की क्रिया या भाव । ढीला
करने का काम ।

ढिलाना—क्रि० स० [हिं० ढीलना का प्रे०] (१) ढीलने का काम
कराना । (२) ढीला कराना ।

†क्रि० स० (१) ढीला करना । (२) कसी या बँधी हुई
वस्तु को खोलना । उ०—जसु स्वामी जब उठे प्रभाता ।
बँदन बँधे खरु सुखदाता ॥ खेती दित लै गए ढिलार्ई ।
भेद न जान्यो गए थोपार्ई ।—रघुपाम ।

ढिल्लड़—वि० [हिं० ढीला] ढील करनेवाला । मट्टर । सुल ।
ढिसरना—†क्रि० अ० [स० धंसन] (१) किसल पड़ना ।

सरक पड़ना । (२) प्रवृत्त होना । सुकना । उ०—उक्ति
युक्ति सय तयहों बिसरे । जब पंडित पड़ि तिय पै डितरे ।—
निरबल । (३) फलों का कुछ कुछ पकना ।

ढींगर—उंशा पुं० [सं० ढिंग] (१) चट्टे ढील बौल का आदमी ।
मोटा मुट्ठंडा आदमी । (२) पति या उपपति । उ०—कह
कवीर ये हरि के काज । जोहया के ढींगर कौन है जान ।—
कवीर ।

ढौंढ—उंशा पुं० दे० “ढौंढा”

ढौंढस—उंशा पुं० [सं० ढिंडिय] ढिंडूसी नाम की सरकारी ।

ढौंढा—उंशा पुं० [सं० ढुंडि = खेदार, गंधेय] (१) चट्टा पेट ।
निकला हुआ पेट ।

मुहार—ढौंढा फूलना = पेट में बचा होने के कारण पेट
निकलना ।

(२) गर्भ । हमल ।

मुहार—ढौंढा गिराना = गर्भपात करना ।

ढींगे *—क्रि० वि० दे० “ढिंग” ।

ढीठ—उंशा छी० [देग०] रेखा । लकीर । डंडीर । उ०—रेख छांड़ि
जाऊँ तो बरखें लक्ष्मिनजी लें, भीख वितु दिपे भीख मीच
हैं न पावती । कोऊ मंद्मारी यह राम के न आगे आये
दासन पावन हैं देत संकावती । ढीठ मेट देवें फिर ढीठ ही
मिलाय खेवें, हँ है घात सोई भंगवंत जू को भावती ।—
हनुमान ।

ढीठ—वि० [सं० धृष्ट] (१) वह जो गुरु जनों के सामने ऐसा
काम करे जो उनके सामने अनुचित हो । बड़ों का संकोच या
उर न रखनेवाला । बड़ों के सामने अनुचित स्वच्छंदता प्रकट
करनेवाला । छट । वैशद्य । शोख । उ०—विनु पड़े कहु
कहवें गोसाईं । सेवक समय, न ढीठ दिठार्ई ।—मुलसी ।
(२) किसी काम को करने में उसके परिश्राम का भय न
करनेवाला । ऐसे कामों में आगा पोछा न करनेवाला
जिनसे लोगों को विरोध हो । अनुचित साहस करनेवाला ।
बिना डर का । उ०—ऐसे भए हैं कान्ह दधि गिराय मटकी
सय फोरी ।—सूर । (३) साहसी । हिम्मतवर । हियाव-
वाला । किसी बात से जल्दी न डर जानेवाला ।

ढीठला—उंशा छी० [सं० धृष्टा] दिठार्ई ।

ढीठा—वि० दे० “ढीठ” ।

उंशा पुं० दिठार्ई । छटता ।

ढीठयो—उंशा पुं० दे० “ढीठ” ।

दीम—उंशा पुं० [देग०] (१) पत्थर का चट्टा टुकड़ा । पत्थर का
टोका । उ०—सिला टोम दाईं इलावीर बाईं धड़ा धड़
सहँ भड़ा मड़ु हँई ।—सूदन । (२) मिट्टी की पिंकी ।

दीमडो—उंशा पुं० [देग०] डूब । कुँआ । (ढिंगल)

दीमा-संज्ञा पु० [देख०] देला। ईंट पत्थर आदि का टुकड़ा।
बैका।

दील-संज्ञा स्त्री० [हि० दीला] (१) कार्य में उत्साह का प्रभाव।
शिथिलता। शतलपराता। नागुस्तीदी। सुखी। अशुचित्त
विलंब। जैसे, इस काम में दील करोगे तो ठीक न होगा।

क्रि० प्र०—करना।

मुहा०—दील देना = ध्यान न देना। दलचित्त न देना। बेपर-
वाही करना।

(२) बंधन को डीला करने का भाव। ढोरी को कड़ा वा
तना न रखने का भाव।

मुहा०—दील देना = (१) पतंग की डोर बड़ाना जिससे वह
आगे बढ़ सके। (२) स्वच्छंदता देना। मनमाना करने का
अवसर देना। वश में न रखना।

† वि० दे० "दीला"।

† संज्ञा पु० बालों का कौड़ा। जूँ।

दीलना-क्रि० सं० [हि० दीला] (१) डीला करना। कसा या तना
हुआ न रखना। बंधन आदि की लंबाई घटाना। जिससे
बैंधी हुई वस्तु और आगे या इधर उधर बढ़ सके। जैसे,
पतंग की ढोरी दीलना, रास डीलना।

संयो० क्रि०—देना।

(२) बंधन मुक्त करना। छोड़ देना। उ०—ताप सूर बदरु-
यन दीलत बन बन फित्त पावे।—सूर। (३) (पकड़ी हुई
रस्ती आदि को) इस प्रकार छोड़ना जिसमें वह आगे या नीचे
की ओर बढ़ती जाय। ढोरी आदि को घटाना या ढालना।
जैसे, ऊपूँ में रस्ती डीलना। (४) किसी गाड़ी वस्तु को
पतला करने के लिये छलमें पानी आदि ढालना।

दीला-वि० [सं० गिथिक, प्रा० सिद्धिक] (१) जो कसा या तना
हुआ न हो। जो सत और से छूट लिंका न हो। (ढोरी,
रस्ती, तागा आदि) जिसके छदरे या बैंधे हुए छोरों के बीच
भौल हो। जैसे, लगाम डीली करना, ढोरी डीली करना,
चारपाई (की बुनावट) डीली होना।

मुहा०—डीली छोड़ना या देना = बंधन टूटना करना। अज्ञान
न रखना। मनमाना इधर उधर करने के लिये स्वच्छंद करना।

(२) जो खूब कस कर पकड़ा हुआ न हो। जो अच्छी तरह
जमा या पैदा न हो। जो चढ़ा से बैंधा या लगाम हुआ न
हो। जैसे, पंच डीला होना, जंगले की छड़ डीली होना।

(३) जो खूब कस कर पकड़े हुए न हो। जैसे, सुड़ी डीली
करना, गाँस डीली होना। बंधन डीला होना। (४) जिसमें
किसी वस्तु को ढालने से बहुत सा स्थान इधर उधर छूटा
हो। जो किसी समानेवाली चीज के हिसाब से बंधा या
बौद्ध हो। फुराँस। कुम्पादा। जैसे, डीला गुला, डीला शंगा,
डीला पायजामा। (५) जो कड़ा न हो। बहुत गीला। जिसमें

जल का भाग अधिक हो गया हो। पनीला। जैसे, रस
डीली करना, चारानी डीली करना। (६) जो अपने हठ पर
अड़ा न रहे। प्रयत्न या संकल्प में शिथिल। जैसे, डीले मत
पढ़ना, बराबर अपने रूप का तकाजा करते रहना।

क्रि० प्र०—पढ़ना।

(७) जिसके क्रोध आदि का वेग मंद पड़ गया हो। धीमा।
शांत। गरम। जैसे, जरा भी डीले पड़े कि वह सिर पर
चढ़ जायगा।

क्रि० प्र०—पढ़ना।

(८) मंद। सुस्त। धीमा। शिथिल। जैसे, उल्लाह डीला
पढ़ना।

मुहा०—डीली ब्राँस = मंद मंद दृष्टि। अशुक्ली ब्राँस। रस
या मद मरी चितवन। उ०—देह लग्यो दिग मोहपति तज
नेह निरवाहि। डीली भौखियन ही हूँ तई गई कनखियन
पाहि।—विहारी।

(९) मट्टर। सुस्त। आलसी। काहिल। (१०) जिसमें काम
का वेग कम हो। नरुपसक।

दीलापन-संज्ञा पु० [हि० दीला + पन (प्रत्य०)] दीला होने का
भाव। शिथिलता।

दीह-संज्ञा पु० [सं० दीप, हि० दीह] ऊँचा टीला। इह।

हुँडा-संज्ञा पु० [हि० हुँदना] चारों। उचका। ठग। लुटेरा।
उ०—चार हुँद बटपार अन्याई अपमारगी कहाँ जै।—सूर।

हुँदपाणि-संज्ञा पु० [सं० दंढपाणि] (१) शिव के एक गण।
(२) दंढपाणि भैरव। उ०—पुनि काल भैरव दंढपाणिदि
और सिगरे देव को।—कबीर।

हुँदवाना-क्रि० सं० [हि० हुँदना का प्रे०] हुँदने का काम कराना।
खोजवाना। खसारा कराना। पता लगवाना।

हुँडा-संज्ञा स्त्री० [सं०] पुराय के अनुसार एक रावली का नाम
जो हिरण्यकशिपु की बहिन थी। इसको शिव से यह वर
प्राप्त था कि अग्नि में न जलेगी। जब महाद्व को मारने के
यत्नेक उपाय हिरण्यकशिपु कर के हार गया तब उसने हुँडा
को बुलाया। यह महाद्व को लेकर आग में बैठी। विष्णु
मगधान की कृपा से महाद्व तो न जले, हुँडा जल कर मरग
हो गई।

हुँडि-संज्ञा पु० [सं०] गणेश का एक नाम। ये २६ विनायकों
में से हैं।

विशेष—कारीसंड में लिखा है कि सारे विषय इनके हुँदे
हुए या अन्वेषित हैं इसी से इनका नाम हुँडि या
हुँदिया है।

हुँडी-संज्ञा स्त्री० [देख०] बाँह। बाहु। मुसुक।

मुहा०—दुंदिया चढ़ना = मुक्के बांधना । ३०—उसने मूट वस्त्र की पगड़ी उतार दुंदिया चढ़ाय मूट दांडी और सिर मूट के पीछे बांध लिया ।—लखतू ।
संज्ञा छं० दे० “दोडी” ।

दुकना—क्रि० अ० [रेप०] (१) घुसना । प्रवेश करना ।

संयो० क्रि०—जाना ।

(२) मुक पढ़ना । टूट पढ़ना । पिल पढ़ना । एकवारगी किसी और धावा करना ।

संयो० क्रि०—पढ़ना ।

(३) किसी बात को सुनने या देखने के लिये झाड़ू में छिपना । लुकना । घात में छिपना । जैसे, हुक कर कोई बात सुनना, किसी को पकड़ने के लिये दुकना । ३०—(क) हुकी रहीं जहाँ तहाँ सब गोरी । (घ) जब न होत प्यास कह थास । कित चिरिहार दुकत खेर लास ? ।—जायसी ।

दुकास + संज्ञा छं० [अटु० डुक डुक] पानी पीने की बहुत अधिक इच्छा । अधिक प्यास ।

क्रि० प्र०—लगना ।

दुफा—संज्ञा पुं० दे० “दुका” ।

दुभा + संज्ञा पुं० [रेप०] धूँसा । सुखा ।

दुटीना—संज्ञा पुं० दे० “दोस” ।

दुनमुनिया + संज्ञा छं० [हिं० दनमुना] (१) लुढ़कने की क्रिया या भाव । (२) सावन में कजली गाने का एक रंग जिसमें खिया एक मंडल में घूमती हुई गोल बांध कर गाती हैं और बीच बीच में झुकती और खड़ी होती हैं ।

दुरकना + क्रि० अ० [हिं० दार] (१) लुढ़कना । फिसल कर सरकना या गिरना । ३०—लोग चढ़ी अति मोहन की मति मोह महा गिरि तें दुरकी ।—देव । (२) सुकना । ३०—संग में सहेसते रईस ते नपीसयेस सीस उसनीस धना धाम धार दुरकी ।—गोपाल ।

दुरना—क्रि० अ० [हिं० दार] (१) गिरकर बहना । डरकना । बलना । टपकना । ३०—नैनन दुरहिं मोति थै मूँगा । जस मुकु छाप रहा है मूँगा ।—जायसी ।

संयो० क्रि०—पढ़ना ।

(२) कभी इधर कभी उधर होना । इधर उधर डोलना । दगमगाना । (३) रूत या रस्ती के रूप की बलु का इधर उधर हिलना । लहर खाकर डोलना । लहराना । जैसे, चँवर दुरना । ३०—जोवन मदमाती इतराती येनी दुस्त कदि पँ छवि भाड़ी ।—सूर । (४) लुढ़कना । फिसल पढ़ना । (५) मरूठ होना । सुकना ।

संयो० क्रि०—पढ़ना ।

(६) अतुल्य होना । प्रसन्न होना । हवाला होना । ३०—विन करनी मोपे दुरो कान्ह गरीष निवाज ।—रसनिधि ।

दुरहुरी—संज्ञा छं० [हिं० डुरना] (१) लुढ़कने की क्रिया या भाव । नीचे ऊपर होते हुए फिसलने या बगुने की क्रिया । ३०—लटि सी करति कलहंस युग देव कहँ टटि मोतिसिरी द्विति टटि दुरहुरी सेति ।—देव ।

क्रि० प्र०—लेना ।

(२) पगडंडी । पतला रास्ता । (३) नप में लगी हुई सोने के गोल दानों की पंक्ति ।

दुराना—क्रि० सं० [हिं० डुरना] (१) गिरा कर बहाना । डरकाना । डुलकाना । टपकाना । ३०—पलक न जावति रहत प्यान धरि चारंबार दुवावति पानी ।—सूर । (२) इधर उधर हिलाना । लहराना । ३०—धुना फहराइ छत्र चार सो दुराइ बाणे धीरन यनाप यों चबाइ दाम चाम के ।—हनुमान । (३) लुढ़कना । फिसल कर गिरना ।

दुराभा—संज्ञा पुं० [हिं० डुरना] गोल मटर । फेरव मटर ।

दुरी—संज्ञा छं० [हिं० डुरना] वह पतला रास्ता जो लोगों के चलते चलते बन जाय । पगडंडी ।

दुलकना—क्रि० अ० [हिं० दात + कना (प्रत्य०) वा सं० लुङ, हिं० लुङकना] नीचे ऊपर होते हुए फिसलना या सरकना । ऊपर नीचे चकर खाते हुए बहना या चल पढ़ना । लुढ़कना । ढँग लाना ।

संयो० क्रि०—जाना ।

दुलकाना—क्रि० सं० [हिं० दुलकना] लुढ़काना । ढँगलाना ।

दुलना—क्रि० अ० [हिं० डल] (१) गिरकर बहना । डरकना ।

संयो० क्रि०—जाना ।

(२) लुढ़कना । फिसल पढ़ना ।

संयो० क्रि०—जाना ।

(३) मरूठ होना । सुकना ।

संयो० क्रि०—जाना ।—पढ़ना ।

(४) अतुल्य होना । प्रसन्न होना । हवाला होना ।

संयो० क्रि०—जाना ।—पढ़ना ।

(५) कभी इधर कभी उधर होना । इधर उधर डोलना । इधर से उधर हिलना । ३०—दुलति श्रीष, बटकति नरु येसरि, संद संद गति छाये ।—सूर । (६) सूत या रस्ती के रूप की बलु का इधर उधर हिलना । लहर खाकर डोलना । लहराना । जैसे, चँवर दुलना ।

दुलवार—संज्ञा छं० [हिं० देना] (१) दाने का काम । (२) दाने की मनुद्री ।

दुला छं० [हिं० डुलना] (१) दुलाने की क्रिया । (२) दुलाने की मनुद्री ।

दुलवाना—क्रि० सं० [हिं० देना का प्र०] दाने का काम कराना । धेरक लेकर दाने का काम कराना ।

क्रि० सं० [हिं० “दुलाना” का प्र०] दुलाने का काम कराना ।

दुलाना-कि० सं० [हिं०-दुल] (१) गिरा कर पहाना । चरकाना ।
दाखना ।

संयो० कि०—देना ।

(२) नीचे ढालना । उधारा न रहने देना । गिराना । उ०—
रथंनय खंडि, महाराय खंडी कपिपथ्य सहित दुलार्जे ।—सूर ।

(३) सुदृक्काना । उँगलाना ।

संयो० कि०—देना ।

(४) प्रवृत्त करना । मुकाना ।

संयो० कि०—देना । लेना ।

(५) धनुकुंज करना । प्रसन्न करना । कृपानु करना ।

संयो० कि०—देना ।—लेना ।

(६) कमी इषर, कमी बषर करना । इषर उषर दुलाना ।

इषर से उषर हिलाना । जैसे, चौर दुलाना । (७) घटाना ।

फिराना । उ०—सूर स्वाम स्वामावश कौनो ज्यो सँग छुहि

दुलावै हो ।—सूर । † (८) फेरना । पालना । उ०—ऊँचा

मदल विनाइया घुना कली दुलाय ।—कबीर ।

कि० सं० [हिं० देना] दोने का काम कराना ।

दुलुआ-संज्ञा स्त्री० [देग०] खरूर की घनी छुई चीनी ।

दुवारारि-संज्ञा पुं० [देग०] घुन नाम का कीड़ा ।

दुँकना-कि० प्र० दे० "दुँकना" ।

दुँका-संज्ञा पुं० [हिं० दुँकना] किसी बात या धनुष को गुप्त रूप
से देराने के लिये छाड़ में छिपाने का कार्य । दिना अपनी

भाइट दिप कृञ्च देखने को घात में छिपाने का काम ।

कि० प्र०—खगना ।

दुँद-संज्ञा स्त्री० [हिं० दुँदना] खोज । तलाश । अन्वेषण ।

मुहा०—दुँद दुँद=खोज । तलाश ।

दुँदना-कि० सं० [सं० दुँदना] खोजना । तलाश करना । अन्वेष-
ण करना । पता लगाना ।

संयो० कि०—देना (दूसरे के लिये) ।—लेना (अपने
लिये) ।—ढालना ।

धौ०—दुँदना उड़ना=खोजना । तलाश करना ।

दुँदला-संज्ञा स्त्री० [सं० दुँदला] दुँदला नाम की राक्षसी ।

दुँका-संज्ञा पुं० [देग०] कंठल, धास आदि के बोक का एक मान
जो दस प्ले का होता है ।

संज्ञा पुं० दे० "दुँका" ।

दुँदिया-संज्ञा पुं० [देग०] श्वेतार जैने का एक भेद । इस
संप्रदाय के लोग मूर्ति नहीं पूजने और भोजन राना के

समय को छोड़ सदा सुँद पर पटी बंधे रहते हैं ।

दुँसा-संज्ञा पुं० [देग०] बलियो की एक जाति ।

दुँसा-संज्ञा पुं० [देग०] कुहरी का एक पेच, जिसमें ऊपर भाया
हुआ पदकवान नीचेवाले की गरदन पर ढाप मार कर उसे
चित्त करता है ।

दुँहा-संज्ञा पुं० [सं० लुप] (१) डेर । घटाखा । (२) टीला ।
मीठा । (३) मिट्टी का छोटा ढूँड जो सीमा या हृद सूचिन
करने के लिये खड़ा किया जाता है ।

दुँहा-संज्ञा पुं० दे० "दुँह" ।

दुँक-संज्ञा स्त्री० [सं० दुँक] पानी के किनारे रहनेवाली एक
विट्टिया जितकी चोंच और गरदन लंबी होती है । उ०—
(क) क्या सोन दुँक एक लेदी । रहे अपुरी मीन जल
भेदी ।—जायसी । (ख) कृत पिक मानहुँ गजमाने ।
दुँक मदेश जँट बिसराने ।—गुलाली ।

दुँकली-संज्ञा स्त्री० [हिं० दुँक = विट्टिया, निमको गरदन लंबी होती
है] (१) सिंचाई के लिये कुएँ से पानी निकालने का एक
यंत्र जिसमें एक ऊँची लकड़ी के ऊपर एक छाड़ी
लकड़ी बंधी बंधी बीच से इस प्रकार उधाराई रहती है कि उसके
दोनों छोर बारी बारी से नीचे ऊपर हो सकते हैं । इसके
एक छोर में, मिट्टी छोपी या पत्थर बंधा रहता है और दूसरे
छोर में जो कुएँ के मुँह की ओर होता है, डोल की रस्सी
बंधी होती है । मिट्टी या पत्थर के बोक में डोल कुएँ में से
ऊपर आती है ।

कि० प्र०—खजाना ।

(२) एक प्रकार की सिलाई जो जोड़ की शकीर के समानांतर
नहीं होती, छाड़ी होती है । छाड़े बोक की सिलाई ।

कि० प्र०—मारना ।

(३) घान कृतने का लकड़ी का यंत्र जिसका आधार सींचने
की दुँकली ही से मिलता सुलता पर उससे बहुत छोटा और
जमीन से लगा हुआ होता है । घन-कुट्टी । दुँकी । (४) भयके
ने अके उतारने का यंत्र । बकराउयंत्र । (५) सिर नीचे
और पैर ऊपर करके उलट जाने की क्रिया । कलायाड़ी ।
कलैया ।

कि० प्र०—साना ।

दुँका-संज्ञा पुं० [हिं० दुँक = पत्ती] (१) कोशहू में यह बसत जो
जाट के सिर से कतरी तक लगा रहता है । (२) बड़ी दुँकी ।

दुँकिया-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का नृत्य ।

दुँकिया-संज्ञा स्त्री० [हिं० दुँकी] डेढ़पटी चदर बनाने में कपड़े की
एक प्रकार की काट और सिलाई जिससे कपड़े की लंबाई एक
तिहाई घट जाती है और चौड़ाई एक तिहाई बढ़ जाती है ।
इस काट की विशेषता यह है कि इसमें भाड़ा जोड़ किनारे
लक नहीं आता, बीच ही तक रह जाता है ।

विशेष—इसमें कपड़े की लंबाई के तीन बराबर भागों में तह
काके छाड़े निशान डाल दते हैं । फिर एक छाड़ी लकीर पर
आधी दूर तक एक किनारे की ओर से फाड़ते हैं । इसी
प्रकार दूसरे किनारे की ओर दूसरी छाड़ी लकीर पर भी

मुहा०—हुंदिया चढ़ाना = मुसके वांधना । उ०—उसने मट इसकी पगड़ी उतार हुंदिया चढ़ाय मूढ़ दादी और सिर मूढ़ रथ के पीछे बांध लिया।—लएलू ।

संज्ञा स्त्री० दे० “ढोंडी” ।
दुकना—क्रि० अ० [दे०] (१) घुसना । प्रवेश करना ।

संयो० क्रि०—जाना ।
(२) झुक पड़ना । हट पड़ना । पिज पड़ना । एकबारगी किसी और धावा करना ।

संयो० क्रि०—पड़ना ।
(३) किसी बात को सुनने या देखने के लिये आड़ में छिपना । लुकना । घात में छिपना । जैसे, दुक कर कोई बात सुनना, किसी को पकड़ने के लिये दुकना । उ०—(क) दुकी रहीं जहाँ तहाँ सब गोरी । (ख) जब न होत चारा कइ थासा । कित चिचिहार दुकत खेई लासा ? ।—जायसी ।

दुकास + संज्ञा स्त्री० [अशु० दुक दुक] पानी पीने की बहुत अधिक इच्छा । अधिक प्यास ।

क्रि० प्र०—लगना ।

दुका—संज्ञा पुं० दे० “दुका” ।

दुध + संज्ञा पुं० [दे०] घूँसा । मुक्का ।

दुटौना—संज्ञा पुं० दे० “बोटा” ।

दुनसुनिया + संज्ञा स्त्री० [हिं० दनमनना] (१) लुढ़कने की क्रिया या भाव । (२) सावन में कजली गाने का एक उंग जिसमें खिया एक मंडल में घूमती हुई गोल बांध कर गानती हैं और बीच बीच में झुकती और खड़ी होती हैं ।

दुरकना + *—क्रि० अ० [हिं० दार] (१) लुढ़कना । फिसल कर सरकना या गिरना । उ०—लौभ चढ़ी अति मोहन की मति मोह महा गिरि तें दुरकी ।—देव । (२) झुकना । उ०—संग में सईसते रईस तें नफीस येस सीस उसनीस घना बाम घोर दुरकी ।—गोपाल ।

दुरना—क्रि० अ० [हिं० दार] (१) गिरकर बहना । ढरकना । ढलना । टपकना । उ०—नैनन दुरहिं मेति औ भूँगा । जस गुड़ खाय रहा हूँ गूँगा ।—जायसी ।

संयो० क्रि०—पड़ना ।
(२) कभी इधर कभी उधर होना । इधर उधर डोलना । दगमगाना । (३) सूत या रस्ती के रूप की वस्तु का इधर उधर हिलना । बहर साकर डोलना । लहराना । जैसे, चँवर दुना । उ०—जोयन मदमाती इतराती येनी दुरत कटि पै छवि भाड़ी ।—सूर । (४) लुढ़कना । फिसल पड़ना । (४) प्रवृत्त होना । झुकना ।

संयो० क्रि०—पड़ना ।
(५) अनुकूल होना । प्रसन्न होना । कृपालु होना । उ०—बिन करनी मोपे डूरी काण्ठ गरीय निवाज ।—रसनिधि ।

दुरदुरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० डरना] (१) लुढ़कने की क्रिया या भाव । नीचे ऊपर होते हुए फिसलने या चढ़ने की क्रिया । उ०—छटि सी करति कलहंस जुग देव कइ दृटि मोतिसिरी छिति छटि दुरदुरी छेति ।—देव ।

क्रि० प्र०—लेना ।
(२) पगडंडी । पतला रास्ता । (३) नय में लगी हुई सोने के गोल दानों की पंक्ति ।

दुराना—क्रि० स० [हिं० डरना] (१) गिरा कर बहाना । ढरकाना । डुलकाना । टपकाना । उ०—पलक न लावति रहत ध्यान धरि वारंवार दुरावति पानी ।—सूर । (२) इधर उधर हिलाना । लहराना । उ०—धुमा फहराइ छय चौर सो दुराइ बाने धीन यनाय यों चलाइ दाम चाम के ।—हनुमान । (३) लुढ़कना । फिसल कर गिरना ।

दुहआ—संज्ञा पुं० [हिं० डरना] गोल मटर । फेरव मटर ।

दुरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० डरना] वह पतला रास्ता जो लोगों के चलते चलते बन जाय । पगडंडी ।

दुलकना—क्रि० अ० [हिं० दल + कना (प्रत्य०) वा स० लुटन, हिं० लुढ़कना] नीचे ऊपर होते हुए फिसलना या सरकना । ऊपर नीचे चकर खाते हुए चढ़ना या चल पड़ना । लुढ़कना । ढंग जाना ।

संयो० क्रि०—जाना ।

दुलकाना—क्रि० स० [हिं० दुलकना] लुढ़काना ढंगजाना ।

दुलना—क्रि० अ० [हिं० ढाल] (१) गिरकर बहना । ढरकना ।

संयो० क्रि०—जाना ।

(२) लुढ़कना । फिसल पड़ना ।

संयो० क्रि०—जाना ।

(३) प्रवृत्त होना । झुकना ।

संयो० क्रि०—जाना ।—पड़ना ।

(४) अनुकूल होना । प्रसन्न होना । कृपालु होना ।

संयो० क्रि०—जाना ।—पड़ना ।

(५) कभी इधर कभी उधर होना । इधर उधर डोलना । इधर से उधर हिलना । उ०—डुलति प्रीव, लटकति नक येसरि, मंद मंद गति आवै ।—सूर । (६) सूत या रस्ती के रूप की वस्तु का इधर उधर हिलना । लहर साकर डोलना । लहराना । जैसे, चँवर दुलना ।

दुलवार—संज्ञा स्त्री० [हिं० डोना] (१) ढोने का काम । (२) ढोने की मजदूरी ।

संज्ञा स्त्री० [हिं० डुलना] (१) दुलाने की क्रिया । (२) दुलाने की मजदूरी ।

दुलवाना—क्रि० स० [हिं० डोना वा प्रे०] ढोने का काम कराना । चोक लीकर जाने का काम कराना ।

क्रि० स० [हिं० 'डुलना' का प्रे०] दुलाने का काम कराना ।

दुलाना-कि० सं० [हि० दाल] (१) गिरा कर बहाना । दरकाना ।
दालना ।

संयो० कि०—देना ।

(२) नीचे डालना । उहरा न रहने देना । गिराना । उ०—
रसदन खंडि, महारप खंडी कथिप्यत्र सहित दुलाजै ।—सूर ।

(३) लुढ़काना । डँगलाना ।

संयो० कि०—देना ।

(४) प्रवृत्त करना । सुकाना ।

संयो० कि०—देना । लेना ।

(५) अनुहल करना । प्रसन्न करना । कृपालु करना ।

संयो० कि०—देना ।—लेना ।

(६) कभी इधर, कभी उधर करना । इधर उधर डुलाना ।
इधर से उधर हिलाना । जैसे, खँवर दुलाना । (७) चलाना ।
फिराना । उ०—सूर त्याग रगामावध कीने ज्यों सँग धुँह
दुलावै हो ।—सूर । † (८) फैलना । पोतना । उ०—जैचा
महल चिनाइया चूना कली दुलाप ।—कबीर ।
कि० सं० [हि० डोना] डोने का काम कराना ।

दुलुआ-संज्ञा स्त्री० [देग०] खजूर की बनी हुई चीनी ।

दुवाराना-संज्ञा पुं० [देग०] घुन नाम का कीड़ा ।

दूकना-कि० अ० दे० "दुकना" ।

दूका-संज्ञा पुं० [हि० डूकना] किसी यात या वस्तु को गुप्त रूप
से देखने के लिये झाड़ू में छिपने का कार्य । बिना अपनी
आइट दिख कुड़ देखने को धाल में छिपने का काम ।

कि० प्र०—खगना ।

दूढ़-संज्ञा स्त्री० [हि० डूढ़ना] खोज । तलाश । अन्वेषण ।

मुहा०—दूढ़ डूढ़=खोज । तलाश ।

दूढ़ना-कि० सं० [सं० डूढ़न] खोजना । तलाश करना । अन्वेष-
ण करना । पता खगना ।

संयो० कि०—देना (दूसरे के लिये) ।—लेना (अपने
लिये) ।—डालना ।

धौ०—दूढ़ना दूढ़ना=खोजना । तलाश करना ।

दूँडला-संज्ञा स्त्री० [सं० डूंड] दुँडा नाम की राक्षसी ।

दूका-संज्ञा पुं० [देग०] डंठल, घास आदि के वेगम का एक मान
जो दस प्ले का होता है ।

संज्ञा पुं० दे० "दूँका" ।

दूढ़िया-संज्ञा पुं० [देग०] श्वेतांबर जैनों का एक भेद । इस
संप्रदाय के लोग मूर्ति नहीं पूजते और भोजन स्नान के
समय को धोड़ सदा सुँड पर पटी बाँधे रहते हैं ।

दूसर-संज्ञा पुं० [देग०] बनियों की एक जाति ।

दूसर-संज्ञा पुं० [देग०] कुस्ती का एक पेश जिसमें ऊपर भाषा
दुष्पा पदबन्धान नीचेवाले की गरदन पर हाथ मार कर उभे
चित करता है ।

दूहा-संज्ञा पुं० [सं० दूह] (१) डेर । घटाबा । (२) डील ।
भीटा । (३) मिट्टी का छोटा ढूह जो सीमा या हद सूचित
करने के लिये खड़ा किया जाता है ।

दूहा-संज्ञा पुं० दे० "दूह" ।

दूँक-संज्ञा स्त्री० [सं० डूँक] पानी के किनारे रहनेवाली एक
चिड़िया जिसकी बाँच और गरदन लंबी होती है । उ०—
(क) केवा मोन डूँक भक लेदी । रहे अपुरि मीन जल
भेदी ।—जायसी । (ख) कूत्त पिठ मानहुँ गजमाते ।
डूँक मदेअ जँट बिसराते ।—मुजसी ।

डूँकली-संज्ञा स्त्री० [हि० डूँक = चिड़िया, जिसकी गरदन बकी ऐसी
है] (१) सिंघाई के लिये कुएँ से पानी निकालने का एक
यंत्र जिसमें एक ऊँची लकड़ी के ऊपर एक आड़ी
लकड़ी बाँधी बीच से इस प्रकार उठराई रहती है कि उसके
दोनों छोर धारी धारी से नीचे ऊपर हो सकते हैं । इसके
एक छोर में, मिट्टी छोड़ी या पत्थर बंधा रहता है और दूसरे
छोर में जो कुएँ के मुँह की ओर होता है, डोल की रस्सी
बंधी होती है । मिट्टी या पत्थर के योग से डोल कुएँ में से
ऊपर आती है ।

कि० प्र०—चलाना ।

(२) एक प्रकार की सिलाई जो जोड़ की लकीर के समानांतर
नहीं होती, आड़ी होती है । आड़े डोग की सिलाई ।

कि० प्र०—मारना ।

(३) धान कूटने का लकड़ी का यंत्र जिसका आकार साँबने
की डूँकली ही से मिलता जुलता पर उससे बहुत छोटा और
जमीन से जगा हुआ होता है । धन-कुटी । डूँकी । (४) भयके
से अर्क बतारने का यंत्र । बकनुदयंत्र । (५) सिर नीचे
और पैर ऊपर करके उलट जाने की क्रिया । कलापानी ।
कलैया ।

कि० प्र०—खाना ।

डूँका-संज्ञा पुं० [हि० डूँक = पत्नी] (१) कोण्टू में यह बाँस जो
जाट के सिरे से कतरी तक लगा रहता है । (२) बड़ी डूँकी ।

डूँकिया-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का मृत्प ।

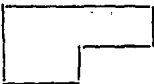
डूँकिया-संज्ञा स्त्री० [हि० डूँकी] सेदपटी चढ़ बनाने में कपड़े की
एक प्रकार की काट और मिजाई जिससे कपड़े की लंबाई एक
तिहाई घट जाती है और चौड़ाई एक तिहाई बढ़ जाती है ।
इस काट की विशेषता यह है कि इसमें आड़ा जोड़ किनारे
तक नहीं आता, बीच ही तक रह जाता है ।

विशेष—इसमें कपड़े की लंबाई के तीन बराबर भागों में यह
काटके आड़े निरान डाल देते हैं । फिर एक आड़ी लकीर पर
आधी दूर तक एक किनारे की ओर ने फाड़ते हैं । इसी
प्रकार दूसरे किनारे की ओर दूसरी आड़ी लकीर पर भी

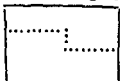
धापी दूर तक फाड़ते हैं। इसके उपरांत धीच में पढ़नेवाले भाग को खड़े बल आधे धाध फाट देते हैं। इस तरह जो दो टुकड़े निकलने हैं उन्हें खानी म्यान को पूरा करते हुए जोड़ देते हैं।

पूरा कपड़ा

कटा हुआ टुकड़ा



दोनों जुड़े हुए टुकड़े



ढेंकी—संज्ञा स्त्री० [हि० ढेक = एक पत्नी] धनाज कूटने का लकड़ी का एक यंत्र। ढेंकली।

ढेंकुरी—संज्ञा स्त्री० दे० "ढेंकली"।

ढेंकुली—संज्ञा स्त्री० दे० "ढेंकली"।

ढेंढ़ा—संज्ञा पुं० [देग०] (१) कौवा। (२) एक नीच जाति जो भरे जानवरों का मांस खाती है। (३) एक नीच जाति। व०—मांस खाए तै ढेंढ़े सय मद पीवै सो नीच।—कथार। (४) मूख। मुड़। जड़।

संज्ञा पुं० [सं० हुंढ, हिं० ढेंढ] कपास धादि का ढोडा। ढोंढ। व०—सेमर सुवना सेहप बुद्ध ढेंढे की धास।—कपीर

ढेंढर—संज्ञा पुं० [हिं० ढेंढ] आँख के ढेले का निकला हुआ विकृत मांस। टटर।

ढेंढवा—संज्ञा पुं० [देग०] काले मुँह का बंदर। लंगूर।

ढेंढा—संज्ञा पुं० [सं० हुंढ] दे० "ढेंढ़"।

ढेंढो—संज्ञा स्त्री० [हिं० ढेंढ] (१) फरास का ढोडा। (२) पोस्ते का ढोडा। (३) कान का एक गहना। तरकी।

ढेंप—संज्ञा स्त्री० [देग०] फल वा पत्ते के छोर पर का वह भाग जो टहनी से लगा रहता है। (२) कुचाम। ढेंपी।

ढेंपी—संज्ञा स्त्री० दे० "ढेंप"।

ढेंउआ—संज्ञा पुं० [देग०] पैसा।

ढेंऊ—संज्ञा पुं० [देग०] पानी की जहर। तरंग। हिलोरा।

ढेंडूस—संज्ञा स्त्री० दे० "ढेंडूसी"।

ढेंडुनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० ढेंप] (१) पत्ते वा फल का वह भाग जो टहनी से लगा रहता है। ढेंप। (२) किसी वस्तु की दाने की तरह बमरी हुई नाक। ढोंढ। (३) कुचाम।

ढेंघरी—संज्ञा स्त्री० दे० "ढेंघरी"।

ढेंघुकी—संज्ञा पुं० [देग०] ढेंघुआ। पैसा। व०—यथा ढेंघुक सुदा जग माहीं। हैं सय एक पदिक सम नाहीं।—विधाम।

ढेंघुवारी—संज्ञा पुं० [देग०] पैसा। ढेंघुआ। ताम्रमुद्रा।

ढेंमोज—संज्ञा स्त्री० [देग० ढेऊ + फा० मोज] बड़ी लहर। समुद्र की ऊँची लहर। (लारा०)

ढेर—संज्ञा पुं० [हिं० भना ?] नीचे ऊपर रखी हुई बहुत सी वस्तुओं का समूह जो कुछ ऊपर उठा हुआ हो। राशि। अटाला। अंबार। गंज। टाल।

क्रि० प्र०—करना।—खाना।

मुद्रा०—ढेर करना = मार कर गिरा देना। मार दाखना। ढेर रखना = मार कर रख देना। आँता न छोड़ना। ढेर रहना = (१) गिर कर मर जाना। (२) चक कर चूर हो जाना। अव्यत शिथिल हो जाना। ढेर हो जाना = (१) गिर कर मर जाना। मर जाना। (२) प्यस होना। गिर पड़ जाना। जैसे, मकान का ढेर होना।

† वि० बहुत। अधिक। ज्यादा।

ढेरना—संज्ञा पुं० [देग०] सूत या रस्सी बटने की फिरकी।

ढेरा—संज्ञा पुं० [देग०] (१) सुतली बटने की फिरकी जो परस्पर फाटती हुई दो धाड़ों लकड़ियों के धीच में एक खड़ा डंडा जड़ कर बनाई जाती है। (२) मोट के मुँह पर का लकड़ी वा लोहे का घेरा जो मोट का मुँह खुला रखने के लिये लगा रहता है। (३) अंकेल का पेड़। (पैचक)

ढेराढोंक—संज्ञा स्त्री० [देग०] एक प्रकार की मछली। दे० "ढोंक"।

ढेरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० ढेर] ढेर। समूह। अटाला। राशि।

ढेला—संज्ञा पुं० दे० "ढेला"।

ढेलावास—संज्ञा स्त्री० [हिं० ढेला + सं० वास] रस्सी का एक फंदो जिससे ढेला फँकते हैं। गोफना।

ढेला—संज्ञा पुं० [सं० ढल, हिं० ढला] (१) ईंट, मिट्टी, कंकड़, पत्थर धादि का टुकड़ा। चका। जैसे, ढेला फँक कर मारना।

धो—ढेला चौप।

(२) टुकड़ा। खंड। जैसे, नमक का ढेला। (३) एक प्रकार का धान। उ०—फपूर फाट कजरी रतनारी। मधुकर ढेला जीरा सारी।—जायसी।

ढेला चौप—संज्ञा स्त्री० [हिं० ढेला + चौप] भादों सुदी चौप।

विरोध—मेसा प्रवाद है कि इस दिन चंद्रमा देखने से कलंक लगता है। यदि कोई चंद्रमा देख ले तो उसे लोगों की कुछ गालियाँ सुन लेनी चाहिये। गालियाँ सुनने की सीधी युक्ति दूसरों के घरों पर ढेला फँकना है। अतः लोग इस दिन ढेला फँकते हैं। यह प्रायः एक प्रकार का विनोद वा खेलवाड़ सा हो गया है।

ढेंकली—संज्ञा स्त्री० दे० "ढेंकली"।

हंसा-संज्ञा पुं० [दे०] चक्रवर्ति की तरह का एक पैर जिसकी धार से रस्सियां बनाई जाती हैं। जवंती। (२) पान के भीरे पर की धारण के लिये सन या पटवे का डंठल।

हैया-संज्ञा स्त्री० [हिं० ह्यै] (१) बाईं सेर की धार। बाईं सेर दौलने का बख्तर। (२) बाईं गुने का पराड़ा। (३) शनैरघर के एक राशि पर स्थिर रहने का बाईं वर्ष का काल।

होकरना-क्रि० सं० [भज०] धीना। धी जाना। (अशिश या विनोद)

होका-संज्ञा पुं० [दे०] (१) पाथर या और किसी कड़ी धातु का बड़ा धनगड़ टुकड़ा। (२) वह धांस जो कोल्हू में जाट के लिये से लेकर कोल्हू तक पोसा रहता है। (३) पो बोली पान। चार सौ पान। (समेली)

होगा-संज्ञा पुं० [हिं० ङ] डकोसता। पालख। मूढा आहंवर। क्रि० प्र०-करना।-रचना।

होगधूर-संज्ञा पुं० [हिं० ङ + धूर] भूतविद्या। भूतता। पालख।

होगवाजी-संज्ञा स्त्री० [हिं० ङ + जा० बजी] पालख। आहंवर। होंगी-वि० [हिं० ङ] पालखी। डंकासलेपान। मूढा आहंवर करनेवाला।

होंटा-संज्ञा पुं० दे० "दोटा"।

होड़-संज्ञा पुं० [सं० हुं] (१) कपास, पोस्ते आदि का जोड़ा। (२) कड़ी।

होड़ो-संज्ञा स्त्री० [हिं० हों] नामि। धुत्ती।

होका-संज्ञा स्त्री० [दे०] एक प्रकार की मजबूती जो १२ इंच लंबी होती है। डेरी। ढोंक।

होका-संज्ञा पुं० दे० "होका"।

होटा-संज्ञा पुं० [सं० इहित = हटकी, हिं० टैठ] [स्त्री० टैठ] (१) पुत्र। पोटा। व०-दोलत छोटा छोट रूपदोटा-सुलसी। (२) लफड़ा। पालक। व०-गोकुल के गूँद एक तांबरे से तो छोटा माई अस्थिपन के पैड़ पंडि जी के पैड़े परयो की।-सूर।

होटी-संज्ञा स्त्री० [सं० इहित] लफड़ी।

होटीन-संज्ञा पुं० दे० "दोटा"। व०-रयाम वरन एक मिरवो होटीना तेहि मोहो मोहनी जगाई।-सूर।

होड़ा-संज्ञा पुं० [दे०] जैट। (हिं०)

होना-क्रि० सं० [सं० बोद = बहन करना, से जाना, अर्थात् विपर्यय-देव] (१) मोक्ष लाद कर ले जाना। मार ले चलना। भारी बस्तु को ऊपर लेकर एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुँचाना। संयो० क्रि०-देना।-ले जाना। (२) उड़ा ले जाना। जैसे, चोर सारा माल दो ले गए।

होर-संज्ञा पुं० [हिं० डरना] गाय, बैल, भैंस आदि पशु।

होपाया। मवेशी। व०-जय हरि मधुवन को जु सियारे पीरज धतत न होर।-सूर।

होरा-संज्ञा पुं० दे० "होर"।

होरना-क्रि० सं० [हिं० डरना] (१) पानी या और कोई द्रव पदार्थ गिराकर बहाना। डरकाना। डालना। व०-(क) रीते भरे भरे पुनि होरे चाई फेरि भरे। कबहुँक तूय बूड़े पानी में कबहुँ शिखा तरै।-सूर। (ख) जननी अति रिम जानि बैचायो चित्तै बदन खोचन जब होरे।-सूर। (ग) वै चक्रु हू कृत जिनके रीते भरे भरे गदि होरे।-सूर। (२) लुटकाना।

होरी-संज्ञा स्त्री० [हिं० डेरना] (१) डालने का भाव। डरकाने की क्रिया या भाव। व०-कनक कबल केसरि भरि ल्याई धरि दिगो हरि पर होरी की। अति धानेद भरी मज सुवती गायति गीत सवै होरी की।-सूर। (२) रट। धुन। पान। लो। खगन। व०-(क) सूरदास गोपी बड़ भागी। हरि दरसन की होरी लागी। (ख) होरी लाई सुनन की कदि गोरी सुसकत। होरी होरी सकुच सों भोरी भोरी बात।-बिहारी। क्रि० प्र०-खगना।

होल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार का बाजा जिसके दोनो ओर धमड़ा मड़ा होता है।

विदोष-संज्ञा पुं० के गोल कटे हुए लंबावतें कुंदे का भीतर से खोखला करते हैं और दोनो ओर सुँद पर धमड़ा मड़ते हैं। छोटा डोल हाथ से और बड़ा डोल लकड़ी से बनाया जाता है। दोनो ओर के धमड़ों पर दो मित्र मित्र प्रकार का शब्द होता है। एक ओर तो 'दब दब' की तरह मंभीर ध्वनि निकलती है और दूसरी ओर टनकार का सा शब्द होता है।

धो-संज्ञा पुं०-डोलद्रमका = राजा राजा। धूमकाय।

मुहा०-डोल पीटना या बजाना = धोपवा करना। प्रसिद्ध करना। प्रशंसा करना। प्रकाशित करना। चारों ओर कहने या उतारते फिरना।

(२) कान का परदा। कान की वह झिल्ली जिस पर वायु का आघात पड़ने से शब्द का ज्ञान होता है।

डोलक-संज्ञा स्त्री० [सं० दोष] छोटा डोल। डोलकी।

डोलकिया-संज्ञा पुं० [हिं० डोलक] डोल बजानेवाला।

डोलकी-संज्ञा स्त्री० दे० "डोलक"।

डोलन-संज्ञा पुं० दे० "डोलना"।

डोलना-संज्ञा पुं० [हिं० दोष] (१) डोलक के धारदार का छोटा जंतर जो तारों में पिरो कर गले में पहना जाता है। व०-जाने गदि सोना डोलना पहिराए चतुर सुनार।-सूर। (२) डोलक के धारदार का बड़ा पेखन जिसे पहिपू की तरह लुटका कर सड़क का कंकड़ पीटते या सेत के बेलों फोड़ कर जमीन चौरस करते हैं।

संज्ञा पुं० [सं० दोहन] बर्षों का छोटा झूला । पालना ।
 † क्रि० सं० [सं० दोहन] (१) डरकाना । टाकना । (२)
 इधर वधर दिखाना । झुलाना । जैसे, चँवर दोहनना ।

ढोलनी—संज्ञा स्त्री० [सं० दोहन] बर्षों का झूला । पालना ।
 विशेष—यह झूला रस्ती से छटका हुआ एक छोटा खटोला सा
 होता है । ४०—धगर चंदन की पालनेा गड़ई गुर धार
 सुधार । जैसे आये गड़ि दोहननी विसकर्मों से सुत धार ।—
 सूर ।

ढोलवाही—संज्ञा स्त्री० दे० “ढुलवाही” ।

ढोला—संज्ञा पुं० [हिं० ढेल] (१) बिना पैर का रँगनेवाला एक
 प्रकार का छोटा सुपेद कीड़ा जो आधा शंखल से दो शंखल
 तक लंबा होता है और सड़ी हुई वस्तुओं (फल आदि)
 तथा पीछों के हरे बँडलों में पड़ जाता है । (२) यह दूध या
 छोटा चूल्तरा जो गाँवों की सीमा सूचित करने के लिये बना
 रहता है । हद का निशान ।

धौ०—डोलाचंदी ।

(१) भोज मेहराय बनाने का ढाट । जदाय । (२) पिंढ ।
 धरि । देह । ३०—जौ लगि ढोला तौ लगि ढोला तौ लगि
 धनव्यवहार ।—कबीर । (२) पति । प्यारा प्रियतम । (३)
 एक प्रकार का गीत । (७) मूल मनुष्य । जड़ ।

ढोलिनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० ढोलिया] ढोल बजानेवाली । डफालिन ।
 ४०—नदिनि डोलिनि ढोलिनी सहनाहनि मेरिकारि । निरंत
 संत विनोद सउँ विहँसत खोलत नारि ।—जायसी ।

ढोलिया—संज्ञा पुं० [हिं० ढेल] [स्त्री० ढोलिनी] ढोल बजानेवाला ।
 ४०—मीर बड़े बड़े जात बड़े तहाँ डोकियै पार जगायत के
 है ।—ठाकुर ।

ढोली—संज्ञा स्त्री० [हिं० ढेल] . २०० पानों की गड़्डी । ४०—
 डोलिन डोलिन पान विकाना भीटन के मैदावा ।—कबीर ।
 संज्ञा स्त्री० [हिं० ठोली, ठोली] हँसी । दिखनी । ठोली ।
 ठढ़ा । ४०—सूर प्रभु की नारि शयिका नागरी चरति लीने
 मोहि करति ढोली ।—सूर ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

ढोव—संज्ञा पुं० [हिं० ढोवना] यह पदार्थ जो किसी मंगल के अक्-
 सर पर लोग सरदार या राजा के भेंट ले जाते हैं । डाली ।
 नजर । ४०—लै लै दोव प्रजा प्रमुदित सबे भति भति
 भरि भार ।—गुलसी ।

ढोवना—क्रि० सं० दे० “ढोना” ।

ढौँचा—संज्ञा पुं० [सं० षट्, प्रा० षट् + हिं० चार] यह पहाड़ा
 जिसमें क्रम से एक एक थंका का साठे चार गुना थंका बत-
 ढाया जाता है । साठे चार का पहाड़ा ।

ढौँसन—क्रि० सं० [ऋजु०, हिं० षोस] धानद धरति करना । ४०—
 तियनि के तहा पिय तियन सियछा त्यागे डौसत प्रबंछा मंछा
 धाय रामदार के ।—रघुराज ।

ढोकन—संज्ञा पुं० [सं०] घूस । शिवावत ।

ढोकना—क्रि० सं० [देग०] पीना । (अश्लिष्ट)

ढोरी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] रट । धुन । लौ । जगन । ४०—
 (क) रसिक सिरमौर दौरि जगावत गावत राधा राधा धाम ।
 —सूर । (ख) रुखिये खात नहीं अनखात मलै दिन राति
 रही परि दौरि ।—देव ।
 संज्ञा स्त्री० दे० “ढूरी” ।

घ

घ—हिंदी या संस्कृत वर्णमाला का पंद्रहवाँ व्यंजन । इसका उच्चारण-
 स्थान मूर्दा है । इसके उच्चारण में आभ्यंतर प्रयत्न स्पष्ट
 और सांयुनासिक है । बाह्यप्रयत्न संवार, नाद, घोष और
 अल्पप्राय है । इसका संयोग मूर्दान्य वर्ण, अंतस्थ तथा म
 और ह के साथ होता है ।

घ—संज्ञा पुं० (१) विदुदेव । एक शुद्ध का नाम । (२) आभूषण्य ।

(३) निर्व्यय । (४) ज्ञान । (५) शिव का एक नाम । (६)
 पानी का घर । (७) दान । (८) पिंजल में एक गण्य का
 नाम ।

वि० गुण्यरहित । गुण्यशून्य ।

घागण—दो मात्राओं का एक मात्रिक गण्य । इसके दो रूप हो सकते
 हैं जैसे, ‘धी (s) और धरि (h)’ ।

त

त-संस्कृत या हिंदी धर्ममाला का बत्तीसवाँ, ध्वंजन पद्य का १६ वाँ और तर्गा का पदवा अक्षर मिलका उच्चारण-स्थान दंत है। इसके उच्चारण में विचार, भास और अघोष प्रयत्न लगते हैं। इसके उच्चारण में प्राचीन मात्रा का समय लगता है।

तं-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) नाव। नौका। (२) पुण्य। पवित्र। तं-प्रत्यय दे० 'तं'।

तंक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) भय। डर। (२) यह दुःख जो किसी प्रिय को वियोग से हो। (३) पत्थर काटने की टाँकी। (४) पहनने का कपड़ा।

तंकारी-संज्ञा स्त्री० दे० 'टंकारी'।

तंग-संज्ञा पुं० [का०] घोड़ों की जीन कसने का तस्मा। घोड़ों की पेटी। कसन।

ति० (१) कसा। चढ़। (२) आगिज। दुखी। दिक्। विकल। हैरान। (३) सकरा। संकुचित। पतला। सुस्त। संकीर्ण। छोटा। छोटा। सिकुड़ा हुआ। सकेत।

मुहा०—तंग जाना, होना = चपरा जाना। चक जाना। तंग करना = सताना। दुःख देना। हाथ तंग होना = फलते पैसा न होना। घनहीन होना।

तंगदस्त-वि० [का०] (१) कृपण। कंजल। (२) दरिद्री। धनहीन। गरीब।

तंगदस्ती-संज्ञा स्त्री० [का०] (१) कृपणता। कंजली। (२) दरिद्रता। धनहीनता। गरीबी।

तंगहाल-वि० [का०] (१) निर्धन। गरीब। (२) विपद्ग्रस्त। कष्ट में पड़ा हुआ। (३) भीमार। रोगग्रस्त। माणासन्न।

तंगा-संज्ञा पुं० [दे०] (१) एक प्रकार का पेड़। (२) अघघ्रा। डबल पैसा।

तंगी-संज्ञा स्त्री० [का०] (१) तंग या सँकरे होने का भाव। संकीर्णता। संकोच। (२) दुःख। तकलीफ। क्लेश। (३) निर्धनता। गरीबी। (४) कमी।

तंजैव-संज्ञा स्त्री० [का०] एक प्रकार की मरीन और पशुिया मलमल। तंढ-संज्ञा पुं० [सं० तंढन] नृत्य। नाच। उ०—श्रुत गुलाब के सुगंध के समीर सने परत कुही है जल जंत्रय के तंढ की।—रसकुसुमाकर।

संज्ञा पुं० [सं०] एक ऋषि का नाम।

तंढक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) खंजन पत्ती। (२) फेन। (३) पेड़ का छना। (४) वह वायव जिसमें बहुत से समाल हैं। (५) धुरूपिया।

तंढव-संज्ञा पुं० [सं० तंढव] नृत्य विशेष। एक प्रकार का नाच। उ०—दोख रति पंडित अलक्षित करत काम तंढव सो मंडित कथा कहुँ पूरन की।—देव।

तंढि-संज्ञा पुं० [सं०] एक बहुत प्राचीन ऋषि का नाम जिनका

पुत्र महामारत में चाया है। इनके पुत्र के बनाए हुए मंत्र पुत्रवेद में हैं।

तंडु-संज्ञा पुं० [सं०] महादेव जी के नंदिकेधर।

तंडुरण-सं० पुं० [सं०] (१) चावल का पानी। (२) कीड़ा मकोड़ा।

तंडुल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चावल। (२) वायविडंग। (३)

तंडुली शक। चौलाई का साग। (४) प्राचीन काल की हीरे की एक ढौल जो न सरसों के बराबर होती थी।

तंडुल-जल-संज्ञा पुं० [सं०] चावल का पानी जो वैद्यक में बहुत दितकर बतलाया गया है। यह दो प्रकार से तैयार किया जाता है—(क) चावल को शूट कर शरगुने पानी में पका कर छान लेते हैं, यह उत्तम तंडुल-जल है। (ख) चावल को धोड़ी देर तक भिगे कर छान लेते हैं, यह तंडुल-जल साधारण है।

तंडुला-संज्ञा पुं० [सं०] (१) तंडुल-जल। (२) मूड़। पीच।

तंडुला-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वायविडंग। (२) फकही का पौधा।

तंडुलिया-संज्ञा स्त्री० [सं० तंडुल] चौलाई। चौराई।

तंडुली-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक प्रकार की ककड़ी। (२) चौलाई का साग। (३) धवतिका नाम की लता।

तंडुलीक-संज्ञा पुं० [सं०] चौलाई का साग।

तंडुलीय-संज्ञा पुं० [सं०] चौलाई का साग।

तंडुलीयक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वायविडंग। (२) चौलाई का साग।

तंडुलीयिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] वायविडंग।

तंडुलू-संज्ञा स्त्री० [सं० तंडुलु] वायविडंग। विडंग।

तंडुलेर, तंडुलेरक-संज्ञा पुं० [सं०] चौलाई का साग।

तंडुलोय-संज्ञा पुं० [सं०] चावल का पानी। दे० "तंडुल-जल"।

तंडुलोदक-संज्ञा पुं० [सं०] चावल का पानी। दे० "तंडुल-जल"।

तंडुलीय-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का बाँस।

तंत*—संज्ञा पुं० दे० "तंतु"। उ०—किंकरि हाय गइ पैरागी।

पाँच तंत धुनि यह एक खामी।—जायसी।
संज्ञा स्त्री० [हिं० त्रत] किसी बात के लिये जल्दी। श्रातुरता। अतावली। उ०—ध्यान की मूर्ति छलित से श्रागे जानि परत रघुनाथ ऐसे कहति है तंत सो।—रघुनाथ।

क्रि० प्र०—लगाना।

संज्ञा पुं० दे० 'तव'। उ०—योगिदि कोहू म चाही तव म मोहिँ तिस छाग। योग तंत श्में पानी काहि करै तेहि आग।—जायसी।

संज्ञा पुं० [सं० तंव] (१) यह यात्रा जिसमें यज्ञने के लिये तंत्र लगे हैं। जैसे, सितार, धीन, सारंगी। उ०—नटिन दोमिनि दोलिनी सह्यादिनि भेरिकार। निरतत तंत विनेद सउँ विहँसत खेजत नारि।—जायसी। (२) क्रिया। उ०—जनु उन योग तंत श्रव लेख।—जायसी। (३) तंत्र-शास्त्र। उ०—कई तंत्र तंत मंत सउँ हेरा। गपुत्र हेराय जो यह

भा मेरा।—जायसी। (४) हृष्टा। प्रथम कामना। ३०—
(क) विसि परजंत अनेत ध्यात जस विजय तंत जिय।—
गोपाल। (ख) बुद्धिमंत दुतिमंत तंत जाय मय निरधारत।—
गोपाल। (४) वश। अधीनता। ३०— लों पदमाकर आहूगो
कंत हकंत जयें नित्र तंत में जानी।—पद्माकर।

विशेष—दे० "तंत्र"।

वि० जो ताल में ठीक हो। जो वजन में बराबर हो।

तंत मंत्र—संज्ञा पुं० दे० "तंत्र मंत्र"। ३०—कह जिउ तंत मंत्र से
है। गण्ड हिराय जो यह भा मेरा।—जायसी।

तंतरी—संज्ञा पुं० [सं० तंत्री] वह जो तारवाले जाने यज्ञता
है। ३०—प्राये दुसह बसेत री कंत न चाए बीर। जन
मन घेषत संतरी मदन सुमन के तीर।—शृं० सत०।

तंति—संज्ञा स्त्री० [सं०] गी। गाय।

तंतिपाल—संज्ञा पुं० [सं०] (१) सद्देव का वह नाम जिससे यह
ब्रह्मात्मवास के समय विराट के यहाँ प्रसिद्ध थे। (२) वह
जो गी की रचा या पालन करता हो।

तंतु—संज्ञा पुं० [सं० तण्ड] (१) सूत। डोरा। तागा।

यो०—तंतुकीट।

(२) ब्राह्म। (३) संतति। संतान। बाल पच्चे। (४)
विहार। फैलाव। (५) यज्ञ की परंपरा। (६) वंशारंपरा।

(७) तांत। (८) मकड़ी का आला।

तंतुक—संज्ञा पुं० [सं०] सरसो।

संज्ञा स्त्री० [सं०] नाड़ी।

तंतुकाष्ठ—संज्ञा पुं० [सं०] जुलाहों की एक लकड़ी जिसे लूजी
कहते हैं।

तंतुकी—संज्ञा पुं० [सं०] नाड़ी।

तंतुकीट—संज्ञा पुं० [सं०] (१) मकड़ी। (२) रेशम का कीड़ा।

तंतुजाल—संज्ञा पुं० [सं०] नलों का समूह। (पैचक)।

तंतुनाग—संज्ञा पुं० [सं०] मगर।

तंतुनाभ—संज्ञा पुं० [सं०] मकड़ी।

तंतुनिर्घोस—संज्ञा पुं० [सं०] ताड़ का पेड़।

तंतुपर्षी—संज्ञा पुं० [सं० तंतुपर्शु] श्रावण की पूर्णिमा जिस दिन
राक्षी बर्षी जाती है। रचाबंधन।

तंतुभ—संज्ञा पुं० [सं०] (१) सरसो। (२) बलुड़ा।

तंतुमत्त—संज्ञा पुं० [सं०] धाग।

तंतुर—संज्ञा पुं० [सं०] मृणाल। असोढ़। मुरार। कमल की जड़।

तंतुल—संज्ञा स्त्री० [सं०] मृणाल। कमलनाल।

तंतुवादक—संज्ञा पुं० [सं०] संगी। बीन आदि तार के बाजे
बजानेवाला। ३०—बहुति तंतुवादक रघुराहें। गान करन में
निपुन बनाहें।—रामारवभेषे।

तंतुवार—संज्ञा पुं० [सं०] (१) तांत। (२) तांती। दे०
"तंतुवार"।

तंतुवार्य—संज्ञा पुं० [सं०] (१) कपड़े बुननेवाला। तांती। भिन्न

भिन्न सृष्टियों में इन की उत्पत्ति भिन्न भिन्न प्रकार से
घटलाई गई है। किसी में इन्हें मखिर्यंघ पुरुष और मखिकार
की से और किसी में वैश्य पिता और पत्रियाणी माता के
गर्भ से उत्पन्न बतझाया गया है। इन की उत्पत्ति के संबंध
में अनेक प्रकार की कथाएँ भी हैं। (२) मकड़ी।

तंतुविग्रह—संज्ञा पुं० [सं०] केले का पेड़।

तंतुसार—संज्ञा पुं० [सं०] सुपारी का पेड़।

तंत्र—संज्ञा पुं० [सं०] (१) तत। तांत। (२) सूत। (३) जुलाहा।

(४) कपड़ा बुनने की सामग्री। (५) कपड़ा। वस्त्र। (६)
कुटुंब के भाय और योग्य आदि का कार्य। (७) निश्चित
सिद्धांत। (८) प्रमाण। (९) भाषण। दशा। (१०) माफने
फूँकने का मंत्र। (११) कार्य। (१२) करण। (१३)
उपाय। (१४) शकर्मचारी। (१५) राज्य। (१६) राज्य
का प्रबंध। (१७) सेना। फौज। (१८) अधिकार। (१९)
पद। कार्य करने का स्थान। (२०) समूह। (२१)
प्रसन्नता। आनंद। (२२) घर। मकान। (२३) धन।
सम्पत्ति। (२४) अधीनता। परबन्धता। (२५) श्रेणी।
पर्व। कोटि। (२६) दल। (२७) बड़ेरय। (२८) कुल।
खानदान। (२९) शपथ। कसम। (३०) हिंदुओं का
उपासना संबंधी एक शास्त्र।

विशेष—सोनों का विश्वास है कि यह शास्त्र शिव प्रणीत है।
यह शास्त्र तीन भागों में विभक्त है—आगम, यामल और
युग्य-तंत्र। धाराही-तंत्र के अनुसार जिसमें सृष्टि, प्रलय,
देवताओं की पूजा, सब कार्यों के साधन, पुराण, पट्टधर्म-
साधन और चार प्रकार के ध्यान योग का वर्णन हो
उसे आगम और जिसमें सृष्टि-तत्त्व, श्रेयतिथि, नित्य-मृत्यु,
कर्म, सूत्र, वर्णभेद और युगधर्म का वर्णन हो उसे
यामल कहते हैं और जिसमें सृष्टि, लय, मंत्रनिर्णय,
देवताओं के संस्थान, यत्र-निर्णय, तीर्थ-श्रावणधर्म,
कवच, श्रेयतिथि-संस्थान, मृत-कथा, शौच और शरीर
की-पुरुष लक्षण, राज-धर्म, दात-धर्म, मुधा-धर्म,
व्यवहार तथा आध्यात्मिक विषयों का वर्णन हो, वह तंत्र
कहलाता है। इस शास्त्र का सिद्धांत है कि कलियुग में
पैदिक मंत्रों ज्यों और यत्नों आदि का कोई फल नहीं होता।
इस युग में सप्त प्रकार के कार्यों की सिद्धि के लिये तंत्र-शास्त्र
में वर्णित मंत्रों और उपायों आदि से ही सहायता मिलती
है। इस शास्त्र के सिद्धांत बहुत गुप्त रखे जाते हैं और इसकी
शिखा लेने के लिये मनुष्य को पहले दीक्षित होना पड़ता
है। आज कल प्रायः मारण, वचाटन, वशीकरण आदि के
लिये सधा-अनेक प्रकार की सिद्धियों आदि के साधन के
लिये ही तंत्रोक्त मंत्रों और क्रियाओं का प्रयोग किया जाता
है। यह शास्त्र प्रधानतः शार्कों का ही है और इस के मंत्र

प्रायः ऋषेहीन शीतं पृकापरी हुया करते हैं। जैसे, हीं, क्वीं, भीं, र्घीं, रूँ, क्लूँ आदि। तान्त्रिकों का पंच मकार—मघ, मांस, मत्स्य, मुद्रा और मेषुन—और चक्रपूजा सिद्ध है। तान्त्रिक सच देवताओं का पूजन करते हैं पर उनकी पूजा का विधान सच से भिन्न श्रंग स्वतंत्र होता है। चक्रपूजा तथा अन्य अनेक-पूजाओं में तान्त्रिक लोग मघ, मांस और मत्स्य का बहुत अधिकता से व्यवहार करते हैं और घोषिन, तेलिन आदि स्त्रियों को नंगी करके उनका पूजन करते हैं। यद्यपि अथर्ववेद संहिता में मारुघ, मोहन, उषाटन और वरीकरघ आदि का वर्णन और विधान है तथापि धार्मिक तंत्र का उनको साथ कोई संबंध नहीं है। कुछ लोगों का विश्वास है कि कनिष्क के समय में और उसके उपरांत भारत में धार्मिक तंत्र का प्रचार हुआ है। चीनी यात्री फाहियान और हुएनसांग ने अपने लेखों में इस शास्त्र का कोई अवलोकन नहीं किया है। यद्यपि निश्चित रूप से यह नहीं कहा जा सकता कि तंत्र का प्रचार कब से हुआ पर ली भी इसमें संदेह नहीं कि यह ईसवी चौथी या पांचवीं शताब्दी से अधिक पुराना नहीं है। हिंदुओं की देला देसी यीद्धों में भी तंत्र का प्रचार हुआ और लक्ष्मणेश्वरी अनेक ग्रंथ बने। हिंदू तान्त्रिक उन्हें अपतंत्र कहते हैं और उनका प्रचार तिब्बत तथा चीन में है। यथाहीतंत्र में यह भी विश्वास है कि कैमिनि, करिञ्ज, नारद, गर्ग, पुत्रसत्य, श्रुपु, शुक्र, वृहस्पति आदि ऋषियों ने भी कई उपतंत्रों की रचना की है।

तंत्रक-संज्ञा पुं० [सं०] नया करपा।

तंत्रक-संज्ञा पुं० [सं०] शासन या प्रबंध आदि करने का काम।

तंत्रता-संज्ञा स्त्री० [सं०] कई कार्यों के उद्देश्य से कोई एक कार्य करना। कोई ऐसा कार्य करना जिससे अनेक उद्देश्य सिद्ध हों। जैसे, यदि किसी ने अनेक प्रकार के पाप किए हों तो उनमें से प्रत्येक पाप के लिये प्रायश्चित्त न करके एक ऐसा प्रायश्चित्त करना जिससे सब पाप नष्ट हो जायें, अथवा बार बार अस्वस्थ होने की दशा में प्रत्येक बार खान न कहे सच के अंत में एक ही बार खान कर लेना। (धर्मसार)

तंत्रधारक-संज्ञा पुं० [सं०] यज्ञ आदि कार्यों में वह मनुष्य जो कर्म कांड आदि की पुस्तक लेकर याज्ञिक आदि के साथ रथता हो। स्मृतियों के अनुसार यज्ञ आदि में ऐसे मनुष्य का होना आवश्यक है।

तंत्रयुक्ति-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह युक्ति जिसकी सहायता से किसी वाक्य का अर्थ आदि निकालने या समझने में सहायता की जाय।

विशेष—सुश्रुत संहिता में तंत्रयुक्तियाँ इस प्रकार की बताई गई हैं—अधिकरण, योग, पदार्थ, हेत्वर्थ, प्रदेय, अतिदेय, अरवर्ग, वाशयोरप, अर्थापत्ति, विपर्यय, प्रसंग, पृकांत,

अनेकांत, पूर्वपक्ष, निर्यय, अनुमत, विधान, अनागतवैषय अतिक्रान्तवैषय, संराय, व्याख्यान, स्वसंज्ञा, निर्वचन, निद-शान, नियोग, विकल्प, समुच्चय और उद्भव।

तंत्रपाप-संज्ञा पुं० [सं०] (१) तंतुपाप। तार्ती। (२) मकड़ी। तंत्रपाप-संज्ञा पुं० [सं०] (१) तंतुपाप। तार्ती। (२) मकड़ी। (३) तंत।

तंत्रसंस्था-संज्ञा पुं० [सं०] वह संस्था जो राज्य का शासन या प्रबंध करे। गवर्मेण्ट।

तंत्रसंस्थिति-संज्ञा स्त्री० [सं०] राज्य के शासन की प्रणाली। तंत्रसंज्ञा-संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिष शास्त्र का वह अंग जिसमें गणित के द्वारा ग्रहों की गति आदि का निरूपण होता है। गणित ज्योतिष।

तंत्रहोम-संज्ञा पुं० [सं०] वह होम जो तंत्र शास्त्र के मत से हो। तंत्रा-संज्ञा स्त्री० दे० "तंत्रा"।

तंत्रि-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) तंत्री। (२) तंत्रा।

तंत्रिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) गुडूकी। गुरुच। (२) तंत।

तंत्रिपाल-संज्ञा पुं० दे० "ततिपाल"।

तंत्रिपालक-संज्ञा पुं० [सं०] जयद्वय का एक नाम।

तंत्रो-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) बान सितार आदि धारों में ढगा हुआ तार। (२) गुडूकी। गुरुच। (३) शरीर की नस। (४) एक नदी का नाम। (५) रज्जु। रस्सी। (६) वह धागा जिसमें धाजने के लिये तार लगे हों। तंत्र। जैसे सितार, धीन, सारंगी आदि। (७) धीया।

संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो धागा यजाता हो। (२) वह जो गाता हो। गर्विया। उ०—तंत्री काम क्रोध निज देऊ अरुनी अरुनी रीति। हुविधा बुहुनि है निसिवासर अजावति विपरीति।—सूर।

वि० [सं०] (१) खालसी। (२) अचीन।

तंत्रोमुख-संज्ञा पुं० [सं०] हाथ की एक मुद्रा या अवस्थान। तंदरा-संज्ञा स्त्री० दे० "तंत्रा"। उ०—तारकेश ताणि जुहाई ज्यों तरुण तम तरुणी तपो ज्यों तरुण अरु तंदरा।—देव।

तंदान-संज्ञा पुं० [दे०] एक प्रकार का बड़िया अंगूर जो बड़े-ठोके आस पास होता है और जिसको मुलाकर किरमिरा बनाते हैं।

तंदीही-संज्ञा स्त्री० दे० "संदेही"।

तंदुआ-संज्ञा पुं० [दे०] एक प्रकार की बारहमासी घास जो ऊसर जमीन में ही जमती है और चारे के काम में आती है। यह ऊसर जमीन में खाद का भी काम देती है।

तंदुहस्त-वि० [का०] जिसका स्वास्थ्य अच्छा हो। जिसे कोई रोग या बीमारी न हो। नीरोग। स्वस्थ।

संदुहस्ती-संज्ञा स्त्री० [का०] (१) शरीर की आरोग्यता। नीरोग होनेकी अवस्था या भाव। (२) स्वास्थ्य।

तक-अभ्य० [सं० षं० + क] एक विभक्ति जो किसी वस्तु या व्यापार की सीमा बधवा अवधि सूचित करती है। पर्यंत। जैसे, वे दिल्ली तक गए हैं, परसें तक ठहरे, दस रुपए तक दे दोगे। उ०—जो पत्र तक्रिया छोड़ि टग सके न तुव तक छाह। दरस भीख उन की कहा दीजत नहिं पहुँचाह।—रसनिधि।

संज्ञा छी० [सं० तक्रवी] (१) तरानू। (२) तराजू का पहा। संज्ञा छी० दे० "टक"। उ०—अति थल जल बरसत देव जोवन दिन शर रहन श्रुत एकदि तक।—तुलसी।

तकड़-वि० दे० "तगड़ा"।

तकड़ी-संज्ञा छी० [दे०] एक प्रकार की घास जो रेतीली अमीन में बाह्य महीने लूप पैदा होती है। इसे घोड़े बहुत चाय से खाते हैं। इसकी फसल साल में ६ या ७ बार हुआ करती है। चारमरा। हैन।

†संज्ञा छ० तराजू। (पंजाब)
तकदमा-संज्ञा पुं० [अ० तपमना] किसी चीज की तैयारी का वह हिसाब जो पहले से तैयार किया जाय। तलमीना।

तक्रदीर-संज्ञा छी० [अ०] शंदाजा। मेकदार। भाग्य। प्राग्घ। किरमत। नसीब।

यी०—तकदी। वर।
विशेष—"तकदीर" के मुहाविरों के लिये देखो "किरमत" के मुहाविर।

तकदी। वर-वि० [अ० तक्रदीर + का० वर] जिसका भाग्य बहुत अच्छा हो। भाग्यवान्।

तकन-संज्ञा छी० [हिं० तकना] ताकने की क्रिया या भाव। देखना। रटि।

तकना * †-कि० अ० [हिं० तकना] (१) देखना। निहारना। बघलोहन करना। उ०—(क) देखि जागि मधु कुदिल किराती। निमि गँव तकड़ खेंके केंदि भाती।—तुलसी। (ख) कदि हरिदास जानि ठाकुर विहारी तकत न मोर पाट।—स्वामी हरिदास। (ग) तेरे लिये तजि ताकि रहे तकि हेत किये बलवीर विहारी।—सुंदरीसर्वस्व। (२) शरय जेना। पनाह जेना। आग्रय जेना। उ०—देवन तके मेरु गिरि छोहा।—तुलसी।

तकमा †-संज्ञा पुं० (१) दे० "तमगा"। (२) दे० "तुकमा"।
तकमील-संज्ञा छी० [अ०] पूरा होने की क्रिया या भाव। पूर्णता।
तकरमकड़ी-संज्ञा छी० [दे०] भेंड़ों के ऊपर से ऊन काटने का हँसिया। (गढ़वाल)

तकरार-संज्ञा छी० [अ०] (१) किसी बात को बार बार कहना। हुएजत। विवाद। (२) अग्रज्ञा। टेंटा। खड़ाई। (३) कविता में किसी वर्णन को दोहराना। (४) चावल का वह खेत जो फसल काटने के बाद फिर खाद दे के जोता गया हो। (५)

वह खेत जिसमें जी चना गेहूँ इत्यादि एक साथ बोया गया हो।

तकरीर-संज्ञा छी० [अ०] (१) बातचीत। गुफ्तगू। (२) शकृता। लेकवर। भाषण।

तकरीब-संज्ञा छी० [अ०] वह शुभ कार्य जिसमें कुछ खोग सम्मिलित हो। उत्सव। जलसा।

तकईरी-संज्ञा छी० [अ०] मुकर्रर होने की क्रिया या भाव। नियुक्ति।

तकला-संज्ञा पुं० [सं० तकल] (१) जोड़े की वह सलाई जो सूत कातने के चारखे में लगी होती है और जिस पर सूत बिपटता जाता है। टेकुषा। (२) बिटियों की टेकुरी की सलाई जिस पर कलाखनू घट फर चढ़ाते जाते हैं। (३) सुनारों की सिकरी बनाने की सलाई। (४) रसता या रस्ती बनाने की टिकुरी।

मुहा०—किसी के तकले से बल निकालना = सारी शोली या पार्जोपन दूर करना। अच्छी तरह दुखसा या ठीक करना।

तकली-संज्ञा छी० [हिं० तरका] छोटा तकला या टेकुरी।

तकलीफ-संज्ञा छी० [अ०] (१) कष्ट। क्लेश। दुःख। जैसे, (क) आज कल वह बड़ी तकलीफ से अपने दिन बिताते हैं। (ख) इस ताले को पिंजड़े में बड़ी तकलीफ है। (२) विपत्ति। मुसीबत।

मि० प्र०—ठठाना।—करना।—देना।—पाना।—भोगना।—मिलना।—सहना।

तकल्लफ-संज्ञा पुं० [अ०] शिष्टाचार। दिखाने आदि के लिये कष्ट उठा कर कोई काम करना।

मुहा०—तकल्लफ का = बहुत अच्छा। बढ़िया या उभा हुआ।

तकवाना-कि० उ० [हिं० तकना का प्रे०] ताकने का काम दूसरे से काम। दूसरे को ताकने में प्रवृत्त करना।

तकवाही-संज्ञा छी० दे० "तकाई"।

तकसी-संज्ञा छी० [?] नाश। दुर्दशा।

तकसीम-संज्ञा छी० [अ०] (१) बँटने की क्रिया या भाव। बँटाई। (२) गणित में वह क्रिया जिससे कोई संख्या कई भागों में बँटी जाय। भाग।

कि० प्र०—देना।
तकसी-संज्ञा छी० [अ०] (१) अपराध। दोष। कसूर। (२) भूल। चूक।

तकाई-संज्ञा छी० [हिं० तकना + ई० (प्रस०)] (१) ताकने की क्रिया या भाव। (२) वह धन जो ताकने के बदले में दिया जाय।

तक़ाज़ा-संज्ञा पुं० [अ०] (१) ऐसी चीज़ मारगना जिसके पाने का अधिकार हो। तगादा। जैसे, जाओ, उनसे रुपये का तक़ाज़ा करो। (२) कोई ऐसा काम करने के लिये कहना जिसके लिये पचन मिल चुका हो। जैसे, बहुत दिनों से उनका

तकाना है, चलो आज उनसे यहाँ हो जाएँ। (३) किसी प्रकार ही उत्तेजना या प्रेरणा। जैसे, व्रत या वक का तकाना।

तकान-संज्ञा स्त्री० दे० "यकान" या "यकपट"।

तकाना-क्रि० सं० [हिं० तकना का प्रे०] ताकने का काम दूसरे से कराना। दूसरे को ताकने में प्रवृत्त करना। दिखाना।

क्रि० प्र० किसी और को हार करना। किसी और को भागना या जाना। जैसे, उसने जंगल का रास्ता तकाना।

तकानो-संज्ञा स्त्री० [ष०] (१) वह धन जो जमींदार, राजा या सरकार की थोर से गरीब रीतिरिवाजों को लेती के थोड़ा बचवाने, बीज खरीदने या कुर्मा खादि बचवाने के लिये अथ स्वयं दिया जाय।

क्रि० प्र०—घोटना।—देना।

(२) इस प्रकार का अर्थ देने की क्रिया।

तकानो-संज्ञा पुं० [फा०] (१) कपड़े का बना हुआ वह लंबो-तरा, गोल या चौकोर धेला जिसमें रुई, पर धादि भरते हैं और जिसे सोन खेटने धादि के समय सिर के नीचे रखते हैं। यालिग। (२) पत्थर की वह पटिया धादि जो छुट्टे, रोक या सहारे के लिये लगाई जाती है। सुतका। (३) विश्राम करने या प्राण्य लेने का स्थान। (४) प्राण्य। सहारा। आसरा।

व०—तह तुलसी के नील को काको तकिया रे।—तुलसी।
धै०—तकिया-कलाम।

(१) यह स्थान चियोपतः शहर के बाहर या कमिस्तान के पास का स्थान जहाँ कोई सुखलमान फकीर रहता हो। (२) पार-जामी। (अश०)

तकिया-कलाम-संज्ञा पुं० दे० "सखुनतकिया"।

तकियादार-संज्ञा पुं० [फा०] मज़ार पर रहनेवाला सुखलमान फकीर।

तकिल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पूर। (२) औषध।

तकिला-संज्ञा स्त्री० [सं०] औषध। दवा।

तकुआ-संज्ञा पुं० दे० "तकला"।

संज्ञा पुं० [हिं० तकना + वण (प्रल०)] ताकनेवाला। देखने-वाला।

तकैया-संज्ञा पुं० [हिं० तकना + येया (प्रल०)] ताकने वा देखने-वाला।

तकोल-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का पेड़।

तकमा-संज्ञा स्त्री० [सं० तामर] (१) बसंत नामक चर्म रोग। (२) शीतला देवी।

तक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मट्टा। छुट्ट। मटा। व०—बुलकत तक वकानि और अथात नहिं जानति तोहि कालहि से।—सूर। (२) शहनुस के पेड़ का एक रोग।

तककूचिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] फटा हुआ दूध। देना।

तकपिंड-संज्ञा पुं० [सं०] फटा हुआ दूध। देना।

तकभिदु-संज्ञा पुं० [सं०] कंच। कपिल।

तकप्रमेह-संज्ञा पुं० [सं०] पुरुषों का एक रोग जिसमें छात्र का सा रचेत मूत्र होता है; और मट्टे की सी गंध आती है।

तकमाल-संज्ञा पुं० [सं०] मसि का रसा। शखनी।

नकवामन-संज्ञा पुं० [सं०] नागरंग।

तकसंघान-संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक के अनुसार एक प्रकार की कर्जी जिसे रौ टके भर छाड़ में एक एक टके भर सभिर नमक, राई और हरीदी का चूर्ण डाल कर बनाते हैं। यह कर्जी पहले पंद्रह दिन तक पड़ी रहने दी जाती है तब तैयार होती है। ऐसा कहते हैं कि यदि २१ दिनों तक यह निल दे दो टंक पीई जाय तो तापतिही शक्य हो जाती है।

तकसार-संज्ञा पुं० [सं०] मखन।

तकार-संज्ञा पुं० [सं०] मयानी।

तकार-संज्ञा स्त्री० दे० "तकरार"।

तकारिष्ट-संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक में एक प्रकार का शरित जो मट्टे में हड़ और शबले धादि का, चूर्ण मिला कर बनाया जाता है। यह संग्रहणी रोग का नाशक और शमिदीयक माना जाता है।

तकाना-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का पुत्र।

तक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] (१) रामचंद्र के भाई भरत का यज्ञ पुत्र।

(२) वृक के पुत्र का नाम। (३) पतला करने की क्रिया।

तक्षक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पालत के छात्र नामों में से एक नाम जो करवप का पुत्र था और कद्रु के गर्भ से उत्पन्न हुआ था। शृंगी धादि का शप पूरा करने के लिये राजा परीक्षित को इसी ने काया था। इसी कारण राजा जनमेजय इससे बहुत विगड़े और बरुनि संसार भर के सर्पों का नाश करने के लिये सर्वपन्न धारंभ किया। तक्षक इससे डर कर इंद्र की शरण में चला गया। इस पर जनमेजय ने अपने ऋषिों को धाशा दी कि इंद्र यदि तक्षक को न छोड़े तो उसे भी तक्षक के साथ खींच मैंगाओ और भूम कर दो। ऋषिों के संन पढ़ने पर तक्षक के साथ इंद्र भी खिंचने लगे। तप इंद्र ने डर कर तक्षक को छोड़ दिया। अथ तक्षक खिंच कर श्रीमकुंड के समीप पहुँचा तप आसीक ने धाकर जनमेजय से प्रार्थना की और तक्षक के प्राय्य बच गए।

विशेष—ध्यात कक्ष के विद्वानों का विश्वास है कि प्राचीन काल में भारत में तक्षक नाम की एक जाति ही निवास करती थी। नाग जाति के लोग अपने प्राप को तक्षक की संताग ही बतलाते हैं। प्राचीन काल में वे खोग सर्व का पूजन करते थे। कुछ पारंपार्य विद्वानों का मत है कि

प्राचीन काल में कुछ विशिष्ट अनार्यों को हिंदू लोग तक्षक या नाग कहा करते थे और वे लोग सम्भवतः शक थे। तिब्बत, मंगोलिया और चीन के निवासी अब तक अपने प्राण को तक्षक या नाग के बंधार बतलाते हैं। महाभारत के युद्ध के उपरान्त धीरे धीरे तक्षकों का अधिकार बढ़ने लगा और उत्तर-पश्चिम भारत में तक्षक लोगों का बहुत दिनों तक, यहाँ तक कि सिक्ंदर के भारत आने के समय तक, राज्य रहा। इनका जातीय चिह्न सर्प था। उपर परीक्षित और जनमेजय की जो कथा दी गई है उसके संबंध में कुछ पारचाह्य विद्वानों का मत है कि तक्षकों के साथ एक बार पांडवों का बड़ा भारी युद्ध हुआ था जिस में तक्षकों की जीत हुई थी और राजा परीक्षित मारे गए थे और अंत में जनमेजय ने फिर तक्षकिला में युद्ध करके तक्षकों का नाश किया था और यहाँ घटना जनमेजय के सर्प-यज्ञ के नाम से प्रसिद्ध हुई।

(२) सर्प। सर्प। (३) विरवकर्मा। (४) सूत्रधार। (५) दस वायुधों में से एक। नागवायु। व०—भान, अपान, प्यान, बदान और कहियत प्राण समान। तक्षक, धनंजय पुनि देवदत्त और पैंडुक शंख धुमान।—सूर। (६) एक प्रकार का पेड़। (७) प्रसेनजित् के पुत्र का नाम जिस का वर्णन भागवत में आया है। (८) एक संकर जाति जिसकी उत्पत्ति सुचिक पिना और मांझण्णी माता से मानी गई है।

वि० छेदनेवाला। छेदक।

तक्षय—संज्ञा पुं० [सं०] (१) लकड़ी को साफ करने का काम। रंदा करने का काम। (२) बड़ई। (३) लकड़ी परधर धादि में खोद कर मूर्त्तियाँ और खेल-सूटे बनाने का काम। लकड़ी परधर धादि गढ़ कर मूर्त्तियाँ बनाना।

तक्षगी—संज्ञा स्त्री० [सं०] बड़ईयाँ का वह औजार जिससे वे लकड़ी छील कर साफ करते हैं। रंदा।

तक्षकिला—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक बहुत प्राचीन नगरी का नाम जो भारत के पुत्र तक्ष की राजधानी थी। विद्वानों का मत है कि प्राचीन काल में इसके आस पास के प्रदेश में तक्षक लोगों का राज्य था, इसीलिपु इस नगरी का नाम भी तक्षकिला पड़ा था। महाभारत में लिखा है कि यह स्थान गांधार में है। अभी हाल में यह नगर रावलपिंडी के पास जमीन खोद कर निकाला गया है। यहाँ बहुत से बौद्ध-मंदिर और स्तूप भी पाए गए हैं। महाभारत में लिखा है कि जनमेजय ने यहाँ सर्प-यज्ञ किया था। सिक्ंदर जिस समय भारत में आया था उस समय यहाँ के राजा ने उसे अपने यहाँ ठहराया था और उसका बहुत आदर सत्कार किया था। कुछ समय तक इसके आस पास का प्रदेश अशोक के शासन में था।

अनेक यूनानी तथा चीनी यात्रियों ने तक्षकिला के वैभव और विस्तार धादि का बहुत अच्छा वर्णन किया है। बहुत दिनों तक यह नगरी प्रविच्य भारत का प्रधान विद्यापीठ थी। दूर दूर से यहाँ विद्यार्थी आते थे। चाणक्य यहाँ का था।

तक्षा—संज्ञा पुं० [सं० तक्षन] बड़ई।

तक्ष्मीक—संज्ञा स्त्री० [अ०] कमी। न्यूनता।

तक्ष्मीनन्—क्रि० वि० [अ०] अंदाज से। अटकल से। अनुमान से।

तक्ष्मीना—संज्ञा पुं० [अ०] अंदाज। अनुमान। अटकल।

क्रि० प्र०—करना।—लगाना।

तक्षरी—संज्ञा स्त्री० दे० “तक्षरी”।

तक्षलिया—संज्ञा पुं० [अ०] एकत स्थान। निजंन स्थान।

तक्षाना—संज्ञा पुं० [सं० तक्षय] बड़ई।

तखिहा—वि० [अ० तक्ष] यह बँल जिसकी दोनों छालें दो रंग की हों।

तखीत—संज्ञा स्त्री० [अ० तक्षीक] (१) तलाशी। (२) तक्षीकात। (क्षय०)

तख्त—संज्ञा पुं० [फा०] (१) राजा के बैठने का आसन। सिंहासन। (२) तख्तों की बनी हुई बड़ी चौकी।

तौ—सप्त की रात = सोहग रात। (सुसल०)

तख्तरचा—संज्ञा पुं० [फा०] (१) वह तख्त जिस पर बादशाह सवार होकर निकलता है। हथधार। (२) वह तख्त या बड़ी चौकी जिस पर शादियों में धारात के आगे रंदिर्वा, नाचनेवाले या खौंडे नाचते हुए चलते हैं। (३) बदनखोला।

तख्त ताऊस—संज्ञा पुं० [फा० + अ०] एक प्रसिद्ध राजसिंहासन जिसे शाहजहाँ ने ६ करोड़ रूपए लगा कर बनवाया था। इसके ऊपर एक अड़ाक मोर पंख फैलाए हुए खड़ा था। इस तख्त को सन् १७३६ ई० में नादिरशाह लूट कर ले गया।

तख्तनशीन—वि० [फा०] सिंहासनारूढ़। जो राजसिंहासन पर बैठा हो।

तख्तपोश—संज्ञा पुं० [फा०] (१) तख्त या चौकी पर विद्यमान की चादर। (२) चौकी। तख्त।

तख्तवंदी—संज्ञा स्त्री० [फा०] (१) तख्तों की बनी हुई चौकी। (२) तख्तों की दीवार बनाने की क्रिया।

तख्ता—संज्ञा पुं० [फा० तख्त] (१) लकड़ी का वह चौड़ा लंबा चौड़ा और चौकोर टुकड़ा जिसकी मोटाई अधिक न हो। बड़ा पतरा। पहा।

मुहा०—तख्त बलटना = (१) किसी प्रबंध का नष्ट भ्रष्ट हो जाना। किसी बने बनाव काम का विगड़ जाना। (२) किसी प्रबंध का नष्ट भ्रष्ट करना। बना बनाया काम बिगाड़ना। तख्त हो जाना = रेंठ या अकड़ जाना। तख्त की तरह अकड़ हो जाना।

(२) लकड़ी की बड़ी चौकी। सुप्त । (३) धरती । टिळती ।
(४) कागज का ताय । (५) खेतों या दामों में जमीन का वह भूखण्ड दुकड़ा जिसमें बीज बोए या पैपे लगाए जाते हैं । कियारी ।

तस्तापुल-संज्ञा पुं० [फा० तस्ता + पुल] पदों का पुल जो किले की खंदक पर बनाया जाता है । यह पुल इच्छानुसार हटा भी लिया जा सकता है ।

तख्ती-संज्ञा स्त्री० [फा० तख्त] (१) छेड़ा तस्ता । (२) फाट की वह पट्टी जिस पर लड़के अथवा लिलेने का अभ्यास करते हैं । पटिया । (३) किसी चीज की छेटी पट्टी ।

तगड़ा-वि० [हिं० तग + कड़ा] [स्त्री० तगड़ी] (१) जिसमें सारुत ज्यादा है । सखल । खलयाद । मजबूत । (२) अच्छा और बड़ा ।

तगड़ी-संज्ञा स्त्री० दे० "तागड़ी" ।

तगव-संज्ञा पुं० [सं०] छंदः शास्त्र में तीन वर्णों का वह समूह जिसमें पहले दो शुद्ध और सब एक लघु (Ss) वर्ण होता है ।

तगदमा, तगदम्मा-संज्ञा पुं० [अ० तकरुदम] (१) ब्यय खादि का क्रिया हुआ अनुमान । तलमीना । (२) दे० "तकदमा" ।

तगना-कि० अ० [हिं० तगना] तगना जाना ।

तगपहनी-संज्ञा स्त्री० [हिं० तगना + पहनना] शूब्राहों का एक शीशर जो हटा हुआ सूत जोड़ने में काम आता है ।

तगमा-संज्ञा पुं० दे० "धम्ममा" ।

तगर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार का पेड़ जो अफगानिस्तान, फारसी, भूटान और कोकण देश में नदियों के किनारे पाया जाता है । भारत के बाहर यह सडगास्कार और जंजीशर में भी होता है । इसकी लकड़ी बहुत सुगंधित होती है और उसमें से बहुत अधिक मात्रा में एक प्रकार का तेल निकलता है । यह लकड़ी अगार की लकड़ी के स्थान पर तथा औषधों के काम में आती है । लकड़ी काले रंग की और सुगंधित होती है और उसका सुभादा जलाने के काम में आता है । भावप्रकाश के अनुसार तगर दो प्रकार का होता है, एक में सफेद रंग के और दूसरे में नीले रंग के फूल लगते हैं । इसकी पत्तियों के रस से ब्रांस के अनेक रोग बूट होते हैं । पैचक में इसे उष्य, वीर्य-वर्द्धक, शीतल, मधुर, स्निग्ध, लघु और विष, अपस्मार, शूल, दृष्टि-दोष, विष-दोष, भूतान्माद और त्रिदोष खादि का नाशक माना है ।

पर्था-वच० कुटिल । शठ । महेश्वर । नर । दीपन । विनम्र । कुंचित । घंट । ननुप । पार्थिव । रामदरपण । अग्र । दान । काबानुशारिय । काबानुसारक ।

(२) इस वृक्ष की जड़ जिसकी गिनती गंध-द्रव्यों में होती

है । इसके चयाने से दंतों का दर्द अच्छा हो जाता है ।
(३) मदनवृक्ष । मैनफस ।

संज्ञा पुं० [दे०] एक प्रकार की शहद की मक्खी ।

तगला-संज्ञा पुं० [हिं० तकला] (१) तकला । (२) दो हाथ लंबा सरकंडे का एक छड़ जिससे जोलाई सांघी मिलाते हैं ।

तगसा-संज्ञा पुं० [दे०] वह लकड़ी जिससे पहाड़ी प्रांतों में ऊन को कातने से पहले साफ करने के लिये पीतते हैं ।

तगना-संज्ञा पुं० दे० "तागा" । उ०—प्रपुलित हूँ के अग्न दीन है प्रसोदा रानी फीनी ए महुली तामें कंचन को तगा ।—सूर ।

संज्ञा पुं० एक जाति जो हरेलखंड में बसती है । इस जाति के लोग अनेक पदवते और अपने आपके ब्राह्मण मानते हैं ।

तगार-संज्ञा स्त्री० [हिं० तगना] (१) तगने का काम । (२) तगने का भाव । (३) तगने की मजदूरी ।

तगाडा-संज्ञा पुं० [हिं० गारा] [स्त्री० तगड़ी] यह तसला या लोहे का छिड़ला धरतन जिसमें मसाला या चूना गारा रस कर जोड़ाई करनेवालों के पास ले जाते हैं ।

तगादा-संज्ञा पुं० दे० "तकाना" ।

तगाना-कि० सं० [हिं० तगना का मे०] तगने का काम कराना । दूसरे को तगने में प्रवृत्त करना ।

तगार, तगारी-संज्ञा स्त्री० [दे०] (१) खखली गाड़ने का गड्डा । (२) हलवाइयों का मिठाई बनाने का मिठी का बड़ा धरतन या नोद । (३) चूना । गारा इत्यादि घोंके का तसला ।

तगियाना-कि० सं० दे० "तागना" ।

तगीर-संज्ञा पुं० [अ० तग्यूर = परिवर्तन] बदलने की क्रिया या भाव । परिवर्तन । उ०—(क) अहदी यह रोग अनन्ता । आगीर तगीर करता ।—विभ्राम । (ख) जोवन आखिल आइ के भूसन कर ततवीर । घट बड़ रकम बनाइ के सिस्तुत करी तगीर ।—रसनिधि ।

तगीरी-संज्ञा स्त्री० [अ० तग्यूर, हिं० तगीर] बदली । परिवर्तन । उ०—नैरहाजिरी लिखि है कोई । मन सब घटे तगीरी होई ।—साल कवि ।

तघार, तघारी-संज्ञा स्त्री० दे० "तगार" ।

तघना-कि० अ० [हिं० तगना] तगना । तग होना । उ०—(क) तापन सों तघती विरमें यिन काज घुया मन मीहि विदु-पती ।—प्रताप । (ख) मातों विधि अथ उलटि रची री । जानत नहीं सखी काहे तै बही न लेज तघी री ।—सूर ।

तघा-संज्ञा स्त्री० [सं० तघा] चमड़ा । खाल । तघा । उ०—तुम चिन माइ रहै पै तघा । अथ नहि विरह गहड़ पै बघा । जायसी ।

तघाना-कि० सं० [हिं० तगना] तगाना । अजाना । तग्न करना । संतप्त करना । उ०—अनख उचाट रूप जाट में तघाई भारी फारीगर काम ने सुघारी अमिराम सान ।—दीनदयाल ।

तरपद-संज्ञा पुं० [सं०] परम पद । निर्वाण ।
 तरपदार्थ-संज्ञा पुं० [सं०] सृष्टिकर्ता । परमात्मा ।
 तरपर-वि० [सं०] [संज्ञा तत्परा] (१) जो कोई काम करने के लिये तैयार हो । उद्यत । सुस्तैद । सन्नद्ध । (२) दृढ़ । निपुण । (३) चतुर । होशियार ।
 संज्ञा पुं० समय का एक बहुत छोटा मान । एक गिमेप का सीसर्वा भाग ।
 तरपरना-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) तरपर होने की क्रिया या भाव । सन्नद्धता । सुस्तैदी । (२) दृढ़ता । निपुणता । (३) होशियारी ।
 तरपुष्प-संज्ञा पुं० [सं०] (१) ईश्वर । परमेश्वर । (२) एक रुद्र का नाम । (३) मध्य पुराण के अनुसार एक कल्प (काल-विभाग) का नाम । (४) व्याकरण में एक प्रकार का समास जिसमें पहले पद में कर्त्ता कारक की विभक्ति को छोड़ कर कर्म आदि दूसरे कारकों की विभक्ति लुप्त हो और जिसमें पिछले पद का अर्थ प्रधान हो । इसका लिंग और ध्वन आदि पिछले या उत्तर पद के अनुसार का होता है । जैसे, जलचर नरेश, हिमालय, यज्ञराजा ।
 तरप्रतिरूपक व्यवहार-संज्ञा पुं० [सं०] जैनियों के मत से एक प्रतिघार जो ब्रह्म के छरे पदार्थों में खोटे पदार्थ की मिलावट करने से होता है ।
 तरफल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पृष्ठ नामक शोषधि । (२) वेर का फल । (३) कुवलय । नील कमल । (४) चोर नामक गंध द्रव्य ।
 तर-दि० वि० [सं०] यहाँ । उस स्थान पर । उस जगह ।
 तरफ-संज्ञा पुं० [देश०] एक पेड़ जो योरप, धरव, फारस से लेकर पूर्ब में अफगानिस्तान तक होता है । यह अनार के पेड़ के हतना यज्ञ या उससे कुछ यज्ञ होता है । इसकी पत्तियाँ नीम की पत्ती की तरह कटावदार और कुछ लंबाई लिए होती हैं । इसमें फलियाँ लगती हैं जिसमें मधुर के से भोज पड़ते हैं । ये बीज बाजार में अत्तारों के यहाँ समक के नाम से बिकते हैं और हकीमी दवा में काम आते हैं । बीज के दिखने के फास्दा कुछ खटा और रुचिकर होता है । इसकी पत्तियों से एक प्रकार का रंग निकलता है । उंजल और पत्तियों से चमड़ा बहुत धरदा सिम्बाया जाता है । हिंदुस्तान में धमड़े के बड़े बड़े कारखानों में ये पत्तियाँ मिसली से सँगाई जाती हैं ।
 तत्रप्रधान-संज्ञा पुं० [सं०] माननीय । पूज्य । श्रेष्ठ ।
 विज्ञोप-अग्रमन्त्र की तरह इस शब्द का प्रयोग मो प्रायः संस्कृत नाटकों में अधिकता से होता है ।
 तत्रापि-अर्थ्य [सं०] तथापि । ती भी ।
 तत्सम-संज्ञा पुं० [सं०] भाषा में ब्यवहृत होनेवाला संस्कृत का

वद् शब्द जो अपने शब्द रूप में हो । संस्कृत का यह शब्द जिसका व्यवहार भाषा में उसके शब्द रूप में हो जैसे, दया प्रसन्न, स्वरूप, सृष्टि आदि ।

तथा-अर्थ्य [सं०] (१) और । व । (२) इसी तरह । ऐसे ही । जैसे, यथा नाम तथा गुणा ।

थौ०—तथास्तु = ऐसा ही है । इसी प्रकार है । एवमस्तु ।

विज्ञोप—इस पद का प्रयोग किसी प्रार्थना को स्वीकार करने अथवा मर्णा हुआ वर देने के समय होता है ।

संज्ञा पुं० (१) सत्य । (२) सीमा । दृढ़ । (३) निश्चय । (४) समानता ।

संज्ञा स्त्री० वे० तथ्य ।

तथागत-संज्ञा पुं० [सं०] बुद्ध का एक नाम ।

तथापि-अर्थ्य [सं०] ती भी । तिस पर भी । तब भी ।

विज्ञोप—इसका प्रयोग यद्यपि के साथ होता है । जैसे, यद्यपि हम यहाँ नहीं गए तथापि उनका काम हो गया ।

तथाराज-संज्ञा पुं० [सं०] गौतमबुद्ध ।

तथैव-अर्थ्य [सं०] वैसा ही । वसी प्रकार ।

तथ्य-वि० [सं०] सत्य । सचाई । यथायथा ।

तथ्यमापी-वि० [सं० तथ्यमापि] साफ और सही बात कहनेवाला ।

तथ्यवादी-वि० दे० "तथ्यमापी" ।

तद्-वि० [सं०] वह ।

विज्ञोप—इसका प्रयोग यौगिक शब्दों के अन्तर्ग में होता है । जैसे, तदनंतर, तदनुसार ।

† कि० वि० [सं० तदा] तब । उस समय ।

तदंतर-कि० वि० [सं०] इसके बाद । इसके उपरांत ।

तदनंतर-कि० वि० [सं०] उसके पीछे । उसके बाद । उसके उपरांत ।

तदनन्तर-संज्ञा पुं० [सं०] कार्य और कारण में अमेद । कार्य और कारण की एकता । (वेदांत)

तदनु-कि० वि० [सं०] (१) उसके पीछे । तदनंतर । उसके अनुसार । (२) उसी तरह । उसी प्रकार ।

तदनुरूप-वि० [सं०] उसी के जैसा । उसी के रूप का । उसी के समान ।

तदनुसार-वि० [सं०] उसके मुताबिक । उसके अनुसार ।

तदन्यथाधितार्थ-संज्ञा पुं० [सं०] नन्य न्याय में, तर्क के पाँच प्रकारों में से एक ।

तदपि-अर्थ्य [सं०] ती भी । तिस पर भी । तथापि ।

तदधीर-संज्ञा स्त्री० [सं०] यमीष्ट सिद्धि करने का साधन । उपाय । युक्ति । तरकीब । पल ।

तदा-कि० वि० [सं०] उस समय । तब । तिस समय ।

तदाकार-वि० [सं०] (१) वैसा ही। उसी आकार का। उसी आकृतियाँ। तद्रूप। (२) तन्मय।

तदाहक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सोई हुई चीज या भागो हुए अथवा राप्ती आदि की खोज या किसी दुर्घटना आदि के संबंध में जांच। (२) किसी दुर्घटना को रोकने के लिये पहले से किया हुआ प्रबंध। पेशाबंदी। बंधावगत। (३) सजा। दंड।

तदीय-धर्वं० [सं०] उसका। उसके संबंध रखनेवाला।

तदुपरांत-कि० वि० [सं०] उसके पीछे। उसके बाद।

तद्रत्न-वि० [सं०] (१) उससे संपर्क रखनेवाला। उसके संबंध का। (२) उसके अंतर्गत। उसमें व्याप्त।

तद्गुण-संज्ञा पुं० [सं०] एक व्योमलंकार जिसमें किसी एक वस्तु का अपना गुण लागू करके समीरवर्ती किसी दूसरे उत्तम पदार्थ का गुण प्रदूष्य कर खेना बर्णित होता है। जैसे, (क) धरत धरत हरि के परत घोड़ बंड पट जोगि। हरित धंस की बाँसुरी इंद धनुष सी होगि।—विहारी। इसमें वसि की बाँसुरी का अपना गुण जोड़ कर इंदधनुष का गुण प्रदूष्य करना बर्णित है। (ख) आदिरे जागन सी जमुना जय वृद्धे यई उमई वह बेनी। ह्यो पद्माकर हीर के हारन गंग तरंगन को सुल देनी। पावन के रंग से रंगि जात सुमतिहि मति सरस्वति सेनी। परे जहाँ ही जहाँ वह बाल तहाँ तहाँ ताल में होत त्रिबेनी।—पद्माकर। यहाँ ताल के जल का बालों, हीरे, मोती के हारों और तबले के सतरंगों के कारण त्रिबेणी का रूप धारण करना कहा गया है।

तद्वन-संज्ञा पुं० [सं०] कृष्य। कंगूल।

तद्वित-संज्ञा पुं० [सं०] (१) व्याकरण में एक प्रकार का प्रत्यय। जिसे संज्ञा के अंत में लगा कर शब्द बनाते हैं।

विशेष—यह प्रत्यय पाँच प्रकार के शब्द बनाने के काम में आता है। (१) अपत्यवाचक, जिससे अथयता या अनुयायित्व आदि का बोध होता है। इसमें या तो संज्ञा के पहले स्वर की शुद्धि कर दी जाती है अथवा उसके अंत में 'ई' प्रत्यय जोड़ दिया जाता है। जैसे, शिव से शैव, विष्णु से वैष्णव रामानंद से रामानंदी आदि। (२) कर्तृवाचक जिससे किसी क्रिया के कर्ता होने का बोध होता है। इसमें 'वाला' या 'द्वारा' अथवा इन्हीं का समानार्थक और कोई प्रत्यय लगाया जाता है। जैसे, कपड़ा से कपड़ेवाला, गाड़ी से गाड़ीवाला, लकड़ी से लकड़हार। (३) भाववाचक, जिससे भाव का बोध होता है। इसमें 'भाई', 'ई', 'त्व', 'ता', 'वन', 'पा', 'वट', 'दट', आदि प्रत्यय लगते हैं। जैसे, बंड से डिडाई, ऊँचा से ऊँचाई, तर से तरी, अनुप्य से मनुप्यत्व, मित्र से मित्रता, लकड़का से लकड़कान, बड़ा से बुढ़ापा, मिलावन से मिलावट, चिकना से चिकनाट, आदि। (४) जनवाचक, जिसमें किसी प्रकार की न्यूनता या बहुता आदि का बोध होता है। इसमें संज्ञा

के अंत में 'क' 'हुवा' आदि लगा देते हैं और 'या' को 'ई' से बदल देते हैं। जैसे, खुश से खुशक, फोड़ा से फोड़िया, डोला से डोली। (५) गुणनायक, जिससे गुण का बोध होता है। इसमें संज्ञा के अंत में 'धा' 'दूक' 'इत' 'ई' 'ईला' 'दूला' 'लू' 'वंत' 'वान' 'दायक' 'काऊ' आदि प्रत्यय लगाए जाते हैं। जैसे, ठंड से ठंडा, मील से मिला, शरीर से शरीरिक, आनंद से आनंदित, गुण से गुणी, रंग से रंगीला, घर से घरेलू, दया से दयावान, सुल से सुल-दायक, गुण से गुणकारक आदि।

(२) वह शब्द जो इस प्रकार प्रत्यय लगाकर बनाया जाय।

तद्वल-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का धातु।

तद्वभवा-संज्ञा पुं० [सं०] भावा में प्रयुक्त होनेवाला संस्कृत का वह शब्द जिसका रूप कुछ विकृत या परिवर्तित हो गया हो। संस्कृत के शब्द का धातुभंग रूप। जैसे, हल का हाय, अश्रु का अश्रु, धट्ट का धाया, काष्ठ का काठ, कर्कर का कपर, प्ल से धी।

तद्यपि-अव्य० [सं०] तथापि। तो भी।

तद्रूप-वि० [सं०] समान। सदृश। वैसा ही। उसी प्रकार का।

तद्रूपता-संज्ञा धी० [सं०] सादर्य। समानता। उ०—जानि जुग जूष में रूप तद्रूपता यहूति करिई क्लुप भूमि भारी।—सूर।

तद्वृत्त-वि० [सं०] उसी के जैसा। उसके समान। जैसा का त्यौं।

तधी १-कि० वि० [सं०] तत्। तभी। (कव०)

तन-संज्ञा पुं० [सं०] तनु। मि० का० तन] (१) शरीर। देह। गात। निम्न।

थी०—तनवाय = (१) शारीरिक कष्ट। (२) भूल। क्षुधा।

मुहा०—तन को लगाना = (१) हृदय पर प्रभाव पड़ना। जी में बैठना। जैसे, चाहे कोई काम हो, जब तक तन को न लगे तब तक वह पूरा नहीं होता। (२) (लाभ पदार्थ का) शरीर को पुष्ट करना। जैसे, जय चिंता छूटे तब धाना पीना भी तन को लगे। तन तोड़ना = अँगुड़ाई लेना। तन देना = ध्यान देना। मन लगाना। जैसे, तन देकर काम किया करो। तन मन मारना = ईर्ष्यों को बरा में रखना। इच्छाओं पर अधिकार रखना।

(२) छी की मूर्च्छिय। भग।

मुहा०—तन दिखाना = (छी का) संयोग कराना। प्रसंग कराना। कि० वि० तरफ धोर। उ०—'क' थिहँसे करुना येन चित्तें जानकी लखन तन।—तुलसी। (ख) कृपासिंधु अथवा किं कंधु तन प्रात कृपान वीर सी छेरे।—तुलसी। (ग) गो गो सुतनि सों सुगी मृग सुतनि सों और तन नेक न जोहनी।—हरिदास।

तनक-संज्ञा धी० [दे०] एक रागिनी का नाम जिसे कोई कोई मेघ राग की रागिनी मानते हैं।

वि० दे० "तनिक" उ०—अथहीं देखे मवल कियोर । घर
आगत ही तनक भये हैं ऐसे तन के चोर ।—सूर ।

तनकीह—संज्ञा स्त्री० [भ०] (१) जंघ । खोज । तहकीकात ।
(२) न्यायालय में किसी उपस्थित अभियोग के संबंध में
विचारणीय और विवादास्पद विषयों को ढूँढ़ निकालना ।
अदालत का किसी मुकदमे की उन बातों का पता लगाना
जिनके लिये वह मुकदमा चलाया गया हो और जिनका
फैसला होना जरूरी हो ।

विशेष—भारत में दीवानी अदालतों में जब कोई मुकदमा
दायर होता है तब पहले उस में अदालत की ओर से एक
तारीख पढ़ती है । उस तारीख को दोनों पक्षों के वकील
बढ़त करते हैं जिससे हाकिम को विवादास्पद और विचार-
णीय बातों के जानने में सहायता मिलती है । उस समय
हाकिम ऐसी सब बातों की एक सूची बना लेता है । वही
बातों को ढूँढ़ निकालना और उनकी सूची बनाना तनकीह
कहलाता है ।

तनखाह—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० तनखाह] वह धन जो प्रति सप्ताह
प्रति मास या प्रति वर्ष किसी को नौकरी करने के उपलक्ष्य
में मिला है । वेतन । तलब ।

तनखाहदार—संज्ञा पुं० [फ़ा०] वह जो तनखाह पर काम करता हो ।
तनखाह पानेवाला नौकर । वेतनभोगी ।

तनखाह—संज्ञा स्त्री० दे० "तनखाह"

तनखाहदार—संज्ञा पुं० दे० "तनखाहदार" ।

तनगना।*—क्रि० अ० दे० "तिनकना" । उ०—अनतहि बसत
अनत ही डोलत आगत किरिन प्रकास । सुनहु सूर पुनि
तो कहि आवे तनगि गए ता पास ।—सूर ।

तनजेब—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] एक प्रकार का बहुत ही महीन और
बढ़िया घुंटी कपड़ा । महीन चिकनी मलमल ।

तनजुल—संज्ञा पुं० [भ०] तराही का उलटा । अवनति । उतार ।
घटाव ।

तनजुली—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] अवनति । उतार । तराही का
उलटा ।

तनतना—संज्ञा पुं० [हिं० तनतना या भ० तनतनः] (१) रोषदाय ।
बुदबुदा । (२) क्रोध । गुस्सा । (कव०)

क्रि० प्र०—दिखाना ।

तनतनाना—क्रि० अ० [अनु० या भ० तनतनः] (१) बुदबुदा
दिखलाना । शान दिखलाना । (२) क्रोध करना । गुस्सा
दिखलाना ।

तनत्रायण—संज्ञा पुं० [सं० तनुत्रायण] (१) वह चीत जिससे शरीर
की रक्षा हो । (२) कवच । पखतर ।

तनदिही—संज्ञा स्त्री० दे० "तंदेही" ।

तनघर—संज्ञा पुं० दे० "तनुधारी" ।

तनना—क्रि० अ० [सं० तन या तनु] (१) किसी पदार्थ के एक
या दोनों सिरों का इस प्रकार धागे की ओर बढ़ना जिसमें
उसके मध्य भाग का मोल निकल जाय और उसका विस्तार
कुछ बढ़ जाय । फटके, खिंचाव या खुरकी आदि के कारण
किसी पदार्थ का विस्तार बढ़ना । जैसे, धावर या चांदनी
तनना, धाव पर की पपड़ी तनना । (२) किसी चीज का
जेर से किसी धोर खिंचना । आकर्षित या प्रवृत्त होना ।
(३) किसी चीज का अकड़ कर सीधा खड़ा होना । जैसे,
(ख) यह पेड़ कल झुक गया था पर आज पानी पाते ही
फिर तन गया । (घ) कुछ अभिमानपूर्वक रुढ़ या उदासीन
होना । घुंठना । जैसे, हथर कई दिनों से वे हमसे कुछ तने
रहते हैं ।

संयो० क्रि०—जाना ।

तनपात—संज्ञा पुं० दे० "तनुपात" ।

तनपोषक—वि० [हिं० तन + सं० पोषक] जो केवल अपने ही
शरीर या लाभ का ध्यान रखे । स्वार्थी ।

तनवाल—संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्राचीन देश जिसका नाम
महाभारत में आया है । (२) उस देश के निवासी ।

तनमय—वि० दे० "तन्मय" । उ०—अपने अपनो भाग सखी री
तुम तनमय मैं कहूँ न रेरे ।—सूर ।

तनमया—संज्ञा स्त्री० दे० "तन्मया" ।

तनमानसा—संज्ञा स्त्री० [सं०] ज्ञान की सात भूमिकाओं में
तीसरी भूमिका ।

तनय—संज्ञा पुं० [सं०] (१) पुत्र । बेटा । लड़का । (२) जन्म
क्षम से पाँचवाँ स्थान जिससे पुत्र-भाव देखा जाता है ।

तनया—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) लड़की । बेटे । पुत्री । (२)
पिठयन लता ।

तनराम—संज्ञा पुं० दे० "तनुराम" ।

तनरह—संज्ञा पुं० दे० "तनरह" । उ०—हरपवंत पर अघर
भूमिसुर तनरह पुलकि अनाई ।—मुलसी ।

तनवाल—संज्ञा पुं० [दे०] वैश्यों की एक जाति विशेष ।

तनसल—संज्ञा पुं० [दे०] स्फटिक । विद्यौर ।

तनयाना—क्रि० सं० [हिं० तानना का प्रे०] तानने का काम दूसरों
से कराना । दूसरे को तानने में प्रवृत्त करना । तनाना ।

तनसीख—संज्ञा स्त्री० [भ०] रद्द करना । धातिल करना ।
नाजायज़ करना । मंजूरी ।

तनसुख—संज्ञा पुं० [हिं० तन + सुख] संज्ञेय या अज्ञेय की तरह
का एक प्रकार का बढ़िया फूलदार कपड़ा । उ०—(क)

तनमुल सारी लहदी श्रैगिया घतजस भतरौटा धुपि चारि चारि
चूरी पहुँचीनि पङ्की ची सुमकि बानी मरुहूला जेव मुख बीरा
बोका कोषे संभ्रम मूली ।—हरिदास । (ख) कोमलता
पर रसाख तनमुख की संज्ञा ज्ञान मनहुँ सोम सूरज पर सुधा-
धिनु शरपै ।—शंख ।

तनहा-वि० [फा०] जिसके संग कोई न हो । बिना साथी का ।
श्रकेता । एकाकी ।

वि० वि० बिना किसी संगी या साथी के । श्रकेले ।

तनहाई-संज्ञा स्त्री० [फा०] (१) तनहा होने की दशा या भाव ।
(२) वह स्थान जहाँ और कोई न हो । एकांत ।

तना-संज्ञा पुं० [फा०] धुब का अमन से ऊपर निकला हुआ
बर्दा तक का भाग जहाँ तक छाछियाँ न निकली हों ।
मंडूल । पेड़ का धड़ ।

वि० वि० [हिं० तन] शोर । तरफ़ । दे० "तन" । ३०—
नील पट रूपटि अपेटि छिगुनी पै चरि डेरि डेरि कइ हैसि हेरि
हरिजू तना ।—देव ।

तनार-संज्ञा स्त्री० दे० "तनाव" ।

तनाऊ-संज्ञा पुं० दे० "तनाव" ।

तनाकुर्-वि० वि० दे० "तनिक" । ३०—तव पिय सहचरि
तन चितव सुसकी कुँररि तनाऊ ।—नंददास ।

तनाजा-संज्ञा पुं० [फा०] (१) बखेड़ा । कपड़ा । टंटा । दंगा ।
फसाद । (२) श्रद्धावत । शयुता । वीर । वैमनस्य ।

तनाना-वि० सं० [हिं० तानना का प्रे०] तानने का काम
दूसरे से कराना । दूसरे को तानने में मद्दत करना । ३०—
कलस चबर तोरन ध्वजा सुनितान तनाए ।—नुबसी ।

तनाया-संज्ञा स्त्री० [फा० तनाय] (१) खेमे की रस्सी । (२)
यात्रीपर्वों का रस्सा जिस पर वे चलते तथा दूसरे खेज
करते हैं ।

तनाय-संज्ञा पुं० [हिं० तानना] (१) तानने का भाव या क्रिया ।
(२) वह रस्सी जिस पर घोषी कपड़े सुलाते हैं । (३) रस्सी ।
बेसी । जेवरी । रजतु ।

तनि-वि० वि० दे० "तनिक" । ३०—तनि मुख सी चहियत हसी
हर विध विधिदि मनाय । भली भई जो तनि भयै मोहन
मधुरे जाय ।—रसनिधि ।

तनिक-वि० [सं० तनु = अणु] (१) थोड़ा । कम । (२) छोटा ।
३०—हूँई हुती मेरी तनिक मड़ैया को नृप आह धरवौ ।
—सूर ।

वि० वि० उता । डुक ।

तनिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह रस्सी जिससे कोई चीज़
बाँधी जाय ।

तनिया-संज्ञा स्त्री० [हिं० तनी] (१) लँगोट । लँगोटी । कौरीन ।
(२) कड़नी । अक्षिया । ३०—तनिया खलित कटि विचिय

टिपारो सीस मुनि मन हरत बचन कइ तोतरात ।—नुबसी ।
(३) बौली । ३०—तनियाँ न तिलक सुयनियाँ पगनियाँ न
धामी सुमरत होइहि सेजियाँ सुखन की ।—भूपन ।

तनिष्ट-वि० [सं०] जो बहुत ही दुबला पतला छोटा या कमज़ोर हो ।

तनी-संज्ञा स्त्री० [सं० तनिका, हिं० तानना] (१) तनी की तरह
भटा या लगेटा हुआ वह कपड़ा जो शंगैरले, चोली आदि में
उनका पहात तान कर बाँधने के लिये लगाया जाता है । बंद ।
बंधन । ३०—कंचुकि से कुचकलय मगट है टूटि न तारक
तनी ।—सूर । (२) दे० "तनिया" ।

वि० वि० दे० "तनिक" ।

वि० दे० तनिक ।

तनु-वि० [सं०] (१) छूट । दुबला पतला । (२) श्लथ । थोड़ा ।
कम । (३) कोमल । नासुक । (४) सुंदर । बढ़िया ।

संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) शरीर । देह । बदन । (२) चमड़ा ।
पाल । त्वक । (३) धी । शौरत । (४) फेंकुली । (५)
उपोत्तिप में लक्ष-स्थान । जन्मकुंडली में पहला स्थान ।
(६) योग में श्रमिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश इन
चारों बलेशों का एक भेद जिसमें चित्त में छोड़ो की श्रवस्थिति
तो होती है, पर साधन या सामग्री आदि के कारण बस
श्रेय की सिद्धि नहीं होती ।

तनुकर्-वि० दे० "तनिक" ।

वि० वि० दे० "तनिक" ।

संज्ञा पुं० दे० "तनु" ।

तनुशीर-संज्ञा पुं० [सं०] थामड़े का पेड़ ।

तनुच्छद्र-संज्ञा पुं० [सं०] कवच । बलतर ।

तनुचछाय-संज्ञा पुं० [सं०] जाल बज्जल का पेड़ ।

तनुज-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पुत्र । बेटा । लड़का । (२) जन्म-
कुंडली में क्षत से पाँचवा स्थान जहाँ से पुत्रमाय देखा
जाता है ।

तनुजा-संज्ञा स्त्री० [सं०] कन्या । लड़की । पुत्री । बेटी ।

तनुना-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) लघुता । छोटाई । (२) दुर्बलता
दुबलापन ।

तनुत्र-संज्ञा पुं० दे० "तनुनाय" ।

तनुत्राय-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह चीज़ जिससे शरीर की रक्षा
हो । (२) कवच । बलतर ।

तनुधान-संज्ञा पुं० दे० "तनुनाय" ।

तनुत्वचा-संज्ञा स्त्री० [सं०] छोटी शरणी ।

संज्ञा स्त्री० जिसकी छाल पतली हो ।

तनुधारी-वि० [सं०] शरीरधारी । देहधारी । शरीर धारण
करनेवाला ।

तनुपत्र-संज्ञा पुं० [सं०] गोंदनी या गोंदी का पेड़। ईशुवा वृक्ष।
तनुपात-संज्ञा पुं० [सं०] शरीर से प्राण निकलना। मृत्यु।
मौत।

तनुवीज-संज्ञा पुं० [सं०] राजघेर।

वि० जिसके बीज छोटे हों।

तनुमय-संज्ञा पुं० [सं०] पुत्र। बेटा। लड़का।

तनुभूमि-संज्ञा स्त्री० [सं०] वैदिक शाक्यों के जीवन की एक
श्रवस्था।

तनुमध्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक वर्षोवृत्त का नाम जिसके प्रत्येक
चरण में एक तगण और एक याण्य (\$S1-\$S5) होता है।
इसको चैतस भी कहते हैं। उ०— तू यों किमि झाली,
धूमै मतवाली।

तनुरस-संज्ञा पुं० [सं०] पसीना। स्वेद।

तनुराग-संज्ञा पुं० [सं०] (१) केसर, कस्तूरी, चंदन, कपूर,
अगर आदि को मिला कर बनाया हुआ सुगंधित उषधन।
घटना। (२) वे सुगंधित द्रव्य जिनसे उक्त उषधन बनाया
जाता है।

तनुरुह-संज्ञा पुं० [सं०] रोष्ण। रोम।

तनुवात-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह स्थान जहाँ हवा बहुत ही
कम हो। (२) एक नरक का नाम।

तनुवार-संज्ञा पुं० [सं०] कवच। पखतर।

तनुवीज-संज्ञा पुं० [सं०] राजघेर।

वि० जिसके बीज छोटे हों।

तनुग्रह-संज्ञा पुं० [सं०] बहमीक रोग।

तनुसर-संज्ञा पुं० [सं०] पसीना। स्वेद।

तनू-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पुत्र। बेटा। लड़का। (२) शरीर।
(३) प्रजापति। (४) गौ। गाय।

तनुज-संज्ञा पुं० [सं०] दे० "तनुज"।

तनुजा-संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० "तनुजा"।

तनुनप-संज्ञा पुं० [सं०] घृत। घी।

तनुपा-संज्ञा पुं० [सं०] वह अग्नि जिससे खाया हुआ अन्न पचता
है। जडाग्नि।

तनुपान-संज्ञा पुं० [सं०] अंगरक्षक। वह जो शरीर की रक्षा
करता है।

तनुनपात्, तनुनपाद्-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चीते का वृक्ष।
चीता। चितावर। चित्रक। (२) अग्नि। आग। (३) प्रजापति
के दोते का नाम। (४) घी। घृत। (५) मन्त्रन।

तनुपृष्ठ-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का सोमयाग।

तनूर-संज्ञा पुं० [सं०] दे० "तनूर"।

तनूरुह-संज्ञा पुं० [सं०] (१) रोम। लोम। रोष्ण। (२) पक्षियों
का पर। पंख। (३) पुत्र। लड़का। बेटा।

तनेना-वि० [हिं० तनना + एना (प्रत्य०)] [श्री० तनेनी] (१)
खिंचा हुआ। टेढ़ा। तिरछा। उ०—यात के वृक्ष ही मतिराम
कहा करती अब भीह तनेनी।—मतिराम। (२) झुड़। जो
नाराज हो। उ०—झाली हीं गई ही धातु भूलि बरसाने
कहू सापे नू परै है पदमाकर तनेनी क्यों।—पद्माकर।

तनै-संज्ञा पुं० दे० "तनय"।

तनेना-संज्ञा पुं० दे० "तनेना"।

तनेया-संज्ञा स्त्री० [सं० तनया] पुत्री। बेटि। कन्या। लड़की।

तनेला-संज्ञा पुं० [सं०] एक किस्म का छोटा पेड़ जिसके फूल
खुरम्वार और सुकंद होते हैं।

तनोज-संज्ञा पुं० [सं० तनुज] (१) रोम। लोम। रोष्ण।
उ०—अंग धारहे क्यों भरे खरे तनोज पसेव।—४०० सत।
(२) लड़का। बेटा।

तनोरुह-संज्ञा पुं० दे० "तनूरुह"।

तनुना-संज्ञा पुं० [हिं० तनना] (१) तुनाई में ताने का सूत जो
संबाई में ताना जाता है। (२) वह जिस पर कोई चीज
तानी जाय।

तनुना-कि० अ० [हिं० तनना] थकड़ना। धुँठना। थकड़
दिखाना। थिगड़ना। झुड़ होना।

तनु-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) पिठवन। (२) कारमीर की चंद्रतुल्या
वर्दी का नाम।

तनु-संज्ञा स्त्री० [सं० तनिका, हिं० तनना या तना] (१) तराजू में
जोती की रस्सी। वह रस्सी जिसमें तराजू के पखले लटकते
हैं। जोती। (२) एक प्रकार की शंकुली जिसेसे लोहे की
मैल सुरचते हैं। (३) जहाम के मस्जु की जड़ में बंधा
हुआ एक प्रकार का रस्सा जिसकी सहायता से पाल आदि
चढ़ाते हैं। (लश०)

संज्ञा पुं० [हिं० तनी] किसी व्यापारी जहाज का वह अफसर
जो यात्राकाल में उसके व्यापार संबंधी कार्यों का प्रबंध
करता हो।

संज्ञा पुं० दे० "तनी"।

तन्मय-वि० [सं०] जो किसी काम में बहुत ही मग्न हो।
लवलीन। लीन। लग्न हुआ। दूषित। उ०—कण्ह
कहति कीन हरि को मैं यो तन्मय हूँ जाहीं।—सूर

तन्मयता-संज्ञा स्त्री० [सं०] क्लिप्तता। एकाग्रता। लीनता। तदा-
कारता। लगन।

तन्मयासक्ति-संज्ञा स्त्री० [सं०] भगवान में तन्मय हो जाना।
भक्ति में अपने धांपको भूल जाना और अपने को भगवान
ही समझना।

संज्ञा स्त्री० [हिं० तपना] तपने की क्रिया या भाव । ताप । जलन । गरमी ।

मुहा०—तपन का महीना = वह महीना जिसमें गरमी खूब पड़ती है । गरमी ।

तपनकर-संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य की किरण । रश्मि ।

तपनच्छद्-संज्ञा पुं० [सं०] मदार का पेड़ ।

तपनतनय-संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य के पुत्र यम, कर्ण, शनि, सुग्रीव आदि ।

तपनतनया-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) शमीवृक्ष । (२) यमुना नदी ।

तपनमणि-संज्ञा पुं० [सं०] सूर्यकांत मणि ।

तपनीशु-संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य की किरण । रश्मि ।

तपना-किं० अ० [सं० तपन] (१) बहुत अधिक गरमी आंच या धूप आदि के कारण खूब गरम होना । तप्त होना । उ०—निज अथ समुक्ति न कुट्ट कधि जाई । तपइ अर्थां एव उर अथिकाई ।—तुलसी ।

संयोग क्रि०—जाना ।

मुहा०—रसोईं तपना = दे० "रसोईं" के मुहाविर ।

(२) सतास होना । कष्ट सहना । मुसीबत भेजना । जैसे, हम घंटों से यहाँ आप के आसरे तप रहे हैं । उ०—सीप सेवाति कैह तपइ समुद्र मँक नीर ।—जायसी । (३) तेज या ताप धारण करना । गरमी या ताप फैलाना । उ०—जइस भानु जग ऊपर तथा ।—जायसी । (४) प्रयत्न, प्रभुत्व या प्रताप दिखलाना । आतंक फैलाना । जैसे, आजकल यहाँ के फौतवाल खूब तप रहे हैं । उ०—(क) सेरसाहि देहली सुलतान् । चारिउ संद तपइ जस भान् ।—जायसी । (ख) कर्म, काल, गुन सुभाष सत्र के सीस तपत ।—तुलसी ।

* (५) तपस्या करना । तप करना ।

तपनी-संज्ञा स्त्री० दे० "तपन" ।

तपनी-संज्ञा स्त्री० [हिं० तपना] (१) वह स्थान जहाँ बैठ कर लोग आरा तपते हैं । कौड़ा । अलाव ।

क्रि० प्र०—तापना ।

(२) तपस्या । तप ।

संज्ञा स्त्री० [सं०] गोदावरी नदी ।

तपनीय-संज्ञा पुं० [सं०] सेना ।

तपनीयक-संज्ञा पुं० दे० "तपनीय" ।

तपनेष्ट-संज्ञा पुं० [सं०] तर्बा ।

तपनोपल-संज्ञा पुं० [सं०] सूर्यकांत मणि ।

तपभूमि-संज्ञा स्त्री० दे० "तपोभूमि" ।

तपराशि-संज्ञा पुं० दे० "तपोराशि" ।

तपलोक-संज्ञा पुं० दे० "तपोलोक" ।

तपवाना-किं० सं० [हिं० तपाना का प्र०] (१) गरम करवाना ।

तपाने का काम दूसरे से कराना । (२) किसी से व्यर्थ व्यय कराना । अनावश्यक व्यय कराना ।

तपवृद्ध-वि० दे० "तपोवृद्ध" ।

तपदचरख-संज्ञा पुं० [सं०] तप । तपस्या ।

तपदचर्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] तपस्या । तपश्चरख ।

तपस-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चंद्रमा । (२) सूर्य । (३) पत्नी ।

तपसा-संज्ञा स्त्री० [सं० तपस्या] (१) तपस्या । तप । (२) तापती नदी का दूसरा नाम जो बैतूल के पहाड़ से निकल कर संभात की खाड़ी में गिरती है ।

तपसाती-संज्ञा पुं० [सं० तपःशक्ति] तपस्वी । वह जिस ने बहुत तपस्या की हो । उ०—आप-मुनिवर निकर तव कौशिकादि तपसालि ।—तुलसी ।

तपसी-संज्ञा पुं० [सं० तपस्वी] तपस्या करनेवाला । तपस्वी । उ०—तपसी तुमको तप करि पावै । सुनि भागवत शृष्टी गुन गावै ।—सूर ।

तपसी मछली-संज्ञा स्त्री० [सं० तपस्या मत्स्य] एक बालिरत लंबी एक प्रकार की मछली जो बंगाल की खाड़ी में होती है । बैसाख या जेठ के महीने में श्रेष्ठ देने के लिये यह नदियों में चली जाती है ।

तपसोमूर्च्छि-संज्ञा पुं० [सं०] हरिवंश के अनुसार धारहवें मन्वन्तर के चौथे सावर्णि के सप्तर्षियों में से एक ।

तपस्तक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] ईद ।

तपस्पति-संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु ।

तपस्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कुंद पुष्प । (२) तपस्या । तप । (३) हरिवंश के अनुसार तामस मनु के दस पुत्रों में से एक पुत्र का नाम । (४) फागुन का महीना । (५) अर्जुन । (अर्जुन का एक नाम फाल्गुन भी था इसीलिये तपस्य भी अर्जुन का एक नाम हो गया ।)

तपस्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) तप । व्रतचर्या । (२) फागुन मास । (३) दे० "तपसी मछली" ।

तपस्वत्-संज्ञा पुं० [सं०] तपस्वी ।

तपस्विता-संज्ञा स्त्री० [सं०] तपस्वी होने की अवस्था या भाव ।

तपस्विनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) तपस्या करनेवाली स्त्री ।

(२) तपस्वी की स्त्री । (३) पतिव्रता या सती स्त्री ।

(४) जटामासी । (५) वह स्त्री जो अपने पति के मरने पर केवल अपनी संतान के पालन करने के लिये सती न हो और कष्टपूर्वक अपना जीवन बितावे । (६)

दीन और दुखिया स्त्री । (७) जटामासी । (८) चड़ी गोरक्षमुंजी ।

(९) कुटकी । कटुरोहिणी ।

तपस्वि-पत्र-संज्ञा पुं० [सं०] दमनक वृक्ष । दौने का पेड़ ।

तपस्वी-संज्ञा पुं० [सं० तपस्विन्] [खी० तपस्विनी] (१) वह जो तप करता हो। तपस्या करनेवाला। (२) दीन। (३) दया करने योग्य। (४) धीकृपार। (५) तपसी मङ्गली। (६) तपसोमूर्त्ति का एक नाम।

तपार्-संज्ञा पुं० [हिं० तप] तपस्वी। उ०—मठ मंढप चहुँ पास सँवारे। तपा जपा सब आसन मारे।—जायसी।

वि० तप में मग्न। जो तपस्या में लीन हो। उ०—फैरूँ भेस रहई मा तपा। धूरे लपेटा मानिक छुपा।—जायसी।

तपका-संज्ञा पुं० [फा०] (१) आवेश। जोग। जैसे, आते ही वह बड़े तपका से बोला।

मुहा०—तपका बदलना = नाराज होना। विगड़ जाना। सेवर बदलना।

(२) वेग। तेजी।

तपास्य-संज्ञा पुं० [सं०] वर्षाकाल। बरसात।

तपानल-संज्ञा पुं० [सं०] तप से उत्पन्न तेज। वह तेज जो तप करने के कारण उत्पन्न हो।

तपाना-कि० सं० [हिं० तपना] (१) बहुत अधिक गर्मी, आग, धूप आदि की सहायता से गरम करना। तल करना। (२) संतप्त करना। बुझा देना। बकेश देना।

तपावत-संज्ञा पुं० [हिं० तप + वत (प्रत्य०)] तपस्वी। तपसी। वह जो तपस्या करता हो। उ०—तपावत छाया लखि दीन्हा। वेग चलाव चहुँ सिधि कीन्हा।—जायसी।

तपाव-संज्ञा पुं० [हिं० तपना + षव (प्रत्य०)] तपने की क्रिया या भाव। गरमाहट। ताप।

तपित-वि० [सं०] तपा हुआ। गरम। तल।

तपिया-संज्ञा पुं० [दे०] एक प्रकार का वृक्ष जो मूल्य भारत, बंगाल तथा आसाम में होता है। इस की छाल तथा पत्तियाँ औषध के काम में आती हैं। इसे विरामी भी कहते हैं।

तपिषा-संज्ञा स्त्री० [फा०] गरमी। तपन। प्रांच। तप।

तपी-संज्ञा पुं० [हिं० तप + ई (प्रत्य०)] (१) तप करनेवाला। तपस्वी। तापस। श्रष्टि। उ०—धनवंत कुञ्जीन मलीन अपी। द्विज चिद्ध अनेउ उवार तपी।—तुलसी। (२) स्वर्ग। (हिं०)

तपु-संज्ञा पुं० [सं० तपुस्] (१) अग्नि। आग। (२) स्वर्ग। रवि। (३) शत्रु।

वि० (१) तल। शष्प। गरम। (२) तपाने या गरम करनेवाला।

तपेदिक-संज्ञा पुं० [फा० तप + दिक] राजपन्ना। छत्रीरोग।

तपोज-वि० [सं०] (१) जो तपस्या से उत्पन्न हुआ हो। (२) जो अग्नि से उत्पन्न हुआ हो।

तपोजा-संज्ञा स्त्री० [सं०] जल। पानी।

विदोष—प्राचीन आर्यों का विश्वास था कि यज्ञ आदि की अग्नि की सहायता से ही मेष वनता है, इसीलिये जल का नाम 'तपोज' पड़ा।

तपोङ्गी-संज्ञा स्त्री० [दे०] काठ का एक प्रकार का बरतन। (लया०)

तपोदान-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन पुण्य-तीर्थ जिस का वर्णन महाभारत में आया है

तपोधन-संज्ञा पुं० [सं०] तपस्वी। वह जो तपस्या के अतिरिक्त और कुछ भी न करता हो। उ०—सिद्ध तपोधन जोगि जन सुर किन्नर मुनि वृन्द।—तुलसी। (२) दौने का पेड़।

तपोधना-संज्ञा स्त्री० [सं०] गोरखमुंडी।

तपोधर्म-संज्ञा पुं० [सं०] तपस्वी।

तपोधृति-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार बारहवें मन्वन्तर चौथे सावर्णिक के सप्तर्षियों में से एक ऋषि।

तपोनिधि-संज्ञा पुं० [सं०] तपोनिष्ठ। तपस्वी।

तपोनिष्ठ-संज्ञा पुं० [सं०] तपस्वी।

तपोवन-संज्ञा पुं० दे० 'तपोवन'।

तपोभूमि-संज्ञा स्त्री० [सं०] तप करने का स्थान। तपोवन।

तपोमय-संज्ञा पुं० [सं०] परमेश्वर।

तपोमूर्त्ति-संज्ञा पुं० [सं०] (१) परमेश्वर। (२) तपस्वी। (३) पुराणानुसार बारहवें मन्वन्तर के चौथे सावर्णिक के सप्तर्षियों में से एक।

तपोमूल-संज्ञा पुं० [सं०] तामस मनु के एक पुत्र का नाम।

तपोरति-संज्ञा पुं० [सं०] (१) तपस्वी। (२) तामस मनु के एक पुत्र का नाम।

तपोरवि-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार बारहवें मन्वन्तर के चौथे सावर्णिक के समय के सप्तर्षियों में से एक ऋषि का नाम।

तपोराशि-संज्ञा पुं० [सं०] बहुत बड़ा तपस्वी।

तपोलोक-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार चौदह लोकों में से ऊपर के सात लोकों में से छठा लोक जो जनलोक और सत्यलोक के बीच में है। पद्मपुराण में लिखा है कि यह लोक सैत्रोमय है और जो लोग अनेक प्रकार की कठिन तपस्याएँ करके श्रीकृष्ण भगवान को संतुष्ट करते हैं इस लोक में भेजे जाते हैं।

तपोचट-संज्ञा पुं० [सं०] महावर्त देश।

तपोवन-संज्ञा पुं० [सं०] वह एकत्रित स्थान या घन जहाँ तप बहुत अच्छी तरह हो सकता हो। तपस्वियों के रहने या तपस्या करने के योग्य वन।

तपोचल-संज्ञा पुं० [सं०] तप का प्रभाव या शक्ति।

तपोमृद्-वि० [सं०] जो तपस्या द्वारा श्रेष्ठ हो।

तपोहसन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) तामस मनु के पुत्र तपस्य का एक नाम। (२) तपसोमूर्त्ति का एक नाम।

तपानी—संज्ञा स्त्री० [हि० तपाना] (१) ठगों की एक रसमजो मुसा-
फिरों के गरोद को लूट मार चुकने और उनका माल ले लेने
पर होती है। इसमें सय ठग मिल कर देवी की पूजा करते
हैं और गुड़ चढ़ा कर उसी का प्रसाद आपस में बाँटते हैं।

मुहा०—तपानी का गुड़ = (१) तपानी की पूजा के प्रसाद का
गुड़ जो किसी नए आदमी को पहले पहन अपने मंडली में
मिलाने के समय ठग लोग खिलाते हैं। (२) किसी नए आदमी
को अपनी मंडली में मिलाने के समय किया जानेवाला काम या
दिया जानेवाला पदार्थ।

(३) दे० “तपनी”।

तप्त—वि० [सं०] (१) तपाया या तपा हुआ। जलता हुआ।
तापित। गरम। उष्ण। (२) दुःखित। झंझित। पीड़ित।

तप्तकुंड—संज्ञा पुं० [सं०] वह प्राकृतिक जल-धारा जिसका पानी
गरम हो। गरम पानी का स्रोत या कुंड।

विशेष—पहाड़ों तथा मैदानों आदि में कहीं कहीं ऐसे स्रोत
मिलते हैं जिनका पानी गरम होता है। भिन्न भिन्न स्थानों
में ऐसे स्रोतों का पानी साधारण गरम से लेकर खोलता हुआ
तक होता है। पानी के गरम होने का मुख्य कारण यह है कि
यह पानी या तो बहुत अधिक गहराई से, या भूगर्भ के
शंकर की शक्ति से तपी हुई चट्टानों पर से होता हुआ आता
है। ऐसे स्रोतों के जल में बहुत-से अनेक प्रकार के खनिज
द्रव्य (जैसे, गंधक, लोहा, अनेक प्रकार के चार) भी
मिले होते हैं जिनके कारण उन जलों में बहुत से रोगों को
दूर करने का गुण आ जाता है। भारतवर्ष में तो ऐसे स्रोतों
कम हैं पर युरोप और अमेरिका में ऐसे स्रोतों बहुत
पाए जाते हैं जिन्हें देखने तथा जिनका जल पीने के
लिये बहुत दूर दूर से लोग जाते हैं। बहुत से लोग अनेक
प्रकार के रोगों से मुक्त होने के लिये महीनों उनके किनारे
रहते भी हैं। प्रायः जल जितना अधिक गरम होता है उसमें
गुण भी उतना ही अधिक होता है। ऐसे स्रोतों के जल में
दस्त लगने, बल बढ़ाने या रक्त-विकार आदि दूर करनेवाले
खनिज द्रव्य मिले हुए होते हैं।

तप्तकुंभ—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक बहुत भयानक नरक
जिसके विषय में यह माना जाता है कि वहाँ खोलते हुए
तेल के कड़ाहे रहते हैं। वहाँ कड़ाहों में दुराचारियों को
यम के दूत फेंक दिया करते हैं।

तप्तकुण्ड—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का सूत जो बारह दिनों में
समाप्त होता और प्रायश्चित्त स्वरूप किया जाता है। इसमें
मत्त करनेवाले को पहले तीन दिन तक प्रति दिन तीन पल
गरम दूध, तब तीन दिन तक नित्य एक पल घी, फिर तीन
दिन तक रोज १ पल गरम जल और अंत में तीन दिन तक
गरम वायु का सेवन करना होता है। गरम वायु से ताप

गरम दूध से निकलनेवाली भाप का है। यह सूत करने से
द्विजों के सब प्रकार के पाप नष्ट हो जाते हैं। किसी किसी
के मत से यह सूत केवल चार दिनों में किया जा सकता
है। इसमें पहले दिन तीन पल गरम दूध, दूसरे दिन
एक पल गरम घी और तीसरे दिन ६ पल गरम जल पीना
चाहिए और चौथे दिन उपवास करना चाहिए।

तप्तपापाण्य—संज्ञा पुं० [सं०] एक नरक का नाम।

तप्तबालुक—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक नरक का नाम।

तप्तमाप—संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल की एक प्रकार की परीक्षा
जिसमें व्यवहार या श्रमराध आदि के संबंध में किसी
मनुष्य के कथन की सत्यता जानी जाती थी। इसमें जोड़े
या तपे के रतन में घी या तेल खोलाया जाता था और
परीक्षार्थी उस खोलते हुए तेल या घी में अपनी उँगली डालता
था। यदि उसकी उँगली में छापे आदि न पड़ते तो यह
सच्चा समझा जाता था।

तप्तमुद्रा—संज्ञा पुं० [सं०] द्वारका के शंख चक्रादि के छापे जो
तपा कर वैष्णव लोग अपनी मुद्रा तथा दूसरे अंगों पर दाग
लेते हैं। यह धार्मिक चिह्न होता है और वैष्णव लोग इसे
मुक्तिदायक मानते हैं। दे० “चक्रमुद्रा”।

तप्तरूपक—संज्ञा पुं० [सं०] तपाई हुई और साफ चाँदी।

तप्तदर्मी—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक नरक का नाम
जिसमें आग्न्या स्त्री के साथ संभोग करनेवाले पुरुष और
आग्न्य पुरुषों के साथ संभोग करनेवाली स्त्रियाँ भेजी जाती
हैं। इसमें उन पुरुषों और स्त्रियों को जलते हुए छोड़े के खंने
शालिगन करने पड़ते हैं।

तप्तसुराकुंड—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक नरक का नाम।
तप्तायनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] यह भूमि जो दीन मुखियों को बहुत
सता कर प्राप्त की जाय।

तप्य*—संज्ञा पुं० दे० “तप”। उ०—साधन सिद्ध न पाई जो
साधिन तप्य। सो वै जानहि बापुरो सीस जो करे कलप्य।
—जायसी।

तप्य—संज्ञा पुं० [सं०] शिव।

वि० [सं०] जो तपने या तपाने योग्य हो।

तपरीक—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) बुढ़ाई। निश्चिता। चलहदगी।
(२) घटना। बाकी निकालना। (गणित)

क्रि० प्र०—निकालना।

(३) फरक। अंतर। (४) घंटवारा। घाँट। घंटाई। (कानून)

तपरीह—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) बुढ़ाई। प्रसन्नता। फरहत। (२)
दिलबहाव। दिखनी। हँसी। ठट्ठा। (३) ह्माखोरी।
सैर। (४) ताजान। ताजगी।

तपुसील—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) विस्तृत बर्णन। (२) टीका।
तपरीह। (३) मूची। फेड़रिस्त। फड़। (४) कफियत।
भोरा। विचारण।

तफ़ायत—संज्ञा पुं० [अ०] (१) अंतर । फर्क । (२) दूरी । फ़ासिना ।

तब—अव्य० [सं० तदा] (१) उस समय । उस वक ।

विशेष—इस कि० वि० का प्रयोग प्रायः 'जब' के साथ होता है । जैसे, जब तुम आओगे तब मैं चलेँगा ।

(२) इस कारण । इस वजह से । जैसे, मेरा उधर काम था तब मैं गया, नहीं क्यों जाता ?

तबक़—संज्ञा पुं० [अ०] (१) छात्राश के वे कल्पित संद जो पृथ्वी के ऊपर और नीचे माने जाते हैं । लोक । तल । (२) परत । तह । (३) चाँदी, सोने आदि धातुओं के पत्तों को पीट कर कामान की तरह बनाया हुआ पतला वरक जो बहुधा मिठाइयों आदि पर चपकाना और इमारतों में ढाला जाता है । (४) चाँदी और ज़िञ्जली वाली । (५) वह पत्ता या उपचार जो सुप्तमान जिंघों परियों की पाषा से बचने के लिये करती है । परियों की नमाज़ ।

क्रि० प्र०—छोड़ना ।

(१) घोड़ों का एक रोग जिसमें उनके शरीर पर सूजन हो जाती है । (२) रक्तविकार के कारण शरीर पर पड़ा हुआ दाग । चकचा ।

तबक़गर—संज्ञा पुं० [अ० तबक़ + गर] वह जो सोने चाँदी आदि के तबक़ या पत्तर बनाता हो । तबकिया ।

तबक़ड़ी—संज्ञा स्त्री० [अ० तबक़ + डी (प्रत्य०)] छोटी रिकानो ।

तबक़फ़ाड़—संज्ञा पुं० [अ० तबक़ + हिं० फ़ाड़] कुत्ती का एक पेंच । जब शत्रु पेट में घुस आता है तब पहलवान अपनी दाहिनी टाँग से उसके बाएँ पंख को भीतर से बाँधते हैं और दोनों हाथों से उसकी दाहिनी टाँग को जाँच की जगह पकड़ कर उसके दोनों पंख फाड़ते हैं और गीका पा कर उसे चित कर देते हैं ।

तबका—संज्ञा पुं० [अ० तबकः] (१) बंद । विभागा । (२) तह । परत । (३) लोक । तल । (४) आदिमियों का परोह । (५) पद । खना ।

तबकिया—संज्ञा पुं० [अ० तबक़ + इया (अव्य०)] वह जो सोने, चाँदी आदि के तबक़ या पत्तर बनाता हो । तबकिया ।

क्रि० तबक़—संबंधी । जिसमें तबक़ या परत हैं । जैसे, तबकिया हस्ताल ।

तबकिया हस्ताल—संज्ञा पुं० [हिं० तबकिया + सं० हस्ताल] एक प्रकार की हस्ताल जिसके टुकड़ों में तबक़ या परत होते हैं । इसके टुकड़ों में से अलग अलग पपड़ियाँ लीं उतरती हैं ।

तबदील—क्रि० [अ०] जो बदला गया हो । परिवर्तित ।

तबदीली—संज्ञा स्त्री० [अ०] बदले जाने या परिवर्तित होने की क्रिया । बदली ।

तबदल—संज्ञा पुं० दे० "तबदीली" ।

तबर—संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) कुश्वाड़ी । टींगी । (२) कुश्वाड़ी की तरह का लकड़ी का एक हथियार ।

संज्ञा पुं० [देग०] मंदूल के तब से ऊपरी भाग में लगाई जानेवाली पाल जिसका प्थवहार बहुत हलकी हवा चलने के समय होता है ।

तबरदार—संज्ञा पुं० [फ़ा०] कुश्वाड़ी या तबर चलानेवाला ।

तबरदारी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] तबर, कुश्वाड़ी या फरसा चलाने का काम ।

तथल—संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) बड़ा डोल । (२) नगारा । टंका ।

तथलची—संज्ञा पुं० [अ० तथलः + ची (प्रत्य०)] वह जो तथला बजाता हो । तथलिया ।

तथला—संज्ञा पुं० [अ० तथलः] ताल देने का एक प्रसिद्ध बाजा जिसमें काठ के लंबेतर और सोलहके कूँड़ पर गोल चमड़ा मड़ा रहता है । यह चमड़ा "पूरी" कहलाता है और इस पर जोहचून, भाँदें, लोई, सरस, मँगरैले और तेल को मिलाकर बनाई हुई स्वाही की गोबल टिकिया भरकड़ी तरह जमाकर चिकने पत्पर से घोंदी हुई होती है । इसी स्वाही पर आघात पड़ने से तथले में से आवाज़ निकलती है । कूँड़ पर रख कर यह पूरी चारों ओर चमड़े के पीते से जिसे 'बद्धी' कहते हैं, कस कर बाँध दी जाती है । इस बद्धी और कूँड़ के बीच में काठ की गुलियाँ भी रख दी जाती हैं जिनकी सहायता से तथले का स्वर आवश्यकतानुसार चढ़ाते या उतारते हैं । वातावरण अधिक ठंडा हो जाने के कारण भी तथला आप से आप उतर जाता और अधिक गरमी के कारण आप से आप चढ़ जाता है । यह बाजा अकेला नहीं बजाया जाता, इसी तरह के और दूसरे बाजे के साथ बजाया जाता है जिसे "बायाँ", "टंका" या "हुगी" भी कहते हैं ।

विशेष—साधारणतः सोलबाज में लोग तथले और बाएँ को एक साथ मिला कर भी कौबल तथला ही कहते हैं । तथला दाहिने हाथ से और बायाँ बाएँ हाथ से बजाया जाता है ।

क्रि० प्र०—बजना।—बजाना ।

मुहा०—तथला उतरना = तथले की बद्धी का ढीला पड़ जाना जिसके कारण तथले में से धीमा या मंद स्वर निकलने लगे । तथला उतरना = तथले की बद्धी को ढीला करके या और किसी प्रकार पूरी पर का उनाव कम कर देना जिससे तथले में से धीमा या मंद स्वर निकलने लगे । तथला खनकना = दे० "तथला ठनकना" । तथला चढ़ना = तथले की बद्धी का कस जाना जिससे पूरी पर तनाव अधिक पड़ता और स्वर ऊँचा निकलने लगता है । तथला चढ़ना = तथले की बद्धी को कस कर पूरी पर का उनाव अधिक करना जिसमें तथले में से ऊँचा स्वर निकलने लगे । तथला ठनकना = (१) तथला बजना । (२) नाच रंग देना । तथला मिलाना = गुलियो को ऊपर नीचे हटा बढ़ा कर

ऐसी स्थिति में काना जिसमें पूरी पर चारों ओर से समान तनाव पड़े और तबले में वे चारों ओर से कोई एक ही विशिष्ट स्वर निकले।

तबलिया—संज्ञा पुं० [अ० तबल + द्या (प्रत्य०)] वह जो तबला पत्राता हो। तबलची।

तबाक—संज्ञा पुं० [अ०] बड़ा थाक। परात।

थी०—तबाकी कुत्ता = पेंवत खाने पीने का साथी। वह जो केवल शत्रु दरा में साथ दे और आपत्ति के समय अलग हो जाय।

तबाबत—संज्ञा स्त्री० [अ०] चिकित्सा। वैद्यक।

तबाशीर—संज्ञा पुं० [सं० तबशिर] बंसलोचन।

तबाह—वि० [फा०] जो नष्ट भ्रष्ट या विजकुल खराब हो गया हो। नष्ट। परमाद्र। चौपट।

तबाही—संज्ञा स्त्री० [फा०] गाय। परबादी। शधःपतन।

कि० प्र०—शाना।

मुहा०—तपाही पाना = जहाज का टूट फूट कर रद्दी होना। (बरा०)। तपाही पड़ना = जहाज का काम के लिये मुहताज रहना। जहाज को काम न मिलना। (बरा०)

तबिमत—संज्ञा स्त्री० दे० "तबीमत"।

तबीमत—संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) चित्त। मन। जी।

मुहा०—(किसी पर) तबीमत शाना = (किसी पर) प्रेम होना। आशिक होना। (किसी चीज पर) तबीमत शाना = (किसी चीज को) लेने की इच्छा होना। तबीमत उलकना = जी घबराना। तबीमत खराब होना = (१) बीमारी होना। स्वस्थ विगड़ना। (२) जी मिचलाना। तबीमत फड़क उठना = चित्त का उत्साहपूर्वक और प्रसन्न हो जाना। उमंग के कारण बहुत प्रसन्न होना। तबीमत फड़क जाना = दे० "तबीमत फड़क उठना"। तबीमत फिरना = जी हड़ना। अतुराग न रहना। तबीमत विगड़ना = दे० "तबीमत खराब होना"। तबीमत भलना = (१) संतोष होना। तबली होना। (२) संतोष करना। तबली करना। जैसे, हमने अच्छी तरह उन की तबीमत भर दी तब बन्होंने हृद्य लिप। (३) मन भलना। अतुराग या इच्छा न रहना। जैसे, सब हून कामों से हमारी तबीमत भर गई। तबीमत खगना = (१) मन में अतुराग उत्पन्न होना। (२) ख्याल लगा रहना। ध्यान लगा रहना। जैसे, इधर कई दिनों से उनकी चिट्ठी नहीं आई, इससे तबीमत खगी हुई है। तबीमत खगाना = (१) चित्त को किसी काम में प्रयत्न करना। जैसे, तबीमत खगा कर काम किया करो। (२) प्रेम करना। मुहजुत में फँसना। तबीमत होना = अतुराग या प्रयत्न होना। जी चाहना। (२) मुक्ति। समक। भाव।

मुहा०—तबीमत पर जोर डालना = विशेष ध्यान देना। धनत्रह करना। जैसे, जरा तबीमत पर जोर डाला करो, अच्छी कविता करने लगोगे। तबीमत खड़गना = दे० "तबीमत पर जोर डालना"।

थी०—तबीमतदार। तबीमतदारी।

तबीमतदार—वि० [अ० तबीमत + फा० दार] (१) जो भावों को चट प्रहय करता हो। समन्दार। (२) भावुक। रसिक। रसज्ञ।

तबीमतदारी—संज्ञा स्त्री० [अ० तबीमत + फा० दारी] (१) होशियारी। समन्दारी। (२) भावुकता। रसज्ञता।

तबीब—संज्ञा पुं० [अ०] वैद्य। चिकित्सक। हकीम।

तभी—अव्य० [हिं० तब + धी] (१) वही समय। वही वक। वही घड़ी। जैसे, जब तुम नहीं थापू तभी मैंने समक लिया कि दाब में कुछ काला है। (२) इसी कारण। इसी वजह से सेने, मुहारा बधर काम था तभी तुम गए।

तमचा—संज्ञा पुं० [फा०] (१) छोटी बंदूक। पिस्तौल।

कि० प्र०—खजाना।—दागना।—भारना।—घोड़ना।

थी०—तमचे की टांग = कुर्ती का एक पेंच जिसमें शत्रु के पैट में चुल खाने पर चापू ह्याप से कमर पर से उतका होंगा पकड़ लेते हैं और उसकी दाहिनी वजह से खपना थाया पीव चढ़ाकर पीठ पर से उसकी बाईं जॉय फँसते और उसे चित कर देते हैं।

(२) एक खंबा परपर जो दरवाजों की मजबूती के लिये खगल में लगाया जाता है।

तम—संज्ञा पुं० [सं० तम, तमस] (१) शंभकार। शैवेरा। (२) पैर का अगला भाग। (३) तमाल वृक्ष। (४) राहु। (५) घाह। सुभर। (६) पाप। (७) शोध। (८) श्रमाल। (९) कालिल। कालिमा। श्यामता। (१०) तरक। (११) मोह। (१२) सांख्य के अनुसार त्रिविधा। (१३) सांख्य के अनुसार प्रकृति का तीसरा गुण जो भारी और रोकनेवाला माना गया है। जब मनुष्य में इस गुण की अधिकता होती है तब उसकी प्रवृत्ति काम शोध हिंसा आदि नीच और बुरी बातों की ओर होने लगती है।

तमघ—संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) लाजव। लोम। हिस। (२) चाह। हृद्य। स्वादिश।

तमक—संज्ञा पुं० [हिं० तमकना] (१) जेरा। बड़ेग। (२)

तेजी। सीपता। (३) शोध। गुस्ता।

संज्ञा पुं० [सं०] मुख्य के अनुसार श्याम रोग का एक भेद जिसमें दम फूटने के साथ साथ बहुत प्यास लगती है, पलीना आता है, जी मिचलता है और गले में धारपाहट होती है। जिस समय आकाश में बादल छाए हो, उस समय इसका प्रकोप अधिक होता है।

तमकना—कि० अ० [अ०] (१) क्रोध का आवरण विखलाना । क्रोध के कारण उछल पड़ना । ३०—अंजन प्राप्त तत्रत तमकत तकि खानत दरान घीदि । हारेहू भदिं हयत धमित वत बदन पयोधि पईत—सूर । (२) दे० "तमतमाना" ।

तमकभास—उंशा पुं० [सं०] एक प्रकार का दमा जिसमें कंठ रुक जाता है और धारधाहट होती है । प्रायः इसके अल्पज होने से रोगी के मर जाने का भी भय होता है ।

तमगा—उंशा पुं० [उ०] पदक । तगमा । मेढल ।

तमगुन—उंशा पुं० से० "तमेगुण्य"

तमघर—उंशा पुं० [सं० तमघर] (१) राक्षस । निराचर । (२) बल्क । बखू ।

तमचुर * १—उंशा पुं० [सं० तमचूर] सुरगा । कुचूट । ३०—
(क) विश्व वाले नदि होत अंगूह । सबद न देद विरद तम चूर ।—जायसी । (ख) सुनि तमचुर हो सौर घोष की भागरी । नबसत साजि सिंगार चर्बी प्रज नागरी ।—सूर ।
(ग) ससि कर हीन धीन दुति तारे । तमचुर सुघर सुनहु मेरे प्यारे ।—तुलसी ।

तमचौर * १—उंशा पुं० दे० "तमचुर" ।

तमतमाना—कि० अ० [सं० तम] (१) धूप या क्रोध आदि के कारण चेहरा खाल हो जाना । (२) चमकना । दमकना । (ब०)

तमतमाहट—उंशा स्त्री० [हिं० तमतमाना] तमतमाने का भाव ।

तमता—उंशा स्त्री० [सं०] (१) तम का भाव । (२) शंभेरा । शंभकार ।

तमप्रभ—उंशा पुं० [सं०] सुरायातुसार एक गरक का नाम ।

तमरंग—उंशा पुं० [दे०] एक प्रकार का नीबू जिसे 'तुरंग' कहते हैं ।

विशेष—दे० "तुरंग" ।

तमर—उंशा पुं० [सं०] यंग ।

उंशा पुं० [सं० तम] शंभकार । शंभेरा ।

तमराज—उंशा पुं० [सं०] एक प्रकार की झाड़ू जो वैद्यक में ज्वर, दाह तथा पित्तनाशक मानी गई है ।

तमलूक—उंशा पुं० दे० "तामलूक" ।

तमलेट—उंशा पुं० [अ० २३३] (१) लुक फेरा हुआ टीन या छोटे का बरतन । (२) फौजी सिपाहियों का लोटा ।

तमस—उंशा पुं० [सं०] (१) शंभकार । (२) अज्ञान का शंभकार । (३) प्रकृति का एक गुण । दे० "गुण" । तमेगुण्य ।

तमस—उंशा पुं० [सं०] (१) शंभकार । (२) अज्ञान का शंभकार । (३) राप । (४) नगर । (५) दूध । कुप्रा । (६) तमसा नदी । टीस । ३—आर्यो तामन नदी के सीरा । सप खादिक परिहार सुपीरा ।—च्युवान ।

तमसा—उंशा स्त्री० [सं०] टीस नाम की नदी । (इस नाम की तीन नदियाँ हैं) । दे० "टीस" ।

तमस्वती—उंशा स्त्री० दे० "तमस्विनी" ।

तमस्विनी—उंशा स्त्री० [सं०] (१) रात्रि । रात । रजनी । (२) इल्की ।

तमस्तुक—उंशा पुं० [अ०] यह कागज जो प्रायः सेनेवाला प्रायः के प्रमाण स्वरूप लिख कर महानजम को देता है । दस्तावेज । श्रयपत्र । खेस ।

तमहँडी—उंशा स्त्री० [हिं० तँवा + हँडी] हँडि के आकार का हाँवे का एक प्रकार का छोटा बरतन ।

तमहर—उंशा पुं० दे० "तमोहर" ।

तमहीद—उंशा स्त्री० [अ०] यह जो कुछ किसी विषय को आरंभ करने से पहले कहा जाय । भूमिका । शीबाचा ।

कि० प्र०—शोधना ।

तमाचा—उंशा पुं० दे० "तमाचा" ।

तमा—उंशा पुं० [सं० दयाः तमः] राहु ।

उंशा स्त्री० (१) रात । रात्रि । रजनी ।

* उंशा स्त्री० दे० "तमघ" । ३०—(क) लोक पलोक विसोक सो तिलोक तादि तुलसी तमाह कदा काहू वीर धान की ।—तुलसी । (ख) आप कीन तप खप कियो न तमाह जोग जाग न विराग त्याग वीरप न तन को ।—तुलसी ।

तमाही—उंशा स्त्री० [दे०] खेत जोतने के पूर्व उसमें की घास आदि साफ करना ।

तमाकू—उंशा पुं० [पु० २३६] (१) तीन से छः फुट तक ऊँचा एक प्रसिद्ध पौधा जो एशिया, अमेरिका तथा उत्तर यूरोप में अधिकता से होता है । इसकी अनेक जातियाँ हैं पर खाने या पीने के काम में केवल २—६ तरह के पत्ते ही आते हैं । इसके पत्ते २—३ फुट तक लंबे, विपाक और नरलीले होते हैं । भारत के सिख भिन्न प्रतियों में इसके बोने का समय एक दूसरे से अलग है, पर पड़ुधा यह कुप्रायः कातिक से लेकर पूस तक बोया जाता है । इसके लिये वह जमीन उपयुक्त होती है जिसमें खार अधिक हो । इसमें खाद की बहुत अधिक आवश्यकता होती है । जिस जमीन में यह बोया जाता है उसमें साब में पड़ुधा केवल जमी की एक फसल होती है । पहले इसका बीग बोया जाता है और जब इसके अंकुर २—६ इंच के ऊँचे होते हैं तब इसे दूसरी जमीन में जो पहले से कई बार बहुत अच्छी तरह जोती हुई होती है, तीन तीन फुट की दूरी पर रोपते हैं । आरंभ में इसमें सिँचाई की भी बहुत अधिक आवश्यकता होती है । इसके फूलने से पहले ही इसकी कवियाँ और नीचे के पत्ते झूट दिष्ट जाते हैं । जब पत्ते उड़ पीले रंग के हो जाते हैं और उस पर विचित्रा पड़ जाती है तब या रो

ये पत्ते काट लिए जाते हैं या पूरे पौधे ही काट लिए जाते हैं। इसके बाद ये पत्ते धूप में सुखाए जाते हैं और अनेक रूपों में काम में लाए जाते हैं। इसके पत्तों में अनेक प्रकार के कीड़े लगते और रोग होते हैं। संश्याकू।

विशेष—सोलहवीं शताब्दी से पहले तमाकू का व्यवहार केवल अमेरिका के कुछ प्रांतों के आदिम निवासियों में ही होता था। सन् १४९२ में जब कोलंबस पहले पहल अमेरिका पहुँचा तब उसने वहाँ के लोगों को इसके पत्ते चखाते और इसका धुआँ पीते हुए देखा था। सन् १५३६ में स्पेनवाले इसे पहले पहल यूरोप ले गए थे। भारत में इसे पहले पहल पुर्तगाली पादरी लाए थे। सन् १६०२ में इसे अलदवेग ने चीजापुर (दक्षिण भारत) में देखा था और वहाँ से यह अपने साथ दिष्टी ले गया था। वहाँ उसने हुके और चिलम पर रख कर इसे शकर के पिलाना चाहा था, पर हकीमी ने मना कर दिया। पर आगे चल कर धीरे धीरे इसका प्रचार बहुत बढ़ गया। आरंभ में इंग्लैंड, फ्रांस तथा भारत आदि सभी देशों में राज्य की ओर से इसका प्रचार रोकने के अनेक प्रयत्न किए गए थे, धर्माधिकारियों और चिकित्सकों ने भी इसका प्रचार रोकने के अनेक उपांग किए थे पर ये सब निष्फल हुए। अद्य समस्त संसार में इसका इतना अधिक प्रचार हो गया है कि खिर्पा, पुरुष, बच्चे और बुढ़े प्रायः सभी किसी न-किसी रूप में इसका व्यवहार करते हैं। भारत की गलियों में छोटे छोटे बच्चे तक इसे खाते या पीते हुए देखे जाते हैं।

(२) इस पेड़ का पत्ता जिसका व्यवहार लोग अनेक प्रकार से करते हैं। चूर करके खाते हैं, सूँघते हैं, धुआँ खींचते के लिये नली में या चिलम पर जलाते हैं। इसमें नया होता है। भारत में धुआँ पीने के लिये एक विशेष प्रकार से तमाकू तैयार किया जाता है। (दे० नं० (३))। इसका बहुत महीन चूर्ण सूँघनी कहलाता है जिसे लोग सूँघते हैं। भारत में लोग इसके पत्तों को सुखा कर पान के साथ शय्या या ही खाने के लिये कई तरह का चूरा बनाते हैं, जैसे, सुरती, अरदा आदि। पान के साथ खाने के लिये इसकी गीली गोली बनाई जाती है और एक प्रकार का अथलैह भी बनाया जाता है जिसे “कियाम” कहते हैं। इस देश में लोग इसके सूखे पत्तों को चूने के साथ मल कर सूँघ में रखते हैं। चूना मिलाने से यह बहुत तेज हो जाता है। इस रूप में इसे “खिनी” या “सुरती” कहते हैं। यूरोप अमेरिका आदि देशों में इसके चूरे को कागज या पत्तों आदि में छपेट कर सिगार या सिगरेट बनाते हैं। इसका व्यवहार नशे के लिये किया जाना है और इसमें स्वाध् यौर

विशेषतः अरबों को बहुत हानि पहुँचती है। वैद्यक में इसे तीक्ष्ण, गरम, कटुशा, मद् और पमनकारक तथा रक्ति के हानि पहुँचानेवाला माना जाता है। सुरती। (३) इन पत्तों से तैयार की हुई एक प्रकार की गीली पिँधी जिससे चिलम पर जला कर सूँघ से धुआँ खींचते हैं। पतियों के साथ रोह मिला कर जो तमाकू तैयार होता है वह कटुशा कहलाता है, गुड़ मिला कर बनाया हुआ “मीठा” कहलाता है और फटहल और आदि का खमीर मिला कर बनाया हुआ “खमीरा” कहलाता है। इसे चिलम पर रख कर उसके ऊपर कोयले की आग या सुखगती हुई टिकिया रखते हैं और खाली हाथ, गैरिप अथवा हुके पर रख कर नली से उसका धुआँ खींचते हैं।

मुद्दा—तमाकू चढ़ाना = तमाकू का चिलम पर रख कर और उस पर आग या टिकिया रख कर उसे पीने के लिये तैयार करना। तमाकू पीना = तमाकू का धुआँ खींचना। तमाकू भरना = दे० “तमाकू चढ़ाना”।

तमाकू + संश्या पुं० दे० “तमाकू”।

तमाका—संश्या पुं० [फा० तमानूच या तमानूचः] हथेली और पैर-लियों से गाँज पर किया हुआ प्रहार। धक्का। कापड़।

क्रि० प्र०—जड़ना।—देना।—मारना।—लगाना।

तमान्चारी—संश्या पुं० [सं०] राक्षस। दैत्य। निरिचर।

तमादी—संश्या स्त्री० [अ०] (१) अवधि बीत जाना। मुह्त या मियाद गुजर जाना। (२) उस अवधि का बीत जाना जिसके अंदर खेन देन संबंधी कोई कार्रवाई हो सकती हो। उस मुह्त का गुजर जाना जिसके अंदर अदालत में किसी दावे की सुनवाई हो सकती हो।

क्रि० प्र०—होना।

तमाम—वि० [अ०] (१) पूरा। संपूर्ण। कुल। सारा। विहकुल। जैसे, (क) दो ही बरस में तमाम रूप कूँक दिए। (ख) तमाम शहर में बीमारी फैली है। (२) समाप्त। खतम।

मुद्दा—तमाम होना = (१) पूरा होना। समाप्त होना। (२) मर जाना।

तमामी—संश्या स्त्री० [फा०] एक प्रकार का देशी रोशमी कपड़ा जिस पर कलायत् की धारियाँ होती हैं। यह प्रायः मोट लगाने के काम में आता है।

तमारि—संश्या पुं० [हिं० तम + अरि] सूर्य। दिनकर। ३वि। ३०—संत उदय संतत सुखकारी। विष्य सुखदु मिमि इंदु तमारी।—तुलसी।

संश्या स्त्री० दे० “तैयार”। उ०—पल में पल रूप भीतिया। लोगन खमी तमारी।—कबीर।

तमाल—संश्या पुं० [सं०] (१) बीस पचीस फुट ऊँचा; एक बहुत

सुंदर सदाबहार वृक्ष जो पहाड़ों पर अधिकता से और जसुना के किनारे भी कहीं कहीं होता है। यह दो प्रकार का होता है, एक साधारण और दूसरा रयाम तमाल। रयाम तमाल कम मिलता है। उससे कुछ लाल रंग के और उसकी लकड़ी आबनूस की तरह काली होती है। तमाल के पत्ते गहरे हरे रंग के होते हैं और शरीर के पत्ते से मिलते जुलते होते हैं। पैसाक के महीने में इसमें सफेद रंग के बड़े फूल लगते हैं। इसमें एक प्रकार के छोटे फल भी लगते हैं जो बहुत अधिक खट्टे होने पर भी कुछ स्वादिष्ट होते हैं। ये फल सावन भादों में पकते हैं और इन्हें गीदड़ बड़े चाव से खाते हैं। रयाम तमाल को वैद्यक में कसैला, मधुर, बल-वीर्य-वर्द्धक, भारी, शीतल, धम शोथ और दाह को दूर करनेवाला तथा कफ और पित्तनाशक माना है।

पर्याय—कालकंध। तापिय। अमितदुग्ध। लोकरंध। नील-ध्वज। नीलताल। तापिंज। तम। तया। कालताल। महावज।

(२) तेजसा। (३) काने र्वर का वृक्ष। (४) वास की छाल। (५) वर्य वृक्ष। (६) एक प्रकार की तलवार। (७) तिब्बक का पेड़। (८) हिमालय तथा दक्षिण भारत में होनेवाला एक प्रकार का सदाबहार पेड़ जिसमें से एक प्रकार का मोद निकलता है जो घटिया रवेद चीनी की तरह का होता है। इसकी छाल से एक प्रकार का यदिया पीला रंग निकलता है। पूस माघ में इसमें फल लगता है जिसे लोग यों ही खाते ग्रयवा इमली की तरह डाल तरकारियों में डालते हैं। इसका व्यवहार औषध में भी होता है। लोग इसे सुला कर रखते और इसका सिरका भी बनाते हैं। इसे मन्हेगला और उमनेल भी कहते हैं।

तमालक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) तेजसा। (२) तमाल वृक्ष।

(३) वास की छाल। (४) औषधिया साग। सुसना साग।

तमालिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सुई आमका। भूम्यामलकी।

(२) ताग्रवही नाम की लता।

तमालिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) ताग्रलिंस देश का एक नाम।

(२) भूम्यामलकी। सुई चाँवला।

तमाली—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वर्य वृक्ष। (२) ताग्रवही नाम की लता जो चित्रवृक्ष में बहुत होती है।

तमाशागीर—संज्ञा पुं० दे० "तमाशावीन"।

तमाशावीन—संज्ञा पुं० [सं० समाशा + फा० वीन] (१) तमाशा देखनेवाला। सैलानी। (२) रंडीबाज। बिरयापामी। पैयाश।

तमाशावीनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० तमाशावीन + ई (प्रत्य०)] रंडीबाजी। पैयाशी। बदकारी।

तमाशा—संज्ञा पुं० [फा०] (१) बड़ हथ जिसके देखने से मनोरंगन हो। चित्र और प्रसव करनेवाला हथ। जैसे, मेला,

चिप्टर, नाच, आतिशायी आदि। उ०—मद मोलक जग जुलत हैं तेरे हथ गजराज। भाइ तमासे जुलत हैं नेही नैन समाज।—रसनिधि।

क्रि० प्र०—करना।—कराना।—देखना।—दिखाना।—होना।

(२) अद्भुत व्यापार। विलक्षण व्यापार। अनेकी बात।

मुहा०—तमारो की बात = आश्चर्य मरी और अनेकी बात। तमाशाई—संज्ञा पुं० [सं०] तमारी देखनेवाला। वह जो तमारा देखता हो।

तमि—संज्ञा पुं० [सं०] (१) रात। (२) मोह।

तमिनाथ—संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा।

तमिन्—संज्ञा पुं० [सं०] (१) शंभकार। चँधेरा। (२) क्रोध गुस्ता। (३) पुराणानुसार एक नरक का नाम।

तमिन् पशु—संज्ञा पुं० [सं०] किसी मास का कृप्य पशु शँधेरा पशु।

तमिन्ना—संज्ञा स्त्री० [सं०] चँधेरी रात।

तमी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) रात। रात्रि। निशा। (२) हरिद्रा। हलदी।

तमीचर—संज्ञा पुं० [सं०] निशाचर। राक्षस। दैत्य। दनुज।

तमीज—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) भले और बुरे को पहचानने की शक्ति। विवेक। (२) पहचान। (३) ज्ञान। बुद्धि। (४) अद्यय। कायदा।

धी०—तमीजदार = (१) बुद्धिमान। समझदार। (२) शिष्ट। सभ्य।

तमीपति—संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा। निशाचर। चपाकर।

तमीश—संज्ञा पुं० [सं० तमी + ईष] चंद्रमा। चपाकर।

उ०—तौ लीं तम राजै तमी जीसौं नहि रजनीश। केशव ऊने तरणि के तनु न तमी न तमीश।—केशव।

तमु^१—संज्ञा पुं० दे० "तम"।

तमूरा—संज्ञा पुं० दे० "तंचूरा"।

तमूला—संज्ञा पुं० दे० "तांबूल"।

तमोर्य-वि० [सं०] सूर्य और चंद्रग्रहण के दश प्रकार के भासों में से एक जिसमें चंद्रमंडल की पिल्बुली सीमा में राहु की छाया बहुत अधिक और बीच के भाग में थोड़ी सी जान पड़ती है। फलित ज्योतिष के अनुसार ऐसे ग्रहण फसल को हानि पहुँचती है और चौरों का भय होता है।

तमोध-वि० [सं०] (१) अज्ञानी। (२) क्रोधी।

तमोगुण—संज्ञा पुं० दे० "तमसु (३)"।

तमोगुणी-वि० [सं०] जिसकी वृत्ति में तमोगुण हो। अथम वृत्ति-वाला। उ०—तमोगुणी चाहे या भाई। मम पैरी क्योंही मर जाई।—सूर।

तमोद्ग-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अग्नि । (२) चंद्रमा । (३) सूर्य ।
(४) बुद्ध । (५) बौद्ध मत के नियम आदि । (६) विष्णु ।
(७) शिव । (८) ज्ञान । (९) दीपक । दीप्ता । पिराग ।

वि० जिससे अंधेरा दूर हो ।

तमोद्ग-संज्ञा पुं० [सं०] यह अक्षर जो पित्त के प्रकोप से उत्पन्न हो ।

तमोद्ग-संज्ञा पुं० [सं०] (१) इंद्रवर । (२) चंद्रमा । (३) अग्नि ।
आग ।

तमोद्ग-संज्ञा पुं० [सं०] जुगनु ।

वि० अंधकार दूर करनेवाला ।

तमोद्ग-संज्ञा पुं० [सं०] (१) जुगनु । (२) गोमेदक मणि ।

तमोद्ग-वि० [सं०] (१) तमोद्गयुक्त । (२) अज्ञानी ।
(३) मोषी ।

संज्ञा पुं० [सं०] राहु ।

तमोद्ग-संज्ञा पुं० [सं०] तांबूत । तांबूत । पान । उ०—(क) धार
तमोद्ग दूध दधि रोषण हरपि ययोदा खाई ।—सूर । (ख)
सुरंग अक्षर श्री लीन तमोद्ग । सोई पान फूल कर जेरा ।—
जायसी ।

तमोद्ग-संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य ।

तमोद्ग-संज्ञा पुं० दे० "तैपोली" ।

तमोद्ग-संज्ञा पुं० [सं०] तांबूत । (१) पान का बीड़ा । उ०—
बंदी आल तमोद्ग सुख सीस सिलसिले पार । रग धाजि राने
सरी मे ही सहज सिंगार ।—बिहारी । (२) दे० "तमोद्ग" ।

तमोद्ग-संज्ञा पुं० दे० "तैपोलिन" ।

तमोद्ग-संज्ञा पुं० दे० "ताम्रलिपि" ।

तमोद्ग-संज्ञा पुं० दे० "तैपोली" ।

तमोद्ग-संज्ञा पुं० [सं०] तमोद्ग के कारण उत्पन्न होनेवाला
विकार । जैसे, नींद अलस्य आदि ।

तमोद्ग-संज्ञा पुं० [सं०] दस प्रकार के प्रहरों में से एक ।

विशेष—दे० "तमोद्ग" ।

तमोद्ग-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सूर्य । (२) चंद्रमा । (३)
अग्नि । (४) दीपक । दीप्ता ।

वि० (१) मोह-नाशक । (२) अंधकार दूर करनेवाला ।

तमोद्ग-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चंद्रमा । (२) सूर्य । (३) अग्नि ।
आग । (४) ज्ञान ।

वि० [सं०] (१) अंधकार दूर करनेवाला । (२) अज्ञान दूर
करनेवाला ।

तमोद्ग-संज्ञा पुं० दे० "तमोद्ग" ।

तम-वि० [सं०] (१) समस्त । पूरा किया हुआ । निबटया हुआ ।
जैसे, रास्ता तम करना, काम तम करना । (२) निरिच्छत ।
स्विर । ठहराया हुआ । मुकर्रर । उ०—सोमवार को चलना
तम हुआ है ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

मुद्गा—सय पाना = निश्चित होना । ठहरना ।

(३) निर्णीत । फैसल । निबटया हुआ । जैसे, मामला या
भगड़ा तम करना ।

तयना—क्रि० अ० [सं०] तयना । बहुत गरम होना ।

उ०—निसि धासर तया तिहूँ ताय ।—मुलसी । (२) संतप्त
होना । बुखी होना । पीड़ित होना ।

विशेष—दे० "तयना" ।

तयना—संज्ञा पुं० दे० "तया" ।

तयना—वि० दे० "तैयार" ।

तयना—संज्ञा पुं० दे० "तैयारी" ।

तरंग-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पानी की यह उदाल जो हवा चलाने
के कारण होती है । खहर । हिलोर । मौज ।

क्रि० प्र०—उठना ।

पर्या०—मंग । ऊर्मि । उर्मी । धीचि । विचि । हली । खहरी ।

भूंगि । उरुलिका । जलजता ।

(२) संगीत में स्वरों का चढ़ाव उतार । स्वरखहरी । उ०—

एहू भंवि-तान तरंग सुनि गंधर्व किछर जाम्हरी ।—तुलसी ।

(३) चित्त की उमंग । मन की मौज । उस्ताह या आनंद की

धयस्था में सहसा उठनेवाला विचार । जैसे, (क) मंग की

तरंग में देसी ही बाते सूझतो हैं । (ख) ध्यान में चित्त में

यही तरंग उठी कि नदी के किनारे चलना चाहिए । (४)

धम । कपड़ा । (५) घोड़े आदि की फलंग या उदाल ।

(६) हाथ में पढ़ने की एक प्रकार की चूड़ी जो सोने के

तार उमेट कर बनाई जाती है ।

तरंग-संज्ञा पुं० [सं०] [लो० त्रिंशिका] (१) पानी की खहर ।

हिलोर । (२) स्वरखहरी । उ०—स्वर मंद आगत यंसुरी

गति मिलत वदत तरंगिका ।—राधाकृष्णदास ।

तरंग-संज्ञा पुं० [सं०] चौदहवें मनु के एक पुत्र का नाम ।

तरंग-संज्ञा पुं० [सं०] नदी । तरंगिणी ।

तरंग-संज्ञा पुं० [सं०] नदी ।

तरंगिणी-संज्ञा पुं० [सं०] नदी । सरिता ।

वि० तरंगवाली ।

तरंगिणी-वि० [सं०] हिलोर मारता हुआ । खहराता हुआ ।

नीचे ऊपर उठता हुआ ।

तरंगिणी-वि० [सं०] [लो० तरंगिणी] (१) तरंगयुक्त ।

जिसमें खहर हो । (२) जैसा मन में धावे वैसा करनेवाला ।

मनमोही । आनंदी । खहरी । बेपरवाह । उ०—नाचहिं

गावहिं गीत परम तरंगी भूत सय ।—मुलसी ।

तरंड-संज्ञा पुं० [सं०] (१) नाव । नौका । (२) मछली मारने

की डोरी में बंधी हुई छोटी सी लकड़ी जो पानी के ऊपर

तरती रहती है । (३) भाव खेने का ढाँड़ा ।

तरंत-संज्ञा पुं० [सं०] (१) समुद्र । (२) मेरुक । (३) राघव ।

तरंती-संज्ञा स्त्री० [सं०] नाव । किरती ।

तरंतुक-संज्ञा पुं० [सं०] कुदपेत्र के धंतमंत एक स्थान का नाम ।

तरंतुज-संज्ञा पुं० [सं०] तारपु ।

तर-वि० [का०] (१) भीमा हुआ । भाद्र । गीला । जैसे, पानी से तर करना, गेह से तर करना । (२) शीतल । ठंडा । जैसे, तर पानी, तर माछ । ४०-तारवृत्त खा षो, तवीयत तर हो जाय । (३) जो सूखा न हो । हरा । (४) भरा पूरा । मावदार । जैसे, तर धसामी ।

संज्ञा पुं० [सं०] (१) पार करने की क्रिया । (२) बगिन । (३) वृष । (४) पय । (५) गति । (६) नाव की बतराई ।

† क्रि० वि० [सं० तत्] तले नीचे । ४०-कैने विरिद्ध तर भीजत होईई राम खपन दूने भाई ।-गीत ।

प्रत्य० [सं०] एक प्रत्यय जो गुणवाचक शब्दों में खगा कर दूसरे की विशेषता धाधिक्य (शुभ में) सूचित करता है । जैसे, गुह्यतर, अधिक्तर, घेष्टतर ।

तरई †-संज्ञा स्त्री० [सं० तरा] नपत्र ।

तरक-संज्ञा स्त्री० [सं० संस्क०] दे० "तदक" ।

संज्ञा स्त्री० [हिं० तदकना] दे० "तदक" ।

संज्ञा पुं० [सं० तर्क] (१) विचार । सोच विचार । ब्येद-बुन । जहापोह । ४०-होईई सोह जो राम रचि राखा । को करि तरक बड़ावइ साया ।-गुहली ।

क्रि० प्र०-करना ।

(२) तर्क । तर्क । चतुराई का वचन । सोच की बात ।

४०-(क) सुनत हंसि चजे हरि सकुचि भारी । यह कइयो धाज हम भाईई वेद त्रय तरक जिनि कइो हम समुक्ति हारी-सूर । (ख) प्यारी को मुख धोइ कै पट वेछि सैवारयो । तरक बात बहुतइ कही कछु सुधि न सँभारयो-सूर ।

संज्ञा स्त्री० [सं० तर = पय] बहस्य चर वा शब्द जो पृथ या पत्रा समाप्त होने पर उसके नीचे किनारे की ओर धारों के पृथ के धारम का अक्षर वा शब्द सूचित करने के लिये लिखा जाता है । (हाय की सिरली पुरानी पोचियों में इस प्रकार अक्षर वा शब्द लिख देने की प्रथा थी जिससे पत्रे खगाए जा सकें । पृष्ठों पर शंक देने की प्रथा नहीं थी) ।

† संज्ञा पुं० [सं० तर्क = सोच विचार] (१) अक्षयन । भाषा । (२) व्यक्तिक्रम । भूख चूक ।

क्रि० प्र०-पड़ना ।

तरकना † ०-क्रि० प्र० दे० "तदकना" ।

क्रि० प्र० [सं० तर्क] तर्क करना । सोच विचार करना । अनुमान करना । ४०-तरकि न सकहि बुदि मन धानी ।-गुहली ।

क्रि० प्र० [प्र०] बड़ावना । बढ़ना । म्पटना । ४०-

पार पार रघुवीर सँभारी । तरकेउ पवन तनय धब भारी ।-गुहली ।

तरकश-संज्ञा पुं० [का०] तीर रखने का चोगा । भाषा । तूपीर । तरकस-संज्ञा पुं० दे० "तरकश" ।

तरकसो-संज्ञा स्त्री० [का० तरक] छोटा तरकश । छोटा तूपीर । ४०-धरे धनु सर कर कसे कटि तरकसी पीरे पट धोड़े वल्ले चारु घालु । धंग धंग मूयन जराय के अगमगत हस्त जन के जी को तिमिर जालु ।-गुहली ।

तरका-संज्ञा पुं० दे० "तदका" ।

संज्ञा पुं० [प्र०] मरे हुए मनुष्य की जायदाद । वह जायदाद जो किसी मरे हुए बादमी के वारिस को मिले ।

तरकारी-संज्ञा स्त्री० [का० तर = सज्जी, शाक + कारी] (१) वह पौधा जिसकी पत्ती अड़ ढंठक फल फूल आदि पका कर खाने के काम में आते हैं । जैसे, पाकक, गोभी, धालू, तराई, कुहड़का आदि । शाक । सागपात । भाजी । सज्जी । (२) खाने के लिये पकाया हुआ फल फूल कंद मूख पत्ता आदि । शाक । भाजी । (३) खाने योग्य मांस । (पं०) ।

क्रि० प्र०-बनाना ।

तरकी-संज्ञा स्त्री० [सं० तर्कनी] कान में पहनने का फूल के आकार का एक गहना ।

विशेष-इस गहने का वह भाग जो कान के भीतर रहता है ताड़ के पत्ते को गोल खपेट कर बनाया जाता है । इससे वह शब्द 'ताड़' से निकला हुआ जान पड़ता है । सं० शब्द 'तार्क' से भी यही सूचित होता है । इसके अतिरिक्त इस गहने को तालपत्र भी कहते हैं । इसे धाज कल छोटी जाति की खिया अधिक पहनती हैं । पर सोने के कर्णकुञ्ज आदि के लिये भी इस शब्द का प्रयोग होता है ।

तरकीश-संज्ञा स्त्री० [प्र०] (१) संयोग । मिजान । मेख । (२) बगान । रचना । (३) सुक्ति । बगवत । रंग । दप । जैसे, इन्हें यहाँ खाने की कोई तरकीब सोचो । (४) रचना प्रणाली । शैली । तौर । तरीका । जैसे, इसके बनाने की तरकीब मैं जानवा हूँ ।

तरकुल †-संज्ञा पुं० [सं० तल + कुल] तड़क का पेड़ ।

तरकुला-संज्ञा पुं० [हिं० तरकुल] तरकी । कान में पहनने का एक गहना ।

तरकुली-संज्ञा स्त्री० [हिं० तरकुल] कान का एक गहना । तरकी । ४०-खड्गिमन संग शूभे कमल कदंब कहुँ देखी सिय कामिनी तरकुली कनक की ।-हनुमान ।

तरकूनी-संज्ञा स्त्री० [प्र०] बुद्धि । चतुर्ता । उन्नति ।

क्रि० प्र०-करना ।-देना ।-पाना ।-होना ।

तरछु-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का काय । लकड़बग्या । बराग

तरखा—संज्ञा स्त्री० [सं० तख] जल का तेज बहाव । तीव्र प्रवाह ।

तरखान—संज्ञा पुं० [सं० तखण] बड़ई । लकड़ी का काम करने-वाला ।

तरखुलिया—संज्ञा स्त्री० [दे०] अक्षत रखने का एक छिड़का भरतन ।

तरखली—संज्ञा स्त्री० [दे०] एक पौधे का नाम जो सजावट के लिये धमीचों में लगाया जाता है ।

तरछट—संज्ञा स्त्री० दे० "तलछट" ।

तरछनी—संज्ञा स्त्री० दे० "तलछट" ।

तरछा—संज्ञा पुं० [हिं० तर = नीचे] यह स्थान जहाँ तेली गोर बकड़ा करते हैं ।

तरछाना—क्रि० अ० [हिं० तरिछा] तिरछी आँस से इशारा करना । इंगित करना । उ०—अधर जाम जामिनि गए सखिन सकुचि तरछाय । देति विदा तिय इनहि पिय चितवत चित लखचाय ।—देव ।

तरज—संज्ञा पुं० "तज" ।

तरजना—क्रि० अ० [सं० तर्जन] (१) ताड़न करना । टटाना । छपटना । उ०—गर्जति कहा तरजनिन्ह तरजत धरजत सपन नयन के कोए ।—तुलसी । (२) भन्ना बुरा कहना । विगड़ना ।

तरजनी—संज्ञा स्त्री० [सं० तर्जनी] अँगूठे के पास की उँगली । उ०—(क) इहाँ कुम्हड़े बतिया कोइ नाहीं । जे तरजनी देखि मरि जाहीं ।—तुलसी । (ख) सखल चरजि तर्जिय तरजनी कुम्हिलैई कुम्हड़े की जहै है ।—तुलसी ।

संज्ञा स्त्री० [सं० तर्जन] अय । दर । उ०—अहो रे ! विहंगम बनवासी । तेरे बोल तरजनी बाडति धवन सुनत नीडक नासी ।—सूर ।

तरजूहै—संज्ञा स्त्री० [फा० तरजू] छोटी तराजू ।

तरजुमार—संज्ञा पुं० [फा०] अनुवाद । भाषांतर । उल्हा ।

तरण—संज्ञा पुं० [सं०] (१) नदी आदि को पार करने का काम । पार करना । (२) पानी पर तैरनेवाला तख्ता । बेड़ा । (३) निस्तार । उद्धार । (४) स्वर्ग ।

तरणि—संज्ञा पुं० [सं०] (१) सूर्य । (२) मदार । (३) किरन । संज्ञा स्त्री० दे० "तरणी" ।

तरणिकुमार—संज्ञा पुं० दे० "तरणिसुत" ।

तरणिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सूर्य की कन्या, यमुना । (२) एक वर्षावृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में एक नगण और एक गुरु होता है । इसका दूसरा नाम "सती" है । उ०—नगपती । सर सती ।

तरणितनय—संज्ञा पुं० दे० "तरणिसुत" ।

तरणितनूजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] सूर्य की पुत्री, यमुना ।

तरणिसुत—संज्ञा पुं० [सं०] (१) सूर्य का पुत्र । (२) यम । (३) शनि । कर्ण ।

तरणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) नौका । नाव । (२) धीकुआर । (३) स्थल कमलिनी ।

तरतराना—क्रि० अ० [फु०] तड़तड़ाना । तड़तड़ शब्द करना । तोड़ने का सा शब्द करना । उ०—घहरात तरतरान गारात हहरात पररात कहरात माय नाये ।—सूर ।

तरतीब—संज्ञा स्त्री० [फा०] वस्तुओं की अनेक ठीक ठीक स्थानों पर स्थिति । यथास्थान रखा या लगाया जाना । क्रम । सिद्धांतिका । जैसे, किताबें तरतीब से लगा दी ।

क्रि० प्र०—करना ।—लगाना ।

मुद्दा—संज्ञा स्त्री० देना = क्रम से रखना या लगाना । सजाना ।

तरस्सर्मदीय—संज्ञा स्त्री० [सं०] वेद के पावमान सूक्त के अंतर्गत एक सूक्त ।

विशेष—मनु ने लिखा है कि अग्निप्राहय धन ग्रहण करने या निषिद्ध अन्न भक्षण करने पर इस सूक्त का जप करने से दोष मिट जाता है ।

तरदी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का कटीला पेड़ ।

तरदीद—संज्ञा स्त्री० [फा०] (१) काटने या रद्द करने की क्रिया । मंसूही । (२) खंडन । प्रत्युत्तर ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

तरदुद—संज्ञा पुं० [फा०] सोच । फिक्र । अंदेश । चिंता । खटक ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

मुद्दा—तरदुद में पड़ना = चिंता में पड़ना ।

तरहती—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का पकवान जो घी और दही के साथ माड़े हुए आटे की गोलियों को पकाने से बनता है ।

तरन—संज्ञा पुं० दे० "तरण" ।

संज्ञा पुं० दे० "तराना" ।

तरनतार—संज्ञा पुं० [सं० तरण] निस्तार । मोक्ष । मुक्ति ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

तरनतारन—संज्ञा पुं० [सं० तरण, हिं० तरना] (१) उद्धार । निस्तार । मोक्ष । (२) उद्धार करनेवाला । भवसागर से पार करनेवाला ।

तरना—क्रि० सं० [सं० तरण] पार करना ।

क्रि० अ० भवसागर के पार होना । मुक्त होना । सन्नति प्राप्त करना । जैसे, तुम्हारे पुरखे तर जाँधने ।

क्रि० सं० दे० "तलना" ।

संज्ञा पुं० [सं०] व्यापारी जहाज का वह अग्रतार जो यात्रा में व्यापार संबंधी कार्यों का निरीक्षण करता है ।

तरनाम—संज्ञा पुं० [देग०] एक विद्विया का नाम ।

तरनाल—संज्ञा पुं० [?] यह रमसा जिसकी महायना से पाल को छोड़े की धरन में पायेते हैं । (धारा०)

तरन्नि—संज्ञा स्त्री० दे० "तारिण" ।

तरनिझा—संज्ञा स्त्री० दे० "तारिण" ।

तरनी—संज्ञा स्त्री० [सं० तरणी] (१) नाय । नैका । उ०—तरनिजे मुनि धरनी होइ जाई—तुलसी । (२) वह छोटा मोटा जिस पर मिठाई का पात्र या छोपा रखते हैं । दे० "ठग्री" ।

तरपी—संज्ञा स्त्री० दे० "तरुप" ।

तरपत—संज्ञा पुं० [सं० तपि] (१) सुगम । सुवीता । (२) आराम । चैन । उ०—बूँदी सम सर तत्रत खंरंमंडत पर तपत ।—गोपाल ।

तरपन—संज्ञा पुं० दे० "तरपण" । उ०—तरपन होम करहि विधि माना ।—तुलसी ।

तरपना—क्रि० प्र० दे० "तरुपना" । उ०—तरपे जिमि विगुज सी पिय पै भरपे मननाय सबै पर मैं ।—मुंदरीसर्वख ।

तरपर—क्रि० वि० [हिं० तर + पर] (१) नीचे ऊपर । (२) एक के पीछे दूसरा ।

तरपू—संज्ञा पुं० [देग०] एक बड़ा पेड़ जिसकी लकड़ी मजबूत और भूरे रंग की होती है और मकानों में लगनी है । यह पेड़ भलावार और पश्चिमी घाट के पहाड़ों में पाया जाता है ।

तरफु—संज्ञा स्त्री० [फ०] (१) ओर । दिशा । अलौग । जैसे, पुरब तरफ, पश्चिम तरफ । (२) किनारा । पारबे । दगल । जैसे, दहनी तरफ, बाई तरफ । (३) पक्ष । पालदारी । जैसे, (क) लड़ाई में तुम किसकी तरफ रहोगे । (ख) हम तुम्हारी तरफ से बहुत कुछ कहेंगे ।

था०—तरफदा ।

तरफदार—वि० [फ० तरफ + दार] एक में रहनेवाला । माप या सहायता देनेवाला । पड़पाती । हिमायती । समर्थक ।

तरफदारी—संज्ञा स्त्री० [फ० तरफ + दारी] पड़पात ।

क्रि० प्र०—करना ।

तरफराना—क्रि० प्र० दे० "तरुफराना" ।

तरब—संज्ञा पुं० [हिं० तरपना, तरुपना] सारंगी में ये तार जो तर्त के नीचे एक विशेष क्रम से लगे रहते हैं और तब स्वरो के रूप में गूँजते हैं ।

तर-बतर—वि० [फ०] भौंगा हुआ । चार्द । सराबोर ।

तरबहना—संज्ञा पुं० [हिं० तर + बहना] धात्री के आकार का तर्त के पीछे एक बर्तन जो प्रायः टाकुरजी को स्नान करने के काम में धोया जाता है ।

तरबूझ—संज्ञा पुं० [फ० तर्बुझ] एक प्रकार की बेल जो अमीन पर फैलती है और जिसमें बहुत बड़े बड़े गोले फल लगते हैं । ये

फल खाने के काम में शाने हैं । एके फूलों को काटते पर इन के भीतर झिड़ीदार जाल या सफेद गुदा तथा मीठा रस निकलता है । बीजों का रंग लाल या काला होता है । गरमी के दिनों में तरबूझ तरावट के लिये बहुत खाया जाता है । एकने पर भी तरबूझ के छिलके का रंग गहरा हरा होता है । तरबूझ के पत्ते कटावदार और फूल पीले रंग के होते हैं । यह बलुए खेतों में विशेषतः नदी के किनारे के रेतिले मैदानों में जाड़े के अंत में बोया जाता है । सैसर के प्रायः सब गरम देशों में तरबूझ होता है । यह दो तरह का होता है एक फसली या वार्षिक, दूसरा स्थायी । स्थायी पीछे केवल अमेरिका के मंत्रिको प्रदेश में होते हैं जो कई साल तक फूलते फलते रहते हैं ।

तरबूजिया—वि० [हिं० तरबूज] तरबूज के छिलके के रंग का । गहरा हरा । काही ।

तरभाची—संज्ञा स्त्री० दे० "तरवाची" ।

तरभानो—संज्ञा स्त्री० [देग०] यह तरी जो जोती हुई भूमि में शान्ती है ।

क्रि० प्र०—खाना ।

तरमीम—संज्ञा स्त्री० [फ०] संतोषन । तुदनी ।

क्रि० प्र०—करना—होना ।

तरराना—क्रि० प्र० [अ०] पूँडना । पूँडना ।

तरल—वि० [सं०] (१) हिलता देखता । चलायमान । चंचल । चल । उ०—बलत सेत सारी बबयो तरल तरौना कान ।—विद्यारी । (२) अस्थिर । अग्रभंगुर । (३) पानी की तरह बहनेवाला । द्रव । (४) धमकीला । भास्वर । कतिवान । (५) खोखला । पोछा ।

संज्ञा पुं० (१) हार के बीच का मण्डि । (२) हार । (३) हीरा । (४) खोहा । (५) एक देश तथा वहाँ के निवासियों का नाम । (महाभारत) । (६) तल । पैदा । (७) घोड़ा ।

तरलना—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) चंचलता । (२) द्रवत्व ।

तरलनयन—संज्ञा पुं० [सं०] एक पर्यट्टक का नाम जिसके प्रायः चरण में चार नगण्य होते हैं । उ०—नचन सुघर सखिन सहित । पिरकि पिरकि फिरत सुदिते ।

तरलमाव—संज्ञा पुं० [सं०] (१) पतलापन । (२) चंचलता । चपलता ।

तरला—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मवागू । जौ का मड़ । (२) मदिरा । (३) मधुमदिका । शहद की मन्सी ।

संज्ञा पुं० [हिं० तर] ज्ञान के नीचे का बर्तन ।

तरलार—संज्ञा स्त्री० [सं० तरल + आर्द (प्रत्य०)] (१) चंचलता । चपलता । (२) द्रवत्व ।

तरपैछ—संज्ञा स्त्री० [हिं० तर] तरवाची । जूद के नीचे की लकड़ी जो बेलों के तले के नीचे रहती है ।

तरवड़ी-संज्ञा स्त्री० [सं० तरुण + ङी (प्रत्य०)] छोटी तराजू का पलड़ा ।
 तरवान-संज्ञा पुं० [हिं० तरु + वनना] (१) कान में पहनने का एक गहना । तरकी । (२) कण्टकूल ।
 तरवार-संज्ञा पुं० [सं० तखर] बड़ा पेड़ । पेड़ ।
 संज्ञा पुं० [सं० तरवट] एक बड़ा पेड़ जिसकी छात्र से चमड़ा सिन्नाया जाता है । यह मध्य भारत और दक्षिण में बहुत पाया जाता है । इसे तरौता भी कहते हैं ।
 तरवारि-संज्ञा पुं० दे० "तिरमिला" ।
 तरवारिया-संज्ञा पुं० [हिं० तरवार] तलवार चलानेवाला ।
 तरवारिहा-संज्ञा पुं० दे० "तरवारिया" ।
 तरवाँची-संज्ञा स्त्री० [हिं० तर + माया] सुए की नीचे की लकड़ी । मचेरी ।
 तरवाँसी-संज्ञा स्त्री० दे० "तरवाँची" ।
 तरवा-संज्ञा पुं० दे० "तलवा" ।
 तरवाई सिरवाई-संज्ञा स्त्री० [हिं० तर + सिर] ऊँची जमीन और नीची जमीन । पहाड़ और घाटी ।
 तरवाना-क्रि० अ० [?] (१) यँलों के तलवों का चलते चलते घिस जाना जिससे वे लँगड़ाते हैं । (२) यँलों का लँगड़ाना ।
 कि० सं० [हिं० तारना का प्र०] तारने की प्रेरणा करना ।
 तरवार-संज्ञा पुं० दे० "तलवार" ।
 संज्ञा पुं० दे० "तरवार" ।
 तरवारि-संज्ञा पुं० [सं०] तलवार । खड्ग का एक भेद । उ०—
 रोपन रसना अनि खोलिये वर खोलियै तरवारि—तुलसी ।
 तरवारी-संज्ञा पुं० [हिं० तरवार] तलवार चलानेवाला ।
 तरस-संज्ञा पुं० [सं०] (१) यत्न । (२) वेग । (३) वानर । (४) रोग । (५) तीर । तट ।
 तरस-संज्ञा पुं० [सं० त्रस = डरना] दया । कल्याण । रक्षम ।
 कि० प्र०—भाना ।
 मुहा०—(किसी पर) तरस खाना = दयाद्वं होना । दया करना । रक्षम करना ।
 विशेष—इस शब्द का यह अर्थ विपर्यय द्वारा आया हुआ जान पड़ता है । जो मनुष्य भय प्रकाशित करता है उस पर दया प्रायः की जाती है ।
 तरसना-क्रि० अ० [सं० त्रषण = अभिशङ्गा] किसी वस्तु को भ्रमाव में उसके लिये इच्छुक और आकुल रहना । भ्रमाव का दुःख सहना । (किसी वस्तु को) न पाकर घेचैन रहना । जैसे, (क) यहाँ लोग दाने दाने का तरस रहे हैं । (ख) कुछ दिनों में तुम उन्हें देखने के लिये तरसोगे । उ०—दरसन बिनु खँखियाँ तरसि रहैं । (गीत)
 संयो० कि०—जाना ।

तरसना-क्रि० सं० [हिं० तरसना] (१) भ्रमाव का दुःख देना । किसी वस्तु को न देखकर या न प्राप्त करा उसके लिये बेचैन करना । (२) किसी वस्तु की इच्छा और प्राया उत्पन्न करके उससे वंचित रहना । व्यर्थ खलचाना ।
 कि० प्र०—डालना ।—भारना ।
 तरह-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) प्रकार । भाँति । क्रिम । जैसे, पहँ तरह तरह की चीजें मिलती हैं ।
 मुहा०—किसी की तरह = किसी के उदश । किसी के समान । जैसे, उसकी तरह काम करनेवाला यहाँ कोई नहीं । (२) रचनाप्रकार । ढाँचा । ढाल । बनावट । रूप रंग । जैसे, इस छँट की तरह अच्छी नहीं है । (३) ढब । तज्ज । प्रणाली । रीति । ढंग । जैसे, वह बहुत धुरी तरह से पकता है ।
 मुहा०—तरह उठाना = ढंग की नकल करना ।
 (४) युक्ति । ढंग । उपाय । जैसे, किसी तरह से उनसे रुपया निकालो ।
 मुहा०—तरह देना = (१) ख्यात न करना । बचा जँना । विरोध या प्रतिकार न करना । छामा करना । जाने देना । उ०—
 इन तरह तँ तरह दिए मनि छाये साईं ।—गिरिधर । (२) टालटूल करना । ध्यान न देना ।
 (३) ढाल । दशा । अवस्था । जैसे, आज कल उनकी क्या तरह है ।
 मुहा०—तरह देना = पूर्ति के लिये समस्या देना ।
 तरहटी-संज्ञा स्त्री० [हिं० तर = नीच + टैट (प्रत्य०)] (१) नीची भूमि । (२) पहाड़ की तराई ।
 तरहदार-वि० [फ़ा०] (१) सुंदर बनावट का । अच्छी चाल या ढाँचे का । जिसकी रचना मनोहर हो । जैसे, तरहदार छँट । (२) सजपजमाला । शौकीन । वज़ादार । जैसे, तरहदार आदमी ।
 तरहदारी-संज्ञा स्त्री० [उ०] वज़ादारी । सजपज का ढंग ।
 तरहर-संज्ञा पुं० [हिं० तर + हर (प्रत्य०)] तर । नीचे । उ०—
 जम करि सुँद तरहर परयो हँहि घर हरि चित खाइ । विसय त्रिला परिहरि अय्यौ नर हरि के गुन गाइ ।—विहारी ।
 वि० नीचा । सले का । नीचे का । निकट ।
 तरहा-संज्ञा पुं० [हिं० तर] (१) कुर्पा खेदने में एक मात्र जो प्रायः एक टाप की होती है । (२) वह कपड़ा जिसपर मिट्टी फैला कर कड़ा डालने का साँचा बनाते हैं ।
 तरहेल-वि० [हिं० तर + हर, हल (प्रत्य०)] (१) अधीन । निःस्थ । (२) वश में आया हुआ । पराजित । उ०—
 वीरद खैलौ करि हीया । जो तरहेल होय सो लीया ।—
 ज्ञायसी ।

तरा †—संज्ञा पुं० [दे०] पट्टा । पटसन ।

संज्ञा पुं० दे० "तला" । "तलवा" ।

नराई—संज्ञा स्त्री० [हिं० तर = नीचे] (१) पहाड़ के नीचे की भूमि । पहाड़ के नीचे का वह मैदान जहाँ स्त्रीधृ या तरी रहती है । जैसे, नेपाल की तराई । (२) पहाड़ की घाटी । (३) मूँज के मुट्टे जो छाजन में खपड़ों के नीचे दिए जाते हैं ।

† संज्ञा स्त्री० [सं० तरा] तरा । नचप्र ।

तराजू—संज्ञा स्त्री० [फ्रा०] रस्सियों के द्वारा एक सीधे ढँढ़ी के छोरों से ढँचे हुए दो पल्लों का एक यंत्र जिससे वस्तुओं की तौल मापना करते हैं । तौलने का यंत्र । तुला । तकड़ी ।

मुहा०—तराजू हो जाना = (१) तीर को निशाने के इस प्रकार धार धार सुतना कि उलका आधा भाग एक धार, और आधा दूरी धार निकला रहे । (२) दो तैमिक दलों का इस प्रकार ठीक ठीक बराबर होना कि एक दूसरे को परास्त न कर सके ।

तराना—संज्ञा पुं० [फ्रा०] (१) एक प्रकार का चलता गाना जिसका बोझ इस प्रकार का होता है—दिर दिर ता दि आ ना रे से वी म् ता वी म् ता ना ना दे रे ता दा रे दा नि ता ना ना दे रे ना ता ना ना दे रे ना ता ना ना ता ना तोम् देर ता रे दा नी ।

विशेष—तराना हर एक राग का हो सकता है । इसमें कभी कभी सरगम और सयले के बोझ भी मिखा दिए जाते हैं ।

(२) कोई अच्छा गाना । यद्यपि गीत । (वच०)

तराप * †—संज्ञा स्त्री० [अनु०] तड़ाक शब्द । बंदूक, तोप आदि का शब्द । व०—रीन अफगान सैन सगर सुतन लागी कपिल सराप लीं दराप तोपखाने की ।—मूषण ।

तरापा †—संज्ञा पुं० [अनु०] हाहाकार । कुहराम । आदि आदि । व०—परी धर्मसुत शिखिर तरापा । गजपुर सकल कोकयस काँवा ।—सयलरिंद ।

संज्ञा पुं० [हिं० वरना] पानी में तैरती हुई शहरीर । पेड़ा । (बिशा०)

तरायोर—वि० [फ्रा० तर + हिं० बोना] खूब भोगा हुआ । खूब हूया हुआ । सतायोर ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

तरामल—संज्ञा पुं० [हिं० तर = नीचे] (१) मूँज के वे मुट्टे जो छाजन में खपड़ों के नीचे दिए जाते हैं । (२) लुके के नीचे की छकड़ी ।

तरामिरा—संज्ञा पुं० [दे०] सरसों की तरह का एक पौधा जिसके बीजों से तेल निकलता है । बचरीय भारत में जाड़े की फसल के साथ इसके बीज बोए जाते हैं । रबी की फसल के साथ इसके दान भी पक जाते हैं । पचियाँ चारे के काम में आती है । तेल निकाले हुए बीजों की खली भी बीपायों को तिकाई जाती है । इसे तुभा भी कहते हैं ।

तरारा—संज्ञा पुं० [?] (१) उद्वाह । धुलंग । कुलच ।

क्रि० प्र०—भरना ।—मारना ।

मुहा०—तरारा भरना = जल्दी जल्दी काम करना । फाटि के साथ काम करना । तरारा मारना = डोंग हड़कना । बट बट कर भागें करना ।

(२) पानी की धार जो बराबर किसी वस्तु पर गिरे ।

तराघट—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० तर + घावट (मल०)] (१) गीलापन । नमी । (२) ठंडक । शीतलता । जैसे, स्तिर पर पानी पड़ने से तराघट आगई ।

क्रि० प्र०—थाना ।

(३) क्लृप्त चित्त को स्वस्थ करनेवाला शीतल पदार्थ । शरीर की गरमी शांत करनेवाला आहार । (४) लिग्ध भोजन । जैसे, घी, दूध, आदि ।

तराश—संज्ञा स्त्री० [फ्रा०] (१) काटने का डंग । काट । (२) काट धाँट । बनावट । रचना प्रकार ।

घी०—ताश खराय ।

(३) डंग । तर्ज़ । (४) ताश या गेंजीके का यह पत्ता जो काटने के बाद हाथ में धाये ।

तराश खराश—संज्ञा स्त्री० [फ्रा०] काट धाँट । कतर व्योत । बनावट ।

तराशना—क्रि० सं० [फ्रा०] काटना । कतरना । कलम करना ।

तरासा—संज्ञा पुं० दे० "प्रास" ।

तरादि †—अव्य० दे० "प्रादि" ।

तराही †—क्रि० वि० दे० "तरे" ।

तरिंदा—संज्ञा पुं० [हिं० तलना + इंद (प्रत्य०)] वह पीपा जो समुद्र में किसी स्थान पर लंगर के द्वारा बांध दिया जाता है और लहरों के ऊपर बतराया रहता है । (बशा०)

विशेष—ये पीपे बट्टान आदि की सूचना के लिये बांधे जाते हैं और कई प्रकार के होते हैं । इनमें से किसी किसी में घंटा सीटी आदि लगी रहती है ।

तरि—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) नौका । नाव । (२) कपड़ों का पेटारा । (३) कपड़े का छोर । दामन ।

तरिक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) जल में तैरनेवाली लकड़ी । पेड़ा । (२) नाव का महत्त्व लेनेवाला । बतराई लेनेवाला । (३) मछाह । केवट । मर्मि ।

तरिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] नाव । नाका ।

तरिको †—संज्ञा पुं० [सं० तर्क] कान का एक गहना । तरकी । तराना । इ—तँ कत तारयो द्वार नौ सरि को मोती बगरि रहै सब यन मैं गयो कान की तरिके ।—सूर ।

तरिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) तर्जनी बँगली । (२) भाँग । गज्या ।

तरवड़ी-संज्ञा स्त्री० [सं० तुषा + वी (प्रत्य०)] छोटी तारा, का पलड़ा ।

तरवहन-संज्ञा पुं० [हिं० तव + वनना] (१) कान में पहनने का एक गहना । तरकी । (२) कणकूल ।

तरवर-संज्ञा पुं० [सं० तवर] बड़ा पेड़ । पेड़ ।

संज्ञा पुं० [सं० तरवट] एक लंबा पेड़ जिसकी छाल से चमड़ा सिन्धाया जाता है । यह मध्य भारत और दक्षिण में बहुत पाया जाता है । इसे तोरता भी कहते हैं ।

तरवरा-संज्ञा पुं० दे० "तिरमिला" ।

तरवरिया-संज्ञा पुं० [हिं० तरवार] तलवार चलानेवाला ।

तरवरिया-संज्ञा पुं० दे० "तरवरिया" ।

तरवाँची-संज्ञा स्त्री० [हिं० तर + माचा] जुए के नीचे की लकड़ी । मचेरी ।

तरवाँसी-संज्ञा स्त्री० दे० "तरवाँची" ।

तरवा-संज्ञा पुं० दे० "तलवा" ।

तरवाई सिरवाई-संज्ञा स्त्री० [हिं० तर + सिर] ऊँची जमीन और नीची जमीन । पहाड़ और घाटी ।

तरवाना-क्रि० अ० [?] (१) चैलों के तलवों का चलते चलते घिस जाना जिससे वे लँगड़ाते हैं । (२) चैलों का लँगड़ाना ।

क्रि० सं० [हिं० तारना का प्र०] तारने की प्रेरणा करना ।

तरवार-संज्ञा पुं० दे० "तलवार" ।

संज्ञा पुं० दे० "तलवार" ।

तरवारि-संज्ञा पुं० [सं०] तलवार । खड्ग का एक भेद । उ०—

रोष न रचना जनि खोलियै यह खोलियै तरवारि ।—तुलसी ।

तरवारी-संज्ञा पुं० [हिं० तरवार] तलवार चलानेवाला ।

तरस-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बल । (२) वेग । (३) वानर । (४) रोग । (५) तीर । तट ।

तरस-संज्ञा पुं० [सं० त्रस = बरना] दया । करुणा । रहम ।

क्रि० प्र०—थाना ।

मुहा०—(किसी पर) तरस थाना = दयाप्र देना । दया करना । रहम करना ।

विशेष—इस शब्द का यह अर्थ विपर्यय द्वारा आया हुआ जान पड़ता है । जो मनुष्य भय प्रकाशित करता है उस पर दया प्रायः की जाती है ।

तरसना-क्रि० अ० [सं० तर्पण = अभिशाप] किसी वस्तु को अभाव में उसके लिये इच्छुक और आकुल रहना । अभाव का दुःख सहना । (किसी वस्तु को) न पाकर भेचैन रहना । जैसे, (क) वहाँ लोग दाने दाने को तरस रहे हैं । (ख) कुछ दिनों में तुम उन्हें देखने के लिये वारसोगे । उ०—दरसन विनु केशिवाँ तरसि रहौ । (गीत)

संयोग क्रि०—जाना ।

तरसाना-क्रि० सं० [हिं० तरसना] (१) अभाव का दुःख देना । किसी वस्तु को न देख कर या न प्राप्त करा कर उसके लिये भेचैन करता । (२) किसी वस्तु को इच्छा और धारा उपलब्ध करके उससे वंचित रखना । व्यर्थ लतचना ।

क्रि० प्र०—डालना ।—मारना ।

तरह-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) प्रकार । भाँति । क्रि० । जैसे, यहाँ तरह तरह की चीजें मिलती हैं ।

मुहा०—किसी की तरह = किसी के सदृश । किसी के समान । जैसे, उसकी तरह काम करनेवाला यहाँ कोई नहीं । (२) रचनाप्रकार । ढाँचा । ढाल । बनावट । रूप रंग । जैसे, इस छुँट की तरह अच्छी नहीं हैं । (३) ढप । तड़ । प्रणाली । रीति । ढंग । जैसे, वह बहुत डुरी तरह से पढ़ता है ।

मुहा०—तरह बढ़ाना = ढंग की नकल करना ।

(४) युक्ति । ढंग । उपाय । जैसे, किसी तरह से उनसे खपया निकालो ।

मुहा०—तरह देना = (१) ख्यात न करना । बचा जाना । विरोध या प्रतिकार न करना । छाम करना । जाने देना । उ०—इन तरह तें तरह दिए पनि छावै साहें ।—गिरिधर । (२) टालतूल करना । ध्यान न देना ।

(५) हाल । दशा । अवस्था । जैसे, आज कल उनकी क्या तरह है ।

मुहा०—तरह देना = पूर्ति के लिये समझ देना ।

तरहटी-संज्ञा स्त्री० [हिं० तर = नीचे + टैट (प्रत्य०)] (१) नीची भूमि । (२) पहाड़ की तराई ।

तरहदार-वि० [सं०] (१) सुंदर बनावट का । अच्छी चाल या ढाँचे का । जिसकी रचना मनोहर हो । जैसे, तरहदार छुँट । (२) सज्जनवाला । शौकीन । वज्रादार । जैसे, तरहदार झाँसी ।

तरहदारी-संज्ञा स्त्री० [सं०] वज्रादारी । सज्जन का ढंग ।

तरहर-संज्ञा पुं० [हिं० तर + हर (प्रत्य०)] तरे । नीचे । उ०—जम करि सुँह तरहर परयो इहिँ घर हरि चित्त काह । विलय त्रिलो परिहरि अर्जुन नर हरि के गुण गाह ।—बिहारी । वि० नीचा । तले का । नीचे का । निकुट ।

तरहा-संज्ञा पुं० [हिं० तर] (१) कुर्मी खोदने में एक माप जो प्रायः एक हाथ की होती है । (२) वह कपड़ा जिसपर मिट्टी फैला कर कड़ा टाकने का साँचा बनाते हैं ।

तरहेल-वि० [हिं० तर + हर, हल (प्रत्य०)] (१) अर्धीन । निम्नस्थ । (२) वश में आया हुआ । पराजित । उ०—तौ चोपड़ खेळौ करि हीयां । जो तरहेल होय सो तीया ।—जायसी ।

तरा †—संज्ञा पुं० [दे०] पट्टा । पटसन ।

संज्ञा पुं० दे० "तला" । "तलावा" ।

तराई—संज्ञा स्त्री० [हिं० तर = धीरे] (१) पहाड़ के नीचे की भूमि । पहाड़ के नीचे का यह मैदान जहाँ सीढ़ी या तली रहती है ।

: जैसे, नेपाल की तराई । (२) पहाड़ की घाटी । (३) मूँज के मुट्टे जो छाजन में खपरूँ के नीचे दिए जाते हैं ।

† संज्ञा स्त्री० [सं० तरा] तारा । नक्षत्र ।

तराजू—संज्ञा स्त्री० [फा०] रस्सियों के द्वारा एक सीधी दाँड़ी के छोरों से बँधे हुए दो पलकों का एक यंत्र जिससे वस्तुओं की तौल मापना करते हैं । तौलने का यंत्र । तुला । तकड़ी ।

मुद्रा—तराजू हो जाना = (१) तीर को निराले के इस प्रकार श्वर पर सुचना कि उसका श्राधा भाग एक श्वर, श्वर श्राधा दृष्टी श्वर निकला रहे । (२) दो वैतनिक दलों का इस प्रकार टीक टीक बराबर होना कि एक दूसरे को पालन न कर सके ।

तराना—संज्ञा पुं० [फा०] (१) एक प्रकार का चलता गाना जिसका बोल इस प्रकार का होता है—दिर दिर ता दि आ ना रे ते दी मू ता दी मू ता ना ना दे रे ता दा रे दा नि ता ना ना ना दे रे ना ता ना ना दे रे ना ता ना ना ता ना तोय देर ता रे दा नी ।

विशेष—तराना हूँ एक राग का हो सकता है । इसमें कभी कभी सरगम और तबले के बोल भी मिला दिए जाते हैं ।

(२) कोई अच्छा गाना । बढ़िया गीत । (ब०)

तराप †—संज्ञा स्त्री० [भुज०] तड़ाक शब्द । पंढूफ, तोप आदि का शब्द । व०—सैन श्रमगान सैन सगर सुतन लागी कपिल सराप लीं दराप तोपखाने की ।—भूयय ।

तरापा †—संज्ञा पुं० [भुज०] हाहाकार । कुहराम । श्राहि श्राहि । व०—परी धर्मसुत शिचिर तरापा । रामपुर सकल नोकबल फीपा ।—सबलसिंह ।

संज्ञा पुं० [हिं० वरना] पानी में तैरती हुई शहतीर । वेड़ा । (ल०)

तरायोर—वि० [फा० तर + हिं० योरना] खूब भौंगा हुआ । खूब हूया हुआ । सरायोर ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

तरामल—संज्ञा पुं० [हिं० तर = नीचे] (१) मूँज के ये मुट्टे जो छाजन में खपरूँ के नीचे दिए जाते हैं । (२) जुबे के नीचे की लकड़ी ।

तरामीरा—संज्ञा पुं० [दे०] सरसों की तरह का एक पौधा जिसके धीजों से तेल निकलता है । उत्तरीय भारत में जाड़े की फसल के साथ इसके बीज बोए जाते हैं । रबी की फसल के साथ इसके दाने भी पक जाते हैं । पत्तियाँ चारे के काम में आती हैं । तेल निकाले हुए धीजों की खली भी चौरायों को खिजाई जाती है । इसे बुझा भी कहते हैं ।

तरारा—संज्ञा पुं० [?] (१) बड़ा ल । दुकांग । कुलाच ।

क्रि० प्र०—भरना ।—भरना ।

मुद्रा—तरारा भरना = जल्दी जल्दी काम करना । फाटके के साथ काम करना । तरारा मारना = डींग हौकना । बड़ बड़ फर बातें करना ।

(२) पानी की धार जो बराबर किसी वस्तु पर गिरे ।

तरायट—संज्ञा स्त्री० [फा० तर + श्वट (प्रत्य०)] (१) गीजापन । नमी । (२) टंडक । शीतलता । जैसे, सिर पर पानी पड़ने से तरायट आगई ।

क्रि० प्र०—शाना ।

(३) क्लान्त चित्त को स्वस्थ करनेवाला शीतल पदार्थ । शरीर की गामी शान्त करनेवाला आहार । (४) शिन्ध भोजन । जैसे, धी, बूच, चादि ।

तराश—संज्ञा स्त्री० [फा०] (१) काटने का ढंग । काट । (२) काट छूट । बनावट । रचना प्रकार ।

धौ—तराय सराय ।

(३) ढंग । तर्ज़ । (४) तारा या गंजीके का यह पता जो काटने के बाद हाथ में आवे ।

तराश सराश—संज्ञा स्त्री० [फा०] काट छूट । कतर श्यौत । बनावट ।

तराशाना—क्रि० सं० [फा०] काटना । कतरना । कलम करना ।

तरासा—संज्ञा पुं० दे० "श्रास" ।

तराहि †—अव्य० दे० "ग्राहि" ।

तराही—क्रि० वि० दे० "तरे" ।

तरिंदा—संज्ञा पुं० [हिं० सला + दंदा (प्रत्य०)] वह पीपा जो समुद्र में किसी स्थान पर खंजर के द्वारा बाँध दिया जाता है और लहरों के ऊपर उतराया रहता है । (ल०)

विशेष—ये पीपे चट्टान आदि की सूचना के लिये बाँधे जाते हैं और कई प्रकार के होते हैं । इनमें से किसी किसी में पंटा सीटी आदि लगी रहती है ।

तरि—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) नौका । नाव । (२) कपड़ों का पैदा । (३) कपड़े का छोर । समान ।

तरिक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) जल में तैरनेवाली लकड़ी । वेड़ा ।

(२) नाव का मद्दल खेनेवाला । बतराई खेनेवाला । (३) महाह । केवट । मारिनी ।

तरिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] नाव । नौका ।

तरिकी—संज्ञा पुं० [सं० तर्क] कान का एक गहना । तरकी । तराना । व०—तँ बत तरायो हार नौ सरी को मोती बगरि रहे सब वन में गयो कान की तरिकी ।—सूर ।

नरिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) तर्जनी ढँगली । (२) भाँग । गज्जा ।

* सत्रा स्त्री० [सं० तद्दिन] चित्रली । उ०—अरुपे कपे कीँपे कड़े तरिता तरपे पुनि लाल छटा में चिरी ।—पञ्जेल ।

तरियार्—संज्ञा पुं० [हिं० तरना] रैत्नेवाला ।

तरियानार्—किं० सं० [हिं० तर = नीचे] (१) नीचे कर देना । नीचे ढाल देना । तह में बैठा देना । (२) ढाँकना । छिपाना । (३) बटुप के पेंदे में मिट्टी राख आदि पोतना जिससे आँच पर चढ़ाने में उसमें कालिस न जमे । लेवा लगाना । किं० अ० तले यैठ जाना । तह में जमाना ।

तरिवन—संज्ञा पुं० [हिं० तड़] (१) कान का एक गहना जो फूल के आकार का होता है । तरकी । (इसका वह भाग जो कान के छेद में रहता है ताड़ के पत्ते को लपेट कर बनाया जाता है) । (२) कर्णफूल ।

तरिवर—संज्ञा पुं० दे० “तरवर” ।

तरिहँदा—किं० वि० [हिं० तर + हँदा (प्रत्य०)] नीचे । तले । उ०—तुधि जो गई देँ हिय बीरगई । गर्व गयो तरिहँदा मिर नाई ।—जायसी ।

तरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) नाव । नौका । (२) गद्दा । (३) कपड़ा रखने का पिटारा । पेटी । (४) धुआँ । धूम । (५) कपड़े का छोर । दामन ।

तरी स्त्री० [फा० तर] (१) गीलापन । आर्द्रता । (२) डंबक । शीतलता । (३) यह नीची भूमि जहाँ बरसात का पानी बहुत दिनों तक इकट्ठा रहता हो । क्यार । (४) तराई । तराही ।

† सत्रा स्त्री० [हिं० तर = नीचे] (१) जूते का सला । (२) तलछट । तलीछ ।

* संज्ञा स्त्री० [हिं० तड़] कान का एक गहना । तरिवन । कर्णफूल । उ०—काने कनक सरी वर बेसरि सोहहि ।—मुलसी ।

तरीका—संज्ञा पुं० [अ०] (१) ढंग । विधि । रीति । प्रकार । उ० । (२) चाल । व्यवहार । (३) युक्ति । उपाय । तदबीर ।

तरीप—संज्ञा पुं० [सं०] (१) सूला गोबर । (२) नौका । नाव । (३) पानी में यहनेवाला तस्ता । बेड़ा । (४) समुद्र । (५) ध्वजपाय । (६) स्वर्ग ।

तरीपो—संज्ञा स्त्री० [सं०] ईंद्र की कन्या ।

तरु—संज्ञा पुं० [सं०] (१) वृक्ष । पेड़ । (२) एक प्रकार का चीड़ जिसके पेड़ खसिया की पहानी, चटगाँव और चरमा में होते हैं । इसमें जो विरोजा या गोद निकलता है वह सप से अफड़ा होता है । तारपीन का तेल भी इससे बहुत अफड़ा निकलता है ।

तरुघा—संज्ञा पुं० [देग०] उथाले हुए धान का चावल । भुँजिया चावल ।

तरुण—वि० [सं०] [स्त्री० तरुणी] (१) युवा । जवान । (२) नया । नूतन ।

तरुण पुं० (१) बड़ा जीरा । स्थूल जीरक । (२) पूरक । रूँड़ । (३) कृमा का फूल । मोतिया ।

तरुण ज्वर—संज्ञा पुं० [सं०] वह ज्वर जो सात दिन का हो गया हो ।

तरुण तरुण—संज्ञा पुं० दे० “तरुण सूर्य” ।

तरुणदधि—संज्ञा पुं० [सं०] पाँच दिन का दही । (सैदक के अनुसार पैमा दही खाना हानिकारक है) ।

तरुणपीतिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] मैनसिल ।

तरुण सूर्य—संज्ञा पुं० [सं०] मध्याह्न का सूर्य ।

तरुणार्द्ध—संज्ञा स्त्री० [सं० तरुण + आर्द्ध (प्रत्य०)] युवावस्था । जवानी ।

तरुणाना—किं० अ० [सं० तरुण + आना (प्रत्य०)] जवानी पर आना । युवावस्था में प्रवेश करना ।

तरुणासि—संज्ञा स्त्री० [सं०] पतली लचीली हड्डी ।

तरुणी—वि० स्त्री० [सं०] युवती । जवान स्त्री ।

तरुणी स्त्री० (१) युवती । जवान स्त्री ।

विशेष—भावप्रकार के अनुसार १६ वर्ष से लेकर ३२ वर्ष तक की स्त्री को तरुणी कहना चाहिये ।

(२) चीकुवार । ग्यारहवाँ । (३) बूँती । जमाकगोटा । (४) चीड़ा नामक गंध द्रव्य । (५) कृमा का फूल । मोतिया । (६) मेघराग की एक रागिनी ।

तरुणी-कटाक्षमाल—संज्ञा स्त्री० [सं०] तिलक वृक्ष ।

तरुणुलिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] चमगादर ।

तरुन—संज्ञा पुं० दे० “तरुण” ।

तरुनई—संज्ञा स्त्री० दे० “तरुनाई” ।

नहरनाई—संज्ञा स्त्री० [सं० तरुण + आर्द्ध (प्रत्य०)] तरुणावस्था । जवानी ।

तरुनापा—संज्ञा पुं० [सं० तरुण + पा (प्रत्य०)] युवावस्था । जवानी । उ०—बालापन में खेलत खोयो तरुनापै गर-यानी—सूर ।

तरुणार्द्ध—संज्ञा स्त्री० [सं० तर + हिं० बौह] पेड़ की सुजा । शाखा । डाल । उ०—इक संशय फल है तरु माहीं । पाँच कोटि शल है तरुवाही ।—मद्भूमिध ।

तरुमुक्—संज्ञा पुं० [सं०] बँदाक । पाँदा ।

तरुमुज—संज्ञा पुं० दे० “तरुमुक” ।

तरुनाग—संज्ञा पुं० [सं०] नया कोमल पत्ता । किण्वलय ।

तरुनाज—संज्ञा पुं० [सं०] (१) कल्पवृक्ष । (२) ताड़ का वृक्ष ।

तरुहहा—संज्ञा स्त्री० [सं०] पाँदा ।

तरुरोहिणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] बाँदा ।

तरुवल्ली—संज्ञा स्त्री० [सं०] जलका फलता । पानड़ी ।

तहसार-संज्ञा पुं० [सं०] कपूर ।

तहसा-संज्ञा स्त्री० [सं०] बाँदा ।

तहट-संज्ञा पुं० [सं०] असींड़ । सुरार । कमल की जड़ ।

तरेंदा-संज्ञा पुं० [सं० तंदा] (१) पानी में तैरता हुआ काठ ।

वेड़ा । (२) वह तैरनेवाली वस्तु जिसका सहारा लेकर पार हो सके । उ०—सिंह तरेंदा जेह गद्दा पार भयो तिहि साथ । ते पप वृद्धे वारि ही भेड़ें रूँछ जिन हाथ ।—जायसी ।

तरे-[क्रि० वि०] [सं० त्र] नीचे । तले ।

मुहा०—(किसी के) तरे बँटना = (किसी के) पति बनाना ।

तरेंटी-संज्ञा स्त्री० [हिं० तर] तराई । तरहटी । तत्रहटी । घाटी ।

पर्यंत के नीचे की भूमि ।

तरेंडा-संज्ञा पुं० दे० "तरता", "तरारा" ।

तरेंरना-क्रि० स० [सं० तत्र = बटना + हिं० हेरना = देखना] धाँसों को इस प्रकार करना जिससे मोच या अम्रस्रता प्रकट हो । दृष्टि कुपित करना । धाँस के इशारे से डाट बताना । दृष्टि से अस्वभावित या अस्वभाव प्रकट करना । उ०—(क) सुनि लक्ष्मिन बिहसे बहुरि गयन तरेंर राम । तुलसी । (ख) भौंहनि फेरि तरेंर सुनै न सखी तव हेरि दिखे सुख पायो ।—प्रताप ।

विशेष—कर्म के रूप में इस शब्द के साथ अस्त्रि या उसके पर्याय शब्द आते हैं ।

तरेंनी-संज्ञा स्त्री० [हिं० तर = नीचे] वह पक्ष जो हरिस और हल को मिळाने के लिये दिया जाता है ।

तरेंली-संज्ञा स्त्री० दे० "तरेंनी" ।

तरेंयाई-संज्ञा स्त्री० दे० "तरई" ।

तरेंला-संज्ञा पुं० [हिं० ते] किसी स्त्री के दूसरे पति का पुत्र ।

तरेंच-संज्ञा स्त्री० [हिं० तर = नीचे] (१) कंधी के नीचे की लकड़ी । (२) दे० "तरेंछ" ।

तरेंचा-संज्ञा पुं० [हिं० तर = नीचे] स्त्री० संज्ञात्वे] गुप के नीचे की लकड़ी ।

तरेंहा-संज्ञा पुं० [दे०] फसल का अतना अनाम जितना हल-बाहे भादि मजदूरों को देने के लिये निकाल दिया जाता है ।

तरेंहा-संज्ञा स्त्री० दे० "तरह" ।

तरेंता-संज्ञा पुं० [सं० ततत्] एक संघा पेड़ जो मध्य भारत और दक्षिण भारत में पाया जाता है । इसकी छाल चमड़ा निकाने के काम में आती है । इसे 'तरतर' भी कहते हैं ।

तरेंवर-संज्ञा पुं० दे० "तहवर" ।

तरेंछी-संज्ञा स्त्री० [हिं० तर + छंकी (अर्थ०)] (१) यह लकड़ी जो हथिये में नीचे की तरफ लगी रहती है । (जुलाहे) ।

(२) बेलगाड़ी में लगी हुई वह लकड़ी जो गुजाया के नीचे रहती है ।

तरेंटा-संज्ञा पुं० [हिं० तर + पाट] आटा पीसने की चक्की का नीचेवाला पाट । जूते के नीचे का परतार ।

तरेंता-संज्ञा पुं० [हिं० तर + पंता (अर्थ०)] छाजन में वे लकड़ियाँ जो डाट के नीचे दी जाती हैं ।

तरेंसाँ-संज्ञा पुं० [हिं० तट + साँस (अर्थ०)] तटा । तीर । किनारा ।

उ०—रथम सुवति करि राधिका तहति तरनिजा तीर ।

श्रैसुवति करति तरेंसाँ की छिनक खरेंहो नीर ।—बिहारी ।

तरेंना-संज्ञा पुं० [हिं० तट + नना] (१) कान में पहनने का एक गहना जो मूल के आकार का गोला होता है । तरकी । (इसका वह अंग जो कान के छेद में रहता है ताड़ के पत्ते को मोल सपेट कर बनाया जाता है) विशेष—दे० "तरकी", "ताड़क" ।

(२) कर्णकूल नाम का धामूप्य । उ०—लसत सेत सारी बच्यो तरल तरेंना कान ।—बिहारी ।

संज्ञा पुं० [हिं० तर = नीचे] वह मोड़ा जिस पर मिठाई का खोचा रखा जाता है ।

तर्क-संज्ञा पुं० [सं०] (१) किसी वस्तु के विषय में अज्ञात तत्त्व को कारणोपपत्ति द्वारा निश्चिन करनेवाली शक्ति या विचार । विवेचना । हेतुपूर्ण युक्ति । दलील ।

विशेष—तर्क व्यापक के साहज पहचानों (विषयों) में से एक है । जब किसी वस्तु के संबंध में वास्तविक तत्त्व ज्ञात नहीं होता तब उस तत्त्व के ज्ञानार्थ (किसी निगमन के पक्ष में) कुछ हेतुपूर्ण युक्ति दी जाती है जिसमें विरुद्ध निगमन की अनुपपत्ति भी दिखाई जाती है । ऐसी युक्ति को तर्क कहते हैं । तर्क में शंका का होना भी आवश्यक है क्योंकि जब यह शंका होगी कि यात ऐसी है या वैसी तभी वह हेतुपूर्ण युक्ति दी जायगी जिसमें यह निरूपित किया जायगा कि यात का ऐसा होना ही ठीक है वैसे नहीं । जैसे, शंका यह है कि आमा नित्य है या अनित्य । यहाँ आमा का यथार्थ रूप ज्ञात नहीं है । इसका यथार्थ रूप निश्चित करने के लिये हम इस प्रकार विवेचना करते हैं—

यदि आमा अनित्य होती तो अपने कर्म का फल न प्राप्त कर सकती और इसका आवागमन या मोच न हो सकता । पर इन सब बातों का होता प्रसिद्ध ही है । अतः आमा नित्य है ऐसा मानना ही पड़ता है ।

(२) चमत्कारपूर्ण वक्ति । सुदृढ़ की बात । खोज की बात । अनुपाई से भरी बात । उ०—प्यारी के मुख भौहके पट पौडि सँवारयो । तरक यात चहुँत कही कुड़ सुधि न सँवारयो ।

—मूर । (३) श्रेय । ताना । उ०—ते सब तर्कें योकिहँ सोकेन तातेन बहुत डरार्क ।—मूर ।

संज्ञा पुं० [सं०] श्याम । छेदना ।

क्रि० प्र०—करना ।

तर्किक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) तर्क करनेवाला । (२) याचक ।
 मैगता ।
 तर्किय-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० तर्कय्य, तर्क्य] तर्क करने की
 क्रिया । बहस करने का काम ।
 तर्कणा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) विचार । विवेचना । ऊहा । (२)
 सुक्ति । दलील ।
 तर्कना-संज्ञा स्त्री० दे० "तर्कणा" ।
 क्रि० अ० [सं० तर्क] तर्क करना ।
 तर्कमुद्रा-संज्ञा स्त्री० [सं०] तंत्र की एक मुद्रा ।
 तर्क वितर्क-संज्ञा पुं० [सं०] (१) ऊहापोह । विवेचना । सोच
 विचार । (२) वाद विवाद । बहस ।
 क्रि० प्र०—करना ।
 तर्कशा-संज्ञा पुं० [सं०] भाषा । तूणीर । तीर ररने का
 योग्य ।
 तर्क शास्त्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) यह शास्त्र जिसमें ठीक तर्क या
 विवेचना करने के नियम आदि निरूपित हैं । सिद्धांतों के
 खंडन मंडन की शैली बतलानेवाली विद्या । (२)
 न्यायशास्त्र ।
 तर्कस्त्री-संज्ञा स्त्री० [सं०] सरकण । छोटा तरकरा ।
 तर्कमास्त्र-संज्ञा पुं० [सं०] ऐसा तर्क जो ठीक न हो । कुंतर्क ।
 तर्कारी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) जैनेय का वृत् । अरथी वृत् ।
 (२) जैत का पेड़ ।
 संज्ञा स्त्री० दे० "तर्कारी" ।
 तर्किय-संज्ञा पुं० [सं०] चकवई । पँधार ।
 तर्किल-संज्ञा पुं० [सं०] चकवड़ । पँधार ।
 तर्की-संज्ञा पुं० [सं०] तर्कनू । [स्त्री० तर्किनी] तर्क करनेवाला ।
 तर्कीच-संज्ञा स्त्री० दे० "तर्कीय" ।
 तर्कु-संज्ञा पुं० [सं०] तकला । टेकुया ।
 तर्कुटी-संज्ञा स्त्री० [सं०] तकला । टेकुया ।
 तर्कुपिंड-संज्ञा पुं० [सं०] तकले की फिरकी ।
 तर्कुल-संज्ञा पुं० [सं०] ताड़ + लस । (१) साड़ का पेड़ ।
 (२) साड़ का फल ।
 तर्क्य-वि० [सं०] विचार्य । चिंत्य । जिस पर कुछ सोच विचार
 करना आवश्यक हो ।
 तर्क्य-संज्ञा पुं० [सं०] तर्क्य या चीता ।
 तर्क्य-संज्ञा पुं० [सं०] जवाहार नमक ।
 तर्ज-संज्ञा पुं० स्त्री० [अ०] (१) प्रकार । किरम । तरह ।
 (२) रीति । शैली । रंग । दब । जैसे, बात चीत करने
 का तर्ज । (३) रचना प्रकार । बनावट । जैसे, हस झूट का
 तर्ज अच्छा नहीं है ।
 तर्जन-संज्ञा पुं० [सं०] तर्जन [वि० तर्जित] (१) धमकाने का

कार्य । भय-प्रदर्शन । (२) क्रोध । (३) तिरस्कार । फटकार ।
 डाँट दपट ।
 धौ०—तर्जन-गर्जन = डाँट फटकार । क्रोध-प्रदर्शन ।
 तर्जना-क्रि० अ० [सं०] तर्जन] टाटना । धमकाना । दपटना ।
 तर्जनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] तर्जनी] शँगुटे के पास की उँगली ।
 शँगुटे और मध्यमा के बीच की उँगली । प्रदेहिनी । व०—
 हर्दा कुहड़ बतिया कोइ नार्हीं । जे तर्जनी देखि भरि
 नार्हीं ।—तुलसी ।
 विशेष—हस्ती उँगली से किमी वस्तु की ओर दिखाते या
 इशारा करते हैं ।
 तर्जनीमुद्रा-संज्ञा स्त्री० [सं०] तंत्र की एक मुद्रा जिसमें बाएँ
 हाथ की मुट्टी बाँध तर्जनी और मध्यमा को फैलाते हैं ।
 तर्जिक-संज्ञा पुं० [सं०] एक देश का प्राचीन नाम ।
 ताविक देश ।
 तर्जुमा-संज्ञा पुं० [अ०] भाषांतर । उल्हा । अनुवाद ।
 तर्क्य-संज्ञा पुं० [सं०] गाय का बड़ड़ा । बड़ुवा ।
 तर्क्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) तुरत का जन्मा गाय का बड़ड़ा ।
 (२) शिशु । बच्चा ।
 तर्गि-संज्ञा पुं० दे० "तर्गि" ।
 तर्जरीक-संज्ञा पुं० [सं०] नाव ।
 वि० पार जानेवाला ।
 तर्पण-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० तर्पणीय, तर्पित, तर्पी] (१) वृक्ष
 करने की क्रिया । संतुष्ट करने का कार्य । (२) कर्मकांड की
 एक क्रिया जिसमें देव, ऋषि और पितरों को तुष्ट करने के
 लिये हाथ (या अरचे) से पानी देते हैं ।
 विशेष—मध्याह्न-स्नान के पीछे तर्पण करने का विधान है ।
 क्रि० प्र०—करना ।—होना ।
 तर्पणी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) विरनी का वृक्ष । (२) गंगा नदी ।
 वि० वृत्ति देनेवाली ।
 तर्पणीय-वि० [सं०] वृत्ति के योग्य ।
 तर्पिणी-संज्ञा स्त्री० [सं०] पत्रचारिणी लता । स्थल-कमिलिनी ।
 स्थलपत्र ।
 तर्पित-वि० [सं०] वृक्ष किया हुआ । संतुष्ट किया हुआ ।
 तर्पी-वि० [सं०] तर्पित] [स्त्री० तर्पिणी] (१) वृक्ष करनेवाला ।
 संतुष्ट करनेवाला । (२) तर्पण करनेवाला ।
 नर्घट-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चकवई । पँधार । (२) चाँद
 बसर । चर्प ।
 तर्जूज-संज्ञा पुं० दे० "तर्जुज" ।
 तर्जोना-संज्ञा पुं० दे० "तर्जोना" ।
 तर्ती-संज्ञा पुं० [सं०] चावुक का फीता या दोरी जो छड़ों में
 बँधी रहती है ।

तरांना-संज्ञा पुं० [फा० तराना] एक प्रकार का गाना । दे० "तराना" ।

† कि० अ० दे० "तरांना" ।

तराँ-संज्ञा स्त्री० [दे०] एक प्रकार की घास जिसे 'मैसे' बड़े प्रेम से खाती है । यह प्रायः कच्छ में मिलती है ।

तरप-संज्ञा पुं० [सं०] (१) श्रमिजापा । (२) तृष्णा । अस्तोप । ३-देव शोक संदेह भय हर्ष वम तरप गन साधु सधुक्ति विच्छेद करी ।-तुलसी । (३) बेड़ा । (४) समुद्र । (२) पृथ्वी ।

तरपण-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० तर्पण] (१) पिपासा । प्यास । (२) श्रमिजापा । इच्छा ।

तरपित-वि० [सं०] (१) प्यासा । (२) इच्छुक । जो लालसा किए हो ।

तल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) नीचे का भाग । (२) पैदा । तला । (३) जल के नीचे की भूमि । (४) वह स्थान जो किसी वस्तु के नीचे पड़ता हो । जैसे, तलज ।

मुहा०-तल करना=नीचे दवा लेना । छिपा लेना । (शुआरी)

(२) पैर का तलवा । (३) हथेली । (४) चरत । थप्पड़ । (५) किसी वस्तु का बाहरी फैलाव । बाह्य-विस्तार । छटपटा । सतह । जैसे, तलज, घरातल, समतल । (६) स्वरूप । स्वभाव । (१०) कानन । जंगल । (११) गहवा । गहड़ा । (१२) चमड़े का पहला जो धनुष की टोरी की राह से बचने के लिये बाँधे शीर्ष में पहना जाता है । (१३) धर की धत । पाटन । जैसे, चार तला महान । (१४) ताड़ का पेड़ । (१५) मुडिया । मूठ । दूध । (१६) गोहूँ ह्रास से बियाह बन्नाने की क्रिया । (१७) गोधा । गोह । (१८) फलाई । पहुँचा । (१९) बालिवत । चित्त । (२०) आधार । सहाय । (२१) महादेव । (२२) सप्त पातालों में से पहला । (२३) एक नरक का नाम ।

तलक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) ताल । पोखरा । (२) एक फल का नाम ।

† अश्व० [हिं० तक] तक । पर्यंत ।

तलकर-संज्ञा पुं० [सं०] वह कर वा लगान जो जमींदार ताल की वस्तुओं (जैसे, सिंघाड़ा, मछली आदि) पर लगाता है ।

तलकी-संज्ञा स्त्री० [दे०] एक पेड़ जो पंजाब, अरब, बंगाल, मध्यदेश तथा मद्रास में होता है । उसकी लकड़ी खलाई लिए भूरी होती है और खेती के सामान बनाने तथा मकानों में लगाने के काम में आती है ।

तलक-संज्ञा स्त्री० [सं० तलंग] तलंग देश की भाषा ।

तलधरा-संज्ञा पुं० [सं० तल + हिं० धर] तलधराता ।

तलछट-संज्ञा स्त्री० [हिं० तल + छटना] पानी या और किसी द्रव पदार्थ के नीचे बँधी हुई मैल । तलौव । गाद ।

तलना-कि० सं० [सं० तलप = लिपना] कड़कड़ाते हुए घी या तेल में डाल कर पकाना । जैसे, पापड़ तलना, घुघनी तलना ।

संयो० कि०-देना ।-लेना ।

विशेष-भावप्रकाश में 'घी में भुना हुआ' के अर्थ में 'तलित' शब्द आया है, पर वह संस्कृत नहीं जान पड़ता ।

तलप-संज्ञा पुं० दे० "तलप" ।

तलपट-वि० [दे०] नाथ । बरबाद । चौपट ।

कि० प्र०-करना ।-होना ।

तलफु-वि० [सं०] नष्ट । बर्बाद ।

कि० प्र०-करना ।-होना ।

धौ०-सुहरिंदर तलफ ।

तलफना-कि० अ० [अ०] (१) कष्ट या पीड़ा से श्रंग पटकना । छुटपटना । (२) ध्याकुल होना । बेचैन होना । विकल होना ।

तलफनी-संज्ञा स्त्री० [फा०] (१) खराबी । बरबादी । नाश । (२) हानि ।

धौ०-हक तलफनी = स्वयं का मारा जाना ।

तलव-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) खोज । तलाश । (२) चाह । पाने की इच्छा । (३) आवरणकता । माँग ।

मुहा०-तलव करना = माँगना । माँगना ।

(४) बुझना । बुलाहट ।

मुहा०-तलव करना = बुझा भेजना । पास बुलाना ।

(५) तनवाह । बेतन ।

कि० प्र०-खाना ।-खुकाना ।-देना ।-पाना ।-मिलना ।

तलवगार-वि० [फा०] चाहनेवाला । माँगनेवाला ।

तलबाना-संज्ञा पुं० [फा०] (१) वह खरचा जो गवाहों को तलव करने के लिये टिकट के रूप में अदालत में दाखिल किया जाता है । (२) वह खरचा जो मालगुजारी समय पर न जमा करने पर जमींदार से दंड के रूप में लिया जाता है । विशेष-चपरासियों को खाने पीने आदि के लिये जो भेंट या खरचा जमींदार देते हैं उसको भी तलबाना कहते हैं ।

तलबी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) बुलाहट । (२) माँग ।

कि० प्र०-हाना ।

तलबेली-संज्ञा स्त्री० [हिं० तलफना] किसी वस्तु के लिये आतुरता या बेचैनी । छुटपटी । धोर उकंठा । उ०-काह उठे अति प्रात ही तलबेली खागी । मिया प्रेम के रस भरे रंग अंतर परगी ।-सूर ।

तलमल-संज्ञा पुं० [सं०] तलवट । तराँव । गाद ।

तलवारनामो-क्रि० अ० [दे०] तलवारना । तलवारना । वैचै
हेना ।

क्रि० अ० दे० "तिलमिहाना" ।

तलवारनामो-क्रि० अ० [दे०] व्याकुलता । तलवारने का भाव ।
वैचैनी ।

संज्ञा स्त्री० दे० "तिलमिहाना" ।

तलवार-संज्ञा पुं० [सं०] गानेवाला ।

तलवारकार-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सामवेद की एक शाखा । (२)
एक उपनिषद् का नाम ।

तलवार-संज्ञा पुं० [सं० तल] पैर के नीचे का भाग जो चलने
या खड़े होने में जमीन पर पड़ता है । पैर के नीचे की और
का वह भाग जो पड़ी और पंजों के बीच में होता है ।
पादतल ।

मुह्रा०—तलवार धुनवाना = तनये में खुनकी हेना जिससे यात्रा
का शकुन समझा जाता है । तलवरे चाटना = बहुत खुरामद
करना । अर्थात् सेवा शुभ्रता में लगा रहना । तलवरे छलनी
हेना = चलते चलते पैर घिस जाना । चलते चलते शिथिल
हो जाना । बहुत दौड़ धूप की नींवत आना । तलवरे तले अर्थात्
मलना = दे० "तलवरे से अर्थात् मलना" । तलवरे तले मेटना =
कुचल कर नष्ट करना । रौंदा झलना । (खि०) । तलवरे घो घो
कर पीना = अर्थात् सेवा शुभ्रता करना । अर्थात् श्रद्धा-भक्ति
प्रकट करना । अर्थात् प्रेम प्रकट करना । तलवरा न टिकना =
पैर न टिकना । जमकर रोना न रहु जाना । आसन न जमाना ।
एक जगह कुछ देर बैठे न रहु जाना । तलवरा न भरना =
दे० "तलवरा न टिकना" । (खि०) । तलवरे से अर्थात् मलना =
(१) अर्थात् दीनता प्रकट करना । बहुत अधिक अधीनता
दिलाना । (२) अर्थात् प्रेम प्रकट करना । (३) दे० "तलवरे
तले मेटना" । तलवरे से आग लगना = क्रोध से शरीर भस्म
होना । अर्थात् क्रोध चढ़ना । तलवरे से मलना = पैर से कुच-
लना । रौंदा । कुचल कर नष्ट करना । तलवरे से लगना =
(१) क्रोध चढ़ना । (२) बुरा लगना । अर्थात् अप्रिय लगना ।
कुदण होना । बिट्ट होना । तलवरे से लगना, सिर में आकर
बुझना = सिर से पैर तक क्रोध चढ़ना । क्रोध से शरीर भस्म
होना । तलवरे सहजाना = (१) अर्थात् सेवा-शुभ्रता
(२) बहुत खुरामद करना ।

तलवार-संज्ञा स्त्री० [सं० तलवारि] लोहे का एक
हथियार जिसके कट जाती
असि । कृपाय ।

पर्या०—असि ।

श्रीगर्भ । विजय ।

रिति । करवाला ।

क्रि० प्र०—चलना ।—चलाना ।—मारना ।—लगना ।—
लगाना ।

मुह्रा०—तलवार करना = तलवार चराना । तलवार का चार
करना । तलवार कसाना = तलवार झुकाना । तलवार का
खेत = कड़ाई का मैदान । युद्धक्षेत्र । तलवार का बाट =
तलवार में यह स्थान जहाँ से उसका टेढ़ापन आरंभ होता है ।
तलवार का छाला = तलवार के फल में उमरस वृक्षा दाग ।
तलवार का बरोरा = तलवार की धार जो पतले सुत की तरह
दिलवाई देती है । बाढ़ । तलवार का पट्टा = तलवार की चौड़ा
धार । तलवार का पानी = तलवार की आभा या दमक ।
तलवार का फल = मूठ के अतिरिक्त तलवार का सारा भाग ।
तलवार का बल = तलवार का टेढ़ापन । तलवार का मुँह =
तलवार की धार । तलवार का हाथ = (१) तलवार चलाने
का ढंग । (२) तलवार का चार । खड्ग का आधात । तलवार
की आँच = तलवार की चोट का सामना । तलवार की माला =
तलवार का वह जोड़ जो दुंगाने से कुछ दूर पर होता है ।
तलवारों की झाँह में = ऐसे स्थान में जहाँ अपने ऊपर चारों
ओर तलवार ही तलवार दिखाई देती हो । रणक्षेत्र में ।
तलवार खींचना = ग्यान से तलवार बाहर करना । तलवार
जड़ना = तलवार मारना । तलवार से आधात करना । तलवार
तौलना = तलवार के हाथ में लेकर श्रद्धाजना जिनमें चार
मत्पूर बैठे तलवार सँभालना । तलवार पर हाथ रखना =
(१) तलवार निकालने के लिये तैयार होना । (२) तलवार की
शपथ खाना । तलवार धाँचना = तलवार के कमर में लटकाना ।
तलवार गाय में रखना । तलवार सौतना = तलवार ग्यान से
निकालना । चार करने के लिये तलवार खींचना ।

विशेष—तलवार का व्यवहार सब देशों में अर्थात् प्राचीन काल
से होता आया है । धनुर्वेद आदि ग्रंथों को देखते से जाना
जाता है कि भारतवर्ष में पहले बहुत अच्छी तलवारें बनती थीं
जिनसे परयर तक कट सकता था । प्राचीन काल में खट्टर
देश, अंग, बंग, मध्यभारत, सह्याद्र, कालांजर इत्यादि स्थान
खड्ग के लिये प्रसिद्ध थे । ग्रंथों में जोड़े की उपयुक्तता, खड्गों
के विविध परिणाम तथा उनके बनाने का विधान भी दिया
हुआ है । पानी देने के लिये लिखा है कि धार पर नमक या
चार मिट्टी का लेप करके तलवार को आग में
तपावे में बुझा दे । उराना और शुक्राचार्य
ने रक्त, घृत, ऊँट के दूध आदि में बुझाने का
है । तलवार की फनकार (ध्वनि)
पड़े हुए चिह्नों के अनुसार तल-
वारे होने का निर्णय किया
की जाती है उसे
के हाथ ३२ गिनाए

गपू हैं जिनके नाम ये हैं—भ्रात, उद्भ्रात, आविद, आप्युन, विप्युत, वृत, संघात, समुदीर्य, निग्रह, प्रग्रह, पदावकर्षण, संपान, मलक-भ्रामय, गुन-भ्रामय, पाश, पाद, विबंध, भूमि, बद्धभ्रामय, गति, प्रत्यागति, आश्रय, पातन, अस्थानक-प्लुति, लघुता, सौष्टव, शोभा, स्पर्श, उद्गुष्टिता, तिथ्यक-प्रकार और उद्ग्रप्रकार। इसी प्रकार पट्टिक, मौष्टिक, महिपाप आदि तलवार के १० भेद भी बताए गए हैं। आज कल भी तलवारों के कई भेद होते हैं जैसे खंडा, जो सीधा और छोर पर चौड़ा होता है; सैफ जो लंबी पतली और सीधी होती है; दुधारा, जिसके दोनों छोर धार होती हैं। इसके अतिरिक्त स्थानभेद से भी तलवारों के कई नाम हैं—जैसे, तिरोगी, चेंद्री, लुन्ची इत्यादि। एक प्रकार की बहुत पतली और लचीली तलवार उना कहलाती है जिसे रामा तकिये में रख सकते या कमर में छपेट सकते हैं। तलवार दुर्गा का प्रधान अस्त्र है इसीसे कभी कभी तलवार को दुर्गा भी कहते हैं।

तलहटी—संज्ञा स्त्री [सं० तल + हट] पहाड़ के नीचे की भूमि। पहाड़ की तराई।

तलहा—वि० [हिं० तल] ताल सेवधी। ताल का या ताल में होनेवाला।

तला—संज्ञा पुं० [सं० तल] (१) किसी वस्तु के नीचे की सतह। पैदा। (२) जूते के नीचे का चमड़ा जो जमीन पर रहता है।

तलाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० ताल] छोटा ताल। तलैया। भावली। तलाज—संज्ञा पुं० दे० "तलाय"।

तलाक—संज्ञा पुं० [अ०] पति पत्नी का विधानपूर्वक संबंध-त्याग। फि० प्र०—देना।

तलाची—संज्ञा स्त्री० [सं०] चटाई।

तलाताल—संज्ञा पुं० [सं०] तात पातालों में से एक पाताल का नाम।

तलावेली—संज्ञा स्त्री० दे० "तलवेली"।

तलावा—संज्ञा पुं० [सं० तल] ताल। यह जंबा चौड़ा गड्ढा जिसमें बरसात का पानी जमा रहता है। तलावा। पोखरा। व०—सिमिटि सिमिटि जल भरइ तलावा। जिमि सदुपुण्य तजजन पई आवा।—मुलसी।

† मुहा०—तलाय जाना = रौच जाना। पालाने जाना।

तलाश—संज्ञा स्त्री० [हिं०] (१) खोज। ढूँढ ढाँढ। अन्वेषण। अनुसंधान।

फि० प्र०—करना।—होना।

(२) आरपक्का। चाह।

फि० प्र०—होना।

तलाशना—फि० सं० [अ० तलाय] ढूँढना। खोजना।

तलादा—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक वृक्ष का नाम।

तलादी—संज्ञा स्त्री० [अ०] गुम की हुई या छिपाई हुई वस्तु को पाने के लिये घर-घर, चीज-वस्तु आदि की देह-माह। जैसे, पुलिस ने जब घर की तलाशी ली तब बहुत सी घेरी की चीजें निकलीं।

मुहा०—तलाशी देना = गुम या छिपाई हुई वस्तु को निकालने के लिये संदेह करनेवाले को खना घर-घर, कपड़ा लगा आदि ढूँढने देना। तलाशी लेना = गुम या छिपाई हुई वस्तु को निकालने के लिये ऐसे मनुष्य के घर-घर आदि की देख-माह करना जिस पर उम-वस्तु को छिपाने या गुम करने का संदेह हो।

तलित—वि० [सं०] तला हुआ। घी या चिकने के साथ सुना हुआ।

विशेष—यह शब्द संस्कृत नहीं जान पड़ता, केवल भावप्रकाश में मुने हुए मांस के लिये आया है।

तलिन—वि० [सं०] (१) दुबला। फीया। दुर्बल। (२) रिकला। क्षितराया हुआ। अलग अलग। (३) मोड़ा। कम। (४) साफ़। स्वच्छ। शुद्ध।

संज्ञा स्त्री० [सं०] शर्या। सेज। पलंग।

तलिम—संज्ञा पुं० [सं०] (१) झूत। पाटन। (२) शर्या। पलंग। (३) खज। (४) चँदा।

तलिया—संज्ञा स्त्री० [सं० तल] समुद्र की याह। (हिं०)

तली—संज्ञा स्त्री० [सं० तल] (१) किसी वस्तु के नीचे की सतह। पैदी। (२) तलहट। तलीह। † (३) पैर की पट्टी। † (४) विवाह में बरतपू के आसन के नीचे रखा हुआ रथया पैसा।

तलुप्रा—संज्ञा पुं० दे० "तलया"।

संज्ञा पुं० दे० "ताल"।

तलुन—संज्ञा पुं० [सं०] (१) वायु। (२) युवा पुत्रप।

तले—फि० वि० [सं० तल] नीचे। ऊपर का बलदा। जैसे, पैद के तले।

मुहा०—तले ऊपर = (१) एक के ऊपर दूसरा। जैसे, किताबों को तले ऊपर रख दो। (२) नीचे की वस्तु ऊपर और ऊपर की वस्तु नीचे। उलट पत्रत किया हुआ। गड़ गड़। जैसे, सप कागज लगा कर रखे हुए थे तुमने तले ऊपर कर दिए। तले ऊपर के = आगे पीछे की। ऐसे दो जिनमें से एक दूसरे के उपरान्त हुआ हो। जैसे, ये तले ऊपर के लड़के हैं इसी से लड़ा करते हैं। (छियों का विधास है कि ऐसे लड़कों में नहीं बनती।) तले ऊपर होना = (१) उलट पत्रत होना। (२) संयोग में प्रवेश होना। जी तले ऊपर होना = (१) जी मन्थाना। (२) जी ऊठना। चिप चरणना। तले की सत तले और ऊपर की सत ऊपर रह जाना = (१) टक

रह जाना ! लम्ब रह जाना । कुङ्क कहते मुनते या करते घरते न वन पड़ना । (२) मौचक रह जाना । हक्का बक्का रह जाना । चकित रह जाना । तले की दुनिया ऊपर होना = (२) भारी उलट फेर हो जाना । (२) जो चाहे सो हो जाना । अशंभव से अशंभव थात हो जाना । जैसे, चाहे तले की दुनिया ऊपर हो जाय हम अशय वहाँ न जावँगे । (मात्रा चौपाए के) तले बचा होना = थाप में छोड़े दिने का बचा होना । जैसे, इस गाय के तले एक बछड़ा है ।

तल्लक्ष्य-संज्ञा पुं० [सं०] शूकर । सूअर ।

तल्लैटी-संज्ञा स्त्री० [सं० तल] (१) पेंदी । (२) पहाड़ के नीचे की सूमि । तल्लहटी ।

तल्लैचा-संज्ञा पुं० [हिं० तले] इमारत में मेहराब से ऊपर का धार धत से नीचे का भाग ।

तल्लैया-संज्ञा स्त्री० [हिं० तल] छोट्टा ताल ।

तल्लोदरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] स्त्री । भार्या ।

तल्लोदा-संज्ञा स्त्री० [सं०] दरिया ।

तल्लोछ-संज्ञा स्त्री० [सं० तल = नीचे] तल्लछुट । नीचे जमी हुई मैल आदि ।

तल्लक-संज्ञा पुं० [सं०] वन ।

तल्लव-वि० [फा०] (१) कडुवा । कटु । (२) बदमज़ा । घुरे स्वाद का ।

तल्लो-संज्ञा स्त्री० [फा०] कडुवाहट । कडुवापान ।

तल्लप-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शरया । पलंग । सेज । (२) यष्टा-लिका । अदारी ।

तल्लपकीट-संज्ञा पुं० [सं०] मखुष्य । सटमल ।

तल्लपज-संज्ञा पुं० [सं०] पेत्रज पुत्र ।

तल्ल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बिल । गड्डा । (२) साल । पोखरा ।

तल्लह-संज्ञा पुं० [सं०] कुत्ता ।

तल्ला-संज्ञा पुं० [सं० तल] (१) तले की परत । अस्तर । मितल्ला ।

(२) विग । पास । सामीप्य । व०—तियन को तल्ला रिय, तियन पिपल्ला त्यागे दीँसत प्रयल्ला भल्ला थाप रागदारा को ।—सुवाराज ।

तल्लिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] ताली । कुंजी ।

तल्लो-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) जूते का तल्ला । (२) नीचे की तल्लहट जो नाँद में बैठ जाती है ।

संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) तल्लपी । युवती । (२) मौका । नाव । (३) बल्प्य की पत्नी ।

तल्लुमा-संज्ञा पुं० [दे०] गाड़े के ऐसा एक कपड़ा । महमूदी । तुकरी । सहाम ।

तल्लो-संज्ञा पुं० [सं० तल] जाँते के नीचे का पाट ।

तल्लकार-संज्ञा पुं० दे० "तल्लकार" ।

तल्ल-सर्व० [सं०] तुम्हारा ।

तल्लक्षीर-संज्ञा पुं० [सं० फा० तल्लक्षीर] तल्लक्षीर । तीसुर ।

तल्लक्षीरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] कनकचूर-जिसकी जड़ से एक प्रकार का तीसुर बनता है । धबीर-इली तीसुर का बनता है ।

तल्लजह-संज्ञा स्त्री० [फा०] (१) ध्यान । रुहर ।

क्रि० प्र०—करना ।—देना ।

(२) कृपावधि ।

तल्लाना^१-क्रि० अ० [सं० तपन] (१) तपना । गरम होना ।

(२) ताप से पीड़ित होना । दुःख से पीड़ित होना । व०—

(क) काज के प्रताप कासी तिहूँ ताप तहँ है । (ख) जवते न्दान गई तहँ ताप भई बेहाल । भली करी या नारि की नारी देखी बाल ।—शृ० सत० । (३) प्रताप पीजाना ।

तेज पसताना । व०—दुतर गान लख ताकर सूर तवह जस थाप ।—जायसी । (४) श्लोथ से जलना । गुस्से से खाल होना । कुढ़ जाना । व०—(क) भारत प्रसंग ज्यों कालिका लहू देखि तन में सई ।—नाभादास । (ख) महादेव बँडे रहि गप । दूष देखि की तेहि दुख तप ।—सूर ।

तल्लनी-संज्ञा स्त्री० [हिं० तना] हलका तवा । छोटा तवा ।

तल्लरक-संज्ञा पुं० [सं० हवर] एक पेड़ जो समुद्र और नदियों के तट पर होता है । इसमें हमजी के ऐसे फल लगते हैं जिन्हें खाने से चौपायों का दूध पड़ता है ।

तल्लराज-संज्ञा पुं० [सं०] तुरंगवीन । यवास शकरी ।

तल्ला-संज्ञा पुं० [हिं० तलना = जलना] (१) लोहे का एक छिड़का गोल परतन जिस पर रोटी सँकते हैं ।

क्रि० प्र०—चढ़ाना ।

मुहा०—तवा सा मुँह = कालिल लगे हुए तपे की तरह फाला मुँह । तवा सिर से बाँधना = सिर पर पहार सहने के लिये तैयार होना । अपने को तल्ल हट और सुपन्नित करना ।

तवे का हँसना = तपे के नीचे जमे हुए कालिल का बहूत जलते जलते खाल हो जाना जिससे घर में विवाद होने का कुशाकुन समझा जाता है । तवे की बूँद = (१) छपाखायी ।

देर तक न टिकनेवाला । नेत्र । (२) जो कुछ भी न भायस हो । जिससे कुछ भी तृप्ति न हो । जैसे, इतने से बसका क्या होता है, इसे तवे की बूँद समझो ।

(२) मिट्टी या खपड़े का गोल ठीकरा जिसे चिलम पर रख कर तमाखू पीते हैं । (३) एक प्रकार की खाल मिट्टी जो हाँग में भेल देने के काम में आती है ।

(२) मिट्टी या खपड़े का गोल ठीकरा जिसे चिलम पर रख कर तमाखू पीते हैं । (३) एक प्रकार की खाल मिट्टी जो हाँग में भेल देने के काम में आती है ।

तल्लाखीर-संज्ञा पुं० [सं० तल्लक्षीर] थंयरोचन । थंसलोचन ।

तल्लाजा-संज्ञा स्त्री० [फा०] (१) आदर । मान । आबभगत । (२) मोहमानदारी । दावत । ज्याफत ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

तल्लाना-वि० [फा०] बली । मोटा तामा । मुस्टंका ।

क्रि० सं० [हिं० ताना] (१) तस कराना । गाम कराना ।
क्रि० सं० [हिं० ताना] दहन को चिपका कर धरतन का
गुँह बंद कराना ।

तवायफ़-संज्ञा स्त्री० [अ०] बेरया । रंही । (यद्यपि यह शब्द
बहु० है पर हिंदी में एक वचन बोला जाता है)

तवारा-संज्ञा पुं० [सं० ताप, हिं० तन] जलन । दाह । ताप ।
ब०—तवते हुन सप्रहिन सचु पायो । जयते हरि सेदेरा तुम्हारे।
मुनत तवारे धारयो ।—मूर ।

नधारीक-संज्ञा स्त्री० [अ०] इतिहास ।

विशेष—यह 'तारीक' शब्द का बहुवचन है ।

तवालत-संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) लंबाई । दीर्घत्व । (२)
धाधिक्य । अधिकता । अधिकाई । ज्यादती । (३) बलेझ ।
सूख तवील । संकट ।

तविप-संज्ञा पुं० [सं०] (१) स्वर्ग । (२) समुद्र । (३) ध्यवसाय ।
(४) शक्ति । (५) स्वर्ग ।

वि० (१) घृष्ट । मद्धत । (२) बलघान ।

तवालीस-संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) ठहराव । निश्चय । (२) मर्ज
की पहिधान । रोग का निदान ।

तवारीफ़-संज्ञा स्त्री० [अ०] सुसुर्गी । इज्जत । महत्त्व ।
बहुप्यन ।

मुहा०—तवारीफ़ रखना = विराजना । चैंटना । (आदर) ।
तवारीफ़ खाना = पदार्थय करना । पचाना । पाना । (आदर) ।
तवारीफ़ ले जाना = प्रस्थान करना । चला जाना ।

तदत-संज्ञा पुं० [अ०] (१) धाली के आकार का हलका
झिड़का धरतन । (२) परात । जगन । (३) ताँबे का वह
बड़ा धरतन जो पाखानों में रखा जाता है । गमला ।

तदतरी-संज्ञा स्त्री० [अ०] धाली के आकार का बहुत झिड़का
हलका धरतन । रिकायी ।

तट-वि० [सं०] (१) झीला हुआ । (२) कुटा हुआ । बला
- हुआ । पीस कर दो दलों में किया हुआ । (३) पीटा हुआ ।

तटा-संज्ञा पुं० [सं०] (१) झीलेबाजाल । (२) झील छाल कर
गड़नेबाजाल । (३) विरजकर्ता । (४) एक आदित्य का नाम ।
संज्ञा पुं० [अ०] ताँबे की एक प्रकार की छोटी
तदतरी जिसका व्यवहार टाकुर पूजन के समय मूर्तियों
को महलाने के लिये होता है ।

तस-वि० [सं०] उदय, अ०] उदित, पु० हिं०] तस । चँसा । चँसा ।
क्रि० वि० चँसा । चँसा । ब०—तस मति फिरी रही जस
भावी ।—मुसलसी ।

तसकीन-संज्ञा स्त्री० [अ०] तसही । वाक़स । दिलासा ।
तसगर-संज्ञा पुं० [देग०] जुलाहों के ताने में, नौलकवाँ के पास
की दो लकड़ियों में से एक ।

तसदीक-संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) सचाई । (२) सचाई की परीचा
या निश्चय । समर्थन । प्रमाणों के द्वारा पुष्टि । (३) साक्ष्य ।
गवाही ।

क्रि० प्र०—काना ।—देना ।

तसदीह-संज्ञा स्त्री० [अ०] तदीह] (१) बर्द सर । (२)
तकलीफ़ । दुःख । बलेय । उ०—नाहिं घूत धीव
सबील ही तसदीह सय ही की सदी ।—सूदन ।

तसद्दुक-संज्ञा पुं० [अ०] (१) निष्ठावर । सवका । (२) यजि-
प्रदान । कुदरानी ।

तसनीस-संज्ञा स्त्री० [अ०] ग्रंथ की रचना ।

तसबीह-संज्ञा स्त्री० [अ०] सुमिरनी । माला । जपमाला ।
(मुसल) । उ०—मन मति के तँह तसपी फेरह । तप
साहय के वह मन भेदह ।—दाद ।

मुहा०—तसबीह फेरना = ईश्वर का नाम स्मरण या उच्चारण
करते हुए माला फेरना ।

तसमा-संज्ञा पुं० [अ०] चमड़े की कुछ चौड़ी खोरी के आकार
की लंबी धज्जी जो किसी वस्तु को बाँधने या कसने के काम
में आवे । चमड़े का चौड़ा फ़ीता ।

मुहा०—तसमा खींचना = एक विशेष रूप से गले में फँदा हाज़
कर मारना । गला घोटना । तसमा लगा न रखना = गरदन
साफ़ उड़ा देना । साफ़ देा टुकरे करना ।

तसर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) जुलाहों की टरकी । (२) एक प्रकार
का घटिया रेशम । दे० "तरर" ।

तसला-संज्ञा पुं० [अ०] तन + ला (अल०)] कटेरे के आकार का
पर बससे बड़ा गहरा धरतन जो लोहे, पीतल, ताँबे आदि
का बनता है ।

तसली-संज्ञा स्त्री० [हिं०] तसला] छोटा तसला ।

नसलीम-संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) सजाम । प्रणाम । (२) किसी
बात की स्वीकृति । हामी । जैसे, गुजती तसलीम करना ।

क्रि० प्र०—करता ।

तसहो-संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) वाक़स । संवना । आधासन ।
(२) ध्यमता की निश्चिंति । ध्याकुलता की शांति । धैर्य ।
धीरज ।

क्रि० प्र०—करना ।—देना ।—पाना ।—देना ।

मुहा०—तसहो दिखाना = तसही देना । धैर्य प्रारण करना ।

तसधीर-संज्ञा स्त्री० [अ०] चित्र । वस्तुओं की आकृति जो रंग
आदि के द्वारा कागज पट्टी आदि पर बनी हो ।

क्रि० प्र०—खींचना ।—बनाना ।—खिलना ।

मुहा०—तसधीर बनाना = चित्र बनाना । † तसधीर निका-
बना = चित्र बनाना ।

वि० चित्र सा सुंदर । मनेदर ।

तसी-संज्ञा स्त्री० [देग०] तीन बार जोता हुआ खेत ।

तस्-संज्ञा पुं० [सं० मि + श्क = जो की तरह का एक कल्पन]
लंबाई की एक माप । इमारती गज का २४ र्वा धंरा जो
१३ इंच के लगभग होता है ।

तस्कर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चोर । (२) श्रवण । कान । (३)
मैलफल । मदन वृक्ष । (४) एक प्रकार के केंतु जो लंबे और
सनेद होते हैं । ये २१ हैं और घुब के पुत्र माने जाते हैं ।
(सूक्ष्महिता) । (५) चोर नामक गंधद्रव्य ।

तस्करता-संज्ञा स्त्री० [सं०] चोरी । चोर का काम ।

तस्करनायु-संज्ञा पुं० [सं०] काननासा जता । कंवाठोटी ।

तस्करी-संज्ञा स्त्री० [सं० तस्कर] (१) चोरी । चोर का काम ।
(२) चोर की स्त्री । (३) वह स्त्री जो चोर हो ।

तस्थु-वि० [सं०] स्थावर । एक ही स्थान पर रहनेवाला ।
श्रवण ।

तस्मात्-अव्य० [सं०] इसलिये ।

तस्य-सर्व [सं०] उसका ।

तस्त्-संज्ञा पुं० दे० 'तस्' ।

तह-कि० वि० दे० 'तहाँ' ।

तहँची-कि० वि० दे० 'तहाँ' ।

तह-संज्ञा स्त्री० [फा०] (१) किसी वस्तु की मोटाई का फैलाव
जो किसी दूसरी वस्तु के ऊपर हो । परत । जैसे, कपड़े की तह,
भोजार्थ की तह, मिट्टी की तह, चट्टान की तह । उ०—(क)
इस पर थमी मिट्टी की कई तहें चढ़ेंगी । (ख) इस कपड़े
को चार पंज तहों में लपेट कर रख दो ।

कि० प्र०—चढ़ना ।—चढ़ाना ।—जमना ।—जमाना ।—लगाना ।

धै०—तहदार = जिसमें कई परत हो ।

मुहा०—तह करना = किसी फैली हुई (चदर आदि के आकार
की) वस्तु के भागों को कई ओर से मोड़ और एक दूसरे के
ऊपर फैला कर उस वस्तु को समेटना । चौपरत करना । तह कर
रखे = लिये रहे । मत निकालो या दो । रहने दो । नहीं
चाहिए । तह जमाना या फैलाना = (१) परत के ऊपर परत
दवाना । (२) भोजन पर भोजन किए जाना । तह तोड़ना =
(१) भगड़ा निवटाना । समाधि को पहुँचाना । कुछ, बाकी न
रखना । निवटाना । (२) ऊँट का सय पानी निकाल देना
जिससे जमीन दिखाई देने लगे । (किसी चीज की) तह
देना = (१) हलकी परत चढ़ाना । चोड़ा मोटाई में फैलाना
या विछाना । (२) हलका रंग चढ़ाना (३) अंतर बनाने में
जमीन देना । आधार देना । जैसे, चंदन की तह देना । तह
मिलाना = जोड़ा लगाना । नर और मादा एक साथ करना ।
तह लगाना = चौपरत करके समेटना ।

(२) किसी वस्तु के नीचे का विस्तार । तह । पेंदा । जैसे,
इस गिलास में घुली हुई दवा तह में आकर जम गई है ।

मुहा०—तह का सचा = वह कपूतर जो, परापर अपने छत्र पर

जमा आवे, अपना स्थान न भूले । तह की बात = छिपी हुई
बात । गुप्त रहस्य । गहरी बात । (किसी बात की) तह को
पहुँचना = दे० "तह तक पहुँचना" । (किसी बात की)
तह तक पहुँचना = किसी बात के गुप्त अभिप्राय का पता
पाना । यथार्थ रहस्य जान लेना । अतर्की बात समझ जाना
(३) गली के नीचे की जमीन । तल । पाह । (४) महीन-
पटल । धरक । मिथो ।

कि० प्र०—उचढ़ना ।

तहकीक-संज्ञा स्त्री० [फ०] (१) सत्य । यथार्थता । (२) सचाई
की जांच । यथार्थ बात का अन्वेषण । खोज । अनुसंधान ।
(२) जिज्ञासा । पूछ ताछ ।

कि० प्र०—करना ।—होना ।

तहकीकात-संज्ञा स्त्री० [फ० बड़० व०] किसी विषय या घटना
की ठीक ठीक बातों की खोज । अनुसंधान । अन्वेषण ।
जांच । जैसे, किसी मामले की तहकीकात, किसी इम की
तहकीकात ।

कि० प्र०—करना ।—होना ।

मुहा०—तहकीकात खाना = किसी घटना या मामले के संबंध में
पुस्तिक के अक्षर का पता लगाने के लिये खाना ।

तहखाना-संज्ञा पुं० [फा०] वह कोठरी या घर जो जमीन के
नीचे बना हो । भुईँ हरा । तहगृह ।

विशेष—ऐसे घरों या कोठरियों में लोग धूप की गरमी से बचने
के लिये जा रहते या घन रखते हैं ।

तहजीब-संज्ञा स्त्री० [फ०] शिष्ट व्यवहार । शिष्टता । सभ्यता ।

तहदरज-वि० [फा०] (कपड़ा आदि) जिसकी तह तक न
खोली गई हो । बिनकुश नया । ज्यों का त्यों नया रखा
हुआ ।

तहनिशा-संज्ञा पुं० [फा०] लोहे पर सेने चढ़ी की पथीकारी ।
तहपेच-संज्ञा पुं० [फा०] पगड़ी के गीचे का कपड़ा ।
तहबाजारी-संज्ञा स्त्री० [फा०] सूती । वह महसूल जो सट्टी में
सौदा बेचनेवालों से ज़मींदार लेता है ।

तहमत-संज्ञा पुं० [फा० तदमत या तदमत] लुंगी । अँचला । कमर
में लपेटा हुआ कपड़ा या कँगोछा ।

कि० प्र०—अधिना ।—लगाना ।

तहरा-संज्ञा पुं० दे० "तहईदा" ।

तहरी-संज्ञा स्त्री० [देग०] (१) पेटे की धरी और चावज की
खिचड़ी । (२) मटर की खिचड़ी । (३) कालीन बुननेवालों
की डरकी ।

तहरीर-संज्ञा स्त्री० [फ०] (१) लिखावट । लेख । (२) लेख-
शैली । जैसे, उनकी तहरीर बड़ी जबरदस्त होती है । (३)
लिखी हुई बात । लिखा हुआ मज़मून । (४) लिखा हुआ

प्रमाणपत्र। लेख-पद प्रमाण। (२) लिखने की उजरत। लिखाई। लिखने का मिहनताना। जैसे, इसमें ३) तहरीरी लोगों। (४) गुरु की कच्ची छपाई जो कपड़ों पर होती है। कट्टर की टटाई। (सुनी)

तहरीरी-वि० [फा०] लिखा हुआ। लिखित। लेखपद। जैसे, तहरीरी सख्त।

तहलका-संज्ञा पुं० [फ०] (१) मात। मूल्य। (२) बरवादी। नाश। (३) खजमती। धूम। हलचल। विन्धव।

क्रि० प्र०—पढ़ना।—सचना।

तहवील-संज्ञा स्त्री० [फ०] (१) सुपुर्दगी। (२) अमानत। परो-हर। (३) खजाना। जमा। किमी मद की-आमदनी का रूपया जो किसी के पास जमा हो।

तहवीलदार-संज्ञा पुं० [फ० तहवील + फा० दार] खजानची। वह आदमी जिसके पास-किसी मद की आमदनी का रूपया जमा होता हो।

तहस नहस-वि० [दे०] विनष्ट। बरबाद। नष्ट भट। ध्वस्त। क्रि० प्र०—करना।—होना।

तहसील-संज्ञा स्त्री० [फ०] (१) बहुत से आदमियों से रूपया पैसा वसूल करके इकट्ठा करने की क्रिया। वसूली। बगाही। जैसे, पोट तहसील करना।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

(२) वह आमदनी जो खजान वसूल करने से इकट्ठी हो। जमीन की सालाना आमदनी। जैसे, इनकी पचास हजार की तहसील है। (३) यह दुपहर या कचहरी जहाँ जमींदार सरकारी मालगुजारी जमा करते हैं। तहसीलदार की कचहरी। माल की छोटी कचहरी।

तहसीलदार-संज्ञा पुं० [फ० तहसील + फा० दार] (१) कर वसूल करनेवाला। (२) वह अफसर जो जमींदारों से सरकारी मालगुजारी वसूल करता है और माल के छोटे मुकदमों का फैसला करता है।

तहसीलदारी-संज्ञा पुं० [फ० तहसील + फा० दार + ई] (१) कर या महसूल वसूल करने का काम। मालगुजारी वसूल करने का काम। तहसीलदार का काम। (२) तहसीलदार का पद।

क्रि० प्र०—करना।

तहसीलना-क्रि० सं० [फ० तहसील] उगाहना। वसूल करना। कर, लगान, मालगुजारी, चंदा भादि।

तहाँ-क्रि० वि० [सं० तन + सं० स्थान, प्रा० याण, यान,] वहाँ। उस स्थान पर। उ०—तहाँ जाइ देखी जवन सीमा।—गुलसी।

विशेष—जेल में श्रव हमका प्रयोग उठ गया है केवल "जहाँ का तहाँ" ऐसे दो एक वाक्यों में रह गया है।

तहाना-क्रि० सं० [हि० तह] तह करना। धी फराना। लपेटना। संयो० क्रि०—डालना।—देना।

तहियाँ-क्रि०-वि० [सं० तहाई] तब। उस समय। उ०—कह कवीर कतु अष्टिलो म जहियाँ। हरि बिरवा प्रतिपालेनि तहियाँ।—कथरी।

तहियाना-क्रि०-वि० [फा० तह] तह खगा कर लपेटना।

तहाँ-क्रि०-वि० [हि० तहाँ] वहाँ। उसी जगह। उसी स्थान पर। तहोवाला-वि० [फा०] नीचे ऊपर। ऊपर का नीचे, नीचे का ऊपर। उबट पबट। क्रम-भ्रम।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

ता-प्रत्य० [सं०] एक भाववाचक प्रत्य० जो विशेष्य और संज्ञा शब्दों के श्रावो खगता है जैसे, उचम, उचमता; शयु, शयुता। मनुष्य, मनुष्यता।

शय० [फा०] तक। पर्यंत। उ०—केस मेघावरि सिर ता पाईं। चमकईं दसन धोडु की नाईं।—जायसी। * † सर्व [सं० तद्] उस।

विशेष—इस रूप में यह शब्द विभक्ति के साथ ही आता है। जैसे, ताकें, तासों, तापे हयादि।

* †-वि० उस। उ०—तव शिव उमा गपु ता ठौर।—सूर।

विशेष—इसका प्रयोग विभक्ति युक्त विशेष्य के साथ ही होता है।

ताईं-क्रि०-वि० दे० "ताईं"।

तांगा-संज्ञा पुं० दे० "टांगा"।

तांडव-संज्ञा पुं० [सं०] (१) नृत्य का नृत्य।

विशेष—नृत्यों के नृत्य को तांडव और स्त्रियों के नृत्य को लार्य कहते हैं। तांडव नृत्य शिव को शयंत प्रिय है। इसी से कोई कोई संतु अर्थात् नर्तकी को इस नृत्य का प्रवर्तक मानते हैं। किसी किसी के अनुसार तांडव नामक ऋषि ने पहले

पहल इसकी शिष्य दी इसी से इसका नाम तांडव हुआ।

(२) उदत नृत्य। वह नाच जिसमें बहुत उड़ल हूट हो।

(३) शिव का नृत्य। (४) एक नृत्य का नाम।

तांडवी-संज्ञा पुं० [सं०] संगीत के चौदह तालों में से एक।

तांडि-संज्ञा पुं० [सं०] (तांडि मुनि का निकला हुआ) नृत्य-शास्त्र।

तांडी-संज्ञा पुं० [सं० नादि] (१) सामवेद की तांडव शास्त्र का अध्ययन करनेवाला। (२) पद्यवेद का एक कल्पसूत्रकार।

तांड्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) तंडि मुनि के शंश। (२) सामवेद के एक ब्राह्मण का नाम।

तांत-वि० [सं०] (१) आंत। यथा हुआ। (२) जिसके अंत में वृ हो।

तांत-संज्ञा स्त्री० [सं० तंतु] (१) मेड़ बकरी की चंतड़ी, या बीपायों के पट्टों को बट कर बनाया हुआ सूत। चमड़े या मसों की

यनी हुई डोरी । (इससे धनुष की डोरी, सारंगी आदि के तार बनाए जाते हैं ।

मुहा०—ताँत सा = बहुत दुबला पतला ।

(२) धनुष की डोरी । कमान की डोरी । (३) डोरी । सूत ।

(४) सारंगी आदि का तार । जैसे, ताँत यात्री राग बूझा ।

३०—(क) से मैं कुमति कहवैं केहि भाँती । बाज सुगण कि गाँवर ताँती ।—तुलसी । (ख) सेइ साधु शुभ सुनि पुरान भुति बूझ्यो राग यात्री ताँति ।—तुलसी । (२) लुकाहों का राह ।

ताँतड़ी—संज्ञा स्त्री० [हि० ताँत का अर्थ०] ताँत ।

मुहा०—ताँतड़ी सा = ताँत की तरह दुबला पतला ।

ताँतच—वि० [सं०] जिसमें तंतु या तार हो । जिस में से तार निकल सके ।

ताँतवा—संज्ञा पुं० [हि० ताँत] अतः डतारने का रोग ।

ताँता—संज्ञा पुं० [सं० ताँत = श्रेणी] श्रेणी । पंक्ति । कृत्तर ।

मुहा०—ताँता बाँधना = पंक्ति में खड़ा होना । ताँत लगना = तार न टूटना । एक पर एक परावर चक्का चलना ।

ताँतिया—संज्ञा स्त्री० दे "ताँत" ।

ताँतिया—वि० [हि० ताँत] ताँत की तरह दुबला पतला ।

ताँती—संज्ञा स्त्री० [हि० ताँत] (१) पंक्ति । कृत्तर । (२) बाल बच्चे । चौलादा ।

संज्ञा पुं० जुवाहा । फणदा पुननेवाला ।

ताँत्रिक—वि० [सं०] [स्त्री० ताँत्रिकी] तंत्र संबंधी ।

संज्ञा पुं० (१) तंत्र शास्त्र का जाननेवाला । तंत्र मंत्र आदि करनेवाला । मारण, मोहन, बचाउन आदि के प्रयोग करनेवाला । (२) एक प्रकार का सखिपाल ।

ताँवा—संज्ञा पुं० [सं० ताप] लाल रंग की एक धातु जो खानों में गंधक, खोद, तथा और द्रव्यों के साथ मिली हुई मिलती है । यह पीठने से यह सकती है और इसका तार भी खींचा जा सकता है । ताप और विद्युत् के प्रवाह का संचार ताँवे पर बहुत अधिक होता है इससे उसके तारों का व्यवहार टेलिग्राफ आदि में होता है । ताँवे में और दूसरी धातुओं को निर्दिष्ट मात्रा में मिलाने से कई प्रकार की मिश्रित धातुएँ बनती हैं, जैसे, रंगा मिलाने से काँसा, जिस्का मिलाने से पीतल । कई प्रकार के विजायती सेने भी ताँवे से बनते हैं । खूब ठंडी जगह में ताँवा और लकड़ा परापर परावर लेकर गला डाले । फिर गली हुई धातु को खूब धोटे और थोड़ा सा जस्ता और मिला दे । घोटते घोटते कुछ देर में उस धातु का रंग सफेद निकलेगा फिर थोड़ी देर में सेने की तरह पीला हो जायगा । ताँवे की खानें संसार में बहुत स्थानों में हैं जिनमें मित्र मित्र यैतनिक द्रव्यों के अनुसार मित्र मित्र प्रकार का ताँवा निकलता है । कहीं धूमने रंग

का, कहीं पैंगनी रंग का, कहीं पीले रंग का । भारतवर्ष में सिंहभूमि, हजारीबाग, जयपुर, अजमेर, कच्छ, नागपुर, नेहोर इत्यादि अनेक स्थानों में ताँवा निकलता है । जापान से बहुत अच्चे ताँवे के पत्तर बाहर जाते हैं ।

हिंदुओं के यहाँ ताँवा एक बहुत पवित्र धातु माना जाता है, अतः उससे अरवे, पंचपात्र, कलश, फारी आदि पूजा के यरतन बहुत बनते हैं । डाक्टरों, हकीमी और वैद्यक तीनों मत की चिकित्साओं में ताँवे का व्यवहार अनेक रूपों में होता है । आयुर्वेद में ताँवा शोधने की विधि इस प्रकार है । ताँवे का बहुत पतला पत्तर कर के आग में तपा कर लाल कर डाले फिर उसे क्रमशः तेल, मट्टे, फाँसी, गोमूत्र और कुलथी की पीठी में तीन तीन बार हुम्माने बिना शोषा हुआ ताँवा विप से अधिक हानिकारक होता है ।

पर्या०—तन्नक । शुल्ब । म्लेच्छमुख । हृषट । वरिष्ठ । बर्दुर । द्विष्ट । श्रयक । तपनेष्ट । शरविंद । रविलौह । रविप्रिय । रक्त । नैपासिक । मुनिपित्तल । अर्क । जोहितप्रास । संज्ञा पुं० [अ० तमगः] मोस का वह टुकड़ा जो बाजू आदि शिकारी परिशों के आगे खाने के लिये डाला जाता है ।

ताँविया—संज्ञा स्त्री० दे० "ताँवी" ।

ताँवी—संज्ञा स्त्री० [हि० ताँवा] (१) चौड़े मुँह का ताँवे का एक छोटा यरतन । (२) ताँवे की कसड़ी ।

ताँबूल—संज्ञा पुं० [सं०] (१) पान । नागवली दल । (२) पान का बीड़ा । (३) किसी प्रकार का सुगंधित द्रव्य जो भोजनोपर खाया जाय । (अ) । (४) सुपारी ।

ताँबूलकरं—संज्ञा पुं० [सं०] (१) पान रखने का यरतन । बट्टा । बिजहरा । (२) पान के बीड़े रखने का ढिब्या । पनढिब्या ।

ताँबूलनियम—संज्ञा पुं० [सं०] पान, सुपारी, लवंग इत्यादी आदि खाने का नियम । (अ) ।

ताँबूलपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] (१) पान का पत्ता । (२) पिंदाल । अरुणा नाम की लता जिसके पत्ते पान के पेटे होते हैं ।

ताँबूलघोटिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] पान का बीड़ा । बीड़ी ।

ताँबूलराग—संज्ञा पुं० [सं०] (१) पान की पोक । (२) मसूर ।

ताँबूलछोड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं०] पान की बेल । नागवली ।

ताँबूलचाहक—संज्ञा पुं० [सं०] पान खिलानेवाला सेवक । पान का बीड़ा लेकर साथ चलनेवाला नौकर ।

ताँबूलिक—संज्ञा पुं० [सं०] पान बेचनेवाला । तमोली ।

ताँबूली—संज्ञा पुं० [सं० ताँबूलिन्] पान बेचनेवाला । तमोली ।

ताँविकारी—संज्ञा स्त्री० [दे०] एक प्रकार का लाल रंग ।

ताँवेल—संज्ञा पुं० [?] कहुया । कच्छुप ।

ताँवर—संज्ञा स्त्री० [सं० ताप, हि० ताव] (१) ताप । ज्वर । हरारत ।

(२) जड़ी । (३) मूखर्वा । पड़ाइ । सुमदा ।

क्रि० प्र०—खाना ।

ताँवरी-संज्ञा स्त्री० दे० "ताँवर" ।

ताँवरी-संज्ञा पुं० [सं० ताप, हिं० ताव] (१) ताप । ज्वर । हरा-
रत । (२) जूझी । जाड़ा देकर भानेवाळा बुलार । (३)
मूच्छाँ । पध्याड़ । घुमटा । चकर ।

क्रि० प्र०—घाना ।

ताँसना-क्रि० घ० [सं० त्रास] (१) दटना । त्रास देना ।
धमघाना । धाँस दिखाना । (२) कुव्वबहार करना । सताना ।
जैसे, सास का बहू को ताँसना ।

ताई-अर्थ० [सं० तान्द्र या फा० ता] (१) तक । पर्यंत । (२)
पास । तक । समीप । निकट । (३) (किसी के) प्रति ।
समप । लक्ष्य करके । जैसे, किसी के ताईं कुछ कहना ।
उ०—कह गिरिधर कविराय घात चतुरन के ताईं । इन
'तरह तें तरह दिपु बनि थावे साईं' ।—गिरिधर । (४)
विषय में । संबंध में । लिये । वास्ते । निमित्त । उ०—दीन्ह
रूप थी जोति गोसाईं । कीन्ह खम दुहुँ जग के ताईं ।
—जायसी ।

मुहा०—घरने ताईं = घरने को ।

विशेष—दे० "ताईं" ।

ताई-संज्ञा स्त्री० [सं० ताप, हिं० त्राप + ई (अर्थ०)] (१) ताप ।
हजारत । हलका ज्वर । (२) जूझी । जाड़ा देकर भानेवाळा
बुलार ।

क्रि० प्र०—घाना ।

(३) एक प्रकार की झिझकी कड़ाही जिसमें मालापूर्णा,
जलेबी आदि बनाते हैं ।

संज्ञा स्त्री० [हिं० ताऊ] जेठी चाची । चाप के बड़े भाई
की स्त्री ।

ताईत-संज्ञा पुं० [फा० तबीयत] ताँबीज़ । जंतर । यंत्र ।

ताईद-संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) पचपात । छरकदारी । (२) अनुमो-
दन । समवेन । पुष्टि ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

† संज्ञा पुं० (१) सहायक कर्मचारी । नायब । (२) किसी
कर्मचारी के साथ काम सीखने के लिये उम्मेदवार की तरह
पर काम करनेवाळा व्यक्ति ।

ताउ-संज्ञा पुं० दे० "ताव" ।

ताऊ-संज्ञा पुं० [सं० तात] थार का बड़ा भाई । यड़ा चाचा ।
ताया ।

मुहा०—बधिया के ताऊ = बैत । मुर्ख । जड़ ।

ताऊन-संज्ञा पुं० [अ०] एक संक्रामक रोग जिसमें गिलट्टी निक-
लती और बुलार आता है ।

ताऊस-संज्ञा पुं० [अ०] (१) मोर । मयूर ।

थी०—त ख्व ताऊस = शाहजहाँ की बहुलक्ष्य रत्नजिह्व राज-

सिंहासन का नाम जो कई कोराड़ की लागत में मोर के आकार
का बनाया गया था ।

(२) सारंगी धार सितार से मिलता जुलता एक थाना जिस
पर मोर का आकार बना होता है । इसमें सितार के से तार
धार परदे होते हैं धार यह सारंगी की कमानी से रेत कर
बनाया जाता है ।

ताऊसी-वि० [अ०] (१) मोर का सा । मोर के रंग का । (२)
गहरा ज़ुदा । गहरा बेंगनी ।

ताक-संज्ञा स्त्री० [हिं० ताकला] (१) ताकने की क्रिया । अत्र-
लोकन ।

थी०—ताक माँक ।

मुहा०—ताक रखना = निगाह रखना । निरीक्षण करते रहना ।
(२) स्थिर रहि । टकटकी ।

मुहा०—ताक रचना = दृष्टि स्थिर करना । टकटकी लगाना ।
(३) किसी अवसर की प्रतीक्षा । मौका देखते रहने का
काम । घात । जैसे, बंदर आम लेने की ताक में बैठा है ।

मुहा०—ताक में रहना = उपयुक्त अवसर की प्रतीक्षा करते
रहना । मौका देखते रहना । ताक रखना = घात में रहना ।
मौका देखते रहना । ताक लगाना = घात लगाना । मौका
देखते रहना ।

(४) खोज । तलाश । पुराक । जैसे, (क) किस ताक में बैठे
हो ? (ख) वली की ताक में जाते हैं ।

ताक-संज्ञा पुं० [अ०] दीवार में बना हुआ गढ़वा या खाली
स्थान जो चीज़ बस्तु रखने के लिये होता है । खाला ।
खाला ।

मुहा०—ताक पर धरना या रखना = पड़ा रहने देना । काम में
न खाना । उपयोग न करना । जैसे, (क) किताब ताक पर रख दी
और खेलेने के लिये निकल गया । (ख) तुम अपना किताब ताक
पर रखो, मुझे उसकी जरूरत नहीं । ताक पर रहना या
होना = पड़ा रहना । काम में न खाना । अज्ञप पड़ा रहना ।
व्यर्थ जाना । जैसे, यह दुस्सावेज़ ताक पर रह जायगी और
उसकी डिगरी हो जायगी । ताक भरना = किसी देवरपान
पर मनीषी की पूजा चढ़ाना । (मुसल०)

वि० (१) जो संख्या में सम न हो । विषम । जो थिना
स्थिति हुए दो बराबर भागों में न बँट सके । जैसे, एक, तीन,
पाँच, सात, नौ, ग्यारह इत्यादि ।

थी०—झुक्ताक या जूस ताक ।

(२) अद्वितीय । जिसके जोड़ का दूसरा न हो । एकता ।
अनुपम । जैसे, किसी फूल में ताक होना ।

ताकझुक्-संज्ञा पुं० [फा०] एक प्रकार का जूथा जिसमें
मुट्टी के भीतर कुछ कौड़ियाँ या धार बस्तुएँ छेकर चुकाते हैं

कि वस्तुओं की संख्या सम है या विषम। यदि बूमनेवाला ठीक बतला देता है तो वह जीत जाता है।

ताक भाँक—संज्ञा स्त्री० [हि० ताकना + भाँकना] (१) रह रह कर बारबार देखने की क्रिया। कुछ प्रयत्न-पूर्वक दृष्टिपात। जैसे, क्या ताक भाँक लगाए हो, सभी ये यहाँ नहीं आए हैं। (२) छिपकर देखने की क्रिया। (३) निरीक्षण। देखना। निगरानी। (४) अन्वेषण। खोज।

ताकृत—संज्ञा स्त्री० [क०] (१) जोर। बल। शक्ति। (२) सामर्थ्य। जैसे, किसी की क्या ताकत जो तुम्हारे सामने आवे।

ताकृतघर—वि० [क०] (१) बलवान। वलित। (२) शक्तिमान्। सामर्थ्यवान्।

ताकना—कि० सं० [सं० तक्रण = विचारना] (१) सोचना। विचारना। चाहना। व०— जो रात्र अति अनभव ताका। सो पाहहि यह पत्र परिपाका।—तुचसी। (२) अपलोकन करना। टटि जमा कर देखना। टकटकी लगाना। (३) ताड़ना। समझ जाना। लखना। (४) पढ़ने से देना रखना। (किसी वस्तु को किसी कार्य के लिये) देल कर स्थिर करना। तजवीज करना। जैसे, (क) यह जगह मैंने पहले से तुम्हारे लिये ताक रधी है, यहाँ बैठो। (ख) कोई अथवा चादमी ताक कर यहाँ जाओ। (५) दृष्टि रखना। रखवाली करना। जैसे, मैं अपना असबाब यहाँ छोड़ दे जाता हूँ, जरा ताकते रहना।

ताकरी—संज्ञा स्त्री० [सं० टक = एक देग या एक जति] एक लिपि का नाम जो नागरी से मिलती जुळती होती है। अटक के वस पर से लेकर सतबज और जमुना नदी के किनारे तक यह लिपि प्रचलित है। काश्मीर और काँगड़े के ब्राह्मणों में इसका प्रचार अब तक है। इसके घरों को लुटे या मुंटे भी कहते हैं।

ताकि—अव्य० [क०] जिसमें। इसलिये कि। जिससे। जैसे, मैं यहाँ से हट जाता हूँ ताकि यह मुझे देखने न पावे।

ताकीद—संज्ञा स्त्री० [क०] जोर के साथ किसी बात की आज्ञा या अनुरोध। किसी को सावधान करके दी हुई आज्ञा। खूब चेता कर कही हुई बात। ऐसा अनुरोध या आदेश जिसके पालन के लिये बारबार कहा गया हो। जैसे, मुद्दरिरीं से ताकीद कर दो कि कज ठीक समय पर आवे।

क्रि० प्र०—करना।

ताकाली—संज्ञा स्त्री० [दे०] एक वीचे का नाम।

ताकूँ—संज्ञा पुं० दे० 'ताकू'।

ताकड़वाँ—वि० दे० 'ताकड़'।

ताकड़वाँ—संज्ञा स्त्री० [सं० त्रि + हि० कड़] तराजू। काँटा।

ताक्री—वि० [क० ताकू] जिसकी। दोनों जसिं एक तरह की म

हैं। जिसकी एक खाँक एक रंग या ढंग की हो और दूसरी खाँक दूसरे रंग या ढंग की हो। (घोड़े, बैलों आदि के लिये) ऐसे जानवर ऐसी समझे जाते हैं।

विशेष—यह शब्द 'ताक' से बना है जिसका अर्थ है एक या बिना जोड़े का।

ताग—संज्ञा पुं० दे० 'तागा'।

तागड़—संज्ञा स्त्री० [दे०] जहाजों पर चढ़ने की सपनों की बनी हुई एक प्रकार की लीड़ी जो पानी से लेकर जहाज के ऊपर तक चली जाती है।

तागड़ी—संज्ञा स्त्री० [हि० तग + कड़ी] (१) तागे में पिरोए हुए सेने चाँदी के धुंघुरकों का बना हुआ कमर में पहनने का एक गहना। करबनी। काँची। किंकिणी। पुत्रवेष्टिका। (तागड़ी लीकड़ या जंजीर के धाकार की भी बनती है)। (२) कमर में पहनने का रंगीत डोरा। कटिसूय। कगता।

तागना—कि० सं० [हि० तगा + ना (श्लो०)] मुँह से तागा ढाल कर फँसाना। स्थान स्थान पर दोभ या लंगर ढालना। दूर दूर की मोटी सिलाई करना। जैसे, लुकाई या रजाई तागना।

तागपहनी—संज्ञा स्त्री० [हि० तगा + पहनना] एक पतली लकड़ी जिसका एक सिरा नोकदार और दूसरा चिपटा होता है। चिपटा सिरा बीच से फटा रहता है जिसमें तागा रख कर बय में पहनाया जाता है। (लुकाई)

ताग पाट—संज्ञा पुं० [हि० तगा + पाट = रेथम] एक गहना जो रेथम के तागे में सेने के तीन टासे या जंजर ढाल कर बनाया जाता है। यह विवाह में काम आता है।

मुहा०—ताग पाट ढालना = विवाह की रीति के अनुसार गणेश पूजन आदि के पाँछे घर के बड़े भाई (हुकूमत के जेठ) का बंधु को ताग पाट पहनाना।

तागा—संज्ञा पुं० [सं० ताकन, प्रा० तागो, हि० तागो] (१) कूँ, रेथम आदि का यह फंरा जो तरबूले आदि पर बटने से लंबी रेखा के रूप में निकलता है। सूत। डोरा। धागा।

क्रि० प्र०—ढालना।—पिनोना।

मुहा०—तागा ढालना = तागना। सिलाई के द्वारा तागा फँसाना। दूर दूर पर सिलाई करना।

(२) यह कर या महसूल जो प्रति मनुष्य के हिसाब से खरो। (मनुष्य करधनी, जनेक आदि पहनते हैं इस्ती से यह अर्थ लिया गया है)

ताज—संज्ञा पुं० [क०] (१) चादगाह की टोपी। राजमुकुट।

यो०—ताजपोशी।

(२) कलगी। तुराँ। (३) मोर, मुँगे आदि पक्षियों के सिर पर की चोटी। शिखा। (४) दीवार की कंगनी या छज्जा।

(५) यह धुन्नी जिसे मकान के सिरे पर शोभा के लिये बना

तेते हैं। (९) गंजीफे के एक रंग का नाम। (७) भागरे का ताजमहल।

ताजक-गंजा पु० [फा०] (१) एक ईरानी जाति जो तुर्किस्तान के बुखारा प्रदेश से लेकर बदाख़श, कांधूल, बिलूचिस्तान, फारस आदि तक पाई जाती है। बुखारा में यह जाति सते, अफगानिस्तान में देहान और बिलूचिस्तान में देदवार कहलाती है। फारस में ताजक एक साम्राज्य शब्द प्राचीय के लिये हो गया है। (२) ज्योतिष का एक ग्रंथ जो यवनाचार्य कृत प्रसिद्ध है। यह पहले अरबी और फारसी में था, शमा समसिद्ध, नीलफंठ आदि ने इसे संस्कृत में किया। इसमें बारह राशियों के अनेक विभाग काफे फलाफल निश्चित करने की रीतियाँ बतलाई गई हैं। जैसे, मेष, सिंह और धनु का पिच स्वभाव और रात्रिय वर्षा, मकर, वृष और कन्या का वायु स्वभाव और वैश्य वर्षा, मिथुन, तुला और कुंभ का सम स्वभाव और शूद्र वर्षा, कर्कट, पृथिक और मीन का कफ स्वभाव और ब्राह्मण वर्षा। इस ग्रंथ में जो संज्ञाएँ आई हैं वे अघिकांश अरबी और फारसी की हैं जैसे, हृदयाल योग, हृतिदा योग, हृदयशाल योग, हृदयाक योग, गैरकृदल योग इत्यादि।

ताजगी-गंजा श्री० [फ०] (१) हरापन। शुष्कता या कुम्हलाहट का अभाव। ताड़पन। (२) प्रफुल्लता। स्वस्थता। शिथिलता या धाँति का अभाव। (३) सद्यः प्रस्तुत होने का भाव। नयापन।

ताजदार-वि० [फा०] ताज के ढंग का।

गंजा पु० साम पहलनेवालों का दाराह।

ताजिन-गंजा पु० [फा० तजिन] कोड़ा। चातुक।

ताजना-गंजा पु० दे० "ताजन"।

ताजपोशी-गंजा स्त्री० [फा०] राजमुकुट धारण करने या राजसिंहासन पर बैठने की रीति या उत्सव।

ताजवीथी-गंजा स्त्री० [फा० ताज + वीथी] राहजहाँ की श्रायंत त्रिय और प्रसिद्ध बेगम मुमताज़ महल जिसके लिये भागरे में ताजमहल नाम का मक़बरा बनाया गया।

ताजमहल-गंजा पु० [फ०] भागरे का प्रसिद्ध मक़बरा जिसे राहजहाँ बादशाह ने अपनी त्रिय बेगम मुमताज़ महल के लिये बनवाया था। ऐसा कहा जाता है कि बेगम ने एक रात को स्वप्न देखा कि उसका गर्भस्थ शिशु इस प्रकार रो रहा है जैसा कभी सुना नहीं गया था। बेगम ने बादशाह से कहा—“मेरा अंतिम काल निकट आन पड़ता है। आपसे मेरी प्रार्थना है कि आप मेरे मरने पर किसी बहारी बेगम के साथ निहाह न करें, मेरे ख़ुदके को ही राजसिंहासन का अधिकांश बनावें और मेरा मक़बरा ऐसा बनवायें जैसा

कहीं भूमंडल पर न हो"। प्रसव के चौद्वे दिन पीछे ही बेगम का शरीर छूट गया। बादशाह ने बेगम की अंतिम प्रार्थना के अनुसार जमुना के किनारे यह विशाल और अनुपम भवन निर्मित कराया जिसके जोड़ की इमारत सत्सारा में कहीं नहीं है। यह मक़बरा विपुल संगमरमर का है जिसमें नामा प्रकार के बहुमूल्य रंगीन पत्थरों के टुकड़े जड़ कर बेल दूतों का ऐसा सुंदर काम बना है कि चित्र का पोला होता है। रंग विरंग के फूल पत्ते पथीकारी के द्वारा खचित हैं। पत्थियों की नसें तक दिखाई गई हैं। इस मक़बरे को बनाने में ३० वर्ष तक हजारों मजदूर और बेसी विदेशी कारीगर खगे रहे। मसाबा, मजदुरी आदि अज्ञातक की अपेक्षा कई गुनी सस्ती होने पर भी इस इमारत में उस समय ३१७३०२४ रुपय खगे। टबर्नियर नामक यूरोपियन यात्री उस समय भारतवर्ष ही में था जब कि यह इमारत बन रही थी। इस अनुपम भवन को देखते ही मनुष्य मुग्ध हो जाता है। टगों को दमन करनेवाले प्रसिद्ध कर्नल स्लीमन जब ताजमहल को देखने सज्जीक गए तब उनकी स्त्री के मुँह से यही निकला कि "यदि मेरे ऊपर भी ऐसा ही मक़बरा बने तो मैं आन मरने के लिये तैयार हूँ"।

ताज्जा-वि० [फा०] [श्री० ताजी] (१) जो सुखा या कुम्हलापा न हो। हरा भरा। जैसे, ताजा फूल, ताजी पत्ती, ताजी गोभी। (२) (फल आदि) जो ढाल से टूट कर तुरंत धाया हो। जिसे पेड़ से अलग हुए बहुत देर न हुई हो। जैसे, ताजे आम, ताजे अमरुत, ताजी फजियाँ। (३) जो धाँत या शिथिल न हो। जो थका भाँदा न हो। जिसमें तुरती और हत्साह बना हो। स्वल्प। प्रफुल्लित। जैसे, (क) घोड़ा जलपान कर छो सो ताजे हो जामो। (ख) शरपत पी खेने से तपीयत ताजी हो गई।

थी०—मोटा ताज़ा = छट पुट।

(७) तुरंत का बना। सद्यः प्रस्तुत। जैसे, ताजी पूरी, ताजी अलेयी, ताजी दया, ताजा खाना।

मुहा०—हुका ताज़ा करना = हुक्मे का पानी बदलाना।

(२) जो व्यवहार के लिये अभी निकाला गया हो। जैसे, ताज़ा पानी, ताज़ा दूध। (३) जो बहुत दिनों का न हो। नया। जैसे, ताज़ा माछ।

मुहा०—(किसी बात को) ताज़ा करना = (१) नए विर से उठाना। फिर छेड़ना या चरनाना। फिर से उपरिधत करना। जैसे, दया बनाना अग्राह्य वर्षों ताज़ा करते हो ? (२) स्मरण दिखाना। याद दिखाना। फिर चित में लाना। जैसे, गुम ताज़ा करना। (किसी बात का) ताज़ा होना = (१) नए विर से उठाना। फिर छेड़ना या चरनाना। फिर

कि वस्तुओं की संख्या सम है या विषम। यदि वृत्तनेवाला ठीक यतला देता है तो वह जीत जाता है।

ताक भाँक—संज्ञा स्त्री० [हिं० ताकना + भाँकना] (१) रह रह कर बारबार देखने की क्रिया। कुछ प्रयत्न-पूर्वक दृष्टिपात। जैसे, क्या ताक भाँक लगाए हो, अभी ये यहाँ नहीं आए हैं। (२) छिपकर देखने की क्रिया। (३) निरीक्षण। देखभाज। निगरानी। (४) शन्येपण। खोज।

ताकृत—संज्ञा स्त्री० [ष०] (१) जोर। यत्न। शक्ति। (२) सामर्थ्य। जैसे, किसी की क्या ताकत जो तुम्हारे सामने धावे।

ताकृतवर—वि० [ष०] (१) यत्नवान। बलिष्ठ। (२) शक्तिमान्। सामर्थ्यवान्।

ताकना—कि० सं० [सं० तक्नेय = विचारना] (१) सोचना। विचारना। चाहना। व०—जो राउर अति धनमल ताका। सो पाइहि यह फल परिपाका।—तुलसी। (२) श्रवणोक्तन करना। दृष्टि जमा कर देखना। टकटकी लगाना। (३) ताड़ना। समझ जाना। जखनो। (४) पहले से देख रखना। (किसी वस्तु को किसी कार्य के लिये) देख कर स्थिर करना। तजवीज करना। जैसे, (क) यह जगह मैंने पहले से तुम्हारे लिये साक रखी है, यहाँ बँधा। (ख) कोई शपथ आदमी ताक कर यहाँ साधो। (२) दृष्टि रखना। रखवाली करना। जैसे, मैं अपना असवाध यहाँ छोड़े जाता हूँ, जरा ताकते रहना।

ताकरी—संज्ञा स्त्री० [सं० टक = एक देग या एक जाति] एक लिपि का नाम जो बागरी से मिलती जुळती होती है। अटक के उस पार से लेकर सतलज और जमुना नदी के किनारे तक यह लिपि प्रचलित है। काश्मीर और काँगड़े के ब्राह्मणों में इसका प्रचार अब तक है। इसके अक्षरों को छुंटे या मुंड़े भी कहते हैं।

ताकि—अव्य० [ष०] जिसमें। इसलिये कि। जिससे। जैसे, मैं यहाँ से हट जाता हूँ ताकि वह मुझे देखने न पावे।

ताकीद—संज्ञा स्त्री० [ष०] जोर के साथ किसी बात की आज्ञा या अनुरोध। किसी को सावधान करके दी हुई आज्ञा। खूब चेता कर कही हुई बात। ऐसा अनुरोध या आदेश जिसके पालन के लिये बारबार कहा गया हो। जैसे, मुहरिरीं से ताकीद कर दो कि फल ठीक समय पर धावें।

क्रि० प्र०—करना।

ताकोली—संज्ञा स्त्री० [दे०] एक पाँचे का नाम।

ताक—संज्ञा पुं० दे० "ताक"।

ताखड़ा—वि० दे० "ताखा"।

ताखड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० थि + हिं० कड़ा] तराजू। कौटा।

ताखी—वि० [ष० ताक] जिसकी, दोनों आँखें एक तरह की न

हों। जिसकी एक आँख एक रंग या ढंग की हो और दूसरी आँख दूसरे रंग या ढंग की हो। (चोंड़ों, धैलों आदि के लिये) ऐसे जानवर ऐसी समझे जाते हैं।

विशेष—यह शब्द 'ताक' से बना है जिसका अर्थ है एक या बिना जोड़े का।

ताग—संज्ञा पुं० दे० "तागा"।

तागड़—संज्ञा स्त्री० [दे०] जहाजों पर चढ़ने की तल्लों की बनी हुई एक प्रकार की सीढ़ी जो पानी से लेकर जहाज के ऊपर तक चली जाती है।

तागड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० ताग + कड़ा] (१) तागे में विरोध हुए सोने चाँदी के पुँधुल्लों का बना हुआ कमर में पहनने का एक गहना। करघनी। कांची। किंकिणी। छुद्रपेटिका। (तागड़ी सीकड़ या जंजीर के आकार की भी धनती है)। (२) कमर में पहनने का रंगीन डोरा। कटिसूत्र। करगता।

तागना—कि० सं० [हिं० तगा + ना (प्रत्य०)] सुई से तागा ढाल कर फँसाना। स्थान स्थान पर डोम या लंगर ढालना। दूर दूर की मोटी सिलाई करना। जैसे, तुम्हारे या रजाई तागना।

तागपहनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० तगा + पहनाना] एक पतली लकड़ी जिसका एक सिरा नोकदार और दूसरा चिपटा होता है। चिपटा सिरा बीच से फटा रहता है जिसमें तागा रख कर वय में पहनाया जाता है। (जुवाड़े)

ताग पाट—संज्ञा पुं० [हिं० तागा + पाट = रेशम] एक गहना जो रेशम के तागे में सोने के तीन ठासे या जंतर ढाल कर बनाया जाता है। यह विवाह में काम आता है।

मुहा०—ताग पाट ढालना = विवाह की रीति के अनुसार राग्येरा पूजन आदि के पाँचें वर के बड़े भाई (हुताहिन के जेठ) का वधू को ताग पाट पहनाना।

तागा—संज्ञा पुं० [सं० ताकैव, प्रा० ताम्गा, हिं० तामो] (१) रुई, रेशम आदि का वह धंदा जो तरुले आदि पर बटने से लंबी रेखा के रूप में निकलता है। सूत। डोरा। धागा।

क्रि० प्र०—ढालना।—परोना।

मुहा०—तागा ढालना = तागना। सिलाई के द्वारा तागा फँसाना। दूर दूर पर सिलाई करना।

(२) यह कर या महसूल जो प्रति मनुष्य के हिसाब से लागे। (मनुष्य करघनी, जनेऊ आदि पहनते हैं हस्ती से यह अर्थ लिया गया है)

ताज—संज्ञा पुं० [ष०] (१) बादशाह की टोपी। राजमुकुट।

यौ०—ताजपोशी।

(२) कलगी। तुरा। (३) मोर, मुर्गे आदि पक्षियों के सिर पर की पोटी। शिला। (४) शीवार की कंगनी या छुज्जा।

(५) यह मुर्गी जिसे मकान के सिरे पर शोभा के लिये बना

बैते हैं। (१) गंजीफे के एक रंग का नाम। (२) धागरे का ताजमहल।

ताजक-संज्ञा पुं० [फा०] (१) एक ईरानी जाति जो तुर्किस्तान के बुखारा प्रदेश से लेकर बदाख़ान, काबुल, विलुचिस्तान, फारस आदि तक पाई जाती है। बुखारा में यह जाति सने, अफगानिस्तान में देहान और विलुचिस्तान में येदवार कहाती है। फारस में ताजक एक साधारण शब्द प्रामीय के लिये हो गया है। (२) ज्योतिष का एक ग्रंथ जो यवनाचार्य्ये कृत प्रसिद्ध है। यह पहले थारवी और फारसी में था, राजा समरसिंह, गीजकंड आदि ने इसे संस्कृत में किया। इसमें बारह राशियों के अनेक विभाग ककके फलाफल निश्चित करने की रीतियाँ बतलाई गई हैं। जैसे, मेष, सिंह और धनु का चित्त स्वभाव और ब्रह्मिय धर्म; मकर, वृष और कन्या का वायु स्वभाव और वैश्य धर्म; मियुन, तुला और कुंभ का सम स्वभाव और शूद्र धर्म; कर्कट, पृथ्विक और मीन का कफ स्वभाव और ब्राह्मण्य धर्म। इस ग्रंथ में जो संज्ञाएँ आई हैं वे अथिंकारा थरवी और फारसी की हैं जैसे, इकवाल योग, हुंतिदा योग, ह्य्यराल योग, इराक योग, गैरकबूल योग इत्यादि।

ताजगी-संज्ञा स्त्री० [फ०] (१) हरापन। शुष्कता या कुम्हकाहट का भ्रमाय। ताजपान। (२) प्रफुल्लता। स्वस्थता। शिथिलता या अर्थात् का भ्रमाय। (३) सद्यः प्रस्तुत होने का भाव। नयापन।

ताजदार-वि० [फा०] ताज के रंग का।

संज्ञा पुं० ताज पहननेवाला यादृशाह।

ताजन-संज्ञा पुं० [फा० ताजियान] कोड़ा। चातुक।

ताजना-संज्ञा पुं० दे० "ताजन"।

ताजपोशी-संज्ञा स्त्री० [फा०] राजमुकुट धारण करने या राजसिंहासन पर बैठने की रीति या शक्य।

ताजबीबी-संज्ञा स्त्री० [फा० ताज + बीबी] शाहजहाँ की अत्यंत मिय और प्रसिद्ध बेगम सुमताज महल जिसके लिये धागरे में ताजमहल नाम का मक़बरा बनाया गया।

ताजमहल-संज्ञा पुं० [फ०] धागरे का प्रसिद्ध मक़बरा जिसे शाहजहाँ बादशाह ने अपनी मिय बेगम सुमताज महल के लिये बनवाया था। ऐसा कहा जाता है कि बेगम ने एक रात को स्वप्न देखा कि उसका गर्भस्थ शिशु इस प्रकार रो रहा है जैसा कभी सुना नहीं गया था। बेगम ने बादशाह से कहा—“मेरा अंतिम काल निकट जान पड़ता है। आपसे मेरी प्रार्थना है कि आप मेरे मरने पर किसी दूसरी बेगम के साथ निहाह न करें, मेरे सङ्के को ही राजसिंहासन का अधिष्ठाता बनाई और मेरा मक़बरा ऐसा बनवाई जैसा

कहीं भूमंडल पर न हो”। प्रसव के थोड़े दिन पीछे ही बेगम का शरीर छूट गया। बादशाह ने बेगम की अंतिम प्रार्थना के अनुसार जमुना के किनारे यह विशाल और अत्युपम भवन निर्मित कराया जिसके जोड़ की इमारत सैरार में कहीं नहीं है। यह मक़बरा विपुल संगमर्मर का है जिसमें नाना प्रकार के बहुमूल्य रंगीन पत्थरों के टुकड़े अड़ कर खेल द्युतों का ऐसा सुंदर काम बना है कि चित्र का पोला होता है। रंग बिरंग के फूल पत्ते पथीकारी के द्वारा रचित हैं। पत्थरों की नसें तक दिखाई गई हैं। इस मक़बरे को बनाने में ३० वर्ष तक हजारों मजदूर और देरी विदेरी कारीगर खने रहे। मसाला, मजदूरी आदि धाजकल की अपेक्षा कई गुनी सस्ती होने पर भी इस इमारत में उस समय ३१७३००२४ रुपए खर्चे। ट्यनिंयर नामक यूरोपियन यात्री उस समय भारतवर्ष ही में था जब कि यह इमारत बन रही थी। इस अत्युपम भवन को देखते ही मनुष्य मुग्ध हो जाता है। ठगों को दमन करनेवाले प्रसिद्ध कर्नल स्लीमन जब ताजमहल को देखने सस्तीक गए तब उनकी स्त्री के सुँह से यही निकला कि “यदि मेरे ऊपर भी ऐसा ही मक़बरा बने तो मैं आज मरने के लिये तैयार हूँ”।

ताजा-वि० [फा०] [स्त्री० ताजी] (१) जो सूखा या कुम्हकाया न हो। हरा भरा। जैसे, ताजा फूल, ताजी पत्ती, ताजी रोमी। (२) फल आदि जो शाल से टूट कर सुरंत धाया हो। जिते पेड़ से अलग हुए बहुत देर न हुई हो। जैसे, ताजे आम, ताजे अमरुत, ताजी फलियाँ। (३) जो अर्थात् या शिथिल न हो। जो बका मर्दान न हो। जिसमें फुरती और बरसाह बना हो। स्वस्थ। प्रफुल्लित। जैसे, (क) थोड़ा जलपान कर लो तो ताजे हो जाओ। (ख) शरयत पी लेने से तथीयत ताजी हो गई।

था०—मोटा ताजा = हट पुट।

(४) सुरंत का बना। सद्यः प्रस्तुत। जैसे, ताजी पूरी, ताजी अलेबी, ताजी दवा, ताजा खाना।

मुहा०—हुका ताजा करना = हुकफे का पानी बर्झना।

(४) जो व्यवहार के लिये अभी निकाला गया हो। जैसे, ताजा पानी, ताजा दूध। (६) जो बहुत दिनों का न हो। नया। जैसे, ताजा माल।

मुहा०—(किसी बात को) ताजा करना = (१) नए स्वर से उठाना। फिर देहना या चताना। फिर से उपरिपत करना। जैसे, दया दयाया फगुना बर्यो ताजा करते हो ? (२) स्मरण दिवाना। याद दिवाना। फिर चित्त में डाना। जैसे, राम ताजा करना। (किसी बात का) ताजा होना = (१) नए स्वर से उठाना। फिर दिखना या चताना। फिर

उपरिष्ठत होना । जैसे, उनके धाने से मामला फिर ताड़ा हो गया । (२) स्मरण आना । फिर चित्त में उपरिष्ठत होना । जैसे, गम ताड़ा होना ।

ताजिया-संज्ञा पुं० [अ०] घास की कमचियों पर रंग विरंगे कागज, पत्ती आदि चिपका कर बनाया हुआ मकनरे के आकार का मंडप जिसमें इमाम हुसैन की कब्र बनी होती है । मुहर्रम के दिनों में शीया मुसलमान इसकी आराधना करते और श्रंतिम दिन इमाम के मलने का शोक मनाते हुए इसे सड़क पर निकालते और एक निश्चित स्थान पर ले जाकर दफन करते हैं ।

मुहा०—ताजिया टंडा होना = (१) ताजिया दफन होना । (२) किसी बड़े आदमी का मर जाना ।

विशेष—ताजिया निकालने की प्रथा केवल हिंदुस्तान के शीया मुसलमानों में है । ऐसा प्रसिद्ध है कि लैमूर कुछ जातियों का नाश करके जय करगया गया था तब यहाँ से कुछ चिह्न लाया था जिसे वह अपनी सेना के धागे धागे लेकर चलता था । तभी से यह प्रथा चल पड़ी ।

ताज्जी-वि० [फा०] शरबी । शरय का । शरय संबंधी ।

संज्ञा पुं० [फा०] (१) शरय का घोड़ा । (२) शिकारी कुत्ता ।

संज्ञा स्त्री० [फा०] शरय की भाषा । शरबी भाषा ।

वि० ताजा का स्त्री० ।

ताज्जीम-संज्ञा स्त्री० [अ०] सम्मान-प्रदर्शन । किसी बड़े के सामने उसके आदर के लिये उठ कर खड़ा हो जाना, मुक कर सलाम करना इत्यादि ।

क्रि० प्र०—करना ।—देना ।

ताज्जीमी सरदार-संज्ञा पुं० [फा०] ताज्जीम + अ० सरदार । वह सरदार जिसके धाने पर राजा या बादशाह उठ कर खड़े हो जाय या जिसे कुछ धागे पड़ कर लें । ऐसा सरदार जिसकी दरबार में विशेष प्रतिष्ठा है ।

ताटक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कान में पहनने का एक गहना । करनफूल । तरकी । (२) छप्पर के २४ में भेद का नाम । (३) एक छंद जिसके प्रत्येक चरण में १६ और १४ के विराम से ३० मात्राएँ होती हैं और श्रंत में मग्य होता है । किसी किसी ने श्रंत में एक गुरु का ही नियम रखा है । लावनी प्रायः इसी छंद में होती है ।

ताड़क-संज्ञा पुं० [सं०] कान का एक गहना । तरकी । करनफूल । विशेष—पहले यह गहना ताड़ के पत्तों ही का बनता था । धर भी तरकी ताड़ के पत्ते ही की बनती है ।

ताड़-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शाखा-रहित एक बड़ा पेड़ जो खंभे के रूप में ऊपर की ओर बढ़ता चलता जाता है और केवल सिरे पर पत्ते धारण करता है । ये पत्ते चिपटे मजबूत डंडलों में, जो चारों ओर निकले रहते हैं, फैले हुए पर की तरह लगे

रहते हैं और बहुत ही कड़े होते हैं । इसकी लकड़ी की भीतरी घनावट सूत के ठोस छरछों के रूप की होती है । ऊपर गिरे हुए पत्तों के डंडलों के मूल रह जाते हैं जिसे छाल सुबहुरी दिखाई पड़ती है । सूत के महाने में इसमें फूल लगते हैं और वैशाख में फल, जो भादों में खूब पक जाते हैं । फलों के भीतर एक प्रकार की गिरी और रेयोदार गुद्दा होता है जो धाने के योग्य होता है । फूलों के कचे शंङुरों को पौधेसे से बहुत सा नशीला रस निकलता है जिसे ताड़ी कहते हैं । ताड़ी का व्यवहार नीच श्रेणी के लोग मद्य के स्थान पर करते हैं । ताड़ प्रायः सब गरम देशों में होता है । भारतवर्ष, परमा, सिंदल, सुमात्रा जावा आदि द्वीप-पुत्र, तथा फारस की खाड़ी के तटस्थ प्रदेश में ताड़ के पेड़ बहुत पाए जाते हैं । ताड़ की अनेक जातियाँ होती हैं । तामिल-भाषा में ताड़-विलास नामक एक ग्रंथ है जिसमें ७०१ प्रकार के ताड़ गिनाए गए हैं और प्रत्येक का अलग अलग गुण पत-लाया गया है । दक्षिण में ताड़ के पेड़ बहुत अधिक होते हैं । गोदावरी आदि नदियों के किनारे कहीं कहीं ताड़घनों की विलक्षण रोभा है । इस वृक्ष का प्रत्येक भाग किसी न किसी काम में आता है । पत्तों से पंखे बनते हैं और छप्पर छाप जाते हैं । ताड़ की पत्ती लकड़ी मकानों में लगी होती है । लकड़ी खोलनी करके एक प्रकार की छोटी सी नाव भी बनाते हैं । डंडल के रेरे चटाई और जाल बनाने के काम में आते हैं । कई प्रकार के ताड़ होते हैं जिनकी लकड़ी बहुत मजबूत होती है । सिंदल के जफना नामक नगर से ताड़ की लकड़ी बूर दूर भेजी जाती थी । प्राचीन काल में दक्षिण के देशों में ताड़-पत्र पर ग्रंथ लिखे जाते थे । ताड़ का रस शीघ्रपण के काम में भी आता है । ताड़ी का पुलाटिस फोड़े या धाव के लिये श्रत्यंत उपकारी है । ताड़ी का सिरका भी पड़ता है । वैद्यक में ताड़ का रस कफ, पित्त, दाह और शोथ को दूर करनेवाला और कफ, वात, कृमि, कुष्ठ और रक्तपित्त-नाशक माना जाता है । ताड़ ऊँचाई के लिये प्रसिद्ध है । कोई कोई पेड़ तीस, चालीस हाथ तक ऊँचे होते हैं ; पर घेरा किसी का ६—७ विचसे से अधिक नहीं होता ।

पट्यां०—ताबद्दुम । पत्ती । दीर्घसंध । ध्वजद्रुम । तृषात्र । मजुरस । मदाशय । दीर्घपादप । चिरायु । तरुनाम । दीर्घपत्र । गुच्छपत्र । आसवद्रु । लोच्यपत्र । महाशत । (२) ताड़न । प्रहार । (३) शब्द । ध्वनि । धमाका । (४) धात, अनाज के डंडल आदि की सँटिया जो सुट्टी में आश्रय । जुही । (५) हाथ का एक गहना । (६) सुर्से-निर्माय-विद्या में सुर्से के ऊपरी भाग का नाम ।

ताड़का-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक राक्षसी जिसे विश्वामित्र की आश्रा से श्रीरामचंद्र ने मारा था ।

विशेष—इसकी उत्पत्ति के संबंध में कथा है कि यह सुकेतु नामक एक वीर यज्ञ की कन्या थी। सुकेतु ने अपनी तपस्या से ब्रह्मा को प्रसन्न करके इस बलवती कन्या को पाया था जिसे हजार हाथियों का बल था। यह सुंद को प्याही थी। जब अगस्त्य ऋषि ने किसी यात पर क्रुद्ध होकर सुंद को मार डाला तब यह अपने पुत्र मारीच को लेकर अगस्त्य ऋषि को पाने ली। ऋषि के शपथ से माता और पुत्र दोनों घोर राक्षस हो गए। इसी समय से वे अगस्त्य जी के तपोवन ना नाश करने लगे और उसे उन्होंने प्राणियों से शून्य कर दिया। यह सब स्वयंसा दशरथ से कह कर विश्वामित्र रामचंद्र जी को आप और उनके हाथ से ताड़का का घष कराया।

ताड़काफल—संज्ञा पुं० [सं०] बड़ी इलायची।
ताड़कायन—संज्ञा पुं० [सं०] विश्वामित्र के एक पुत्र का नाम।
ताड़कारि—संज्ञा पुं० [सं०] (ताड़का के शत्रु) श्रीरामचंद्र।
ताड़कैय—संज्ञा पुं० [सं०] (ताड़का का पुत्र) मारीच।
ताड़घ—संज्ञा पुं० [सं०] (१) वेत या कोड़ा मारनेवाला। जहाद।
ताड़घात—संज्ञा पुं० [सं०] हथौड़े आदि से पीट कर काम करनेवाला।

ताड़न—संज्ञा पुं० [सं०] (१) मार। प्रहार। अघात। (२) धड़ धपट। धुड़की। (३) शासन। दंड। (४) मंत्रों के घण्टों को चंदन से लिज कर मंत्रों के जल से वायु धीज पढ़ कर मारने का विधान। (५) शून्य।

ताड़ना—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) प्रहार। मार। (२) धड़ धपट। शासन। दंड। धमकी।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

(३) रत्नीदन। कट।

क्रि० सं० (१) मारना पीटना। दंड देना। (२) धड़ना धपटना। शासित करना।

क्रि० सं० [सं०] ठरुण = सेपना [(१) किसी ऐसी यात को जान लेना जो छान घूफ कर प्रकट न की गई हो या छिपाई गई हो। अक्षय से समक, खेना। भांपना। लप-खेना। शंदाज से मन्थुम कर लेना। जैसे, मैं पहले ही ताड़ गया कि तुम इसी विधि थाप हो।

संयो० क्रि०—जाना।—खेना।

(२) मार पीट कर भगाना। धड़ना। दंड देना।

संयो० क्रि०—देना।

ताड़नीय—वि० [सं०] बंधनीय। दंड देने योग्य।

ताड़पत्र—संज्ञा पुं० [सं०] ताटक। ताटक।

ताड़याज्ञ—वि० [हिं०] ताड़ना + याज्ञ = बान [ताड़नेवाला। शपिने-वाला। समक जानेवाला।

ताड़ित—वि० [सं०] (१) मारा हुआ। जिस पर प्रहार पड़ा हो।

(२) जो धाँटा गया हो। जिसने धुड़की खाई हो। (३) दंडित। शासित। (४) मार कर भगया हुआ। निकाबा हुआ। धाँका हुआ।

ताड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक प्रकार का छोटा ताड़। (२) एक आभूषण।

संज्ञा स्त्री० [हिं०] ताड़ + ई (मत्व०) [ताड़ के फूलते हुए बंदलों से निकाला हुआ नरतीला रस जिसका व्यवहार मद्य के रूप में होता है।

विशेष—साड़ के सिर पर फूलते हुए बंदलों या शंकरों को घुरी आदि से काट देते हैं और पास ही मिट्टी का भरतन बांध देते हैं। दूसरे दिन सबरे जब भरतन रस से भर जाता है तब उसे खाली करके रस ले लेते हैं।

ताड़न—वि० [सं०] (१) ताड़ने के योग्य। (२) धड़ने धपटने लायक। (३) दंड्य।

ताड़मान—वि० [सं०] (१) जो पीटा जाता हो। जिस पर प्रहार पड़ता हो। (२) जो धाँटा जाता हो।

संज्ञा पुं० ढोख। डका।

तात—संज्ञा पुं० [सं०] (१) चिता। धाप। (२) पूज्य व्यक्ति। गुरु। (३) प्यार का एक शब्द या संबोधन जो माई, शंभु, इष्ट मित्र, विशेषतः अपने से छोटे के लिये व्यवहृत होता है, जैसे, तात जनक-तनया यह सोई। अनुप-यश जेहि कारण सोई।—मुजली।

† वि० [सं०] तन, आ० तप] तपा हुआ। गरम।

तातगु—संज्ञा पुं० [सं०] चाचा।

तातन—संज्ञा पुं० [सं०] खेमन पत्नी। लिङ्गिक।

तातरी—संज्ञा स्त्री० [देग०] एक पेड़ का नाम।

तातल—संज्ञा पुं० [सं०] (१) विदु-तुल्य संबंधी। (२) रोग।

(३) लोह का कटा। (४) पाक। पत्रता।

वि० तत। गरम।

ताता†—वि० [सं०] तन, आ० तप] [स्त्री०] तपा हुआ। गरम। उष्ण।

तातायेई—संज्ञा स्त्री० [अनु०] (१) मूल में एक प्रकार का फोख। (२) नाचने में पैर के सिरने आदि का अनुकरण-शब्द। जैसे, तातायेई तातायेई नाचना।

तातार—संज्ञा पुं० [का०] मध्य एशिया का एक देश। हिंदुस्तान और फारस के बचर कैस्पियन सागर से लेकर चीन के बचर मांत तक सातारा देश कहलाता है। हिमाचल के बचर अफगान, पारकंद, सुवन, योस्तारा, सिधुन आदि के निवासी तातारी कहलाते हैं। माघारथतः समस्त तुर्क या मोगल तातारी कहलाते हैं।

तातारी—वि० [का०] तातार देश संबंधी। तातार देश का।

संज्ञा पुं० तातार देश का निवासी।

उपरिपत होना । जैसे, उनके आने से मामला फिर ताज़ा हो गया । (२) स्मरण आना । फिर चित्त में उपरिपत होना । जैसे, ग़म ताज़ा होना ।

ताज़िया—संज्ञा पुं० [अ०] यास की कमचियों पर रंग विरंगे कागज़, पत्ती आदि चिपका कर बनाया हुआ मक़दरे के आकार का मंडप जिसमें इमाम हुसैन की क़ब्र बनी होती है । सुहरम के दिनों में शीया मुसलमान इसकी आराधना करते और अंतिम दिन इमाम के मरने का शोक मनाते हुए इसे सड़क पर निकालते और एक निश्चित स्थान पर ले जाकर पड़ान करते हैं ।

मुहा०—ताज़िया टंदा होना = (१) ताज़िया दफ़न होना । (२) किसी बड़े आदमी का मर जाना ।

विशेष—ताज़िया निकालने की प्रथा केवल हिंदुस्तान के शीया मुसलमानों में है । ऐसा प्रसिद्ध है कि तैमूर कुछ जातियों का नाश करके जय करबला गया था तब वहाँ से कुछ चिह्न लाया था जिसे वह अपनी सेना के आगे आगे लेकर चलता था । तभी से यह प्रथा चल पड़ी ।

ताज़ी—वि० [फ़ा०] अरबी । अरब का । अरब संबंधी ।

संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) अरब का घोड़ा । (२) शिकारी कुत्ता ।

संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] अरब की भाषा । अरबी भाषा ।

वि० ताज़ा का स्त्री० ।

ताज़ीम—संज्ञा स्त्री० [अ०] सम्मान-प्रदर्शन । किसी बड़े के सामने उसके आदर के लिये उठ कर खड़ा हो जाना, मुक़दर ख़ताम करना इत्यादि ।

क्रि० प्र०—करना ।—देना ।

ताज़ीमी सरदार—संज्ञा पुं० [फ़ा० त.ज़ीम + अ० सरदार] वह सरदार जिसके आने पर राजा या बादशाह उठ कर खड़े हो जाय या जिसे कुछ आगे बढ़ कर लें । ऐसा सरदार जिसकी दरवार में विशेष प्रतिष्ठा हो ।

ताटक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) कान में पहनने का एक गहना । करनफूल । तरकी । (२) छप्पय के २४ वें भेद का नाम । (३) एक छंद जिसके प्रत्येक चरण में १६ और १४ के विराम से ३० मात्राएँ होती हैं और अंत में मग़य होता है । किसी किसी ने अंत में एक गुरु का ही नियम रखा है । लावनी प्रायः इसी छंद में होती है ।

ताड़क—संज्ञा पुं० [सं०] काग का एक गहना । तरकी । करनफूल । **विशेष—**पहले यह गहना ताड़ के पत्तों ही का बग़ता था । अब भी तरकी ताड़ के पत्ते ही की बनती है ।

ताड़—संज्ञा पुं० [सं०] (१) शाला-रहित एक यद्दा पेड़ जो ख़ने के रूप में ऊपर की ओर बढ़ता चला जाता है और केवल सिरे पर पत्ते धारण करता है । ये पत्ते चिपटे मजबूत ढंडलों में, जो चारों ओर निकले रहते हैं, फैले हुए पर की तरह लगे

रहते हैं और बहुत ही कड़े होते हैं । इसकी लकड़ी की भीतरी धनावट सूत के ठोस लच्छों के रूप की होती है । ऊपर गिरे हुए पत्तों के ढंडलों के मूल रह जाते हैं जिससे छाल खुरदुरी दिखाई पड़ती है । अंत के महीने में इसमें फूल लगते हैं और वैशाख में फल, जो भादों में लख पक जाते हैं । फलों के भीतर एक प्रकार की गिरी और रेशोदार गूदा होता है जो खाने के योग्य होता है । फूलों के कच्चे अंडरों को पौछुने से बहुत सा मशीला रस निकलता है जिसे ताड़ी कहते हैं । ताड़ी का व्यवहार गीच श्रेणी के लोग मद्य के स्थान पर करते हैं । ताड़ प्रायः सब गरम देशों में होता है । भारतवर्ष, परमा, सिंदल, सुमात्रा जावा आदि द्वीप-पुत्र, तथा फारस की खाड़ी के तटस्थ प्रदेश में ताड़ के पेड़ बहुत पाए जाते हैं । ताड़ की अनेक जातियाँ होती हैं । तामिल-भाषा में ताब-विवास नामक एक ग्रंथ है जिसमें ७०१ प्रकार के ताड़ गिनाए गए हैं और प्रत्येक का अलग अलग गुण यत-लाया गया है । दक्षिण में ताड़ के पेड़ बहुत अधिक होते हैं । गोदावरी आदि नदियों के किनारे कहीं कहीं ताबवनों की विशाल्य शोभा है । इस घृष्ट का प्रत्येक भाग किसी न किसी काम में आता है । पत्तों से पंखे बनते हैं और छुपर छाप जाते हैं । ताड़ की खड़ी लकड़ी मकानों में लागती है । लकड़ी खोदली करके एक प्रकार की छोट्टी सी नाव भी बनाते हैं । ढंडल के रेशे चटाई और जाल बनाने के काम में आते हैं । कई प्रकार के ताड़ होते हैं जिनकी लकड़ी बहुत मजबूत होती है । सिंदल के जफ़ना नामक नगर से ताड़ की लकड़ी दूर दूर भेजी जाती थी । प्राचीन काल में दक्षिण के देशों में ताब-पत्र पर ग्रंथ लिखे जाते थे । ताड़ का रस औषध के काम में भी आता है । ताड़ी का पुलटिस फोड़े या धाव के लिये अत्यंत उपकारी है । ताड़ी का सिरका भी पड़ता है । वैचक में ताड़ का रस कफ, पित्त, दाह और शोथ को दूर करनेवाला और कफ, वात, कृमि, कुष्ठ और रक्तपित्त-नाशक माना जाता है । ताड़ जैचाई के लिये प्रसिद्ध है । कोई कोई पेड़ तीस, चालीस हाथ तक ऊँचे होते हैं, पर बेरा किसी का ६—७ विक्ते से अधिक नहीं होता ।

पर्या०—ताबजुम । पत्रो । दीर्घरंजय । ध्वजजुम । ल्याप्राज । मधुसत । मदाशय । दीर्घपादप । चिरायु । तदराज । दीर्घपत्र । शुद्धपत्र । आसवदु । लेखपत्र । महोन्नत ।

(२) ताड़पत्र । प्रहार । (३) शुभ्र । च्यति । धमाका । (४) पास, अनाज के ढंडल आदि की शैटिया जो मुट्ठी में आजाय । शुद्धी । (५) हाथ का एक गहना । (६) मूर्त्तिनिर्माण-विद्या में मूर्त्ति के ऊपरी भाग का नाम ।

ताड़का—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक शालसी जिसे विद्यामित्र की आशय से श्रीरामचंद्र ने मारा था ।

विशेष-हसकी वसति के संबंध में कया है कि यह सुकेत नासक एक वीर वच की कन्या थी। सुकेतु ने अपने ही तपस्या से मन्ना को प्रसन्न करके हस बलवती कन्या को पाया था जिसे हजार हाथियों का बल था। यह सुंद को ब्याही थी। जब अगस्त्य ऋषि ने किसी बात पर क्रुद्ध होकर सुंद को मार डाला तब यह अपने पुत्र मारीच को लेकर अगस्त्य ऋषि को खाने दौड़ी। ऋषि के शाप से माता और पुत्र दोनों घोर राक्षस हो गए। इसी समय से ये अगस्त्य जी के तपोवन ना बना करने लगे और वसे उगहोंने प्राणियों से शून्य कर दिया। यह सब ध्ववस्था दरमय से कह कर विश्वामित्र रामचंद्र जी को बाप और उनके हाथ से ताड़का का पथ कराया।

ताड़काफल-संज्ञा पुं० [सं०] बड़ी हलायची।

ताड़कायन-संज्ञा पुं० [सं०] विश्वामित्र के एक पुत्र का नाम।

ताड़कावि-संज्ञा पुं० [सं०] (ताड़का के शत्रु) श्रीरामचंद्र।

ताड़केय-संज्ञा पुं० [सं०] (ताड़का का पुत्र) मारीच।

ताड़घ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वेत या कोड़ा मारनेवाला। जलाद्।

ताड़घात-संज्ञा पुं० [सं०] हथौड़े आदि से पीट कर काम करनेवाला।

ताड़न-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मार। प्रहार। आघात। (२) छोट बपट। घुड़की। (३) शासन। दंड। (४) मंत्रों के घण्टों को चंदन से लिख कर प्रत्येक मंत्र को जल से बाधु धीज पड़ कर मारने का विधान। (५) गुणन।

ताड़ना-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) प्रहार। मार। (२) छोट बपट। शासन। दंड। धमकी।

क्रि० प्र०—करना।—देना।

(३) बर्षाइन। कट।

क्रि० सं० (१) मारना पीटना। दंड देना। (२) छोटना बपटना। शासित करना।

क्रि० सं० [सं०] वरुण = सेचना। (१) किसी ऐसी बात को जान लेना जो छान घूम कर प्रकट न की गई हो या छिपाई गई हो। लक्ष्य से समझ लेना। भांपना। लख लेना। श्रद्धान से मालूम कर लेना। जैसे, मैं पहले ही ताड़ गया कि तुम इसी लिये आए हो।

संयो० क्रि०—जाना।—लेना।

(२) मार पीट कर भगाना। हाँकना। हटा देना।

संयो० क्रि०—देना।

ताड़नीय-वि० [सं०] दंडनीय। दंड देने योग्य।

ताड़पत्र-संज्ञा पुं० [सं०] ताटक। ताटक।

ताड़मात्र-वि० [हिं०] ताड़ना + मात्र० मात्र। ताड़नेवाला। भांपने-वाला। समझ जानेवाला।

ताड़ित-वि० [सं०] (१) मारा हुआ। जिस पर प्रहार पड़ा हो।

(२) जो डाँटा गया हो। जिसने घुड़की खाई हो। (३) दंडित। शासित। (४) मार कर भगया हुआ। निकाला हुआ। हाँका हुआ।

ताड़ी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक प्रकार का छोटा ताड़। (२) एक भामूपण।

संज्ञा स्त्री० [हिं०] ताड़ + ई (प्रत्य०)। ताड़ के फूलते हुए बंटले। से निकाला हुआ नरगिला रस जिसका व्यवहार मद्य के रूप में होता है।

विशेष-ताड़ के सिरे पर फूलते हुए बंटले या अंकुरों को छुरी आदि से काट देते हैं और पास ही मिट्टी का बरतन बाँध देते हैं। दूसरे दिन सबैरे भव भरतन रस से भर जाता है तब उसे खाली करके रस ले लेते हैं।

ताड्य-वि० [सं०] (१) ताड़ने के योग्य। (२) छोटने बपटने लायक। (३) दंड्य।

ताड्यमान-वि० [सं०] (१) जो पीटा जाता हो। जिस पर प्रहार पड़ता हो। (२) जो डाँटा जाता हो।

संज्ञा पुं० दोख। टका।

तात-संज्ञा पुं० [सं०] (१) रिता। बाप। (२) पूज्य व्यक्ति। गुण। (३) प्यार का एक शब्द या संबोधन जो भाई, भंज, इष्ट मित्र, विशेषतः अपने से छोटे के लिये व्यवहृत होता है, जैसे, तात जनक-तनया यह सोई। धनुष-यज्ञ जेहि कारन होई।—दुखमी।

† वि० [सं०] सम, प्रा० तत्] तथा हुआ। गरम।

तातशु-संज्ञा पुं० [सं०] चाचा।

तातन-संज्ञा पुं० [सं०] सजन पत्नी। सिद्धरिच।

तातरी-संज्ञा स्त्री० [देण०] एक पेड़ का नाम।

तातल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पिप्लु-गुल्फ संबंधी। (२) रोग।

(३) लोहे का काँटा। (४) पाक। पक्वता।

वि० तप्त। गरम।

ताता †-वि० [सं०] तप्त, प्रा० तत्] [स्त्री० तात] तथा हुआ। गरम। डब्य।

ताताथेई-संज्ञा स्त्री० [शब्द०] (१) वृक्ष में एक प्रकार का बोल। (२) नाचने में पैर के गिरने आदि का शत्रुकरण-शब्द। जैसे, ताताथेई ताताथेई नाचना।

तातार-संज्ञा पुं० [फा०] मध्य एशिया का एक देश। हिंदुस्तान और फारस के उत्तर कैस्पियन सागर से लेकर चीन के उत्तर प्रांत तक तातार देश कहुलाता है। हिमाचल के बचर छाद्वाल, यारकंद, सुवन, बोखारा, तियुत आदि के निवासी तातारी कहुलाते हैं। साधारणतः समस्त तुर्क या मोगल तातारी कहुलाते हैं।

तातारी-वि० [फा०] तातार देश संबंधी। तातार देश का।

संज्ञा पुं० तातार देश का निवासी।

ताति-संज्ञा पुं० [सं०] पुत्र । लड़का ।

तातील-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह दिव जिसमें काम काम बंद रहे । छुटी का दिन । छुट्टी ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

मुहा०—तातील मनाना = छुट्टी के दिन विग्राम लेना या प्रामोद प्रमोद करना ।

तात्कालिक-वि० [सं०] तत्काल का । तुरंत का । उसी समय का ।

तात्पर्य्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अभिप्राय । अर्थ । आशय । मत-लभ । वह भाव जो किसी वाक्य को कह कर कहनेवाला प्रकट करना चाहता हो ।

विशेष—कभी कभी शब्दार्थ से तात्पर्य्य भिन्न होता है । जैसे, 'काशी गंगा पर बसी है' वाक्य का शब्दार्थ यह होगा कि काशी गंगा के जल के ऊपर बसी है, पर कहनेवाले का तात्पर्य्य यह है कि गंगा के किनारे बसी है ।

(२) तत्परता ।

तात्त्विक-वि० [सं०] (१) तत्त्व संबंधी । (२) तत्त्वज्ञान-युक्त । जैसे, तात्त्विक दृष्टि । (३) यथार्थ ।

तात्स्थ्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) किसी के बीच में रहने का भाव । एक वस्तु के बीच दूसरी वस्तु की स्थिति । (२) एक व्यंजनात्मक प्रपञ्च जिसमें जिस वस्तु का कथन होता है उस वस्तु में रहनेवाली वस्तु का प्रद्वेष होता है, जैसे, "सारा घर गया है" से अभिप्राय है कि घर के सब लोग गए हैं ।

ताथेई-संज्ञा स्त्री० दे० "ताताथेई" ।

तादात्म्य-संज्ञा पुं० [सं०] एक वस्तु का मिल कर दूसरी वस्तु के रूप में हो जाना । तत्स्वरूपता । अन्वय संबंध ।

तादाद-संज्ञा स्त्री० [सं०] तत्पदाद । गिनती । शुमार ।

तादृश-वि० [सं०] [स्त्री०] तादृशी । उसके समान । वैसे ।

ताधा-संज्ञा स्त्री० दे० "ताताथेई" । उ०—भृशुकृती धनुष नैन सर साधे वदन विकास धगाधा । चंचल चपल चारु ब्रह्मलोकनि काम नचावति ताधा ।—सूर ।

तान-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) तानने का भाव या क्रिया । खींच । फैलाव । विस्तार । जैसे, भीमों की तान ।

धा०—खींच तान ।

(२) गाने का एक श्रंग । धनुषोत्तम विलोम गति से गमन । मूच्छंभा आदि द्वारा राग या स्वर का विस्तार । अनेक विभाग करके सुर का खींचना । आलाप । लय का विस्तार ।

विशेष—संगीतदामोदर के मत से स्वरों से उत्पन्न तान ४६ हैं । इन ४६ तानों से भी = ३० कूट तान निकले हैं । किसी किसी के मत से कूट तानों की संख्या २०४० भी मानी गई है ।

मुहा०—तान उड़ाना = गीत गाना । अलापना । तान सोड़ना =

लय को खींच कर मटक के साथ समय पर विराम देना । किसी पर तान सोड़ना = किसी को लक्ष्य करके खेद वा श्लेष सूचक बात कहना । आसुप भरना । वीषुप छोड़ना । तान भरना, मारना, लेना = गाने में लय के साथ सुरों को खींचना । अलापना । तान की जान = सरासरी । खुलासा । सै बात की एक बात ।

(३) ज्ञान का विषय । ऐसा पदार्थ जिसका बोध इन्द्रियों आदि को हो । (४) कंथल का ताना । (गड़ेरिपु) । (५) भाटे का हलड़ा । लहर । तरंग । (लरा०) । (६) लोहे की छड़ जिसे पलंग या हौदे में मजबूती के लिये लगाते हैं । (७) एक पेड़ का नाम ।

तानतरंग-संज्ञा स्त्री० [सं०] अलापचारी । लय की लहर ।

तानना-क्रि० सं० [सं०] तान = विस्तार । (१) किसी वस्तु को उसकी पूरी लंबाई या चौड़ाई तक बढ़ा कर फैलाना । फैलाने के लिये जोर से खींचना । किसी वस्तु को जर्दी की चढ़ाई रख कर उसके किसी छोर कोने या धरा को जहाँ तक हो सके बलपूर्वक धागे बढ़ाना । जैसे, रस्ती तानना ।

विशेष—'तानना' और 'खींचना' में यह अंतर है कि तानने में वस्तु का स्थान नहीं बदलता जैसे, खूँट में बँधी हुई रस्ती तानना । पर 'खींचना' किसी वस्तु को इस प्रकार बढ़ाने को भी कहते हैं जिसमें वह अपना स्थान बदलती है । जैसे, गाड़ी खींचना, पंखा खींचना ।

संयो० क्रि०—देना ।—लेना ।

मुहा०—तान कर = बलपूर्वक । जोर से । जैसे, तान कर समाचा मारना ।

(२) किसी सिमटी या लिपटी हुई वस्तु को खींच कर फैलाना । बलपूर्वक विस्तीर्ण करना । जोर से बढ़ा कर पसारना । जैसे, पाज तानना, छाता तानना, चहर तान कर सोना, कपड़े को तान कर मोल गिटाना ।

विशेष—'तानना' और 'फैलाना' में यह अंतर है कि 'तानना' क्रिया में कुछ बल लगाने या जोर से खींचने का भाव है ।

संयो० क्रि०—देना ।—लेना ।

मुहा०—तान कर सोना = लज हाप पैर फैला कर निरिचंच सोना । आंगम से सोना ।

(३) किसी परदे की सी वस्तु को ऊपर फला कर र्थाथना या ठहराना । छानन की तरह ऊपर किसी प्रकार का परदा लगाना । जैसे, चँदेवा तानना, बाँदनी तानना, संवू तानना ।

संयो० क्रि०—देना ।—लेना ।

(४) डोरी, रस्ती आदि को एक आधार से दूसरे आधार तक इस प्रकार खींच कर र्थाथना कि वह ऊपर चपट में एक स्तीथी लकीर के रूप में ठहरी रहे । एक ऊँचे स्थान से दूसरे

ऊँचे स्थान तक ले जा कर बांधना। जैसे, (क) यहाँ से यहाँ तक एक बोरी तान दो सो कपड़ा फैलाने का सुधीता हो जाय। (ख) जुलाहे का सूत तानना।

संयो० क्रि०—देना।

(४) मारने के लिये हाथ या कोई हथियार उठाना। प्रहार के लिये शस्त्र उठाना। जैसे, तमाचा तानना, डंढा तानना।

(५) किसी को हानि पहुँचाने या वृंघ देने के अभिप्राय से कोई बात उपस्थित कर देना। किसी को खिन्नाफ कोई चिट्ठी पत्री या दरखास्त आदि भेजना। जैसे, एक दरखास्त तान देंगे रह जाओगे।

संयो० क्रि०—देना।

(७) केंद्रस्थाने भोजना। जैसे, हाकिम ने उसे दो घरस के तान दिया।

संयो० क्रि०—देना।

तानपूरा—संज्ञा पुं० [सं० तान + हिं० पूरा] सितार के आकार का एक वाजा जिसे गवैये कान के पास लगा कर गाने के समय छेदते जाते हैं। यह गवैयों को सुर बांधने में बड़ा सहायक होता है क्योंकि सुर में जहाँ विराम पड़ता है वहाँ यह उसे पूरा करता है। इसमें चार तार होते हैं दो लोहे के और दो पीतल के।

तानबाना*—संज्ञा पुं० दे० “तानाबाना। ४०—जोलाह तान बान नहि जानै फाट बिनै दस ठाईं हो।—कबीर।

तानसेन—संज्ञा पुं० अरुबर बादशाह के समय का एक प्रसिद्ध गवैया जिसके जोड़ का ध्यान तक कोई नहीं हुआ। अशुभल फलन ने लिखा है कि इधर हजार वर्षों के बीच ऐसा गायक भासतवर्ष में नहीं हुआ। यह जाति का मालावण था। कहते हैं पहले हमका नाम त्रिलोचन मिश्र था। इसे संगीत से बहुत प्रेम था पर माना इसे नहीं थाता था। जब इंद्रदान के प्रसिद्ध स्वामी इतिहास के यहाँ गया और उनका शिष्य हुआ तब यह संगीत में कुशल हुआ। इसकी प्यासि धीरे धीरे बढ़ने लगी। पहले यह भाट के राजा रामचंद्र मघेला के दरबार में नौकर हुआ। कहा जाता है कि वहाँ इसे कठोड़ों रूप मिले। इम्राहीम खोदी ने इसे अपने यहाँ बहुत सुलाना चाहा पर यह नहीं गया, शंत में अकबर ने राजतंहासन पर बैठने के दस वर्ष पीछे इसे अपने दरबार में सम्मानपूर्वक बुलाया। जिस दिन पहले पहल इसने अपना गाना बादशाह को सुनाया बादशाह ने इसे दो लाख रूपय दिए। बादशाह के दरबार में थाने के कुछ दिन पीछे यह गायलियर जाकर और मुहम्मद गीस नामक एक मुसलमान कबीर से कलमा पढ़ कर मुसलमान हो गया। तब से यह निर्या तानसेन के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इसके मुसलमान होने के संबंध में एक जनश्रुति है। कहते हैं कि पहले

बादशाह के सामने यह गाता ही नहीं था। एक दिन बादशाह ने अपनी कन्या को इसके सामने खड़ा कर दिया। उसके सौंदर्य पर मुग्ध होने के कारण इसकी प्रतिभा चकित हो गई और इसने ऐसा अपूर्व गाना सुनाया कि बादशाहजादी भी मोहित हो गई। अकबर ने दोनों का विवाह कर दिया।

तानसेन की शुरु के संबंध में भी एक अलौकिक घटना प्रसिद्ध है। कहा जाता है कि इसकी अद्वितीय शक्ति को देख कर दरबार के और गवैये इससे जला करते थे और इसे मार डालने के यत्न में रहा करते थे। एक दिन सबने मिलकर यह सोचा कि यदि तानसेन दीपक राग गावे तो आप से आप भस्म हो जायगा। इस परामर्श के अनुसार एक दिन सब गवैयों ने दरबार में दीपक राग की बात छेड़ी। बादशाह को श्रव्य त उलकंडा हुई और उसने दीपक राग गाने के लिये कहा। सब गवैयों ने एक स्वर से कहा कि तानसेन के सिवा दीपक राग और कोई नहीं गा सकता। तब बादशाह ने तानसेन को आज्ञा दी। तानसेन ने बहुत कहा कि यदि आप मुझे चाहते हैं तो दीपक राग न गवावे। जब बादशाह ने न माना तब उसने अपनी लड़की को मलार राग गाने के लिये पास ही बिठा दिया जिसमें दीपक राग से प्रज्वलित अग्नि का मलार राग द्वारा शमन हो जाय। दीपक राग गाते ही दरबार के सब धुके हुए दीपक जल बड़े और तानसेन भी जलने लगा। तब उसकी लड़की ने मलार राग छेड़ा। पर अपने पिता की बुद्धि देख उसका सुर विगड़ गया और तानसेन जल कर भस्म हो गया। उसका शव ग्वालियर में ले जाकर दफन किया गया। उसकी कर्म के पास एक हमली का पेड़ है। आज दिन भी गवैये इस कर्म पर जाते हैं और हमली के पत्तों को चखाते हैं। उनका विश्वास है कि इससे कंठरस उत्पन्न होता है। गवैयों में तानसेन का यहाँ तक सम्मान है कि उसका नाम सुनते ही वे अपने कान पकड़ते हैं। तानसेन का बनाया हुआ एक ग्रंथ भी मिला है।

ताना—संज्ञा पुं० [हिं० तानना] (१) कपड़े की बुनावट में यह सूत जो लंबाई के बल होता है। यह तार या सूत जिसे जुलाहे कपड़े की लंबाई के अनुसार फैलाते हैं। ४०—अस जोलाहा कर मरस न जाना। जिन जग धाह पतारख ताना।—कबीर।

यो०—ताना बाना।

क्रि० प्र०—तानना।—फैलाना।

(२) दूरी, कालीन बुनने का कथ्य।

क्रि० सं० [हिं० तान + ना (प्रत्य०)] (१) तान देना। तानना। गरम करना। ४०—(क) कर कपोल अंतर नहि पावत अति उसास तन ताइए। (ख) देव दिखलवति कंचन सो तन अंगन को मन तावै अंगीनी।—देव। (२) पिघ-जाना। जैसे, धी ताना। (३) तपा कर परीक्षा करना। (सोना

यह 'त्रिमिडु' शब्द ही प्राचीन है जिससे संस्कृतवालों ने 'द्रविड', शब्द बना लिया। जैनों के 'शत्रुघ्नय माहात्म्य' नामक एक ग्रंथ में 'द्रविड' शब्द पर एक विलक्षण कल्पना की गई है। उक्त पुस्तक के मत से आदि तीर्थंकर ऋषभदेव को 'द्रविड' नामक एक पुत्र जिस भूभाग में हुआ उसका नाम 'द्रविड' पड़ गया। पर भारत मनुसंहिता आदि प्राचीन ग्रंथों से विदित होता है कि द्रविड जाति के निवास के ही कारण देश का नाम द्रविड पड़ा। (दे० द्राविड)।

तामिल जाति अत्यंत प्राचीन है। पुरातत्वविदों का मत है कि यह जाति अनार्य है और आर्यों के आगमन से पूर्व ही भारत के अनेक भागों में निवास करती थी। रामचंद्र ने दक्षिण में जाकर जिन लोगों की सहायता से लंका पर चढ़ाई की थी और जिन्हें वाल्मीकि ने बंदर लिया है, वे इसी जाति के थे। उनके काले बर्ण भिन्न आकृति तथा विकट भाषा आदि के कारण ही आर्यों ने उन्हें बंदर कहा होगा। पुरातत्ववेत्ताओं का अनुमान है कि तामिल जाति आर्यों के संसर्ग के पूर्व ही बहुत कुछ सम्यता प्राप्त कर चुकी थी। तामिल लोगों के राजा होते थे जो किले बनाकर रहते थे। वे हज्जार तक गिन लेते थे। वे नाच, छोटे मोटे जडाऊ, घणुप, बाण, तलवार इत्यादि बना लेते थे और एक प्रकार का कपड़ा बुनना भी जानते थे। रंगी सीसे और जस्ते को छोड़ और सब धातुओं का ज्ञान भी उन्हें था। आर्यों के संसर्ग के उपरांत उन्होंने आर्यों की सम्यता पूर्ण रूप से ग्रहण की। दक्षिण देश में ऐसी जनधुति है कि अगस्त्य ऋषि ने दक्षिण में जाकर वहाँ के निवासियों को बहुत सी विद्याएँ सिखाईं। शरह तेरह सौ वर्ष पहले दक्षिण में जैनधर्म का बड़ा प्रचार था। चीनी यात्री ह्युएनसांग जिस समय दक्षिण में गया था उसने वहाँ दिगंबर जैनों की प्रधानता देरती थी।

(२) द्रविड भाषा। तामिल लोगों की भाषा।

विशेष—तामिल भाषा का साहित्य भी अत्यंत प्राचीन है। दो हजार वर्ष पूर्व तक के काव्य तामिल भाषा में विद्यमान हैं। पर घर्षामाला अर्थात् अतुनासिक पंचमवर्ष के छोड़ व्यंजन के एक एक वर्ण का उच्चारण एक ही सा है। क, ख, ग, घ चारों का उच्चारण एक ही है। व्यंजनों के इस अभाव के कारण जो संस्कृत शब्द प्रयुक्त होते हैं वे विकृत हो जाते हैं, जैसे 'कृष्य' शब्द तामिल में 'किट्टिन' हो जाता है। तामिल भाषा का प्रधान ग्रंथ कवि तिरवुल्लुवर रचित कुरल काव्य है।

तामिल—संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक नरक का नाम जिसमें सदा चौर श्रेयंकार बना रहता है। (२) क्रोध। (३) द्वेष। (४)

एक अविद्या का नाम। भोग की इच्छापूर्ति में बाधा पड़ने से जो क्रोध उत्पन्न होता है उसे तामिल कहते हैं। (भागवत) तामी—संज्ञा स्त्री० [हिं० लीला] (१) तथे का तसला। (२) द्वेष वार्ताओं को नापने का एक यंत्रन।

तामील—संज्ञा स्त्री० [सं०] (आजा का) पालन। जैसे, हुक्म की तामील होना।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

तामिसरी—संज्ञा स्त्री० [दे०] एक प्रकार का तामड़ा रंग जो गेरु के रोग से घनता है।

ताम्र—संज्ञा पुं० [सं०] (१) ताँबा। (२) एक प्रकार का कोढ़।

ताम्रक—संज्ञा पुं० [सं०] ताँबा।

ताम्रकर्णो—संज्ञा स्त्री० [सं०] तमेरा। तथे के धारन घनायेवाला।

ताम्रकार—संज्ञा स्त्री० [सं०] श्रजना। परिचम के दिग्गज की पत्नी।

ताम्रकूट—संज्ञा पुं० [सं०] तमाह का पेड़।

विशेष—यह शब्द गढ़ा हुआ है और कुलाय्य तंत्र में आया है।

ताम्रहृमि—संज्ञा पुं० [सं०] और यहूदी नाम का कीड़ा।

तम्रगर्भ—संज्ञा पुं० [सं०] तुष्य। कृतिया।

ताम्रचूड़—संज्ञा पुं० [सं०] (१) कुकरोंचा नाम का पौधा। (२) सुगमा।

ताम्रदुरवा—संज्ञा स्त्री० [सं०] गोरखदुदी। छोटी दुदी। अमर संजीवनी।

ताम्रपट्ट—संज्ञा पुं० [सं०] ताम्रपत्र।

ताम्रपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] (१) तथे की चर्करा एक टुकड़ा जिस पर प्राचीन काल में अक्षर खुदवा कर दानपत्र आदि लिखते थे। (२) तथे की चर्करा। तथे का पत्तर।

ताम्रपर्णो—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मावली। तन्नाथ। (२) दक्षिण देश की एक छोटी नदी जो मद्रास प्रांत के तिनचली जिले से होकर बहती है। इसकी लंबाई ७० मील के लगभग है। रामायण महाभारत तथा मुख्य मुख्य पुराणों में इस नदी का नाम आया है। अशोक के एक शिलालेख में भी इस नदी का उल्लेख है। टालमी आदि विदेशी लेखकों ने भी इसकी चर्चा की है।

ताम्रपह्लुव—संज्ञा पुं० [सं०] अशोक वृक्ष।

ताम्रपाकी—संज्ञा पुं० [सं०] तम्रपाकिर्ण। पाकर का पेड़।

ताम्रपादी—संज्ञा स्त्री० [सं०] हंसपदी। बाल रंग का लज्जाल।

ताम्रपुष्प—संज्ञा पुं० [सं०] बाल फूल का कचनार।

ताम्रपुष्पिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] बाल फूल का निसेत।

ताम्रपुष्पी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) भातकी। घघ का पेड़। (२)

पाटल। पावर का पेड़।

ताम्रफल—संज्ञा पुं० [सं०] अंकोल वृक्ष। टेटा। डेटा।

ताम्रमूला—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) जवासा । घमासा । (२) लज्जालु । हुईसुई । (३) किराँय । कींच । कपिकच्छु ।

ताम्रलिप्त—संज्ञा पुं० [सं०] मैदिनीपुर (बंगाल) जिले के ताम्र-लूक या तमलूक नामक स्थान का प्राचीन नाम । पूर्व काल में यह ध्यापार का एक प्रधान स्थल था । बृहत्कथा को देखने से विदित होता है कि यहाँ से सिंहल, सुमात्रा, जावा, चीन इत्यादि देशों की शोर धरावर व्यापारियों के जहाज़ रवाना होते रहते थे । महाभारत में ताम्रलिप्त को कलिंग से लगा हुआ समुद्र तटस्थ एक देश लिखा है । पत्नी प्रिय महावंश से पता लगता है कि ईसा से ३०० वर्ष पूर्व ताम्रलिप्त नगर भारतवर्ष के प्रसिद्ध पंद्रगाहों में से था । यहाँ जहाज़ पर चढ़ सिंहल के राजा ने प्रसिद्ध बेधिद्रुम को लेकर स्वदेश की शोर प्रस्थान किया था और महाराज अशोक ने समुद्र तट पर खड़े होकर उसके लिये धातु बहाए थे । ईसा की पाँचवीं शताब्दी में चीनी यात्री फ़ाहियान बौद्ध ग्रंथों की नक़्क़ आदि लेकर ताम्रलिप्त ही से जहाज़ पर बैठ सिंहल गया था ।

रामायण में ताम्रलिप्त का कोई उल्लेख नहीं है, पर महाभारत में कई स्थानों पर है । यहाँ के निवासी ताम्रलिप्तक भारतवृद्ध में दुर्योधन की शोर से लड़े थे । पर उनकी गिनती म्लेच्छ जातियों के साथ हुई है । यथा—शकाः किराता दरदा वरैर ताम्रलिप्तकाः । अन्ये च भद्रवो ब्रह्मेन्द्रा विविधायुधपाययः । (द्रोणपर्व)

ताम्रवर्णी—वि० [सं०] (१) तामड़ा रंग का । (२) लाल ।
संज्ञा पुं० (१) वैद्यक के अनुसार मनुष्य के शरीर पर की चौथी ख़ाका का नाम । (२) पुराण के अनुसार भारतवर्ष के अंतर्गत एक द्वीप । सिंहल द्वीप । सीलोन ।

विशेष—प्राचीन काल में सिंहलद्वीप हनी नाम से प्रसिद्ध था । मेगास्थनीज़ ने इस द्वीप का नाम ताम्रोवेन लिखा है ।

विशेष—दे० "सिंहल" ।

ताम्रवर्णा—संज्ञा स्त्री० [सं०] अङ्गुल । गुड़हर का पेड़ । ओदुपुष्प ।

ताम्रवह्नी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मनीठ । (२) एक क्षता जो चित्रकूट प्रदेश में होती है ।

ताम्रवोज—संज्ञा पुं० [सं०] कुलधी ।

ताम्रवृत्त—संज्ञा पुं० [सं०] कुलधी ।

ताम्रवृत्ता—संज्ञा पुं० [सं०] कुलधी ।

ताम्रवृक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] (१) कुलधी । (२) लाल चंदन का पेड़ ।

ताम्रशिखी—संज्ञा पुं० [सं०] ताम्रपिठि । कुम्भट । मुरगा ।

ताम्रसारक—संज्ञा पुं० [सं०] लाल चंदन का वृक्ष ।

ताम्रसारक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) लालचंदन का पेड़ । (२) लाल रंग ।

ताम्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सिंहली पीपल । (२) दूध प्रवापति की कन्या जो कश्यप ऋषि की पत्नी थी । इससे ये ५ कन्याएँ उत्पन्न हुई थीं । (१) कौंकी । (२) भाती । (३) सैनी । (४) धतराष्ट्री । (५) शुकी । (रामायण)

ताम्राभ—संज्ञा पुं० [सं०] लाल चंदन ।

ताम्राब्ज—संज्ञा पुं० [सं०] कर्सा ।

ताम्रिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] गुंजा । घुँघची ।

ताम्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का बाजा ।

ताम्रेश्वर—संज्ञा पुं० [सं०] ताम्रभरम । तंघी की राज ।

ताम्रा*—संज्ञा पुं० [सं०] ताप, हिं० ताव] (१) ताप । गरमी । (२) जलन । (३) धूप ।

सर्व० दे० "ताहि" ।

तायदादा—संज्ञा पुं० "तादादा" ।

तायफ़ा—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) नाचने गानेवाली घेरयाओं और समाजियों की मंडली । (२) घेरया । रंडी ।

तायना—क्रि० सं० [हिं० तान] तपना । गरम करना । ड०—पायल बसति बसायत तायल कीन । पुनि करि कायल धायल हायल कीन ।—संस्कृत ।

ताया—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री०] ताई] धाप का बड़ा भाई । बड़ा चौचा ।

तार—संज्ञा पुं० [सं०] (१) रूपा । चाँदी । (२) (सेना, चाँदी, ताँबा, कोहरा इत्यादि) धातुओं का सूत । तभी धातु को पीठ और खींच कर बनाया हुआ तारा । रस्ती या तारों के रूप में परिणत धातु । धातु-संतु ।

विशेष—धातु को पहले पीठ कर गोबल बत्ती के रूप में करते हैं । फिर उसे सपा कर जंती के बड़े छेद में डालते और सँदली से दूसरी शोर पकड़ कर जोर से खींचते हैं । खींचने से धातु लकीर के रूप में बड़ जाती है । फिर उस छेद में से सूत या धती को निकाल कर उससे और छोटे छेद में डाल कर खींचते हैं । फिर उससे भी छोटे छेद में डाल कर खींचते हैं । इसी प्रकार उत्तरोत्तर अधिक छोटे छोटे धातु में डाल कर खींचते जाते हैं जिससे यह परावर महीन होता और बढ़ता जाता है । खींचने में धातु बहुत गरम हो जाती है । सोने, चाँदी, आदि धातुओं का तार रोटे, पट्टे, कारचोपी आदि बनाने में काम आता है । सीसे और रोने को छोड़ और प्रायः सब धातुओं का तार खींचा जा सकता है । जूरी, कारचोपी आदि में चाँदी ही का तार काम में लाया जाता है । तार को सुगहरी बनाने के लिये उसमें रस्ती दो रस्ती सेना मिला देते हैं ।

क्रि० प्र०—सौंघना ।

घौ०—तारफर ।

मुहा०—तार दयकता = गांठे के लिये तार को पीट कर चिपटा और चौड़ा करना ।

(३) धातु का यह तार या धोरी जिसके द्वारा बिजली की सहायता से एक स्थान से दूसरे स्थान पर समाचार भेजा जाता है । टेलिग्राफ । जैसे, वन क्षेत्रों स्थेशनों के बीच तार लगा है ।

क्रि० प्र०—लगाना ।—लगाना ।

घौ०—तारफर ।

विशेष—तार द्वारा समाचार भेजने में बिजली और चुंबक की शक्ति काम में लाई जाती है । इसके लिये चार वस्तुएँ आवश्यक होती हैं—बिजली उत्पन्न करनेवाला यंत्र या घर, बिजली के प्रवाह का संचार करनेवाला तार, संवाद को प्रवाह द्वारा भेजनेवाला यंत्र और संवाद को ग्रहण करनेवाला यंत्र । यह एक नियम है कि यदि किसी तार के घेरे में से बिजली का प्रवाह हो रहा हो और उसके भीतर एक चुंबक हो तो उस चुंबक को दिलाने से बिजली के बल में कुछ परिवर्तन हो जाता है । चुंबक के रहने से जिस दशा को बिजली का प्रवाह होगा उसे निकाल लेने पर प्रवाह उलट कर दूसरी दिशा की ओर हो जायगा । प्रवाह के इस दिशा-परिवर्तन का ज्ञान कंवास की तरह के एक यंत्र द्वारा होता है जिसमें एक सुई लगी रहती है । यह सुई एक ऐसे तार की कुंडली के भीतर रहती है जिसमें यादर से भेजा हुआ विद्युत्प्रवाह संचरित होता है । सुई के इधर उधर होने से प्रवाह के दिक् परिवर्तन का पता लगता है । धातु कल चुंबक की आवश्यकता नहीं पड़ती । जिस तार में से बिजली का प्रवाह जाता है उसके थगल में दूसरा तार लगा होता है जिसे विद्युत्घट से मिला देने से थोड़ी देर के लिये प्रवाह की दिशा बदल जाती है । अब समाचार किस प्रकार एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाता है स्थूल रूप से देना चाहिये । भेजनेवाले तार घर में जो विद्युत्घटमाला होती है उसके एक धोर का तार तो पृथ्वी के भीतर गड़ा रहता है और दूसरी धोर का पानेवाले स्थान की ओर गया रहता है । इसमें एक कुंजी ऐसी होती है जिसके द्वारा जब चाहें तब तारों को जोड़ दें और जब चाहें तब अलग कर दें । इसी के साथ उस तार का भी संबंध रहता है जिसके द्वारा बिजली के प्रवाह की दिशा पकट जाती है । इस प्रकार बिजली के प्रवाह की दिशा को कभी इधर कभी उधर फेरने की युक्ति भेजनेवाले के हाथ में रहती है जिससे संवाद ग्रहण करनेवाले स्थान की सुई को यह जव जिधर चाहे घटन या कुंजी दबा कर कर सकता है । एक दार में सुई जिस क्रम से

दहिने या बाएँ होगी वसी के अनुसार अक्षर का संकेत समझ जायगा । सुई के दहिने घूमने को डाट (बिंदु) और बाएँ घूमने को टैरा (रेखा) कहते हैं । इन्हीं बिंदुओं और रेखाओं के योग से मार्स नामक एक च्यकितने अंगरेजी पर्याप्तता के सब अक्षरों के संकेत पूरे कर लिए हैं । जैसे,

A के लिये —

B के लिये —...

C के लिये —... इत्यादि ।

तार के संवाद ग्रहण करने की दो प्रणालियाँ हैं एक दर्शन प्रणाली, दूसरी श्रवण प्रणाली । ऊपर लिखी रीति पहली प्रणाली के अंतर्गत है । पर अब अधिकतर एक घटके (Sounder) का प्रयोग होता है जिसमें सुई खोदे के डुकड़ों पर भारती है जिस से भिन्न भिन्न प्रकार के खट खट शब्द होते हैं । अभ्यास हो जाने पर इन खट खट शब्दों से ही सब अक्षर समझ लिए जाते हैं ।

(४) तार से धाई हुई खबर । टेलिग्राफ के द्वारा आया हुआ समाचार ।

क्रि० प्र०—घाना ।

(५) खुल । तागा । मंतु । सूय ।

घौ०—तार तोड़ ।

मुहा०—तार तार करना = किसी सुनी या बटी हुई वस्तु की धनियाँ अलग अलग करना । नोच कर सूत सूत अलग करना । व०—तार तार कीन्ही फारि सारी जरातारी की ।—दिनेस । तार तार होना = ऐसा फटना कि धनियाँ अलग अलग हो जाय । बहुत ही फट जाना ।

(६) सुतड़ी । (लख०) । (७) बराबर खलता हुआ क्रम । अखंड परंपरा । सिलसिला । जैसे, दोषधर तक लोगों के घाने जाने का तार लगा रहा ।

मुहा०—तार टटना = चतुरता हुआ क्रम बंद हो जाना । परंपरा खंडित हो जाना । लगातार होते हुए फाम का बंद हो जाना । तार बँधना = किसी मम का धरावर खला चलना । किसी बात का धरावर होते जाना । सिद्धिलता जारी होना । जैसे, सपेरे से ओ इनके रेने का तार बँधा वह अब तक न टूटा । तार बँधना = (किसी बात को) धरावर करते जाना । (सिद्धिलता जारी करना) । तार लगाना = दे० "तार बँधना" । तार घ तार = छिन्न भिन्न । अखल व्यल । वै सिद्धिलता । (न) ब्यौत । सुवीता । ब्ययत्या । जैसे, जहाँ चार पैसे का तार होगा वहाँ आयेंगे, यहाँ ब्यौत आयेंगे ।

मुहा०—तार बँधना या बँधना = ब्यौत होना । कार्यसिद्धि का सुवीता होना । तार लगाना = दे० "तार बँधना" । तार जमना = दे० "तार बँधना" ।

† (१) ठीक माप । जैसे, (क) घपने तार का एक जला खे खेन। (ख) यह कुरता मुम्हारे तार का नहीं है।
(१०) कर्मसिद्धि का योग । युक्ति । उद्य । जैसे, कोई ऐसा तार लगाये कि हम भी मुम्हारे साथ था जाय ।

धौं—तारघाट ।

(११) प्रयत्न । बौंकार । (१२) राम की सेना का एक यंत्र जो सारा का पिता था और गृहस्पति के श्रेय से उत्पन्न था ।
(१३) शूद्र मोली । (१४) मन्त्र । तारा । (१५) सांख्य के अनुसार गौण सिद्धि का एक भेद । गुरु से विधिपूर्वक वेदाध्ययन द्वारा प्राप्त सिद्धि । (१६) शिव । (१७) विष्णु । (१८) संगीत में एक सप्तक (सात स्वरों का समूह) जिसके स्वरों का उच्चारण कंड से उठ कर कपाळ के धाम्य तर स्थानों तक होता है । इसे उष भी कहते हैं । (१९) धाँस की पुतली । (२०) अठारह अक्षरों का एक वर्णवृत्त । व०—तहँ प्रान के नाथ प्रसन्न बिलोकी ।

* संज्ञा पु० [सं० तल] (१) ताल । मंत्री । व०—काहू के हाथ अघोरी, काहू के घीन, काहू के नृदंग, कोऊ गढ़े तार ।—हरिदास । (२) कस्ताल नामक याज्ञा ।

संज्ञा पु० [सं०] तल । सतह । जैसे, ऊतार । व०—सो कर मगिन को धलि पै करतारहु ने करतार पसरयो ।—केना ।

धौं—करतार = हथेली ।

* संज्ञा पु० [हि० तड़] कान का एक गहना । ताटकं । त्रीना । व०—धवनन पहिरे उलटे तार ।—गूर ।

वि० [सं०] (१) जिल में से किरने फूटी हँ । (२) निर्मल । स्वच्छ ।

तारक—संज्ञा पु० [सं०] (१) मन्त्र । तारा । (२) अलि । (३) धाँस की पुतली । (४) इंद्र का शत्रु एक असुर । इसने जब इंद्र को बहुत सताया तब भाग्यव्य ने नपुंसक रूप धारण करके इसका नाम किया । (गुरुपुराण) । (५) एक असुर जिसे कात्तिकेय ने मारा था । दे० "तारकासुर" । (६) राम का पदचर मंत्र जिसे गुरु शिष्य के कान में कहता है और जिससे मनुष्य तार जाता है । "श्री रामाय नमः" यह मंत्र । (७) मिलाव । भेलक । (८) वह जो पार बतारे । (९) कर्णधार । मलाह । (१०) भयसागर से पार करनेवाला । उदार करनेवाला । तारनेवाला । (११) एक वर्षवृत्त जिसके प्रत्येक चरण में चार सग्य और एक गुरु होता है (11S 11S 11S 11S S) ।

तारकगित्—संज्ञा पु० [सं०] कात्तिकेय ।

तारकटोडो—संज्ञा स्त्री [सं० तारक + हि० टोडो] एक राग जिसमें अयम और कोमल स्वर लगते हैं और पंचम बर्जित होता है । (संगीतशास्त्र)

तारक तीर्थ—संज्ञा पु० [सं०] गया तीर्थ (जहाँ पिंडदान करने से पुरखे तर आते हैं) ।

तारक ब्रह्म—संज्ञा पु० [सं०] राम पदचर मंत्र । रामतारक मंत्र । "श्री रामाय नमः" यह मंत्र ।

तारकमानी—संज्ञा स्त्री [हि० तार + कमनी] धनुष के आकार का एक यंत्र जिसमें बीती के स्थान पर लोहे का तार लगा रहता है । इससे गगीने काटे जाते हैं ।

तारकश—संज्ञा पु० [हि० तार + क्श क्य = (खींचनेवाला)] धातु का तार खींचनेवाला ।

तारकशी—संज्ञा स्त्री [हि० तारक्य] तार खींचने का काम ।

तारका—संज्ञा स्त्री [सं०] (१) नपत्र । तारा । (२) कनीनिका । घाँस की पुतली । (३) इंद्रयादणी । (४) नाराच नामक रुद्र का नाम । (५) यात्रि की स्त्री तारा । व०—सुमीय को तारका मिलाई बध्पो वालि भयमंत ।—सूर ।
* संज्ञा स्त्री दे० "ताड़का" ।

तारकाक्ष—संज्ञा पु० [सं०] तारकासुर का पड़ा लड़का । यह उम तीन भाइयों में से एक था जो ब्रह्मा के पर से तीन पुर (त्रिपुर) बसा कर रहते थे ।

विदोप—दे० "त्रिपुर" ।

तारकामय—संज्ञा पु० [सं०] शिव । महादेव ।

तारकायय—संज्ञा पु० [सं०] विद्यामित्र के एक पुत्र का नाम ।

तारकासुर—संज्ञा पु० [सं०] एक असुर का नाम जिसका पूरा श्वांत शिवपुराण में दिया हुआ है ।

विदोप—यह असुर तार का पुत्र था । इसने जब एक हज़ार वर्ष तक घोर तप किया और कुछ फल न हुआ तब इसके मन्त्रक से एक बहुत प्रबल लेज निकाला जिससे देवता लोग ब्याकुल होने लगे, यहाँ तक कि इंद्र सिंहासन पर से खिंचने लगे । देवताओं की प्रार्थना पर ब्रह्मा तारक के समीप घर देने के लिये उपस्थित हुए । तारकासुर ने ब्रह्मा से दो घर माँगे । पहला तो यह कि "मेरे समान संसार में कोई बलवान् न हो", दूसरा यह कि "यदि मैं मारा जाऊँ तो उसी के हाथ से जो शिव से तप्य हो" ये दोनों घर पाकर तारकासुर घोर धम्याय करने लगा । इस पर सब देवता मिल कर ब्रह्मा के पास गए । ब्रह्मा ने कहा "शिव के पुत्र के प्रतिरिक्त तारक को और कोई नहीं मार सकता। इस समय हिमालय पर पार्वती शिव के लिये तप कर रही हैं । जाकर ऐसा उपाय रचो कि उनका संयोग शिव के साथ हो जाय" । देवताओं की प्रेरणा से कामदेव ने जाकर शिव के चित्त को चंचल किया । अंत में शिव के साथ पार्वती का विवाह हो गया । जब बहुत दिनों तक शिव को पार्वती से कोई पुत्र नहीं हुआ तब देवताओं ने यशर कर भ्रमि को शिव के पास भेजा ।

कपोत के वेश में अग्नि को देख शिव ने कहा "तुम्हीं हमारे वीर्य को धारण करो" और वीर्य को अग्नि के ऊपर ढाल दिया। उसी वीर्य से कात्तिकेय उत्पन्न हुए जिन्हें देवताओं ने श्रपना सेनापति बनाया। घोर युद्ध के उपरंत कात्तिकेय के वायु से तारकासुर मारा गया।

तारकियो-वि० स्त्री० [सं०] तारों से भरी।

संज्ञा स्त्री० रात्रि। रात।

तारकित-वि० [सं०] तारायुक्त। तारों से भरा हुआ। जैसे, तारकित गगन।

तारकी-वि० [सं० तारकिन्] [स्त्री० तारकिया] तारकित।

तारकूट-संज्ञा पुं० [सं० तार = चोरी + कूट = नकली] चांदी और पीतल के योग से बनी एक पातु।

तारकेश्वर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शिव। (२) एक शिवलिंग जो कलकत्ते के पास है। (३) एक रसोपध।

विशेष—पारा, गंधक, लोहा, बंग, अभ्रक, जवासा, जवासार, गोलरू के बीज, और हृद् हृन् सब को घावर घरापर लेकर घिसते हैं और फिर पेटे के पानी, पंचभूल के काढ़े और गोलरू के रस की भावना देकर प्रस्तुत औषध की दो दो रत्ती की गोखियाँ बना लेते हैं। इन गोखियों को शहद में फेंट कर खाते हैं। इस औषध के सेवन से बहुमूल्य रोग दूर होता है।

तारक्षिति-संज्ञा पुं० [सं०] पश्चिम दिशा में एक देश जहाँ ग्लेच्छों का निवास है। (यूदत्तसंहिता)

तारख-संज्ञा पुं० [सं० तारख] गरुड़। (हिं०)

तारखी-संज्ञा पुं० [सं० तारख] घोड़ा। (हिं०)

तारघर-संज्ञा पुं० [देग०] वह स्थान जहाँ से तार की खबर भेजी जाय।

तारघाट-संज्ञा पुं० [हिं० तार + घाट] कार्यसिद्धि का योग। मतलब निकलने का सुविधा। व्यवस्था। आयोजन। जैसे, वहाँ कुछ मिलने का तारघाट होगा, तभी वह गया है।

तारचरबी-संज्ञा पुं० [देग०] मोमचीना का पेड़।

विशेष—यह पेड़ छोटा होता है और चीन, जापान आदि देशों में बहुत लगाया जाता है। इसके फल में तीन बीजकेश होते हैं जो एक प्रकार के चिकने पदार्थ से भरे रहते हैं जिसे चरबी कहते हैं। चीन और जापान में इसी पेड़ की चरबी से मोमयन्त्रियाँ बनती हैं। चरबी के अतिरिक्त बीजों से भी एक प्रकार का पीला तेल निकलता है जो दवा और रोगन (वारनिस) के काम में आता है।

तारण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) दूसरे को) पार करने का काम। पार उतारने की क्रिया। (२) उद्धार। निस्तार। (३) उद्धार करनेवाला। तारनेवाला। उ०—जग कारन, तारन भव,

भजन धरनी भार।—सुजली। (४) विष्णु। (५) साठ संवसरो में से एक।

तारणी-संज्ञा स्त्री० [सं०] कश्यप की एक पत्नी जो यान और उपवास की माता कही जाती है।

तारतंडुल-संज्ञा पुं० [सं०] सफ़ेद ज्वार।

तारतम्य-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० तारतम्यिक] (१) न्यूनाधिक्य। परस्पर न्यूनाधिक्य का क्रम या संबंध। एक दूसरे से कमी घेरी का हिसाब। (२) उत्तरोत्तर न्यूनाधिक्य के अनुसार व्यवस्था। कमी घेरी के हिसाब से तर्तिय। (३) दो या कई वस्तुओं में परस्पर न्यूनाधिक्य आदि संबंध का विचार। गुण, परिमाण आदि का परस्पर मिलान।

तारतम्यबोध-संज्ञा पुं० [सं०] कई वस्तुओं में एक का दूसरे से घट कर या बढ़ कर होने से घट कर या बढ़ कर होने का विचार। कई वस्तुओं में भले बुरे आदि की पहचान। सापेक्ष संबंध ज्ञान।

तार तार-वि० [हिं० तार] जिसकी धज्जियाँ अलग अलग हो गई हों। टुकड़ा टुकड़ा। फटा फटा। उधड़ा हुआ।

क्रि० प्र०—करना।

संज्ञा पुं० [सं०] सांख्य के अनुसार एक गौण सिद्धि। पटित ध्यागम शास्त्र आदि की तर्क द्वारा युक्तियुक्त-परीचा द्वारा प्राप्त सिद्धि।

तारतोड़-संज्ञा पुं० [हिं० तार + तोड़ना] एक प्रकार का सुई का काम जो कपड़े पर होता है। कारचोपी। उ०—दिखावै कोई गोखरू मोड़ मोड़। कहीं सूत घूटे कहीं तारतोड़।—भीरहसन।

तारदी-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का कटिदार पेड़। तारदी वृक्ष।

पर्याय—खयूरा। तीथा। रकबीजका।

तारन-संज्ञा पुं० दे० "तारण"।

संज्ञा पुं० [हिं० तार = नीचे ?] (१) छत की ढाल। छाजन की ढाल। (२) छप्पर का वह भाग जो काँड़ियों के नीचे रहता है।

तारना-क्रि० सं० [सं० तारण] (१) पार लगाना। पार करना। (२) संसार के बलेश आदि से छुड़ाना। भवबाधा दूर करना। उद्धार करना। निस्तार करना। सद्गति देना। मुक्त करना। उ०—काहू ने न तारे तिन्हें गंगा तुम तारे और जेते तुम तारे तेते नभ में न सारे हैं।—पद्मकर।

तारपीन-संज्ञा पुं० [सं० टरपेयइन] चीड़ के पेड़ से निकला हुआ तेल।

विशेष—चीड़ के पेड़ में जमीन से कोई दो हाथ ऊपर एक खोखला गड्ढा फाट कर बना देते हैं और उसे नीचे की ओर

कुल्लु गहरा कर देते हैं। इसी गहरे किय हुए रुगन में चीड़ का पसेव निकल कर गोंद के रूप में झकटा होता है जिसे गोंदा-विरोधा कहते हैं। इस गोंद से भयके द्वारा जो तेल निकाल लिया जाता है उसे तारपीन का तेल कहते हैं। यह औषध के काम में आता है और दर्द के लिये उपकारी है।

तारपुत्र-संज्ञा पुं० [सं०] कुंड का पेड़।

तारवर्णी-संज्ञा पुं० [उ०] विजली की शक्ति द्वारा समाचार पहुँचानेवाला तार।

तारमाक्षिक-संज्ञा पुं० [सं०] रूपामकरी नाम की उपधातु।

तारयिता-संज्ञा पुं० [सं० तारयि०] [लो० तारयित्री] तारनेवाला। बद्वार करनेवाला।

तारल्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) जल, तेल आदि के समान प्रवाहशील होने का धर्म। द्रवत्व। (२) चंचलता। चपलता।

तारविमला-संज्ञा स्त्री० [सं०] रूपामकरी नाम की उपधातु।

तारसार-संज्ञा पुं० [सं०] एक उपनिषद् का नाम।

तारा-संज्ञा पुं० [म०] (१) नक्षत्र। सितारा।

धौ०—तारा मंडल।

मुद्गा०—तारे गिनना = विंता या आठरे में वैचैनी से रात काटना। दुःख से किसी प्रकार रात बिताना। तारे तिलना = तारि का चमकते हुए निकलना। तारों का दिखाई देना। तारे छिटकना = तारि का दिखाई पड़ना। आकाश स्वच्छ होना और तारों का दिखाई पड़ना। तारा टटना = चमकते हुए निंदक का आकाश में वेग से एक ओर से दूसरी ओर की जाते हुए या धृत्वी पर गिरते हुए दिखाई पड़ना। उल्कापात होना। तारा हथवा = (१) किमी नक्षत्र का अल होना। (२) शुक्र का अल होना (शुक्रास्त में हिंदुओं के यहाँ मंगल कार्य नहीं किए जाते)। तारे तोड़ जाना = (१) फोड़ बहूत ही कठिन काम कर दिखाना। (२) राश चलाकी का काम फलना। तारे दिखाना = प्रकृता स्त्री को छठी के दिन बाहर लाकर आकाश की ओर इसलिये तकाना जिसमें जिन भूल आदि का अरन रह जाय। (मुसलमान धियो में यह रीति है)। तारे दिखाने दे जाना = कमजोरी या दुर्बलता के कारण आँसों के सामने तिरमिगट्ट दिखाई पड़ना। तारा ली आँसों हो जाना = लक्ष्मी, यजन, कीचड़ आदि दूर होने के कारण आँस का स्वच्छ हो जाना। तारों की सुई = मड़े खेरे। तड़के, जब कि तारि का पुँधना प्रकार रहे। जैसे, तारों की सुई यहाँ से चल देंगे। तारा हो जाना = (१) धँस ऊँचे पर हो जाना। इतनी ऊँचाई पर पहुँच जाना कि तारे की तरह होया दिखाई दे। (२) इतनी दूर हो जाना कि होया दिखाई पड़े। बहुत फावने पर हो जाना।

(२) बृहस्पति की स्त्री का नाम जिसे चंद्रमा ने उसके इच्छानुसार रख लिया था। बृहस्पति ने जब अपनी स्त्री को चंद्रमा से मांगा तब चंद्रमा ने देना शक्यकार किया। इस पर बृहस्पति अत्यंत क्रुद्ध हुए और भोर युद्ध आरंभ हुआ। शन में ब्रह्मा ने उपस्थित होकर युद्ध शांत किया और तारा को ले कर बृहस्पति को दे दिया। तारा को गर्भवती देव बृहस्पति ने गर्भस्थ शिशु पर अपना अधिकार प्रकट किया। तारा ने तुरंत शिशु का पसव किया। देवताओं ने तारा से पूछा "श्रीक ठीक बताओ यह किसका पुत्र है?" तारा ने बड़ी देर के पीछे बताया कि "यह दस्युहंतम नामक पुत्र चंद्रमा का है।" चंद्रमा ने अपने पुत्र को प्रहय किया और उसका नाम बुध रखा। (३) आँस की पुतली। उ०—मेरे नैनो का तारा है मेरा गोविंद प्यारा है।—हरिश्चंद्र। (४) सितारा। भाग्य। किसमत। उ०—प्रीलम के मानु सो सुमान को प्रताप देखि तारे सम तारे गए मूँदि तरुन के।—भूपल।

संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) तंत्र के अनुसार दस महाविद्याओं में से एक। (२) जैनों की एक शक्ति। (३) बालि नामक यंदर की स्त्री और सुमेव की कन्या जिसने बालि के मारे जाने पर उसके भाई सुमीव के साथ रामचंद्र के आदेशानुसार विवाह कर लिया था। तारा पंचकन्याओं में मानी जाती है और प्रातःकाल उसके नाम लेने का यज्ञ माहात्म्य समझा जाता है। श्लोक—अहय्या द्रौपदी तारा कुंती मंदोदरी तया। पंच कन्या स्मरेन्नित्यं महापातकनाशनम्॥ (४) सिर में बाँधने का चिरी।

संज्ञा पुं० दे० "ताला"।

ताराकूट-संज्ञा पुं० [सं०] फलित ज्योतिष में धर कन्या के शुभाशुभ फल को सूचित करनेवाला एक कूट जिसका विचार विवाह स्थिर करने के पहले किया जाता है।

ताराक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] ताराकाच देव।

ताराग्रह-संज्ञा पुं० [सं०] मंगल, बुध, शुक्र, शुक और शनि इन पाँच ग्रहों का समूह। (बृहत्संहिता)।

ताराज-संज्ञा पुं० [फा०] (१) लूट पाट। (लरा०)। (२) नाश। ध्वंस। बरबादी।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

तारात्मक नक्षत्र-संज्ञा पुं० [सं०] आकाश में प्रति घट के अन्तर और दक्षिण ओर के तारों का समूह जिन में अधिनी भास्यी आदि हैं।

ताराधिप-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चंद्रमा। (२) शिव। (३) बृहस्पति। (४) बालि और सुमीव।

ताराधीश—संज्ञा पुं० दे० "ताराधिप" ।
 तारानाथ—संज्ञा पुं० [सं०] (१) चंद्रमा । (२) बृहस्पति । (३) शक्ति । (४) सुमीव ।
 तारापति—संज्ञा पुं० दे० "तारापति" ।
 तारापथ—संज्ञा पुं० [सं०] प्राकार ।
 तारापोड—संज्ञा पुं० [सं०] (१) चंद्रमा । (२) मलयपुराण के अनुसार अयोध्या के एक राजा का नाम । (३) कारमीर के एक प्राचीन राजा का नाम ।
 ताराम—संज्ञा पुं० [सं०] नारद ।
 तारामूषा—संज्ञा स्त्री० [सं०] रात्रि । रात ।
 तारास्र—संज्ञा पुं० [सं०] कुरार ।
 तारामंडल—संज्ञा पुं० [सं०] (१) नक्षत्रों का समूह या घेरा । (२) एक प्रकार की आतशबाजी ।
 तारामंडूर—संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक में एक विशेष प्रकार का मंडूर जो अनेक द्रव्यों के योग से बनता है ।
 तारामृग—संज्ञा पुं० [सं०] मृगशिरा नक्षत्र ।
 तारायण—संज्ञा पुं० [सं०] आकाश ।
 तारावि—संज्ञा पुं० [सं०] विट्मार्गिक नाम की उपधातु ।
 तारिक—संज्ञा पुं० [सं०] नदी आदि पार उतारने का भाड़ा या महसूल । शतराई ।
 तारिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] ताड़ी नामक मद्य ।
 * संज्ञा स्त्री० दे० "तारिका" । उ०—तारिका हुरानी, समचुर पोले, श्रवण मनक परी लखिता के तान की ।—सूर ।
 तारिणी—वि० स्त्री० [सं०] तारनेवाली । उद्धार करनेवाली ।
 संज्ञा स्त्री० तारा देवी । दे० "तारा" ।
 तारी—संज्ञा स्त्री० [दे०] (१) एक प्रकार की थिड़िया । (२) निद्रा । समाधि । ध्यान ।
 * संज्ञा स्त्री० दे० "ताली" ।
 * संज्ञा स्त्री० दे० "ताड़ी" ।
 तारीक—वि० [फ्रा०] (१) स्याह । काला । (२) धुँपला । धँपेरा ।
 तारीकी—संज्ञा स्त्री० [फ्रा०] (१) स्याही । (२) बंधकार ।
 तारीख—संज्ञा स्त्री० [फ्रा०] (१) महीने का हर एक दिन (२४ घंटों का) । तिथि ।
 मुहा०—तारीख बाखना = तिथि पार आदि लिखना ।
 (२) वह तिथि जिसमें पूर्व काल के किसी वर्ष में कोई विशेष घटना हुई हो, विशेषतः ऐसी जिस का उत्सव या शोक मनाया जाता हो अथवा जिसके विषे कुछ रीति व्यवहार प्रति वर्ष करना पड़ता हो । (३) नियत तिथि । किसी काम

के विषे ठहराया हुआ दिन । जैसे, कल सुकृष्णे की तारीख है ।
 मुहा०—तारीख बाखना = तारीख मुफर्रर करना । दिन-नियत करना । तारीख टखना = किसी काम के विषे पहले से नियत दिन के और आगे कोई दिन नियत होना । जैसे, उनके सुकृष्णे की तारीख टख गई । तारीख पड़ना = किसी काम के विषे दिन मुकर्रर होना । तिथि नियत होना ।
 (४) तवारीख । इतिहास ।
 तारीफ़—संज्ञा स्त्री० [फ्रा०] (१) बख्श । परिभाषा । (२) बख्त । विवरण । (३) बखान । प्रशंसा । स्तुति ।
 क्रि० प्र०—करना ।—होना ।
 (४) प्रशंसा की बात । विशेषतः गुण । सिफ़त । जैसे, यही तो इस दवा में तारीफ़ है कि ज़रूर भी नहीं लगती ।
 तारुण्य—संज्ञा पुं० [सं०] यौवन । जवानी ।
 तारुण्य—संज्ञा पुं० दे० "तारु" ।
 तारेय—संज्ञा पुं० [सं०] (१) तारा या शक्ति का पुत्र अंगद । (२) बृहस्पति की छोटी तारा का पुत्र सुभ ।
 तार्किक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) तर्कशास्त्र का ज्ञानेवाला । (२) तत्त्वज्ञ । दार्शनिक ।
 तार्क्ष्य—संज्ञा पुं० [सं०] (१) करण्य । (२) करण्य के पुत्र गरुड़ ।
 तार्क्ष्य—संज्ञा पुं० [सं०] रसांजन ।
 तार्क्ष्यी—संज्ञा स्त्री० [सं०] पाताल गहरी लता । छिँटी । छिरिहटा ।
 तार्क्ष्य—संज्ञा पुं० [सं०] (१) वृष मुनि के गोमंत्र । (२) गरुड़ । (३) गरुड़ के चरणों में अक्षय । (४) घोड़ा । (५) रसांजन । (६) सर्प । (७) अथर्ववेद । एक प्रकार का शालवृक्ष । (८) एक पर्वत का नाम । (९) महादेव । (१०) सोना । स्वर्ण । (११) रथ ।
 तार्क्ष्य—संज्ञा पुं० [सं०] रसेत । रसांजन ।
 तार्क्ष्यप्रसव—संज्ञा पुं० [सं०] अथर्ववेद ।
 तार्क्ष्यशैल—संज्ञा पुं० [सं०] रसांजन । रसेत ।
 तार्क्ष्यी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक बिलता का नाम ।
 तार्ष्य—संज्ञा पुं० [सं०] हृषा नामक ज्ञता से घनाया हुआ बिल जिसका व्यवहार वैदिक काल में होता था ।
 ताल—संज्ञा पुं० [सं०] (१) हाथ का ताल । करतल । हथेली । (२) वह शब्द जो दोनों हथेलियों को एक दूसरे पर मारने से उत्पन्न होता है । करतलध्वनि । ताली । (३) नाचने या गाने में उसके काल और क्रिया का परिमाण, जिसे बीच बीच में हाथ पर हाथ मार कर स्पष्ट करते जाते हैं ।

विशेष—संगीत के संस्कृत ग्रंथों में ताल दो प्रकार के माने गए हैं—मार्ग और देशी। भारतयुनि के मत से मार्ग ६० हैं—चच्चपुट, चाचपुट, पटपितापुत्रक, वदुधटक, सन्नपात, कंकण, कोकिलारव, राजकोलाहल, रंगविद्याघर, शचीप्रिय, पार्वतीलोचन, राजचूडामणि, जयश्री, वाद-काकुल, कंदर्प, नलकूवर, दर्पण, रतिलीन, मोघपति, श्रीरंग, सिंहाविक्रम, क्षीपक, मल्लिकामोद, गजलाल, चर्चरी, कुहक, विजयानंद, वीरविक्रम, टैंगिक, रंगाभरथ, श्रीकीर्ति, वनमाली, चतुस्रुख, सिंहनंदन, नंदीश, चंद्रविं व, द्वितीयक, जयमंगल, गंधर्व, मकरंद, शिर्भंगी, रतिताल, वसंत, जगन्मप, गादड़ि, कविशेखर, घोष, हरचलभ, भैरव, गतप्रत्यागत, महताली, भैरवमलक, सरस्वतीकेशभरथ, प्रीड़ा, निःसाह, मुष्णवाली, रंगराज, भरतानंद, आदितालक, संपकेंद्रक। इसी प्रकार १२० देशी ताल गिनाए गए हैं। इन तालों के नामों में भिन्न भिन्न ग्रंथों में विभिन्नता देखी जाती है। इन नामों में से आज कल बहुत ही थोड़े प्रचलित हैं। संगीत में ताल देने के लिये तयले, मूर्दंग, डोल और मँजीरे आदि का व्यवहार किया जाता है।

क्रि० प्र०—देवा।—यजाना।

पि०—तालमेज।

मुहा०—ताल वेताल = (१) जिसका ताल ठिकाने से न हो।

(२) अथवा या बिना अथवा के। मीठे बेमीठे। ताल से वेताल होना = ताल के नियम से बाहर हो जाना। उलझ जाना (गाने बजाने में)।

(४) अपने जंघे या बाहु पर जोर से दधेली मार कर उत्पन्न किया हुआ शब्द। कुरसी आदि लड़ने के लिये जब किसी को खड़कारते हैं तब इस प्रकार हाथ मारते हैं।

मुहा०—ताल टोकना = लड़ने के लिये धक्कारना।

(२) मजीरा या क्रांति नाम का बाजा। (६) चरमे के पथर या कर्प का एक पहा। (७) हरताल। (८) तालीशपत्र।

(८) ताड़ का पेड़ या फल। (१०) खेल। विजयफल।

(अनेकार्थ)। (११) हाथियों के कान फटजाने का शब्द।

(१२) कंबाई की एक माप। वित्त। (१३) ताला। (१४)

तलवार की मूठ। (१५) एक नरक। (१६) महादेव। (१७)

हुना के सिंहासन का नाम। (१८) पिंशल में डगस के दूसरे भेद का नाम जो एक एक और एक लघु का होता है—३।

संज्ञा पुं० [सं० तल] यह नीची भूमि या खंया चीफ़ा गड्ढा जिसमें बरसात का पानी जमा रहता है। अजाराथ। पोखरा। हावाबा।

तालकंद—संज्ञा पुं० [सं०] तालमूली। मुसली।

तालक—संज्ञा पुं० दे० "तलकलुक"। उ०—हैं तो एक बाइक

न मोहिं कइ तालक पै देखो तात तुमहूँ को कैसी लघुताई है।—इतुमान।

संज्ञा पुं० [सं०] (१) हरताल। (२) ताला। (३) गोपीचंदन।

तालकट—संज्ञा पुं० [सं०] बृहत्संहिता के अनुसार दक्षिण का एक देश जो कदाचित् बीजापुर के पास का तालीक्रेट हो।

तालकी—संज्ञा स्त्री० [सं०] ताड़ी। तालरस।

तालकूटा—संज्ञा पुं० [हिं० तल + कूटा] भाँक। यज्ञ कर भजन आदि गानेवाला।

तालकेतु—संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जिसकी पताका पर ताड़ के पेड़ का चिह्न हो। (२) भीष्म। (३) बलराम।

तालकेदवार—संज्ञा पुं० [सं०] एक श्रौपथ जो कुट्ट, फोड़ा फुंसी आदि में दी जाती है।

विशेष—दे० मारो हरताल में पेटे के रस, धीकूभार के रस और तिल के तेल की भायना देते हैं। फिर दो मारो गंधक और एक मारो पारे को मिला कर कजली करते और उसमें भायना दी हुई हरताल मिला कर फिर सय में क्रम से पकरी के दूध, नीबू के रस और धीकूभार के रस की तीन दिन भायना देते हैं। अंत में सब का गोख फतरा बना कर उसे हाँड़ी में चार के भीतर रख बारह पहर तक पकाते हैं और फिर ढंढा होने पर उतार लेते हैं।

तालक्रोशा—संज्ञा पुं० [सं०] एक पेड़ का नाम।

तालक्षीर—संज्ञा पुं० [सं०] खरू या ताड़ की चीनी।

तालचर—संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक देश का नाम। (२) उस देश का निवासी।

तालजंघ—संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक देश का नाम। (२) उस देश का निवासी। (३) एक यदुवंशी राजा जिसके पुत्रों ने राजा सगर के पिता अस्तित को राजन्युत किया था।

तालरंग—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का धाना जिससे ताल दिया जाता है।

तालचज—संज्ञा पुं० [सं०] (१) यह जिसकी ध्वजा पर ताड़ के पेड़ का चिह्न हो। (२) भीष्म। (३) बलराम। (४) एक पर्वत का नाम।

तालनयमी—संज्ञा स्त्री० [सं०] भादु शुकल नयमी।

विशेष—इस दिन किराँ बूत और तालपत्र आदि से गीता का पूजन करती हैं।

तालपत्रिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] तालमूली। मुसली।

तालपत्रो—संज्ञा स्त्री० [सं०] मूलाकर्णी। मूकपर्णी। मूलाकानी

सूरी।

तालपर्यी—संज्ञा पुं० [सं०] कपूर कचरी।

तालपर्यी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सैक। (२) कपूर कचरी

तालकंद—संज्ञा पुं० [सं०] तालमूली। मुसली।

तालक—संज्ञा पुं० दे० "तलकलुक"। उ०—हैं तो एक बाइक

(३) तालमूली । सुसली । (४) सोया । मोषा नाम का साग ।

तालपुष्पक-संज्ञा पुं० [सं०] पुंवरिया । प्रपौढीक ।

तालवन्द-संज्ञा पुं० [सं० ताल, तालिका + वन्ध] वह खेला जिसमें आमदनी की हर पङ्क मद्द दिखलाई गई हो ।

तालवेन-संज्ञा स्त्री० [सं० तालवेण्ड] एक वाजा ।

तालवैताल-संज्ञा पुं० [सं० ताल + वैताल] देव देवता या यज्ञ । ऐसा प्रसिद्ध है कि राजा विक्रमादित्य ने इन्हें निन्द किया था और ये बराबर उनकी सेवा में रहते थे ।

ताल-मखाना-संज्ञा पुं० [हिं० ताल + मखान] (१) एक पौधा जो गीली या सीढ़ जमीन में होता है, विशेषतः पानी या दलदलों के निकट । इसकी पत्तियाँ ४ या ६ श्रृंगुल लंबी और श्रृंगुल सवा श्रृंगुल चौड़ी होती हैं । इसकी जड़ से चारों ओर बहुत सी टहनियाँ निकलती हैं-जिनमें थोड़ी थोड़ी दूर पर गुँठों के पौधे की गाँठों के ऐसे गाँठें होती हैं । इन गाँठों पर काँटे होते हैं । इन्हीं गाँठों पर फूल या बीजों के कोशों के थंकर होते हैं । फूल छोटे छोटे और सफेद रंग के होते हैं । फूलों के झड़ जाने पर गाँठ के कोशों में जीरे के ऐसे बीज पड़ते हैं, जो दवा के काम में आते हैं । वैचक में ये बीज मधुर, शीतल, पलकारक वीर्यवर्द्धक तथा पयरी, वातरक, प्रमेह आदि को दूर करनेवाले माने जाते हैं । वात और गठिया में भी तालमखाने के बीज उपकारी होते हैं । डाक्टरों ने भी परीचा करके इन्हें मूत्रकारक, पलकारक, और जननेंद्रिय संबंधी रोगों के लिये उपकारक बताया है । तालमखाने का पौधा दो प्रकार का होता है—एक ताल फूल का, दूसरा सफेद फूल का । सफेद फूल का ही अधिक मिलता है । इसकी पत्तियों का साग भी कहीं कहीं लाया जाता है ।

पर्याय—कोकिलाच । काकेण्ड । इडर । सुरक । मिश्र । कांठेण्ड । इक्षुपांथा, शृगाली । शृखलि । शूरक । शृगालघटी । वज्राणिय । शृखला । धनकंटक । यज्ञ । त्रिभुर । शुक्रपुष्प (सफेद तालमखाना) । छत्रक और अतिच्छत्र (तालमखाना) । (२) दे० "मखाना" ।

तालमूलिका-संज्ञा स्त्री० दे० "तालमूली" ।

तालमूली-संज्ञा स्त्री० [सं०] सुसली ।

तालमेल-संज्ञा पुं० [हिं० ताल + मेल] (१) ताल सुर का मिलान । (२) मिलान । मेलमेल । वपयुक्त योजना । ठीक ठीक संयोग ।

मुहा०—तालमेल खाना=ठीक ठीक संयोग होना । प्रकृति आदि का मेल होना । विधि मिलना । मेल पटना । तालमेल बैठना=दे० "ताजमेल खाना" ।

(३) वपयुक्त अवसर । अनुकूल संयोग । जैसे, तालमेल देल कर काम करना चाहिए ।

तालरस-संज्ञा पुं० [सं०] ताड़ी । ताड़ के पेड़ का मधु । व०—तालरस बलराम चाल्यो मन भयो आनंद । गोपसुत सय टेरि लीन्हे सुधि भई नैदन्द ।—सूर ।

ताललक्षण-संज्ञा पुं० [सं०] तालध्वजा । बलराम ।

नांलगवन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) ताड़ के पेड़ों का जंगल । (२) प्रस मंडल के अंतर्गत एक वन जो गोवर्द्धन के उत्तर जमुना के किनारे पर है । कहते हैं यहाँ पर बलराम ने धनुकवध किया था । व०—सदा कहन लागे हरि सैं तप । चलौ ताल-वन कीं जैसे श्रय ।—सूर ।

तालवाही-वि० [सं०] वह वाजा जिससे ताल दिया जाय । जैसे, मंजीरा, मर्गाक आदि ।

तालवृत्त-संज्ञा पुं० [सं०] (१) ताड़ के पत्ते का पंजा । (२) एक प्रकार का सोम । (सुश्रुत)

तालव्य-वि० [सं०] (१) ताल संबंधी । (२) ताल से उच्चारण किया जानेवाला वर्ण ।

विशेष—ह, हँ, घ, छ, ज, क, झ, य, श—ये वर्ण तालव्य कहलाते हैं ।

तालसांस-संज्ञा पुं० [सं० ताल + सांस = गुरा] ताड़ के फल के भीतर का गुद्दा जो खाने के काम में आता है ।

तालस्कंध-संज्ञा पुं० [सं०] एक अक्ष जिसका नाम वाल्मीकि रामायण में आया है ।

तालाक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जिसका चिह्न ताड़ हो । (२) बलराम । (३) एक प्रकार का साग । (४) आरा । (५) शुभलक्षणवान् मनुष्य । (६) पुस्तक । (७) महादेव ।

तालाकुर-संज्ञा पुं० [सं०] मैनसिल ।

ताला-संज्ञा पुं० [सं० तालक] लोहे पीतल आदि की-वह कल जिसे बंद कियाइ सँदूक आदि की कुंजी में फँसा देने से किवाड़ या सँदूक बिना कुंजी के नहीं खुल सकता । कपाट ध्वस्त रखने का यंत्र । जँदरा । कुल्फ ।

क्रि० प्र०—खुलाना ।—खोलना ।—बंद होना, करना ।—लगाना ।—लगाना ।

यो०—ताला कुंजी ।

मुहा०—ताला जकड़ना=ताला लगाकर बंद करना । ताला तोड़ना=किमी दूसरे की वस्तु को चुराने या छुटने के लिये उसके घर सँदूक आदि में लगे हुए ताले को तोड़ना । ताला भिड़ना=ताला बंद होना । ताला भेड़ना=ताला लगाना ।

ताला कुंजी-संज्ञा स्त्री० [हिं० ताला + कुंजी] (१) किवाड़ सँदूक आदि बंद करने का यंत्र ।

क्रि० प्र०—लगाना ।

(२) लड़कों का एक खेल ।

तालाष्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] कपूर कचरी ।

तालाश-संज्ञा पुं० [हिं० ताल + फ० श्व] जलाराय । सरोवर । पोस्ता ।

तालिक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) फैली हुई हथेली । (२) चपत । तमाचा । (३) नाथी या तागा जिससे भिन्न भिन्न विषयों के तालपत्र या कागज बंधे हैं । (४) तालपत्र या कागज का पुलिंदा ।

तालिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) ताली । कुंजी । (२) नाथी या तागा जिससे भिन्न भिन्न विषयों के तालपत्र या कागज बंधे हुए होते हैं । तालपत्र या कागज का पुलिंदा । (३) नीचे ऊपर खिंची हुई बलुयों का प्रम । नीचे ऊपर खिंचे हुए नाम जिसमें ब्रह्म ब्रह्म कीर्ति मिलाई गई हैं । सूची । फिहरिस्त । (४) चपत । तमाचा । (५) ताल-मूली । मुसली । (६) मजीठ ।

तालिक-संज्ञा पुं० [सं०] हूँ वनेवाला । तलाय करनेवाला । चाहनेवाला ।

तालिकद्वय-संज्ञा पुं० [सं०] विद्यार्थी ।

तालिम * †-संज्ञा स्त्री० [सं० तप] शय्या । बिस्तर । (हिं०)

तालियामार-संज्ञा पुं० [हिं० ताला + मारना] गलही । जहाज या नाव का अगला भाग जो पानी काटता है । (ख०)

ताली-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कुंजी । चाबी । लोहे की वह कील जिससे ताका खोला और बंद किया जाता है । (२) ताड़ी । ताड़ का मप । (३) तालमूली । मुसली । (४) भूर्धाबला । भूम्यामलकी । (५) अरहर । (६) तालवली कता । (७) एक प्रकार का छोटा ताड़ जो बंगाल और बरमा में होता है । बजरमट्ट । बट्ट । (८) एक चर्यावृत्त । (९) मेहराय के बीचो बीच का पाथर या हँड ।

संज्ञा स्त्री० [सं० ताल] (१) दोनो फैली हुई हथेलियों को एक दूसरे पर मारने की क्रिया । करतलों का परस्पर आघात । धक्के ।

क्रि० प्र०—पीटना ।—बनाना ।

मुद्दा०—ताली पीटना या बजाना = हूँठी उड़ाना । उपहास करना । ताली बज जाना = उपहास होना । निरादर होना । एक हाथ से ताली नहीं बजती = वैर या प्रीति एक ओर से नहीं होती । दोनो के बरने से लड़ाई भगाया या प्रेम का व्यवहार होता है ।

(७) दोनो हथेलियों को फैला कर एक दूसरे पर मारने से उत्पन्न शब्द । करतल-ध्वनि ।

संज्ञा स्त्री० [हिं० ताल = जलाराय] छोटा ताल । तलैया । गड़दी । ३०—करइ कि कोचर मालि सु साली । मुक्ता प्रसव कि सेबुक तानी ।—मुसली ।

संज्ञा स्त्री० [दे०] पैर की बिल्ली उँगली का पोर या ऊपरी भाग ।

तालीका-संज्ञा पुं० [सं० तपश्लका] (१) माल अस्त्राव की कुंजी । मकान की कुंजी । (२) कुर्ते किप हुए थसबाव की फिहरिस्त ।

तालीपत्र-संज्ञा पुं० [सं०] तालीश पत्र ।

तालीम-संज्ञा स्त्री० [सं०] शिष्या । अध्यासाय उपदेश जैसे, वसकी तालीम शब्द नहीं हुई है ।

क्रि० प्र०—देना ।—याना ।—लेना ।

तालीशपत्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) तमाल या तेजपत्ते की जाति का एक पेड़-ओ हिमालय परसिंध से सतलज तक थोड़ा बहुत और उससे पूर्व सिक्किम तक बहुत अधिक होता है । आसाम में खसिया की पहाड़ियों से लेकर बरमा तक इसके पेड़ पाए जाते हैं । इसके पत्ते एक लंबे डंडल के दोनो ओर लगते हैं और तेजपत्ते से लंबे होते हैं । डंडल में खनूर की तरह चौकोर खाने से होते हैं । इसकी लकड़ी बहुत खरी होती है । पत्ते बाजारों में तालीशपत्र के नाम से विकते हैं और दवा के काम में आते हैं । वैद्यक में तालीशपत्र मधुर, गरम, कफवतनाशक तथा गुल्म, चय रोग और खाँसी को दूर करनेवाला माना जाता है ।

पर्या०—धारीपत्र । शुक्रोदर । प्रथिकापत्र । तुलसीवृद्ध । अर्धबंध । पत्राक्षय । कतिपत्र । कटिपुट्ट । नीलांबर । तालीपत्र । तमाहाय ।

(२) दो दाईं हाथ ऊँचा एक पीया जो उत्तरीय भारत, बंगाल तथा समुद्र के किनारे के देशों में होता है । यह भूर्धाबला की जाति का है । इसकी सूखी पत्तियाँ भी दवा के काम में आती हैं । इसे पनिया आमला भी कहते हैं । इसका पीया भूर्धाबले से बड़ा और चिन्नचिन्न से मिलता जुलता होता है ।

तालीशपत्रो-संज्ञा स्त्री० [सं०] तालीशपत्र ।

तालु-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० तालभ्य] तालू ।

तालुकटक-संज्ञा पुं० [सं०] एक रोग जो बच्चों के तालू में होता है । इसमें तालू में कटि से पड़ जाते हैं और तालू घँस जाता है । इसके कारण बच्चा स्तन चढ़ी कठिनाई से पीता है । जब यह रोग होता है तब बच्चे को पतले दस्त भी आते हैं ।

तालुका-संज्ञा स्त्री० [सं०] तालू की नाड़ी ।

संज्ञा पुं० [सं०] दे० "तपस्वकु" ।

तालुजिह्व-संज्ञा पुं० [सं०] मन्त्रियाल ।

तालुपाक-संज्ञा पुं० [सं०] एक रोग जिसमें गरमी से तालू पक जाना है और उसमें घाव सा हो जाता है ।

तालुपुपुट-संज्ञा पुं० [सं०] तालुपाक रोग ।

तालुशोष-संज्ञा पुं० [सं०] एक रोग जिसमें तालू सूख जाता है और उसमें फट कर घाव से हो आते हैं ।

ताल्-संज्ञा पुं० [सं० तालु] (१) सुँह के भीतर की ऊपरी घुत जो ऊपरवाले दाँतों की रंक्ति से लेकर छोटी जीभ या फीचे तक होती है ।

विदोष—इस का दाँचा कुछ दूर तक तो कड़ी हड्डियों का होता है, उसके पीछे फिर मुलायम मांस की तहों के कारण कोमल होता है, जो नाक के पीछेवाले कोरा घौर मुखविवर के बीच एक परदा सा जान पड़ता है ।

मुहा०—ताल् बटाना = सुरत के जनमे हुए बच्चे के तालू को दश कर ठीक करना । (दाइयाँ या चमारिनें यह काम करती हैं) । तालू में दाँत जमना = चटख आना । जुरे दिन आना । (प्रायः कौध में दूधरे के प्रति लोग इतना यत्न का व्यवहार करते हैं । बच्चे को तालू में फाँटा या अकुर हा निकल आता है जिसे तालू में दाँत निकलना कहते हैं । इसमें बच्चे को बड़ा कष्ट होता है) । तालू खटकना = तालू का रोग के कारण नीचे खटक आना । तालू से जीम न खगना = चुपचाप न रहना जाना । बके जना ।

(२) सोपड़ी के नीचे का भाग । दिमाग ।

मुहा०—ताल् चटकना = (१) सिर में बहुत अधिक गरमी जान पड़ना । (२) प्यास से सुँह तुलना । जैसे, प्यास से तालू चटकना ।

(३) घोंघों का एक पेश ।

ताल्फाड़-संज्ञा पुं० [हिं० तालू + फाड़ना] हाथियों का एक रोग जिसमें हाथी के तालू में घाव हो जाता है ।

तालेबर-वि० [सं० ताला = भाव + बर (भव०)] धनाढ्य । धनी ।

ताल्लुक-संज्ञा पुं० दे० "समलुक" ।

ताल्लवुंद-संज्ञा पुं० [सं०] एक रोग जिसमें तालू में एक कमजोर के आकार का बड़ा सा संकुच या फाँटा सा निकल आता है जिसमें बहुत पीड़ा होती है ।

ताव-संज्ञा पुं० [सं० तव, भा० तव] (१) वह गरमी जो किसी वस्तु को तपाने या पकाने के लिये पहुँचाई जाय ।

दि० प्र०—जगना ।

दि०—तावबंद । ताव भाव ।

मुहा०—(किसी वस्तु में) ताव घाना = (किसी वस्तु को) जितना चाहिए उतना गरम हो जाना । जैसे, अभी ताव नहीं आया है परिवार कड़ाह में मत डालो । ताव खाना = आँच में गरम होना । ताव खा जाना = (१) तेज आँच के कारण बहुत अधिक गरम हो जाना या जल जाना । (२) आँच पर चढ़े हुए कड़ाह के घी, चाशनी, पाग इत्यादि का आवश्यकता से अधिक गरम हो जाना । किसी पाग, या पकवान आदि का कड़ाह में जल जाना । जैसे, चासनी का ताव खा जाना, पाग का ताव खा जाना । (३) किसी लौहार्थ तवाई या विपक्षार्थ हुई वस्तु का

आवश्यकता से अधिक ठंडा होना । ताव देखना = आँच का श्रंदाज देखना । ताव देना = (१) आँच पर रखना । गरम करना । (२) आग में धातन करना । तपाना । (धनु) । ताव विगड़ना = पकाने में आँच का कम या अधिक हो जाना (जितने कोई वस्तु विगड़ जाय) । मुँहों पर ताव देना = उपजता आदि के अभिमान में मुँहें उँटाना । परक्रम, वज्र आदि के घमंड में मुँहों पर हाथ फेरना ।

(२) अधिकार मिले हुए शौच का धावेरा । घमंड लिए हुए मुँहों की भेंक ।

मुहा०—ताव दिताना = अभिमान मित्रा हुआ शौच प्रकट करना । यहूयन दिखाने हुए विगड़ना । अर्थात् दिताना । ताव में घाना = अभिमान मिले हुए शौच के अत्यंत में होना । अहंकार मिश्रित शौच के परा में होना । जैसे, ताव में आकर कहाँ मेरी चीजें भी न फेंक देना ।

(१) अहंकार का यह धावेरा जो किसी के बढ़ावा देने खल-कारने आदि से व्यपन्न होता है । शोली की भेंक । जैसे, ताव में आकर इतना चंदा लिए से दिया, दोगे कहाँ से ? (४) किसी वस्तु के तत्काल होने की चोर इच्छा या बरकंडा । ऐसी इच्छा जिसमें उतावलापन हो । चयपट होने की चाह या धावरयकता ।

मुहा०—ताव चरना = (१) प्रयत्न इच्छा होना । ऐसी इच्छा होना कि कोई बात चयपट हो जाय । (२) कामोदीपन होना । ताव पर = जब इच्छा या आवश्यकता हो उसी समय । जल्दत के भौड़े पर । जैसे, तुम्हारे ताव पर से रूपया नहीं मिल सकता ।

संज्ञ पुं० [फा० ता = सत्या] कामज का एक तल्ना । जैसे, चार ताव कामज ।

तावस्-कि० वि० [सं०] (१) उतने काज तक । उतनी देर तक । तब तक । (२) उतनी दूर तक । यहाँ तक । (३) उतने परिमाण तक । उतने तक ।

विदोष—यह "भावश्" का संबंधयुक्त शब्द है ।

तापनाभा-कि० सं० [सं० तपन] (१) तपाना । गरम करना । (२) जलाना । (३) हाहना । संताप पहुँचाना । दुःख पहुँचाना ।

तावबंद-संज्ञा पुं० [हिं० तव + फा० बंद] वह शौच जिसके प्रयोग से चाँदी का लोटापन तपाने पर भी प्रकट न हो ।

ताव भाव-संज्ञा पुं० [हिं० तव + भाव] उपयुक्त अवसर । मौका । परिस्थिति ।

वि० शोधा सा । जरा सा । हलका सा ।

तावर-संज्ञा स्त्री० दे० "तावरी" ।

तायरी-संज्ञा स्त्री० [सं० ताय, हिं० तव + री (भव०)] (१)

ताप । दाह । जलन । (२) धूप । घाम । (३) दुखार । श्वर ।
हारत । (४) गरमी से आया हुआ चकर । मूर्च्छा ।

क्रि० प्र०—घाना ।

ताघरो—संज्ञा पुं० [हिं० ताव + रा (प्रत्य०)] (१) ताप । दाह ।
जलन । (२) धूप । घाम । मूर्त्य की गरमी । श्रातप ।
३०—में जमुना जल भरि घर आवति मो को लागी
तावरो ।—मूर । (३) गरमी से आया हुआ चकर । घुमेर ।
मूर्च्छा ।

क्रि० प्र०—आना ।

ताघर्या—संज्ञा स्त्री० [हिं० ताव] जहरी । उतावलापन । दहपड़ी ।
ताघर्या—संज्ञा पुं० [हिं० ताव] (१) दे० "तवा" । (२) यह कथा
खपड़ा या मधुभा जिसके किनारे अग्नी मोटे म गप हैं ।
ताघान—संज्ञा पुं० [फा०] दूँड । डाँड़ । हानि का पडटा । यह
चीज जो चुकसान भरने के लिये दी या ली जाय ।

क्रि० प्र०—देना ।—लेना ।

ताघिय—संज्ञा पुं० दे० "तावीप" ।
ताघियी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) देवकन्या । (२) नदी । (३)
पृथिवी ।

ताघीज—संज्ञा पुं० [४० सभवाँज] (१) यंत्र, मंत्र या कवच जो
जिसी संसुट के भीतर रख कर गले में या बाँह पर पहना
जाय । (२) सोने, चाँदी, ताँबे आदि का चौकेर या अठ-
पहना, गोख या चिपटा संसुट जिसे तागे में धगा कर गले
या बाँह पर पहनते हैं । ये संसुट येँ ही गहने की तरह भी
पहने जाते हैं और इनके भीतर यंत्र भी रहता है ।

मुहा०—ताघीज बाँधना = रक्षा के लिये देवता का मंत्र आदि
लिख कर बाँधना । कवच बाँधना ।

ताघीप—संज्ञा पुं० [सं०] (१) सोना । स्वर्ण । (२) स्वर्ग । (३)
समुद्र ।

ताघुरि—संज्ञा पुं० [यून० टारस] वृष राशि ।

ताशा—संज्ञा पुं० [५० तास = तग या चौड़ा बरतन] (१) एक प्रकार
का जुरदाजी कपड़ा जिसका तागा रेशम का और घाना
बादले का होता है । जुरदाजू । (२) खेलने के लिये मोटे
कागज का चौखूँटा टुकड़ा जिस पर रंगों की बूटियाँ या
तसवीरें पनी रहती हैं । खेलने का पत्ता । (३) तारा का
खेल ।

विशेष—ताशा के खेल में चार रंग होने हैं—हुमम, चिड़ी,
पान और हँट । एक एक रंग के तरह तरह पत्ते होते हैं ।
एक से दस तक तंग बूटियाँ होती हैं जिन्हें कमरा: एका,
दुही (या दुड़ी), तिक्की, चौकी, पंजी, घुका, सत्ता, अट्टा,
नहका और दूहका कहते हैं । इनके अतिरिक्त तीन पत्तों में
कमरा: गुलाम, बीधी और बादशाह की तसवीरें होती हैं ।
इस प्रकार मध्येक रंग के तरह पत्ते और सप मिलाकर भावन

पत्ते होते हैं । खेलने के समय खेलनेवालों में ये पत्ते उलट
कर बराबर बराबर बाँट दिए जाते हैं । साधारण खेल
(रंगमार) में किसी रंग की अधिक बूटियोंवाला पत्ता उसी
रंग की कम बूटियोंवाले पत्ते को मार सकता है । इसी
प्रकार दूहले को गुलाम मार सकता है और गुलाम को बीधी,
बीधी को बादशाह और बादशाह को एका । एका सप पत्तों
को मार सकता है । ताशा के खेल कई प्रकार के होते हैं जैसे,
टूँप, गन, गुलामचोर इत्यादि ।

ताशा का खेल पहले पहल किस देश में निकला इसका ठीक
पता नहीं है । कोई मित्र देश को, कोई बाबुल को, कोई
शरय को और कोई भारतवर्ष को इसका आदि स्थान पत-
लाता है । फारस और शरय में गंजीफे का खेल बहुत दिनों से
प्रचलित है जिसके पत्ते स्पष्ट के आकार के गोल गोल होते
हैं । इसी से उन्हें तारा कहते हैं । अकर के समय हिंदुस्तान में
जो तारा प्रचलित थे उनके रंगों के नाम और थे । जैसे, शरव-
पति, गजपति, नरपति, गजपति, दलपति इत्यादि । इनमें
पोड़े, हाथी आदि पर सवार तसवीरें पनी होती थीं । पर
आज कल जो तारा खेले जाते हैं वे पूरे प से ही आते हैं ।

क्रि० प्र०—खेलना ।

(४) कड़े कागज या दूँगी की चकती जिस पर सने का
तागा लपेटा रहता है ।

ताशा—संज्ञा पुं० [५० तास] घमड़ा मड़ा हुआ एक घाना जो गले
में लटका कर दो पत्तों लकड़ियों से घनाया जाता है । यह
धूम्रमाला सूचित करने के लिये ही बजाया जाता है ।

तासला—संज्ञा पुं० [दे०] यह रस्सी जिसे मालुमों को नचाने के
समय कुलंदर उनके गले में डाले रहते हैं ।

तासा—संज्ञा पुं० दे० "ताशा" ।

संज्ञा स्त्री० [सं० त्रय = तिहरा] तीन बार की जोती हुई
भूमि ।

तासी—संज्ञा स्त्री० [५०] घरर । प्रभाव । गुण । जैसे, दवा
की तासीर, सोहबत की तासीर ।

तासु १—सर्व० [हिं० ता + सु (प्रत्य०)] इसका ।

तासु २—सर्व० दे० "तासे" ।

तासी १—सर्व० [हिं० ता + सी (प्रत्य०)] इससे ।

तासु २—सर्व० [हिं० ता + हिं० (प्रत्य०)] इससे ।

तासी १—सर्व० दे० "तासे", "तासे" ।

तिंतिङ्ग—संज्ञा पुं० [सं०] इमली ।

तिंतिङ्गीका—संज्ञा स्त्री० [सं०] इमली ।

तिंतिङ्गी—संज्ञा स्त्री० [सं०] इमली ।

तिंतिङ्गीका—संज्ञा पुं० [सं०] इमली ।

तिंतिङ्गीका—संज्ञा स्त्री० [सं०] इमली ।

तितिरांग—संज्ञा पुं० [सं०] इसप्रकार । वज्रलोह ।
 तितिलिका—संज्ञा स्त्री० दे० "तितिलिका" ।
 तितिली—संज्ञा स्त्री० दे० "तितिली" ।
 तितिश्रा—संज्ञा पुं० [सं०] टिंडली नाम की लकरी । डेंडली ।
 तिंदु—संज्ञा पुं० [सं०] तेंदू का पेड़ ।
 तिंदुक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) तेंदू का पेड़ । (२) कर्मप्रमाण ।
 दो तोला ।
 तिंदुकतीर्थ—संज्ञा पुं० [सं०] वृजमंडल के श्रंतगत एक तीर्थ ।
 तिंदुकी—संज्ञा स्त्री० [सं०] तेंदू का पेड़ ।
 तिंदुकिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] आवत्तकी । भगवत बर्ही ।
 तिंदुल—संज्ञा पुं० [सं०] तेंदू का पेड़ ।
 तिन्ना—संज्ञा स्त्री० दे० "तिन्ना" ।
 तिन्नाह—संज्ञा पुं० [सं०] त्रिविवाह] (१) तीसरा विवाह । (२)
 वह पुरुष जिसका तीसरा व्याह हो रहा हो ।
 तिन्ना—संज्ञा पुं० [दे०] खेसारी नाम का कदव । केसारी ।
 तिन्नी—संज्ञा स्त्री० [दे०] केसारी । खेसारी ।
 तिन्नी—संज्ञा स्त्री० [हिं० तन + कट्] (१) जिसमें तीन कड़ियाँ
 हों । (२) चारपाई आदि की वह बुनावट जिसमें तीन तीन
 रसियाँ एक साथ हों ।
 तिकागी—संज्ञा स्त्री० [हिं० तीन + काग] यह तिकोनी लकड़ी जो
 पहिये के बाहर धुरी के पास पहिये की रोक के लिये लगी
 रहती है ।
 तिकारी—संज्ञा पुं० [सं० त्रि + कार] खेत की तीसरी जोताई ।
 तिकुरा—संज्ञा पुं० [हिं० तीन + कुरा] फसल की उपज की तीन
 बराबर बराबर राशि जिनमें से एक जमींदार लेता है ।
 तिकोना—संज्ञा पुं० दे० "तिकोना" । ३०—पाँस पुरान साज सज
 अटपट सरल तिकोना खोला दे ।—तुलसी ।
 संज्ञा पुं० दे० "तिकोण" ।
 तिकोना—संज्ञा पुं० [सं० त्रिकोण] [स्त्री० त्रिकोणा] जिसमें तीन कोने
 हों । तीन कोनों का । जैसे, तिकोना टुकड़ा ।
 संज्ञा पुं० (१) एक नमकीन पकवान । समोसा । तिकोनी
 नकारावीयना के की छेनी ।
 संज्ञा स्त्री० दे० "त्योरी" ।
 तिकोनीया—संज्ञा पुं० दे० "तिकोनी" ।
 तिकारी—संज्ञा पुं० [फा० तिकः] भाँस की थोड़ी । लोथ ।
 मुहा०—तिकारी करना = टुकड़े टुकड़े करना । धत्री धत्री
 श्रमग करना ।
 तिकी—संज्ञा स्त्री० [सं० त्रि] (१) ताश का वह पत्ता जिसपर
 तीन चूटियाँ पनी हों । (२) गंजीफे का वह पत्ता जिसपर
 तीन चूटियाँ हो ।
 तिकमद्रक—संज्ञा पुं० [सं० तिकम, प्रा० तिकेस] (१) तीखा । चोखा ।
 तेज़ । (२) तीव्रयुद्ध । तेज़ । चालाक ।

तिका—संज्ञा पुं० [सं०] तीता । कटुआ । जिसका स्वाद नीम, गुदक,
 चिरायते आदि के समान हो ।
 विशेष—तिक लू रसों में से एक है । तिक और कटु में भेद
 यह है कि तिक स्वाद अस्विकार होता है, जैसे, नीम, चिरायते
 आदि का; पर कटु स्वाद चरपरा और स्विकर होता है । जैसे,
 सोठ, मिर्च आदि का । वैयक के अनुसार तिक रस श्लेष्म,
 रुचिकारक, दीपक, शोधक, तथा मूत्र, मेद, रक्त बसा आदि
 का शोषण करनेवाला है । ज्वर, सुजली, फोड़, मूर्च्छा
 आदि में यह विशेष उपकारी है । अमिन्नतास, गुरुच,
 मजीठ, कनेर, हलदी, इंदुजव, भटकटैया, अशोक, कुटकी,
 बरियारा, माही, गदहपुरना (पुनर्नवा), इत्यादि तिक वर्ग के
 श्रंतगत हैं ।
 संज्ञा पुं० (१) पित्तपापड़ा । (२) सुगंध । (३) कुटज । (४)
 घरण घृष्ट ।
 तिककंदिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] पनशट । गंधपत्रा । पनकचूर ।
 तिकक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) पटोल । पल्ल । (२) चिरतिक ।
 चिरायता । (३) काला खैर । (४) इंगुदी । (५) नीम ।
 (६) कुटज । कुरैया ।
 तिककांड—संज्ञा पुं० [सं०] चिरायता ।
 तिकका—संज्ञा स्त्री० [सं०] कटुतुंबी । कटुआ कटु ।
 तिकगंधा—संज्ञा स्त्री० [सं०] बराहक्रांता । बराही कंद ।
 तिकगंधिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] बराहक्रांता । बराही कंद ।
 तिकगुजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] कंजा । कंज । कंजुआ ।
 तिकघृत—संज्ञा पुं० [सं०] सुश्रुत के अनुसार कई तिक
 औषधियों के योग से बना हुआ एक घृत जो कुट,
 विषमज्वर, गुल्म, अर्श, प्रदर्य आदि में दिया जाता है ।
 तिकतडुला—संज्ञा स्त्री० [सं०] पिप्पली । धीपर ।
 तिकता—संज्ञा स्त्री० [सं०] तिताई । कटुआपन ।
 तिकतुंडी—संज्ञा स्त्री० [सं०] कटुई तराई ।
 तिकतुंबी—संज्ञा स्त्री० [सं०] कटुआ कटु । तितलीकी ।
 तिकदुग्धा—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) खिरनी । (२) मेढ्रासिंधी ।
 तिकधातु—संज्ञा स्त्री० [सं०] (शरीर के भीतर की कटुई धातु,
 अर्थात्) पित्त ।
 तिकपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] ककोड़ा । खेसरा ।
 तिकपर्षा—संज्ञा स्त्री० [सं०] कचरी । पेहँटा ।
 तिकपर्षा—संज्ञा पुं० [सं०] (१) दूध । (२) डुलडुल । डुरडुर ।
 (३) गिलोय । गुर्च । (४) मुलेठी । जेठी मधु ।
 तिकपुष्पा—संज्ञा स्त्री० [सं०] पाठा ।
 तिकफल—संज्ञा पुं० [सं०] रीठा । निर्मल फल ।
 तिकफला—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) भटकटैया । (२) कचरी ।
 (३) घरपत्रा ।
 तिकमद्रक—संज्ञा पुं० [सं०] परबल । पटोल ।

तित्कयवा—संज्ञा स्त्री० [सं०] शंखिनी ।
 तिकरोहिणिका—संज्ञा स्त्री० दे० "तिकरोहिणी" ।
 तिकरोहिणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] कुटकी ।
 तित्कवल्ली—संज्ञा स्त्री० [सं०] मूर्ध्नं लता । मुर्गा । मरोरफली ।
 सुरनहार ।
 तित्कवीजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] कटुभा कटुदू । तितलौकी ।
 तित्कदाक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) वैर का पेड़ । (२) इन्द्रयष्ट ।
 (३) पद्मसुंदर शाक ।
 तित्कसार—संज्ञा पुं० [सं०] (१) रोहिंस नाम की घास । (२)
 वैर का पेड़ ।
 तित्काना—संज्ञा स्त्री० [सं०] पाताबगाहड़ी लता । छिट्टेंटा ।
 तित्का—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कुटकी । कटुका । (२) पाटा ।
 (३) यवतिका लता । (४) खरगुला । (५) छिकनी नाम का
 पौधा । मकछिकनी ।
 तित्काख्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] कटुभा कटुदू । तितलौकी ।
 तित्किका—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) तितलौकी । (२) काकमाची ।
 (३) कुटकी ।
 तित्किरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] तुमड़ी या महुधर नाम का पाया जिसे
 प्रायः सँपरे बजाते हैं ।
 तित्क*—वि० [सं० तीक्ष्ण] (१) तीक्ष्ण । तेज़ । (२) चोखा । चँना ।
 उ०—घनु धान भित्त कृदार केशव मेखला मृगचर्म से ।
 खुबरी के यह देखिये रसवीर साविक धर्म से ।—
 केशव ।
 तित्क्षना*—संज्ञा स्त्री० [सं० तीक्ष्णता] तेज़ी । उ०—शूर बाजिन की
 खुरी अति तित्क्षना तिन की हृद्दे ।—केशव ।
 तित्छ—वि० [सं० वि०] तीन चार का जोटा हुआ । तिबहा
 (संज्ञा) ।
 तित्छट्टी*—संज्ञा स्त्री० दे० "टिकठी" ।
 तित्छार—वि० दे० "तित्छ" ।
 तित्छाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० संज्ञा] तीक्ष्णपन । तीक्ष्णता । तेज़ी ।
 तित्छारना—क्रि० प्र० [सं० वि० + हिं० अरु] किसी बात को
 हट्ट या मिथित करने के लिये तीन बार पूछना । पक्का करने
 के लिये कई बार कहखाना ।
 विशेष—तीन बार कह कर जो प्रतिज्ञा की जाती है वह बहुत
 पक्की समझी जाती है ।
 तित्छूँटा—वि० [हिं० छीन + टूँट] तीन बंगने का । जिस में तीन
 कोने हों । तिकोना ।
 तित्गना—क्रि० प्र० [दे०] देखना । नज़र डालना । भाँपना ।
 (दुबाली) ।
 तित्गुना—वि० [सं० विद्युत्] [स्त्री० तित्गुनी] तीन बार अधिक ।
 तीन गुना ।
 तित्गुचना—क्रि० प्र० दे० "तित्गना" ।

तिग्म—वि० [सं०] तीक्ष्ण । खरा । तेज़ ।
 धा०—तिग्मकर । तिग्मदीधिति । तिग्मद्रव्यु । तिग्मरिग ।
 तिग्मांशु ।
 संज्ञा पुं० (१) यज्ञ । (२) पिपली (अनेकार्थ) । (३)
 पुरवंशीय एक क्षत्रिय । (मत्स्य पु०)
 तिग्मकर—संज्ञा पुं० [सं०] मूर्ध्नं ।
 तिग्मकेतु—संज्ञा पुं० [सं०] भुववंशीय एक राजा जो बल्लर और
 सुवीधी के पुत्र थे । (भागवत)
 तिग्मता—संज्ञा स्त्री० [सं०] तीक्ष्णता ।
 तिग्मदीधिति—संज्ञा पुं० [सं०] मूर्ध्नं ।
 तिग्ममन्यु—संज्ञा पुं० [सं०] महादेव । शिव ।
 तिग्मरिग—संज्ञा पुं० [सं०] मूर्ध्नं ।
 तिग्मांशु—संज्ञा पुं० [सं०] मूर्ध्नं ।
 तिघरा*—संज्ञा पुं० [सं० विद्यत] मिट्टी का चौड़े मुँह का बरतन
 जिसमें दूध दही रखा जाता है । मटकी ।
 तिच्चिया—संज्ञा पुं० [सं० ?] जहाज़ पर के वे आदमी जो
 आकार में मछरों को देखते हैं । (लश०)
 तिच्छ*—वि० दे० "तीक्ष्ण" ।
 तिच्छन*—वि० दे० "तीक्ष्ण" ।
 तिजारा—संज्ञा पुं० [सं० वि० + अरु] तीसरे दिन आनेवाला अरु ।
 तिजारी ।
 तिजवाँसा—संज्ञा पुं० [हिं० तीज = तीसरा + मास = महीना] वह
 वस्तव जो किसी स्त्री को तीन महीने का गर्भ होने पर उसके
 कटुंय के लोग करते हैं ।
 तिजहरिया*—संज्ञा पुं० [हिं० तीज = तीसरा + पहर] तीसरा पहर ।
 अपराह्न ।
 तिजारा*—संज्ञा पुं० [सं० वि० + अरु] तीसरे दिन आनेवाला अरु ।
 तिजारात—संज्ञा स्त्री० [अ०] वायिज्य । घनिज । ध्यापार । रोजगार ।
 सौदागरी ।
 तिजारी—संज्ञा स्त्री० [हिं० तिजार] तीसरे दिन जाड़ा देकर आने-
 वाला अरु ।
 तिजिया*—संज्ञा पुं० [हिं० तीज = तीसरा] वह मनुष्य जिसका
 तीसरा विवाह हो ।
 तिङ्डी—संज्ञा स्त्री० [सं० वि० = तीन] तारा का वह पत्ता जिसमें तीन
 मूर्ध्नं हों ।
 तिङ्डी यिङ्डी*—वि० [दे०] तितर वितर । छितराया हुआ ।
 तित*—क्रि० प्र० [सं० तय] (१) तर्का । यहाँ । (२) बघर । उस
 ओर । उ०—जित देहीं तित श्याममयी है ।—सूर ।
 तितनार्—क्रि० प्र० [सं० दृढि, तनी] उतना । उसके बराबर ।
 विशेष—"जितना" के साथ धापू हुए वाक्य का संबंध पूरा
 करने के लिये इस शब्द का प्रयोग होता है । पर अथ राघव में
 इसका प्रचार नहीं है ।

वितर वितर-वि० [हि० वितर + वृत्] जो इधर उधर हो गया हो । वितराया हुआ । बिखरा हुआ । जो एकत्र न हो । जैसे, शेष की भाषा सुनते ही सब सिपाही वितर वितर हो गए । (२) जो क्रम से लगा न हो । अस्पष्टस्थित । चमत् व्यक्त । जैसे, हमने सब पुस्तकें वितर वितर कर दीं ।

वितरोष्ठी-संज्ञा स्त्री० [हि० वीतर] एक छोटी चिट्ठी ।

वितरली-संज्ञा स्त्री० [हि० वीतर, पू० हि० वितर (वितर देने के कारण)] (१) एक उड़नेवाला सुंदर कौड़ा या कर्तिका जो प्रायः पक्षियों में फूलों पर बैठता हुआ दिखाई करता है और फूलों के पराग धीर रस खादि पर निर्वाह करता है ।

विशेष-वितरली के छ पर होते हैं और मुँह से बाहर के पेली दो सूँड़ियाँ निकली होती हैं जिनसे यह फूलों का रस चूसती है । दोनों ओर दो दो के दिसाय से चार बड़े पंख होते हैं । भिन्न भिन्न तिलवियों के पंख भिन्न भिन्न रंग के होते हैं और किसी किसी में बहुत सुंदर भट्टियाँ रहती हैं । पंख के अतिरिक्त इसका धीर शरीर इतना सूयन या पतला होता है कि दूर से दिखाई नहीं देता । सुबह, शाम के कौड़े खादि कर्तिकाओं के समान वितरली के शरीर का भी रूपांतर होता है । थंडे से निकलने के उपरांत यह कुछ दिनों तक गाँड़दार बोले या सूँड़े के रूप में रहती है । ऐसे बोले प्रायः पौधों की पत्तियों पर चिपके हुए मिलते हैं । इन बोलों का मुँह छुटने योग्य होता है और ये पौधों को कमी कमी यही हानि पहुँचाते हैं । छ असली पैरों के अतिरिक्त इन्हें कई पैर और होते हैं । ये ही बोले रूपांतरित होते होते वितरली के रूप में हो जाते हैं और उड़ने लगते हैं ।

(२) एक घास जो गेहूँ खादि के खेतों में उगती है । इसका पौधा हाथ सवा हाथ तक होता है । पत्तियाँ पतली पतली होती हैं । इसकी पत्तियाँ और बीज दवा के काम में आते हैं ।

वितरलौआ-संज्ञा पुं० [हि० वीत + लौआ] कट्टा कट्ट ।

वितरलौकी-संज्ञा स्त्री० [दे०] कट्ट तुंबी । कट्टा कट्ट ।

वितारार-संज्ञा पुं० [सं० वि + हि० तार] (१) सितार की तरह का एक वाजा जिसमें तीन तार लगे रहते हैं । उ०—बाँस, डफ, नगाडा, धीन, बाँसुरी सितारा चारितारा त्यो वितारार सुप लावती निसक है ।—रघुराज । (२) फसल की तीसरी बार की सिंचाई ।

वि० तीन तारवाला । जिसमें तीन तार हों ।

वितरिंघा-संज्ञा पुं० [अ० वितरिंघा] (१) उकेसला । (२) शेष । (३) पुस्तक या खेल का वह भाग जो अंत में उसी पुस्तक के संबंध में लगा देते हैं । परिशिष्ट । उपसंदा ।

वितरिंश-वि० [सं०] सहनशील । अमाशील ।

संज्ञा पुं० एक आदि का नाम ।

वितरिंश-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सरदी गरमी खादि सहने की सामर्थ्य । सहिष्णुता । (२) वमा । चाँति ।

वितरिंधु-वि० [सं०] अमाशील । पाँत । सहिष्णु ।

संज्ञा पुं० पुण्यशीय एक राजा जो महाभारत का पुत्र था ।

वितरिंम्मा-संज्ञा पुं० [अ०] (१) यचा हुआ भाग । अवशिष्ट अंश । (२) किसी ग्रंथ के अंत में लगाया हुआ प्रकरण । परिशिष्ट ।

वितरिल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अज्ञेति में सात करणों में से एक । दे० "सँतिल" । (२) नाद नाम का मिट्टी का बरतन ।

वितरीपी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सँरने की इच्छा । (२) तर जाने की इच्छा ।

वितरीपु-वि० [सं०] (१) सँरने की इच्छा करनेवाला । (२) तरने का अभिलाषी ।

वितरुला-संज्ञा पुं० [दे०] गाढ़ी के पदिये का भार ।

वितेर्ष-वि० [सं० वृत्ति] उतने । (संख्यावाचक)

वितेक-वि० [हि० वितो + एक] उतना ।

वितै-वि० [हि० वित + ई (प्रत्य०)] (१) बर्हा ही । वहाँ । (२) यहाँ । (३) उधर ।

वितै-वि० [सं० वृत्ति] उतना । उस मात्रा या परिमाण का । वि० वि० उतना ।

वितरि-संज्ञा पुं० [सं०] [सं० वितरि] (१) वीतर नाम का पक्षी । (२) वितरली नाम की घास ।

वितरि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वीतर पक्षी । (२) यजुर्वेद की एक शाखा का नाम । दे० "सँत्तरीय" । (३) यास्क मुनि के एक शिष्य जिन्होंने सँत्तरीय शाखा चलाई । (भाष्ये अनुक्रमणिका)

विशेष-भागवत खादि पुराणों के अनुसार वैशंपायन के शिष्य मुनिने ये वीतर पक्षी बन कर याज्ञवल्क्य के उगले हुए यजुर्वेद को सुँगा था ।

वितर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अग्नि । धारा । (२) कामदेव । (३) काज । (४) वर्षाकाल ।

वितरि-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) चंद्रमा की कला के घटने या बढ़ने के क्रम के अनुसार गिने जानेवाले महीने के दिन । चांद्रमास के अलग अलग दिन जिन के नाम संख्या के अनुसार होते हैं । मिति । तारीख ।

वै०—तिथिचय । तिथिवृद्धि ।

विशेष-पक्षों के अनुसार तिथियाँ भी दो प्रकार की होती हैं कृत्वा और शुक्ला । प्रत्येक पक्ष में १२ तिथियाँ होती हैं जिनके नाम ये हैं—प्रतिपदा (परिजा), द्वितीया (दूज), तृतीया (तीज), चतुर्थी (चौथा), पंचमी, षष्ठी (छठ), सप्तमी, अष्टमी, नवमी, दशमी, एकादशी (र्यारस), द्वादशी (दुधारास),

श्रयोदशी (तिरस), चतुर्दशी (चौदस), पूर्णिमा या अमावास्या ।
 कृष्णपक्ष की अंतिम तिथि अमावास्या और शुक्लपक्ष की
 पूर्णिमा कहलाती है । इन तिथियों के पाँच वर्ग किए गए
 हैं—प्रतिपदा, पक्षी और एकादशी का नाम नंदा; द्वितीया, सप्तमी और द्वादशी का नाम भद्रा; तृतीया
 अष्टमी और श्रयोदशी का नाम जया; चतुर्थी, नवमी
 और चतुर्दशी का नाम रिक्ता और पंचमी, दशमी, और
 पूर्णिमा या अमावास्या का नाम पूर्णा है । तिथियों का मान
 नियत होता है अर्थात् सब तिथियाँ बराबर दंडों की नहीं
 होतीं ।

(२) पंद्रह की संख्या ।

तिथिशास्त्र-संज्ञा पुं० [सं०] तिथि की हानि । किसी तिथि का
 गिनती में न आना ।

विशेष—ऐसा तत्र होता है जब एक ही दिन में अर्थात् दो
 सूर्योदयों के बीच तीन तिथियाँ पड़ जाती हैं । ऐसी
 अवस्था में जो तिथि सूर्य के उदयकाल में नहीं पड़ती
 बीच में पड़ती है उसका उच्य माना जाता है ।

तिथिपति-संज्ञा पुं० [सं०] तिथियों के स्वामी देवता ।

विशेष—भिन्न भिन्न ग्रहों के अनुसार ये अघिपति भिन्न भिन्न
 हैं । जिस तिथि का जो देवता है उसका उक्त तिथि को पूजन
 होता है ।

तिथि	देवता	
	बृहस्पति	वसिष्ठ
१	महा	शनि
२	विषाता	विषाता
३	हरि	गौरी
४	यम	गणेश
५	चंद्रमा	सर्प
६	पद्मानन	पद्मानन
७	शक्र	सूर्य
८	वासु	महेश
९	सर्प	दुर्गा
१०	धर्म	यम
११	ईश	विरवेदेवा
१२	सविता	हरि
१३	काम	काम
१४	कलि	शर्व
पूर्णिमा	विरवेदेवा	चंद्रमा
अमावास्या	पितर	पितर

तिथिपत्र-संज्ञा पुं० [सं०] पत्र । पंचांग । जंत्री ।

तिथिप्रणी-संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा ।

तिथ्यर्ध-संज्ञा पुं० [सं०] करण ।

तिथरी-संज्ञा स्त्री० [हिं वीन + फा० र] वह कोठरी जिसमें तीन
 दरवाजे या खिड़कियाँ हों ।

तिथारी-संज्ञा स्त्री० [दे०] जब के किनारे रहनेवाली भूतल
 की तरह की एक खिड़िया जो बहुत तेज उड़ती है और
 ज़मीन पर खूली घास का घोंसला बनाती है । इसका खोग
 शिकार करते हैं ।

तिथारी-संज्ञा स्त्री० [सं० विदार] वह कोठरी जिसमें तीन दरवाजे
 या खिड़कियाँ हों ।

तिथरा-कि० वि० [सं० त्र] उधर । उस ओर ।

तिथारा-संज्ञा पुं० [सं० विथर] एक प्रकार का घूँघरू (सँडुड़)
 जिसमें पत्ते नहीं होते । इसमें उँगलियों की तरह ग्राह्यार्थ
 ऊपर को निकलती हैं । इसे बगीचों आदि की याद या टटो
 के लिये लगाते हैं । इसे बज्जी या नरसेज भी कहते हैं ।

तिथारीकाडवेल-संज्ञा स्त्री० [सं०] हड़जोड़ ।

तिनी-सर्व० [सं० तेन = उनसे] 'तिस' शब्द का बहुवचन । जैसे,
 तिने, तिनडे, तिनसे इत्यादिक । ३०—तिन कवि केशव-
 दास तीं कीने धर्म सनेह ।—केशव ।

विशेष—अब गद्य में इस शब्द का व्यवहार नहीं होता ।

संज्ञा पुं० [सं० एथ] तिनका । मृण । घासकूस । ३०—
 हँ कर मनिय १ही मिलति न दुवि सुकुतालि ।
 छिन छिन खरी विचप्यनी लखहि छाय तिन आलि ।—
 विहारी ।

तिनकना-कि० अ० [हिं चिनगारी, चिनगी, वा चनु०] चिड़-
 चिड़ाना । चिड़ना । झड़ाना । बिगड़ना । नाराज होना ।

तिनका-संज्ञा पुं० [सं० एथ] मृण । मृण का टुकड़ा । सूती घास
 या बर्डी का टुकड़ा ।

मुहा०—तिनका दाँतों में पकड़ना या खेना = चिनती करना ।

खमा वा ह्या के लिये दीनतापूर्वक विनय करना । गिड़
 गिड़ाना । हा हा खाना । तिनका सोड़ना = (१) संवंध
 तोड़ना । (२) बर्झावा खेना । बर्झावा खेना । (बन्धे को नज़र
 न लगे, इस लिये माता कभी कभी तिनका तोड़ती है) । तिनके
 चुनना = वेधुच हो जाना । अचेत होना । पागल वा
 बावला हो जाना । (पागल प्रायः व्यर्ष के काम किया करते हैं) ।
 तिनके चुनकाना = (१) पागल बना देना । (२) मोहित
 करना । तिनके का सहारा = (१) थोड़ा सा सहारा । (२) ऐसी
 बात जिससे कुछ थोड़ा बहुत दाबच बँधे । तिनके को पहाड़
 करना = छोटी बात को बड़ी कर दाबना । तिनके को पहाड़
 कर दिखाना = थोड़ी ही बात को बहुत बढ़ा कर कहना ।

तिनके की छोट पहाड़ = छोटी सी बात में किसी बड़ी बात का छिपा रहना । सिर से तिनका उतारना = (१) थोड़ा सा इधरान करना । (२) किसी प्रकार थोड़ा बहुत काम करके उपकार का नाम करना ।

तिनगना-कि० ख० दे० "तिनकना" ।

तिनगरी-संज्ञा स्त्री० [दे०] एक पकवान । व०-वेदा पाक जलेबी पेरा । गोंद-पाग तिनगरी मिँ दौरा ।-सूर ।

तिनतिरिया-संज्ञा पुं० [दे०] मनुष्य कपास ।

तिनधरा-संज्ञा स्त्री० [दे०] तीन धार की रेती जिससे धारी के दाँते घोखे किप जाते हैं ।

तिनपहल-वि० दे० "तिनपहला" ।

तिनपहला-वि० [हिं० तीन + पहल] [स्त्री० तिनपहली] जिसमें तीन पहल हों । जिसके तीन पारवें हों ।

तिनभिना-संज्ञा पुं० [हिं० तीन + भनिया] माला जिसके बीच में सेने का या जड़ाक जुगनु हो ।

तिनधा-संज्ञा पुं० [दे०] एक प्रकार का घाँस जो घरमा में बहुत होता है । घाँसमा और छोटा नागपुर में भी यह पाया जाता है । यह हमारतों में खगता है और चटाइयाँ बनाने के काम में आता है । इसके धोंगों में बरमा, मनीपुर आदि के लोग भास भी पकाते हैं ।

तिनस-संज्ञा पुं० दे० "तिनिश" ।

तिनसुना-संज्ञा पुं० [सं०] तिनिश का पेड़ ।

तिनाशाक-संज्ञा पुं० [सं०] तिनिश वृक्ष ।

तिनास-संज्ञा पुं० दे० "तिनिश" ।

तिनिश-संज्ञा पुं० [सं०] रसिम की जाति का एक पेड़ जिसकी पत्तियाँ शमी या खैर की सी होती हैं । इसकी लकड़ी मजबूत होती है और कियाड़, गाड़ी आदि बनाने के काम में आती है । इसे तिनास या तिनसुना भी कहते हैं । वैद्यक में यह कसेला और गरम माना जाता है । रक्तपित्तास, कोष्ठ, दाह, रक्तपिकार आदि में इसकी छाल, पत्तियाँ आदि दी जाती हैं ।

पयौटा-स्वयं न । नेमी । रथदु । अतिसुकक । चित्रकृत ।

चक्री । शतांग । शकट । रथिक । भस्मगर्भ । मैपी । जलधर । श्रवक । तिनाराक ।

तिनुका-संज्ञा पुं० दे० "तिनका" ।

तिनुका-संज्ञा पुं० दे० "तिनका" । व०-होय तिनुका वज्र वज्र तिनका हूँ हूँ ।-गिरिधर ।

तिन्ना-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सती नामक वर्षावृत्त । (२) रेती के साथ खाने की रसेदार वस्तु । (३) तिन्नी के घान का पौधा ।

तिन्नी-संज्ञा स्त्री० [सं० एष, हिं० तिन] एक प्रकार का जंगली घान जो तावों में आप से आप होता है । इसकी पत्तियाँ

जड़हन की पत्तियों की सी ही होती हैं । पौधा तीन चार हाथ तक ऊँचा होता है । कातिक में इसकी घाल फूटती है जिसमें बहुत लंबे लंबे हूँ हूँ होते हैं । बाल के दाँते तैयार होने पर गिरने लगते हैं, इसीसे हकड़ा करनेवाले या तो हटके में दाँतों को झाड़ लेते हैं अथवा बहुत से पौधों के सिरों को एक में बाँध देते हैं । तिन्नी का घान लंबा और पतला होना है । चावल खाने में नीरस और ख़सा लगता है और पूत आदि में खाया जाता है ।

संज्ञा स्त्री० [दे०] नीवी । कुमुदी ।

तिन्नु ।-सर्वे दे० "तिन" ।

तिपड़ा-संज्ञा पुं० [हिं० तीन + पट] कमलाय बुननेवालों के करवे की वह लकड़ी जिसमें तागा खपेटा रहता है और जो दोनों धैस्रों के बीच में होती है ।

तिपति * ।-संज्ञा स्त्री० दे० "वृत्ति" ।

तिपट्टा-वि० [हिं० तीन + पट्टा] (१) तीन पट्टों का । जिसमें तीन पार्वे या पारवें हों । (२) तीन तारों का । जिसमें तीन तारों हों ।

तिपाई-संज्ञा स्त्री० [हिं० तीन + पाय] (१) तीन पायों की बैन्ने की छोटी ऊँची चौकी । स्टूल । (२) पानी के घड़े रखने की ऊँची चौकी । टिकटी । तिपोड़िया । (३) लकड़ी का एक चौखटा जिसे रँगरेज काम में आते हैं ।

तिपाङ्क-संज्ञा पुं० [हिं० तीन + पाङ्क] (१) जो तीन पाट जोड़कर बना हो । व०-दक्षिण चौर तिपाङ्क को लहँगा । पहिरि विविध पट मोलन महँगा ।-सूर । (२) जिसमें तीन पहे हों । (३) जिसमें तीन किनारे हों ।

तिपारी-संज्ञा स्त्री० [दे०] एक प्रकार का छोटा माड़ या पीधा जो बरसात में आप से आप धूर उधर जमता है । इसकी पत्तियाँ छोटी और सिर्रे पर तुकीली होती हैं । इसमें सफेद फूल गुच्छों में लगते हैं । फल संयुट के आकार के एक फिन्हीदार फेदा में रहते हैं जिसमें नसों के द्वारा कई पहेल बने रहते हैं । मकोय । परपोटा । छोटी रसमरी ।

तिपैरा-संज्ञा पुं० [हिं० तीन + पर] वह बड़ा कुर्भा जिसमें तीन चरसे एक साथ चल सकें ।

तिघररी-वि० स्त्री० [हिं० तीन + गर] (चारपाई की बुनावट) जिसमें तीन बाप या रस्सियाँ एक साथ एक एक बार खींची जाय ।

तिजार्ई-संज्ञा स्त्री० [दे०] आटा माड़ने का छिड़वा, भड़ा धरतन ।

तिबारा-वि० [हिं० तीन + बार] तीसरी बार ।

संज्ञा पुं० तीन बार उतारा हुआ मद्य ।

संज्ञा पुं० [हिं० तीन + बार = दरबाना] [स्त्री० तिबारी] वह घर या कोठरी जिसमें तीन द्वार हों ।

तिवासी-वि० [हि० तीन + वासी] तीन दिन का वासी (खाद्य पदार्थ) ।

तिवी-संज्ञा स्त्री० [दे०] ऐसारी ।

तिवृत-संज्ञा पुं० [सं० त्रि + वृत] एक देश जो हिमालय पर्वत के उत्तर पड़ता है ।

विशेष—इस देश को हिंदुस्तान में मोट कहते हैं । इसके तीन विभाग माने जाते हैं । पौटा तिव्रुन, यद्वा तिव्रुत और खास तिव्रुत । तिव्रुन बहुत ठंडा देश है इससे यहाँ पेड़ पाँचे बहुत कम उगते हैं । यहाँ के निवासी तातारियों से मिलते जुलते होते हैं और अधिकतर ऊन के कंबल, कपड़े खादि धुन कर धपना निर्वाह करते हैं । यह देश कस्तूरी और चँवर के लिये प्रसिद्ध है । सुरागप और कस्तूरी युग यहाँ बहुत पाए जाते हैं । तिव्रुन के रहनेवाले सब महायान शाखा के बौद्ध हैं । यहाँ बौद्धों के धनेक मठ और महंत हैं । कैलास पर्वत और मानसरोवर भील तिष्यत ही में हैं । ये हिंदू और बौद्ध दोनों के तीर्थस्थान हैं । कुछ लोग "तिष्यत" को त्रिषिष्टप का अपभ्रंश बतवाते हैं ।

तिव्रुती-वि० [तिष्यन] तिव्रुत संबंधी । तिव्रुन का । तिव्रुत में ब्रह्म । जैसे, तिव्रुती ब्राह्मदी, तिव्रुती भाषा ।

संज्ञा स्त्री० तिव्रुत की भाषा ।

संज्ञा पुं० तिव्रुत देश का रहनेवाला ।

तिमंजिला-वि० [हिं० तीन + जं० मंजिल] [स्त्री० तिमंजिली] तीन खंडों का । तीन मराठिष का । जैसे, तिमंजिला मकान ।

तिम-संज्ञा पुं० [हिं० तिष्ठि] नगाता । डंका । सुंदुभी । (हिं०)

तिमाना-कि० सं० [दे०] भिगोना । तर करना ।

तिमाशी-संज्ञा स्त्री० [हिं० तीन + माषा] (१) तीन माषे की एक तौल । (२) ४० औ की एक तौल जो पहाड़ी देशों में प्रचलित है ।

तिमिंगल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) समुद्र में रहनेवाला मत्स्य के धाकार का एक बड़ा भारी जंतु जो तिमि नामक बड़े मत्स्य को भी निगल सकता है । बड़ी भारी हेल । (२) एक द्वीप का नाम । (३) उस द्वीप का निवासी ।

तिमिंगलाशन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) दक्षिण का एक देश-विभाग जिसके अंतर्गत लंबा खादि हैं और जहाँ के निवासी तिमि-गल मत्स्य का मांस खाते हैं । (यूहर्सहिता) । (२) एक देश का निवासी ।

तिमि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) समुद्र में रहनेवाला मछली के धाकार का एक बड़ा भारी जंतु ।

विशेष—छागों का अनुमान है कि यह जंतु हेल है ।

(२) समुद्र । (३) श्राव्य का एक रोग जिसमें रात को सुकाने नहीं पड़ता । रतीषी ।

॥ अर्थ० [सं० त्रु + = इमि] उस प्रकार । जैसे ।

विशेष—इसका व्यवहार "तिमि" के साथ होता है ।

तिमिकोश-संज्ञा पुं० [सं०] समुद्र ।

तिमिज-संज्ञा पुं० [सं०] तिमि नामक मत्स्य से निकलनेवाला मोती । (यूहर्सहिता)

तिमित-वि० [सं०] (१) निरचल । अचल । स्थिर । (२) ह्रिष्य । भींगा । धाढ़ ।

तिमिध्वज-संज्ञा पुं० [सं०] शंख नामक द्रव्य जिसे मार कर रामचंद्र ने ब्रह्मा से दिव्यास्त्र प्राप्त किया था ।

तिमिर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अंधकार । अंधेरा । (२) श्राव्य का एक रोग जिसके अनेक भेद सुश्रुत ने बतलाए हैं । श्राव्यों से धुंधला दिखाई पड़ना, चीन्हे रंग विरंग की दिखाई पड़ना, रात को न दिखाई पड़ना आदि सब दोष इसी के अंतर्गत माने गए हैं । (३) एक पेड़ । (घासकी०)

तिमिरनुद-वि० [सं०] अंधकार का नाश करनेवाला । संज्ञा पुं० सूर्य ।

तिमिरभिद-वि० [सं०] अंधकार को भेदने या नाश करनेवाला । संज्ञा पुं० सूर्य ।

तिमिररिपु-संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य । भास्कर ।

तिमिरहर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सूर्य । (२) दीपक ।

तिमिरारि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अंधकार का शत्रु । (२) सूर्य ।

तिमिरारी-संज्ञा स्त्री० [सं० तिभराली] अंधकार का समूह । अंधेरा । उ०—मधुप से नैन धर बंधुदल ऐस होत श्रीफल से कुछ कच येनि तिमिरारी सी ।—देव ।

तिमिरावलि-संज्ञा स्त्री० [सं०] अंधकार का समूह । उ०—तिमिरावलि सविरे वंतन के दित नैन धरे मनो दीपक है ।—सुंदरीसंबल ।

तिमिप-संज्ञा पुं० [सं०] (१) ककड़ी । कूट । (२) पेड़ा । सपेद कुहड़ा । (३) तरपून ।

तिमी-संज्ञा पुं० [सं०] (१) तिमि मत्स्य । (२) दूध की एक कन्या जो करवप की स्त्री और तिमिंगलों की माता थी ।

तिमीर-संज्ञा पुं० [सं०] एक पेड़ का नाम ।

तिमुहानी-संज्ञा स्त्री० [हिं० तीन + फा० मुहाना] (१) यह स्थान जहाँ तीन धोर जाने को तीन फाटक या मार्ग हों । तिर-मुहानी । (२) यह स्थान जहाँ तीन धोर से निर्दिष्ट धाकर मिली हों ।

तिय^१-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री] (१) स्त्री । धीरात । (२) पत्नी । भार्या । जोरु ।

तियतरा-वि० [सं० त्रि + त्रतर] [स्त्री० तियतरी] वह चेटा जो तीन चेटियों के बाद पैदा हो ।

तियळा-संज्ञा पुं० [हिं० तिय + ला (प्रत्य०)] सियों का पदि-
रावा । उ०—महापणियों को इच्छा भोजन करवाय सुयरे
तियले पहराय...दक्षिणा दी।—लतु।

तिया-संज्ञा पुं० [सं० त्रि] (१) गंजीफे या सारा का वह पत्ता जिस
पर तीन बुदियां होती हैं । (२) नक्रीपूर के खेल में वह दांव
जो पूरे पूरे गंनों के गिनने के बाद तीन कौदियां बचने पर
देता है ।

* संज्ञा स्त्री० दे० "तिय" ।

तिरकट-संज्ञा पुं० [?] आगे का पाल । अगला पाल ।
(लरा०)

तिरकट गाथासघार्द-संज्ञा पुं० [?] आगे का और
सब से ऊपर सिरें पर का पाल । (लरा०)

तिरकट गावी-संज्ञा पुं० [?] सिरें पर का पाल ।
(लरा०)

तिरकट डोल-संज्ञा पुं० [?] आगे का मस्तूल । (लरा०)

तिरकट तवर-संज्ञा पुं० [?] वह छोटा चैकेर आगे का
पाल जो सब से बड़े मस्तूल के ऊपर आगे की ओर लगाया
जाता है । इसका व्यवहार बहुत धीमी हवा चलने के समय
होता है । (लरा०)

तिरकट सवर-संज्ञा पुं० [?] सब से ऊपर का पाल ।
(लरा०)

तिरकट सवार्द-संज्ञा पुं० [?] आगे का वह पाल जो
उस रस्से में बँधा रहता है जो मस्तूल के सहारे के लिये
लगाया जाता है । (लरा०)

तिरकना-कि० अ० [अ०] तड़कना । घटलना । फट जाना ।

तिरकसा-वि० [सं० तिरू] टेढ़ा ।

तिरकाना-कि० उ० [?] (१) ढीला छोड़ना । (लरा०)

(२) रस्सा ढीला करना । जहासी छोड़ना । (लरा०)

तिरकुटा-संज्ञा पुं० [सं० त्रिकुट] सॉठ, मिचं, पीपल इन तीन
कवुई औपचार्यो का समूह ।

तिरखा-संज्ञा स्त्री० दे० "तुषा" ।

तिरखित-वि० दे० "तुषित" ।

तिरखूँता-वि० [सं० त्रि + हिं० खूँट] [स्त्री० तिरखूँती] जिसमें
तीन खूँट या कोने हों । तिकोना ।

तिरख-संज्ञा पुं० [सं०] तिमिशा घुस ।

तिरखई-संज्ञा स्त्री० [हिं० तिरखा] तिरछापन ।

तिरखबड़ी-संज्ञा स्त्री० [हिं० तिरखा + उड़ना] मालखंब की एक
कसरत जिसमें खेलाड़ी के शरीर का कोई भाग जमीन पर नहीं
लगता, एक कंधा झुका कर और एक पांव उठा कर वह शरीर
को चकर देता है । इसे छुलांग भी कहते हैं ।

तिरख-वि० [सं० तिरखं वा तिरू] [स्त्री० तिरखी] (१) जो अपने
आधार पर समकोण बनाता हुआ न गया हो । जो न बिल-

कुन खड़ा हो और न बिलकुल आड़ा हो जो न ठीक ऊपर
की ओर गया हो और न ठीक बगल की ओर । जो ठीक
सामने की ओर न जाकर इधर उधर हट कर गया हो ।
जैसे, तिरछी लकीर ।

विशेष—'टेढ़ा' और 'तिरछा' में अंतर है । टेढ़ा वह है जो
अपने लक्ष्य पर सीधा न गया हो, इधर उधर मुड़ता या
घूमता हुआ गया हो । पर तिरछा वह है जो सीधा तो गया
हो पर जिसका लक्ष्य ही ठीक सामने, ठीक ऊपर या ठीक बगल में
न हो । (टेढ़ी रेखा ~~~~~ तिरछी रेखा ~~~~~)

यौ०—बाँका तिरछा = छत्रौला । जैसे, बाँका तिरछा जवान ।

मुद्दा—तिरछी टेपी = यगल में कुछ मुक्का कर सिर पर रली
हुई टेपी । तिरछी चितवन = बिना सिर फेंके हुए यगल की
ओर दृष्टि । (जब लोगों की दृष्टि दबा कर किसी ओर ताकना
होता है तब लोग, विशेषतः प्रेमी लोग, इस प्रकार की दृष्टि से
देखते हैं) । तिरछी नमर = दे० "तिरछी चितवन" । तिरछी
घात या तिरछा वचन = फट्ट वाक्य । अश्रिय शब्द । उ०—
हरि बदास सुनि वचन तिरिछे ।—सयल ।

(२) एक प्रकार का रेशमी कपड़ा जो प्रायः अस्तर के काम में
आता है ।

तिरछाई-संज्ञा स्त्री० [हिं० तिरछा + ई (प्रत्य०)] तिरछापन ।

तिरछाना-कि० अ० [हिं० तिरछा] तिरछा होना ।

तिरछापन-संज्ञा पुं० [हिं० तिरछा + पन (प्रत्य०)] तिरछा होने
का भाव ।

तिरछी-वि० स्त्री० दे० "तिरछा" ।

तिरछी बैठक-संज्ञा स्त्री० [हिं० तिरछी + बैठक] मालखंब की एक
कसरत जिसमें दोनों पैर रस्सी की एंठन की तरह परस्पर
गुप कर ऊपर उड़ते हैं ।

तिरछीहाँ-वि० [हिं० तिरछा + औहाँ (प्रत्य०)] [स्त्री० तिरछीहीं]
कुछ तिरछा । जो कुछ तिरछापन लिपू हो । जैसे, तिरछीहाँ
कोट ।

तिरछीहैं-कि० वि० [हिं० तिरछीहाँ] तिरछापन लिपू हुए ।

तिरछेपन के साथ । चमत्ता से । जैसे, तिरछीहैं ताकना ।

तिरतालीसा-वि० दे० "तैतालीस" ।

तिरतिराना-कि० अ० [अ०] बूँद बूँद करके टपकना ।

तिरना-कि० अ० [सं० तिरण] (१) पानी के ऊपर आना या
उठना । पानी में न डूब कर सतह के ऊपर रहना ।
उतरना । (२) तैना । पैरना । (३) पार होना । (४)
ताना । मुक होना ।

संयोग कि०—जाना ।

तिरनी-संज्ञा स्त्री० [?] (१) वह ढोरी जिससे घायब
या पोथी नाभि के पास बँधी रहती है । नीवी । तिन्नी ।

कुफली। (२) ब्रिचों के घाघरे या घोली का वह भाग जो नामि के नीचे पड़ता है। उ०—नेनी सुभग नितंबनि कोलत मंदामिनी नारी। सुपन अपन वधि नारायंद तिरनी पर छवि भारी।—सूर।

तिरप-संज्ञा श्री० [सं० वि] मूल में एक प्रकार का ताल जिसे त्रिसम या तिहाई कहते हैं। उ०—तिरप लेति चपला सी चमकति स्मरति भूपय श्रंग। या छवि पर उपमा कहुँ नाहीं निरपत वियस श्रंग।—सूर।

क्रि० प्र०—सेना।

तिरपट[—वि० [देय०] (१) तिरछा। टेढ़ा। टिड़-विड़ंगा। (२) मुश्किल। कठिन। विघट।

तिरपटा-वि० [देय०] तिरछा साकनेवाला। मोंगा। पँचाताना।

तिरपन-वि० [सं० निबंधागत, प्रा० तिरपणा] जो गिनती में पचास से तीन और अधिक हो। पचास से तीन ऊपर।

संज्ञा पुं० (१) पचास से तीन अधिक की संख्या। (२) वक संख्या सूचक श्रंक जो इस प्रकार लिखा जाता है—२३।

तिरपाई-संज्ञा श्री० [सं० निपट] तीन पायों की ऊँची चौकी। स्टूल।

तिरपाल-संज्ञा पुं० [सं० मूय + हि० पालना = विक्राना] फूस या सरकंदों के लंबे पूले जो द्वाजन में खपड़ों के नीचे दिए जाते हैं। मुद्दा।

संज्ञा पुं० [शं० यत्पाकिन] रोगन चड़ा हुआ कनवस। राज चढ़ाया हुआ टाट।

तिरपित-वि० दे० “रुष”।

तिरपौलिया-संज्ञा पुं० [सं० वि + हि० वेष्ट = फाटक] यह स्थान जहाँ बराबर से ऐसे तीन बड़े फाटक हों जिन से होकर हाथी, घोड़े, जैट इत्यादि सवारियाँ अथवा तरह निकल सकें। (ऐसे फाटक किलों या महलों के सामने या बड़े बाजारों के बीच होते हैं)

तिरफला-संज्ञा पुं० दे० “त्रिफला”।

तिरवेनी-संज्ञा श्री० दे० “त्रिवेणी”।

तिरयो-संज्ञा श्री० [हि० तिरया] सिंध देरा में एक प्रकार की नाव का नाम।

तिरमिरा-संज्ञा पुं० [सं० निमिर] (१) बुद्धलता के कारण दृष्टि का एक दोष जिसमें शक्ति प्रकाश के सामने नहीं उदरती और साकने में कमी शोषेरा, कमी शनेक प्रकार के रंग, और कमी छिटकती हुई चिनगारियाँ या तारे से दिखाई पड़ते हैं। (२) कमजोरी से साकने में जो तारे से छिटकते दिखाई पड़ते हैं—उन्हें भी तिरमिरे कहते हैं। (३) तीक्ष्ण प्रकाश या गहरी चमक के सामने दृष्टि की अस्थिरता। तेज रोशनी में नजर का न उदरना। चक्रार्थिपि।

क्रि० प्र०—लगना।

संज्ञा पुं० [हि० वेष्ट + मिथना] धी, सेल या चिकनाई के छंटे जो पानी, मूष या और किसी द्रव पदार्थ (जैसे, दाब, रसा आदि) के ऊपर सैरते दिखाई देते हैं।

तिरमिराना-क्रि० श्र० [हि० तिरमिरा] (दृष्टि का) प्रकाश के सामने न उदरना। तेज रोशनी या चमक के सामने (शरितों का) कल्पना। चौंधना। चौंधियाना।

तिरलोका-संज्ञा पुं० दे० “त्रिलोक”।

तिरलोकी-संज्ञा श्री० दे० “त्रिलोकी”।

तिरवट-संज्ञा पुं० [देय०] एक प्रकार का राग जो तराने वा तिलाने का एक भेद है।

तिरवराना-क्रि० श्र० दे० “तिरमिराना”।

तिरवा-संज्ञा पुं० [फा०] इतनी दूरी जहाँ तक एक तीर जा सके।

तिरवाहा-संज्ञा पुं० [सं० तीर + वाह] नदी के तीर की भूमि। क्रि० वि० किनारे किनारे। तट से।

तिरदचीन-वि० [सं०] (१) तिरछा। (२) टेढ़ा। कुटिल।

तिरदचीन गति-संज्ञा पुं० [सं०] महयुद्ध की एक गति। कुस्ती का एक पैंतरा।

तिरसठ-वि० [सं० त्रिषष्ठि, प्रा० तिसष्टि] जो गिनती में साठ से तीन अधिक हो। साठ से तीन ऊपर।

संज्ञा पुं० (१) वह संख्या जो साठ से तीन अधिक हो।

(२) वक संख्या को सूचित करनेवाला श्रंक जो इस प्रकार लिखा जाता है—९३।

तिरसा-संज्ञा पुं० [?] यह पाक जिसका एक सिरा चौड़ा और एक सँकरा होता है। (लश०)

तिरसल-संज्ञा पुं० दे० “त्रिशूल”।

तिरस्कर-संज्ञा पुं० [सं०] आच्छादक। परदा करनेवाला। ढाँकने-वाला।

तिरस्करिणी-संज्ञा श्री० [सं०] (१) श्रोत। आड़। (२) परदा। कनात। चिक। (३) यह विद्या जिसके द्वारा मनुष्य अदृश्य हो सकता है।

तिरस्कृती-संज्ञा पुं० [सं० तिरस्कृति] [श्री० तिरस्कृति] आच्छादक। परदा।

तिरस्कार-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० तिरस्कृत] (१) अनादर। अपमान। (२) भर्त्सना। फटकार। (३) अनादरपूर्वक श्लोक।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

तिरस्कृत-वि० [सं०] (१) जिसका तिरस्कार किया गया हो। अनादर। (२) अनादरपूर्वक श्लोक किया हुआ। (३) आच्छादित। परदे में छिपा हुआ। (४) तंत्र के अनुसार

(वह मंत्र) जिसके मध्य में वकार हो और मल्लक पर दो कवच और धक्क हों ।

तिरस्क्रिया—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) तिरस्कार । अनादर । (२) आच्छादन । (३) वक्त्र । पहरावा ।

तिरहा—संज्ञा पुं० [दे०] एक फलिंगा जो धान के फूल को नष्ट कर देता है ।

तिरहुत—संज्ञा पुं० [सं०, तीरभुक्ति] [वि० तीरभुक्ति] मिथिला प्रदेश जिसके अंतर्गत आनकल विहार के दो जिले हैं—मुजफ्फरपुर और दरभंगा ।

तिरहुतिया—वि० [हिं० तिरहुत] तिरहुत का । तिरहुत संबंधी ।

संज्ञा पुं० तिरहुत का रहनेवाला ।

संज्ञा स्त्री० तिरहुत की बोली ।

तिरा—संज्ञा पुं० [दे०] एक पौधा जिसके बीजों से सेल निकलता है । एक लेकहन ।

तिराटी—संज्ञा स्त्री० [सं०] निसेत ।

तिरानवे—वि० [सं० त्रिगति, प्रा० तिरुवद] जो गिनती में नब्बे से तीन अधिक हो । तीन ऊपर नब्बे ।

संज्ञा पुं० (१) नब्बे से तीन अधिक की संख्या । (२) उक्त संख्यासूचक श्रंक जो इस प्रकार लिखा जाता है—६३ ।

तिराना—क्रि० स० [हिं० तिराना] (१) पानी के ऊपर ठहराना । (२) पानी के ऊपर चलाना । तैराना । (३) पार करना । (४) बचाना । तारना । निस्तार करना ।

तिरास—संज्ञा पुं० दे० “ग्रास” ।

तिरासना—क्रि० स० [सं० ग्रासन] ग्रास दिखाना । डराना । भयभीत करना ।

तिरासी—वि० [सं० त्र्यगति, प्रा० तिरसीति] जो गिनती में अस्सी से तीन अधिक हो । तीन ऊपर अस्सी ।

संज्ञा पुं० (१) अस्सी से तीन अधिक की संख्या । (२) उक्त संख्या सूचक श्रंक जो इस प्रकार लिखा जाता है—६३ ।

तिराहा—संज्ञा पुं० [हिं० तीन + हा० राह] वह स्थान जहाँ से तीन रास्ते तीन ओर का गए हों । तिरसुधानी ।

तिराही—संज्ञा स्त्री० [हिं० तिराह] तिराह नामक स्थान की बनी कटारी या लज्जवार ।

तिरिभिद्धक—संज्ञा पुं० [सं०] एक पेड़ का नाम ।

तिरिन्—संज्ञा पुं० दे० “तृण” ।

तिरिम—संज्ञा पुं० [सं०] शालि भेद । एक प्रकार का धान ।

तिरिया—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] स्त्री । औरत । उ०—तुम तिरिया मति हीन तुम्हारी ।—जायसी ।

थी०—तिरिया चरित्र—स्त्रियों का रहस्य ।

संज्ञा पुं० [दे०] एक प्रकार का बॉस जो नेपाल में होता है । इसे ओला भी कहते हैं ।

तिरीछा—वि० दे० “तिरछा” ।

तिरीट—संज्ञा पुं० [सं०] (१) लोभ । लोभ । (२) किरिट ।

तिरीफल—संज्ञा पुं० [सं० फीलफल] दंतीवृक्ष ।

तिरीविरि—वि० दे० “तिरीविकी” ।

तिरिंदा—संज्ञा पुं० [सं० तंदा] (१) सख्त में तैरता हुआ पीपा जो संकेत के लिये किसी ऐसे स्थान पर रखा जाता है जहाँ पानी छिड़ना होता है, चढ़नें होती हैं, या इसी प्रकार की और कोई बाधा होती है । (ये पीपे कई आकार प्रकार के होते हैं । किसी किसी के ऊपर घंटा या सीटी भी लगी रहती है) । (२) मछली मारने की बंसी में कटिया से हाथ डेड़ हाथ ऊपर बँधी हुई पाँच छुंछुंछुं की लकड़ों जो पानी पर तैरती रहती हैं और जिसके दूबने से मछली के फँसने का पता लगता है । (३) “तरेदा” ।

तिरिंदा—संज्ञा पुं० [अनु०] फीलवानों का एक शब्द जिसे वे नशते हुए हाथियों के खेताने के लिये बोलते हैं ।

तिरोधान—संज्ञा पुं० [सं०] अंतर्दान । अदरान । गोपन ।

तिरोघायक—संज्ञा पुं० [सं०] आड़ करनेवाला । छिपानेवाला । गुप्त करनेवाला ।

तिरोभाव—संज्ञा पुं० [सं०] (१) अंतर्दान । अदरान । (२) गोपन । छिपाना ।

तिरोभूत—वि० [सं०] गुप्त । छिपा हुआ । अदृष्ट । अंतर्हित । गायब ।

तिरोहित—वि० [सं०] (१) छिपा हुआ । अंतर्हित । अदृष्ट । (२) आच्छादित । ढका हुआ ।

तिरींछा—वि० दे० “तिरछा” । उ०—कठिन वचन सुनि श्रवण जानकी सकी न वचन सहार । तृण अंतर है टटि तिरिंछी हुई नैन जलधार ।—सूर ।

तिरींदा—संज्ञा पुं० दे० “तिरिंदा” ।

तिर्यंचानुपूर्वी—संज्ञा स्त्री० [सं०] जैन शास्त्रानुसार जीव की वह गति जिसमें उसे तिर्यग्योनि में जाते हुए कुछ काल तक रहना पड़ता है ।

तिर्यंची—संज्ञा स्त्री० [सं०] पशु पक्षियों की मादा ।

तिर्यक्—वि० [सं०] तिरछा । आड़ा । टेढ़ा ।

विशेष—मनुष्य को छोड़ पशु पक्षी आदि जीव तिर्यक् कहलाते हैं क्योंकि खड़े होने में उनके शरीर का विचार ऊपर की ओर नहीं रहता, आड़ा होता है । इनका साया हुआ अन्न सीधे ऊपर से नीचे की ओर नहीं जाता बल्कि आड़ा होकर पेट में जाता है ।

तिर्यक्ता—संज्ञा स्त्री० [सं०] तिरछापन । आड़ापन ।

तिर्यक्त्व—संज्ञा पुं० [सं०] तिरछापन । आड़ापन ।

तिर्यक्पाती—वि० [सं० तिर्यक्पातिन्] [स्त्री० : तिर्यक्पातिनी] आड़ा फैलाया या रखा हुआ । बँधा रखा हुआ ।

कमेद-संज्ञा पु० [सं०] दो सहारों पर टिकी हुई वस्तु का बीच में दबाव पड़ने से टूटना ।

कस्रोतस-संज्ञा पु० [सं०] (१) वह जिसका फैलाव आड़ा हो । (२) वह जीव जिसके पेट में खाया हुआ आहार आड़ा होकर जाता हो । वह जीव जिसका आहार निगलने का नल खड़ा न हो, आड़ा हो । पशु, पक्षी ।

विशेष-पुराणों में जीव सृष्टि के ऊद्देश्योत्स, तिर्यकस्रोतस आदि कई धर्म किए गए हैं । भागवत में तिर्यकस्रोतस २८ प्रकार के माने गए हैं । (१) द्विष्टर (दो घुरवाले)—गाय, पक्षी, बैल, कृष्यसार युग, सुधर, नीलगाय, रुद्र नामक युग । (२) एकष्टर—गदहा, घोड़ा, खर, गौरयुग, गरम, सुरागाय । (३) पंचनल—कुत्ता, गीदड़, भेड़िया, बाघ, बिछी, खरहा, सिंह, बंदर, हाथी, कपुआ, मेढक, इत्यादि । (४) जलचर—मछली । (५) स्रचर—गीध, बगला, मोर, हंस, कौवा आदि पक्षी । ये सब जीव ज्ञान-युक्त और समोणुष-विशिष्ट कहे गए हैं । इनके अंतःकरण में किसी प्रकार का ज्ञान नहीं पतलाया गया है ।

तिग्गति-संज्ञा शी० [सं०] (१) तिरछी या टेढ़ी चाल । (२) कर्मवशा-पशु-प्रेति-प्राप्ति ।

तिर्यनिदश-संज्ञा शी० [सं०] उचर दिया ।

तिर्यग्यान-संज्ञा पु० [सं०] कंकड़ा ।

तिर्यग्योनि-संज्ञा शी० [सं०] पशु पक्षी आदि जीव । दे० "तिर्यकस्रोतस" ।

तिर्यच्-संज्ञा पु० दे० "तिर्यक्" ।

तिलंगनी-संज्ञा शी० [हि० निग + अंगनी] एक प्रकार की मिठाई जो चीनी में तिल पाग कर बनती है ।

तिलंगसा-संज्ञा पु० [दे०] एक प्रकार का बहुत जो हिमालय पर नैपाल से लेकर पंजाब तक होता है । अफगानिस्तान में भी यह पेड़ पाया जाता है । इसकी लकड़ी मजबूत होती है, इमारतों में जगती है तथा हल, फयान का बंदा आदि बनाने के काम में आती है । 'हिमाले के घास पास के जंगलों में इसकी लकड़ी का कोयला फूँका जाता है ।

तिलंगना-संज्ञा पु० [हि० तिलंगना, सं० तैलंग] अंगरेजी फौज का देशी सिपाही ।

विशेष-पहिले पहल इस्ट-इंडिया कंपनी ने मद्रास में किला बना कर वहाँ के तिलंगियों को अपनी सेना में भरती किया था । इससे अंगरेजी फौज के देशी सिपाही मात्र तिलंगे कहे जाने लगे ।

संज्ञा पु० हि० [तैल + अंग] एक प्रकार का कन्दौबा ।

तिलंगाना-संज्ञा पु० [सं० तैलंग] तैलंग देश ।

तिलंगी-वि० [सं० तैलंग] तिलंगाने का निवासी । तैलंग ।
संज्ञा शी० [हि० तैल + अंग] एक प्रकार की पतंग ।

तिल-संज्ञा पु० [सं०] (१) प्रति वर्ष बोया जानेवाला हाथ सेढ़ हाथ ऊँचा एक वौषा जिसकी खेती संसार के प्रायः सब गरम देशों में तेज के लिये होती है । इसकी परिष्कृत आठ दस अंगुल तक लंबी और तीन चार अंगुल चौड़ी होती है । ये भोवे की धोर तो ठीक चामने सामने मिलती हुई लगती है पर थोड़ा ऊपर चल कर कुछ अंतर पर होती है । पत्तियों के किनारे सीधे नहीं होते, टेढ़े मेढ़े होते हैं । फूल गिलास के आकार के ऊपर चार दलों में विभक्त होते हैं । ये फूल सफेद रंग के होते हैं केवल मुँह पर भीतर की धोर रंगीन धब्बे दिखाई देते हैं । बीजकेष्य लंबोवारे होते हैं जिनमें तिल के बीज भरे रहते हैं । ये बीज चिपटे और लंबोवारे होते हैं । हिंदुस्तान में तिल दो प्रकार का होता है—सफेद और काला । तिल की दो फसलों होती हैं—कुँवारी और चैती । कुँवारी फसल बरसात में खाना, चाअरे, धान आदि के साथ अधिकतर बोई जाती है । चैती फसल यदि कालिक में बोई जाय तो पूस मास तक तैयार हो जाती है ।

बहुमिदु शास्त्रवेत्ताओं का अनुमान है कि तिल का आदि स्थान अफ्रिका महाद्वीप है । यहाँ आठ नौ जाति के तिल जंगली पाए जाते हैं । पर तिल शब्द का व्यवहार संस्कृत में प्राचीन है, यहाँ तक कि अब और किसी बीज से तेल नहीं निकाला गया था तब तिल से निकाला गया । इसी कारण उसका नाम ही तैल (तिल से निकला हुआ) पड़ गया । अथर्ववेद तक में तिल और धान द्वारा तर्पण का उल्लेख है । आजकल भी पितरों के तर्पण में तिल का व्यवहार होता है । वैद्यक में तिल भारी, स्निग्ध, गरम, कफपित्तकारक, यक्ष-यक्षक, बेशों का हितकारी, स्तनों में दूध उत्पन्न करनेवाला, मलरोधक और घातनाशक माना जाता है । तिल का तेल यदि कुछ अधिक पिचा जाय तो रंचक होता है ।

पय्या०—दोमधान्य । पवित्र । पितृरंघ्य । पापघ्न । पृतधान्य । अटिल । बनेद्रव्य । स्नेहफल । तैलफल ।

यो०—तिलकुट । तिलचट्टा । तिलमुग्गा । तिलशकरी ।

मुहा०—तिल की शोक्ल पहाड़ = किसी छोटी शत के भीतर यही भारी बात । तिल का ताड़ करना = किसी छोटी बात को बहुत बढ़ा देना । छोटे से मामले में । बहुत बढ़ा करना या दिखाना । तिलचावले बाल = कुछ मनेद और कुछ काने बाल । खिचड़ी बाल । तिल चाटना = सुसंतुष्टि के वहाँ निवाह में विदाई के समय दूध का दुग्धदिन के हाथ पर रखे हुए बाले तिलों को चाटना । (यह टोटका इसलिये होता है जिसमें दूधदा सदा अपनी ही के बरा में रहे) । तिल तिल = पोशा पोशा । तिल धरने की अगह न होना = शय सी भी

जगह खाती न रहना । पूरा खानछिका रहना । तिलक बँचना = सूर्यकांत शीरो से होकर आए हुए सूर्य के प्रकाश का फँदी-भूत होकर बिंदु के रूप में पड़ना । तिल भर = (२) जरा सा । थोड़ा सा । ३०—रहा चढ़ाउव तोरव भाई । तिल भर भूमि न सकेउ छुडाई ।—तुजली । † (२) चय भर । थोड़ा देर । (किसी) के तिलों से तेल निकालना = किसी से किसी प्रकार रूपया लेकर वही उधके काम में लगाना ।

(२) काले रंग का छोटा दाग जो शरीर पर होता है । ३०—चिबुक कूप रसरी अलक तिल सु चरस दग यैल । धारी वयस गुलाब की सौंचत मनमथ छैल ।—रसलीन ।

विशेष—सामुद्रिक तिलों के स्थान से अनेक प्रकार के शुभाशुभ फल बतलाए जाते हैं । पुरुष के शरीर में दाहिनी ओर और ओर के शरीर में बाईं ओर का तिल अशुभ माना जाता है । हथेली का तिल सौभाग्य-सूचक समझा जाता है ।

(३) काली बिंदी के आकार का गोदना जिसे खिर्पा शोभा के लिये गाल, ठुड़ी आदि गोढ़ती हैं ।

क्रि० प्र०—बनाना ।—लगाना ।

(४) आँसू की पुतली के बीचो बीच की गोल बिंदी जिस में सामने पढ़ी हुई वस्तु का छोटा सा प्रतिबिंब दिखाई पड़ता है ।

तिलकंठी—संज्ञा स्त्री० [सं०] विष्णु-कांची । काली कौवाडोंडी ।

तिलक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) यह चिह्न जिसे गीले चंदन, केसर आदि से मस्तक बाहु आदि शंगों पर सांप्रदायिक संकेत या शोभा के लिये लगाते हैं । टीका ।

विशेष—भिन्न भिन्न संप्रदायों के तिलक भिन्न भिन्न आकार के होते हैं । वैष्णव खड़ा तिलक या ऊर्ध्व पुंड्र लगाते हैं जिस के संप्रदायानुसार अनेक आकृति भेद होते हैं । शैव आड़ा तिलक या त्रिपुंड्र लगाते हैं । शाक लोग रक्त चंदन का आड़ा टीका लगाते हैं । वैष्णवों में तिलक का माहात्म्य बहुत अधिक है । ब्रह्म पुराण में ऊर्ध्व पुंड्रतिलक की बड़ी महिमा गई गई है । वैष्णव लोग तिलक लगाने के लिये द्वादश अंग मानते हैं—मस्तक, पेट, छाती, कंठ, (दोनों पाश्र्व) दोनों कान, दोनों बाँह, कंधा, पीठ और कटि । तिलक प्राचीन काल में शृंगार के लिये लगाया जाता था, पीछे से वपासना का चिह्न समझा जाने लगा ।

क्रि० प्र०—धारण करना ।—धारना ।—लगाना ।—सारना ।

(२) रामसिंहासन पर प्रतिष्ठा । राज्याभिषेक । गद्दी ।

श्री०—राजतिलक ।

(३) विवाह-संबंध स्थिर करने की एक रीति जिस में कन्या-पक्ष के लोग घर के माथे में दही अण्डस आदि का टीका लगाते और कुछ द्रव्य बसके साथ देते हैं । टीका ।

क्रि० प्र०—चढ़ना ।—चढ़ाना ।

मुहा०—तिलक देना = तिलक के साथ (धन) देना । जैसे, बसने कितना तिलक दिया । तिलक भेजना = तिलक की सामग्री के के साथ घर के घर तिलक चढ़ाने लोगों का भेजना ।

(४) माथे पर पहनने का खिर्पा का एक गहना । टीका । (५) शिरोमण्डि । श्रेष्ठ व्यक्ति । किसी समुदाय के बीच श्रेष्ठ या उत्तम पुरुष । जैसे, राजकुलतिलक । (६) पुत्राग की भाति का एक पेड़ जिसमें छूत्ते के आकार के फूल बसंत ऋतु में लगते हैं । यह पेड़ शोभा के लिये यगीचों में लगाया जाता है । इसकी लकड़ी और छाल दवा के काम आती है । (७) सूँठ का फूल या घूँघा । (८) बोध रूप । बोध का पेड़ । (९) मटक । मट्या । (१०) एक प्रकार का अक्षय । (११) एक जाति का घोड़ा । घोड़े का एक भेद । (१२) बल्लोम । तिहो जो पेट के भीतर होती है । (१३) सौवचंद्र लवण । सोचर नमक । (१४) संगीत में ध्रुवक का एक भेद जिसमें एक एक चरय पचीस पचीस अक्षरों के होते हैं । (१५) किसी ग्रंथ की अर्थसूचक व्याख्या । टीका ।

संज्ञा पुं० [तु० तिरक्षीक का संज्ञित रूप] (१) एक प्रकार का शीला ढाँचा ज्ञानाना कुरता जिसे प्रायः सुखब्रह्मान खिर्पा रूप के ऊपर पहनती हैं । ३०—तनिया न तिलक, सुप-निया पगनिया न धर्म सुमराती छाँड़ि सेनिया सुखन की ।—भूपथ । (२) खिलछत ।

तिलक कामोद—संज्ञा पुं० [सं०] एक रागिनी जो कामोद और विचित्र अथवा कान्हड़ा कामोद और पद्म योग से मिल कर बनी है ।

तिलकट—संज्ञा पुं० [सं०] तिल का चूर्ण ।

तिलकना—क्रि० अ० [हिं० लड़कना] गीली मिट्टी का सूख कर स्थान स्थान पर दरकना या फटना । ताल आदि की मिट्टी का सूख कर द्वारा के साथ पटना ।

तिलक मुद्रा—संज्ञा पुं० [सं०] चंदन आदि का टीका और शंख चक्र आदि का छाया जिसे भक्त लोग लगाते हैं ।

तिलकलक—संज्ञा पुं० [सं०] तिल का चूर्ण । तिलकट्ट ।

तिलकहर्का—संज्ञा पुं० दे० 'तिलकहार' ।

तिलकहार—संज्ञा पुं० [हिं० शिषक + हार (प्रल०)] यह मनुष्य जो कन्या के पिता के यहाँ से घर को तिलक चढ़ाने के लिये भेजा जाता है ।

तिलका—संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक वृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में दो सगण (115) होते हैं । इसे 'तिला' 'तिलाना' और 'तिला' भी कहते हैं । (२) कंठ में पहनने का एक आभूषण ।

तिलकालक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) देह पर का तिल के आकार का काला चिह्न । तिल । (२) सुश्रुत के अनुसार एक व्याधि

जिसमें पुरुष की हृदिय एक जाती है और उस पर काले काले दग्ग से पड़ जाते हैं ।

तिलकित्—संज्ञा पुं० [सं०] तिल की खली । पीना ।

तिलकुट—संज्ञा पुं० [सं० तिलकुट] कूटे हुए तिल जो खाई की कारामी में पगे हों ।

तिलखा—संज्ञा पुं० [देग०] एक चिड़िया का नाम ।

तिलचटा—संज्ञा पुं० [हिं० तिल + चटना] एक प्रकार का भोगी । चट्टा ।

तिलचा।चली—संज्ञा स्त्री० [हिं० तिल + चबन] तिल और चावल की मिचड़ी ।

वि० स्त्री० जिसका कुछ थंसा सफ़ेद और कुछ काला हो । जैसे, तिल चावली दाढ़ी ।

तिलचित्र पत्रक—संज्ञा पुं० [सं०] सैलकंद ।

तिलचूरी—संज्ञा पुं० [सं०] तिलककल । तिलकट्ट ।

तिलछाना—कि० अ० [अ०] विकल रहना । छटपटाना । बेचैन रहना ।

तिलड़ा—वि० [हिं० छील + ढड़] जिसमें तीन लड़ें हों । तीन लड़ों का ।

संज्ञा पुं० [देग०] पत्थर गड़नेवालों की एक छेनी जिससे डेरी लकीर या लहरदार नक़्करी बनाई जाती है ।

तिलड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० छील + ढड़] तीन लड़ों की माला जिसके बीच में एक लुगनी लटकती है ।

तिलदानी—संज्ञा स्त्री० [हिं० तिल + सं० आधान] कपड़े की वह धैली जिसमें दरजी, सूई, तागा, अंगुरताना आदि चीज़ार रखते हैं ।

तिलधेनु—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का दान जिसमें तिलों की गाय बनाकर दान करते हैं ।

तिलपट्टी—संज्ञा स्त्री० [हिं० तिल + पट्टी] खाई या गुड़ में पगे हुए तिलों का कतरा ।

तिलपपड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० तिल + पपड़ा] तिलपट्टी ।

तिलपथी—संज्ञा पुं० [सं०] (१) चंदन । (२) सरल का गाँद ।

तिलपर्यिका—संज्ञा स्त्री० दे० "तिलपर्या" ।

तिलपर्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] रक्त चंदन ।

तिलपिंज—संज्ञा पुं० [सं०] वह तिल का पौधा जिसमें फूल कल नहीं लगते । यंका तिल वृष्ट ।

तिलपिच्छट—संज्ञा पुं० [सं०] तिलों की पीठी । तिलकूटा ।

तिलपीड़—संज्ञा पुं० [सं०] (तिल को पेनेवाला) सेवी ।

तिलपुप—संज्ञा पुं० [सं०] (१) तिल का फूल । (२) व्याघ्रनख । बघनखी ।

तिलपुपक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) बर्दड़ा । (२) नाक (क्योंकि इसकी बपवा तिल के फूल से दी जाती है) ।

तिलवट्टा—संज्ञा पुं० [देग०] चीपायों का एक रोग जिसमें गले

के भीतार के मांस के पड़ जाने से ये कुछ खा पी नहीं सकते ।

तिलवट्ट—संज्ञा पुं० [देग०] एक प्रकार का पपी ।

तिलभार—संज्ञा पुं० [सं०] एक देवा । (महाभारत)

तिलभुग्गा—संज्ञा पुं० [हिं० तिल + सं० युक्त] खाई मिले हुए भुने तिल जो खाए जाते हैं । तिलकूट ।

तिलभूष्ट—वि० [सं०] तिल के साथ भूना या पकाया हुआ ।

विशेष—महाभारत में तिल के साथ भुनी हुई वस्तु के खाने का निषेध है । स्मृतियों में तिल मिला हुआ पदार्थ पिना देना-पिंत किए जाता वर्जित है ।

तिलभेद—संज्ञा पुं० [सं०] पोखे का दाना ।

तिलमयूर—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का पपी जिसके देह पर तिल के समान काले चिह्न होते हैं ।

तिलमापट्टी—संज्ञा स्त्री [देग०] दक्षिण में बिलारी और करनूल में होनेवाली एक कपास ।

तिलमिल—संज्ञा स्त्री० [हिं० तिरिर] चकाचीप । तिरिराहट ।

तिलमिलाना—कि० अ० दे० "तिरिराना" ।

तिलरा—संज्ञा पुं० [देग०] डेढ़ी लकीर बनाने की छेनी जिसे कसेरे काम में लाते हैं ।

† वि० संज्ञा पुं० दे० "तिलड़ा" ।

तिलरी—संज्ञा स्त्री० दे० "तिलड़ा" ।

तिलघट—संज्ञा पुं० [हिं० तिल] तिलपट्टी । तिलपपड़ी ।

तिलवन—संज्ञा स्त्री० [देग०] एक पौधा जो जंगलों और बगीचों में होता है । यह दो प्रकार का होता है—एक सफ़ेद फूल का, दूसरा नीलापन लिए पीले फूल का । इसमें लंबी लंबी फलियाँ लगती हैं । इसके बीज फूल आदि दवा के काम में आते हैं । वैद्यक में तिलवन गरम और वात, गुंम, भादि को दूर करनेवाली मानी जाती है । पीली तिलवन, यंत्रों में पड़ती है ।

पंथ्या—अग्रगंथा । खरपुण्या । सुपंधिका । कावरी । मुंगी ।

तिलया—संज्ञा पुं० [हिं० तिल] तिलों का खट्ट ।

तिलदाकुरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० तिल + कुर] तिल और चीनी की बनाई हुई मिठाई । तिलपपड़ी ।

तिलदम—संज्ञा पुं० [दे० डेक्षिमा] (१) जादू । इन्द्रजाल । (२) करामात । चमत्कार । अद्भुत या शरीरकिक व्यापार ।

मुहाना—तिलवस सोझना = किसी ऐसे स्थान के रहस्य का पता लगाना जहाँ जादू के कारण किसी की गति न हो ।

तिलहन—संज्ञा पुं० [हिं० तेल + पत्त] फलक के रूप में बोर जानेवाले पीपे जिनके बीजों से तेल निकलता है, जैसे, तिल, सारस, छीनी इत्यादि ।

तिलकित दल—संज्ञा पुं० [सं०] सैलकंद ।

तिलाजली—संज्ञा स्त्री० [सं०] मृतक संस्कार का एक अंग ।
हिंदुओं में मृतक-संस्कार की एक क्रिया जो मुरदे के जल चुकने पर स्नान करके की जाती है । इसमें हाथ की अँगुली में जल भर कर और उसमें तिल डाल कर उसे मृतक के नाम से छोड़ते हैं ।

मुहा०—तिलाजली देना = विलकुल त्याग देना । जरा भी संघर्ष न रखना ।

तिलाबु—संज्ञा पुं० [सं०] तिलाजली ।

तिला—संज्ञा पुं० [हिं० तेल] (१) वह तेल जो लिंगेंद्रिय पर उसकी शिथिलता दूर करने के लिये लगाया जाय । लिंज-लेप ।
(२) दे० 'तिला' ।

तिलाक—संज्ञा स्त्री० [अ० तलक] पति पत्नी का भंग । स्त्री पुरुष के भाते का टूटना ।

क्रि० प्र०—देना ।—लेना ।

विशेष—ईसाइयों, मुसलमानों आदि में यह नियम है कि वे धावश्यकता पड़ने पर अपनी विवाहिता स्त्री से एक विशेष नियम के अनुसार संबंध तोड़ देते हैं । उस दशा में स्त्री और पुरुष दोनों को अलग अलग विवाह करने का अधिकार हो जाता है ।

धौ०—तिलाकनामा ।

तिलादानो—संज्ञा स्त्री० दे० 'तिलदानानी' ।

तिलाज—संज्ञा पुं० [सं०] तिल की खिचड़ी ।

तिलापत्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] काबा जीरा ।

तिलाया—संज्ञा पुं० [हिं० तैन + ताना, जाना ?] वह बड़ा कुआँ जिस पर एक साथ तीन पुरवट चब सकें ।

संज्ञा पुं० [अ० तलाकः] रात के समय कोतवाल आदि का शहर में गश्त लगाना । रौंद ।

तिलिंगा—संज्ञा पुं० दे० 'तिलंगा' ।

तिलिस्ता—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का साँप जिसे मोतस भी कहते हैं ।

तिलिया—संज्ञा पुं० [दे०] (१) सरपत । (२) दे० 'तेलिया' (विष) ।

तिलस्मी—वि० [अ० तिलस्म + ई० (प्रत्य०)] तिलस्म-संबंधी । जादू का ।

तिली—संज्ञा स्त्री० (१) दे० 'तिल' । (२) दे० 'तिल्ली' ।

तिलेटी—संज्ञा स्त्री० [हिं० तेलहन + टी (प्रत्य०)] तेलहन की खूँटी जो फसिल फाटने पर खेत में धच जाती है

तिलेदानो—संज्ञा स्त्री० दे० 'तिलदानानी' ।

तिलेगू—संज्ञा स्त्री० दे० 'तेलगू' ।

तिलोक—संज्ञा पुं० दे० 'त्रिलोक' ।

तिलोकपति—संज्ञा पुं० [सं० त्रिलोकपति] विष्णु । उ० मुलसी तिलेक है तिलेकपति गया नाम को प्रताप यात विदित है जय में ।—नुजसी ।

तिलोकी—संज्ञा पुं० [सं० त्रिलोकी] इक्षीम मात्रायेों का एक उपजाति धुँव जो प्लवंगम और चांद्रायण के मेल से बनता है । इसके प्रत्येक चरण के अंत में 'खु-गु' होता है ।

तिलोचन—संज्ञा पुं० दे० 'त्रिलोचन' ।

तिलोत्तमा—संज्ञा स्त्री० [सं०] पुराणानुसार एक परम रूपवती अप्सर जिसके विषय में यह कहा जाता है कि ब्रह्मा ने संसार भर के सब उत्तम पदार्थों में से एक एक तिल धरा लेकर इसे बनाया था ।

इसकी उपपत्ति हिरण्यक के सुंद और उपसुंद नामक दोनों पुत्रों के नाश के लिये हुई थी जिन्होंने बहुत तपस्या करके यह वर प्राप्त कर लिया था कि हम लोग किसी दूसरे के मारने से न मरें; और यदि मरें भी तो आपस में ही लड़कर मरें । इन दोनों माइयों में बहुत स्नेह था और इन्होंने देव-तायों तथा इंद्र को बहुत तंग कर रखा था । इन्हीं दोनों में विरोध करने के लिये ब्रह्मा ने तिलोत्तमा की रचि की और उसे सुंद और उपसुंद के निवासस्थान सिंध्याचल पर भेज दिया । इसे पाने के लिये दोनों भाई आपस में लड़ मरे थे ।

तिलोदक—संज्ञा पुं० [सं०] वह तिल मिला अँगुली भर जल जो मृतक के उद्देश्य से दिया जाता है । तिलाजली ।

तिलोरी—संज्ञा स्त्री० [दे०] (१) एक प्रकार की मैना जिसे तेलिया मैना भी कहते हैं । उ०—पेढु तिलोरी औ जल हँसा । हिरदय बैठ विरह खग निसा ।—जायसी । (२) दे० 'तिलोरी' ।

तिलोहरा—संज्ञा पुं० [दे०] पटसन का रेशा ।

तिलौछना—क्रि० सं० [हिं० तेल + छँटना (प्रत्य०)] थोड़ा तेल लगाकर चिकना करना ।

तिलौछा—वि० [हिं० तेल + छँटा (प्रत्य०)] जिसमें तेल का सा स्वाद या रंग हो । जैसे, तिलौछा फल ।

तिलौरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० तिल + री] उदें या मूँग की यह परी जिसमें कुछ तिल भी मिला हो । इसमें नमक भी पड़ा रहता है और यह धी में तलकर खाई जाती है ।

तिलुना—संज्ञा पुं० [सं०] तिलका नाम का घण्टे घृत ।

तिलुर—संज्ञा पुं० [दे०] एक प्रकार की सोहन चिड़िया जिसे होबर भी कहते हैं ।

तिल्ला—संज्ञा पुं० [अ० तिला] (१) कलायूत या मादले आदि का काम ।

यो०—तिल्लेदार ।

(२) पगड़ी, दुपट्टे या साड़ी आदि का यह अंश जिसमें कलायूत या मादले आदि का काम किया हो । (३) यह

सुंदर पदार्थ जो किसी वस्तु की शोभा बढ़ाने के लिये उस में जोड़ दिया जाय। (सं०)

संज्ञा पुं० दे० "तिष्ठका" (पद्यंशु)।

तिष्ठाना—संज्ञा पुं० दे० "धराना (१)"।

तिष्ठो—संज्ञा स्त्री० [सं० तिष्ठ] पेट के भीतर का एक छोटा अवयव जो मांस की पोजी गुरुती के आकार का होता है और पसलियों के नीचे पेट की बाईं ओर होता है। इसका संबंध पाकाशय से होता है। इस में क्षार हुए पदार्थ का विरोध रस कुण्ड काच तक रहता है। जब तक यह रस रहता है तब तक तिष्ठो फेज कर क्षुद्र बड़ी हुई रहती है फिर जब इस रस को रक्त सोख लेता है तब वह फिर ज्यों की त्यों हो जाती है। तिष्ठो में पड़ु च कर रक्तकणिकाओं का रंग र्थ गनी हो जाता है।

ज्वर के कुछ काल तक रहने से तिष्ठो बढ़ जाती है, उसमें रक्त अधिक आ जाता है और कभी कभी छूने से पीड़ा भी होती है। ऐसी अवस्था में उसे छेदने से उसमें से खाल रक्त निकलता है। ज्वर आदि के कारण बार बार अधिक रक्त आते रहने से ही तिष्ठो बढ़ती है। इस रोग में मनुष्य दिन दिन कुबड़ा होता है, उसका मुँह सूखा रहता है और पेट निकल आता है। वैद्यक के अनुसार दाहकारक तथा कफकारक पदार्थों के विशेष सेवन से रक्षित कृपित होकर कफ द्वारा स्रीहा को बढ़ाता है तब तिष्ठो बढ़ जाती है और मंदगमि, जीर्णज्वर आदि रोग साय लग जाते हैं। अवायार, पलास का दार, शंख की मलम आदि स्रीहा की धनुषी रोक भीषय हैं। बाकूरी में कुनैन तथा कार्बोनिज (संलिया) और खोदा मिळी हुई दवाएँ तिष्ठो बढ़ने पर दी जाती हैं।

पय्यां—स्रीहा। पिजड़ी।

संज्ञा स्त्री० [सं० तिष्ठ] तिष्ठ नाम का अक्षर या संज्ञकन।

संज्ञा स्त्री० [दे०] एक प्रकार का बाँस जो धाराम और वरना में अँधी पदाङ्गियों पर होता है। ये बाँस पचास साठ फुट तक ऊँचे होते हैं और इनमें गाँठ दूर दूर पर होती है। इस से ये चीने बनाने के काम में अधिक आते हैं।

संज्ञा स्त्री० दे० "नीली"।

तिष्य—संज्ञा पुं० [सं०] लोभ। लोच।

तिष्यक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) लोच। (२) तिनिरा।

तिष्याङ्गो—संज्ञा पुं० दे० "तिषारी"।

तिष्यारो—संज्ञा पुं० [सं० तिष्यारो] [स्त्री० तिष्यारो] त्रिषारो। दे० "त्रिषारो"।

तिष्यासा—संज्ञा पुं० [सं० तिष्यासा] तीन दिन। व०—मन फाटे धायक पर मिटे सगाई साक। जैसे दूध तिष्यासे के डलटि हुआ जो धाक।—कयीर।

तिष्यासी—वि० दे० "तिष्यासी"।

तिष्यी—संज्ञा स्त्री० [दे०] खेसारी।

तिशना—संज्ञा पुं० [फा० तपनीय] ताना। मेढ़ना।

क्रि० प्र०—देना।—मारना।

तिष्ठद्युः—संज्ञा पुं० [सं०] वह काल जिसमें गाँव अपने खूँटे पर चर कर आ जाती हैं। मध्याह्न। सायंकाल। गोपूली।

तिष्ठना—क्रि० प्र० [सं० तिष्ठ] बहरना। व०—चौबूट भुयन एक पति होई। भूत ब्रह्म तिष्ठत गहिं कोई।—तुलसी।

तिष्ठो—संज्ञा स्त्री० [सं०] तिष्ठ नाम की नदी जो हिमालय के पास से निकल कर मयावगंज के पास गंगा से मिली है।

तिष्य—संज्ञा पुं० [सं०] (१) दुग्ध नवग्र। (२) पीप मास। (३) कलिद्युग। (४) मोगक्य। कपयायकारी।

तिष्यक—संज्ञा पुं० [सं०] पीप मास।

तिष्यपुत्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] आमरकी।

तिष्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] आमरकी।

तिष्यन—वि० दे० "तीष्य"। व०—जप में पत्थर तिष्यन तेज जो सुर समाज में गाज गने हैं।—तुलसी।

तिसा—सर्व० [सं० तिस्र, पा० तिस्र] 'ता' का एक रूप जो उसे विभक्ति धरने के पूर्व प्राप्त होता है। जैसे, तिसने, तिसरो, तिससे इत्यादि।

विद्योप—अथ इस शब्द का व्यवहार गद्य में नहीं होता। केवल 'तिस पर' का प्रयोग होता है।

मुद्रां—तिस पर = (१) उसके पीछे। उसके उपरंत। (२) इतना होने पर। ऐसी अवस्था में भी। जैसे, (क) हमारी चीज भी छे गय, तिस पर हमों के धाले भी सुवाते हो। (घ) इतना मना किया तिस पर भी वह खला गया।

तिसस्युटा—संज्ञा स्त्री० [हिं० तीसी + स्युटी] तीसी के पौधों के छोटे छोटे डंठल जो फसल कटने पर जमीन में गड़े रह जाते हैं। तीसी की खूँटी।

तिसस्युट—संज्ञा स्त्री० दे० "तिसस्युट"।

तिसना—संज्ञा स्त्री० दे० "सृष्णा"।

तिसरारा—वि० दे० "तीसरा"।

तिसरार्या—क्रि० वि० [हिं० तिसरा] तीसरी बार।

तिसरायत—संज्ञा स्त्री० [हिं० तिसरा] तीसरा होने का भाव।—नर होने का भाव।

तिसरैत—संज्ञा पुं० [हिं० तिसरा] (१) दो आदिमियों के मगड़े से खलम एक तीसरा मनुष्य। तदर्थ। मध्यस्थ। (२) तीसरे हिस्से का मासिक।

तिसाना—क्रि० प्र० [सं० स्या] प्यासा होना। कृषित होना। व०—देखि के विभूति सुप्र बपयो अमृत कोक चरयो मुख साधुरी के लोचन तिसाये हैं।—प्रिया।

विद्युत्-संज्ञा पुं० [वि०] एक द्रव्य का नाम ।
 तिष्ठा-संज्ञा स्त्री० [सं०] शंखचुली ।
 तिस्स-संज्ञा पुं० [सं० तिष्] अशोक राजा के सगे भाई का नाम ।
 तिहृत्तर-वि० [सं० तिस्रगति, या० तिस्रगति, प्रा० तिस्रगति] जो गिनती में सत्तर से तीन अधिक हो । तीन ऊपर सत्तर ।
 संज्ञा पुं० (१) सत्तर से तीन अधिक की संख्या । (२) अग्नः संख्या पृथक् थक जो इस प्रकार लिखा जाता है—०३ ।
 तिहृद्वा-संज्ञा पुं० [देव०] यह स्थान जहाँ तीन हवें मिलती हैं ।
 तिहृद्वा-वि० दे० "तेहरी" ।
 संज्ञा स्त्री० [देव०] [स्त्री० अग्नः निर्द्वा] दूही जमाने या दूध बुझने का मिठी का बरतन ।
 तिहृद्वा-वि०-कि० [हिं०] (कितनी बात या काम को) तीसरी बार करना । दो बार करके एक बार फिर धीर करना ।
 तिहृद्वा-वि० स्त्री० दे० "तेहरी" ।
 संज्ञा स्त्री० [हिं० तीन + हार] (१) तीन खट्टों की माझा ।
 संज्ञा स्त्री० [तीन + हार] दूध बुझने या दूही जमाने का मिठी का छोटा बरतन ।
 तिहृद्वा-संज्ञा पुं० [सं० तिष्णार] खोहार । पर्य या समय का दिन ।
 विद्यो-दे० "खोहार" ।
 तिहृद्वा-संज्ञा स्त्री० दे० "खोहारी" ।
 तिहृद्वा-संज्ञा पुं० [सं० ति + मन्] (१) नृसीपांश । तीसरा भाग । तीसरा हिस्सा ।
 संज्ञा स्त्री० अग्निय । गेन की वपन । (पहले स्वेत की वपन का नृसीपांश कारककार होता या दूही से यह नाम पड़ा ।)
 मुद्वा-—तिहृद्वा मारी जाना = फसत या न उपजना ।
 तिहृद्वा-संज्ञा पुं० दे० "तिहृद्वा" ।
 तिहृद्वा-संज्ञा स्त्री० [देव०] एक आखिरत खंडी और तीन शंखुल धौड़ी लकड़ी जिसका काम पृथ्वी बनाने में पड़ता है ।
 तिहृद्वा-संज्ञा पुं० [हिं० तिहृद्वा = गीता] दो आधमियों के मगड़ से अलग एक तीसरा आधमी । शिरोरथ । शतरथ । मन्थरथ ।
 तिहृद्वा-संज्ञा पुं० दे० "तुहृद्वा" ।
 तिहृद्वा-संज्ञा पुं० दे० "तुहृद्वा" ।
 तिहृद्वा-संज्ञा स्त्री० [देव०] एक प्रकार की कपास की धौड़ी ।
 तिहृद्वा-संज्ञा पुं० [हिं० तिहृद्वा = गुला, वन] (१) श्रेय । कोप । (२) विगाड़ । व-—द्विज से द्विज रति राम से रियु से और तिहृद्वा । वदासीन सय से सख गुलती सहज सुभाज ।
 —सुखसी ।
 तिहृद्वा-संज्ञा पुं० दे० "तेहि" ।

तिहृद्वा-वि० [हिं० तीन + हृ (प्रत्यय)] तीनों । जैसे, तिहृद्वा लोक ।
 तिहृद्वा-संज्ञा पुं० [हिं० तिहृद्वा] (१) तीसरा भाग । नृसीपांश । (२) तयले, शृंगर आदि की ये तीन चापें जिनमें से प्रत्येक धार अतिव्यय या समयाले लाख को तीन भागों में बाँट कर प्रत्येक भाग पर धी जाती है और जिसकी अंतिम धाप ठीक सम पर पड़ती है ।
 ती-संज्ञा स्त्री० [सं० ती] (१) धी । धीरत । (२) जोर । पत्नी । (३) अनेकशय युद्ध का एक नाम । अमरावती । मन्थिनी ।
 ती-संज्ञा स्त्री० [सं० ती] शाक । भाजी । तरकारी ।
 तीकरा-संज्ञा पुं० [देव०] धीर से फूट कर निकला दुग्ध धँकुर । धँसुधा ।
 तीकरा-संज्ञा पुं० [हिं० तीन + क्रा = संज्ञा] कृष्ण की यह धँकुर जिसमें एक तिहृद्वा धँकुर जमाकर धीर दो तिहृद्वा कारककार होता है । तिहृद्वा ।
 तीक्ष्ण-वि० दे० "तीक्ष्ण" ।
 तीक्ष्ण-वि० दे० "तीक्ष्ण" ।
 तीक्ष्ण-वि० [सं०] (१) तेज नोक या धारपात्र । जिसकी धार या नोक इतनी चोखी हो जिससे कोई चीज कट सके । जैसे, तीक्ष्ण चाप । (२) तेज । प्रवर । तीक्ष्ण । जैसे, तीक्ष्ण शीघ्र, तीक्ष्ण बुद्धि । (३) अम । प्रच्छ । तीक्ष्ण । जैसे, तीक्ष्ण मन्थार । (४) जिसका स्वाद बहुत खराब हो । तेज या तीक्ष्ण स्वादपात्र । (५) जो (धार्य या बात) सुनने में अग्निय हो । कर्ष-कट्ट । जैसे, तीक्ष्ण धार्य, तीक्ष्ण रवर । (६) आमत्यागी । (७) निराश्रय । जिसे आश्रय न हो । (८) चतुष्टय । जो सहन न हो सके ।
 संज्ञा पुं० [सं०] (१) अग्निय । गरमी । (२) विप । अह । (३) हृत्पात छोटा । (४) युद्ध । अग्निय । (५) मरण । अग्निय । (६) शाक । (७) समुद्री नमक । कर्कष । (८) सुच्छक । मोरता । (९) अम्यनाभ । अम्यनाग । (१०) अम्य । चाय । (११) महामारी । मरी । (१२) अम्यार । अम्यार । (१३) सचेदु कुरा । (१४) अम्यार । (१५) योगी । (१६) ज्योतिष में मूत्र, आर्द्रा, अग्नी और अरलेवा मन्थ । (१७) पूर्वा-धीर अम्यार आधुपदा, अग्नी, अग्निनी और रेवती नक्षत्रों में बुध की गति ।
 तीक्ष्णकंठ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) धर्रे का पेड़ । (२) अम्यार का पेड़ । (३) अम्यार का पेड़ । (४) कनीज का पेड़ ।
 तीक्ष्णकंठ-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का वृक्ष जिसे कंकारी कहते हैं ।
 तीक्ष्णकंठ-संज्ञा पुं० [सं०] पञ्जाब । प्याज ।
 तीक्ष्णकंठ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मोला वृक्ष । (२) सचेदु सरसो ।
 तीक्ष्णकंठ-संज्ञा पुं० [सं०] तुम्बक वृक्ष ।
 तीक्ष्णकांता-संज्ञा स्त्री० [सं०] काजिकापुराण के अनुसार सार-

देवी का एक नाम जिसका प्यान शृण्व्यवर्णा, लंबोदरी और एकजटाधारिणी है। इसके पूजन से अभीष्ट का सिद्ध होना माना जाता है।

तीक्ष्णक्षीरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] संसलोचन।

तीक्ष्णगंध-संज्ञा पुं० [सं०] (१) संहनन का पेड़। (२) खाल गुजली। (३) लोथान। (४) छोटी हलायची। (५) सफेद गुजली। (६) कुंडुरु नामक गंधद्रव्य।

तीक्ष्णगंधक-संज्ञा पुं० [सं०] संहनन।

तीक्ष्णगंधा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) श्वेत वच। सफेद वच। (२) कंधारी का वृक्ष। (३) राई। (४) जीवंती। (५) छोटी हलायची।

तीक्ष्णतंडुला-संज्ञा स्त्री० [सं०] पिप्पली। पीपल।

तीक्ष्णता-संज्ञा स्त्री० [सं०] तीक्ष्ण होने का भाव। तीव्रता। तेजी।

तीक्ष्णताप-संज्ञा पुं० [सं०] महादेव। शिव।

तीक्ष्णतेज-संज्ञा पुं० दे० "तीक्ष्णतैज"।

तीक्ष्णतैज-संज्ञा पुं० [सं०] (१) राज। (२) सेहूँद का वृक्ष। (३) मद्रिस। सराय। (४) सरसों का तेल।

तीक्ष्णदृष्ट-संज्ञा पुं० [सं०] धार।

वि० तेज शर्तोंवाला। जिसके दृष्ट तेज हों।

तीक्ष्णदंत-संज्ञा पुं० [सं०] वह जानवर जिसके दंत बहुत तेज या नुकीले हों।

तीक्ष्णदृष्टि-वि० [सं०] जिसकी दृष्टि सूक्ष्म से सूक्ष्म बात पर पड़ती हो। सूक्ष्मदृष्टि।

तीक्ष्णधार-संज्ञा पुं० [सं०] खड्ग।

वि० जिसकी धार बहुत तेज हो।

तीक्ष्णपत्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) तुंडुल। धनिया। (२) एक प्रकार का रात्र।

वि० [सं०] जिसके पत्तों में तेज धार हो।

तीक्ष्णपुष्प-संज्ञा पुं० [सं०] ज्वंग। लींग।

तीक्ष्णपुष्पा-संज्ञा स्त्री० [सं०] केतकी।

तीक्ष्णप्रिय-संज्ञा पुं० [सं०] जौ।

तीक्ष्णफल-संज्ञा पुं० [सं०] तुंडुल। धनिया।

तीक्ष्णफला-संज्ञा स्त्री० [सं०] राई।

तीक्ष्णवृद्धि-वि० [सं०] जिसकी वृद्धि बहुत तेज हो। कुशाग्र वृद्धिवाला। वृद्धिमान्।

तीक्ष्णमंजरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] पान का पीया।

तीक्ष्णमूल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कुलंजन। (२) सहजंन।

वि० जिसकी जड़ में बहुत तेज गंध हो।

तीक्ष्णारंभ-संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य।

वि० जिसकी किरणें बहुत तेज हों।

तीक्ष्णरस-संज्ञा पुं० [सं०] (१) यवधार। जवाहार। (२) शोरा।

तीक्ष्णालौह-संज्ञा पुं० [सं०] इस्पात।

तीक्ष्णद्राक्-संज्ञा पुं० [सं०] यव। जौ।

तीक्ष्णसार-संज्ञा स्त्री० [सं०] शीशम का पेड़।

तीक्ष्णांशु-संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य।

तीक्ष्णा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वच। (२) केवाच। (३) सफेद-कंकाली वृक्ष। (४) पड़ी मालकंगनी। (५) अश्रुमूषणों जता। (६) मिर्च। (७) जौक। (८) तारादेवी का एक नाम।

तीक्ष्णाग्नि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) प्रवल अग्निय। (२) पञ्जीर्ण रोग।

तीक्ष्णाम्र-वि० [सं०] पीनी नाकवाला। जिसका अगला भाग तेज या नुकीला हो।

तीक्ष्णायस-संज्ञा पुं० [सं०] इस्पात लोहा।

तीक्ष्ण * १-वि० दे० "तीक्ष्ण"।

तीक्ष्ण * १-वि० दे० "तीक्ष्ण"।

तीक्ष्णर-संज्ञा पुं० दे० "तीक्षुर"।

तीक्ष्णल-संज्ञा पुं० दे० "तीक्षुर"।

तीक्ष्णा-वि० [सं०] तीक्ष्ण [सं०] तीक्ष्ण। (१) जिसकी धार या नेत्र बहुत तेज हो। तीक्ष्ण। (२) तेज। तीव्र। प्रखर। (३) उग्र। प्रचंड। जैसे, तीक्ष्ण स्वभाव। (४) जिसका स्वभाव बहुत उग्र हो जैसे, (क) तुम तो बड़े तीक्ष्ण दिखलाई पड़ते हो। (ख) यह खड्गका बहुत तीक्ष्ण होगा। (५) जिसका स्वाद बहुत तेज या खरपरा हो। (६) जो वाक्य या बात सुनने में धमिय हो। (७) चेला। बड़िया। अच्छा। जैसे, यह कपड़ा उससे तीक्ष्ण पड़ता है।

संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की चिट्ठिया।

तीक्ष्णी-संज्ञा स्त्री० [सं०] तीक्ष्ण। शेराम फेरनेवालों का काठ का एक यानार जिसके बीच में गज बाल कर उस पर शेराम फेरते हैं।

तीक्षुर-संज्ञा पुं० [सं०] तबोर। हलदी की जाति का एक प्रकार का पीया जो पूरे, मध्य तथा दक्षिण भारत में अधिकता से होता है। अच्छी तरह जोती हुई जमीन में जाड़े के आरंभ में इसके कंद गाड़े जाते हैं और बीच बीच में बराबर सिंचाई की जाती है। पूरा माघ में इसके पत्ते झड़ने लगते हैं और तब यह पक्का समझा जाता है। उस समय इसकी जड़ खोदकर पानी में खूब धोकर बूटते हैं और इसका सत्त निकालते हैं जो बड़िया मीदे की तरह होता है। यही सत्त धाजारों में तीक्षुर के नाम से विक्रता है और इसके व्यवहार कई तरह की मित्रार्या, खड्कू, सेब, जलेबी आदि बनाने में होता है। हिंदू लोग इसकी गणना "फलाहार" में करते हैं। इसे पानी में घोलकर दूध में छोड़ने से दूध बहुत गाढ़ हो जाता है, इसलिये लोग इसकी खीर भी बनाते हैं। धव

एक प्रकार का तीसुर विजायत से भी श्राता है जिसे थ्रा-
स्ट कहते हैं। दे० "थ्रास्ट"।

तीखुल-संज्ञा पुं० दे० "तीखुर"।

तीछन * १-वि० दे० "तीक्ष्ण"।

तीछनता *—संज्ञा स्त्री० दे० "तीक्ष्णता"।

तीज-संज्ञा स्त्री० [सं० स्तृतीया] (१) प्रत्येक पक्ष की तीसरी तिथि।

(२) हरतालिका तृतीया। भारद्वाज सुदी तीज।

वि० दे० "हरतालिका"।

तीजा-संज्ञा पुं० [हिं० तीज] सुखलभानों में किसी के मरने के दिन से तीसरा दिन। इस दिन मृतक के संबंधी गरीबों को शेरियाँ बाँटते और कुछ पाठ करते हैं।

वि० [स्त्री० स्तृतीया] तीसरा। तृतीया।

तीत * १-वि० दे० "तीता"।

तीतर-संज्ञा पुं० [सं० तितिर] एक प्रसिद्ध पक्षी जो समस्त एशिया और युरोप में पाया जाता है और जिसकी एक जाति अमे-
रिका में भी होती है। यह दो प्रकार का होता है, चित्त-
कवरा और काला। इसका पेट कुछ भारी, दुम छोटी और
पैर में चार उँगलियाँ होती हैं। यह बहुत खंचल होता है
और केवल सोने के समय को छोड़कर थराथर हूँकार उधर
चलता रहता है। यह बहुत तेज दौड़ता है और भारत में
प्रायः कपास, गोहूँ या चावल के खेतों में जाड़ में फँसाकर
पकड़ा जाता है। इसका घोंसला जमीन पर ही होता है
और इसके थंडे चिकने और धन्धेदार होते हैं। लोग इसे
लड़ाने के लिये पाखते, इसका शिकार करते और मांस खाते
हैं। वैद्यक में इसके मांस को रुचिकारक, लघु, वीर्य्य-बल-
वर्द्धक, कपाय, मधुर, ठंडा और श्वास कास उबर तथा
त्रिदोषनाशक माना है। भावप्रकाश के अनुसार काले
तीतर के मांस की अपेक्षा चित्तकवरे तीतर का मांस अधिक
उत्तम होता है।

तीता-वि० [सं० तित्त] (१) जिसका स्वाद तीखा और चरपरा
हो। तिक्त। जैसे, मिर्च।

त्रिदोष-यद्यपि प्राचीनों ने तिक्त और कटु भेद माना है पर
श्राव कल साधारण्य योखचास में "तीता" और "कटुद्रा"
दोनों शब्दों का एक ही अर्थ में व्यवहार होता है। कुछ प्रांतों
में केवल "तीता" शब्द का व्यवहार होता है और कुछ प्रांतों
में केवल "कटुद्रा" शब्द का; और उनसे तात्पर्य भी
यहूँथा एक ही रस का होता है। जिन प्रांतों में "तीता"
और "कटुद्रा" दोनों शब्दों का व्यवहार होता है वहाँ
भी इन दोनों में कोई विशेष भेद नहीं माना जाता।

(२) कटुद्रा। कटु।

वि० गीळा। भीगा हुआ। नम।

संज्ञा पुं० [दे०] (१) जोतने धाने की जमीन का गीळा-

पन। (२) ऊसर भूमि। (३) ढँकी या रहट का अगड्डा
भाग। (४) ममरी के आड़ का एक नाम।

तीतुरी * १-संज्ञा स्त्री० दे० "तितली"।

तीतुल-संज्ञा पुं० दे० "तीतर"।

तीन-वि० [सं० त्रीणि] जो दो और एक हो। जो गिनती में चार
से एक कम हो।

संज्ञा पुं० (१) दो और चार के बीच की संख्या। दो और
एक का जोड़। (२) इतक संख्या सूचक अंक जो इस प्रकार
लिखा जाता है—३।

मुहा०—तीन पाँच करना = इधर उधर करना। घुमाव फिरोव या
हुजत की बात करना।

संज्ञा पुं० सरनूपारी ब्राह्मणों में तीन गोशों का एक वर्ग।

विदोष-सरनूपारी ब्राह्मणों में सोलह गोश होते हैं जिनमें से
तीन गोशवालों का उत्तम वर्ग है और तेरह गोशवालों का
दूसरा वर्ग है।

मुहा०—तीन तेरह करना = शितर वितर करना। इधर उधर
छितराना या अलग अलग करना। उ०—कियो तीन तेरह
सथै चौका चौका जाय।—हरिश्चंद्र। न तीन में न तेरह
में = जो किसी गिनती में न हो। जिसे कोई पूछता न हो।

उ०—कुंभ कान नाम कहाँ पैये मोठें जानराय पुत्र तुम
मारे हैं न तेरह न तीन में।—हनुमान।

संज्ञा स्त्री० [हिं० तिनो] तिन्नी का धावल।

तीनपान-संज्ञा पुं० [दे०] एक प्रकार का बहुत मोटा रस्ता
जिसकी मोटाई कम से कम एक फुट होती है। (बहा०)

तीनपाम-संज्ञा पुं० दे० "तीनपान"।

तीनलड़ी-संज्ञा स्त्री० [हिं० तीन + लड़ी] गले में पहनने की एक
प्रकार की माला जिसमें तीन लड़ियाँ होती हैं। तिलड़ी।

तीनि * १-संज्ञा पुं० और वि० दे० "तीन"।

तीनी-संज्ञा स्त्री० [हिं० तिन्नी] तिन्नी का धावल।

तीपड़ा-संज्ञा पुं० [दे०] रेामी कपड़ा बुननेवालों का एक
औजार जिसके नीचे ऊपर दो लकड़ियाँ लगी रहती हैं जिन्हें
बेसर कहते हैं।

तीमारदारी-संज्ञा स्त्री० [फा०] शेरियों की सेना-शुभ्र का
काम।

तीय-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री] स्त्री। औरत। नारी।

तीया *—संज्ञा स्त्री० दे० "तीय"।

संज्ञा पुं० दे० "तिकी" या "तिन्नी"।

तीरंदाज-संज्ञा पुं० [फा०] तीर चलानेवाला। यह जो तीर
चलाता हो।

तीरंदाजी-संज्ञा स्त्री० [फा०] तीर चलाने की विद्या या क्रिया।

तीर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) नदी का किनारा। दूब। तट। (२)
पास। निकट। समीप।

विशेष—इस अर्थ में इसका उपयोग विभक्ति का जोष करके किया विशेष्य की तरह होता है।

(३) सीसा नामक धातु। (४) रंग।

संज्ञा पुं० [फ०] वायु। शर।

विशेष—यद्यपि पंचदशी आदि कुछ साधुनिक ग्रंथों में तीर शब्द वायु के अर्थ में आया है, पर यह शब्द वास्तव में ही फारसी का।

क्रि० प्र०—चलाना।—छोड़ना।—फेंकना।—लगाना।

मुहा०—तीर चलाना=युक्ति मिड़ना। रंग दंग लगाना। जैसे, तीर तो गहड़ा चलाना था, पर खाली गया। तीर फेंकना=दे० “तीर चलाना”।

संज्ञा पुं० [र] गद्दाग्न का मूलत्व।

तीरगर—संज्ञा पुं० [फ०] वह जो तीर बनाता हो। तीर बनाने वाला कारीगर।

तीरग—संज्ञा पुं० [सं०] करंज।

तीरध—संज्ञा पुं० दे० “तीर्थे”। “तीरध” के वैयंगिक शब्दों के लिये दे० “तीर्थे” के वैयंगिक शब्द।

तीरभुक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] गंगा, गंडकी और कैथिकी इन तीन नदियों से घिरा हुआ तिरहुत देश।

तीरवर्ची—वि० [सं०] (१) तट पर रहनेवाला। (२) किनारे पर रहनेवाला। समीप रहनेवाला। पास रहनेवाला। पड़ोसी।

तीरस्थ—संज्ञा पुं० [सं०] नदी के तीर पर पहुँचाया हुआ मर्यादासंकेत।

विशेष—अनेक जातियों में यह प्रथा है कि रोगी जब मरने को होता है तब उसके संबंधी पहले ही से उसे नदी के तीर पर ले जाते हैं, क्योंकि धार्मिक दृष्टि से नदी के तीर पर मरना अधिक व्रतम समझा जाता है।

तीरा—संज्ञा पुं० दे० “तीर”।

तीराट—संज्ञा पुं० [सं०] जोष।

तीर—संज्ञा पुं० [सं०] (१) शिव। महादेव। (२) शिव की स्तुति।

तीर्थे—वि० [सं०] (१) जो पार हो गया हो। वचोर्थ। (२) जो सीमा का उल्लंघन कर चुका हो। (३) जो भीगू हुआ हो। तरवतर।

तीर्थपदा—संज्ञा स्त्री० [सं०] ताजमूल। मूलबी।

तीर्थपदी—संज्ञा स्त्री० दे० “तीर्थपदा”।

तीर्थे—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक वृक्ष जिसके प्रत्येक चरण में एक नगण्य और एक गुरु (HIS) होता है। इसको “सती”, “तिष्ठा” और “तग्विजा” भी कहते हैं। जैसे, नगपत्ती। नगपत्ती। शिव कहें। सुख लहरें।

तीर्थकर—संज्ञा पुं० [सं०] जिनियों के उगम्य देव जो देवताओं से भी श्रेष्ठ और सब प्रकार के दोषों से रहित, मुक्त और

मुक्तदाता माने जाते हैं। इनकी मूर्तियाँ दिगंबर बनाई जाती हैं और इनकी आकृति प्रायः विलकुल एक ही होती है। केवल उनका वर्ण और उनके सिंहासन का आकार ही एक दूसरे से भिन्न होता है।

विशेष—गत उत्सर्पिणी में चौबीस तीर्थकर हुए थे जिनके नाम थे—(१) केवलज्ञानी। (२) निर्वाणो। (३) सागर। (४) महाशय। (५) विमलनाथ। (६) सर्वानुभूति। (७) धीपर। (८) दत्त। (९) दामोदर। (१०) सुतेज। (११) स्वामी। (१२) मुनिसुप्रत। (१३) सुमति। (१४) शिवगति। (१५) अस्त्राय। (१६) नेमीश्वर। (१७) अजल। (१८) योगेश्वर। (१९) कृतार्थ। (२०) जितेश्वर। (२१) शुद्धमति। (२२) शिवकर। (२३) स्वंदन और (२४) संप्रति। परंतु मान्य अथसर्पिणी के आरंभ में जो चौबीस तीर्थकर हो गए हैं उनके नाम थे—

(१) श्रमभदेव। (२) अजितनाथ। (३) संभवनाथ। (४) अभिनंदन। (५) सुमतिनाथ। (६) पद्मप्रभ। (७) सुप्रारवनाथ। (८) चंद्रप्रभ। (९) सुवृथिनाथ। (१०) शीलजनाथ। (११) शोवासनाथ। (१२) वासुपुत्र स्वामी। (१३) विमलनाथ। (१४) धर्मतनाथ। (१५) धर्मनाथ। (१६) शान्तिनाथ। (१७) कुंतुनाथ। (१८) अमरनाथ। (१९) महिलनाथ। (२०) मुनि सुप्रत। (२१) नमिनाथ। (२२) नेमिनाथ। (२३) पार्येनाथ। (२४) महाधीर स्वामी। इनमें से श्रमभ, वासुपुत्र और नेमिनाथ की मूर्तियाँ योगान्वास में बैठी हुई और बाकी सब की मूर्तियाँ खड़ी बनाई जाती हैं।

तीर्थकृत्—संज्ञा पुं० [सं०] (१) जिनियों के देवता। जिन। (२) शाशकार।

तीर्थे—संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह पवित्र या पुण्य स्थान जहाँ धर्म-भाव से लोग यात्रा, पूजा या स्नान आदि के लिये जाते हैं। जैसे, हिंदुओं के लिये काशी, प्रयाग, जगन्नाथ, गया, द्वारका आदि; अथवा सुसज्जनों के लिये मका और मदीना।

विशेष—हिंदुओं के शास्त्रों में तीर्थ तीन प्रकार के माने गए हैं—(१) जंगम, जैसे, ब्राह्मण और साधु आदि, (२) मानस, जैसे, सत्य, क्षमा, दया, दान, संतोष, ब्रह्मचर्य, ज्ञान, धैर्य, मधुरभाषण आदि, और (३) स्थावर, जैसे, काशी, प्रयाग, गया आदि। इस शब्द के अंत में ‘दात्र’ पति अथवा इमी प्रकार का और शब्द लगाने से ‘प्रयाग’ अर्थ निकलता है। जैसे, तीर्थराज या तीर्थपति = प्रयाग। तीर्थ जाने अथवा वहाँ से लौट आने के समय हिंदुओं के शास्त्रों में सिर मुँडा कर धादू कले और ब्राह्मणों को भोजन कराने का भी विधान है।

(२) कोई पवित्र स्थान। (३) हाथ में के कुछ विशिष्ट स्थान।

विद्योप—दुहिने हाथ के धँड़े का ऊपरी भाग महातीर्थ, धँड़े और तर्जनी का मध्य भाग पितृतीर्थ, कनिष्ठा उँगली के नीचे का भाग प्राज्ञापथ तीर्थ और उँगलियों का शगला भाग देवतीर्थ माना जाता है। इन तीर्थों से क्रमशः श्रावणन, पिंडदान, पितृकार्य और देवकार्य किया जाता है। (७) शाल। (४) यज्ञ। (६) स्थान। स्थल। (७) उपाय। (८) श्रवण। (९) नारीज। रजस्वला कर शक। (१०) श्रवतार। (११) शरणागत। देव स्नान-जल। (१२) उपाध्याय। शुद्ध। (१३) मंत्रो। (१४) योनि। (१५) दरान। (१६) घाट। (१७) माहाण। विप्र। (१८) निदान। कारण। (१९) घाति। (२०) पुण्यकाल। (२१) सन्यासियों की एक उपाधि। (२२) वह जो तार दे। तारनेवाला। (२३) और भाव को त्याग कर परस्पर उचित व्यवहार। (२४) ईश्वर। (२५) माता पिता। (२६) प्रतिधि। मेहमान। (२७) राष्ट्र की अठारह सम्प्रतिष्ठा जिन के नाम ये हैं,—(१) मंत्री, (२) पुरोहित, (३) युवराज, (४) भूपति, (५) द्वारपाल, (६) अंतर्वेशिक, (७) कारागाराध्यक, (८) द्रव्य-संयच-कारक। (९) कृत्वाकृत्य शर्ष का विनियोजक, (१०) प्रदेष्टा, (११) नगराध्यक्ष, (१२) कार्य-निर्माण-कारक, (१३) धर्माध्यक्ष, (१४) सभाध्यक्ष, (१५) दंडपाल, (१६) दुर्गपाल, (१७) राष्ट्रतपाल और (१८) शरतवीरपाल।

तीर्थक-वि० [सं०] (१) ब्राह्मण। (२) तीर्थकर। (३) वह जो तीर्थों की यात्रा करता हो।

तीर्थकर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विष्णु। (२) जिन।

तीर्थदेव-संज्ञा पुं० [सं०] शिव। महादेव।

तीर्थपति-संज्ञा पुं० दे० "तीर्थराज"।

तीर्थपाद-संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।

तीर्थपादीय-संज्ञा पुं० [सं०] वैष्णव।

तीर्थयात्रा-संज्ञा स्त्री० [सं०] तीर्थयात्रा। पवित्र स्थानों में दर्शन स्नानादि के लिये जाना।

तीर्थराज-संज्ञा पुं० [सं०] प्रयाग।

तीर्थराजी-संज्ञा स्त्री० [सं०] काशी।

विद्योप—काशी में सब तीर्थ हैं इसीसे यह नाम पड़ा।

तीर्थसंज्ञि-संज्ञा स्त्री० [सं०] काशिकेय की एक मण्डिका का नाम।

तीर्थोदन-संज्ञा पुं० [सं०] तीर्थयात्रा।

तीर्थक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) तीर्थ का ब्राह्मण, पंडा। (२) बौद्धों के अनुसार बौद्ध-धर्म का विद्वांसी ब्राह्मण। (३) तीर्थकर।

तीर्थिया-संज्ञा पुं० [सं०] तीर्थ + द्या (मलय०)। तीर्थकरों को मानने-वाला, बैनी।

तीर्थ्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक रत्न का नाम। (२) सहपाठी।

तीर्न-संज्ञा पुं० दे० "तीर्थ"।

तीलखा-संज्ञा पुं० [दे०] एक प्रकार की चिड़िया।

तीली-संज्ञा स्त्री० [का० तीर = बाण] (१) झड़ा तिनका। सोंक। (२) धातु खादि का पतला पर कड़ा तार। (३) करपे में दरकी की यह सोंक जिसमें नरी पहनाई जाती है। (४) सौन्दर्यों की वह कूची जिससे जुवाहे सूत साफ़ करते हैं। (५) पद्यों का यह औजार जिससे वे पैराम लपेटते हैं। इन में लोहे का एक तार होता है जिसके एक सिरे पर लकड़ी का एक गोल झुकड़ा लगा रहता है।

तीवन-संज्ञा पुं० [सं० तेपन = व्यंगन] (१) पकवान। (२) रसेदार तरकारी।

तीवर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) समुद्र। (२) व्याघ्र। शिकारी। (३) मनुष्य। (४) एक वर्षा-संकर श्रेयस जाति जो ब्रह्म-वैवर्त पुराण के अनुसार राजपूत माता और क्षत्रिय पिता के गर्भ से तथा पराशर के मत से राजपूत माता और बृहस्पति पिता के गर्भ से उत्पन्न है। कुछ लोग तीवर और धीवर को एक ही मानते हैं। स्मृति के अनुसार तीवर को स्पर्श करने पर स्नान करने की आवश्यकता होती है।

तीव्र-वि० [सं०] (१) अतिशय। अत्यंत। (२) तीव्र। तेज़। (३) बहुत गरम। (४) नितांत। वेहद। (५) कठु। कटुवा। (६) दुःसह। अतहय। न सहने योग्य। (७) प्रवेष्ट। (८) तीला। (९) वेगयुक्त। तेज। (१०) कुछ ऊँचा और अपने स्थान से बढ़ा हुआ (स्वर)। संगीत में ४ स्वरों के तीव्र रूप होते हैं—अपम, गांधार, मध्यम, धैवत और निषाद। दे० "कोमल"।

संज्ञा पुं० [सं०] (१) कोहा। (२) हस्पात। (३) नदी का किनारा। (४) शिव। महादेव।

तीव्रकंड-संज्ञा पुं० [सं०] सूरन। जमीकंद। शोल।

तीव्रगंधा-संज्ञा स्त्री० [सं०] अजवायन। यवान।

तीव्रगंधिका-संज्ञा स्त्री० दे० "तीव्रगंधा"।

तीव्रगति-संज्ञा स्त्री०, पुं० [सं०] वायु। हवा।

तीव्रज्वाला-संज्ञा स्त्री० [सं०] धव का फूल जिस के छूले से, लोग कहते हैं, शरीर में धाव हो जाता है।

तीव्रता-संज्ञा स्त्री० [सं०] तीव्र का भाव। तीक्ष्णता। तेजी। तीक्ष्णपन। प्रखलता।

तीव्रसव-संज्ञा पुं० [सं०] एक दिन में होनेवाला एक प्रकार का यज्ञ।

तीव्रा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) पढन स्वर की चार श्रुतियों में से पहली श्रुति। (२) मदकारिणी। सुरासानी अजवायन। (३) राई। (४) गाँवर दूध। (५) तुलसी। (६) बड़ी माख-कंगनी। (७) कुटकी। (८) सरवी शूक।

तीमानुराग-संज्ञा पुं० [सं०] जैनियों के अनुसार एक प्रकार का अतिचार। पर-स्त्री या पर-पुरुष से अत्यंत अनुराग करना अथवा काम की वृद्धि के लिये अफीम, कस्तूरी आदि खाना।

तीस-विं० [सं० तिथि, पा० तीसा] जो गिनती में इतीस के बाद और इकतीस के पहले हो। जो दस का तिगुना हो। तीस और दस।

थी०—तीसे दिन या तीस दिन = सदा। ह्येशः। तीस मारणा = बहुत बीर। बड़ा बहादुर। (स्वयं)

संज्ञा पुं० दस की तिगुनी संख्या जो अंशों में इस प्रकार लिखी जाती है—३०।

तीसरा-विं० दे० "तीसरा"।

संज्ञा स्त्री० [हिं० तीसरा] खेत की तीसरी जुगाई।

तीसरा-विं० [हिं० तीन + सरा (प्रत्य०)] (१) क्रम में तीन के स्थान पर पढ़नेवाला। जो दो के उपरांत हो। जिस के पहले दो और हैं। (२) जिस का प्रस्तुत विषय से कोई संबंध न हो। संबंध रखनेवालों से भिन्न, कोई और। जैसे, न हमारी बात, न तुम्हारी बात; तीसरा जो कुछ कहे, वही हो।

थी०—तीसरा पहर = देणह के बाद का समय। दिन का तीसरा पहर। अफराह।

तीसरा-संज्ञा पुं० [हिं० तीस + रा (प्रत्य०)] क्रम में तीस के स्थान पर पढ़नेवाला। जो उँतीस के उपरांत हो। जिसके पहले उँतीस और हैं।

तीसरी-संज्ञा स्त्री० [सं० अतसो] अठारसी नामक सेलहन। दे० "अठारसी"।

संज्ञा स्त्री० [हिं० तीस + ई (प्रत्य०)] (१) फल आदि गिनने का एक मान जो तीस माहियों अर्थात् एक सौ पचास का होता है। (२) एक प्रकार की छेनी जिस से लोहों की थालियों आदि पर नकारी करते हैं।

तीहा-संज्ञा पुं० [सं० तुहि ?] तसली। आवासन।

संज्ञा पुं० [हिं० तिहाई] तिहाई। जैसे, आधा तीहा। इस का प्रयोग समास ही में होता है।

तुंग-विं० [सं०] (१) उन्नत। ऊँचा। (२) वम। प्रचंड। (३) प्रधान। मुख्य।

संज्ञा पुं० (१) पुत्राग वृक्ष। (२) पर्वत। पहाड़। (३) नारियल। (४) किंप्रक। फल का केसर। (५) शिव। (६) वृष मूत्र। (७) प्रदों की उच्च राशि। दे० "वष"। (८) एक वर्षावृत्त का नाम जिसके प्रत्येक वर्षा में दो नगण और दो गुरु होते हैं। ७०—न नग गह्व विहारी। कहत अदि पियारी। (९) एक छोटा म्नाइ या पेड़ जो सुलैमान

पहाड़ तथा पच्छिमी हिमालय पर जमाऊँ तक होता है। इस की लकड़ी, छात्र और पत्ती रंगने और चमड़ा सिम्काने के काम में धाती है। इस की लकड़ी से युरोप में तसवीरों के नकाशीदार चोखटे आदि भी बनते हैं। हिमालय पर पहाड़ी लोग इस की टहनियों के डोकर भी बनाते हैं। यह पेड़ तमक या समक की जाति का है। इसे आमी, दरंगड़ी और परंठी भी कहते हैं।

तुंगक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पुत्राग वृक्ष। नागकेसर। (२) महा-भारत के अनुसार एक तीर्थ। पहले यहीं सारस्वत मुनि ऋषियों को वेद पढ़ाया करते थे। एक बार जब वेद नष्ट हो गए तब श्रीगिरा के पुरा में एक 'श्रोत्रम्' शब्द का उच्चारण किया। इस शब्द के उच्चारण के साथ ही भूला हुआ सव वेद उपस्थित हो गया। इस घटना के उपलक्ष्य में इस स्थान पर ऋषियों और देवताओं ने पड़ा भारी यज्ञ किया।

तुंगता-संज्ञा स्त्री० [सं०] वैचाई।

तुंगनाथ-संज्ञा पुं० [सं०] हिमालय पर एक शिवलिंग और तीर्थ-स्थान।

तुंगनाम-संज्ञा पुं० [सं०] सुश्रुत के अनुसार एक कीड़ा जो विपैले जंतुओं में गिनाया गया है। इस के काटने से जलन और पीड़ा होती है।

तुंगभद्र-संज्ञा पुं० [सं०] मतवाला हाथी।

तुंगभद्रा-संज्ञा स्त्री० [सं०] दक्षिण की एक नदी जो सदाद्रि पर्वत से निकल कर कृष्णा नदी में जा मिलती है।

तुंगवाहु-संज्ञा पुं० [सं०] तलवार के ३२ हाथों में से एक।

तुंगवेणा-संज्ञा स्त्री० [सं०] महाभारत के अनुसार एक नदी जिस का नाम महानदी, वेणा (वेण गंगा) आदि के साथ आया है। कदाचिद् यह तुंगभद्रा का दूसरा नाम हो।

तुंगा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वंशजोचन। (२) शमी वृक्ष। (३) 'तुंग' नामक धर्मवृक्ष।

तुंगारण्य-संज्ञा पुं० [सं०] मांसी से १ कोस छोड़कर के पास का एक जंगल। इस स्थान पर एक मंदिर है और मेला लगता है। यह वेतवा नदी के तट पर है। ७०—नदी वेतवै तीर अहँ तीरथ तुंगारण्य। नगर श्रोद्धो तहँ वसै धरनीतल्ल में धन्य।—केशव।

तुंगारुर्णा-संज्ञा पुं० दे० "तुंगारण्य"।

तुंगारि-संज्ञा पुं० [सं०] सफेद कनेर का पेड़।

तुंगिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] महाशयतनी। धरती सतावर।

तुंगी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) हलदी। (२) रात्रि। (३) वन। तुलसी। धवई। ममरी।

तुंगीनास-संज्ञा पुं० [सं०] दे० "तुंगनाम"।

तुंगीपति-संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा।

तुंगीया-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शिव । (२) कृष्ण । (३) सूर्य ।
(४) चंद्रमा ।

तुंज-संज्ञा पुं० [सं०] यज्ञ ।

तुंजाल-संज्ञा पुं० [सं० तुंग + जल] एक प्रकार का जाल जो
घोड़ों के ऊपर मस्जियों आदि से बंधाने के लिये डाला
जाता है । इसके नीचे कुँवने भी लगते हैं ।

तुंजीन-संज्ञा पुं० [सं०] कारमीर देश के कई प्राचीन राजाओं
का नाम जिनका वर्णन रामतरंगिणी में है ।

तुंड-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मुख । मुँह । (२) चंचु । चोंच ।
(३) धूपन । निकला हुआ मुँह । (४) तलवार का धगला
हिस्सा । धार का अग्रभाग । उ०—तुंडत कपाल कहुँ
गज मुंघ । तुंडत कहुँ तरवारिन तुंड ।—रुदन । (५)
शिव । महादेव । (६) एक रास का नाम ।

तुंडकेरिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] कपास वृक्ष ।

तुंडकेरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कपास । (२) कुँवरु । धियाफल ।

तुंडकेरी-संज्ञा पुं० [सं०] मुख का एक रोग जिसमें तालू की
अड़ में सूजन होती और बाह पीड़ा आदि उत्पन्न होती है ।

तुंडि-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मुँह । (२) चोंच । (३) धियाफल ।
(४) नामि ।

तुंडिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) टेंटी । (२) चोंच । (३) धिया-
फल । कुँवरु ।

तुंडिकेरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] कुँवरु ।

तुंडिल-वि० [सं०] (१) तोंदवाला । निकले हुए पेटवाला ।
(२) जिसकी नामि निकली हुई हो । निकली हुई डोंद-
वाला । तोंद । (३) बकवादी । मुँहजोर ।

तुंडी-वि० [सं० तुंडेर] (१) मुँहवाला । (२) चोंचवाला । (३)
धूपनवाला । सूँड़वाला ।

तुंडी पुं० गणेश । उ०—हरिहर विधि रवि शक्ति समेत ।
तुंडी ते उपजत सब तेता ।—निरचल ।
संज्ञा स्त्री० नामि । डोंडी ।

तुंडीमुद्राक-संज्ञा पुं० [सं०] एक रोग जिसमें बच्चों की मुद्रा
पक जाती और नामि में पीड़ा होती है ।

तुंडीरमंडल-संज्ञा पुं० [सं०] दक्षिण के एक देश का नाम ।
उ०—धुनि तुंडीर मंडल हक देसा । तँद विलसंगल प्राम
सुवेसा ।—रघुराज ।

तुंद-संज्ञा पुं० [सं०] पेट । उदर ।

वि० [फा०] तेज़ । प्रचंड । घोर । जैसे, हवा का तुंद
भोका ।

तुंदि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) नामि । (२) एक गंधर्व का नाम ।

तुंदिक-वि० [सं०] तोंदवाला । बड़े पेटवाला ।

तुंदिकफला-संज्ञा स्त्री० [सं०] खीरे की बेल ।

तुंदिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] नामि ।

तुंदिल-वि० [सं०] तोंदवाला । बड़े पेटवाला ।

तुंदी-संज्ञा स्त्री० [सं०] नामि ।

तुंदैल-वि० दे० "तुंदैला" ।

तुंदैला-वि० [सं० तुंदैल] तोंदवाला । बड़े पेटवाला । लंबेदर ।

तुंद-संज्ञा पुं० [सं०] (१) लौकी । लौवा । धीपा । (२) लोबे
का सूखा फल । सूँधा ।

तुंघड़ी-संज्ञा स्त्री० दे० "तुंघड़ी" ।

संज्ञा स्त्री० [देग०] एक छोटा पेड़ जिसकी लकड़ी थंहर से
सफ़ेद, नर्म और चिकनी निकलती है । यह लकड़ी मकानों
में लगती है । उसकी पत्तियाँ चारे के काम में आती हैं ।

तुंवर-संज्ञा पुं० दे० "तुंवर" ।

तुंवर-संज्ञा पुं० [सं०] पृथ्वीहिता के अनुसार एक देश जो
दक्षिण दिशा में है ।

तुंवा-संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० रूप० तुंवा] (१) कड़ुवा कद्दू ।
गोल कड़ुवा धीवा । (२) कड़ुए कद्दू की खोपड़ी का पात्र ।

(३) एक प्रकार का जंगली धान जो नदियों या तालों के
किनारे थाप से थाप होता है ।

तुंविका-संज्ञा स्त्री० दे० "तुंवी" ।

तुंवी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) छोटा कड़ुवा कद्दू । छोटा कड़ुवा
धीवा । तितिलोकी । (२) गोल कद्दू का खोपड़ा । गोल
धीवे का बना हुआ पात्र ।

तुंवुक-संज्ञा पुं० [सं०] कद्दू का फल । धीवा ।

तुंवुरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) धनिया । (२) कुतिया ।

तुंवर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) धनिया । (२) एक प्रकार के पौधे का
बीज जो धनिया के आकार का पर कुछ कुछ फटा हुआ होता
है । इसमें बड़ी माल होती है । मुँह में रखने से एक प्रकार
की चुनचुनाहट होती है और लार गिरती है । दाँत के दर्द
में इस बीज को लोहा दाँत के नीचे दबाते हैं । वैद्यक में यह
गरम, कड़ुवा, चरसरा अग्निदीपक तथा कफ, वात, शूल
आदि को दूर करनेवाला माना जाता है । इसे बंगाल में
नैवाली धनिया कहते हैं । (३) एक गंधर्व जो वैत के महीने
में सूर्य के रथ पर रहते हैं । ये विष्णु के एक प्रिय पारवंचर
और संगीत विद्या में भति नियुक्त हैं । (४) एक जिन उपा-
सक का नाम ।

तुम्बर-संज्ञा पुं० दे० "तुम्बर", "तव" ।

तुम्बना-वि० अ० [हिं० तुम्ब, तुम्बना] (१) चूना । टपकना ।

(२) गिर पड़ना । लड़ना न रह सकना । उठना न रहना ।

उ०—निकरें सी निकरई निहारे नई रति रूप लुभाई मुई
सी परे ।—सुंदरीसर्वेय । (३) गर्भपात होना । बच्चा
गिर पड़ना ।

संज्ञा पुं० हिं०—पड़ना ।

तुम्बर-संज्ञा पुं० [सं० तुम्बरी] अरहर । आदकी ।

तुर्हा—सर्वं दे० "तू" ।

तुर्ह—संज्ञा स्त्री० [?] कपड़े पर बुनी हुई एक प्रकार की बेल जिसे खियां तुपट्टी पर लगाती हैं ।

सर्वं दे० "तू" ।

तुक—संज्ञा स्त्री० [हि० टुक = टुकड़ा] (१) किसी पद्य का गीत का कोई खंड । कड़ी । (२) पद्य के चरण का अंतिम अक्षर । (३) पद्य के दोनों चरणों के अंतिम अक्षरों का परस्पर मेल । अक्षरमैत्री । श्रयानुप्रास । काफिया ।

धौ०—तुकवंदी ।

मुद्गा०—तुक जोड़ना = (१) वाक्यों को जोड़ कर और चरणों के अंतिम अक्षरों का मेल मिलाकर पद्य सजा करना । (२) महा पद्य बनाना । मही कविता करना ।

तुकना—हि० सं० [*तु०] एक अनुकरण शब्द जो 'तकना' शब्द के साथ मेल खाल में आता है । उ०—तकि के तुकि के उर पापनि के । लखि के दिज देवन शापनि के ।—रघुराज ।

तुकवंदी—संज्ञा स्त्री० [हि० तुक + वंदी] (१) तुक जोड़ने का काम । मही कविता करने की क्रिया । (२) महा पद्य । मही कविता । पैसा पद्य जिसमें काव्य के गुण न हों ।

तुकमा—संज्ञा पुं० [फा०] चुंडी फसाने का फंदा । सुझी ।

तुकांत—संज्ञा स्त्री० [हि० तुक + सं० अंत] श्रयानुप्रास । पद्य के दो चरणों के अंतिम अक्षरों का मेल । काफिया ।

तुका—संज्ञा पुं० [फा०] वह तीर जिसमें गॉसी न हो । वह तीर जिसमें गॉसी के स्थान पर थुंडी सी बनी हो । उ०—काम के तुका से कूल डोलि डोलि डारें मन डारें किये डारें ये कदं-वन की की डारें री ।—कविंद ।

तुकार—संज्ञा स्त्री० [हि० वृ + सं० कार] अग्नि संवोधन । मध्यम पुरुष वाचक अग्नि संवोधन का प्रयोग । 'तू' का प्रयोग जो अर्पमान-जनक समझा जाता है ।

मुद्गा०—तू तुकार करना = अग्नि शब्द से संवोधन करना । 'तू' आदि अर्पमान-जनक शब्दों का प्रयोग करना ।

तुकारना—हि० सं० [हि० तुकार] तू तू करके संवोधन करना । अग्नि संवोधन करना । उ०—वारीं है कर जिन हरि के वदन धुमारी । वारीं वह रसना जिन बोल्यो तुकारी ।—सूर ।

तुकवंदी—संज्ञा पुं० [हि० तुक + वंद (भय०)] तुक जोड़नेवाला । तुकवंदी करनेवाला । मही कविता बनानेवाला ।

तुकाल—संज्ञा स्त्री० [फा० तुका] एक प्रकार की बड़ी पतंग जो मोटी धोर पर बड़ाई जाती है ।

तुका—संज्ञा पुं० [फा० तुका] (१) वह तीर जिसमें गॉसी के स्थान पर थुंडी सी बनी होती है । (२) टीला । छोटी पहाड़ी । टेकरी । (३) सींची रुड़ी वस्तु ।

मुद्गा०—तुका सा = सीधा उठा हुआ । ऊपर उठा हुआ । जैसे, जय देवो रास्ते में तुका सी पैर रहती है ।

तुल्य—संज्ञा पुं० [सं० तुल्य] (१) भूसी । धिलका । उ०—भटकत पट अद्वैता अटकत ज्ञान गुमान । सटकत वितन तें बिहरी पटकत तुल्य अभिमान ।—तुलसी । (२) शंभु के जबर का धिलका । उ० - शंभु फेरि किय चेटुआ तुल्य पर नीर निहारी । गधि बंगुल चातक चतुर दारेउ बाहर बारी ।—तुलसी ।

तुलार—संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक देश का प्राचीन नाम जिसका उल्लेख अथर्ववेद परिशिष्ट, रामायण, महाभारत इत्यादि में है । अधिकार्य ग्रंथों के मत से इसकी स्थिति हिमाचल के उत्तर पश्चिम होनी चाहिए । यहाँ के घोड़े प्राचीन काल में बहुत अच्छे माने जाते थे । (२) तुलार देश का निवासी ।

विशेष—द्विवंश के चतुसरा जब महर्षियों ने बेलु का मंथन किया था तब इस अथर्ववेद असम्य जाति की उपत्ति हुई थी, पर एक ग्रंथ में इस जाति का निवासमान विंध्य पर्वत लिखा है जो ग्रंथ ग्रंथों के विरुद्ध पड़ता है ।

(३) तुलार देश का घोड़ा ।

संज्ञा पुं० दे० "तुवार" ।

तुलम—संज्ञा पुं० [*तु०] धीन ।

तुगा—संज्ञा स्त्री० [सं०] वंशलोचन ।

तुगाक्षीरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] वंशलोचन ।

तुम—संज्ञा पुं० [सं०] वैदिक काल के एक राजपि का नाम जो अश्विनीकुमारों के अपासक थे । इन्होंने द्वीपतारों के शत्रुओं को परास्त करने के लिये अपने पुत्र भुसु को जहाज पर चढ़ाकर समुद्रपथ से भेजा था । मार्ग में जब एक बड़ा वृक्ष था या धार वायु मौका को उलटने लगती तब भुसु ने अश्विनीकुमारों की स्तुति की । अश्विनीकुमारों ने समुद्र होकर भुसु को सना सहित अपनी नौका पर लेकर तीन दिनों में उसके पिता के पास पहुँचा दिया ।

तुमप—संज्ञा पुं० [सं०] (१) तुम के वंश का पुरुष । तुम वंशज । (२) तुम का पुत्र भुसु ।

तुर्चा—संज्ञा पुं० [सं० तर्च] चमड़ा । छाल ।

तुर्चा—संज्ञा स्त्री० दे० "त्वचा" ।

तुच्छ—वि० [सं०] (१) भीतर से खाली । खोखला । निःसार । शून्य । (२) हीन । छद्म । नाचीन । (३) शोभा । शैत्य । नीच । (४) शून्य । थोड़ा ।

संज्ञा पुं० (१) मूर्खी । सारहीन धिलका । (२) वृत्तिया । (३) नील का पैघा ।

तुच्छक—संज्ञा पुं० [सं०] काले और हरे रंग का मरकत या पत्ता जो यज्ञ या निष्ठ कोटि का माना जाता है ।

तुच्छता—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) हीनता । नीचता । (२) शोभापन । छद्मता । (३) शून्यता ।

तुच्छत्व—संज्ञा पुं० [सं०] (१) हीनता । छद्मता । (२) शोभापन ।

तुच्छद्रु-संज्ञा पुं० [सं०] रेंद्र का पेड़ ।
 तुच्छधान्यक-संज्ञा पुं० [सं०] भूली । तुलस ।
 तुच्छा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) नील का पौधा । (२) वृत्तिया ।
 (३) गुजराती इलायची । छोटी इलायची ।
 तुच्छातिवृत्त-वि० [सं०] छोटे से छोटा । अत्यंत हीन ।
 अत्यंत छुद्र ।
 तुम्ही-संज्ञा स्त्री० [हिं०] धनुष । कमान ।
 तुम्ह-सर्व० [सं०] तुम्हण, पा० तुम्हरे, प्रा० तुम्हें] 'तू' शब्द का यह
 रूप जो उसे प्रथमा और पथी के अतिरिक्त और विभक्तियां
 जगने के पहले प्राप्त होता है । जैसे, तुम्हके, तुम्हसे,
 तुम्हपर, तुम्हमें ।
 तुम्हे-सर्व० [हिं० तुम्ह] 'तू' का कर्म और संप्रदान रूप । तुम्हके ।
 तुम्ह-वि० [सं०] तुम्ह = टूटना] टुकड़ा । खोशमाय । जरा सा ।
 तुम्हिटुम्ह-संज्ञा पुं० [सं०] शिथ ।
 तुम्हना-क्रि० सं० [सं०] तुम्ह, मा० तुम्हें] तुम्ह करना । प्रसन्न करना ।
 रागी करना ।
 कि० अ० तुम्ह होना । प्रसन्न होना । रागी होना ।
 तुम्हवाना-क्रि० सं० [हिं० 'तोड़ना' का प्रे०] तोड़ने का काम
 कराना । तोड़ने में प्रवृत्त करना । तोड़ने देना ।
 तुम्हारी-संज्ञा स्त्री० [हिं० तुम्हना] (१) तुम्हाने की क्रिया या भाव ।
 (२) तोड़ने की क्रिया या भाव । (३) तोड़ने की मजदूरी ।
 तुम्हाना-क्रि० सं० [हिं० तोड़ना का प्रे०] (१) तोड़ने का काम
 कराना । तुम्हवाना । (२) यँथी तुम्हें रस्ती आदि को तोड़ना ।
 यँथन तुम्हाना । जैसे, पोड़ा रस्ती तुम्हाना भाग । (३)
 श्रमण करना । संयंथ तोड़ना । जैसे, घचे को माँ से तुम्हाना ।
 (४) एक पड़े सिरके को बराबर मूख के कई छोटे छोटे
 सिरकों से घड़लना । बुनाना । जैसे, खपया तुम्हाना । (५)
 दाम कम कराना । मूख घटवाना ।
 तुम्हम-संज्ञा पुं० [सं०] तुम्ह] तुम्हारी । विगुल ।
 तुम्हि-संज्ञा पुं० [सं०] तुम्ह का पेड़ ।
 तुम्हरा † क्रि०-वि० [हिं० तोलना] [स्त्री० तुम्हरी] दे० "तोतला" ।
 व०—मनमोहन की तुम्हरी योखन मुनिमन हरत सुहँसि
 सुसकनियी ।—सूर ।
 तुम्हराना † क्रि० अ० दे० "तुम्हाना" । व०—श्रवणन नहिं
 बरकट रहत हे अरु योखल तुम्हरात री ।—सूर ।
 तुम्हरी † क्रि०-वि० दे० "तोतला" ।
 तुम्हलाना-क्रि० अ० [सं०] तुम्ह = टूटना वा अ०] शब्दों और
 यथों का अस्पष्ट अन्वयण करना । रूक रूक कर टूटे टूटे शब्द
 योखना । साफ न योखना । शब्द योखने में यथों ठीक ठीक
 सुँह से न निकालना । जैसे, यथों का तुम्हलाना बहुत प्यारा
 बात है ।

तुम्हली-वि० सं० दे० "तोतली" ।
 तुम्हें †—संज्ञा स्त्री० दे० "तुम्हरी" ।
 तुम्हरी †—संज्ञा स्त्री० [सं०] शेंटीदार छोटी घंटी । छोटी ली
 मारी जिसमें शेंटी-जगनी हो ।
 तुम्ह-संज्ञा पुं० [सं०] वृत्तिया । नीला योधा ।
 तुम्हक-संज्ञा पुं० दे० "तुम्ह" ।
 तुम्होजन-संज्ञा पुं० [सं०] वृत्तिया । नीला योधा ।
 तुम्हया-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) नील का पौधा । (२) छोटी
 इलायची ।
 तुम्हन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) व्यथा देने की क्रिया । पीड़न । (२)
 व्यथा । पीड़ा । व०—रुपाएटि करि तुम्हन मिटावा । सुमन
 माख पहिराय पढावा ।—विश्राम । (३) तुम्हाने या गढ़ाने
 की क्रिया ।
 तुम्ह-संज्ञा पुं० [सं०] तुम्ह] एक बहुत पड़ा पेड़ जो साधारणतः
 सारे अरबीय भारत में सिंध नदी से लेकर सिक्किम और
 भूटान तक होता है । इसकी ऊँचाई आलीस से लेकर पचास
 साठ हाथ तक और खपेट दस बाह हाथ तक होती है । पत्तियां
 इसकी नीम की तरह लंबी लंबी पर चिना बटाव की होती
 हैं । विशिष्ट में यह पेड़ पत्तियां झाड़ता है । बसंत के आरंभ
 में ही इसमें नीम के फूल की तरह के छोटे छोटे फूल गुच्छों
 में लगते हैं जिनकी पत्तियां सफेद पर बीच की पुंठियां कुछ
 पड़ी और पीले रंग की होती हैं । इन फूलों से एक प्रकार
 का पीला बसंती रंग निकलता है । ऊप्रे हुए फूलों को खोग
 इकट्ठा करके सुला लेते हैं । सूतने पर केवल कड़ी कड़ी
 पुंठियां मारसों के दाने के आकार की रह जाती हैं
 जिन्हें साफ करके सूट डालते या बगल डालते हैं ।
 तुम्ह की लकड़ी खाल रंग की और बहुत मजबूत होती है ।
 इसमें शीमक और तुम्ह नहीं लगने । मेज कुरसी आदि सजा-
 पट के सामान बनाने के लिये इस लकड़ी की बड़ी माँग
 रहती है । आसाम में चाय के बकस भी इसके बनते हैं ।
 तुम्हकामौज-संज्ञा पुं० [?] छोटा समुद्र । (जय०)
 तुम्हनी-संज्ञा स्त्री० [फा०] एक तरह की रस्ता रोटी ।
 तुम्हनी-संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) यह थाजा जिसमें तुम्हन शब्द
 निकले । (२) सारंगी ।
 तुम्ही-संज्ञा स्त्री० [हिं० तुम्ह] तुम्ह का पेड़ ।
 तुम्हीर-संज्ञा पुं० दे० "तुम्हीर" ।
 तुम्ह-संज्ञा पुं० [सं०] (१) तुम्ह का पेड़ । (२) फटे हुए कपड़े का
 टुकड़ा ।
 वि० वि० । कटा या फटा हुआ ।
 तुम्हवाय-संज्ञा पुं० [सं०] दरजी । कपड़ा सँवैवाला ।
 तुम्हक-संज्ञा स्त्री० [तु०] तैप] (१) छोटी तैप । (२) बँडूक ।
 कड़ावीत ।

क्रि० प्र०—चलना।—दृटना।

तुफंग—संज्ञा स्त्री० [तु० तुफ, हिं० तुफक] (१) हवाई बंदूक।
(२) यह लंबी नली जिसमें मिट्टी या धातु की गोलियाँ,
छोटे तार आदि डाल कर फूँक के जोर से चलाए जाते हैं।
तुफान—संज्ञा पुं० दे० "तुफान"।

तुमना—क्रि० ध० [सं० तुम, स्तोमन = स्तम्भ रहना, ठक रहना]
स्तम्भ रहना। ठक रह जाना। अचल रह जाना। उ०—
दरिद्र न धारे यह धृति मन में सुभी। स्वाम सघन पीतांबर
दामिनि, अँखियाँ बामरु है बाप तुमी।—सुर।

तुम—सर्व० [सं० लम्] 'तु' शब्द का बहुवचन। यह सर्वनाम
जिसका व्यवहार इस पुरुष के लिये होता है जिससे कुछ
कहा जाता है। जैसे, तुम यहाँ से चले जाओ।

विशेष—सर्वप कारक को छोड़ शेष सब कारकों की विभक्तियों
के साथ इस शब्द का वही रूप बना रहता है, जैसे, तुमने,
तुमको, तुमसे, तुममें, तुमपर। सर्वप कारक में 'तुम्हारा'
होता है। शिष्टता के विचार से एक वचन के लिये भी
बहु० 'तुम' का ही व्यवहार होता है। 'तु' का प्रयोग बहुत
छोटों या बच्चों के लिये ही होता है।

तुमड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० तुंभिनी] (१) कटुप गोल कटू का
सूखा फल। गोल धीरे का सूखा फल। (२) सूखे गोल
कटू को खोलकर निकाले हुए भाग या पत्र जिसमें प्रायः
साधु पानी पीते हैं। (३) सूखे कटू का बना हुआ एक
वाजा जो सुँह से फूँक कर बजाया जाता है। महुवर।

विशेष—यह वाजा कटू के खोलले पेट में दो नरकट की
नलियाँ घुसा कर बनाया जाता है। सँतरे हूँसे प्रायः
बजाते हैं।

तुमतड़ाक—संज्ञा स्त्री० दे० "तुमतड़ाक"।

तुमल—संज्ञा पुं०, वि० दे० "तुमल"।

तुमरा—सर्व० दे० "तुम्हारा"।

तुमरी—संज्ञा स्त्री० दे० "तुमड़ी"।

तुमरु—संज्ञा पुं० दे० "तुंडरु"।

तुमाना—क्रि० घ० [हिं० 'तुमाना' का प्र०] तुमने का काम
कराना। बची या जम कर बँधी हुई रूई को पुनःपुनः करके
कैलाने के लिये मोचवाना।

तुमती—संज्ञा स्त्री० [दे०] एक प्रकार की चिट्ठी।

तुमर—संज्ञा पुं० दे० "तुमल"।

संज्ञा पुं० पत्रियों की एक जाति जिसका बर्लैल मस्य-
प्राय में है।

तुमल—संज्ञा पुं० [सं०] (१) सेना का कोलाहल। सेना की
धूम। लड़ाई की हलचल। (२) सेना की मिट्टें। गहरी
मुटमिट्ट। (३) बटेड़े का पेड़।

तुम्ह—सर्व० दे० "तुम"।

तुम्हारा—सर्व० [हिं० तुम] [स्त्री० तुम्हारी] 'तुम' का संबंध
कारक का रूप। उसका जिससे बोलनेवाला बोलता है। जैसे,
तुम्हारी पुस्तक कहाँ है ?

मुहा०—तुम्हारा सिर = दे० "सिर"।

तुम्हें—सर्व० [हिं० तुम] 'तुम' का वह विभक्तियुक्त रूप जो उसे
कर्म और समयदान में प्राप्त होता है। तुमको।

तुर्ग—वि० [सं०] जल्दी चलनेवाला।

संज्ञा पुं० [सं०] (१) घोड़ा। (२) चित्त। (३) सात की
संख्या।

तुर्गरक—संज्ञा पुं० [सं०] बड़ी तोरई।

तुर्ग गौड़—संज्ञा पुं० [सं०] गौड़ राग का एक भेद। यह धीरे
या शीघ्र रस का राग है।

तुर्गमेपिया—संज्ञा स्त्री० [सं०] सैत। महिपी।

तुर्गप्रिय—संज्ञा पुं० [सं०] जै। यव।

तुर्गम—वि० [सं०] जल्दी चलनेवाला।

संज्ञा पुं० [सं०] (१) घोड़ा। (२) चित्त। (३) एक धृत
का नाम जिसके प्रत्येक चरण में दो नगण और दो गुरु
होते हैं। इसे तुंग और तुंगा भी कहते हैं। उ०—नग
गडु विहारी। कहत अदि पियारी।

तुर्गवक्—संज्ञा पुं० [सं०] (घोड़े का सा सुँ हवाला) कितर।

तुर्गवदन—संज्ञा पुं० [सं०] (घोड़े का सा सुँ हवाला) कितर।

तुर्गशाला—संज्ञा स्त्री० [सं०] घोड़ारा। अस्तबल।

तुर्गरारि—संज्ञा पुं० [सं०] कनेर। करवीर।

तुर्गिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] देवदाली। घपरखेल। बंदाज।

तुर्गी—संज्ञा स्त्री० [सं०] अरवगंधा। अरवगंध।

तुर्ज—संज्ञा पुं० [फा० । य० तुर्ज] (१) चकोतरा नीबू। (२)

विमौरा नीबू। खट्टी। (३) सुई से काढ़ कर बनाया हुआ
पान या कडगी के आकार का वह पटा जो धौंरखों के मोटों
और पीठ पर सपा हुआने के केशों पर बनाया जाता है।

तुर्जधीन—संज्ञा स्त्री० [फा०] (१) एक प्रकार की चीनी जो प्रायः
ऊँटकारे के पौधों पर ओस के साथ छुरासान देण में जमती
है। (२) नीबू के रस का शरबत।

तुर्त—क्रि० वि० [सं० तुर् = वेग, जल्दी] जल्दी से। अत्यंत शीघ्र।
तत्पण। कटपट। शौरान। विना विर्लंब के।

तुर्ता—संज्ञा पुं० [हिं० तुल] गाँजा (जिसका नया तुर्त पीते ही
चढ़ता है)।

तुर्—क्रि० वि० [सं०] शीघ्र। जल्द।

वि० वेगवान्। शीघ्रगामी।

संज्ञा पुं० [सं० तुर्] (१) वह लकड़ी जिस पर जुवाहे
कपड़ा बुन कर लपेटे जाते हैं। (२) वह बेलन जिस पर
गोटा बुन कर लपेटे जाते हैं।

तुरई—संज्ञा स्त्री० [सं० तुर = तुरही यज्ञा] एक बेल जिसके बंधे फलों की तरकारी बनाई जाती है।

विशेष—इसकी पत्तियाँ गोल कटावदार कद्दू की पत्तियों से मिलती जुलती होती हैं। यह पीघा बहुत दिनों तक नहीं रहता। इसे पानी की विशेष आवश्यकता होती है, इससे यह बरसात ही में विशेषकर बोया जाता है और बरसात ही तक रहता है। बरसाती तुरई छुपर या टट्टियों पर फैलाई जाती है, क्योंकि भूमि में फैलाने से पत्तियों और फलों के सड़ जाने का डर रहता है। गरमी में भी लोग बजारियों में इसे बोते हैं और पानी से सर रखते हैं। गरमी से बचाने पर यह बेल जमीन ही में फैलती और फलती है। तुरई के कूल पीले रंग के होते हैं और संध्या के समय खिलते हैं। फल लंबे लंबे होते हैं जिन पर लंबाई के बल बमरी हुई नती की स्त्री लकीरें समान अंतर पर होती हैं।

मुहा०—तुरई का कूल सा = हलकी या छोटी मोटी चीज की तरह जल्दी खत्म या खर्च हो जानेवाला। इस प्रकार चटपट चुक जाने या खर्च हो जानेवाला कि मादूम न हो। जैसे, तुरई के फूल से वे ली रूपए देखते देखते उठ गए।

संज्ञा स्त्री० दे० "तुरही"।

तुरक—संज्ञा पुं० दे० "तुक"।

तुरकटा—संज्ञा पुं० [फा० तुर्क + हिं० टा—(प्रत्य०)] सुसलमान। (प्रथासूचक शब्द)

तुरकाना—संज्ञा पुं० [फा० तुर्क] तुर्कों या सुसलमानों की बली।

तुरकाना—संज्ञा पुं० [फा० तुर्क] [स्त्री० तुरकानी] (१) तुर्कों का सा। तुर्कों के देसा। (२) तुर्कों का देश या बली।

तुरकानो—वि० स्त्री० [फा० तुर्क + शब्दा (प्रत्य०)] तुर्कों की स्त्री। संज्ञा स्त्री० तुर्क की स्त्री।

तुरकिन—संज्ञा स्त्री० [फा० तुर्क + हिं० इन—(प्रत्य०)] (१) तुर्क की स्त्री। (२) तुर्क जाति की स्त्री। † (३) सुसलमानिन। सुसलमान की स्त्री।

तुरकिस्तान—संज्ञा पुं० दे० "तुर्किस्तान"।

तुरकी—वि० [फा०] (१) तुर्क देश का। जैसे, तुरकी घोड़ा, तुरकी सिपाही। (२) तुर्क देश संबंधी।

संज्ञा स्त्री० [फा०] तुर्कों की भाषा। तुर्किस्तान की भाषा।

तुरग—वि० [सं०] तेज चलनेवाला।

संज्ञा पुं० [स्त्री० तुर्ली] (१) घोड़ा। (२) चित्त।

तुरगगंधा—संज्ञा स्त्री० [सं०] अश्वगंधा। अश्वगंध।

तुरगदानव—संज्ञा पुं० [सं०] केशी नामक दीव्य यो कंस की आत्मा से कृष्ण को मारने के लिये भोगे का रूप धारण करके गया था।

तुरगदासचर्य—संज्ञा पुं० [सं०] यह महाचर्य जो केवल स्त्री के न मिलने के कारण ही होता है।

तुरगलीलक—संज्ञा पुं० [सं०] संगीतदासमोदर के अनुसार एक ताल का नाम।

तुरगी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) घोड़ी। (२) अश्वगंधा।

संज्ञा पुं० [सं० तुर्गिन] धरवाही। घुड़सवार।

तुरगुला—संज्ञा पुं० [दे०] लटकन जो कर्पाकूल नामक फल के गहने में लटकया जाता है। सुमका। कोलक।

तुरत—अव्य० [सं० तुर] शीघ्र। चटपट। तत्क्षण।

यो०—तुरत कुरत = चटपट।

तुरतुरा—वि० [सं० तुरा] [स्त्री० तुरतुरी] (१) तेज। जल्दबाज।

(२) बहुत जल्दी जल्दी चलनेवाला। जल्दी जल्दी बात करनेवाला।

तुरतुरिया—वि० दे० "तुरतुरा"।

तुरपई—संज्ञा स्त्री० [हिं० तुरपना] तुरपन। एक प्रकार की सिलाई।

तुरपन—संज्ञा स्त्री० [हिं० तुरपना] एक प्रकार की सिलाई जिस में जोड़ों को पहले लंबाई के बल टांके डाल कर मिला लेते हैं फिर निकले हुए छोर को मोड़ कर तिरछे टांकों से जमा देते हैं। लुढ़ियावन। वलिया का डलदा।

तुरपना—कि० सं० [हिं० तुर = नीचे + पर = ऊपर + ना (प्रत्य०)] तुरपन की सिलाई करना। लुढ़ियाना।

तुरपवाना—कि० सं० दे० "तुरपाना"।

तुरम—संज्ञा पुं० [सं० मूम] तुरही।

तुरमती—संज्ञा स्त्री० [तु० तुरमता] एक चिड़िया जो याज्ञ की तरह शिकार करती है। यह याज्ञ से छोटी होती है।

तुरमनी—संज्ञा स्त्री० [दे०] नारियल रेतने की रती।

तुरय—संज्ञा पुं० [सं० तुर्ग] [स्त्री० तुर्गी] घोड़ा। उ०—सायक चाप तुरय बनि जति ही तिरु सदै तुम जाहू।—सूर।

तुरही—संज्ञा स्त्री० [सं० तुर] फूँक कर बजाने का एक बाजा जो झुँह की और पतला और पीछे की ओर चौड़ा होता है।

विशेष—यह बाजा पीतल आदि का बनता है और देखा स्त्रीधा कई प्रकार का होता है। पहले यह लड़ाई में नगारे आदि के साथ बजता था।

तुरा—संज्ञा स्त्री० दे० "धरा"।

संज्ञा पुं० [सं० तुर्ग] घोड़ा।

तुराई—संज्ञा स्त्री० [सं० तुल = रुई। वृत्तिका = गंधा] रुई भरा हुआ शुद्धयुद्ध विद्यावन। गंधा। तोशक। उ०—(क) मींद बहुत भिय सेज तुराई। लखत न भूप कपट चतुराई।—तुलसी। (ल) विविध बसन, उर्ध्वान, तुराई। छीर-फेल म्हुद विसद सुदाई।—तुलसी। (ग) कुस किसलय सावरी सुदाई। प्रभु सँग मंडु मनोज तुराई।—तुलसी।

तुराट—संज्ञा पुं० [सं० तुर्ग] घोड़ा। (हिं०)

तुराना—कि० अ० [सं० तुर्] जल्दी करना। पयारना। आदर होना।

किं सं० दे० "तुङ्गाना"।
तुरायण-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का यज्ञ जो चैत्र शुक्ला १ & ४ और वैशाख शुक्ला ४ की होता है।

तुराघन्-वि० [सं० तुरावत्] वेगवाला। वेगयुक्त।
तुरावती वि० स्त्री० [सं० तुरावती] वेगवाली। भौक के साथ बढ़नेवाली। ४०—(क) विषम विपाद् तुरावति धारा। भय भ्रम अंतर शब्दों धारा।—**तुलसी**। (ख) अश्रुत सरोवर सति धारा। वहाँ बूझ तुरावति धारा।—शं० दि०।

तुरावान्-वि० दे० "तुरावत्"।

तुरापाद्-संज्ञा पुं० [सं०] ईद।

तुरासाह-संज्ञा पुं० [सं०] ईद।

तुरिया-संज्ञा स्त्री० दे० "तुरीय"।

संज्ञा स्त्री० दे० "तेरिया"।

तुरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) जुलाहों का तेरिया या सेरिया नाम का धौनार। (२) जुलाहों की कूची। हाथी।
 वि० वेगवाली।

संज्ञा स्त्री० [सं० तुरय = घोड़ा] (१) घोड़ी। (२) लगाम। धारा।

संज्ञा पुं० सवार। अस्वारोही।

संज्ञा स्त्री० [सं० तुरी] (१) शूलों का गुच्छा। (२) मोती की लड़कों का रुन्ना जो पगड़ी में कान के पस लटकाया जाता है।

संज्ञा स्त्री० दे० "तुरही"।

संज्ञा स्त्री० दे० "तुरही"।

तुरीय-वि० [सं०] चतुर्थ। चौथा।

विशेष—वेद में घायी या धाक के चार भेद किए गए हैं—परा, परवती, मध्यमा और वैखरी। इसी वैखरी घायी को तुरीय भी कहते हैं। सायण के अनुसार जो नादात्मक घायी मूलाधार से उठती है और जिसका निरूपण नहीं हो सकता है उस का नाम परा है। जिसे केवल योगी लोग ही जान सकते हैं यह परवती है। फिर जब घायी बुद्धिगत होकर बोलने की इच्छा उत्पन्न करती है तब उसे मध्यमा कहते हैं। अंत में जब घायी मुँह में आकर उच्चारित होती है तब उसे वैखरी या तुरीय कहते हैं।

वेदांतियों ने प्राणियों की चार श्रवणायुक्त मानी हैं—जाम्बव, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीय। यह चौथी या तुरीयावस्था मोक्ष है जिस में समस्त भेद-ज्ञान का नाश हो जाता है और प्राणमा अनुपहित चैतन्य वा महाचैतन्य हो जाती है।

तुरी यंत्र-संज्ञा पुं० [सं०] वह गंत्र जिस से सूर्य की गति जानी जाती है।

तुरीय वर्ष-संज्ञा पुं० [सं०] चौथे वर्ष का पुरुष। शूद्र।

तुरुक-संज्ञा पुं० दे० "तुर्क"।

तुरुप-संज्ञा पुं० [सं० रूप] तारा का एक खेळ जिसमें कोई एक रंग प्रधान मान लिया जाता है। इस रंग का छेद से छोटा पत्ता दूसरे रंग के बड़े से बड़े पत्ते को मार सकता है।

संज्ञा पुं० [सं० रूप = सेना] (१) सवारों का रिसाला। (२) रिसाला। सेना का एक खेद।

तुरुपना-किं० सं० दे० "तुरपना"।

तुरुष्क-संज्ञा पुं० [सं०] (१) तुर्क जाति। तुर्किस्तान का रहने-वाला मनुष्य।

विशेष—भागवत, विष्णुपुराण आदि में तुरुष्क जाति का नाम धारा है जिससे अभिप्राय हिमालय के उत्तर-पश्चिम के निवासियों ही से जान पड़ता है। वक् पुराणों में तुरुष्क राज-गण के पृथ्वी भोग करने का उल्लेख है। कपास-सागर और राजतरंगिणी में भी इस बात का उल्लेख है।

(२) वह देश जहाँ तुरुष्क जाति रहती हो। तुर्किस्तान।

(३) एक गंध द्रव्य। जोबान। (४) तुर्किस्तान का घोड़ा।

तुरुष्कगोड-संज्ञा पुं० दे० "तुरंगगोड"।

तुरुही-संज्ञा स्त्री० दे० "तुरही"।

तुरैया-संज्ञा स्त्री० दे० "तुरई"।

तुर्क-संज्ञा पुं० [सं० तुरुष्क] (१) तुर्किस्तान का निवासी। (२) रुम का निवासी। तुर्कों का रहनेवाला।

तुर्कमान-संज्ञा पुं० [सं० तुर्क] (१) तुर्क जाति का मनुष्य। (२) तुर्कों छोड़ा जो बहुत बलिष्ठ और साहसी होता है।

तुर्कसवार-संज्ञा पुं० [सं० तुर्क + सवार] एक विशेष प्रकार का सवार।

विशेष—येसे सवारों को स्त्रि से पैर तक तुर्कों पहरावा पहनाया जाता था।

तुर्कान-संज्ञा स्त्री० [सं० तुर्क] (१) तुर्क जाति की स्त्री। (२) तुर्कों की स्त्री।

तुर्कानो-संज्ञा स्त्री० दे० "तुर्किन"।

तुर्कानो-वि० [सं० तुर्क] तुर्किस्तान का। तुर्किस्तान में होनेवाला। जैसे, तुर्कानो घोड़ा।

संज्ञा स्त्री० (१) तुर्किस्तान की भाषा। (२) तुर्किस्तान का घोड़ा। (३) तुर्कों की सी छेद। अकड़। गर्व।

मुदा०—तुर्कों तमाम होना = धर्मद आता रहना। शैली निरुक्त जाना।

तुर्फरी-संज्ञा पुं० [सं०] अंग्रेज का मारनेवाला भाग जो सामने सीपी गोक की धारे होता है। हुंता।

थी०—जर्नरी तुर्फरी = बात का बतकड़। प्रभाव।

तुर्प-वि० [सं०] चौथा। चतुर्थ।

तुर्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह ज्ञान जिससे मुक्ति हो जाती है। तुरीय ज्ञान।

हृत्ना प्रेम राम से करते तो न जाने क्या हो जाते। श्री की पात इन्हें लाग गई और ये चट विरक्त होकर काशी चले आए। वहाँ एक प्रेत मिला। उसने हनुमान जी का पता बताया जो नित्य एक स्थान पर प्राद्वय के वेश में कथा सुनने जाया करते थे। हनुमान् जी से साक्षात्कार होने पर गोस्वामी जी ने रामचंद्र के दरान की धमिलजाया प्रकट की। हनुमान् जी ने इन्हें चिरहृष्ट जाने की आशा दी जहाँ इन्हें दो राज-कुमारों के रूप में राम और लक्ष्मण जाते हुए दिखाई पड़े। हस्ती प्रकार की और कई कथाएँ भियादास ने लिखी हैं, जैसे, दिल्ली के बादशाह का इन्हें बुलाना और कैद करना, बंदरों का उखाट करना और पादशाह का तंग आकर छोड़ना इत्यादि।

तुलसीदास जी ने चैत्र शुद्ध ६ (रामनवमी) संवत् १६३१ को रामचरित-मानस लिखना आरंभ किया। संवत् १६८० में काशी में असीघाट पर इन का शरीरान्त हुआ जैसा कि इस दोहे से प्रकट है—संवत् सोलह सौ अमी असी गंग के तीर। भावय शुभ्या सप्तमी तुलसी तज्यो शरीर ॥ रामचरितमानस के अतिरिक्त गोस्वामी जी की लिखी और पुस्तकें ये हैं—दोहा-पत्नी, गीतावली, कवित्त रामायण, विनयपत्रिका, रामाष्टा, रामजला महद्वे, घरवे रामायण, जानकीमंगल, पार्वतीमंगल, यैतन्यसंदीपिनी, कृष्णगीतावली। इनके अतिरिक्त हनुमान-याहक आदि कुछ स्तोत्र भी गोस्वामी जी के नाम से प्रसिद्ध हैं।

तुलसी-द्वेषा—संज्ञा स्त्री० [सं०] बगई। धन-तुलसी। बर्बरी। ममरी।

तुलसीपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] तुलसी की पत्ती।

तुलसीवास—संज्ञा पुं० [हिं० तुलसी + वास = महक] एक प्रकार का महीन धान जो अगहन में तैयार होता है। इस का धावज बहुत सुगंधित होता है और कई साल तक रह सकता है।

तुलसीवन—संज्ञा पुं० [सं०] (१) तुलसी के वृक्षों का समूह। तुलसी का जंगल। (२) वृंदावन।

तुला—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सादस्य। तुलना। मिलाव। (२) मुख्य नापने का यंत्र। तालू। कटा।

धा०—तुलादंड।

(३) मान। तौल। (४) मांड। भनाज आदि नापने का यत्न। (५) प्राचीन काब की एक तौल जो १०० पख या पाँच सेर के लगभग होती थी। (६) ज्योतिष की पारह राशियों में से सातवीं राशि।

विशेष—मोटे हिसाब से दो नक्षत्रों और एक नक्षत्र के चतुर्विंश अर्थात् सवा दो नक्षत्रों की एक राशि होती है। तुला राशि में चित्रा नक्षत्र के शेष ३० दंड तथा स्वाती और विशाखा के

आष ४५—४५ दंड होते हैं। इस राशि का आकार तराजू लिए हुए मनुष्य का सा माना जाता है।

(७) स्यासत्यनिर्यय की एक परीक्षा जो प्राचीन काल में प्रचलित थी। वादी प्रतिवादी आदि की एक दिव्य परीक्षा। दे० "तुलापरीक्षा"। (८) वास्तु विद्या में स्तंभ (स्तंभ) के विभागों में से चौथा विभाग।

तुलाई—संज्ञा स्त्री० [सं० तुल = रुई] वह दोहरा कपड़ा जिसके भीतर रुई भरी हो। रुई से भरा दोहरा कपड़ा जो धोने के काम में आता है। दुलाई। उ०—तपन तेज तपता तपन मूल तुलाई माह। सिसिर सीत क्यों हूँ न घटै विन लपटे तियनाह।—चिहारी।

संज्ञा स्त्री० [हिं० तुलना] (१) तौलने का काम या भाव। (२) तौलने की मजदूरी।

तुलाफूट—संज्ञा पुं० [सं०] (१) तौल में कसर। (२) तौल में कसर करनेवाला। ढंड़ी मारनेवाला मनुष्य।

तुलाकोटि—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) तराजू की ढंड़ी के दोनों छोर जिनमें पलट्टे की रस्सी बँधी रहती है। (२) एक तौल का नाम। (३) अर्घ्य संख्या। (४) नूपुर।

तुलाकोश—संज्ञा स्त्री० [सं०] तुलापरीक्षा।

तुलादान—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का दान जिसमें किसी मनुष्य की तौल के धरावर द्रव्य या पदार्थ का दान होता है। यह सोलह महादानों में से है। तीर्थों में इस प्रकार का दान प्रायः राजा महाराजा करते हैं।

तुलाघार—संज्ञा पुं० [सं०] (१) तुलारशि। (२) तराजू की रस्सी जिससे पलट्टे बँधे रहते हैं। (३) बनियाँ। बणिक। (४) काशी का रहनेवाला एक बणिक जिसने महर्षि जात्राल को बपदेश दिया था। (महाभारत)। (५) कार्यानिवासी एक व्याप जो सदा माता पिता की सेवा में तत्पर रहता था। हृतयोध नामक एक व्यक्ति जब इसके सामने आया तब इसने उसका समस्त धन-वृत्तान्त कह सुनाया। इस पर उस व्यक्ति ने भी माना पिता की सेवा का मत जो लिया। (बृहद्महापुराण)। वि० तुला जो धारण करनेवाला।

तुलाना—कि० ख० [हिं० तुलना = तौलने व नारन कना] (१) आ पहुँचना। समीप आना। निजट आना। उ०—(क) समुद्र लोक धन चढी विधाना। जो दिन ढरै सो आष तुलाना।—जायसी। (ख) चपना काल आसु ही बोल्यो इनकी मीनु तुलानी।—सूर। (२) धरापर होना। पूरा उतरना। कि० उ० [हिं० तुलना] गाड़ी के पहियों को बाँगाना। गाड़ी के पहियों की धुरी में चिकना दिखाना।

तुलापरीक्षा—संज्ञा स्त्री० [सं०] अभियुक्तों की एक परीक्षा जो अग्नि-परीक्षा, विप-परीक्षा आदि के समान प्राचीन काल में प्रचलित थी। दोषी या निर्दोष होने की दिव्य परीक्षा।

विशेष—स्मृतियों में तुलापरीषा का बहुत ही विलुप्त विधान दिया हुआ है। एक सुखे स्थान में यन्काष्ठ की एक थड़ी ली तुला (तराजू) खड़ी की जाती थी और चारों ओर तोरण आदि बांधे जाते थे। फिर मंत्र-पाठ-पूर्वक देवताओं का पूजन होता था और अभियुक्त को एक बार तराजू के पलड़े पर विठाकर मिट्टी आदि से ढाँस लेते थे। फिर उसे उतार कर दूसरी बार लौकते थे। यदि पलड़ा कुछ झुक जाता था तो अभियुक्त को दोषी समझते थे।

तुलापुरुषरुचः—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का व्रत जिसमें विष्णवक (तिल की खली), भात, मट्ठा, जल और सन्तु इनमें से प्रत्येक को क्रमशः तीन तीन दिन तक खाकर पंद्रह दिनों तक रहना पड़ता है। यम ने इसे २१ दिनों का तप दिया है। इसका पूरा विधान याज्ञवल्क्य, हारीत आदि स्मृतियों में मिलता है।

तुलापुरुषदान—संज्ञा पुं० दे० “तुलादान” ।
तुलाबीज—संज्ञा पुं० [सं०] गुंजाबीज। छुँपची के बीज जो तैल के काम में आते हैं।

तुलामवानी—संज्ञा स्त्री० [सं०] शंकरविष्णुत्रय के अनुसार एक नदी और नगरी का नाम।

तुलामान—संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह शंदाज या मान जो तौलकर किया जाय। (२) वाट। थलरत्न।

तुलायंत्र—संज्ञा स्त्री० [सं०] तराजू।

तुलाया—संज्ञा पुं० [सं०] तुलना। वह लकड़ी जिसके बल गाड़ी खड़ी करके धुरी में तोल दिया जाता है और पहिया निकाशा जाता है। वह लकड़ी जिसके सहारे भींगते समय गाड़ी खड़ी की जाती है।

तुलि—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) लुनाहों की सूँधी। (२) चित्र बनाने की सूँधी।

तुलिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] संजन की तरह की एक छोटी चिड़िया।

तुलित—वि० [सं०] (१) तुला हुआ। (२) बराबर। समान।

तुलिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] शाण्वती वृक्ष। सेमर का पेड़।

तुलिफला—संज्ञा स्त्री० [सं०] सेमर का वृक्ष।

तुली—संज्ञा स्त्री० दे० “तुलि”।

संज्ञा स्त्री० [सं०] तुला। छोटी तराजू। कटा।

† संज्ञा स्त्री० [?] संज्ञा। सुखती।

तुल्य—संज्ञा पुं० [सं०] दक्षिण के एक प्रदेश का प्राचीन नाम जो समाधि और समुद्र के बीच में माना जाता था। आजकल इस प्रदेश को उत्तर कनाड़ा कहते हैं।

तुलुली—संज्ञा स्त्री० [अनु० तुलुलु] पैंपी हुई पार को कुछ दूर पर आकर पड़े (जैसे, पेटाथ की)।

क्रि० प्र०—बैधान।

तुल्य—वि० [सं०] (१) समान। बराबर। (२) सदा।

तुल्यता—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) बराबरी। समता। (२) सादर्य।

तुल्यपान—संज्ञा पुं० [सं०] स्वजाति के लोगों के साथ मिल जुल कर खाना पीना।

तुल्यप्रधानव्यंग्य—संज्ञा पुं० [सं०] वह व्यंग्य जिसमें चारुवाय और व्यंग्यार्थ बराबर हो।

तुल्ययोगिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक अलंकार जिसमें कई प्रस्तुतों या अमस्तुतों का अर्थोत् बहुत से उपमेयों या उपमानों का एक ही धर्म बतलाया जाय। व०—(क) अपने अंग के जानि के जीवन वृत्ति प्रवृत्ति। स्तन, मन, नैन, नित्य को बड़े इजाफा कीन—विहारी। यहाँ स्तन, मन, नयन, नित्य इन प्रसिद्ध उपमेयों का ‘इजाफा होना’ एक ही धर्म कहा गया है। (ख) लखि सेरी सुकुमारता पूरी। या जग माहिं। कमल, गुलाब कठोर से किदि को भासत माहिं ॥ यहाँ कमल और गुलाब इन दोनों उपमानों का एक ही धर्म कठोरता कहा गया है।

तुल्ययोगी—वि० [सं०] समान संबंध रखनेवाला।

तुल्यल—संज्ञा पुं० [सं०] एक श्रापि का नाम।

तुय—सर्व० दे० “तव”।

तुवर—वि० [सं०] (१) कसेला। (२) चिना दाढ़ी मोड़ का। रमशुहीन।

संज्ञा पुं० [सं०] (१) कसेला रस। कपाय रस। (२) भरहर। (३) एक पौधा जो नदियों और समुद्र के तट पर होता है। इसके फल हमली के समान होते हैं जिनके खाने से पशुओं का वृक्ष बढ़ता है।

तुवरपाचनाल—संज्ञा पुं० [सं०] जाल उवार। जाल सुँदरी।

तुवरिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) गोपीचंदन। (२) चाकूकी। भरहर।

तुवरी—संज्ञा स्त्री० दे० “तुवरिका”।

तुवरीशिव—संज्ञा पुं० [सं०] शकवृक्ष का पेड़। पेंवार।

तुवि—संज्ञा स्त्री० [सं०] सूँधी।

तुदियार—संज्ञा पुं० [दे०] एक झाड़ू जो पश्चिम हिमालय में होता है। इसकी छाल से रसियाँ बनाई जाती हैं। पुन्नी।

तुप—संज्ञा पुं० [सं०] (१) अक्ष के ऊपर का झिलका। भूमी। (२) अक्ष के ऊपर का झिलका। (३) बड़े का पेड़।

तुपग्रह—संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि।

तुपायु—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की कान्नी जो भूमी सहित बड़े हुए जा के सड़ा कर बनती है। बीच में यह कान्नी, अग्निदीपक, पापक, हृदयमाही और तीक्ष्ण माली गई है।

तुलानल—संज्ञा पुं० [सं०] (१) भूमी की भाग। पास दूत की भाग। करती की श्राप। (२) भूमी या पास दूत की भाग

हृदना प्रेम राम से करते तो न जाने क्या हो जाते।' खी की यात इन्हें खाम गई और ये घट विरक्त होकर काशी चले आए। वहाँ एक प्रेत मिला। उसने हनुमान जी का पता पताया जो नित्य एक स्थान पर प्राद्वश्य के वेध में कथा सुनने जाया करते थे। हनुमान् जी से साक्षात्कार होने पर गोस्वामी जी ने रामचंद्र के दर्शन की धमिल्लाया प्रकट की। हनुमान् जी ने इन्हें चित्रदृष्ट जाने की आज्ञा दी जहाँ इन्हें दो राज-कुमारों के रूप में राम और लक्ष्मण जाते हुए दिखाई पड़े। इसी प्रकार की और कई कथाएँ मियादास ने लिखी हैं, जैसे, दिल्ली के बादशाह का इन्हें पुखाना और कैद करना, बंदरों का बरपात करना और बादशाह का तंग आकर छोड़ना हत्यादि।

तुलसीदास जी ने चैत्र शुद्ध ६ (रामनवमी) संवत् १६३१ को रामचरित-मानस लिखना श्रांभ किया। संवत् १६२० में काशी में असीघाट पर इन का शरीरगत हुआ जैसा कि इस दोहे से प्रकट है—संवत् सोलह सौ असी अस्सी गंग के तीर। श्रावण शुक्ल सप्तमी तुलसी तज्यो शरीर। रामचरितमानस के अतिरिक्त गोस्वामी जी की लिखी और पुस्तकें ये हैं—दोहा-धरती, गीतावली, कवित्त रामायण, विनयपत्रिका, रामाज्ञा, रामलला नहल्ल, बरधै रामायण, जानकीमंगल, पार्वतीमंगल, वैराग्यसंदीपिनी, कृष्णगीतावली। इनके अतिरिक्त हनुमान-यादुक आदि कुछ स्तोत्र भी गोस्वामी जी के नाम से प्रसिद्ध हैं।

तुलसी-द्वेषा—संज्ञा स्त्री० [सं०] बर्हई। चन-तुलसी। वर्वरी। ममरी।

तुलसीपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] तुलसी की पत्ती।

तुलसीदास—संज्ञा पुं० [हिं० तुलसी + दास = महक] एक प्रकार का महीन धान जो अग्रहन में तैयार होता है। इस का चावल बहुत सुरंगित होता है और कई साल तक रह सकता है।

तुलसीवन—संज्ञा पुं० [सं०] (१) तुलसी के वृक्षों का समूह। तुलसी का जंगल। (२) वृंदावन।

तुला—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सारथ्य। तुलना। मिलान। (२) गुरुत्व नापने का यंत्र। तराजू। कटिा।

तौल—तुलादंड।

(३) मान। तौल। (४) मांड। अनाज आदि नापने का यंत्र। (५) प्राचीन काल की एक तौल जो १०० पल या पाँच सेर के लगभग होती थी। (६) ज्योतिष की चारह राशियों में से सातवाँ राशि।

विदोष—मोटे हिसाब से दो नक्षत्रों और एक नक्षत्र के चतुर्थांश अर्थात् सवा दो नक्षत्रों की एक राशि होती है। तुला राशि में चित्रा नक्षत्र के शेष ३० दंड तथा स्वाती और विशाखा के

थाप ४२—४२ दंड होते हैं। इस राशि का आकार तराजू लिए हुए मनुष्य का सा माना जाता है।

(७) सत्यासत्यनिर्यय की एक परीक्षा जो प्राचीन काल में प्रचलित थी। बादी प्रतिवादी आदि की एक दिव्य परीक्षा। दे० "तुलापरीक्षा"। (८) वास्तु विद्या में स्तंभ (स्तंभ) के विभागों में से चौथा विभाग।

तुलाई—संज्ञा स्त्री० [सं० तुल = रुई] वह दोहरा कपड़ा जिसके भीतर रुई भरी हो। रुई से भरा दोहरा कपड़ा जो धोवने के काम में आता है। दुलाई। उ०—सपन तेज तपता तपन तुल तुलाई माह। सिसिर सीत क्यों हूँ न घटै दिन लपटे तियनाह।—विहारी।

संज्ञा स्त्री० [हिं० तुलना] (१) तौलने का काम या भाव। (२) तौलने की मजदूरी।

तुलाकूट—संज्ञा पुं० [सं०] (१) तौल में कसर। (२) तौल में कसर करनेवाला। बाँड़ी मारनेवाला मनुष्य।

तुलाकोटि—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) तराजू की ढंभी के दोनों छोर जिनमें पलड़े की रस्सी धँपी रहती है। (२) एक तौल का नाम। (३) श्रद्धेय संख्या। (४) न्युर।

तुलाकोश—संज्ञा स्त्री० [सं०] तुलापरीक्षा।

तुलादान—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का दान जिसमें किसी मनुष्य की तौल के बराबर द्रव्य या पदार्थ का दान होता है। यह सोलह महादानों में से है। तीर्थों में इस प्रकार का दान प्रायः राजा महाराजा करते हैं।

तुलाधार—संज्ञा पुं० [सं०] (१) तुलारारि। (२) तराजू की रस्सी जिससे पलड़े धँसे रहते हैं। (३) बनिर्था। बणिक्। (४) काशी का रहनेवाला एक बणिक् जिसने महर्षि जामलि को उपदेश दिया था। (महामारत)। (५) काशीनिवासी एक व्याप जो सदा माता पिता की सेवा में तत्पर रहता था। कृतयोध नामक एक व्यक्ति जब इसके सामने धाया तब इसने इसका समस्त पूर्व-शुचोत कह सुनाया। इस पर उस व्यक्ति ने भी माता पिता की सेवा का मत ले लिया। (बृहद्भूमिपुराण)। वि० तुला को धारण करनेवाला।

तुलानाह—किं० अ० [हिं० तुलना = तौल में बतार आना] (१) आ पटुं चना। समीप आना। निकट आना। उ०—(क) समुद्र लोक धन चढी विधाना। जो दिन हरे सो थाप तुलाना।—जायसी। (ख) अर्पणे काल आतु ही पोख्ये इनकी मीसु तुलानी।—धुर। (२) बराबर होना। पूरा बतरना। किं० सं० [हिं० तुलना] गाड़ी के पहियों को बँगावना। गाड़ी के पहियों की धुरी में फिटाना दिखाना।

तुलापरीक्षा—संज्ञा स्त्री० [सं०] धर्मयुक्तों की एक परीक्षा जो धर्म-परीक्षा, विष-परीक्षा आदि के समान प्राचीन काल में प्रचलित थी। दोषी या निर्दोष होने की दिव्य परीक्षा।

विशेष—स्मृतियों में तुलापरीक्षा का बहुत ही विस्तृत विधान दिया हुआ है। एक खुले स्थान में यज्ञकाष्ठ की एक बड़ी सी तुला (तराजू) लड़ी की जाली थी और चारों ओर तोरण आदि बांधे जाते थे। फिर मंत्र-पाठ-पूर्वक देवताओं का पूजन होता था और अभियुक्त को एक बार तराजू के पलड़े पर बिठाकर मिट्टी आदि से सौल खेतें थे। फिर उसे बतार कर दूसरी बार सौलतें थे। यदि पलड़ा कुछ मुक्त जाता था तो अभियुक्त को दोषी समझते थे।

तुलापुरुषरुचक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का व्रत जिसमें विष्याक (तिल की लली), भात, मट्ठा, जल और सत्तु इनमें से प्रत्येक को क्रमशः तीन तीन दिन तक खाकर पंद्रह दिनों तक रहना पड़ता है। यम ने इसे २१ दिनों का तत्र लिखा है। इसका पूरा विधान पाञ्चवक्य, हारीत आदि स्मृतियों में मिलता है।

तुलापुरुषदान—संज्ञा पुं० दे० "तुलादान"।

तुलाबीज—संज्ञा पुं० [सं०] गुंजाबीज। सुँघची के बीज जो सौल के काम में आते हैं।

तुलाभवानी—संज्ञा स्त्री० [सं०] शंकरादिविग्रह के अनुसार एक नदी और नगरी का नाम।

तुलामान—संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह शंदाज या मान जो सौलकर किया जाय। (२) घाट। बटवारा।

तुलायंत्र—संज्ञा स्त्री० [सं०] तराजू।

तुलाया—संज्ञा पुं० [सं०] तुलना। वह लकड़ी जिसके बल गाड़ी खड़ी करके घुरी में सेल दिया जाता है और पहिया निकाला जाता है। वह लकड़ी जिसके सहारे रींगते समय गाड़ी खड़ी की जाती है।

तुलि—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) तुलाहों की लूँची। (२) चित्र बनाने की लूँची।

तुलिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] खंजन की तरह की एक छोटी चिट्ठीया।

तुलित—वि० [सं०] (१) तुला हुआ। (२) बराबर। समान।

तुलिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] शाकमजी वृक्ष। सेमर का पेड़।

तुलिफला—संज्ञा स्त्री० [सं०] सेमर का वृक्ष।

तुली—संज्ञा स्त्री० दे० "तुलि"।

तुंसा स्त्री० [सं०] तुला। छोटी तराजू। काँटा।

† तुंसा स्त्री० [सं०] तुंसा। तुलसी।

तुल्य—संज्ञा पुं० [सं०] दक्षिण के एक प्रदेश का प्राचीन नाम जो सम्राट और समुद्र के बीच में माना जाता था। आजकल इस प्रदेश को उत्तर कनाड़ा कहते हैं।

तुलूठी—संज्ञा स्त्री० [सं०] तुलूक। रौंघी हुई धार जो कुछ दूर पर जाकर बड़े (मैले, पेशाब की)।

किं० प्र०—बैधाना।

तुल्य—वि० [सं०] (१) समान। बराबर। (२) सदृश।

तुल्यता—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) बराबरी। समता। (२) सादर्य।

तुल्यपान—संज्ञा पुं० [सं०] स्वजाति के लोगों के साथ मिल जुल कर खाना पीना।

तुल्यप्रधानव्यंग्य—संज्ञा पुं० [सं०] वह व्यंग्य जिसमें धार्थ्य और व्यंग्यता बराबर हो।

तुल्ययोगिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक अलंकार जिसमें कई प्रस्तुतों या अर्थप्रस्तुतों का अर्थोद् बहुल से उपमेयों या उपमानों का एक ही धर्म बतलाया जाय। उ०—(क) अपने रँग के जानि कै जीवन नृपति प्रवीन। स्तन, मन, नैन, नितंब को बड़ो हज़ारफा कीन।—विहारी। यहाँ स्तन, मन, मन, नितंब इन प्रसिद्ध उपमेयों का 'हज़ारफा होना' एक ही धर्म कहा गया है। (ख) लखि तेरी सुकमारता पूरी। या जग माहिं। कमल, गुलाब कठोर से किहि को भासत नाहिं। यहाँ कमल और गुलाब इन दोनों उपमानों का एक ही धर्म कठोरता कहा गया है।

तुल्ययोगी—वि० [सं०] समान संबंध रखनेवाला।

तुल्यल—संज्ञा पुं० [सं०] एक श्राप का नाम।

तुय—सर्व० दे० "तव"।

तुवर—वि० [सं०] (१) कसैला। (२) बिना दाढ़ी मोक्ष का। रमझहीन।

संज्ञा पुं० [सं०] (१) कसैला रस। कपाय रस। (२) भर-हर। (३) एक बीधा जो नदियों और समुद्र के तट पर होता है। इसके फल हमली के समान होते हैं जिनके खाने से पशुओं का वृष बढ़ता है।

तुवरयावनाल—संज्ञा पुं० [सं०] छाल ज्वार। लाल लुँहरी।

तुवरिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) गोपीचंदन। (२) झाड़की। धारहर।

तुवरी—संज्ञा स्त्री० दे० "तुवरिका"।

तुषरीर्षा—संज्ञा पुं० [सं०] चकंबड़ का पेड़। पेंवार।

तुवि—संज्ञा स्त्री० [सं०] लूँची।

तुदियार—संज्ञा पुं० [सं०] एक भाड़ जो पश्चिम हिमालय में होता है। इसकी छाल से रसियाँ बनाई जाती हैं। पुल्नी।

तुप—संज्ञा पुं० [सं०] (१) अन्न के ऊपर का झिलका। (२) भूरी। (३) अंडे के ऊपर का झिलका। (३) बहेड़े का पेड़।

तुपग्रह—संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि।

तुपायु—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की काँजी जो भूमी सहित बड़े हुए औ को सड़ा कर बनती है। वैद्यक में यह काँजी, अग्निदीपक, पाचक, हृदयवादी और तीक्ष्ण मानी गई है।

तुपानल—संज्ञा पुं० [सं०] (१) भूमी की भाग। घास घूस की भाग। करमी की भाग। (२) भूमी या घास घूस की भाग

में भस्म होने की क्रिया जो प्रायश्चित्त के लिये की जाती है। (कुमारिल भट्ट तुपामि ही में भस्म होकर मरे थे)।

तुपार-संज्ञा पुं० [सं०] (१) हवा में मिली भाप जो सरदी से जम कर और सूषम जलकण के रूप में हवा से अलग हो कर गिरती और पदार्थों पर जमती दिखाई देती है। पाखा। (२) हिम। धार। (३) एक प्रकार का कपूर। चीनिया कपूर। (४) हिमालय के उत्तर का एक देश जहाँ के घेड़े प्रसिद्ध थे। (५) तुपार देश में बसनेवाली जाति जो शक जाति की एक शाखा थी।

वि० छूने में बरफ़ की तरह ठंडा।

तुपारकर-संज्ञा पुं० [सं०] हिमकर। चंद्रमा।

तुपारगौर-संज्ञा पुं० [सं०] कपूर।

तुपारमूर्च्छि-संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा।

तुपाररहिम-संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा।

तुपारपापाख-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शैला। (२) बरफ़।

तुपारांशु-संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा।

तुपारादि-संज्ञा पुं० [सं०] हिमालय पर्वत।

तुपित-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार के गणदेवता जो संख्या में १२ हैं। मन्वन्तों के अनुसार इनके नाम बदला करते हैं। (२) विष्णु। (३) एक स्वर्ग का नाम। (बौद्ध)

तुपोत्थ-संज्ञा पुं० दे० "तुपोदक"।

तुपोदक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) छिन्नके समेत बूटे हुए जल के पानी में सड़ा कर बनाई हुई काँजी। (२) भूमी को सड़ा कर खड़ा किया हुआ जल।

तुष्ट-वि० [सं०] (१) तोपमास। वृष। (२) राश्री। प्रसन्न। सुख।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

तुष्टता-संज्ञा स्त्री० [सं०] संतोष। प्रसन्नता।

तुष्टना*—क्रि० अ० [सं०] तुष्ट प्रसन्न होना। ३०—(क) अणुपरकर्म तुष्टत चिपकाला। प्रेम ते प्रगत होत ततकाला।—विश्राम। (ख) नाम लेह जेहि युवति को नहि सुहाइ सुनि तासु। राम जानकी के कहे तुष्टत तेहि पर आसु।—विश्राम।

तुष्टि-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) संतोष। वृत्ति। (२) प्रसन्नता।

विशेष—संतोष में नौ प्रकार की तुष्टियाँ मानी गई हैं, चार आध्यात्मिक और पाँच बाह्य। आध्यात्मिक तुष्टियाँ ये हैं—(१) प्रकृति—आत्मा को प्रकृति से भिन्न मान सब कार्यों का प्रकृति द्वारा होना मानने से जो तुष्टि होती है उसे प्रकृति या अंग तुष्टि कहते हैं। (२) इषादान—संन्यास से विवेक होता है ऐसा समझ संन्यास से जो तुष्टि होती है उसे इषादान या सखिल तुष्टि कहते हैं। (३) काल पाकर आपही विवेक या मोक्ष प्राप्त हो जायगा इस प्रकार की तुष्टि

को काल तुष्टि या मोक्ष तुष्टि कहते हैं। (४) भाग्य में होगा तो मोक्ष हो ही जायगा ऐसी तुष्टि को भाग्य तुष्टि या वृष्टि तुष्टि कहते हैं।

दूसी प्रकार इन्द्रियों के विषयों से चिरिक द्वारा जो तुष्टि होती है वह पाँच प्रकार से होती है, जैसे, यह समझने से कि (१) अन्नं करने में बहुत कष्ट होता है, (२) खा करना और कठिन है, (३) विषयों का नाश हो ही जाता है, (४) ज्यों ज्यों भोग करते हैं त्यों त्यों हृच्छा पवती जाती है और (५) बिना दूसरे को कष्ट दिए सुख नहीं मिल सकता। इन पाँचों के नाम क्रमशः पार, सुपार, पारापार, अनुत्तमोम और वत्तमोम हैं।

इन नौ प्रकार की तुष्टियों के विषयय्य से बुद्धि की अशक्ति उत्पन्न होती है। दे० "अशक्ति"।

(३) कंस के आठ भाइयों में से एक।

तुस्त-संज्ञा पुं० दे० "तुप"।

तुसार-संज्ञा पुं० दे० "तुपार"।

तुसो-संज्ञा स्त्री० [सं० तुस] भूमी। अन्न के ऊपर का झिलका। ३०—पेसी को ठाली बेडी है तोसो बूँद पिरावै। भूडी बात सुसी सी विनु कन कटक हाथ न धावै।—सूर।

तुस्त-संज्ञा स्त्री० [सं०] धूल। गर्द।

तुहफ़ा-संज्ञा पुं० दे० "तोहफ़ा"।

तुहमत-संज्ञा स्त्री० दे० "तोहमत"।

तुहारा-सर्व० दे० "तुहारा"।

तुहि-सर्व० [हिं० तु+हि (अप०)] तुमको।

तुहिन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पाला। कुदरा। तुपार। (२) हिम। बरफ़। (३) चंद्रतेज। चाँदनी। (४) शीतलता। ठंडक।

तुहिनगिरि-संज्ञा पुं० [सं०] हिमालय पर्वत।

तुहिनधु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चंद्रमा। (२) कपूर।

तुहो-सर्व० दे० "तुहो"।

तू-सर्व० दे० "तू"।

तूगी-संज्ञा स्त्री० [दे०] (१) पृथ्वी। भूमि। (२) नाव। नौका।

तूचड़ा-संज्ञा पुं० दे० "तूँचा"।

तूबना-क्रि० स० दे० "तूबना"।

तूँचा-संज्ञा पुं० [सं० तुम्बक] (१) कटुषा गोल कद्दू। कटुषा गोल कीया। तितलीकी।

विशेष—इस कद्दू को खोलकर करके कई काम में धाते हैं, पातन बनाते हैं सितार आदि बाजों में ध्वनिकरा बनाने के लिये लगाते हैं।

(२) कद्दू को खोलकर करके बनाया हुआ बरतन जिसे पायः साधु अपने साथ रखते हैं। कर्मदल।

दूँधी-संज्ञा स्त्री० [हिं० दूँहा] (१) कद्दुआ गोल कद्दू। (२) कद्दू को धोखासा करके बनाया हुआ चरतन।

मुहा०—दूँधी लगाना = वात से पीड़ित या रुजे हुए रथान पर रक्त या वायु को खींचने के लिये दूँधी का व्यवहार करना। (दूँधी के भीतर एक बची जलाकर रख दी जाती है जिससे भीतर की वायु हलकी पड़ जाती है। फिर जिस थंग पर उसे लगाना होता है उस पर शरीर की एक पतली छोटी रख कर उसके ऊपर दूँधी खलट कर रखा देते हैं जिससे उस थंग के भीतर की वायु दूँधी में खिंच आती है। यदि कुछ रक्त भी निहालना होता है तो उस स्थान को जिस पर दूँधी लगानी होती है भरकर से पाई देते हैं)।

दूँध-सर्व० [सं० ध्वन्] एक सर्वनाम जो वस पुरुष के लिये आता है जिसे संशोधन करके कुछ कहा जाता है। मध्यमपुरुष एक बचन सर्वनाम। जैसे, तू यहाँ से चला जा।

विशेष—यह शब्द अशिष्ट सम्भवा जाता है। धतः, इसका व्यवहार बड़ों और बराबरवालों के लिये नहीं होता, छोटेों वा नीचों के लिये होता है।

मुहा०—तू तड़ाक, तू तुकार, या तू तू मैं मैं करना = कद्दू सुनी करना। अशिष्ट शब्दों में विवाद करना। गाली गलतान करना। कुवाच्य कहना।

संज्ञा स्त्री० [ध्रु०] कुत्तों को बुलाने का शब्द, जैसे, "आव तू...तू..."।

तूख |—संज्ञा पुं० [सं० तुप = तिनका] तिनके का वह टुकड़ा जिसे गोद कर दोना बनाते हैं। सँक। छरका। उ०—छुवावति न दुर्दि, खुद नाहक ही "नाहीं" कदि, नाह गल माहें बाहें मेलै सुरस्वर सी। सीकीं दीडि तूप सी, पवूप सी, शरिरी थंग, ऊळ सी मकरि मुख लागति महूख सी।—देव।

तूटना-कि० अ० दे० "टूटना"।

तूटना-कि० अ० [सं० तुट, भा० टुट] (१) टुट होना। संतुट होना। तूट होना। अधाना। (२) प्रसन्न होना। राती होना।

तूथ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) तीर रखने का धौंग। तरकर। (२) धामर सामक वृत्त का नाम।

तूथशेवड़-संज्ञा पुं० [सं०] बाण। तीर।

दूँधो-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) तरकर। निरंग। (२) नील का पौधा। (३) एक वात रोग जिसमें मूत्राशय के पास से दर्द बढ़ता है और शुद्ध और पेड़ तक फैलता है।

वि० [सं० तूकिन्] वृणधारी। जो तरकर लिप हो।

संज्ञा पुं० [?] तुन का पेड़।

दूँधो-संज्ञा पुं० [सं०] तुन का पेड़।

दूँधी-संज्ञा पुं० [सं०] दूँध। निरंग। तरकर।

तूत-संज्ञा पुं० [फा०] एक पेड़ जिसके फल खाए जाते हैं। यह पेड़ मसोले आकार का होता है। इसके पत्ते फावले के पत्तों से मिलते जुलते, पर कुछ लंबोतरे और मोटे दल के होते हैं। किसी किसी के सिरे पर फांके भी कटी होती हैं। फूल मंजरी के रूप में लगते हैं जिनसे आगे चबकर कीड़ों की तरह लंबे लंबे फल होते हैं। इन फलों के ऊपर महीन महीन दागे होते हैं जिन पर रोड़ियाँ सी होती हैं। इनके कारण फलों की आकृति और भी कीड़ों की सी जान पड़ती है। फलों के भेद से तूत कई प्रकार के होते हैं किसी के फल छोटे और गोल, किसी के लंबे, किसी के बरे, किसी के छाल या काले होते हैं। मीठी जाति के तूत तूत को शहदूत कहते हैं। तूत युरोप और अशिया के अनेक भागों में होता है। भारतवर्ष में भी तूत के पेड़ प्रायः सर्वत्र—कारमीर से सिक्किम तक—पाए जाते हैं। अनेक स्थानों में, विशेषतः पंजाब और कारमीर में, तूत के पेड़ों की पत्तियों पर रेशम के कीड़े पाए जाते हैं। रेशम के कीड़े उनकी पत्तियों को खाते हैं। तूत की लकड़ी भी बजनी और मजबूत होती है और खेती और सजावट के सामान, नाव आदि बनाने के काम में आती है। तूत शिशिर शब्द में पत्ते झड़ता है और चैत तक फूलता है। इसके फल असाढ़ में पक जाते हैं।

तूती-संज्ञा स्त्री० [फा०] (१) छोटी जाति का शुक या तोता जिसकी धोच पीली, गरदन बैंगनी और पर बरे होते हैं। (२) कनरी नाम की छोटी सुंदर चिड़िया जो कनारी द्वीप से आती है और बहुत शच्छा पोखती है। इसे लोग पिंजों में पाखते हैं। (३) मटमले रंग की एक छोटी चिड़िया जो बहुत सुंदर बोलती है। इसे लोग पिंजों में पाखते हैं। जाड़े में यह सारे भारत में पाई जाती है पर गरमी में उच्च कारमीर, तुर्किस्तान आदि की ओर चली जाती है। यह घास घूस से फटोरे के आकार का धोखासा बना कर रहती है।

मुहा०—तूती का पड़ना = तूती का मंठि सुर में शेलना। किसी की तूती बोलना = किसी की लूट चतनी होना। किसी का लूट प्रभाव जमाना। तक्करवाने में तूती की आवाज़ कौन सुनता है = (१) बहुत मीठे माड़ या शोरगुल में कहीं हुई बात नहीं सुनाई पड़ती। (२) बड़े बड़े लोगों के सामने छोटी की बात कोई नहीं सुनता। (३) सुंदर बोलने का एक प्रकार का धामा या खिलौना। (४) मिठी की छोटी टोंटीदार धरिया जिसे बहुत से खेजते हैं।

तूद-संज्ञा पुं० दे० "तूत"।

तूदा-संज्ञा पुं० [फा०] (१) डेर। डेरी। राशि। (२) सीमा का चिह्न। दहबंदी। (३) मिठी का वह टीला जिसपर तीर, बंदूक आदि से निशाना लगाना सीखा जाता है।

तून-संज्ञा पुं० [सं० तुन्नक] (१) तून का पेड़। दे० "तून"। (२)

बूल नाम का बाल कपड़ा।

*संज्ञा पुं० दे० "तूण"।

तूना-क्रि० अ० [हिं० चूना] (१) चूना। टपकना। (२) खड़ा न रह सकना। गिरना। (३) गर्भपात होना। गर्भ गिरना।

विशेष-दे० "तुयना"।

तूनोर-संज्ञा पुं० दे० "तूमीर"।

तूफान-संज्ञा पुं० [फ०] (१) हुवानेवाली बाढ़। (२) वायु के वेग का उपद्रव। आंधी। ऐसा श्रंथड़ जिसमें खूब धूल उड़े, पानी बरसे, बादल गरजें तथा हस्ती प्रकार के और उलटा हों।

क्रि० प्र०—थाना।—उठना।

(१) आपत्ति। हैति। प्रलय। आफत। (४) हलामुछा। वायँला। (५) ऋगड़ा। बखेड़ा। उपद्रव। रंगा फुलाद। हलचल। जैसे, थोड़ी सी बात के लिये इतना तूफान खड़ा करने की क्या जरूरत ?

क्रि० प्र०—उठाना।—खड़ा करना।

(६) ऐसा कलंक या दोषारोपण जिससे कोई भारी उपद्रव खड़ा हो। मूला दोषारोपण। तोहमत।

क्रि० प्र०—उठना।—उठाना।

मुहा०—तूफान जोड़ना या र्थचना=झुटा कलंक लगाना। झूठ मूठ दोषारोपण करना। तूफान बनाना=दे० "तूफान जोड़ना"।

तूफानी-वि० [फा०] (१) तूफान खड़ा करनेवाला। ऊचमी। उपद्रवी। बखेड़ा करनेवाला। फुसादी। (२) मूला कलंक लगानेवाला। तोहमत जोड़नेवाला। (३) उग्र। प्रचंड।

तूमड़ी-संज्ञा स्त्री० [दे० तूँडा + डी (भय०)] (१) तूँडी। (२) तूँडी का बना हुआ एक प्रकार का बामा जिसे संपेरे धनाया करते हैं।

विशेष-तूँडी का पल्ला सिरा थोड़ी दूर से काट देते हैं और नीचे की ओर एक छेद करके उसमें दो क्षीर्णियाँ दो पत्तियों नलियों में धना कर ढाख देते हैं और छेद को मोम से बंद कर देते हैं। नलियों का कुछ भाग बाहर निकला रहता है। एक नली में स्वर निकालने के सात छेद बनाते हैं जिन पर बजाते वक्त उँगलियाँ रखते जाते हैं।

तूमतड़ाक-संज्ञा स्त्री० [फा०] (१) तड़क भड़क। शान शौकत। शान शान। (२) ठसक। बनावट।

तूमना-क्रि० सं० [सं० तूमि = दे + ना (प्रत्य०)] (१) रुई आदि के जमे हुए लच्छों को मोच मोच कर छुड़ाना। उँगली से रुई इस प्रकार र्थचना कि इसके रेशे अलग अलग हो जायँ। रुई के गाले के सटे हुए रेशों को कुछ अलग अलग करना। उधेड़ना।

विपूरना। (२) धज्जी धज्जी करना। (३) मलना दलना। हाथ से मसलना। (४) बात को उधेड़ना। रहस्य खोलना। सय भेद प्रकट करना।

तूमरी*—संज्ञा स्त्री० दे० "तूमड़ी"।

तूमार-संज्ञा पुं० [फ०] बात का व्यर्थ विस्तार। बात का बतंगड़। क्रि० प्र०—र्थचना।

तूमारिया सूत-संज्ञा पुं० [हिं० सूतना + यत्] खूब महीन कृता हुआ सूत। ऐसा सूत जो तूमी हुई रुई से काता गया हो।

तूया-संज्ञा स्त्री० [दे०] काली सरसों।

तूर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार का धान। जगारा। उ०—तोरन तूरन तूर धजे भर भावत भांदिन गावति ठाड़ी।—केशव। (२) तुहरी नाम का धान। सिंघा।

संज्ञा स्त्री० [फा० तूर = संवर्द] (१) गड़ डेढ़ गड़ लंबी एक लकड़ी जो जुआणों के करघे में लगी रहती है और जिसमें तानी लपेटी जाती है। इसके दोनों सिरों पर दो चूर और चार छेद होते हैं। लपेटनी। कनियांला। (२) वह रस्ती जिसे जनानी पालकी के चारों ओर इसलिये धाँघते हैं जिसमें परदा हवा से उड़ने न पावे। चौबंदी।

संज्ञा स्त्री० [सं० तुवरी] अरहर।

तूरज*—संज्ञा पुं० दे० "तूर"।

तूरण*—क्रि० वि० दे० "तूर्य"।

तूरत-संज्ञा पुं० [दे०] एक प्रकार का पत्ती।

तूरन*—संज्ञा पुं० दे० "तूर्य"।

तूरना-संज्ञा पुं० [दे०] एक चिट्ठिया का नाम।

क्रि० सं० दे० "तोड़ना"। उ०—संघु सतावत हैं अम को हैं कठोर महा सखको मद तूरत।—शंभु।

* संज्ञा पुं० [सं० तूर] तुहरी। उ०—साकत सराध के निवाह है उग्रह कछु डोखि लोल चूकत सयद कोल तूरना।—तुलसी।

तूरान-संज्ञा पुं० [फा०] फारस के उत्तर-पूर्व-पड़नेवाला मध्य एशिया का सारा भूभाग जो तुर्क, तातारी, मोगल आदि जातियों का निवासस्थान है। हिमालय के उत्तर अस्टाई पर्वत तक का प्रदेश।

विशेष—फारस या ईरानवालों का तूरानियों के साथ बहुत प्राचीन काल से झगड़ा चला आता था। यह तूरानी जाति यही थी जिसे भारतवासी शक कहते थे। अफ़्ग़ानिस्तान नामक तूरानी बादशाह से ईरानियों का युद्ध होना प्रसिद्ध है। प्राचीन तूरानी अग्नि की उपासना करते थे और पशुओं का बलि चढ़ाते थे। ये आर्यों की अपेक्षा अल्पधर्म थे। इनके उपासकों से एक बार सारा युरोप और एशिया तंग था। चनेन खान, तैमूर, अबमान आदि वसी तूरानी जाति के शतमंत थे।

त्रानी-वि० [षा०] त्रान देश का । त्रान संपंधी ।
 संज्ञा पुं० त्रान देश का निवासी ।
 त्री-संज्ञा स्त्री० [सं०] धतुरे का पेड़ ।
 त्र्यं-क्रि० वि० [सं०] शीघ्र । जल्दी । तुरंत ।
 त्र्यंशु-संज्ञा पुं० [सं०] सुश्रुत के अनुसार एक प्रकार का चावल जिसे धरितक भी कहते हैं ।
 त्र्यं-क्रि० वि० [सं०] तुरत । तत्काल । शीघ्र ।
 त्र्यं-संज्ञा पुं० [सं० त्र्यं] त्रहरी । सिंघा ।
 त्र्यं-क्रि० वि० [सं०] तुरत । शीघ्र ।
 त्र्यं-संज्ञा पुं० [सं०] (१) आकाश । (२) तृत् का पेड़ । शहतूत ।
 (३) कपास, मदार, सेमर, धादि के छोटे के भीतर का वृक्ष ।
 रुई । ३०—(क) जेदि भादतगिरि मेह बड़ाईं । कइतू तूल केदि खेले माहीं—तुलसी । (ख) ध्याकुल फिरत भवन वन जहँ तहँ तूल धाक उधराह—सूर ।
 संज्ञा पुं० [हिं० तूल = एक पेड़ जिसके फूलों से कपड़े रंगे जाते हैं] (१) तृती कपड़ा जो चटकीले लाल रंग का होता है ।
 (२) गहरा लाल रंग ।
 वि० [सं० तुल्य] तुल्य । समान । ३०—तदपि सकेच समेत कवि कहहिँ सीय सम तूल ।—तुलसी ।
 तूलत-संज्ञा स्त्री० [हिं० तुलना] जहाज की रेखिंग या कटहरे की छड़ में लगी हुई एक खूटी जिसमें किसी उतारे जानेवाले भारी बोझ में बँधी रखी इसलिये छूटका दी जाती है जिसमें बोझ धीरे धीरे नीचे जाय, एकदम से न गिर पड़े । (काश०)
 तूलता-संज्ञा स्त्री० [सं० तुलना] समता । बराबरी ।
 तूलना-क्रि० सं० [हिं० तुलना] (१) धुरी में तेल देने के लिये पहिये को निकाल कर गाड़ी को किसी लकड़ी के सहारे पर उठारना । (२) पहिये की धुरी में तेल या चिकना देना ।
 तूलवती-संज्ञा स्त्री० [सं०] नील ।
 तूलवृक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] श्यामली वृक्ष । सेमर का पेड़ ।
 तूलवर्करा-संज्ञा स्त्री० [सं०] कपास का बीज । बिनाला ।
 तूलसेवन-संज्ञा पुं० [सं०] रुई से सूत कातने का काम ।
 तूला-संज्ञा स्त्री० [सं०] कपास ।
 तूलिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] चित्रकारों की हूँची जिससे वे रंग भरते हैं । तसवीर बनानेवालों की कलम ।
 तूलेनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) लघुमय कंद । (२) सेमर का पेड़ ।
 तूलिफला-संज्ञा स्त्री० [सं०] सेमर का पेड़ ।
 तूली-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) नील का वृक्ष । (२) रंग भरने की हूँची । (३) लकड़ी का एक औजार जिसमें हूँची के रूप में खड़े खड़े रंगे जमाए रहते हैं और जिससे शुद्धादे फैलाया हुआ सूत बीतते हैं । जूनाहों की हूँची ।
 तूलर-संज्ञा पुं० दे० "तूलरक" ।
 तूलरक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) हूँचा पैल । विना सींग का पैल ।

(२) ये दाढ़ी मोड़ का मनुष्य । (३) कपास रस । कलैका रस । (४) धरहर ।
 तूलरिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) धरहर । (२) गोपीचंदन ।
 तूलरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) धरहर । (२) गोपीचंदन ।
 तूलपी-वि० [सं० तूलपीम् (पथ्य०)] मौन । सुप ।
 * संज्ञा स्त्री० मौन । खामोशी । सुपनी । ३०—बंधकता, धरमान, शतान, छलाम मुजंग भयानक तूलपी ।—केशव ।
 तूलपीक-वि० [सं०] मौनावलंबी । मौन साधनेवाला ।
 तूल-संज्ञा पुं० [सं० तूप] भूसी । भूसा ।
 संज्ञा पुं० [तिपत्ती = योग] [वि० तूली] (१) एक प्रकार का बहुत उच्चम ऊन जो हिमालय पर कारमीर से लेकर नेपाल तक पाई जानेवाली एक पहाड़ी बकरी के शरीर पर होता है । पराम । परामीना ।
 विशेष—यह पहाड़ी बकरी हिमालय पर बहुत ऊँचाई तक, बर्फ के निकट तक, पाई जाती है । यह ठंडे से ठंडे स्थानों में रह सकती है और कारमीर से लेकर मध्य एशिया में छलटाईं पर्वत तक मिलती है । इससे शरीर पर घने घने मुलायम रेशों की बड़ी मोटी तह होती है जिसके भीतरी ऊन को कारमीर में असली तूल या पराम कहते हैं । यह दुसरावों में दिया जाता है । खालिस तूल की भी शाख बनती है जिसे तूली कहते हैं । ऊपर के ऊन या रोपू से या तो रस्सियाँ बटी जाती हैं या पट्टे नाम का कपड़ा बुना जाता है । तूलवाली बकरियाँ खड़ाबू में आड़े के दिनों में बहुत उतरती हैं और मारी जाती हैं ।
 (२) तूल के ऊन का जमाया हुआ कंबल या जमड़ा ।
 तूलदान-संज्ञा पुं० [पुं० कारदग + दान (पथ०)] कारदूस ।
 तूलना *—क्रि० सं० [सं० तुट] (१) संतुष्ट करना । तूल करना ।
 (२) प्रसन्न करना ।
 किं० अ० संतुष्ट होना ।
 तूला-संज्ञा पुं० [सं० तूप] वोकर । भूसी ।
 तूली-वि० [सं०] तूल के रंग का । खेले या करंज के रंग का । करंजई ।
 संज्ञा पुं० एक रंग जो करंज या खेले के रंग की तरह का होता है ।
 विशेष—यह हरा, मांगुल्य और कलीस से बनता है ।
 तूलत-संज्ञा पुं० [सं०] (१) धूल । रेत । रम । (२) अणु । कणिका । (३) जटा । (४) चाप । धनुष ।
 तूलत-संज्ञा पुं० [सं०] करणध्वनि ।
 तूलका-संज्ञा पुं० [सं०] एक ध्वनि का नाम ।
 तूल-संज्ञा पुं० [सं०] जातीफल । जायफल ।
 तूला-संज्ञा स्त्री० दे० "तूला" ।

तृजग *—वि० दे० "तिर्य्यक" । उ०—तृजग जेनि गत गीष जनम भरि खाइ कुजंतु गियो हें ।—तुलसी ।

तृण—संज्ञा पुं० [सं०] (१) यह इदुभिदु जिसकी पेड़ी या कांड में छिलके और हीर का भेद नहीं होता और जिसकी पत्तियों के भीतर केवल समानांतर (प्रायः लंबाई के बल) नसें होती हैं जाल की तरह बुनी हुई नहीं, जैसे, दूध, कुआ, सरपत, सूँज, बाँस, ताड़ हत्यादि। घास । उ०—ऊसर बरसे तृण नहिं जामा ।—तुलसी ।

विदोष—तृण की पेड़ी या कांडों के तंतु इस प्रकार सीधे क्रम से नहीं बँधे रहते कि उनके द्वारा संबद्धांतरगत संबद्ध बनते जायँ, बल्कि वे बिना किसी क्रम के इपर उधर तिरछे होकर ऊपर की ओर गए रहते हैं। अधिकांश तृणों के कांडों में प्रायः गठि योड़ी योड़ी दूर पर होती हैं और इन गठियों के बीच का स्थान कुछ पोला होता है। पत्तियाँ धपने मूल के पास उँचल को सोली की तरह लपेटे रहती हैं। पृथ्वी का अधिकांश तल छोटे तृणों द्वारा आच्छादित रहता है। शकं-प्रकाश नामक वैद्यक ग्रंथ में तृणगण के अंतर्गत तीन प्रकार के बाँस, कुआ, काँस, तीन प्रकार की दूध, गाँवर, नरकट, सूँधी, सूँज, डाम, मोघा हत्यादि माने गए हैं ।

मुहा०—तृण गहना या पकड़ाना = हीनता प्रकट करना । गिड़-गिड़ाना । तृण गहाना या पकड़ाना = नम्र करना । विनीत करना । यशोभूत करना । उ०—कहाँ तो ताके तृण गहाय के जीवत पायन पारों ।—सूर । (किमी वस्तु पर) तृण दूटना = किमी वस्तु का इतना सुंदर होना कि उसे नजर से बचाने के लिये उपाय करना पड़े । (छियाँ बघे पर से नजर का प्रभाव दूर करने के लिये टोटेके की तरह पर तिनका तोड़ती है) । उ०—भाऊ की घानिक पै तृण दूटत है कहीं न जाय कछु स्याम तोहि रत ।—सा० हरिदास । तृणवत् = तिनके बराबर । श्रयंत वृक्ष । कुछ भी नहीं । तृण बराबर या समान = दे० "तृणवत्" । उ०—घस कहि चला महा अभिमान्नी । तृण समान सुभीबहिं जानी ।—तुलसी । तृण तोड़ना = किमी सुंदर वस्तु का देख उसे नजर से बचाने के लिये उपाय करना । उ०—(क) गाँधे महामनि मौर मंजुल अंग सब चित्त चोरहीं । पुरनारि सुर सुंदरी धरहिं विलोकि सब तृण तोरहीं ।—तुलसी । (ख) स्याम गौर सुंदर दोष जेरी । निरलत दुवि जननी नून तोरी ।—तुलसी । (किसी से) तृण तोड़ना = संबंघ तोड़ना । नाश मिटाना । उ०—सुजा छुकाइ तोरि तृण ज्यों दिव करि प्रभु निदुर दियो ।—सूर ।

तृणकर्म—संज्ञा पुं० [सं०] एक ऋषि ।
 तृणकर्म—संज्ञा पुं० [सं०] एक सुगंधित घास । रोहिस घास ।
 तृणकूर्म—संज्ञा पुं० [सं०] गोल कर्तू ।
 तृणकैतकी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का तीसुर ।

तृणकैतु—संज्ञा पुं० दे० "तृणकैतुक" ।
 तृणकैतुक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) बाँस । (२) ताड़ का पेड़ ।
 तृणप्रंथी—संज्ञा स्त्री० [सं०] स्वर्णजीवन्ती ।
 तृणप्राही—संज्ञा पुं० [सं०] तृणप्राहिन् । एक रत्न का नाम । नील-मणिय ।
 तृणचर—वि० [सं०] तृण चरनेवाला (पशु) ।
 संज्ञा पुं० गोमेदक मणिय ।

तृणजलायुका—संज्ञा पुं० दे० "तृणजलौका" ।
 तृणजलौका—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की जोक ।
 तृणजलौकान्याय—संज्ञा पुं० [सं०] तृणजलौका के समान ।

विदोष—इस वाक्य का प्रयोग नैयायिक लोग उस समय करते हैं जब उन्हें धामा के एक शरीर छोड़ कर दूसरे शरीर में जाने का दृष्टांत देना होता है । तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार जोक जल में बहते हुए तिनके के अंत तक पहुँच जब दूसरा तिनका धाम लेती है तब पहले को छोड़ देती है इसी प्रकार धामा जब दूसरे शरीर में जाती है तब पहले को छोड़ देती है ।

तृणज्योतिस्—संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिष्मती ज्ञता ।
 तृणद्रुम—संज्ञा पुं० [सं०] (१) ताड़ का पेड़ । (२) सुपारी का पेड़ । (३) खजू का पेड़ । (४) केतकी का पेड़ । (५) पारियल का पेड़ । (६) हिंताल ।
 तृणधान्य—संज्ञा पुं० [सं०] (१) तिथी का चावल । मुख्यतः तिथी का धान । (२) सार्व ।

तृणध्वज—संज्ञा पुं० [सं०] (१) बाँस । (२) ताड़ का पेड़ ।
 तृणनिष—संज्ञा पुं० [सं०] चिरायता ।
 तृणप—संज्ञा पुं० [सं०] एक गंधर्व का नाम ।
 तृणपत्रिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] इक्षुदर्भ नामक तृण ।
 तृणपीड—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की लफाई ।
 तृणपुष्प—संज्ञा पुं० [सं०] (१) तृणकेदार । (२) अंभियसी । गदिबन ।

तृणपुष्पी—संज्ञा स्त्री० [सं०] सिंदूरपुष्पी नामक घास ।
 तृणमय—वि० [सं०] [स्त्री०] तृणमयी । घास का घना हुआ ।
 तृणराज—संज्ञा पुं० [सं०] (१) खजू । (२) ताड़ । (३) नारियल ।
 तृणविंदु—संज्ञा पुं० [सं०] एक ऋषि जो महाभारत के काल में थे और जिनसे पांडवों से वनवास की धवस्था में भेंट हुई थी ।
 तृणशय्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] घास का बिड़ौना । चटाई । साधरी ।
 तृणशीत—संज्ञा पुं० [सं०] (१) रोहिस घास जिसमें से नीबू की सी सुगंध आती है । (२) जलपिपली ।

तृणशूल—वि० [सं०] बिना तृण का । तृण से रहित ।
 संज्ञा पुं० (१) मल्लिका । (२) केतकी ।
 तृणशूली—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक जता का नाम ।

तृणशोषक-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का सर्प ।
 तृणसारा-संज्ञा धी० [सं०] कदली । केला ।
 तृणस्पशा परीपह-संज्ञा पुं० [सं०] दूर्मादि कठोर तृणों को विद्धा कर लेटने और उनके गड़ने की पीड़ा को सहने की क्रिया । (जैन) ।
 तृणाम्बु-संज्ञा पुं० [सं०] सबण तृण । मोनिया । अमलोनी ।
 तृणारवि न्याय-संज्ञा पुं० [सं०] तृण और अरणी रूप स्वतंत्र कारणों के समान व्यवस्था ।
 त्रिदोष-संज्ञा के उत्पन्न होने में तृण और अरणी दोनों कारण तो हैं पर परस्पर निरपेक्ष अर्थात् अलग अलग कारण हैं । अरणी से प्राग उत्पन्न होने का कारण दूसरा है और तृण में प्राग लगने का कारण दूसरा ।
 तृणायत्त-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चक्रवात । चवंडर । (२) एक दैत्य का नाम जिसे कंस ने मथुरा से श्रीकृष्ण को मारने के लिये भोज्य भेजा था । यह चक्रवात (चवंडर) का रूप धारण कर के धाया था और बालक कृष्ण को कुट्ट कर उड़ा ले गया था । कृष्ण ने ऊपर जाकर जय हुसका गला दबाया तब यह गिर कर पूर चूर हो गया ।
 तृणोद्भू-संज्ञा पुं० [सं०] ताड़ का पेड़ ।
 तृणोद्भू-संज्ञा पुं० [सं०] बरुना । सागे धागे ।
 तृणोत्तम-संज्ञा पुं० [सं०] उच्चवैल । उत्तम तृण ।
 तृणोद्भव-संज्ञा पुं० [सं०] मुख्य । तिनी धान । पसही ।
 तृणोष्का-संज्ञा धी० [सं०] धास फूस की मगल ।
 तृणोपघ्न-संज्ञा पुं० [सं०] एतुवा ।
 तृतीय-वि० [सं०] तीसरा ।
 तृतीयक-संज्ञा पुं० [सं०] तीसरे दिन अग्नेवाजा उबर । तिजार ।
 तृतीय प्रकृति-संज्ञा धी० [सं०] पुत्र्य और स्त्री के अतिरिक्त एक तीसरी प्रकृतिवाला । नपुंसक । श्रेणिव । हिजड़ा ।
 तृतीय सवन-संज्ञा पुं० [सं०] अग्निहोम आदि यज्ञों का तीसरा सवन जिसे सायं सवन भी कहते हैं । दे० "सवन" ।
 तृतीययांश-संज्ञा पुं० [सं०] तीसरा भाग ।
 तृतीया-संज्ञा धी० [सं०] (१) प्रत्येक पक्ष का तीसरा दिन । सीमा । (२) व्याकरण में करण कारक ।
 तृतीयाश्रम-संज्ञा पुं० [सं०] तीसरा आश्रम । धानप्रत्य ।
 तृतीयोय-वि० [सं०] तृतीय । तीसरे दिसे का हृदय । जिसे किसी संपत्ति का तृतीययांश पाने का स्वत्व हो । (स्मृति)
 तृण-संज्ञा पुं० दे० "तृण" ।
 तृपति-संज्ञा धी० दे० "तृप्ति" ।
 तृपला-संज्ञा धी० [सं०] (१) जला । (२) त्रिफला ।
 तृपिता-वि० दे० "तृप्त" ।

तृप्त-वि० [सं०] (१) तृप्त । अयाया हुआ । जिसकी इच्छा पूरी हो गई हो । (२) प्रसन्न । सुख ।
 तृप्ति-संज्ञा धी० [सं०] (१) इच्छा पूरी होने से प्राप्त याति और आनंद । संतोष । उ०—फिरत वृथा आनन अवनोक्त सूने सदन अजान । तिहिं लाजघ कबहूँ कैसेहूँ तृप्ति न पावन मान ।—सूर । (२) प्रसन्नता । सुखी
 तृप्त-संज्ञा पुं० [सं०] (१) घृत । घी । (२) पुरोडाश । (३) तपक । तृप्त करनेवाला ।
 तृप्ता-संज्ञा धी० [सं०] [वि० तृपित, तृप्य] (१) प्यासा । (२) इच्छा । अग्निशापा । (३) लोभ । जालच । (४) कलिहारी । करियारी ।
 तृप्ताभू-संज्ञा धी० [सं०] पेट में जल रहने का स्थान । बलोम ।
 तृप्ताहु-वि० [सं०] प्यासा । पिपासित । तृपित । तृपत्तं ।
 तृप्तायंत-वि० [सं०] तृप्ताव का वहु०] प्यासा । उ०—तृप्तायंत त्रिभि पाय विपुया ।—तुलसी ।
 तृप्तायान्-वि० [सं०] प्यासा ।
 तृप्तास्थान-संज्ञा पुं० [सं०] बलोम ।
 तृप्ताहा-संज्ञा धी० [सं०] सौंफ ।
 तृपित-वि० [सं०] (१) प्यासा । उ०—तृपित यारि विनु जो तनु ध्यागा । सुप करे का सुधा तड़गा ।—तुलसी । (२) अग्निशापी । इच्छुक ।
 तृपितोत्तर-संज्ञा धी० [सं०] असनपर्था । पटसन ।
 तृप्ता-संज्ञा धी० [सं०] (१) प्राप्ति के लिये आकुल करनेवाली इच्छा । लोभ । जालच । (२) प्यासा ।
 तृप्ताग्नि-संज्ञा पुं० [सं०] पित पापड़ा ।
 तृप्ताहु-वि० [सं०] (१) प्यासा । (२) जालची । लोभी ।
 तें-सं० प्रत्य० [सं० तत् (प्र०)] (१) से । द्वारा । उ०—रज तें रजनी दिन भयो पूरि गयो असमान ।—गोपाल । (२) से (अधिक) । उ०—(क) को अगुं मद मलिन मति मेो तें ।—तुलसी । (ख) मैना सेरे जलज तें है सजन तें अति नाचें ।—सूर । (ग) चपला तें चमकत अति प्यारी कहा करीमी रयामहिं ।—सूर ।
 विशेष—कहाँ कहीं "अधिक" "बहुकर" आदि शब्दों का जोप करके भी "तें" से अपेक्षाकृत अधिक्य का अर्थ निकालते हैं । दे० "सं" ।
 (३) (किसी काव वा स्थान) से । उ०—घौसक तें पिय चित चढ़ी कहे चढ़ीहैं लोहर ।—विहारी ।
 विशेष—दे० "सं" ।
 तेंतरा-संज्ञा पुं० [दे०] बैलगाड़ी में फड़ के नीचे खरी हुई लकड़ी ।
 तेंतालिस-संज्ञा पुं० दे० "तेंतालीस" ।
 तेंतालिसर्वा-वि० दे० "तेंतालीसर्वा" ।

तेतालीस-वि० [सं० निचलारिण, पा० तिचत्तालीस] जो गिनती में ब्यालिस से एक अधिक और चौवालीस से एक कम हो ।
चालीस और तीन ।

उंहा पु० चालीस से तीन अधिक की संख्या जो शंकों में इस प्रकार लिखी जाती है—४३ ।

तेतालीसवाँ-वि [हि० तैतलीस + वाँ] क्रम में तेतालीस के स्थान पर पढ़नेवाला । जिसके पहले ब्यालिस और हों ।

तैतिस-वि०, उंहा पु० दे० “तैतीस” ।

तैतिसवाँ-वि० दे० “तैतीसवाँ” ।

तीस-वि० [सं० त्रयसिण्त्, पा० त्रिसिंत्ति, प्रा० त्रिन्त्सा] जो गिनती में तीस से तीन अधिक हो । तीस और तीन ।

उंहा पु० तीस से तीन अधिक की संख्या जो शंकों में इस प्रकार लिखी जाती है—३३ ।

तीतीसवाँ-वि० [हि० तैतीस + वाँ (त्रय०)] जो क्रम में तीतीस के स्थान पर पड़े । जिसके पहले बत्तीस और हों ।

तेंदुआ-उंहा पु० [दे०] बिल्ली या चीते की जाति का एक पशु जिसके पंजु जो अमीका तथा मुशिया के धने जंगलों में पाया जाता है । बल और भयंकरता आदि में शेर और चीते के बराबर इसी का स्थान है । यह चीते से छोटा होता है और चीते की तरह इसकी गरदन पर भी श्याल नहीं होती । इसकी लंबाई प्रायः चार पाँच फुट होती है और इसके शरीर का रंग कुछ पीलापन लिए भूरा होता है । इसके सारे शरीर पर काले काले गोल धबधे या चित्तियाँ होती हैं । इस जाति का कोई कोई जानवर काले रंग का भी होता है ।

उंहा पु० दे० “तेंदू” ।

तेंदू-उंहा पु० [सं० तेंदुक्] (१) मकोले आकार का एक वृक्ष जो भारतवर्ष, लंका, धरमा और पूर्वी बंगाल के पहाड़ी जंगलों में पाया जाता है । यह पेड़ जब बहुत पुराना हो जाता है तब इसके हीर की लकड़ी मिलाकुल काली हो जाती है । यही लकड़ी आयनूस के नाम से विक्रती है । इसके पत्ते लंबातर, मोकदार, खुदुरे और महबुबे के पत्तों की तरह पर उससे लुकीले होते हैं । इसकी झाल काली होती है जो जलाने से चिड़चिड़ाती है ।

पय्यां०—काजस्कंध । सितारारथ । केंदु । तिंदु । तिंदुल ।

तिंदुकी । नीलसार । अतिसुकक । काजसार ।

(२) इस पेड़ का फल जो नीवू की तरह का हरे रंग का होता है और पकने पर पीला हो जाता और लाया जाता है । वैद्यक में इसके कच्चे फल को लिग्घ, कसैला, हलका, मखरोपक, शीतल, अंसि और घात उत्पन्न करनेवाला और पक्के फल को भारी, मधुर, स्वादु, कफकारी और पित्त,

रक्तरोग और घात का नाशक माना है । (३) तिंघ और पंजाब में होनेवाला एक प्रकार का तरबूत जिसे “दिलपसंद” भी कहते हैं ।

ते-अथ० दे० “तै” ।

† सर्व० [सं० ते]-वे । वे लोग । व०—(क) पलक मयन फनिमनि जेहि भांती । जोगबहिं अननि सकल दिन राती ॥
ते शय फिरत विपिन पदचारी । कंद मूल फल फूल
शहारी ।—तुलसी । (ख) राम कथा के ते अधिकारी ।
जिनके सतसंगति अति प्यारी ।—तुलसी ।

तेहस-वि० दे० “तेहँस” ।

उंहा पु० दे० “तेहँस” ।

तेहसवाँ-वि० दे० “तेहँसवाँ” ।

तेईस-वि० [सं० त्रिंशत्ति, पा० त्रेशसिंत्ति, प्रा० त्रेशसि] जो गिनती में बीस से तीन अधिक हो । बीस और तीन ।

उंहा पु० बीस से तीन अधिक की संख्या जो शंकों में इस प्रकार लिखी जाती है—२३ ।

तेईसवाँ-वि० [हि० तैईस + वाँ (त्रय०)] क्रम में तेईस के स्थान पर पढ़नेवाला । जिसके पहले बाईस और हों ।

तेखना*१-कि० अ० [सं० तीण्ण, हि० तेष] विगड़ना । क्रुद्ध होना । नाराज होना । व०—(क) सुंभ वोख्यो तपै मैम सीं तेलि कै । लाल नैना धरे वक्रता देखि कै ।—गोपाल । (ख) हनुमान या कौन बलाय वसी कहु पड़े ते ना तुम तेलिये री । हित मानि हमारे हमारे कहे भवा मेा सुख की छुपि देखिये री ।—हनुमान । (ग) मोदी को झूठी कही मारो करि सौंह करौं तप और ज सैली । बेंठे हैं देाज बगीचे में जाय के पाहूँ परों शय आह के देखै ।—रघुराज ।

तेग-उंहा छं० [अ०] तेलवार । खड्ग । व०—(क) जो रत्नसुर तेग तजि देखे । तो हमहुँ गुहरो मत लेवे ।—विश्राम ।
(ख) यारने दीनदयाल हरपि जो तेग चलेहो । हूँहो जीते जसी, मरे सुरलोकहि पैहो ।—दीनदयाल ।

तेगा-उंहा पु० [अ० तेग] (१) खाँदा । खड्ग । (अप्र) । व०—
तेगा ये टग मीत के पानि पवार सुघाट । अंजन बाइ दिपे
बिना करत चौगुनी काट ।—रसमिथि । (२) किसी मेहराथ के नीचे के भाग या दरवाजे को हँट एथर मिट्टी इत्यादि से बंद करने की क्रिया । (३) लुखी का एक दवा या पंच जिसे कमरतेगा भी कहते हैं ।

तेज-उंहा पु० [सं० तेजस्] (१) दीप्ति । कांति । चमक । चमक । धामा । व०—जिमि विजु तेज न रूप गोसाईं ।—
तुलसी । (२) पराक्रम । जोर । बल । (३) वीर्य । व०—
पतित तेज जो मयो हमरो कहे देव को धारी ।—
रघुराज । (४) किसी वस्तु का सार भाग । तत्व । (५) ताप । गर्मी । (६) पित्त । (७)—सोना । (८) तेजी ।

प्रचंडता। ३०—(क) तेज कृशानु रोप महि शेष। अथ अचगुन धन धनी धनेसा—तुलसी। (ख) धल सो अचल शीत, अनिल से चलचित्त, जत सो अचल तेज कैते गायी है।—केशव। (३) प्रताप। रोप शाय। (१०) मखल। नंदू। (११) सखगुण से उपद्रु किंग शरीर। (१२) मज्जा। (१३) पांच महाभूतों में से तीसरा भूत जिसमें ताप और प्रकाश होता है। अग्नि।

विशेष—सांख्य में इसका गुण शब्द, स्पर्श और रूप माना गया है। न्याय वा वैशेषिक के अनुसार यह दो प्रकार का होता है—नित्य और अनित्य। परमाणु रूप में यह नित्य और कार्य रूप में अनित्य होता है। शरीर, इंद्रिय और विषय के भेद से अनित्य तेज तीन प्रकार का होता है। शरीर तेज वह तेज है जो सारे शरीर में व्याप्त हो जैसा, आदित्यलोक में। इंद्रिय तेज वह है जिससे रूप आदि का ग्रहण हो। जैसा, नेत्र में। विषय तेज चार प्रकार का है—भौम, दिव्य, शैशव्य और आकरज। भौम वह है जो लकड़ी आदि जलाने से हो; दिव्य वह है जो किसी देवी शक्ति से अथवा आकाश में दिखाई दे, जैसे, विजयी; शैशव्य वह है जो उदर में रहता है और जिससे भोजन आदि पचता है; और आकरज वह है जो खनिज पदार्थों में रहता है, जैसा, सोने में। शरीर में तेज रहने से साहस और बल होता है, साथ पदार्थ पचने हैं और शरीर सुंदर बना रहता है। (१४) घांटे का वेग या चलने की तेजी।

विशेष—यह तेज दो प्रकार का है—सततोत्थित और भयोत्थित। सततोत्थित तो स्वामाविक है और भयोत्थित वह है जो धातुक आदि मारने से उत्पन्न होता है।

तेज—वि० [फा०] (१) तीक्ष्ण धार का। जिस की धार पैनी हो। ३०—यह बाहू बढ़ा तेज है। (२) चलने में शीघ्र गामी। ३०—यदि तेज रोहाल वर लगी न पल को बार। तउ रवेहा पर को भयो पै जो केस हज़ार।—विहारी। (३) चतपद काम करनेवाला। फुरतीला। ३०—यह नौकर बढ़ा तेज है। (४) तीक्ष्ण सीला। मालदार। जैसे, तेज सिरका, (५) मर्दंग। गम। बहुमुख्य। ३०—घात कल कपड़ा बहुत तेज है। (६) उग्र। अग्रद।

क्रि० प्र०—पड़ना।

(७) चतपद अधिक प्रभाव करनेवाला। जिसमें भारी असर हो। जैसे, तेज ज़हर।

(८) जिस की बुद्धि बहुत तीक्ष्ण हो। जैसे, यह लड़का बहुत तेज है। (९) बहुत अधिक चंचल या चपल।

तेजघारी—वि० [सं० तेजोधारि] तेजस्वी। जिस के चेहरे पर तेज हो। प्रगल्भी। प्रगल्भी।

तेजज—संज्ञा पुं० [सं०] (१) बरत। (२) मूँज। (३) रामयार। सतपत। (४) दीस करने वा तेज उत्पन्न करने की क्रिया या भाव।

तेजजक—संज्ञा पुं० [सं०] शर। सतपत।

तेजजाल्य—संज्ञा पुं० [सं०] मूँज।

तेजनी—संज्ञा पुं० [सं०] (१) मूलं। (२) माखकंगनी। (३) चक्षु। चार। (४) तेजबल।

तेजपत्तार—संज्ञा पुं० [सं० तेजपत्र] दारचीनी की जाति का एक पेड़ जो लंका, दारजिलिंग, कांगड़ा, जयंतिया और खासिया की पहाड़ियों में होता है और जिस की पत्तियां ढाल तरकारी आदि में मसाले की तरह डाली जाती हैं। जिस स्थान पर कुछ समय तक अन्धों बर्षा होती हो और पीछे कड़ी धूप पड़ती हो, यहाँ यह पेड़ अन्धों तरह बढ़ता है। जयंतिया और खासिया में इस की खेती होती है। पहले सात सात फुट की दूरी पर इस के बीच बोए जाते हैं और जब पौधा पांच बर्ष का हो जाता है तब उसे दूसरे स्थान पर रोप देते हैं। उस समय तक छोटे पौधों की रचा की बहुत आवश्यकता होती है। उन्हें धूप आदि से बचाने के लिये झाड़ियों की छाया में रखते हैं। रोपने के पांच बर्ष बाद इस में काम धाने योग्य पत्तियां निकलने लगती हैं। प्रति बर्ष कुम्हार से ब्रह्मचर तक और कहीं कहीं फायुन तक इस की पत्तियां तोड़ी जाती हैं। साधारण छूँसे प्रति बर्ष और पुराने तथा दुर्बल छूँसे प्रति दूसरे बर्ष पत्तियां ली जाती हैं। प्रत्येक वृष से प्रति वष १० से २२ सेर तक पत्तियां निकलती हैं। वृष से प्रायः छोटी छोटी सालियाँ काट ली जाती हैं और धूर में सुखाई जाती हैं। इसके बाद पत्तियां ब्रह्मचर कर ली जाती हैं और इसी रूप में बाजार में बिकती हैं। ये पत्तियां शरीरके की पत्तियों की तरह की पर उनसे कड़ी होती हैं और सुगन्धित होने के कारण ढाल तरकारी आदि में मसाले की तरह डाली जाती हैं। इन पत्तियों से एक प्रकार का सिरका तैयार होता है। इन्हें हरे के साथ मिलाकर इनसे रंग भी बनाया जाता है। तेजपत्ते के फूल और फल लौंग के फूलों और फलों की तरह होते हैं, लकड़ी लाली लिए हुए पकड़े होती है और उससे मेल ज़रमी आदि बनती हैं। कुछ लौंग दारचीनी और तेजपत्ते के पेड़ को एक ही समझते हैं पर वास्तव में ये दोनो एकही जाति के पर अलग अलग पेड़ हैं। तेजपत्ते के किसी किमी पेड़ से भी पतली छाल निकलती है जो दारचीनी के साथ ही मिला दी जाती है। इसकी छाल से एक प्रकार का तेल भी निकलता है जिससे साबुन बनाया जाता है। पत्तियों और छाल का व्यवहार औषध में भी होता है। वैद्यक में इसे जडु, उष्ण, रूखा और कफ, घात, कंदू, ग्राम तथा अरुचि का नाशक माना है।

पय्यो—पंचजात। प्रग। पसक। त्वकपत्र। बाराग। मृग। चोच। अकट। तमाक्षपत्र।

तेजपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] तेजपत्ता। एक जंगली वृष का पत्ता जो

सुगंधित होता है और इसी लिये मसाले में पड़ता है। इन के वृष सिलहट की पहाड़ियों पर बहुत होते हैं। इसे तेजपाता और तेजपात भी कहते हैं।

तेजपात—संज्ञा पुं० दे० "तेजपाता"।

तेजबल—संज्ञा पुं० [सं० तेजवती] एक काँटेदार जंगली वृष जो प्रायः हरिद्वार और उस के आस पास के प्रांतों में अधिकता से होता है। इस की छाल लाख मिर्च की तरह बहुत चरपरी होती है और कहीं कहीं पहाड़ी लोग दाब मसाले आदि में इस की जड़ का मिर्च की तरह व्यवहार भी करते हैं। इस की छाल या जड़ चबाने से दाँत का दर्द मिट जाता है। वैद्यक में इसे गरम, चारपा, पाचक, कफ और वातनाशक, तथा श्वास, खाँसी हिचकी और बवासीर आदि को दूर करनेवाला माना है।

पर्याय—तेजवती। तेजस्विनी। तेजय्या। लघुवल्कला। पारिजाता। शीता। तिका। तेजनी। विद्यालक्ष्मी। सुतेजसी।

तेजल—संज्ञा पुं० [सं०] चातक। पपीहा।

तेजवर्त—वि० दे० "तेजवान्"। उ०—तेजवर्त लघु गणिय न रानी।—तुलसी।

तेजवान्—वि० [सं० तेजवान्] [स्त्री० तेजवती] (१) जिसमें तेज हो। तेजस्वी। (२) वीर्यवान्। (३) बली। ताकतवाला। (४) कात्तिमान्। चमकीला।

तेजस्—संज्ञा पुं० दे० "तेज"।

तेजस्वी—वि० [हिं० तेजस्वी] तेजयुक्त। उ०—रिपु तेजसी अकेल अपि लघु करि गणिय न साहु। अजहुँ दैत दुख रचि शशिहि सिर अयोचित राहु।—तुलसी।

तेजस्कर—संज्ञा पुं० [सं०] तेज बढ़ानेवाला। जिससे तेज की वृद्धि हो।

तेजस्व—संज्ञा पुं० [सं०] महादेव। शिव।

तेजस्वन्—वि० [सं०] तेजस्वी। तेजयुक्त।

तेजस्विता—संज्ञा स्त्री० [सं०] तेजस्वी होने का भाव।

तेजस्विनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] मालकँगनी।

तेजस्वी—वि० [सं० तेजस्विन्] (१) [स्त्री० तेजस्विनी] कात्तिमान्। तेजयुक्त। जिसमें तेज हो। (२) प्रतापी। प्रतापवाला। प्रभावशाली।

संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र के एक पुत्र का नाम।

तेजा—संज्ञा पुं० [सं० तेज] (१) चूने आदि से बना हुआ एक प्रकार का काला रंग जिससे रंगरेज लोग मोरपंखी रंग बनाते हैं। (२) † महुँगी। तेजी।

तेजाव—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० तेजवी] किसी चार पदार्थ का अम्ल-सार जो द्रावक होता है। जैसे, गंधक का तेजाव, शोरे का तेजाव, नमक का तेजाव, नीचू का तेजाव आदि।

विशेष—किसी चीज का तेजाव तरल रूप में होता है और किसी का रवे के रूप में, पर सब प्रकार के तेजाव पानी में घुल जाते हैं, स्वाद में थोड़े या बहुत खट्टे होते हैं और घासों का गुण गूठ कर देते हैं। किसी घातु पर पड़ने से तेजाव उसे काटने लगता है। कोई कोई तेजाव बहुत तेज होता है और शरीर में जिस स्थान पर लग जाता है उसे बिलकुल जला देता है। तेजाव का व्यवहार बहुधा औषधों में होता है।

तेजावी—वि० [सं०] तेजाव संबंधी।

थो०—तेजावी सोना = दे० "सोना"।

तेजारत १—संज्ञा स्त्री० दे० "तिजारत"।

तेजारती १—वि० दे० "तिजारती"।

तेजिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] मालकँगनी।

तेजिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] तेजयल।

तेजिष्ठ—वि० [सं०] तेजस्वी।

तेजी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) तेज होने का भाव। (२) तीमता। प्रबलता। (३) ब्रमता। प्रचंडता। (४) शीघ्रता। जल्दी। (५) महुँगी। गरानी। मंदी का बलता।

तेजेयु—संज्ञा पुं० [सं०] रीन्द्राच राजा के एक पुत्र का नाम जिसका अवलेप मद्राभारत में थाया है।

तेजामंडल—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य, चंद्रमा आदि आकाशीय पिंडों के चारों ओर का मंडल। छुटा-मंडल।

तेजामंध—संज्ञा पुं० [सं०] गणियारी का पेड़।

तेजामय—वि० [सं०] (१) तेज से पूर्ण। जिसमें खूब तेज हो। जिसमें बहुत आत्म, कांति या ज्योति हो।

तेजारूप—संज्ञा पुं० [सं०] ब्रह्म। (२) जो अग्नि या तेज रूप हो।

तेजावती—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) गजपिप्पली। (२) चव्व। (३) मालकँगनी। (४) तेजयल।

तेजोवान्—वि० [सं० तेजोवद] [स्त्री० तेजोवती] तेजवाला।

तेजोविंदु—संज्ञा पुं० [सं०] एक उपनिषद् का नाम।

तेजोवीज—संज्ञा पुं० [सं०] मज्जा।

तेजोवृक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] छोट्टी शरय्या का वृक्ष।

तेजोह—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) तेजयल। (२) चव्व।

तेतना १—वि० दे० "तितना"।

तेता १—वि० पुं० [सं० तावत्] [स्त्री० तेती] बतना। वसी कदर। उसी प्रमाण का। उ०—(क) हरि हर विधि रचि शक्ति समेता। हुँची ते उपजत सब तेता।—निश्चल। (ख) जेती संपति कृपन के तेती तु मत जोर। बहुत जात ज्यौं ज्यौं बज ल्यौं ल्यौं होत कठोर।—बिहारी।

तेतालीस—वि० दे० "तैंतालीस"।

संज्ञा पुं० दे० "तैंतालीस"।

तेतिक * १—वि० [हिं० तेता] बतना।

तेतीस-वि० और संज्ञा पुं० दे० "तेतीस" ।

तेती * १-वि० दे० "तेती" ।

तेमन-संज्ञा पुं० [सं०] व्यंजन । पका हुआ भोजन ।

तेमरू-संज्ञा पुं० [दे०] तेंदू का वृक्ष । श्रावण का पेड़ ।

तेरज-संज्ञा पुं० [दे०] खतियौनी का गोशयारा ।

तेरवाँ १-वि० दे० "तेरहवाँ" ।

तेरस-संज्ञा स्त्री० [सं० त्रयोदश] किसी पत्र की तेरहवाँ तिथि । त्रयोदशी ।

तेरह-वि० [सं० त्रयोदश, प्रा० तेरह, अर्द्धमा० तेरस] जो गिनती में दस से तीन अधिक हो । दस और तीन ।

संज्ञा पुं० दस से तीन अधिक की संख्या और उस संख्या का सूचक शब्द जो इस प्रकार लिखा जाता है—१३ ।

तेरहवाँ-वि० [हिं० तेरह + वाँ (अव०)] दस और तीन के स्थान-पावा । म्रम में तेरह के स्थान पर पढ़नेवाला । जिसके पहले बारह और हों ।

तेरहवाँ-संज्ञा स्त्री० [हिं० तेरह + ई (अव०)] किसी के मरने के दिन से शय्या प्रेतकर्म की तेरहवाँ तिथि, जिसमें पिंडदान और ब्राह्मण भोजन करके दाह करनेवाला और मृतक के घर के लोग श्रद्धा होते हैं ।

तेरा-सर्व० [सं० तर] [स्त्री० तेरी] मध्यम पुरुष एक वचन की पद्यी का सूचक सर्वनाम शब्द । मध्यम पुरुष एक वचन संबन्धकारक सर्वनाम । तू का संबन्धकारक रूप ।

मुहा०—तेरी सी = तेरे जाम या मत्तज की बात । तेरे श्रुतकृत बात । २०—पकसीस ईस जी की खास होत देखियत, तिस काहे खाति कहत तो हैं। तेरी सी ।—सुलसी ।

विशेष—शिशु समाज में इसका प्रयोग बड़े या बराबरवाले के साथ नहीं होता बल्कि अपने से छोटे के लिये होता है ।

तेरस १-संज्ञा पुं० दे० "त्यारस" ।

संज्ञा स्त्री० दे० "तेरस" ।

तेरी-अव्य० [हिं० ते] से । २०—(क) तब प्रभु कळो पवनसुत तेरे । जनकसुमहिं छावहु दिग मेरे ।—विधाम । (ख) यदि प्रकार सत्र वृत्तन तेरे । मेटि मेटि पूँजे प्रभु हरे ।—विधाम ।

तेरो-सर्व० दे० "तेरा" । २०—तेरो सुल चंदा खचोर मेरे नैना ।

तेल-संज्ञा पुं० [सं० तैल] (१) यह चिकना तरल पदार्थ जो बीजों वनस्पतियों आदि से किसी विशेष क्रिया द्वारा निकाला जाता है अथवा प्राय से प्राय निकलता है । यह सदा पानी से हलका होता है, उसमें कुछ नहीं सकता, अलकोहल में घुल जाता है, अधिक सरदी पाकर प्रायः जम जाता है और अग्नि के योग से धूँसाँ दंकर जल जाता है । इसमें कुछ न कुछ गंध भी होती है । चिकना । रोमान ।

विशेष—तेल तीन प्रकार का होता है—मद्य, बड़ जानेवाला

और खनिज । मद्य तेल वनस्पति और अंतु दोनों से निकलता है । वनस्पत्य मद्य वह है जो बीजों या दानों आदि को कोहड़ू में पेर कर या दबा कर निकाला जाता है जैसे, तिल, सरसों, नीम, गरी, रेंडी, उसुम आदि का तेल । इस प्रकार का तेल दीया जलाने, साधुन और पार्थिव बनाने, सुगंधित करके तिर या शरीर में लगाने, खाने की चीजें तलने, फलों आदि का अचार बनाने और हल्की प्रकार के और दूसरे कामों में आता है । मशीनों के पुरजों में उर्द्ध तिसने से बनाने के लिये भी यह काम आता है । सिर में लगाने के चमड़ी, घेले आदि के जो सुगंधित तेल होते हैं वे बहुधा तिल के तेल की जमीन देकर ही बनाए जाते हैं । मित्र मित्र तेलों के गुण्य आदि भी एक दूसरे से मिश्र होते हैं । इसके अतिरिक्त अनेक प्रकार के वृष्टों से भी प्राय से प्राय तेल निकलता है जो पीड़ से साफ़ कर लिया जाता है, जैसे, ताड़नी आदि । जंतुन तेल जानवरों की चरबी का तरल अंश है और इसका व्यवहार प्रायः औषध के रूप में ही होता है । जैसे, तपि का तेल, धनेस का तेल, मगर का तेल आदि । उड़ जानेवाला तेल वह है जो वनस्पति के भिन्न भिन्न अंगों से भभके द्वारा अताता जाता है । जैसे, अजयपन का तेल, ताड़नी का तेल, मोम का तेल, हाँग का तेल आदि । ऐसे तेल दबा छानने से सूज या उड़ जाते हैं और हर्द्ध लौखाने के लिये बहुत अधिक गरमी की आवश्यकता होती है । इस प्रकार के तेल के शरीर में लगने से कभी कभी कुष्ठ ज्वन भी होती है । ऐसे तेलों का व्यवहार विद्यापती औषधों और सुगंधों आदि में बहुत अधिकता से होता है । कभी कभी मार-निशा या रंग आदि बनाने में भी यह काम आता है । खनिज तेल यह है जो केवल खानों या जमीन में खोदे हुए बड़े बड़े गड्डों में से ही निकलता है । जैसे, मिट्टी का तेल (देखो "मिट्टी का तेल") और "पेट्रोलियम" आदि । आज कल सारे संसार में बहुधा रोयानी करने और मोटर (इंजिन) चलाने में इसी का व्यवहार होता है ।

घायुवेद में मद्य प्रकार के तेलों को घायुनायक माना है । वैद्यक के अनुसार शरीर में तेल भरने से कफ और वायु का मारा होता है, प्राय उष्ण होती है, तेज बढ़ता है, चमड़ा सुखा-यम रहता है, रंग खिलता है और चित्त प्रसन्न रहता है । पैर के तलवों में तेल भरने से अच्छी तरह नींद आती है और मस्तिष्क तथा नेत्र ठंडे रहते हैं । सिर में तेल छानने से सिर का दर्द दूर होता है, मस्तिष्क ठंडा रहता है, और पाल काले तथा घने रहते हैं । इन सब कामों के लिये वैद्यक में सरसों या तिल के तेल के अधिक बरतम और गुणकारी बतनाया है । वैद्यक के अनुसार तेल में तजी हुई खाने की चीजें विदारी, गुष्पाक, गरम, पिचकर, लवचादोष बन्ध करनेवाली

श्रीर वायु तथा दृष्टि के लिये श्रद्धितकर मानी गई हैं। साधारण सरसो धादि के तेल में अनेक प्रकार के रोग दूर करने के लिये तरह तरह की योगधियाँ भी पकाई जाती हैं।

क्रि० प्र०—जलना।—जलाना।—निकलना।—निकालना।
पेरना।—मलना।—जगाना।

मुद्गा०—तेल में हाथ डालना=अग्नी सत्यता प्रमाणित करने के लिये खोखते हुए तेल में हाथ डालना। (प्राचीन काल में सत्यता प्रमाणित करने के लिये खोखते हुए तेल में हाथ डकवाने की प्रथा थी)। (२) विकृत शयन खाना। शाल का तेल निकालना = दे० “श्राँल” के मुद्गारे।

(२) विवाह की एक रस जो साधारणतः विवाह से दो दिन और कहीं कहीं चार पाँच दिन पहले भी होती है। इसमें घर को धूप का नाम लेकर और धूप को घर का नाम लेकर हल्दी मिला हुआ तेल जगया जाता है। इस रस के उपरांत प्रायः विवाह संबंध नहीं छूट सकता। उ०—श्रम्युदधिक करवाय धाद विधि सब विवाह के चारा। कृत्ति तेल मायन करवैर्दं ब्याह विधान धराता।—रघुराज।

मुद्गा०—तेल उठना या चढ़ना=तेल की रस पूरी होना।
उ०—तिरिया तेल हमीर दृष्ट चढ़ै न दूजी थार।—कोई कवि। तेल चढ़ाना=तेल की रस पूरी करना। उ०—प्रथम हादि वंदन करि मंगल गावहिं। करि कुजरीति फलस प्रापि तेल चढ़ावहिं।—तुलसी।

तेलंग—संज्ञा पु० दे० “तेलंग”।

तेलगु—संज्ञा स्त्री० [सं० तेलंग] तेलंग देस की भाषा।

तेलवारि—संज्ञा पु० [हिं० तेल + वारि (प्रत्य०)] (१) तेल जगाना। तेल मलना। (२) विवाह की एक रस जिसमें धूप पचवाले जनबासे में पर पचवालों के लगाने के लिये तेल भोजते हैं।

तेलसुर—संज्ञा पु० [?] एक जंगली वृक्ष जो बहुत ऊँचा होता है। इसके हीर की लकड़ी कड़ी और सफेदी लिए पीजी होती है। यह वृक्ष चर्तागि और सिखहट के जिलों में बहुत होता है। इसकी लकड़ी से प्रायः नावें बनाई जाती हैं।

तेलहँडी—संज्ञा पु० [हिं० तेल + हँडा] [स्त्री० अर्थ तेलहँडी] तेल रखने का मिट्टी का बड़ा बरतन।

तेलहँडी—संज्ञा स्त्री० [हिं० तेल + हँडी] तेल रखने का मिट्टी का छोटा बरतन।

तेलहन—संज्ञा पु० [हिं० तेल] वे यीज जिनसे तेल निकलता है। जैसे, सरसों, तिल, धलसी हत्यादि।

तेलहा—वि० पुं० [हिं० तेल + हा (प्रत्य०)] [स्त्री० तेलही] (१) तेलयुक्त। जिसमें तेल हो। जिसमें से तेल निकल सकता हो। (२) तेलवाला। तेल संबंधी। (३) जिसमें चिकनाई हो।

तेला—संज्ञा पुं० [?] तीन दिन रात का उपवास। उ०—जिसे फतल का हुकम हो तेला अर्थात् तीन उपवास करे जिसमें परलोक सुपरे।—शिवप्रसाद।

तेलिन—संज्ञा स्त्री० [हिं० तेली का स्त्री०] (१) तेली की स्त्री। तेली जाति की स्त्री। (२) एक दरसाती कीड़ा। यह कीड़ा जहाँ शरीर से छू जाता है वहाँ छाले पड़ जाते हैं।

तेलियर—संज्ञा पुं० [दे०] काले रंग का एक पत्ती जिसके सारे शरीर पर सफेद बुँदकियाँ या चित्तियाँ होती हैं।

तेलिया—वि० [हिं० तेल] तेल की तरह चिकना और चमकीला। चिकने और चमकीले रंगवाला। तेल के, से रंगवाला। जैसे, तेलिया धमोया।

संज्ञा पुं० [हिं० तेल + इया (प्रत्य०)] (१) काला, चिकना और चमकीला रंग। (२) इस रंग का घोड़ा। (३) एक प्रकार का वृक्ष। (४) एक प्रकार की छोटी मछली। (५) कोई पदार्थ, पद्य या पत्ती जिसका रंग तेलिया हो। (६) साँगिया नामक विप।

तेलियाकंद—संज्ञा पुं० [सं० तेलकंद] एक प्रकार का कंद। यह कंद जिस भूमि में होता है वह भूमि तेल से सींची हुई जान पड़ती है। वैद्यक में इसे खोहे को पतला करनेवाला चरपा, गरम तथा घात, अप्रस्मार, विप और सूजन आदि को दूर करनेवाला, पारे को बंधनेवाला और तत्काल देह को सिद्ध करनेवाला माना है।

तेलिया कारथा—संज्ञा पुं० [हिं० तेलिया + करथ] एक प्रकार का कपड़ा जो भीतर से फाले रंग का होता है।

तेलिया काकरोजी—संज्ञा पुं० [हिं० तेलिया + काकरोजी] कालापन लिए गहरा कड़ा रंग।

तेलिया कुमैत—संज्ञा पुं० [हिं० तेलिया + कुमैत] (१) घोड़े का एक रंग जो अधिक कालापन लिए लाल या कुमैत होता है। (२) यह घोड़ा जिसका रंग ऐसा हो।

तेलिया गर्जन—संज्ञा पुं० [सं०] दे० “गर्जन”

तेलिया पानी—संज्ञा पुं० [हिं० तेलिया + पानी] बहुत पारा और स्वाद में बुरा मालूम होनेवाला पानी, जैसा प्रायः पुराने कुओं से निकला करता है।

तेलिया सुरंग—संज्ञा पुं० दे० “तेलिया कुमैत”।

तेलिया सुहागा—संज्ञा पुं० [हिं० तेलिया + सुहागा] एक प्रकार का सुहागा जो देखने में बहुत चिकना होता है।

तेली—संज्ञा पुं० [हिं० तेल + ई (प्रत्य०)] [स्त्री० तेलिन] हिं० दुधों की एक जाति जिसकी गणना शूद्रों में होती है। ब्रह्मवैवर्त पुराण के अनुसार इस जाति की उत्पत्ति कोटक स्त्री और कुम्हार पुरुष से है। इस जाति के लोग प्रायः सारे भारत में फैले हुए हैं और सरसों तिल आदि पेर कर तेल निकालने का व्यवसाय करते हैं। साधारणतः द्विज लोग इस

जाति के लोगों का हुआ हुआ जल नहीं प्रदूष्य करते ।

मुहा०—तेली का बैल = हर समय काम में लगा रहनेवाला व्यक्ति ।

तेलीची—संज्ञा स्त्री० [हिं० तेल + चौकी (प्रत्य०)] पथर कांच या लकड़ी आदि की बड़ छोटी प्याली, जिसमें शरीर में लगाने के लिये तेल रखते हैं । महिला ।

तेलट—संज्ञा स्त्री० [दे०] सात दीर्घ अथवा १४ जघु मात्राओं का एक ताल जिसमें तीन आघात और एक खाली रहता है । इसके तालों के षोडशे हैं—भिन् भिन् धाकेते, भिन्

भिन् धा, त्रिन् त्रिन् ताकेते भिन् भिन् धा । धा ॥

तेलना—संज्ञा पुं० [सं० तलेन] (१) नजरयाग । पाईयाग । (२) वह स्थान विशेषतः वन आदि जहाँ आमास प्रमेद और क्रीड़ा हो । (३) क्रीड़ा ।

तेलर—संज्ञा पुं० [हिं० तेल = क्रोध] (१) कुपित पटि । क्रोध भरी चिंतवन ।

मुहा०—तेलर चढ़ना = दृष्टि का ऐसा हो जाना जिससे क्रोध प्रकट हो । तेलर बदलना या विगड़ना = (१) बेसुरीबत हो जाना । (२) खफ हो जाना । (३) मृत्युचिह्न प्रकट होना । तेलर घुरे नजर आना या दिखाने देना = अत्रुगम में अंतर पड़ना । प्रेम-भाव में अंतर आ जाना । तेलर मेल होना = दृष्टि से खेद, क्रोध या उदासीना प्रकट होना ।

(२) भीड़ । झुंझरी ।

तेलरसी—संज्ञा स्त्री० [दे०] (१) ककड़ी । (२) खीरा (३) फूल ।

तेलरा—संज्ञा पुं० [दे०] दूध में बनाया हुआ रूपक ताल । (संगीत)

तेलराना—क्रि० अ० [हिं० तेल + आना (प्रत्य०)] (१) भ्रम में पड़ना । खेदेह में पड़ना । सोच में पड़ना । (२) विस्मित होना । आश्चर्य करना । दे० "तेलाना" । (३) मूर्च्छित हो जाना । बेहोश हो जाना ।

तेलरी—संज्ञा स्त्री० दे० "खोरी" ।

तेलहार—संज्ञा पुं० दे० "खोहार" ।

तेलाना—क्रि० अ० [दे०] सोचना । चिंता करना । व०—(क) लैंबरि सेन पंन मन भइ संका । डाडि तेलानि टेक कर संका ।—जायसी । (ख) दिये प्राप दुख भाजा त्रिउ जाली पा धुंकि । मन तेलान के रोह्ये हरि-अंवार कर टेकि ।—जायसी । (ग) रहैं लंभाव तो पिय चले कहीं तो कहैं मोदि डोड । डाडि तेलानि का कहीं भारी दोउ बसोड ।—जायसी ।

तेह—संज्ञा पुं० [सं० तहस्प, हिं० तेलना] (१) क्रोध । गुस्सा । व०—हम हारी कै के हहा पायन पायो यौए । खेद कदा भइहूँ किये तेह तररे खोए ।—विहारी । (२) अहंकार । घमंड । ताव । व०—आवै तेह घर भूप करहैं हट पुनि पाए पदितैं । श्रवध क्रियोर समान और घर जन्म प्रयत्त न रहैं ।—रघुना । (३) तेती । प्रचंडता । व०—तोप भार खोहके अतारे फन हूँ तैं भूमि कमठ बराह छोड़ि भार्य पिति खेह को । भाउ सितभानु तारा मंडळ प्रतीचि उवै सोवै सिंघु बावह तरणि तजै तेह को ।—रघुना ।

तेहरा—संज्ञा स्त्री० [सं० त्रि + हार] तीन लड़की सिद्धरी, करघनी या अंगीर जिससे स्त्रियाँ कमर में पहनती हैं ।

तेहरा—वि० पुं० [हिं० तीन + हार] (१) तीन परत किया हुआ । तीन लपेट का । (२) जिसकी एक साथ तीन प्रतियाँ हों । जो एक साथ तीन तीन हो । व०—दोहरे, तेहरे, चौहरे भूपय जाने सात ।—विहारी । (३) जो दो बार होकर फिर तीसरी बार किया गया हो । जैसे, तेहरी मेहनत ।

विशेष—इस अर्थ में इस शब्द का व्यवहार ऐसे ही कामों के लिये होता है जो पहले दो बार करने पर भी उचम रीति से या पूर्ण न हुए हों । (४) तिरुगम । (वच०)

तेहराना—क्रि० अ० [हिं० तेशा] (१) तीन लपेट या परत का करना । (२) किसी काम को उसकी प्रुति आदि दूर करने अथवा उसे बिखरुल ठीक करने के लिये तीसरी बार करना ।

तेहवार—संज्ञा पुं० दे० "खोहार"

तेहा—संज्ञा पुं० [हिं० तैह] (१) क्रोध । गुस्सा । (२) अहंकार । शोली । अभिमान । घमंड ।

धा०—तेहेदार । तेहेदार ।

तेहि—संज्ञा पुं० [सं० ते] वसके । वसे ।

तेही—संज्ञा पुं० [हिं० तैह + ई (प्रत्य०)] (१) गुस्सा करने वाला । जिसमें क्रोध हो । क्रोधी । (२) अभिमानी । घमंडी ।

तेहेदारी—संज्ञा पुं० दे० "तेही" ।

तेहेबाजा—संज्ञा पुं० दे० "तेही" ।

तैं—क्रि० वि० [हिं० तैं] से । दे० "तैं" । व०—सुंज तैं कहूँ सुनि कंत को गमन, खलि चागमन तैसे मनहरन गोपाल को ।—पद्माकर ।

सर्व० [सं० तैं] व् । व०—त्रिय संग खरदि न भट रिपु अगनी । एक मम भ्राता तैं मम भगनी ।—गोपाल ।

तैंतालीस—वि० दे० "तैंतालीस" ।

तैं तीस—वि० दे० "तैंतीस" ।

तै-किं वि० [सं० त्] इतना । उस कदूर । उस मात्रा का । जैसे, अथ जै नंबर के बाद कहिये तै नंबर के बाद आरफ का तारा निकले ।

संज्ञा पुं० [अ०] (१) निघटेरा । फौसला ।

धौ०—तै तमाम = अंत । समाप्ति ।

(२) पृच्छि । पूरा करना । (३) दे० "तह" ।

वि० (१) जिसका निघटेरा या फौसला हो चुका हो । (२) जो पूरा हो चुका हो । समाप्त । जैसे, भगड़ा तै करना । रास्ता तै करना ।

तैकामन-संज्ञा पुं० [सं०] तिक ऋषि के वंशज या शिष्य ।

तैक-संज्ञा पुं० [सं०] तिक का भाव । तीतापन । चरपराहट । तिताई । तिक्त्वं ।

तैक्ष्ण्य-संज्ञा पुं० [सं०] तीक्ष्णता । तीक्ष्ण का भाव ।

तैखाना-संज्ञा पुं० दे० "तहखाना" ।

तैजस-संज्ञा पुं० [सं०] (१) धातु, मणि अथवा इसी प्रकार का और कोई भ्रमकीला पदार्थ । (२) धी । (३) पराक्रम । (४) बहुत तेज चलनेवाला घोड़ा । (५) सुमति के एक पुत्र का नाम । (६) (जो स्वयं-प्रकार और सूर्य आदि का प्रकाशक हो) भगवान् । (७) वह शारीरिक शक्ति जो आहार को रस तथा रस को धातु में परिणत करती है । (८) एक तीर्थ का नाम जिसका उल्लेख महाभारत में है । (९) राजस अथवा में प्राप्त अहंकार जो एकादश इंद्रियों और पंच तन्मात्राओं की उत्पत्ति में सहायक होता है और जिसकी सहायता के बिना अहंकार कभी सात्विक या तामसी अथवा प्राप्त नहीं कर सकता ।

तैज्ञेय-दे० "अहंकार" ।

वि० [सं०] तेज से उत्पन्न । तेज संबंधी । जैसे, तैजस पदार्थ ।

तैजसावर्चनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] बार्दी सेना गजाने की घरिया । मूषा ।

तैजसी-संज्ञा स्त्री० [सं०] गजपिप्पली ।

तैतिर-संज्ञा पुं० [सं०] तीतर ।

तैतिल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) ग्याह करणों में से चौथा करण । फलित औषधि के अनुसार इस करण में जन्म-लेनेवाला कलाकुशाब, रूपवान, वक्ता, गुणी, सुहीन और कामी होता है । (२) देयता । (३) गैड़ा ।

तैत्तिरी-संज्ञा पुं० [सं०] कृष्य यजुर्वेद के प्रवक्तृ एक ऋषि का नाम ।

तैत्तिर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) तीतरों का समूह । (२) तीतर । (३) गैड़ा ।

तैत्तिरीय-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कृष्य यजुर्वेद की द्विवासी शाखाओं में से एक जो आर्य्य अनुक्रमविका और पाणिनि के अनुसार तित्तिरी नामक ऋषि प्रोक्त है । पुराणों में इसके

संबंध में लिखा है कि एक बार वैशंपायन ने ब्रह्महत्या की थी । उसके प्रायश्चित के लिये उन्होंने अपने शिष्यों को पत्र करने की आज्ञा दी । और सब शिष्य तो पत्र करने के लिये तैयार हो गए, पर याज्ञवल्क्य तैयार न हुए । इस पर वैशंपायन ने उनसे कहा कि तुम हमारी शिष्यता छोड़ दो । याज्ञवल्क्य ने जो कुछ उनसे पत्रा या वह सब उगल दिया, और उस धमन को उनके दूसरे सहपाठियों ने तीतर धनकर चुग लिया । (२) इस शाखा का उपनिषद्, जो तीन भागों में विभक्त है । पहला भाग संहितोपनिषद् या शिष्यावह्वी कहलाता है; इसमें व्याकरण और यज्ञ तैवाद् संबंधी बातें हैं; दूसरा भाग आनंदवह्वी और तीसरा भाग भृगुवह्वी कहलाता है । इन दोनों समिलित भागों को वास्त्यी उपनिषद् भी कहते हैं । तैत्तिरीय उपनिषद् में ब्रह्मविद्या पर उत्तम विचारों के अतिरिक्त ध्रुति, स्पृष्टि और इतिहास संबंधी भी बहुत सी बातें हैं । इस उपनिषद् पर शंकराचार्य का बहुत अर्थवाद भाव्य है ।

तैत्तिरीयक-संज्ञा पुं० [सं०] तैत्तिरीय शाखा का अनुयायी या पढ़नेवाला ।

तैत्तिरीयारण्यक-संज्ञा पुं० [सं०] तैत्तिरीय शाखा का आरण्यक अथ जिसमें वानप्रस्थों के लिये उपदेश है ।

तैत्तिल-संज्ञा पुं० दे० "तैत्तिल" ।

तैनात-वि० [अ० तथ्युज] किसी काम पर लगाया या नियत किया हुआ । सुकरं । नियत । नियुक्त । जैसे, भीड़ भाड़ का इंतजाम करने के लिये दस सिपासी वहाँ तैनात किए गए थे ।

तैनाती-संज्ञा स्त्री० [हिं० वेगत + ई (प्रत्य०)] किसी काम पर लगाने की क्रिया या भाव । नियुक्ति । सुकरंती ।

तैया-संज्ञा पुं० [दे०] मिट्टी का वह छोटा बरतन जिसमें झीपी कपड़ा छापने के लिये रंग रखते हैं । अरहर ।

तैयार-वि० [अ०] (१) जो काम में आने के लिये बिलकुल उपयुक्त हो गया हो । सब तरह से दुरुस्त या ठीक । लैस । जैसे, कपड़ा (सिल कर) तैयार होना, मकान (बन कर) तैयार होना, फल (पक कर) तैयार होना, गाड़ी (जुत कर) तैयार होना आदि ।

मुहा०—गला तैयार होना = गले पर बहुत सुंदरता और रस-सुकुत होना । ऐला गला होना । जिलेसे बहुत अच्छा गाना गाया जा सके । हाथ तैयार होना = फलता आदि में हाथ का बहुत अभ्यस्त और कुशल होना । हाथ का बहुत मँज जाना ।

(२) उगत । तयार । सुस्तैद । जैसे, (क) हम तो सर्वेसे ले चलने के लिये तैयार थे, आप ही नहीं आए । (ख) जब देखिए तप आप खटने के लिये तैयार रहते हैं ।

(३) प्रस्तुत। उपस्थित। मौजूद। जैसे, इस समय पचास रुपए तैयार हैं, बाकी कुछ ले लीजिएगा। (४) हट पुष्ट। मोटा ताजा। जिसका शरीर बहुत अच्छा और सुबोले हो। जैसे, यह घोड़ा बहुत तैयार है।

तैयारी—संज्ञा स्त्री० [हिं० तैयार + ई (प्रत्य०)] (१) तैयार होने की क्रिया या भाव। दुल्हनी। (२) तैयारता। मुल्दवी। (३) शरीर की पुष्टता। मोटाई। (४) धूम धाम। विद्योपलः प्रबंध आदि के संबंध की धूम धाम। जैसे, उगकी बरात में बड़ी तैयारी थी। (५) सजावट। जैसे, आज तो आप बड़ी तैयारी से निकले हैं।

तैयारी—क्रि० वि० दे० "तक"। व०—सहस्र धरासी मुनि औं जेयं तैयार न घंटा बाजे। कइहिं कथीर सुपव के जेए, घंट मगन हूँ गावै।—कबीर।

तैयारी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का रूप जिसकी वस्त्रियों आदि को देखक में दिख और मर्यादागक माना है।

पर्व्या—तैर। तैरणी। कुनीली। रागद।

तैरना—क्रि० अ० [सं० तारण] (१) पानी के ऊपर बहना।

उतराना। जैसे, लकड़ी या काग आदि का पानी पर तैरना। (२) किसी जीव का अपने शरीर संरक्षण करने के पानी पर चलना। हाथ पैर या शरीर कोई श्रंग हिलाकर पानी पर चलना। पैना। तरना।

विशेष—मनुष्यों आदि जलजंतु तो सदा जल में रहते और विचरते ही हैं; पर इनके अतिरिक्त मनुष्य को छोड़ कर बाकी अधिकांश जीव जल में स्वभावतः बिना किसी दूसरे की सहायता या शिक्षा के आपसे आप तैर सकते हैं। तैरना कई तरह से होता है और उसमें बंधन हाथ, पैर, शरीर का कोई श्रंग अथवा शरीर के सब श्रंगों को हिलाना पड़ता है। मनुष्य को तैरना सीखना पड़ता है और तैरने में उसे हाथों और पैरों अच्छा बंधन देना होता है। मनुष्य का साधारण तैरना प्रायः मंडक के तैरने की तरह का होता है। बहुत से लोग पानी पर लुप चाप चित भी पड़ जाते हैं और बराबर तैरते रहते हैं। कुछ लोग तरह तरह के दूसरे आस्त्रों से भी तैरते हैं। साधारण धोपारों को तैरने में अपने पैरों को प्रायः देसी ही गति देनी पड़ती है जैसी स्थल पर चलने में, जैसे, घोड़ा, गऊ, हाथी, कुत्ता आदि। कुछ धोपार ऐसे भी होते हैं जिन्हें तैरने में अपनी पूँछ भी हिलानी पड़ती है, जैसे, जड़बिलाब, गंध शिलाब आदि। कुछ जानवर केवल अपनी पूँछ और शरीर के पिछले भाग को हिलाकर ही, बिलकुल मनुष्यों की तरह तैरते हैं, जैसे, हेल। ऐसे जानवर पानी के ऊपर भी तैरते हैं और शरद भी। जिन पक्षियों के पैरों में जाखियाँ होती हैं, वे जल में अपने पैरों की सहायता से चलने की

भांति ही तैरते हैं, जैसे, बत्तक, राजहंस आदि। पर दूसरे पक्षी तैरने के लिये जल में बसी प्रकार अपने पर फटकाते हैं जिस प्रकार उड़ने के लिये हवा में। साँप, प्रजागर आदि रंगेनाले जानवर जल में अपने शरीर को बसी प्रकार हिलाते हुए तैरते हैं जिस प्रकार वे स्थल में चलते हैं। कुछ आदि अपने चारों पैरों की सहायता से तैरते हैं। बहुत से छोटे छोटे कीड़े पानी की सतह पर दीकृते अथवा चित पड़कर तैरते हैं।

तैरना—संज्ञा स्त्री० [हिं० तैरना + ई (प्रत्य०)] (१) तैरने की क्रिया या भाव। (२) वह धन जो तैरने के बदले में मिले।

तैरना—क्रि० वि० [हिं० तैरना + आक (प्रत्य०)] तैरनेवाला। जो अचूकी तरह तैरना जानता हो।

तैरना—क्रि० सं० [हिं० तैरना का प्र०] (१) दूसरे को तैरने में प्रवृत्त करना। तैरने का काम दूसरे से कराना। (२) घुसाना। घँसाना। गोदना। जैसे, चोर ने उसके पैठ में हुरी तैरा दी।

तैरने—संज्ञा पुं० [सं०] वह कृत्व जो तोष में किया जाय।

वि० तोषे-संबंधी।

तैरिका—संज्ञा पुं० [सं०] श्यामकार। जैसे, कपिल, कयाद आदि।

तैर्यगधनिक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का यज्ञ।

तैलंग—संज्ञा पुं० [सं० त्रिकुलिंग] दक्षिण भारत का एक प्राचीन देश जिसका विस्तार श्रीलंका से बंगाल राज्य के मध्य तक था। इसी देश की भाषा तैलंग कहलाती है।

विशेष—इस देश में कावेरि, श्रीरैल और भीमेश्वर नामक तीन पहाड़ हैं जिनपर तीन शिवलिंग हैं। कुछ लोगों का मन है कि इन्हीं तीनों शिवलिंगों के कारण इस देश का नाम त्रिलिंग पड़ा है; इसका नाम पदले त्रिकुलिंग था। महाभारत में केवल कलिंग शब्द आया है। पीढ़े से कलिंग देश के तीन विभाग हो गए थे जिनके कारण इसका नाम त्रिकुलिंग पड़ा। उड़ीसा के दक्षिण से ले कर मद्रास के और आगे तक का समुद्र तटस्थ प्रदेश तैलंग या त्रिलंगाना कहलाता है।

तैलंग—संज्ञा पुं० दे० "तिलंग"।

तैलंगी—संज्ञा पुं० [हिं० तैलंग + ई (प्रत्य०)] तैलंग देशवासी।

संज्ञा स्त्री० तैलंग देश की भाषा।

वि० तैलंग देश संबंधी। तैलंग देश का।

तैल—संज्ञा पुं० [सं०] (१) तिल, प्ररसों आदि को घेर कर निकाला हुआ तेल। (२) किसी प्रकार का तेल।

तैलकंद—संज्ञा पुं० [सं०] तंबियाकंद।

तैलकार—संज्ञा पुं० [सं०] तेली (जाति)। महावैचं चुराण के अनुसार इस जाति की वपस्ति केटक जाति की स्त्री भीर कुम्हार पुरुष से बतलाई गई है।

तैलकिट्ट-संज्ञा पुं० [सं०] खली ।
 तैलकीट-संज्ञा पुं० [सं०] तैलिन नाम का कीड़ा ।
 तैलरथ-संज्ञा पुं० [सं०] तैल का भाग या गुण ।
 तैलद्रोणी-संज्ञा स्त्री० [सं०] काठ का एक प्रकार का बड़ा पात्र जो प्राचीन काल में बनाया जाता था और जिसकी लंबाई आदमी की लंबाई के बराबर हुआ करती थी । इसमें तैल भर कर चिकित्सा के लिये रोगी लेटाए जाते थे और सड़ने से बचाने के लिये शूत-शरीर रखे जाते थे । राजा दुषरथ का शरीर कुछ समय तक तैलद्रोणी में ही रखा गया था ।
 तैलधान्य-संज्ञा पुं० [सं०] धान्य का एक वर्ग जिसके अंतर्गत तीनों प्रकार की सब्जियाँ, दोनों प्रकार की राई, रास और बज्रम के बीज हैं ।
 तैलपयोक्त-संज्ञा पुं० [सं०] गठिवन ।
 तैलपर्यिक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार का चंदन । (२) लाल चंदन । (३) एक प्रकार का वृक्ष ।
 तैलपर्यो-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सबई का गोंद । (२) चंदन । (३) शिवायस या तुलसी नाम का गंधद्रव्य ।
 तैलपायी-संज्ञा पुं० [सं०] तैलपायिन् । भोगुर । चपड़ा । (कीड़ा)
 तैलपिपीलिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की चींटी ।
 तैलपिट्टक-संज्ञा पुं० [सं०] खली ।
 तैलफल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) इंदुदी । (२) बहेड़ा ।
 तैलभाविनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] चमेली का पेड़ ।
 तैलमाली-संज्ञा स्त्री० [सं०] तैल की बत्ती । पत्नीता ।
 तैलयंत्र-संज्ञा पुं० [सं०] कोरहू ।
 तैलचह्ली-संज्ञा स्त्री० [सं०] शतावरी । शतमूली ।
 तैलसाधन-संज्ञा पुं० [सं०] शीतल चीनी । कषाय चीनी ।
 तैलस्फटिक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शंकर नामक गंधद्रव्य । (२) नृगमणि । कहरका ।
 तैलस्यंदा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) गोकर्णो नाम की जता । सुर-हटी । (२) काकोली नाम की शोषधि ।
 तैलास-वि० [सं०] जिसमें तैल लगा हो । तैल-युक्त ।
 तैलाख्य-संज्ञा पुं० [सं०] शिवायस या तुलसी नाम का गंधद्रव्य ।
 तैलागुर-संज्ञा पुं० [सं०] शगर की खकड़ी ।
 तैलाटी-संज्ञा स्त्री० [सं०] धरें । मिट्ट ।
 तैलाभ्यंग-संज्ञा पुं० [सं०] शरीर में तैल मलने की क्रिया । तैल की मालिश ।
 तैलिक-संज्ञा पुं० [सं०] तिलों से तैल निकालनेवाला । तेली ।
 वि० तैल संबंधी ।
 तैलिक यंत्र-संज्ञा पुं० [सं०] कोरहू । इ०—समर तैलिक यंत्र तिल तामीचर निकर येरि धारे सुभट धालि घानी ।—तुलसी ।
 तैलिनो-संज्ञा स्त्री० [सं०] यत्ती ।
 तैलिशाळा-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्थान जहाँ तैल पेरने का कोरहू चलाता है ।

तेली-संज्ञा पुं० [सं०] तेली ।
 तैल्यक-वि० [सं०] लोप की लकड़ी से बना हुआ ।
 संज्ञा पुं० [सं०] लोप ।
 तैश-संज्ञा पुं० [सं०] श्रावेश-युक्त क्रोध । गुस्सा ।
 मुहा०—तैश दिखाना = ऐसा कार्य करना जिससे कोई मुड़ हो । क्रोध चढ़ाना । तैश में खाना = मुड़ होना । बहुत कुपित होना ।
 तैप-संज्ञा पुं० [सं०] चांद पीप मास । पीप मास की पूर्णिमा के दिन तित्थ (वृष्य) नचत्र होता है, इसी से वसका नाम तैप पड़ा है ।
 तैपी-संज्ञा स्त्री० [सं०] उष्य-नचत्र-युक्ता पौर्णमासी । पूस की पूर्णिमा ।
 तैस पुं-वि० दे० "तैसा ।"
 तैसा-वि० [सं०] तदय, प्रा० तदय] इस प्रकार का । "तैसा" का पुराना रूप ।
 तैले-कि० वि० दे० "तैले" ।
 तै० * त-हि० वि० दे० "तै०" ।
 तैप्रर०-संज्ञा पुं० दे० "तैमर" ।
 तैद-संज्ञा स्त्री० [सं०] हुंड] पेट के अग्रे का बड़ा हुआ भाग ।
 पेट का फुलाव । मर्यादा से अधिक फूला या अग्रे की ओर बढ़ा हुआ पेट ।
 क्रि० प्र०—निकलना ।
 मुहा०—तैद पचना = मोटाई दूर होना । (२) मोटी निकल जाना ।
 तैदल-वि० [हि० तैद + ल (प्रत्य०)] तैदवाला । जिसका पेट अग्रे की ओर बढ़ा और पस फूला हुआ हो ।
 तैदा-संज्ञा पुं० [देग०] तालाव से पानी निकलने का मार्ग ।
 संज्ञा पुं० [फा० तैदा] (१) वह टीला या मिट्टी की दीवार, जिस पर सीर या बंदूक चलाने का अभ्यास करने के लिये नियमान लगाते हैं । (२) ढेर । राशि । (बब०) ।
 तैदी-संज्ञा स्त्री० [सं०] देवी] नामी । टींदी ।
 तैदिला-वि० दे० "तैदिल" ।
 तैदिल-वि० दे० "तैदिल" ।
 तैदा-संज्ञा पुं० दे० "तैदा" ।
 तैधी-संज्ञा स्त्री० दे० "तैधी" ।
 तै-सर्व० [सं०] तव ।
 अर्थ० [सं०] तद् । तव । उस दश में । जैसे, (क) यदि तुम कहो तो मैं उन्हें भी पत्र लिख दूँ । (ख) अगर वे मिलें तो बनसे भी कह देना । इ०—जो प्रभु स्वसि पार गा चहहू । सो पद तुम पखारन कहहू ।—तुलसी ।
 विशेष—पुरानी हिंदी में इस शब्द का, इस अर्थ में प्रयोग प्रायः "जो" के साथ होता था और आज कल "यदि" या

‘भ्रगर’ के साथ होता है। कविता में इसका प्रयोग अथ भी ‘जो’ के साथ स्वतंत्रता से किया जाता है।

अथ० [सं० तु] एक अथर्व्य मिलका व्यवहार किसी शब्द पर जोर देने के लिये अथवा कभी कभी यों ही किया जाता है। जैसे, (क) भाप चलें तो सही, मैं सब प्रबंध कर लूँगा। (ख) आर बँटो तो। (ग) हम गए तो यों, पर वेही नहीं मिले। (घ) देखो तो कैसी महार है ?

*तर्व० [सं० तव] तुम्ह। तू का वह रूप जो उसे विभक्ति लगने के समय प्राप्त होता है जैसे, तीको।

कति० थ० [हिं० शते = या] या। (बच०)। उ०—काल कम दिग्गल सकल जग जाल जासु करतल तो।—तुलसी।

तोड़*—संज्ञा पुं० [सं० तोय] पानी। जल। उ०—वीठ डोरने मेर दिय छिरक रूप रस तोड़। सधि मो घट प्रीनम लिए मन नवनीत बिलोड़।—रसनिधि।

तोड़—संज्ञा स्त्री० [देग०] (१) श्रंगे या कुंरते आदि में कमर पर लगी हुई पट्टी या गोटा। (२) पादर या दोहर आदि की गोटा। (३) खंखरो का नेपथ।

तोड़क—संज्ञा पुं० [सं०] (१) शीतलपत्र के सलाखों में से एक। (२) शिशु। अल्प। लड़का वा लड़की। (३) शीतलपत्र के एक सलाख का नाम।

तोड़करा—संज्ञा स्त्री० [देग०] एक प्रकार की लडा जो अफीम के पीधों पर लिपट कर उन्हें सुखा देती है।

तोड़कम—संज्ञा पुं० [सं०] (१) शंकर। (२) जौ का मया शंकर। (३) हरा और कथा जौ। (४) हरा रंग। (५) बादल। मेघ। (६) कान की मंज।

तोड़क—संज्ञा पुं० दे० “तोय” या “क्षेतोय”।

तोड़खार—संज्ञा पुं० दे० “तुपार”।

तोड़क—संज्ञा पुं० [सं०] (१) बर्षावृत्त जिसके प्रत्येक चरय में चार सग्य (॥५ ॥५ ॥५ ॥५) होते हैं। उ०—ससि सी ससिपि विगती करतीं टुक मंद न हो पग तो परतीं। हरि के पद शंकरि हूँ बन दे। किन तो टुक जाय निहारन दे। (२) शंकराचार्य के चार प्रधान शिष्यों में से एक। इनका एक नाम मंदीरवर भी था।

तोड़क—संज्ञा पुं० दे० “टोटका”। उ०—श्रीपथ श्वेतक जंत्र मंत्र तोड़कदि किये वादि भप देवता मनाप अघिकाति है।—तुलसी।

तोड़—संज्ञा पुं० [हिं० तोड़ना] (१) तोड़ने की क्रिया या भाव (बच०)। (२) किले की दीवारों आदि का यह श्रेय जो गोले की मार से टूट फूट गया हो। (३) नदी आदि के जब का तंत्र बहाव। ऐसा बहाव जो सामने पड़नेवासी धीजों को तोड़ फोड़ दे। (४) कुस्ती का यह पंच जिससे कोई दूसरा पंच १६ हो। किसी एवं से बचने के लिये दिया हुआ दाँव।

(२) किसी प्रभाव आदि को नष्ट करनेवाला पदार्थ या कार्य। प्रतिकार। मारक। जैसे, अगार वह तुम्हारे साथ कोई पाजीवन करे तो उसका तोड़ हमसे पढ़ना।

थो०—तोड़ जोड़।

(६) दूरी का पानी। (७) चार। दफा। भौंक। जैसे, पहुँचते ही वे उनके साथ एक तोड़ लड़ गए।

विशेष—इस अर्थ में इस शब्द का प्रयोग ऐसे ही कार्य्यों के लिये होता है जो बहुत आवेशपूर्वक या तत्परता के साथ किए जाते हैं।

तोड़ जोड़—संज्ञा पुं० [हिं० तोड़ + जोड़] (१) द्वाि पंच। चाख। युक्ति। (२) अथवा मतलब साधने के लिये किसी को मिलावे और किसी को अलग करने का कार्य। चटे बटे लड़ाकर काम निकालना।

कि० प्र०—भिड़ाना—लगाना।

तोड़ना—कि० स० [हिं० टूटना] (१) आघात या झटके से किसी पदार्थ के दो या अधिक टुकड़ करना। भंग, विभक्त या खंडित करना। टुकड़े करना। जैसे, मश्रा तोड़ना, लकड़ी तोड़ना, रस्सी तोड़ना, दीवार तोड़ना, दायाल तोड़ना, परतन तोड़ना, बंधन तोड़ना।

विशेष—इस अर्थ में इस शब्द का व्यवहार प्रायः कड़े पदार्थों के लिये अथवा ऐसे मुलायम पदार्थों के लिये होता है जो सूत के रूप में लंबाई में कुछ दूर तक चले गए हों।

संयो० कि०—टाकना।—देना।

थो०—तोड़ा मरोड़ी।

(२) किसी वस्तु के श्रंग को अथवा उसमें लगी हुई किसी दूसरी वस्तु को तोच या काट कर, अथवा और किसी प्रकार से अलग करना। जैसे, पत्ती फूल या फल तोड़ना, (कोट में लगा हुआ) घटन तोड़ना, निरद तोड़ना, दाँत तोड़ना।

संयो० कि०—टाकना।—देना।—खेना।

(३) किसी वस्तु का कोई श्रंग किसी प्रकार गड़ित, भंग या बेकाम करना। जैसे, मशीन का पुरजा तोड़ना, किसी का हाथ या पैर तोड़ना। (४) खेत में हल जोतना। (बच०)।

(५) संच खगाना। (६) किसी स्त्री के साथ प्रथम समागम करना। किसी का कुमारीत्व भंग करना। (७) बल, प्रभाव, महत्व, विचार आदि घटाना या नष्ट करना। चौख हुपेंज या अराक करना। जैसे, (क) बीमारी ने उन्हें विखकुल तोड़ दिया। (ख) युद्ध ने उन दोनों देवों को तोड़ दिया। (ग) इस झुँप का पानी तोड़ दे। (घ) सरीन्दने के लिये किसी चीज का दाम घटा कर निश्चित करना। जैसे, बड़ तो १२०, मंगलता या पर मैंने तोड़ कर १००, पर ही टीक कर लिया।

(६) किसी संगठन व्यवस्था या कार्यधेन आदि से न रहने देना अथवा नष्ट कर देना। किसी चतने काम कार्य्यालय

आदि को सब दिन के लिये बंद करना। जैसे, महकमा तोड़ना, कंभनी तोड़ना, पद तोड़ना, स्कूल तोड़ना। (१०) किसी निश्चय या नियम आदि को स्थिर या प्रचलित रखना। निश्चय के विरुद्ध आचरण करना अथवा नियम का उल्लंघन करना। यात पर स्थिर न रहना। जैसे, डेका तोड़ना, प्रतिज्ञा तोड़ना। (११) दूर करना। अलग करना। मिटा देना। पना न रहने देना। जैसे, संबंध तोड़ना, गर्व तोड़ना, प्रेम तोड़ना, दोस्ती तोड़ना, सगाई तोड़ना। (१२) स्थिर या दृढ़ न रहने देना। कायम न रहने देना। जैसे, गवाह तोड़ना।

संयो० क्रि०—टाडना।—देना।

मुहा०—कलम तोड़ना = दे० "कलम" के मुहा०। कलम तोड़ना = दे० "कलम" के मुहा०। किला या गढ़ तोड़ना = दे० "गढ़" के मुहा०। तिनका तोड़ना = दे० "तिनका" के मुहा०। पैर तोड़ना = दे० "पैर" के मुहा०। मुँह तोड़ना = दे० "मुँह" के मुहा०। रोटीयाँ तोड़ना = दे० "रोटी" के मुहा०। सिर तोड़ना = दे० "सिर" के मुहा०। हिम्मत तोड़ना = दे० "हिम्मत" के मुहा०।

तोड़वाना—क्रि० सं० दे० "तुड़वाना"।
तोड़ा—संज्ञा पुं० [हिं० तोड़ना] (१) सोने चाँदी आदि की लच्चेदार और चौड़ी जंजीर या सिकरी जिसका व्यवहार प्रायः पण्य की तरह पहनने में होता है। आभूषण के रूप में बना हुआ तोड़ा कई आकार और प्रकार का होता है, और पैरों हाथों या गले में पहना जाता है। कभी कभी सिगाड़ी लोग अपनी प्रगढ़ी के ऊपर चारों ओर भी तोड़ा लपेट लेते हैं। (२) रुपय रखने की टाट आदि की धैली जिसमें १००० रुपय आते हैं। (पट्टी धैली जिसमें २००० रुपय आते हैं, 'तोड़ा' ही कहलाती है।)

मुहा०—(किसी के आगे) तोड़े चलटना या गिनना = (किसी के) सैफेंडों, हजारी खपट देना। बहुत सा द्रव्य देना।
(३) नदी का किनारा। तट। (४) वह मैदान जो नदी के संगम आदि पर बालू मिट्टी जमा होने के कारण घन जाता है।

क्रि० प्र०—पड़ना।

(२) घाटा। घटी। कमी। टोटा।

क्रि० प्र०—घाना।—पड़ना।

(६) रस्सी आदि का टुकड़ा। (७) उतना नाच जितना एक घर में नाचा जाय। नाच का एक टुकड़ा। (८) हल की वह लंबी छकड़ी जिसके आगे जुधा लगा होता है। हरिस। संज्ञा पुं० [सं० शृंग या शेंग] भारियल की जटा की वह रस्ती जिसके ऊपर सूत गुना रहता था और जिसकी सहायता से पुरानी चाला की तोड़दार बंदूक छोड़ी जाती थी। फलीता। पलीता।

घो०—तोड़दार बंदूक = वह बंदूक जो तोड़ा या फलीता दागकर छोड़ी जाय। आज कल इस प्रकार की बंदूक का व्यवहार उठ गया है। दे० "बंदूक"।
संज्ञा पुं० [दे०] (१) मिस्री की तरह की बहुत साफ की हुई चीनी जिससे थोला बनाते हैं। कंदू। (२) वह लोहा जिसे चक्रमक पर मारने से आग निकलती है। (३) वह अंस जिसने अभी तक तीन से अधिक बार यथा न दिशा हो। तीन बार तक ब्याड़े हुई अंस।

तोड़ाई—संज्ञा स्त्री० दे० "तुड़ाई"।

तोड़ाना—क्रि० सं० दे० "तुड़ाना"।

तोड़ियाँ—संज्ञा स्त्री० दे० "तोड़ी"।

तोड़ी—संज्ञा स्त्री० [दे०] एक प्रकार की सरसों।

तोखर्न—संज्ञा पुं० [सं० तूप] निर्पंग। तरकस।

तोतरा—संज्ञा पुं० [का० तोतर = दे०] (१) देर। समूह। उ०—

घर घर बनही के सुरे यदनागी के तोत। भागत हो हित पेत तें नेक नाम कप होत। † (२) खेल। (बच०)

तोतरई—वि० [हिं० वेता + ई (अव०)] सुगमे के जैसा। तोते के रंग का सा। धानी।

संज्ञा पुं० वह रंग जो तोते के रंग का सा है। धानी रंग।
तोतरंगी—संज्ञा स्त्री० [दे०] एक प्रकार की चिड़िया जो पिन्पिना की सी होती है।

तोतरा—वि० दे० "तोतला"।

तोतरा—वि० दे० "तोतला"।

तोतराना—क्रि० अ० दे० "तुतवाना"। उ०—रुखत तोतराव यात मातहि अजुगई। अति सै सुख जाते तोदि मोदि कडु समु-काई।—मुलसी।

तोतला—वि० [हिं० तुतलाना] (१) वह जो तुतला कर बोलता हो। अस्पष्ट बोलनेवाला। जैसे, तोतला बाजक। (२) जिसमें उच्चारण स्पष्ट न हो, जैसे, तोतली जवान।

तोतलाना—क्रि० अ० दे० "तुतलाना"।

तोता—संज्ञा पुं० [का०] (१) एक प्रसिद्ध पक्षी जिसके शरीर का रंग हरा और चोंच का लाल होता है। इसकी दुम छोटी होती है और पैरों में दो आंगे और दो पीछे इस प्रकार चार अंगुलियाँ होती हैं। ये आंगुलियों की बोलकी बहुत अच्छी तरह नकल करते हैं, इसलिये लोग इन्हें घर में पालते हैं और "राम राम" या छेपे मोटे पद सिखावते हैं। ये फल या सुकायम धानान खाते हैं। तोते की छोटी यड़ी सैकड़ों जातियाँ होती हैं जिनमें से अधिकांश फलाहारी और कुछ मांसाहारी भी होती हैं। तोते साधारण छोटी चिड़ियों से बेकर तीन गुट तक की लंबाई के होते हैं। कुछ जातियों के तोतों का स्वर तो बहुत मधुर और मीप होता है और कुछ का बहुत कड़ु तथा, अमिष। इनमें

नर और मादा का रंग प्रायः एकसा ही होता है। अमेरिका में बहुत अधिक प्रकार के तोते पाए जाते हैं। हीरामन, कातिक, नूरी, काकातुमा आदि तोते की जाति के ही हैं। लीतर, सुरगे, मोर, कपूतर आदि पक्षी जिम स्थान पर बहुत दिनों तक पाके जाते हैं यदि कभी बड़े कर ह्वर उधर चले जाय तो प्रायः फिर लौटकर वही स्थान पर आ जाते हैं पर साधारण तोते छूट जाने पर फिर कभी अपने पालनेवाले के पास नहीं आते। इसलिये तोतों की ये-सुरीवती मण्डूर है। बीर। सूया।

मुहा०—हाथों के तोते बड़े जाना = बहुत धरम जाना। सिट-फिटा जाना। तोते की तरह हाथों फेरना या बदलना = बहुत बे-शुर्माह होना। तोते की तरह पढ़ना = बिना समझे बूझे पढ़ना। तोता पाखना = किसी दोष, दुर्बल या रोग को जान बूझ कर बढ़ाना। किसी बुराई या धीमारी से बचने का कोई प्रयत्न न करना।

धौ०—तोतेचरम। तोताचरमी।

(२) बंदूक का घोड़ा।

तोताचद्रम—उंठा पुं० [फा०] तोते की तरह हाथों फेर लेनेवाला। वह जो बहुत बे-शुर्माह हो।

तोताचद्रमी—उंठा धी० [फा०] तेकचम + ई० (न्य०)। ये-सुरीवती। बेबफुई।

तोती—उंठा धी० [फा०] तेक। (१) तोते की मादा। (२) रक्वी हुई थी। इपपदी। रजनी। सुरीतिन। (३) (३०)

तोत्र—उंठा पुं० [सं०] वह छद्मी या चातुक आदि जिसकी सहायता से जागवर हाँके जाते हैं।

तोत्रयेत्र—उंठा पुं० [सं०] विष्णु के हाथ का दंड।

तोद—उंठा पुं० [सं०] पीड़ा। च्यथा।

नि० पीड़ा पहुँचानेवाला। कष्टदायक।

तोदन—उंठा पुं० [सं०] (१) तोत्र। चातुक, कोड़ा, चमेटी आदि। (२) च्यथा। पीड़ा। (३) एक प्रकार का कलदार पेड़ जिसके फल को वैद्यक में कसेला, मीठा, रूखा तथा कफ और वायु-नाराक माना है।

तोदरी—उंठा धी० [फा०] फारस में होनेवाला एक प्रकार का बड़ा कँटीला पेड़ जिसमें पतले छिद्रकेवाले फूल लगते हैं। इसके बीज भटकटैया के बीजों की तरह चपटे पर उससे कुछ अड़े होते हैं और चौपथ के काम में थाने के कारण भारत के भागारों में आकर बिकते हैं। ये बीज तीन प्रकार के होते हैं—जाब, सरेद और पीले। तीनों प्रकार के बीज बहुत रक्तोष्णक, पीटिक और बलवर्द्धक समझे जाते हैं। कहते हैं कि इनके सेवन से शरीर का रंग लाल निरालता है और चेहरे का रंग फाब हो जाता है।

तोदी—उंठा धी० [दे०] एक प्रकार का ह्याल (संगीत)।

तोप—उंठा धी० [तु०] एक प्रकार का बहुत बड़ा ब्रह्म जो प्रायः दो या चार पहियों की गाड़ी पर रखा रहता है और जिसमें ऊपर की घोर बंदूक की नली की तरह, एक बहुत बड़ा नल लगा रहता है। इस नल में छोटी छोटी गोखियों या मेवों आदि से भरे हुए गोले या लंबे गोले रख कर युद्ध के समय शत्रुओं पर चलाए जाते हैं। गोले चलाने के लिये नल के पिछले भाग में बाम्बू रख कर पकौते आदि से उसमें आग लगा देते हैं।

विशेष—तोपें छोटी, बड़ी, मँदानी, पहाड़ी और जहाजी आदि अनेक प्रकार की होती हैं। प्राचीन काल में तोपें केवल मँदानी और छोटी हुआ करती थीं और उनके लौकने के लिये बैज या घोड़े जाते जाते थे। इसके अतिरिक्त घोड़ों, जैदों या हाथियों आदि पर रख कर चलाने योग्य तोपें ब्रह्म हुआ करती थीं जिनके नीचे पहिए नहीं होते थे। आज कल पाश्चात्य देशों में बहुत बड़ी बड़ी जहाजी, मँदानी और किसे तोड़नेवाली तोपें बनती हैं जिनमें से किसी किसी तोप का गोला ७२—७२ मील तक जाता है। इसके अतिरिक्त वाइसिकोर्न, मोर्टरों और हवाई जहाजों आदि पर से चक्राने के लिये ब्रह्म प्रकार की तोपें होती हैं। गिनका मुँह रूप की और होता है, उनसे हवाई जहाजों पर गोले छोड़े जाते हैं। तोपों का प्रयोग शत्रु की सेना मट करने और किसे या मोरचेवर्दी तोड़ने के लिये होता है। रानकुज में किसी के जन्म के समय भयवा हूसी प्रकार की और किसी महत्त्वपूर्ण घटना के समय तोपों में खाली बारूद भर कर केवल शब्द करते हैं।

क्रि० प्र०—चलना।—चलना।—घुटना।—घेरना।—दगना।—दगना।—भरना।—भरना।—सर करना।

धौ०—तोपची। तोपखाना।

मुहा०—तोप कीलना = तोप की नाली में लकड़ों का कुंदा खूब कस कर टेंक देना जिसमें उसमें से गोला न चलाया जा सके। प्राचीन काल में मीठा पाकर शत्रु की तोपें अथवा भागने के समय स्वयं अपनी ही तोपें इस प्रकार फीट दी जाती थीं। तोप की सजामी बतारना = किसी प्रसिद्ध पुरुष के आगमन पर अथवा किसी महत्त्वपूर्ण घटना के समय बिना गैरे के बारूद भर कर शब्द करना। तोप के मुँह पर रख कर बड़ना = बहुत कठिन या प्रसिद्ध देना। तोप दम करना = दे० "तोप के मुँह पर रख कर उड़ाना"। किसी पर या किसी के सामने तोप खगाना = किसी वस्तु को उड़ाने के लिये तोप का मुँह उधर कराना।

तोपखाना—उंठा पुं० [फा०] तोप + फा० खाना। (१) वह स्थान जहाँ तोपें और उनका कुछ सामान रखा हो। (२) गोले

श्रीर सामान की गाड़ियों आदि के सहित युद्ध के लिये सुसज्जित चार से आठ तोपों तक का समूह ।

तोपची—संज्ञा पुं० [च० तोप + ची (प्रत्य०)] तोप चलानेवाला ।
 यह जो तोप में गोला भर कर चलाता हो । गोर्लदाज ।

तोपचीनी—संज्ञा स्त्री० दे० “बोयचीनी” ।

तोपड़ा—संज्ञा पुं० [दे०] (१) एक प्रकार का कपड़तर । (२) एक प्रकार की मण्डी ।

तोपना †—क्रि० सं० [सं० छेपन] नीचे दधाना । ठाँकना । छिपाना ।

तोपयाना †—क्रि० सं० [हिं० तोपना का प्र०] तोपने का काम दूसरे से कराना । ठेकवाना । छिपवाना ।

तोपा—संज्ञा पुं० [हिं० छरपना] एक टाँके में की हुई सिंघाई ।

मुहा०—तोपा भरना = टाँके लगाना । सीना । सीधी सिंघाई करना ।

तोपाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० तोपना] (१) तोपने की क्रिया या भाव । (२) तोपने की मण्डी ।

तोपाना—क्रि० सं० दे० “तोपवाना” ।

तोपास—संज्ञा पुं० [दे०] भ्लाह देनेवाला । भ्लाहूपरदार ।

तोपी—संज्ञा स्त्री० दे० “टोपी” ।

तोफगी—संज्ञा स्त्री० [फा० तोफ़ा] तोफा या बन्दूक होने का भाव । खूबी । श्रद्धा-पन ।

तोफा—वि० [च० तोफ़ा] बढ़िया ।
 संज्ञा पुं० दे० “तोफ़ा” ।

तोबड़ा—संज्ञा पुं० [फा० तोबरा वा तुबरा] चमड़े या टाट आदि का बड़ा थैला जिसमें दाना भर कर छोड़े के खाने के लिये उसके मुँह पर थप देते हैं ।

क्रि० प्र०—चढ़ाना ।

मुहा०—तोबड़ा चढ़ाना = खोजने से रोकना । मुँह बंद करना ।

तोबा—संज्ञा स्त्री० [च० तीबः] अपने किए पापों या दुष्कृत्यों आदि का स्मरण करके पश्चात्तार करने और भविष्य में वैसा पाप या दुष्कृत्य न करने की दृढ़ प्रतिज्ञा । किसी कार्य के विशेषतः अनुचित कार्य के भविष्य में न करने की शपथ-पूर्वक दृढ़ प्रतिज्ञा । (इस शब्द का व्यवहार कभी कभी किसी व्यक्ति या पदार्थ के प्रति घृणा प्रकट करने के समय भी होता है ।)

मुहा०—तोबा लिहा करना या मचाना = रोवे, चिन्तते या दीनता दिखलाते हुए तोबा करना । तोबा तोड़ना = प्रतिज्ञा भंग करना । जिस काम से तोबा कर चुके हो, उसे फिर करना । तोबा करके (कोई बात) कहना = अभिमान छोड़ कर अथवा ईश्वर से डर कर (कोई बात) कहना । तोबा बुल-बाना = किसी को इतना संग या विवश करना कि उसे तोबा करने पड़े । पूर्ण रूप से परास्त करना । चीं बुलवाना ।

तोम—संज्ञा पुं० [सं० तौम] समूह । ढेर । उ०—(क) जातुधान दायन परावन को दुर्ग भयो महातीन वास तिगि तोमनि को थल भो ।—तुलसी । (ख) दिनकर के उदय तोम तिमिर फटत ।—तुलसी । (ग) चहुँ धाँ तें महा तरपे । विजुरी तम तोम में आहु तमासे करे ।—किशोर । (घ) जगे सोम कर तोम सर भई दिवे घर घाढ़ । दूर फाक पाली दुई आली लाढ़ जगाई ।—शू० सत० ।

तोमड़ी—संज्ञा स्त्री० दे० “तूँबड़ी” ।

तोमार—संज्ञा पुं० [सं०] (१) भावे की तरह का एक प्रकार का अन्न जिसका व्यवहार प्राचीन काल में होता था । इसमें लकड़ी के डंडे में आगे की छोर लोहे का बड़ा फल लगा रहता था । शर्बन्दा । शापल । (२) बारह मात्राओं का एक छंद जिसके अंत में एक सुध और एक लघु होता है । जैसे, तब चले बान कराव । फुंकरत जनु बहुत थवाल ॥ कोप्ये समर धीराम । चब विशिख निशिख निकाम ॥ (३) एक देश का नाम जिसका उल्लेख कई पुराणों में है । (४) उस देश का निवासी । (५) राजपूत चत्रियों का एक प्राचीन राजवंश जिसका राज्य दिहरी में आठवीं से बारहवीं शताब्दी तक था । प्रसिद्ध राजा अनीसपाल (पृथ्वीराज के नाम) इसी वंश के थे । पीछे से तोमरों ने फजौज को अपना राज-नगर बनाया था । कन्नौज में इस वंश के प्रसिद्ध राजा जयपाल हुए थे । आज कल इस वंश के बहुत ही कम चत्रिय पाए जाते हैं ।

तोमरिका—संज्ञा स्त्री० दे० “तुबरिका” ।

तोमरी—संज्ञा स्त्री० दे० “तूँबड़ी” ।

तोय—संज्ञा पुं० [सं०] (१) जल । पानी । (२) पूर्वापात्रा मण्डप ।

तोयकर्म—संज्ञा पुं० [सं०] तर्पण ।

तोयकाम—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का घेंत जो जल के समीप उत्पन्न होता है । घानेर ।

तोयकुंभ—संज्ञा पुं० [सं०] मेथार ।

तोयकृच्छ्र—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का व्रत जिसमें जल के सिवा और कुछ आहार प्रद्वय नहीं किया जाता । यह व्रत एक महीने तक करना होता है ।

तोयार्डिब—संज्ञा पुं० [सं०] शोला । पत्थर । करका ।

तोयद—संज्ञा पुं० [सं०] (१) मेघ । बादल । (२) नागरमेधा । (३) घी । (४) वह जो जल दान करता हो (जलदान का माहात्म्य बहुत अधिक माना जाता है)

वि० जल देनेवाला ।

तोयदागम—संज्ञा पुं० [सं०] वर्षा ऋतु । बरसात ।

तोयधर—संज्ञा पुं० दे० “तोपधार” ।

तोयधार—संज्ञा पुं० [सं०] (१) मेघ । (२) मेधा ।

तोपधि—संज्ञा पुं० [सं०] समुद्र । सागर ।

तौयधिमिय-संज्ञा पुं० [सं०] लौंग ।
 तौयनिधि-संज्ञा पुं० [सं०] समुद्र । सागर ।
 तौयनीची-संज्ञा स्त्री० [सं०] धुन्वी ।
 तौयपर्णी-संज्ञा स्त्री० [सं०] करेला ।
 तौयपिप्पली-संज्ञा स्त्री० [सं०] जलपिप्पली ।
 तौयपुष्पी-संज्ञा स्त्री० [सं०] पाटला वृक्ष । पाँवर ।
 तौयप्रसादन-संज्ञा पुं० दे० "तौयप्रसादन फल" ।
 तौयप्रसादन फल-संज्ञा पुं० [सं०] निर्मली ।
 तौयफला-संज्ञा स्त्री० [सं०] तरबूज या ककड़ी आदि की बेल ।
 तौयमुच्च-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बादल । (२) मोथा ।
 तौयचह्नी-संज्ञा स्त्री० [सं०] करेले की बेल ।
 तौयवृक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] सेवार ।
 तौयसूचक-संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिष में वह योग जिससे वर्षा होने की सूचना मिले ।
 तौयाधार-संज्ञा पुं० [सं०] पुष्करिणी । तालाब ।
 तौयाधिवासिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] पाटला वृक्ष ।
 तौयेश-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वरुण । (२) शतभिषा नक्षत्र । (३) पूर्वाषाढा नक्षत्र ।
 तौर-संज्ञा पुं० [सं०] द्वार । झरदार ।
 *संज्ञा पुं० दे० "तौड़" ।
 *वि० दे० "तौरा" ।
 तौरई-संज्ञा स्त्री० दे० "तुई" ।
 तौरण्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) किल्ली धर या नगर का बाहरी फाटक ।
 यहिद्वार, विशेषतः यह द्वार जिसका ऊपरी भाग संदपाकार तथा मालाओं और पताकाओं आदि से सजाया गया हो ।
 (२) वे मालाएँ आदि जो सजावट के लिये रत्नों और दीवारों आदि में बाँध कर लटकाने जाती हैं । यँवनपार । (३) शीवा । गला । (४) महादेव ।
 तौरासमाल-संज्ञा पुं० [सं०] अचंठिकापुत्री ।
 तौरास्फटिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] ह्यूँधन की वल सभा कानाम जो उसने पाँचवीं की मयदानव-बाजी सभा देख कर ह्यूँया धरा बनवाई थी ।
 तौराना*—संज्ञा पुं० दे० "तौरण्य" ।
 तौराना-कि० सं० दे० "तौड़ना" ।
 तौरश्रवा-संज्ञा पुं० [सं०] तौरश्रवम् । शंभिरा आषि का एक नाम ।
 तौरा*—उर्व० दे० "तौरा" ।
 तौराना*—कि० सं० दे० "तुड़ाना" ।
 तौरावान्*—वि० [सं०] स्वभाव । [स्त्री०] तौरावनी । सेववान् । तेज ।
 उ०—विषम विषाद् तौरावति धारा । मय अम भँवर अशक्त अपारा ।—सुखती ।
 तौरिया-संज्ञा स्त्री० [सं०] तूरी । गोदा किनारी आदि बुननेवालों का

लकड़ी का वह छोटा बेलन जिस पर ये-युना हुआ गोदा पट्टा और किनारी आदि बराबर लपेटते जाते हैं ।
 संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वह गाय या भैंस जिसका बचा मर गया हो और जिसका दूध दूहने के लिये कोई युक्ति करनी पड़ती हो । (२) एक प्रकार की सरसों ।
 तौरी-संज्ञा स्त्री० दे० "तुई" ।
 तौल-संज्ञा पुं० [सं०] तौला (तौल) ।
 † संज्ञा स्त्री० दे० "तौल" ।
 संज्ञा पुं० [सं०] नाव का ढाँड़ा । (लखन)
 तौलक-संज्ञा पुं० [सं०] तौला (तौल) । थारह माये का यजन ।
 तौलन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) तौलने की क्रिया । (२) उठाने की क्रिया ।
 संज्ञा स्त्री० [सं०] उठोहन । यह लकड़ी जो छत के नीचे सहारे के लिये लगाई जाती है । चाँद ।
 तौलना-कि० सं० दे० "तौलना" । उ०—लोचन सृग सुभग जोर राग रूप भए भोर भौँद घनुष शर कटाव सुरति ब्याध तौली री ।—सूर ।
 तौलवाना-कि० सं० दे० "तौलवाना" ।
 तौला-संज्ञा पुं० [सं०] तौलक । (१) एक तौल जो बारह माये या छानये रसी की होती है । (२) इस तौल का बाट ।
 तौलाना-कि० सं० दे० "तौलाना" ।
 तौलिया-संज्ञा पुं० दे० "तौलिया" ।
 तौशा-संज्ञा पुं० [सं०] (१) हिंसा । (२) हिंसा करनेवाला । हिंसक ।
 तौशाक-संज्ञा स्त्री० [उ०] दोहरी चादर या खोब में रुई, नारियल की जटा आदि भर कर बनाया हुआ गुदगुदा बिड़ौना । हलका गादा ।
 यौ०—तौशाखाना ।
 तौशाकखाना-संज्ञा पुं० दे० "तौशाखाना" ।
 तौशादान-संज्ञा पुं० [फा०] तौशादान । (१) वह धेड़ी आदि जिसमें मार्ग के लिये यात्री विशेषतः सैनिक अथवा जलपान आदि या दूसरी आवश्यक चीजें रखते हैं । (२) चमड़े का वह छोटा थपस या धेड़ी जो सिपाहियों की पेशी में लगी रहती है और जिसमें कारतूस रहता है ।
 तौशाल-संज्ञा पुं० दे० "तौषल" ।
 तौशा-संज्ञा पुं० [फा०] (१) वह खाक-पदार्थ जो यात्री मार्ग के लिये थपसे साप रख होता है । (२) सामान्य खाने पीने की चीज । जैसे, तौशा से शोरसा ।
 संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का गदना जिसे गाँव की खिंयाँ बाँह पर पहनती हैं ।
 तौशाखाना-संज्ञा पुं० [उ०] तौषक + फा० खाना । वह धड़ा कमरा या स्थान जहाँ राजाओं और अमीरों के पहनने के बड़िया

कपड़े और गहने आदि रहते हैं। बच्चों और धार्मिकों आदि का भांडार।

तोप-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अग्राने या मन मरने का भाव। तुष्टि। संतोष। वृत्ति। (२) प्रसन्नता। आनंद। (३) भागवत के अनुसार स्वर्णसुव मयंतर के एक देवता का नाम। (४) श्रीकृष्णचंद्र के एक सखा का नाम। वि० अल्प। थोड़ा। (अनेकार्थ०)

तोपक-वि० [सं०] संतुष्ट करनेवाला। तोप देने या वृत्त करनेवाला।

तोपक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वृत्ति। संतोष। (२) संतुष्ट करनेकी क्रिया या भाव।

तोपना-क-वि० [सं०] तोप [सं० तोप] (१) संतुष्ट करना। वृत्त करना। (२) संतुष्ट होना। वृत्त होना।

तोपल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कंस के एक अशुर मंड का नाम जिसे धनुर्बल में श्रीकृष्ण ने मार डाला था। (२) मूसल।

तोपिन-वि० [सं०] जिसका तोप हो गया हो, अथवा जिसे वृत्त किया गया हो। तुष्ट। वृत्त।

तोस-संज्ञा पुं० दे० "तोप"।

तोसक-संज्ञा पुं० दे० "तोषक"।

तोसल * संज्ञा पुं० दे० "तोषल"।

तोसा * संज्ञा पुं० दे० "तोषा"।

तोसाखाना-संज्ञा पुं० दे० "तोषाखाना"।

तोसागार * संज्ञा पुं० दे० "तोषाखाना"।

तोहफगी-संज्ञा स्त्री० [सं० तोहफा + फा० गी (प्रत्य०)] भलाई। अच्छागन। उम्दगी।

तोहफा-संज्ञा पुं० [सं०] सौगात। उपायन। भेंट। उपहार। वि० अच्छा। उत्तम। बढ़िया।

तोहमत-संज्ञा स्त्री० [सं०] मिथ्या अभियोग। वृथा लगाना हुआ देण। मूढा कलंक।

क्रि० प्र०—तोड़ना।—देना।—घरना।—लगाना।—लेना।
मुहा०—तोहमत का घर या हठी = वह धार्मिक या स्थान जिसमें वृथा कलंक लगाने की संभावना हो।

तोहमती-वि० [सं० तोहमत + ई (प्रत्य०)] मूढा अभियोग लगानेवाला। मिथ्या कलंक लगानेवाला।

तोहरा-संज्ञा पुं० दे० "तुहारा"।

तोहार-संज्ञा पुं० दे० "तुहारा"।

तोहि-संज्ञा पुं० [हिं० तू या तूँ] तुम्हको। तुम्हें।

तौसना-क्रि० अ० दे० "तौसना"।

तौस-संज्ञा स्त्री० [सं० तौष, हिं० तौव + सं० उष्म, हिं० उष्म, अँस] यह व्यास जो धूप खा जाने के कारण लगे और किसी भक्ति न बुझे।

तौसना-क्रि० अ० [हिं० तौस] गरमी से खुबस जाना। गरमी के कारण संतस होना।

तौसा-संज्ञा पुं० [सं० तौष, हिं० तौव + सं० उष्म, हिं० उष्म, अँस] अशुचि ताप। कड़ी गरमी।

तौस-क्रि० वि० दे० "तौसा"।

क्रि० अ० [हिं० रहते] था। उ०—वेक थाप द्वारा हूँ हुती अगवारे और द्वारे अगवारे कोऊ तौ व त्रिदि काळ में।—प्रभाकर।

तौक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) हँसुली के आकार का गले में पहनने का एक प्रकार का गड़ना। यह पट्टी की तरह कुछ चौड़ा होता है और इसके नीचे धुँवरू आदि लगे होते हैं।

विशेष—प्रायः सुखमान लोग अपने बच्चों को इसी प्रकार का चाँदी का घेरा या गंडा भी पहनाते हैं जिसमें ताबीज आदि बँधी होती है। कभी कभी यह केवल मरत पूरी करने के लिये भी पहनाया जाता है।

(२) इसी आकार की पर तौल में बहुत भारी घुसाकर पट्टी या मँडर जिसे अघरापी या पागल के गले में इस लिये पहना देते जिसमें यह अपने स्थान से हिल न सके। (३) इसी आकार का वह प्राकृतिक चिह्न जो पश्चिमी आदि के गले में होता है। हँसुली। (४) पट्टा। चरारस। (५) कोई गोल घेरा या पदार्थ।

तौक्षिक-संज्ञा पुं० [सं०] धनुराणि।

तौचा-संज्ञा पुं० [दे०] एक प्रकार का गड़ना जिसे कहीं कहीं देहाती क्षिर्या सिर पर पहनती हैं।

तौजा-संज्ञा पुं० [सं० तौजे] वह द्रव्य जो खेतियों को विवाहादि में खर्च करने के लिये पैरानी दिया जाता है। वियाही।

वि० हाथ-उधार। ब्रह्मगर्ह।

तौतातित-संज्ञा पुं० [सं०] (१) जैनियों का भेद। (२) कुमारिल भट्ट का एक नाम।

तौतिक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सुका। मोती। (२) मोती का स्तूप। शुक्ति।

तौन-संज्ञा स्त्री० [दे०] वह रहती जिससे गँया दुहने के समय उसका बड़वा उसके अगले पैर से बांध दिया जाता है।

तौ सर्व० [सं० तौ] यह। सो।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग दो धार्यों का संबंध पूरा करने के लिये "तौन" के साथ होता है।

तौनी-संज्ञा स्त्री० [हिं० तवा का स्त्री० अल्प० रूप] रेटी-सँकने का घुंटा तवा। तहै। तवी।

संज्ञा स्त्री० दे० "तौन"।

सर्व० दे० "तौन"।

तौबा-संज्ञा स्त्री० दे० "तौबा"।

तौर-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का वस्त्र ।

संज्ञा पुं० [अ०] (१) चालढाङ्ग । चालचलन ।

यो०—तौर तरीक या तौर तरीका = चालचलन ।

मुहा०—तौर बेंतौर होना = रंग दंग खगव होना । लक्ष्म्या विगड़ना ।

(२) श्रवस्था । दशा । हालत ।

मुहा०—तौर बेंतौर होना = अन्वया विगड़ना । दशा खगव होना ।

विशेष—उक्त दोनों अर्थों में इस शब्द का व्यवहार प्रायः बहु-वचन में होता है ।

(३) तरीका । तर्ज । दंग । (४) प्रकार । भाँति । तरह ।

संज्ञा पुं० [दे०] मयानी मगने की रस्ती । नेत्री ।

तौरध्वज-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का साम (गान) ।

तौरात-संज्ञा पुं० दे० "तौरैत" ।

तौरायणिक-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो दुरायण व्रज करता हो ।

तौरि * ङ-संज्ञा स्त्री [हिं० तौरि] सुमेर । सुमरी । चक्कर ।

तौरित-संज्ञा पुं० दे० "तौरैत" ।

तौरैत-संज्ञा पुं० [इ०] बहुदियों का प्रधान धर्मग्रंथ जो हजारत मूस पर प्रकट हुआ था । इसमें सृष्टि और आदम की व्यपत्ति आदि विषय हैं ।

तौर्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) डोल मँजीरा आदि बाजे । (२) डोल मँजीरा आदि बजाना ।

तौर्यत्रिक-संज्ञा पुं० [सं०] नावना, गाना और बाजे बजाना आदि काम ।

विशेष—मनु ने इसे कामज व्यसन कहा है और त्याज्य बत-लाया है ।

तौल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) तराजू । (२) तुला राशि ।

संज्ञा स्त्री (१) किसी पदार्थ के मुख्य का परिमाण । भार का माप । वजन । (२) मुख्य ।

विशेष—भारत की प्रधान तौल वे हैं—

४ छटाक = १ पाव

१६ छटाक = १ सेर

४ सेर = १ पंहेरी

४० सेर = १ मन

इससे अन्न, तरकारी आदि भारी और अधिक मान में होने-वाली चीजें तौली जाती हैं । हलकी और थोड़ी चीजें तौलने के लिये इससे छोटी तौल यह है—

८ चावल = २ रत्ती

८ रत्ती = १ मारा

१२ मारा = १ तोला

४ तोला = १ छटाक

इससे दवाएँ सोना, चाँदी और दूसरे बहुमूल्य पदार्थ तौले

जाते हैं । अंगरेजी तौल ड्राम, पाउंड और पाउंड आदि की होती है ।

(२) तौलने की क्रिया या भाव ।

तौलना-क्रि० सं० [सं० तौलन] (१) किसी पदार्थ के मुख्य का परिमाण जानने के लिये उसे तराजू या कटि आदि पर रखना । वजन करना । वेजना ।

संयो० क्रि०—ढालना ।—देना ।

मुहा०—किसी का तौलना = किसी की खुरामद करना ।

(२) किसी छल आदि को चञ्चाने के लिये हाथ को इस प्रकार ठीक करना कि वह अन्न अपने लक्ष्य पर पहुँच जाय । साधना । ठ०—लोचन स्या सुमन जोर राग रूप भए भोर भोंद धनुष शर कटाड़ सुति व्याध तौलै री ।—सूर । (३) देा या अधिक वस्तुओं के गुण मान आदि का, परस्पर तुलना करके, विचार करना । तारतम्य जानना । मिलान करना ।

(४) गाड़ी का पहिया औरंगना । गाड़ी के पहिए में तेल देना ।

तौलवार-संज्ञा स्त्री दे० "तौलवाई" ।

तौलवाना-क्रि० सं० [हिं० तौलना का प्रे०] तौलने का काम दूसरे से कराना । दूसरे को तौलने में प्रवृत्त करना । तौलाना ।

तौला-संज्ञा पुं० [हिं० तौलना] (१) दूध नापने का मिट्टी का बरतन । (२) घनाज तौलनेवाला मनुष्य । भया । (३) तैयिया । (४) मिट्टी का कमेरा । (५) महुए की शराब ।

तौलार-संज्ञा स्त्री [हिं० तौल + आई (अल०)] (१) तौलने की क्रिया या भाव । (२) वह धन जो तौलने के बदले में दिया जाय । तौलने की मजदूरी ।

तौलाना-क्रि० सं० [हिं० तौलना का प्रे०] तौलने का काम दूसरे से कराना । दूसरे को तौलने में प्रवृत्त करना ।

तौलिया-संज्ञा स्त्री [अ० टनेज] एक विशेष प्रकार का मोटा औरंगना जिससे राना आदि करने के उपरत शरीर पोखने हैं ।

तौली-संज्ञा स्त्री [दे०] (१) एक प्रकार की मिट्टी की छोटी प्याली । (२) मिट्टी का चौड़े मुँह का दड़ा बरतन जिसमें अनाज आदि, विशेषतः गुड़, रखते हैं ।

तौलिया-संज्ञा पुं० [हिं० तौलना + पैया (अल०)] अनाज तौलने-वाला मनुष्य । भया ।

तौलार-संज्ञा पुं० [सं०] तुपार का जल । पाले का पानी ।

तौलना-क्रि० अ० [हिं० तौल] गरमी से बहुत प्याकुल होना । ठ०—नाम लै चिन्नात बिलबात अकुजात प्रति तात तात तौसियत मौसियत म्भारही ।—मुब्तली ।

क्रि० सं० गरमी पहुँचा कर प्याकुल करना ।

तौहीन-संज्ञा स्त्री [अ०] अग्रमाल । अग्रप्रतिष्ठा । वेदज्ञती ।

तौहीनी-संज्ञा स्त्री दे० "तौहीन" ।

त्यक्त-वि० [सं०] छोड़ा हुआ । त्यागा हुआ । जिसका त्याग कर दिया गया हो ।

त्यक्तव्य-वि० [सं०] जो छोड़ने योग्य हो । त्यागने योग्य ।

त्यक्ता-वि० [सं०] त्यागनेवाला । जिसने त्याग किया हो ।

त्यगनायि-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का स्तम्भ ।

त्यजन-संज्ञा पुं० [सं०] छोड़ने का काम । त्याग ।

त्यजनीय-वि० [सं०] जो त्यागने योग्य हो । त्याग्य ।

त्यज्यमान-वि० [सं०] जिसका त्याग कर दिया गया हो । जो छोड़ दिया गया हो ।

त्याग-संज्ञा पुं० [सं०] (१) किसी पदार्थ पर से अपना स्वत्व हटा लेने अथवा उसे अपने पास से अलग करने की क्रिया । उत्सर्ग ।

क्रि० प्र०—करना ।

यौ०—त्यागपत्र ।

(१) किसी बात को छोड़ने की क्रिया । जैसे असत्य का त्याग ।

(२) संबंध या उपाग न रखने की क्रिया । (३) विरक्ति आदि के कारण सांसारिक विषयों और पदार्थों आदि को छोड़ने की क्रिया ।

विशेष—हिंदुओं के धर्मग्रंथों में इस प्रकार के त्याग का बहुत कुछ साहाय्य बतलाया गया है । त्याग करनेवाला मनुष्य निष्काम होकर परीषकार के तथा अन्यान्य शुभ कर्म करता रहता है और विषय-वासना या सुलोपनोग आदि से किसी प्रकार का संबंध नहीं रखता । ऐसा मनुष्य मुक्ति का अधिकारी समझा जाता है । गीता में त्याग को संन्यास की ही एक विशेष अवस्था माना है । उसके अनुसार काम-धर्म का परिव्याग तो संन्यास है और कर्मों के फल की याशा न रखना त्याग है । मनु के अनुसार संसार की और सब चीजों तो त्याग्य हो सकती हैं, पर माता, पिता, स्त्री और पुत्र त्याग्य नहीं हैं ।

(४) दान । (५) कन्या-दान । (छि०) ।

त्यागना-क्रि० सं० [सं० त्याग] छोड़ना । तजना । प्रथक् करना । त्याग करना ।

संयो० क्रि०—देना ।

त्यागपत्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह पत्र जिसमें किसी प्रकार के त्याग का उल्लेख हो । (२) हस्ताक्षर । (३) तिलाकनामा ।

त्यागवान्-वि० [सं०] जिसने त्याग किया हो अथवा जिसमें त्याग करने की शक्ति हो । त्यागी ।

त्यागी-वि० [सं० त्यागि] जिसने सब कुछ त्याग दिया हो ।

त्यार्थ या सांसारिक सुख को छोड़नेवाला । विरक्त ।

त्याज्य-वि० [सं०] त्यागने योग्य । जो छोड़ देने योग्य हो ।

त्यार-वि० दे० "त्यार" । उ०—एक कटे एक पड़े एक पटन को त्याग । अड़े रहें केले सुमन मीता तरे द्वार ।—रसनिधि ।

त्यौं-क्रि० वि० दे० "त्यौं" ।

त्युरसा-संज्ञा पुं० दे० "त्योरस" ।

त्यौं-क्रि० वि० [सं० तर + प्तत्] (१) उस प्रकार । उस तरह । उस भाँति । उ०—ये अलि या बलि के अघराणि में भ्रानि चढ़ी कछु माधुरई सी । उगें पद्माकर माधुरी त्यों कुच दोउन की चढती उनई सी । ज्यों कुच खों ही नितंब चढे कुड उगें ही नितंब त्यों चातुरई सी । ज्ञानी न देखी चढ़ाचढ़ि में किदि धों कटि बीच ही लुटि लई सी ।—पद्माकर । (२) उसी समय । तरकाज । जैसे, ज्यों मैं वहाँ पहुँचा त्यों वह बट कर चल दिया ।

विशेष—इसका व्यवहार "ज्यो" के साथ संबंध पूरा करने के लिये होता है ।

त्योरसा-संज्ञा पुं० [हि० ति (तीन) + बरस] (१) विद्युत् तीसरा वर्ष । वह वर्ष जिसे बीते दो वर्ष से हो चुके हों । जैसे, हम त्योरस वहाँ गए थे । (२) आगामी तीसरा वर्ष । वह वर्ष जो दो वर्षों के बाद आनेवाला हो ।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग कभी कभी विशेषण के रूप में भी होता है । जैसे, त्योरस साल ।

त्योरी-संज्ञा स्त्री [हि० विडुई, सं० विकृत (चक्र)] शयलोकन । चित्त-वन । दृष्टि । निगाह ।

मुहा०—त्योरी चढ़ना या बदलना = दृष्टि का ऐसी-अवस्था में हो जाना जिससे कुछ मोक्ष प्राप्त हो । अर्थात् चढ़ना । त्योरी में बल पड़ना = त्योरी चढ़ना । त्योरी चढ़ाना या बदलना = भीड़ चढ़ाना । अर्थात् चढ़ाना । दृष्टि या आकृति से मोक्ष के चिह्न प्रकट करना । त्योरी में बल डालना = त्योरी-चढ़ाना ।

त्योहार-संज्ञा पुं० [सं० तियि + वार] वह दिन जिसमें कोई बड़ा धार्मिक या जातीय उत्सव मनाया जाय । पर्व-दिन । जैसे, हिंदुओं के त्योहार—दसहरा, दीवाली, दशै आदि; मुसलमानों के त्योहार—ईद, शब-बरात आदि; ईसाइयों के त्योहार, श्रद्धा दिन, शुक्र-आहटे आदि ।

मुहा०—त्योहार मनाना = पर्व या उत्सव के दिन आभोग प्रभोग करना ।

त्योहारी-संज्ञा स्त्री [हि० त्योहार + ई (प्रत्यय)] वह धन जो किसी त्योहार के उपलक्ष में छोटे, लड़कें या नौकरों आदि को दिया जाता है ।

त्यौं-क्रि० वि० दे० "त्यौं" ।

त्योनार-संज्ञा पुं० [हि० तेवर ?] ढंग । सर्ज । उ०—(क) थाये ईं मनुहारि हित धारि अपूर बहार । जलि जीके नीके सुखद ये पीके त्योनार ।—शं० सत० । (ख) हई गुड़ी बेनी लखें गुदिये के त्योनार । लागे नीर सुचाबने नीति सुलाये-वार ।—बिहारी ।

ल्यौर-संज्ञा पुं० दे० 'ल्योरी' उ०—(क) ल्यौरक ते विष चित चढ़े कहँ चढ़ी है ल्यौर।—बिहारी। (ख) तेह तरैरा ल्यौर करि क्त करियत रग खोल। लीक नहीं यह पीक की सुति मण्य कजक कपोल।—बिहारी।

ल्योराना-कि० अ० [हिं० ल्यौर] माया घूमना। सिर में चकर खाना।

ल्योरी-संज्ञा स्त्री० दे० 'ल्योरी'।

ल्यौरस-संज्ञा पुं० दे० 'ल्यौरस'।

ल्योहार-संज्ञा पुं० दे० 'ल्योहार'।

ल्योहारी-संज्ञा स्त्री० दे० 'ल्योहारी'।

ल्यंग-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन नगर का नाम जो पहले रामा हरिचंद्र का राजनगर था।

ल्यंग-संज्ञा स्त्री० [सं०] [वि० ल्यंगम्] (१) लज्जा। लज्जा। नाम। हया। उ०—ही लज्जा मीदा प्रया सकुच न करु धिनु काज। पिय प्यारे पै चलयि बलि श्रयण खात कि लज्जा।—नंददास। (२) द्विनाल स्त्री। पुरचकी।

ल्यौं—प्रारंभ = (१) दिनाल स्त्री। (२) वेश्या। रंडी।

(३) कीर्ति। यश।

ल्यौं [सं०] लज्जित। शर्मिंदा। उ०—भव धनु दलि जानकी विवाही भये विहाज सुपाल प्रार्हैं।—तुलसी।

ल्यपिन-वि० [सं०] लज्जित। शर्मिंदा।

ल्यपु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सीसा। (२) रांगा।

ल्यपुकर्फी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) ल्यौरा। (२) ककड़ी।

ल्यपुरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] छोटी झूलायची।

ल्यपुल-संज्ञा पुं० [सं०] रांगा।

ल्यपुय-संज्ञा पुं० [सं०] (१) रांगा। (२) ल्यौरा।

ल्यपुयो-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) ककड़ी। (२) ल्यौरा।

ल्यपुस-संज्ञा पुं० [सं०] (१) रांगा। (२) ककड़ी।

ल्यपुसी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) ककड़ी। (२) ल्यौरा। (३) यदा ईदापन।

ल्यप्ला-संज्ञा स्त्री० [सं०] जमी हुई रबेयना या कफ।

ल्यय-वि० [सं०] (१) तीन। उ०—महाजोर प्रयताप न जाई।—तुलसी। (२) तीसरा।

ल्ययी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) तीन वस्तुओं का समूह। त्रिगुह। तीघट। जैसे, ब्रह्मा, विष्णु और महेश। उ०—(क) वेद प्रथी ब्रह्म राजसिरी परिप्लुता शुभ योगमई है।—केशव। (ख) किर्षी सिंगार सुखमा सुमैम मिले चले जग चित चित खेन। अद्भुत प्रथी किर्षी पठई है विधि भग खोगन सुख देन।—तुलसी। (२) सोमरासी खत। (३) दुर्गा।

ल्ययीतन-संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य।

ल्ययीधम्म-संज्ञा पुं० [सं०] वैदिक धम्म, जैसे उरोतिष्ठोम यश भादि।

ल्ययीमय-संज्ञा पुं० (१) सूर्य। (२) परमेश्वर।

ल्ययीमुख-संज्ञा पुं० [सं०] माहायण।

ल्ययोदश-वि० [सं०] तेह।

ल्ययोदशी-संज्ञा स्त्री० [सं०] किसी पक्ष की तेहवाँ तिथि। तेरस।

ल्ययोषी-पुराणानुसार यह तिथि धार्मिक कार्य करने के लिये बहुत उपयुक्त है।

ल्यय्याहण-संज्ञा पुं० [सं०] पंद्रहवें द्वार के एक ध्यास का नाम।

ल्यय्यारुलि-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन ऋषि का नाम जो भागवत के अनुसार लोमहर्षण ऋषि के शिष्य थे।

ल्यय्या-संज्ञा पुं० दे० 'ल्यया' (तस्ती)। उ०—ल्यया घरु आघार भत के बहुत खिलौना। परिया टमरी बतरदान रूपे के सीना।—सूरन।

ल्ययस-संज्ञा पुं० [सं०] (१) जैन मत के अनुसार एक प्रकार के जीव। इन जीवों के चार प्रकार हैं। (क) द्वीद्विध अर्थात् दो इंद्रियवाले जीव। (ख) त्रीद्विध अर्थात् तीन इंद्रियवाले जीव। (ग) चतुर्द्विध अर्थात् चार इंद्रियवाले जीव और (घ) पंचद्विध अर्थात् पाँच इंद्रियवाले जीव। (२) वन। जंगल। (३) जंगम। (४) असरेणु।

ल्ययसन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) भय। डर। (२) उद्वेग।

ल्ययसना-कि० अ० [सं० ल्ययसन] भय से काँप उठना। डरना। लौक खाना। उ०—(क) कहु राजत सूरन अरुन ढारे। जोर लखण्य के अनुतराग भरे। चितवत चित कुमुदिनी प्रसे। चोर चकोर चिता से लसे।—केशव। (ख) नवत अनेगा होय सो मुग्धा केशवदास। पैले बोलै बाल विधि हैसे प्रसे सचित्तास।—केशव।

ल्ययसर-संज्ञा पुं० [सं०] जेलाहों की डरकी। तसर।

ल्ययसरेणु-संज्ञा पुं० [सं०] यह भ्रमकता हुआ कण जो छेद में से आती हुई धूप में नाचता वा घूमता दिखाने देता है। सूक्ष्म कण।

ल्ययशेष-मनु के अनुसार एक असरेणु तीन परमाणुओं से मिलकर और वैदक के अनुसार तीन परमाणुओं से मिलकर बना होता है।

ल्ययशो-पुराणानुसार सूर्य की एक स्त्री का नाम।

ल्ययसाना-कि० अ० [सं०] [हिं० ल्ययसाना] डराना। घमैकाना। भय दिखाना। उ०—(क) सूर रयाम बोधे ऊखल यहि माता दरत न बति हि प्रसाये।—सूर। (ख) जाके शिष्य ध्यावत निमि पातर सहस्रानन जेहि गावै हो। सो हरि राधक बदन चंद को नैन चकोर प्रसावै हो।—सूर।

ल्ययसित-वि० [सं०] (१) भयभीत। डरा हुआ। उ०—सय प्रसंग महिसुरन सुनाई। ल्ययसिन परतो खयनी अनुजाई।—तुलसी। (२) पीड़ित। सताया हुआ। उ०—लीत

त्यक्त-वि० [सं०] छोड़ा हुआ। त्यागा हुआ। जिसका त्याग कर दिया गया हो।

त्यक्तव्य-वि० [सं०] जो छोड़ने योग्य हो। त्यागने योग्य।

त्यक्ता-वि० [सं०] त्यागनेवाला। जिसने त्याग किया हो।

त्यग्नायि-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का साम।

त्यजन-संज्ञा पुं० [सं०] छोड़ने का काम। त्याग।

त्यजनीय-वि० [सं०] जो त्यागने योग्य हो। त्याज्य।

त्यजमान-वि० [सं०] जिसका त्याग कर दिया गया हो। जो छोड़ दिया गया हो।

त्याग-संज्ञा पुं० [सं०] (१) किसी पदार्थ पर से श्रपना स्वयं हटा लेने अथवा उसे श्रपने पात्र से अलग करने की क्रिया। उत्सर्ग।

क्रि० प्र०—करना।

स्यौ०—त्यागपत्र।

(१) किसी बात को छोड़ने की क्रिया। जैसे असत्य का त्याग।

(२) संबंध या लगाव न रखने की क्रिया। (३) विरक्ति आदि के कारण सांसारिक विषयों और पदार्थों आदि को छोड़ने की क्रिया।

विशेष—हिंदुओं के धर्मग्रंथों में इस प्रकार के त्याग का बहुत कुछ आह्वान बतलाया गया है। त्याग करनेवाला मनुष्य निष्काम होकर परोपकार के तथा अन्याय्य शुभ कर्म करता रहता है और विषय-वासना या सुखोपभोग आदि से किसी प्रकार का संबंध नहीं रखता। ऐसा मनुष्य सुक्ति का अधिकारी समझा जाता है। गीता में त्याग को संन्यास की ही एक विशेष अवस्था माना है। उसके अनुसार काम्य-धर्म का परिष्कार तो संन्यास है और कर्मों के फल की आशा न रखना त्याग है। मनु के अनुसार संसार की और सब चीजें तो त्याज्य ही सद्धती हैं, पर माता, पिता, श्री और पुत्र त्याग्य नहीं हैं।

(१) दान। (२) कन्या-दान। (हिं०)।

त्यागना-क्रि० सं० [सं० त्याग] छोड़ना। तजना। टूटक करना। त्याग करना।

संयो० क्रि०—देना।

त्यागपत्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह पत्र जिसमें किसी प्रकार के त्याग का उल्लेख हो। (२) दस्तौफा। (३) तिजकनामा।

त्यागवान्-वि० [सं०] जिसने त्याग किया हो अथवा जिसमें त्याग करने की शक्ति हो। त्यागी।

त्यागी-वि० [सं० त्यागिन्] जिसने सब कुछ त्याग दिया हो। स्वार्थ या सांसारिक सुख को छोड़नेवाला। विरक्त।

त्याज्य-वि० [सं०] त्यागने योग्य। जो छोड़ देने योग्य हो।

त्यार्त्त-वि० दे० "सैवार"। उ०—एक कटे एक पड़े एक कटन को सार। अड़े रहें कते सुमन मीता सेरे द्वार।—रसनिधि।

त्यौं-क्रि० वि० दे० "त्थों"।

त्यूरसा-संज्ञा पुं० दे० "स्यौरस"।

स्यौं-क्रि० वि० [सं० स्य + पत्य] (१) उस प्रकार। उस तरह। उस भाँति। उ०—ये अति या बलि के पधरानि में श्रानि चडी कडु माधुरई सी। उभों पद्माकर माधुरी स्यौं कुच दोशन की चढती उनई सी। ज्यों कुच स्यौं ही नितंब चढे कुडु उभों ही नितंब स्यौं चानुरई सी। जानी न ऐसी चडाचडि में किहि धौं कटि बीच ही लूटि लई सी।—पद्माकर। (२) उसी समय। तत्काल। जैसे, ज्यों में वहाँ पहुँचा स्यौं वह शट कर चल दिया।

विशेष—इसका व्यवहार "ज्यों" के साथ संबंध पूरा करने के लिये होता है।

त्यौरस-संज्ञा पुं० [हिं० ति (तीन) + रस] (१) पिवला तीसरा वर्ष। वह वर्ष जिसे धीरे दो बारस हो चुके हों। जैसे, हम थोरस वहाँ गए थे। (२) आगामी तीसरा वर्ष। वह वर्ष जो दो वर्षों के बाद आनेवाला हो।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग कभी कभी विशेषण के रूप में भी होता है। जैसे, त्यौरस साल।

त्यौरी-संज्ञा स्त्री० [हिं० विठुरी, सं० विट्ट (चक्र)] अथलोजन। चितवन। दृष्टि। निगाह।

मुद्दा-स्यौरी चढ़ना या बदलना = दृष्टि का ऐसी अवस्था में हो जाना जितने कुछ शोध मलके। अर्थात् चढ़ना। स्यौरी में बल पड़ना = स्यौरी चढ़ना। स्यौरी चढ़ाना या बदलना = गीह चढ़ाना। अर्थात् चढ़ाना। दृष्टि या श्रुति से शोध के विह प्रकट करना। स्यौरी में बल डालना = स्यौरी चढ़ाना।

त्यौरार-संज्ञा पुं० [सं० तिथि + वार] वह दिन जिसमें कोई बड़ा धार्मिक या जातीय उत्सव मनाया जाय। पर्व-दिन। जैसे, हिंदुओं के त्यौरार—दसहरा, दीवाली, होली आदि; मुसलमानों के त्यौरार—ईद, शव-बरात आदि; ईसाइयों के त्यौरार, चडा दिन, गुड-फ्राइडे आदि।

मुद्दा-त्यौरार मनाया = पर्व या उत्सव के दिन आभोग मनाद करना।

त्यौरारी-संज्ञा स्त्री० [हिं० त्यौरार + ई (प्रत्यय)] वह धन जो किसी त्यौरार के उपलक्ष में छोटी, लड़कें या बिकरों आदि को दिया जाता है।

स्यौं-क्रि० वि० दे० "त्थों"।

त्यौनार-संज्ञा पुं० [हिं० नेर ?] वंग। तम। उ०—(क) चापे हैं मनुवारी हित धारि भएर बहार। लखि जीके नीके सुखद ये पीके स्यौनार।—शं० सत०। (ख) रहे गृही वेनी लखे गुहिये के स्यौनार। लागे नीर चुचावने मीति सुचावे यार।—बिहारी।

स्यौर-संज्ञा पुं० दे० "स्योरी" उ०—(क) सौसक ते पिय चित
चत्रो कहैं चत्री है स्यौर।—विहारी। (ख) तेह तरेरो स्यौर
करि कत करिपत दग खोल। लीक नहीं यह पीक की सुति
मयि कन्नक कपोल।—विहारी।

स्यौराना-कि० अ० [हिं० स्यौर] माया भूमना। तिर में
चकर भाना।

स्योरी-संज्ञा स्त्री० दे० "स्योरी"।

स्यौरस-संज्ञा पुं० दे० "स्यौरस"।

स्योहार-संज्ञा पुं० दे० "स्योहार"।

स्योहारी-संज्ञा स्त्री० दे० "स्योहारी"।

स्रग-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन नगर का नाम जो पहले राजा
हरिश्चंद्र का राजनगर था।

स्रपा-संज्ञा स्त्री० [सं०] [हिं० स्रमद्] (१) लज्जा। लज्जा।
शर्म। हया। उ०—हैं लज्जा मोड़ा स्रपा सकुच न कर विनु
काम। पिय प्यारे पै चखिय यकि स्रपाप तगत कि लज्जा।—
नंददास। (२) क्षिप्राल स्त्री। पुरचकी।

स्यो-संज्ञा पुं० दे० (१) क्षिप्राल स्त्री। (२) धरया। रडी।

(३) कीर्ति। यश।

विं० [सं०] क्षमिजत। शर्मिदा। उ०—भव धनु दूखि
जानकी विवाही भये विहाज नपाल त्रस हैं।—तुलसी।

स्रपिन-विं० [सं०] लज्जित। शर्मिदा।

स्रपु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सीसा। (२) रंग।

स्रपुककटी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सीसा। (२) ककड़ी।

स्रपुरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] श्वेती हृदयपत्नी।

स्रपुल-संज्ञा पुं० [सं०] रंग।

स्रपुप-संज्ञा पुं० [सं०] (१) रंग। (२) सीसा।

स्रपुपी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) ककड़ी। (२) सीसा।

स्रपुस-संज्ञा पुं० [सं०] (१) रंग। (२) ककड़ी।

स्रपुसी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) ककड़ी। (२) सीसा। (३) यदा
ईद्रापन।

स्रपसा-संज्ञा स्त्री० [सं०] जमी हुई रक्षेयता या कफ।

स्रय-विं० [सं०] (१) तीन। उ०—महाबोर प्रयताप न जरहैं।
—तुलसी। (२) तीसरा।

स्रयी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) तीन वस्तुओं का समूह। त्रिपुट्ट।
तीसद। जैसे, प्रज्ञा, विष्णु और महेश। उ०—(क) वेद
त्रयी अरु रामसिरी परिपूरनता शुभ योगामहं है।—केशव।
(ख) किर्यां निंगार सुखमा सुप्रेम मिले चले जग चित पित
क्षेम। अद्भुत त्रयी किर्यां पढ़ई है विधि मग जोगन सुख
देन।—तुलसी। (२) तीसराही क्षता। (३) दुर्गा।

स्रयौतन-संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य।

स्रयोधर्मी-संज्ञा पुं० [सं०] वैदिक धर्म, जैसे ज्योतिषोम यज्ञ
आदि।

स्रयोमय-संज्ञा पुं० (१) सूर्य। (२) परमेधर।

स्रयोमुख-संज्ञा पुं० [सं०] ब्राह्मण।

स्रयोदश-विं० [सं०] वेद।

स्रयोदशी-संज्ञा स्त्री० [सं०] किसी पक्ष की तेरहवीं तिथि। तेरस।

विशेष—पुराणानुसार यह तिथि धार्मिक कार्य करने के लिये
बहुत उच्युक्त है।

स्रय्याहण-संज्ञा पुं० [सं०] पंद्रहवें द्वापर के एक व्यास का नाम।

स्रय्याहणि-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन ऋषि का नाम जो भाग-
वन के अनुसार लोमहर्षण ऋषि के शिष्य थे।

स्रष्टा-संज्ञा पुं० दे० "तष्टा" (तरतरी)। उ०—प्रष्टा सरु आघार
भने के बहुत खिलैताना। परिया टमरी अतरदान रूपे के
सीना।—सूदन।

स्रस-संज्ञा पुं० [सं०] (१) जैन मत के अनुसार एक प्रकार के
जीव। इन जीवों के चार प्रकार हैं। (क) हींदिय स्रयात्
देा इंद्रियोंवाले जीव। (ख) ग्रींदिय स्रयात् तीन इंद्रियोंवाले
जीव। (ग) चतुरिंद्रिय स्रयात् चार इंद्रियोंवाले जीव और
(घ) पंचेंद्रिय स्रयात् पांच इंद्रियोंवाले जीव। (२) वन।
जंगल। (३) जंगम। (४) प्रसेखु।

स्रसन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मय। डर। (२) उद्वेग।

स्रसना*—कि० अ० [सं० स्रसन] मय से कांप उठना। डरना।

स्यौफ खाना। उ०—(क) कहु रामत सूरज अरुन
पारे। अनु लखण्य के अनुराग भरे। चितवन चित कुमुदिनी
प्रसे। चोर चकोर चिता सो लसे।—केशव। (ख) नवल
अनंगा होय सो सुग्धा केतवदास। येले वाले बाल विधि
हैंसे त्रै सवितास।—केशव।

स्रसर-संज्ञा पुं० [सं०] जोलाहों की उरकी। तसर।

स्रसरणु-संज्ञा पुं० [सं०] वह धमकता हुआ कण जो ध्रुव में से
आती हुई ध्रुव में नाचता वा घूमता दिखाई देता है।
सूरज कण।

विशेष—मनु के अनुसार एक प्रमणु तीन परमाणुओं से
मिन्नकर और वैदक के अनुसार तीन परमाणुओं से मिन्नकर
यना होता है।

संज्ञा स्त्री० पुराणानुसार सूर्य की एक स्त्री का नाम।

स्रसाना*—कि० अ० [हिं० स्रसाना] डराना। घमंकाणा। भय
दिखाना। उ०—(क) सूर सयाम बांधे ऊछल गहि माता
दत्त न अति हि प्रसागे।—सूर। (ख) जाके शिव प्यावत
निसि बासर सहमान जेहि गाथे हो। सो हरि राधा वदन
चंद्र को नैन चकोर त्रसाथे हो।—सूर।

स्रसित*—विं० [सं० दल] (१) भयभीत। डरा हुआ। उ०—
सय प्रमंग भदिसुरन सुनाई। स्रसित परगे सवनी अकुजाई।
—तुलसी। (२) पीड़ित। सन्नाया हुआ। उ०—मीत

प्रसित कहँ अग्नि समाना । रोग प्रसित कहँ औपधि
जाना ।—गोपाल ।

प्रसुर-वि० [सं०] मीर । दरपोक ।

प्रस्त-वि० [सं०] (१) भयभीत । टरा हुआ । (२) पीड़ित ।
दुःखित । जिसे कष्ट पहुँचा हो । (३) चकित । जिसे
आश्चर्य हुआ हो ।

प्राटक-संज्ञा पुं० [सं०] योग के पट् कर्मों में से छटा कर्म या
साधन । इसमें अनिमेष रूप से किसी धिंदु पर दृष्टि
रखते हैं ।

प्राण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) रचा । यचाव । दिक्राजत । (२)
रचा का साधन । कवच । इस अर्थ में इसका व्यवहार
योगिक शब्दों के अंत में होता है । जैसे, पादप्राण,
अंगप्राण । (३) प्रायमाण्यत्वता ।

प्राणक-संज्ञा पुं० [सं०] रचक ।

प्राण-संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रायमाण्य लता ।

प्रातव्य-वि० [सं०] रचा करने के योग्य । यचने के लायक ।

प्राता-संज्ञा पुं० [सं०] रचक । यचनेवाला । उ०—तप
यज्ञ रचै प्रपंच विधाता । तप यज्ञ विष्णु सकल जग-
प्राता ।—गुजरी ।

प्रातार-संज्ञा पुं० [सं०] रचक । उ०—मोक्षप्रदा अरु धर्ममय
मधुरा मम प्रातार ।—गोपाल ।

विशेष—संस्कृत में यह लातु (प्राता) शब्द का बहुवचन रूप है ।

प्रापुप-संज्ञा पुं० [सं०] रगि का बना हुआ चरतन या और
कोई पदार्थ ।

प्रायंती-संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रायमाण्य लता ।

प्रायमाण्य-संज्ञा पुं० [सं०] धनपत्रों की तरह की एक प्रकार की
लता जो जमीन पर फैलती है । इसमें बीच बीच में छोटी
छोटी उँदिया निकलती हैं जिनमें कसैले बीज होते हैं ।
इन बीजों का व्यवहार औषध में होता है । वैद्यक में इन
बीजों को शीतल, दस्तावर और त्रिदोषनाशक माना है ।

पय्यां—अनुना । अयनी । गिरिजा । देववाला । यज्ञप्रदा ।
पाखिनी । भयनाशिनी । रक्षिणी ।
वि० रचक । रचा करनेवाला ।

प्रायमाण्य-संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रायमाण्य लता ।

प्रायमाण्यिका-संज्ञा स्त्री० दे० “प्रायमाण्य” ।

प्रायवृत्त-संज्ञा पुं० [सं०] गंधीर या मुँडिरी नामक साग ।

प्रास-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) डर । भय । (२) कष्ट । तकलीफ ।
(३) मरिच का एक दोष ।

प्रासक-संज्ञा पुं० (१) डरानेवाला । भयभीत करनेवाला । (२)
निवारक । दूर करनेवाला । उ०—त्रिविध ताप प्रासक
विमुहानी । शम सख्य सिंधु समुहानी ।—गुजरी ।

प्रासन-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० प्रासनीय] (१) डराने का कार्य ।
(२) डरानेवाला । भय दिखानेवाला ।

प्रासना *—क्रि० सं० [सं० प्रासन] डराना । भय दिखाना ।
प्रास देना । उ०—काहे को कलह नाप्यो दाख्य दधिरे
बध्मो कठिन लखट है प्रास्यो मेरो भैया ?—सूर ।

प्रासित-वि० [सं०] (१) भयभीत । डराया हुआ । (२) जिसे
कष्ट पहुँचाया गया हो । प्रल ।

प्राधि-अर्थ० [सं०] बचायो । रचा करो । प्राण दे । उ०—
दाख्य तप जय कियो राजसुत तप कथ्यो सुरसोक । प्राधि
प्राधि हरि सो सय भाग्यो दूर करो सब शोक ।—सूर ।

मुहा०—प्राधि प्राधि करना=दया या अभयदान के लिये गिड़-
गिड़ाना । दया या रक्षा के लिये प्रार्थना करना ।

त्रिंश-वि० [सं०] तीसवाँ ।

त्रिंशत्-वि० [सं०] तीस ।

त्रिंशत्पत्र-संज्ञा पुं० [सं०] कोशे का फूल । कुमुदिनी ।

त्रिंशदा-संज्ञा पुं० [सं०] (१) किसी पदार्थ का तीसवाँ भाग ।
किसी चीज के तीस भागों में से एक भाग । (२) एक राशि
का तीसवाँ भाग (या तिमी) जिसका विचार फलित ज्योतिष
में किसी बालक का जन्मफल निकालने के लिये होता है ।

विशेष—फलित ज्योतिष में मेष, मिथुन, सिंह, तुला, धन और
कुंभ ये छ राशियाँ विषम और वृष, कर्क, कन्या, वृश्चिक,
मकर और मीन ये छः राशियाँ सम मानी जाती हैं । त्रिंशदा
का विचार करने में प्रत्येक विषम राशि के २, २, ८, ७,
और २ त्रिंशदों के क्रमसे मंगल, शनि, बुधरश्मि, बुध
और शुक्र अधिपति या स्वामी माने जाते हैं और सम २, ७,
८, २, और २ त्रिंशदों के स्वामी यहाँ पंचांग प्रह विपरीत
क्रम से—अर्थात् शुक्र, बुध, बुधरश्मि, शनि और मंगल
माने जाते हैं । अर्थात्—प्रत्येक विषम राशि के

१	से	२	त्रिंशदा	तक के	अधिपति—मंगल
६	”	१०	”	”	” शनि
११	”	१८	”	”	” बुधरश्मि
१६	”	२२	”	”	” बुध और
२१	”	३०	”	”	” शुक्र

माने जाते हैं । पर सम राशियों में त्रिंशदों और प्रहों के क्रम
उलट जाते हैं और प्रत्येक राशि के

१	से	२	त्रिंशदा	तक के	अधिपति—शुक्र
६	”	१२	”	”	” बुध
१३	”	२०	”	”	” बुधरश्मि
२१	”	२२	”	”	” शनि और
२६	”	३०	”	”	” मंगल

माने जाते हैं ।

प्रत्येक मह के त्रिशंश में जन्म का अलग अलग फल माना जाता है। जैसे—मंगल के त्रिशंश में जन्म होने का फल स्त्रीव्रत, धनहीन, शोषी और अस्वामिनी आदि होना और बुध के त्रिशंश में जन्म होने का फल बहुत धनवान् और सुखी होना माना जाता है।

त्रि-वि० [सं०] तीन।

त्रिशोष—दसका प्यवहार योगिक शब्दों में, आरंभ में, होता है। जैसे, त्रिकाल, त्रिकूट, त्रिफला आदि।

त्रिकंट-संज्ञा पु० दे० "त्रिकंटक"।

त्रिकंटक-संज्ञा पु० [सं०] (१) गोलू । (२) त्रिखल । (३) तिपारा यूहर । (४) जवासा । (५) टंगरा मज्जली ।

वि० जिसमें तीन कंठ या वेदों हैं।

त्रिक-संज्ञा पु० [सं०] (१) तीन का समूह। जैसे, त्रिकमय, त्रिकाना, त्रिकुटा और त्रिभेद। (२) रीढ़ के नीचे का भाग जहाँ श्लेष्मकी हड्डियाँ मिलती हैं। (३) कमर । (४) त्रिफला । (५) त्रिकुट । (६) त्रिमद । (७) त्रिरसुहानी । (८) तीन रूप लेकड़े का रूढ़ या जाम आदि । (९) मनु ।

त्रिककुट-संज्ञा पु० [सं०] (१) त्रिकूट पर्वत । (२) त्रिष्णु । (विष्णु ने एक बार बाराह का अवतार धारण किया था, इसीसे इनका यह नाम पड़ा) । (३) दस दिनों में होनेवाला एक प्रकार का यज्ञ ।

वि० जिसे तीन शृंग हैं।

त्रिककुम्भ-संज्ञा पु० [सं०] (१) वदान वायु जिससे उकार और झुंक् आती है। (२) नौ दिनों में होनेवाला एक प्रकार का यज्ञ ।

त्रिकट-संज्ञा पु० दे० "त्रिकंट"।

त्रिकट्ट-संज्ञा पु० [सं०] सोठ, मिर्च और पीपल ये तीन फल वस्तुएँ। वैयक में इन तीनों के समूह को दीपन तथा खाँसी, साँस, कफ, मेह, भेद, रक्षीपद और पीनस आदि का नाशक माना है।

त्रिककुट-संज्ञा पु० दे० "त्रिकट्ट"।

त्रिकत्रय-संज्ञा पु० [सं०] त्रिफला, त्रिकुटा और त्रिभेद। अर्घात् इष्ट, बहिष्ठा और आबला; सोठ, मिर्च और पीपल तथा मोथा, चीता और वायविडंग इन सब का समूह।

त्रिकर्मा-वि० [सं०] वह जो पढ़े पढ़ाए, यज्ञ करे और दान दे। द्विज।

त्रिकाल-संज्ञा पु० [सं०] (१) तीन मात्राओं का शब्द। प्लुत। (२) दोहे का एक भेद जिसमें ६ गुरु और ३० लघु अक्षर होते हैं। जैसे, अति अरार जो सरितवर्ष, जो मृष सेतु कराहि"। चङ्गि पिपीलिका परम लघु, विन भ्रम पारहि जाहि"।—सुखसी।

वि० जिसमें तीन कलाएँ हैं।

त्रिकटिंग-संज्ञा पु० दे० "तैलंग"।

त्रिकट्टल-संज्ञा पु० [सं०] एक प्रकार का वात रोग जिसमें कमर की तीनों हड्डियों, पीठ की तीनों हड्डियों और रीढ़ में पीड़ा उत्पन्न हो जाती है।

त्रिकांड-संज्ञा पु० [सं०] (१) अमरकोप का दूसरा नाम। (अमरकोप में तीन कांड हैं, इसीसे उसका यह नाम पड़ा)। (२) निरुक्त का दूसरा नाम। (निरुक्त में भी तीन कांड हैं, इसीसे उसका यह नाम पड़ा)।

वि० जिसमें तीन कांड हैं।

त्रिकांडी-वि० [सं० त्रिकांडीय] जिसमें तीन कांड हैं। तीन कांडों-वाला।

संज्ञा स्त्री० जिस ग्रंथ में कर्म, उपासना और ज्ञान तीनों का वर्णन हो अर्थात् वेद।

त्रिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] कुएँ पर का वह चौखट जिसमें गाराही लगी होती है।

त्रिकाम-संज्ञा पु० [सं०] बुद्धदेव।

त्रिकार्षिक-संज्ञा पु० [सं०] सोठ, अतीस और मोथा इन तीनों का समूह।

त्रिकाल-संज्ञा पु० [सं०] (१) तीनों समय—भूल, वर्तमान और भविष्य। (२) तीनों समय—प्रातः, मध्याह्न और सायं।

त्रिकालज्ञ-संज्ञा पु० [सं०] भूल, वर्तमान और भविष्य का जानेवाला व्यक्ति। सर्वज्ञ।

त्रिकालज्ञता-संज्ञा स्त्री० [सं०] तीनों कालों की बातें जानने की शक्ति या भाव।

त्रिकालदर्शक-वि० [सं०] तीनों कालों की बातों को जाननेवाला। त्रिकालज्ञ।

संज्ञा पु० ज्ञापि।

त्रिकालदर्शिता-संज्ञा स्त्री० [सं०] तीनों कालों की बातों को जानने की शक्ति या भाव। त्रिकालज्ञता।

त्रिकालदर्शी-संज्ञा पु० [सं० त्रिकालदर्शि] तीनों कालों की बातों को देखनेवाला या जाननेवाला व्यक्ति। त्रिकालज्ञ।

त्रिकुट-संज्ञा पु० दे० "त्रिकूट"।

त्रिकुटा-संज्ञा पु० [सं० त्रिकूट] सोठ, मिर्च और पीपल इन तीनों वस्तुओं का समूह।

त्रिकुटी-संज्ञा स्त्री० [सं० त्रिकूट] त्रिकूट-चक्र का स्थान। दोनों भौंहों के बीच के कुण्ड ऊपर का स्थान। उ०—पूरक कुंभक रेचक करहू। उलटि ध्यान त्रिकुटी को धारहू।—विश्राम।

त्रिकुल-संज्ञा पु० [सं०] पितृकुल, मातृकुल और श्वसुरकुल।

त्रिकूट-संज्ञा पु० [सं०] (१) तीन शृंगोंवाला पर्वत। वह पर्वत जिसकी तीन शोडियाँ हैं। (२) वह पर्वत जिसपर संका बसी हुई मानी जाती है। देवी भागवत के अनुसार यह एक

पीठस्थान है और यहाँ रूपसुंदरी के रूप में भगवती निवास करती हैं। ३०—गिरि त्रिकूट एक सिंधु मैफारी। विधि निर्मित दुर्गम यति भारी।—तुलसी। (३) मेंघा नमक। (४) एक कल्पित पर्वत जो सुमेरु पर्वत का पुत्र माना जाता है। वामन पुराण के अनुसार यह श्रीराम समुद्र में है। यहाँ देवर्षि रहते हैं और विशाखर विश्वर तथा संभव्य आदि ऋषि कब्रें बनाते हैं। इसकी तीन चोटियाँ हैं। एक चोटी सोने की है जहाँ सूर्य आश्रय लेते हैं और दूसरी चोटी चांदी की जिस पर चंद्रमा आश्रय लेते हैं। तीसरी चोटी परक से ढकी रहती है और वैदूर्य, इंद्रनील आदि मणियों की प्रभा से चमकती रहती है। यहाँ उसकी मय से ऊँची चोटी है। नामिकों और पवित्रों को यह नहीं दिखलाई देता। (५) योग में मस्तक के छः कल्पित चर्कों में से पहला चक्र जो दोनो भौहों के बीच ऊपर की ओर माना जाता है।

त्रिकूटा—संज्ञा स्त्री० [सं०] तंत्रिकों की एक भेरीय।

त्रिकूर्चक—संज्ञा पुं० [सं०] सुभ्रुत के अनुसार फोड़े आदि चीरने का एक शस्त्र जिसका व्यवहार बालक, वृद्ध, भीष्ट, राजा आदि की अश्रु-चिकित्सा के लिये होना चाहिये।

त्रिकोण—संज्ञा पुं० [सं०] (१) तीन कोने का क्षेत्र। त्रिभुज क्षेत्र। जैसे, \triangle \triangleright (२) तीन कोनेवाली कोई वस्तु। (३) तीन कोटियोंवाली कोई वस्तु। (४) योनि। भग। (५) कामरूप के श्रतर्गत एक तीर्थ जो सिद्ध पीठ माना जाता है। (६) जन्मकुंडली में लग्न-स्थान से पार्ष्वा और नर्वा स्थान।

त्रिकोणक—संज्ञा पुं० [सं०] तीन कोण का पिंड। त्रिकोना पिंड।

त्रिकोणघंटा—संज्ञा पुं० [सं०] लोहे की मोटी मुद्राण्य का बना हुआ एक प्रकार का त्रिकोना बाजा जिसपर लोहे के एक दूसरे टुकड़े से आघात करके ताक देते हैं। इनका आकार ऐसा होता है—

त्रिकोणफल—संज्ञा पुं० [सं०] सिंघाड़ा। पानी-फल।

त्रिकोणमचन—संज्ञा पुं० [सं०] जन्मकुंडली में लग्न में पार्ष्वा और नर्वा स्थान। दे० "त्रिकोण (६)"।

त्रिकोणमिति—संज्ञा स्त्री० [सं०] गणित शास्त्र का वह विभाग जिसमें त्रिभुज के कोण, बाहु, वर्ग-विस्तार आदि का मान निकालने की रीति तथा उनसे संबंध रखनेवाले अन्य अनेक सिद्धांत स्थिर किए जाते हैं।

त्रिकोणमिति—संज्ञा कल इसके श्रतर्गत त्रिभुज के श्रतिरिक्त चतुर्भुज और बहुभुज के कोण नापने की रीतियाँ तथा बीजगणित संबंधी बहुत सी बातें भी आ गई हैं।

त्रिक्षार—संज्ञा पुं० [सं०] जवाहार, सज्जी और सुहागा इन तीनों खारों का समूह।

त्रिक्षुर—संज्ञा पुं० [सं०] ताल-मंत्राना।

त्रिक्ल—संज्ञा पुं० [सं०] खीरा।

त्रिखा—संज्ञा स्त्री० दे० "त्रुषा"।

त्रिगंग—संज्ञा पुं० [सं०] मद्राप्रत के अनुसार एक तीर्थ का नाम।

त्रिगंधक—संज्ञा पुं० दे० "त्रिजातक"।

त्रिगंभीर—संज्ञा पुं० [सं०] वह जिसका सप [आचारण], स्वर और नामि गंभीर हो। जोनों का विश्वास है कि ऐसा पुरुष सदा सुखी रहता है।

त्रिगण्य—संज्ञा पुं० दे० "त्रिवर्ग"।

त्रिगर्त—संज्ञा पुं० [सं०] (१) उत्तर भारत के उस प्रांत का प्राचीन नाम जिसमें आज कल पंजाब के जालंधर और कांगड़ा आदि नगर हैं। (२) इस देश का निवासी।

त्रिगर्त—संज्ञा स्त्री० [सं०] क्षिप्राल स्त्री। पुरखली। वह स्त्री जिसे पुरुषप्रसंग की विशेष इच्छा हो।

त्रिगर्तक—संज्ञा पुं० दे० "त्रिगर्त"।

त्रिगुणा—संज्ञा पुं० [सं०] सत्य, रज और तम इन तीनों गुणों का समूह। तीन मुख्य प्रकृतियों का समूह। दे० "गुण"।

वि० [सं०] तीन गुणा। त्रिगुना।

त्रिगुण्य—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) दुर्गा। (२) माया। (३) तंत्र में एक प्रसिद्ध चीज।

त्रिगुण्यारमक-वि० पुं० [सं०] [स्त्री० त्रिगुण्यारमक] तीनों गुण-युक्त। जिसमें तीनों गुण हों।

त्रिगुणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] बेल का पेड़। (बेल के पत्ते तीन तीन एक साथ होते हैं इसीसे इसका यह नाम पड़ा।)

त्रिगुह—संज्ञा पुं० [सं०] खियों के वेप में पुरुषों का नृत्य।

त्रिघंटा—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक कल्पित नगर जो हिमालय की चोटी पर अवस्थित माना जाता है। कहते हैं कि यहाँ विद्यापर आदि रहते हैं।

त्रिचक्र—संज्ञा पुं० [सं०] अधिनीहमारों का रूप।

त्रिचक्षु—संज्ञा पुं० [सं०] त्रिचक्षुर् महादेव।

त्रिचित्त—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की गार्हपर्यायि।

त्रिजगत्—संज्ञा पुं० [सं०] त्रिर्गत् आधा चलनेवाले जंतु। पशु तथा कीड़े मकोड़े। त्रिर्गत्। ३०—(क) त्रिजग देव नर जो तनु धरुं। सदैव तहें राम भजन अनुसरुं।—तुलसी। (ख) यहि विधि जीव धराधर जेतें। त्रिजग देव नर असुर समेतें। अखिल विश्व यह मम धरजाया। सब पर मोरि धराधर दाया।—तुलसी।

संज्ञा-पुं० [सं०] त्रिजगत् । तीनों लोक—स्वर्ग, पृथ्वी और पाताल। ४०—किहि विधि त्रिपंगामिनि त्रिजग पावनि प्रसिद्ध अई भजे।—पद्माकर।

त्रिजट—संज्ञा पुं० [सं०] (१) महादेव। शिव। (२) एक ब्राह्मण का नाम जिसको वनयागा के समय रामचंद्र ने बहुत सी गार्ह्व दान दी थीं।

त्रिजटा—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) विभीषण की बहिन जो अयोध्या के युद्ध में जानकी जी के पास रहा करती थी। (२) बेल का पेड़।

त्रिजटो—संज्ञा पुं० [सं० त्रिजटो या त्रिजट] महादेव। शिव।
संज्ञा स्त्री० दे० "त्रिजटा"।

त्रिजट्ट—संज्ञा पुं० [हिं०] (१) कटारी। (२) तलवार।

त्रिजान—संज्ञा पुं० दे० "त्रिजानक"।

त्रिजानक—संज्ञा पुं० [सं०] इलायची (फल), दारचीनी (फूल) और तेजपत्रा (पत्रा) इन तीन प्रकार के पदार्थों का समूह जिसे त्रिसुगंधि भी कहते हैं। यदि इसमें चाणकेसर भी मिला दिया जाय तो इसे चतुर्जतक कहेंगे। वैद्यक में इसे रेचक, रुखा, तीक्ष्ण, वष्य-वीर्य, मुँह की दुर्गंध दूर करने-वाला, हृजक, पित्तवर्द्धक, दीपक तथा वायु और विपनासक माना है।

त्रिजामा—संज्ञा स्त्री० [सं० त्रिजामा] रात्रि। रजनी। उ०—
(क) युग चारि भये सय रनि याम। अति दुसह विधा तनु करी काम। यदि ते दयाद् माना चिरंचि। सय रनि त्रिजामा कीन्ह संचि।—मुमान। (ख) छन्दश क्षुपा समस्विनी तमी-तमिश्वा होय। निशि धी सदा विभावरी रात्रि त्रिजामा सोय।—नेददास।

त्रिजीया—संज्ञा स्त्री० [सं०] तीन राशियों अर्थात् ३० अंशों तक फैले हुए चाप की ज्या।

त्रिज्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] किसी घृत के केंद्र से परिधि तक खिंची हुई रेखा। प्यास की आघाती रेखा।

त्रिज्य—संज्ञा पुं० दे० "त्रिज्य"।

त्रिज्यता—संज्ञा स्त्री० [सं०] धनुष।

त्रिज्यव—संज्ञा पुं० [सं०] साम गान की एक प्रणाली जिसमें एक विशेष प्रकार से षसकी (३ × २) मचाईने आवृत्तिर्ण करते हैं।

त्रिज्यचक्र—संज्ञा पुं० [सं०] (१) यजुर्वेद के एक विशेष भाग का नाम। (२) उस भाग के अनुयायी। (३) नारायण।

त्रितंत्र—संज्ञा स्त्री० [सं०] कच्छुपी बीणा की तरह की प्राचीन चाब की एक प्रकार की बीणा जिसमें तीन तार लगे होते थे।

त्रित—संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक ऋषि का नाम जो महा के मानस पुत्र माने जाते हैं। (२) गौतम मुनि के तीन पुत्रों में से एक जो अपने दोनों भाइयों से अधिक तेजस्वी और विद्वान् थे। एक बार ये अपने भाइयों के साथ पशुसंहार करने के लिये जंगल में गए थे। वहाँ दोनों भाइयों ने इनके संहार किए हुए पशु लीन कर और इन्हें अरेला छोड़ कर घर का रास्ता लिया। वहाँ एक भेड़िए के देल कर ये घर के मारे दौड़ने लगे और दौड़ने हुए एक गहरे कंधे हुए

में जा गिरे। वहाँ इन्होंने सोमयाग आरंभ किया जिसमें देवता लोग भी आ पहुँचे। उन्होंने देवताओं ने उस कुएँ से इन्हें निकाला। महाभारत में लिखा है कि सरस्वती नदी हसी कुएँ से निकली थी।

त्रितय—संज्ञा पुं० [सं०] धर्म, अर्थ और काम इन तीनों का समूह।

त्रिनाप—संज्ञा पुं० दे० "ताप"।

त्रिदंड—संज्ञा पुं० [सं०] संन्यास आश्रम का चिह्न, नास का एक डंडा जिसके सिरे पर दो छोटी छोटी झकड़ियाँ बांधी होती हैं।

त्रिदंडी—संज्ञा पुं० [सं०] (१) मन चचन और कर्म तीनों को दमन करने या वश में रखनेवाला, संन्यासी। (२) यशोधर-चित्त। जनेऊ।

त्रिदल—संज्ञा पुं० [सं०] बेल का वृक्ष।

त्रिदला—संज्ञा स्त्री० [सं०] गोधापदी। हंसपदी।

त्रिदलिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का थूहर जिसे चर्म-कला या सातजा कहते हैं।

त्रिदश—संज्ञा पुं० [सं०] (१) देवता। उ०—(क) कंदर्प र्प दुर्गम दवन शमा रवन गुण भवन हर। तुलसी त्रिलोचन त्रिगुण पर त्रिपुर मयन जय सिदशवर।—तुलसी। (ख) निरखत याखत कुसुम सिदश जन सूर सुमति मन भूल।—सूर। (२) जीभ।

त्रिदशगुरु—संज्ञा पुं० [सं०] देवताओं के गुरु, बृहस्पति।

त्रिदशगोप—संज्ञा पुं० [सं०] धीरवह्नी नाम का कीड़ा।

त्रिदशदीर्घिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] स्वर्गगा। आकाश-गंगा।

त्रिदशपति—संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र।

त्रिदशपुष्प—संज्ञा पुं० [सं०] लौंग।

त्रिदशमंजरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] तुलसी।

त्रिदशमधू—संज्ञा स्त्री० [सं०] अस्सा।

त्रिदशसर्प—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की सर्से। देवसर्प।

त्रिदशकुश—संज्ञा पुं० [सं०] वज्र।

त्रिदशाचार्य—संज्ञा पुं० [सं०] वृहस्पति।

त्रिदशाधिप—संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र।

त्रिदशाध्यक्ष—संज्ञा पुं० दे० "त्रिदशापतन"।

त्रिदशाधन—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।

त्रिदशामुध्र—संज्ञा पुं० [सं०] वज्र।

त्रिदशास्त्रि—संज्ञा पुं० [सं०] अरुण।

त्रिदशालय—संज्ञा पुं० [सं०] (१) स्वर्ग। (२) सुमेध पर्वत।

त्रिदशाहार—संज्ञा पुं० [सं०] अमृत।

त्रिदशोभर—संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र।

त्रिदशोभरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा।

त्रिदालिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] चामरकपा। साठला।

त्रिदिनस्पृश—संज्ञा पुं० [सं०] यह तिथि जो तीन दिनों के स्वर्ग करती है। अर्थात् जिसका योद्धा बहुत श्रेय तीन दिनों में पड़ता हो। ऐसे दिन में स्नान और दानादि के अतिरिक्त और कोई शुभ कार्य नहीं करना चाहिए।

त्रिदिच—संज्ञा पुं० [सं०] (१) स्वर्ग। (२) आकाश। (३) सुख।

त्रिदिवाधीश—संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र।

त्रिदिवेदा—संज्ञा पुं० [सं०] देवता।

त्रिदिवोद्भवा—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) यक्षी इत्यायची। (२) गंगा।

त्रिदृश—संज्ञा पुं० [सं०] महादेव। शिव।

त्रिद्वेष—संज्ञा पुं० [सं०] ब्रह्मा, विष्णु और महेश—ये तीनों देवता।

त्रिदोष—संज्ञा पुं० [सं०] (१) वात, पित्त और कफ ये तीनों दोष। दे० “दोष”। उ०—गदरामु त्रिदोष ज्यों दूरि करै बर। त्रिशिरा मिर थीं रघुनंदन के शर।—केसव।

(२) वात, पित्त और कफ-जनित रोग, सक्षिपात। उ०—
यौवन उर सुपती कुपथ करि भये त्रिदोष भरि मदन
बाध—तुलसी।

त्रिदोषज—वि० [सं०] तीनों दोषों अर्थात् वात पित्त और कफ से उत्पन्न।

संज्ञा पुं० [सं०] सक्षिपात रोग।

त्रिदोषपना—वि०-क्रि० प्र० [सं० त्रिदोष] (१) तीनों दोषों के कोप में पड़ना। उ०—कुजहि लज्जति बाल यालिम यशार्थ गात्र के धौं कंधौं बुर काल पर तमकि त्रिदोषे है।—तुलसी।

(२) काम मोष और लोभ के फंदों में पड़ना। उ०—(क) कालि की बात बालि की सुधि करी समुक्ति हितहित खोलि मन्तोरे। कद्यो कुरोचित को न मानिये यक्षी हानि जिय जानि त्रिदोषे।—तुलसी।

त्रिधनी—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की रागिनी।

त्रिधन्वा—संज्ञा पुं० [सं०] हरिवंश के अनुसार सुधन्वा राजा के एक पुत्र का नाम।

त्रिधर्म—संज्ञा पुं० [सं० त्रिधर्म] महादेव। शिव।

त्रिधा—वि० वि० [सं०] तीन तरह से। तीन प्रकार से।

वि० [सं०] तीन तरह का।

त्रिधातु—संज्ञा पुं० [सं०] (१) गणेश। (२) सोना, चांदी और ताँबा।

त्रिधाम—संज्ञा पुं० [सं० त्रिधाम] (१) विष्णु। (२) शिव। (३) अग्नि। (४) श्यामु। (५) स्वर्ग।

त्रिधामूर्ति—संज्ञा पुं० [सं०] परमेश्वर जिसके अंतर्गत ब्रह्मा, विष्णु और महेश तीनों हैं।

त्रिधारक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) यज्ञ नागरमोघा। गुँदला। (२) कसेरू का पेड़।

त्रिधार—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) तीन धारावाला सँहुड़। (२) स्वर्ग, मर्त्य और पाताल तीनों क्षेत्रों में बहनेवाली, गंगा।

त्रिधाविशेष—संज्ञा पुं० [सं०] साध्य के अनुसार रूप, माता-पितृज और महाभूत तीनों प्रकार के रूप धारण करनेवाला, शरीर।

त्रिधासर्ग—संज्ञा पुं० [सं०] देव, तिर्यग और मानुष ये तीनों सर्ग त्रिधे श्रेयसंत सारी सृष्टि आ जाती है।

विशेष—दे० “सर्ग”।

त्रिनकी—संज्ञा पुं० दे० “रूप”।

त्रिनयन—संज्ञा पुं० [सं०] महादेव। शिव।

वि० जिसकी तीन आँखें हों। तीन नेत्रोंवाला।

त्रिनयना—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा।

त्रिनाभ—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।

त्रिनेत्र—संज्ञा पुं० [सं०] (१) महादेव। शिव। (२) सोना। स्वर्ण।

त्रिनेत्ररस—संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक में एक प्रकार का रस जो शोथे हुए पारे, गंधक और फूलों के हुए ताम्बे को बराबर बराबर भागों में लेकर एक विशेष क्रिया से तैयार किया जाता है और जो सक्षिपात रोग में दिया जाता है।

त्रिनेत्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] चारोहीरुंद।

त्रिपटु—संज्ञा पुं० [सं०] कर्क। शीशा।

त्रिपताक—संज्ञा पुं० [सं०] यह माषा या लखोट जिसमें तीन बल पड़ते हैं।

त्रिपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] (१) बेल का पेड़ जिसके पत्ते एक साथ तीन तीन लगे होते हैं।

त्रिपत्रक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) पलारा का वृक्ष। टाक का पेड़। (२) तुलसी, कुंद और बेल के पत्तों का समूह।

त्रिपत्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) चरहर का पेड़। (२) तिपतिया घास।

त्रिपथ—संज्ञा पुं० [सं०] कर्म, ज्ञान और उपासना इन तीनों मार्गों का समूह। उ०—कर्मठ कठमलिया कई ज्ञानी ज्ञान विहीन। तुलसी त्रिपथ विहायगो रामदुधारे दीन।—तुलसी।

त्रिपथगा—संज्ञा स्त्री० [सं०] गंगा।

त्रिपथ—हिंदुओं का विश्वास है कि स्वर्ग, मर्त्य और पाताल इन तीनों क्षेत्रों में गंगा बहती है, इसी लिये इसे त्रिपथगा कहते हैं।

त्रिपथगामिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] गंगा। दे० “त्रिपथगा”।

त्रिपद—संज्ञा पुं० [सं०] (१) तिपाई। (२) त्रिभुज। (३) यह जिसके तीन पद या चरण हों। (४) यज्ञों की वेदी नापने की प्राचीन काल की एक नाप जो प्रायः तीन हाथ से कुछ कम होती थी।

त्रिपदा—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) गायत्री।

विशेष—गायत्री में केवल तीन ही पद होते हैं इसलिये इसका वह नाम पड़ा।

(२) हंसपदी। लाल रंग का लम्बू।

त्रिपदिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) तिपाईं की तरह का पीतल आदि का वह चौखटा जिसपर देवपूजन के समय रखते हैं। (२) तिपाईं। (३) संकीर्ण राग का एक भेद (संगीत)।

त्रिपदी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) हंसपदी। (२) तिपाईं। (३) हाथी की पलान बांधने का रस्सा। (४) गायत्री। (५) तिपाईं के आकार का खंल रखने का घातु का चौखटा।

त्रिपद्म—संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा के इस घोड़े में से एक।

त्रिपरिक्रांत—संज्ञा पुं० [सं०] वह ब्राह्मण जो यज्ञ करे, पढ़े पढ़ावे और दान दे।

त्रिपर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] पल्लास का पेड़।

त्रिपर्ण—संज्ञा स्त्री० [सं०] पल्लास का पेड़।

त्रिपणिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) शालपर्णी। (२) वन-कपास। (३) एक प्रकार की पिठवन लता।

त्रिपर्णी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक प्रकार का छुर जिसका कंद औरपथ में काम आता है। (२) शालपर्णी। (३) वन-कपास।

त्रिपाठी—संज्ञा पुं० [सं०] (१) तीन वेदों का जानने-वाला पुरुष। त्रिपेदी। (२) ब्राह्मणों की एक जाति। त्रिपेदी। त्रिपारी।

त्रिपाय—संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह स्नान जो तीन बार भिन्नोपाय गया हो (कर्मकांड)। (२) वरकल। छाज।

त्रिपाद—संज्ञा पुं० [सं०] (१) उजर। गुलार। (२) परमेश्वर।

त्रिपादिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) तिपाईं। (२) हंसपदी लता। लाल रंग का लम्बा लु।

त्रिपाप—संज्ञा पुं० [सं०] फलित ज्योतिष में एक प्रकार का चक्र जिसके अनुसार किसी मनुष्य के किसी वर्ष का शुभाशुभ फल जाना जाता है।

त्रिपिंड—संज्ञा पुं० [सं०] पार्षण श्राद्ध में पिता, पितामह और प्रपितामह के उद्देश्य से दिए हुए तीनों पिंड (कर्मकांड)।

त्रिपिटक—संज्ञा पुं० [सं०] भगवान बुद्ध के उद्देश्यों का यह संग्रह जो उनकी श्रुत्यु के उपरांत उनके शिष्यों और अनुयायियों ने समय समय पर किया है और जिसे बौद्ध लोग अपना प्रधान धर्म ग्रंथ मानते हैं। यह तीन भागों में, जिन्हें पिटक कहते हैं, विभक्त है। इनके नाम वे हैं—सूत्र-पिटक, विनयपिटक और अभिधम्मपिटक। सूत्रपिटक में बुद्ध के साधारण श्लोके और बड़े ऐसे उपदेशों का संग्रह है जो उन्होंने विप्र सिद्ध घटमाथों और श्रवणों पर दिए थे। विनयपिटक में सिद्धार्थ और श्रावणों आदि के आचार के संबंध की बातें हैं। अभिधम्मपिटक में विज्ञान, वैज्ञानिक धर्म

और निर्वाण का वर्णन है। यही अभिधम्म बौद्ध दर्शन का मूल है। यद्यपि बौद्ध धर्म के महायान, हीनयान और मध्यमयान नाम के तीन धर्मों का पता चलता है और बौद्धों के अनुसार त्रिपिटक के भी तीन संस्करण होने चाहिए तथापि आज कल मध्यमयान का संस्करण नहीं मिलता। हीनयान का त्रिपिटक पाती भाषा में है और धरमा, स्वाम तथा लंका के बौद्धों का यह प्रधान और माननीय ग्रंथ है। इस ग्रंथ के संबंध का अभिधम्म में स्पष्ट कोई दर्शन ग्रंथ नहीं है। महायान के त्रिपिटक का संस्करण संस्कृत में है और इसका प्रचार नेपाल, तिब्बत, भूटान, चासाम, चीन, जापान और साइबेरिया के बौद्धों में है। इस ग्रंथ के संबंध के चार दार्शनिक संस्करण हैं जिन्हें सौत्रांतिक, माध्यमिक, योगाचार और वीश्वामिक कहते हैं। इस ग्रंथ के संबंध के मूल ग्रंथों के कुछ ग्रंथ नेपाल, चीन, तिब्बत और जापान में भी मिलते हैं। पहले पहले महायान-बुद्ध के निर्वाण के उपरान्त उनके शिष्यों ने उनके उद्देश्यों का संग्रह राजगृह के समीप एक गुहा में किया था। फिर महायान श्रवणों ने अपने समय में इसका दूसरा संस्करण बौद्धों के एक बड़े संघ में कराया था। हीनयानवाले अपना संस्करण इसी का बतलाते हैं। तीसरा संस्करण कनिक के समय में हुआ था जिसे महायान-वाले अपना कहते हैं। हीनयान और महायान के संस्करण के कुछ धार्यों के मिलान से अनुमान होता है कि वे दोनों किसी ग्रंथ की छाया हैं जो अब लुप्तप्राय है। त्रिपिटक में नारायण, जनार्दन, शिव, ब्रह्मा, वह्य और शंकर आदि देवताओं का भी उल्लेख है।

त्रिपितासु—[सं०] (१) श्रुति पाना। श्रुत होना। श्राप जाना। उ०—(क) जैसे श्रुत्यंत जल शेषवत् यह सो पुनि टट्टरात। यह चातुर धृति से वर धारति नेकु नहीं त्रिपितात।—सूर। (ख) जे पटास मुख भोग करत हैं ते कीने खरि पात। सूर मुनो लोचन हरि रस सनि हस सो ब्यो त्रिपितात।—सूर।

कि० सं० श्रुत करना। संतुष्ट करना। त्रिपिण्ड—संज्ञा पुं० [सं०] यह पानी, पानी पीने के समय जिसके दोनों कान पानी से छू जाते हैं। ऐसा बकरा मनु के अनुसार पिटृधर्म के लिये बहुत उपयुक्त होता है।

त्रिपिटक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) स्वर्ग। (२) पाकार। त्रिपुंड्र—संज्ञा पुं० [सं०] भग्न की तीन आँसु रेंपायों का तिलक जो शिव या श्याक लोग जलाशय पर लगाते हैं। उ०—नौर शरीर श्रुति मलि राजा। भाज विद्याज त्रिपुंड्र विराजा।—मुहूर्त्ती।

कि० प्र०—देना।—रमाना।—छगाना।

त्रिपुंड्र—संज्ञा पुं० [सं०] त्रिपुंड्र।

त्रिपुट-संज्ञा पुं० [सं०] (१) गोलरू का वेड़। (२) मटर। (३) खेसारी। (४) सीर। (५) ताखा।

त्रिपुटक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) खेसारी। (२) फोड़े का एक प्रकार।

त्रिपुटा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) बेल का वेड़। (२) छोटी इलायची। (३) बड़ी इलायची। (४) निसोय। (५) कनफोड़ा बेल। (६) मोतिया। (७) तांत्रिकों की एक देवी जो अभीष्ट-दात्री मानी जाती है।

त्रिपुटी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) निसोय। (२) छोटी इलायची। (३) तीन वस्तुओं का समूह। जैसे, ज्ञाता, ज्ञेय और ज्ञान; ध्याता, ध्येय और ध्यान, द्रष्टा, दृश्य और दर्शन आदि। ३०—ज्ञाता, ज्ञेय अथ ज्ञान जो ध्याता, ध्येय अथ ध्यान। द्रष्टा, दृश्य अथ दृश्य जो त्रिपुटी शब्दमान।—कवीर।

संज्ञा स्त्री० [सं० त्रिपुट्] (१) रूँड़ का पेड़। (२) खेसारी।

त्रिपुर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) थापासुर का एक नाम। (२) तीनों लोक। (३) खेदेरी नगर। (डि०)। (४) मद्राभारत के अनुसार ये तीनों नगर जो तारकासुर के तारकाश, कमलाश और विष्णुमाली नाम के तीनों पुत्रों ने मय दानव से अपने लिये बनवाए थे। इनमें से एक नगर सेने का और स्वर्ग में था, दूसरा अंतरिक्ष में चांदी का था और तीसरा मर्त्यलोक में लोहे का था। जब उक्त तीनों असुरों का अत्याचार और अपद्रव बहुत बढ़ गया तब देवताओं के प्रार्थना करने पर शिवजी ने एक ही बाण से उन तीनों नगरों को नष्ट कर दिया और पीछे से वन तीनों राक्षसों को भी मार डाला।

त्रिपुरघ्न-संज्ञा पुं० [सं०] महादेव।

त्रिपुरदहन-संज्ञा पुं० [सं०] महादेव।

त्रिपुरभैरव-संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक का एक रस जो सन्धिपात रोग में दिया जाता है। इसके बनाने की विधि यह है—काली मिर्च ४ भर, सोंठ ४ भर, शुद्ध तेलिया सोदागा ३ भर, और शुद्ध सींगी मोहरा १ भर लेते हैं और इन सब चीजों को पीसकर पहले तीन दिन तक नीचे के रस में फिर पाँच दिन तक अदरक के रस में और तब तीन दिन तक पान के रस में अच्छी तरह खरल करके एक एक रत्ती की गोलीयाँ बना लेते हैं। यह गोली अदरक के रस के साथ ही जाती है।

त्रिपुरभैरवी-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक देवी का नाम।

त्रिपुरमल्लिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की मल्लिका।

त्रिपुरांतक-संज्ञा पुं० [सं०] शिव। महादेव।

त्रिपुरा-संज्ञा स्त्री० [सं०] कामाख्या देवी की एक मूर्ति।

त्रिपुरारि-संज्ञा पुं० [सं०] शिव। महादेव।

त्रिपुरारि रस-संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक में एक प्रकार का रस जो पारे, तंदि, गंधक, लोहे, अन्नक आदि के योग से बनाया

जाता है। इसका व्यवहार पेट के रोगों को नष्ट करने के लिये होता है।

त्रिपुरासुर-संज्ञा पुं० दे० "त्रिपुर"।

त्रिपुश्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पिता, पितामह और प्रपितामह। (२) सम्पत्ति का वह भोग जो तीन पीढ़ियाँ अलग अलग करें। एक एक करके तीन पीढ़ियों का भोग।

त्रिपुय-संज्ञा पुं० [सं०] (१) ककड़ी। (२) खीर। (३) गेहूँ।

त्रिपुया-संज्ञा स्त्री० [सं०] काना निसोय।

त्रिपुष्कर-संज्ञा पुं० [सं०] फलित ज्योतिष में एक योग जो पुन-धंसु, वसरापादा, कृत्तिका, उत्तराफाल्गुणी, पूर्वमाद्रपद और विवाहा इन नक्षत्रों, रवि, मंगल और शनि इन वारों तथा द्वितीया, सप्तमी और द्वादशी इन तिथियों में से किसी एक नक्षत्र एक वार और एक तिथि के एक साथ पड़ने से होता है। इस योग में यदि कोई मरे तो उसके परिवार में दो आदमी और मरते हैं और उसके संबंधियों को अनेक प्रकार के कष्ट होते हैं। इसमें यदि कोई हानि हो तो वैसी ही हानि और दो बार होती है और यदि लाभ हो तो वैसा ही लाभ और दो बार होता है। बालक के जन्म के लिये यह योग आरज योग संमन्ना जाता है।

त्रिपृष्ठ-संज्ञा पुं० [सं०] जैनियों के मत से पहले वासुदेव।

त्रिपौरुष-संज्ञा पुं० दे० "त्रिपुरुष"।

त्रिपौलिया-संज्ञा स्त्री० दे० "त्रिपौलिया"।

त्रिमन्त्र-संज्ञा पुं० [सं०] फलित ज्योतिष में दिशा, देश और काल-संबंधी मन्त्र।

त्रिमस्त्र-संज्ञा पुं० [सं०] वह हामी जिसके मस्तक, कपोल और नेत्र इन तीनों स्थानों से मद ऋता हो।

त्रिमूल-संज्ञा पुं० [सं०] एक बहुत प्राचीन देश का नाम जिसका बहल्लेख वैदिक ग्रंथों में आया है।

त्रिफला-संज्ञा पुं० [सं०] (१) आंवले, हड़ और बहेड़े का समूह जो आंलों के लिये हितकारक, अग्निदीपक, रुचिकारक, सारक तथा कफ, पित्त, मेह, कुष्ठ और चिपमन्जर का नाशक माना जाता है। इसके वैद्यक में अनेक प्रकार के घृत आदि बनाए जाते हैं

पर्याय—त्रिफली। फलत्रय। फलत्रिक।

(२) यह चूर्ण जो इन तीनों फलों से बनाया जाता है। यह चूर्ण बनाने समय १ भाग हड़, २ भाग बहेड़ा और ३ भाग आंवला लिया जाता है।

त्रिबलि-संज्ञा स्त्री० दे० "त्रिबली"।

त्रिबली-संज्ञा स्त्री० [सं०] ये तीन बल जो पेट पर पड़ते हैं। इन बलों की गणना सौंदर्य में होती है।

त्रिबलीक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बाघ। (२) मलझार। पुरा।

त्रिबाहु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक के एक अनुचर का नाम ।

(२) तलवार का एक हाथ ।

त्रिधेनी-संज्ञा स्त्री० दे० "त्रिवेणी" ।

त्रिमंग-वि० [सं०] तीन जगह-से देड़ा । जिसमें तीन जगह पल पकते हों । उ०—जैसे को लैसे मिले तप ही उरत सनेह । ज्यों त्रिमंग तनु श्याम को कुटिल क्वरी देह ।—पद्माकर ।

संज्ञा पुं० खड़े होने की एक मुद्रा जिसमें घट कमर और पादरु में कुछ टेढ़ापन रहता है ।

विशेष—प्रायः धीहृष्य के ध्यान में इस प्रकार खड़े होकर बंसी बजाने की भावना की जाती है ।

त्रिमंगी-वि० [सं०] तीन जगह से देड़ा । तीन मोड़ का । त्रिमंग । उ०—करै कुपत जग कुटिलता, तबौ न दीन दयाल । दुखी होहुगे सरल हिय पसत त्रिमंगी बाल ।—बिहारी ।

संज्ञा पुं० [सं०] (१) ताल के साठ मुख्य भेदों में से एक भेद जिसमें एक गुरु, एक लघु और एक प्लुत मात्रा होती है । (२) शुद्ध राग का एक भेद । (३) एक माथ्रिक छंद जिसके प्रत्येक चरण में ३२ मात्राएँ होती हैं और १०, ८, ८, ६ मात्राओं पर यति होती है । जैसे, परसत पद पावन, शोक नसावन, प्रगट भई तप पुंज सही । (४) गण्यत्मक दंडक का एक भेद जिसके प्रत्येक चरण में ६ नगण्य, २ सगण्य, भगण्य सगण्य, सगण्य और शंत में एक गुरु होता है अर्थात् प्रत्येक चरण में ३४ अक्षर होते हैं । जैसे, सजल जलद तनु जसन विमल तनु ध्रम कण्य लौं मलका हे वमगो है बुद्ध मनो है । छुव युग मटकनि फिरि लटकनि अनिमिय मनन जो है हरपो है छै मन मोड़े । (५) दे० "त्रिमंग" ।

त्रिमंडी-संज्ञा स्त्री० [सं०] त्रिलोच ।

त्रिम-वि० [सं०] तीन नक्षत्रों से युक्त । जिसमें तीन नक्षत्र हों । संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा के हिसाब से रेवती, अश्विनी और भरणी नक्षत्रयुक्त आश्विन, शतभिषा, पूर्वभाद्रपद और उत-भाद्रपद नक्षत्रयुक्त भाद्रमास; और पूर्वफाल्गुनी, उत्तर-फाल्गुनी और हस्ता नक्षत्रयुक्त फाल्गुण मास ।

त्रिमतीया-संज्ञा स्त्री० [सं०] व्यास की त्रापी रेखा । त्रिधा ।

त्रिमज्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] त्रिमतीया । त्रिधा ।

त्रिमुक्ति-संज्ञा पुं० [सं०] तिरहुत या त्रिभिन्ना देश ।

त्रिमुज-संज्ञा पुं० [सं०] तीन सुनाथों का देश । बंद घरातल जो तीन सुनाथों या रेखाओं से घिरा हो । जैसे, Δ \triangleright

त्रिमुयन-संज्ञा पुं० [सं०] तीनों लोक अर्थात् स्वर्ग, भूमी और पाताल ।

त्रिमुयनसुंदरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) दुर्गा । (२) पार्वती ।

त्रिमूम-संज्ञा पुं० [सं०] तीन खंबोंवाला मकान । तिमहुला घर । त्रिमोल्लु-संज्ञा पुं० [सं०] चितित वृत्त पर पढ़नेवाले क्रांतियुक्त का ऊपरी मध्य भाग ।

त्रिमंडला-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की जूहरीजी मकड़ी । त्रिमद-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मोया, चीता और बायविडंग इन तीनों चीतों का समूह । (२) परिवार, विद्या और धन इन तीनों कार्यों से होनेवाला अभिमान ।

त्रिमधु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) ऋग्वेद के एक श्रंश का नाम । (२) वह व्यक्ति जो विधिपूर्वक उक्त श्रंश पड़े । (३) ऋग्वेद का एक यज्ञ । (४) घी, राहद और चीनी इन तीनों का समूह ।

त्रिमधुर-संज्ञा पुं० [सं०] घी, राहद और चीनी इन तीनों का समूह ।

त्रिमात-वि० दे० "त्रिमाथ्रिक" ।

त्रिमाथ्रिक-वि० [सं०] तीन मात्राओं का । तीन मात्राओंवाला । जिसमें तीन मात्राएँ हों । प्लुत ।

त्रिमार्गागामिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] गंगा ।

त्रिमार्गी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) गंगा । (२) तिरमुहानी ।

त्रिमुंड-संज्ञा पुं० [सं०] (१) त्रिशिरा रापस । (२) ज्वर । मुखाल ।

त्रिमुकुट-संज्ञा पुं० [सं०] वह पहाड़ जिसकी तीन चोटियाँ हों । - त्रिहूट ।

त्रिमुख-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शाक्य मुनि । (२) गायत्री जपने की चौबीस मुद्राओं में से एक मुद्रा ।

त्रिमुखा-संज्ञा स्त्री० दे० "त्रिमुखी" ।

त्रिमुखी-संज्ञा स्त्री० [सं०] बुद्ध की माता, मायादेवी ।

विशेष—महायान शाखा के यौद्ध देवीरूप से इनकी उपासना करते हैं ।

त्रिमुनि-संज्ञा पुं० [सं०] पाणिनि, कात्यायन और पतंजलि ये तीनों मुनि ।

त्रिमुहानी-संज्ञा स्त्री० दे० "तिरमुहानी" ।

त्रिमुखी-संज्ञा पुं० [सं०] (१) ब्रह्मा, विष्णु और शिव ये तीनों देवता । (२) सूर्य ।

संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) ब्रह्म की एक शक्ति । (२) बौद्धों की एक देवी ।

त्रिमृत-संज्ञा पुं० [सं०] त्रिलोच ।

त्रिमृता-संज्ञा स्त्री० दे० "त्रिमृत" ।

त्रिय-संज्ञा स्त्री० दे० "त्रिया" ।

त्रियत्र-संज्ञा पुं० [सं०] एक परिमाण जो तीन जौ के बराबर या एक रत्ती के बराबर होता है ।

त्रियष्टि-संज्ञा पुं० [सं०] त्रितयापढ़ा । राहदला ।

त्रिया $\frac{1}{2}$ -संज्ञा स्त्री० [सं०] औरत । स्त्री ।

थी०—त्रियाचरित्र = त्रियो का लल कण्ठ जिते पुरुष सहज में नहीं समझ सकते ।

त्रियान—संज्ञा पु० [सं०] यौद्धों के तीन प्रधान भेद या धान—महाधान, हीनधान और मध्यधान ।

त्रियामक—संज्ञा पु० [सं०] पाप ।

त्रियामा—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) रात्रि ।

त्रिशेष—रात के पहले का दंडे और अंतिम चार दंडों की गिनती दिन में की जाती है, जिससे रात में केवल तीन ही पहर बच रहते हैं। इसीसे उसे त्रियामा कहते हैं ।
(२) यमुना नदी । (३) हलादी । (४) नील का पेड़ । (५) काका विशेष ।

त्रियुग—संज्ञा पु० [सं०] (१) विष्णु । (२) वसंत, वर्षा और शरदू ये तीनों ऋतुएँ । (३) सत्ययुग, द्वापर और त्रेता ये तीनों युग ।

त्रियूह—संज्ञा पु० [सं०] सफेद रंग का घोड़ा ।

त्रिरत्न—संज्ञा पु० [सं०] बुद्ध, धर्म और संघ का समूह । (यौद्ध) त्रिरत्न—संज्ञा स्त्री० दे० "त्रिकोण" ।

त्रिरत्नक—संज्ञा पु० [सं०] वह मंदिर जिसमें तीन प्रकार के रस या स्वाद हों ।

त्रिरात्रि—संज्ञा पु० [सं०] (१) तीन रात्रियों (और दिनों) का समय । (२) एक प्रकार का व्रत जिसमें तीन दिनों तक उपवास करना पड़ना है । (३) गर्ग-त्रिरात्र नामक वाग ।

त्रिरूप—संज्ञा पु० [सं०] अथमेव यज्ञ के लिये एक विशेष प्रकार का घोड़ा ।

त्रिरत्न—संज्ञा पु० [सं०] शंख ।

वि० तीन रेखाओंवाला । जिसमें तीन रेखाएँ हों ।

त्रिल—संज्ञा पु० [सं०] नगण्य, जिसमें तीनों लघु वर्ण होते हैं ।

त्रिलघु—संज्ञा पु० [सं०] (१) नगण्य जिसमें तीनों वर्ण लघु होते हैं । (२) वह पुरुष जिसकी गर्दन, जाँघ और मूर्च्छद्विज छोटी हो । पुरुष के लिये ये लक्षण शुभ माने जाते हैं ।

त्रिलक्षण—संज्ञा पु० [सं०] संधा, सभार और सौचर (काला) नामक ।

त्रिलिंग—संज्ञा पु० [सं०] त्रिलिंग शब्द का यनावटी संस्कृत रूप ।

त्रिलोक—संज्ञा पु० [सं०] स्वर्ग, मर्त्य और पाताल ये तीनों लोक ।
थी०—त्रिलोकनाथ । त्रिलोकपति ।

त्रिलोकनाथ—संज्ञा पु० [सं०] (१) तीनों लोक का मालिक या स्वामी, ईश्वर । (२) राम । (३) कृष्ण । (४) विष्णु का कोई अवतार । (५) सूर्य ।

त्रिलोकपति—संज्ञा पु० दे० "त्रिलोकनाथ" ।

त्रिलोक—संज्ञा स्त्री० दे० "त्रिलोक" ।

त्रिलोकनाथ—संज्ञा पु० दे० "त्रिलोकनाथ" ।

त्रिलोकेश—संज्ञा पु० [सं०] (१) ईश्वर । (२) सूर्य ।

त्रिलोचन—संज्ञा पु० [सं०] शिव । महादेव ।

त्रिलोचना—संज्ञा स्त्री० दे० "त्रिलोचनी" ।

त्रिलोचनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा ।

त्रिलोह—संज्ञा पु० [सं०] सोना, चाँदी और ताँबा ।

त्रिलोही—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्राचीन काल की एक प्रकार की मुद्रा जो सोने, चाँदी और ताँबे को मिलाकर बनाई जाती थी ।

त्रिवट—संज्ञा पु० दे० "त्रिवण्य" ।

त्रिवण्य—संज्ञा पु० [सं०] संपूर्ण जाति का एक राग जो दोपहर के समय गाया जाता है । इसे कुछ लोग हिंडोल राग का पुत्र मानते हैं ।

त्रिवणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक सेकर रागिनी जो शंकराभरण, अर्धश्री और नरनारायण के मेल से बनती है ।

त्रिवर्ग—संज्ञा पु० [सं०] (१) अर्थ, धर्म और काम । (२) त्रिकला । (३) त्रिकुटा । (४) श्रद्धि, स्थिति और शय । (५) सत्य, रज और तम ये तीनों गुण । (६) ब्राह्मण्य, अश्रिय और वैश्य ये तीनों प्रधान जातियाँ । (७) सुनीति । (८) गाथी ।

त्रिवर्षक—संज्ञा पु० [सं०] (१) गोखरू । (२) त्रिकला । (३) त्रिकुटा । (४) काका, बाल और पीला रंग । (५) ब्राह्मण्य, अश्रिय और वैश्य ये तीनों प्रधान जातियाँ ।

त्रिवर्षी—संज्ञा स्त्री० [सं०] धनकपास ।

त्रिवर्ष—संज्ञा पु० [सं०] एक प्रकार का मोती । कहते हैं कि जिस के पास यह मोती होता है उसको दरिद्र कर देता है ।

त्रिवलि—संज्ञा स्त्री० दे० "त्रिवली" ।

त्रिवलिका—संज्ञा स्त्री० दे० "त्रिवली" ।

त्रिवली—संज्ञा स्त्री० दे० "त्रिवली" ।

त्रिवलय—संज्ञा पु० [सं०] बहुत प्राचीन काल का एक प्रकार का बाजा जिसपर चमड़ा मढ़ा होता था ।

त्रिवार—संज्ञा पु० [सं०] गण्डू के एक पुत्र का नाम ।

त्रिवाहु—संज्ञा पु० [सं०] तलवार के ३ हाथों में से एक हाथ ।

त्रिविक्रम—संज्ञा पु० [सं०] (१) वामन का अवतार । (२) विष्णु ।

त्रिविदु—संज्ञा पु० [सं०] वह जिससे तीनों वेद पढ़े हों ।

त्रिविध—वि० [सं०] तीन तरह का । तीन प्रकार का । व०—त्रिविध सायनासक मिश्रणी । राम स्वल्प सिद्ध समुहानी ।—गुलसी ।

क्रि० वि० [सं०] तीन प्रकार से ।

त्रिविन्दत—संज्ञा पु० [सं०] वह जिसमें देवता, ब्राह्मण और गुरु के प्रति बहुत श्रद्धा और भक्ति हो ।

त्रिविष्टप—संज्ञा पु० [सं०] (१) स्वर्ग । (२) तिष्ठत देश ।

त्रिविस्तीर्थ—संज्ञा पु० [सं०] वह पुरुष जिसका ललाट, फर और छाती ये तीनों धंग चाँड़े हों । ऐसा मनुष्य भागवान् समझा जाता है ।

त्रिविज-संज्ञा पुं० [सं०] सर्वा ।
 त्रिवृत-संज्ञा पुं० [सं० त्रिवृत्] (१) एक प्रकार का यज्ञ । (२) नितोष ।
 त्रिवृता-संज्ञा स्त्री० दे० "त्रिवृत" ।
 त्रिवृत्करण-संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि, अन्न और पृथ्वी इन तीनों तत्वों में से प्रत्येक में शेष दोनों तत्वों का समावेश करके प्रत्येक को अन्न अन्न तीन भागों में विभक्त करने की क्रिया ।
 त्रिविध-इस विचार-पद्धति के अनुसार प्रत्येक तत्व में शेष तत्वों का भी समावेश माना जाता है । उदाहरण के लिये अन्न है । अग्नि में अग्नि, अन्न और पृथ्वी का समावेश माना जाता है, और इन तीनों तत्वों के अस्तित्व के प्रमाण स्वरूप अग्नि की लज्जाहँ, सफेदी और कालिमा उपस्थित की जाती है । अग्नि की लज्जाहँ उसमें अग्नि तेज के होने का, सफेदी सफेदी उसमें जल के होने का और उसमें की कालिमा उसमें पृथ्वी तत्व होने का प्रमाण माना जाता है । सृष्टीयोन्योन्य के छुटे प्रपाठ के चौथे खंड में इसका पूरा विवरण दिया हुआ है । जान पड़ता है कि उस समय तक लोगों को केवल तीन ही तत्वों का ज्ञान हुआ था और पीछे से जब और दो तत्वों का ज्ञान हुआ तब तत्वों के पंचीकरणवाली पद्धति निकली ।
 त्रिवृत्त-वि० [सं०] त्रिगुण ।
 त्रिवृत्ता-संज्ञा स्त्री० दे० "त्रिवृत्ति" ।
 त्रिवृत्ति-संज्ञा स्त्री० [सं०] नितोष ।
 त्रिवृत्पर्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] हुहुर । हिलोमेषिका ।
 त्रिवृद्ध-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शक, यह और साम ये तीनों वेद । (२) प्रणव ।
 त्रिवृष्ट-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार ग्यारहवें हापर के व्यास का नाम ।
 त्रिवेणी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) तीन नदियों का संगम । (२) तीन नदियों की मिली हुई धारा । (३) गंगा यमुना और सरस्वती का संगम स्थान जो प्रयाग में है । यह तीर्थ स्थान माना जाता है और कारुणी तथा मकर संक्राति आदि के अवसरों पर यहाँ स्नान करनेवालों की बहुत भीड़ होती है । (४) दृढ योग के अनुसार हृद्भा, दिग्गजा और सुषुम्ना इन तीनों नाड़ियों का संगम स्थान ।
 त्रिवेणी-संज्ञा पुं० [सं०] १) एक के अगले भाग के एक खंग का नाम ।
 त्रिवेद-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शक, यज्ञ और साम ये तीनों वेद । (२) इन तीनों वेदों में बरखाप हुए कर्म । (३) वेद जो इन तीनों का ज्ञाता है ।
 त्रिवेदी-संज्ञा पुं० [सं० त्रिवेदिन्] (१) शक, यज्ञ और साम इन तीनों वेद का ज्ञानेवाला । (२) ब्राह्मणों का एक भेद ।

त्रिवेणी-संज्ञा स्त्री० दे० "त्रिवेणी" ।
 त्रिवेला-संज्ञा स्त्री० [सं०] नितोष ।
 त्रिशंकु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मिठी । (२) लघुगु । (३) एक पहाड़ का नाम । (४) पर्पाहा । (५) एक प्रसिद्ध सूर्यवंशी राजा का नाम जिन्होंने सररीर स्वर्ग जाने की कामना से यज्ञ किया था पर जो इंद्र तथा दूसरे देवताओं के विरोध करने के कारण स्वर्ग न पहुँच सके । रामायण में लिखा है कि सररीर स्वर्ग पहुँचने की कामना से त्रिशंकु ने अपने गुण वशिष्ठ से यज्ञ कराने की प्रार्थना की पर वशिष्ठ ने उनकी प्रार्थना स्वीकार न की । इसपर वेद वशिष्ठ के पुत्रों के पास गए ; पर उन लोगों ने भी उनकी बात न मानी, उल्टे उन्हें शाप दिया कि तुम चाँदाह हो जाओ । तदनुसार राजा चाँदाह होकर विश्वामित्र की शरण में पहुँचे और हाथ जोड़ कर उनसे अपनी अभिलाषा प्रकट की । इसपर विश्वामित्र ने बहुत से अपिषो बँदा बुला कर उनसे यज्ञ करने के लिये कहा । अपिषो ने विश्वामित्र के कोप से डरकर यज्ञ आरंभ किया जिसमें स्वयं विश्वामित्र ऋषयु पने । जब विश्वामित्र ने देवताओं को उनका हविर्भाग देना चाहा तब कोई देवता न शाये । इसपर विश्वामित्र बहुत विगड़े और केवल अपिषो तपस्या के बल से ही त्रिशंकु को सररीर स्वर्ग भेजने लगे । जब इंद्र ने त्रिशंकु को सररीर स्वर्ग की ओर आते हुए देखा तब उन्होंने वहाँ से उन्हें मर्या-खोक की ओर लौटाया । त्रिशंकु जब उल्टे होकर नीचे गिरे लगे तब बड़े जोर से चिंहाए । विश्वामित्र ने उन्हें आकार में ही रोक दिया और क्रुद्ध होकर दक्षिण की ओर दूसरे सप्तर्षियों और ऋषयों की रचना आरंभ की । तब देवता अभ्यभीत होकर विश्वामित्र के पास पहुँचे । तब विश्वामित्र ने उनसे कहा कि मैंने त्रिशंकु को सररीर स्वर्ग पहुँचाने की प्रतिज्ञा की है । अतः अब यह जहाँ के तहाँ रहने और हमारे बनाए हुए सप्तर्षी और ऋषय इनके चारों ओर रहेंगे । देवताओं ने उनकी यह बात स्वीकार कर ली । तब से त्रिशंकु वहाँ ब्राह्मण में नीचे तिर किए हुए लटके हैं और ऋषय उनकी परिक्रमा करते हैं । लेकिन हरिवंश में लिखा है कि महाराज प्रय्यास्था के सत्यमत नामक एक पुत्र बहुत ही पापमयी राजा था । सत्यमत ने एक पारही स्त्री को घर में रख लिया था । इससे पिता ने उन्हें शाप दे दिया कि तुम चाँदाह हो जाओ । तदनुसार सत्यमत चाँदाह होकर चाँदाहों के साथ रहने लगे । जिस स्थान पर सत्यमत रहते थे उसके पास ही विश्वामित्र अपि भी वन में उपरही मरते थे । एक बार उस प्रांत में बाराह वर्षों तक वृष्टि ही न हुई, इससे विश्वामित्र की स्त्री अपने विचले लडके को गले में बाँध कर सी गाओं को बेचने निकली । सत्यमत ने उस लडके को

श्रुति-पत्नी से लेकर उसे पालना आरंभ किया, तभी से उस लड़के का नाम गालव पड़ा। एक बार मांस के धभाव के कारण सत्यव्रत ने वशिष्ठ की कामधेनु गौ को मार कर उसका मांस विद्यामित्र को लड़कों को खिलाया था और स्वयं भी खाया था। इस पर वशिष्ठ ने उनसे कहा कि एक ने तुमने अपने पिता को अशक्तुष्ट किया, दूसरे अपने गुरु की गौ मार डाली और तीसरे उसका मांस स्वयं खाया तथा श्रुति-पुत्रों को खिलाया। अब किसी प्रकार तुम्हारी रक्षा नहीं हो सकती। सत्यव्रत ने ये तीन महापातक किए थे, इसीसे वे त्रिशंकु कहलाए। उन्होंने विद्यामित्र की भी और पुत्रों की रक्षा की थी इसलिये श्रुति ने उनसे धर्म गाने के लिये कहा। सत्यव्रत ने सरारी स्वर्ग जाना चाहा। विद्यामित्र ने पहले तो उनकी यह बात मान ली, पर पीछे से उन्होंने सत्यव्रत को उनके वैशुक राज्य पर श्रमिषिक किया और स्वयं उसके पुरोहित बने। सत्यव्रत ने कंकवर्षा की सतरथा नामक कन्या से विवाह किया था जिसके गर्भ से प्रसिद्ध सत्यवृती महाराज हरिश्चंद्र ने जन्म लिया था। तैत्तिरीय उपनिषद् के अनुसार त्रिशंकु धनक वैदिक मंत्रों के श्रुति थे। (६) एक तारा जिसके विषय में प्रसिद्ध है कि यह धरी त्रिशंकु है जो इंद्र के दफलेने पर आकाश से गिर रहे थे और जिन्हें मार्ग में ही विद्यामित्र ने रोक दिया था।

त्रिशंकुज-संज्ञा पुं० [सं०] त्रिशंकु के पुत्र, राजा हरिश्चंद्र।
त्रिशंकुयाजी-संज्ञा पुं० [सं०] त्रिशंकुजात् । त्रिशंकु को पशु कराने-वाले, विद्यामित्र श्रुति।

त्रिधाक्ति-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) इच्छा, ज्ञान और क्रिया रूपी तीनों ईश्वरीय शक्तियों। (२) महत्त्व जो त्रिगुणामक है। बुद्धितत्त्व। (३) तांत्रिकों की काली, तारा और त्रिपुरा ये तीनों देवियाँ। (४) गायत्री।

थो०—त्रिशक्तिष्टय।

त्रिशाक्तिधृत्-संज्ञा पुं० [सं०] (१) परमेस्वर। (२) विजिगीतु राजा का एक नाम।

त्रिशारथ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बुद्ध। (२) जैनियों के एक आचार्य का नाम।

त्रिशार्करा-संज्ञा स्त्री० [सं०] गुड़, चीनी और मिस्री इन तीनों का समूह।

त्रिशाला-संज्ञा स्त्री० [सं०] वर्तमान अवस्थापिथी के चौथीस तीर्थ-करों में से अंतिम तीर्थकर वर्तमान या महावीर स्वामी की माता का नाम।

त्रिशाल-वि० [सं०] जिसमें धर्म की ओर तीन शालाएँ निकली हों।

त्रिशालपत्र-संज्ञा पुं० [सं०] खेल का पेड़।

त्रिशालक-संज्ञा पुं० [सं०] पृथ्वसेहिता के अनुसार यह हमारा जिसके उत्तर ओर और कोई हमारा न हो। ऐसी हमारा शरणी समझी जाती है।

त्रिशाल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) त्रिशूल। (२) किरिट। (३) रावण के एक पुत्र का नाम। (४) खेल का पेड़। (५) सामन नामक मन्वंतर के इंद्र का नाम।

वि० जिसकी तीन शालाएँ हों। तीन चोटियोंवाला।

त्रिशालर-संज्ञा पुं० [सं०] यह पहाड़ जिसकी तीन चोटियाँ हों। त्रिकूट पर्वत।

त्रिशालदल-संज्ञा स्त्री० [सं०] मालाकंद नाम की लता, ध्रुववा उसका कंद (मूल)।

त्रिशाली-वि० दे० “त्रिशाल”।

त्रिशार-संज्ञा पुं० [सं०] त्रिशार (१) रावण का एक भाई जो खर वृषण के साथ दंडक वन में रहा करता था। (२) कुबेर। (३) एक राक्षस जिसका उल्लेख महाभारत में है। (४) खटा प्रजापति के पुत्र का नाम। (५) हरिवंश के अनुसार वर पुरुष जिसे दानवों के राजा वाण्य की सहायता के लिये महादेवजी ने शपथ किया था और जिसके तीन सिर, तीन पैर, छ हाथ और नौ खालें थीं।

वि० तीन सिरोंवाला। जिसके तीन सिर हों।

त्रिशार-संज्ञा पुं० दे० “त्रिशार”।

त्रिशोर्ष-संज्ञा पुं० [सं०] (१) तीन चोटियोंवाला पहाड़। त्रिकूट। (२) खटा प्रजापति के पुत्र का नाम।

त्रिशोर्षक-संज्ञा पुं० [सं०] त्रिशूल।

त्रिशुच-संज्ञा पुं० [सं०] (१) धर्म, जिसका प्रकाश स्वर्ग, अंतरिक्ष और पृथिवी तीनों स्थानों में है। (२) यह जिसे दैहिक, दैविक और भौतिक तीनों प्रकार के दुःख हों।

त्रिशूल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार का शस्त्र जिसके सिरे पर तीन फल होते हैं। यह महादेवजी का अग्र माना जाता है।

थो०—त्रिशूलधर = महादेव।

(२) दैहिक, दैविक और भौतिक दुःख। (३) तंत्र के अनुसार एक प्रकार की मुद्रा जिसमें थंगुटे को कनिष्ठा अंगुली के साथ मिला कर धाकी तीनों अंगुलियों को फैला देते हैं।

त्रिशूलघात-संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत के अनुसार एक तीर्थ जहाँ स्वान और तर्पण करने से गायपत्य देह प्राप्त होती है।

त्रिशूली-संज्ञा पुं० [सं०] त्रिशूल को धारण करनेवाले, महादेव।

संज्ञा स्त्री० दुर्गा।

त्रिशृंग-संज्ञा पुं० [सं०] (१) त्रिकूट पर्वत जिसपर लंका बसी थी। (२) त्रिकोण।

त्रिशृंगी-संज्ञा स्त्री० [सं०] उँगना सदृशी जिसके सिर पर तीन कटि होते हैं।

त्रिशोक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) जीव, जिसे आधिदैविक, आधि-
भौतिक और आध्यात्मिक ये तीन प्रकार के शोक होते हैं ।
(२) कण्व ऋषि के एक पुत्र का नाम ।
त्रिश्रुतिमध्यम—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का विद्वत स्वर जो
संदीपनी नाम की श्रुति से धारंभ होता है । इसमें चार
ध्रुतिर्थां होती हैं ।
त्रिप्रण—संज्ञा पुं० [सं०] प्रातः, मध्याह्न और सायं ये तीनों
काल । त्रिकाळ ।
त्रिपट्ट—वि० [सं०] तिरसटवा । क्रम में तिरसट के स्थान पर
पड़नेवाला ।
त्रिपट्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] साठ और तीन की सूचक संख्या जो
इस प्रकार लिखी जाती है—६३ ।
त्रिपदा—संज्ञा स्त्री० दे० “तृपा” ।
त्रिपित्त—वि० दे० “तृपित्त” ।
त्रिपुपर्वा—संज्ञा पुं० दे० “त्रिसुपर्वा” ।
त्रिपट्टप—संज्ञा पुं० दे० “त्रिपट्टम्” ।
त्रिपट्टम्—संज्ञा पुं० [सं०] एक वैदिक छंद जिसके प्रत्येक चरण
में ग्यारह अक्षर होते हैं । इसका गोत्र कौशिक, वर्ण लोहित,
स्वर धैवत, देवता इंद्र और अग्नि प्रजापति के मांस से मानी
जाती है । इसके सुमुखी, इंद्रवज्रा, उषंद्रवज्रा, कीर्त्ति, वार्ष्णी,
माला, शाला, हंसी, माया, जाया, बाजा, आर्द्रा, भद्रा,
प्रेमा, रामा, रघोदत्ता, दौषक, ऋद्धि और निद्धि या शुद्धि
आदि प्रथम भेद हैं ।
त्रिष्टोम—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का यज्ञ जो उपर्युक्त यज्ञ
के पहले और पीछे किया जाता है ।
त्रिष्ट—संज्ञा पुं० [सं०] तीन पहियावाला रथ या गाड़ी ।
त्रिसंगम—संज्ञा पुं० [सं०] (१) तीन नदियों के मिलने का स्थान ।
त्रिवेणी । (२) किसी प्रकार की तीन चीजों का मेल ।
त्रिसंधि—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का फूल जो साज, सनेह
और काका तीन रंगों का होता है । इसे फगुनिया भी
कहते हैं । वैशक में इसे दृक्कारक और कफ, घांसी
तथा त्रिशेष का नाशक माना है ।
पर्याय—संत्यक्तुसुमा । संघिक्ती । सदाफल । त्रिसंघ्यक्तुसुमा ।
बांदा । सुकुमार । संघिजा ।
त्रिसंघ्य—संज्ञा पुं० [सं०] प्रातः, मध्याह्न और सायं ये तीनों काल ।
त्रिदोष—जो त्रिषु त्रिसंघ्य-व्यापिनी, अर्थात् सूर्योदय से लेकर
सूर्यास्त तक रहती है वह सब कार्यों के लिये ठीक मानी
जाती है ।
त्रिसंघ्यकुसुम—संज्ञा पुं० दे० “त्रिसंधि” ।
त्रिसंघ्यव्यापिनी—वि० स्त्री० [सं०] (वह तिथि) जो वराह
सूर्योदय से सूर्यास्त तक रहे । ऐसी तिथि शुद्ध और
सब कामों के लिये ठीक मानी जाती है ।

त्रिसंध्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रातः मध्याह्न और सायं ये तीनों
संध्याएँ ।
त्रिसत्तति—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सत्तर और तीन का जोड़ ।
तिहत्तर । (२) तिहत्तर की संख्या जो इस प्रकार लिखी
जाती है—७३ ।
त्रिसत्ततितम—वि० [सं०] तिहत्तरवा । जो क्रम में तिहत्तर के
स्थान पर हो ।
त्रिसप्त—संज्ञा पुं० [सं०] सोठ, गुड़ और हड़ इन तीनों का
समूह ।
त्रिसर—संज्ञा पुं० [सं०] लसारी ।
त्रिसर्ग—संज्ञा पुं० [सं०] सत्त, रत्न और तम तीनों गुणों का
सर्ग । छट्टि ।
त्रिसामा—संज्ञा पुं० [सं०] पित्तमत् परमेधर ।
संज्ञा स्त्री० [सं०] भागवत के अनुसार एक नदी जो महेंद्र
पर्वत से निकलती है ।
त्रिसिता—संज्ञा स्त्री० दे० “त्रिकैरा” ।
त्रिसुगंधि—संज्ञा स्त्री० [सं०] दाखचीनी, हलादी और तेरपात
इन तीनों सुगंधित मसालों का समूह ।
त्रिसुपर्वा—संज्ञा पुं० [सं०] (१) ऋग्वेद के तीन विशिष्ट मंत्रों का
नाम । (२) यजुर्वेद के तीन विशिष्ट मंत्रों का नाम ।
त्रिसुपर्वा—संज्ञा पुं० [सं०] वह पुरुष जो त्रिसुपर्वा का
ज्ञाता हो ।
त्रिसौपर्वा—संज्ञा पुं० [सं०] (१) त्रिसुपर्वा । (२) परमेधर ।
परमात्मा ।
त्रिस्कंध—संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिष शास्त्र जिसके संहिता, तंत्र और
होरा ये तीन स्कंध हैं ।
त्रिस्तोनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) गायत्री । (२) महाभारत के अनु-
सार एक राक्षसी जिसके तीन स्तन थे ।
त्रिस्तवन—संज्ञा पुं० [सं०] तीन दिनों में होनेवाला एक प्रकार
का यज्ञ ।
त्रिस्ताया—संज्ञा स्त्री० [सं०] अरघनेष यम की बेटी जो साधारण
बेटी से तिगुनी बड़ी होती थी ।
त्रिस्थली—संज्ञा स्त्री० [सं०] कारी, गया और प्रयाग ये तीन
पुण्य-स्थान ।
त्रिस्थापन—संज्ञा पुं० [सं०] स्वर्ग, मर्त्य और पाताल तीनों स्थानों
में रहनेवाला, परमेधर ।
त्रिस्तोता—संज्ञा पुं० [सं०] त्रिस्तोत्र । (१) गंगा । इ०—भस्म त्रि-
स्तोत्र शौमिने वर्षत दुद्धि बदर । मना त्रिस्तोता मोतधृति
वंदत धगी लिखार ।—केशव । (२) उत्तर बंगाल की एक
बड़ी नदी जिसे त्रिस्ता कहते हैं ।
त्रिस्पृशा—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की एकदूरी जो उत समय

श्वस्त-संज्ञा पुं० [सं०] त्रिकोण ।

श्वहृत्पशु-संज्ञा पुं० [सं०] वह सावन दिन जिसमें तीन तिथियाँ श्वशं करती हैं ।

श्वहृत्पुत्र-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह तिथि जो तीन सावन दिनों के श्वशं करती हो । ऐसी तिथि विवाह या यात्रा आदि के लिये निषिद्ध पर स्नान-दान आदि के लिये अच्छी मानी जाती है ।

श्वहिकारि रस-संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक में एक प्रकार का रस जिसमें प्रधानतः पारा, गंधक, वृत्तिया और शंख पड़ता है । इसका व्यवहार तिमारी ज्वर में होता है ।

श्वहीन-संज्ञा पुं० [सं०] तीन दिनों में होनेवाला एक प्रकार का यज्ञ ।

श्वहृहिक-संज्ञा पुं० [सं०] यह शुद्धत्व जिसके चर्चा तीन दिन तक निर्वाह करने के लिये यथेष्ट सामग्री हो । मनु के अनुसार ऐसा शुद्धत्व मध्यम सम्पन्न जाता है ।

श्याप्यं-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह योग्य जिसके तीन प्रवर हों । प्रिप्रवर योग्य । (२) श्रेया, महदा और शूणा । (इन तीनों को यज्ञ में जाने का अधिकार नहीं है)

श्याह्व-संज्ञा पुं० [सं०] सुशुभ के अनुसार एक प्रकार के पक्षी ।

श्याह्विक-संज्ञा पुं० [सं०] हर तीसरे दिन आनेवाला ज्वर । तिमाही ।

वि० तीन दिनों में होनेवाला ।

श्यूषण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सोड, पीपल और मिर्च । त्रिड्रुटा । (२) चाक के अनुसार एक प्रकार का घृत जो इन श्रेय-पक्षियों के मेल से बनाया जाता है ।

श्वक्-संज्ञा पुं० [सं०] (१) छिन्नका । छाल । (२) श्ववा । चमड़ा । छाल । (३) पाँच ज्ञानेंद्रियों में से एक जो सारे शरीर के ऊपरी भाग में व्याप्त है । इसके द्वारा श्वशं होता है तथा कड़े और नरम, ठंडे और गरम आदि का ज्ञान प्राप्त किया जाता है । हमारे यहाँ प्राचीन ऋषियों ने इसे वायु के सर्वशक्ति से शपथ माना है और इसका देवता वायु बतलाया है । (४) दारचीनी ।

श्वक्क्षीरा-संज्ञा स्त्री० दे० "श्वक्क्षीरी" ।

श्वक्क्षीरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] बंसलोचन ।

श्वक्छन्द-संज्ञा पुं० [सं०] पौरुष घृष्ट । शीकंशुकी ।

श्वक्पंचक-संज्ञा पुं० [सं०] यक्ष, गुलर, अश्वत्थ, सीरीस और पाकर ये पाँचों घृष्ट । वैद्यक में इन पाँचों की छाल का समूह शीतल, जडु, तिक्त तथा मध्य और शोष आदि का नाशक माना जाता है ।

श्वक्पत्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) तेजपत्ता । (२) दारचीनी ।

श्वक्पक्षी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) हिंगुपक्षी । (२) केलो का पेड़ ।

श्वक्पाक-संज्ञा पुं० [सं०] सुशुभ के अनुसार एक प्रकार का

रोग जिसमें पित्त और रक्त के कुपित होने से शरीर में कुत्सिर्षा निकल जाती है ।

श्वक्पुष्प-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सेहुर्षा रोग । (२) रोमांच । रोषुं सङ्घे हो जाना ।

श्वक्पुरिपका-संज्ञा स्त्री० दे० "श्वक्पुष्प" ।

श्वक्पुष्पी-संज्ञा स्त्री० दे० "श्वक्पुष्प" ।

श्वक्सार-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शीत । (२) दारचीनी । (३) सन का घृष्ट ।

श्वक्सारमेदिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] श्लेष्मा चंच ।

श्वक्सार-संज्ञा स्त्री० [सं०] बंसलोचन ।

श्वक्सुगंधा-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एलवा । (२) छोट्टी इलायची ।

श्वक्कुर-संज्ञा पुं० [सं०] रोमांच ।

श्वक्क्षीरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] बंसलोचन ।

श्वक्गंध-संज्ञा पुं० [सं०] मरंगी का पेड़ ।

श्वक्ज-संज्ञा पुं० [सं०] (१) रोम । रोषा । (२) रक्त । जहू ।

श्वक्क्षो-संज्ञा पुं० [सं०] कोड़ा । कुट ।

श्वक्क्षोपापहा-संज्ञा स्त्री० [सं०] बकुची । पायची ।

श्वक्क्षोपारि-संज्ञा पुं० [सं०] हस्तिकंद ।

श्वक्क्षोपी-संज्ञा पुं० [सं०] श्वक्क्षोपिर्षा कोटी । जिसे कुट रोग हो ।

श्वक्-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) चमड़ा । (२) छाल । बकल । (३) दारचीनी । (४) शीप की केंचुली । (५) श्वक् इंदियं । दे० "श्वक्" ।

श्वक्-संज्ञा पुं० [सं०] (१) दारचीनी । (२) तेजपत्ता ।

श्वक्वा-संज्ञा स्त्री० [सं०] श्वक् । चर्म । चमड़ा ।

श्वक्वापत्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) तेजपत्ता । (२) दारचीनी ।

श्वक्दीय-सर्व० [सं०] तुम्हारा ।

श्वक्क्षिसार-संज्ञा पुं० [सं०] घाँस ।

श्वक्क्षिसुगंधा-संज्ञा स्त्री० [सं०] छोट्टी इलायची ।

श्वक्वा-संज्ञा स्त्री० [सं०] शीघ्रता । जल्दी ।

श्वक्वापान-वि० [सं०] श्वक्वापान् शीघ्रता करनेवाला । जल्दपान ।

श्वक्वि-संज्ञा स्त्री० दे० "श्वक्वा" ।

श्वक्वित-वि० [सं०] सेझ ।

क्रि० वि० शीघ्रता से ।

श्वक्वितक-संज्ञा पुं० [सं०] सुशुभ के अनुसार एक प्रकार का चावल जिसे दूरीक भी कहते हैं ।

श्वक्वितगति-संज्ञा पुं० [सं०] एक षण्मूत्र का नाम जिसके प्रत्येक षण्मूत्र में नगण्य, जगण्य, नगण्य और एक गुरु होता है । इसका दूसरा नाम 'श्वक्वितगति' भी है । ४०-जिन नगण्य श्वक्वित हर जू । पयसित श्वक्वित वरनू ।

श्वक्वित-संज्ञा स्त्री० [सं०] श्वक् के अनुसार एक देवी जिसकी पूजा शुद्ध में विराय प्राप्त करने के लिये की जाती है ।

श्वक्वलम-संज्ञा पुं० [सं०] पानी का शीप ।

त्वष्टा-संज्ञा पुं० [सं० त्वष्टृ] (१) विरवकर्मा । विष्णुपुराण के अनुसार ये सूर्य के सात सारथियों में से एक हैं । (२) महादेव । शिव । (३) एक प्रजापति का नाम । (४) बड़ई । (५) धृतासुर के पिता का नाम । (६) भारद्वाजियों में से ग्याहर्ष्य आदिष्व जो ऋषि के अधिष्ठाता देवता माने जाते हैं । (७) एक वैदिक देवता जो पशुओं और मनुष्यों के गर्भ में बीर्य का विभाग करनेवाले माने जाते हैं । (८) सूत्रधार नाम की वर्षासंकर जाति । (९) चित्रा नक्षत्र के अधिष्ठाता देवता का नाम ।

त्वष्टि-संज्ञा पुं० [सं०] मनु के अनुसार एक संहर जाति ।
त्वष्टी-संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा ।

त्वाष्ट-संज्ञा पुं० [सं०] (१) त्वष्टा (विरवकर्मा) का बनाया हुआ हथियार, जूत । (२) धृतासुर का एक नाम । (३) चित्रा नक्षत्र ।

त्वाष्टी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) विरवकर्मा की कन्या संज्ञा का एक नाम जो सूर्य को प्याही थी और जिसके गर्भ में धरिनिनीकुमार का जन्म हुआ था । (२) चित्रा नक्षत्र ।

त्विषा-संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रभा । दीप्ति ।

त्विषामीश-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सूर्य । (२) आक का पेड़ ।

त्विषि-संज्ञा स्त्री० [सं०] किरण ।

त्सव-संज्ञा पुं० [सं०] (१) तलवार की मूढ । (२) सर्प ।

त्सावक-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो तलवार चलाने में निपुण हो ।

थ

थ-हिंदी वर्णमाला का सत्रहवाँ व्यंजन वर्ण और त्रयो का दूसरा अक्षर । इसका उच्चारण-स्थान दंत है ।

थंका-संज्ञा पुं० [?] विजयुकता ।

थंडिल-संज्ञा पुं० [सं० थंडिल] यक्ष की बेटी ।

थंभ-संज्ञा पुं० [सं० स्तम्भ] (१) खंभा । (२) सद्गुरु । (३) राज-पुत्रों का एक भेद ।

थंबी-संज्ञा स्त्री० [सं० स्तम्भ] (१) खड़ी लकड़ी । (२) चौड़ । सहारे की बल्ली । घुनी ।

थंभ-संज्ञा पुं० [सं० स्तम्भ] खंभा । उ०—जंघन को कढ़ली सम जानी । अथवा कनक थंभ सम मानै ।—सूर ।

थंभन-संज्ञा पुं० [सं० स्तम्भन] (१) रुखावट । उदराव । (२) संघ के लु प्रयोगों में से एक । दे० "स्तंभन" । (३) वह औषध जो शरीर से निकलनेवाली वस्तु (जैसे, मूत्र, शुक, हृषादि) को रोके रहे ।

थौ०—अथथंभन = वह मंत्रप्रयोग जिसके द्वारा जल का प्रवाह या बरसना आदि रोक दिया जाय ।

थंभना-कि० अ० दे० "थंभना" ।

थंभयाना-कि० सं० दे० "थंभयाना" ।

थंभाना-कि० सं० दे० "थंभाना" ।

थंभित-वि० [सं० स्तम्भित] (१) रुका हुआ । ठहरा हुआ । भङ्गा हुआ । (२) थक्का । स्थिर । (३) भय या धारणार्थ से निरचल । ठक ।

थ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) रश्मि । (२) मंगल । (३) भय । (४) पर्यंत । (५) अथर्वक । (६) एक व्याधि । (७) मलय । आहार ।

थई-संज्ञा स्त्री० [हिं० ठौव, ठई] (१) दाँव । जगह (२) डेर । आठाला ।

थइली-संज्ञा स्त्री० दे० "थैली" ।

थक-संज्ञा पुं० दे० "थाक" ।

थकना-कि० अ० [सं० स्तम्भ वा स्था + क, प्रा० पकन] (१) परिश्रम करते करते और परिश्रम के योग्य न रहना । सिद्धत करते करते हार जाना । शिथिल होना । ह्रांत होना । श्रंत होना । जैसे, चलते चलते या काम करते करते थक जाना ।

संयो० कि०—भावा ।

(२) रुक जाना । हैरान हो जाना । जैसे, कहते कहते थक गए पर वह नहीं मानता ।

संयो० कि०—जाना ।

(३) थुड़ापे से अशक्त होना । थुड़ापे के कारण काम करने के योग्य न रहना । जैसे, अथ वे बहुत थक गए घर ही पर रहते हैं ।

संयो० कि०—जाना ।

(४) मंदा पड़ जाना । चलता न रहना । धीमा पड़ जाना । ठीका होना या रुक जाना । जैसे, कारवार का थक जाना, रोजगार का थक जाना । (५) मोहित होकर अचल हो जाना । मुग्ध होना । लुभाना । उ०—(६) थके नयन धृषपति क्षुब्ध देखी ।—सुबली । (७) थके नारि नर प्रेम-पिपासे ।—सुबली ।

थकरा-संज्ञा स्त्री० [हिं० पकना] थकावट ।

थकरी-संज्ञा स्त्री० [दे०] खियों के बाध मारने की खत की कूची ।

थकान-संज्ञा स्त्री० [हिं० पकना] थकने का भाव । थकावट । शिथिलता ।

थकाना-कि० सं० [हिं० पकना] श्रंत करना । शिथिल करना ।

संयो० क्रि०—बालना ।—देना ।

धकामादा-वि० [हि० धकना] परिश्रम करते करते शराफत ।
श्रान्त । श्रमित ।

धकार-संज्ञा पुं० [सं०] 'ध' अक्षर या धर्ष ।

धकावा-संज्ञा पुं० [हि० धकना] धकावट ।

धकावाट-संज्ञा स्त्री० [हि० धकना] धकने का भाव । शिथिलता ।
क्रि० प्र०—भाना ।

धकावट-संज्ञा स्त्री० दे० "धकावट" ।

धकित-वि० [हि० धकना] (१) धका हुआ । श्रान्त । शिथिल ।
(२) मोहित । सुगंध । ष०—धकित मई' गोपी क्षत्रि
रवामहिं ।—सूर ।

धकिया-संज्ञा स्त्री० [हि० धका] (१) किसी गाड़ी चीज की जमी
हुई मोटी तह । (२) गली हुई धातु का जमा हुआ खोदा ।

धो०—धकिया की चादी = गल्लाकर साफ़ की हुई चादी ।

धकौनी-संज्ञा स्त्री० दे० "धकावट" ।

धकौही-वि० [हि० धकना] [को० धकौही] कुछ धका हुआ ।
धकामादा । शिथिल । ष०—दग यिरकौहिं धधसुले वेह
धकौहिं वार । सुरत सुखित सी देखियत दुखित गरम के
भार ।—विहारी ।

धका-संज्ञा पुं० [सं० रथा + क, बेंग० धकना = ठहरना] [स्त्री०
धका, धकिया] (१) किसी गाड़ी चीज की जमी हुई मोटी
तह । जमा हुआ बतारा । छेदी । जैसे, दही का धका,
खून का धका । (२) गली हुई धातु का जमा हुआ
फतरा । जैसे, चाँदी का धका ।

धगित-वि० [हि० धकित] (१) ठहरा हुआ । रुका हुआ । (२)
शिथिल । ढोला । (३) मंद ।

धड़ा-संज्ञा पुं० [सं० रथक] (१) बैठने की जगह । बैठक । (२)
दुकान की गद्दी ।

धति †—संज्ञा स्त्री० दे० "धाती" ।

धतिहारा-संज्ञा पुं० [हि० धाती + हार (प्रत्य०)] वह जिसके
पास धाती रखी हो ।

धती-संज्ञा स्त्री० [हि० धाती] डेर । राशि । थडाला । जैसे, रथ्यों
की धती ।

धन-संज्ञा पुं० [सं० स्तन] माय, भैंस, बकरी इत्यादि चौपायों का
स्तन । चौपायों की चूची ।

धनकुर्दा-संज्ञा पुं० [रथ०] एक छोटी नीले रंग की धमकीली
चिट्ठिया जो कीड़े मकड़े खाती है । इसका रंग बहुत
सुंदर होता है ।

धनगन-संज्ञा पुं० [धरमो] एक धड़ा धेड़ जो घरमा, बरार और
मजबारा में बहुत होता है । इसकी लकड़ी बहुत मजबूत
होती है और हमारात में जगती है ।

धनदुह-संज्ञा स्त्री० [हि० धन + दूटना] वह स्त्री जिसके स्तन में
दूध थाना बंद हो गया हो ।

धनी-संज्ञा स्त्री० [सं० स्तन] (१) स्तन के साकार की दो
धैलियाँ जो बकरियों के गले के नीचे खटकती हैं । गल-
यना । (२) हाथियों के धान के पास धन के साकार का
निकला हुआ मांस का अंकुर जो एक एक समझा जाता
है । (३) घोड़े की लिंग्द्रिय में धन के साकार का खट-
का हुआ मांस जो एक एक समझा जाता है ।

धनु + संज्ञा पुं० दे० 'धन' ।

धनेटा-संज्ञा पुं० [हि० धन + टा (प्रत्य०)] (१) एक प्रकार का
फोड़ा जो चियों के स्तन पर होता है । इसमें सूजन और
पीड़ा होती है और घाव हो जाता है । (२) गुबरेले की
जाति का फीड़ा जिसके विष में प्रसिद्ध है कि वह गाय
में से खादि के धन में उँक मार देता है जिससे दूध सूख
जाता है ।

धनेत-संज्ञा पुं० [हि० धन] (१) गाँव का मुखिया । (२)
पह शायमी जो जमींदार की ओर से गाँव का जमान
पसूल करे ।

धपकना-क्रि० सं० [धनु० धप धप] (१) प्यार से या धाराम
पहुँचाने के लिये किसीके शरीर पर धीरे धीरे हाथ मारना ।
हाथ से धीरे धीरे ठोकना । जैसे, सुनाने के लिये धपके को
धपकना । (२) धीरे धीरे ठोकना । जैसे, धापी से गव धप-
कना । (३) पुचकारना या धम दिलाता देना । (४)
किसी का क्रोध उँढा करना । शांत करना ।

धपकी-संज्ञा स्त्री० [हि० धपकना] (१) किसी के शरीर पर
(प्यार से या धाराम पहुँचाने के लिये) हथेली से धीरे
धीरे पहुँचाया हुआ आघात । (२) हाथ से धीरे धीरे ठोकने
की क्रिया ।

क्रि० प्र०—देना ।—जगाना ।

(२) हाथ के अङ्गठे से पहुँचाया हुआ कड़ा आघात ।
(३) ज़मीन को पीट कर चौरास करने की जुगरी । (४)
धापी । (५) धोवियों का सुँगाया या उँढा जिससे वे धोते
समय भारी कपड़ों को पीटते हैं ।

धपड़ी-संज्ञा स्त्री० [धनु० धप धप] (१) दोनों हथेलियों को एक
दूसरे से जोर से ठकरा कर धनि डालना करने की क्रिया ।
ताली ।

क्रि० प्र०—पीटना ।—धमाना ।

(मुहा०—धपड़ी पीटना या धमाना = जोर जोर से हँसी करना ।
उपहास करना । दिखगो उड़ाना ।

(२) ताली धमने का शब्द । (३) वेतन की पूरी
जिसमें हीरा, जीरा और नामक पड़ा रहता है ।

धपघपी-संज्ञा स्त्री० दे० "धपकी" ।

धपन ०—संज्ञा पुं० [सं० स्थापन] स्थापन । ठहराने या जमाने का काम । उ०—इधपे धपन धिर धपेइ धपन हार बेसरी कुमार बस धपनो सँभारिये।—तुजसी ।

धपना०—कि० सं० [सं० स्थापन] १) स्थापित करना । बैठाना । ठहराना । जमाना । (२) प्रतिष्ठित करना ।

कि० अ० (१) स्थापित होना । जमाना । ठहरना । (२) प्रतिष्ठित होना ।

कि० सं० [अतु० धप धप] धीरे धीरे पीटना या टोंकना ।

संज्ञा पुं० (१) पत्थर, लकड़ी आदि का औजार या टुकड़ा जिससे किसी वस्तु को पीटें । पिटना । (२) धारी ।

धपरा १—संज्ञा पुं० दे० “धपपड़” ।

धपाना०—कि० सं० [हिं० धपना] स्थापित कराना ।

धपुआ—संज्ञा पुं० [हिं० यपना = पीटना] धामन का वह खपड़ा जो चौड़ा, चौस चौस चिपटा हो (धर्मात् नाली के आकार का न हो) बीसी कि भरिया होती है । खरोख में प्रायः धपुआ धौर भरिया दोनों का मेल होता है । दो धपुओं के जोड़ के ऊपर भरिया बीधी करके रखी जाती है ।

धपेटा १—संज्ञा पुं० दे० “धपेड़ा” ।

धपेड़ा—संज्ञा पुं० [अतु० धप धप] (१) हथेली से पहुँचाया हुआ आघात । धपपड़ । (२) एक वस्तु पर दूसरी वस्तु के धार धार वेग से पड़ने का आघात । धका । टकरा । जैसे, नदी के पानी का धपेड़ा ।

कि० प्र०—लगना ।

धपेड़ी १—संज्ञा स्त्री० दे० “धपड़ी” ।

धपपड़—संज्ञा पुं० [अतु० धप धप] (१) हथेली से ठिपा हुआ आघात । तमाचा । म्हापड़ । खपेट ।

कि० प्र०—मारना ।—लगाना ।

मुहा०—धपपड़ कसना, देना, लगाना = तमाचा मारना ।

(२) एक वस्तु पर दूसरी वस्तु के धार धार वेग से पड़ने का आघात । धका । जैसे, पानी के हिलोर का धपपड़, हवा के झोंके का धपपड़ । (३) वाद या कुत्सिरी का धत्ता । चकत्ता ।

धप्या—संज्ञा पुं० [अ०] एक प्रकार का जहाज़ ।

धम—संज्ञा पुं० [सं० दम्भ, प्रा० धम] (१) संभा । जाट । स्वंग । धनी । (२) केजे की पेड़ी । (३) छोटी छोटी परिभा और हलुआ जिसे देखी को चढ़ाने के लिये बियाँ दे जाती हैं ।

धमकासी—वि० [सं० संभन] स्वंगम करनेवाला । रोहनेवाला । उ०—मन धुधि पित्त बहंकार दसं इंद्रिय मरक धमकारी।—धूर ।

धमना—कि० अ० [सं० रमन = रचना] (१) रचना । ठहराना । पकता न रहना । जैसे, गाड़ी का धमना, बेलकू का

धमना । (२) जारी न रहना । बंद हो जाना । जैसे, मेढ़ का धमना, शीशुओं का धमना । (३) धीरज धरना । सम करना । ठहरा रहना । उतावला न होना । जैसे, घोड़ा धम जाधो, चलते हैं ।

संयो० कि०—जाना ।

धमुआ १—संज्ञा पुं० [हिं० धमना] नाथ के बड़ का हथ्या ।

धर—संज्ञा स्त्री० [सं० धर] वह । परत ।

संज्ञा पुं० [सं० रज्ज] (१) दे० “धल” । (२) धाघ की माँद ।

धरकना १—कि० अ० [अतु० धर धर + कना] धारना । धर से कपना । उ०—थंक रग धदन मयंक धारे थंक भरि थंग में ससंक परयंक धरकत है।—देव ।

धरकाना—कि० सं० [हिं० धरकना] धर से कपाना ।

धर धर—संज्ञा स्त्री० [अतु०] धर से कपाने की मुद्रा ।

मुहा०—धर धर करना = धर से कपाना ।

कि० वि० कपाने की पूरी मुद्रा के साथ । जैसे, वह धर के मारे धर धर कपाने लगा । उ०—धर धर कपहिँ धुर नर नारी।—तुजसी ।

धरधर—कपनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० धर धर कपना] एक छोटी चिट्ठिया जो चैजे पर कपती हुई माँस होती है ।

धरधराना—कि० अ० [अतु० धर धर] (१) धर के मारे कपना । (२) कपना । उ०—सारी जल बीच प्यारी पीतम के थंक छागी चंद्रमा के बाद प्रतिबंधि प्येनी धरधराना।—शंभार सुभाकर ।

धरधराएट—संज्ञा स्त्री० [हिं० धरधराना] कपकपी जो धर के कारण हो ।

धरधरी—संज्ञा स्त्री० [अतु० धर धर] कपकपी जो धर के कारण हो ।

कि० प्र०—कूटना ।—लगाना ।

धरना—कि० सं० [सं० धुरं, हिं० धरना] हर्षाड़ी आदि से धातु पर घोट लगाना ।

संज्ञा पुं० सुनारों का एक औजार जिससे वे पत्थी की नकाशी बनाते हैं ।

धरधराना—कि० अ० दे० “धरधराना” ।

धरहरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० धरधराना] कपकपी जो धर के कारण हो ।

धरहराही—संज्ञा [दे०] पदसाज । निहार ।

धरि—संज्ञा स्त्री० [सं० रथन] धाघ आदि की माँद । धुर ।

धरिया—संज्ञा स्त्री० दे० “धारी” ।

धरणी—संज्ञा पुं० दे० “धल” ।

धरलिया १—संज्ञा स्त्री० [हिं० धरी] छोटी यात्री ।

धरुहट—संज्ञा पुं० [दे० धरु] मादरों की दस्ती ।

धर्मामीटर—संज्ञा पुं० [अ०] मरदी मरमी नापने का यंत्र । दे० “तापमान” ।

धराना-कि० अ० [अ० यार] डर के मारे कांपना । दहलना । जैसे, यह शेर को देखते ही धरां बटा ।

संयोग कि०—बठना ।—जाना ।

धल-संज्ञा पुं० [सं० रथ] (१) स्थान । जगह । ठिकाना ।

मुहा०—धल बैठना या धल से बैठना = (१) आराम से बैठना । (२) हिर ह्यकर बैठना । शांत भाव से बैठना । जम कर बैठना । आसन जमा कर बैठना ।

(२) सूखी धरती । यह जमीन जिस पर पानी न हो । जब का बलटा । जैसे, (क) नाथ पर से उतर कर धल पर आना । (ख) दुर्बोधन को जल का धल और धल का जल दिखाई पड़ना । (३) धल का मार्ग ।

योग—धलचर । धलवेड़ा । जलधल । -

(४) ऊँची धरती या टीला जिसपर बाढ़ का पानी न पहुँच सके । (५) यह स्थान जहाँ बहुतसी रेत पड़ गई हो । झूठ । धली । रेगिस्तान । जैसे, धर परखर । (६) याच की भाँद । लुर । (७) यादले का एक प्रकार का गोल (चबूकी के बराबर का) साज जिसे चबूकी की टोपी आदि पर जब चाहे तब टाँक सकते हैं । (८) फेड़े का जाल और सूजा हुआ प्रेम । घुणमंडल । जैसे, फेड़े का धल बंधना ।

कि० प्र०—बाँधना ।

धलकना-कि० अ० [सं० रथ, हिं० शूला, पुल्लुल] (१) कसा या तना न रहने के कारण मोले झाँक रहितना या फूलना पच-कना । मोले पड़ने के कारण ऊपर नीचे हिलना । (२) मोटाई के कारण शरीर के मांस का हिलने डोलने में हिलना । धलपत्र करना ।

धलचर-संज्ञा पुं० [सं० रथचर] पृथ्वी पर रहनेवाले जीव ।

धलचारी-वि० [दे० रथचारी] भूमि पर चलनेवाले ।

धलधल-वि० [सं० रथ, हिं० शूला] मोटाई के कारण फूलता या हिलता हुआ ।

मुहा०—धलधल करना = मोटाई के कारण किसी अंग का झूल झूल कर हिलना । जैसे, चलने में श्लका पेट धलधल करता है ।

धलधलाना-कि० [हिं० शूला] मोटाई के कारण शरीर के मांस का झूल कर हिलना ।

धलवेड़ा-संज्ञा पुं० [हिं० धल + वेड़ा] नाथ या जहान ठहरने की जगह । नाथ लगने का घाट ।

मुहा०—धल वेड़ा लगना = ठिकाना लगना । आश्रय मिलना । धल वेड़ा लगाना = ठिकाना लगाना । आश्रय देना ।

धलभारी-संज्ञा पुं० [हिं० यथ + भारी] पावकी के कहरों की एक बोली जिससे ये पिपुले कहरों को आगे रेतिले मैदान का होना सूचित करते हैं ।

धलवह-वि० [सं० रथवह] धरती पर बल्ल होनेवाले जंतु वृष्ट आदि । व०—जल धल वृष्ट फल फूल सखिल सब फल पेम पहुँचाई = तुलसी ।

धलिया-संज्ञा स्त्री० [सं० रथी] धाली । टाठी ।

धली-संज्ञा स्त्री० [सं० रथी] (१) स्थान । जगह । जैसे, पर्वत-धली, वनधली । (२) जल के नीचे का तल । (३) दहरने या बैठने की जगह । बैठक । (४) परती जमीन । (५) बालू का मैदान । रेतिली जमीन । (६) ऊँची जमीन या टीला ।

धवई-संज्ञा पुं० [सं० रथपति, प्रा० यवई] मन्थान बगानेवाला कारीगर । हँट परवर की जोड़ाई करनेवाला सिद्धी । रात्र । मेमार ।

धचन-संज्ञा पुं० [दे०] दुबहिन की तीसरी बार अपने पति के घर की यात्रा ।

धचना-संज्ञा पुं० [सं० रथपन, हिं० गपना] कच्ची मिट्टी का एक गोला जिसमें लगी हुई लकड़ी के छेद में चार्ली की लकड़ी पड़ी रहती है । चार्ली के घूमने से नारी भरी जाती है । (शुभादे)

यहना-कि० व० [हिं० यह] याह लेना । पता लगाना । व० - यथा याह यद्दे नहिं जाई । यह धीरे वृह धीर रहाई = कवीर ।

यहराना-कि० अ० [अ० यार] (१) दुर्बलता या भय से अंगों का कांपना । कमजोरी या डर से बदन का कांपना । (२) कांपना ।

यहाना-कि० व० [हिं० याह] (१) यहाराई का पता लगाना । याह लेना । व०—(क) सूर कहीं पेसे को त्रिभुवन आवै सिंधु यदाई ।—सूर । (ख) तुलसी तीरहि के चले समप पाहवीं पाह । घाह न आइ यदाह्वी सर सरिता यवगाह ।—तुलसी ।

संयोग कि०—टाँलना ।—देना ।—लेना ।

(२) किसी की विद्या बुद्धि या भीतरी अभिप्राय आदि का पता लगाना ।

यहारना-कि० व० [हिं० ठहरना] अज्ञान को ठहराना ।

धार्गि-संज्ञा स्त्री० [हिं० यार्ग] (१) चौरों या डाकुओं का गुप्त स्थान । चौरों के रहने की जगह । (२) खोत । पता । सुराग (विशेषतः चौर या पीछे हुई वस्तु आदि का) ।

कि० प्र०—लगाना ।

(३) भेद । गुप्त रूप से लगा हुआ किसी बात का पता । जैसे, बिना यार्ग के चोरी नहीं होती ।

धार्गी-संज्ञा पुं० [हिं० यार्ग] (१) चोरी का माख मोब लेने या अपने पास रखनेवाला आदमी । (२) चौरों का भेदिया । चौरों को चोरी के बिये ठिकाने आदि का पता देनेवाला

मनुष्य । (३) घोरी के माल का पता खगानेवाला धादमी ।
आसूस । (४) घोरों का झुड़ा रखनेवाला धादमी । घोरों के
माल का सरदार ।

धांगीदारी-संज्ञा स्त्री० [हिं० धांग + दार] धांगी का काम ।
धांगी-संज्ञा पुं० [सं० स्तम्भ] (१) धांगी । (२) धूती । धांग ।
धांगीना-कि० व० दे० "धामना" ।

धांगला-संज्ञा पुं० [सं० रथ, हिं० यत्] वह घेरा या गड्ढा जिसमें
कोई पैया जमा हो । घाला । आलघाल ।

धा-कि० अ० [सं० रथा] 'धै' शब्द का भूतकाल । एक शब्द
जिससे भूतकाल में होना सूचित होता है । रहा ।
जैसे, वह इस समय वहाँ नहीं था ।

विशेष-इस शब्द का प्रयोग भूतकाल के भेदों के रूप बनाने
में भी संयुक्त रूप से होता है जैसे, आता था, आया था, आ
रहा था इत्यादि ।

धाई-वि० [सं० रथाविन, रथावी] धन रहनेवाला । स्थिर रहने-
वाला । न मिटने या जानेवाला । बहुत दिनों तक चमकने-
वाला ।

धंशा पु० (१) घैठने की जगह । घैठक । अघाई । (२) गीत
का प्रथम पद जो गाने में भार धार कहा जाता है । प्रथमपद ।
स्थापी ।

धाक-संज्ञा पुं० [सं० रथा] (१) गाँव की सरहद । प्रामसीमा ।
(२) धोक । डेर । समूह । घडाला । राशि ।

धंशा स्त्री० [हिं० यकना] घकावट ।

कि० प्र०-लगाना ।

धाकना-कि० अ० दे० "धकना" । व०-धाकी गति धंगान
की, मति परि गाई मंद स्थिति भाँकती सी हो के देह खानी
पीराना ।-हरिश्चंद्र ।

धाकु-संज्ञा पुं० दे० "धाक" ।

धाट-संज्ञा पुं० दे० "घाट" ।

धात-वि० [सं० रथाट, रथात्] जो धैरा या ठहरा हो । स्थित ।
व०-दे० हिंदू विंघ शरीर पत्रकन एक जन्म पर
धात ।-सूर ।

धाति-संज्ञा स्त्री० [हिं० धात] (१) स्थिरता । ठहराव । टिकना ।
रहन । व०-समुद्र ज्ञान विरगा मक्ति सुराघन की पति ।
माजि विकल विलोकि कशि अघ पेगुनन की धाति ।
-तुलसी । (२) दे० "धाती" ।

धाती-संज्ञा स्त्री० [हिं० धात] (१) समय पर काम बनाने के लिये
रची हुई वस्तु । (२) वह वस्तु जो किसीके पास इस विश्वास
पर छोड़ दी गई हो कि वह मगिने पर दे देगा । धरोहर ।
व०-हुई धरदान भूप सन धाती । माँगू धान लुगायडू
धती ।-तुलसी । (३) संचित धन । इकट्ठा किया हुआ
धन । संचित प्रथ्य । जमा । पूँजी । गध । (४) दूसरे का

धन जो किसीके पास इस विचार से रखा हो कि वह
मगिने पर दे देगा । धरोहर । अमानत । व०-धादि धार
चकावत हाथ से का मेरी धाती में धाती धरी है ।

धान-संज्ञा पुं० [सं० रथान] (१) जगह । डेर । टिकना । (२)
रहने या ठहरने की जगह । ठेरा । निवासस्थान । (३)
किसी देवी देवता का स्थान । देवल । जैसे, माई का धान ।

(४) वह स्थान जहाँ घोड़े या घोषाये बाँधे जायें ।

मुहा०-धान का टाँ = (१) वह घोड़ा जो लूँटे से बँधा
वँधा नटखटी करे । लुडगाल में उपद्रव करनेवाला । (२) वह
जो घर पर ही या पड़ोश में ही अपना जेठ दिलावा करे बाहर
कुड़ न भोजे । अपनी गली में ही शेर बननेवाला । धान का
सधा = धीया घोड़ा । वह घोड़ा जो कहीं से लूँटे कर फिर
अपने लूँटे पर आ जाय । धान में धाना = (घोड़े का) धूँत
में झोटना । अच्छे धान का घोड़ा = अच्छी जाति का घोड़ा ।
प्रतिष्ठ स्थान का पोड़ा ।

(४) वह धास जो घोड़े के नीचे चिट्ठाई जाती है । (५)
कपड़े गोटे आदि का पूरा टुकड़ा जिसकी खंभाई बँधी हुई
होती है । जैसे, मार्कीन का धान, गोटे का धान । (७)
संख्या । अद्द । जैसे, एक धान भरारकी । चार धान गहने ।
एक धान कलेजी । (८) लिगेंद्रिय । (धानारु)

धानक-संज्ञा पुं० [सं० रथानक] (१) स्थान । जगह । (२) नगर ।
(३) धाँवला । धाला । धाकवाल । (४) पेन । ब्यूझा ।
भाग ।

धाना-संज्ञा पुं० [सं० रथान, हिं० धान] (१) अद्दवा । टिकने या
घैठने का स्थान । (२) वह स्थान जहाँ धराराधों की सूखवा
दी जाती है और कुछ सरकारी सिपाही रहते हैं । पुलिस
की बड़ी चौकी ।

मुहा०-धाने चढ़ना = धान में किसी के विरह सूचना देना ।
धान में इफला करना । धाना विधाना = पहरा विधाना । चौकी
विधाने ।

(३) धाँसी का समूह । धाँस की कोठी ।

धानापत्ति-संज्ञा पुं० [सं० रथानपत्ति] धामदेवता । स्थानरक्षक
देवता ।

धानी-संज्ञा पुं० [सं० रथाविन] (१) स्थान का स्वामी । जिसका
स्थान हो । (२) दिक्पात्र । खोकपात्र ।
वि० संवत् । पूर्वा ।

धानेत-संज्ञा पुं० दे० "धानैत" ।

धानेदार-संज्ञा पुं० [हिं० धाना + दार] धाने का वह अफसर
या प्रधान जो किसी स्थान में शक्ति बनाए रखने और धर-
राधों की धान बँध करने के लिये नियुक्त रहता है ।

धानेदारी-संज्ञा स्त्री० [हिं० धान + दारी] धानेदार का पद
या कार्य ।

सब ही के। कतरति यिति, लय विषङ्ग धमी के।—सुबसी।

(४) धवस्था। द्या।

यित्तिभाव—संज्ञा पुं० [सं० यित्तिभाव] दे० “स्थायी भाव”।

यिवाङ्—संज्ञा पुं० [दे०] दहन योग का फड़कना आदि जिते ढग लोग अपने लिये अशुभ समझते हैं। (ढग)

यिर-वि० [सं० यिर] (१) जो चञ्चल या हिलता डोलता न हो। ठहरा हुआ। अचञ्चल। (२) जो चञ्चल न हो। शांत। धीर। (३) जो एक ही अवस्था में रहे। स्थायी। दृढ़। टिकाऊ।

यिरक—संज्ञा पुं० [हिं० यिरक] जूय में चारों की चञ्चल गति। नाचने में पैरों का हिलना डोलना या उठना और गिरना।

यिरकना—क्रि० प्र० [सं० अयिर + कण] (१) नाचने में पैरों का घण घण पर उठाना और गिराना। जूय में शंग संचालन करना। जैसे, यिरक कर नाचना। (२) शंग मटक कर नाचना। ठमक ठमक कर नाचना।

यिरजीह—संज्ञा पुं० [सं० यिरजीह] मधुली।

यिरता—संज्ञा स्त्री० [सं० यिरता] (१) ठहराव। अचञ्चल। (२) स्थायित्व। (३) अचञ्चलता। शांति। धीरता।

यिरताई—संज्ञा स्त्री० दे० “यिरता”।

यिरयिरा—संज्ञा पुं० [दे०] एक प्रकार का सुबसुल जो जाड़े के दिनों में सारे भारतवर्ष में दिखाई पड़ता है।

यिरना—क्रि० प्र० [सं० यिर, हिं० यिर + ना (प्रत्य०)] (१) पानी या और किसी द्रव पदार्थ का हिलना, डोलना बंद होना। हिलते डोलते या जड़राते हुए जल का ठहर जाना। जल का उन्ध न रहना। (२) जल के स्थिर होने के कारण उसमें सुली हुई वस्तु का सब में बैठना। पानी का हिलना, घुमना आदि बंद होने के कारण उसमें मिली हुई चीज का पेंदे में जाकर जमना। (३) मूँज आदि नीचे बैठ जाने के कारण जल का स्पष्ट हो जाना। (४) मूँज धूल, रेत आदि के नीचे बैठ जाने के कारण साफ चीज का जल के ऊपर रह जाना। निघरना।

यिरा—संज्ञा स्त्री० [सं० यिरा] घृष्ठी।

यिराना—क्रि० प्र० [हिं० यिराना] (१) पानी आदि का हिलना डोलना बंद करना। उन्ध जल को स्थिर होने देना। (२) जल को स्थिर करके उसमें सुली हुई वस्तु को नीचे बैठने देना। (३) सुली हुई मूँज आदि को नीचे बैठने देकर पानी को साफ करना। (४) किसी वस्तु को जल में धोव कर और उसमें मिली हुई मूँज, धूल, रेत आदि को नीचे बैठ कर साफ करना। निघराना।

† क्रि० प्र० दे० “यिराना”।

धी—क्रि० प्र० ‘हे’ के श्रुतकाल ‘या’ का स्त्री०

धीकरा—संज्ञा पुं० [सं० रिक्त + कर] किसी आदि के समय रहा

या सहायता का भार जिते गाँव का प्रत्येक समर्थ मनुष्य धारी धारी से अपने ऊपर लेता है।

धीता—संज्ञा पुं० [सं० रिक्त; हिं० पित] (१) स्थिरता। शांति। (२) कल। धैर्य। उ०—धीता परे नहिं धीता चवेयन देखत पीठि दे सीठि कै पैनी।—देव।

धुकयाना—क्रि० प्र० दे० “धुकाना”।

धुकाहारे—वि० स्त्री० [हिं० धुक + हारे (प्रत्य०)] ऐसी स्त्री जिसे सब लोग धुकेँ जिसकी सब निंदा करते हैं।

धुकाहारे—संज्ञा स्त्री० [हिं० धुकना] धुकने का काम।

धुकाना—क्रि० प्र० [हिं० धुकना का प्रे०] (१) धुकने की क्रिया दूसरे से कराना। दूसरे को धुकने की प्रेरणा करना।

संयो० क्रि०—देना।

(२) सुँह में की हुई वस्तु को गिरवाना। उगलवाना। जैसे, यथा सुँह में मिट्टी लिए है जल्दी मुछाओ। (३) धुकी धुकी कराना। निंदा करना। निरस्कार करना। जैसे, क्यों ऐसी चाल चलकर गली गली धुकाते फिरते हो ?

धुकायल—वि० [हिं० धुक + अल (प्रत्य०)] जिसे सब लोग धुकेँ। जिसे सब लोग धिकारें। तिरस्कृत। निंघ।

धुकेल—वि० दे० “धुकायल”।

धुका, फजीहत—संज्ञा स्त्री० [हिं० धुक + फजीहत] निंदा और तिरस्कार। धुकी धुकी। धिकार।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

धुकी—संज्ञा स्त्री० [हिं० धुक] रेशम के ताने को धुक बजाकर सुलमाने की क्रिया। (सुलाहें)

धुकी—संज्ञा स्त्री० [अनु० धुक = धुकने का शब्द] घृषा और तिरस्कार-सूचक शब्द। धिकार। लाजत। फिट। जैसे, धुकी है मुझको।

मुहा०—धुकी धुकी करना = धिकारना। निंदा और तिरस्कार करना।

धुपना—संज्ञा पुं० दे० “धूपन”।

धुपाना—क्रि० प्र० [हिं० धूपन] धूपन सुलाना। सुँह सुलाना। नाराज होना।

धुनेर—संज्ञा पुं० [सं० धूप, हिं० धुन] गठिवन का एक भेद।

धुसी—संज्ञा स्त्री० [सं० धूप] धुसी। लंबा। काढ़ि। उ०—धति धूप पूरे धुप रूपी कुंज अटल धुनी।—रुर।

धुपना—क्रि० प्र० [सं० धूप, हिं० धुप] मनुष्य की बालों का डेर बजाकर दधाना जिसमें उनमें कुछ शरमी था जाय। दंदवाना। धीसाना।

धुपरा—संज्ञा पुं० [सं० धूप] मनुष्य की बालों का डेर जो धीसने के लिये दधाकर रखा जाय।

धुपना—क्रि० प्र० [सं० धुपन = धारना] (१) धटना (२) मारना। पीटना।

युद्धया-वि० [हि० योद्धा + ह्यप्] [श्री० युद्धयो] (१) जिसके हाथ छोटे हों। जिसकी हथेली में कम चीज आवे। व०—कन दूधो सौंयो ससुर यह युद्धयी जानि। रूप रहचते जगि लख्यो मर्गन सभ जग धानि।—विहारी। (२) किसी को कुछ देते समय जिसके हाथ में थोड़ी वस्तु आवे। किफायत करनेवाला।

धूलना-संज्ञा पुं० [दे०] एक प्रकार का पहारो जना कपड़ा या कंब्रज।

धुली-संज्ञा स्त्री० [सं० खल, हिं० धूला] किसी धन के मोटे कण जो दबने से होते हैं। दूखिया।

धुवा-संज्ञा पुं० दे० "धूवा"।

धूक-संज्ञा पुं० दे० "धूक"।

धूकना-क्रि० प्र० दे० "धूकना"।

धू-अव्य० [भृन्] (१) धूकने का शब्द। वह ध्वनि जो जोर से धूकने में सुँह से निकलती है। (२) धूया और तिरस्कार सूचक शब्द। धिक्, धिः। जैसे, धू धू। कोई ऐसा काम करता है ?

मुद्दा-धू धू करना=धूया प्रकट करना। धिः छिः करना। धिकारना। धू धू होना=चोरों और से छिः छिः होना। निंदा होना। धू धू युद्ध=झड़कों का एक वाक्य जिसे वे खेल में उस समय बोलते हैं जब समझते हैं कि वे वैदमानी होने के कारण हार रहे हों।

धूक-संज्ञा पुं० [भृन् धू धू] वह गाना और कुछ कुछ खलीबा रस जो सुँह के भीतर जीम तथा मांस की किण्वियों से छूटा है। छीवन। खलार। धार।

विशेष-मनुष्य तथा और सबत स्तन्य जीवों में जीम के अगसे भाग तथा सुँह के भीतर की मांसल किण्वियों में दाने की तरह अगरे हुए अत्यंत सूक्ष्म छेद होते हैं जिनमें एक प्रकार का गाना सा रस भरा रहता है। यह रस भिन्न भिन्न जंतुओं में भिन्न भिन्न प्रकार का होता है। मनुष्य चादि प्राणियों के धूक के माग में ऐसे रासायनिक द्रव्यों का अंग होता है जो भोजन के साथ मिलकर पाचन में सहायता देते हैं।

मुद्दा-धूक बलाजना=ध्वर्य की बकवाद करना। धूक विखोना=ध्वर्य बकना। अनुचित प्रभाव करना। धूकलोगाना=हृदय। नीचा दिखाना। धूकलोगाना। हैलन और तंग करना। धूक खगा कर छोड़ना=नीचा दिखाने का छोड़ना। (विशेषी को) तंग और लजित करने छोड़ना। दंड देकर छोड़ना। धूक खगा कर रखना=यहूत सैत कर रखना। जोह जोह कर इकट्ठा करना। कंठनी से जमा करना। इनपत्ता से संचित करने। धूममें सधू सागना=कंठनी या किफायत के मोरे थोड़े से सामान से बहुत बड़ा काम करने चतना। बहुत थोड़ी सामग्री

लागकर बड़ा कार्य पूरा करने चतना। धूक है। = धिक् है। खानत है।

धूकना-क्रि० प्र० [हिं० धूक + ना (भल०)] (१) सुँह से धूक निकालना या फेंकना।

संज्ञा० क्रि०—देना।

मुद्दा-किसी (व्यक्ति या वस्तु) पर न धूकना=अत्यंत धूषण करना। जरा भी पसंद न करना। अत्यंत तुच्छ समझ कर ध्यान तक न देना। जैसे, हम तो ऐसी चीज पर धूके भी नहीं। धूक कर चाटना=(१) कह कर मुकर जाना। वादा करके न करना। प्रतिज्ञा करके पूरा न करना। (२) किसी दी हुई वस्तु को लौटा लेना। एक बार देकर फिर ले लेना। क्रि० प्र० (१) सुँह में धी धूई वस्तु को गिराना। उगलाना। जैसे, पान धूक दो।

संज्ञा० क्रि०—देना।

मुद्दा-धूक देना=तिरस्कार कर देना। धूषणपूर्वक त्याग देना। (२) धुरा कहना, धिक्कारना। निंदा करना। तिरस्कार करना। व०—हसी चाल पर लोग तुम्हें धूकते हैं।

धूधन-संज्ञा पुं० [दे०] खंया निकला हुआ सुँह जैसे, सूअर, घोड़े, उंट बैल आदि का।

धूधनो-संज्ञा स्त्री० [हिं० धूधन] (१) खंया निकला हुआ सुँह जैसे, सूअर, घोड़े, बैल आदि का।

मुद्दा-धूधनी फैलाना=नाक भी चढ़ाना। सुँहें ऊठाना। नाराज होना।

(२) हाथी के सुँह का एक रोग जिसमें उसके तालू में चाब हो जाता है।

धूधरा-वि० [दे०] धूधन के ऐसा निकला हुआ सुँह। धुरा चहरा। भद्रा चहरा।

धूधन-संज्ञा पुं० दे० "धूधन"।

धूधन-संज्ञा स्त्री० [सं० खण] धूनी। चाँद। खंया। व०—प्रेम प्रमोद परस्पर प्रगटत गोपहि। जनु हिरदय शुभप्राम धून धिर रोपहि।—तुलसी।

संज्ञा पुं० एक प्रकार का मोटा पीटा या गन्ना जो मद्रास में होता है। मद्रासी पीटा।

धूना-संज्ञा पुं० [दे०] मिठी का खोंदा जिसमें परता खोस कर सूत या रेशम फेरते हैं।

धूनी-संज्ञा स्त्री० दे० "धूनी"।

धूनी-संज्ञा स्त्री० [खण] (१) लकड़ी आदि का गढ़ा हुआ लड़ा बड़ा। खंया। स्तंभ। धम। (२) वह खंया जो किसी बेलक को रोक्ने के लिये नीचे से खगाया जाय। चाँद। सद्दारे का खंया।

क्रि० प्र०—खगाना।

(३) वह गड़ी हुई लकड़ी जिसमें रस्सी का फंदा लगाकर मरानी का हंडा घटकाते हैं।

धूवी-संज्ञा स्त्री० [दे०] सप का विष दूर करने के लिये गरम लोहे से काटे हुए स्थान को दागने की युक्ति।

धूरना-कि० घ० [सं० धुर्वन् = मारना] (१) धूटना। दलित करना। (२) मारना। पीटना। घ०-धूरत करि रिस जवहिं हेति सवहर सम सूरत। धूरत पर बल मूरि हृदय महीं परि गूरत।-गोपाल। (३) टूटना। कस कर भरना। (४) खूब कस कर खाना। टूट टूट कर खाना।

धूल-वि० [सं० रघ्] (१) मोटा। भारी। (२) भद्दा।

धूला-वि० [सं० रघ्] [स्त्री० धूला] मोटा। मोटा ताना। घ०-हरतार करे यहि कामिनि के कर कोमलता कबता सुनि कै। लघु दीर्घ पातरि धूलि तहीं सुसमाधि टरीं सुनि कै सुनि कै।-तोष।

धूली-संज्ञा स्त्री० [हिं० धूला = मोटा] (१) किसी अनाज का दूला हुआ मोटा कण। दलिया। (२) सूजी। (३) पकाया हुआ दलिया-जो गाय को यथा जनने पर दिया जाता है।

धूचा-संज्ञा पुं० [सं० धूच, प्रा० धूच, यद् [(१) मिट्टी आदि के ढेर का बना हुआ टीला। इह [(२) गीली मिट्टी का पिंदा या लोटा। धीमा। भोली। धोंधा। (३) मिट्टी का इह जो सरहद के निशान के लिये उड़ाया जाता है। सीमासूचक रूप। (४) इह के आकार का काला रंगा हुआ पिंदा जिसे पीने का संवाह्य धेवनवाले शयनी दूकानों पर चिह्न के लिये रखते हैं। (५) वह थोक जो कपड़े में घँपी हुई राव के ऊपर जूटी निकाल कर बढाने के लिये रखा जाता है। (६) मिट्टी का खोटा जो बोक के लिये टँकली की छाड़ी लकड़ी के छेर पर थोपा जाता है।

धुंसा स्त्री० [अनु० धूध] धुड़ी। धिफार का शब्द।

धूहड़-संज्ञा पुं० दे० "धूहर"।

धूहर-संज्ञा पुं० [सं० धूध = धूनी] एक छोटा पेड़ जिसमें लचीली टहनियाँ नहीं होतीं, गाँड़ों पर से गुजरती या बँडे के आकार के बँडल निकलते हैं। किसी जाति के धूहर में बहुत मोटे दल के लंबे पत्ते होते हैं और किसी जाति में पत्ते विशकूल नहीं होते। कटि भी किसी में होते हैं किसी में नहीं। धूहर के बँडलों और पत्तों में एक प्रकार का कटुभा दूध भरा रहता है। निकले हुए बँडलों के सिरे पर पीले रंग के फूल लगते हैं जिनपर आवरणपत्र वा दिखती नहीं होती। पुं० और स्त्री० पुत्र भ्रजग भ्रजग होते हैं। धूहर कई प्रकार के होते हैं-जैसे, कटियावाला, धूहर, तिधारा धूहर, चौधारा धूहर, नागफनी, सुरासानी धूहर, विलायती धूहर इत्यादि। सुरासानी धूहर का दूध

विपला होता है। धूहर का दूध औषध के काम में आता है। धूहर के दूध में सानी हुई चाजरे के भाटे की गोली देने से पेट का दर्द दूर होता है और पेट साफ हो जाता है। धूहर के दूध में मिर्गोई हुई चने की दाल (थाड या दसं दाने) लगे से मक्खन उखाव होता है और गरमी का रोग दूर होता है। धूहर की राख से निकाला हुआ पार भी दवा के काम में आता है। कटियाले धूहर के पत्तों का लोग अचार भी बालते हैं। धूहर का कोयला वास्तु धवाने के काम में आता है। वैद्यक में धूहर रचक, तीक्ष्ण, अग्निदीपक, कटु तथा शूल गुरम, शरीला, वायु, श्ममाद, सूजन इत्यादि का दूर करनेवाला माना जाता है। धूहर को सेंहुड़ भी कहते हैं।

धूर्या-रुही। समंततुषा। गागद्। महाघृषा। सुषा। वज्रा। शीहुंदा। सिहेंदु। दंडवृषक। र्नुक। र्नुपा। शुब। गुदा। कृष्णसार, निशिंशपत्रिका। नेत्रारि। कांठशाल। सिंहगुं। कांठरोहक।

धूहा-संज्ञा पुं० [सं० धूच, धू] (१) इह। अटाजा। (२) टीला।

धूही-संज्ञा स्त्री० [हिं० धूहा] (१) मिट्टी की ढेरी। वूह। (२) मिट्टी के खंभे जिनपर गराड़ी या विरनी की लकड़ी ठहराई जाती है।

धूँधर-वि० [दे०] धका हुआ। अंत। सुल। हैरान।

धेई धेई-वि० [अनु०] तालसूचक नृत्य का शब्द और मुद्रा। थिरक थिरक कर नाचने की मुद्रा और ताल। घ०-लाग मान धेई धेई करि उघटत घटत ताल सद्दंग गीरीर।-सूर।

क्रि० प्र०-करना।

धेगली-संज्ञा स्त्री० दे० "धियाली"।

धेवा-संज्ञा पुं० [दे०] (१) धेगुड़ी का नगीना। (२) किसी धातु का वह पत्र जिसपर सुहर खोदी जाती है। (३) धेगुड़ी का वह घर जिसमें नगीना जड़ा जाता है।

धैचा-संज्ञा पुं० [दे०] खेत में मचान के ऊपर का छपर।

थैला-संज्ञा पुं० [सं० रघल = कपड़े का घर] [स्त्री० कपण० यैला] (१) कपड़े टाट आदि को सीकर बनाया हुआ पात्र जिसमें कोई वस्तु भरकर बंद कर सकें। भड़ा कोरा। भड़ा यडुषा। भड़ा कीसा।

मुहा०-थैला करना = मारकर ढेर कर देना। मारते मारते टीला कर देना।

(२) रुपयों से भरा हुआ थैला। तोड़ा। घ०-थैलवो धन-जाते दम खोलि थैला वीजियुं जू जीजियुं जू आषा प्राम चरन पढायुं हैं।-भियादास। (३) पायजामे का वह भाग जो जंवे से घुटने तक होता है।

शैली-संज्ञा स्त्री० [हिं० शैल] (१) छोटा पहाड़। कोयल। कीसा। बडुआ। (२) रूपों से भरी हुई शैली। तोड़ा।

मुहा०—शैली खोलना = शैली में वे निकाल कर रक्था देना।
 व०—सब आनिय श्योहरिया घोबी। गुलत देई में शैली खोली।—गुलसरी

शैलीदार-संज्ञा पुं० [हिं० शैली + फा० दार] (१) वह आदमी जो खजाने में रक्प उठाता है। (२) सहचीकदार। रोकरिया।
 शैलीघरदार-संज्ञा स्त्री० [उ०] शैली बडाकर पहुँचाने का काम। शैलियों की घोस्राई।

शोक-संज्ञा पुं० [सं० शोक, प्र० शोक, हिं० शोक] (१) डेर। शशि। घटाला। (२) समूह। मुँड। जय्या।

मुहा०—शोक करना = इकट्ठा करना। जमा करना। व०—हुम शदि काहे न टैरी कान्हा गैवाँ दुरि गईं।.....विद्वित किरत सखल यन महियाँ पकड़ि पक भईं। छाँदि खैल सख दुरि जातई शैली जो सके शोक कईं।—सूर।

(१) किसी का इकट्ठा माल। इकट्ठा बेचने की चीजें। सुदरा का बखटा। जैसे, हम शोक के खरीदार हैं। (४) जमीन का इकट्ठा जो किसी एक आदमी का हिस्सा हो। चक। (२) इकट्ठी यस्तु। कुल। (६) वह स्थान जहाँ कई गाँवों की सीमाएँ मिलती हैं। यह जगह जहाँ कई सरहदें मिलें।

शोकदार-संज्ञा पुं० [हिं० शोक + फा० दार] इकट्ठा माल बेचने-वाला व्यापारी।

शोड़ा-वि० [सं० लोक, वा० शोष + श (श्रय०)] [स्त्री० शोड़ी] जो मात्रा या परिमाण में शक्ति न हो। म्यून। अरप। कम। सनिक। जरा सा। जैसे, (क) शोड़े दिनों से वह रथमार है। (ख) मेरे पास अब बहुत शोड़े रूप रह गए हैं।

धा०—शोड़ा बहुत = कुल। कुछ कुल। किसी कदर। जैसे, शोड़ा बहुत रूपया उनके पास जरूर है।

मुहा०—शोड़ा शोड़ा होना = क्षत्रित होना। संकुचित होना।
 कि० वि० अरप परिक्षण या मात्रा में। जरा। सनिक।
 व०—शोड़ा चबकर देखा खो।

मुहा०—शोड़ा ही = नहीं। शिक्लत नहीं। जैसे, हम शोड़ा ही जायेंगे, जो जाय उतसे कहे। (बोलचाल में इस मुहा० का प्रयोग ऐसी जगह होता है जहाँ उस बात का खंडन करना होता है जिसे समझ कर दूसरा कोई बात कहता है।)

शोटी-संज्ञा स्त्री० [देग०] शौपाथों के मुँह का आगबा भाग। धूपन।
 धा०—संज्ञा स्त्री० [हिं० शोपा] (१) लोखलापन। निःसाराता। (२) तेंद। पेट।

शोथरा-वि० [हिं० शोपा] (१) धुन वा कीड़ों का श्वाया हुआ। लोखला। छाबी। (२) निःसार। जिसमें कुछ सत्व न हो। (३) निकम्मा। व्यर्थ का। जो किसी काम का न हो।

शोथा-वि० [देग०] [स्त्री० शोपी] (१) जिसके भीतर कुछ सार न हो। खोखला। छाबी। पोला। जैसे, शोथा चना, चाने धना। (२) जिसकी चार तेज न हो। कुठित। गुदला। जैसे, शोथा तीर। (३) (साँप) जिसकी पूँछ कट गई हो। बाँधा। बे हुम का। (४) भद्दा। बेदंगा। व्यर्थ का। निकम्मा।

मुहा०—शोपी यात = भरी बात। व्यर्थ की बात। व्यर्थ का प्रताप।

संज्ञा पुं० धरतन दाखने का मिट्टी का साँचा।

शोपी-संज्ञा स्त्री० [देग०] एक प्रकार की घास।

शोपड़ी-संज्ञा स्त्री० [हिं० शोपना] चपट। धौल।

शौ०—गनेस शोपड़ी = लड़के का एक खेल जिसमें जो चौर होता है उसकी आँसु बंद करके उसके तिर पर सब लड़के बारी बारी चपट लगावे हैं। यदि चपट खानेवाला लड़का ठीक ठीक बतला देता है कि कितने पहले चपट लगाई तो वह पहले चपट लगानेवाला लड़का चौर हो जाता है।

शोपना-क्रि० सं० [सं० श्यपन, हिं० श्यपन] (१) किसी गीली चीज (जैसे, मिट्टी, घाटा आदि) की मोटी तह ऊपर से जमाना या रखना। किसी गीली वस्तु का लोटा यों ही ऊपर ढाल देना या जमा देना। पानी में सनी हुई वस्तु के जोड़े को किसी दूसरी वस्तु पर इस प्रकार फैला कर ढालना कि वह बसपर चिपक जाय। शोपना। जैसे, चड़े के मुँह पर मिट्टी शोप दो।

संशो० क्रि०—देना।—लेना।

(२) सपे पर रोटी धराने के लिये योंही बिना गड़े हुए गीला घाटा फैला देना। (३) मोटा लेप चढ़ाना। लेख चढ़ाना। (४) शारीरित करना। मरथे मढ़ना। लगाना। जैसे, किसी पर शोप शोपना। (२) आक्रमण आदि से रचा करना। पचाना। दे० “शोपना”।

शोपी-संज्ञा स्त्री० [हिं० शोपना] चपट। धौल। चपेट। शोपड़ी।

शोवड़ा-संज्ञा पुं० [देग०] धूपन। जानवरों का निकला हुआ लंबा मुँह।

शोथ रखना-क्रि० सं० [क्य०] जहाज को धार पर चढ़ाना।
 शोर-संज्ञा पुं० [देग०] (१) केले की पेड़ी के बीच का गामा। (२) बूढ़ का पेड़।
 वि० दे० “शोड़ा”।

शोर-वि० दे० “शोड़ा”।

शोरिक-वि० [हिं० शोरा + क०] शोड़ा सा। सनिक सा।

शोरी-संज्ञा स्त्री० [देग०] एक हीन धनार्थ भाति।
 वि० स्त्री० दे० “शोरा”।

ध्यावसा—संज्ञा पुं० [रथेयस] (१) स्थिरता । ठहराव । (२) धौरता
चेर्य । ४०— (क) यिन पावस तो हई ध्यावस हँ ग सु
क्यों करिये अब सो परसैं । बदरा बरसैं शतु में धिरि के

नित ही शिंयिणीं धरी बरसैं ।—दानंदधन । (२) ज्यों
कहटाव मसूनि वसत क्यों हूँ कहुँ सी धरि नहिं ध्यावस ।
—दानंदधन ।

द

द—संस्कृत या हिंदी धर्ममाला में अठारहवाँ व्यंजन जो तवर्ग का
तीसरा वर्ण है । इसका उच्चारण स्थान दंतमूल है ; दंतमूल
में जिह्वा के अगले भाग के स्पर्श से इसका उच्चारण होता
है । यह अक्षरप्रायः ही और इसमें सवार, नाद और चोप
नामक बाद्य प्रयत्न होते हैं ।

दंग—वि० [फा०] विस्मित । चकित । आश्चर्यान्वित । साम्प्र ।

क्रि० प्र०—रह जाना ।—होना ।

संज्ञा पुं० (१) घघराहट । भय । डर । ४०—जब रथ साजि
चढ़ी रथ समुप जीय न आनो दंग । रावध सेन समेत
सँवारों करीं दधिरमय शंग ।—सूर । (२) दे० “दंगा” ।

दंगई—वि० [हिं० देगा] (१) दंगा करनेवाला । उपद्रवी । लज्जका ।
भगडाखू । (२) प्रबंद । उग्र । (३) दंगली । बहुत
बड़ा । लंबा चौड़ा । भारी ।

दंगल—संज्ञा पुं० [फा०] (१) मछों का युद्ध । पदलवानों की
यह कुरती जो जोड़ बंद कर हो और जिसमें जीतनेवाले
को हनाम प्रादि मिले । (२) भ्रष्टाङ्ग । मल युद्ध का स्थान ।
मुहा०—दंगल में उतरना=कुरती लड़ने के लिये श्रमाड़े
में खाना ।

(३) जमावड़ा । समूह । समाज । जमात । दल । ४०—
सायन नित संतन के धर में, रति मति सियवर में ।
नित वसंत नित दोरी मंगल, बैसी बस्ती सैसोहू जंगल, दल
बादल से जिनके दंगल पगे रटे की मर में ।—देवस्थानी ।

क्रि० प्र०—जमाना ।—बर्षाना ।

(४) बहुत मोटा गधा या तोशक । ४०—(क) अहलकार
हाथ धोकर सामने बैठ जाते थे, यह दंगल पर रहता था,
खाना एक बड़ी सी छुरसी पर चुना जाता था ।—शिव-
प्रसाद । (ख) बावर्ची जब सुदी पाता तो..... किसी
घड़े दंगल पर पाँव फैला कर लंबा पड़ जाता ।—शिव-
प्रसाद ।

दंगदारा—संज्ञा पुं० [हिं० दंगल + दारा] यह सहायता जो किसी
गर्ब के किसान एक दूसरे को हल बैल आदि देकर देते हैं ।
जिता । हरसित ।

दंगा—संज्ञा पुं० [फा० दंगल] (१) भगडा । यथेष्ट । उपद्रव ।
४०—खेलन लाग पाखकम संग । जब तप करिय सखन
ते दंगा ।—विद्याना ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

धा०—दंगा फसाद ।

(२) गुब्ब गयाड़ा । हुलुड़ । शोर गुब्ब । ४०—रीस पर
गंगा हँसैं सुजन मुजंगा हँसैं हाँस ही को दंगा भयो नंगा
के विवाह में ।—पद्माकर ।

दंगैत—वि० [हिं० दंगा + त (प्रत्य०)] (१) दंगा करनेवाला ।
उपद्रवी । (२) धागी । बकवाई ।

दंड—संज्ञा पुं० [सं०] (१) दंडा । सोंटा । खाटी ।

विशेष—स्तूतियों में आश्रम और वर्षों के अनुसार दंड धारण
करने की व्यवस्था है । उपनयन संस्कार के समय भेलना आदि
के साथ भ्रष्टाचारी को दंड भी धारण कराया जाता है ।
प्रत्येक वर्ष के भ्रष्टाचारी के लिये भिन्न भिन्न प्रकार के दंडों
की व्यवस्था है । भ्राष्ट्र्य को बेल या पलारा का दंड केशांत
तक जैजा, पश्रिय को चरगद या रौर का दंड ललाट तक
और वैश्य को गूजर या पलारा का दंड नाक तक जैजा
धारण करना चाहिये । गृहस्थों के लिये मनु ने पाँच का
डंडा या छुड़ी रखने का आदेश दिया है । संन्यासियों में
कुटीचक्र और बहूदक को त्रिदंड [तीन दंड], हंस को एक
चेलदंड और परमहंस को भी एक दंड धारण करना चाहिये ।
(निर्यांतसिंधु) । पर किसी किसी ग्रंथ में यह भी लिखा है ।
कि परमहंस परम ज्ञान को पहुँचा हुआ होता है अतः उसे
दंड आदि धारण करने की कोई आवश्यकता नहीं । रामा
लोग शासन और प्रताप-सूचक एक प्रकार का रामदंड
धारण करते थे ।

मुहा०—दंड ग्रहण करना=संन्यास लेना । निरक्त या संन्यासी
हो जाना ।

(२) डंडे के आकार की कोई वस्तु जैसे, मुजदंद,
शुंकादंद, वीतसदंद, मेरुदंद, इक्षुदंद इत्यादि । (३) एक
प्रकार की कसतत जो हाथ रौर के पंजों के बल औंधे होकर
की जाती है ।

क्रि० प्र०—करना ।—पेलना ।—मारना ।—लगाना ।

धी०—दंडपेल । चक्रदंड ।

(४) भूमि पर औंधे लेट कर किया हुआ प्रणाम ।
दंडवत् ।

धी०—दंड प्रणाम ।

(५) एक प्रकार का व्यूह । दे० “दंडव्यूह” । (६) किसी
अपराध के प्रतिकार में अपराधी को पहुँचाई हुई पीड़ा या

हानि। कोई भूल चूक या दुरा काम करनेवाले के प्रति वह क्रोध व्यक्त करता जो उसे ठीक करने या इसके द्वारा पहुँची हुई हानि को पूरा करने के लिये किया जाय। शासन और परिशोध की व्यवस्था। सजा। तदारक।

विशेष—राज्य चलाने के लिये साम, दान, भेद और दंड ये चार नीतियाँ हिंदू राज्यों में कही गई हैं। अपने देश में प्रजा के शासन के लिये जिस दंडनीति का राजा प्राथम्य लेता है उसका विस्तृत वर्णन स्मृतिग्रंथों में है। ऐसे दंड की तीन श्रेणियाँ मानी गई हैं—उत्तम साहस (भारी दंड, जैसे, वध, सर्वस्वहरण, देश निकाला, धंगचुड़े इत्यादि), मध्यम साहस और प्रथम साहस। ऋषिपुराण तथा श्रम्यशास्त्र में अन्य देशों के प्रति काम में खादे जानेवाली दंडविधि का भी बख़्त है, जैसे, लूटना, आग लगाना, धापात पहुँचाना, बस्ती बजाकर इत्यादि।

(७) शर्मदंड। वह धन जो अपराधी से किसी अपराध के कारण लिया जाय। जुमाना। खंड।

क्रि० प्र०—जगना।—देना।—लेना।

मुद्दा०—दंड धारणा=(१) इरमना करना। शर्मदंड लगाना। (२) कर लगाना। महद्वय लगाना। दंड पढ़ना=ज्ञान देना। नुकसान देना। पाया देना। जैसे, घड़ी किसी काम की न निकली, इसका रूपका दंड पढ़ा। दंड भरना=(१) जुमानना देना। (२) दूरे के नुकसान को पूरा करना। दंड भोगना या मुगताना=(१) सजा अपने ऊपर लेना। दंड चढ़ना। (२) जान धूक पर व्यर्थ कर उठाना। दंड सहना=नुकसान उठाना। पाया चढ़ना।

विशेष—स्मृतियों में शर्मदंड की भी तीन श्रेणियाँ हैं—प्रथम साहस—दाईं सौ पण तक; मध्यम साहस—पैंच सौ पण तक और उत्तम साहस—एक हजार पण तक।

(म) दमन। शासन। वश। शमन।

विशेष—संन्यासियों के लिये तीन प्रकार के दंड रखे गए हैं—यारदंड—चापों को धर में रखना। भरोदंड—मन को संवद न होने देना, अधिकार में रहना। कायदंड—शरीर को कष्ट का अभ्यास करना। संन्यासियों का त्रिदंड इन्हीं तीन दंडों का सूचक चिह्न है।

(१) ध्याता या पाताका का बस। (१०) तराजू की डंडी। दाँड़ी।

(११) मयामी। (१२) किसी वस्तु (जैसे, करवी, चम्मच आदि) की डंडी। (१३) हल की लंबी लकड़ी। (१४)

जहाज या नाव का मस्त्र। (१५) एक योग का नाम।

(१६) लंबाई की एक माप जो चार हाथ की होती थी। (१७) इक्ष्वाकु राजा के सौ पुत्रों में से एक जिनके नाम

के कारण दंडकारण्य नाम पड़ा। (हरिवंश) (१८) कुबेर के एक पुत्र का नाम। (१९) (दंड देनेवाले) यम। (२०)

विष्णु। (२१) शिव। (२२) सेना। फौज। (२३) बन्ध। पौड़ा। (२४) साठ पल का काज। घड़ी। २४ मिनट का समय। (२५) वह अग्नि जिसके पूर्व और पश्चिम कोट-रियाँ हों।

दंडकंदक—उंठा पुं० [सं०] धरणीकंद। सेमर का मुसला।

दंडक—उंठा पुं० [सं०] (१) छंटा। (२) दंड देनेवाला पुरुष। शासक। (३) छुंदों का एक नाम। यह छुंद जिसमें घण्टों की संख्या २१ से अधिक हो।

विशेष—दंडक दो प्रकार का होता है एक गथात्मक, दूसरा मुक्तक। गथात्मक वह है जिसमें गण्यों का बंधन होता है अर्थात् किस गण्य के उपरांत फिर कौन गण्य आना चाहिए इसका नियम होता है। जैसे, कुसुमसत्वक, त्रिमंगी, नीलचक्र इत्यादि। ४०—(नीलचक्र) ज्ञानि के समे भवाज, रामाज साज साजि ता समे अकाज काज कैकई तु कौन। भूप ते' हराय वैन राम सीय बंधु युक्त पोलि के पंथाय वेगि कानने सुदीन।

मुक्तक वह है जिसमें केवल अक्षरों की गिनती होती है अर्थात् जो गण्यों के बंधन से मुक्त होता है। किसी किसी में कहीं कहीं लघु गुरु का नियम होता है। हिंदी काव्य में जो कवित (मनहर) और घनाक्षरी छंद अधिक व्यवहृत हुए हैं वे इसी मुक्तक के अंतर्गत हैं। ४०—(मनहर कवित) धानेद के वंद अग उयावन जगतवंद दशरपवंद के निवाहेई निबहिपु। कहे पदमाकर पवित्रवन पाखिवे कों चोर चक्रपायि के चरित्रन कों चहिपु।

(४) इक्ष्वाकु राजा के एक पुत्र का नाम।

विशेष—ये शुक्राचार्य के शिष्य थे। इन्होंने एक बार गुरु की कन्या का कामार्थ्य भंग किया। इस पर शुक्राचार्य ने शाप देकर उन्हें इनके पुर के सहित भस्म कर दिया। इनका देश जंगल होगया और दंडकारण्य कहलाने लगा।

(५) दंडकारण्य। (६) एक प्रकार का वात रोग जिसमें हाथ पर पीठ कमर आदि अंग स्तब्ध होकर पड़े से जाते हैं। (७) छंद राग का एक भेद।

दंडकला—उंठा धी० [सं०] एक छुंद जिसमें १०, ८ और १४ के विराम से ३२ मात्राएँ होती हैं। इसमें अण्य न आना चाहिए।—फज फूलनि हवावे, हरिहिं सुनावे, है या लायक भोगन की। अरु सय गुन पूरी; स्वादनि रुरी, हरनि अनेकन रोगन की।

दंडकारण्य—उंठा पुं० [सं०] यह प्राचीन वन जो विंध्य पर्वत से लेकर गोदावरी के किनारे तक फैला था। इस वन में श्रीरामचंद्र वनवास के काल में बहुत दिनों तक रहे थे। यहीं शूर्यपक्षा के नाटक-कान कटे थे और सीताहरण हुआ था।

दंडकी-संज्ञा स्त्री० [सं०] टोलक ।

दंडगौरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक अस्परा का नाम ।

दंडघ्न-संज्ञा पुं० [सं०] (१) डंडे से मारनेवाला । दूसरे के शरीर पर धायात पहुँचानेवाला । (२) दंड को न माननेवाला । राजा जिस दंड की व्यवस्था करे वसका भंग करनेवाला ।

विशेष—मनुस्मृति में लिखा है कि घोर, पर-धी-गामी, दुष्ट धवन बोलनेवाले, साहसिक, दंडघ्न इत्यादि जिस राजा के पुर में न हों वह इंद्रलोक को पाता है ।

दंडदंडका-संज्ञा पुं० [सं०] दमामा नगारा । धौंसा ।

दंडताम्री-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह जलतरंग यात्रा जिसमें तपे की कठोरियाँ काम में लाई जाती हैं ।

दंडदास-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो दंड का रनया न दे सकने के कारण दास हुआ हो । वह जो खुराने का रनया नौकरी करके चुकाता हो ।

दंडधर-वि० [सं०] डंडा रखनेवाला ।

संज्ञा पुं० (१) यमराज । (२) शासनकर्ता । (३) सैन्याली ।

दंडधार-वि० [सं०] डंडा रखनेवाला ।

संज्ञा पुं० (१) यमराज । (२) राजा । (३) एक राजा का नाम जो महाभारत में दुर्योधन की शौर या शौर धनुष से लड़कर मारा गया था । (४) पांचालपंशीय एक योद्धा जो पांडवों की शौर से लड़ा था और कर्ण के हाथ से मारा गया था ।

दंडन-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० दंडनीय, दंडित, दंड्य] दंड देने की क्रिया । शासन ।

दंडन-क्रि० सं० [सं० दंडन] दंड देना । शासित करना । समा देना । उ०—गुणक सुन्दर हनत त्रिविध कर्मनि गनत मोहि दंडत धर्मदूत द्वारे ।—सूर ।

दंडनायक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सेनापति । (२) दंड विधान करनेवाला राजा या हाकिम । (३) सूर्य के एक अनुचर का नाम ।

दंडनीति-संज्ञा स्त्री० [सं०] दंड देकर अर्थात् पीड़ित कर के शासन में रखने की राजाओं की नीति । सेना आदि के द्वारा बल-अभेदाप करने की विधि ।

दंडनीय-वि० [सं०] दंड देने योग्य ।

दंडपाणि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) यमराज । (२) काशी में भैरव की एक मूर्ति ।

विशेष—काशीखंड में लिखा है कि पूर्वभद्र नामक एक यज्ञ को हरिकेश नाम का एक पुत्र था जो महादेव का बड़ा भक्त था । एक बार जब इसने घोर तप किया तब महादेव पार्वती सहित इसके पास धाम्य और बोले "तुम काशी के दंडधर हो । वहाँ के दुष्टों का शासन और साधुओं का

पालन करो । संभ्रम और बहुभ्रम नाम के मेरे दो गण तुम्हारी सहायता के लिये सदा तुम्हारे पास रहेंगे । बिना तुम्हारी पूजा किए कोई काशी में मुक्ति नहीं पा सकेगा ।"

दंडपात-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का सभिषात जिसमें रोगी को गौड़ नहीं खाती, वह हृष्य उधर पागल की तरह धूमता है ।

दंडपादस्थ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) दूसरे के शरीर पर हाथ डंडे आदि से आघात करने, धूँड़ मैला आदि कँठे का दुष्ट कार्य । मार पीट । (स्मृति) । (२) राजाओं के सात व्यवसायों में से एक ।

दंडपाल-संज्ञा पुं० दे० "दंडपालक" ।

दंडपालक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) ल्योड़ीदार । दरवान ।

द्वारपाल । (२) एक प्रकार की मछली । दौड़िका मछली ।

दंडपाशक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) दंड देनेवाला प्रधान कर्मचारी ।

(२) घातक । जख्माद ।

दंडप्रणाम-संज्ञा पुं० [सं०] भूमि में डंडे के समान पड़ कर प्रणाम करने की मुद्रा । दंडवत् । सादर अभिवादन ।

क्रि० प्र०—द्वरना ।—होना ।

दंडबालधि-संज्ञा पुं० [सं०] शामी ।

दंडभृत्-वि० [सं०] डंडा रखनेवाला । डंडा खलाने या धुमानेवाला ।

संज्ञा पुं० कुम्हार । कुंभकार ।

दंडमस्त्र्य-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की मछली जो देखने में डंडे या सप के आकार की होती है । घाम मछली ।

दंडमाध-संज्ञा पुं० [सं०] सीधा रास्ता । प्रधान पथ ।

दंडमानव-संज्ञा पुं० [सं०] (वह जिसे दंड देने की अधिक आवश्यकता पड़ती हो) । बालक । लड़का ।

दंडमुद्रा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) तंत्र की एक मुद्रा जिसमें मुट्ठी पीथ कर बीच की उँगली ऊपर को खड़ी करते हैं । (२) साधुओं के दो चिह्न, दंड और मुद्रा ।

दंडयात्रा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सेना की चढ़ाई । (२) दिग्विजय के लिये प्रस्थान । (३) वरयात्रा । यात्रा ।

दंडयाम-संज्ञा पुं० [सं०] (१) यम । (२) दिन । (३) धामस्य मुनि ।

दंडरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की ककड़ी । डेंगरी फल ।

दंडवत्-संज्ञा पुं० [सं०] साष्टांग प्रणाम । पृथ्वी पर खोटेकर किया हुआ नमस्कार । उ०—मुनि कई राम

दंडवत कीन्हा । आशिरवाच विप्र वर दीन्हा ।—तुलसी ।

विशेष—पृथ्वी में इस शब्द को पुष्टिग बोलते हैं पर दिल्ली की ओर यह शब्द खोलिग बोला जाता है ।

दंडवासी-संज्ञा पुं० [सं०] दंडपाल । (१) द्वारपाल । दरवान । (२) गाँव का हाकिम या मुखिया ।

दंडविधि—संज्ञा स्त्री० [सं०] अपराधों के दंड से संबंध रखनेवाला नियम या व्यवस्था। जुर्म और सजा का कानून।

दंडवृद्ध—संज्ञा पुं० [सं०] बूढ़। सेंडुइ।

दंडव्यूह—संज्ञा पुं० [सं०] सेना की दंडे के आधार की स्थिति जिसमें धाने बलाभ्युच, बीच में राना, पीछे सेनापति, दोनों ओर हाथी, हाथियों की बगल में घोड़े और घोड़ों की बगल में पैदल सिपाही रहते थे। मनुस्मृति में इस व्यूह का उल्लेख है। अग्निपुराण में इसके सर्वतोवृत्ति, तिर्यग्गृत्ति आदि अनेक भेद बतलाए गए हैं।

दंडस्थान—संज्ञा पुं० [सं०] वह स्थान जहाँ दंड पहुँचाया जा सकता है।

विशेष—मनु ने दंड के लिये दस स्थान बतलाए हैं—उपस्थ, बद्ध, सिद्धा, दोनों हाथ, दोनों पैर, नाँव, नाक, कान, धन और देह। अपराध के अनुसार राजा नाक कान आदि काट सकता है या धन हरण कर सकता है।

दंडदस्त—संज्ञा पुं० [सं०] तगर का फूल।

दंडा—संज्ञा पुं० दे० “दंडा”।

दंडाक्षर—संज्ञा पुं० [सं०] चंपा नदी के किनारे का एक तीर्थ। (महाभारत)।

दंडाजिन—संज्ञा पुं० [सं०] (१) साधु संन्यासियों के धारण करने का दंड और रजगर्भ। (२) मूंडवृद्ध का धारण। चोखेवाजी का डकोसछा। कपट वेरा।

दंडादंडि—संज्ञा स्त्री० [सं०] दंडों की मारपीट। लठ्ठवाजी।

दंडापमानक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की बात-व्यापि जिसमें एक और यास के विगड़ने से मनुष्य का शरीर खुले काट की तरह अङ्ग हो जाता है।

दंडापूपन्याय—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का न्याय या दर्शन कथन जिसके द्वारा यह सूचित किया जाता है कि जय किसी के द्वारा कोई बहुत कठिन कार्य हो गया तब उसके साथ ही जगता हुआ सत्त्व और सुखकर कार्य प्रवश्य ही हुआ होगा। जैसे यदि दंडे में बैठा हुआ माकषया कहीं रखवा हो और पीछे मालूम हो कि दंडे के चूड़े खा गए तो यह अवश्य ही सत्त्व लेना चाहिये कि चूड़े मालूमप के पहले ही खा गए होंगे।

दंडायमान—वि० [सं०] दंडे की तरह सीधा खड़ा। पड़ा।

वि० प्र०—होना।

दंडालय—संज्ञा पुं० [सं०] (१) न्यायालय जहाँ से दंड का विधान हो। (२) वह स्थान जहाँ दंड दिया जाय। जैसे, जेलघराना (३) एक मुँद जिसे दंडकला भी कहते हैं। दे० “दंडकला”।

दंडाहत—वि० [सं०] दंडे से मारा हुआ।

संज्ञा पुं० धाड़। मढ़ा।

दंडिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] बीस अपराधों की एक वर्षवृत्ति जिसके प्रत्येक चरण में एक रण्य के अपराध एक जगह इस प्रकार गणों का जोड़ा तीन बार आता है और अंत में गुरु खडु होता है। इसे वृत्त और गण्युका भी कहते हैं। उ०—रोज रोज राजगील ते' विप गुणल ब्याल तीन सात। वायु सेवनाथ प्राप्त बाग जात थाव वी सुकूल पात।

दंडित—वि० पुं० [सं०] दंड पाया हुआ। जिसे दंड मिला हो। सज़ायुपाता।

दंडिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दंडोपजा। एक प्रकार का साग।

दंडी—संज्ञा पुं० [सं० दंडिन्] (१) दंड धारण करनेवाला व्यक्ति।

(२) यमराज। (३) राजा। (४) द्वारपाल। (५) वह संन्यासी जो दंड और कमंडलु धारण करे।

विशेष—महालय के अतिरिक्त और किसी को दंडी होने का अधिकार नहीं है। यद्यपि पिता, माता, की पुत्र आदि के रहते भी दंड लेने का निषेध है पर लोग ऐसा करते हैं। मंत्र देने के पहले गुरु शिष्य होनेवाले के सब संस्कार (अन्न-प्राशन आदि) फिर से करते हैं। उसकी शिक्षा खूँट दी जाती है और बनेज उतार कर भस्म कर दिया जाता है। पहला नाम भी बदल दिया जाता है। इसके अपराध क्षमा-पर मंत्र देकर गुरु मोखा वक्ष और दंड कमंडलु देते हैं। इन सब को गुरु से प्राप्त कर शिष्य दंडी हो जाता है और जीवन पर्यंत कुछ नियमों का पालन करता है। दंडी लोग गेरुया वस्त्र पहनते हैं, सिर मुड़ाए रहते हैं और कमी कमी भस्म और दवाइ भी धारण करते हैं। दंडी लोग अग्नि और धातु का स्पर्श नहीं करते इसके अपने हाथ से रेतोई नहीं बना सकते। किसी ब्राह्मण के घर से पक्का भोजन माँग कर खा सकते हैं। दंडियों के लिये दो बार भोजन करने का निषेध है। इन सब नियमों का वारह वर्ष तक पालन काके अंत में दंड को जल में फेंक कर दंडी परमार्थ ब्राह्मण को प्राप्त करता है। दंडियों के लिये नियुग्ण मद्रा की ववासना की प्रवक्षया है। जिससे यह ववासना न हो सके ये शिष्य आदि की ववासना कर सकते हैं। मरने पर दंडियों के शय का दाह नहीं होता, या तो शय मिट्टी में गाड़ दिया जाता है या नदी में फेंक दिया जाता है। कारी में बहुत से दंडी दिलाई पड़ते हैं।

(१) सूर्य के एक पार्वर का नाम। (०) जिन देव। (८) एतादृ के एक पुत्र का नाम। (९) दमनक वृक्ष। दूने का वीच। (१०) मंजुश्री। (११) शिव। महा-देव। (१२) संस्कृत के प्रसिद्ध कवि जिनके बनाए हुए दो ग्रंथ मिलते हैं 'बृहद्भारत' और 'काव्यादर्'। ऐसा प्रसिद्ध है कि दंडी ने तीन ग्रंथ लिखे थे, पर तीसरे का पता आज कल नहीं लगता। अनेक लोगों का मन है कि ईसा की

क्षी यतान्दी में दंकी हुए थे। इतना ही निरपय है कि ये कालिदास और शुद्धक भादि के पीछे के हैं। इनकी पाक्य-रचना साहचर्यपूर्ण है।

दंशोरपल—संज्ञा पुं० [सं०] एक पीये का नाम जिसे कुड़ खोग गुमा, कुड़ खोग कुकरीया और कुड़ खोग यड़ी सहदेया समझते हैं।

दंशोरपला—संज्ञा स्त्री० [सं०] दंशोरपल।

दंश—वि० [सं०] दंश पाने योग्य। जिसे दंश देना शक्ति हो।

दंत—संज्ञा पुं० [सं०] (१) दाँत।

धा०—दंतकथा।

(१) ३१ की संख्या। (२) गाँव के हिस्से में बहुत ही छोटा हिस्सा जो पाई से भी बहुत कम होता है। (कौटिली में दाँत के चिह्न होते हैं इली से यह संख्या धनी है)। (४) कुंज। (५) पहाड़ की चोटी।

दंतक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) दाँत। (२) पहाड़ की चोटी।

(३) पहाड़ से निकलनेवाला एक प्रकार का पत्थर।

दंतकथा—संज्ञा स्त्री० [सं०] ऐसी बात जिसे बहुत दिनों से लोग एक दूसरे से सुनते चले आए हैं, और जिसका कोई और पुष्ट प्रमाण न हो। सुनी सुनाई बात। जनश्रुति।
ध०—इति वेदं बदन्ति न दंतकथा। रयि धातय मित्र न मित्र यथा।—गुल्लरी।

दंतकर्षण—संज्ञा पुं० [सं०] जंभीरी नीच।

दंतकाष्ठ—संज्ञा पुं० [सं०] दंतवन। दंतन। सुपारी।

दंतकाष्ठक—संज्ञा पुं० [सं०] बाहुल्य दृष्ट। तरवट का पेड़।

दंतकूर—संज्ञा पुं० [सं०] युद्ध। संग्राम।

दंतघर्ष—संज्ञा पुं० [सं०] दाँत पर दाँत दबाकर घिसने की क्रिया। दाँत किरकिराता।

विशेष—निद्रा की अवस्था में बच्चे कभी कभी दाँत किरकिराते हैं जिसे लोग अश्रम समझते हैं। रोगी के पंथ में यह और भी बुरा समझा जाता है।

दंतच्छद—संज्ञा पुं० [सं०] ओष्ठ। चोंट।

दंतच्छदोपमा—संज्ञा स्त्री० [सं०] विंशफल। कुंदरू।

दंतजात—वि० [सं०] (१) (स्था) जिसे दाँत निकल आए हैं।

(२) दाँत निकलने के योग्य। काक।

विशेष—गर्भोपनिषद् में लिखा है कि बच्चे को सातवें महीने में दाँत निकलना चाहिये। यदि उस समय दाँत न निकलें तो अशौच लगता है।

दंतताल—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का प्राचीन वाजा जिसेसे ताज दिया जाता है।

दंतदशीन—संज्ञा पुं० [सं०] क्रोध वा चिड़चिड़ाहट में दाँत निकलने की क्रिया।

विशेष—महाभारत में लिखा है कि युद्ध में पहले दाँत दिलाए जाते हैं फिर शब्द कर के पार किया जाता है। (वन प०)।

दंतघाचन—संज्ञा पुं० [सं०] (१) दाँत धोने या साफ करने का काम। दातन करने की क्रिया। (२) दतीन। दातन। (३) सैर का पेड़। छदिरदृष्ट। (४) करंज का पेड़। (५) मोक्षसिरी।

दंतपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] कान का एक गद्दना।

दंतपत्रक—संज्ञा पुं० [सं०] कुंदरूप्य।

दंतपवन—संज्ञा पुं० [सं०] (१) दाँत शुद्ध करने की क्रिया। दंत-धावन। (२) दातन। दातन।

दंतपार—संज्ञा स्त्री० [हिं० दंत + उपपत्ता] दाँत की पीड़ा। दाँत का दर्द।

दंतपुष्पुट—संज्ञा पुं० [सं०] मच्छों का एक रोग जिसमें वे सूज जाते हैं और दूद करते हैं।

दंतपुर—संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन कलिंग राज्य का एक नगर जहाँ पर राजा मलयदत्त ने बुद्धदेव का एक दंत स्थापित करके उसके ऊपर एक यज्ञ मंदिर बनवाया था। यह दंतपुर कहाँ था इसके संबंध में मतभेद है। शाकुर राजेंद्रपाल का मत है कि मदिनीपुर जिले में अलेखर से १ कोस दक्खिन जो इतिन नामक स्थान है वहाँ बौद्धों का प्राचीन दंतपुर है। सिंहली बौद्धों के दशार्थ नामक ग्रंथ में दंतपुर के संबंध में बहुत सा बृत्तान्त दिया हुआ है।

दंतपुष्प—संज्ञा पुं० [सं०] (१) निर्मंजी। (२) कुंद का फूल।

दंतफल—संज्ञा पुं० [सं०] (१) कनकफल। निर्मंजी। (२) कपिय। कैप।

दंतफला—संज्ञा स्त्री० [सं०] पिप्पली।

दंतमांस—संज्ञा पुं० [सं०] मच्छड़ा।

दंतमूल—संज्ञा पुं० [सं०] (१) दाँत की जड़। (२) दाँत का एक रोग।

दंतमूलिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दंतियुक्त। जमाब गोटे का पेड़।
दंतमूलीय—वि० [सं०] दंतमूल से उष्णारय किया जानेवाला (पौधे), जैसे तर्पनी।

दंतलेखन—संज्ञा पुं० [सं०] एक अक्ष जिससे दाँत की जड़ के पास मच्छड़े को धीरे कर मवाद आदि निकालते हैं जिससे दाँत की पीड़ा बूर होती है। दंतलेखन नामक रोग में इस अक्ष का प्रयोग होता है।

दंतवक—संज्ञा पुं० [सं०] कुरुप देश का राजा जो बुद्धार्मा का पुत्र था। यह शिशुराज का भाई लगता था और श्रीकृष्ण के हाथ से मारा गया था।

दंतवल्क—संज्ञा पुं० [सं०] दाँत की जड़ के ऊपर का मांस। मच्छड़ा।

दंतवल्क—संज्ञा पुं० [सं०] ओष्ठ। चोंट।

दंतबीज-संज्ञा पुं० [सं०] अनार ।
 दंतवैदम-संज्ञा पुं० [सं०] दाँत का एक रोग ।
 दंतशुक्र-संज्ञा पुं० [सं०] धीरे फाड़ का एक भोजन जो जी के पत्तों के आकार का होता था । (सुश्रुत)
 दंतशठ-संज्ञा पुं० [सं०] वे शूद्र जिनके फल खाने से खटाई के कारण दाँत मुड़ने हो जायें । जैसे, कैय, कमरल, जंभीरी नीबू इत्यादि ।
 दंतशठा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) खटी नेनिया । अमलोनी । (२) शुक । शुक ।
 दंतशर्करा-संज्ञा स्त्री० [सं०] दाँतों का एक रोग जो मूल जन कर बैठ जाने के कारण होता है ।
 दंतशाय-संज्ञा पुं० [सं०] मिरसी । शियों के लगाने का रंगीन मंत्र ।
 दंतशूल-संज्ञा पुं० [सं०] दाँत की पीड़ा ।
 दंतशोफ-संज्ञा पुं० [सं०] दाँत के मसूड़ों में होनेवाला एक प्रकार का फोड़ा । दंतशुद्ध ।
 दंतहर्ष-संज्ञा पुं० [सं०] दाँतों की यह टीस जो अधिक उठे या खटे पसल लगने से होती है । दाँतों का सड़ा होना ।
 दंतहर्षक-संज्ञा पुं० [सं०] जंभीरी नीबू ।
 दंताघात-संज्ञा पुं० [सं०] (१) दाँत का घाघात । (२) (वह जिससे दाँत का घाघात पहुँचे) नीबू ।
 दंतादंति-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक दूसरे को दाँत से काटने की क्रिया या खड़ाई ।
 दंताज-संज्ञा पुं० [सं०] (१) दाँत की जड़ या संधि में पड़नेवाले कीड़े । (२) दाँत का रोग जो हन कीड़ों के कारण होता है ।
 दंतायुध-संज्ञा पुं० [सं०] सुधर । जंगली सुधर ।
 दंतार-वि० [हिं० दंत + आर (अप०)] बड़े दाँतोंवाला ।
 संज्ञा पुं० हाथी ।
 दंताशुद्ध-संज्ञा पुं० [सं०] मसूड़ों में होनेवाला एक प्रकार का फोड़ा ।
 दंताल-संज्ञा पुं० [हिं० दंतार] हाथी ।
 दंतालिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] अंगोम ।
 दंताली-संज्ञा स्त्री० [सं०] अंगोम ।
 दंतायल-संज्ञा पुं० [सं०] हाथी ।
 दंताहल *-संज्ञा पुं० [सं०] दंतवस] हाथी । (हिं०)
 दंतिना-संज्ञा स्त्री० [सं०] दंती । अमलमोटा ।
 दंतिबीज-संज्ञा पुं० [सं०] अमलमोटा ।
 दंतिर्या-संज्ञा स्त्री० [हिं० दंत + र्या (अप०)] छोटे छोटे दाँत ।
 दंती-संज्ञा स्त्री० [सं०] शंभो की भाँति का एक पेड़ । दंती दो प्रकार की होती है—सघुदंती और गृहदंती । सघुदंती के पत्ते गूजर के पत्तों के ऐसे होते हैं और गृहदंती के परं

वा शंभो के से । इसके बीज दस्तावर होते हैं और अमलमोटे के स्थान पर औषध में काम आते हैं । पैचक में दंती कटु, बष्प, तृषा शूल बवासीर, फोड़े आदि को दूर करनेवाली मानी जाती है । दंती के बीज अधिक मात्रा में देने से विष का काम करते हैं ।
 पर्याय—श्रीम । निकुमी । नागस्रोता । दंतिनी । वरविष्ठा । भद्रा । रुपा । रेवती । अशुक्ला । निभायवा । विरववा । मधुपुष्पा । परंफला । सरथी । परंपयिका । विशोचनी । कुंभी । श्रुंवरदला । प्रत्यक्षपर्याय ।
 दंतुर-वि० [सं०] जिसके दाँत आगे निकले हों । दंतुला । दंतु । संज्ञा पुं० (१) हाथी । (२) सूअर ।
 दंतुरच्छद-संज्ञा पुं० [सं०] बिजौरा नीबू ।
 दंतुरिया † संज्ञा स्त्री० [हिं० दंत] बघों के छोटे छोटे दाँत ।
 दंतुला-वि० [सं० दंतुर] [स्त्री० दंतुली] जिसके दाँत आगे निकले हों । बड़े बड़े दाँतोंवाला ।
 दंतोत्सलिक-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार के संन्यासी जो भोखली आदि में बूटा हुआ चल नहीं खाते । वे या तो फल खाते हैं या सिद्धके सहित भजन के दानों की दाँत के नीचे कुचलकर खाते हैं ।
 दंतोप्य-वि० [सं०] (पर्यं) जिसका उच्चारण दाँत और धँड से हो ।
 विदीप—ऐसा वर्ष "ब" है ।
 दंत्य-वि० [सं०] (१) दंतसंबंधी । (२) (वर्ण) जिसका उच्चारण दाँत की सहायता से हो । जैसे तवर्ण । (३) दाँतों का हितकारी (औषध) ।
 दंद-संज्ञा स्त्री० [सं० ददन, दंदमन्त्र] किसी पदार्थ से निकलती हुई गरमी, जैसी कि तपी हुई भूमि पर में का पानी पड़ने से निकलती है या पानों के भीतर पाई जाती है ।
 क्रि० प्र०—घाना ।—निकलना ।
 संज्ञा पुं० [सं० दंद] (१) खड़ाई ऋगदा । उपद्रव । दध-चल । (२) हठा गुहा । शेर गुल ।
 क्रि० प्र०—सघाना ।
 दंदशूक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सर । (२) रापस विशेष ।
 दंदसमान-वि० [सं०] दृढ़कता हुआ ।
 दंदा-संज्ञा पुं० [रय०] ताल देने का एक प्रकार का घुराना था ।
 दंदाना-वि० अ० [हिं० दंद] (१) गरम लगाना । गरमी पहुँचाता हुआ मालूम होना । जैसे, सई का दंदाना, बंद कोठरी का दंदाना । (२) किसी गरम चीज के घास पास होने से गरम होना । जैसे, रगाई या कंध के नीचे दंदाना ।
 संज्ञा पुं० [फा०] [वि० दंदाना] दाँत के प्रकार की

उभरी हुई वस्तुओं की पंक्ति। शंकु या कंगुरों के रूप में निकली हुई चीतों की कतार, जैली कंची या आरे आदि में होती है।

दंदानेदार-वि० [प्रा०] जिसमें दंदाने हों। जिसमें दंत की तरह निकले हुए कंगुरों की पंक्ति हो।

दंदाकू-संज्ञा पुं० [हिं० दं + कू (प्रत्य०)] छाला। फफोला।

दंदा-वि० [हिं० दं + दा] मगड़ावृत्त। अक्षर। करनेवाला। हुज्जती।

दंपति-संज्ञा पुं० दे० “दंपती”।

दंपती-संज्ञा पुं० [सं०] स्त्री पुरुष का जोड़ा। पति-पत्नी का जोड़ा।

दंपाक-संज्ञा स्त्री० [हिं० दम्पकना] विजली। ड०—चोथले चकोर चहूँ शोर जानि चंदमुखी जौ न होती ररनि हसन हुति दंपा की—पूरवी।

दंभ-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० दंभी] (१) महत्त्व दिखाने या प्रयोजन सिद्ध करने के लिये भूटा आडंबर। पोले में डालने के लिये ऊपरी दिखावट। पाखंड। (२) मूढ़ी रसक। अभिमान। धमंड।

दंभक-संज्ञा पुं० [सं०] पाखंडी। डकोसलेवाड़ा। प्रतारक।

दंभी-वि० [सं० दंभीर] (१) पाखंडी। आडंबर रचनेवाला। डकोसलेवाड़ा। (२) मूढ़ी ठसकबाजा। अभिमानी। धमंडी।

दंभोलि-संज्ञा पुं० [सं०] इंद्राक्ष। चक्र। ड०—मत्त मातंग वल श्रंग दंभोलि द्रुल काङ्गिनी जाल गनमाल सोई—सूर।

दंभरो-संज्ञा स्त्री० [सं० दम्भ, हिं० दंभना] अनाज के सूले डंडलों में से दाना झाड़ने के लिये उसे पैलों से रोदवाने का काम।

क्रि० प्र०—नाथना।

दंदा-संज्ञा पुं० [सं०] (१) यह घाव जो दाँत काटने से हुआ हो।

दंतपत्त। (२) दाँत काटने की क्रिया। दंशन। (३) साँप या शीर किसी विषैले जंतु के काटने का घाव। जैसे, सर्पदंश।

(४) आचरण-वचन। बौद्धार। अर्थ्य। कट्टक। (५) द्वेष। वैर।

क्रि० प्र०—रखना।

(६) दाँत। (७) विषैले जंतुओं का डंक। (८) एक प्रकार की मक्खी जिसके डंक विषैले होते हैं। बाल। थगदर।

ड०—मसक दंश भीते हिमि प्रासा।—तुलसी।

पट्यां०—वनमक्षिका। गोमक्षिका। भंभरात्तिका। पांशुर।

दुष्टमुख। मूर।

(९) धर्म। धकतर। (१०) एक असुर जिसकी कथा महाभारत में इस प्रकार लिखी है—सत्ययुग में दंश नामक एक बड़ा प्रतापी असुर रहता था। एक दिन वह भृगु मुनि की पत्नी को हर ले गया। इस पर भृगु ने उसे शाप दिया कि “तू मल-मूत्र का कीड़ा हो जा” शाप से डर कर जब असुर बहुत गिड़गिड़ने लगा तब भृगु ने कहा—“मेरे दंश

में जो राम (पराशुराम) होंगे वे शाप से तुझे मुक्त करेंगे।” वह असुर शाप के अनुसार कीट हुआ। कर्ण जब पराशुराम से अस्त्र-शिखा प्राप्त कर रहे थे तब एक दिन कर्ण के नंगे पर सिर रख कर पराशुराम से गए ठीक उसी समय वह कीड़ा आकर कर्ण की जाँघ में काटने लगा। कर्ण ने पुरुष की निद्रा भंग होने के डर से जाँघ नहीं हटाई। जब जाँघ में से रक्त की धारा निकली तब पराशुराम की नोंद टूटी और उन्होंने बल कीड़े की धोर ताका। उनके ताकते ही उस कीड़े ने उसी रक्त के बीच अपना कीट-शरीर छोड़ा और वह अपने पूर्व रूप में आ गया।

दंशक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो काट लाय। दाँत से काटनेवाला। (२) डाँस नाम की मक्खी जो बड़े जौर से काटती है।

दंशान-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० दंशित, दंशी] (१) दाँत से काटना। डसना। जैसे, सर्पदंशन।

क्रि० प्र०—करना।

(२) धर्म। धकतर।

दंशमीश-संज्ञा पुं० [सं०] महिप। मँसा। (मँसा के मच्छड़ और डाँस बहुत लगते हैं)

दंशमूल-संज्ञा पुं० [सं०] सहजान का पेड़। शोभाजन।

दंशित-वि० [सं०] (१) दाँत से काटा हुआ। (२) धर्म से आच्छादित। धकतर से डका हुआ।

दंशी-वि० [सं० दंशीर] [स्त्री० दंशीनी] (१) दाँत से काटनेवाला। डसनेवाला। (२) आचरण वचन कहनेवाला। कट्टक कहनेवाला। (३) द्वेषी। वैर या कतर रखनेवाला।

संज्ञा स्त्री० [सं०] छोटा दंश। छोटा दाँत।

दंष्ट-संज्ञा पुं० [सं०] दाँत।

दंष्ट्रा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मोटे दाँत। स्थूल दाँत। दाड़। चौमर। (२) वृश्चिकाली। विदुष्मना नाम का पाया जिसमें रोहँदार फल लगते हैं।

दंष्ट्रानुक्षयिण-संज्ञा पुं० [सं०] वह जंतु जिसके मसक और दाँत में विष हो। जैसे, विकली, कुत्ता, चंद्र, मेड़क, छिपकली इत्यादि।

दंष्ट्राधुध-संज्ञा पुं० [सं०] (वह जिसका अन्न दाँत हो) शूकर। सूकर।

दंष्ट्राल-वि० [सं०] बड़े बड़े दाँतोंवाला।

संज्ञा पुं० एक शाप का नाम।

दंष्ट्री-वि० [सं० दंष्ट्रीर] बड़े बड़े दाँतोंवाला।

संज्ञा पुं० (१) सूकर। (२) सार।

दंश-संज्ञा पुं० दे० “दंश”।

द-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पर्यंत, पहाड़। (२) दाँत। (३) दाता विशेष—इस अर्थ में इसका व्यवहार स्वतंत्र रूप से नहीं होता;

बल्कि किसी शब्द के अंत में जोड़ने से होता है। जैसे, सुखद (सुखदेनेवाला), जलद (जल देनेवाला, यादल) आदि।
 संज्ञा स्त्री० (१) भार्या। स्त्री। (२) रक्षा। (३) संकलन।

दरउं—संज्ञा पुं० दे० "देव"।

दरजां—संज्ञा पुं० दे० "दायजा"।

दरमारा—वि० दे० "दर्दमारा"।

दर्द—संज्ञा पुं० [सं० देव] (१) ईश्वर। विधाता। व०—गर्ह करि जाहु दर्द के निहारे।—दास।

धा०—दर्दमारा।

मुहा०—दर्द का घाला = ईश्वर का मारा हुआ। अभागा। कम-बख्त। व०—जननी कहति, दर्द की घाली। काहे को तुल-राति।—सूर। दर्द का मारा = दे० "दर्दमारा"। दर्द दर्द = हे देव, हे देव। रक्षा के लिये ईश्वर की पुकार। व०—(क) दर्द दर्द भाजली पुकारा।—तुलसी। (ख) वीरधर सास न खेहि तुल मुख सांईहि न भूल। दर्द दर्द क्यों फरत है दर्द दर्द सो कबूल।—विहारी।
 (२) दैव-संयोग। अदृष्ट। प्रारब्ध।

दर्दमारा—वि० [हिं० दर्द + मारना] [सं० दर्दमारी] ईश्वर का मारा हुआ। जिसपर ईश्वर का कोप हो। अभागा। मंद-भाग्य। कमबख्त। व०—(क) दूध बही नहिं खेव, री ! कहि कहि बधि हारी। कहति, सूर कोऊ घर नार्है, कहे गह दरमारी ?।—सूर। (ख) कीहा कीहा करीं या पपीहा दर्द-मारे को।—श्रीपति।

दर्दमारो—वि० दे० "दर्दमारा"।

दउरना—कि० अ० दे० "दौड़ना"।

दउरा—संज्ञा पुं० दे० "दौरा"।

दक—संज्ञा पुं० [सं०] जल। पानी।

दकार—संज्ञा पुं० [सं०] तवर्ग का तीसरा अक्षर "द"।

दकीका—संज्ञा पुं० [अ०] (१) कोई बारीक बात। (२) युक्ति। बयान।

मुहा०—कोई दकीका बाकी न रखना = कोई उपाय बाकी न रखना। सब उपाय कर चुकना। जैसे, सुके लुकसान पहुँचाने में तुमने कोई दकीका बाकी नहीं रखा।

(३) दण्ड। संहता।

दक्खिन—संज्ञा पुं० [सं० दक्षिण] [वि० दक्षिणी] (१) वह दिशा जो सूर्य की ओर सुँह करके पड़े होने से दहने हाथ की ओर पड़ती है। अक्षर के सामने की दिशा। जैसे, जिघर तुम्हारा पैर है वह दक्खिन है।

विशेष—पश्चिमि सं० 'दक्षिण' शब्द विशेषण है पर हिं० शब्द दक्खिन वि० के रूप में नहीं आता। दक्खिन ओर, दक्खिन दिशा आदि वाक्यों में भी दक्खिन वि० नहीं है।

(२) दक्षिण दिशा में पड़नेवाला प्रदेश। (३) भारतवर्ष का

वह भाग जो दक्षिण की ओर है। विंध्य और नर्मदा के आगे का देश।

कि० वि० दक्खिन की ओर। दक्षिण दिशा में। जैसे, वनका गाय यहाँ से दक्खिन पड़ता है।

दक्खिनी—वि० [हिं० दक्खिन] (१) दक्खिन का। जो दक्षिण दिशा में हो। जैसे, नदी का दक्खिनी किनारा। (२) जो दक्षिण के देश का हो। दक्षिण देश में उत्पन्न। दक्षिण देश-संबंधी। जैसे, दक्खिनी धातुमी, दक्खिनी बोली, दक्खिनी सुपारी, दक्खिनी मिच।

संज्ञा पुं० दक्षिण देश का निवासी।

संज्ञा स्त्री० दक्षिण देश की भाषा।

दक्ष—वि० [सं०] (१) जिसमें किसी काम को चट पट सुगमता-पूर्वक करने की शक्ति हो। निपुण। कुशल। चतुर। होशियार। जैसे, वह सितार बजाने में बड़ा दक्ष है। (२) दक्षिण। दाहना। व०—(क) दक्ष दिशि हचिर वारीस कन्या।—तुलसी। (ख) दक्ष माग अशुभाग सहित इंद्रिा अधिक कलितार्ह।—तुलसी।

संज्ञा पुं० (१) एक प्रजापति का नाम जिनसे देवता उत्पन्न हुए।

विशेष—ऋग्वेद में दक्ष प्रजापति का नाम आया है और कहाँ कहाँ अतिशक्तिशाली के पिता कह कर उनकी स्तुति की गई है। दक्ष अदिति के पिता थे इससे वे देवताओं के आदि पुरुष कहे जाते हैं। जहाँ ऋग्वेद में सृष्टि की व्यपत्ति का यह क्रम बतलाया गया है कि अथ से पहले महद्वापसति ने कर्मकार की तरह कार्य किया, अस्तत् से सत् उत्पन्न हुआ वतानपद् से भू और भू से दिशाएँ हुईं वहाँ यह भी लिखा है कि अदिति से दक्ष जन्मे और दक्ष से अदिति जन्मी। इस विचित्र वाक्य के संबंध में निरुक्त में लिखा है कि "या तो दोनों ने समान जन्म लाभ किया, अथवा देवधर्मानुसार दोनों की एक दूसरे से उत्पत्ति और महत्ति हुई।" अतएव माहात्म्य में दक्ष को सृष्टि का पालक और पोषक कहा है। हरिवंश में दक्ष को विष्णु स्वरूप कहा गया है। महाभारत और पुराणों में जो दक्ष के पत्न की कथा है उसका वर्णन वैदिक ग्रंथों में नहीं मिलता, हाँ, श्वेद के प्रभाव के प्रसंग में कुछ उसका आभास सा मिलता है। भरत-पुराण में लिखा है कि पहले मानस सृष्टि हुआ करती थी। दक्ष ने जब देवा का मानस द्वारा प्रजासृष्टि नहीं होती है तब उन्होंने गैरुण द्वारा सृष्टि का विचार चलाया।

गार्ह्य पुराण में दक्ष की कथा इस प्रकार है। मनुष्य ने सृष्टि की कामना से धर्म, धर्म, धर्म, धर्म तथा सनकादि को मानस पुत्र के रूप में उत्पन्न किया। फिर दहने सौंठे से दक्ष को और बाएँ धोने से दक्षवती को उत्पन्न किया। वय पत्नी से

गार्ह्य पुराण में दक्ष की कथा इस प्रकार है। मनुष्य ने सृष्टि की कामना से धर्म, धर्म, धर्म, धर्म तथा सनकादि को मानस पुत्र के रूप में उत्पन्न किया। फिर दहने सौंठे से दक्ष को और बाएँ धोने से दक्षवती को उत्पन्न किया। वय पत्नी से

दृष्ट को सोझ कह्यारें शरण हुई—अदा, मंत्री, दया, शक्ति, वृष्टि, पुष्टि, क्रिया, उन्नति, बुद्धि, मेधा, मूर्ति, वित्तिका, ही, स्वाहा, स्वधा और सती। दृष्ट ने इन्हें प्रह्ला के मानस पुत्रों में बंटा दिया। रुद्र को दृष्ट की सती नाम की कन्या प्राप्त हुई। एक बार दृष्ट ने ब्रह्ममेघ बहू किया जिसमें अपने सारे जामाताओं को बुलाया पर रुद्र को नहीं बुलाया। सती जिना बुलाए ही अपने पिता का यज्ञ देखने गईं। वहाँ पिता से अपमानित होने पर उन्होंने अपना शरीर त्याग दिया। इस पर महादेव ने क्रुद्ध होकर दृष्ट का यज्ञ विध्वंस कर दिया और दृष्ट को श्राप दिया "तुम मनुष्य होकर भ्रुषु के वंश में जन्म खोती" भ्रुषु के वंशज प्रचेताणय ने जब घोर तपस्या की तब उन्हें प्रजासृष्टि करने का वर मिला और उन्होंने कंदुकन्या मारिषा के गर्भ से दृष्ट को शरण किया। दृष्ट ने चतुर्विध मानस सृष्टि की। पर जब मानस सृष्टि से प्रजासृष्टि न हुई तब उन्होंने वीरय प्रजापति की कन्या अस्तिनी को प्रदत्त किया और उससे सहस्र पुत्र और बहुत सी कन्याएँ शरण कीं। इन्हीं कन्याओं से कश्यप आदि ने सृष्टि चलाई। और पुराणों में भी इसी प्रकार की कथा कुछ हेर फेर के साथ है।

(२) अग्नि ऋषि। (३) महेश्वर। (४) शिव का वैल।
(५) ताम्रचूड़। सुरगा। (६) एक राजा जो उशीनर के पुत्र थे। (७) विष्णु। (८) बल। (९) धीर्य।

दक्षकन्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] सती। विशेष—दे० "दृष्ट"।

दक्षकतुल्यंसी—संज्ञा पुं० [सं० दक्षकतुल्यंसीम्] (१) महादेव।
(२) महादेव के शंभु से शरण्य धीरभद्र (जिनहेने दृष्ट का शरण विध्वंस किया था)।

दक्षना—संज्ञा स्त्री० [सं०] निपुणता। योग्यता। कलाज।

दक्षविहिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] धक प्रकार का गीत।

दक्षसाधर्मि—संज्ञा पुं० [सं०] नर्षे मनु का नाम।

दक्षा—वि० स्त्री० [सं०] कुख्या। निपुण।

संज्ञा स्त्री० पृथ्वी।

दक्षिण—वि० [सं०] (१) दक्षिण। दाहना। बायाँ का बलदा। अपसम्य। (२) इस प्रकार प्रवृत्त जिससे किसी का कार्य सिद्ध हो। अनुकूल। (३) उस ओर का विचार सूर्य की ओर मुँह करके कपड़े होने से वहिना हाथ पड़े। उतर का बलदा।

धा०—दक्षिणायन। दक्षिणायन।

(४) निपुण। दक्ष। चतुर।

संज्ञा पुं० (१) दक्षिण की दिशा। बस्तर के सामने की दिशा। (२) काव्य या साहित्य में बहूनायक जिसका अनुशासक अपनी सब नायिकाओं पर समान हो। (३) प्रवृत्ति। (४) तंत्रोक्त एक आचार या मार्ग।

विशेष—कुशाकर्णव तंत्र में लिखा है कि सच से उत्तम तो वेदमार्ग है, वेद से अच्छा वैष्णव मार्ग है, वैष्णव से अच्छा शैव मार्ग है, शैव से अच्छा दक्षिण मार्ग है, दक्षिण से अच्छा वाम मार्ग है और वाम मार्ग से भी अच्छा सिद्धांत मार्ग है।

(५) विष्णु।

दक्षिणगोल—संज्ञा पुं० [सं०] विपुल रेखा से दक्षिण पड़नेवाली राशियाँ जो छः हैं—तुला, वृश्चिक, धनु, मकर, कुंभ और मीन।

दक्षिणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) दक्षिण दिशा। (२) वह धन जो ब्राह्मणों या पुरोहितों को यज्ञादि कर्म करने के पीछे दिया जाता है। यह दान जो किसी शुभ कार्य आदि के समय ब्राह्मणों को दिया जाय।

क्रि० प्र०—देना।—लेना।

विशेष—पुराणों में दक्षिणा को यज्ञ की पत्नी बतलाया है। प्रसवैवत्तं पुराण में लिखा है कि कांसिकी पूर्णिमा की रात को जो एक बार रास महोत्सव हुआ था उसीमें श्रीकृष्ण को दक्षिणाश से दक्षिणा की उत्पत्ति हुई।

(३) पुरस्कार। भेंट। (४) वह नायिका जो नायक को अन्य स्त्रियों से संबंध करने पर भी उससे बराबर वैती ही भीति रखती हो।

दक्षिणाग्नि—संज्ञा स्त्री० [सं०] यज्ञ में गार्हपत्यग्नि से दक्षिण ओर स्थापित अग्नि।

दक्षिणाचल—संज्ञा पुं० [सं०] मलयगिरि पर्वत। मलयचल।

दक्षिणाचार—संज्ञा पुं० [सं०] (१) सदाचार। शुद्ध और उत्तम आचरण। (२) तंत्रिकों में एक प्रकार का आचार जिसमें अपने आप को शिव मान कर पंच तंत्र से शिवा की पूजा की जाती है। यह आचार वामाचार से भेद और प्रायः वैदिक माना जाता है।

दक्षिणाचारी—संज्ञा पुं० [सं०] विशुद्धाचारी। धर्मशील। सदाचारी।

दक्षिणापथ—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णुपर्वत के दक्षिण ओर का वह प्रदेश जहाँ से दक्षिण भारत के लिये रास्ते आते हैं।

दक्षिणापरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] नैर्ऋत देवता।

दक्षिणप्रवण—संज्ञा पुं० [सं०] वह स्थान जो उत्तर की अपेक्षा दक्षिण की ओर अधिक नीचा या ढालुवाँ हो। मनु के अनुसार धार्मिक आदि के लिये ऐसा ही स्थान श्रेष्ठ होता है।

दक्षिणामूर्ति—संज्ञा पुं० [सं०] तंत्र के अनुसार शिव की एक मूर्ति।

दक्षिणायन—वि० [सं०] दक्षिण की ओर। भूमध्य रेखा से दक्षिण की ओर। जैसे, दक्षिणायन पूर्ण।

संज्ञा पुं० (१) सूर्य की कर्क रेखा से दक्षिण मकर रेखा की ओर गति । (२) वह क्षुः महीने का समय जिसमें सूर्य कर्क रेखा से खच्चर कर बराबर दक्षिण की ओर बढ़ता रहता है ।

विशेष—सूर्य २१ जून को कर्क रेखा पर्याप्त उत्तरीय अयन-सीमा पर पहुँचता है और फिर वहाँ से दक्षिण की ओर बढ़ने लगता है और प्रायः २२ दिसंबर तक दक्षिणी अयन-सीमा मकर रेखा तक पहुँच जाता है । पुराणानुसार जिस समय सूर्य दक्षिणायन होँ उस समय कुर्मी, तालाव, मंदिर आदि न बनवाना चाहिए और न देवताओं की प्राण-प्रतिष्ठा करनी चाहिए । हाँ भी मौख, धाराह, रुसिंह आदि की प्रतिष्ठा की जा सकती है ।

दक्षिणावच—वि० [सं०] जिसका ध्रुमाव दाहिनी ओर को हो । जो दाहिनी ओर घूमा हुआ हो ।

संज्ञा पुं० एक प्रकार का शंख जिसका ध्रुमाव दाहिनी ओर को होता है ।

दक्षिणावचकी—संज्ञा स्त्री० दे० “दक्षिणावचवती” ।
दक्षिणावचवती—संज्ञा स्त्री० [सं०] वृश्चिकाली नाम का वीषण ।
दक्षिणावच—संज्ञा पुं० [सं०] दक्षिण से आनेवाली हवा ।
दक्षिणाशा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दक्षिण दिशा ।
दक्षिणाशापति—संज्ञा पुं० [सं०] (१) धर्म । (२) मंगलग्रह ।
दक्षिणी—संज्ञा स्त्री० [हि० दक्षिण + ई (प्रत्य०)] दक्षिण देश की भाषा ।

संज्ञा पुं० दक्षिण देश का निवासी ।

वि० दक्षिण देश का । दक्षिण देश संबंधी ।

दक्षिणीय—वि० [सं०] (१) दक्षिण का । दक्षिण संबंधी ।

दक्षिण देश का । (२) जो दक्षिण का पात्र हो ।

दक्षिण—संज्ञा पुं० दे० “दक्षिण” ।

दक्षिणी—वि०, संज्ञा पुं० दे० “दक्षिणी” ।

दखन—संज्ञा पुं० दे० “दक्षिण” ।

दखना—संज्ञा पुं० [?] वह स्थान जहाँ पारसी धर्मने सुरदे रखते हैं ।

विशेष—पारसियों में यह प्रथा है कि वे शव को जलाते या गाड़ते नहीं हैं बल्कि उसे किसी विशिष्ट प्रकार के स्थान में रख देते हैं जहाँ चील काँड़ आदि उसका मांस खा जाते हैं । इस काम के लिये वे योग्य सा स्थान पचीस तीस फुट ऊँची दीवार से चारों ओर से घेर देते हैं जिसके ऊपरी भाग में अँगला सा खाना रहता है । इसी अँगले पर शव रख दिया जाता है । अब उसका मांस चील काँड़ आदि खा लेते हैं तब हृदयियों अँगले में से नीचे गिर पड़ती हैं । नीचे एक मार्ग होता है जिससे वे हृदयियों निकल कर जाती हैं ।

दखल—संज्ञा पुं० [अ०] (१) अधिकार । कब्जा ।

क्रि० प्र०—करना ।—में आना ।—में जाना ।—देना ।

यौ०—दखलदिहानी । दखलनामा । दखीलकार ।

(२) हलपेच । हाथ डालना । उ०—मूर्ख दखल देई विन आने । गहँ चपलता गुण अस्थाने ।—विश्राम ।

क्रि० प्र०—देना ।

(३) पहुँच । प्रवेश । जैसे, घाघ भोगरेड़ी में भी कुछ दखल रखते हैं ।

क्रि० प्र०—रखना ।

दखलदिहानी—संज्ञा स्त्री० [अ० दखल + फा० दिहानी] किसी वस्तु पर किसी को अधिकार दिखाना । कब्जा दिखाना ।

दखलनामा—संज्ञा पुं० [अ० दखल + फा० नामा] वह पत्र विशेषतः सरकारी आज्ञापत्र जिसमें किसी व्यक्ति के लिये किसी पदार्थ पर अधिकार कर लेने की आज्ञा हो ।

दखिन—संज्ञा पुं० दे० “दक्षिण” । उ०—देखि दखिन दिसि हय दिहिनहीं ।—तुलसी ।

दखिनद्वारा—संज्ञा पुं० [हि० दखिन + द्वार] दक्षिण से आनेवाली हवा । दक्षिण की ओर से आती हुई हवा ।

दखिनदा—वि० [हि० दखिन + दा (प्रत्य०)] दक्षिण का । दक्षिणी ।

दखिना—वि०—संज्ञा पुं० [हि० दखिन + ना (प्रत्य०)] दक्षिण से आनेवाली हवा ।

दखील—वि० [अ०] अधिकार रखनेवाला । जिसका दखल या कब्जा हो ।

दखीलकार—संज्ञा पुं० [अ० दखील + फा० कार] वह भूसामी जिसने किसी जमींदार के खेत या जमीन पर कम से कम बारह वर्ष तक अपना दखल रक्खा हो ।

दखीलकारी—संज्ञा स्त्री० [अ० दखील + फा० कार] (१) दखील कार का पद या अवस्था । (२) वह जमीन जिस पर दखीलकार का अधिकार हो ।

दगदल—वि० दे० “दगैल” ।

दगड़—संज्ञा पुं० [प] लड़ाई में बग़ावा जानेवाला बड़ा डोख । जंती डोख ।

दगड़ना—क्रि० अ० [?] सच्ची बात का विश्वास न करना ।

दगड़ा—संज्ञा पुं० दे० “दगाड़” ।

दगदगा—संज्ञा पुं० [अ०] (१) डर । भय । (२) संदेह । शक । (३) एक प्रकार की कंडोख ।

दगदगाना—क्रि० अ० [हि० दखल + दमदमाना । चमकना । उ०—ज्यों ज्यों अति हृद्यता चकृति स्यों सौं दुति धरसात । दगदगत सौं ही कनक ज्यों ही दगदत जात—गुमान ।

क्रि० सं० चमकाना । चमक बखब करना ।

दगदगाहट—संज्ञा स्त्री० [हि० दगदगाना + हट (प्रत्य०)] चमक । दमक ।

दगदगी—संज्ञा स्त्री० दे० “दगदगा” ।

दग्ध + संज्ञा पुं० दे० "दाह" ।

वि० दे० "दग्ध" ।

दग्धना कर्त्तृ-कि० अ० [सं० दग्ध + ना (प्रत्य०)] जलना ।
३०—यत्र अग्नि विरहित दिव्य जाता । सुलग सुलग दग्धि
भद्र धारा ।—जायसी ।

कि० सं० (१) जलना । (२) बहुत दुःख देना । कष्ट
पहुँचाना ।

दग्धना-कि० अ० [सं० दग्ध + ना (प्रत्य०)] (१) (यंत्रक या तोप
आदि का) छूटना । चलना । जैसे, यंत्रक आपदी आप
दग गई । (२) जलना । दग्ध होना । मुलस जाना ।
३०—श्री हरिदास के स्वामी स्वामी कुंजविहारी की
कटाक्ष कोटि काम दगे ।—स्वामी हरिदास । (३) दागा
जाना । दागना का अकर्मक रूप ।

कि० सं० दे० "दागना" । ३०—(क) विषघ्न स्वाम
सरिस लगी तन सीतल यन वात अनलहुँ सौ सरसे रंग
हिसकर-कर धन गात ।—शु० सत० । (ख) जो तब होत
दिखा दिखी भई धमी इक अर्धक । दगै तिरिछी दीठ अथ
है योछी कौ र्धक ।—विहारी ।

दगर + संज्ञा पुं० दे० "दगरा" ।

दगरा + संज्ञा पुं० [?] (१) देर । विलंब । ३०—
भोरहि ते कान्ह करत तोसौं कगरो । × × ×
× × सख कोब जात मधुपुरी येचन कौने दिये।
दिखाबहु कगरो । अंधल पुँचि पुँचि राखत हौ जान देहु
अब होत है दगरो ।—सूर । (२) डगर । शब्दा । ३०—वह
जो खचित मॅद वनी दगरो के माहौं ।—श्रीधर पाठक ।

दगरी-संज्ञा स्त्री० [?] वह दही जिस पर मलाई या
साड़ी न हो ।

दगलफसल-संज्ञा पुं० [अ० दग्ध + अनु० फसल या हिं० फँसना]
घोषा । फारब ।

दगला-संज्ञा पुं० [?] मोटे वल का बना हुआ या
रुईदार अंगरखा । भारी लबादा ।

दगवाना-कि० सं० [हिं० दगना का प्रे०] दागने का काम
दूसरे से कराना । दूसरे को दागने में प्रवृत्त कराना ।
३०—बढि भोरहि तोपन दगवापो । दीनन को बहु दग्ध
लुटापो ।—सुगज ।

दग्धा-विं० [हिं० दग + हा (प्रत्य०)] (१) जिसके दाग लगा
हो । दागवाला । (२) जिसके सफेद दाग हों ।

वि० [हिं० दग्ध = प्रेत्कर्म + हा (प्रत्य०)] जिसने प्रेत किया
की है । प्रेत-कर्म-कर्ता ।

वि० [हिं० दगना + हा (प्रत्य०)] जो दागा हुआ हो । जो
दग्ध किया गया हो ।

दगा-संज्ञा स्त्री० [अ०] दृप्त । कपटी । घोषा ।

कि० प्र०—करना ।—देना ।—खाना ।

घो०—दगाबाज । दगादार ।

दगादार-विं० [फा० दगा + दार] घोलियाऊ । छुली । ३०—(क)
पूरे दगादार मेरे पातक अघार तोहि गंगा के कछार में पछारि
धार करिहौं ।—पद्मनाकार । (ख) छुबीले तरे नैन बड़े हैं
दगादार ।—गीत ।

दगाबाज-विं० [फा०] छुली । कपटी । घोषा देनेवाला । ३०—
(क) कौज कहे करत कुसाज दगाबाज बड़े कौज कहे राम को
गुलाम खरो खूब है ।—मुलसी । (ख) नाम तुलसी पै भोंदें
भाग ते भयो है दास । किए अंगीकार पूते बड़े दगाबाज
को ।—मुलसी ।

संज्ञा पुं० छुली मनुष्य । घोषा देनेवाला धादमी ।

दगाबाजी-संज्ञा स्त्री० [फा०] छल । कपट । घोषा । ३०—
सुदृढ समाज दगाबाजी ही को सौदा सुत जब जाहो
काज तब मिलै पाय परि सो ।—मुलसी ।

दगागंल-संज्ञा पुं० [सं०] बृहस्पतिता के अनुसार एक प्रकार की
विद्या जिसके अनुसार किसी निर्जल स्थान के जपरी लक्ष्य
आदि देख कर, भूमि के नीचे पानी होने अथवा न होने का
ज्ञान होता है ।

विशेष—बृहस्पतिता में लिखा है कि जिस प्रकार मनुष्य के
शरीर में रक्त-वाहिनी शिराएँ होती हैं उसी प्रकार पृथ्वी में
जल-वाहिनी शिराएँ होती हैं और इन शिराओं के किसी
स्थान पर होने अथवा न होने का ज्ञान दृग्गो भादि को
देखकर हो सकता है । जैसे, यदि किसी निर्जल स्थान में
जामुन का पेड़ हो तो समझना चाहिए कि वससे तीन
हाथ की दूरी पर उत्तर की ओर दो पुरसे नीचे पूर्व-वाहिनी
शिरा है, यदि किसी निर्जल स्थान में गुलर का पेड़ हो तो
वससे परिचम तीन हाथ की दूरी पर डेढ़ दो पुरसे नीचे
अच्छे जल की शिरा होगी । इत्यादि ।

दगील-विं० [अ० दग + ल (प्रत्य०)] (१) दगादार । जिसमें दाग
हो । (२) जिसमें कुछ खेत वा दोष हो ।

संज्ञा पुं० [अ० दगा] दगाबाज । छुली । ३०—सात कोस
जौहरीं चलि धारो । मने दगीलन के मन भायो ।—
बाज ।

दग्ध-विं० [सं०] (१) जला या जलाया हुआ । (२) दुःखित ।
जिसे कष्ट पहुँचा हो । जैसे, दग्ध हृदय ।

संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की घास जिसे कनूय भी
कहते हैं ।

दग्धकाक-संज्ञा पुं० [सं०] बौम कीया ।

दग्धमंत्र-संज्ञा पुं० [सं०] संत्र के अनुसार वह मंत्र जिसके
मूर्त प्रदेश में अग्नि और वायु-युक्त वर्षा हों ।

दशरथ-संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र के सारथी चित्ररथ गंधर्व का एक नाम । (चित्ररथ दे० "चित्ररथ") ।

दशरथ-संज्ञा पुं० [सं०] लिखक वृष ।

दशरथ-संज्ञा स्त्री० [सं०] कुण्ड नामक वृष ।

दशरथ-संज्ञा पुं० [सं०] रोहिण्य नाम की चास ।

दशरथ-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सूर्य के वास्त होने की दिशा ।

परिचय । (२) एक प्रकार का वृष जिसे कुण्ड कहते हैं ।

(३) कुण्ड विशिष्ट राशियों से युक्त कुण्ड विशिष्ट तिथियाँ ।

जैसे—मीन और धन की शरमी । वृष और कुंभ की

चास । मेष और कर्क की छड़ । कन्या और मिथुन की भीमी ।

चरित्रक और सिंह की ब्रह्मी । मकर और तुला की

दादरी ।

विशेष—दशरथ तिथियों में वेदारंभ, विवाह, स्त्री-प्रसंग, यात्रा या वाणिज्य आदि करना बहुत ही हानिकारक माना जाता है ।

दशरथ-संज्ञा पुं० [सं०] विंगल के अनुसार क, ह, र, भ, और य ये पाँचों अक्षर जिनका छंद के आरंभ में रहना चर्चित है । उ०—दीक्षा भूल न छंद के आदि क ह र भ य कोह । दशरथ के दोष में छंद दोषयुक्त होह ।

दशरथ-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का वृष ।

दशरथ-संज्ञा स्त्री० दे० "दशरथ (२)" ।

दशरथ-संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) मूँठके या दशरथ से खगी हुई

घेत । (२) धक्का । ठोकर । (३) दशरथ ।

दशरथ-संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) ठोकर या धक्का खाना । (२)

दशरथ । (३) मूँठका खाना ।

कि० सं० (१) ठोकर या धक्का लगाना । (२) दशरथ । (३)

मूँठका देना ।

दशरथ-संज्ञा पुं० [सं०] गिरना । पड़ना । उ०—गगन

उड़हाने गये से श्यामहि आह धरमि पर धाप दयो री ।—

सूर ।

दशरथ-संज्ञा पुं० दे० "दशरथ" ।

दशरथ-संज्ञा स्त्री० [सं०] दशरथ । दश-प्रज्ञापति की

कन्या, सती । उ०—गुनि सन विद्या मांगि त्रिपुरारी । चले

भवन संग दशरथमारी ।—तुलसी ।

दशरथ-संज्ञा स्त्री० दे० "दशरथ" ।

दशरथ-संज्ञा पुं० [सं०] दशरथ । दश की कन्या, सती ।

दशरथ-संज्ञा पुं० दे० "दशरथ" । उ०—दशरथ पिय हूँ वाम पस

बिसरहैं तिय धान । एकै वासर के विरह धाने बरप

वितान ।—विहारी ।

दशरथ-संज्ञा पुं० दे० "दशरथ" ।

दशरथ-संज्ञा पुं० [अ०] मूँठ । बेईमान । शरणाचारी ।

दशरथ-संज्ञा पुं० [सं०] दशरथ । सहरदेई नाम का पौधा ।

दशरथ-संज्ञा पुं० [अ०] दशरथ । गरजना । बाघ, सिंह आदि का योजना ।

दशरथ-संज्ञा पुं० [सं०] दशरथ । दशरथ । जो दशरथ रमे हो ।

दशरथ-संज्ञा पुं० [सं०] दिनरथ । सूर्य । (हिं०)

दशरथ-संज्ञा पुं० दे० "दशरथ" ।

दशरथ-संज्ञा स्त्री० दे० "दशरथ" ।

दशरथ-संज्ञा पुं० [हिं०] दशरथ । दशरथ । जिसमें दाँत हैं । दाँतदार ।

दशरथ-संज्ञा स्त्री० [हिं०] दशरथ । दशरथ । दशरथ का स्त्रीलिंग और शरणाचरक रूप । छोटा दाँत ।

संज्ञा पुं० [दे०] एक प्रकार का पहाड़ी तीतर जो बहुत सुंदर होता है । इसकी खाल शरणाचरक दामों पर बिकती है । नीलमोर ।

दशरथ-संज्ञा पुं० [सं०] दशरथ । दशरथ । (हिं०)

दशरथ-संज्ञा स्त्री० दे० "दशरथ" ।

दशरथ-संज्ञा स्त्री० [हिं०] दशरथ । दशरथ । (१) भीम या

शरणाचरक की काटी हुई छोटी टहनी जिसके एक सिरे को

दाँतों से कुण्डल कर डूँची की तरह बगलते और इससे दाँत

साफ करते हैं । दाँतन ।

कि० प्र०—करना ।

(२) दाँत साफ करने और मुँह धोने की क्रिया ।

कि० प्र०—करना ।

यौ०—दशरथ कुण्डल = दाँत साफ करने और मुँह धोने की क्रिया ।

दशरथ-संज्ञा स्त्री० दे० "दशरथ" ।

दशरथ-संज्ञा स्त्री० दे० "दशरथ" ।

दशरथ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) दशरथ । (२) दशरथों के नौ बासुदेवों

में से एक । (३) एक प्रकार के बंगाली काव्यों की शरणाचरक ।

(४) दान । (५) दशरथ ।

यौ०—दशरथिधान = दशरथ पुत्र होने की क्रिया ।

वि० दिया हुआ ।

दशरथ-संज्ञा पुं० [सं०] शरणाचरक से बनाया हुआ पुत्र । यह

जो वास्तव में पुत्र न हो, पर पुत्र मान लिया गया हो ।

गोद लिया हुआ लड़का । सुतवध ।

विशेष—शरणाचरक में जो शरणाचर और शरणाचरक के अतिरिक्त दश

प्रकार के पुत्र गिनाने गए हैं उनमें दशरथ पुत्र भी है । इसमें

से कलियुग में केवल दशरथ ही को ग्रहण करने की व्यवस्था

है पर भविष्य में शरणाचरक के पास शरणाचर पुत्र का भी

ग्रहण शक्य तक होता है । पुत्र के बिना पितृव्य से बच्चा

नहीं होता इससे शरणाचर पुत्र ग्रहण करने की आशा देता है ।

उपर्युक्त शरणाचर भरा गया हो तो पितृव्य से तो बच्चा

हो जाता है पर पिंदा पानी नहीं मिल सकता इससे शर

अवस्था में भी पिंडा पानी देने और नाम चलाने के लिये पुत्र ग्रहण करना आवश्यक है। किंतु यदि शूद्र पुत्र का कोई पुत्र या पौत्र हो तो दत्तक नहीं लिया जा सकता। दत्तक के लिये आवश्यक यह है कि दत्तक लेनेवाले को पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र आदि न हो। दूसरी बात यह है कि शादान प्रदान की विधि पूरी हो अर्थात् लड़के का पिता यह कह कर अपने पुत्र को समर्पित करे कि मैं इसे देता हूँ और दत्तक लेनेवाला यह कह कर उसे ग्रहण करे "धर्माय त्वां परिगृह्णामि, सन्तत्यै त्वां परिगृह्णामि"। द्विजों के लिये हवन आदि भी आवश्यक है। वह पुत्र जिसपर इसका असली पिता भी अधिकार रखे और दत्तक लेनेवाला भी द्वायुष्पायण कर्त्तव्यता है। ऐसा लड़का दोनों की संपत्ति का उत्तराधिकारी होता है और दोनों के कुल में विवाह नहीं कर सकता।

दत्तक लेने का अधिकार पुरुष ही को है अतः स्त्री यदि गोद ले सकती है तो पति की अनुमति से ही। विधवा यदि गोद लेना चाहे तो उसे पति की आज्ञा का प्रमाण देना होगा। वशिष्ठ का वचन है कि "स्त्री पति की आज्ञा के बिना न पुत्र दे और न ले"। नंद पंडित ने तो दत्तक-मीमांसा में कहा है कि स्त्री को गोद लेने का कोई अधिकार नहीं है क्योंकि वह आप हीम आदि नहीं कर सकती। पर दत्तकचंद्रिका के अनुसार विधवा को यदि पति आज्ञा दे गया हो तो वह गोद ले सकती है। वंग देश और कारी प्रदेश में स्त्री के लिये पति की अनुमति अनिवार्य है; और यह इस अनुमति के अनुसार पति के जीते जी या मरने पर गोद ले सकती है। महाराष्ट्र देश के पंडित वशिष्ठ के वचन का यह अभिप्राय निकालते हैं कि पति की अनुमति की आवश्यकता उस अवस्था में है जब दत्तक पति के सामने लिया जाय; पति के मरने पर विधवा पति के छत्रवियों से अनुमति लेकर दत्तक ले सकती है।

कैसा लड़का दत्तक लिया जा सकता है? स्त्रियों में इस संबंध में कई नियम मिलते हैं—(१) शौनक, वशिष्ठ आदि ने एकलौते या जेठे लड़के को गोद लेने का निषेध किया है। पर कलकत्ते को षोडश और दूसरे हाइकोर्टों ने ऐसे लड़के का गोद लिया जाना स्वीकार किया है।

(२) धड़का समातीय हो, दूसरी जाति का न हो। यदि दूसरी जाति का होगा तो उसे केवल खाना कपड़ा मिलेगा।

(३) सबसे पहले तो भतीजे या किसी एक ही गोत्र के संपिंड को लेना चाहिए, उसके अभाव में निज गोत्र संपिंड, उसके अभाव में एक ही गोत्र का कोई दूरस्थ संबंधी जो समाजादिकों के अंतर्गत हो, उसके अभाव में कोई सगोत्र।

(४) द्विजातियों में लड़की का लड़का, पहिल का लड़का, माई, चाचा, मामा, मामी का लड़का गोद नहीं लिया जा सकता। नियम यह है कि गोद लेने के लिये जो लड़का हो वह 'पुत्रच्छायावह' हो अर्थात् ऐसा हो जिसकी माता के साथ दत्तक लेनेवाले का निषेध या समागम हो सके।

दत्तक विषय पर अनेक ग्रंथ संस्कृत में हैं जिनमें नंद पंडित की दक्षकीर्त्तिसा और देवानंद भट तथा कुबेर कृत दत्तकचंद्रिका सबसे अधिक मान्य हैं।

मुद्रा—दत्तक लेना = किसी दूसरे के पुत्र को गोद लेकर अपना पुत्र बनाना।

दत्तचित्त—वि० [सं०] जिसने किसी काम में खूब जी लगाया हो। जिसने खूब चित्त लगाया हो।

दत्ततीर्थकृत-संज्ञा पुं० [सं०] गत उत्सर्पिणी के आठवें अर्हत। (जैन)

दत्ता-संज्ञा पुं० दे० "दत्तात्रेय"।

दत्तात्मा-संज्ञा पुं० [सं० दत्तात्मन्] वह पुत्र, जिसे उसके माता पिता ने त्याग दिया हो अथवा जिसके माता-पिता का देहांत हो चुका हो और जो स्वयं किसी के पास जाकर उसका दत्तक पुत्र बने। शास्त्रों में यह भी पाह्य प्रकार के पुत्रों में से एक माना गया है।

दत्तात्रेय-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रतिष्ठ प्राचीन ऋषि जो पुराणा-नुसार विष्णु के चौबीस अवतारों में से एक माने जाते हैं। मार्कंडेय पुराण में इनकी उत्पत्ति के संबंध में जो कथा बिली है वह इस प्रकार है—एक कोट्टी ब्राह्मण की स्त्री यज्ञी पतिव्रता और स्वाभिमत थी। एक बार यह ब्राह्मण एक वैश्या पर शासक हो गया। उसके आज्ञानुसार इसकी पतिव्रता की उसे अपने कंधे पर बैठा कर-कंधेरी रात में उस वैश्या के घर ले चली। रास्ते में मांडव्य ऋषि तपस्या कर रहे थे; अंधेरे में कोट्टी ब्राह्मण का पैर उन्हें लग गया। उन्होंने शाप दिया कि जिसका पैर मुझे लगा है, सूर्य निकलते निकलते वह मर जाएगा। स्त्री को ने अपने पति की सजा करने और वैधव्य से बचने के लिये कहा कि जाओ सूर्य उदय ही न होगा। जब सूर्य का उदय न हुआ और सूर्य की नशा की संभावना हुई तो सब देवता मिल कर प्रज्ञा के पास गए। प्रज्ञा ने उन्हें अग्नि मुक्ति की की अनुश्रुता के पास जाने की सम्मति दी। देवताओं के प्रार्थना करने पर अनुश्रुता ने जाकर ब्राह्मण-पत्नी को समझाया और कहा कि तुम सूर्योदय होने दो तुम्हारे पति के मरते ही मैं उन्हें फिर सजीव कर दूंगी और उनका शरीर भी नीरोग हो जाएगा। सब सूर्य उदय हुआ और ब्राह्मण को अनुश्रुता ने फिर जीवित कर दिया। देवताओं ने प्रसन्न होकर अनुश्रुता से पर जानने के लिये कहा। अग-

सूया ने कहा—ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर तमिने मेरे गर्भ से जन्म ग्रहण करें। ब्रह्मा ने हृत्ते स्वीकार किया, और तदनुसार ब्रह्मा ने सोम बनकर, विष्णु ने दत्तात्रेय बनकर, और महेश्वर ने दुर्वास बन कर अनसूया के घर जन्म लिया। हे देवराज ने जब अग्नि को बहुत कष्ट पहुँचाया या तप दत्तात्रेय शूद्र होकर सातवें ही दिन गर्भ से निकल आया। ये बड़े भारी योगी थे और सदा ऋषि-कुमारों के साथ योगसाधन किया करते थे। एक बार वे अपने साथियों और संसार से छुटकारा पाने के लिये बहुत समय तक एक सरोवर में ही हरे रहे पर तब भी ऋषि-कुमारों ने इनका संग न छोड़ा, वे सरोवर के किनारे बने आसरे बँधे रहे। अंत में दत्तात्रेय उन्हें धुलने के लिये एक सुंदरी को साथ लेकर सरोवर से निकले और मद्यपान करने लगे। पर ऋषि-कुमारों ने यह समझ कर तब भी इनका संग न छोड़ा कि वे पूर्ण योगीवर हैं, इनकी आसक्ति किसी विषय में नहीं है। भागवत के अनुसार दन्द्नेने चौबीस पदार्थों से अनेक शिषाई प्रदत्त की थी और उनहीं चौबीस पदार्थों को वे अपना शुद्ध मानते थे। वे चौबीस पदार्थ ये हैं—धृष्टी, वायु आकार, जल, अग्नि, चंद्रमा, सूर्य, कवच, अजगर, सागर, पतंग, मधुकर, (भौंरा और मधुमखली), हाथी, मधुहारी (मधुसंग्रह करनेवाली), हरिन, मङ्गली, पिंगला वैश्या, गिद्ध, बाजक, कुमारीकन्या, वाद्य बनानेवाला, सार्व, मङ्गली और तितली।

दत्ताप्रदानिक-संज्ञा पुं० [सं०] व्यवहार में अट्टारह प्रकार के विवाद पदों में से पाँचवाँ विवादपद। किसी दान किए हुए पदार्थ को अन्यायपूर्वक फिर से प्राप्त करने का प्रयत्न।

दत्तो-संज्ञा धी० [सं०] सगाई का पक्का होना।
 दत्तैय-संज्ञा पुं० [सं०] ईद।
 दत्तोपनिषद्-संज्ञा पुं० [सं०] एक उपनिषद् का नाम।
 दत्तोलि-संज्ञा पुं० [सं०] पुत्रालय सुनि का एक नाम।
 दत्त-संज्ञा पुं० [सं०] (१) घन। (२) सेना।
 दत्तिस-संज्ञा पुं० [सं०] दसक पुत्र।
 ददन-संज्ञा पुं० [सं०] दान। देने की क्रिया।
 ददमर-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का पेड़।
 ददरा-संज्ञा पुं० [दे०] छानने का कपड़ा। छुछा। साफ़ी।
 ददरी-संज्ञा धी० [दे०] (१) एक हुए तमाल के पत्ते पर का दाग। (२) दे० "धरयन्"।

ददा-संज्ञा पुं० दे० "दादा"। व०—यह विवाद देवत धरनीघर मात पिता यत्रमद दादा रे।—सूर।

ददिमौर-संज्ञा पुं० दे० "ददिशाल"।
 ददियाल-संज्ञा पुं० दे० "ददिशाल"।

ददिया ससुर-संज्ञा पुं० [दे० दादा + ससुर] स्वसुर का पिता। ससुर का बाप।

ददिया सास-संज्ञा धी० [दे० दादी + सास] सास की सास। ददिया-ससुर की स्त्री।

ददिहाल-संज्ञा पुं० [दे० दादा + शक्य] (१) दादा का कुल। (२) दाद का घर।

ददोडा-संज्ञा पुं० दे० "ददोरा"।

ददोरा-संज्ञा पुं० [दे० दाद] मच्छर, घरे आदि के काटने या चुनखाने आदि के कारण चमड़े के ऊपर थोड़े से घेरे के बीच में पड़ी हुई थोड़ी सी सूजन जो चकती की तरह दिखाई देती है। चकत्ता। चटख।

ददु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) दाद का रोग। (२) कणुमा।

ददुभ्र-संज्ञा पुं० [सं०] चक्रमर्द। चक्रमैत्र।

ददु-संज्ञा पुं० [सं०] दाद रोग।

दघर्-संज्ञा पुं० दे० "दधि"।

दघसार-संज्ञा पुं० दे० "दधिसार"।

दधि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) दही। जमाया हुआ दूध। (२) बस। कपड़ा।

संज्ञा पुं० [सं० उदधि] समुद्र। सागर। (इस अर्थ में दधि शब्द का प्रयोग सूरदास ने बहुत किया है)

दधिकार्दो-संज्ञा पुं० [सं० दधि + दे० कौटो = कीचड़] जगमादमी के समय होनेवाला एक प्रकार का उत्सव जिसमें लोग हलकी मिला हुआ दही एक दूसरे पर फेंकते हैं। (कहते हैं कि श्रीकृष्ण जन्म के समय गोपों और गोपिकाओं ने आनंद में मग्न होकर हलकी मिठा दही एक दूसरे पर हलता अचिक फेंका था कि गोकुञ्ज की गलियों में दही का कीचड़ सा हो गया था) व०—यद्यपि भाग सुदागिनी जिन जाये हरि सो पत। करहु लखन की आरवी री अर दधिकार्दो सुत।—सूर।

दधिकूर्चिक-संज्ञा धी० [सं०] फटे हुए दूध का वह अंश जो पानी निकलने पर बच जाता है। छैता।

दधिक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक वैदिक देवता जो थोड़े के आकार के माने जाते हैं। (२) थोड़ा।

दधिचार-संज्ञा पुं० [सं०] मयानी।

दधिज-संज्ञा पुं० दे० "दधिजात"।

दधिजात-संज्ञा पुं० [सं०] मरुजान। नवमी।

संज्ञा पुं० [सं० उदधि-युग] चंद्रमा। व०—देवो में दधिसुत में दधिजात।—सूर।

दधित्य-संज्ञा पुं० [सं०] कवित्व। कौण।

दधित्यालय-संज्ञा पुं० [सं०] सेना।

दधिपेनु-संज्ञा धी० [सं०] पुरायानुसार दान के लिये कवित्व भी जिसकी कल्पना दही के मटके में की जाती है।

दधिनामा-संज्ञा पु० [सं० दधिनान्] कैय का पेड़ ।
 दधिपुत्रिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] सफेद अपराजिता ।
 दधिपुत्री-संज्ञा स्त्री० [सं०] सेम ।
 दधिपूष-संज्ञा पु० [सं०] एक प्रकार का पत्रवान जो दही में
 मँटे हुए शालि धान के चूरे को भी में तलने से बनता है ।
 दधिफल-संज्ञा पु० [सं०] कैय । कपित्थ ।
 दधिमंड-संज्ञा पु० [सं०] दही का घानी ।
 दधिमंडौद-संज्ञा पु० [सं०] पुराणानुसार दही का समुद्र ।
 दधिमुख-संज्ञा पु० [सं०] रामचंद्र की सेना का एक यंत्र
 जो सुग्रीव का मामा और मनुवन का रक्षक था ।
 दधियार-संज्ञा पु० [दे०] जीर्णतिका की शांति की एक लता
 जिसके पत्ते लंबे और पान के आकार के होते हैं । इसकी
 छंटियों आदि में से दूध निकलता है और इसमें सूर्यमुखी
 की तरह के फूल लगते हैं । इसका व्यवहार औषध में होता
 है । अक्रुपणी । अंधाहुली ।

दधिसार-संज्ञा पु० [सं०] पुराणानुसार दही का समुद्र ।
 दधिसार-संज्ञा पु० [सं०] नवनीत । मखलन ।
 दधिसुत-संज्ञा पु० [सं० उदधिसुत] (१) कमल । उ०—देखे
 में दधिसुत में दधिजात ।—सूर । (२) शुक्ल । मोती ।
 उ०—दधिसुत जामे नंद दुधार ।—सूर । (३) चंद्रमा ।
 उ०—राधा दधिसुत कर्णों ग दुरावति । सूर ।

धा०—दधिसुत-सुत=विद्वान् । पवित्रत । उ०—जिनके हरि
 वाहन नहीं दधिसुत-सुत जेहि नाहिं ।—तुलसी ।
 (४) जालंधर दैत्य । उ०—विष्णु वचन चरला प्रतिहार ।
 तेहि ते श्रापुन दधिसुत मार ।—विधाम । (५)
 विप । अक्षर । उ०—नहिं विभूति दधिसुत ग कंड दह
 शृगाम्दु चंद्रन धरपित सन ।—सूर ।
 संज्ञा पु० [सं०] मखलन । नवनीत ।

दधिसुता-संज्ञा स्त्री० [सं० उदधिसुता] स्त्री । उ०—दधिसुता
 सुन शयलि उपर इंद्र श्रापुष जानि ।—सूर ।
 दधिस्नेह-संज्ञा पु० [सं०] दही की मलाई ।
 दधिस्येद-संज्ञा पु० [सं०] तक । छाड़ । मट्टा ।
 दधीस-संज्ञा पु० दे० "दधीचि" ।
 दधीचि-संज्ञा पु० [सं०] एक वैदिक ऋषि जो यास्क के मत से
 अथर्व के पुत्र थे और हसी जिनसे दधीचि कहलाते थे । किसी
 पुराण के मत से ये कर्दम ऋषि की कन्या और अथर्व की
 पत्नी शांति के गर्भ से शवश हुए थे और किसी पुराण के
 मत से ये शुक्राचार्य के पुत्र थे । वेदों और पुराणों में इनके
 संबंध में अनेक कथाएँ हैं जिनमें से विशेष प्रसिद्ध यह है कि
 इंद्र ने इन्हें मधुविद्या सिखाई थी और कह दिया था कि यदि
 तुम यह विद्या धतलाओगे तो हम तुम्हें मार डालेंगे । इस पर
 ऋषि युगल ने दधीचि का सिर काट कर अलग रख दिया

और उनके धड़ पर छोड़े का सिर लगा दिया और तब उनसे
 मधु विद्या सीली । जब इंद्र को यह बात मालूम हुई तो
 उन्होंने आकर उनका चोट्याला सिर काट डाला । इस पर
 ऋषि युगल ने उनके धड़ पर फिर वही मधुप्यवाला पहला
 सिर लगा दिया । एक बार युत्रासुर के वपद्व से बहुत
 दुखित होकर सब देवता इंद्र के पास गए । उस समय
 निरिन्त हुआ कि दधीचि की हड्डियों के घने हुए अस्थि
 अतिरिक्त और किसी अस्थि से युत्रासुर मारा न जा सकेगा ।
 इसलिये इंद्र ने दधीचि से उनकी हड्डियाँ माँगी । दधीचि
 ने अपने पुराने शत्रु और हत्याकारी इंद्र को भी विमुख
 झौटना उचित न समझा और उनके लिये अपने प्राण
 त्याग दिए । तब उनकी हड्डियों से शत्रु बना कर युत्रासुर
 मारा गया । तभी से दधीचि का बड़ा मारी दानी होना
 प्रसिद्ध है । महाभारत में यह भी लिखा है कि जब दूष ने
 हरीद्वार में विना शिवजी के यज्ञ किया था तब इन्होंने दूष
 को शिवजी के निर्मात्रित करने के लिये बहुत समझाया था,
 पर इन्होंने नहीं माना, इसलिये ये यज्ञ छोड़कर चले गए
 थे । एक बार दधीचि बड़ी कठिन तपस्या करने लगे । इस
 समय इंद्र ने डरकर इन्हें तप से अट करने के लिये अर्ध-
 बुधा नामक अस्त्र भेजा । एक बार जब ये सरस्वती तीर्थ में
 स्नान कर रहे थे तब अर्धबुधा उनके सामने पहुँची । उसे
 देखकर इनका वीर्य स्प्रलजित होगया जिससे एक पुत्र हुआ ।
 इसीसे उस पुत्र का नाम सारस्वत हुआ ।

दधीद्यसिंह-संज्ञा पु० [सं०] (१) वज्र । (२) शीर । हीरक ।
 दध्न-संज्ञा पु० [सं०] चौदह यमों में से एक यम ।
 दध्यानो-संज्ञा पु० [सं०] सुदर्शन षष्ठा । मदनमत्त ।
 दधुसुर-संज्ञा पु० [सं०] दही की मलाई ।
 दन-संज्ञा पु० [सं० दिन] दिन । (हिं०)
 दनकर-संज्ञा पु० [सं० दिनकर] सूर्य । (हिं०)
 दनगा-संज्ञा पु० [दे०] खेत का छोटा टुकड़ा ।
 दनदनाना-किं० अ० [अतु०] (१) दनद्वन शब्द करना । (२)
 आनंद करना । छुरी मनाना ।
 दनमणि-संज्ञा पु० [सं० दिनमणि] सूर्य । (हिं०)
 दनादम-किं० नि० [अतु०] दनद्वन शब्द के साथ । जैसे, दनाद्वन
 तोपें छूटने लगों ।

दनु-संज्ञा स्त्री० [सं०] दूध की एक कन्या जो कश्यप को ब्याही
 थी । इसके चालीस पुत्र हुए थे जो सब दागव कहलाते हैं ।
 इनके नाम ये हैं—विप्रचिन्ति, शंकर, ननुचि, युलोमा, अस्ति-
 लोमा, केरी, दुर्जय, अयाशिरि, अशयिरा, अशरंजु, गगन-
 मूर्धा, स्वर्नांत, धरम, अरवपति, वृषपर्वा, अजक, धरव-
 ग्रीव, सूक्ष्म, तुहंड, एकपद, एककण, विरूपाण, महोदर,
 निचंद्र, निकुंभ, कुञ्जट, कपट, शरभ, शलभ, सूर्य, चंद्र,

पूकाप, अमृतप, प्रलंब, नरक, वातापी, शठ, यविष्ठ, यवातु
 और श्रीधर्मिष्ठ । (इनमें जो चंद्र, और सूर्य हैं, वे देवता
 चंद्र और सूर्य से भिन्न हैं)

संज्ञा पुं० एक दानव का नाम जो श्री दानव का लड़का था ।

दनुज-संज्ञा पुं० [सं०] दनु से शपट, घसुर । राक्षस ।

दनुजदलनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा ।

दनुजराज-संज्ञा पुं० [सं० दनुज + हि० राज] दानवों का राजा
 हिरण्यकश्यप ।

दनुजारि-संज्ञा पुं० [सं०] दानवों के शत्रु ।

दनुजसैन्य-संज्ञा पुं० [सं०] दानवों का राजा, राक्षस ।

दनुजेश-संज्ञा पुं० [सं०] (१) हिरण्यकश्यप । (२) राक्षस ।

दनुसंभव-संज्ञा पुं० [सं०] दनु से जन्म, दानव ।

दनु-संज्ञा स्त्री० दे० "दनु" ।

दण-संज्ञा पुं० [अनु०] "दण" शब्द जो तोप आदि के छूटने
 शयथा हली प्रकार के और किसी कारण से होता है ।

दण्ड-संज्ञा स्त्री० [हिं० ढंटे के साथ अनु०] सुइकी । डण्ट । डण्टे ।
 ढंटेने या डण्टने की क्रिया ।

दण्डना-कि० [हिं० ढंटना के साथ अनु०] किसी को डराने के
 लिये विनाडकर जोर से बोई बात कहना । ढंटना ।
 सुइकना ।

दणु-संज्ञा पुं० [सं० दणु] दणु । अहंकार । अभिमान । रोष ।
 घात । इ०—सात दिवस गोवर्द्धन राख्ये ईद गये पणु
 घोहि ।—सूर

दण्ट-संज्ञा स्त्री० दे० "दण्ट" ।

दण्टना-कि० उ० दे० "दण्टना" ।

दण्टर-संज्ञा पुं० दे० "दण्टर" ।

दण्टरी-संज्ञा पुं० दे० "दण्टरी" ।

दण्टरीखाना-संज्ञा पुं० दे० "दण्टरीखाना" ।

दण्टी-संज्ञा स्त्री० [अ० दण्टी] कागज के कई तारों का एक में
 साठ कर बनाया हुआ गत्ता जो प्रायः निवृद्ध बौध्ने आदि के
 काम में आता है । गत्ता । डुट । बसली ।

दण्टर-संज्ञा पुं० दे० "दण्टर" ।

दण्टन-संज्ञा पुं० [अ०] (१) किसी खीज को जमीन में गाड़ने
 की क्रिया । (२) मुरदे को जमीन में गाड़ने की क्रिया ।

दण्टना-कि० उ० [अ० दण्टन + णन्] जमीन में दण्टना ।
 गाड़ना ।

दण्टरा-संज्ञा पुं० [दे०] काठ का बड़ टुकड़ा या इसी प्रकार
 का और कोई पदार्थ जो किसी भाव के दोनो ओर हृम
 लिये लगा दिया जाता है कि जिसमें किसी दूसरी भाव को
 टकर से रोकना कोई शक टूट न जाय । होस । (लश०)

दण्टराना-कि० उ० [दे०] (१) किसी भाव को किसी दूसरी

भाव के साथ टकर छड़ने से बचाना । (२) (पाक) छड़ा
 करना । (लश०) (३) बचाना । रखा करना ।

दण्टा-संज्ञा स्त्री० [अ० दण्टः] (१) वार । वेर । जैसे, (क) हम
 तुम्हारे वहाँ कल दो दण्टा गए थे । (ख) उसे कई दण्टा
 समझावा मगर उसने नहीं माना । (२) किसी कानूनी
 किताब का वह एक अध्या जिसमें किसी एक अपराध के
 संबंध में व्यवस्था हो । धारा ।

मुहा०— दण्टा लगाना = अभियुक्त पर किसी दण्टा के नियमों का
 धराना । अपराध का लक्षणपत्र आरोपित कराना जैसे, फौजदारी
 में भ्रान उस पर घोरि की दण्टा लग गई ।

वि० [अ० दण्टः] दूर किया हुआ । हटया हुआ । तिरस्कृत ।
 जैसे, किसी तरह इसे वहाँ से दण्टा करो ।

मुहा०— दण्टा दफान करना = तिरस्कृत करके दूर कराना या
 हटाना ।

दण्टादार-संज्ञा पुं० अ० दण्टः = समूह + दण्टा दार] फौज का
 वह कर्मचारी जिसकी अधीनता में कुछ सिपाही हों ।

विशेष— सेना में दण्टादार का पद प्रायः पुलिस के जमादार के
 पद के बराबर होता है ।

दण्टादारी-संज्ञा स्त्री० [हिं० दण्टादार + ई (अभ्य०)] (१) दण्टादार
 का पद । (२) दण्टादार का काम ।

दण्टानी-संज्ञा पुं० [अ०] गढ़ा हुआ धन या सज्जाना ।

दण्टर-संज्ञा पुं० [अ०] (१) वह स्थान जहाँ किसी कारणवसे
 आदि के संबंध की कुछ खिस्सा पड़ी और जेन देन आदि
 हो । चाफिस । कार्यालय । (२) बड़ा मारी पत्र । लंबा चौड़ी
 चिट्ठी । (३) सविलार वृत्त । चिट्ठा ।

मुहा०— दण्टर खोलना = सविलार वृत्त कह सुनाना ।

दण्टनी-संज्ञा पुं० [अ०] (१) किसी दण्टर का वह कर्मचारी
 जो वहाँ के कागज आदि ठुकरा करता और रजिस्टरों आदि
 पर रज लीखाया शयथा इसी प्रकार के और काम करता
 हो । (२) किताबों की निवृद्ध बांधनेवाला । निवृद्धास ।
 निवृद्धद्वंद्व ।

धौ० दण्टरीखाना ।

दण्टरीखाना-संज्ञा पुं० [अ०] वह स्थान जहाँ किताबों की
 निवृद्ध धंधली हो शयथा दण्टरी धैठ कर अपना काम
 करते हों ।

दण्टा-वि० [हिं० दण्ट या दण्टा] प्रभावशाली । दण्टावाला ।
 जिसका खेगों पर रोम दण्ट हो । जैसे, वे बड़े दण्टा
 आदमी हैं, किसी से नहीं डरते ।

दण्टक-संज्ञा स्त्री० [हिं० दण्टका] (१) दण्टे या दण्टे की क्रिया
 या भाव । (२) सिद्धुद्धन । शिकार । (३) धातु आदि को
 लंबा करने के लिये धीठने की क्रिया ।

यो०— दण्टकर ।

दशकगार-संज्ञा पुं० [हिं दशक + गार (प्रत्य०)] दशका (सार)
यानेवाला ।

दशकना-क्रि० अ० [हि० दशना] (१) भय के कारण किसी लँकरे
स्थान में छिपना । डर के मारे छिपना । जैसे, (क) कुत्ते को
देखकर बिल्ली का घबचा झलमारी के नीचे दशक रहा ।
(ख) सिपाही को देखकर चोर कोने में दशक रहा । (२)
लुकना । छिपना । जैसे, शेर पहले से ही म्हाड़ी में दशका बैठा
था, हिरन के भाते ही उसपर झपट पड़ा ।

कि० प्र०-जाना ।-रहना ।

कि० सं० किसी घातु को हथौड़ी से चोट लगा कर बढ़ाना
या चौड़ा करना । पीटना ।

कि० सं० [सं० दश] डटना । टपटना । छुड़कना ।

उ०-दशक दशोरे एक चारिधि में घोरे एक गगन मही
में एक गगन उड़ात है ।-तुलसी ।

दशकनी-संज्ञा स्त्री० [हि० दशना] माती का वह हिस्सा जिसके
द्वारा बसमें हवा घुसती है ।

दशकघाना-क्रि० सं० [हि० दशकाना का प्रे०] दशकाने का काम
किसी दूसरे से काना । दूसरे को दशकाने में प्रयुक्त करना ।

दशका-संज्ञा पुं० [हि० दशकना = सार आदि घटना] कामदानी का
सुनहला या रुपहला चिपटा सार ।

दशकाना-क्रि० सं० [हि० दशकना का सं० रूप] (१) छिपाना ।
डकाना । झाड़ में करना । (२) डटना । (ख०)

दशकी-संज्ञा स्त्री० [रथ०] सुराही की तरह का मिट्टी का एक
बर्तन जिसमें पानी रखकर चरायाई और खेतिहर खेत पर
छे जाया करते हैं ।

संज्ञा स्त्री० [हि० दशकना] दशकने या छिपने की क्रिया
या भाव ।

मुहा०-दशकी मारना = छिप जाना । अदृश्य हो जाना ।

दशके का सलमा-संज्ञा पुं० [?] चमकीला सलमा । दशके
का बना हुआ सलमा जो बहुत चमकीला होता है ।

दशकैया-संज्ञा पुं० [हिं दशकना + यैया (प्रत्य०)] सोने चाँदी के
सारे दो पीट कर बढ़ाने, चपटा और चौड़ा करनेवाला ।
दशकगार ।

दशगार-संज्ञा पुं० [रथ०] (१) डाक यानेवाला । (२) चमड़े
के रूपसे बनानेवाला ।

दशद घुसड़-वि० [हिं० दशना + घुसना] डरपोक । सय से दशने
आर डरनेवाला ।

दशदश-संज्ञा पुं० [ख०] शेषदश । शासक । प्रताप ।

दशना-क्रि० अ० [सं० दशन] (१) मार के नीचे आना । पोक
के नीचे पड़ना । जैसे, सन्तियों का महान के नीचे दशना,
छड़के का माड़ी के नीचे दशना, चींटी का पैर के नीचे
दशना । (२) ऐसी अवस्था में होना जिसमें किसी और से

बहुत जोर पड़े । दाय में धाना । (३) (किसी भारी शक्ति
का सामना होने अथवा दुर्बलता आदि के कारण) अपने
स्थान पर न उठर सकना । पीछे हटना । (४) किसी के
प्रभाव या शासक में आकर कुछ कह न सकना अथवा
अपने इच्छानुसार आचरण न कर सकना । दवाय में पड़-
कर किसी के इच्छानुसार काम करने के लिये विषय होना ।
जैसे, (क) कोई कार्यों से ये हमसे बहुत दबते हैं । (ख)
आप तो हमसे कमजोर नहीं हैं, फिर क्यों दबते हैं । (४)
अपने गुणों आदि की कमी के कारण किसी के मुकाबले में
ठीक या अच्छा न जँचना । जैसे, यह माला इस बंदे के सामने
दब जाती है । (६) किसी बात का अधिक बढ़ या फैल
न सकना । किसी बात का जहाँ का तहाँ रह जाना । जैसे,
राज्य दशना, मामला दशना । उ०-नाम सुनात ही है गयो
नव औरे मन और । दये नहीं चित चढ़ि रही अघट्टे चड़ाए
रवोर ।-विहारी । (७) उभड़ न सकना । शीत रहना ।
जैसे, बजया दशना, श्रोष दशना । (८) घपनी चीज का
अनुचित रूप से किसी दूसरे के अधिकार में चला जाना ।
जैसे, हमारे ली खप उनके यहाँ दये हुए हैं । (९) ऐसी
अवस्था में था जाना जिसमें कुछ घस न चल सके ।
जैसे, वे आजकल खप की तंगी से दये हुए हैं ।

संयो० कि०-जाना ।

(१०) धीमा पड़ना । मंद पड़ना ।

मुहा०-दबी आवाज = धीमी आवाज । वह आवाज जिनमें
कुछ जोर न हो । दबी जगाम से फटना = अस्पष्ट रूप से
कहना । किसी प्रकार के भय आदि के कारण साफ साफ न
कहना बल्कि इस प्रकार कहना जिससे केवल कुछ ध्वनि
व्यक्त हो । दूबे दयाए रहना = शांतिपूर्वक या चुपचाप रहना ।
उपद्रव या कारंशद न करना । दूबे पाँव या पैर (चलना) =
इस प्रकार (चलना) जिसमें पैरों से कुछ भी शब्द न हो ।
द० प्रकार (चलना) जिसमें किसी का कुछ आहट न लगे ।
(११) संदोष करना । खँबना ।

दशमो-संज्ञा पुं० [रथ०] एक प्रकार का यकत जो हिमालय में
होता है ।

दशवाना-क्रि० सं० [हिं० दशना का प्रे०] दवाने का काम
दूसरे से कराना । दूसरे को दवाने में प्रयुक्त करना ।

दशस-संज्ञा पुं० [?] जहाज पर की रसद तथा दूसरा सामान ।
जहाजी गोदाम में का माल ।

दशार्द-संज्ञा स्त्री० [हिं० दशना] अनाज गिरावने के लिये दाबों
या डंठलों के दैलों के पैरों से रँदवाने का काम ।

दशाऊ-वि० [हिं० दशना] (१) दशानेवाला । (२) जिस (गर्दी
आदि) का अंगना दिहता पिछले दिहसे की चपेला अधिक
पोकल हो । दशू ।

दधाना-क्रि० सं० [सं० दघन] [संज्ञा, दध, दधव] (१) ऊपर से भार रखना। बोझ के नीचे लाना (जिसमें कोई चीज़ नीचे की ओर धँस जाय अथवा ध्वर उधर हट न सके)। जैसे, पत्थर के नीचे ज़िताय या कपड़ा दधाना। (२) किसी पदार्थ पर किसी ओर से बहुत जोर पहुँचाना। जैसे, उँगली से दाग दधाना, रस निकालने के लिये नीचू के दूकड़े को दधाना, हाथ या पैर दधाना। (३) पीछे धटाना। जैसे, राज्य की सेना शत्रुओं को बहुत दूर तक दधाती पली गई। (४) ज़मीन के नीचे गाड़ना। दफन करना।

संयो० क्रि०—देना।

(१) किसी मनुष्य पर हतना प्रभाव डालना या अर्थात्क ज़माना कि जिसमें यह कुछ कद न सके अथवा विपरीत आचरण न कर सके। अपनी इच्छा के अनुसार काम कराने के लिये दशय डालना। जोर डालकर विवश करना। जैसे, (क) कल धातों धातों में इन्होंने तुम्हें हतना दधाया कि तुम कुछ बोल ही न सके। (ख) इन्होंने दोनों आत्मियों को दधाकर आपस में मेल करा दिया। (१) अपने गुण या महत्त्व की अधिकता के कारण दूसरे को मंद या मात कर देना। दूसरे को गुणों या महत्त्व का प्रकाश न होने देना। जैसे, हल गई हमारत ने थापके मकान को दधा दिया।

संयो० क्रि०—देना।—रखना।

(७) किसी बात को ठठने या फँसने न देना। जहाँ का सही रहने देना। (८) बमझने से रोकना। धमन करना। शांत करना। जैसे, दधवा दधाना, मोध दधाना।

संयो० क्रि०—देना।—लेना।

(१) किसी दूसरे की चीज़ पर अनुचित अधिकार करना। कोई काम निकालने के लिये अथवा बेईमानी से किसी की चीज़ अपने पास रखना। जैसे, (क) इन्होंने हमारे लो शय्य दधा लिए। (ख) अपने इनकी किताय दधा ली।

संयो० क्रि०—धँसना।—रखना।—लेना।

(१०) झोंक के साथ बढ़कर किसी चीज़ को पकड़ लेना।

संयो० क्रि०—लेना।

(११) पैसी अथवा में से धाना जिसमें मनुष्य असहाय धीन या विवश हो जाय। जैसे, आजकल रूप्य की संगी ने इन्हें दधा दिया।

दधावा-संज्ञा पुं० [देग०] युद्ध की सामग्री में लकड़ी का एक प्रकार का बहुत बड़ा सँदूक जिसमें कुछ आत्मियों को बैठा कर गुप्त रूप से सुरंग खोदने अथवा हूसी प्रकार का और कोई उपद्रव करने के लिये शत्रु को किले में उतरा देते हैं।

दधाव-संज्ञा पुं० [हिं० दधाना] (१) दधाने की क्रिया। धीप।

क्रि० प्र०—डालना।—में धाना या पढ़ना।

(२) दधाने का भाव। धीप। (३) रोष।

क्रि० प्र०—डालना।—मानना।—में धाना या पढ़ना।

दधीला-संज्ञा पुं० [देग०] सुरभी या सुरभी के आकार का लकड़ी का बना हुआ हलवाहूयों का एक औजार जिससे वे बेलनते थादि मूलते, पोवा बनाते या चीनी की धारानी धादि फँसते हैं।

दधीज-वि० [फा०] जिसका हल मोटा हो। गाढ़ा। सींगी।

दधीर-संज्ञा पुं० [फा०] (१) खिन्नबाला। मुंरी। (२) एक प्रकार के महाराष्ट्र भाषणों की बधाधि।

दधूसा-संज्ञा पुं० [देग०] (१) जहाज का पिचुवा भाग। पिचुवल। (२) बड़ी नाव का पिचुवा भाग जहाँ पतवार लगी रहती है। (३) जहाज का कमरा। (जख०)

दधेला-वि० [हिं० दधाना + एल (प्रत्य०)] (१) दधा हुआ। जिसपर दधाव पड़ा हो। (२) जवरी जवरी होनेवाला (काम)। (जख०)

दधैल-वि० [हिं० दधाना + एल (प्रत्य०)] (१) जिसपर किसी का प्रभाव या दधाव हो। दधाव में पड़ा हुआ। (२) जो बहुत दधता या डरता हो। किसी से दधनेवाला। दधू।

दधोचन-क्रि० सं० [हिं० दधाना] (१) किसी को सहसा पकड़ कर दधा लेना। धर दधाना। जैसे, विछी ने सोते को जा दधोधा। (२) छिपाना।

संयो० क्रि०—लेना।

दधोरना-क्रि० सं० [हिं० दधाना] अपने सामने ठहरने न देना। दधाना। उ०—दधकि दधोरें एक धारिधि में धोरें एक मगन मही में एक गगन बढ़ाते हैं।—मुबली।

दधोस-संज्ञा स्त्री० [देग०] चकमक पत्थर।

दधोसना-क्रि० सं० [देग०] शराय पीना।

दधीता-संज्ञा पुं० [हिं० दधाना + ता (प्रत्य०)] लकड़ी का यह मुँबा जिसे पानी में भिगाए हुए नील के टँडों आदि को दधाने के लिये ऊपर से रख देते हैं।

दधीनी-संज्ञा स्त्री० [हिं० दधाना + नी (प्रत्य०)] (१) कस्तेरों का लोहे का औजार जिससे वे बरतनों पर फूल पत्ते आदि बमारते हैं। (२) भँजनी के ऊपर की ओर लगी हुई लकड़ी। (बोकाहे)

दध-वि० [सं०] शय्य। थोड़ा। कम।

दमस-संज्ञा पुं० [हिं० दाम + संस] मेल ली हुई जायदाद।

दम-संज्ञा पुं० [सं०] (१) दब जो दमन करने के लिये दिया जाता है। सजा। (२) पाठद्विषों का दमन। इन्द्रियों को धर में रखना और चित्त को धरे कामों में प्रवृत्त न होने देना। (३) कीचड़। (४) धर। (५) एक प्राचीन महर्षि जिनका बहल महाभारत में है। (६) उराणासुर मरुत रात्रा के पौर जो धनु की कथा इन्द्रसेना के गर्भ से बरपत

हृष्ट थे। कहते हैं कि ये नौ वर्ष तक माता के गर्भ में रहे थे। हृष्टके पुरोधित ने समझा था कि जिसकी जाननी को नौ वर्ष तक इस प्रकार इंद्रिय दमन करना पड़ा है वह मालक स्वयं भी बहुत ही दमनपरीत्र होगा। इसी लिये पहले इसका नाम दम रखा था। ये वेद वेदों के बहुत धरुद्धे ज्ञाता और धनुर्विद्या में बड़े प्रवीण थे। (७) बुद्ध का एक नाम। (८) भीम राजा के एक पुत्र और दमपंती के एक भाई का नाम। (९) विष्णु। (१०) दशवत्। संज्ञा पुं० [का०] (१) सांस। श्वास।

क्रि० प्र०—धाना।—चलना।—जाना।—बोना।

मुहा०—दम श्रटकना = सांस रुकना, विशेषतः मरने के समय सांस रुकना। दम उलटना = दे० “दम अटकना”। दम उलटना = (१) आक्रान्ता होना। धराराहट होना। जो पचाना। (२) दे० “दम घुटना”। दम खाना = दे० “दम लेना”। दम खिंचना = दे० “दम अटकना”। दम खिंचना = (१) चुप रह जाना। न बोलना। (२) सांस खींचना। सांस ऊपर चढ़ाना। दम घुटना = हवा की कमी के कारण सांस रुकना। सांस न लिया जा सकता। दम घेरना = (१) सांस न लेने देना। किसी को सांस लेने से रोकना। (२) बहुत कष्ट देना। दम घोट कर मारना = (१) गला दबा कर मारना। (२) बहुत कष्ट देना। दम चढ़ना = दे० “दम फूलना”। दम चुराना = जान बूझ कर छिप रोकना। (यह क्रिया विशेषतः मक्कार जानवर करते हैं। बंदर मा खाने के समय इसलिये दम चुराता है कि जिसमें मारनेवाला उसे मुरदा समझ ले। लोमड़ी भी कभी कभी अपने आपके मरी हुई जंतुजाने के लिये दम चुराती है। साज चढ़ाने के समय मक्कार घोड़े भी सांस रोक कर पेठ फुट्टा लेते हैं जिसमें पेटी या बंद धरुद्धी तरह न कसा जा सके)। दम दटना = (१) सांस बंद हो जाना। प्राण निकलना। (२) दौड़ने या तैरने आदि के समय इतना अधिक हृष्टकने लगना कि जिसमें प्राण दौड़ा या तैरा न जा सके। दम तोड़ना = मरते समय मरुके से सांस लेना। अंतिम सांस लेना। दम पचना = निरंतर परिश्रम के कारण ऐंसा, अश्वत्थ होना जिसमें सांस न फूले। (कुदतीबाज)। दम फूलना = (१) अधिक परिश्रम के कारण सांस का जल्दी जल्दी चलना, हृष्टकना। (२) दमे के रोग का दौरा होना। दम बंद करना = कृतपूर्वक किसी को धोखेसे आदि से रोकना। दम बंद होना = भय या आर्तक आदि के कारण विनम्र चुप रह जाना। दम बरना = (१) किसी के प्रेम अथवा मित्रता आदि का पक्का भरोसा रखना और समय समय पर अग्रिमानपूर्वक उसका वरदान करना। जैसे, (क) ये इनकी सुहृद्वत् का दम भरते हैं। (ख) हम आरकी दोस्ती का दम भरते हैं। (२) परिश्रम

या दौड़ने आदि के कारण सांस फूलने, लगना और पकावट आना। परिश्रम के कारण थक जाना। जैसे, इतनी सीधियां चढ़ने में हमारा दम भर गया। (३) मादक द्रव्य या लकड़ों से रह कर सांस खींचना। इस क्रिया से बसका मोच सांस होता अथवा मोहन पचता है। (कलंदर)। दम भरना = किसी को झुठो लड़ा कर पकाना (पदकवानों की पधि)। दम मारना = (१) विश्राम करना। सुस्ताना। (२) धोतना। कुछ कहना। चूँ करना। जैसे, आरकी क्या मजल जो इस बात में दम भी मार सकें। (३) हस्त-श्लेष करना। दखन देना। जैसे, इस जगह कोई दम मारने-पाखा भी नहीं है। दम लेना = विश्राम करना। ठहरना। सुस्ताना। दम साधना = (१) श्वास की गति को रोकना। सांस रोकने का अश्वत्थ करना। जैसे, प्राणायाम करनेवालों का दम साधना, गोता लगानेवालों का दम साधना। (२) चुप होना। मौन रहना। जैसे, (क) इस मामले में छप हम भी दम साधेंगे। (ख) स्वयं का नाम सुनते ही घ्राण दम साध गय। (२) नये आदि के लिये सांस के साथ धूर्सा खींचने की क्रिया।

क्रि० प्र०—खींचना।

मुहा०—दम मारना = गोले या चरस आदि को चिन्न कर रख कर उसका धूर्सा खींचना। दम लगना = गोले या चरस का धूर्सा खींचना। दम लगाना = दे० “दम मारना”। (३) सांस खींच कर जोर से बाहर फेंकने या फूँकने की क्रिया।

मुहा०—दम मारना = मंत्र आदि की सहायता से मारा फूँक करना। दम फूँकना = किसी चीज में सुँह से हवा भरना। दम भरना = कवृत्तर के पोटे में हवा भरना। (४) उतना समय जितना एक बार सांस लेने में लगता है। लमहा। पल।

मुहा०—दम के दम = क्षय भर। पोखी देर। जैसे, वे बर्षा दम के दम घेरे, फिर चले गय। दम पर दम = बहुत पोखी पोखी देर पर। हर दम। बराबर। जैसे, दम पर दम बर्षे के आ रही है। दम बरदम = दे० “दम पर दम”। (५) प्राण। जान। जी।

मुहा०—दम उलटना = जी पचराना। म्याकुलता होना। दम पताना = दिक् करना। तंग करना। दम लुद्ध होना = दे० “दम चलना। दम चुराना = जी चुराना। जान पचना। चढ़ाने से काम करने से अपने आपको पचना। दम नाक में या नाक में दम खाना = बहुत अधिक दुखी होना। बहुत तंग या पोशान होना। दम नाक में या नाक में दम करना अथवा खाना = बहुत क्रय या दुखल देना। बहुत तंग या

प्रेमान करना। दम निकलना = मृत्यु होना। मरना। (किसी पर) दम निकलना = किसी पर, इतना अधिक प्रेम होना कि उसके विवेग में प्राण निकलने का सा फट हो। बहुत अधिक आसक्ति होना। जैसे, हस्तीको देखकर भीते हैं जिसपर दम निकलता है। दम पर या बनना— (१) जान पर या बनना। प्राण-भय होना। (२) आसक्ति आना। आसक्ति आना। (३) डराना होना। व्यग्रता होना। दम फटक उठना या जाना = किसी चीज की सुंदरता या गुण्य आदि देख कर चित्त का बहुत प्रवल होना। जैसे, बसकी बसत देख कर दम फटक गया। दम फटकना = चित्त का व्याकुल होना। बेचैनी होना। दम फूना होना = दे० “दम सूखना”। जैसे, (क) देने के नाम तो बनका दम फूना होता है। (ख) इनकी सुगत देखते ही दम फूना हो जाता है। दम में दम धाना = घबराहट या भय का दूर होना। चित्त स्थिर होना। दम में दम रहना या होना = आसक्ति रहना। जिंदगी रहना। दम सूखना = बहुत अधिक भय के कारण चित्तकुल नुप्त होजाना। बहुत डर के कारण संतप्त तक न जेना। प्राण सूखना। भय के बारे लाब्य होना। जैसे, बन्हें देखते ही बाढ़के का दम सूख गया।

(१) वह शक्ति जिससे कोई पदार्थ अपनी आसक्ति बनाए रखता और काम देता है। जीवनीशक्ति। जैसे, (क) हस्त धाते में अथ विलकुल दम नहीं है। (ख) इस मकान में हृद्य दम तो है ही नहीं, हम इसे खेकर क्या करते।

यो०—दमदार = (१) जिसमें जीवनी शक्ति यथेष्ट है। (२) मजबूत। दृढ़।

(३) सम्पत्ति। जैसे, आपके ही दम से ये सब धाते हैं।

मुद्रा०—(किसी का) दम मनीमत होना = (किसी के) जीवित रहने के कारण कुछ न कुछ अच्छी धाते का होना रहना। गई भीती दया में भी किसी के कार्यों का ऐसा होना जिसमें उसका धार है। ठके। जैसे, इस शहर में अथ तो और कोई अच्छा पंडित नहीं रहा, पर फिर भी आपका दम मनीमत है।

(२) किसी स्वर का देर तक बच्चारण। (संगीत)

मुद्रा०—दम भरना = किसी स्वर का देर तक उच्चारण करते रहना।

यो०—दमसाज = यह आदमी जो किसी वस्तु के गाने के समय उसकी सहायता के लिये स्वर मरता रहे।

(१) पकने की वह क्रिया जिसमें किसी साध पदार्थ का बरतन में चढ़ाकर और उसका मुँह बंद करके आग पर चढ़ा देते हैं। इस प्रकार बरतन के बंदर की भाँक बाहर नहीं निकलने पाती और इस पदार्थ के पकने में भाँक से बहुत सहायता मिलती है।

क्रि० प्र०—करना।—देना।

यो०—दम-बूझ। दम-धाव। दम-पुष्ट।

मुद्रा०—दम करना = किसी चीज को बरतन में रख कर और भाँक रोकने के लिये उसका मुँह बंद करके आग पर चढ़ा देना। दम खाना = किसी पदार्थ का बंद मुँह के बरतन में मँतरी भाँक की सहायता से पकना जाना। दम देना = किसी अथवकी चीज को पूरी तरह से पकाने के लिये उसे हलकी आँच पर रख कर उसका मुँह बंद कर देना जिसमें वह अच्छी तरह से पक जाय। दम पर खाना = किसी पदार्थ के पकने में केवल इतनी कमर रह जाना कि पौड़ा दम देने से वह अच्छी तरह पक जाय। पक कर तैयारी पर खाना। पौड़ा देर भाँक बंद करके छोड़ देने की कसर रहना। दम होना = भाँक से पकना। (१०) घोष। प्रक। क्रोध। जैसे, आप तो इसी तरह खोरों का दम देते हैं।

यो०—दम भासा = छल धमट। दम ठिक्कासा = वह बात जो केवल फुलवाने के लिये कही जाय। झूठी आशा। दम पटी (१) धोला। फरेव। (२) दे० “दम दिलावा”। दमवाज = (१) धोला देनेवाला। (२) फुलवाने या वहकानेवाला।

मुद्रा०—दम देना = वहकाना। धोला देना। फुलवाना। दम में धाना = धोले में पटना। फरेव में धाना। जाज में फँसना। दम खाना = फरेव में धाना। धोले में पटना। दम में खाना = (१) वहकाना। फुलवाना। (२) धोला देना। भाँका देना।

(११) तखवार या छुरी आदि का साड़। धार।

यो०—दमदार = चोरा। तेज। पैना। धारदार।

संज्ञा पु० [दे०] दरी बुननेवालों की एक प्रकार की तिक्कीनी कमाची जिसमें सबा सबा गज की तीन बाकड़ियाँ एक साथ बँधी रहती हैं। ये कारे में पड़ी रहती हैं और उनमें जाती बँधी रहती हैं जो रैर के ऊँछे में बांध दी जाती है। बुनने के समय इसे रैर से नीचे दवाते हैं।

दमक—संज्ञा स्त्री० [हि० चमक का प्र०] चमक। चमचमाहट। छुत्ति। धामा।

संज्ञा पु० [सं०] दमनकर्ता। दवाने, रोकने या शांत करने-वाला।

दमकना—क्रि० अ० [हि० चमकना का प्र०] चमकना। चमचमाना।

दमकल—संज्ञा स्त्री० [हि० दम + कल] (१) वह दंश जिसमें एक या अधिक ऐसे नख बने हों, जिनके द्वारा कोई तरह पदार्थ इथा के दबाव से, ऊपर स्थान और किसी और मंत्रक से चँका जा सके। ऐसे दंत्रों में एक एजाना होता है जिसमें जब मयदा और कोई तरह पदार्थ मरा रहता है, और हस्तमें एक छोटा विचकारी और दूसरी ओर साधा-

रण मल लगा रहता है। सब पिचकारी चलाते हैं तब खजाने में का पदार्थ जोर से दूसरे मल के द्वारा बाहर निकलता है। पंप। (२) एक सिद्धांत पर बना हुआ यह यंत्र जिनकी सहायता से मकानों में लगी हुई आग बुझाई जाती है। पंप। (३) एक सिद्धांत पर बना हुआ यह यंत्र जिसकी सहायता से कुएँ से पानी निकालते हैं। पंप। दे० "दमकला"।

दमकला—संज्ञा पुं० [हिं० दम + कल] (१) दमकल के सिद्धांत पर बना हुआ यह यंत्र पात्र जिसमें लगी हुई पिचकारी के द्वारा बड़ी बड़ी महफिलों में लोगों पर गुलाबजल थपवा रंग आदि छिड़का जाता है। (२) जहाज में यह यंत्र जिसकी सहायता से पाल चला करते हैं। (३) दे० "दमकल"।

दमछाम—संज्ञा पुं० [फ्रा०] (१) दृढ़ता। मजबूती। (२) जीवनी-शक्ति। प्राण। (३) तलवार की धार और उसका झुकाव।

दमघोष—संज्ञा पुं० [सं०] चेदि देव के प्रसिद्ध राजा शिशुपाल के पिता का नाम जो दमयंती के भाई थे। इनका दूसरा नाम धृतध्रुवा भी है।

दमचा—संज्ञा पुं० [दे०] खेत के कोने पर बनी हुई बड़ मचान जिसपर बैठ कर खेतियार अपने खेत की रखवाली करता है।

दमचूहा—संज्ञा पुं० [दे०] एक प्रकार का सोहरे का बना हुआ गोल चूहा जिसके बीच में एक जाली या करना होता है और जिसके नीचे एक और बड़ा छिद्र होता है। इसकी जाली पर कुछ बोलके रख कर उसकी दीवार पर पकाने का धारतन रखते हैं और नीचे के छिद्र से उसमें हवा की जाती है जिससे आग सुलगती रहती है और जाली में से उसकी राख नीचे गिरती रहती है।

दमजोड़ा—संज्ञा पुं० [?] तलवार। (हिं०)

दमड़ा—संज्ञा पुं० [हिं० दाम + ढा (प्रत्य०)] दपया। धन। दाम। (यात्रारू)

क्रि० प्र०—खचंना।

मुहा०—दमड़े करना = बच कर दाम खड़ा करना।

दमड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० दमिय = धन] (१) पैसे का श्रावण भाग। विशेष—कहीं कहीं पैसे के चौथे भाग को भी दमड़ी कहते हैं।

मुहा०—दमड़ी के लीग होना = बहुत खसा होना। कौड़ियों के मोल होना।

(२) चिखचिख पकी।

दमदमा—संज्ञा पुं० [फ्रा०] वह किलेबंदी जो खड़ाई के समय घेंवों या बोरों में धूल या बाल भर कर की जाती है। नौरचा। धुस।

क्रि० प्र०—धांधना।

दमदार—वि० [फ्रा०] जिसमें जीवनी शक्ति व्यर्थ है। (२) दृढ़। मजबूत। (३) जिसमें दम या साँस अधिक समय तक रह

सके। जैसे, हल हारमोनियम की भांठी बहुत दमदार है। (४) जिसकी धार बहुत तेज हो। चोखा।

दमन—संज्ञा पुं० [सं०] (१) दवाने या रोकने की क्रिया। (२) दंड जो किसी को दमाने के लिये दिया जाता है। (३)

इंद्रियों की बंधकता रोकना। निग्रह। दम। (४) विष्णु।

(५) महादेव। शिव। (६) एक ऋषि का नाम। दमयंती इन्हीं के यहाँ रहस्य हुई थी। ४०—पटरानी से के मला ले परिजन कहु साध। आश्रम गये नरेश तप नहाँ दमन मुनिनाथ।—गुमान। (७) एक राणस का नाम। ४०—

दमन नाम निश्वर श्रति घेरा। गरुड भाषत पचन कठोरा।—

रामारचमेष। (८) दौना। (९) कुंद।

दमनक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक छुंद का नाम जिसमें तीन नगण्य, एक लघु और एक गुरु होता है। (२) दौना।

वि० दमन करनेवाला। दमन-शील।

दमनशील—वि० [सं०] जिसकी प्रकृति दमन करने की हो। दमन करनेवाला।

दमनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का शृप जिसे अग्निदमनी कहते हैं।

संज्ञा स्त्री० [सं० दमन] संशेष। क्षय। ४०—लील सती सजनीन समीप गुलाब कहु दमनी दरसावै।—गुलाब।

दमनीय—वि० [सं०] (१) दमन होने के योग्य। जो दमन किया जा सके। (२) जो दयाया जा सके। ४०—कुँघरि मनोहर विषय बद्धि कीरति श्रति कमनीय। पावनहर विरंचि जनु रचेउ म पलु दमनीय।—गुलसी।

दमपुष्ट—वि० [फ्रा०] (यह खाद्य पदार्थ) जो दम देकर पकाया गया हो।

दमबाज—वि० [फ्रा० दम + बाज] दम देनेवाला। फुसलानेवाला।

बहाना करनेवाला।

दमधाजी—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० दम + भाजी] बहानेधाजी। दम देने या फुसलाने का काम।

दमयंतिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] मन्वन्वान वृष्ट।

दमयंती—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) राजा नल की स्त्री जो विदर्भ देश के राजा भीमसेन की कन्या थी। दे० "नल"। (२) एक प्रकार का खेला। सदनवान।

दमरक—संज्ञा स्त्री० दे० "चमरख"।

दमरख—संज्ञा स्त्री० दे० "चमरख"।

दमरी—संज्ञा स्त्री० दे० "दमड़ी"।

दमसाज—संज्ञा पुं० [फ्रा०] वह चादमी जो किसी गंधे के गाने के समय उसकी सहायता के लिये केवल एयर भरता है।

दमा—संज्ञा पुं० [फ्रा०] एक प्रसिद्ध रोग जिसमें आस-बाहिनी नाली के अंतिम भाग में, जो फेफड़ों के पास होता है,

प्राहुंचन और ऐंठन के कारण ससि खेने में बहुत कष्ट होता है, काली धाती है और कफ दृढ़ कर बड़ी कठिनता से धीरे धीरे निकलता है। इस रोग के रोगी को प्रायः अत्यंत कष्ट होता है; और लोगों का विश्वास है कि यह रोग कभी अच्छा नहीं होता। इसीलिये इसके संबंध में एक कहावत धन गई है कि दमा दम के साथ जाता है। धाम। ससि।

दमाद-संज्ञा पुं० [सं० आमाद] कन्या का पति। जवार्द। जामाता। दमादम-कि० वि० [अनु०] (१) दम दम शब्द के साथ। (२) जामातार। धारधर।

दमान-संज्ञा पुं० [देण०] दामन। पाख की चादर। (लश०) दमानक-संज्ञा स्त्री [देण०] सेतों की चादर। ७०—देव भूत पितर करम लख काख प्रह मोहि पर दैरि दमानक ही दई है।—गुजली।

दमाम-संज्ञा पुं० दे० "दमामा"। दमामा-संज्ञा पुं० [फा०] नगरा। नकारा। डंका। धौंसा। दमारि-संज्ञा पुं० [सं० दामान्त] लंगल की आग। धन की धारा।

दमायति-संज्ञा स्त्री दे० "दमयंती"। ३०—राजा नखु कँह जैसे दमायति।—जायसी।

दमाह-संज्ञा पुं० [हिं० दमा] बैलें का एक रोग जिसमें वे हानि लगाते हैं।

दमी-वि० [सं० दम] दमनशील। संज्ञा स्त्री [फा०] एक प्रकार का जेदी या सफरी नैवा। दम लगाने का नैवा। वि० [फा० दम] (१) दम बगानेवाला। कश लीचने-बंछा। (२) गाँजा पीनेवाला। गैंगेड़ी। जैने, दमी धार किस के। दम लगा के खिसके। (कहा०)। वि० [हिं० दमा] जिसे दमे का रोग हो। दमे के रोगवाला।

दमुनारी-संज्ञा पुं० [?] यज्ञि। धारा।

दमैया-वि० [हिं० दमन + रेश (प्रत्य०)] दमन करनेवाला। ३०—गुजली सेहि काख कुपाख दिना दूजो कौम है दारुन दुखल दमैया।—गुजली।

दमोड़ा-संज्ञा पुं० [हिं० दाम + ओड़ा (प्रत्य०)] दाम। मूल्य। कीमत। (दशाही)

दमोदर-संज्ञा पुं० दे० "दामोदर"।

दमय-वि० [सं०] (१) दमन करने के योग्य। जो दमन किया जा सके। (२) यह बैल जो धरिया करने योग्य हो।

दर्यत-संज्ञा पुं० दे० "दर्य"।

दय-संज्ञा पुं० [सं०] दया। हृया। करुणा।

दया-संज्ञा स्त्री [सं०] (१) मन का यह दुःख पूर्ण रोग जो

दूसरे के कष्ट को देखकर हास्य होता है और वह कष्ट को दूर करने की प्रेरणा करता है। सदानुभूति का भाव। करुणा। रहम।

कि० प्र०—धामा।—करना।

यौ०—दया-रुधि।

विशेष—जिसके प्रति दया की जाती है उसके पाचक शब्द के साथ 'पर' विभक्ति लगती है जैसे, किसी पर दया धामा, किसी पर (या किसी के ऊपर) दया करना। शिष्टाचार के रूप में भी इस शब्द का व्यवहार बहुत होता है जैसे किसी ने पूछा "आप अच्छी तरह ?" उत्तर मिलता है— "आपकी दया से"।

(२) दण प्रजापति की एक कन्या जो धर्म को ब्याही गई थी।

दयाकूर्च-संज्ञा पुं० [सं०] बुद्धदेव।

दयाहृष्टि-संज्ञा स्त्री [सं०] किसी के प्रति करुणा या अनुमति का भाव। रहम या मेहरबानी की नज़र।

दयानत-संज्ञा स्त्री [सं०] सत्यनिष्ठा। ईमान।

दयानतदार-वि० [सं० दयानत + दार] ईमानदार। सधा।

दयानतदारी-संज्ञा स्त्री [सं० दयानत + दारि] ईमानदारी। सघाई।

दयाना-कि० प्र० [हिं० दया + ना (प्रत्य०)] दयालु होना। कृपालु होना। ३०—आगम कारण भूप तप मुनि सों कदो मुनाई। मुनिवर दई उपासना परम दयालु दयाइ।—गुमान।

दयानिधान-संज्ञा पुं० [सं०] दया का खजाना। वह जिसमें बहुत अधिक दया हो। बहुत दयालु पुत्र।

दयानिधि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) दया का प्रताप। वह जिसके चित्त में बहुत दया हो। बहुत दयालु पुत्र। (२) ईश्वर का एक नाम। ३०—दयानिधि सेरी गति छलित न परे।—सूर।

दयापात्र-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो दया के योग्य हो। वह जिसपर दया करना उचित हो।

दयामय-वि० [सं०] (१) दया से पूर्ण। दयालु। (२) ईश्वर का एक नाम।

दयार-संज्ञा पुं० [सं० दयार] दे० दार का पेड़।

संज्ञा पुं० [सं०] प्रदेर।

दयार्द्र-वि० [सं०] दया से भीगा हुआ। दया-पूर्ण। दयालु।

दयाल-वि० दे० "दयालु"।

संज्ञा पुं० [देण०] एक चिड़िया जो बहुत अच्छा धोत्रती है।

दयालु-वि० [सं०] जिसमें दया का भाव अधिक हो। बहुत दया करनेवाला। दयावान्।

दयालुता-संज्ञा स्त्री० [सं०] दयालु होने का भाव । दया करने की प्रवृत्ति ।

दयाधत्त-वि० [सं० दयावान् का बहुवचन] दयालुक्त । दयालु ।

दयावती-वि० स्त्री० [सं०] दया करनेवाली ।

संज्ञा स्त्री० [सं०] ऋषभ स्वर की तीन ध्रुतियों में से पहली ध्रुति ।

दयायनाश-वि० पुं० [हिं० दया + शान्त] [स्त्री० दयावती] दयायोग्य । दयापात्र । दीन । ४०—देवी देव दामय दयावने हैं जोरें हाथ, वापुसे बराक और राजा रामा रांक को ।—तुलसी ।

दयावान्-वि० [सं०] [स्त्री० दयावती] जिसके चित्त में दया हो । दयालु ।

दयावीर-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो दया करने में वीर हो । वह जो दूसरे का दुःख दूर करने के लिये प्राण तक दे सकता हो ।

विशेष—साहित्य या काव्य में वीर-रस के अंतर्गत सुदयवीर नामवीर आदि जो चार वीर गिनाए गए हैं उनमें दयावीर भी है ।

दयाशील-वि० [सं०] दयालु । दयालु ।

दयासागर-संज्ञा पुं० [सं०] जिसके चित्त में अगाध दया हो । अत्यंत दयालु मनुष्य ।

दयित-वि० [सं०] (१) प्यारा । प्रिय ।

संज्ञा पुं० [सं०] पति ।

दयिता-संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रियतमा । पत्नी । स्त्री ।

दर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) गंज । (२) गड्ढा । दरार । (३) मुका । कंदरा । (४) फाड़ने की क्रिया । विदारण । जैसे, सुरंदर । (५) दर । भय । शौक । ४०—(क) भय-पारिधि-भंदर, पर-भंदर । धारण, तारण संस्थिति दुस्तर ।—तुलसी । (ख) दर कु कइत कवि गंज को दर ईपद को नाम । दर दर ते राखीं कुंघर मोहन गिरधर रवान ।—भंडारदास । (ग) साधवत दर धालंक भय भीत सीर भी प्राप्त । दर सहचरी सङ्घ तें गई कुंघरि के पास ।—भंडारदास ।

संज्ञा पुं० [सं० दल] सेना । सभूह । दल । ४०—(क) पकटा जलु वर्षा अगुाराजा । जनु असाठु भावै दर साजा ।—जायसी । (ख) दुखन कहा जाय जहँ राजा । चढ़ा मुकें भावै दर साजा ।—जायसी ।

संज्ञा पुं० [सं०] द्वार । दरवाजा । ४०—नाया नटिन लकुटि कर लीने फोटिक नाच मचावै । दर दर खोम खागि ली खोजति नाया रथांग करावै ।—सूर ।

मुष्ठा०—दर दर मारा मारा फिना=कार्यसिद्धि वा पेट

पालने के लिये एक घर से दूसरे घर फिरना । बुद्धशामते होकर घूमना ।

संज्ञा पुं० [सं० स्थल, हिं० घन, घर । वा फा० दर] (१) जगह । स्थान । (२) वह स्थान जहाँ शुलाहे ताने की रंधियाँ गाड़ते हैं ।

संज्ञा स्त्री० (१) भाव । निर्लक्ष । जैसे, कागज की दर काज कज बहुत बढ़ गई है । (२) प्रमाणा शीक टिकाना । जैसे, इसकी बात की कोई दर नहीं । (३) कदर । प्रतिष्ठा । महत्त्व । महिमा । ४०—निर केतु सुहावन परहँ जेहि कलि पर दल घरहरे । सुराज केतु की दर हरै जादव जोधा हर हरै ।—गोपाल ।

वि० [सं०] किंचित् । मोड़ा । जरा सा ।

संज्ञा स्त्री० [सं० दाव=कहना] ईख । इष्टु । ऊल । ४०—कावन ते काज दै नीका । लथा कंद ते दर रस फीका ।—विभ्राम ।

दरकंटिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] शतावरी । सतावर नामक औषधि । दरक-वि० [सं०] डरनेवाला । डरपोक । मोह ।

संज्ञा स्त्री० [हिं० दरकना] जोर या दाव पढ़ने से पढ़ा हुआ दरार । चीर ।

दरकच-संज्ञा स्त्री० [हिं० दौरा + कच] (१) वह चोट जो धोर से रगड़ या ठोकर खाने से लगे । (२) वह चोट जो कुचल जाने से लगे ।

क्रि० प्र०—खगना ।

दरकधाना-क्रि० सं० [हिं० दर + कधाना] धोखा कुचलना । इतना कुचलना जितने में कोई वस्तु कई टुकड़े हो जाय पर पूर्ण न हो ।

दरकटी-संज्ञा स्त्री० [हिं० दर = भाव + काटना] पहले से किसी वस्तु की दर या निर्लक्ष काट देने की क्रिया । दर की मुकररी । भाव का उद्धार ।

दरकाना-क्रि० अ० [सं० दर = फाड़ना] दाव या जोर पढ़ने से फटना । चिरना । बिट्टीयाँ होना । जैसे, कपड़ा दरकाना, धाती दरकाना । ४०—क्यों धीं दारयों कौं हियो दरकत नहिं नैदकाळ ।—विहारी ।

दरकाना-संज्ञा पुं० [हिं० दरकाना] (१) शिगाफ । दरार । फटने का चिह्न । (२) वह चोट जिससे कोई वस्तु दरक या फट जाय । ४०—काली विधोगिनि दाड़िमन, फटक अंग निदान । कुलत नथिन दरको फगो झुकमुल किंशुकभान ।—गुमान ।

दरकाना-क्रि० सं० [हिं० दरकाना] फाड़ना । ४०—ठीठ खैगर कन्हाई मेरी जागी दरकाई रे । (गीत)

क्रि० अ० फटना । ४०—मुलकित अंग अंगिया दरकानी हर धामेंद अंचल फहरात ।—सूर ।

दरकार-वि० [फा०] धावपथक । अपेक्षित । लक्ष्मी ।
दरकिनार-कि० वि० [फा०] झलगा । झलहदा । एक घोर ।
दूर ।

मुहा०—.....तो दर किशार = ...कुछ चर्चा नहीं । दूर की बात है । बहुत बड़ी बात है । जैसे, उसे कुछ देना तो दर किशार में सबसे बात भी नहीं करना चाहता ।

दरफूच-कि० वि० [फा०] बराबर मात्रा करता हुआ । मंजिल दरमंजिल । ४०—(क) रामचंद्रजी की चतुःराज्यप्री विभीषण्य की, रावण की मीठु दरफूच चलि चारै है ।—हेराय । (ख) वृत्त सहस्र यात्रे दाराज सात्रे चरु धरात्रो भंग ले । दरफूच आवत है चजेर मन माहँ जंग उमंग लै ।—नृदम ।

दरखस्त-संज्ञा पुं० दे० "दरख्त" ।
दरखास्त-संज्ञा स्त्री० [फा० दरखस्त] (१) निवेदन । किसी बात के लिये प्रार्थना ।

कि० प्र०—करना ।
(२) प्रार्थनापत्र । निवेदनपत्र । यह लेख जिसमें किसी बात के लिये विनती की गई हो ।

मुहा०—दरखास्त गुजरना = दे० "दरखास्त पडना" । दरखास्त देना = प्रार्थनापत्र उपरिष्ठत करना । कोई-ऐसा श्रेय भेजना या सामने रखना जिसमें किसी बात के लिये प्रार्थना की गई हो । दरखास्त पडना = प्रार्थनापत्र उपरिष्ठत किया जाना । किसी के ऊपर दरखास्त पडना = किसी के विरुद्ध राजा या हाकिम के यहाँ आवेदनपत्र देना ।

दरख्त-संज्ञा पुं० [फा०] पेड़ । वृक्ष ।
दरगाह-संज्ञा स्त्री० [फा०] (१) चौखट । देहरी । (२) दरबार । कचहरी । ४०—चड़ी मदन दरगाह में तेरे नाम कमान ।—रसनिधि । (३) किसी सिद्ध पुरुष का समाधिस्थान । मकबरा । मजार । जैसे, पीर की दरगाह । (४) मठ । मंदिर । तीर्थस्थान ।

दरगुजर-वि० [फा०] (१) सजग । जाज़ । बंचित ।
कि० प्र०—होना ।

मुहा०—दरगुजर करना = टाडना । दृष्टाना ।
(२) मुद्राफ । चमा-मात ।

मुहा०—दरगुजर करना = जाने देना । छोड़ देना । ठंड आदि न देना । मुद्राफ करना ।

दरगुजरना-कि० आ० [फा०] (१) छोड़ना । त्यागना । धार धार । (२) जाने देना । दूँध आदि न देना । चमा करना । मुद्राफ करना ।

दरज-संज्ञा स्त्री० [सं० दर = दरार] दरार । शिगाफ । दर्राज । यह खाली जगह जो फटने या दरकने से बड़ जाय ।
धौ०—दरअर्थदी = दीवार की दरारों को चूना गारा भरकर बंद करने का काम ।

दरजन-संज्ञा पुं० दे० "दर्जन" ।
दरजा-संज्ञा पुं० दे० "दर्जा" ।

संज्ञा पुं० [हिं० दरजा] लोहा ढालने का एक चौड़ा ।

दरजिन-संज्ञा स्त्री० दे० "दर्जिन" ।

दरजी-संज्ञा पुं० दे० "दर्जी" ।

दरणा-संज्ञा पुं० [सं०] (१) दखन वा पीसन की क्रिया ।
(२) ध्वंस । विनाश ।

दरद-संज्ञा पुं० [फा० दर्द] (१) पीड़ा । व्यथा । कष्ट । ४०—
दरद दवा दोनों रहै पीतम पास तयार ।—रसनिधि ।
(२) दया । करुणा । तर्प । सहायुभूति । ४०—माई नेकहु न दरद करति हिलकिन हरि रोवै ।—सूर ।

विशेष-दे० "दर्द" ।
वि० [सं०] भयदायक । भयंकर ।
संज्ञा पुं० (१) कारमीर और हिंदूकुश पर्वत के पीच के प्रदेश का प्राचीन नाम ।

विशेष—शुद्धलहिता में इस देश की स्थिति ईशान कोण में बतलाई गई है पर प्रायः कब जो दरद नाम की पहाड़ी जाति है वह लाराह, गिलगित, चित्राल, नागर हुंजा आदि स्थानों में ही पाई जाती है । प्राचीन युनानी और रोमन लेखकों के अनुसार भी इस जाति का निवास-स्थान हिंदू-कुश पर्वत के पास पास ही निर्दिष्ट होता है ।
(२) एक म्लेच्छ जाति जिसका बहोस मनुस्मृति, हरिवंश आदि में है ।

विशेष—मनुस्मृति में लिखा है कि पौंड्रक, छोड़, द्राविड़, कंबोज, यधन, शक, पारद, पह्लव, चीन, किरात, वंद और इस पहले क्षत्रिय थे, पीछे संस्कार-विहीन हो जाने और लोहायों का दर्शन न पाने से शुद्रत्व को प्राप्त हो गए । आज कल जो दरद नाम की जाति है वह काश्मीर के पास पास खद्दाख से लेकर नागर-हुंजा और चित्राल तक पाई जाती है । इस जाति के लोग अधिकांश मुसलमान हो गए हैं । पर इनकी भाषा और रीति नीति की ओर ध्यान देने से प्रकट होता है कि ये धार्यकुलोत्पन्न हैं । यद्यपि ये लिखने पढ़ने में मुसलमान हो जाने के कारण काश्मीर क्षत्रियों का व्यवहार करते हैं पर इनकी भाषा कारमीरी से बहुत मिलती जुलती है ।
(३) ईशुर । सिंगरफ । हिंदुज ।

दर दर-कि० वि० [फा० दर दर] द्वार द्वार । दरवाजे दरवाजे । स्थान स्थान पर । जगह जगह । ४०—माया नटिन लड्डिटि दर खीण्डे कोटिक नाच नचाये । दर दर लोभ लागि लै ठोले नाना स्वांग कराये ।—सूर ।

† वि० दे० "दरदरा" ।

दरदरा-वि० [सं० दरदर = दलना] [स्त्री० दरदरी] जिसके कथ

स्यूल हो। जिसके रथे महीन न हो, मोटे हों। जिसके कण टोखने से मालूम हों। जो रूप शारीक न विसा हो। जैसे, दरदरा घाटा, दरदरा पूर्ण।

दरदराना—कि० सं० [सं० दरण] (१) कितनी वस्तु को इस प्रकार हलके हाथ से पीसना या रागना कि उसके मोटे मोटे रथे या डुकड़े हो जाय। बहुत महीन न पीसना। घोड़ा पीसना। जैसे, मिर्चे घोड़ा दरदरा कर ले थाओ, बहुत महीन पीसने का काम नहीं। † (२) जोर से दौत काटना।

दरदरी—वि० शो० [हिं० दरदा] मोटे रथे की। जिसके रथे मोटे हों।

* संशा शो० [सं० धरीशो] पृथ्वी। जमीन। धरती। (हिं०)

दरदर्थत—वि० [फा० दर + त (अर्थ)] (१) छुपाय। दबाय। सहायभूति रखनेवाला। व०—सम्जन दो या बात को बरि देखो निय गौर। योजनि चित्तयनि चखनि यह दरदर्थत की धौर।—रसनिधि। (२) दुग्गी। जिसके पीछा हो। पीड़ित। व०—छेव न मजनु गोर विग कोऊ लो लो नाम। दरदर्थत को गेक तो छेन देहु विधाम।—रसनिधि।

दरदर्थद०—वि० [फा० दरदर्थ] (१) व्यथित। पीड़ित। जिसके बर्दे हो। (२) दुस्ती। स्थिर।

दरदालान—संशा पु० [फा०] दालान के बाहर का दालान।

दरद—संशा पु० दे० "दरद" वा "दुर्द"।

दरना—कि० सं० [सं० दरण] (१) दखना। पूर्ण करना। पीसना। (२) ध्वस्त करना। नष्ट करना।

दरप—संशा पु० दे० "दुर्प"।

दरपक—संशा पु० दे० "दुर्पक"।

दरपन—संशा पु० [सं० दरपण] [री० अण० दरपनी] मुँह देखने का रीशा। छाहना। सुझा। धारसी।

दरपना—कि० शो० [सं० दरपण] (१) ताप में धाना। गोचर करना। (२) गर्व या चढ़कार करना। धर्मद करना।

दरपनी—संशा शी० [हिं० दरपन] मुँह देखने का छोटा रीशा। छोटा छाहना।

दरपरदा—कि० वि० [फा०] चुपके चुपके। छाड़ में। छिपाकर।

दरपेदा—कि० वि० [फा०] धारो। सामने।

मुहा०—दरपेश होना = उखित होना। सामने आना। जैसे, मामला दरपेश होना।

दरप—संशा पु० [सं० दरपण] (१) घन। दौलत। (२) धातु। (३) मोटी किनारदार चादर।

दरधरा—वि० [सं० दरध] (१) दरदरा (२) ऐसा रास्ता जिसमें ठोकरें पड़े हों। (कदारों की चोली)

दरधराना—कि० सं० [हिं० दरध] (१) दरदरा करना। घेरा पीसना। (२) किसी को इस प्रकार बरा देना कि वह किसी

बात का खंडन न कर सके। धररा देना। (३) दधाना। दबाय डालना।

दरधरारा—संशा पु० [देग०] एक प्रकार का मय जो कुछ वन-स्थलियों को सड़ा कर बनाया जाता है।

दरधा—संशा पु० [फा० दर] (१) कच्चीयों गुरगियों आदि के रखने के लिये काठ या पानेदार सड़क जिसके एक एक छाने में एक एक पत्थी रखी जाती है। (२) वीथी, पेड़ आदि में यह लोकरा या पोट्टर जिसमें कोई पत्थी या जीव रहता है।

दरधान—संशा पु० [फा०, गि० सं० दरधान] टपोहीदार। द्वारपाल। दरधानी—संशा शी० [फा०] दरधान का काम। द्वारपाल का कार्य।

दरधार—संशा पु० [फा०] [नि० दरधारी] (१) यह स्थान चर्ह रामा या सदाय सुमाहबों के साथ चैते हैं। (२) राम-सत्ता। कचहरी। व०—करि मज्जन सरजू जल गए मूप दरधार।—तुलसी।

धा०—दरधारदारी। दरवार धाम। दरवार खास।

मुहा०—दरधार करना = राजसभा में बैठना। दरवार खुलना = दरवार में जाने की आज्ञा मिलना। दरवार बंद होना = दरवार में जाने की रोक होना। दरवार बांधना = पूत बांधना। शिवाय मुकरर करना। मुँह भरना। दरवार खलना = राज-सभा के सभासदों का इफ्ता होना।

(३) महाराज। राजा। (रजवाड़ों में)। (४) अतमूल में निरखीं का मंदिर जिसमें ग्रंथ साहब रखा हुआ है। (५) दरवाजा। द्वार। व०—तप भोजि बछो दरधार-विजाली। दिग्द्वार लखी जमुनातरवासी।—छेराव।

दरधारदारी—संशा शी० [फा०] (१) दरवार में हाजीरी। राजसभा में उपस्थिति। (२) किसी के यहाँ बार बार जाकर बैठने की सुशामद करने का काम।

कि० प्र०—करना।

दरधारधिलाली—संशा पु० [फा० दरधार + सं० धिलाली] द्वार-पाल। दरधान। व०—तप भोजि बछो दरधार-विजाली। दिग्द्वार लखी जमुनातरवासी।—छेराव।

दरधारी—संशा पु० [फा०] राजसभा का सभासद। दरधार में बैठनेवाला आदमी।

वि० दरधार का। दरवार के मोख। दरवार से संबंध रखने-वाला। जैसे, दरधारी पोखार।

दरधारी कान्दुड़ा—संशा पु० [फा० दरधारी + हिं० कान्दुड़ा] एक रंग जिसमें छद्म धारण के धार्मिक बाकी सब मोख स्तर लागते हैं।

दरभ—संशा पु० दे० "दुर्भ"।

संशा पु० [?] बंदर। व०—कपि-शाखायुग

बलीमुख कीय दरम लंगूर। धानर मकँट प्रवंग हरि तिन
कहँ भउ मन्-भूर।—नंददास।

दरमन-संज्ञा पुं० [फा०] इलाज। औपच।

धौ० दवादरमन = उपचार।

दरमा-संज्ञा स्त्री० [दे०] बस की वह चटाई जो बंगाल में
औपचारिकों की धीवार बनाने में काम आती है।

† संज्ञा पुं० [सं० दक्षिण] अन्नार।

दरमाहा-संज्ञा पुं० [फा०] मासिक वेतन।

दरमियात-संज्ञा पुं० [फा०] मध्य। बीच।

कि० वि० बीच में। मध्य में।

दरमियाती-वि० [फा०] बीच का। मध्य का।

संज्ञा पुं० [फा०] (१) मध्यस्थ। बीच में पड़नेवाला पक्षिक।

दो आदमियों के बीच के झगड़े का निवृत्त करनेवाला
मनुष्य। (२) दवाज।

दररना-कि० सं० दे० "दरना"।

कि० सं० दे० "दरैरना"।

दरयाजा-संज्ञा पुं० [फा०] (१) द्वार। मुहाना।

मुहाना—दरवाजे की मिट्टी खोद डालना या खे डालना = बार
बार दरवाजे पर आना। दरवाजे पर हतनी बार आना आना
कि उसकी मिट्टी खुद जाय।

(२) किराड़। कपाट।

कि० प्र०—खटखटाना।—खोजना।—थँद करना।—
भेड़ना।

दरयी-संज्ञा स्त्री० [सं० दयी] (१) सर्प का फल।

यौ०—दरयीकर = सर्प।

(२) करतुल। पीना। (३) सँझसी। दक्षप्रनाह।
दक्षना।

दरयेया-संज्ञा पुं० [फा०] [दरयेयी] फकीर। साधु।

दरघा-संज्ञा पुं० दे० "दरौ"।

दरघान-संज्ञा पुं० दे० "दरान"।

दरशाना-कि० अ०, कि० सं० दे० "दरसन"।

दरस-संज्ञा पुं० [सं० दर] (१) देखा देली। दरान। दीदार।

४०—दरस परस मञ्जन अरु पाना।—तुलसी। (२)
भेंट। मुवाकात। (३) रूप। छवि। सुंदरता।

दरसन-संज्ञा पुं० दे० "दरान"।

दरसना—कि० अ० [सं० दर्शन] दिखाई पड़ना। देख पड़ना।

देखने में आना। दृष्टिगोचर होना। ४०—श्रीनाराद की
वृत्ते मति सी। लोपे समता अपकीरति सी।—केशव।

कि० सं० [सं० दर्शन] देखना। खसना। ४०—(क)
यन राम शिखा दरसी जगहों।—केशव। (ख) नर अंध
भये दरसे तर मोरे।—केशव।

दरसनी हुदी-संज्ञा स्त्री० [सं० दर्शन] (१) वह हुंदी जिसके

भुगतान की मिति को दस दिन या बससे कम दिन बाकी
हो। (इस प्रकार की हुंदी धानार में दरसनी हुंदी के नाम
से विकरी है)। (२) कोई ऐसी वस्तु जिसे दिखाते ही
कोई वस्तु प्राप्त हो जाय।

दरसनीय—वि० दे० "दर्शनीय"।

दरसाना-कि० सं० [सं० दर्शन] (१) दिखलाना। दृष्टिगोचर
कराना। ४०—चकित जनि जननी जिय रघुपति वपु

विराट दरसायो।—रघुराज। (२) प्रकट करना। स्पष्ट
करना। समझाना। ४०—रामायन भागवत सुनाई। दीन्हों
भक्ति राह दरसाई।—रघुराज।

† कि० अ० दिखाई पड़ना। देखने में आना। दृष्टिगोचर
होना। ४०—(क) छाड़ी में यह वदन में स्वैल बार दर-
साई।—रघुराज। (ख) प्रमुदित कहि पररपर थाता।
सखि तव अथर रपाम दरसाता।—रघुराज।

दरसावना-कि० सं० दे० "दरसाना"।

दरती-संज्ञा स्त्री० [सं० दती] (१) हँसिया। घास या फसल
काटने का औजार।

मुहाना—दरती पड़ना = कटौती पड़ना। कटाई प्रारंभ होना।

(२) दे० "दरैती"।

दरार्ही-संज्ञा स्त्री० [हि०] (१) दखने की मजूदारी। (२) दखने
का काम।

दरारज-वि० [फा०] बढ़ा। भारी। लंबा। दीर्घ।

कि० वि० [फा०] बहुत। अधिक

संज्ञा स्त्री० [हि० दरार] दरज। शिगाफ। दरार।

संज्ञा स्त्री० [सं० दार] मेड़ में लगा हुआ संकनुमा
खाना जिसमें कुछ वस्तु रक्ष कर ताजा लगा सकते हैं।

दरार-संज्ञा स्त्री० [सं० दर] वह छाती जगह जो किसी चीज के
फटने पर लकीर के रूप में पड़ जाती है। शिगाफ। ४०—

(क) अथहुँ अचनि विहरति दरार मिस से। अथसर सुधि
कीन्हें।—तुलसी। (ख) सुमिर सनेह सुमिप्रा सुत को
हरकि दरार न थाई।—तुलसी।

दरारना-कि० अ० [हि० दरार + ना (मूल०)] फटना। विदीर्घ
होना। ४०—धानहिँ भेरि नफीर अपारा। सुनि कादर हर
जाहिँ दरारा।—तुलसी।

दरारा-संज्ञा पुं० [हि० दरार] दरार। घका। रगड़ा। ४०—
दख के दरारे हुते कमठ करारे छूटे केशा कंसे पाल विहारने
फन सेत के।—भूपण।

दरिदा-संज्ञा पुं० [फा०] फाड़ खानेवाला जंतु। मांसभक्षक घन-
जंतु। किले, शेर, कुत्ता, आदि।

दरिद-संज्ञा पुं० [सं० दरिद्र] (१) कंगाली। निधनता।
गरीबी। (२) कंगाल। निधन।

दरिदर—वि०, संज्ञा पु० दे० "दरिद्र" ।

दरिद्र—वि० [सं०] [श्री० दरिद्र] जिसके पास निर्वाह के लिये पयेष्ट धन न हो। निर्धन। कंगाल ।

संज्ञा पु० निर्धन मनुष्य। कंगाल आदमी ।

दरिद्रना—छाया श्री० [सं०] कंगाली। निर्धनता ।

दरिद्रिणी—वि०, दे० "दरिद्र" ।

दरिया—संज्ञा पु० [फ्रा०] (१) नदी । (२) समुद्र । सिंधु ।

उ०—तजि खास भो दास रघुपति के दरियाय के दानि दया दरिया ।—मुलसी ।

धौ०—दरियादिल = उदार ।

संज्ञा पु० [हिं० दरना] दलिया ।

दरियाई—वि० [फ्रा०] (१) नदी संबंधी । (२) नदी में रहनेवाला । जैसे, दरियाई घोड़ा । (३) नदी के निकट का ।

(४) समुद्र संबंधी ।

शुजा छी० पतंग को दूर ले जाकर दया में छोड़ने की क्रिया । मोली । छुड़ने या ।

क्रि० प्र०—देना ।

संज्ञा छी० [फ्रा० दारिद्र] एक प्रकार की रेशमी पतली साटन । उ०—तुम्हारी कविता ऐसी है जैसे.....दरियाई की श्रमिया में मूँज की बलिया ।—हरिचंद्र ।

दरियाई घोड़ा—संज्ञा पु० [फ्रा० दरियाई + हिं० घोड़ा] मोटे की तरह का मोटी खाल का एक जानवर जो अफ्रिका में नदियों के किनारे की दलदलों और झाड़ियों में रहता है। इसके पीरे में खुर के धाकार की चार चार रेंगलियाँ होती हैं। मुँह के भीतर दाढ़ें और कटीले दाँत होते हैं। शरीर नाटा, मोटा, भारी और घेड़गा होता है। चमड़े पर खाल नहीं होते। नाक फूली और हमरी हुड़े तथा पूँछ और खालें छोटी होती हैं। यह जानवर पौधों की जड़ों और कल्लों को खाकर रहता है। दिन भर तो यह झाड़ियों और दलदलों में छिपा रहता है, रात को खाने पीने की खोज में निकलता है और छोटी खादि को हानि पहुँचाता है। पर यह नदी से बहुत दूर नहीं जाता और जरा सा खटका या भयहोते ही नदी में जाकर गोता मन लेता है। पर देर तक पानी में नहीं रह सकता, सँस लेने के लिये तिर निकलता है और फिर हुबता है। यह निजैन स्थानों में गोल पाँच कर रहता है।

कमी कमी लोग इसका शिकार गड्डे खोद कर करते हैं। रात को जब यह अँध गड्डों में गिर कर फँस जाता है तब लोग इसे मार डालते हैं। इसके चमड़े से एक प्रकार का लचीला और मजबूत चायुक बनता है जिसे करबस कहते हैं। मिस देश में इस चायुक का प्रचार है। यहाँ की प्रजा इसकी मार से बहुत डरती है। पहले मील नदी के किनारे दरियाई घोड़े बहुत मिलने थे, पर अद्य शिकार होने के कारण कुछ कम हो चले हैं ।

दरियाई नारियल—संज्ञा पु० [फ्रा० दरियाई + हिं० नारियल] एक प्रकार का नारियल जो अफ्रिका, अमेरिका आदि में समुद्र के किनारे किनारे होता है। इसकी गिरी और झिलका सूखने पर पत्थर की तरह कड़ा हो जात है। इसकी गिरी दवा के काम में आती है। खोपड़े का धारा बनता है जिसे संयासी या फकीर अपने पास रखते हैं ।

दरियादासी—संज्ञा पु० निगूँया बपासक साधुओं का एक संप्रदाय जिसे दरिया साहब नामक एक व्यक्ति ने चलाया था। कहते हैं कि इस संप्रदाय की लोग चापे हिंदू चापे मुसलमान होते हैं ।

दरियादिल—वि० [फ्रा०] [श्री० दरियादिली] उदार । दानी । फूँयाज ।

दरियादिली—संज्ञा छी० [फ्रा०] उदारता ।

दरियाफू—वि० [फ्रा०] ज्ञात। मालूम। जिसका पता लगा हो ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

दरियाधरामद—संज्ञा पु० दे० "दरियाधरार" ।

दरियाधरार—संज्ञा पु० [फ्रा०] वह भूमि जो किसी नदी की धारा हट जाने से निकल आती है और जिसमें खेती होती है ।

दरियाबुर्द—संज्ञा पु० [फ्रा०] वह भूमि जिसे कोई नदी काट कर खराब कर दे जिसमें कि वह खेती के योग्य न रहे ।

दरियाव—संज्ञा पु० (१) दे० "दरिया" । उ०—तन समुद्र मन लहर है नैन कहर दरियाय। येसर शुजा सिकंदरी कहत न आव, न आव ॥ (मचलित) । (२) समुद्र । सिंधु । उ०—पका मतो करिऊँ मलिच्छ मनसय छेकि मुका ही मिस उतरत दरियाव है ।—भूपय ।

दरी—संज्ञा छी० [सं०] (१) गुफा । खोह । (२) पहाड़ के बीच पड़ खड्ड या नीचा स्थान जहाँ कोई नदी बहती या गिरती हो ।

संज्ञा छी० [सं० रत, रशी = फैलाने की वस्तु] मोटे सूते का गुना हुआ मोटे दल का विद्युतान । शतरंजी ।

वि० [सं० दरिद्र] (१) फाड़नेवाला । विभीषण करनेवाला । (२) धनेवाला । डरोक ।

दरीखाना—संज्ञा पु० [फ्रा० दर + खाना] वह घर जिसमें बहुत से द्वार हो। बारहदरी । उ०—दर दर देखे दरीखानन में दारि दारि दुरि दुरि दामिनी सी दमकि दमकि उठै ।—पद्मनाकर ।

दरीचा—संज्ञा पु० [फ्रा०] [श्री० दरीची] (१) सिद्धकी क्रोला । (२) छोटा द्वार । चौर दरवाजा । (३) सिद्धकी के पास बैठने की जगह ।

दरीची—संज्ञा छी० [फ्रा० दरीचा] (१) क्रोला । सिद्धकी । (२) सिद्धकी के पास बैठने की जगह । उ०—(क) मूँदि दरीचिम है परदा सिद्धीन क्रोलाखन रेकि छुपाये ।—

गुमान। (२) जैसेही मरीचिका दरीचिन के देवे ही में छुपा की छुपीली छुपि छुहरति ततकाल।—द्विजदेव।

दरीवा-संज्ञा पुं० [१] (१) पान का पात्र। पान की सटी। वह जगह जहाँ बहुत से नौबोली घेबने के लिये पान लेकर बैठते हैं। (२) मात्र।

दरीभृत-संज्ञा पुं० [सं०] पर्वत। पहाड़।

दरीमुख-संज्ञा पुं० [सं०] (१) गुफा का मुँह। (२) राम की सेना का एक शंकर।

दरेंती-संज्ञा स्त्री० [सं० दर + तं] अनाज दलने का धोरा यंत्र। चक्की।

दरेंक-संज्ञा पुं० [सं० ट्रेक] बकाइन का वृक्ष।

दरेंग-संज्ञा पुं० [सं० दरेंग] कमी। कसर। कोरकसर। उ०—दाँ मैं इस काम के करने में दरेंग न करूँगा।

दरेंरना-क्रि० सं० [सं० दरेंग] (१) रगड़ना। पीसना। (२) रगड़ते हुए धक्का देना।

दरेंरा-संज्ञा पुं० [सं० दरेंग] (१) रगड़ा। धक्का। उ०—तापर सहि न जाय. कदयानिधि मन के हुसद दरेंरा। सुवली। (२) मेंह का फाला। (३) बहाव का ज़ोर। तोड़ा।

दरेंस-संज्ञा स्त्री० [सं० देस] एक प्रकार की छीट। फूलदार घुषा हुआ एक महीन कपड़ा।

वि० [सं० देस] तैयार। बना बनाया। सजा सजाया।

दरेंसो-संज्ञा स्त्री० [सं० देस] दुरस्ती। तैयारी। सरमत्त।

दरेंयार्-संज्ञा पुं० [सं० दरेंग] (१) दलनेवाला। जो दले। (२) घातक। विनाशक। उ०—दरेंगारथ को मंदन दुःख दरेंया।

दरेंग-संज्ञा पुं० [सं०] मूठ। धसल।

धै०—दरेंगहलफ़ी।

दरेंगहलफ़ी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सच बोझने की हसम खाहर भी मूठ बोझना। (२) मूठो गवादी देने का जुर्म।

दरेंगा-संज्ञा पुं० दे० “दरेंगा”।

दरेंकार-क्रि० वि० दे० “दरेंकार”।

दरेंगाह-संज्ञा पुं० दे० “दरेंगाह”।

दरेंज-संज्ञा स्त्री० दे० “दरेंज”।

वि० [सं०] बिखा हुआ। कागस पर चढ़ा हुआ।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

दरेंज-संज्ञा पुं० [सं० दरेंज] यारद, का समूह। इकट्ठी यारद वस्तुएँ।

दरेंज-संज्ञा पुं० [सं०] (१) ऊँचाई निचाई के क्रम के विचार से निरिपथ स्थान। श्रेणी। कोटि। धरें। जैसे, वह श्रवण दर्जे का पात्री है। (२) पारों के क्रम में ऊँचा नीचा स्थान। जैसे, तुम किस दर्जे में पढ़ते हो।

मुहा०—दर्जा उतारना=ऊँचे दर्जे से नीचे दर्जे में कर देना।

दर्जा चढ़ना=नीचे दर्जे से ऊँचे दर्जे में जाना। दर्जा चढ़ाना=नीचे दर्जे से ऊँचे दर्जे में करना।

(३) पद। शोहदा।

क्रि० प्र०—घराना।—घड़ाना।

(४) किली वस्तु का विभाग जो ऊपर नीचे के क्रम से हो। खंड। जैसे, आठमारी के दर्जे। मकान के दर्जे।

क्रि० वि० गुणित। गुना। जैसे, यह चीज़ इससे हजार दर्जे अच्छी है।

दर्जिन-संज्ञा स्त्री० [सं० दर्जा + इन (प्रत्य०)] (१) दर्जा जाति की स्त्री। (२) दर्जा की स्त्री।

दर्जा-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कपड़ा सीनेवाला। यह जो कपड़े सीने का व्यवसाय करे। (२) कपड़ा सीनेवाली जाति का पुरुष।

मुहा०—दर्जा की सुई=छर काम का आदमी। ऐसा आदमी जो कई प्रकार के काम कर सके, या कई बातों में योग दे सके।

दर्द-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पीड़ा। व्यथा।

क्रि० प्र०—होना।

मुहा०—दर्द उठना=दर्द उठान होना। (किसी शंका का) दर्द करना = (किसी शंका का) पीड़ित या व्यथित होना।

दर्द खाना = कष्ट सहना। पीड़ा सहना। जैसे, उसने क्या दर्द खा कर नहीं बना ? दर्द खगना = पीड़ा आरंभ होना।

(२) दुःख। तकलीफ। जैसे, दूसरे का दर्द समझना।

मुहा०—दर्द खाना=तकलीफ मानना होना। जैसे, रुपया निकालते दर्द खाता है।

(३) सहायुग्मति। कष्ट। दया। तसं। रहम।

क्रि० प्र०—खाना।—लगना।

मुहा०—दर्द खाना=तरस खाना। दया करना।

(४) हानि का दुःख। खो जाने या हाथ से निकल जाने का कष्ट। जैसे, उसे पैसे का दर्द नहीं।

दर्दमंद-वि० [सं०] (१) जिसे दर्द हो। पीड़ित। दुखी। (२) जो दूसरे का दर्द समझे। जिसे सहायुग्मति हो। दयावान्।

दर्दो-वि० [सं० दर्द] (१) दुखी। पीड़ित। (२) जो दूसरे का दर्द समझे। दयावान्। जैसे, वेददर्द।

दर्दुर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मेढक।

यो०—बहु रोदा = यमुना नदी।

(२) पादल। (४) शत्रु। धपक। (५) परिधमी घाट पर्वत का एक भाग। मलय पर्वत से लगा हुआ एक पर्वत। (६) उक्त पर्वत के निकट का देश। प्राचीन काल का एक याज्ञ जिसपर चमड़ा मड़ा होता था।

दर्दुरच्छदा-संज्ञा स्त्री० [सं०] माद्री वृष्टी।

दर्दुर-संज्ञा पुं० [सं०] शब्द नामक रोग।

दर्प-संज्ञा पुं० [सं०] (१) धर्मदंड। बर्हकार। अभिमान। गर्व। ताव। उ०—कर्म पर धर्म गुणम दवन बना-रथन गुण भवन-

हर—पुत्रसी । (२) मान । अहंकार के लिए किसी के प्रति कोप । (३) बहंदाता । अथसङ्कपन । (४) दयाव । धातुक । रोष । (५) कस्तूरी ।

दर्पक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) दर्प करनेवाला प्यक्ति । (२) कामदेव । मनेमान ।

दर्पक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) आदना । आरसी । सुँह देखने का रीश । यह काँच जो प्रतिबिम्ब के द्वारा सुँह देखने के लिये सामने रखा जाता है । (२) ताल के साथ मुख्य मर्दों में से एक भेद । (३) चपु । अँख । (४) सेदी-पन । बहीपन । इमारने का कार्य । उस्तेजना ।

दर्पन—संज्ञा पुं० दे० “दर्पण” ।

दर्पित—वि० [सं०] गवित । अहंकार से भरा हुआ ।

दर्पी—वि० [सं० दर्पित्] धमंडी । अहंकारी ।

दर्ष*—संज्ञा पुं० [सं० द्रव्य] (१) द्रव्य । घन । (२) धातु (सोना चाँदी इत्यादि ।)

दर्वान—संज्ञा पुं० दे० “दरवान” ।

दर्वार—संज्ञा पुं० दे० “दरवार” ।

दर्वारी—संज्ञा पुं० दे० “दरवाही” ।

दर्भ—संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार का कुश । डाम । डामुस । (२) कुश । (३) कुशासन । ३०—अस कहि खवप्यसिंधु तट जाई । यैठे कपि सच दर्भ बसाई । —सुलसी ।

दर्भकेतु—संज्ञा पुं० [सं०] कुशाध्वज, राजा जनक के माई ।

दर्भट—संज्ञा पुं० [सं०] गुप्त वृक्ष । भीतरी केठरी ।

दर्भपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] फस ।

दर्भपुष्प—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का साँप ।

दर्भासन—संज्ञा पुं० [सं०] कुशासन । कुश का पना हुआ बिछा-पन ।

दर्भाह्वय—संज्ञा पुं० [सं०] मूँज ।

दर्भि—संज्ञा पुं० [सं०] एक ऋषि का नाम ।

विशेष—महाभारत के अनुसार इन्होंने ऋषि ब्राह्मणों के स्वप्नहार के लिये अर्द्धकील नामक एक तीर्थ स्थापित किया था ।

दर्भियान—संज्ञा पुं० दे० “दरमियान” ।

दर्भियानी—वि०, संज्ञा पुं० दे० “दरमियानी” ।

दर्भ—संज्ञा पुं० [फा०] पहाड़ी रास्ता । यह सँकरा मार्ग जो पहाड़ों के बीच से होकर जाता हो । घाटी ।

संज्ञा पुं० [सं० दरना] (१) मोटा चाटा । (२) फँकरीबी मिट्टी जो सड़कों या बगीचों की रवियों पर डाली जाती है । (३) दरार । गिराफ । दरज ।

दर्भज्ञ—संज्ञा पुं० [फा० दरज = देवा] लकड़ी का एक बीजार जिससे लकड़ी सीपी की जाती है ।

दर्भाना—किं० अ० [अनु० दृढ़ दृढ़, धृष्ट धृष्ट] धड़पड़ाना । बेधड़क चला जाना । बिना रुकावट या धर के चला जाना ।

विशेष—इस क्रिया के वहाँ रूपों का प्रयोग होता है जिनसे किं० वि० का भाव प्रकट होता है, जैसे, दर्भ कर = धड़पड़कर । बेधड़क । दर्भता हुआ = धड़पड़ता हुआ । बेधड़क ।

३०—बह दर्भता हुआ दरपार में जा पहुँचा । † दर्भाना = धड़पड़ाना हुआ । बेधड़क । ३०—द्वारपालों की यात सुनी अनसुनी कर हरि सप्र समेत दर्भने वहाँ चले गये, अर्ध तीन साढ़ लंबा अति मोटा भारी महादेव का धनुष धारा था । —लखलू ।

दर्भ—संज्ञा पुं० [सं०] (१) हिंसा करनेवाला मनुष्य । (२) राक्षस । (३) एक जाति जिसका नाम दारद, किरात आदि के साथ महाभारत में आया है । इस जाति का निवासस्थान पंजाब के वरार का प्रदेश था । (४) वह देव जहाँ एक जाति बसती थी ।

दर्भरीक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) हँद । (२) वायु । (३) एक प्रकार का धाजा ।

दर्वा—संज्ञा स्त्री० [सं०] शरीर की पेशी का नाम ।

दर्भिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) अँख में लगाने का वह काजल जो धी से भरे दूध में बची जलाकर जमाया या पारा जाता है । (२) यनगोभी । गोबिया ।

दर्वा—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कसड़ी । चमचा । चौवा । (२) साँप का फन ।

धा०—दर्वाँकर ।

दर्वाँकर—संज्ञा पुं० [सं०] फनवाला साँप ।

दर्श—संज्ञा पुं० [सं०] (१) दर्शन । (२) सूर्य और चंद्रमा का संगम-काल । अमावास्या तिथि । (३) द्वितीया तिथि ।

शै०—दर्शपति ।

(३) वह यज्ञ या कृत्य जो अमावास्या के दिन किया जाय ।

शै०—दर्शपौर्णमास ।

दर्शक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) जो देखे । दर्शन करनेवाला । देखने-वाला । (२) दिखानेवाला । लखानेवाला । बतानेवाला । जैसे, मार्गदर्शक । (३) द्वारपाल (जो लोगों को राज के पास ले जाकर उसके दर्शन कराता है) । (४) निरीचक । निगरानी रखनेवाला । प्रधान ।

दर्शन—संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह योग जो दृष्टि के द्वारा हो । चाणुप ज्ञान । देखादेखी । साधारण । अयलोकन ।

किं० प्र०—करना । —होना ।

सुहा०—दर्शन देना = देखने में आना । अपने को दिखाना । प्रत्यक्ष होना । दर्शन पाना = (किसी का) साक्षात्कार करना । देखना । दर्शन मिलना = साक्षात्कार होना ।

विशेष—हिंदी काव्य में नायक नायिका का परस्पर दर्शन

चार प्रकार का माना गया है—प्रत्यक्ष, चित्र, स्वप्न और श्रवण ।

(२) मेट । मुलाकात । जैसे, चार महीने पीछे फिर आपके दर्शन करूँगा ।

विशेष—प्रायः यहाँ के ही प्रति इस अर्थ में इस शब्द का प्रयोग होता है ।

(३) यह शास्त्र जिससे तत्त्वज्ञान हो । यह विद्या जिससे तत्त्वज्ञान हो । यह विद्या जिससे पदार्थों के धाम, काम्य, काण्य, संबंध आदि का बोध हो ।

विशेष—प्रकृति, आत्मा, परमात्मा, जगत् के नियामक धर्म, जीवन के अंतिम लक्ष्य—इत्यादि का जिस शास्त्र में निरूपण हो उसे दर्शन कहते हैं । विशेष से सामान्य की ओर आंतरिक दृष्टि को बराबर बढ़ाते हुए सृष्टि के अनेकानेक व्यापारों का कुछ तथ्यों या नियमों में अंतर्भाव करना ही दर्शन है । आरंभ में अनेक प्रकार के देवताओं आदि को सृष्टि के विविध व्यापारों का कारण मानकर मनुष्य जाति बहुत काल तक संतुष्ट रही । पीछे अधिक व्यापक दृष्टि प्राप्त हो जाने पर युक्ति और तर्क की सहायता से जब लोग संसार की उत्पत्ति, स्थिति आदि का विचार करने लगे तब दर्शन शास्त्र की उत्पत्ति हुई । संसार की प्रत्येक सभ्य जाति के बीच इसी क्रम से इस शास्त्र का प्रादुर्भाव हुआ । पहले प्राचीन आर्य अनेक प्रकार के यज्ञ और कर्मकांड द्वारा इंद्र, बरह्म, सविता इत्यादि देवताओं को प्रसन्न करके स्वर्ग प्राप्ति आदि के प्रयत्न में लगे रहे, फिर सृष्टि की उत्पत्ति आदि के संबंध में उनके मन में प्रश्न उठने लगे । इस प्रकार के संशयपूर्ण प्रश्न कई वेदमंत्रों में पाए जाते हैं । उपनिषदों के समय में महा, सृष्टि, मोक्ष, आत्मा, इंद्रिय, आदि विषयों की चर्चा बहुत बढ़ी । गाथा और प्रतीक के रूप में इन विषयों का प्रतिपादन विस्तार से हुआ । बड़े बड़े गुरु दार्शनिक सिद्धांतों का आभास उपनिषदों में पाया जाता है । “सर्वं रक्षिष्यं महा” “तत्त्वमसि” आदि वेदांत के महावाक्य उपनिषदों के ही हैं । छान्दोग्योपनिषद् के छठे प्रपाठक में उद्बलक ने अपने पुत्र स्येतकेतु को सृष्टि की उत्पत्ति समझा कर कहा है कि “हे स्येतकेतु ! तू ही महा है” । बृहदारण्यकोपनिषद् में मुंक्ष और चमूर्य, मर्ष्य और अष्टुत महा के दोहरे रूप बतलाए गए हैं । उपनिषदों के पीछे सूत्र रूप में इन तथ्यों का अध्यायों में स्वतंत्रतापूर्वक निरूपण किया और पुः वर्णनों का प्रादुर्भाव हुआ जिनके नाम ये हैं—सांख्य, योग, वैशेषिक, न्याय, मीमांसा (पूर्वमीमांसा), और वेदांत (उत्तरमीमांसा) । इनमें से सांख्य में सृष्टि की उत्पत्ति के क्रम का विस्तार के साथ जितना विवेचन है वतना और किसी में नहीं है । सांख्य आत्मा के घुसक कहता है और इसे अकर्ता,

साधो और प्रकृति से निम्न मानता है, पर आत्मा एक नहीं अनेक हैं अतः सांख्य में किसी विशेष आत्मा अर्थात् परमात्मा या ईश्वर का प्रतिपादन नहीं है । जगत् के मूल में प्रकृति को मान कर उसके सत्त्व, रज और तम इन तीन गुणों के अनुसार ही संसार के सब व्यापार माने गए हैं । सृष्टि को प्रकृति की परिर्याम-परंपरा मानने के कारण यह मत परिर्यामवाद कहलाता है । सृष्टि संबंधी सांख्य का यह मत इतिहास पुराण आदि में सर्वप्रथम उद्घटित हुआ है । योग में बलेश्वर, कर्मविपाक और आराध से रहित एक पुरुष विशेष या ईश्वर माना गया है । सर्वसाधारण के बीच जिस प्रकार के ईश्वर की भावना है वह यही योग का ईश्वर है । योग में किसी मत पर विशेष रुकें वितर्क या आग्रह नहीं है; मोक्ष प्राप्ति के निश्चित यम, नियम, प्राणायाम, समाधि इत्यादि के अभ्यास द्वारा ध्यान की परमावस्था की प्राप्ति के साधनों का ही विस्तार के साथ वर्णन है । न्याय में युक्ति या तर्क करने की प्रणाली बड़े विस्तार के साथ स्थिर की गई है जिसका उपयोग रक्षित लोग आश्रय में बराबर करते हैं । खंडन संबन्ध के नियम इसी शास्त्र में मिलते हैं जिसका मुख्य विषय प्रमाण्य और प्रमेय ही है । न्याय में ईश्वर नित्य, इच्छा-ज्ञानादि गुण युक्त और कर्ता माना गया है । जीव कर्ता और भोक्ता दोनों माना गया है । वैशेषिक में द्रव्यों और उनके गुणों का विशेष रूप से निरूपण है । पृथ्वी जल आदि के अतिरिक्त दिग्, काल, आत्मा और मन भी द्रव्य माने गए हैं । न्याय के समान वैशेषिक ने भी जगत् की उत्पत्ति परमाणुओं से बतलाई है । न्याय से इसमें बहुत कम भेद है । इसीसे इसका मत भी न्याय का मत कहलाता है । वे दोनों सृष्टि का कर्ता मानते हैं इसीसे इनका मत आरंभवाद कहलाता है । पूर्वमीमांसा में वैदिक कर्मसंबंधी वाक्यों के अर्थ निश्चित करने तथा विरोधों का समाधान करने के नियम निरूपित हुए हैं । इसका मुख्य विषय वैदिक कर्मकांड की व्याख्या है । उत्तरमीमांसा या वेदांत आर्यत वच कोटि की विचार-युक्ति द्वारा एक मात्र प्रण को जगत् का अन्विष्ट निमित्तोत्पादककारण बतलाता है अर्थात् जगत् और महा ही एकता प्रतिपादित करता है इसीसे इसका मत त्रिविन्वाद और अद्वैतवाद कहलाता है । भाष्यकारों ने इसी सिद्धांत को लेकर आत्मा और परमात्मा की एकता सिद्ध की है । जितना यह मत विद्वानों के प्राण्य हुआ, जितनी इसकी चर्चा संसार में हुई, जितने अनुयायी संश्रय इसके लगे हुए वतने और किसी दार्शनिक मत के नहीं हुए । अर्य, फारस आदि देशों में यह सूफ़ी मत के नाम से प्रचलित हुआ । आजकल योराप और अमेरिका आदि में भी इसकी ओर विशेष प्रकृति है ।

भारतवर्ष के इन छः प्रभाग दर्शनों के अतिरिक्त सर्वदर्शन संमह में चार्वाक, बौद्ध, ज्ञानेश्वर, मुकुलीय पाशुपत, योग, पूर्वप्रज्ञ, रामानुज, पाणिनि और प्रत्यभिज्ञा दर्शन का भी उल्लेख है।

योरप में यूनान या यवन देश ही इस शास्त्र के विवेचन में सय से पहले श्रमसर हुआ। ईसा से पाँच छः सौ वर्ष पहले से यहाँ दर्शन का पता लागता है। मुकरास, ड्योटो, अरस्तू इत्यादि बड़े बड़े दार्शनिक यहाँ हो गए हैं। आधुनिक काल में दर्शन की योरप में बड़ी उन्नति हुई है। प्रत्यक्ष ज्ञान का विशेष आश्रय लेकर दार्शनिक विचार की श्रम्यत विशद प्रणाली यहाँ निकली है।

(४) नेत्र । (५) शक्ति । (६) स्वप्न । (७) बुद्धि । (८) धर्म । (९) दर्शन । (१०) धर्म । (११) धर्म ।

दर्शन प्रतिभू—संज्ञा पुं० [सं०] यह प्रतिभू या ज्ञानिन जो किसी को समय पर उपस्थित कर देने का भार अपने ऊपर ले। यह आदमी जो किसी को दाखिल कर देने का विम्वर ले।

दर्शनी हुंडी—संज्ञा स्त्री० दे० "दरसनी हुंडी"।

दर्शनीय—वि० [सं०] (१) देखने योग्य । देखने लायक । (२) सुंदर । मनोहर ।

दर्शाना—कि० सं० दे० "दरसाना"।

दर्शित—वि० [सं०] दिखलाया हुआ।

दर्शी—वि० [सं० दर्शित] (१) देखनेवाला । (२) विचार करनेवाला ।

दल—संज्ञा पुं० [सं०] (१) किसी वस्तु के उन दो समुदायों में से एक जो एक दूसरे से स्वभावतः जुड़े हुए हों पर जरा सा दबाव पड़ने से अलग हो जाय। जैसे धने, अरहर, सूँग, बरद, मसूर, चिसें इत्यादि के दो दल जो चक्की में दबने से अलग हो जाते हैं। (२) पौधों का पत्ता। पत्र। जैसे, तुलसीदल । (३) तमालपत्र । (४) फूल की पलखी । ४०—जय जय अमल कमलदलखोचन ।—हरिचंद्र । (५) समूह । कुंड । गरोह । (६) मंडली । गुट । चक्र । जैसे, यह दूसरे के दल में है । (७) सेना । फौज । जैसे, शत्रु दल । (८) पट्टी के याकार की किसी वस्तु की मोटाई । परत की तरह फैली हुई चीज की मोटाई । जैसे, इस शरीर या पत्थर का दल मोटा है । (९) अक्ष के ऊपर का आच्छादन । कोप । म्यान । (१०) धन । (११) जल में होनेवाला एक वृक्ष ।

दलक—संज्ञा स्त्री० [सं० दलक] गुदड़ी । ४०—बैठा है इस दलक विच आपे आप द्विपाय । साहब बा तन लख परे प्रगट सिफात दिखाय ।—रसनिधि ।

संज्ञा पुं० [हिं० दलकना] राजगीरों का एक श्रृंगार जिससे

नक्षत्री साफ की जाती है। यह पुरी के आकार का होता है परंतु सिर पर चिपटा होता है ।

संज्ञा स्त्री० [हिं० दलकना] (१) यह कंप जो किसी प्रकार के आघात से उत्पन्न हो और कुछ देर तक बना रहे। धरमहादल । धमक । जैसे, बोलक की दलक । (२) रह रह कर उठनेवाला दर्द । टीस । चमक ।

दलकना—कि० सं० [सं० दलकना] (१) फट जाना । दरार खाना । चिर जाना । ४०—तुलसी कुलिस की कठोरता तेदि दिन दलकि दली ।—तुलसी । (२) पारना । कपना । ३०—महाबली शक्ति को दबत दलकत मूमि तुलसी उद्वरि सिंधु मेरु मसकत ।—तुलसी । (३) चौकना । उद्विग्न हो उठना । ४०—(क) दलकि बडेउ मुनि बधन कठोर । अनु सुदु गयो पाक वर वोर ।—तुलसी । (ख) कैकेई अपने करमन बे । सुमिरत हिय में दलकि बडी ।—देवधामि ।

दि० सं० [सं० दलन] डराना । भीत कर देना । भय से कंपा देना । ४०—सूरजदास सिंह बलि अपनी लीन्हों दलकि श्यालादि ।—सूर ।

दलकपाट—संज्ञा पुं० [सं०] हरी पेंटाड़ियों का वह कोश जिसके भीतर कली रहती है ।

दलकोश—संज्ञा पुं० [सं०] कुंद का पौधा ।

दलगंजन—वि० [सं०] सेना को मारनेवाला । भारी धीर ।

संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का धान ।

दलगंध—संज्ञा पुं० [सं०] ससपण वृक्ष । सतिवन ।

दलघुसरा—संज्ञा पुं० [हिं० दल + घुसरा] एक प्रकार की रोटी जिसमें चिली हुई दाल नमक मसाले के साथ भरी रहती है ।

दलधर्मन—संज्ञा पुं० [हिं० दल + धर्मन] कमराप घुननेवालों का एक श्रृंगार जो बसि का होता है और जिसमें अंकुड़ा और नक्षत्र बँधा रहता है ।

दलदल—संज्ञा स्त्री० [सं० दलदल] (१) कीचड़ । पाक । चहला । (२) यह जमीन जो बहुत गहरी तक गोली हो और जिसमें पैर नीचे को धँसता हो ।

विशेष—कहीं कहीं पूर्य में यह शब्द पुं० भी बोला जाता है । मुहा०—दलदल में फँसना = (१) कीचड़ में फँसना । (२) ऐसी कठिनाई में फँस जाना जिससे निकलना दुखार है। मुश्किल या दिक्कत में पड़ना । (३) जल्दी खत्म या तै न होना । अनिश्चित रहना । खटार में पड़ना । ४०—दोनों दलों की दबादबी में दलपति का चुनाव भी दलदल में फँसा रहा ।—बदरीनारायण चौधरी ।

(४) बुद्धी स्त्री (पालकी के कठार) ।

दलदला—वि० [हिं० दलदल] [स्त्री० दलदली] जिसमें दलदल हो । दलदलवाला । जैसे, दलदला मैदान, दलदली धरती ।

दलदार-वि० [हि० दल + फा० दार] जिसका दल मोटा हो । जिसकी तरह या परत मोटी हो । जैसे, दलदार गूड़ा, दलदार धाम ।

दलन-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० दक्षित] पीस कर टुकड़े टुकड़े करने की क्रिया । चूर चूर करने का काम । २) विनाश । संहार ।

दलना-क्रि० सं० [सं० दलन] (१) रगड़ या पीस कर टुकड़े टुकड़े करना । मज कर चूर चूर करना । चूर्ण करना । खंड खंड करना । (२) रौंदना । कुचलना । मलना । लूथ दवाना । मसबना । मीड़ना । उ०—पर अकाश लागि तनु परिहरहीं । जिमि हिम उपल कृपी दल गरहीं ।—तुलसी ।

संयोग वि०—दाबना । मारना ।

(३) चप्टी में धाल कर अनाज आदि के दानों को दो चूर्णों या कई टुकड़ों में करना । जैसे, दाब दलना । (४) नष्ट करना । ध्वस्त करना । जीतना । उ०—(क) भुजवज रिपुदल दलि मलि देखि दिवस कर अंत ।—तुलसी । (ख) केतिक देव दल्यो मुज के बल ।—भूपय ।

धा०—मलना दलना ।

* (३) सोड़ना । मटकेसे खंडित करना । उ०—(क) दलि वृष प्राय निवृत्तवरी धरि करि लैंहीं माहु बलैया ।—तुलसी । (ख) सोई हैं वृकृत राजसभा धुनुके दल्यो हैं दलि हैं बल साके ।—तुलसी ।

दलनि—संज्ञा स्त्री० [हि० दलना] दलने की क्रिया या ढंग ।

दलनिर्भोक—संज्ञा पुं० [सं०] भोजपत्र का पेड़ ।

दलप—संज्ञा पुं० [सं०] (१) दलपति । मंडली या सेना का नायक । (२) सेना । स्वयं ।

दलपति—संज्ञा पुं० [सं०] (१) किसी मंडली या समुदाय का प्रधान । मंडली का मुखिया । अग्रुवा । सरदार । (२) सेनापति ।

दलपुण्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] केतकी जिसके फूल पत्ते के आकार के होते हैं ।

विशेष—केतकी या केयड़े की मंजरी बहुत कोमल पत्तों के केश के भीतर रहती है । सुगंध के लिये इन्हीं पत्तों का व्यवहार होता है ।

दल धल—संज्ञा पुं० [सं०] जाय लरकर । फौज ।

दलया—संज्ञा पुं० [हि० दलना] हीतरशानों, थरेशानों आदि का यह त्रिपक्ष पक्षी जिसे वे दूसरे पक्षियों से खड़ा कर और मार खिलाकर इन पक्षियों का साहस बढ़ाते हैं ।

दलयादल—संज्ञा पुं० [हि० दल + दल] (१) बादलों का समूह । बादलों का कुंड । (२) भारी सेना । (३) बहुत पड़ा शामियाना । बड़ा भारी खेमा ।

मुहा०—दलयादल खड़ा होना = बड़ा भारी शामियाना या खेमा गडना ।

दलमलना—क्रि० सं० [हि० दलना + मलना] (१) मसबना । मीड़ना । उ०—(क) भुजवज रिपुदल दलमलि ।—तुलसी । (ख) कौं दलमलियत निरदई दई कुसुम से गात । कर धर देखी धरधरा अजौं ग घर से जात ।—बिहारी । (२) रौंदना । कुचलना । (३) विनष्ट कर देना । मार डालना ।

दलयाना—क्रि० सं० [हि० दलना का प्रे०] (१) दलने का काम करवाना । मोटा मोटा पिसवाना । जैसे, दाब दलयाना । (२) रौंदवाना । मलवाना । (३) नष्ट कराना ।

दलघाल—संज्ञा पुं० [सं० दलघाल] सेनापति । फौज का सरदार ।

दलघैया—संज्ञा पुं० [हि० दलना] दलनेवाला ।

दलसारिणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] केसुमा । बंदा । कच्चा ।

दलसूचि—संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह पीथा जिसके पत्तों में कांटे हों । (२) पत्तों का कांटा । (३) कांटा ।

दलसूसा—संज्ञा स्त्री० [सं० दलसूसा] दलघिया । पत्तों की नस ।

दलहन—संज्ञा पुं० [हि० दल + हन] वह अन्न जिसकी दाब बनाई जाती है । जैसे, चना, आहर, मूँग, जड़, मसूर इत्यादि ।

दलहरा—संज्ञा पुं० [हि० दल + हारा] दाब बेचनेवाला । जो दाब बेचने का शौभाग्य करता हो ।

दलहा—संज्ञा पुं० [सं० यल, हि० यालहा] दाब । भाबयाल ।

दलाढक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) जंगली तिल । (२) गेरू । (३) नागकेसर । (४) सिरिस । (५) कुंद । (६) गजकर्मण ।

एक प्रकार का पंखारा ।

दलाना—संज्ञा पुं० दे० “दाबान” ।

दलाना—क्रि० सं० दे० “दलयाना” ।

दलामल—संज्ञा पुं० [सं०] (१) दौने का पीथा । (२) मरुचे का पीथा । (३) मैनफल का पेड़ ।

दलासु—संज्ञा पुं० [सं०] खीनिया साग । धमजोनी ।

दलारा—संज्ञा पुं० [देग०] एक प्रकार का फूलनेवाला विरतरा जिसका व्यवहार बहाड़ पर मछाह लोग करते हैं ।

दलाल—संज्ञा पुं० [अ०] [संज्ञा दलाली] (१) वह व्यक्ति जो सौदा मोल लेने या बेचने में सहायता दे । बिचरई । मध्यस्थ । (२) श्री-पुरुष का अनुचित संयोग करानेवाला । कुटना । (३) जादों की एक जाति ।

दलाली—संज्ञा स्त्री० [फा०] (१) दलाल का काम ।

क्रि० प्र०—दलना ।

(२) वह द्रव्य जो दलाल को मिलता है । उ०—मक्ति हाट पंढि वृ थिर छै हरि नग निमल लेहि । काम प्रीच मद लोभ मोह तू सकल दलाली देहि ।—सूर ।

क्रि० प्र०—देना ।—लेना ।
 दलाह्वय—संज्ञा पुं० [सं०] तेजपत्ता ।
 दलित—वि० [सं०] (१) मीढ़ा हुआ । मसला हुआ । मदिँत ।
 (२) रीढ़ हुआ । कुचला हुआ । (३) चंचित । डुकड़े डुकड़े किया हुआ । (४) विनष्ट किया हुआ ।
 दलिद्रा—संज्ञा पुं० दे० “द्विद्रा” ।
 दलिया—संज्ञा पुं० [हिं० दलना] दल कर कई डुकड़े किया हुआ अनाम । जैसे, गेहूँ का दलिया ।
 दली—वि० [सं० दलित्] (१) जिसमें दल या मोटाई हो । (२) जिसमें पत्ता हो । पत्तेवाला ।
 दलीप—संज्ञा पुं० दे० “दिलीप” ।
 दलील—संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) तर्क । युक्ति । (२) बहस । वाद-विवाद ।
 क्रि० प्र०—करना ।—खाना ।
 दलेमधि—संज्ञा पुं० [सं०] सप्तपर्णी घृष ।
 दलेपंज—संज्ञा पुं० [हिं० दलना + पंजा] (१) यह घोड़ा जिसकी बमर दल गड़े हो । यह घोड़ा जो खाना न रह गया हो । (२) उलती हुई बमर का आदमी ।
 दलेल—संज्ञा स्त्री० [अ० दल] सिपाहियों का यह बंद जिसमें हथियार और कपड़े आदि वनकी कमर में बांध कर उल्टे टहलाते हैं । यह कवायद जो सजा की तरह पर ली जाय ।
 मुहा०—दलेल बोलना = सजा की तरह पर कवायद देने की आशा देना ।
 दले—सुँह बाधो । खाधो । (हाथीबाजों की बोली) ।
 दलै छष दलै = पानी पीओ (हाथीबाजों की बोली) ।
 दलेया—संज्ञा पुं० [हिं० दलना] (१) दलने पा पीसनेवाला । (२) नाश करनेवाला । मारनेवाला ।
 दलम—संज्ञा पुं० [सं०] (१) प्रताप । घोषा । (२) पाप । (३) धक ।
 दलाल—संज्ञा पुं० दे० “दवाल” ।
 दलाला—संज्ञा स्त्री० [अ०] वृद्धी । दूती ।
 दलाली—संज्ञा स्त्री० दे० “दलाली” ।
 दलेरी—संज्ञा स्त्री० दे० “दवेरी” ।
 दव—संज्ञा पुं० [सं०] (१) वन । जंगल । (२) दवागि । यह आग - जो वन में आप से आग लग जाती है । दवारि । दवा ।
 ड०—माई सहसि सुनि यचन कडोरा । मृगी दंलिं गनु दव पडुँ घोरा ।—मुलसी । (३) अग्नि । आग । ड०—(क) आउ अयोप्या जल नहिँ अघवों ना मुख देलौं माई । सूरदास रावध के बिजुरे मरौं भवन दव वार्डे ।—सूर । (ख) राकापति पोइरा उगँ सारागथ समुदाय । सकल गिरिन दव ताइप रहि बिनु राति न जाय ।—मुलसी ।
 दवधु—संज्ञा पुं० [सं०] (१) दाह । जलन । (२) परिताप । दुःख ।

दवन—संज्ञा पुं० [सं० दवन] नाग । ड०—प्राणनाथ सुंदर सुमानमनि दीनबंधु जन धारति दवन ।—मुलसी ।
 संज्ञा पुं० [सं० दगनक] दौना नामक पौधा । ड०—
 गहव गुलाव, मंजु मोगरे, दवन फूत्रे, बेले छत्रपेले खिले
 चंपक धमन में ।—मुयवेश ।
 दवनपापड़ा—संज्ञा पुं० [सं० दसन पर्यट] पितपापड़ा ।
 दवना—संज्ञा पुं० दे० “दीना” ।
 क्रि० सं० [सं० दव] जलाना । ड०—श्रीपम दवत दवरिया
 कुंज वृटीर । तिमि तिमि सकत तरनिघहिँ याद्री पीर ।—
 रहीम ।
 दवनी—संज्ञा स्त्री० [सं० दसन] फसल के सूखे उठलों के बौलों से रींदा कर दाना म्हाड़ने का काम । दवरी । मिसाई ।
 मँझाई ।
 दवरिया—संज्ञा स्त्री० दे० “दवारि” । ड०—श्रीपम दवत
 दवरिया कुंज वृटीर । तिमि तिमि सकत तरनिघहिँ याद्री
 पीर ।—रहीम ।
 दवा—संज्ञा स्त्री० [सं० दवा] (१) यह वस्तु जिससे कोई रोग या
 व्याध दूर हो । औषध । औषद । ड०—दाद दया दोनें
 रहँ पीतम पास सवार ।—रसनिधि ।
 धा०—दवाखाना । दवा दारू । दवा दर्पन । दवा दरमन ।
 मुहा०—दवा को न मिलना = घोड़ा सा भी न मिलना ।
 अग्रप्य होना । दुर्लभ होना । दवा देना = दवा पिलाना ।
 (२) रोग दूर करने का उपाय । उपचार । चिकित्सा । जैसे,
 अच्युत वैद्य की दवा करो ।
 क्रि० प्र०—करना ।—होना ।
 (३) दूर करने की युक्ति । मिटाने का उपाय । जैसे, शक
 की कोई दवा नहीं । (४) अचरोप या अतिकार का उपाय ।
 ठीक करने की युक्ति । दुरुस्त करने की तदुधर । जैसे,
 बसकी दवा यही है कि इसे दो चार एरी लोटी
 सुना दो ।
 दवसंज्ञा स्त्री० [सं० दव] (१) वनाग्नि । वन में खानेवाली
 आग । ड०—कामन मूषर धारि वयारि मदा विप ध्याधि
 दवा धरि घेरे ।—तुलसी । (२) अग्नि । आग । ड०—(क)
 अच्यो तथा सो तस दवा तुति नूरिप्रया भर ।—गोपाल ।
 (ख) दधा सो तपत धरामंडल अखंडल यो मारतंड मंडल
 दवा सो होत मोर तें ।—बेनी ।
 दवार्दी—संज्ञा स्त्री० दे० “दवा” ।
 दवाईखाना—संज्ञा पुं० दे० “दवाखाना” ।
 दवाखाना—संज्ञा पुं० [सं० दवा] (१) यह जगह जहाँ दवा बिकती
 हो । औषधालय ।
 दवागि—संज्ञा स्त्री० [सं० दवाग्नि] वनाग्नि । दवानल ।
 दवागिन—संज्ञा स्त्री० दे० “दवाग्नि” ।

द्वामि—संज्ञा स्त्री० [सं०] धन में जागनेवाली आग। द्वावल।
 द्वात—संज्ञा स्त्री० [अ० दत्त] लिखने की रथाही रखने का।
 धरतन। मसिपात्र। मसिदान।
 द्वानल—संज्ञा पुं० [सं०] द्वामि।
 द्वामी—वि० [अ०] जो चिरकाळ तक के लिये हो। रथायी। जो सदा बना रहे। जैसे, द्वामी यंत्रोपस्त।
 द्वामी यंत्रोपस्त—संज्ञा पुं० [अ०] जमीन का वह यंत्रोपस्त जिसमें सरकारी भाजगुजारी सप्त दिन के लिये मुकदर कर दी जाय। भूमिकर का वह प्रबंध जिसमें कर सप्त दिन के लिये इस प्रकार नियत कर दिया जाय कि उसमें पीछे घटती बढ़ती न हो सके।
 द्वारि—संज्ञा स्त्री० [सं० दवग्नि, हिं० दवग्नि] यनाग्नि। द्वावल।
 व०—हाय न होऊ तलास करे ये पलासन कौने द्वारि खाई।—चरेण।
 द्वा—वि० [सं०] दस।
 द्वाकंड—संज्ञा पुं० [सं०] रावण (जिसके दस कंड वा सिर थे)।
 द्वाकंडजहा—संज्ञा पुं० [सं०] रावणसंहारक, श्रीरामचंद्र।
 व०—आजु विराजत राज है द्वाकंडजहा को।—गुलसी।
 द्वाकंडादि—संज्ञा पुं० [सं०] (रावण के शत्रु) श्रीरामचंद्र।
 द्वाकंध—संज्ञा पुं० [सं० दण + कंध, हिं० कंध] रावण।
 द्वाकंधार—संज्ञा पुं० [सं०] रावण।
 द्वाकर्म—संज्ञा पुं० [सं०] गर्भाधान से छेकर विवाह तक के दस संस्कार जिनके नाम ये हैं—गर्भाधान, पुंसवन, सीमंते-क्षण, आतकरण, निष्कामण्य, नामकरण, अन्नप्राशन, पूजाकरण, धनपन और विवाह।
 द्वाकुलवृक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] तंत्र के अनुसार कुछ विशेष वृक्ष जिनके नाम ये हैं—खिरीड़ा, ऊँच, बेज, पीपल, कर्दम, नीम, बरगद, गुडर, झांझा और हमली।
 द्वाकौपी—संज्ञा स्त्री० [सं०] रुद्रताल के म्यारद भेदों में से एक (संगीत)।
 द्वाक्षीर—संज्ञा पुं० [सं०] सुसुत के अनुसार हन दस जंतुओं का दूध—नाय, चकरी, कैंटीन, भेंड़, भैंस, घोड़ी, स्त्री, हयनी, हिरनी और गदही।
 द्वागात्र—संज्ञा पुं० [सं०] (१) शरीर के दस प्रधान श्रेण।
 (२) मृतक सर्वथी एक कर्म जो उसके मरने के पीछे दस दिनों तक होता रहता है।
 द्विषो—इसमें प्रतिदिन पिंडदान किया जाता है। पुराणों में लिखा है कि इसी पिंड के द्वारा क्रम क्रम से प्रेत जैसे, का शरीर बनता है और दसवें दिन पूरा हो जाता है पहले पिंड से सिर, दूसरे से छात्र, कान, नाक इत्यादि।

द्वामामपति—संज्ञा पुं० [सं०] जो राजा की और से दस ग्रामों का अधिपति या शासक बनाया गया हो।
 द्विषो—मनुस्मृति में लिखा है कि राजा पहले प्रत्येक ग्राम का एक मुखिया या शासक नियुक्त करे, फिर उसके अधिक प्रतिष्ठा और योग्यता के किसी मनुष्य को दस ग्रामों का अधिपति नियत करे, इसी प्रकार बीस, सत्स्र आदि तक के ग्रामों के हाकिम नियुक्त करने का विधान लिखा है।
 द्वाप्रोच—संज्ञा पुं० [सं०] रावण।
 द्वाति—संज्ञा स्त्री० [सं०] सौ। शत।
 द्वाघा—वि० [सं०] दस प्रकार का।
 कि० वि० दस प्रकार।
 द्वाहार—संज्ञा पुं० [सं०] शरीर के दस द्वार—१ कान, २ घ्रात्र, २ नाक, १ मुख, १ गुद, १ शिंघ, १ मूत्रांड।
 द्वाशन—संज्ञा पुं० [सं०] (१) दांत। (२) कण्ठ। (३) निगल।
 द्वाशनच्छद—संज्ञा पुं० [सं०] होंड।
 द्वाशनवीज—संज्ञा पुं० [सं०] अनार।
 द्वाशान्ध्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] लेनिया शाक।
 द्वाशानाम—संज्ञा पुं० [सं०] संन्यासियों के दस भेद जो ये हैं—
 १ तीर्थ, २ आश्रम, ३ वन, ४ शरण्य, ५ गिरि, ६ पर्वत, ७ सागर, ८ सरस्वती, ९ भारती, १० पुरी।
 द्वाशानामी—संज्ञा पुं० [हिं० दण + नाम] संन्यासियों का एक वर्ग जो श्रद्धैतयानी शंकराचार्य के शिष्यों से चला है।
 द्विषो—शंकराचार्य के चार प्रधान शिष्य थे—पद्मपाद, हस्तामञ्जक, मंडन और तोटक। इनमें से पद्मपाद के दो शिष्य थे—तीर्थ और आश्रम; हस्तामञ्जक के दो शिष्य—धन और शरण्य, मंडन के तीन शिष्य—गिरि, पर्वत और सागर, इसी प्रकार तोटक के तीन शिष्य—सरस्वती, भारती और पुरी। इन्होंने दस शिष्यों के नाम से संन्यासियों के दस भेद चले। शंकराचार्य ने चार मठ स्थापित किए थे जिनमें हन दस प्रशिष्यों की शिष्य-परंपरा चली जाती है। पुरी, भारती और सरस्वती की शिष्यपरंपरा शृंगेरी मठ के अंतर्गत है; तीर्थ और आश्रम शादा मठ के अंतर्गत, धन और शरण्य शोवद्वेनमठ के अंतर्गत तथा गिरि, पर्वत और सागर जोशी मठ के अंतर्गत हैं। प्रत्येक द्वाशानामी संन्यासी इन्हीं चार मठों में से किसी न किसी के अंतर्गत होता है। यद्यपि द्वाशानामी मठ या गिणुंग बरासक प्रसिद्ध हैं पर इनमें से बहुतेरे शोवमंत्र की दीक्षा लेते हैं।
 द्वाप—संज्ञा पुं० दे० “द्वामामपति”।
 द्वापारमिताधर—संज्ञा पुं० [सं०] युद्धदेव।
 द्वापुर—संज्ञा पुं० [सं०] (१) केवटी मोथा। (२) माजवे का

चंद्रन, जयामासी, सतावति, सज्जी, खस, धी, कपर और कस्तूरी ।

दशार्ग पञ्चाश-संज्ञा पुं० [सं०] दस शोधधियों का काण्ड ।

विशेष—१ अहसा; २ गुर्वे, ३ पितृपापहृ, ४ विरायता, ५ नीम की छात्र, ६ जलमंग, ७ हृद्, ८ बदेड़ा, ९ शोबजा, १० कुम्भी, इनके बर्णन में मधु डाल कर पिबाने से अमृत-विष नष्ट होता है ।

दशार्गुल-संज्ञा पुं० [सं०] खट्वा । देगरा ।

दशार्त-संज्ञा पुं० [सं०] बुढ़पा ।

दशा—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) अवस्था । स्थिति का प्रकार । हाजत । जैसे, (क) रोगी की दशा अच्छी नहीं है । (ख) पहले मैंने इस मकान को अच्छी दशा में देखा था । (२) मनुष्य के जीवन की अवस्था ।

विशेष—मानव जीवन की दस दशाएँ मानी गई हैं—गर्भ-वास, जन्म, पाण्ड्य, कीमारा, पोषण, यौवन, स्थाविर्य, जरा, प्रायशोभ और मरण ।

(२) साहित्य में रस के अंतर्गत विरही की अवस्था ।

विशेष—ये अवस्थाएँ दस हैं—भमिलाप, चिंता, स्मरण, गुण-कथन, बदेग, प्रलाप, जन्माद, भ्लाधि, जड़ता और मरण ।

(५) कवित्त ज्योतिष के अनुसार मनुष्य के जीवन में प्रत्येक ग्रह का नियत भोगकाळ ।

विशेष—दशा निकालने में कोई मनुष्य की पूरे आयु १२० वर्ष की मानकर चलते हैं और कोई १०८ वर्ष की । पहली रीति के अनुसार निर्धारित दशा विद्योत्तरी और दूसरी के अनुसार निर्धारित अष्टोत्तरी कहलाती है । आयु के पूरे काल में प्रत्येक ग्रह के भोग के लिये वर्षों की अलग अलग संख्या नियत है—जैसे, अष्टोत्तरी रीति के अनुसार सूर्य की दशा ६ वर्ष, चंद्रमा की १२ वर्ष, मंगल की ८ वर्ष, बुध की १० वर्ष, शनि की १० वर्ष, बृहस्पति की १२ वर्ष, राहु की १२ वर्ष और शुक्र की २१ वर्ष मानी गई है । दशा जन्म-काल के नक्षत्र के अनुसार मानी जाती है । जैसे, यदि जन्म कृत्तिका, रोहिणी वा मृगशिरा नक्षत्र में होगा तो सूर्य की दशा होगी; मकर, पुनर्वसु, पुष्य या भरवशा नक्षत्र में होगा तो चंद्रमा की दशा; मघा, पूर्वाषाढ्युनी या उत्तर-फाल्गुनी में होगा तो मंगल की दशा; हस्त, चित्रा, स्वाती या विशाखा में होगा तो बुध की दशा; अनुराधा, ज्येष्ठा या मूल नक्षत्र में होगा तो शनि की दशा; पूर्वाषाढ्य, उत्तराषाढ्य, अभि-जित वा श्रवण नक्षत्र में होगा तो बृहस्पति की दशा; पत्तिका, शतभिषा वा पूर्व भाद्रपद में होगा तो राहु की दशा और उत्तर भाद्रपद, वैशति, अरिषती या मंथरी नक्षत्र में होगा तो शुक्र की दशा होगी । प्रत्येक ग्रह की दशा का फल अथवा अलग विरिषत है—जैसे, सूर्य की दशा में वित्त

को बढ़ाए, धनहानि, बखेरा, विदेशगमन, बंधन, राजरीडा इत्यादि । चंद्रमा की दशा में पेश्वर्य, राजतम्भान, रत्न वाहन की प्राप्ति इत्यादि ।

प्रत्येक ग्रह के नियत भोगकाळ वा दशा के अंतर्गत भी एक एक ग्रह का भोगकाळ नियत है जिसे अंतर्दशा कहते हैं । रवि-दशा को खीजिए जो ६ वर्ष की है । शनि ६ वर्षों के बीच सूर्य की शपनी दशा ४ महीने की, चंद्रमा की १० महीने की, मंगल की २ महीने की, बुध की ११ महीने २० दिन की, शनि की ६ महीने २० दिन की, बृहस्पति की १ वर्ष २० दिन की, राहु की ८ महीने की, शुक्र की १ वर्ष २ महीने की । इन अंतर्दशाओं के फल भी अलग अलग निरूपित हैं—जैसे, सूर्य की दशा में सूर्य की अंतर्दशा का फल राजवंद, मनसाप, विदेश-गमन इत्यादि; सूर्य की दशा में चंद्र की अंतर्दशा का फल शत्रु-नाश, रोगशान्ति, वित्तलाभ इत्यादि ।

ऊपर जो हिसाब बतलाया गया है वह नाचक्रिकी दशा का है । पर यैमिनी, पार्थिकी, जामिकी, सुकुंदा, पताकी, हरगौरी इत्यादि और भी दशाएँ हैं पर ऐसा खिला है कि कबजियुग में नाचक्रिकी दशा ही प्रधान है ।

(६) दीप की वत्ती । (६) वित्त । (७) कपड़े का धोर । बखाने ।

दशाकर्ष-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कपड़े का धोर या अंचल । (२) दीपक । चिराग ।

दशाधिपति-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कवित्त ज्योतिष में दशाओं के अधिपति ग्रह । (२) दस सैनिकों या सिंहादियों का 'यकसर' । जमादार । (महाभारत)

दशानन-संज्ञा पुं० [सं०] रावण ।

दशानिक-संज्ञा पुं० [सं०] जमालगोटा ।

दशापवित्र-संज्ञा पुं० [सं०] धाद धादि में दान दिए जाने-वाले चक्रवर्त ।

दशामय-संज्ञा पुं० [सं०] रुद्र ।

दशाकहा-संज्ञा स्त्री० [सं०] कंबलिका नाम की लता जो मांखवा में होती है और जिससे कपड़े रंगे जाते हैं ।

दशार्ण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विंध्य पर्वत के पूर्व-दक्षिण की ओर स्थित उस प्रदेश का प्राचीन नाम जिससे होकर घग्गन नदी बहती है । मेघदूत से पता चलता है कि विदिशा (प्रायुक्त भिलसा) इसी प्रदेश की राजधानी थी । राजमी ने इस प्रदेश का नाम दोसारन (Dosaron) लिखा है । (२) एक देश का निवासी या राजा । (३) संत का एक दशाक्षर मंत्र । (४) तीन पुराण के अनुसार एक राजा जिसने धीरंकर के दरान के निमित्त जाकर अभिमान किया था ।

एक प्राचीन विभाग जिसके अंतर्गत दस गगर थे। इसका नाम मेघदूत में आया है।

दशपिय-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का यज्ञ। (आष० अ० ०)

दशवल्-संज्ञा पुं० [सं०] बुद्धदेव।

विशेष—बुद्ध को दस बल प्राप्त थे जिनके नाम थे—दान, शील, व्रता, वीर्य, ध्यान, प्रज्ञा, बल, उपाय, प्रसिद्धि और ज्ञान।

दशभूमिग-संज्ञा पुं० [सं०] (दान आदि दस भूमिओं या बलों को प्राप्त करनेवाले) बुद्धदेव।

दशभूमिदा-संज्ञा पुं० [सं०] बुद्धदेव।

दशम-वि० [सं०] दसवाँ।

दशम दशा-संज्ञा स्त्री० [सं०] साहित्य के रसनिरूपण में विद्योगी की वह दशा जिसमें वह प्राण स्वाग देता है।

दशम भाव-संज्ञा पुं० [सं०] फलित ज्योतिष में एक जन्म-जगत्ता। कुंडली में लग्न से दसवाँ घर।

विशेष—इस घर से पिता, कर्म, ऐश्वर्य आदि का विचार किया जाता है।

दशमलव-संज्ञा पुं० [सं०] वह भिन्न जिसके हर में दस या उसका कोई घात हो। (गणित)

दशमांश-संज्ञा पुं० [सं०] दसवाँ हिस्सा। दसवाँ भाग।

दशमाल-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन जनपद। एक प्रदेश का प्राचीन नाम।

दशमालिक-संज्ञा पुं० [सं०] दशमाल देश।

दशमिकभगनांश-संज्ञा पुं० [सं०] अंकगणित की एक क्रिया जिसके द्वारा प्रत्येक भिन्न या भगनांश इस रूप में लाया जाता है कि इसका हर दस का कोई गुणित अंक हो जाता है।

दशमलघु।

दशमी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) चंद्रमास के फिती पक्ष की दसवीं तिथि। (२) विमुक्तावस्था। (३) मरण्यावस्था।

दशमुख-संज्ञा पुं० [सं०] रावण।

दशमूदक-संज्ञा पुं० [सं०] इन दस जीवों का मूत्र जो वैशक में काम आता है—१ हाथी, २ बैल, ३ ऊँट, ४ भाला, ५ पकरा, ६ मेढ़ा, ७ घोड़ा, ८ गधरा, ९ मनुष्य; और १० स्त्री।

दशमूल-संज्ञा पुं० [सं०] दस पेड़ों की छाल या जड़ जो दवा के काम में आता है।

विशेष—सरिवन (शालपर्णी), चिचन (शुभियर्षी), छोटी कटाई, बड़ी कटाई, और गोक्षर ये लघु-मूल और बेल, सोनापत्ता (श्योनाक), गंमारी, गनियारी और पाटा बृह-मूल कहलाते हैं। इन दोनों के योग को दश मूल कहते हैं। दशमूल काश, आस और सफ़िपात ज्वर में उपकारी माना जाता है।

दशमैलि-संज्ञा पुं० [सं०] रावण।

दशयोगभंग-संज्ञा पुं० [सं०] फलित ज्योतिष में एक नक्षत्रपंच जिसमें विवाह आदि शुभ कर्म नहीं किए जाते।

विशेष—जिस नक्षत्र में सूर्य्य हो और जिस नक्षत्र में कर्म होनेवाला हो दोनों नक्षत्रों के जो स्थान गणना-क्रम में हों उन्हें जोड़ लाले। यदि जोड़ पंद्रह, चार, ग्यारह, उन्नीस, सत्ताइस, अठारह या बीस आये तो दशयोगभंग होगा।

दशरथ-संज्ञा पुं० [सं०] अयोध्या के इन्द्राकुंभरीय एक प्राचीन राजा जिनके पुत्र श्रीरामचंद्र थे। ये देवताओं की और से कई बार असुरों से लड़े थे और उन्हें परास्त किया था।

विशेष—इस शब्द के शाने पुत्र-वाचक शब्द लगने से 'राम' अर्थ होता है।

दशरथसुत-संज्ञा पुं० [सं०] श्रीरामचंद्र।

दशरथ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) दस रातें। (२) एक यज्ञ जो दस रात्रियों में समाप्त होता था।

दशवाजी-संज्ञा पुं० [सं०] दशवाजिपुं चंद्रमा।

दशवाहु-संज्ञा पुं० [सं०] महादेव।

दशवीर-संज्ञा पुं० [सं०] एक सत्र या यज्ञ का नाम।

दशशिर-संज्ञा पुं० [सं०] दश शिरस् रावण।

दशशीर्ष-संज्ञा पुं० [सं०] (१) रावण। (२) चक्राष्ट रूप अर्धों को निष्फल करने का एक अस्त्र।

दशशीश *-संज्ञा पुं० दे० "दशशीर्ष"।

दशस्यंदन-संज्ञा पुं० [सं०] दशरथ नामक राजा।

दशहरा-संज्ञा पुं० [सं०] (१) ज्येष्ठ शुक्ल दशमी तिथि विले गंगा दशहरा भी कहते हैं।

विशेष—इस तिथि को गंगा का जन्म हुआ था अर्थात् गंगा स्वर्ग से मर्त्यलोक में आई थीं इसीसे यह अत्यंत पुण्य तिथि मानी जाती है। कहते हैं, इस तिथि को गंगा स्नान करने से दसों प्रकार के और जन्म-जन्मान्तर के पाप दूर होते हैं। यदि इस तिथि में हस्तनक्षत्र का योग हो या यह तिथि मंगलवार को पड़े तो यह और भी अधिक पुण्यजनक मानी जाती है। दशहरा को लोग गंगा की प्रतिष्ठा का पूजन करते हैं और सोने चाँदी के जल-अंजु बना कर भी गंगा में डालते हैं।

(२) विजयादशमी।

दशान-संज्ञा पुं० [सं०] पूजन में सुगंध के निमित्त जलाने का एक धूप जो दस सुगंध द्रव्यों के मेल से बनता है।

विशेष—यह धूप कई प्रकार से भिन्न भिन्न द्रव्यों के मेल से बनता है। एक रीति के अनुसार दस द्रव्य थे—शिला-रस, सुगुल, चंदन, जटामासी, लोधान, राज, लस, नख, भीमसेनी कपूर और कादरी। दूसरी रीति के अनुसार—मधु, नागसेना, घी, चंदन, सुगुल, अणार, शिलाजठु, सबई का धूप, शुद्ध और पीछी सरसों। तीसरी रीति—सुगुल, गंधक

चंद्रम, जयामासी, सतापरि, सज्जी, खस, धी, कपूर और कस्तूरी ।

दशांग दवाय-संज्ञा पुं० [सं०] दस औषधियों का काण्ड ।

विशेष—१ बहूसा, २ गुणै, ३ पितपापड़ा, ४ चिरामता, ५ नीम की छाल, ६ जलभंग, ७ हृद, ८ बहेड़ा, ९ शबिजा, १० कुलथी, इनके क्वाथ में मधु डाल कर पिबाने से अन्ध-वित्त गट होता है ।

दशांगुल-संज्ञा पुं० [सं०] खरपूजा । देवरा ।

दशांत-संज्ञा पुं० [सं०] बुढ़ाया ।

दशा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) अवस्था । स्थिति का प्रकार । हाजत । जैसे, (क) रोगी की दशा अच्छी नहीं है । (ख) पहले मैंने इस मकान को अच्छी दशा में देखा था । (२) मनुष्य के जीवन की अवस्था ।

विशेष—मानव जीवन की दस दरापू मानी गई हैं—गर्भ-वास, जन्म, चाल्य, कौमार, योगंड, यौवन, स्थाविर्य, जरा, प्राणरोध और नाश ।

(३) साहित्य में रस के श्रंतगत विरही की अवस्था ।

विशेष—ये अवस्थाएँ दस हैं—प्रभिलाप, चिंता, स्मरण, गुण-कथन, उद्वेग, प्रलाप, उन्माद, व्याधि, जड़ता और मरण ।

(४) कवित्त ज्योतिष के अनुसार मनुष्य के जीवन में प्रत्येक प्रह का नियत भोगकाल ।

विशेष—दशा निकालने में कोई मनुष्य की पूरी आयु १२० वर्ष की मानकर चजते हैं और कोई १०० वर्ष की । पहली रीति के अनुसार निर्धारित दशा विंशोत्तरी और दूसरी के अनुसार निर्धारित अष्टोत्तरी कहलाती है । आयु के पूरे काल में प्रत्येक प्रह के भोग के लिये वर्षों की अलग अलग संख्या नियत है—जैसे, अष्टोत्तरी रीति के अनुसार सूर्य की दशा ६ वर्ष, चंद्रमा की १५ वर्ष, मंगल की ८ वर्ष, बुध की १७ वर्ष, शनि की १० वर्ष, बृहस्पति की १६ वर्ष, राहु की १२ वर्ष और शुक्र की २१ वर्ष मानी गई है । दशा जन्म-काल के नपच के अनुसार मानी जाती है । जैसे, यदि जन्म कृत्तिका, रोहिणी वा मृगशिरा नपच में होगा तो सूर्य की दशा होगी; मकर, पुनर्वसु, पुष्य वा धरलेला नपच में होगा तो चंद्रमा की दशा; मघा, पूर्वाषाढयुगी या उत्तर-फाल्गुनी में होगा तो मंगल की दशा; हस्त, चित्रा, स्वाती या विशाखा में होगा तो बुध की दशा; अश्लेषा, ज्येष्ठा वा मूल नपच में होगा तो शनि की दशा; पूर्वाषाढ, उत्तराषाढ, अश्लेषा वा अश्वय नपच में होगा तो बृहस्पति की दशा; धनिष्ठा, शतभिषा वा पूर्व भाद्रपद में होगा तो राहु की दशा और उत्तर भाद्रपद, रेवती, अश्लेषा या मर्यादी नपच में होगा तो शुक्र की दशा होगी । प्रत्येक प्रह की दशा का फल अलग अलग निर्दिष्ट है—जैसे, सूर्य की दशा में चित्त

को बड़ेग, धनहानि, बलेरा, विदेशगमन, बंधन, राजनीडा हत्यादि । चंद्रमा की दशा में ऐश्वर्य, राजसम्मान, रत्न बाहन की प्राप्ति इत्यादि ।

प्रत्येक प्रह के नियत भोगकाल वा दशा के श्रंतगत भी एक एक प्रह का भोगकाल नियत है जिसे श्रंतदशा कहते हैं । रवि-दशा को क्षीनिप जो ६ वर्ष की है । श्रव इन ६ वर्षों के बीच सूर्य की अपनी दशा ४ महीने की, चंद्रमा की १० महीने की, मंगल की २ महीने की, बुध की ११ महीने २० दिन की, शनि की ६ महीने २० दिन की, बृहस्पति की १ वर्ष २० दिन की, राहु की ८ महीने की, शुक्र की १ वर्ष २ महीने की । इन श्रंतदशाओं के फल भी अलग अलग निरूपित हैं—जैसे, सूर्य की दशा में सूर्य की श्रंतदशा का फल राजदंड, मनकाप, विदेश-गमन इत्यादि; सूर्य की दशा में चंद्र की श्रंतदशा का फल शत्रु-नाश, योगशांति, वित्तलाभ इत्यादि ।

ऊपर जो हिसाब यतलाया गया है वह भाषमिकी दशा का है । पर योगिनी, वर्षिकी, क्षात्रिकी, सुकुंदा, पताकी, हरगौरी इत्यादि और भी दशाएँ हैं पर ऐसा लिखा है कि कलियुग में भाषमिकी दशा ही प्रचलन है ।

(२) दीप की दती । (३) चित्त । (४) कपड़े का छोर । वर्षांत ।

दशाकर्ष-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कपड़े का छोर वा श्रंचल । (२) दीपक । चिराग ।

दशाधिपति-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कवित्त ज्योतिष में दशाओं के अधिपति प्रह । (२) दस सैनिकों वा सिंहादियों का अधिकार । जमादार । (महाभारत)

दशानन-संज्ञा पुं० [सं०] रावण ।

दशानिक-संज्ञा पुं० [सं०] जमालगोटा ।

दशापवित्र-संज्ञा पुं० [सं०] श्राद्ध भादि में दान दिए जाने-वाले बहसंड ।

दशामय-संज्ञा पुं० [सं०] रुद्र ।

दशारुहा-संज्ञा स्त्री० [सं०] क्वैरलिका नाम की लता जो माखवा में होती है और जिससे कपड़े रंगे जाते हैं ।

दशाशा-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विंध्य पर्वत के पूर्व-दक्षिण की ओर स्थित उस प्रदेश का प्राचीन नाम जिससे होकर घसतन नदी बहती है । मेघदूत से पता चलता है कि विदिरा (चायुनिक मिलसा) इसी प्रदेश की राजधानी थी । टालमी ने इस प्रदेश का नाम दोसारन (Dosaron) लिखा है । (२) एक देश का निवासी वा राजा । (३) तंत्र का एक दशाधर मंत्र । (४) जैन दुराय के अनुसार एक रामा जिसने तीर्थंकर के दर्शन के निमित्त जाकर अभिमान किया था ।

तीर्थकर के प्रसाप से इसे वर्षा १६७७२१६००० इन्द्र और १६३७०२७२००००००००० इन्द्राग्निर्वा दिशाई पर्वी और वसका गर्व चूर्ण हो गया।

दशाशौ—संज्ञा स्त्री० [सं०] घसान नदी जो विंध्यचक्र से निकल कर पुंदेलखंड के कुछ भाग में बहती हुई काजप्री के पास जमुना में मिल जाती है।

दशाश्व—संज्ञा पुं० [सं०] (१) दस का आधा पौष। (२) दश-पक्षों से युक्त बुद्धदेव।

दशाह्न—संज्ञा पुं० [सं०] (१) ऋष्यवंशीय छट राजा का पुत्र। (२) राजा वृष्य का पौत्र। (३) वृष्यवंशीय पुरुष। (४) वृष्यवंशियों का अग्रिष्ठत देस।

दशाभ्य—संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा (जिसके रथ में दस घोड़े बगते हैं)।

दशाभ्यमेघ—संज्ञा पुं० [सं०] (१) कारी के अंतर्गत एक तीर्थ। विशेष—काशीखंड में लिखा है कि राजपि' दिवोदास की सहायता से महा ने इस स्थान पर दस अश्वमेध यज्ञ विप्ये थे। पहले यह तीर्थे कद्रसरोवर के नाम से प्रसिद्ध था। महा ने यज्ञ के पीछे दशाश्वमेध कहा जाने लगा। महा ने इस स्थान पर दशाश्वमेधर मामक शिवलिंग स्थापित किया था। जो लोग इस तीर्थ में स्नान करके शिवलिंग का दर्शन करते हैं उनके सब पाप छूट जाते हैं। (२) प्रयाग के अंतर्गत त्रिवेणी के पास यह घाट या तीर्थ-स्थान जहाँ यात्री जन्न मरते हैं। लोगों का विश्वास है कि इस स्थान का जल विगड़ता नहीं।

दशास्य—संज्ञा पुं० [सं०] दशमुख। रावण।

दशाह—संज्ञा पुं० [सं०] (१) दस दिन। (२) मृतक के कृत्य का दसवाँ दिन।

विशेष—गृह्यसूत्रों में मृतक कर्म तीन ही दिनों का माना गया है। पहले दिन शयनानकृत्य और अस्थिसंचय, दूसरे दिन रुद्रयाग, चौथे आदि और तीसरे दिन सपिंडीकरण। स्मृतियों ने पहले दिन के कृत्य का दस दिनों तक विस्तार किया है तिनमें प्रत्येक दिन एक एक पिंड एक एक अंग की पूर्ति के लिये दिया जाता है। पर ग्यारहवें दिन के कृत्य में अथ भी द्वितीयाह्न संस्करण का पाठ होता है।

दस-वि० [सं० दश] (१) पौष का दूना। जो गिनती में नौ से एक अधिक है। (२) कई। बहुत से। जैसे, (क) दस भाइयों जो कई बसे मानना चाहिये। (ख) वहाँ दस तरह की चीजें देखने को मिलेंगी।

संज्ञा पुं० (१) पौष की दूनी संख्या। (२) एक संख्या का सूचक अंक जो इस प्रकार लिखा जाता है—१०।

दसखत]—संज्ञा पुं० दे० "दसखत"।

दसठान—संज्ञा पुं० [सं० दश + स्थान] यथा कानने के समय की

एक रीति जिसके अनुसार प्रसूता की दसवें दिन गहा कर लौरी के घर से दूसरे घर में जाती है।

दसने^०—संज्ञा पुं० दे० "दशान"।

दसना-कि० अ० [हिं० दसना] विद्युता। बिद्युता आना। फैलाना।

कि० सं० विद्युता। विस्तर फैलाना। इ०—विवेक से। अनेकधा दसे अनुप आसने। अनर्थ अर्थ आदि है विनय किये घने घने।—केशव।

संज्ञा पुं० विद्युता। विस्तर।

कि० सं० दे० "दसना"।

दसमरिया—संज्ञा स्त्री० [हिं० दस + मरना] एक प्रकार की बर-साती यड़ी नाथ जिसमें दस तपते लंबाई के धड़ लगे होते हैं।

दसमाथ^०—संज्ञा पुं० [हिं० दस + माथ] रावण। इ०—सुनु दस-माथ। नाथ साथ के हमारे कपि हाथ लंका लाह है ती रईगी धरती ली।—सुलसी।

दसमी—संज्ञा स्त्री० दे० "दशमी"।

दसरंग—संज्ञा पुं० [हिं० दस + रंग] मलखंभ की एक कसरत जिस में कमरेटा करके जिधर का पैर मलखंभ को छपेटे रहता है उधर के हाथ को लीधी पकड़ से मलखंभ में छपेट कर और दूसरे हाथ को भी पीछे से फँसा कर सवारी बाँधते तथा और अनेक प्रकार की मुद्राएँ करते हुए नीचे ऊपर खस-कते हैं।

दसरान—संज्ञा पुं० [हिं० दस + रान ?] कुत्ती का एक पेश।

दसदाँ-वि० [सं० दशम] जिसका स्थान नौ और वस्तुओं के बराबर पड़ता हो। जो क्रम में नौ और वस्तुओं के पीछे हो। गिनती के क्रम में जिसका स्थान दस पर हो। जैसे, दसवाँ बड़का।

दसांग—संज्ञा पुं० दे० "दशान"।

दसा—संज्ञा स्त्री० दे० "दशा"।

संज्ञा पुं० [हिं० दस] अंगरवाज वैश्यों के दो प्रधान भेदों में से एक।

दसारन—संज्ञा पुं० दे० "दशाश्व"।

दसासी—संज्ञा स्त्री० [दे०] एक चिड़िया जो पानी के किनारे रहती है।

दसी—संज्ञा स्त्री० [सं० दश] (१) कपड़े के छोर पर का सूत। छुरी। (२) कपड़े का पछा। धान का काँचल। इ०—जाता है जिस जान दे, तेरी दसी न जाय।—कबीर। (३) बैजबाड़ी की पटरी। (४) चमड़ा छीकने का औजार। रापी। (५) पता। निशान। चिह्न।

दसेदू—संज्ञा पुं० [दे०] कंदू। सेंदू का पेश।

दसी—संज्ञा स्त्री० [सं० दशमी, हिं० दसई] दशमी तिथि।

दसोतरा-वि० [सं० दसोतर] दस ऊपर । दस अधिक । जैसे, दसोतरा सौ अर्थात् एक सौ दस ।

उंशा पु० सौ में दस । सैकड़ा पीछे दस का भाग ।

दसौंधी-उंशा पु० [सं० दस = दानपान + धंदा = भाट] बंदिनों या चारणों की एक जाति जो अपने को महाशय कहती है । महाभट्ट । भाट । राजाओं की संशयली और प्रशंसा करने-वाला पुरुष । ष०—(क) राजा रहा दृष्टि करि सौंधी । रहि न सका सच भाट दसौंधी ।—जायसी । (ख) देस देस लें दाढ़ी भाप मनवांछित फल पाये । को कहि सकै दसौंधी इनको भये सबन मन भाये ।—सूर ।

दस्त-दासी-उंशा छ० [फा०] किसी काम में हाथ डालने की क्रिया । किसी होते हुए काम में छेड़ छाड़ । दस्तपे । दख ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

दस्त-उंशा पु० [फा०] (१) पतला पायखाना । पानी ऐसा मज गिरने की क्रिया । विरेचन ।

क्रि० प्र०—घाना ।—होना ।

मुहा०—दस्त लगना = मज निकलने का वेग जन पड़ना । पायखाना लगना ।

(२) हाथ ।

धै०—दस्तकार । दस्तखत । दस्तगीर । दस्तपनाह । दस्तपरदार । दस्तक-उंशा छ० [फा०] (१) हाथ मार कर खटखट शब्द उत्पन्न करने की क्रिया । खटखटाने की क्रिया । (२) बुझाने के लिये दरवाने की कुंजी खटखटाने की क्रिया । घर के भीतर के लोगों के बुझाने के लिये याहर से किवाड़ पर हाथ मारने की क्रिया ।

मुहा०—दस्तक देना = बुझाने के लिये किवाड़ खटखटाना ।

(३) किसी से देना या मालगुमारी वसूल करने के लिये निकास हुआ हुजमनामा । वह आजापत्र जिसे लेकर कोई सिपाही देना या मालगुमारी वसूल करने के लिये चाये । गिरनारी या वसूली का परवाना ।

क्रि० प्र०—घाना ।

धै०—दस्तक सिपाही = वह सिपाही जो किसी से मालगुमारी आदि वसूल करने या किसी को पकड़ने के लिये तैनात हो ।

(४) माल आदि ले जाने का परवाना । निकास की चिट्ठी । राहदारी का परवाना । (५) कर । महसूल । टैक्स । पॉस ।

क्रि० प्र०—खगारना ।

मुहा०—दस्तक बंधना या लगाना—अर्थ का व्यय ऊपर डालना । नाहक का लवर् जिम्मे करना ।

दस्तकार-उंशा पु० [फा०] हाथ का कारीगर । हाथ से कारीगरी का काम करनेवाला आदमी ।

दस्तकारी-उंशा छ० [फा०] हाथ की कारीगरी । कला सर्व-

घिनी यह सुंदर रचना जो हाथ से की जाय । जैसे, बेल्-यूटे काढ़ना आदि ।

दस्तखत-उंशा पु० [फा०] घरने हाथ का लिखा हुआ नाम । हस्ताक्षर । जैसे, उस दस्तावेज पर तुम कमी दस्तखत न करना ।

विशेष—जिस लेख के नीचे किसी का दस्तखत होता है वह वही का लिखा हुआ समझा जाता है, अतः बस लेख में जो बातें होती हैं उन्हें स्वीकार या पूरी करने के लिये वह नियम के अनुसार वाच्य होता है ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

मुहा०—दस्तखत खोना = दस्तखत कराना । किसी का नाम उठ के हाथ से लिखवा लेना ।

दस्तखती-वि० [फा० दस्तखत] जिस पर दस्तखत हो । (शेख)

जिसपर लिखने या लिखानेवाले का नाम वही के हाथ का लिखा हो । जैसे, दस्तखती चिट्ठी ।

दस्तगीर-उंशा पु० [फा०] हाथ पकड़नेवाला । सहारा देनेवाला । सहायक । मददगार । ष०—दस्तगीर गाड़े कर सापी ।—जायसी ।

दस्तपनाह-उंशा पु० [फा०] चिमटा ।

दस्तघरदार-वि० [फा०] जो किसी काम से हाथ हटा ले । जो किसी वस्तु पर से अपना हाथ या अधिकार ठग ले । जो कोई बल छोड़ दे या किसी बात से राज रहे ।

मुहा०—दस्तघरदार होना = राज खाना । किसी वस्तु पर का अपना अधिकार छोड़ देना । छोड़ देना । त्याग देना । जैसे, बाग तुम मकान से दस्तघरदार हो जाओ तो हम १०००) और दें ।

दस्तघरदारी-उंशा छ० [फा०] (१) त्याग । (२) त्यागपत्र ।

दस्तयाव-वि० [फा०] हस्तगत । प्राप्त ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

दस्तरखान-उंशा पु० [फा०] वह चादर जिसपर खाना रखा जाता है । चौकी पर की यह चादर जिसपर भोजन की यात्री रखते हैं । (सुखबाना)

दस्ता-उंशा पु० [फा० दस्त] (१) वह जो हाथ में चाये या रहे ।

(२) किसी चीज़ आदि का वह हिस्सा जो हाथ से पकड़ा जाता है । मूठ । घेंट । जैसे, छुरी का दस्ता । (३) कुर्छों का गुच्छा । गुच्छदस्ता । (४) एक प्रकार की धुंधी जो चोगे या कबा पर खगती है । (५) सिपाहियों का छोटा दल । मापद । (६) चपरास । सीसाक । (७) किसी वस्तु का बतना गट्टा या पूजा नितना हाथ में आ सके । (८) कागज के चौबीस तापों की गट्टी । (९) सोंटा । डंडा । गदका ।

उंशा पु० [देग०] एक प्रकार का धागा । हरगिजा ।

संज्ञा पुं० दे० "जस्ता" ।

दस्ताना—संज्ञा पुं० [फा० दस्तानः] (१) पंजे और हथेली में पहनने का बुना हुआ कपड़ा । हाथ का भोजा । (२) यह लंबी किचें या स्त्रीधी तलवार जिसकी मूठ के ऊपर कलाई तक पहुँचनेवाला कोड़े का परदा लगा रहता है । (यह सुदरम में तानिये के साथ प्रायः निकलता है)

दस्तावर—वि० [फा०] जिससे दस्त आवे । विरेचक । जैसे, दस्तावर दवा ।

दस्तावेज—संज्ञा स्त्री० [फा०] वह कागज जिसमें दो या कई श्राद्धियों के बीच के व्यवहार की बात लिखी हो और जिसपर व्यवहार करनेवालों के दस्तलखत हों । व्यवहार-संबंधी लेख । यह पत्र जिसे लिखकर किसी ने कोई प्रतिज्ञा की हो, किसी प्रकार का श्रय या देना स्वीकार किया हो अथवा द्रव्य संपत्ति आदि का लेन देन किया हो । जैसे, तमस्तुक, रहननामा, किशाना इत्यादि ।

क्रि० प्र०—लिखना ।

दस्तावेजी—वि० [फा० दस्तावेज] दस्तावेज संबंधी । दस्तावेज का । जैसे, दस्तावेजी रूपया, दस्तावेजी कागज ।

दस्ती—वि० [फा० दस्त = हाथ] हाथ का ।

संज्ञा स्त्री० (१) हाथ में लेकर चलने की मत्ती । मराठा । (२) छोटी मूठ । छोटा डेंट । (३) छोटा फलमदान । (४) वह सौगात जिसे विजयादशमी के दिन राजा लोग अपने हाथ से सरदारों और अफसरों को धाँतते हैं । (५) कुस्ती का एक पैच जिसमें पहलवान अपने जोड़ू का दहिना हाथ दहिने हाथ से अथवा बायाँ हाथ बायें हाथ से पकड़ कर अपनी शौर खींचता है और ऋत पीछे जाकर ऋटके के द्वारा उसे पटक देता है ।

दस्तूर—संज्ञा पुं० [फा] (१) रीति । रस्म । रवाज । चाल । प्रथा । (२) नियम । क़ायदा । विधि । (३) पारसियों का पुरोहित जो उनके धर्म ग्रंथ के अनुसार कर्मकांड करता है । (४) जहान्न के वे छोटे पाज जो सबसे ऊपरवाले पाज के नीचे की पंक्ति में दोनों ओर होते हैं । (छरा०)

दस्तूरी—संज्ञा स्त्री० [फा० दस्तूर] वह द्रव्य जो नौकर अपने मालिक का सौदा लेने में दूकानदारों से हक के तौर पर पाते हैं । (दस्तूरी का कुछ पैसा हिसाब होता है जैसे, एक रुपये के सौदे में दो पैसे ।)

दस्तपना—संज्ञा पुं० [फा० दस्तपनाह] चिमटा ।

दस्तु—संज्ञा पुं० [सं०] (१) दाह । घोर । (२) अश्रु । अगार्य । श्लेष्म । दास ।

विशेष—दस्तुओं का वर्षान वेदों में बहुत मिलता है । आर्यों के भारतवर्ष में चारों ओर फैलने के पहले ये छोटी छोटी बस्तियों में हथर वधर रहते थे और आर्यों को अनेक

प्रकार के कप पहुँचाते थे, इनके यज्ञों में विभिन्न बालते थे, इनके चौपाए चुरा ले जाते थे तथा और भी अनेक प्रकार के उपद्रव करते थे । अनेक मंत्रों में इन वृद्धीन, अमातुप दस्तुओं का नाश करने की प्रार्थना इंद्र से की गई है । नमुचि, शंभर और वृत्र नामक दस्तुपतियों के इंद्र के हाथ से मारे जाने का उल्लेख ऋग्वेद में कई स्थानों पर है । जैसे, "हे इंद्र ! तुमने दस्तु शंभर की सौ से अधिक पुरियों के, नष्ट किया ।" "हे इंद्राग्नि ! तुमने एक बार में ही दासों की नन्हे पुरियों को हिला डाला ।" "हे इंद्र ! तुमने कुलितर के पुत्र दास शंभर को जँचे पर्वत के ऊपर सुँह के बल गिरा कर मार डाला ।" "तुमने नमुचियों के सुख की हृच्छा से दास नमुचि का सिर चूँया किया ।" वेदों में दस्तुओं के लिये "दास" और "असु" शब्द भी आए हैं । इन दस्तुओं के "पयि" आदि कई अर्थ थे । पीछे जब कुछ दस्तु सेवा आदि के लिये मित्रा जिप गए तब उनकी उत्पत्ति के संबंध में कुछ कथाएँ कथित की गईं । ऐतरेय ब्राह्मण में वे विश्वामित्र द्वारा शपथ और शाप द्वारा ऋत बतलाए गए हैं । मनुस्मृति में लिखा है कि "ब्राह्मणों, पतियों, वैश्यों और शूद्रों में जो क्रिया-लुप्त और जाति बाहर हो गए हैं वे तब चाहे श्लेष्म भाषी हों चाहे आर्यभाषी, दस्तु कहलाते हैं" । महाभारत में लिखा है कि "अर्जुन ने दुर्यों के सहित कांबोज तथा उत्तर-पूर्व के जो दस्तु थे उन्हें भी पास्त किया ।" द्रौपदीपर्व में दार्जीवाले दस्तुओं का भी उल्लेख है । इन दस्तुओं के बीच निवास करना ब्राह्मण आदि के लिये निषिद्ध था ।

दस्तुता—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) लुटेरापन । डकैती । (२) राज-पन । हुदता । मूर स्वभाव ।

दस्तुशुचि—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) डकैती । लुटेरापन । (२) चोरी ।

दस्तुहनु—संज्ञा पुं० [सं०] (असुरों को मारनेवाले) इंद्र ।

दस्त—संज्ञा पुं० [सं०] (१) शिशिर । (२) गद्दा । (३) अरिषनी-कुमार । (४) दो का समूह । जोड़ा ।

वि० (१) दोहरा । (२) हिंसा करनेवाला ।

दह—संज्ञा पुं० [सं० दूद (अर्थ विपश्य)] (१) नदी में वह स्थान जहाँ पानी बहुत गहरा हो । नदी के भीतर का गहवा । पाल । व०—लै वसुदेव जैसे दह सासुहि तिहँ लोक उभियते धो ।—सूर ।

धी०—काजीबह ।

(२) कुंड । हौजू । व०—टोपन दूटि उठै अस्ति सच्छी । पद में मनी उच्छ्रुलै मच्छी ।—बाज ।

संज्ञा स्त्री० [सं० दहन] ज्वाला । जपट । ली ।

वि० [फा०] दस । व०—(क) भादों घोर राति धँधिपारी ।

द्वारकपाट फोट भट रोके दह-दिसि कंस भयभारी ।—सूर ।
(ख) हाट धाट नहि जाहि निहारी । जनु पुर दह दिसि
भागि दवारी ।—तुलसी ।

दहक-संज्ञा स्त्री० [सं० दहन] (१) भाग दहकने की क्रिया ।
धधक । दाह । (२) ज्वाला । लपट । † (३) शर्म । हया ।
जज्जा ।

दहकन-संज्ञा स्त्री० [हि० दहकना] दहकने की क्रिया या भाव ।
दहकना-क्रि० प्र० [सं० दहन] (१) ऐसा जलना कि लपट
ऊपर धटे । लौ के साथ धकना । धधकना । भड़कना । जैसे,
भाग दहकना, कोयला दहकना । उ०—शंग शंग भागि
ऐसे केसर के भीर छागे, घीर लालो बरन, धवीर लागे दह-
कन ।—सेवक ।

संयो० क्रि०—उठना ।—जाना ।

(२) शरीर का गरम होना । तपना । धिक्कना ।

संयो० क्रि०—ग्राना ।

दहकाना-क्रि० सं० [हि० दहकना] (१) धधकाना । ऐसा जलाना
कि लौ ऊपर धटे ।

संयो० क्रि०—देना ।

(२) भड़काना । क्रोध दिलाना ।

संयो० क्रि०—देना ।

दहगगी-संज्ञा स्त्री० [हि० दाह + गग] गामी । ताय ।

दहड़ दहड़-क्रि० वि० [सं० दहन वा धनु०] लपट फेंकते हुए ।
धायें धायें । जैसे, दहड़ दहड़ जलना । उ०—हस बीच देखते
क्या हैं कि धन धारों धोर से दहड़ दहड़ जलता खला धाता
है ।—लखरू ।

दहदल-संज्ञा स्त्री० दे० “दहदल” ।

दहन-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० दहन्य, दह्यमान] (१) जलने की
क्रिया या भाव । भस्म होने या करने की क्रिया । दाह ।
जैसे, लंकादहन ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

(२) शक्ति । शारा । (३) कृत्तिका नक्षत्र । (४) तीन की
संख्या । (५) भिलावा । भल्लोत्क । (६) चित्रक । चीता ।
(७) हुट या मोची मनुष्य । (८) कचूर । कपोत । (९)
एक रुद्र का नाम । (१०) ज्योतिष में एक योग जो पूर्वा-
भाद्रपद, अक्षाभाद्रपद और रेवती इन तीन नक्षत्रों में शुक्र,
के होने पर होता है । (११) ज्योतिष में एक वीधी जो पूर्वा-
पाठ और उत्तरापाठ नक्षत्रों में शुक्र के होने पर होती है ।

दहनकेतन-संज्ञा पुं० [सं०] धन । धूर्य ।

दहनद्वी-संज्ञा पुं० [सं०] कृत्तिका नक्षत्र ।

दहनशील-वि० [सं०] जलनेवाला ।

दहना-क्रि० प्र० [सं० दहन] (१) जलना । धकना । भस्म
होना । उ०—जियरा उठयो सो धोले, हियरा घकयोई करै,

झाई पियराई, तन सियराई सो दहै ।—ध्यानंदवन । (२)
क्रोध से संतप्त होना । कुड़ना ।

क्रि० सं० (१) जलाना । भस्म करना । उ०—उलटी गाढ़
परी दुर्गासा दहत सुदसंन जाहो ।—सूर । (२) संतप्त करना ।
कुड़ी करना । कष्ट पहुँचाना । उ०—ये घरदाई लुगाईं सभै
निसि घोस निवान हमें दहती हैं ।—निवात्र । (३) क्रोध
दिलाना । कुड़ना ।

क्रि० प्र० [हि० दह] धँसना । नीचे बैठना ।

वि० दे० “दहिना” ।

दहनि-संज्ञा स्त्री० [हि० दहना] जलने की क्रिया । जजन । उ०—
अंतर उदेग दाह, चाखिन धासु प्रवाह, देखी धटपटी चाह
भीजनि दहनि है ।—ध्यानंदवन ।

दहनीय-वि० [सं०] जलने या जलाए जाने योग्य ।

दहनौपल-संज्ञा पुं० [सं०] सूर्यकांत मणि । सूर्यमुखी । श्रावरी
शिया ।

दहपट-वि० [प्रा० दह = दस, दसो टिगा + पट = समतल, जैसे,
चोपट] (१) गिरा कर जमीन के बराबर किया हुआ । ढाया
हुआ । प्यस्त । चौपट । नष्ट । उ०—सूरदास प्रभु रघुपति
थाप दहपट भई लंका ।—सूर । (२) रौंदा हुआ । कुचड़ा
हुआ । दलित ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

दहपटना-क्रि० सं० [हि० दहपट] (१) ढाना । प्यस्त करना ।
चौपट करना । नष्ट करना । (२) रौंदाना । कुचलना । दलित
करना । उ०—याखिहु गव्यं जिय माहिं ऐसो कियो, मारि
दहपटि, दिशो जम की धानी ।—तुलसी ।

दहषासी-संज्ञा पुं० [का० दह = दस + षासी (प्रत्य०)] दसतिरा-
दियों का सरदार ।

दहूर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) छोटा पुरा । लुहिया । (२) दहूर-
दूर । (३) भ्राता । भाई । (४) बाबूक । (५) नरक ।
(६) वरुण ।

वि० (१) स्वल्प । छोटा । (२) सूक्ष्म । (३) दुर्बल ।

संज्ञा पुं० [सं० हर (अर्थात् विषयव्यं)] (१) दह । नदी में
गहरा स्थान । उ०—अति अचगरी फरत मोहन फटक
गेंडुरी दहर ।—सूर । (२) कुंड । हीज । गड्ढा । पाल ।

दहर दहर-क्रि० वि० [प्रु० वा दहन = जलना] लपट फेंकते
हुए । धधकते हुए । धायें धायें । जैसे, दहर दहर जलना ।

दहरना-क्रि० प्र० दे० “दहकना” ।

क्रि० सं० दे० “दहलाना” । उ०—सूर प्रभु धाय गोकुल
प्रगठ भय संतन दै हरख, टुट जत मन दहर के ।—सूर ।

दहराकाश-संज्ञा पुं० [सं०] विदाकाश । ईश्वर ।

दहल-संज्ञा स्त्री० [हि० दहलना] डर से एक बारगी कपि उठने
की क्रिया ।

प्रकार के दाँत होते हैं। दाँत तीन प्रकार के होते हैं—

- (१) चौका या राजदंत वर्ग (सामने के दो बड़े दाँत अर्थात् राजदंत और उनके दोनों पारवैषर्षी दाँत), (२) कुकुनदंत या शूलदंत, जो लंबे और सुधीले होते हैं और राजदंत के बाद दो दो पड़ते हैं, (३) चोमदंत जिन्का सिरा चौड़ा और चौकोर होता है और जिससे पीसा या चबाया जाता है। २१ या २२ वर्ष की अवस्था में जब आखिरी चोमदंत या अक्रिलदाद निकलती है तब ३२ दाँत पूरे हो जाते हैं। बहुत से दूध पिलानेवाले जीवों को दो बार दाँत निकलते हैं। पहले बचपन में जो दूध के दाँत निकलते हैं वे झड़ जाते हैं। पीछे स्थायी दाँत निकलते हैं। दूध के दाँतों और स्थायी दाँतों की संख्या और आकृति में भी भेद होता है। मनुष्य के बच्चों में दूध के दाँत बीस होते हैं। सर्प आदि विषम जंतुओं के दाँत के भीतर एक नली होती है जिसके द्वारा यैली से विष बाहर होता है।

पर्याय—२द। दरान। द्विज। सर।

दो०—दाँत का चौका = सामने के चार दाँतों की छड़ी।

मुहा०—दाँत उखाड़ना = (१) दाँत मसूड़े से अलग करना। (२) गुड़ तोड़ना। कठिन दंड देना। दाँतों उँगली काटना = दे० “दाँत तले उँगली दशाना”। दाँतकाठी रोटी = अत्यंत घनिष्ठ मित्रता। गहरी दोस्ती। घना भेद। जैसे, राम और श्याम की तो दाँतकाठी रोटी है। † दाँत काड़ना = दे० “दाँत निकाशना”। दाँत कितकिटाना, दाँत किचकिचाना = (१) दाँत पीसना। (२) मोघ से दाँत पीसना। अत्यंत मोघ प्रकट करना। दाँत किरकिराना = (कि० अ०) नीचे फंकड़ी, रेत आदि पड़ने के कारण दाँतों का ठीक न चलना। दाँत किरकिरे होना = हार मानना। हार जाना। घुरन हो जाना। दाँत कुरीबने को तिनका न रहना = पास में कुछ न रह जाना। सर्वैव चला जाना। दाँत खट्टे करना = (१) खूब हँसान करना। (२) किसी प्रकार की प्रतिद्वंद्विता या लड़ाई में परास्त करना। पस्त करना। जैसे, सरहदों में मुगलों के दाँत खट्टे कर दिए। ४०—चूतन नूतन यंत्र प्रस्तुत कर विज्ञायती व्यापारियों के दाँत खट्टे करने के लिये शतराः प्रयत्न किए जा रहे हैं।—निर्धनमालादर्शी। दाँत खट्टे होना = हार जाना। पस्त होना। घुरन होना। † (किसी पर) दाँत गड़ना = दे० “(किसी पर) दाँत लगना”। किसी के दाँतों चढ़ना = (१) किसी के आक्षेप आदि का लक्ष्य होना। किसी को खरकना। (२) बुरी नज़र का निशाना बनना। डोक में आना। हँस में आना। (खि०) जैसे, यथा लोगो के दाँतों चढ़ा रहता है हँसीसे कब नहीं पाता। (किसी के) दाँतों चढ़ाना = (१) किसी पर आक्षेप करते रहना। बुरी दृष्टि से देखना। पीछे पड़ा रहना। (२)

नज़र लगाना (खि०)। दाँत चबाना = मोघसे दाँत पीसना। कोप प्रकट करना। ४०—दाँत चयात चबे मधुपुर से घाम हमारे को।—सूर। दाँत जमना = दाँत निकलना। दाँत झड़ना = दाँत का टूट कर गिरना। दाँत मसूड़े देना = दाँत तोड़ डालना। कठिन दंड देना। दाँत टूटना = (१) दाँत का गिरना। (२) बुझाया आना। दाँत तले उँगली दशाना = (१) अचल में आना। चकित होना। दंग रहना। (२) खेद प्रकट करना। अफसोस करना। (३) संकेत से किसी बात का निवेध करना। इशारे से मना करना। (जब कोई कुछ अनुचित कार्य करने चलता है तब इष्ट मित्र या गुरुजन प्रकट रूप से वारण्य करने का अवसर न देख दाँतों के नीचे उँगली दबा कर निवेध करते हैं)। दाँत तोड़ना = परास्त करना। पस्त करना। घुरन करना। कठिन दंड देना। ४०—अलादीन के दाँत तोड़ि नित्र धर्म बचायो।—राधाकृत्यदास। दाँत दिखाना = (१) हँसना। (२) डराना। गुड़कना। (३) धपना बड़भन दिखाना। दाँत देखना = घोड़े बैल आदि की उम्र का अंदाज करने के लिये उनके दाँत गिनना। दाँतों धरती पकड़ कर = अत्यंत द्रिद्रता और कष्ट से। बड़ी किराफत और तकलीफ से। जैसे, दाँतों धरती पकड़ कर किसी प्रकार दो महीने चलाए। दाँत न लगाना = दाँतों से न कुचलना। जैसे, दाँत न लगाना, दबा यों ही उतार जाना। दाँत निकलना = बच्चों के दाँत प्रकट होना। दाँत जमना। दाँत निकाशना = (१) दाँत उखाड़ना। (२) ओठों को कुछ हटा कर दाँत दिखाना। (३) व्यर्थ हँसना। जैसे, क्यों दाँत निकालते हो सीधे बँदे। (४) गिड़गिड़ाना। दीनता दिखाना। हा हा खाना। जैसे, वह दाँत निकाल मॉगने लगा, तब कैसे न देते ? (५) मुँह बा देना। डें बैल देना। डर या पराहट से ठक रह जाना। (किसी वातु का) दाँत निकालना = फट जाना। दरार से युक्त होना। उघड़ना। जैसे, जूती का दाँत निकालना, दीवार का दाँत निकालना। † दाँत निकोसना = “दे० दाँत निकालना”। † दाँत निघोरना = दे० “दाँत निकाशना”। दाँत पर न रखा जाना = खयाद के कारण दाँतों को सहन न होना। अत्यंत खटा लगना। दाँत पर मेल न होना = अत्यंत निर्धन होना। भुखड़ होना। ४०—असके तो दाँत पर मेल भी नहीं वह मुँह देगा क्या ? दाँतों पर रखना = चलना। मुँह में डालना। दाँतों पसीना आना = कठिन परिश्रम पड़ना। ४०—इस काम में दाँतों पसीना आवेगा। (बच्चे का) दाँतों पर होना = उस अवस्था को पहुँचाना जिसमें दाँत निकलनेवाले हों। दाँत पीसना = दाँत पर दाँत रल कर दिखाना। दाँत कितकिटाना। दाँत चँपवाना = हिलते हुए दाँतों को तार से बंधवाना। दाँत बजना = सरदी से दाढ़ के छिन्ने या काँपने के कारण दाँत पर

दांत पड़ना। दांत खट खट होना। दांत बजाना = दांत पर दांत मोचना। दांत फिटकटिना। दांत बनवाना = गिरे हुए दांतों के स्थान में हड्डी या सीप आदि के नकली दांत लगवाना। दांत बैठ जाना = मूर्च्छा लकवा आदि में पेशियों की स्वभावता के कारण दांत की ऊपर नोचनेवाली पंक्तियों का परस्पर इष्ट प्रकार मिल जाना कि मुँह जल्दी न खुल सके। नीचे ऊपर के जबड़े का सट जाना। दांत मसमसाना, दांत मीसना = दे० "दांत पंथना"। (किसी का) दांतों में जीभ सा होना

= बैरियों के बंच रहना। शत्रुओं से प्रतिज्ञा पिरा रहना। दाँतों में तिनका खेना = दया के लिये बहुत विनती करना। दंढ आदि से छुटकारे के लिये बहुत गिड़गिड़ाना। बहुत श्मीला और विनय से घमा चाहना। ह्वा हा खाना। (किसी वस्तु पर) दांत रखना = (१) लेने की गहरी चाह रखना। प्राप्ति के प्रयत्न में रहना। (२) दंश रखना। किसी के प्रति शोध या द्वेष का भाव रखना। बैर लेने का विचार रखना। (किसी वस्तु पर) दांत खगना = (१) दांत पंथना। दांत चुमने का भाव होना। (२) लेने की गहरी चाह होना। प्राप्ति की चिंता होना। जैसे, जब कि उस चीज पर इतका दाँत खगा है तब वह कब तक रह सकती है। (शेर, बिल्ली आदि शिकारी जानवर जिस जंतु को एक बार मुँह से पकड़ लेते हैं फिर उसे जाने नहीं देते। इसीसे यह मुहा० बना है।) (किसी वस्तु पर) दाँत खगाना = (१) दाँत पंथना।

(२) लेने की गहरी चाह रखना। प्राप्ति के प्रयत्न में रहना। लेने की बात में रहना। दाँत से दाँत बजाना = सरदी के कारण दाढ़ के कोपने से दाँत पर दाँत पड़ना। दाँतों से बडाना = बड़ी कंठ्ठी से उठाकर रखना। कुपणता से संचित करना। जैसे, एक दाना गिरे तो यह दाँतों से बडाने। किसी पर दाँत होना = (१) गहरी चाह होना। लेने या पाने की अत्यंत अधिक इच्छा होना। प्राप्ति की इच्छा होना। जैसे, जिस वस्तु पर तुम्हारा दाँत है वह कब तक रह सकती है। (२) किसी के प्रति दंश होना। किसी के प्रति शोध या द्वेष का भाव होना। किसी से बैर लेने का संकल्प होना। जैसे, जब कि उस पर तुम्हारा दाँत है तब वह किसने दिनों तक बच सकता है? (किसी के) तालू में दाँत जमना = बुरे दिन आना। शमंत आना। जैसे, किसके तालू में दाँत जमे हैं जो ऐसी बात मुँह से निकाल सके?

(३) दाँत के आकार की निकली हुई वस्तु। शंकर की तरह निकली हुई सुकीली वस्तु जो बहुतें के साथ एक पंक्ति में हो। दंदाणा। दाँता। जैसे, धारी के दाँत, कंधी के दाँत।

दाँत-वि० [सं०] (१) जिसका दमन किया गया हो। बशीयूत। दबाया हुआ। (२) जिसने इंद्रियों को बर में कर लिया

हो। जिसका शरीर तप आदि का फेरा सह सके। (३) जो दाँत का पना हो। (४) दाँत-संबंधी। संज्ञा पुं० (१) मैनफल। (२) पहाड़ पर की थायली। (३) विदुर्भ के राजा भीमसेन के दूसरे पुत्र जो दमपंती के माई थे।

दाँतघुँघुनी-संज्ञा स्त्री० [हिं० दाँत + घुँघुनी] वेस्ट के दाँने की घुँघुनी जो बच्चे का पहला दाँत निकलने पर बाँटी जाती है।

दाँतना - कि० अ० [हिं० दाँत] (१) दाँतवाला होना। जवान होना। (पशुओं के लिये बोलते हैं)। (२) किसी हथियार की धार का इस प्रकार कठित होना कि वह कहीं उमर आये और कहीं दब जाय। मुड़कर जगद जगद गुठला हो जाना। जैसे, लुबहाड़ी का दाँतना।

दाँतली-संज्ञा स्त्री० [हिं० दाँत] दाँत। काग।

दाँता-संज्ञा पुं० [हिं० दाँत] दाँत के आकार का कंगूरा। रवा। शंकर की तरह निकली हुई सुकीली वस्तु जो बहुतें के साथ एक पंक्ति में हो। दंदाणा।

मुहा०—दाँता पड़ना = किसी हथियार की धार में गुठले होने के कारण उभार और गड्ढे हो जाना।

दाँता-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक अस्पृश का नाम। (महाभारत) दाँताकिटकिट-संज्ञा स्त्री० [हिं० दाँत + किटकिट (श्रुत०)] (१) कड़ा सुनी। कगड़ा। पागबुद्ध। (२) गाली गलौज।

कि० प्र०—करना।—मचना।—होना।

दाँताकिलकिल-संज्ञा स्त्री० दे० "दाँताकिटकिट"।

दाँति-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) इंद्रियनिग्रह। इंद्रियों का दमन। बलेश आदि सहने की शक्ति। (२) बश्रता। अचीनता। (३) विनय। मन्नता।

दाँतिया-संज्ञा पुं० [?] रेह का समक। रेह वा सोडा जिसे पीने के तंबाकू में उसे तेज करने के लिये डालते हैं।

दाँती-संज्ञा स्त्री० [सं० दाँती] (१) हँसिया जिससे घास या फसल काटते हैं। (२) वह पड़ा हुआ जो नाव के घाट पर गड़ा रहता है और जिससे नाव का रस्ता बाँध दिया जाता है। दंढा। (३) भिड़ (बँरे) की जाति का एक कीड़ा जो बहुत काला होता है। काली भिड़।

सहा स्त्री० [हिं० दाँत] (१) दाँतों की पंक्ति। दाँतावलि। बशीली।

मुहा०—दाँती बैठना या खगना = जबड़े का परस्पर सट जाना। ऊपर नीचे के दाँतों का इस प्रकार मिल जाना कि मुँह जल्दी न खुल सके। कच्चा बैठना।

(२) दो पहाड़ों के बीच की सँकरी जगह। दाँत।

दाँना-कि० सं० [सं० दमन] पक्की पसल के सँडलों को घँसों से इसलिये सँदवाना जिसमें सँडल से दाना खलग हो जाय।

द्वैती करना। व०—दूसलिये यदि वंश द्वारा छान दांपत्या जाय तो दो ही तीन दिन में संस दामा भी छलग हो जाय।—सेती की पदली पुस्तक।

दांपत्य-वि० [सं०] छी-पुरुष संबंधी। छी-पुरुष का सा। जैसे, दांपत्य प्रेम, दांपत्य भाव।

संज्ञा पुं० (१) दंपती से संबंध रखनेवाले अग्निहोत्र आदि कर्म। (२) छीपुरुष के बीच का प्रेम या व्यवहार।

दामिक-वि० [सं०] (१) दंबयुक्त। यंचक। पालंठी। आहंवर रखेवाला। धोखेवाज। (२) अहंकारी। घमंटी।

संज्ञा पुं० धगला। चक।

दायाँ—संज्ञा स्त्री० दे० “द्वैती”।

दायाँ-वि० दे० “दायाँ”।

दायाँ-संज्ञा पुं० दे० “दायाँ”।

दायिनो—संज्ञा स्त्री० [सं० दामिनी] दामिनी नाम का रहना।

दायिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० दाम] रखती। रगु। डोरी। व०—

दायिनी जी बचन लगी अनुदा है येपीर।—व्यास।

दा-संज्ञा पुं० [अ०] वितार का एक षोडश। उ०—दा द्वि द्वा इत्यादि।

दाह*संज्ञा पुं० दे० “दाय” और “दायँ”।

दाहजा-संज्ञा पुं० दे० “दायजा”।

दाहजा-संज्ञा पुं० दे० “दायजा”।

दाह-वि० स्त्री० [हिं० दायाँ] दाहिनी। जैसे, दाहँ अर्ध।

संज्ञा स्त्री० [सं० दाय (द्वय), हिं० दाँ (प्रत्यय)] घारी। दफा। धार। व०—तय नदिं जातेहु पीर पराहँ। अय कस रोवहु अपनि दाहँ।—विग्राम।

दाह-संज्ञा स्त्री० [सं० दायाँ, फ्रा० दायः] (१) दूबरे के चपचे में धरना दूध पिलानेवाली स्त्री। धाय।

धा०—दाहँ पिनाहँ।

(२) वह दासी जो बच्चे की देख रेत रखने या बच्चे खेजाने के लिये रखी जाय।

धा०—दाहँ रोलाहँ।

(३) वह स्त्री जो खिचों को बधा जनने में सहायता देती हो। प्रसूता के डरवार के लिये नियुक्त स्त्री।

धा०—दाहँ जनाहँ।

मुहा०—दाहँ से पेट छिपाना—जाननेवाले से फेई शाय छिपाना। ऐसे मनुष्य से फेई शाय छुप रखना जो छप रहल्य जानता हो। संज्ञा स्त्री० [हिं० दासी] (१) पिता की माता। दापी। (२) बड़ी बड़ी स्त्री।

*वि० दे० “दायी”।

दाहँ-संज्ञा पुं० दे० “दाह”। व०—सूक्त जुधारिदि अपान दाहः—एजलती।

दाह-संज्ञा पुं० [सं० देव] (१) बड़ा भाई। (२) बलदेव। बलराम। कृष्ण के बड़े भाई।

दाऊदखानी-संज्ञा पुं० [फा०] (१) एक प्रकार का चावल। व०—रायभोग और कामर रानी। किन्तु यरूद और दाऊदखानी।—जायसी। (२) उत्तम प्रकार का सफेद गेहूँ। दाऊदी गेहूँ। गंगाजकी गेहूँ।

दाऊदिया-संज्ञा पुं० [अ० दाऊ] (१) एक प्रकार का गेहूँ। दे० “दाऊदी” (२) गुलशायदी कूल। (३) एक प्रकार की आतिशबाजी जो छूटने पर दाऊदी कूल की तरह दिखाई पड़ती है। (४) एक प्रकार का कचर।

दाऊदी-संज्ञा पुं० [अ० दाऊ] एक प्रकार का गेहूँ जिसका छिलका बहुत सफेद और नरम होता है। यह सबसे अच्छा समझा जाता है।

विशेष—कहते हैं कि दिल्ली के बादशाह शाहजहाँ के एक दरबारी, जिनका नाम दाऊदखान था, इस गेहूँ को मिला देख ले खाए थे।

दाक्षायण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सोना। स्वर्ण। (२) आभूषण आदि सुवहरी चीजें। (३) स्वर्णमुद्रा। मोहर। धरारकी। (४) दण्ड द्वारा किया हुआ एक यज्ञ जिसकी कथा शतपथ ब्राह्मण में है।

वि० (१) दण्ड से शपथ। (२) दण्ड के योग्य था। (३) दण्ड का। दण्डसंबंधी। जैसे, दाक्षायण यज्ञ।

दाक्षायणी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) दण्ड की कन्या। (२) अग्नि आदि नष्ट। (३) रोहिणी नष्ट। (४) दंती वृष्ट। (५) दुर्गा। (६) कश्यप की स्त्री, अग्नि।

वि० [सं० दाक्षायण] सोने का। सुवर्णयुक्त।

दाक्षायणीपति-संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा।

दाक्षिकंथा-संज्ञा स्त्री० [सं०] वादिक देश।

दाक्षिण-संज्ञा पुं० [सं०] एक देश का नाम। (शतपथ ब्राह्मण)

वि० (१) दक्षिण संबंधी। (२) दक्षिणा संबंधी।

दाक्षिणात्य-वि० [सं०] दक्षिणी। दक्षिण देश का। जैसे, दाक्षिणात्य साहाय।

संज्ञा पुं० (१) दक्षिण देश। भारतवर्ष का यह भाग जो विंध्याचल के दक्षिण पड़ता है। दक्षिण खंड।

विशेष—इस खंड के अंतर्गत महाराष्ट्र, मलाबार, बंगाल, तैलंग, करनाटक, इत्यादि प्रदेश हैं। मर्मदा, तासी, गोदावरी, कृष्णा और कावेरी दक्षिण की प्रधान नदियाँ हैं। दे० ‘तामिल’, ‘तैलंग’, ‘महाराष्ट्र’।

(२) दक्षिण देश का निवासी। (३) नारियल।

दाक्षिणिक-संज्ञा पुं० [सं०] यह यंत्र जो दक्षिण प्रधान इशान् पक्ष आदि कर्मों को कामना पर करने से होता है। (याज्ञवल्क्य)

दाक्षिण्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अनुकूलता । किसी के हित की ओर प्रवृत्त होने का भाव । प्रसन्नता । (२) उदारता । सरलता । सुधीनता । (३) दूसरे के चित्त को फेरने या प्रसन्न करने का भाव । (४) साक्षि में वाक्य का एक अंग जिसमें वाक्य या चेष्टा द्वारा दूसरे के उपासीन या द्रमप्रसन्न चित्त को फेर कर प्रसन्न करने का भाव दिखाया जाता है । वि० (१) दक्षिण का । दक्षिण संबंधी । (२) दक्षिण संबंधी ।

दाक्षी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) दक्ष की कन्या । (२) पाणिनि की माता का नाम ।

यो०—दाक्षीयुव = पाणिनि ।

दाक्ष्य-संज्ञा पुं० [सं०] दक्षता । निपुण्यता । पटुता । कार्य-कुशलता ।

दास-संज्ञा स्त्री० [सं० दाना] (१) श्रृंग । (२) मुनका । (३) किशमिरा ।

दाखिल-वि० [फा०] (१) प्रविष्ट । घुसा हुआ । पैग हुआ । उ०—बीच बगीचा के मद्दल दाखिल भयो प्रसंस ।—गुमान ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

मुहा०—दाखिल करना = देना । भ्रष्ट करना । भर देना । जमा करना । उ०—इसने तुरंत सुरमाना दाखिल कर दिया । दाखिल होना = भ्रष्टा कर देना । क्षा कर जमा करना । (२) शरीक । मिला हुआ । जैसे, किसी गरोद में दाखिल होगा । (३) पहुँचा हुआ ।

यो०—दाखिलदारिज । दाखिल दफतर ।

दाखिलखारिज-संज्ञा पुं० [फा०] किसी सरकारी कागज़ पर से किसी जायदाद के हकदार का नाम काट कर उस पर उसके वारिस या किसी दूसरे हकदार का नाम लिखने का काम ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

दाखिल-दफतर-वि० [फा०] दफतर में इस प्रकार डाल रखा हुआ (कागज़) जिस पर कुछ विचार न किया जाय ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

दाखिला-संज्ञा पुं० [फा०] (१) प्रवेश । पैठ । (२) किसी संस्था, कार्यालय आदि में सम्मिलित किए जाने का कार्य । (३) वह कागज जिसमें उस वस्तु का ब्योरा लिखा हो जो कहीं दाखिल या जमा की जाय । (४) वह कागज जिस पर किसी वस्तु के जमा होने, भेजे जाने या वाप आने की मिति आदि टिकी हो ।

दाक्षी-संज्ञा स्त्री० दे० "दाक्षी" ।

दाग-संज्ञा पुं० [सं० दग्] (१) जलाने का काम । दाह । (२) श्लोक का दाहकर्म । मुद्दा जलाने की क्रिया ।

मुहा०—दाग देना = श्लोक का दाहकर्म करना । मुद्दे का क्रिया-कर्म करना ।

(२) जलन । दाह । उ०—उर मानिक की उरयनी डटत घटन दग दागु । कन्नकत चाहर कण्डि मनी पिय हिय को धनुराग ।—विहारी । (४) जलने का चिह्न ।

दाग-संज्ञा पुं० [फा०] [वि० दागी] (१) किसी वस्तु के रंग पर रंग का वह भेद जो योड़े से स्थान पर अलग दिखाई पड़ता है । घड्या । चिती । जैसे, (क) उस बिल्ली की पीठ पर कई रंग के दाग हैं । (ख) कपड़े पर का यह दाग धोखी से छूटेगा । उ०—तुलसी जो स्या मन मरे परै प्रेम पट दाग ।—तुलसी ।

क्रि० प्र०—पढ़ना ।—लगना ।

विशेष—इस शब्द का अधिकतर प्रयोग ऐसे धब्बे के लिये होता है जो लयकता या सुरा लगता हो ।

मुहा०—सफेद दाग = एक प्रकार का काढ़ जिससे शरीर पर सफेद सफेद धब्बे पड़ जाते हैं । कुत्त ।

(१) निराग । चिह्न । अंक । उ०—सुगनैनी सैनन भरी लखि येनी के दाग ।—विहारी ।

क्रि० प्र०—पढ़ना ।—लगना ।

यो०—दागबेल ।

(३) फल आदि पर पड़ा हुआ सड़ने का चिह्न । (४) कलंक । पेय । दीप । लाडलुन । उ०—युव बही मरि जाय जो कुल में दाग लगावै ।—गिरिधर ।

क्रि० प्र०—लगना ।—लगाना ।

(५) जलने का चिह्न ।

दागदार-वि० [फा०] (१) जिसपर दाग लगा हो । (२) धब्बेदार ।

दागना-क्रि० घ० [हिं० दाग] (१) जलाना । दग्ध करना । उ०—(क) बेग विवेग विषम विष-दागो ।—तुलसी । (ख) करि कंद को मंद दुचंद भई फिर दाखल के वर दागति हैं ।—पद्माकर । (२) तपे सोढ़े को घुला कर किसी के श्रंग को ऐसा जलाना कि चिह्न पड़ जाय । जैसे, साँड़ दागना, घोड़ा दागना ।

संयो० क्रि०—देना ।

(३) किसी धातु के तपे हुए सोंबे को छुला कर अंग पर उसका चिह्न डालना । तसमुदा से अंकित करना । जैसे, शंख-चक्र दागना । (४) किसी फोड़े आदि पर ऐसी सेंप दवा लगाना जिससे वह जल या सूख जाय । जैसे, कास्टिक या तेजाब से फुंसी दागना ।

संक्षे० क्रि०—देना ।

(५) भरी हुई बंदूक में बत्ती देना । रंजक में धाग लगाना ।

तोप, बंदूक आदि छोड़ना । जैसे, तोप दागना, बंदूक दागना ।

क्रि० सं० [फा० दाग] रंग आदि से चिह्न डालना । दाग लगाना । अंकित करना । उ०—कचहूँक वैदिक अंग भुज धरि के पीक करोखनि दागे ।—धुर ।

दागवेल—संज्ञा स्त्री० [फा० दाग + हि० वेलि] भूमि पर काबूड़े या कुदाल से बनाए हुए चिह्न जो सड़क बनाने, नौव खोदने आदि के लिये एक सीध में डाले जाते हैं । उ०—सबके सप बराबर एक कतार में खैनडोरी डाल कर और दागवेल लगा कर बनाए गए हैं ।—शिवप्रसाद ।

दागी—वि० [फा० दाग] (१) जिस पर दाग लगा हो । जिस पर धब्बा हो । (२) जिस पर सड़ने का चिह्न हो । जैसे, दागी फर । (३) कर्बकित । दोषयुक्त । लोहित । (४) दूषित जिसको सजा मिल चुकी हो ।

दाघ—संज्ञा पुं० [सं०] गरमी । ताप । दाह । जलन । उ०—(क) कहलाने एकत रहत अदि मयूर मृग बाघ । जगत तपोवन सो कियो दीरघ दाघ निदाघ ।—विहारी । (ख) वादि ही चंदन चार बिसै घनसत घनें घलि पंक बनावत । वादि उसीर समीर चहै दिन रैनै नुरैनि के पात विधायत । अग्रहि ताप मिथी द्विज देव सुदाघ निदाघ कि कौन कहावत । धावति तु मदि आवति थाज भयंक लजावत मोहन आवत ।—द्विजदेव ।

दाज—संज्ञा पुं० [?] (१) औंघेरी रात । (२) औंघेरा । दाजना—संज्ञा स्त्री० दे० "दाहन" ।

दाजना*—क्रि० प्र० [सं० दग्ध वा दाहन] (१) जलना । (२) हूँपा करना । शाह करना । उ०—दाजन दे तुर जीवन को अरु जाजन दे सजनी कुल धारे । साजन दे मन को नय नेम निवाजन दे मनमोहन प्यारे । गाजन दे ननदीन 'मुखाव' विराजन दे घर में गुण भारे । भाजन दे गुरु लोमान को डर याजन दे अथ नेह नगारे ।—गुलाब ।
क्रि० सं० जलाना ।

दाहन*—संज्ञा स्त्री० [सं० दहन] जलन । उ०—एरे सतगुरु के विना पूरा शिष्य न होय । गुरु लोमी शिप जालची दूनी दाहन तोप ।—कबीर ।

दाहना*—क्रि० प्र० [सं० दाहन] जलना । संतप्त होना । उ०—के विरहिनि कीं मीनु दे के थापा दितलाय । आठ पहर का दाहना मोये सदा न जाय ।—कबीर ।
क्रि० सं० जलाना ।

दाटना*—क्रि० सं० दे० "दाटना" ।
दाहक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) दाढ़ । हाड़ । (२) दाँत ।
दाहव—संज्ञा पुं० [?] भविष्य ब्रह्मखंड के अतुसार काशी से दो योजन परिचय एक ग्राम जिसमें कल्कि भग-

वान् अघर्मा म्नेरुओं का नाश करके शांति पूर्वक निवास करेगे ।

दाहस—संज्ञा पुं० [हि० दाह] एक प्रकार का साँप ।

दाहिम—संज्ञा पुं० [सं०] (१) अनार ।

धा०—दाहिम-प्रिय=सुधा । तोता ।
(२) हवायची ।

दाहिम पुष्पक—संज्ञा पुं० [सं०] रोहितक नामक एक रोहड़ा ।

दाहिम-प्रिय—संज्ञा पुं० [सं०] शुक । सुधा । तोता ।

दाहिमाएक—संज्ञा स्त्री० [सं०] वैद्यक में एक पौधे जिसमें अनार का छिलका पड़ता है ।

दाही—संज्ञा स्त्री० दे० "दाहिम" ।

दाह—संज्ञा स्त्री० [सं०] दंष्ट्रा, प्रा० हड्डा । मि० सं० दाहक, दाहा] जहड़े दे भीतर के मोटे चौड़े दाँत । चीमार ।

मुहा०—दाह न लगाना=दलि से न कुचलना । दाह गरम होना=खाना खाने में थाना ।

संज्ञा स्त्री० [प्रतु०] (१) मीपण शब्द । गरज । दहाड़ ।

जैसे, सिंह की दाह । (२) चिहाहट ।

मुहा०—दाह मार कर रोना=खुब चिहा चिहा कर रोना ।

उ०—रस्सी कटते ही मुँह=नीचे गिर पड़ा और गिरते ही दाह मार मार रोने लगा ।

दाहना*—क्रि० सं० [सं० दाहन] (१) जलना । आग में भस्म होना । उ०—(क) दाड़ा राहू केतु गा दाधा । सूरज जग चाँद जग आधा ।—जायसी । (ख) देखे लोग विरह दन दाड़े ।—तुलसी । (ग) वेहै सजीक निचोख सजे सप देव घरे विरहानख दाड़ी ।—पेनीपवीन । (२) संतप्त करना । हुसी करना ।

दाहणी—संज्ञा पुं० दे० "दाह" ।

संज्ञा पुं० [हि० दाह] (१) धन की आग । दावानल ।

क्रि० प्र०—लगना ।

(२) आग । अग्नि ।

क्रि० प्र०—लगाना ।

(२) दाह । जलन ।

मुहा०—दाह फूँटना=दाह उत्पन्न करना ।

दाहिका*—संज्ञा स्त्री० [सं०] दाढ़ी ।

दाही—संज्ञा स्त्री० [हि० दाह] (१) चिबुक । (२) ठूठी और दाह पर के बाल । रमधु ।

विशेष—दे० "दाही" ।

दादीजार—संज्ञा पुं० [हि० दादी + जलना] वह जिसकी दाढ़ी जली हो । एक गाली, जिसे खियाँ छुपित होने पर पुष्पों को देती हैं । उ०—(क) स्त्रीकृति मदेवै सविपाद मेघनाद देखि बयो लुनियत सप बाही दाड़ीमार के ।—तुलसी ।

(ख) अनेक धार में कहीं बुकायहू विभीषण । न मानि दादिभार को छुटार बंध तीपण ।—विश्राम ।

विशेष—कुछ लोग इस शब्द की ध्युपत्ति 'दादी = दाती, लौंडी + आर = उपरति,' मानते हैं पर यह ठीक नहीं जान पड़ता ।

दात-संज्ञा पुं० [सं दत्तव्य] दान । उ०—तुम सब ही के गुरु मानी अति गुर गुर भूलाह के सुर तुम्हें दीनियत दात है ।—हनुमान ।

संज्ञा पुं० दे० "दाता" । उ०—सतगुरु समाने के सगा साँध समाने दात ।—कबीर ।

दातव्य-वि० [सं०] देने योग्य ।

संज्ञा पुं० (१) देने का काम । दान । (२) दानशीलता । दानरता । उ०—विन दातव्य द्रव्य नहिं आवै । देय विदेश चही फिर आवै ।—विश्राम ।

दाता-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो दान दे । दानशील । (२) देनेवाला ।

दातापन-संज्ञा पुं० [सं० दाता + हि० पन] दानशीलता ।

दातार-संज्ञा पुं० [सं० दाता का बहु०] दाता । देनेवाला । उ०—राजन राउर नाम जसु सय अमिमत दातार । फल खागामी महिषमनि मन अभिलाष सुझार ।—तुलसी ।

दाती-संज्ञा स्त्री० [सं० दाती] देनेवाली । उ०—पलित केय कष कंड विरोधो कल न परे दिन राती । माया मोह न छाड़ै तुण्या प दोऊ बुलदाती ।—सूर ।

दातुन-संज्ञा स्त्री० दे० "दत्तवन" ।

दातून-संज्ञा स्त्री० [सं० दंती] (१) दंती की जड़ । (२) जमाल गोटे की जड़ ।

संज्ञा स्त्री० दे० "दत्तवन" ।

दातुता-संज्ञा स्त्री० [सं०] दानशीलता । देने की प्रवृत्ति ।

दातुत्व-संज्ञा पुं० [सं०] दानशीलता । देने की प्रवृत्ति ।

दातौन-संज्ञा स्त्री० दे० "दत्तवन" ।

दात्यूह-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पगीहा । चातक । (२) मेघ । बादल ।

दात्र-संज्ञा० पुं० [सं०] [स्त्री० दत्र + दाती] दाती । हँसिया ।

दात्री-संज्ञा स्त्री० [सं०] देनेवाली ।

संज्ञा० स्त्री० [सं०] हँसिया । दाती ।

दाद-संज्ञा स्त्री० [सं० ददु] एक चर्मरोग जिसमें शरीर पर उभरे हुए ऐसे चकसे पड़ जाते हैं जिनमें बहुत खुजली होती है । दिनाई ।

विशेष—दाद विशेषतः कमर के नीचे जंघे के जोड़ के पास पास होती है अर्थात् पसीना होकर भरता है । वैद्यक में यह १८ प्रकार के कोढ़ों में गिनी जाती है । डाक्टरों की परीक्षा से पता लगा है कि दाद एक प्रकार की सूजन खुनी

है जो जंतुओं के चमड़े पर छूता पाँचकर जन आती है और वहाँ के रक्त आदि से पकती है । दाद प्रायः बरसात में गंदे पानी के संसर्ग से होती है । दाद दो प्रकार की होती है एक कागजी, दूसरी भँसिया । कागजी दाद का छूता पतला और फोड़ा होता है और अचिक नही फैलता । भँसिया दाद भयंकर होती है, इसके छूसे बड़े और मोटे होते हैं और कभी कभी शरीर भर में फैलते हैं ।

धा०—दादमर्दन ।

संज्ञा स्त्री० [फ्रा० दाद] इंसाफ । न्याय । उ०—तिनसों चाहत दाद तैं मन पस कीन हिसाय । छुरी चलावत हैं गेरे जे वेकसक इसाय ।—रसनिधि ।

मुह्रा०—दाद चाहना = किसी अत्याचार के प्रतिकार की प्रार्थना करना । दाद देना = (१) न्याय करना । उ०—देव तो दयानिकेत देत दादि दीन की पै भोतेये अभाग मेरी धार नाथ दील की ।—तुलसी । (२) सराहना । वाह वाह करना ।

दादनी-संज्ञा स्त्री० [फ्रा०] (१) वह जो देना है । वह रकम जिसे चुकाना है । (२) वह रकम जो किसी काम के लिये पेशगी दी जाय । अगत ।

दादमर्दन-संज्ञा पुं० [सं० ददुमर्दन] एक प्रकार का चकड़ैट जो हिंदुस्तान के बगीचों में प्रायः मिलता है । ऐसा कहा जाता है कि यह पेड़ अमेरिका के टापुओं से लाया गया है, इसीसे इसे विद्यापजी चकड़ैट भी कहते हैं । इसकी पत्तियों को पीसकर लगाने से दाद दूर हो जाती है ।

दादरा-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार का चबत्ता गाना । (२) दो अर्द्ध मासों का साल जिसमें केवल एक आघात होता है । इसमें केवल एक आघात होता है । खाली इस में नहीं होता । धा धिन धा

दादस-संज्ञा स्त्री० [हि० दादा + सस] ददिया सास । शजिया सास । सास की सास ।

दादा-संज्ञा पुं० [सं० दद] [स्त्री० दादी] (१) पितामह । पिता का पिता । आता । (२) बड़ा भाई । (३) बड़े बूढ़ों के लिये आदरवचक शब्द ।

दादि०—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० दाद] न्याय । इंसाफ । उ०—(क) लागीं पै लाइया या विश्रामान विशदाई महाराज भाउ जे न देत दादि दीन की ।—तुलसी । (ख) दई दीगहि दादि से छुनि मुजन सदन बघाई ।—तुलसी । (ग) कृपासिंधु जन दीन हुबारे दादि न पावत काहे ।—तुलसी ।

जि० प्र०—चाहना ।—देना ।—पाना ।—मँगना ।

दादी-संज्ञा स्त्री० [हि० दादा] पिता की माता । दादा की बी ।

संज्ञा पुं० [फ्रा० दाद] दाद चाहनेवाला । परिवादी । न्याय का मार्गी ।

श्री०—दादी करियादी ।

दादु०—संज्ञा स्त्री० [सं० ददु] दाद । दिनाई । ४०—ममता दादु कंडु हरपाई । हरख विपाद गरह बहुताई ।—सुखली ।

दादुर०—संज्ञा पुं० [सं० ददुर] मेरुकु । मंडूक । ४०—दादुर धुनि चहुँ और सोदाई । वेद पढ़ै अनु शुकसमुदाई ।—सुखली ।

दादू०—संज्ञा पुं० [अनु० दादु] (१) दादा के लिये संशोधन या प्यार का शब्द । (२) 'माई' श्राद्धि के समान एक साधारण संशोधन । (३) एक साधु का नाम जिसके नाम पर एक पंथ चला है । ऐसा प्रसिद्ध है कि दादू श्रद्धमदावाद के एक धुनिया थे । १२ वर्ष की अवस्था ही में इन्होंने छपना नगर परिव्राम किया और श्रमभेद, कल्याणपुर आदि स्थानों में कुछ दिनों रह कर अंत में ३७ वर्ष की अवस्था में जयपुर से बीस कोस पर नरैन नामक स्थान में निवास किया । कहते हैं कि यहाँ इन्हें आकाशवाणी हुई जिसके पीछे वे बहुत दिनों तक मुक्त रहे । कवीरपंथियों में प्रसिद्ध है कि दादू कवीरपंथी थे और गुरुपरंपरा में कवीर से बूठे थे । दादू ने भी कवीर के समान ही राम नाम के रूप में निर्गुण परमल की उपासना चलाई है । अकबर के समय में दादू शरद्वे पहुँचे हुए साधुओं में गिने जाते थे ।

दादूदयाल—संज्ञा पुं० दे० "दादू" ।

दादूपंथी—संज्ञा पुं० [हिं० दादू + पंथी] दादू नामक साधु का अनुयायी ।

विशेष—दादूपंथी तीन प्रकार के होते हैं—विरक्त, नागा और विरतरधारी । विरक्त वैषक जलपात्र और कौपीन रखते हैं । नागे लोग लड़ाके होते हैं और राजाओं की सेना में भारती होते हैं । विरतरधारी गृहस्थ होते हैं ।

दाध०—संज्ञा स्त्री० [सं० दाह] जलन । दाह । ताप । ४०—(क) सही न जाय विरह कर दाधा ।—जायसी । (ख) दाह चूत भे विहै दही । जानै सोह जो दाध भूमि सही ।—जायसी । (ग) जहाँ चहै भूमि जरी भा रहे । विरह की दाध भई जनु खैह ।—जायसी । (घ) जेहि तन नेह दाध तैहि दूना ।—जायसी ।

विशेष—जायसी ने इस शब्द को कहीं ख्रीलिंग माना है और कहीं पुष्टिंग ।

दाधना—क्रि० सं० [सं० दध] जलाना । भस्म करना । ४०—(क) दादा राहु केतु गा दाधा । सूरज जरा चाँद जर बाधा ।—जायसी । (ख) ते यह गिउ टाटे पर दाधा । बाधा निकस, रहा घट बाधा ।—जायसी ।

दाधीचि—संज्ञा पुं० [सं० दधीचि] दधीचि के वंश का अनुष्य । दधीचि का गोत्र ।

दान—संज्ञा पुं० [सं०] (१) देने का कार्य । जैसे, प्रदणदान । (२) लेनेवाले से बदले में कुछ न चाह कर या लेकर बदलता पय

देने का कार्य । धर्म के भाव से देने की क्रिया । वह धर्मार्थ कर्म जिसमें श्रद्धा या दयापूर्वक दूसरे को धन आदि दिया जाता है । धैरता ।

क्रि० प्र०—करना ।—देना ।

घो०—कन्यादान । गोदान । दासगुण्य । दान-बहेज ।

विशेष—स्मृतियों में दान के प्रकरण में अनेक बातों का विचार किया गया है । सब से अधिक जोर दान-ग्रहण करने-वाले की पात्रता पर किया गया है । दान के पात्र ग्राहण कइ गए हैं । ग्राहणों में वेदपाठी, वेदपाठियों में वेदोक्त-कर्म के कर्ता और उनमें भी शम दम आदि से युक्त धारम-ज्ञानी श्रेष्ठ हैं । दानों का विशेष विधान यज्ञ, श्राद्ध आदि कर्मों के पीछे है । इस प्रकार का दान अंधे, लूले, लंगड़े, गूमे आदि विकलांगों को देने का निषेध है । दान के लिये दाता में श्रद्धा होनी चाँहिये और उसे लेनेवाले से कुछ प्रयोजन-सिद्धि की अपेक्षा न रखनी चाँहिये । शुद्धित्व में दान के छः अंग सूतलाप गए हैं—दाता, प्रतिग्रहीता, श्रद्धा, धर्म, देश और काल । दान के उत्तम और निकृष्ट होने का विचार इन छः अंगों के अनुसार होता है—प्रयात् दाता के विचार से (जैसे, रथपथ, कुलटा आदि का दिया हुआ), प्रतिग्रहीता के विचार से (जैसे, पतित ग्राहण को दिया हुआ), श्रद्धा के विचार से (जैसे, तिरस्कारपूर्वक दिया हुआ), देश के विचार से (जैसे गंगा के तट पर दिया हुआ) और काल के विचार से (जैसे, ग्रहण के समय का) । इनके अतिरिक्त द्रव्य का भी विचार किया जाता है कि जो धन दान में दिया जाय वह कैसा होना चाँहिये । दूयल ने बिना है कि जो धन दूसरे को पीड़ित करने न प्राप्त हुआ हो अपने परिश्रम से प्राप्त हुआ हो वही दान के योग्य है । जिस प्रकार दान का फल कहा गया है उसी प्रकार दान के त्याग का भी फल कहा गया है । याज्ञवल्क्य स्मृति में लिखा है कि "जो प्रतिग्रह में समर्थ अर्थात् दान लेने का पात्र होकर भी प्रतिग्रह नहीं लेता वह दानियों के जो स्वर्ग आदि लोक हैं इन सबको प्राप्त होता है" । इसीसे बहुत से स्थानों के ग्राहण प्रतिग्रह कभी नहीं लेते । वेदों और स्मृतियों में कहे हुए दानों के अतिरिक्त ग्रहों की शक्ति आदि के लिये भी कुछ दान किए जाते हैं जिसका लेना बुरा समझा जाता है, शर्मस्पर्श का दान सबसे बुरा समझा जाता है जिसमें सेक, चोहा, काला तिल, काला कपड़ा दिया जाता है । दान के विषय में संस्कृत में अनेक आचार्यों के अनेक ग्रंथ हैं ।

(३) वह वस्तु जो दान में दी जाय । (४) कर । महसूल । चुनौती । ठेका । ४०—तुम समरथ की पाम कहा काहूँ को करिहै । चोरी जाती सँचि दान सय दिन को भरिहै ।—सूर । (५) राजनीति के चार चरणों में से एक । कुछ दे कर शत्रु के विरुद्ध कार्यसाधन की नीति । (६) हाथी का

मद । व०—(क) रक्षित भृंग घंटावली मरत दान मधु-
नीर । मंद मंद भाषण पद्यो कुंजर कुंज-समीर ।—
चिह्ना । (ख) सुरसरि में दिग्गज दान-मजिन लज्जही
भर । कंचन कमलालय हुए हरीष सोवोर ।—महावीर-
प्रसाद । (ग) दान देत यौ सोममित दान नरनि के हाथ ।
दान सहित थीं राज ही मत गजन के माथ ।—केशव ।
(७) छेदत । (न) शुद्धि । (६) एक प्रकार का मद्य ।

दानक—संज्ञा पुं० [सं०] कुलित दान । उरा दान ।

दानकुलया—संज्ञा स्त्री० [सं०] हाथी का मद ।

दानधर्म—संज्ञा पुं० [सं०] दान देने का धर्म । दान पुण्य ।

दानपति—संज्ञा पुं० [सं०] (१) सदा दान देनेवाला । (२) शक्र
का एक नाम जो स्वमंतक मयि के प्रभाव से प्रति दिन दान
दिया करता था । (३) एक दैत्य का नाम ।

दानपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] वह लेख या पत्र जिसके द्वारा कोई
संपत्ति किसी को प्रदान की जाय ।

विशेष—प्राचीन काल में दानपत्र ताम्रपत्र आदि पर खोद
जाते थे । अनेक राजाओं के ऐसे दानपत्र मिलते हैं जिनसे
बहुत सी ऐतिहासिक बातों का पता लगता है ।

दानपात्र—संज्ञा पुं० [सं०] वह व्यक्ति जो दान देने के शपथक
हो । दान देने के लिये शपथक व्यक्ति ।

दानलीला—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कृप्य की वह लीला जिस
में शर्मिष्ठा ग्वालिनों से गौरस बेचने का वर बसूल किया
था । (२) कोई ग्रंथ जिसमें इस लीला का वर्णन किया
गया हो ।

दानध—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० दानधी] कश्यप के ये पुत्र जो
'दनु' नामी पत्नी से उत्पन्न हुए । असुर । राक्षस ।

विशेष—मायावी दानवों का शरीर शरवेद में है । महा-
भारत के अनुसार दश की कन्या दनु से शंवर, मनुचि,
पुत्रोभा, अस्त्रोभा, केरी, विप्रचित्ति, दुर्जय, धनःशिरा,
विरुपाक्ष, महोदर, सूर्य, चंद्र इत्यादि चाक्रीस पुत्र उत्पन्न
हुए जिनमें विप्रचित्ति राजा हुआ । दानवों में जो सूर्य और
चंद्र हुए उन्हें देवनाभों से भित्त सारभजा चाहिए । भागवत
में दनु के ११ पुत्र गिनाए गए हैं । मनुस्मृति में लिखा है
कि दानव वितरों से उत्पन्न हुए । मरीचि आदि ऋषियों
से पिता उत्पन्न हुए, विदुष्यों से देव दानव और देवताओं
से यह वराचर जगत् आनुसंधिक क्रम से उत्पन्न हुआ ।

दानधनु—संज्ञा पुं० [सं०] शुक्राचार्य ।

दानधर—संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत के अनुसार एक प्रकार के
धरुव जो देवताओं और गंधर्वों की सवारी में रहते हैं, कभी
यूद्धे नहीं छोड़ते और मन की तरह वेगवान् होते हैं ।

दान-वारि—संज्ञा पुं० [सं०] (१) विष्णु । (२) देवता । (३) इंद्र ।

दानवारि—संज्ञा पुं० [सं०] हाथी का मद ।

दानवी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक दानव की स्त्री । (२) दानव
जाति की स्त्री । राक्षसी ।

वि० [सं० दानवीय] दानवों की । दानव संबंधी । जैसे
दानवी माया ।

दानवीर—संज्ञा पुं० [सं०] दान देने में साहसी पुरुष । वह जो
दान देने से न डरे । अत्यंत दानी ।

विशेष—साहित्य में वीर रस के श्रंतर्गत चार प्रकार के जो
वीर गिनाए गए हैं उनमें एक दानवीर भी है । दानवीरता
में त्याग के विषय में असाह स्याधी भाव है ; याचक आल-
स्य है ; अथर्वसाय (तीर्थगमन आदि) और दान-
समय ज्ञान आदि बहीपन विभाव है, सर्वत्र त्याग आदि
अनुभाव तथा हर्ष और प्रति आदि संचारी भाव हैं ।

दानवीर—संज्ञा पुं० [सं०] राजा यक्षि ।

दानशील वि० [सं०] दानी । दान करनेवाला ।

दानशीलता—संज्ञा स्त्री० [सं०] दान करने की प्रवृत्ति । बदाराता ।

दानसागर—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का महादान जिसका
प्रचार बंगदेश में है और जिसमें भूमि, आसन, आदि सोलह
पद्यों का दान किया जाता है ।

दानांतराय—संज्ञा पुं० [सं०] जैनशास्त्र के अनुसार वह श्रंत-
राय या पापकर्म जिसके बन्ध से दान के योग्य वस्तु
और प्राप्त या कर भी मनुष्य को दान करने में विघ्न होते हैं
और वह दान नहीं कर सकता ।

दाना—संज्ञा पुं० [फा० दानः] (१) अनाम का एक धातु । अन्न
का एक कण । कन ।

यो०—दाना हुनका = अन्न के दो चार कण । योहा सा अन्न ।

मुहा०—दाने दाने को सरलना = अन्न का कण सहना । भोजन
न पाना । दाने को मुहताज = अत्यंत दरिद्र । दाना बद्-
धना = एक पक्षी का अर्थ है मुँह का दाना दूसरे पक्षी के मुँह
में डालना । चार धाँटना । दाना भराना = विद्विषों को अपने
बच्चों के मुँह में चारा डालना ।

(२) अनाम । सन्न । जैसे, गुम तो दाने हुनके हो कि
जान पड़ता है कि कमी दाना नहीं पाते ।

यो०—दाना चारा । दाना पानी ।

(३) सूखा भुना हुआ अन्न । चबेना । चबेण ।

क्रि० प्र०—चयाना या चादना ।—भुनाना ।

(४) कोई छोटा धीज जो बाल, फली या गुच्छे में लगे । जैसे,
राई का दाना, पोस्ते का दाना । (५) ऐसे फल के अनेक
धीजों में से एक जिसके धीज कड़े गुदे के साथ पिबकूल
मिले हुए अन्नग अन्नग निकलें । जैसे, अन्नार का दाना ।

विशेष—घाम, शरदाल, लीची इत्यादि फलों के धीजों के
दाना नहीं कहते ।

(६) कोई दोरी जो जलतु जो प्रायः बहुत लंबे एक में गूँथ,

पिरो, या जोड़ कर काम में लाई जाती हो। जैसे, गोवी का दाना। ३०—ब्रह्म से बुद्धि मुक्तान ही के दाने ली :— पद्माकर ।

(०) देसी बहुत ली छोटी वस्तुओं में (या श्रेणी) में से एक जिनके एक में गूँघने या जोड़ने से कोई बड़ी वस्तु बनी हो। जैसे, घुँघरू का दाना, माखुंद का दाना। (८) माला की गुरिया। मनका। ३०—गले में सोने के पड़े पड़े दाने पड़े हैं।—प्रताप। (६) गोख या पदखदार छोटी वस्तुओं के लिये संख्या के स्थान पर दानेवाला शब्द। शब्द। जैसे, चार दाने मिर्य, चार दाने थंगुर। (१०) रवा। कथ। कथिका। जैसे, दानेदार घी या शराप। (११) किसी तरह पर के छोटे छोटे बमार जो टटोलने से अलग अलग मालूम हों। जैसे, नारंगी के दिलके पर के दाने, दानेदार चमड़ा। (१२) शरीर के चमड़े पर महीन महीन बमार जो छुजलाने या रोग आदि के कारण हो जाते हैं। जैसे, श्रमीरी या पिसी के दाने, चेबक के दाने। (१३) परतन की नकाशी में गोल उभार। (कसेरे)

क्रि० प्र०—रोग।

मुहा०—दाने का माख = वह बरतन जिसकी नकाशी उभारी नहीं जाती।

वि० [फा० दाना] बुद्धिमान। शबलमंद ।

दानार्ह—संज्ञा स्त्री० [फा०] अक्षमंदी ।

दानाकेश—संज्ञा पुं० [?] एक प्रकार का जहोनी का कड़ा जो चोगे के ऊपर पहिना जाता है ।

दानाचारा—संज्ञा पुं० [फा० दाना + हि० चार] चारना पीना । भोजन । आहार ।

क्रि० प्र०—करना ।

दानाध्यक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] वह जिसके द्वारा दान किया हुआ द्रव्य प्रालम्बों में बाँटा जाय। राजाधियों के यहाँ दान का प्रबंध करनेवाला कर्मचारी ।

दाना पानी—संज्ञा पुं० [फा० दाना + हि० पानी] (१) खानपान । अन्न जल ।

क्रि० प्र०—करना ।

मुहा०—दाना पानी छोड़ना = अन्न जल ग्रहण न करना । न कुछ खाना न पीना । उपवास करना । दाना पानी टूटना = रोग के कारण कुछ खाया पीया न जाना ।

(२) भरण्य पोषण का साधोन्न । जीविका ।

मुहा०—दाना पानी बटना = जीविका न रहना ।

(३) रहने का संयोग। जैसे, जहाँ का दाना पानी होगा वहाँ जायगे ।

दानाबंदी—संज्ञा स्त्री० [फा० दान + बंदी] खड़ी फसल से उपज का धंदाज करने के लिये खेत को मापने का काम ।

दानिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दान करनेवाली स्त्री ।

दानिया—संज्ञा पुं० दे० "दानी" ।

दानिस—संज्ञा स्त्री० [फा० दानित] (१) समक । बुद्धि । (२) राय । समति ।

दानो—वि० [सं० दानिन्] [स्त्री० दानिनी] जो दान करे । उदार ।

संज्ञा पुं० दान करनेवाला व्यक्ति । दाता ।

संज्ञा पुं० [सं० दानिय] (१) कर संग्रह करनेवाला । महसूल उगाहनेवाला । दान खेनेवाला । ३०—(क) श्राय समुंद' राडू भा हाइ दानी के रूप।—जायसी। (ख) परसत ग्वरि बमार सप जैयत मय्य फूप्य सुपकारी। सूर दयाम दधि दानी कहि कदि आनंद पोप कुमारी।—सूर ।

(२) परसिया नैपाखियों की एक जाति ।

दानोस—वि० [सं०] दान करने योग्य ।

दानेदार—वि० [फा०] जिसमें दाने हों। रवादार । जैसे, दानेदार गुड़ । दानेदार राव ।

दानोई—संज्ञा पुं० दे० "दानव" ।

दाप—संज्ञा पुं० [सं० दप, प्रा० दप] (१) बहंकार । घमंड । अभिमान । गर्व । (२) शक्ति । बल । जौर । ३०—राघन बान घुषा गहिं चापा। हारे सकळ भूप करि दापा।—तुलसी ।

(३) शसाह । शर्मग । (४) शैव । श्वपदा । श्रांतक । तेज । प्रताप । (५) मोघ । ३०—सर संधान कँहू करि दापा।—तुलसी। (६) जलन । ताप । दुःख । ३०—दियो मोघ करि शिवहि सारा । करी कृपा जु मिठे यह दाप।—सूर ।

दापक—संज्ञा पुं० [सं० दपक] दानेवाला । ३०—तेरा प्रभु हैं जल पल सप व्यापक । जो है कंस दप के दापक।—सूर ।

दापना—क्रि० सं० [हिं० दाप] (१) दावना । दवाना । (२) मना करना । रोकना । ३०—माने न जाय गोपाल के गेह घरी घरी धाय विठेकउ दापति।—गोकुल ।

दाद—संज्ञा स्त्री० [सं० दप, हिं० दाप] (१) दपने या दशने का भाव । एक वस्तु का दूसरी वस्तु पर उस श्रोत को जोर जिस श्रोत वह दूसरी वस्तु हो । अपनी श्रोत को लीचनेवाले जोर का उड़ता । चाँप ।

क्रि० प्र०—पहुँचाना।—छानना ।

(२) किसी वस्तु का वह जोर जो नीचे की वस्तु पर पड़े । भार । बोझ । जैसे, इस पर पत्थर की दाप पड़ी है इसीसे यह चिपटा हो गया है ।

क्रि० प्र०—ढालना।—पड़ना ।

मुहा०—किन्नी की दाघ तले होना = किसी के वश में या अधीन होना ।

(३) श्रांतक । श्रमिकार । शैव । श्राधिपत्य । शासन । बड़े या प्रबल के प्रति छोटे या अधीन का सेवक या भय शौर छोटे या अधीन के प्रति पड़े या प्रबल का प्रभुत्व ।

मुहा०—दाय दिखाना—अधिकार जताना । हुकूमत या डर दिखाना । प्रमुख प्रकट करना । दाय मानना=किसी वस्तु से डरना या सहमाना । प्रमुख स्वीकार करना । यश में रहना ।
 ३०—बढ़ खड़क दिखी की दाय नहीं मानता । दाय में रखना—शासन में रखना । जैसे, लफूके को दाय में रखे, नहीं तो बिगड़ जायगा । दाय में खाना=शासन को संतर्गत करना । यश में करना । दाय में होना=कस में होना । अर्थीन होना ।

दायकस—संज्ञा पुं० [हिं० दाय + कसना] लोहारों के छेदने के औजारों (किचकिरा, धरदुसा आदि) का एक हिस्सा ।

दायदार—वि० [हिं० दाय + दा + दा] रोयदार । चातक रखने-वाला । प्रभावशाली । प्रतापी । ३०—दायदार निरखि रिसानो दीह दलराय, जैसे गद्ददार भड़दार गजराज को ।—मूल्ये ।

दायना—क्रि० सं० दे० “दयाना” ।

दाया—संज्ञा पुं० [हिं० दाय] कसम खगाने के लिये पौधों की टहनी को मिट्टी में गाड़ने या दवाने का काम ।

संज्ञा पुं० [दे०] छाठ नौ धंगुल लंबी एक मड़ली जो सिंध, सुक प्रदेश और बंगाल की नदियों में पाई जाती है ।

दायचिल—संज्ञा पुं० [हिं० दाय] एक बड़ी सफेद चिड़िया जिसकी चोंच दस बारह धंगुल लंबी और घोर पर पैरों की तरह मोड़ कर खिचती होती है ।

दायी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] कटी हुई फनिज के बराबर बराबर ढँचे हुए एक जो मजबूती में दिए जाते हैं ।

दाम—संज्ञा पुं० [सं० दाम] एक प्रकार का कुत्र । दाम ।

दाम्य—संज्ञा पुं० [सं०] शासन के योग्य । जो शासन में आ सके ।

दाम—संज्ञा पुं० [सं०] (१) रस्ती । रस्त ।

धा०—दामोदर ।

(२) माला । हार । लड़ी । ३०—(क) तेहि के रचि रचि बंध बनाए । विच विच सुकुटा दाम सुहाए ।—तुलसी ।

(ख) कहुं मीठत कहुं दाम यनावत कहुं करत शृंगार ।—सूर । (३) समूह । राशि । (४) लोक । विच ।

धा०—दामोदर ।

संज्ञा पुं० [फा०, मिशापो सं०] जाल । फंदा । पाय । ३०—लोचन घोर धीचे रहाम । जात ही वन ह्रात पकरे कुटिज जबकनि दाम ।—सूर ।

संज्ञा पुं० [हिं० दमड़ी] (१) पैरों का चोर्षिसर्वा या पधीसर्वा नाम । एक दमड़ी का सीसरा भाग । ३०—कुटिल अलक हुटि परत सुख धड़िगो हतो बदेत । बंक विकारी देत जिमि दाम हयंग होत ।—बिहारी ।

मुहा०—दाम दाम भर देना=कौड़ी कौड़ी खाना देना । कुछ (मूल्य) बाकी न रखना । दाम दाम भर देना=कौड़ी कौड़ी तो देना । कुछ बाकी न छोड़ना ।

(२) वह धन जो किसी वस्तु के बदले में बँचनेवाले को दिया जाय । मूल्य । कीमत । मोल । ३०—विन दामन हित हाट में नही सहज बिहाल ।—रामनिधि ।

क्रि० प्र०—देना ।—खेना ।

मुहा०—दाम डरना=किसी वस्तु की कीमत वसूत हो जाना । विक जाना । दाम करना=(किसी वस्तु का) मोत ठहराना । मूल्य निश्चित करना । कीमत तै करना । मोल भाव करना । दाम खड़ा करना=कीमत बसूत करना । दाम चुकाना=(१) मूल्य दे देना । (२) कीमत ठहराना । मोल भाव तै करना । दाम देने खाना=मूल्य देने के लिये विवरा देना । किसी वस्तु को नष्ट करने पर उतका मूल्य देना पड़ना । नुकसानी देना पड़ना । दाम भरना=किसी वस्तु को नष्ट करना पर दंड स्वल्प उतका मूल्य दे देना । नुकसानी देना । डाँह देना । दाम भर पाना=सारा मूल्य पा जाना ।

(३) धन । रुपया पैसा । जैसे, दाम करे काम । ३०—कामिहिं चारि पिचारि जिमि लोभिहिं प्रिय जिमि दाम ।—तुलसी । (४) सिखा । दया । ३०—जो पै बेराई राम की करतो न खजाते । तो दू दाम कुदाम ज्यो कर कर न बिजाते ।—तुलसी ।

मुहा०—चाम के दाम चखाना=अधिकार या व्यवहार या कर मन-माना अधिकर करना । दे० “चाम” । ३०—दिन चारिक दू पिय प्यारे के प्यार नीति चाम के दाम चखाय ले री ।—परमेश । (२) दाननीति । राजनीति की एक शाख जिसमें शत्रु को धन द्वारा घरा में करते हैं । ३०—साम दाम अरु दंड विभेदा । वृष हर पसहिं नाथ कह वेदा ।—तुलसी ।
 वि० [सं०] देनेवाला । दाता ।

दामकंड—संज्ञा पुं० [सं०] एक गौर-प्रयत्नक ग्रथि का नाम ।

दामक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) गाड़ी के हुए की रस्ती । (२) जगाम । यागडोर ।

दामग्रंथि—संज्ञा पुं० [सं०] राजा बिराट का सेनापति । (महा-भारत)

दामचंद्र—संज्ञा पुं० [सं०] हुएद राजा के एक पुत्र का नाम ।

दामन—संज्ञा पुं० [सं०] (१) रस्ती । (२) माला ।

दामन—संज्ञा पुं० [फा०] (१) श्रंगे, कोट, कुतें इत्यादि का निचला भाग । पहा ।

धा०—दामनगीर ।

(२) पहाड़ों के नीचे की भूमि । पर्वत । (३) वादधान ।

क्रि० प्र०—छोड़ना ।

(४) नाव या जहाज के जिस घोर हवा का चक्का लगता हो उस के सामने की दिशा । (जरा०)

दामनगीर—वि० [फा०] (१) चले पड़नेवाला । सिर होनेवाला । पीछे पड़नेवाला । मसनेवाला । ३०—अपने पिंछ पोषिये

पिरो, या जोड़ कर काम में लाई जाती हो। जैसे, मोती का दाना। ३०—वरसें सु वृद्धं मुक्तान ही के दाने स्त्री :— पद्माक्षर।

(०) ऐसी बहुत सी छोटी वस्तुओं में (या श्रंगों) में से एक जिनके एक में रूँ घने या जोड़ने से कोई बड़ी वस्तु बनी हो। जैसे, बुँ धरु का दाना, वाजुर्द का दाना। (८) माला की गुणिया। मनका। ३०—गले में सोने के बड़े बड़े दाने पहने हैं।—प्रताप। (६) गोख या पहलदार छोटी वस्तुओं के लिये संख्या के स्थान पर थानेवाला शब्द। शब्द। जैसे, चार दाने मिर्च, चार दाने शंकर। (१०) रवा। कण। कणिका। जैसे, दानेदार घी या शराब। (११) किसी सतह पर के छोटे छोटे उभार जो टेढालने से श्रलग श्रलग मालूम हों। जैसे, नारंगी के छिलके पर के दाने, दानेदार चमड़ा। (१२) शरीर के चमड़े पर महीन महीन उभार जो खुजलाने या रोग प्रादि के कारण हो जाते हैं। जैसे, शंभैरी या पिच्छी के दाने, चेबक के दाने। (१३) बरतन की नकाशरी में सोल उभार। (कसेरे)

क्रि० प्र०—रेंगा।

मुहा०—दाने का माख = वह वरतन जिसकी नकाशी उमारी नहीं जाती।

वि० [फा० दाना] बुद्धिमान। श्रबलमंद।

दानार्ह—संज्ञा स्त्री० [फा०] श्रद्धमंदी।

दानाकेश—संज्ञा पुं० [?] एक प्रकार का जरदोनी का कपड़ा जो चोगे के ऊपर पहिना जाता है।

दानाचारा—संज्ञा पुं० [फा० दाना + चि० चारा] खाना पीना। भोजन। आहार।

क्रि० प्र०—करना।

दानाध्यक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] वह जिसके द्वारा दान किया हुआ द्रव्य प्रदत्तियों में बाँटा जाय। राजाओं के यहाँ दान का प्रबंध करनेवाला कर्मचारी।

दाना पानी—संज्ञा पुं० [फा० दाना + हिं० पानी] (१) खान पान। अन्न जल।

क्रि० प्र०—करना।

मुहा०—दाना पानी छोड़ना = श्रब्र जल ग्रहण न करना। न कुछ खाना न पीना। उपवास करना। दाना पानी टुटना = रोग के कारण कुछ खाया पीया न जाना।

(२) भरण पोषण का आयोगन। जीविका।

मुहा०—दाना पानी बटना = जीविका न रहना।

(३) रहने का संयोग। जैसे, जहाँ का दाना पानी होगा वहाँ जायगे।

दानाबंदी—संज्ञा स्त्री० [फा० दान + बंदी] सखी फसल से उपज का अंदाज करने के लिये खेत को मापने का काम।

दानिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दान करनेवाली स्त्री।

दानिया—संज्ञा पुं० दे० “दानी”।

दानिस—संज्ञा स्त्री० [फा० दानिस] (१) समक। बुद्धि। (२) राय। सम्मति।

दानी—वि० [सं० दानिन्] [स्त्री० दानिनी] जो दान करे। उदार।

संज्ञा पुं० दान करनेवाला व्यक्ति। दाता।

संज्ञा पुं० [सं० दानीय] (१) कर संग्रह करनेवाला। महसूल बगाहनेवाला। दान खेनेवाला। ३०—(क) श्राय समुंद शक्र भा होइ दानी के रूप।—जायसी। (ख) परस्त ग्यारि

ग्यार सव खेतत मध्य कृष्ण सुखकारी। सूर रयाम दधि दानी कहि कहि शानंद घोष कुमारी।—सूर।

(२) परतिया नैपालियों की एक जाति।

दानोय—वि० [सं०] दान करने योग्य।

दानेदार—वि० [फा०] जिसमें दाने हों। रवादार। जैसे, दानेदार गुड़। दानेदार राय।

दानोई—संज्ञा पुं० दे० “दानव”।

दाप—संज्ञा पुं० [सं० दपे, प्रा० दप्य] (१) शहंकार। घमंड। शक्तिमान। गर्व। (२) शक्ति। धल। जौर। ३०—रावन वान बुधा नहीं चापा। शरै सकल भूप करि दापा।—तुलसी।

(३) बरसाह। धर्मग। (४) शिव। दबव्या। आतंक। तेज। प्रताप। (५) श्रेय। ३०—सर संधान कन्ह करि दापा।—तुलसी। (६) जलन। ताप। दुःख। ३०—दिया श्रेय करि शिवहि सराप। करी कृपा तु निरे यह दाप।—सूर।

दापक—संज्ञा पुं० [सं० दपक] द्यानेवाला। ३०—सो प्रसु हैं जल धल सव व्यापक। जो है कंस दपे को दापक।—सूर।

दापना—क्रि० सं० [हिं० दाप] (१) दावना। दबाना। (२) मना करना। रोकना। ३०—मानै न जाय गोपाल के गेह धरी धरी धाय बितेकक दापति।—गोकुल।

दाद—संज्ञा स्त्री० [सं० दपे, हिं० दप] (१) दयने या दबाने का भाव। एक वस्तु का दूसरी वस्तु पर उस ओर को जौर जिस ओर वह दूसरी वस्तु हो। अपनी ओर को खींचनेवाले जौर का बड़दा। धार।

क्रि० प्र०—पहुँचाना।—खगाना।

(२) किसी वस्तु का वह जौर जो नीचे की वस्तु पर पड़े। भार। बोझ। जैसे, इस पर पत्थर की दाघ पड़ी है इसीसे यह चिपटा हो गया है।

क्रि० प्र०—दाबना।—पड़ना।

मुहा०—किसी की दाघ तले होना = किसी के वश में या श्रधीन होना।

(३) आतंक। श्रघिकार। श्रेय। श्राधिपाय। शासन। बड़े या प्रबल के प्रति छोटे या श्रधीन का संकेच या भय और छोटे या श्रधीन के प्रति बड़े या प्रबल का प्रभुत्व।

मुद्गा-दाव-दिलाना-अधिकार जताना । हुकूमत या डर दिवाना । प्रमुख प्रकट करना । दाव्य मानना=किसी बड़े से डरना या सहमाना । प्रमुख स्वीकार करना । वश में रहना ।
 ड०-यह लड़का किसी की दाव्य नहीं मानता । दाव्य में रखना-शासन में रखना । जैसे, लड़के को दाव्य में रखो, नहीं तो बिगड़ जायगा । दाव्य में खाना=शासन के अंतर्गत करना । वश में करना । दाव्य में होना=रुज में होना । अथवा होना ।
 दावकस-संज्ञा पु० [हि० दाव + कसना] खोहरो के छेदने के औजारों (किरबिरा, बरहुधा आदि) का एक हिस्सा ।
 दावदार-वि० [हि० दाव + दा०] रोमदार । आतंक रखनेवाला । प्रभावशाली । प्रतापी । ड०-दावदार निररि रिसालो दीह दलराय, जैसे गङ्गादार बङ्गादार गङ्गासराज की ।-मूयर्षी

दावना-क्रि० सं० दे० "दधाना" ।

दावा-संज्ञा पु० [हि० दाव] कब्रम छगाने के लिये दीये की टहनी को मिट्टी में गाड़ने या दशने का काम ।

संज्ञा पु० [दे०] आठ नौ अंगुल लंबी एक मड़ली जो सिंध, सुक प्रदेश और बंगाल की नदियों में पाई जाती है ।
 दाविल-संज्ञा पु० [हि० दाव] एक बड़ी सफेद चिकिया जिसकी बीच दस बार अंगुल लंबी और छोर पर पैसे की तरह गोख और चिपटी होती है ।

दावी-संज्ञा स्त्री० [हि०] कटी हुई फसल के बराबर यरावर दौंचे हुए पूरे जो मजदूरी में दिए जाते हैं ।

दाम-संज्ञा पु० [सं० दम] एक प्रकार का कुश । खाम ।

दाम्य-संज्ञा पु० [सं०] शासन के योग्य । जो शासन में आ सके ।

दाम-संज्ञा पु० [सं०] (१) रस्ती । रज्जु ।

धा०-दामोदर ।

(२) माता । दाम । लड़ी । ड०-(क) तेहि के इचि इचि थंच बनाए । विच विच शुकुता दाम सुहाए ।-तुलसी ।
 (ख) कहु प्रीकृत कहु दाम बनावत कहु करत शृंगार ।-सूर । (३) समृद्ध । राशि । (४) लोक । विध ।

धा०-दामोदर ।

संज्ञा पु० [फा०, मिश्रा सं०] आज । फंदरा । पास । ड०-लोकत घोर थपि रयाम । जात ही वन गुप्त पकरे कुटिल लखकनि दाम ।-सूर ।

संज्ञा पु० [हि० दमड़ी] (१) पैसे का चौबीसवाँ या पचीसवाँ भाग । एक दमड़ी का बीसवाँ भाग । ड०-कुटिल अलक मुटि परत मुष्ट बड़िगो हतो बदेत । थंक विहारी द्वेत जिमि दाम हरेया होत ।-विहारी ।

मुद्गा-दाम भर देना=कौड़ी कौड़ी चुका देना । कुल (मूय) बाकी न रखना । दाम दाम भर सेना=कौड़ी कौड़ी दे लेना । कुल बाकी न छोड़ना ।

(२) वह धन जो किसी वस्तु के बदले में बँचनेवाले की दिया जाय । मूय । कीमत । मोक्ष । ड०-दिन दामन हित हाट में नेही मडन विशात ।-रसनिधि ।

क्रि० प्र०-देना ।-लेना ।

मुद्गा-दाम खना=किसी वस्तु की कीमत बूझना हो जाना । बिक जाना । दाम करना=(किसी वस्तु का) मोक्ष उद्धाराना । मूय निरिचत करना । कीमत तो करना । मोक्ष भाव करना । दाम खड़ा करना=कीमत बढ़ाना करना । दाम चुकाना=(१) मूय दे देना । (२) कीमत उद्धारना । मोक्ष भाव तो करना । दाम देने आना=मूय देने के लिये विवश होना । किसी वस्तु को नष्ट करने पर उसका मूय देना पड़ना । नुकसानी देना पड़ना । दाम भरना=किसी वस्तु को नष्ट करना पर वंड स्वरूप उसका मूय दे देना । नुकसानी देना । डाँड़ देना । दाम भर पाना=घारा मूय पा जाना ।

(३) धन । हयवा पैसा । जैसे, दाम करे काम । ड०-कामिहिं मारि पियारि जिमि लोमिहि त्रिय जिमि दाम ।-तुलसी । (४) सिद्धा । हयवा । ड०-जो पै पैराई राम की करतो न लजातो । तो दू दाम कुदाम अयो कर कर न बिछातो ।-तुलसी ।

मुद्गा-चास के दाम चलाना=अधिकार या व्यवहार या कर मनमाना अंधेर करना । दे० 'धाम' । ड०-दिन चारिक वृ पिय प्यारे के प्यार लो धाम के दाम चलाय के री ।-परमेश ।
 (५) दाननीति । राजनीति की एक शाखा जिसमें शत्रु को धन द्वारा वश में करते हैं । ड०-साम दाम धर दंड विभेदा । गुप धर वसहि नाय कह वेदा ।-तुलसी ।
 वि० [सं०] देनेवाला । दाता ।

दामकंड-संज्ञा पु० [सं०] एक गोत्र-प्रवर्तक व्यक्ति का नाम ।

दामक-संज्ञा पु० [सं०] (१) गाड़ी के हुए की रस्ती । (२) खगाम । पागडोर ।

दामग्रथि-संज्ञा पु० [सं०] रामा विराट का सेनापति । (महा-भारत)

दामचंद्र-संज्ञा पु० [सं०] हुएद राजा के एक पुत्र का नाम ।

दामन-संज्ञा पु० [सं०] (१) रस्ती । (२) माछा ।

दामन-संज्ञा पु० [फा०] (१) अंग्रे, कोट, कुँठे हल्पादि का निचला भाग । पछा ।

धा०-दामनगौर ।

(१) पहाड़ों के नीचे की भूमि । पवंत । (२) यादनाम ।

क्रि० प्र०-पूँडना ।

(४) नाव या जहाज के जिस घोर हवा का चक्का लगता हो उस के सामने की दिशा । (लर०)

दामनगौर-वि० [फा०] (१) पछे पड़नेवाला । सिर होनेवाला । पीछे पड़नेवाला । प्रसनेवाला । ड०-अपना चिंक पापिने

कारण कोटि सदस्य जिय मारे। इन पापन ते क्यौं बपरोते
दामनगीर विहारे ?—सूर ।

मुद्रा०—दामनगीर होना=पीछे लगना। ऊपर आ पड़ना।
ग्रसना या घेरना। (कष्टदायक वस्तु को लिये) जैसे, बला
दामनगीर होना।

(२) दाया करनेवाला। दावेदार। व०—बापुरो धादिलसाह
कहाँ कहीं दिखी को दामनगीर सिवाजी।—भूपण ।

दामनपर्व—संज्ञा पुं० [सं० दामनपर्वन्] चैत्र शुक्ला चतुर्दशी
का पर्व ।

दामनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] रस्ती। रज्जु ।

संज्ञा स्त्री० [फा०] वह चौड़ा कपड़ा जो घोड़ों की पीठ पर
ढाका जाता है ।

दामर—संज्ञा स्त्री० [देग०] (१) राख जो द्वार भरने के लिये
नाचों में लगाई जाती है। (२) दे० "दामर" ।

संज्ञा स्त्री० [?] छोटे कान की भेंड़। (गड़रिये)

दामरि—संज्ञा स्त्री० दे० "दामरी" ।

दामरी—संज्ञा स्त्री० [सं० दाम] रस्ती। रज्जु। उ०—ज्ञान भक्ति
दोक विना हरि नहिं धाँवे जात। यहै कहत सी दामरी घटि
गह हरि के गात।—व्यास ।

दामलिस—संज्ञा पुं० दे० "ताम्रलिस" ।

दामा*—संज्ञा स्त्री० [सं० दामा] दायानक। उ०—संद के विशेष
पेसा धातु प्रभु को है कही पान करि लान्हों प्रज दीन देखि
संज्ञा को।—विश्राम ।

दामाद—संज्ञा पुं० [फा०, मिश्रण सं० जामाद] पुत्री का पति ।
जमाद । जामाता ।

दामासाह—संज्ञा पुं० [हिं० दाम + साह = बनिया] वह दिवालिया
महानन जिसकी जायदाद उसके लहनेदारों के बीच हिस्से के
मुताबिक बँट जाय ।

दामासाही—संज्ञा स्त्री० [हिं० दामासाह] किसी दिवालिये महानन
की जायदाद में से एक एक लहनेदार को मिलनेवाली रकम
का निर्णय ।

दामिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) बिजली। विद्युत् । उ०—दामिनि
दमकि रही घन माहीं।—तुलसी। (२) स्त्रियों का एक
विशेषभूषण जिसे बँदी या बिंदिया भी कहते हैं। दाँवनी ।
उ०—दामिनी सी दामिनी सुमामिनी सँवारि सीस, कहती
कुँवर होत कामिनी के क्यौं लजात।—रघुराज ।

दामी—संज्ञा स्त्री० [हिं० दाम] कर । मालपुजारी ।

दामोद—संज्ञा पुं० [सं०] अथर्ववेद की एक शाखा का नाम ।

दामोदर—संज्ञा पुं० [सं०] (१) श्रीकृष्ण । (२) विष्णु ।

विशेष—हस नाम के तीन भिन्न भिन्न हेतु मतज्ञाप गए हैं।
हरिवंश में लिखा है कि यमलाजुन के मिते के समय
यतोदा ने ताड़ना के लिये श्रीकृष्ण को पेट में रस्ती लगा कर

दाँया या हस्तीसे गोपियां उन्हें दामोदर कहते धर्यौं। यही
हेतु सबसे प्रतिद्व है। विष्णुसहस्र नाम के भाष्यकार ने भी
यही ध्युपति लिखी है। कुछ लोग दाम शब्द से विरव वा
बोक का ग्रहण करते हैं—'जिसके वदर में सारा विरव
हो'। कुछ लोग 'दामोदरगोदर विदुः' महाभारत के हस वाक्य
के अनुसार इस अर्थात् इंद्रिय-निग्रह में अत्यंत उदार या
श्रेष्ठ अर्थ करते हैं ।

(३) एक जैन तीर्थंकर का नाम। (४) बंगाल की एक
नदी जो छोटा नागपुर के पहाड़ों से निकल कर भागीरथी में
मिलती है ।

दायँी—संज्ञा पुं० दे० "दायँ" ।

संज्ञा स्त्री० दे० "दायँ" ।

संज्ञा स्त्री० [सं० दान] दाना और भूसा अलग करने के
लिये बड़ी हुई फसल के बंटकों को बैलों से रोदियाने का
काम । दायँी ।

दि० प्र०—चलाना ।

संज्ञा स्त्री० [?] यशस्वी। तुल्यता। दे० "दाँज" ।

दाय—संज्ञा पुं० [सं०] (१) देने योग्य धन। यह धन जो किसी
को देने को हो। (२) दायज, दान आदि में दिया जाने-
वाला धन। (३) वह पैतृक वा सर्वस्वी का धन जिसका
उत्तराधिकारियों में विभाग हो सके। पारितो में बाँटा जाने-
वाला धन या मिलकियत। दे० "दायभाग" ।

विशेष—यह धन जो स्वामी के संबंध निमित्त से ही दूसरे
का हो सके दाय कहलाता है। मितान्तरा के अनुसार दाय
दो प्रकार का है एक अप्रतिबंध, दूसरा सप्रतिबंध। अप्रति-
बंध दाय वह है जिसमें कोई बाधा न हो सके। जैसे, पुत्र
पौत्रों का पिता पितामह के धन में स्वत्व। सप्रतिबंध वह है
जिसका कोई प्रतिबंधक हो, जिसमें किसी के द्वारा बाधा
पड़ सकती हो। जैसे भाई भतीजों का स्वत्व जो पुत्र के
अभाव में होता है अर्थात् पुत्र का होना जिसका प्रतिबंधक
होता है ।

(४) धन ।

संज्ञा पुं० दे० "दाय" । व०—सिर धुनि धुनि पढ़ितात
मीजि कर, कोय न मीत हित दुसह दाय।—सुबली ।

दायक—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० दायिका] देनेवाला। दाता ।

दायज—संज्ञा पुं० दे० "दायज" ।

दायजा—संज्ञा पुं० [सं० दाय] वह धन जो विवाह में घर पड़
को दिया जाय। धीतुक। दहेज। व०—कहुँ सुत प्याह
कहुँ कन्या को देत दायजो राई।—सूर ।

दायभाग—संज्ञा पुं० [सं०] (१) पैतृक धन का विभाग। (२) बाप
दादे या सर्वस्वी की संपत्ति के पुत्रों, पौत्रों या संबंधियों में

घटि जाने की व्यवस्था। पत्नीती या वरासत की मिलिक्रियत को वारिसों या हकदारों में बाँटने का कायदा कानून।

विशेष—यह हिंदूधर्मशास्त्र के प्रधान विषयों में से है। मनु, याज्ञवल्क्य आदि स्मृतियों में इसके संबंध में विस्तृत व्यवस्था है। ग्रंथकारों और टीकाकारों के मतभेद से पैतृक धन-विभाग के संबंध में निम्न निम्न स्थानों में निम्न निम्न व्यवस्थाएँ प्रचलित हैं। प्रधान पक्ष दो हैं—मिताक्षरा और दायभाग। मिताक्षरा याज्ञवल्क्यस्मृति पर विश्वामित्र की टीका है जिसके अनुकूल व्यवस्था पंजाब, काशी, मिथिला आदि से लेकर दक्षिण कन्याकुमारी तक प्रचलित है। 'दायभाग' जीमूतबाहन का एक ग्रंथ है जिसका प्रचार बंग देश में है।

सभ से पहली बात विचार करने की यह है कि कुटुंब-संपत्ति में किसी प्राणी का श्रेष्ठ स्वत्व विभाग करने के पीछे होता है अथवा पहले से रहता है। मिताक्षरा के अनुसार विभाग होने पर ही श्रेष्ठ या पुरुषोत्तम स्वत्व होता है, विभाग के पहले सारी कुटुंब-संपत्ति पर मल्लिक सम्मिलित प्राणी का सामान्य स्वत्व रहता है। दायभाग विभाग के पहले भी श्रेष्ठ रूप में श्रेष्ठ स्वत्व मानता है जो विभाग होने पर व्यंगित होता है। मिताक्षरा पूर्वजों की संपत्ति में पिता और पुत्र का समानाधिकार मानती है अतः पुत्र पिता के जीते हुए भी जब चाहे तब पैतृक संपत्ति में हिस्सा बँटा सकता है और पिता पुत्रों की समति के बिना पैतृक संपत्ति के किसी धरा का दान, विक्रय आदि नहीं कर सकता। पिता के मरने पर पुत्र जो पैतृक संपत्ति का अधिकारी होता है वह हिस्सेदार के रूप में, होता है, उत्तराधिकारी के रूप में नहीं। मिताक्षरा पुत्र का उत्तराधिकार केवल पिता की निज की पैदा की हुई संपत्ति में मानती है। दायभाग पूर्वस्वामी के स्वत्व-विनाश (मृत, पतित या संन्यासी होने के कारण) के अपरांत उत्तराधिकारियों के स्वत्व की उत्पत्ति मानता है। इसके अनुसार जब तक पिता जीवित है तब तक पैतृक संपत्ति पर उसका पूरा अधिकार है वह उसे जो चाहे तो कर सकता है। पुत्रों के स्वत्व की उत्पत्ति पिता के मरने आदि पर ही होती है।

यद्यपि याज्ञवल्क्य के इस श्लोक में "सूर्या पिता-महोपात्ता निर्यधी नृप्यमेव वा। तत्र स्वात् सरयं स्वाम्यं पितुः पुत्रस्य स्वामयोः" पिता पुत्र का समान अधिकार स्पष्ट कहा गया है पर जीमूतबाहन ने इस श्लोक से सींच तान कर यह भाव निकाला है कि पुत्रों के स्वत्व की उत्पत्ति उनके जन्मकाल से नहीं, बल्कि पिता के मृत्युकाल से होती है।

मिताक्षरा और दायभाग के अनुसार जिस क्रम से उत्तराधिकारी होते हैं वह नीचे दिया जाता है—

मिताक्षरा	दायभाग
१ पुत्र	१ पुत्र
२ पौत्र	२ पौत्र
३ प्रपौत्र	३ प्रपौत्र
४ विधवा	४ विधवा
५ अविवाहिता कन्या	५ अविवाहिता कन्या
६ विवाहिता अपुत्रवती निधन कन्या	६ विवाहिता पुत्रवती कन्या
७ विवाहिता पुत्रवती संपन्न कन्या	७ नाती (कन्या का पुत्र)
८ माती (कन्या का पुत्र)	८ पिता
९ माता	९ माता
१० पिता	१० भाई
११ भाई	११ भतीजा
१२ भतीजा	१२ भतीजे का लड़का
१३ दादी	१३ बहिन का लड़का
१४ दादा	१४ दादा
१५ चचा	१५ दादी
१६ चचेरा भाई	१६ चचा
१७ परदादी	१७ चचेरा भाई
१८ परदादा	१८ चचेरे भाई का लड़का
१९ दादा का भाई	१९ दादा की लड़की का लड़का
२० दादा के भाई का लड़का	२० परदादा
२१ परदादा के ऊपर तीन पीढ़ी के और पूर्वज	२१ परदादी
२२ और सपिंड	२२ दादा का भाई
२३ समानोदक	२३ दादा के भाई का लड़का
२४ बंधु	२४ दादा के भाई का पोता
२५ शाचार्य	२५ परदादा की लड़की का लड़का
२६ शिष्य	२६ नाता
२७ सहपाठी या गुरुभाई	२७ मामा
२८ राजा (यदि संपत्ति प्राणाय की न हो। प्राणाय की हो तो उसकी माति में जाय)	२८ माता का लड़का
	२९ मामा का पोता
	३० माती का लड़का
	३१ सकुल्य
	३२ समानोदक
	३३ और बंधु
	३४ शाचार्य हत्यादि हत्यादि

ऊपर जो क्रम दिया गया है उसे देखने से पता चलता है कि मिताक्षरा माता का स्वत्व पहले करती है और दायभाग पिता का। याज्ञवल्क्य का श्लोक है—पुत्री

आतरस्तथा । तस्मिन्ना गोत्रजा यंसुः शिष्यः सख्यप्रकारिणः ॥
इस श्लोक के 'पितरौ' शब्द को लेकर मिताशरा कहती है कि 'माता पिता' इस समास में माता शब्द पहले आता है और माता का संबंध भी अधिक घनिष्ठ है इससे माता का स्वत्व पहले है । जीमूतबाह्वन कहता है कि 'पितरौ' शब्द ही पिता की प्रधानता का बोधक है इससे पहले पिता का स्वत्व है । मिथिला, काशी और बंगाल प्रांत में माता का स्वत्व पहले और बंगाल, मद्रास, तथा गुजरात में पिता का स्वत्व पहले माना जाता है । मिताशरा दाय्याधिकार में केवल संबंध विहित मानती है और दायभाग विच्छेदक किया । मिताशरा 'विंड' शब्द का अर्थ शरीर कर्मके सर्पिण्ड से तात पीडियों के भीतर एक ही कुंड का प्राणी ग्रहण करती है पर दायभाग इसका एक ही विंड से संबन्ध अर्थ करके नाती, नाना, मामा इत्यादि को भी ले लेता है ।

मिताशरा और दायभाग के बीच मुख्य मुख्य बातों का भेद नीचे दिखाया जाता है—

(१) मिताशरा के अनुसार पैतृक (पूर्वजों के) धन पर पुत्रादि का सामान्य स्वत्व उनके जन्म ही के साथ उत्पन्न हो जाता है, पर दायभाग पूर्वपामी के स्वध्वनिप्राय के उपरांत उत्तराधिकारियों के स्वत्व की व्यक्ति मानता है ।

(२) मिताशरा के अनुसार विभाग (बंट) के पहले प्रत्येक सम्मिलित प्राणी (पिता, पुत्र, भ्राता इत्यादि) का सामान्य स्वत्व सारी संपत्ति पर होता है चाहे वह अंग बंट न होने के कारण अत्यक्त या अनिश्चित हो ।

(३) मिताशरा के अनुसार कोई हिस्सेदार कुटुंबसंपत्ति को अपने निज के काम के लिये वै या रद्द नहीं कर सकता पर दायभाग के अनुसार वह अपने अनिश्चित अंग को बटवारे के पहले भी बेच सकता है ।

(४) मिताशरा के अनुसार जो धन कई प्राणियों का सामान्य धन हो इसके किसी देश या अंग में किसी एक स्वामी के प्रत्येक स्वत्व का स्थापन विभाग (बटवारा) है । दायभाग के अनुसार विभाग प्रत्येक स्वत्व का व्यंजन मात्र है ।

(५) मिताशरा के अनुसार पुत्र पिता से पैतृक संपत्ति को बंट देने के लिये कह सकता है, पर दायभाग के अनुसार पुत्र को ऐसा अधिकार नहीं है ।

(६) मिताशरा के अनुसार स्त्री अपने मृतपति की उत्तराधिकारियों सभी हो सकती है जब कि इसका पति भाई आदि कुटुंबियों से अलग हो । पर दायभाग में चाहे पति अलग हो या श्राविक स्त्री उत्तराधिकारियों होती है ।

(७) दायभाग के अनुसार कन्या यदि विधवा, बंध्या या अनुग्रहणी हो तो वह उत्तराधिकारियों नहीं हो सकती । मिताशरा में ऐसा प्रतिबंध नहीं है ।

याज्ञवल्क्य, भारद्वाज आदि के अनुसार पैतृक धन का विभाग हम अवसरों पर होना चाहिये—पिता जब चाहे तब, माता की रोजनिवृत्ति और पिता की विधव-निवृत्ति होने पर, पिता के मृत, पतित या संयाती होने पर ।

दायमुल्लङ्घन-संज्ञा पुं० [ध०] जीवन भर के लिये कैद । कालेपानी की सजा । दानिज ।

दायर-वि० [का०] (१) पितृता हुआ । चलता हुआ । (२) चलता । जारी ।

मुद्दा०—दायर करना = मामले मुकदमे कीरह को चक्राने के लिये पेश करना । (व्यवहार या अभियोग) उपस्थित करना । जैसे, मुकदमा दायर करना, नाबिरा या अपील दायर करना । दायर होना = पेश होना । उपस्थित किया जाता । जैसे, मुकदमा दायर होना ।

दायरा-संज्ञा पुं० [ध०] (१) गोक पेशा । कुंडल । मंडल । (२) घृत्ता । (३) कषा । (४) मंडली । (५) खोड़ी । हफली ।

दायाँ-वि० [हिं० दाहिना का संज्ञित रूप बामा के अन्तरक पर] दाहिना ।

मुद्दा०—दायाँ बोलना = तीतर का दाहिने हाथ की ओर बोलना जो चौरों के लिये अच्छा शकून समझा जाता है

दायाँ संज्ञा स्त्री० दे० "दाया" । उ०—कामरूप जानहि सब माया । सपनेहु जिनके धर्म न दाया ।—तुलसी ।

संज्ञा स्त्री० [का०] दे० "दाई" ।

दायाँ-दायागी ।

दायागत-वि० [सं०] बंट पहले में थाया हुआ । मौसली हिस्से में पड़ा हुआ ।

संज्ञा पुं० [सं०] पंद्रह प्रकार के दासों में से एक । वह दास जो दाय के रूप में प्राप्त हुआ हो । वह गुलाम जो वास्तव में और चीजों के साथ मिश्रा हो । दे० "दास" ।

दायागी-संज्ञा स्त्री० [का०] दाई का पेशा या काम ।

दायाद-वि० [सं०] [श्री० दायदा] जिसे दाय मिले । जो दाय का अधिकारी हो । जिसे संबंध के कारण किसी की जायदाद में हिस्सा मिले ।

संज्ञा पुं० (१) दाय पाने का अधिकारी मनुष्य । वह जिसका संबंध के कारण किसी की जायदाद में हिस्सा हो । हिस्सेदार । (२) पुत्र । बेटा । (३) सर्पिण्ड कुटुंबी ।

दायादा-संज्ञा स्त्री० [सं०] कन्या ।

दायादी-संज्ञा स्त्री० [सं०] कन्या ।

दायापयर्तन-संज्ञा पुं० [सं०] किसी जायदाद में मिलनेवाले हिस्से की जग्गी ।

दायित-वि० [सं०] दिया हुआ । दान किया हुआ ।

दायित्व-संज्ञा पुं० [सं०] (१) देनदार होने का भाव । (२) जिम्मेदारी । बंधावदेही ।

दायिनी—वि० स्त्री० [सं०] देवेवाली ।

दायी—वि० [सं० दायिन] [स्त्री० दायिन्] देवेवाला ।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग अलग कम होता है, समास में शब्द के रूप में होता है। शक्तिदायी, सुखदायी, कष्टदायी, वरदायी ।

दायें—क्रि० वि० [हिं० दायाँ] दाहिनी ओर को ।

मुहा०—दायें होना = अत्यन्त या प्रव्रत होना ।

दार—संज्ञा स्त्री० [सं०] स्त्री । पत्नी । भार्या ।

धौ०—दारकर्म । दारप्रदण्य । दारपरिग्रह ।

विशेष—संस्कृत में दायि यह शब्द पुं० है पर हिंदी में स्त्री० ही होता है ।

*संज्ञा पुं० दे० 'दार' ।

दारद—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० दारिका] (१) लोहा । लड़का ।

३०—इक कुमार पुत्रि मुनिन सँग रहिपदि रस की बात ।

सिन्धो कहीं अचि तियन पहुँ की दारक दिग तात ।—
विग्राम । (२) पुत्र । घेरा ।

वि० [सं०] विदीर्ष्य करनेवाला । फाड़नेवाला ।

दारकर्म—संज्ञा पुं० [सं०] भार्या-महण्य । विवाह ।

दारचीनी—संज्ञा स्त्री० [सं० दारु + चीन] (१) एक प्रकार का तज जो दक्षिण भारत, सिंहल और टेन्सरिम में होता है । सिंहल में ये पेड़ सुगंधित छात्र लिये बहुत लगाए जाते हैं । भारतवर्ष में यह जंगलों ही में मिलता है, और लगाया भी जाता है तो यार्गियों में रोमा के लिये । कोंकण से लेकर करावर दक्षिण की ओर इसके पेड़ मिलते हैं । जंगलों में तो इसके पेड़ बड़े बड़े मिलते हैं पर लगाए हुए पेड़ काष्ठ के रूप में होते हैं । वृत्ते इसके तेजपत्ते ही की तरह के पर उससे चौड़े होते हैं और वन में थोचवाली खड़ी नस के समानांतर कई खड़ी नसें होती हैं । इसके फूल छोटे छोटे होते हैं और गुच्छों में लगते हैं । फूल के नीचे की दिवली छ फाँकी की होती है । सिंहल में और दारचीनी के पेड़ लगाए जाते हैं उनके लगाने और दारचीनी निकालने की रीति यह है । कुछ कुछ रेतीली करैज मिठी में ४—१ हाथ के अंतर पर इसके बीच थोड़े जाते या कलम लगाए जाते हैं । थोड़े हुए पीनों या लगाए हुए कलमों को पूष से बचाने के लिये पेड़ की दक्षिण भास पास गाड़ दी जाती है । ६ वर्ष में जब पेड़ ४ या १ हाथ ऊँचा हो जाता है तब उसकी दायिर्ष्य दिखला बनाने के लिये काटी जाती है । दक्षिणों में छुरी से हलका धारा लगा दिया जाता है जिसमें छात्र जल्दी उषट भावे । कभी कभी दायिर्ष्यों को छुरी के घेंट आदि से थोड़ा रगड़ भी देते हैं । इस प्रकार अलग किए हुए छात्र के डुकड़ों को हकड़ा करके दबा दबा कर छोटे छोटे पूलों में बाँध कर रख देते हैं । वे पूले दो या एक

दिन यों ही पड़े रहते हैं; फिर छात्रों में एक प्रकार का हलका खमीर सा उठता है जिसकी सहायता से छात्र के ऊपर की झिल्ली और नीचे लगा हुआ गूदा टेढ़ी छुरी से हटा दिया जाता है । अंत में छात्र को दो दिन छाया में सुला कर फिर पूष दिया कर रख देते हैं ।

दारचीनी दो प्रकार की होती है दारचीनी जीवानी और दारचीनी कपूरी । ऊपर जिस पेड़ का विवरण दिया गया है वह दारचीनी जीवानी है । दारचीनी कपूरी की छात्र में बहुत अधिक सुगंध होती है और इससे बहुत अच्छा कपूर निकलता है । इसके पेड़ चीन, जापान, कोचीन और फार-मोसा द्वीप में होते हैं और हिंदुस्तान में भी देहरादून, नीलगिरि आदि स्थानों में लगाए गए हैं । भारतवर्ष अरब आदि देशों में पहले इसी पेड़ की सुगंधित छात्र चीन से आती थी इसीसे इसे दारु + चीनी कहने लगे । हिंदुस्तान में कई पेड़ों की छात्र दारचीनी के नाम से बिकती है । अमिलतास की जाति का एक पेड़ होता है जिसकी छात्र भी व्यापारी दारचीनी के नाम से बेचते हैं । पर वह असली दारचीनी नहीं है । असली दारचीनी आज कल अधिष्कार सिंहल से ही आती है । दक्षिण में दारचीनी के पेड़ को भी लवंग कहते हैं यद्यपि लवंग का पेड़ भिन्न है और जामुन की जाति का है । तज और दारचीनी के पूष यद्यपि भिन्न होते हैं पर एक ही जाति के हैं । दारचीनी से एक प्रकार का तेल भी निकलता है जो दवा के लिये बाहर बहुत जाता है । (२) ऊपर लिखे पेड़ की सुगंधित छात्र जो दबा और मसाले के काम में आती है ।

दारु—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० दारि] (१) चीरने या फाड़ने का काम । चीर फाड़ । विदीर्ष्य करने की क्रिया । (२) चीरने फाड़ने का अर्थ या औजार । (३) फोड़ा आदि चीरने का काम । (४) वह शीपधि जिसके लगाने से फोड़ा आपसें भाप फूट जाय ।

विशेष—सुसुत में चिलचिल, दंती, चित्रक, कवूत-गीध आदि की बीट तथा धार को दारुय शीपध कहा है ।

(१) निर्मली का शीपध ।

दारद—संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार का विप जो दारु देण में होता है । (२) पाप । (३) हंगु ।

दारना—क्रि० सं० [सं० दारय] (१) फाड़ना । विदीर्ष्य करना । (२) नष्ट करना । ध्वस्त करना ।

दारपरिग्रह—संज्ञा पुं० [सं०] स्त्री का प्रदण्य । पाणिप्रदण्य । विवाह ।

दारमदार—संज्ञा पुं० [फा०] (१) आशय । ठहराव । (२) कार्य का भार । किसी कार्य का किसी पर अत्यंतवित्त रहना । जैसे, इस काम का दारमदार तुम्हारे ऊपर है ।

दारुय-वि० [सं०] (१) दारु अर्थात् लकड़ी का। लकड़ी का बना हुआ। (२) काष्ठ-संबंधी।

दारुसंप्रद-संज्ञा पुं० [सं०] भार्या-प्रहय। विवाह।

दारु-संज्ञा स्त्री० [सं० दार] स्त्री। पत्नी। भार्या।

विशेष-सं० 'दार' शब्द नित्य बहुवचनान्त है अतः इसका प्रथमा का रूप "दाराः" होता है पर हिंदी में "दारा रूप" ही स्त्रीलिंग में व्यवहृत होता है।

संज्ञा पुं० [?] किनारा। (लघु०)

संज्ञा स्त्री० [दे०] एक प्रकार की भारी मछली जो हिंदुस्तान में समुद्र के किनारे पाई जाती है। यह लंबाई में तीन हाथ और चौड़ाई में दस ग्यारह सेर होती है।

दारार्द-संज्ञा स्त्री० [फा०] एक प्रकार का रेसामी कढ़ा जो ग्वारनर की तरह का होता है। दरियाई।

दारिद्र्य-संज्ञा स्त्री० दे० "दाह"। उ०-दारि गली है मली विधि सौ घर चारर होगा सुगंध भरो जू।—तेवक।

दारिद्र्य-संज्ञा पुं० दे० "दाहिम"। उ०-विहंसत हंसत दसन तस चमकै पाहन छुकिं। दारिर्वे सरि जो न कह सका फाव्यो हीया दुकिं।—जायसी।

दारिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वालिका। (२) बेटी। पुत्री। कन्या। उ०-ए दारिका परिचारिका करि पालिबी करना-मई।—तुलसी।

दारित-वि० [सं०] चीरा या फाड़ा हुआ। विदीर्ण किया हुआ।

दारिद्र्य-संज्ञा पुं० [सं० दारिद्र्य] दरिद्रता। निर्धनता। उ०-

देखत दुख दोष दुखित दाह दारिद्र्य दरि।—तुलसी।

दारिद्र्य-संज्ञा पुं० दे० "दारिद्र्य"।

दारिद्र्य-संज्ञा पुं० [सं०] दरिद्रता। निर्धनता। गरीबी।

दारी-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक सुद्र रोग जिसमें पैर के तलवे का चमड़ा कड़ा हो जाता है और चिड़चिड़ा कर जगह जगह फट जाता है। वेवाई। सरथा।

विशेष-भावप्रकार में बिराटा है कि जो लोग पैदल अधिक चलते हैं उनकी वायु कुपित होकर सूखी हो जाती है, जिससे चमड़ा कड़ा हो कर फट जाता है।

संज्ञा स्त्री० [सं० दारिका] दासी। बौली। वह बौली जिसे लड़ाई में जीत कर लाए हैं।

यो०-दारीजार।

दारीजार-संज्ञा पुं० [हि० दारि + सं० जार] (१) बौली का पति। (गाली)

विशेष-राजा लोग कभी कभी कोई बौली रख लिया करते थे। जब इससे अप्रसन्न होते तब इसे किसी मनुष्य को दे देते थे और उसने गुजारे के लिये कुछ जागीर दे देते थे। वह मनुष्य उस बौली का पति बनता था इसीसे वह 'दारीजार' कहलाता था। उनसे जो संतान होती थी वह 'दारीजार'

कहलाती थी। कुछ लोगों का अनुमान है कि 'दारीजार' ही से विगडकर 'दादोजार' शब्द बना है। पर वह अनुमान ठीक नहीं जंचता।

(२) दासीपुत्र। बौलीभावा। गुलाम।

दारु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) काष्ठ। काठ। लकड़ी।

यो०-दारुगंध। दारुचीनी। दारुपत्र। दारुशुक्रिका। दारुशेषित। दारुधूप।

(२) देवदार। (३) बड़ई। कारीगर। शिल्पी। (४) पीतल। वि० (१) दानशील। देनेवाला। (२) खंडनशील। टूटने फटनेवाला।

दारुक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) देवदार। (२) श्रीकृष्ण के सारथी का नाम।

विशेष-ये बड़े कृष्णभक्त थे। सुमद्राहरण के समय इन्होंने अर्जुन से कहा था कि मुझे बांध कर तब आप सुमद्रा को रथ पर ले जाहए; मैं यादवों के विरुद्ध रथ नहीं हाँक सकता। कृष्ण के स्वर्गवास का समाचार अर्जुन को इन्होंने दिया था।

(३) काठ का पुतला। (४) एक योगाचार्य जो शिव के भक्तार कहे जाते हैं।

दारुकदली-संज्ञा स्त्री० [सं०] जंगली केला। कटकेला।

दारुका-संज्ञा स्त्री० [सं०] कठपुतली।

दारुकायन-संज्ञा पुं० [सं०] एक धन का नाम जो पवित्र तीर्थ माना जाता है।

दारुगंधा-संज्ञा स्त्री० [सं०] विरोना जो चीड़ से निकलता है।

दारुचीनी-संज्ञा स्त्री० दे० "दारुचीनी"।

दारुज-वि० [सं०] (१) काष्ठ से उत्पन्न। लकड़ी में पैदा होनेवाला। जैसे, दारुज कीट। (२) काष्ठनिर्मित। लकड़ी का बना हुआ।

संज्ञा पुं० एक प्रकार का धान। मईल।

दारुजापितक-संज्ञा स्त्री० दे० "दारुपेयित"।

दारुय-वि० [सं०] (१) भयंकर। भीषण। घोर। (२) कठिन।

मंचदं। विकट। दुःसह। उ०-जा कहँ विधि दारुय दुख दीन्हा। ताकर मति थामे हरि लीन्हा।—तुलसी। (३) विदारक। फाड़नेवाला।

संज्ञा पुं० (१) चित्रक वृक्ष। चीते का पेड़। (२) भयानक रस। (३) रौद्र नामक नक्षत्र। (४) विष्णु। (५) शिव।

(६) एक नरक का नाम। उ०-छठवाँ दारुय नरक है जेहि देखत एक शय।—विश्राम। (७) राक्षस।

दारुणक-संज्ञा पुं० [सं०] स्त्रि में देनेवाला एक सुद्र रोग जिसमें चमड़ा रुखा होकर सफेद भूरी की तरह छूटता है। स्त्री।

दारुण-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) गर्मदालंद की अघिषात्री देवी। (२) भयवृत्तीया।

दाहवारि-संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु ।
 दाहन-वि० दे० "दाह्य" ।
 दाहनटी-संज्ञा स्त्री० [सं०] कठपुतली ।
 दाहनारी-संज्ञा स्त्री० [सं०] कठपुतली ।
 दाहनिशा-संज्ञा स्त्री० [सं०] दाहहलदी ।
 दाहपत्रो-संज्ञा स्त्री० [सं०] हिंदुपत्रो ।
 दाहपात्र-संज्ञा पुं० [सं०] काष्ठ पात्र । काठ का वाहन ।
 विदोष-मनु ने यतियों को अन्नानुपात्र (तुमड़ी) और दाह-
 पात्र रखने का विधान किया है ।
 दाहपीता-संज्ञा स्त्री० [सं०] दाह हलदी ।
 दाहपुत्रिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] कठपुतली ।
 दाहफल-संज्ञा पुं० [सं०] पिस्ता ।
 दाहमय-वि० [सं०] [स्त्री दाहयवी] काठ का । काठ का बना
 हुआ ।
 दाहमुच-संज्ञा पुं० [सं०] एक त्पावर विप का नाम ।
 दाहमूपा-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक भोगधि का नाम ।
 दाहयोपित-संज्ञा स्त्री० [सं०] कठपुतली ।
 दाहसिता-संज्ञा स्त्री० [सं०] दाहचीनी ।
 दाहहरिद्रा-संज्ञा स्त्री० [सं०] दाहहलदी ।
 दाहहलदी-संज्ञा स्त्री० [सं०] दाहहरिद्रा] ब्राह्म की जाति का एक
 सदाशुद्ध जड़ जो हिमालय के पृथ्वी भाग से लेकर
 आसाम, पृथ्वी बंगाल और टनासरिम तक होता है । इसमें
 सफेद कृष्ण गुच्छों में लगते हैं । इसकी जड़ की छाल से
 बहुत अघ्ना पीला रंग निकलता है जिसका म्यवहार
 दार्जिलिंग, आसाम आदि के लोग बहुत अधिक करते हैं ।
 जड़ और डंठल का रंग पीला होता है हस्तीसे इस पीपे को
 दाहहलदी कहते हैं । वास्तव में यह हलदी की जाति का नहीं
 है । दाहहलदी के नाम से इसकी जड़ और डंठल को टुकड़े
 पात्रार में विक्रते हैं । जड़ गाँठ के रूप में नहीं होती ।
 दाहहलदी दवा के काम में भी आती है । वैद्यक में यह
 कड़ुई, चरपरी, गरम तथा मृण, प्रमेद, छुबजी, चमोरांग
 हृत्पादि को दूर करनेवाली मानो जाती है ।
 पय्या-दाह्य । दाहहरिद्रा । द्वितीयामा । कपीतक । पीतवु ।
 कलियुक्त । पंचपचा । पर्जन्यी । काष्ठा । मर्मरी । पीतिका ।
 पीतदाह । कामिनी । कंदकटेरी । पर्जन्या । पीता । दाह-
 निशा । कामवती । हेमकाली । निर्दिष्टा ।
 दाह-संज्ञा स्त्री० [फा०] (१) दवा । औषध ।
 धा०-दवा दाह ।
 (२) मय । शराय । (३) यारुद ।
 दाहकार-संज्ञा पुं० [फा० दाह + हिं० कार] शराय बनानेवाला ।
 कलवार ।
 दाहङ्गा-संज्ञा पुं० [फा० दाह] [स्त्री दाहङ्गी] शराय । मय ।

दारो-संज्ञा पुं० दे० "दारयो" ।
 दारोगा-संज्ञा पुं० [फा०] (१) निगरानी रखनेवाला अफसर ।
 देख भाग रखनेवाला या प्रबंध करनेवाला व्यक्ति । जैसे,
 दारोगा जेल, दारोगा चुंगी, दारोगा अफसल । (२) पुलिस
 का यह अफसर जो किसी धाने पर अधिकारी हो । धानेदार ।
 दारोगाई-संज्ञा स्त्री० [फा० दारोगा] दारोगा का काम या पद ।
 दाल्य-संज्ञा पुं० [सं०] दूढ़ता ।
 दाहुर-वि० [सं०] दहुर संबंधी ।
 संज्ञा पुं० दक्षिणावर्त्त शंख का एक मेद ।
 दाहुरिक-संज्ञा पुं० [सं०] कुम्हार ।
 दार्भ-वि० [सं०] हुज या दर्भ संबंधी ।
 दारधो-संज्ञा पुं० [सं० दार्धिम] अन्नार । व०-नासिका सरोत्र
 गंधवाह से सुगंधवाह दारयो से दसन कँसे धीउरी से हास
 है ।-केशव ।
 दार्ध-संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री दार्धि] मयूर । मोर । (जिसका
 अंडा काठ की तरह कड़ा होता है) ।
 दार्ध-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रदेश का नाम जो ईरम विभाग के
 ईशानकोण में प्राधुनिक काश्मीर के अंतर्गत पड़ता था ।
 दार्धघाट-संज्ञा पुं० [सं०] (काठ पर आघात करनेवाला) कठ-
 फोड़ना नाम का पथी ।
 दार्ध-संज्ञा पुं० [सं०] फा० 'दरक' से] मंत्रणा-गृह । यह केरली
 जहाँ एकतम में बँटकर किसी बात का विचार किया जाय ।
 दार्धिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) दाहहलदी से निजाया हुआ
 गुनिया । (२) बनगोभी । गोजिया ।
 दार्धी-संज्ञा स्त्री० [सं०] दाहहलदी ।
 दार्धिक-वि० [सं०] (१) दर्शन जाननेवाला । (२) दर्शन
 शास्त्र संबंधी ।
 संज्ञा पुं० दर्शन शास्त्र जाननेवाला मनुष्य । तत्त्वज्ञानी ।
 तत्त्ववेत्ता ।
 दार्ध-संज्ञा पुं० [सं०] काल्हायन श्रौतसूत्र के अनुसार एक
 यज्ञ जो एपहती नदी के किनारे किया जाता था ।
 दार्धतिक-वि० [सं०] दृष्टांत संबंधी ।
 दाल-संज्ञा स्त्री० [सं० दालि] (१) दलें में किया हुआ अरहर, मूँग,
 हरद, चना, मसूर आदि अन्न जो उबाल कर खाया जाता
 है । दली हुई अरहर मूँग आदि जो सातव की तरह खाई
 जाती है । जैसे, मूँग की दाल क्या भाव है ?
 क्रि० प्र०-दखना ।
 धा०-दाखमोड ।
 विदोष-दाल उन्हीं अनाजों की होती है जिनमें फलियाँ लगी
 हैं और जिनके बीज दधाने से टूटकर दो दलें या सँहों में
 दो जाते हैं । जैसे, अरहर, मूँग, हरद, चना, मसूर, मटर ।

(२) हलसी, मसाले के साथ पानी में बचाया हुआ दवा अथ जो रोटी मात आदि के साथ खाया जाता है ।

मुद्रा०—दाख गबना=दाख का अच्छी तरह पक कर नरम हो जाना । दाख का सीमना । (किसी की) दाख गबना = (किसी का) प्रयोजन सिद्ध होना । मतलब निकलना । कार्य सिद्धि के लिये किसी युक्ति का चलना । (इस मुद्रा० का प्रयोग निषेधात्मक वाक्य में ही अधिकतर होता है जैसे, वहाँ मुद्दारी दाख नहीं गलेगी, बड़े बड़े बस्ताद हैं) । दाख चपाती = (१) दाख रोटी । (२) बच्चों को बराने का एक नाम । दाखचप्पू होना = एक दूर से लिपट कर एक हो जाना । गुणभंगुपा होना । जैसे, दो पतंगों का दाखचप्पू होना । दाख दुलिया = पूजा रूखा भोजन । गरीबों का खाना । दाख में कुछ काबा होना = कुछ खटके या संदेह की बात होना । कुछ बुरा रहस्य होना । किसी छुरी बात का लक्षण दिखाई पड़ना । दाख रोटी = सादा खाना । सामान्य भोजन । आहार । दाख रोटी चलना = खाना मिलना । जीविका निर्वाह होना । दाख रोटी से छुटा = खाने पीने से मुखी । पाता पीता । जिसे न अधिक धन हो न खानेपीने का कष्ट हो । जूतियों दाख पैटना = खूब लड़ाई भगना होना । गहरी अनवन होना । आपस में न पटना ।

(३) दाल के आकार की कोई वस्तु । (४) चंचक, कोड़े फुंसी आदि के ऊपर का चमड़ा जो सूखकर छूट जाता है । सुरंड । पपड़ी ।

मुद्रा०—दाख छटना = खुरंड अन्नग होना । दाख बँचना = खुरंड पड़ना ।

(५) सूर्यमुखी शरीरे से होकर शायी हुआ किरनों का समूह जो इकट्ठा होकर गोल दाख के आकार का हो जाता है और जिससे आग लग जाती है ।

मुद्रा०—दाख बँचना = अन्नत का इकट्ठा होकर पड़ना ।

(६) श्रेते की जखी ।

संज्ञा पुं० [सं० देवदार] गुन की जाति का एक पेड़ जो हिमालय पर सिमसा तथा आगे पंजाब की ओर होता है । इसकी लकड़ी बहुत मजबूत होती है । इसकी धरों और कड़ियाँ मकानों में खरतों, पुल और रेल की सड़कों पर बिछाई जाती हैं तथा और भी बहुत से कामों में आती हैं । संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार का मछु । पेड़ के खोंदरे में मिलनेवाला शहद । (२) कोई नाम का अन्न ।

दालचीनी—संज्ञा श्री० दे० “दारचीनी” ।

दालन—संज्ञा पुं० [सं०] दाँव का एक रोग ।

दालभ्य—संज्ञा पुं० [सं०] एक मुनि का नाम ।

दालमोठ—संज्ञा श्री० [हि० दाल + मोठ = एक कदम] धी सेल आदि

में ममक, मिर्च के साथ तली हुई दाख जो नमकीन की तरह खाई जाती है ।

दालय—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का खाद्य विष ।

दाला—संज्ञा श्री० [सं०] महाकाल नाम की लता ।

दालान संज्ञा पुं० [फा०] यह लंबा घर जिसके चारों ओर दीवार न हो, एक दो या तीन ओर खंभे धादि हों । मकान में यह छाई हुई अगह जो चारों ओर से चिरी न हो, एक दो या तीन ओर खुली हो । बरामदा । घोसारा ।

विशेष—दाखान प्रायः मकान के सामने होता है ।

दालि—संज्ञा श्री० [सं०] (१) दाख । (२) देवदाली लता ।

(३) दाक्षिण । अगार ।

दालिम—संज्ञा पुं० दे० “दाक्षिम” ।

दालभ्य—संज्ञा पुं० [सं०] (१) दरम अथि के गोर का मनुष्य ।

(२) एक नामक मुनि ।

विशेष—इंद्र इनके यंघु थे । इन्होंने चंद्रसेन राजा की गमिणी श्री की परछाराम के कोप से रक्षा की थी ।

दाक्षिम—संज्ञा पुं० [सं०] इंद ।

दाँव—संज्ञा पुं० [सं० अन्न० दा (दाच्) लीते एकदा] (१) बार दफा । मारवा । (२) किसी के लिये किसी बात का समय जो कई आदमियों में एक दूसरे के पीछे क्रम से आवे । पारी । पारी । जैसे, जब तुम्हारा दाँव आवेगा तब जैसा चाहना वैसा करना । व०—तब नहीं दिना मो कहें ठावें । अथ कस रोवत अयने दाँव ।

क्रि० प्र०—घाना ।

(३) किसी कार्य के लिये अयुक्त समय । अथवा । मौका । अनुकूल संयोग । व०—(क) द्विअदेव की सेाँ अथ चूक मज दाँवें, अरे पातकी पपीदा । वू पिया की छुनि गावें ना । —द्विअदेव । (ख) कहै पदमकर ल्यों साँकरी गली है अति इत वत भाजिये को दाँवें ना लगत है ।—पद्माकर ।

क्रि० प्र०—पाना ।—मिलना ।

मुद्रा०—दाँवें करना = बात लगाना । बात में वैठना । दाँवें चुकना = अथवा के हाथ से जाने देना । किसी कार्यवाहन के लिये अनुकूल समय पाकर भी कुछ न करना । मौका खाना । दाँवें ताकना = अथवा की ताक में रहना । मौका देखते रहना । दाँवें लगना = अथवा हाथ में आना । अनुकूल संयोग मिलना । मौका मिलना । दाँवें लगाना = दे० “दाँवें ताकना” । दाँवें लेना = जिसने बुरा व्यवहार किया है मौका मिलने पर उसके हाथ वैसा ही व्यवहार करना । बदला लेना । प्रतिकार करना । व०—अबुअर कुपित हैं क्यो बहुत गुन अबुअर सँहारे । अथ लीहैं पह दाँवें छाकिहैं नहीं विदु मारे । —सूर ।

(४) कार्य-साधन की युक्ति । दवाप । चाल । मतलब गठिने का रंग ।

मुहा०—दावें पर चढ़ना = ऐसी स्थिति में होना जिससे किसी का काम निकल सके । किसी के अभिप्राय साधन के अनुकूल प्रवृत्त होना । इस प्रकार यरा में होना कि दूसरा अपना मतलब निकाश हो । दावें पर चढ़ना = मतलब के सुवाफिक करना । कार्य-साधन के लिये अनुकूल करना । दावें पर लगना = दे० "दावें पर चढ़ना" । दावें में खाना = दे० "दावें पर चढ़ना" ।

(५) कुत्ती या लड़ाई जीतने के लिये काम में लाई जाने-वाली युक्ति । चाल । घेच । बंद । व०—(क) तब हरि निरे महल्लोड़ा करि बहू विधि दावें दिलापु ।—सूर । (घ) मरठि धूर फेकन चहत खजत न कोऊ दावें ।

क्रि० प्र०—करना ।

दा०—दावें घेच ।

मुहा०—दावें पर खाना = कुत्ती में जोड़ को ऐसी स्थिति में करना कि उसपर पंच हो सके ।

(६) कार्य साधन की कुटिल युक्ति । छल । कपट ।

क्रि० प्र०—चलना ।

मुहा०—दावें खेलना = चाल चलना । धोखा देना । दावें देना = दे० "दावें खेलना" ।

(७) खेल में प्रत्येक खेलाड़ी के खेलने का समय जो एक दूसरे के पीछे क्रम से आता है । खेलने की घाटी । चाल । जैसे, शय हमारा दावें है कौड़ी हम फेंकेंगे ।

मुहा०—दावें चलना = अपनी घाटी आने पर शतरंज की गोठी, तासा के पत्ते आदि का रखना । दावें फेंकना = अपनी घाटी आने पर पासा या शूए की कौड़ी आदि डालना । दावें पर रखना = शयया पैसा या कोई वस्तु दावें फेंकनेवाले के सामने रखना जिसमें यदि बहू जीते तो उसे ले जाय और हारे तो उतना दे । बाजी पर लगना । दावें लगाना = "दे० दावें पर रखना" ।

(८) पॉसे, शूए की कौड़ी आदि का इस प्रकार पड़ना जिस से जीत हो । जीत का पॉसा या कौड़ी । व०—(क) दावें बजरा म फेा देखि वग छल कियो हाम जीतये कहन लगो सारे । देवबायी भई, नीत भई राम की, साहु वै मुह नगाईं सैमारे ।—सूर । (ख) सूरु सुप्रारिहि आन दाईं ।—तुलसी ।

क्रि० प्र०—खाना ।—पड़ना ।

मुहा०—दावें देना = खेल में हाने पर निश्च दंड भोगना या परिश्रम करना । (लड़के) । व०—(क) खेलत संग अनुरु चालक नित जोगयत अनट अपना । नीति हारि चुचकारि हुलारत देत दियावत दावें ।—तुलसी । (ख) हमरे संग कहेा को खेलै दावें देत नहिं करत रुनैया ?—सूर । दावें खेना =

लेख में हानेवाले । से निश्च दंड भोगना या परिश्रम करना ।

† (१) खान । ठार । जगह । व०—बह झाड़ी एक पहाड़ के बजार पर थी हस्तसे सिंह को निकलने का दावें न था ।—गोपाल उपासनी ।

दावैना—क्रि० व० [सं० दमन] दाना और सूता खजक करने के लिये कटी हुई फसल के सुले बंडलों को बैलों से रेंद-वाना । दाना झाड़ने के लिये मॉड़ना ।

दावैनी—संज्ञा स्त्री० [सं० दामिनी] माघे पर पड़ने का खियों का एक गहना । बंदी ।

दावैरि—संज्ञा स्त्री० [सं० दाम] रस्ती । रज्जु । व०—दावैरि ली बांधन खमी जमुदा है बेपीर । पी गोबधन बांधि है गोपति कों को धीर ।—भ्यास ।

दाव—संज्ञा पुं० [सं०] (१) वन । जंगल । (२) वन की श्राग । (३) श्राग । अग्नि । (४) जलन । ताप ।

संज्ञा पुं० [दे०] (१) एक प्रकार का हथियार । (२) एक पेड़ का नाम । दे० "धावरा" ।

दावत—संज्ञा स्त्री० [व० दभवत] (१) ज्योत्नार । भोज । (२) खाने का बुझाया । निमंत्रण । न्योता ।

क्रि० प्र०—खाना ।—देना ।—खेना ।

दावदी—संज्ञा स्त्री० दे० "गुलदावदी" ।

दावन—संज्ञा पुं० [सं० दमन] (१) दमन । नाल । व०—जादु-धान दावन परावन को दुर्गा भये महामोम वास तिमि तोमन को फल भो ।—तुलसी । (२) हंसिया । (३) एक प्रकार का देड़ा छुरा । सुखड़ी ।

संज्ञा पुं० दे० "दामन" ।

दावना—क्रि० व० दे० "दावना" ।

क्रि० व० [हिं० दावन] दमन करना । नष्ट करना । व०—सुनु खगपति यह कथा पावनी । त्रिविध ताप भव दाप दावनी ।—तुलसी ।

दावनी—संज्ञा स्त्री० दे० "दावैनी" ।

दावरा—संज्ञा पुं० [दे०] धावरा नाम का पेड़ ।

दावा—संज्ञा स्त्री० [सं० दाव] वन में लगनेवाली श्राग जो बांस या और पेड़ों की आखियों के एक दूसरे से रगड़ खाने से उत्पन्न होती है और दूर तक फैलती चली जाती है । व०—चिंता ज्वाळ सरीर मन दावा लगि लगि जाय । प्रगट धुर्व नहिं देखिषु वर अंतर धुधुवाय ।—गिरिधर ।

संज्ञा पुं० [व०] (१) किसी वस्तु पर अधिकार प्रगट करने का कार्य । किसी वस्तु को जोर के साथ धपना कहना । किसी चीज पर हक जाहिर करना । जैसे, कज तुम इस मकान ही पर दावा करने लगोगे तो हम क्या करेंगे ? व०—दावा पातसाहन सौं कीन्हों सिवराज वीर जेर

कीनो देस, हूँ धाँप्यो दरभारे में।—भूषण । (२) स्वत्व ।
हूक । ४०—हूँस चीज पर तुम्हारा क्या दावा है । (३) किसी
के विरुद्ध किसी वस्तु पर अपने अधिकार स्थिर करने के
लिये न्यायालय आदि में दिया हुआ पार्थनापत्र । किसी
आपदाद या रूपप वैसे के लिये खजाया हुआ मुकदमा ।
जैसे, किसी शादी पर अपने रूपप का दावा करना ।

क्रि० प्र०—करना।—होना ।

मुहा०—दावा जमाना=मुकदमा ठीक करना । हूक सावित
करना ।

(७) शालिवा । अभियोग ।

मुहा०—दावा खारिज होना=मुकदमा हारना । हूक का सावित
न होना ।

(४) अधिकार । जेत । प्रताप । ४०—गुरु के दावा सदा
नाम के समूह पर दावा नाम जूह पर सिंह सिरताम को।—
भूषण । (६) किसी बात को कहने में यह साहस जो बस
की धारणा के निश्चय से उत्पन्न होता है । हड़ता । जैसे,
मैं दावे के साथ कहता हूँ कि मैं इस काम को दो दिनों में
कर सकता हूँ । (७) हड़तापूर्वक कपन । जेत के साथ
कहना । जैसे, वनका तो यह दावा है कि वे एक मिन्ट में
एक श्लोक बना सकते हैं ।

दावागीर—संज्ञा पुं० [अ० दावा + फा० गीर] दावा करनेवाला ।
अपना हूक जतानेवाला । ४०—साहूँ घेदा बाप के विगरे
भये अक्राज । हिरनाकुस धरु कंस को गयो दुहुन को राज ॥
गयो दुहुन को राज बाप घेदा के विगरे । दुसमन दावागीर
भय महिमंजल सिगरे ।—गिरिधर ।

दावाग्नि—संज्ञा स्त्री० [सं०] धन में खरनेवाली आग ।

दावाचत—संज्ञा स्त्री० [अ० दवात] रयाही रखने का परतन । मस्ति-
पाय ।

दावादार—संज्ञा पुं० [अ० दावा + फा० दार] दावा करनेवाला ।
अपना हूक जतानेवाला ।

दावानल—संज्ञा पुं० [सं०] धन की आग जो धाँसों या धार पेड़ों
की टहनियों के एक दूसरे से रगड़ जाने से उत्पन्न होती है
धार दूर तक फैलती धली जाती है । घनाग्नि ।

दाविनी—संज्ञा स्त्री० [सं० दाविनी] (१) विजली । (२) खियों
के साथ पर का एक गहन । घेदी ।

दावी—संज्ञा पुं० [सं० धन] धन का पेड़ ।

दाश—संज्ञा पुं० [सं०] (१) मज्जाहा । धीवर । केवट ।

विशेष—निपाट्ट पुरुष और आयेगव स्त्री से उत्पन्न व्यक्ति को
दास कहते हैं । ये नौका बनाते हैं और कैवत या केवट भी
कहाते हैं ।

(२) शूल । नौकर ।

दाशपुर—संज्ञा पुं० [सं०] (१) धीवरी की बस्ती । (२) एक
प्रकार का मोपा । कैवत मुस्तक ।

दाशरथ—वि० [सं०] दशरथ संबंधी ।

संज्ञा पुं० दशरथ के पुत्र श्रीरामचंद्र ।

दाशरथि—संज्ञा पुं० [सं०] दशरथ के पुत्र श्रीरामचंद्र आदि ।

दाशरथिक—वि० [सं०] दशरथ संबंधी ।

दाशाह—संज्ञा पुं० [सं०] (१) दशाह देस । (२) दशाह देस
का निवासी ।

दाशाह—संज्ञा पुं० [सं०] दशाह के वंश का मनुष्य । अनुबंधी ।

दाशोय—वि० [सं०] दास से उत्पन्न ।

संज्ञा पुं० दास का पुत्र ।

दाशोर—संज्ञा पुं० [सं०] धीवरी की संतति ।

दाशोरक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) मरु भूदेस । मारवाड़ । (२)
मारवाड़ का निवासी ।

दाशीदलिक—वि० [सं०] दशोदन यज्ञ संबंधी ।

संज्ञा पुं० दशोदन यज्ञ की दधिपा ।

दाशत—संज्ञा स्त्री० [फा०] परवरिश । पालन पोषण ।

दाश्व—वि० [सं०] देनेवाला ।

दास—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० दासी] (१) यह जो अपने को
दूसरे की सेवा के लिये समर्पित कर दे । सेवक ।
थाकर । नौकर ।

विशेष—मनु ने सात प्रकार के दास लिखे हैं—धनवाह्य अर्थात्
पुत्र में जीता हुआ, भक्तदास अर्थात् जो भात या जोजन
पर रहे, गृहज अर्थात् जो घर की दासी से उत्पन्न हो, क्रीत
अर्थात् मोल किया हुआ, दयिम अर्थात् जिसे किसीने
दिया हो, दंडदास अर्थात् जिसे राजा ने दास होने का दंड
दिया हो, पैतृक अर्थात् जो बाप दातृ से दाय में मिला हो ।
याज्ञवल्क्य, नारद आदि स्मृतियों में दास पंद्रह प्रकार के
गिनाए गए हैं—गृहजात, क्रीत, दाय में मिला हुआ,
अज्ञातकालभूत अर्थात् अज्ञात या दुर्भिक्ष में पाला हुआ,
आहित अर्थात् जो स्वामी से हकूदा धन लेकर उसे सेवा
हार पटाता हो, श्रयदास जो श्रय लेकर दासत्व के बंधन
में पड़ा हो, युद्ध-प्राप्त, बाजी या लुट में जीता हुआ, स्वयं
द्वगत अर्थात् जो आपसे आप दास होने के लिये आया हो,
प्रभुभ्यावसित अर्थात् जो संज्ञास से पतित हुआ हो, कृत
अर्थात् जिसने कुछ काल तक के लिये थापसे आप सेवा
करना स्वीकार किया हो, भक्तदास, बड़ेवाह्य अर्थात् जो
किसी बड़े या दासी से विवाह करने से दास हुआ हो,
लक्ष जो किसी से मिला हो, और आत्मविक्रता जिसने
अपने को बेच दिया हो ।

प्रादाय के लिये दास होने का निषेध है, प्रादाय को छोड़
और तीनों वर्षों के लोग दास हो सकते हैं । यदि कोई

प्राण्य लोभयद् दासत्व स्वीकार करे तो राजा उसके दंड दे (मनु) । अग्रिय और वैश्य दासत्व से विमुक्त हो सकते हैं पर शूद्र दासत्व से नहीं छूट सकता । यदि यह एक स्वामी का दासत्व छोड़ना तो दूसरे स्वामी का दास होगा । दास उसे सब दिन रहना पड़ेगा क्योंकि दासत्व के लिये बसका जन्म ही कष्टा गया है । दासों के दो प्रकार के कर्म कहे गए हैं शुभ (अच्छे) और अशुभ (बुरे) । दावाने पर काह देना, मज-मूठ उठाना, जूँडा धोना आदि बुरे कर्म माने गए हैं ।

(२) शूद्र । (३) धीवर । (४) एक उपाधि जो शूद्रों के नामों के आगे लगाई जाती है । (५) दरयु । (६) युक्तसुर । (७) ज्ञातात्मा । भाग्यशाली । (८) संज्ञा पुं० दे० "दासन" "दासनम्" । उ०—भा निमंज सय भरति ब्रह्मस् । सेज सैवारि कीन्ह मज दास् ।—जायसी ।

दासक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) दास । सेवक । (२) गौत्र-प्रवर्तक एक ऋषि का नाम ।

दासता—संज्ञा स्त्री० [सं०] दास का कर्म । दासत्व । सेवावृत्ति ।

दासत्व—संज्ञा पुं० [सं०] (१) दास होने का भाव । (२) दास का काम । सेवावृत्ति ।

दासनंदिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] धीवर की कन्या सत्यवती जो व्यास की माता थी ।

दासन—संज्ञा पुं० दे० "दासन" ।

दासपन—संज्ञा पुं० [सं० दास + पन (मूल०)] । दामत्व । सेवाकर्म ।

दासपुर—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का मोक्ष । वैवर्त्त सुरतक ।

दासमीय—वि० [सं०] दसम देश में श्यल ।

संज्ञा पुं० दसम देश का निवासी ।

दासमेय—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन जनपद ।

दासा—संज्ञा पुं० [सं० दासी = देवी] (१) धीवार से सटाकर बढायी हुआ बाँध या पुरता जो कुछ ऊँचाई तक हो और जिस पर चीज चढू भी रख सकें । (२) अग्निके काष्ठों और धीवार से सटा कर बढाया हुआ चबूतरा जो अग्निके पानी को धार या दाहान में जाने से रोकने के लिये बनाया जाता है । (३) वह लकड़ी या पत्थर जो दावाने के ऊपर धीवार के धार पार रहता है । (४) धीवार की कुरसी के ऊपर बैठाया हुआ पाथर ।

संज्ञा पुं० [सं० दग्न] हँसिया ।

दासानुदास—संज्ञा पुं० [सं०] सेवक का मेवक । धार्यंत तृच्छ सेवक । (नम्रता और शिष्टता दिखाने के लिये इस शब्द का व्यवहार अधिक होता है) ।

दासिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दासी ।

दासी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सेवा करनेवाली स्त्री । दहलनी । लौंडी । (२) धीवर या शूद्र की स्त्री ।

यो०—दासीपुत्र ।

(३) काकजंघा । (४) नीलाखान । काकाकारोडा नाम का पौधा । (५) कटसरैया । (६) वेड़ी ।

दासेय—वि० [सं०] [स्त्री० दासेयी] दास से भव्य ।

संज्ञा पुं० (१) दास । गुलामनादा । (२) धीवर ।

दासेयी—संज्ञा स्त्री० [सं०] व्यास की माता सत्यवती ।

दासेर—संज्ञा पुं० [सं०] (१) दास । (२) कंबस । धीवर । (३) ऊँट ।

दासेरक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) दासीपुत्र । (२) ऊँट ।

दास्तान्—संज्ञा स्त्री० [फा०] (१) वृत्तंत । (२) हाल । कथा । किस्ता । (३) यथैन । ध्यान ।

दास्य—संज्ञा पुं० [सं०] दासत्व । दासपन । सेवा ।

विशेष—दास्य, भक्ति के नव भेदों में से एक है ।

दास्यमान्—वि० [सं०] जो दिया जानेवाला हो । जिसे दूसरे को देना हो ।

दास्—संज्ञा पुं० [सं०] अश्विनी नक्षत्र ।

दाह—संज्ञा पुं० [सं०] (१) जलाने की क्रिया या भाव । मरमीकरण । (२) शव जलाने की क्रिया । मुर्दा ढूँकने का कर्म ।

विशेष—शुद्धितत्व में दाह कर्म के विषय में इस प्रकार लिखा है । शव को पुत्रादि श्मशान में ले जाकर रत्नों और स्नान कर के विंढदान के लिये श्राद्ध पकावे । फिर शूलक के शरीर में धी मलकर उसे मंत्रपाठ पूरेक स्नान करावे, दूसरे नद तट में खपेटे, और धाँस, कान, नाक, मुँह हनु सात धुँदों में घोड़ा घोड़ा सोना काँसे । इतना हो सुकने पर चिता में अग्नि देनेवाला प्राचीनानीत होकर (जनेज को दाहिने कंधे पर घालकर) बायीं घुटमा टेककर सँडे और मंत्र पढ़कर कुश से एक रेखा खींचे । फिर उस रेखा पर कुश विद्याये और दाहिने हाथ में तिल सहित जल पात्र लेकर शूलक का नाम, गौत्र आदि उच्चारण करता हुआ जल को कुश पर गिरा दे । इसके अनंतर तिल सहित विंढ लेकर कुश पर विस्तारित करे । जब हतना कृत हो साथ तब पुत्रादि पिता तैवार करे और मुर्दे को बस पर दृक्खन और सिर करके लेटा दे । जो सामवेदी हों वे शव का मलक उत्तर की ओर रखें । फिर अग्नि हाथ में लेकर श्राग देनेवाला तान प्रदक्षिणा करे और दृक्खन और भपना यह करके शव के मलक की ओर श्राग लगा दे । फिर सात लकड़ियाँ हाथ में लेकर सात प्रदक्षिणा करे और अग्नि प्रदक्षिणा में एक एक लकड़ी चिता में दाखता जाय । जब शव जल क्षाय तब एक बाल लेकर चिता पर सात बार महर करे जिससे कृपाय पूट

जाय हुनवा करके फिर वह चिता की ओर न ताके और जाकर स्नान करले ।

(३) जलन । ताप । (४) एक रोग जिसमें शरीर में जलन मालूम होती है । प्यास लगती है और कंठ सूखता है । वैद्यक के मत से दाह पित्त के प्रकोप से होता है ।

विशेष—भायप्रकाश में दाह सात प्रकार का लिखा है ।

१—रक्तजन्मदाह जिसमें रक्त क्षुपित होकर सारे शरीर में दाह उत्पन्न करता है, ऐसा जान पड़ता है माने सारा शरीर आग से तप रहा है और चण चण पर प्यास लगती है ।

२—रक्तपूर्ण कोष्ठज दाह जो किसी अंग में दृषियार आदि का घाव लगने पर उस घाव से कोष्ठ में रक्त जाने से उत्पन्न होता है । ३—मद्यज दाह । ४—शृण्णा विशेषज दाह । ५—धातुचयजदाह । ६—ममोन्निधतज दाह । ७—श्रसाध्य दाह जिसमें रोगी का शरीर ऊपर से तो ठंडा रहता है पर भीतर भीतर जला करता है ।

(४) शोक । संताप । अत्यंत दुःख । डाह । ईर्ष्या ।

दाहक-वि० [सं०] जलानेवाला ।

संज्ञा पुं० (१) चित्रक वृक्ष । चीता । जाल चीता । (२) अग्नि । आग ।

दाहकता-संज्ञा स्त्री० [सं०] जलाने का भाव या गुण ।

दाहकरव-संज्ञा पुं० [सं०] जलाने का भाव या गुण ।

दाहकर्म-संज्ञा पुं० [सं०] राव दाहकर्म । मुर्दा फूटने का काम ।

दाहकाष्ठ-संज्ञा पुं० [सं०] आग जिसे सुगंध के लिये जलाते हैं ।

दाहक्रिया-संज्ञा स्त्री० [सं०] शवदाह-कर्म । मृतक को जलाने का संस्कार ।

दाहज्वर-संज्ञा पुं० [सं०] वह ज्वर जिसमें शरीर में बहुत अधिक जलन मालूम हो ।

दाहन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) जलाने का काम । (२) जलवाने का काम । भस्म कराने की क्रिया ।

दाहना-किं० सं० [सं० दाह] (१) जलाना । भस्म करना । (२) संनस कराना । सताना । दुःख पहुँचाना ।

वि० दे० "दाहिना" ।

दाहस्त्र-संज्ञा पुं० [सं०] मुर्दा जलाने का स्थान । शय्यागन ।

दाहद्वार-संज्ञा पुं० [सं०] खल ।

दाहा-संज्ञा पुं० [सं०] दाह = दस] (१) सुदूरम के दस दिन जिसके भीतर ताजिया बनता है और दफन किया जाता है ।

(२) ताजिया ।

दाहागृह-संज्ञा पुं० [सं०] जलाने का आगर ।

दाहिनार्-वि० दे० "दाहिना" ।

दाहिना-वि० [सं० दक्षिण] [स्त्री० दाहिनी] (१) उस पारवें का जिसके अंगों की वैशेषों में अधिक यत्न होता है । उस ओर का जिस ओर के अंग काम करने में अधिक तत्पर होते हैं ।

'वार्या' का उलटा । दक्षिण । अपसम्य । जैसे, दाहिना हाथ, दाहिना पैर, दाहिनी अलि ।

मुहा०—दाहिनी देना = दक्षिणावर्त परिक्रमा करना । प्रदक्षिणा करना । उ०—जदा भस्म तनु दहै घृषा करि कर्म वैधावै ।

पुहमि दाहिनी देखि गुफा बसि मोहि न पावै ।—सूर ।

दाहिनी खाना = प्रदक्षिणा करना । उ०—पंचवटी गोदहि प्रनाम करि छुटी, दाहिनी लाई ।—तुलसी । (किसी का)

दाहिना हाथ होना = बड़ा भारी सहायक होना ।

(२) उधर पड़नेवाला जिधर दाहिना हाथ हो । जैसे, दाहिनी ओर, दाहिनी दिशा । (३) अनुकूल । प्रसन्न । उ०—

चार बार विनवों नैदजाबा । मोरै दाहिन होहु कृपाबा ।—सूर ।

दाहिनावर्त्ती-वि० [सं० दक्षिणावर्त्त] (१) प्रदक्षिणा । (२) एक प्रकार का शंख । दे० "दक्षिणावर्त्त" ।

दाहिने-किं० वि० [हिं० दाहिना] दाहिने हाथ की ओर । उस तरफ जिस तरफ दाहिना हाथ हो । दाहिने हाथ की दिशा में । जैसे, तुम्हारे दाहिने जो मकान पड़े उसी में उकाना ।

मुहा०—दाहिने होना = अनुकूल होना । हित की ओर प्रवृत्त होना । प्रसन्न होना । उ०—पुनि दर्दों खल गन सति भाप ।

जे धिनु काज दाहिने याएँ ।—तुलसी ।

दाही-वि० [सं० दाहिन] [स्त्री० दाहिनी] जलानेवाला । भस्म करनेवाला ।

दाह्य-वि० [सं०] जलाने योग्य ।

दिह-संज्ञा पुं० [सं०] जू नाम का छोटा कीड़ा जो सिर के बालों में पड़ता है ।

दिंड-संज्ञा पुं० [सं०] एक तरह का नाच । उ०—बलया टेंकी आखम सदिंड । पद पलाटि हरमयी निशंक थिंड ।—केदार ।

दिंडिंड-संज्ञा पुं० दे० "दिंडिर" ।

दिंडिर-संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का एक प्रकार का नाच ।

दिंडी-संज्ञा पुं० [सं०] वहीस मात्राओं का एक छंद जिसके अंत में दो गुरु होते हैं और जिसमें ६ और १० पर विधाय होता है । इसमें कभी केवल दो चरणों का और कभी चार चरणों का अनुप्रास होता है । मराठी भाषा में इस छंद का विशेष व्यवहार होता है ।

दिंडीर-संज्ञा पुं० [सं०] दिंडर । समुद्र फेन ।

दिंडली-संज्ञा स्त्री० [हिं० दीया (छोटा कलश) का स्त्री० अर्थ०] (१)

मिठी का बना हुआ बहुत छोटा दीया या कसोरे के आकार का पात्र । (२) मूल के भीचे की हरे रंग का कटोरी जो कई फलों में पैटी होती है । (३) दे० "विडली" ।

दिंड्या-संज्ञा पुं० दे० "दीया" ।

दिवावची-संज्ञा स्त्री० दे० "दियावची" ।

दिवाकरा—संज्ञा पुं० दे० “द्वयार” ।
 दिवाकरा—संज्ञा पुं० (१) दे० “द्वयार” । (२) दे० “दिवारा” ।
 दिवास्तलाई—संज्ञा स्त्री० दे० “दिव्यास्तलाई” ।
 दिडला—संज्ञा पुं० दे० “दिडली” ।
 दिडली—संज्ञा स्त्री० [हिं० दिभली] (१) सूखे घाव के ऊपर की पपड़ी । छुरट । छुटी । दाज । (२) दे० “दिडली” । (३) मड़ली के ऊपर से छूटनेवाला छिलका । सेहरा ।
 दिक्—संज्ञा स्त्री० [सं०] दिग्वा । ओर । तरफ़ ।
 दिक्—वि० [ञ०] (१) जिसे बहुत कष्ट पहुँचाया गया हो । हैरान ।
 संग । जैसे, यह कड़का बहुत दिक् करता है ।
 कि० प्र०—करना ।—रहना ।—होना ।
 (२) अस्वस्थ । बीमार । (इस अर्थ में इसका प्रयोग तथीयत शब्द के साथ होता है) जैसे, कई दिनों से उनकी तथीयत दिक् है ।
 कि० प्र०—रहना ।—होना ।
 संज्ञा पुं० एबी रोप । तपेदिक् ।
 दिक्चन—संज्ञा पुं० [दे०] एक प्रकार का जल जिसका गुड़ बहुत अच्छा बनता है ।
 दिक्दाह—संज्ञा पुं० दे० “दिग्दाह” । ष०—ऊरुपात दिक्दाह दिन फेररहि स्थान सियार । उदित केतु गत हेतु महि कंपति वारहि वार ।—नुलसी ।
 दिक्पाक—संज्ञा पुं० [ञ० दक्क = बर्तक] किसी चीज का छोटा टुकड़ा । कतार । धाजी ।
 वि० [ञ० दक्कियागूँ] बहुत मझा बालाक । सुराँट ।
 दिक्पाड़ी—संज्ञा स्त्री० [दे०] बर्र । डह्वा ।
 दिक्—संज्ञा पुं० [सं०] हाथी का पचा ।
 दिक्कत—संज्ञा स्त्री० [ञ०] (१) दिक् का भाव । परेशानी । तक-
 लीक । तंगी । कष्ट ।
 कि० प्र०—उठाना ।
 (२) कठिनता । मुश्किल ।
 कि० प्र०—ढालना ।—पढ़ना ।
 दिक्कन्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] दिशास्त्री कन्या ।
 विरोप—पुराणानुसार दिशाएँ प्रज्ञा की कन्याएँ मानी गई हैं । चारोंदुप्राय में खिला है कि जिस समय प्रज्ञा सृष्टि करने की चिन्ता में थे उस समय उनके कान से दस कन्याएँ निकलीं । प्रज्ञा ने उनसे कहा कि तुम लोगों की जिम्पर इच्छा हो उधर चली जाओ । तदनुसार सब एक एक दिशा में चली गईं । इससे उपरत प्रज्ञा ने षाठ लोकपालों की सृष्टि की और अपनी षाठ कन्याओं को बुलाकर प्रत्येक लोकपाल को एक एक कन्या प्रदान की । तदुपरत वे स्वयं आकाश की ओर चले गए और नीचे की ओर उड़ने लगे और वे इस प्रकार

दिवाकर—संज्ञा पुं० [सं०] महादेव । शिव ।
 वि० [स्त्री० दिवाकरिका] युवक । जवान ।
 दिवाकरवास्तिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] पुराणानुसार दिवाकर अर्थात् महादेव में निवास करनेवाली एक देवी ।
 दिक्किरी—संज्ञा पुं० दे० “दिक्की” ।
 दिक्किरिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] पुराणानुसार एक नदी जो मानसरोवर के पश्चिम में बहती है । यह नदी दिग्गजों के चेष से निकलती है इसीलिये दिक्किरिका कहलाती है । यह नदी संभवतः दिक्काई नदी है जो कामरूप देश में बहती है ।
 दिक्काई—संज्ञा पुं० [सं० दिक्किरी] छोटा दिशाओं के ऐरावत आदि आठ हाथी । दिग्गज ।
 दिक्काता—संज्ञा स्त्री० [सं०] दिक्कन्या ।
 दिक्कुमार—संज्ञा पुं० [सं०] जिनियों के अनुसार भवन्पति नामक देवताओं में से एक ।
 दिक्कचक्र—संज्ञा पुं० [सं०] आठों दिशाओं का समूह ।
 दिक्कपति—संज्ञा पुं० [सं०] (१) ज्योतिष के अनुसार दिशाओं के स्वामी प्रह ।
 विरोप—ज्योतिष में षाठ दिशाओं के स्वामी आठ प्रह माने जाते हैं । यथा—दक्षिण के स्वामी मंगल, पश्चिम के शनि, उत्तर के बुध, पूर्व के सूर्य, अग्निर्कोण के शुक, नैऋतकोण के राहु, वायुकोण के चंद्रमा और ईशान कोण के वृहस्पति ।
 (२) दे० “दिक्पाल” ।
 दिक्पाल—संज्ञा पुं० [सं०] (१) पुराणानुसार दसों दिशाओं के पालन करनेवाले देवता । यथा—पूर्व के इंद्र, अग्निर्कोण के वह्नि, दक्षिण के यम, नैऋतकोण के नैऋत, पश्चिम के कारय, वायुकोण के मरुत, उत्तर के कृपेर, ईशान कोण के ईश, ऊर्ध्व दिशा के प्रज्ञा और अधोदिशा के अनंत ।
 विरोप—दे० “दिक्कन्या” ।
 (२) चौबीस मात्राओं का एक छंद जिसमें १२ मात्राओं पर विराम होता है । इसकी पाँचवीं और सत्तरहवीं मात्राएँ लघु होती हैं । वृद्धे का रेखा यही है । ष०—हरिनाम एक साँघो सब शूद्र है पसारा ।
 दिक्शूल—संज्ञा पुं० [सं०] क्लिप्त ज्योतिष के अनुसार कुछ विशिष्ट दिनों में कुछ विशिष्ट दिशाओं में काल का वास जो कुछ विशेष योगिनियों के योग के कारण माना जाता है । जिस दिन जिस दिशा में कुछ विशिष्ट योगिनियों के योग के कारण इस प्रकार काल का वास और दिक्शूल माना जाता है उस दिन उस दिशा की ओर यात्रा करना बहुत ही अशुभ और हाणिकारक माना जाता है । कहते हैं कि दिक्शूल में यात्रा करने से मंत्रोप कभी सिद्ध नहीं होता, आर्थिक हानि होती है, कोई न कोई रोग हा जाता है और यहाँ तक कि कभी कभी यात्री की मृत्यु भी हो जाती है ।

जाय इसना करके फिर वह चिता की धोर न ताके और जाकर स्नान करले ।

(३) जलन । ताप । (४) एक रोग जिसमें शरीर में जलन मानूस होती है । व्यास जगती है और कंठ सूखता है । वैद्यक के मत से दाह पित्त के प्रकोप से होता है ।

विशेष—भावप्रकाश में दाह सात प्रकार का लिखा है ।

१—रक्तजन्मदाह जिसमें रक्त कुचित होकर सारे शरीर में दाह उत्पन्न करता है, ऐसा जान पड़ता है मगने सारा शरीर आग से तप रहा है और चण चण पर व्यास जगती है ।

२—रक्तपूर्ण कोष्ठज दाह जो किसी श्रंग में हृदियार आदि का घाव लगने पर उस घाव से कोष्ठ में रक्त जाने से उत्पन्न होता है । ३—मगन दाह । ४—वृष्णा विशेषज दाह । ५—धातुपयजदाह । ६—ममनिधातन दाह । ७—असाध्य दाह जिसमें रोगी का शरीर ऊपर से तो ठंडा रहता है पर भीतर भीतर जला करता है ।

(४) शोक । संताप । अत्यंत दुःख । काह । ईर्ष्या ।

दाहक-वि० [सं०] जलानेवाला ।

संज्ञा पुं० (१) चित्रक वृक्ष । चीता । लाल चीता । (२) अग्नि । आग ।

दाहकता-संज्ञा स्त्री० [सं०] जलाने का भाव या गुण ।

दाहकरच-संज्ञा पुं० [सं०] जलाने का भाव या गुण ।

दाहकर्म-संज्ञा पुं० [सं०] राव दाहकर्म । सुदो हँकने का काम ।

दाहकाष्ठ-संज्ञा पुं० [सं०] अग्नर जिसे सुगंध के लिये जलाते हैं ।

दाहकिया-संज्ञा स्त्री० [सं०] शवदाह-कर्म । मृतक को जलाने का संस्कार ।

दाहज्वर-संज्ञा पुं० [सं०] वह ज्वर जिसमें शरीर में बहुत अधिक जलन मानूस हो ।

दाहन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) जलाने का काम । (२) जलवाने का काम । भस्म कराने की क्रिया ।

दाहना-कि० सं० [सं० दाह] (१) जलाना । भस्म करना । (२) संवास करना । सताना । दुःख पहुँचाना ।

वि० दे० "दाहिना" ।

दाहसर-संज्ञा पुं० [सं०] सुदो जलाने का स्थान । शमशान ।

दाहहरण-संज्ञा पुं० [सं०] खस ।

दाहा-संज्ञा पुं० [सं०] दस = दस] (१) सुदरम के दस दिन जिसके भीतर ताजिया बनता है और दफन किया जाता है ।

(२) ताजिया ।

दाहागुण-संज्ञा पुं० [सं०] जलाने का अग्नर ।

दाहिनी-वि० दे० "दाहिना" ।

दाहिना-वि० [सं० दक्षिण] [स्त्री० दाहिनी] (१) उस पारव का जिसके शंको की पेशियों में अधिक बल होता है । उस ओर का जिस ओर के शंग काम करने में अधिक सत्पर होते हैं ।

'पार्यो' का उलटा । दक्षिण । अयसम्य । जैसे, दाहिना हाथ, दाहिना पैर, दाहिनी आँख ।

मुहा०—दाहिनी देना = दक्षिणावर्त्त परिक्रमा करना । प्रदक्षिणा करना । उ०—जदा भस्म तनु दई घृषा करि कर्म येषावै ।

गुडमि दाहिनी देहि गुफा बसि मोहि न पार्यै—सूर । दाहिनी खाना = प्रदक्षिणा करना । उ०—पंचवटी गोदहि प्रमाम करि कुटी दाहिनी लाई ।—तुलसी । (किसी का)

दाहिना हाथ होना = बहुत भारी सहायक होना ।

(२) बघर पड़नेवाला जिधर दाहिना हाथ हो । जैसे, दाहिनी धोर, दाहिनी दिशा । (३) अनुकूल । प्रसन्न । उ०—

यार थार विनवो नैदलाजा । मोयै दाहिन होइ कृपाजा ।—सूर ।

दाहिनावर्त्त-वि० [सं० दक्षिणावर्त्त] (१) प्रदक्षिणा । (२) एक प्रकार का शंख । दे० "दक्षिणावर्त्त" ।

दाहिने-कि० वि० [हिं० दाहिना] दाहिने हाथ की ओर । उस तरफ जिस तरफ दाहिना हाथ हो । दाहिने हाथ की दिशा में । जैसे, तुम्हारे दाहिने जो मकान पड़े वही मैं पुकारना ।

मुहा०—दाहिने होना = अनुकूल होना । हित की ओर प्रवृत्त होना । प्रसन्न होना । उ०—पुनि संदो खल गन सति भाए ।

जे विनु काज दाहिने थाएँ ।—तुलसी ।

दाही-वि० [सं० दाहिन] [स्त्री० दाहिनी] जलानेवाला । भस्म करनेवाला ।

दाहा-वि० [सं०] जलाने योग्य ।

दिंक-संज्ञा पुं० [सं०] जू नाम का छोटा फीड़ा जो सिर के बालों में पड़ता है ।

दिंड-संज्ञा पुं० [सं०] एक तरह का नाच । उ०—इलथा टेंकी आलम सदिंड । पद पलटि हरमयी निरांक चिंड ।—केशव ।

दिंडि-संज्ञा पुं० दे० "दिंडिर" ।

दिंडिर-संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का एक प्रकार का नाजा ।

दिंडी-संज्ञा पुं० [सं०] असीस मात्राओं का एक छंद जिसके अंत में दो गुरु होते हैं और जिसमें ६ और १० पर विभाम होता है । इसमें कभी केवल दो चरणों का और कभी चार चरणों का अनुभास होता है । मराठी भाषा में इस छंद का विशेष व्यवहार होता है ।

दिंडीर-संज्ञा पुं० [सं०] दिंडर । समुद्र फेन ।

दिंडली-संज्ञा स्त्री० [हिं० दीवा (छोटा कसोरा) का स्त्री० अण्व०] (१) मिठी का बना हुआ बहुत छोटा दीया या कसोरे के आकार का पात्र । (२) मूल के नीचे की हरे रंग की कठोरी जो कई फीकों में बँटी होती है । (३) दे० "विडली" ।

दिंडा-संज्ञा पुं० दे० "दीया" ।

दिआवची-संज्ञा स्त्री० दे० "दियावची" ।

दिक्चार—संज्ञा पुं० दे० "द्वयार" ।
 दिक्चार्या—संज्ञा पुं० (१) दे० "द्वयार" । (२) दे० "द्वियारा" ।
 दिक्चारु—संज्ञा पुं० दे० "द्वियारा" ।
 दिक्चला—संज्ञा पुं० दे० "द्विचली" ।
 दिक्चली—संज्ञा स्त्री० [दि० दिक्चली] (१) सूखे घाव के ऊपर की पपड़ी । खुट्टे । छुट्टी । दाढ़ । (२) दे० "द्विचली" । (३) मनुष्य के ऊपर से छूटनेवाला झिलका । सेहरा ।
 दिक्—संज्ञा स्त्री० [सं०] दिक् । चोर । तरफ़ ।
 दिक्—वि० [सं०] (१) जिसे बहुत कष्ट पहुँचाया गया हो । ईरान ।
 दिक्—संज्ञा पुं० [सं०] जैसे, यह लड़का बहुत दिक् करता है ।
 दिक्—प्र०—करना ।—रहना ।—होगा ।
 (२) भ्रष्टरूप । धीमारा । (इस अर्थ में इसका प्रयोग लघुवचन शब्द के साथ होता है) जैसे, कदं दिक्ते से बनकी लघुवचन दिक् है ।
 दिक्—प्र०—रहना ।—होगा ।
 दिक्—संज्ञा पुं० लघु शब्द । तपेदिक् ।
 दिक्चन—संज्ञा पुं० [दे०] एक प्रकार का जल जिसका गुण बहुत अच्छा पतता है ।
 दिक्दाह—संज्ञा पुं० दे० "दिग्दाह" । उ०—ऊरुपात दिक्दाह दिन फेकते हैं स्वान सियार । वदित केतु गत हेतु मदि कर्पति वारदि धार ।—मुचली ।
 दिक्काङ्ग—संज्ञा पुं० [सं० दक्कङ्ग = बारीक] किसी चीज का छोटा टुकड़ा । कठिन । धन्नी ।
 दिक् [सं० दक्कङ्ग] बहुत यद्दा चालाक । खुर्त ।
 दिक्काङ्गी—संज्ञा स्त्री० [दे०] धर । हड्डा ।
 दिक्—संज्ञा पुं० [सं०] हाथी का घसा ।
 दिक्कत—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) दिक् का भाव । परेशानी । तकलीफ़ । तंगी । कष्ट ।
 दिक्—प्र०—बढ़ाना ।
 (२) कठिनता । मुश्किल ।
 दिक्—प्र०—बढ़ाना ।—बढ़ना ।
 दिक्कन्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] दिक्कन्या कन्या ।
 विशेष—पुराणानुसार दिक्कन्या की कन्याएँ मानी गई हैं । बारीकदृष्टि में लिखा है कि जिस समय ब्रह्मा सृष्टि करने की चिन्ता में थे उस समय उनके कान से दस कन्याएँ निकलीं । ब्रह्मा ने उनसे कहा कि तुम लोगों की जिम्मेदारी है। बचपन से ही तुम सब एक एक दिक्कन्या में बदली गईं । इसके उपरान्त ब्रह्मा ने षाट लोकपालों की सृष्टि की और अपनी षाट कन्याओं को बुलाकर प्रत्येक लोकपाल को एक एक कन्या प्रदान की । तदुपरान्त वे स्वयं आकाश की ओर चले गए और नीचे की ओर वन्होंने रोप कर रखा ।

दिक्कन्या—संज्ञा पुं० [सं०] महादेव । शिव ।
 दिक् [सं० दिक्कन्या] दुष्क । जवान ।
 दिक्कन्यासिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] पुराणानुसार दिक्कन्यासिनी महादेव में निवास करनेवाली एक देवी ।
 दिक्कन्या—संज्ञा पुं० दे० "द्विचली" ।
 दिक्कन्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] पुराणानुसार एक नदी जो मानससरोवर के पश्चिम में बहती है । यह नदी दिक्कन्याओं के पूज से निकलती है इसीलिए दिक्कन्या कहलाती है । यह नदी संभवतः दिक्कन्या नदी है जो कामरूप देस में बहती है ।
 दिक्कन्या—संज्ञा पुं० [सं० दिक्कन्या] आठे दिक्कन्याओं के पुराणानुसार दिक्कन्या ।
 दिक्कन्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] दिक्कन्या ।
 दिक्कन्या—संज्ञा पुं० [सं०] जैमिनी के अनुसार भवनपति नामक देवताओं में से एक ।
 दिक्कन्या—संज्ञा पुं० [सं०] आठे दिक्कन्याओं का समूह ।
 दिक्कन्या—संज्ञा पुं० [सं०] (१) ज्योतिष के अनुसार दिक्कन्याओं के स्वामी प्रह ।
 विशेष—ज्योतिष में आठ दिक्कन्याओं के स्वामी आठ प्रह माने जाते हैं । यथा—दक्षिण के स्वामी मंगल, पश्चिम के शनि, उत्तर के बुध, पूर्व के सूर्य, अग्निकोण के शुक, नैऋतकोण के राहु, वायुकोण के चंद्रमा और ईशान कोण के बृहस्पति ।
 (२) दे० "द्विचली" ।
 दिक्कन्या—संज्ञा पुं० [सं०] (१) पुराणानुसार दसों दिक्कन्याओं के राजा करनेवाले देवता । यथा—पूर्व के इंद्र, अग्निकोण के वाह, दक्षिण के यम, नैऋतकोण के नैऋत, पश्चिम के कार्तिक, वायुकोण के मरुत, उत्तर के कुबेर, ईशान कोण के इंद्र, ऊर्ध्व दिक्कन्या के ब्रह्मा और अधोदिक्कन्या के शनैत ।
 विशेष—दे० "द्विचली" ।
 (२) चौबीस मात्राओं का एक छंद जिसमें १२ मात्राओं पर विराम होता है । इसकी पहिली और सत्तरहवीं मात्राएँ लघु होती हैं । उ०—का रेणुा यही है । उ०—हरिनाम एक साँचा सय झूट है पतारा ।
 दिक्कन्या—संज्ञा पुं० [सं०] कल्पित ज्योतिष के अनुसार कुछ विशिष्ट दिनों में कुछ विशिष्ट दिक्कन्याओं में काल का वास जो कुछ विशेष योगिनियों के योग के कारण माना जाता है । जिस दिन जिस दिक्कन्या में कुछ विशिष्ट योगिनियों के योग के कारण इस प्रकार काल का वास और दिक्कन्या माना जाता है उस दिन उस दिक्कन्या की ओर यात्रा करना बहुत ही अशुभ और हानिकारक माना जाता है । कहते हैं कि दिक्कन्या में यात्रा करने से मनोरथ कभी सिद्ध नहीं होता, आर्थिक हानि होती है, कोई न कोई रोग हो जाता है और यहाँ तक कि कभी कभी यात्री की शय्य भी हो जाती है ।

निद्र-ललित दिशाओं में निद्र-ललित चारों ओर दिक्शुल
माना जाता है—

परिवम की ओर शुक्र और रविवार को
उत्तर ,, ,, मंगल ,, बुधवार ,,
पूर्व ,, ,, शनि ,, सोमवार ,,
दक्षिण ,, ,, बृहस्पतिवार को।

किसी किसी के मत से बुध और बृहस्पतिवार को दक्षिण
की ओर, बृहस्पतिवार को चारों ओरों की ओर, रवि तथा
शुक्रवार को परिवम दिशा की ओर शूल होता है। पहले
और प्रधान मत के संबंध में लोगों ने एक चौपाई भी बना
ली है जो इस प्रकार है। सोम सनीचर पुरुष न धावू ।
मंगल बुध उत्तर दिस कालू ॥ आदित शुक्र पच्छिम दिस
राहू । मीकै दक्षिण लंक दिसवाहू ॥

दिक्साधन-संज्ञा पुं० [सं०] वह धराय जिससे दिशाओं का
ज्ञान हो। जैसे, जिस ओर सूर्य उदय होता हो उस ओर
सुंद कर के खड़े होना और सेव यह समझना कि सामने
पूर्व, पीछे परिवम, दाहिनी ओर दक्षिण और बाईं ओर
उत्तर हैं अथवा कुछ विद्योप नियमों के अनुसार भूप में सम-
वृत्त बनाकर और उसमें लकड़ी भादि गाड़कर उस की छाया
से दिशा का पता लगाना। सूर्यसिद्धांत आदि प्राचीन
ग्रंथों में इस प्रकार दिक्साधन की कई विधियाँ लिखी हैं।

दिकसुंदरी-संज्ञा स्त्री० दे० "दिक्रया"।

दिकस्वामी-संज्ञा पुं० दे० "दिकपति"।

दिक्षा १-संज्ञा स्त्री० दे० "दीक्षा"।

दिक्षाशुभ १-संज्ञा पुं० दे० "दीक्षाशुभ"।

दिकित १-वि० दे० "दीक्षित"।

दिखना १-क्रि० अ० [हिं० देखना] दिखाई देना । देखने में
थाना ।

दिखारादेना १-क्रि० स० दे० "दिखलाना"।

दिखाराना १-क्रि० स० दे० "दिखलाना"।

दिखारवना १-क्रि० स० दे० "दिखलाना"।

दिखारवने १-संज्ञा स्त्री० [हिं० दिखलाना] दिखाने का भाव
या क्रिया ।

दिखलवाई-संज्ञा स्त्री० [हिं० दिखलाना] (१) वह धन जो दिखल-
वाने के बदले में दिया जाय। (२) दे० "दिखलाई"।

दिखलवाना-क्रि० स० [हिं० दिखलाना का प्रे० रूप] दिखलाने
का काम दूसरे से कराना। दूसरे को दिखलाने में प्रयुक्त
करना ।

दिखलाई-संज्ञा स्त्री० [हिं० दिखलाना] (१) दिखलाने की क्रिया ।
(२) दिखलाने का भाव। (३) वह धन जो दिखलाने के
बदले में दिया जाय ।

दिखलाना-क्रि० स० [हिं० देखना का प्रे० रूप] (१) दूसरे को

देखने में प्रयुक्त करना। दृष्टिगोचर कराना। दिखाना। जैसे,
बन्दोने हमें तुम्हारा मकान दिखवा दिया। (२) अनुभव
कराना। मालूम कराना। जताना। जैसे, हम तुम्हें इसका
मन्ना दिखला देंगे ।

संज्ञा० क्रि०—वाक्यना ।—देना ।

दिखलाया १-संज्ञा पुं० दे० "दिखलाना"।

दिखवैया १-संज्ञा पुं० [हिं० दिखाना + वैया (प्रत्य०)] दिख-
लानेवाला ।

संज्ञा पुं० [हिं० देखना + वैया (प्रत्य०)] देखनेवाला ।

दिखद्वार १-संज्ञा पुं० [हिं० देखना + द्वार (प्रत्य०)] देखनेवाला ।

दिखाई-संज्ञा स्त्री० [हिं० दिखाना + आई (प्रत्य०)] (१) दिखाने का
काम। (२) दिखाने का भाव। (३) वह धन जो दिखाने के
बदले में दिया जाय ।

संज्ञा स्त्री० [हिं० देखना + आई (प्रत्य०)] (१) देखने का
काम। (२) देखने का भाव। (३) वह धन जो देखने के
बदले में दिया जाय ।

दिखाऊ १-वि० [हिं० दिखाना या देखना + आऊ (प्रत्य०)] (१)
देखने योग्य। दर्शनीय। (२) दिखाने योग्य। (३) जो केवल
देखने योग्य हो पर काम में न आ सके। (४) दिखौआ।
बनावटी।

दिखाना-क्रि० स० दे० "दिखलाना"।

दिखाव-संज्ञा पुं० [हिं० देखना + भाव (प्रत्य०)] (१) देखने का
भाव या क्रिया। (२) दृश्य। जैसे, इस जगह का दिखाव
बहुत अच्छा है।

दिखावट-संज्ञा स्त्री० [हिं० देखना + आवट (प्रत्य०)] (१) दिख-
लाने का भाव या ढंग। (२) ऊपरी तड़क भड़क। बनावट।
दिखावटी-वि० [हिं० दिखावट + ई (प्रत्य०)] जो केवल देखने
योग्य हो पर काम में न आ सके। दिखौआ।

दिखाया-संज्ञा पुं० [हिं० देखना + आया (प्रत्य०)] सादंबर। मूठा
ढाट। ऊपरी तड़क भड़क।

दिखैया १-संज्ञा पुं० [हिं० देखना + पैया (प्रत्य०)] देखनेवाला ।
संज्ञा पुं० [हिं० दिखलाना + पैया (प्रत्य०)] दिखलानेवाला ।

दिखौआ-वि० [हिं० देखना + आँआ (प्रत्य०)] वह जो केवल देखने
योग्य हो पर काम में न आ सके। बनावटी।

दिखौआ-वि० दे० "दिखौआ"।

दिगंत-संज्ञा पुं० [सं०] (१) दिशा का घोर । दिशा का अंत ।
(२) आकाश का घोर । पितृज । (३) चारों दिशाएँ ।
(४) दसों दिशाएँ ।

संज्ञा पुं० [सं० द्यु + अंत] आकाश का कोना । ३०—राचे
वितंबर अर्थात् चहुँदों, कछु सँसेने जाड़ी दिगंतन छाई ।—
द्विजदेव ।

दिगंतर-संज्ञा पुं० [सं०] दो दिशाओं के बीच का स्थान ।

दिगंबर—संज्ञा पुं० [सं०] (१) शिव । महादेव । (२) नंगा रहनेवाला जैन यती । दिगंबर यती । षण्पथक । (३)

दिशाओं का वक्र, शंघकार । सम । छेपेरा ।

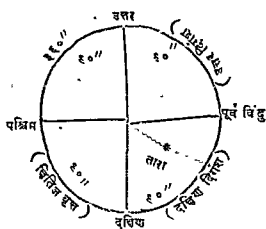
वि० दिशाएँ ही जिसका वक्र हों, अर्थात् नंगा । नग्न ।

दिगंबरता—संज्ञा स्त्री० [सं०] नंगापन । नग्नता ।

दिगंबरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा ।

दिगंदा—संज्ञा पुं० [सं०] चित्रित वृत्त का ३६० वाँ अंश ।

विशेष—आकाश में प्रहों और नक्षत्रों आदि की स्थिति जानने के लिये चित्रित वृत्त को ३६० अंशों में विभक्त कर खेतें हैं और जिस ग्रह या नक्षत्र का दिगंश जानना होता है, उस पर से अक्षरालंकार और अक्षरालंकार को घूटा हुआ एक वृत्त ले जाते हैं । यही वृत्त पूर्व दिग्दु से चित्रित वृत्त को दक्षिण अथवा उत्तर जितने अंश पर काटता है उतने को उस ग्रह या नक्षत्र का दिगंश कहते हैं ।



दिगंदा यंत्र—संज्ञा पुं० [सं०] वह यंत्र जिससे कितनी ग्रह या नक्षत्र का दिगंश जाना जाय ।

दिग्—संज्ञा स्त्री० दे० "दिक" ।

दिग्दंति—संज्ञा पुं० दे० "दिग्गज" ।

दिगिमा—संज्ञा पुं० [सं०] दिग्गज ।

दिगीश—संज्ञा पुं० [सं०] दिकपाल ।

दिगीश्वर—संज्ञा पुं० [सं०] (१) आठों दिकपाल । (२) सूर्य चंद्रमा आदि ग्रह ।

दिगीश—संज्ञा पुं० दे० "दिगीश" ।

दिग्गज—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार ये आठों हाथी जो आठों दिशाओं में घुंघी को दशाष्ट रखते और उन दिशाओं की रक्षा करने के लिये स्थापित हैं । उनके नाम ये हैं—

पूर्व में पेशावत, पूर्व-दक्षिण के कोने में पुंडरीक, दक्षिण में धामन, दक्षिण-पश्चिम में कुमुद, पश्चिम में अंजन, पश्चिम-उत्तर के कोने में पुण्डरीत, उत्तर में सार्वभौम और उत्तर-पूर्व के कोने में सप्ततीक ।

वि० बहुत बड़ा । बहुत भारी । जैसे, दिग्गज विद्वान्, दिग्गज पंडित ।

दिग्गायंद—संज्ञा पुं० [सं०] दिग्गज ।

दिग्गी—संज्ञा स्त्री० दे० "दिग्गी" ।

दिग्गर्भ—संज्ञा पुं० [सं०] देव । (१) लंबा । (२) बड़ा ।

दिग्जय—संज्ञा स्त्री० [सं०] दिग्जय ।

दिग्ज्या—संज्ञा स्त्री० दे० "दिग्गंश" ।

दिग्दर्शक यंत्र—संज्ञा पुं० [सं०] डिविया के आकार का एक प्रकार का यंत्र जिससे दिशा का ज्ञान होता है । इसके बीच में लोहे की एक सुई लगी होती है जिनके सुई पर चुंबकत्व की शक्ति रहती है जिसके कारण सुई का सुई सदा उत्तर दिशा की ओर रहता है । इसका विशेष व्यवहार जहाजों आदि में दिशा का ज्ञान प्राप्त करने के लिये होता है ।

कुतुबनुमा । कंवास

दिग्दर्शन—संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो कुछ वदाहारण स्वरूप दिखलाया जाय । नमूना । (२) नमूना दिखाने का काम । (३) अभिज्ञाता । जानकारी । (४) दे० "दिग्दर्शक यंत्र" ।

दिग्दर्शनी—संज्ञा स्त्री० दे० "दिग्दर्शक यंत्र" ।

दिग्दाह—संज्ञा पुं० [सं०] एक देवी घटना जिसमें सूर्यास्त होने पर भी दिशाएँ लाल और जलती हुई सी दिखलाई पड़ती हैं । इसे लोग अशुभ मानते हैं और समझते हैं कि इसके अर्घ्यांत युद्ध, दुर्भिक्ष या रोग आदि होता है । घृतासंहिता में इसके फल आदि का विस्तृत बहोष है ।

दिग्देवता—संज्ञा पुं० दे० "दिकपाल" ।

दिग्ध—संज्ञा पुं० [सं०] (१) विपाक । जहर में बुझाया हुआ सान । (२) तेल । (३) अग्नि । (४) प्रबंध । निबंध ।

वि० [सं०] (१) विपाक । जहर में बुझा हुआ । (२) लिप्त ।

वि० दीर्घ । लंबा । बड़ा । व०—कई मतिराम सव थावर जगम भरा जग जाकी दिग्ध दर दरि में दरसत है ।—मतिराम ।

दिग्पट—संज्ञा पुं० [सं०] दिग्पट] (१) दिशा रूपी वक्र । व०—सुजंग विभूषण दिग्पट धारी । अर्द्ध अंग गिरिराजकुमारी ।—सबकसिंह । (२) दिशा रूपी वक्र धारण करनेवाला । नंगा । दिगंबर ।

दिग्पति—संज्ञा पुं० दे० "दिकपाल" ।

दिग्पाल—संज्ञा पुं० दे० "दिकपाल" ।

दिग्बल—संज्ञा पुं० [सं०] फलित ज्योतिष के अनुसार लग्न आदि पर स्थित ग्रहों का बल ।

विशेष—यदि लग्न से दसवें स्थान पर मंगल और रवि हों तो दक्षिण, यदि लग्न से सातवें स्थान पर शनि हों तो पश्चिम

और यदि चौथे स्थान पर शुक्र और चंद्र हों तो ४त्तर दिशा बली मानी जाती है। इसकी सहायता से दिक्-निर्यय और दूसरी कई प्रकार की गणनाएँ की जाती हैं।

दिग्बली-संज्ञा पु० [सं० दिग्बल] (१) फलित ज्योतिष में वह ग्रह जो किसी दिशा के जिये बली हो। (२) वह राशि जिस पर किसी ग्रह का बल हो। विशेष—दे० "दिग्बल"।

दिग्भ्रम-संज्ञा पु० [सं०] दिशाओं का भ्रम होना। दिशा भूल जाना।

दिग्मंडल-संज्ञा पु० [सं०] दिशाओं का समूह। संपूर्ण दिशाएँ।

दिग्गज-संज्ञा पु० दे० "दिक्प्राज"।

दिग्बलन-संज्ञा पु० दे० "दिग्बल"।

दिग्बल-संज्ञा पु० [सं०] (१) मृदादेव। शिव। (२) नंगा रहने वाला जैन धर्मी। क्षणिक। (३) ब्रह्म।

दिग्बान्-संज्ञा पु० [सं०] पहरेदार। चौकीदार।

दिग्बाराण-संज्ञा पु० [सं०] दिग्गज।

दिग्वास-संज्ञा पु० दे० "दिग्बल"।

दिग्बिजय-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) राजाओं का अपनी धीरता दिखलाने और महत्त्व स्थापित करने के लिये देश-देशांतरों में अपनी सेना के साथ जा कर युद्ध करना और विजय प्राप्त करना। (प्राचीन काल में यह प्रथा थी)। उ०—भस्वमेघ करवाय सुधिदिर कुल को दोष मिटायो। करि दिग्बिजय विजय को जग में भक्त पक्ष करवायो।—सूर। (२) अपने गुण, विद्या या बुद्धि आदि के द्वारा देश-देशांतरों में अपनी प्रधानता प्रथवा महत्त्व स्थापित करना। जैसे, शंकर-दिग्बिजय।

दिग्बिजयो-वि० पु० [सं०] [स्त्री० दिग्बिजयी] जिसने दिग्बिजय किया हो। दिग्बिजय करनेवाला। उ०—गज अहंकार बढ़यो दिग्बिजयी लोम छत्र करि सी। फौज असत संगति की मेरी ऐसे ही मैं हूँ।—सूर।

दिग्बिभाग-संज्ञा पु० [सं०] दिशा। धोर। तरफ।

दिग्ब्यापी-वि० [सं०] [स्त्री० दिग्ब्यापिनी] जो सब दिशाओं में व्याप्त हो।

दिग्ब्रत-संज्ञा पु० [सं०] जैनियों का एक मत जिसमें वे कुछ निरिचत समय के लिये यह प्रणय कर लेते हैं कि अशुभ दिशा (अथवा दिशाओं) में इतनी दूर से अधिक न जायेंगे।

दिग्दिशा-संज्ञा स्त्री० [सं०] पूर्ण दिशा।

दिग्दिशिचुर-संज्ञा पु० [सं०] दिग्गज।

दिग्दाल-संज्ञा पु० [सं०] दे० "दिक्दाल"।

दिग्दी-संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० "दिग्दी"।

दिग्घोच-संज्ञा पु० [सं०] एक प्रकार का पत्थी जिसकी छायती सफेद, ढंने काले और कुछ पर सुनहले होते हैं।

दिङ्मक्षत्र-संज्ञा पु० [सं०] विशेष नक्षत्र जो फलित ज्योतिष में विशिष्ट दिशाओं से संबद्ध माने जाते हैं।

दिशोप-फलित ज्योतिष में सात सात नक्षत्र प्रत्येक दिशा से संबद्ध माने जाते हैं और इन्हों के अनुसार किसी प्रश्न अंतर्गत दिशा आदि का ज्ञान प्राप्त किया जाता है। जैसे, यदि किसी की कोई चीज चोरी हो जाय अथवा कोई बालक खो जाय तो चीज के चोरी होने अथवा बालक के लोप जाने के समय का नक्षत्र देखकर यह कहा जा सकता है कि चौर अथवा बालक किस दिशा में है।

दिङ्नाग-संज्ञा पु० [सं०] (१) दिग्गज। (२) एक बौद्ध नैयायिक और आचार्य, जो मणिनाथ के अनुसार कालिदास के समय में हुए थे और उनके बड़े भारी प्रतिद्वंद्वी थे।

दिङ्नारि-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वेरवा। रंजी। (२) बहुत से पुरुषों से प्रेम करनेवाली स्त्री। कुलटा।

दिङ्मंडल-संज्ञा पु० [सं०] दिशाओं का समूह।

दिङ्मातंग-संज्ञा पु० [सं०] दिग्गज।

दिङ्मात्र-संज्ञा पु० [सं०] उदाहरण मात्र। केवल नमूना।

दिङ्मूढ-वि० [सं०] (१) जिसे दिग्भ्रम हुआ हो। जो दिशाएँ भूल गया हो। (२) मूर्ख। भ्रमण।

दिङ्मोह-संज्ञा पु० दे० "दिग्मोह"।

दिङ्छित^१-संज्ञा पु०, वि० दे० "दीक्षित"।

दिङ्गज-संज्ञा पु० दे० "दिग्गज"।

दिङ्गोत्तम^१-संज्ञा पु० दे० "द्विजोत्तम"।

दिङ्घन-संज्ञा स्त्री० दे० "देवोत्तम" (एकद्वयी)।

दिङ्घारि-वि० [हिं० दीठ = दृष्टि + ह्यार (प्रत्यय०)] देखनेवाला। आँखवाला। जिसे दिखाई देता हो।

दिङ्घोना^१-संज्ञा पु० [हिं० दीठ = दृष्टि + भौना (प्रत्यय०)] वहाँ के माथे में मैं के कोने के समीप लगा हुआ काजल का बिंदु जो दृष्टि का श्रेण शक्ति करने को लगाया जाता है। यह बिंदी जो आलकों को मात्र से बचाने के लिये लगाई जाती है।

दिङ्घो-संज्ञा पु० दे० "दृढ़"।

दिङ्घो^१-वि० दे० "दृढ़"।

दिङ्घो^१-संज्ञा स्त्री० दे० "दृढ़ता"।

दिङ्घो^१-संज्ञा स्त्री० दे० "दृढ़ता"।

दिङ्घो^१-संज्ञा पु० [सं० दृढ़ + भागा (प्रत्यय०)] (१) पक्का करना। दृढ़ करना। मजबूत करना। (२) निरिचत करना।

दितवारि-संज्ञा पु० दे० "शादिवार"।

दिति-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कश्यप ऋषि की एक स्त्री जो दृष्ट प्रजापति की एक कन्या और दैत्यों की माता थीं। जब इन के तप्त पुत्र (दैत्य) इंद्र और देवताओं द्वारा मारे गए तब इंद्रोंने अपने पति कश्यप ऋषि से कहा कि अथ मैं ऐसा पराक्रमी पुत्र चाहती हूँ जो इंद्र का भी दमन कर सके।

करवय ने कहा—इसके लिये तुम्हें सी घण्टे तक गर्भ धारण करना पड़ेगा और गर्भकाल में बहुत ही पवित्रतापूर्वक रहना पड़ेगा। दिति को गर्भ हुआ और वह ३३ वर्ष तक बहुत पवित्रतापूर्वक रही। अंतिम वर्ष में वह एक दिन रात के समय विना हाथ पैर छोड़ आकर सो रही। इंद्र तब में लगे ही थे; इन्हें अपवित्र श्रवणों में पाकर उन्होंने इनके गर्भ में प्रवेश किया और अपने यज्ञ से अराजक के सात ढुकड़े कर डाले। उस समय शिशु इतने जोर से रोया और चिंताया कि इंद्र घबरा गए। तब उन्होंने सातों ढुकड़ों में से हर एक के फिर सात ढुकड़े किए। ये ही बनवास खंड मरल्व कहाते हैं। विरोच—दे० “मरल्व”।

विरोच—इस शब्द में “वुच” वाची शब्द लगाने से “दैत्य” अर्थ होता है। जैसे, दितिसुत, दितितनय, दितिनन्दन।

(२) तोड़ने या काटने की क्रिया। संबन्ध। (३) देता। वह जो देता हो।

दितिकुल—संज्ञा स्त्री० [सं०] दैत्यवंश।

दितिज—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० दितिजा] दिति से उत्पन्न। दैत्य।

दितिसुत—संज्ञा पुं० [सं०] दैत्य। राघव। असुर।

दित्य—संज्ञा पुं० [सं०] दैत्य।

वि० जो छेदने या काटने योग्य हो।

दित्सा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दान करने की इच्छा।

दित्सु—वि० [सं०] जो दान करना चाहता हो।

दित्स्थ—वि० [सं०] दान करने योग्य। जो दान किया जा सके।

दिदार—संज्ञा पुं० दे० “दीदार”।

दिदक्षा—संज्ञा स्त्री० [सं०] देखने की अभिलाषा।

दिदल्यु—वि० [सं०] जो देखना चाहता हो।

दिदक्षेय—वि० [सं०] दर्शनीय। जो देखने योग्य हो।

दिद्यु—संज्ञा पुं० [सं०] (१) यज्ञ। (२) यात्र।

दिधि—संज्ञा पुं० [सं०] (१) धर्म्य। (२) धारण करने की क्रिया।

दिधिपु—संज्ञा पुं० [सं०] (१) पहले एक बार ब्याही हुई स्त्री का दूसरा पति। दो बार ब्याही हुई स्त्री का दूसरा पति।

(२) गर्माधान करनेवाला मनुष्य।

दिधिपु—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वह स्त्री जिसके दो ब्याह हुए हों। द्विरुद्ध। (२) वह स्त्री या कन्या जिसका विवाह उसकी बड़ी महन के विवाह के पहले हुआ हो।

दिधिपुपति—संज्ञा पुं० दे० “दिधिपु”।

दिन—संज्ञा पुं० [सं०] (१) इतना समय जिसमें सूर्य्य विविज के ऊपर रहता है। सूर्योदय से लेकर सूर्यास्त तक का समय। सूर्य्य की किरणों के दिखाई पड़ने का तारा समय।

विशेष—पृथ्वी अपने अक्ष पर घूमती हुई सूर्य्य की परिक्रमा करती है। इस परिक्रमा में उसका भी आधा भाग सूर्य्य की

धारा रहने के कारण प्रकाशित रहता है, उसमें दिन रहता है, बाकी दूसरे भाग में रात रहती है।

मुहा०—दिन को तारे दिखाई देना—इतना अधिक मानसिक फट पहुँचना कि बुद्धि ठिकाने न रहे। दिन को दिन रात को रात न जानना या समझना—अपने सुख या विश्राम आदि का कुछ भी ध्यान न रखना। जैसे, इस काम के लिये उन्होंने दिन को दिन और रात को रात न समझा। दिन चढ़ना—सूर्योदय होना। सूर्य्य निकलने के उपरांत कुछ और समय बीतना। दिन छिपना—सूर्यास्त होना। संध्या होना। दिन हूचना—सूर्य्य हूचना। संध्या होना। दिन चलना—संध्या का समय निकट आना। सूर्यास्त होने को होना। दिन दहाड़े या दिन दिहाड़े—विलक्षण दिन के समय। ऐसे समय जब कि सब लोग जागते और देखते हैं। जैसे, दिन दहाड़े उनके यहाँ दस हजार की चोरी हो गई। दिन दोपहर या दिन धौले—दे० “दिन दहाड़े”। दिन दूना रात चौगुना होना या बढ़ना—बहुत जल्दी जल्दी और बहुत अधिक बढ़ना। तब उचित पर होना। जैसे, आज कल उनकी जमींदारी दिन दूनी रात चौगुनी हो रही है। दिन निकलना—दिन चढ़ना। सूर्योदय होना। दिन चढ़ना—दे० “दिन हूचना”। दिन उँवना—दे० “दिन हूचना”। दिन होना—दिन निकलना। सूर्य्य उदय होना। दिन चढ़ना।

घो०—दिन रात—सर्वदा। सदा। हर वक।

(२) इतना समय जितने में पृथ्वी एक बार अपने अक्ष पर घूमती है अथवा पृथ्वी के किसी विशिष्ट भाग को दो बार सूर्य्य के सामने आने के बीच का समय। आठ पहर या चौबीस घंटे का समय।

विशेष—साधारणतः दिन दो प्रकार का माना जाता है—एक नाचन, दूसरा सौर या तावन। नाचन इतने समय का होता है जितना किसी नक्षत्र को एक बार याम्योत्तर रेखा पर से होकर जाने और फिर दुबारा याम्योत्तर रेखा पर आने में लगता है। यह समय ठीक इतना ही है जितने में पृथ्वी एक बार अपने अक्ष पर घूम चुकती है। इसमें घबरी बढ़ती नहीं होती इसीसे ज्योतिषी नाचन दिनमान का व्यवहार बहुत करते हैं। सूर्य्य को याम्योत्तर रेखा पर से होकर जाने और फिर दोबारा याम्योत्तर रेखा पर आने में जितना समय लगता है इतने समय का सौर या सावन दिन होता है। नाचन तथा सौर दिन में प्रायः कुछ अंतर हुआ करता है। यदि किसी दिन याम्योत्तर रेखा पर एक ही स्थान पर और एक ही समय सूर्य्य के साथ कोई नक्षत्र भी हो तो दूसरे दिन उसी स्थान पर नक्षत्र तो कुछ पहले आ जायगा पर सूर्य्य कुछ मिनटों के उपरांत आवेगा। यद्यपि नाचन और सावन दोनों प्रकार के दिन पृथ्वी के अक्ष

पर घूमने से संबंध रखते हैं पर नवग्रह के वाग्भोत्तर पर, धान में बाराबर बतना ही समय जगता है पर सूर्य वाग्भोत्तर पर ठीक बतने ही समय में सदा नहीं आता, कुछ कम या अधिक समय लेता है, जिसके कारण सौर दिन का मान भी घटता बढ़ता रहता है। अतः हिसाब ठीक रखने और सुभीते के लिये एक सौर वर्ष को तीन सौ साठ भागों में विभक्त कर लेते हैं और इनके एक भाग को एक सौर दिन मानते हैं। हिंदुओं में दिन का मान सूर्योदय से सूर्योदय तक होता है और प्रायः सभी प्राचीन जातियों में सूर्योदय से सूर्योदय तक दिन का मान होता था। आजकल हिंदुओं और पश्चिमी की दूसरी अनेक जातियों में तथा युरोप के ब्राह्मण, टर्कों और इटली देश में भी सूर्योदय से सूर्योदय तक दिन माना जाता है। युरोप के अधिकांश देशों तथा मिस्र और चीन में आधी रात से आधी रात तक दिन माना जाता है। प्राचीन रोमन लोग भी आधी रात से ही दिन का आरंभ मानते थे। आजकल भारतवर्ष में सरकारी कामों में भी दिन का आरंभ आधी रात से ही माना जाता है। पर अपनी गणना के लिये योरोप के ज्योतिषी मध्याह्न से मध्याह्न तक दिन मानते हैं।

मुहा०—दिन दिन या दिन पर दिन = नित्य प्रति। यदा। हर रोज।

(१) समय। काल। वक्त। जैसे, (क) इतने दिन की रखी हुई चीज हसने खा दी। (ख) भले दिन, बुरे दिन।

मुहा०—दिन काटना = समय बिताना। दिन गंवाना = बुरा समय खाना। दिन पूरे करना = निर्वाह करना। समय बिताना। दिन विगड़ना = बुरे दिन होना। विनक्ति का अचघर आना। दिन भुगताना = दिन काटना। समय बिताना।

यो०—पतले दिन = नाजुक वक्त। बुरे दिन। खोटे दिन।

क्रि० प्र०—बिताना।—बताना।

(४) नियत या उपयुक्त काल। निश्चित या अचित समय। जैसे, (क) कोई दिन दिखा कर बजेंगे। (ख) जब इसके दिन पूरे हो गए यह मरेगा।

मुहा०—दिन आना = समय पूरा हो जाना। अंतिम समय आना। दिन धरना = दिन उठराना। दिन निश्चित करना। दिन धराना = दिन स्थिर करना। दिन निश्चित कराना। मुहूर्त निकलवाना। उ०—अति परम सुंदर पालना गड़ि ब्याप दे बढ़ैया। × × × × × पालने आन्यो सवदि अति मन मान्यो कीको से। दिन धराइ सखिन मंगल गवाय रंग महल में पीठ्यो है कन्हैया।—सूर।

(१) विशेष रूप से बिताना जानेवाला काल। वह समय जिसके बीच कोई विशेष बात हो। जैसे, अच्छे या बुरे दिन, गर्म के दिन, जवानी के दिन।

मुहा०—दिन बढ़ना = किसी चीं का गर्भवती होना। दिन पड़ना = कुसमय का आना। बुरा समय आना। दिन फिरना = दुर्भाग्य काल के उपरांत सौभाग्य काल आना। बुरे दिनों के बाद अच्छे दिन आना। दिन बहुरना = फिर से अच्छे दिन आना। दिन फिरना। दिन भरना = दुर्भाग्य काल विधाना। बुरे दिन काटना। दिनों से उतरना = जवानों दलना। युवावस्था का पीत जाना। कि० वि० सदा हमेशा। उ०—(क) बावरो रावो नाह भवानी। दानी यमो दिन देत दिपु विनु वेद बढ़ाई मानी।—तुलसी। (ख) गुरु पितु मातु महेस भवानी। प्रथवहु दीनबंधु दिन दानी।—तुलसी। (ग) हिंदोरे मूलत जाइ दिन दूजह हुबहिन विहारी देखि री खलना।—हरिदास।

दिनकंत^२—संज्ञा पुं० [सं० दिन + कंत (कंत)] सूर्य।

दिनकर—संज्ञा पुं० [सं०] (१) सूर्य। (२) आक। मंदार।

दिनकरकन्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] यमुना।

दिनकरसुत—संज्ञा पुं० [सं०] (१) यम। (२) शनि। (३) सुग्रीव। (४) अश्विनीकुमार। (५) कण्व।

दिनकर्त्ता—संज्ञा पुं० दे० “दिनकर”।

दिनकृत—संज्ञा पुं० दे० “दिनकर”।

दिनकेशर—संज्ञा पुं० [सं०] अंधकार। अंधेरी।

दिनक्षय—संज्ञा पुं० दे० “तिथिचक्र”।

दिनचर्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] दिन भर का काम धंदा। दिन भर का कर्तव्य कर्म।

दिनचारी—संज्ञा पुं० [सं० दिनचरिन्] दिन को चलनेवाला सूर्य।

दिनज्योति—संज्ञा स्त्री० [सं० दिनज्योतिस्] (१) दिन का बनेला। (२) धूप।

दिनदानी^३—संज्ञा पुं० [सं० दिन + दानी] प्रति दिन दान करनेवाला। रोज देनेवाला। गरीब-गरबर।

दिनदीप—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य।

दिनदुःखित—संज्ञा पुं० [सं०] चक्रवा पथी।

दिननाथ—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य।

दिननायक—संज्ञा पुं० [सं०] दिन के स्वामी, सूर्य।

दिननाह—संज्ञा पुं० दे० “दिननाथ”।

दिनप—संज्ञा पुं० दे० “दिनपति”।

दिनपति—संज्ञा पुं० [सं०] (१) सूर्य। (२) आक। मंदार। (३) दिन या वार के पति। दे० “दिन”।

दिनपाकी अजीर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक के अनुसार एक प्रकार का अजीर्ण जिसमें एक वार का किया हुआ मोहन आठ पहर में पचता है और बीच में मूल नहीं लगती।

दिनपात—संज्ञा पुं० दे० “तिथिचक्र”।

दिनपाल—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य।

दिनबंधु—संज्ञा पुं० [सं०] (१) सूर्य। (२) आक। मंदार।

दिनबल-संज्ञा पु० [सं०] फलित उद्योगिण में वह राशि जो दिन के समय बली हो।

विशेष—फलित उद्योगिण में वारह राशियों में से पाँचवीं, छठी, सातवीं, आठवीं, न्यारहवीं और बारहवीं ये छः राशियाँ दिनबल या दिनबली मानी जाती हैं और बाकी राशिबल।
दिनमण्डि-संज्ञा पु० [सं०] (१) सूर्य। भास्कर। रवि। (२) आक। मंदार।

दिनमनिर्वा-संज्ञा पु० दे० "दिनमणि"।

दिनमयूख-संज्ञा पु० [सं०] (१) सूर्य। (२) आक। मंदार।

दिनमाल-संज्ञा पु० [सं०] मास। महीना।

दिनमान-संज्ञा पु० [सं०] दिन का प्रमाण। दिन की अवधि। सूर्योदय से लेकर सूर्यास्त तक के समय का मान।

विशेष—दिन सदा घटता बढ़ता रहता है, अतः सुभीते के लिये किसी जगहकर यह जान लिया जाता है कि कौन दिन कितना बढ़ा (कितनी घण्टियाँ और कितने पलों का) होगा। सूर्योदय से लेकर सूर्यास्त तक के समय का यही माग दिनमान कहलाता है।

दिनमाली-संज्ञा पु० [सं०] सूर्य।

दिनमुख-संज्ञा पु० [सं०] प्रभात। सवेरा।

दिनरक्ष-संज्ञा पु० [सं०] (१) सूर्य। (२) आक। मंदार।

दिनराइ-संज्ञा पु० दे० "दिनराज"।

दिनराउ-संज्ञा पु० दे० "दिनराज"।

दिनराज-संज्ञा पु० [सं०] सूर्य।

दिनशीघ-संज्ञा पु० [सं०] दिनांत। सायंकाल। संध्या।

दिनांड-संज्ञा पु० [सं०] शंभकार। शंभेरा।

दिनांत-संज्ञा पु० [सं०] सायंकाल। संध्या। शाम।

दिनांतक-संज्ञा पु० [सं०] शंभकार। शंभियारा।

दिनाघ-संज्ञा पु० [सं०] वह जिस दिन को न सूझे। जैसे बल्लू-पद्मनादक आदि।

दिनांश-संज्ञा पु० [सं०] (१) दिन के प्रातःकाल, मध्याह्न और सायंकाल में तीन अंश या विभाग। (२) दिन के पाँच अंश या विभाग जो इस प्रकार हैं—प्रातःकाल, समय, मध्याह्न, अपराह्न और सायंकाल। इनमें से प्रत्येक अंश प्रमत्तः सूर्योदय के उपरांत तीन सुदृढ़ तक माना जाता है।

दिनाई-संज्ञा पु० [सं०] दाद। विशेष-दे० "दाद"।

दिनाई-संज्ञा पु० [सं०] दिन, हिं० अना। कोई ऐसी विधाक पत्तु जिसके लाने से थोड़े ही समय में मृत्यु हो जाय। अंतिम दिन (संयुक्त-काल) जानेवाली चीज। व०—(क) फाँटे सिर पढ़ि मय दियो हम कहाँ हमारे पास दिनाई। —सूर। (ख) धर्म मिम कौं अतुल दिनाई। तुलहि मीच समय दिन चाई।—आल। (ग) कही पद्मनाकर जो बैक

नर जैसे तेसे तन देत गंगातीर लजिकै महान शोक। सो तौ देत व्यापै विष दुखन दिनाई देत पापन के पुत्र को पदारन को ठोक ठोक।—पद्मनाकर।

दिनागम-संज्ञा पु० [सं०] प्रभात। तड़का।

दिनाती-संज्ञा पु० [हिं० दिन + आती (प्रत्य०)] (१) मजदूरों, विशेषतः खेत में काम करनेवालों का एक दिन का काम।

(२) मजदूरों की एक दिन की मजदूरी।

दिनादि-संज्ञा पु० दे० "दिनागम"।

दिनाधीश-संज्ञा पु० [सं०] (१) सूर्य। (२) आक। मंदार।

दिनार-संज्ञा पु० दे० "दीनार"।

दिनाघा-वि० [सं० दिनश्च] बहुत दिनों का डराना।

दिनाई-संज्ञा पु० [सं०] मध्याह्न। दोपहर।

दिनाया-संज्ञा पु० [सं०] प्रायः हाथ भर लंबी एक प्रकार की मजूकी जो हिमाजय तथा आसाम की नदियों में पाई जाती है। हरद्वार में यह बहुत अधिकता से होती है।

दिनास्त-संज्ञा पु० [सं०] सूर्यास्त। दिनांत। संध्या।

दिनिका-संज्ञा पु० [सं०] एक दिन का वेतन या मजदूरी।

दिनियर-संज्ञा पु० [सं० दिनकर] सूर्य।

दिनी-वि० [हिं० दिन + ई (प्रत्य०)] बहुत दिनों का डराना। प्राचीन। व०—मली बुद्धि सेरे जिय बपजी। ज्यो ज्यो दिनी मई लोँ निपजी।—सूर।

दिनेर-संज्ञा पु० [सं० दिनकर, हिं० दिनियर] सूर्य। दिनकर। व०—अनधन तीन सेर निशि माहा। हीं दिनेर जेहि के तू दाहा।—जायसी।

दिनेश-संज्ञा पु० [सं०] (१) सूर्य। (२) आक। मंदार। (३) दिन के अधिपति ग्रह।

दिनेशारामज-संज्ञा पु० [सं०] (१) शनि। (२) यम। (३) सुभीच। (४) कर्ण।

दिनेश्वर-संज्ञा पु० दे० "दिनेश"।

दिनेस-संज्ञा पु० दे० "दिनेश"।

दिनीधो-संज्ञा पु० [हिं० दिन + धो + ई (प्रत्य०)] प्रातः का एक प्रकार का रोग जिसमें दिन के समय सूर्य की तेज किरणों के कारण बहुत कम दिशाई देता है।

दिपति-संज्ञा पु० दे० "दीप्ति"।

दिपना-संज्ञा पु० [सं० दीप्ति] चमकना। प्रकाशमान होना। व०—कौटि मानु दुति दिपत है मोहन विपुली खेर। याते बानी झोट हूँ रग हेत वह धोर।—रसनिधि।

दिघ-संज्ञा पु० [सं० दिग्घ] यह परीक्षा जो निर्दिपता या अपने कपन की सत्यता प्रमाणित करने के लिये की है। जैसे, अग्निपरीक्षा आदि। व०—(क) काहे को अपराध छायायति कय कीनी हम घेरी।... जैसे जय चाहे तब तेसे पावन दिघ में देंई। (ख) सपि सभा साबर छवार भय

देवें दिव दुसद सासति कीजें चागे ही या तन की ।—
मुलसी ।

दिमंकर सो-वि० [सं० द्वि + उचर + यत] सो और दो । एक
सो दो ।

विशेष—इस का व्यवहार पढ़ाई में होता है । जैसे, सचराष्ट
छुके दिमंकर सो—१० × ६ = १०२

दिमाक-संज्ञा पुं० दे० "दिमाग" ।

दिमाकदार-वि० दे० "दिमागदार" । उ०—सोचते सवार सदादर
जे दिमाकदार बुद्ध मदि क्रुद्ध जे अदम्य उदरत हैं ।—
गोपाल ।

दिमाग-संज्ञा पुं० [प०] (१) सिर का गुद्दा । मस्तिष्क । भेजा ।

मुहा०—दिमाग खाना या चाटना=स्वर्ग की बातें कहना
जिससे किसी के सिर में दर्द होने लगे । बहुत बकवास
करना । जैसे, भावकल ये रोग सवरे धाकर दिमाग चाटते
(या खाते) हैं । दिमाग खाली करना=दिमाग चाटना ।
ऐसा काम करना जिस में मानसिक शक्ति का बहुत अधिक
व्यय हो । भगवन्की करना । जैसे, उन्हें सब बातें समझाने
के लिये हमें घंटों दिमाग खाली करना पड़ा । दिमाग चढ़ना
या धास्मान पर होना=बहुत अधिक धर्मद होना । अभिमान
होना । दिमाग न पाया जाना या न मिलना=दिमाग
चढ़ना । दिमाग परेशान करना="दे० दिमाग खाली
करना" । दिमाग में खलल होना=मस्तिष्क में ऐसा विकार
उपज होना जिससे विवेक शक्ति न रह जाय । सिद्धो होना ।
पागल होना ।

यौ०—दिमागचट । दिमाग-रौशन ।

(२) मानसिक शक्ति । बुद्धि । समझ । जैसे, (क) उनका
दिमाग अच्छा है, सब सामबा बहुत जल्दी समझ लेते हैं ।
(ख) जरा दिमाग खगाघो कोई न कोई उपाय निकल ही
सावेगा ।

मुहा०—दिमाग लड़ाना=बहुत अच्छी तरह विचार करना ।
सूख सोचना । जैसे, इस काम में बहुत दिमाग लड़ाने की
जुरूरत है ।

यौ०—दिमागदार ।

(१) अभिमान । धर्मद । शेरती ।

क्रि० प्र०—करना ।—रखना ।—होना ।

मुहा०—दिमाग झड़ना=अहंकार नष्ट होना । अभिमान टूटना ।

धौ०—दिमागदार ।

दिमागचट-वि० [प० दिमाग + चि० चट (चाटना)] बहुत अधिक
बकवास करके दूसरों को व्याकुल करनेवाला । बकही ।

दिमागदार-वि० [प० दिमाग + फा० दार (धाय)] (१) जिसकी
मानसिक शक्ति बहुत अच्छी हो । बहुत थड़ा समझदार ।

(२) अभिमान । धर्मदी ।

दिमाग-रौशन-संज्ञा पुं० [प० दिमाग + फा० रौशन] मानस-रौशन
मास । सुपनी ।

दिमाग-वि० दे० "दिमागदार" ।

दिमातर्भा-संज्ञा पुं०, वि० [सं० दिमातर्] दो माताओंवाला । वह
जिसकी दो माताएँ हों ।

वि०, संज्ञा पुं० [सं० द्विमाता] वह जिसमें दो माताएँ हों ।
दो माताओंवाला ।

दिमाना-वि० दे० "दीवाना" ।

दिमस्ता-संज्ञा स्त्री० [हिं० इस्तद] घासदार जेजो को जमा करके
धुरमट से पीटने की क्रिया ।

दियट-संज्ञा स्त्री० दे० "दीघट" ।

दियता-संज्ञा स्त्री० [हिं० देना] वह धन जो किसी को मार खाले
या थग भंग करने के बदले में दिया जाय ।

दियना-संज्ञा पुं० दे० "दीघा" ।

दियरा-संज्ञा पुं० [सं० दीघ, हिं० दीघा (खोद्यकतारा) + रा (प्रत्य०)]

(१) एक प्रकार का पकवान जिसे मीठा मिले हुए धाटे की
लोई बनाकर और उसके बीच में खैरू से गड़दा करके घी
या तेल में तबकल बनाते हैं । लोई में खैरू से गड़दा करने
पर उसका धाकार दीघ का सा हो जाता है । (२) दे०
"दीघा" ।

दियला-संज्ञा पुं० दे० "दीघा" ।

दियवा-संज्ञा पुं० दे० "दीघा" ।

दियार-संज्ञा स्त्री० दे० "दीघा" ।

दिया-संज्ञा पुं० दे० "दीघा" ।

दियानत-संज्ञा स्त्री० दे० "दयानत" ।

दियानतदार-वि० दे० "दयानतदार" ।

दियानतदारी-संज्ञा स्त्री० दे० "दयानतदारी" ।

दियावत्ती-संज्ञा स्त्री० [हिं० दीघा + वत्ती] (संस्था के समर्थ)

दीघा जखाने का काम ।

दियारा-संज्ञा पुं० [फा० दयार = प्रदेय] (१) नदी के किनारे

की वह जमीन जो नदी के दूट जाने पर निकल आती है ।

कछार । खादर । दरिया-बहार । (२) दयार । प्रदेश । प्रांत ।

उ०—का बालन धनि देस दियारा । जहाँ अस नग उपमा

उँजियारा ।—जायसी ।

दियासलाई-संज्ञा स्त्री० [हिं० दीघा + सलाई] लकड़ों की वह
तीजी या सलाई जो रागड़ों से जब उठती है ।

विशेष—यह भागः एक धौलू या इससे कुछ कम लंबी और
पतली लकड़ों की सलाई होती है जिसके एक सिरे पर गंधक
आदि कई भस्मकनेवाले मसाले जगे होते हैं । इस सिरे को
रागड़ों से धारा निकलती है जिससे सलाई जलने लगती
है । जिस सलाई के सिरे पर गंधक जगी होती है वह हर
एक कड़ी चीज पर रागड़ों से जब उठती है, पर जिसके सिरे

पर और मसाबे जगो होते हैं वह विशिष्ट मसाबों से बने हुए तल पर ही रगड़ने से जलती है। इसके अतिरिक्त चिनगारी या श्याम से इस सिरे का रपर्ण कराने से भी सजाई जब बढ़ती है। छोटी चौकुर डिविया में दियासलाहवाँ बंद रहती है; और उसी डिविया के एक पारवे पर वह मसाबा लगा होता है जिस पर रगड़ने से सजाई जलती है। लकड़ी के अतिरिक्त एक प्रकार की मोम की बनी हुई दियासलाह होती है जो अग्नेयकृत अधिक समय तक जलती रहती है। आज कल वैज्ञानिकों ने कागज आदि की भी सजाई बनाई है। सजाई का व्यवहार दीया जलाने और भाग सुलगाने आदि के लिये होता है।

क्रि० प्र०—धिसना।—जलाना।—रगड़ना।

मुहा०—दियासलाह लगाया = आग लगाया। जलाना। जैसे, यह किताब तो दियासलाह लगाये जायक है।

दिर—संज्ञा पुं० [चतु०] सितार का एक बोल। जैसे, दिर दा दिर दार दार दा दार दार दा दार। दिर दा दिर दार दा दिर दार दा दिर दार दा दार दा दार।

दिरदह—संज्ञा पुं० दे० “दिरदह”।

दिरम—संज्ञा पुं० [च० दरहम] (१) सिद्ध देय का शर्दी का एक सिक्का। दिरहम। (२) साढ़े तीन मारो की एक सौल।

दिरमानी—संज्ञा पुं० [फा० दरमानः] चिकित्सा। इलाज।

दिरमानी—संज्ञा पुं० [फा० दरमानः = चिकित्सा + ई (प्रत्य०)] वैद्य। चिकित्सक। इलाज करनेवाला। उ०—मैं हरि साधन करे न जांगी। जस आमम भेषन न कीन्ह तस दोष कहा दिरमानी।—सुखसी।

दिरहम—संज्ञा पुं० [फा० दरहम] दिरम नाम का सिक्का। दे० “दिरम”।

दिरानी—संज्ञा० संज्ञा० दे० “देवानी”।

दिरिस—संज्ञा पुं० दे० “दरय”।

दिरिस—संज्ञा पुं० [च० डेर] (१) महीन कपड़े पर लुपी हुई एक प्रकार की झोंट। दरिस। (२) सँवारने या ठीक करने की क्रिया।

वि० सँवारा या ठीक किया हुआ। लैस। दुरस्त।

दिरिम—संज्ञा पुं० दे० “दिरम”।

दिरु—संज्ञा पुं० [फा०] (१) कलेजा।

मुहा०—दिल उलटना = दे० “कलेजा उलटना”। दिल मलना = दे० “कलेजा मलना”। दिल मसोस कर रह जाना = दे० “कलेजा भंगस कर रह जाना”। दिल पुकड़ पुकड़ करना या होना = दे० “कलेजा पुकड़ पुकड़ होना”। दिल धक धक करना या होना = दे० “कलेजा धक धक करना”।

(२) मन। चित्त। हृदय। जी।

पौ०—दिलगीर। दिलगुश। दिलचबा। दिलचस्व। दिल-

घोर। दिलजमई। दिलजला। दिलदरिया। दिलदार। दिलबर। दिलदया।

मुहा०—(किसी से) दिल अटकना = दे० “जी लगना”। (किसी से) दिल अटकाना = दे० “जी लगाना”। (किसी पर) दिल आना = दे० (किसी पर) “जी आना”। दिल अकताना = दे० “जी उकताना”। दिल उबटना = दे० “जी उचटना”। दिल उचाट होना = दे० “जी उचाट होना”। दिल उठाना = दे० “जी उठाना”। दिल उमड़ना = दे० “जी भर आना”। दिल उलटना = (१) दे० “जी धराना”। (२) दे० “जी मिचताना”। दिल उठाना = चित्त हटाना। मन फेर लेना। दिल कड़ा करना = हिम्मत बाँधना। साहस करना। चित्त में हड़ता लाना। दिल कड़वा करना = दे० “दिल कड़ा करना”। दिल कबाब होना = दे० “जी जलना”। दिल करना = दे० “जी करना”। दिल का कँवल रिखना = चित्त प्रसन्न होना। मन में आनंद होना। दिल का गवाही देना = मन को किसी बात की संभावना या श्रौचित्य का निश्चय होना। इस बात का विचार में आना कि कोई बात होगी या नहीं, अथवा यह बात उचित है या नहीं। जैसे, (क) हमारा दिल गवाही देता है कि वह अस्तर धावेगा। (ख) उनके साथ जाने के लिये हमारा जी गवाही नहीं देता। दिल का गुमार निकलना = दे० “जी का गुलार निकलना”। दिल कायादाहाह = (१) बहुत बड़ा उदार। (२) मनमोही। लहरी। दिल का गुलार निकालना = दे० “जी का गुलार निकालना”। दिल का भर जाना = दे० “जी भर जाना”। दिल की दिख में रहना। = दे० “जी की जी में रहना”। दिल की फाँस = मन की पीड़ा या दुःख। दिल कुड़ना = चित्त का उल्टी होना। रंज होना। दिल कुड़ना = चित्त को खुरी करना। रंज करना। दिल कुड़वाना = चित्त को खुरी या गोकुलुल होना। मन का मुल होजाना। (किसी के) दिल के दरवाजे खुलना = (किसी के) जी का हृत्त माथम होना। मन की बात प्रकट होना। दिल के फफोले फूटना = चित्त का उद्गार निकलना। दिल के फफोले फोड़ना = हृदय का उद्गार निकालना। किसी को भन्नी घुरी मुनाकर अपना जी ठंडा करना। जहाँ कहीं कह कर अपना चित्त शांत करना। दिल को करार होना = चित्त में धैर्य या शांति होना। हृदय का शांत या संतुष्ट होना। दिल को मसोसना = शोक या मोष आदि तीव्र मनोवेगों को मन में ही दबा रखना। चित्त के उद्गार को किसी कारणवश निकलने न देना। दिल को खमना = हृदय पर पूरा या गहरा प्रभाव पडना। किसी बात का जी में बैठना। चित्त में चुभना। जैसे, उनकी सय धाँसे हमारे दिल को लग गईं। दिल खटा होना = दे० “जी खटा होना”। दिल खटकना = दे० “जा खटकना”। दिल खुलना = दे० “जी

सुपना" । दिख खिन्नता = चित प्रवृत्त होना । मन का प्रकृतित होना । दिख खेलेकर = दे० "जी खेलेकर" । दिख चञ्चलता = दे० "मन-चञ्चलता" । दिख खलना = दे० "जी चञ्चलता" । दिख सुगना = दे० "जी सुगना" । दिख जमना = (१) किसी काम में चित लगना । ध्यान या जो लगना । जैसे, सुगहारा दिख तो जमता ही नहीं, तुम काम कैसे करोगे ? (२) किसी विषय या पदार्थ की ओर से चित का संतुष्ट होना । रुचि के अनुकूल होना । जी मरना । जैसे, (का) जिस चीज पर दिख ही नहीं जमता उसे लेकर क्या करेंगे ? (ख) धगर सुगहारा दिख जमे तो तुम भी हमारे साथ चलो । दिख जमाना = काम में ध्यान देना । चित लगाना । जी खगाना । जैसे, धारा तुम्हें काम करवा दो तो दिख जमा कर दिया करो । दिख जलना = दे० "जी जमाना" । दिख अजगना = दे० "जी जमाना" । (किसी काम में) दिख जान से खगना = दे० "जी जान से लगना" । दिख टूटना या टूट जाना = दे० "जी टूट जाना" । दिख ठिकाने होना = मन में शांति शंताप या धैर्य होना । चित स्थिर होना । जी ठहलना । दिख ठिठाने खगाना = मन को शांत या संतुष्ट करना । जी को सहारा देना । व्याकुलता दूर करना । दिख ठुकरना = दे० "जी ठुकरना" । दिख ठोकना = मन को ठुकराना । जी पका करना (क्य०) । दिख ठूबना = दे० "जी ठूबना" । दिख तड़पना = चित का धो धी, विरोधतः किसी के प्रेम में, बहुत व्याकुल होना । बहुत अधिक पराहाट या वैषम्य होना । व०—दिख तड़प कर रह गया जब थाद चाई चापनी की । दिख तोड़ना = हिंस्रत तोड़ना । हतोपसाह करना । गालत मंग करना । दिख दहखना = दे० "जी दहखना" । दिख दुखना = दे० "जी दुखना" । दिख दुखाना = दे० "जी दुखाना" । दिख देखना = किसी के मन की परीक्षा करना । रुचि या प्रवृत्ति का पता लगाना । जी की पाह लेना । मन टोटोपाना । जैसे, हमें अपने की कोई कसूरत नहीं है, हम तो खाली सुगहारा दिख देखते थे । दिख देना = आशिक होना । प्रेम करना । आसक्त होना । मुहब्बत में पडना । दिख दोड़ना = दे० "जी दोड़ना" । दिख दौड़ना = (१) जी चञ्चलता इच्छा या काशकत) करना । (२) ध्यान देना । चिंतन करना । सोचना । दिख धड़कना = दे० "कलेजा धड़कना" । दिख पक जाना = दे० "कलेजा पक जाना" । दिख पकड़ लेना या दिख पकड़ कर बैठ जाना = दे० "कलेजा पकड़ लेना" । दिख पकड़ा जाना = दे० "जो पकड़ा जाना" । दिख पकड़े फिरना = ममत्ता से व्याकुल होकर हृदय उष्य फिना । विकल होकर घूमना । दिख पर नकषा होना = किसी बात का जी में जम जाना । जी में बैठ जाना । हृदयमग होना । दिख पर मैज खाना = मन

मोटाव होना । पहले का सा मम या सद्भाव न रह जाना । प्रति-मंग होना । जी फट जाना । दिख पर सपि लोटना = दे० "कलेजे पर सपि लोटना" । दिख पर हाथ रखते फिना = दे० "दिल पकड़े फिना" । दिख पसीजना = दे० "दिख पिपतना" । दिख पाना = आशय जानना । शंका-करवा की बात जानना । मन की पाह पाना । दिख पीठे पडना = दे० "जी पीठे पडना" । दिख फटना या फट जाना = दे० "जी फट जाना" । दिख फिरना या फिर जाना = दे० "जो फिर जाना" । दिख फीटा होना = दे० "जो फटा होना" । दिख पडना = दे० "जो पडना" । दिख पडना = दे० "जी पडना" । दिख पडखना = दे० "जी पडखना" । दिख पडखाना = दे० "जी पडखाना" । दिख सुकना = चित में किसी प्रकार का बलाह या उभंग न रह जाना । मन मरना । दिख घुरा होना = दे० "जो घुरा होना" । दिख वैकल होना = वैषम्य होना । घपराहट होना । दिख बैठा जाना = दे० "जो बैठा जाना" । दिख भटकना = चित का व्यय या चंचल होना । मन में हृदय उष्य के विचार उठना । दिख भर खाना = दे० "जी भर खाना" । दिख भरना = दे० "जी भरना" । दिख भारी करना = दे० "जी भारी करना" । दिख मसोसना = मोक्ष, मोष या कियत दूरे तीक्ष्ण मनेवेग का मन में ही दब रहना । दिख मारना = दे० "मन मारना" । दिख मिजना = दे० "जी मिजना" या "मन मिजना" । दिख में खाना = दे० "जो में खाना" । दिख में गडना या रुजना = दे० "जो में गडना या लुभना" । दिख में गड या गिराह पडना = दे० "गड" के अर्थगत "मन में गड पडना" । दिख में घर करना = दे० "जो में घर करना" । दिख में सुटकिया या सुटकी लेना = दे० "सुटकी लेना" । दिख में चुभना = दे० "जो में गडना या चुभना" । दिख में चोर बैठना = दे० "मन में चोर बैठना" । दिख में अगह करना = दे० "जो में घर करना" । दिख में फकोले पडना = चित को बहुत अधिक कष्ट पहुँचना । मन में बहुत हुल होना । दिख में फरक खाना = सद्भाव में शंकर पडना । मन-मोटाव होना । दिख में बल पडना = दे० "दित्त में फरक खाना" । दिख में रखना = दे० "जो में रखना" । दिख मैजा करना = चित में सुभंग उष्य करना । मन भैजा करना । दिख रकना = दे० "जो रकना" । (किसी का) दिख रखना = दे० "जो रखना" । दिख खगना = दे० "जो खगना" । दिख खगाना = दे० "जो खगाना" । दिख खखचना = दे० "जो खखचना" । दिख खेना = (१) किसी को शरते पर आसक्त करना । अपने प्रेम में फँसना । (२) शंकाकरवा की-यत्त जानना । मन की पाह लेना । दिख खोटना = दे० "जो खोटना" । दिख से खतरना या गिरना = हटि से गिर जाना । शिप या आदर्शपीय न

रह जाना । विरक्ति-मानन होना । दिख से = (१) जी लगा-
कर । अन्धी तरह । ध्यान देकर । (२) अपने मन से । अपनी
इच्छा से । दिख से बढना = आपसे आप कोई काम करने की
प्रवृत्ति होना । जैसे, जब हमदारे दिख से ही नहीं उठता, तब
बार बार कहकर तुम से कोई क्या काम करावेगा ? दिख
से दूर करना = भुला देना । विसरणा करना । ध्यान छोड़
देना । दिख इट जाना = दे० "जी फिर जाना" । (किसी
का) दिख हाथ में रखना = किसी को प्रवल रखना । किसी
के मन से अपने वश में रखना । दिख हाथ में खेना = किसी
को प्रवल करके अपने प्रधिकार में रखना । वशीभूत रखना ।
दिख दिखना = दे० "जी दहलना" । दिख ही दिख में =
सुपके सुपके । गुप्त भाव से । मन ही मन । दिखो जान से =
दे० "जी जान से" ।

(१) साहस । दम । जिपट ।

मुदा०—दिख-दिमाग का (छादनी) = बहुत साहसी और
सममदार (आदमी) ।

यौ०—दिखदार ।

(४) प्रवृत्ति । इच्छा ।

दिलगीर-वि० [फा०] (१) उदास । (२) हुली । शोकाकुल ।

दिलगीरी-संज्ञा पु० [फा० दिलगीर + ई० (प्रत्य०)] (१) बदारी ।

(२) रंज । दुःख ।

दिलगुरदा-संज्ञा पु० [फा० दिख + गुरदा] हिम्मत । साहस ।
बहादुरी ।

दिलचला-वि० [फा० दिख + हिं० चलना] (१) साहसी । हिम्मत-
वाला । दिलेर । (२) गुर । धीर । बहादुर । (३) दाता ।

दागी । बदार । (४) पागल । (क०)

दिलचरप-वि० [फा०] जिसमें जी खरो । मनोहर । चित्ताकर्षक ।

दिलचरपी-संज्ञा स्त्री० [फा०] (१) दिख का खरना । (२)
मनोरंजन ।

दिलचोर-वि० [फा० दिख + हिं० चोर] जो काम करने से जी
धुराता हो । कामचोर ।

दिलजमई-संज्ञा स्त्री० [फा० दिख + ज० जमझ + ई० (प्रत्य०)]
इतमीगान । तसली । संतोष ।

क्रि० प्र०—करना ।—कराना ।—रखना ।

दिलजला-वि० [फा० दिख + हिं० जलना] जिसका जी जला हो ।
जिसके चित्त को बहुत कष्ट पहुँचा हो । अत्यंत हुली ।

दिलदरिया-संज्ञा पु० दे० "दरियादिल" ।

दिलदरियाध-संज्ञा पु० दे० "दरियादिल" ।

दिलदार-वि० [फा०] (१) बदार । दाता । (२) रसिक । (३)
प्रेमी । प्रिय । वह जिससे प्रेम किया जाय ।

दिलदारी-संज्ञा स्त्री० [फा० दिखदार + ई० (प्रत्य०)] (१) बदारी ।
(२) रसिकता । (३) प्रेमिकता ।

दिलपसंद-वि० [फा०] मनोहर । जो भला मालूम हो ।

संज्ञा पु० (१) फुल्लवर या खुनरी की तरह का एक प्रकार
का कपड़ा जिसपर बेल-भूटे आदि छपे हुए होते हैं और
जो साड़ी आदि धराने के काम में आता है । (२) एक प्रकार
का धाम ।

दिलबर-वि० [फा०] जिससे प्रेम किया जाय । प्यारा । प्रिय ।

दिलबहार-संज्ञा पु० [फा० दिख + बहार] धराधारी रंग का एक
भेद ।

दिलरुषा-संज्ञा पु० [फा०] वह जिससे प्रेम किया जाय । प्यारा ।

दिलघल-संज्ञा पु० [दे०] एक प्रकार का पेड़ ।

दिलवाना-क्रि० स० दे० "दिखाना" ।

दिलवाला-वि० [फा० दिख + वाला (प्रत्य०)] (१) बदार । दाता । जो

सूच देता हो । (२) बहादुर । दिलेर । साहसी ।

दिलवैया-वि० [हिं० दिखवाना + वैया (प्रत्य०)] दिखवानेवाला ।
जो दूसरे को दिखता हो ।

दिलहा-संज्ञा पु० दे० "दिखा" ।

दिलहेदार-वि० दे० "दिलेदार" ।

दिलाना-क्रि० स० [हिं० देना का प्र०] (१) दूसरे को देने में

प्रवृत्त करना । देने का काम दूसरे से कराना । दिखवाना ।

जैसे, अपना दिखाना, फाम दिखाना । (२) प्राप्त कराना ।

विशेष—हृय धर्य में हल शब्द का व्यवहार प्रायः ऐसी ही

बातों के संबंध में होता है जिनकी प्राप्ति किसी तीसरे व्यक्ति

पर निर्भर न हो बरिष्ठ जो स्वयं इसी मनुष्य में उत्पन्न की जा

सकें । जैसे, सुख दिखाना, फसल दिखाना, ध्यान दिखाना ।

संयोग क्रि०—देना ।

दिलावर-वि० [फा०] (१) गुर । बहादुर । जवान्द । (२)

हसाही । साहसी ।

दिलावरी-संज्ञा स्त्री० [फा०] (१) पहादुरी । गुरता । (२)

साहस ।

दिलासा-संज्ञा पु० [फा० दिख + हिं० आसा] तसली । उदस ।

धाधासन । धैर्य । प्रयोष ।

क्रि० प्र०—देना ।

यौ०—दम दिखाना = (१) तसली । धैर्य । (२) दम बुत्ता ।

धोला । फोर ।

दिली-वि० [फा० दिख + ई० (प्रत्य०)] (१) हादिक । हृदय

पर दिख संबंधी । जैसे, दिती मुदाद । (२) अत्यंत धनिए ।

अभिध हृदय । जिगीरी । जैसे, दिती दोस्त ।

दिलीप-संज्ञा पु० [स०] (१) इच्छाकू शी राजा जो धारमीकि

के अनुसार राजा सगर के परपोते, भगीरथ के पिता और

रघु के परदादा थे । लेकिन रघुवंश के अनुसार इन्हीं राजा

दिलीप की स्त्री सुदचिष्या के गर्भ से राजा रघु उत्पन्न हुए

थे । रघुवंश में लिखा है कि राजा दितीप एक बार स्वर्ग से

मर्यां लोक में अपनी स्त्री से मिलने के लिये आते समय स्वर्गीय गौ सुरभि की पूजा करना शुरू गये। इसलिये पहले उन्हें शाप दिया कि जब तक तुम मेरी नंदिनी की सेवा न करोगे तब तक तुम्हें पुत्र न होगा। इस पर वे नंदिनी की सेवा करने लगे। एक बार एक शेर ने नंदिनी को खाना चाहा। दिलीप ने उसकी रक्षा के लिये अपने आपको उस शेर के आगे बाज दिया। इससे सुरभि प्रसन्न हो गई और सुदक्षिणा के गर्भ से खु की उत्पत्ति हुई। लिंग पुराण में लिखा है कि ये बड़े बुद्धिमान थे और इन्होंने तीनों जोगीं और तीनों ऋषियों को जीत लिया था। एक बार एक मुहूर्त के लिये वे स्वर्ग से मर्त्य लोक में भी आए थे। आगे चलकर इन्होंने फिर इसी बंश में ऐलिबिलि राजा के घर में जन्म लिया था। हरिवंश के अनुसार भी दिलीप राजा सगर के परपोते और भगीरथ के पुत्र थे। आगे चलकर इन्होंने एक बार फिर इसी बंश में जन्म लिया था। (२) चंद्रवंशी राजा कुरु के चंद्रगुप्त एक राजा का नाम।

दिलीर-संज्ञा पुं० [सं०] भुईंफाड़। डिंगरी।

दिलीर-वि० [फा०] (१) बहादुर। गूर। धीर। (२) साहसी। दिलवाला।

दिलेरी-संज्ञा स्त्री० [फा०] (१) बहादुरी। धीरता। (२) साहस। हिम्मत।

दि० प्र०—करना।—दिखाना।

दिल्ली-संज्ञा स्त्री० [फा० दिख + हिं० खाना] (१) दिख खगाने की क्रिया या भाव। (२) वह व्यापार, घटना या बात आदि जिसकी विलक्षणता आदि के कारण चित्त का विवेक और मनोरंजन हो। केवल चित्त-विवेक या हँसने हँसाने की बात। टट्टा। ठगोली। मसूका। मखीब। मसखरी। जैसे, (क) आप आजकल बहुत दिल्ली बाने लगे हैं। (ख) कल रातवाले मनाड़े में अच्छी दिल्ली देखने में आई। (ग) दोनों का सामना होगा तो बड़ी दिल्ली होगी।

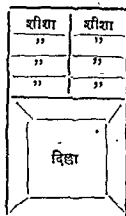
मुहा०—किमी बात की दिल्ली बड़ाना = (किली बात को) अमान्य और मिथ्या बहाने के लिये (बते) हँसी में उड़ान देना। हँसी की बात कह कर टाल देना। उपहास करना। जैसे, (क) आप तो सब की योही दिल्ली बड़ाया करते हैं। (ख) उन्होंने तुम्हारी किताब की खूब दिल्ली बड़ाई। दिल्ली में = केवल दिल्ली के विचार से। यो ही। हँसी में। जैसे, मैंने उन्हें दिल्ली में ही यहाँ से जाने के लिये कहा था, पर वे नाराज होकर चले गए।

दिल्लीभाषा-संज्ञा पुं० [हिं० दिठिंग + फा० बाज़] वह जो तद्वा दूसरों को हँसानेवाली बात कहता हो। हँसी या दिल्ली करनेवाला। मसखरा। टट्टा। हँसाड़। मखीबिलिया।

दिल्लीगोजी-संज्ञा स्त्री० [हिं० दिठिंग + फा० बाजी] (१) दिल्ली करने का काम। (२) दे० "दिल्लीगौ"।

दिल्ला-संज्ञा पुं० [दये०] किवाड़ के पत्ते में लकड़ी का वह चौखटा जो शोभा के लिये बना या जड़ दिया जाता है। आदना।

विदोष—किवाड़ों में शोभा के लिये या तो चौकोर पैदा करके उसमें गरीश की तरह लकड़ों का चौकोर टुकड़ा फिर से पैदा देते हैं अथवा पहले का ही कुछ अंग काटकर और कुछ उमाड़वार छोड़कर हल प्रकार बना देते हैं कि वह देखने में एक अलग चौकोर टुकड़ा सा जान पड़ता है। इसी को दिखा या दिवहा कहते हैं।



दिल्ली-संज्ञा स्त्री० जमुना नदी के किनारे बसा हुआ उत्तरप्रदेश भारत या एक बहुत प्रसिद्ध और प्राचीन नगर जो बहुत दिनों तक हिंदू राजाओं और सुलतानान बादशाहों की राजधानी या धीर की सत् १११२ में फिर मिट्टिश भारत की भी राजधानी हो गया है। जिस स्थान पर वर्तमान दिल्ली नगर है उस के चारों ओर १०—१२ मील के घेरे में भिन्न भिन्न स्थानों में यह नगर कई बार बसा और कई बार बगड़ा। कुछ लोगों का मत है कि ईद्रप्रस्थ के मयूरवंशी अंतिम राजा दिवू ने इसे पहले पहल बसाया था, इसीसे इसका नाम दिल्ली पड़ा। यह भी प्रवाद है कि एस्वीराज के माना अर्नंगपाल ने एक बार एक गड़ बनवाना चाहा था। उसकी नीव रखने के समय अन्तरे पुरोहित ने अन्तरे मुहूर्त में बोहे की एक कील पृथ्वी में गाड़ दी और कहा कि यह कील शेषनाग के मस्तक पर जा लागी है जिसके कारण आपके तोंत्रर बंश का राज्य अचल हो गया। राजा को इस बात पर विश्वास न हुआ और उन्होंने वह कील उखाड़ी दी। कील उखाड़ते ही बर्दा से लहू की धारा निकलने लगी। इस पर राजा को बहुत परचात्ताप हुआ। उन्होंने फिर पहाड़ी कील उस स्थान पर गाड़वाई पर इस बार वह ठीक नहीं पड़ी, कुछ बीबी रह गई। इसी से उस स्थान का नाम 'टीली' पड़ गया जो सिगाइकर दिल्ली हो गया। पर कील

वा स्तंभ पर जो शिखारेल है उससे इस प्रवाद का पूरा खंडन हो जाता है क्योंकि उसमें अर्धनागपाल से बहुत पहले के किसी चंद्र नामक राजा (शायद चंद्रगुप्त विक्रमादित्य) की प्रशंसा है। नाम के विषय में चाहे जो हो, पर इसमें संदेह नहीं कि ईसवी पहली शताब्दी के बाद से यह नगर कई बार बसा और बजड़ा। सन् ११९३ में मुहम्मद गौरी ने इस नगर पर अधिकार कर लिया। तभी से यह सुसज्जमान बाइराहों की राजधानी हो गया। सन् १३९८ में इसे तैमूर ने ध्वंस किया और १५२६ में यापर ने इस पर अधिकार किया। तब से यहाँ मोगल साम्राज्य की राजधानी हो गई। सन् १८०३ में इस पर अंगरेजों का अधिकार हो गया। पहले अंगरेजी भारत की राजधानी कलकत्ते में थी; पर सन् १९१२ से उठकर दिल्ली चली गई। आज कल वर्तमान दिल्ली के पास एक नई दिल्ली बसाई जा रही है।

दिल्लीवाल-वि० [हि० दिल्ली + वाक (श्लोक)] (१) दिल्ली संबंधी। दिल्ली का। (२) दिल्ली का रहनेवाला।

संज्ञा पुं० दिल्ली का बना हुआ एक प्रकार का देसी जूता।

दिल्लेदार-वि० [दे० दिल्ली + दा०] दिल्लीवाला (किवाड़)। जिसमें दिल्ली बना या लगा हो।

दिव-संज्ञा पुं० दे० "दिव"।

दिव-संज्ञा पुं० [सं०] (१) स्वर्ग। (२) आकाश। (हि०)। (३) वन। (४) दिन।

दिवगृह-संज्ञा पुं० दे० "देवगृह"।

दिवराज-संज्ञा पुं० [सं०] स्वर्ग के राजा, इंद्र। उ०—सूरदास प्रभु कृपा करहिं गे शरय चली दिवराज।—सूर।

दिवरानी-संज्ञा स्त्री० दे० "देवरानी"।

दिवली-संज्ञा स्त्री० दे० "दिवली"।

दिवस-संज्ञा पुं० [सं०] दिन। यासर। रोज।

दिवस-बंध-संज्ञा पुं० दे० "दिवबंध"।

दिवसकर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सूर्य। दिनकर। (२) मदार का पेड़।

दिवसनाथ-संज्ञा पुं० दे० "दिवसमणि"।

दिवसमणि-संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य

दिवसमुद्ध-संज्ञा पुं० [सं०] सवेरा। प्रातःकाल।

दिवसमुद्रा-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक दिन का बेतन। एक दिन की सनसाह।

दिवसेश-संज्ञा पुं० दे० "दिवसेश्वर"।

दिवस्पति-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सूर्य। (२) तेरहवें मन्वंतर के इंद्र का नाम।

दिवस्पृश्य-संज्ञा पुं० [सं०] (बामनाथतर में) पैर से स्वर्ग को छूनेवाले, विष्णु।

दिवांध-वि० [सं०] जिसे दिन में न सूके। जिसे दिनांधी हो। संज्ञा पुं० (१) दिनांधी का रोग। (२) उलू।

दिवांधकी-संज्ञा स्त्री० [सं०] छुट्टीदार।

दिवा-संज्ञा पुं० [सं०] (१) दिन। दिवस। (२) २२ अक्षरों का एक वर्णवृत्त। एक वृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में ७ अक्षर और १ गुण होता है। इसके दूसरे नाम "माखिनी" और "मदिरा" भी है। उ०—भातस गौरि गुसाइन को वर राम धनु हुइ खंड कियो। दे० "दीवा"।

दिवाकर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सूर्य। भास्कर। रवि। (२) काक। कौवा। (३) मदार। आक। (४) एक फूल।

दिवाकीर्ति-संज्ञा पुं० [सं०] (१) नापित। मात्र। नाई। हजामत। (प्राचीन काल में नाइयों को केवल दिन के समय ही नगर बादि में घूमने का अधिकार था, इसीसे यह नाम पड़ा) (२) चांडाल। (३) उरलू।

दिवाकीर्य-संज्ञा पुं० [सं०] वह सामान जो साल भर में होनेवाले गमानयन यज्ञ में विपुव संक्रांति के दिन गंगा जाता है।

दिवाचर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पक्षी। बिड़िया। (२) चांडाल।

दिवाटन-संज्ञा पुं० [सं०] काक। कौवा।

दिवातना-संज्ञा पुं० [सं०] दिवा + तन ? एक दिन की मजदूरी। एक दिन की सनसाह।

वि० दिन भर का। रोजाना। प्रति दिन का।

दिवान-संज्ञा पुं० दे० "दीवान"।

दिवाना-संज्ञा पुं० दे० "दीवाना"। उ०—सूरदास प्रभु मिळिके विद्युरे सारै मई दिवानी।—सूर।

* कि० सं० दे० "दिवाना"।

दिवानाथ-संज्ञा पुं० [सं०] दिन के स्वामी, सूर्य।

दिवानी-संज्ञा स्त्री० [दे०] एक प्रकार का पेड़ जो बरमा में अधिकता से होता है। इसकी लकड़ी रूट के रंग की छाब होती है जिस पर भूरी और नारंगी रंग की धारियाँ पड़ी रहती हैं। इसके मेज कुरसी आदि सजावट के सामान बनाए जाते हैं। संज्ञा स्त्री० दे० "दीवानी"।

दिवापुष्ट-संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य।

दियाभिसापिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह भायिका जो दिन के समय धरने प्रेमी से मिलने के लिये, अंगार करके, संकेत स्थान में जाय।

दियामीत-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चोर। लुटार। (२) उरलू।

दियामाणि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सूर्य। (२) अर्क। मदार।

द्विवाच्य—संज्ञा पुं० [सं०] मय्याह । दोपहर ।
 द्विवारा—संज्ञा स्त्री० दे० “द्विवार” ।
 द्विवारिणी—संज्ञा स्त्री० दे० “द्विवारिणी” ।
 दिवाल—वि० [हिं० देना + बाल (प्रत्य०)] देनेवाला । जो देता
 हो । जैसे, यह एक पैसे के दिवाल नहीं है (बाजार) ।
 † संज्ञा स्त्री० दे० “द्विवार” ।

द्विवालया—संज्ञा पुं० दे० “द्विवालया” ।
 दिवाला—संज्ञा पुं० [हिं० दिया + बालना = बजाना] (१) घर भवस्था
 जिसमें मनुष्य के पास अपना ऋण चुकाने के लिये कुछ
 न रह जाय । पूँजी या धन न रह जाने के कारण ऋण
 चुकाने में असमर्थता । कर्ज न चुका सकना । टाट उलटना ।

विशेष—जब किसी मनुष्य को व्यापार आदि में बहुत घाटा खाता
 है अथवा उसका ऋण बहुत बढ़ जाता है और वह उस
 ऋण के चुकाने में अपनी असमर्थता प्रकट करता है तब
 उसका दिवाला होना मान लिया जाता है । इस देश में
 प्राचीन काल में अपनी यह असमर्थता प्रकट करने के लिये
 ऋणी व्यापारी अपनी दुकान का टाट उलट देते थे और
 उस पर एक शीशुला दीया जला देते थे जिससे लोग समझ
 लेते थे कि अब इनके पास कुछ भी धन नहीं बचा और
 इनका दिवाला हो गया । इसी दीया धालने (जलाने) से
 “दिवाला” शब्द बना है । आज कल प्रायः सभी सभ्य देशों
 में दिवाले के संबंध में कुछ कानून बन गए हैं जिनके अनु-
 सार वह मनुष्य जो अपना बड़ा हुआ ऋण चुकाने में असमर्थ
 होता है, किसी निरिधत न्यायालय में आकर अपने दिवाले की
 दरब्यास्त देता है और यह यतना देता है कि मुझे बांशर
 का कितना देना है और इस समय मेरे पास कितना धन
 या संपत्ति है । इस पर न्यायालय की ओर से एक मनुष्य,
 विशेषतः वकील या और कोई कानून जाननेवाला नियुक्त
 कर दिया जाता है जो उसकी बची हुई सारी संपत्ति नीलाम
 करके और उसका सारा लहना वसूल करके हिस्से के मुता-
 बिक उसका सारा कर्ज चुका देता है । ऐसी दशा में मनुष्य
 को अपने ऋण के लिये जेल जाने की आवश्यकता नहीं
 रह जाती ।

मुहा०—दिवाला निकलना = दिवाला होना । दिवाला निकल-
 नाला या मारना = दिवाला बन जाना । ऋण चुकाने में
 असमर्थ हो जाना ।
 (२) किसी पदार्थ का बिलकुल न रह जाना । जैसे, औषधि-
 घाले दिन उनके यहाँ प्रियों का दिवाला हो गया ।

दि० प्र०—निकलना ।—निकलना ।
 दिवालिप्य—वि० [हिं० दिवाला + इत् (प्रत्य०)] जिसने दिवाला
 निकाला हो । जिसके पास ऋण चुकाने के लिये कुछ न
 बच गया हो ।

द्विवाली—संज्ञा स्त्री० दे० “द्विवाली” ।
 संज्ञा स्त्री० [दे०] लारदा या सान में लपेटने का वह तस्मा
 जिससे खींच कर उसे खटाते हैं । द्याली ।

द्विवि—संज्ञा पुं० दे० “द्विवि” ।
 संज्ञा पुं० [सं०] नीलकंठ पक्षी ।
 द्विविता—संज्ञा स्त्री० [सं०] वीसि ।

द्विविद्वि—संज्ञा पुं० [दे०] एक प्रकार का छोटा पेड़ जो दक्षिण
 अमेरिका से भारतवर्ष में आया है । यह प्रायः धावार,
 कनारा, बीजापुर, खानदेश इत्यादि नगरों में अधिकता से
 उत्पन्न होता है । चमड़ा सिक्काने और रंगने के काम में इस
 की पत्तियों आदि का व्यवहार होता है ।

द्विविरथा—संज्ञा पुं० [सं०] (१) महाभारत के अनुसार, पुरुवंशी
 राजा भूमन्धु के पुत्र का नाम । (२) हरिवंश के अनुसार
 अंगदेश के राजा दधिवाहन के पुत्र का नाम ।

द्विविपत्—संज्ञा पुं० [सं०] (१) देव । देवता । (२) स्वर्गात्मा ।
 द्विविष्टि—संज्ञा पुं० [सं०] यज्ञ ।

द्विविष्ट—संज्ञा पुं० [सं०] (१) स्वर्ग में रहनेवाले, देवता । (२)
 ईशान कोश के एक देश का नाम जिसका उल्लेख यजुर्वेद
 संहिता में है ।

द्विवेश—संज्ञा पुं० [सं०] दिग्पाल ।
 द्विवैया—वि० [हिं० देना + वैया (प्रत्य०)] देनेवाला । जो देता हो ।
 द्विवोका—संज्ञा पुं० दे० “द्विवोका” ।

द्विवोदास—संज्ञा पुं० (१) चंद्रवंशी राजा भीमरथ के एक पुत्र
 का नाम जिसका उल्लेख फारसीखंड और महाभारत में है ।
 ये इंद्र के उपासक और कारी के राजा थे और धन्वंतरि के
 अवतार माने जाते हैं । महाभारत में लिखा है कि ये राजा
 सुदेव के पुत्र थे और इंद्र ने शंकर राक्षस की १०० पुत्रियों
 में से २६ पुत्रियाँ नष्ट करके बाकी एक पुत्री इन्हें की थी ।
 इनके पिता के शत्रु वीतहृष्य के पुत्रों ने युद्ध में इन्हें पराजित
 किया था । इस पर ये भारद्वाज मुनि के आश्रम में चले
 गए । वहाँ मुनि ने इनके लिये एक यज्ञ किया जिसके प्रभाव
 से इनके प्रतर्दन नामक एक धीरे पुत्र हुआ जिसने वीतहृष्य
 के पुत्रों को युद्ध में मार डाला । सुदास नामक इनका एक
 पुत्र और था । महादेव ने इन्हेंसे कारी ली थी । कारी-
 खंड के अनुसार पहले इनका नाम रिपुंजय था । इन्होंने
 कारी में बहुत तपस्या की जिससे प्रसन्न होकर ब्रह्मा ने इन्हें
 पृथ्वी पालन करने का घर दिया । नागराज ने अपनी अनेक-
 मोहिनी नाम की कन्या इन्हें दी थी । देवताओं ने इन्हें
 आकाश से उतार और रथ आदि दिए थे, इसीसे इनका नाम
 द्विवोदास हो गया । (२) हरिवंश के अनुसार महाविं इंद्र-
 सेन के वीर और यशस्व के पुत्र का नाम जो मेनका के गर्भ

से शपनीं यद्म "ब्रह्मणा के साथ ही ब्रह्मण हुए थे। इनके पुत्र मित्रेषु भी महर्षिं थे।

दिवोद्भवा-संज्ञा श्री० [सं०] ह्रस्वायची।

दिवोल्का-संज्ञा श्री० [सं०] दिन के समय आकाश से गिरनेवाला चमकीला पिंड या वस्तु।

दिवोका-संज्ञा पुं० [सं० शिवोक्तम्] (१) वह जो स्वर्ग में रहता है। (२) देवता। (३) चातक पक्षी।

दिव्य-वि० [सं०] (१) स्वर्ग से संबंध रखनेवाला। स्वर्गाय।

(२) आकाश से संबंध रखनेवाला। अलौकिक। (३) प्रकाशमान। चमकीला। (४) बहुत यंत्रिया या शब्दा। जो देखने में बहुत ही सुंदर या मज्जा मालूम हो। खूब साफ या सुंदर। जैसे, (क) बहोने एक बहुत दिव्य भवन बनवाया था। (ख) ध्यान हमने बहुत दिव्य भोजन किया है।

संज्ञा पुं० [सं०] (१) बर। जी। (२) गुग्गुलु। (३) आंबला। (४) शतावर। (५) माही। (६) सफेद दूध। (७) दूध। (८) लौंग। (९) सुधर। (१०) तपस्वेता। (११) हरिचंद्रन। (१२) अष्टवर्ग के श्रंतगत महामेदा नाम की श्रेयधि। (१३) कपूरकचरी। (१४) चमेडी। (१५) जीरा। (१६) धूप में बरसते हुए पानी से स्नान। (१७) तीन प्रकार के केतुओं में से एक। वे केतु जिनकी स्थिति भूवायु से ऊपर है। (१८) तांत्रिकों के आचार के तीन भागों में से एक जिससे पंच प्रकार रमयान और चिंता का शाधन विधेय है। (१९) आकार में होनेवाला एक प्रकार का वस्त्र। (२०) तीन प्रकार के नायकों में से एक। यह नायक जो स्वर्गाय या अलौकिक हो। जैसे, इंद्र राम, कृष्ण आदि।

विशेष—साहित्य ग्रंथों में तीन प्रकार के नायक माने गए हैं दिव्य, अदिव्य और दिव्यादिव्य। दिव्य नायक स्वर्गाय या अलौकिक होते हैं जैसे, देवता आदि और अदिव्य नायक सांसारिक या लौकिक, जैसे, मनुष्य। दिव्यादिव्य नायक वे होते हैं जो होते तो मनुष्य हैं पर जिनमें कुछ देवताओं के होते हैं। जैसे, नक्ष, सुहृदा, अर्जुन आदि। इसी प्रकार तीन प्रकार की नायिकाएँ भी होती हैं।

(२१) व्यवहार या न्यायालय में प्राचीन काल की एक प्रकार की परीक्षा जिससे किसी मनुष्य का अपराधी या निरपराध होना सिद्ध होता था।

क्रि० प्र०—देना। उ०—साँप समा सावर खवार भए देउं दिव्य दुसह साँसति कीउे आगे ही या तन की।—तुलसी विशेष—ये परीक्षाएँ नौ प्रकार की हैं—घट, शक्ति, हृदक, विष, कोप, तंडुल, लस मापक, फूल और धर्मज्ञ। इनमें तुला या घट, अग्नि, अन्न, विष और कोप ये पाँच परीक्षाएँ भारी अपराधों के लिये, तंडुल चोरी के लिये, लसमापक बर्फी मारी

चोरी के लिये और फूल तथा धर्मज्ञ साधारण अपराधों के लिये हैं। स्तुतिमें आदि में यह भी लिखा है कि माहायण की तुला से, अत्रिय की धर्मि से, वैश्य की जड़ से और शुद्ध की विष से परीक्षा लेनी चाहिए। शालक, वृद्ध, छी और आतुर की परीक्षा भी घट या तुला विधि से ही होनी चाहिए। क्रियों की विष परीक्षा और शिशिर तथा हेमंत में शोगियों की जड़-परीक्षा, कोटिपुं की अग्नि-परीक्षा और धरा-विधियों, लंपटों, शुभारिधियों, धूर्तों और नास्तिकों की कोप-परीक्षा कदापि न होनी चाहिए। रातकाल में जड़-परीक्षा, मीन्य में अग्नि-परीक्षा, वर्षा में विष-परीक्षा और प्रातःकाल के समय तुला-परीक्षा नहीं होनी चाहिए। धर्मज्ञ और घट परीक्षा सय ऋतुओं में और अग्नि-परीक्षा वर्षा, हेमंत और शिशिर में तथा जड़-परीक्षा मीन्य में होनी चाहिए। अग्नि, घट और कोप-परीक्षा सबरे, लल-परीक्षा दोषहर को और विष-परीक्षा रात को होनी चाहिए। इष्टस्पति जिस समय सिद्धस्थ या मकरस्थ हो अथवा भृगु अस्त हो उस समय कोई दिव्य या परीक्षा न होनी चाहिए। मज्जमास में और अष्टमी तथा चतुर्दशी को भी परीक्षा नहीं होनी चाहिए। परीक्षा के दिन से एक दिन पहले परीक्षा होने और खेतवाले लोगों को उपवास करना चाहिए और कुछ विशिष्ट नियमों के अनुसार राजसभा में सब लोगों के सामने दिव्य या परीक्षा होनी चाहिए। किसी किसी के मत से 'तुलसी' नामक एक और प्रकार का दिव्य भी है; पर इसके विषय में कोई विशेष बात नहीं मिलती।

तुला परीक्षा में शोष्य वा अभियुक्त को बड़े तराजू पर बैठाकर दो पार अद्वज बदल कर तौलते थे, दूसरी पार की तौल में यदि बड़ बढ़ जाता तो शुद्ध और बराबर रहत गया या घट जाता तो दोषी समझा जाता था। अग्नि-परीक्षा में ठणपु हुए लोहे को श्रंखली में ले कर सात संदलों के भीतर धीरे धीरे वज्रना पड़ता था। यदि हाथ न जलता तो अभियुक्त निर्दोष समझा जाता था। जड़परीक्षा में अभियुक्त को जड़ में गोला लगाया पड़ता था। गोला लगाने के समय तीन धाग्य छोड़े आते थे। तिसरा धाग्य ठीक उसी समय छूटता था जय अभियुक्त जल में डूबता था। धाग्य छूटते ही एक आदमी बैंग से उस स्थान पर दौड़ जाता था जहाँ धाग्य गिरता और एक दूसरा आदमी उस धाग्य को खेकर तुरंत उस स्थान पर दौड़ कर आता था जहाँ से धाग्य छूटा था। यदि इसके बहाँ पहुँचने तक अभियुक्त जल ही में रहता तो वह निर्दोष समझा जाता था। विष परीक्षा में विशेष मात्रा में विष पिखाया जाता था। यदि विष पच जाता तो अभियुक्त निर्दोष माना जाता था। कोप-परीक्षा में। किसी देवता के स्नान का तीन श्रंखलि जड़ पिखाया जाता था। यदि १४

दिन के भीतर एक देवता के कोप से अभियुक्त को कोई घोर दुःख न होता तो वह निर्दोष या सच्चा माना जाता था। इसी प्रकार की घोर भी परीक्षाएँ थीं।
(२२) शपथ विशेषतः देवताओं आदि की शपथ। सींगद। कसम।

क्रि० प्र०—देना।

दिव्यक—संज्ञा पु० [सं०] (१) एक प्रकार का साँप। (२) एक प्रकार का जंतु।

दिव्यकट—संज्ञा पु० [सं०] महाभारत के अनुसार प्राचीन काल का एक देश जो पश्चिम दिशा में था।

दिव्यकवच—संज्ञा पु० [सं०] (१) श्लोकिक तनत्राय। देवताओं का दिया हुआ कवच। (२) वह स्तोत्र जिसका पाठ करने से श्रांतता हो। जैसे रामायण, नारायणकवच, देवीकवच।

दिव्यक्रिया—संज्ञा स्त्री० [सं०] दिव्य के द्वारा परीक्षा लेने की क्रिया। विशेष—दे० “दिव्य” (२१)।

दिव्यगंध—संज्ञा पु० [सं०] (१) गौंग। (२) गंधक।

दिव्यगंधा—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) पक्षी इलायची। (२) पक्षी चंच का साम।

दिव्यगायन—संज्ञा पु० [सं०] स्वर्ग में गानेवाले, गंधर्व।

दिव्यचक्षु—संज्ञा पु० [सं०] दिव्यचक्षु (१) ज्ञानचक्षु। (२) श्रवा। यह जिसे कुछ भी दिखाई न दे। (३) चरमा। पेनक। (४) यंत्र। (५) एक प्रकार का गंधद्रव्य।

दिव्यता—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) दिव्य का भाव। (२) देवभाव। (३) सुंदरता। उत्तमता।

दिव्यतेज—संज्ञा स्त्री० [सं०] दिव्यतेज्। माही बूढ़ी।

दिव्यदेवी—संज्ञा स्त्री० [सं०] पुराणानुसार एक देवी का नाम।

दिव्यदोहद—संज्ञा पु० [सं०] यह पदार्थ जो किसी शरीर की सिद्धि के अभिप्राय से किसी देवता को द्रवित किया जाय।

दिव्यदृष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) श्लोकिक दृष्टि जिससे गुप्त, परोक्ष अथवा अतिरिक्त के पदार्थ दिखाई दें। जैसे, आने यहाँ मंडे मंडे दिव्यदृष्टि से देख लिया कि पसत वहाँ पहुँच गई। (व्यंग्य)। (२) ज्ञान-दृष्टि।

दिव्यधर्मो—संज्ञा पु० [सं०] सुखीज। नेक। वह जिसका स्वभाव बहुत अच्छा हो।

दिव्यनगर—संज्ञा पु० [सं०] देवावती नगरी।

दिव्यनदी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) आकाश गंगा। (२) शिवपुराण के अनुसार एक नदी का नाम।

दिव्यनारी—संज्ञा स्त्री० [सं०] अम्बरा।

दिव्यपंचामृत—संज्ञा पु० [सं०] घी, दूध, दही, मक्खन और चीनी इन पाँच चीजों को मिलाकर बनाया हुआ पंचामृत।

दिव्यपुष्प—संज्ञा पु० [सं०] कर्पूर। कनेर।

दिव्यपुष्पा—संज्ञा स्त्री० [सं०] बड़ा गुला जिसका पेड़ मनुष्य के बराबर ऊँचा और फूल ज्ञान होता है। यज्ञो ज्ञेय पुष्पी।

दिव्यपुष्पिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] काल रंग का मदार।

दिव्यमुना—संज्ञा स्त्री० [सं०] कामरूप देश की एक नदी जो बहुत पवित्र मानी जाती है और जिसका माहात्म्य पुराणों में है।

दिव्यरत्न—संज्ञा पु० [सं०] चिंतामणि नामक कल्पित रत्न जिसके विषय में यह प्रसिद्ध है कि वह सत्य कामनाएँ पूरी करता है।

दिव्यरथ—संज्ञा पु० [सं०] देवताओं का विमान।

दिव्यरस—संज्ञा पु० [सं०] पारद। पारा।

दिव्यलता—संज्ञा स्त्री० [सं०] मूर्खलता। मूर्खरी। सुरनेहार।

दिव्ययज्ञ—संज्ञा पु० [सं०] सूर्य का प्रकाश।

दिव्यवाक्य—संज्ञा पु० [सं०] देववाणी। आकाशवाणी।

दिव्यवाह—संज्ञा स्त्री० [सं०] शृपसानु गोर की छ कन्याओं में से एक।

दिव्यधोत्र—संज्ञा पु० [सं०] वह कान जिससे सन कुछ सुना जाय।

दिव्यसरिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] दिव्यसरित्। आकाश-गंगा।

दिव्यसानु—संज्ञा पु० [सं०] एक विश्वदेव।

दिव्यसार—संज्ञा पु० [सं०] साल वृक्ष। साल का पेड़।

दिव्यसूरि—संज्ञा पु० [सं०] रामानुज सेनदास के बारह आचार्य जिनके नाम ये हैं, (१) कासार। (२) सूत। (३) मन्व। (४) मक सार। (५) शदारि। (६) कुलरोर। (७) विष्णुचित्त। (८) भक्तशिरोरु। (९) मुनिवाह। (१०) चतुर्विदि। (११) रामानुज। (१२) गोदा देवा या मधुकरकवि।—रघुनाज।

दिव्यस्त्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] दिव्योत्तमा। अम्बरा।

दिव्योत्तमा—संज्ञा स्त्री० [सं०] देववधू। अम्बरा।

दिव्योन्मु—संज्ञा पु० [सं०] सूर्य।

दिव्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) शक्ति। (२) शक्ति ककोड़ा। (३) महाभेदा। (४) माही नदी। (५) बड़ा जीरा। (६) सफेद दूध। (७) हड़। (८) कपूर कपरी। (९) शानावर। (१०) तीन प्रकार की नायिकाओं में से एक। स्वर्गीय या श्लोकिक नायिका। जैसे, पार्वती, सीता, राधिका आदि। दे० “दिव्य” (नायक)।

दिव्यादिव्य—संज्ञा पु० [सं०] तीन प्रकार के नायकों में से एक। वह मनुष्य या हृदयौकिक नायक जिसमें देवताओं के भी गुण हों। जैसे, नल, सुहस्रबा, अभिमन्यु आदि।

विशेष—दे० “दिव्य” (नायक)।

दिव्यादिव्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] तीन प्रकार की नायिकाओं में से

एक । यह दृष्टौकिक भाविका जिसमें स्वर्गीय जिनके के भी गुण हैं। जैसे, दमयंती, हवारी, उत्तरा आदि ।

दिव्याध्रय-संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत के अनुसार एक प्राचीन पुण्यक्षेत्र जहाँ पूर्व काल में भागवान् विष्णु ने तरस्या की थी । कुहपेत का दर्शन करके यक्षदेवजी यहीं से होते हुए हिमालय गए थे ।

दिव्यासन-संज्ञा पुं० [सं०] संत के अनुसार एक प्रकार का आसन ।
दिव्यास्त्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) देवताओं का दिया हुआ हथियार । (२) मंत्रों द्वारा चलनेवाला हथियार ।

दिव्येलक-संज्ञा पुं० [सं०] सुधुत के अनुसार एक प्रकार का सर्प ।

दिव्योदक-संज्ञा पुं० [सं०] वर्षों का पानी । बरसा हुआ पानी ।

दिव्योपपादक-संज्ञा पुं० [सं०] विना माता-पिता के उत्पन्न देवता ।

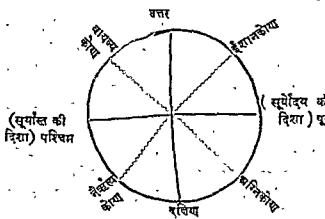
दिव्योपधि-संज्ञा स्त्री० [सं०] मंत्रसिल ।

दिव्य-संज्ञा स्त्री० [सं०] दिशा । दिक् ।

संज्ञा पुं० एक देवता जो कान के अघिछाता देवता माने जाते हैं ।

दिशा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) नियत स्थान के अतिरिक्त शेष विस्तार । शोर । ताक । जैसे, जिस दिशा में घोड़ा भागा था वही दिशा में वह भी चला । (२) भित्ति घुल के किए हुए चार कल्पित विभागों में से किसी एक विभाग की ओर का विस्तार ।

विशेष-दिशा का ठीक ठीक ज्ञान प्राप्त करने के लिये चिह्नित घुल चार भागों में बाँटा गया है, जिसके पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण कहते हैं । प्रत्येक दो दिशायों के बीच में एक कोण भी होता है । पूर्व और दक्षिण के बीच के कोण को अग्रिमकोण, दक्षिण और पश्चिम के बीच के कोण को नैर्ऋत्य, पश्चिम और उत्तर के बीच के कोण को वायव्य कोण और उत्तर तथा पूर्व के बीच के कोण को ईशान कहते हैं । जिस ओर सूर्य उदय होता है उस ओर मुँह करके यदि खड़े हों तो सामने की ओर पूर्व, पीछे पश्चिम, दाहिनी ओर दक्षिण और बाईं ओर उत्तर होता है ।



इसके अतिरिक्त दो दिशाएँ और भी मानी जाती हैं—एक सिर के ठीक ऊपर की ओर, हमारी पैर के नीचे की ओर

जिन्हें क्रमशः ऊर्ध्व और अधः कहते हैं । वैशेषिक का मत है कि वालव में दिया एक ही है, काम चलाने के लिये इसके भेद कर विभू गए हैं । संख्या, परिमाय, पृथक्त्व, संज्ञा और विभाग इसके गुण हैं ।

पर्याय—ककुम्भ । कण्डा । आशा । हरित् । निवेशिनी । गो ।

दिश । दिक् ।
(३) दत्त की संख्या । (४) हनु की एक स्त्री का नाम ।
(५) दे० "दिसा" ।

दिशागज-संज्ञा पुं० [सं०] दिग्गज ।

दिशाचक्षु-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार गरुड़ के एक पुत्र का नाम ।

दिशाजय-संज्ञा पुं० [सं०] दिग्विजय ।

दिशापाल-संज्ञा पुं० [सं०] दिक्पाल ।

दिशाभ्रम-संज्ञा पुं० [सं०] दिशोभ्रं के संघर्ष में भ्रम होना । दिक्भ्रम ।

दिशायकाशक प्रत-संज्ञा पुं० [सं०] जैतियों का एक प्रकार का प्रत जिसमें वे प्रातःकाल यह निरचय कर लेते हैं कि आज हम अमुक दिशा में हानी दूर तक जायेंगे ।

दिशाशूल-संज्ञा पुं० दे० "दिक्शूल" ।

दिशासूल-संज्ञा पुं० दे० "दिक्शूल" ।

दिशि-संज्ञा स्त्री० दे० "दिशा" ।

दिशानियम-संज्ञा पुं० दे० "दिशावकाशक प्रत" ।

दिशोम-संज्ञा पुं० [सं०] दिग् + इम । दिग्गज ।

दिरय-वि० [सं०] दिशा संबंधी ।

दिष्ट-संज्ञा पुं० [सं०] (१) भाग्य । (२) उपदेश । (३) दार-हरिता । दारदलदी । (४) काल । (५) वैवस्वत मनु के एक पुत्र का नाम ।

दिष्टवंचक-संज्ञा पुं० [सं०] दष्टि + वंचक । किसी पदार्थ को बंधक या रद्द कर लेने का एक प्रकार जिसमें रूप्य का केवल सूद दिया जाता है; रद्द कर लेने हुए पदार्थ की श्राप या भोग आदि से रूप्य देनेवाले का कोई संबंध नहीं रहता । वह रद्द कर जिसमें चीज पर रूप्य देनेवाले का कोई कच्चा न हो, उसे सिर्फ सूद मिलता रहे ।

दिष्टांत-संज्ञा पुं० [सं०] मृत्यु । मौत ।

दिष्टि-संज्ञा स्त्री० (१) भाग्य । (२) उपदेश । (३) अस्त्र । (४) प्रसन्नता ।

संज्ञा स्त्री० दे० "दष्टि" ।

दिसंतर-संज्ञा पुं० [सं०] देशांतर । देशांतर । विदेश । परदेश । कि० वि० दिशाओं के अंत तक । बहुत दूर तक ।

दिसंघर-संज्ञा पुं० [सं०] दिसंघर । अंगरेजी साज का चारद्वार या अंतिम महीना जो हकीकत दिनों का होता है ।

दिसंघर-संज्ञा स्त्री० दे० "दिसा" ।

दिसना—क्रि प्र० दे० “विरना” ।
 दिसा—संज्ञा स्त्री० दे० “दिरा” ।
 †संज्ञा स्त्री० [सं० दिषा=घोर] मल त्याग करने की क्रिया ।
 वैशाले जाता । झगड़ा फिरना ।
 क्रि० प्र०—जाना ।—फिरना ।—लगना ।—होना ।
 †—संज्ञा स्त्री० दे० “दरा” ।
 दिसादाह—संज्ञा पुं० दे० “त्रिकदाह” ।
 दिसाबल—संज्ञा पुं० [देय०] धर्मों की एक शक्ति ।
 दिसाघर—संज्ञा पुं० [सं० देगंघर] दूसरा देस । देगांतर । पर-
 देस । विदेश ।
 मुहा०—दिसाघर उतरना = जिस स्थान से माल आता हो अथवा
 जहाँ जाता हो वहाँ का भाव गिरना । विदेश में भाव गिरना ।
 दिसाघर चढ़ना = विदेश में बाजार का भाव चढ़ जाना । पर-
 देस में दाम बढ़ जाना ।
 दिसाघरी—वि० [हिं० दिसनगर + ई (प्रत्य०)] विदेश से आया
 हुआ । बाहर का । बाहरी (माल आदि) ।
 दिसासूल—संज्ञा पुं० दे० “दिकसूल” ।
 दिसासूल—संज्ञा पुं० दे० “दिकसूल” ।
 दिसि—संज्ञा स्त्री० दे० “दिरा” ।
 दिसिदि—दे० “दधि” ।
 दिसिदुरद—संज्ञा पुं० [सं० दिशिदुरद] दिग्गम ।
 दिसिनायक—संज्ञा पुं० दे० “दिक्पाल” ।
 दिसिप—संज्ञा पुं० दे० “दिग्पाल” ।
 दिसिराज—संज्ञा पुं० दे० “दिक्पाल” ।
 दिसिपा—वि० [हिं० दिसना = दिसना + देया (प्रत्य०)] (१)
 देखनेवाला । (२) दिखानेवाला ।
 दिस्ता—संज्ञा पुं० दे० “दस्ता” ।
 दिस्ता—संज्ञा स्त्री० [सं० दिषा] झोर । तरफ । (छरा०)
 दिहंदा—वि० [फा०] दाता । देनेवाला ।
 दिशोप—हस्तका प्रयोग प्रायः वैज्ञानिक शब्दों के अंत में होता
 है । जैसे, रापदिहिंदा ।
 दिहरा—संज्ञा पुं० [सं० देव + हिं० घर = देवघर] देवालय । देव
 मंदिर ।
 दिहली—संज्ञा स्त्री० दे० “बहलीम” ।
 दिहाडा—संज्ञा पुं० [हिं० दिन + दा (प्रत्य०)] (१) हुंघत । घुरी
 हाकत । (२) दिन ।
 दिहाडी—संज्ञा स्त्री० [हिं० दिहाडा + ई (प्रत्य०)] (१) दिन । (२)
 दिन भर की मजदूरी ।
 दिहात—संज्ञा स्त्री० दे० “देहात” ।
 दिहाती—वि० दे० “देहाती” ।
 दिहातीपन—संज्ञा पुं० दे० “देहातीपन” ।
 दिहदी—संज्ञा स्त्री० दे० “दोहदी” ।

दिहुला—संज्ञा पुं० [देय०] एक प्रकार का धान जो—पूरय के
 तिले में बोया जाता है ।

दिहेज—संज्ञा पुं० दे० “दुहेज” ।

दी—संज्ञा स्त्री० दे० “दीमक” ।

दीघट—संज्ञा स्त्री० दे० “दीघट” ।

दीघा—संज्ञा पुं० दे० “दीघा” ।

दीक—संज्ञा पुं० [देय०] एक प्रकार का तेल जो काढ़ या दिजरी
 के वेद की छाल से निकलता है और जब में माँसा देने
 के काम में आता है । काढ़ के वेद दक्षिण में समुद्र के
 किनारे मिलते हैं ।

दीक्षक—संज्ञा पुं० [सं०] दीक्षा देनेवाला । मंत्र का उपदेश करने-
 वाला । शिक्षक । गुरु ।

दीक्ष्य—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० दीक्षित] दीक्षा देने की क्रिया ।

दीक्षांत—संज्ञा पुं० [सं०] वह अव्युत्पन्न जो किसी यज्ञ के
 समाप्तता में वसती यज्ञ आदि के देय की शक्ति के लिये
 किया जाता है ।

दीक्षा—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) यज्ञ । यज्ञकर्म । सोमयगादि
 का संकल्पपूर्वक अनुष्ठान । (२) गुरु या आचार्य का
 नियमपूर्वक मंत्रोपदेश । मंत्र की शिष्या जिसे गुरु दे और
 शिष्य ग्रहण करे ।

क्रि० प्र०—देना ।—लेना ।

विशेष—वैदिक गायत्री मंत्र के अतिरिक्त आज कल भिन्न भिन्न
 देवताओं के बहुत से सामंदायिक इष्ट मंत्र तंत्रोक्त रीति के
 अनुसार प्रचलित हैं । गौतमीय तंत्र, योगिनी तंत्र, रुद्रया-
 मल इत्यादि तंत्रों में दीक्षाग्रहण का माहात्म्य तथा उसके
 अनेक प्रकार के नियम विदूष्य हैं । विष्णु, शिव, शक्ति,
 गणेश, सूर्य इत्यादि की उपासना के भेद से वैष्णव, राम-
 तारक, शैव, शक्ति इत्यादि मंत्र प्रचलित हैं जो शिष्य के
 कान में कहे जाते हैं । लोगों का साधारण विश्वास है कि
 विना गुरुमंत्र लिप्य गति नहीं होती । तंत्रों का साधारण
 जिन मंत्रों के अंत में ‘हुं फट’ हों वे पुं० मंत्र, जिनके अंत में
 “स्वाहा” हो वे स्त्री० मंत्र और जिनके अंत में नमः हो वे
 नर्तक मंत्र कहलाते हैं । योगिनी तंत्र में लिखा है कि
 पिता, मामा, छोटे भाई और शत्रुपक्षाले से मंत्र न लेना
 चाहिए । रुद्रयामल तंत्र प्रति से मंत्र लेने का भी निषेध
 करता है, पर वससे सिद्ध मंत्र लेने की आज्ञा देता है ।
 यज्ञ के प्रायश या प्रायश्चित्त मंत्र देने का निषेध है । यज्ञ
 की गोप्यता, महेश्वर, हुंघा, सूर्य और गणेश का मंत्र देना
 चाहिए ।

(१) उपनयन-संस्कार जिसमें आचार्य गायत्री मंत्र का
 उपदेश देता है । (२) वह मंत्र जिसका उपदेश गुरु करे ।
 गुरुमंत्र । (३) पूजन ।

दीक्षागुरु-संज्ञा पुं० [सं०] संतोषदेष्टा गुरु ।

दीक्षापति-संज्ञा पुं० [सं०] दीक्षा या यज्ञ का रक्षक, सोम ।

दीक्षित-वि० [सं०] (१) जिसने सोम पागादि का संकल्पपूर्वक अमुद्योग किया हो। जो किसी यज्ञ में प्रवृत्त हो। (२) जिसने आचार्य से दीक्षा ली हो। जिसने गुरु से मंत्र लिया हो। जिसने शिक्षा ग्रहण की हो।

संज्ञा पुं० ब्राह्मणों का एक भेद ।

दीक्षना-वि० अ० [हिं० देखना] दिखाई देना। देखने में आना। दृष्टिगोचर होना। जैसे, उसे दूर की चीज नहीं दीक्षती ।

संयो० क्रि०-पढ़ना ।

दीधी-संज्ञा स्त्री० [सं० दीधि] यावली। पोखरा। तालाब। जैसे, जालदीधी ।

दीक्षणा-संज्ञा स्त्री० दे० "दीक्षा" ।

दीठ-संज्ञा स्त्री० [सं० दृष्टि, प्रा० दृष्टि] (१) देखने की शक्ति या शक्ति। आँख की उपाधि। दृष्टि ।

मुद्गा-दीठ मारी जाना = देखने की शक्ति न रह जाना ।

(२) देखने के लिये नेत्रों की मृत्ति। आँख की पुतली की किसी वस्तु की सीप में होने की स्थिति। टक। रूपात। अय-लोकन। चितवन। नजर। निगाह ।

क्रि० प्र०-पढ़ना।-हालना ।

धा०-दीठयं०। दीठयं० ।

मुद्गा-दीठ करना = दृष्टि डालना। ताकना। दीठें चुकना = नजर न पड़ना। दृष्टि का इधर उधर हो जाना। दीठ फिरना = (१) नेत्रों का दूखी और प्रवृत्त होना। (२) कृपादृष्टि न रहना। हिन का ध्यान या प्रीति न रहना। चित्त अग्रवश या स्थिर होना। दीठ केंकना = नजर बाधना। ताकना। दीठ फेरना = (१) नजर हटा लेना। दूखी और ताकना। (२) कृपादृष्टि न रखना। अग्रवश या स्थिर होना। किसी की दीठ बचाना। = (१) (किसी के) सामने होने से बचना। आँख के सामने न आना। जान बूझ कर न दिखाई पड़ना (भय, लज्जा आदि के कारण)। (२) (किसी से) छिपाना। न दिखाना। उ०-मोहन आग्नेय राधिका को विपरित को छिप विचित्र बनाय कै। दीठि बघाय सखोनी की धारसी में चिरकाइ गयो यहराइ कै।-रसकुसुमाकर। दीठ बाँधना = दृष्ट प्रसार जानू करना कि आँखों को और का और दिखाई दे। ईदजाल फैलाना। दीठ लगाना = ताकना। दृष्टि करना। उ०-नहिं जावहिं पर तिष मन दीठी।-तुलसी ।

(१) आँख की अ्योनि का प्रसार जिससे वस्तुओं के रूप रंग का बोध होता है। रूपाय ।

मुद्गा-दीठ पर चढ़ना = (१) देखने में अंध या उत्पन्न जान पड़ना। निगाह में जैचना। अन्धता लगने के कारण ध्यान में

कना। किसी वस्तु का इतना घुसा लगना कि उसका ध्यान सदा बना रहे। दीठ चिड़ाना = (१) प्रेम या अस्वभाव किसी के आखरे में लगातार ताकते रहना। उत्कंठापूर्वक किसी के आगमन की प्रतीक्षा करना। (२) किसी के ध्यान पर अत्यंत भ्रद्धा या प्रेम से स्वागत करना। दीठ में आना = दिखाई पड़ना। दीठ में पड़ना = दिखाई पड़ना। दीठ में समाना = अन्धता या म्रिय लगने के कारण ध्यान में सदा बना रहना। दीठ से बतरना या गिरना = भ्रद्धा, विरहाद्य या प्रेम का पाल न रहना। (किसी के) विचार में अन्धता न रह जाना ।

(४) अन्धों वस्तु पर ऐसी दृष्टि जिसका प्रभाव घुसा पड़े। नजर। उ०-रूनी है लागी लगन दिपु दिठैना दीठ।-विहारी ।

क्रि० प्र०-लगना।-लगाना ।

मुद्गा-दीठ उतारना या झाड़ना = मंत्र के द्वारा घुरी दृष्टि का प्रभाव दूर करना। दीठ खा जाना = किसी की घुरी दृष्टि के सामने पड़ जाना। टोक में आना। दृष्ट में आना। (बच्चों के संबंध में अधिक बोलते हैं)। दीठ जबाना = नजर उतारने के लिये राई लेना या फण्डा जलाना। (जब बच्चों को नजर लगने का संदेह छिमें को होता है तब वे टोटेके के लिये उसके ऊपर से राई लेना घुमा कर भाग में डालती हैं, अथवा जिस किसी को वे नजर लगानेवाचा समझती हैं उसकी आँख की बानी किसी युक्ति से प्राप्त करके भाग में जलाती हैं) (किसी की) दीठ पर चढ़ना, दीठ चढ़ना = दे० "दीठ खा जाना" ।

(२) देखने में प्रवृत्त नेत्र। देखने के लिये खुली हुई आँख ।

मुद्गा-दीठ बढाना = ताकने के लिये आँख ऊपर करना। दीठ गड़ना, जमाना = दृष्टि स्थिर करना। एकटक ताकना। दीठ घुराना = (लज्जा या भय से) धामने न आना। जान बूझ कर दिखाई न पड़ना। दीठ जुड़ना = आँख मिजना। वाष्पात्कार होना। देखा देली होना। दीठ जोड़ना = आँख मिजना। वाष्पात्कार करना। देखा देली करना। दीठ किसलना = चमक दमक के कारण नजर न ठहलना। आँख में चमकौष होना। दीठ भर देखना = जितनी देर तक इच्छा हो उतनी देर तक देखना। जो भर कर ताकना। दीठ मारना = (१) आँख से इशारा करना। फनक गिरा कर संकेत करना। (२) आँख को इशारे से रोकना। दीठ मिलना = दे० "दीठ जुड़ना"। दीठ मिजाना = दे० "दीठ जोड़ना"। दीठ लगना = देखा देली होने से प्रेम होना। प्रीति होना। दीठ खड़ना = आँख के सामने आँख होना। घुराघुरी होना। दीठ खड़ना = आँख के सामने

(६) देव भाव । देव रेल । निगदानी ।

क्रि० प्र०—रत्न ।

(७) परल । पहचान । समीप । अटकल । अंशान ।

क्रि० प्र०—रत्न ।

(८) कृपादि । हित का ध्यान । मिह्रपानी की नगर ।

३०—विषया काह न सूच्यै दीने । पार्थ पानि वृद्धि सो कीने ।—जापली । (६) आशा की दृष्टि । आनरे में खरी हुई टकटकी । भास । इमदी ।

क्रि० प्र०—लगना ।—खगला ।

(१०) ध्यान । विचार । संकल्प । बहरेप ।

क्रि० प्र०—रत्न ।

दीर्घ्यंद—संज्ञा पुं० [दि० दीर्घ + सं० षथ] इंद्रजात्र की ऐसी भाषा जिसमें खोती को भीर का भीर दिखाई दे । नज्जर्बंद । गादू ।

दीर्घ्यंदी—संज्ञा स्त्री० [दि० दीर्घ + स्त्री०] इंद्रजात्र की ऐसी भाषा जिससे खोती को भीर का भीर दिखाई दे । नज्जर्बंदी । गादू ।

दीर्घ्यं—संज्ञा पुं० [सं० आदित्य] सूर्य । (दि०)

दीर्घ्यं—संज्ञा स्त्री० [फा०] (१) दृष्टि । नजर । (२) दर्शन । देखा देखी ।

संज्ञा पुं० [फा० दीर्घ] (१) चाँस । नेत्र ।

मुद्गा—दीर्घ खगना = जा लगना । ध्यान जगना । धिय रगना । जैसे, (क) यहाँ इयका दीर्घा क्यों खगता ? (ख) काम में बसका दीर्घा नहीं खगता । दीर्घे का पानी बस जाना = धुरे काम के करने में लगना न रह जाना । निर्रज हो जाना । दीर्घे निकालना = शोध की दृष्टि से देखना । आँसों नोली पीनी करना । दीर्घापोई = धी जियरी आँसों में शर्म न हो । बेचर्म । निर्रज । (दि०) । दीर्घे परम होना = आँसों का फूट जाना । (फि०) । दीर्घाकटी = धी जियरी आँसों में शर्म न हो । निर्रज । (दि०) । दीर्घा फूटना = आँसों फूटना । आँसों फूपी होना । दीर्घे फाड़कर देखना = अच्छी तरह आँसु खोकर देखना । ध्यानपूर्वक देखना । टकटकी बाँधकर देखना । दीर्घे मटकाना = हृष भाव सहित आँसों की पुजारी समझना । आँसों समझना ।

(२) दिखाई । संकोच का अभाव । अनुचित साहस । जैसे, बसका हतना यद्दी दीर्घा कि यह नहीं के सामने बात करे । (जि०)

दीर्घ्यंद—संज्ञा पुं० [फा०] दर्शन । देखा देखी । साधारण ।

दीर्घ्यंदी—वि० [फा० दीर्घ] दर्शनीय । देखने योग्य ।

दीर्घ्यं—संज्ञा स्त्री० [दि० दीर्घ + स्त्री०] यद्दी यद्दिन को पुकारने का शब्द । अथे भगिनी को खिये संवोधन शब्द ।

दीर्घ्यित—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सूर्य चंद्रमा आदि की दिन । (२) उँगली ।

दीर्घ्यं—वि० [सं०] (१) दरिद्र । गरीब । जिसकी दशा हीन हो । ३०—दानी दी गय जगत के तुम एक मंदार । दारन दुप बुझियान के अमिमत फल दातार । अमिमत फल दातार देखन संयं हित सो । सकल संपदा सोह सोह दिन राखन पित सो । पारने दीनदयाल छुई तब मुलद यक्षानी । तोदि सोह सो दीन रई सो एकत दानी ॥—दीनदयाल ।

(२) दुर्मित । संतत । कातर । ३०—आधम देखि जानकी हीन । अय धिन्न जल प्राकृत दीना ।—गुजरी ।

दीर्घ्यं—दीनदयाल । दीनचंद्र । दीनानाथ ।

(१) बड़ास । रिप । जिसमें किसी प्रकार का असाह या प्रयत्नता न हो । मितका मन माा हुआ हो । ३०—(६) मयम सरल सय सन पुत्र हीन । मम भरोस दिव इरप न दीना ।—गुजरी । (७) ऐनेई दीन मजनी दुती मन मोह भयो मय तो भति आरस ।—रसुमुमाकर । (४) दुःख या मय से अपीनता प्रकट करनेवाला । नजर । विनीत । ३०—दीन यथन मुनि प्रभु मय भावा । मुन विसात्र गदि हृदय छाया ।—गुजरी ।

संज्ञा पुं० [सं०] लगर का कूब ।

संज्ञा पुं० [सं०] मत । मनुष्य । धर्मविराजत ।

दीर्घ्यं—दीन मुनिवा = लोक परलोक ।

दीनता—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) दरिद्रता । गरीबी । (२) कातरता । आसंभाव । (३) बड़ासी । गिहता । (४) दुःख से दृश्य अपीनता का भाव । नजरता । विनीत भाव ।

विदीय—काव्य या रस निरदय में दीनता एक संधारी भाव है ।

दीनताई—संज्ञा स्त्री० दे० “दीनता” ।

दीनदय—संज्ञा पुं० [सं०] दीनता ।

दीनदयाल—वि० दे० “दीनदयालु” । ३०—फोमत्र पित भवि दीनदयाला ।—गुजरी ।

दीनदयालु—वि० [सं०] दीनों पर दया करनेवाला ।

संज्ञा पुं० ईश्वर का एक नाम ।

दीनदार—वि० [सं० दीन + फा० दार] अपने धर्म पर विश्वास रखनेवाला । धार्मिक । जैसे, दीनदार मुसलमान ।

दीनदारी—संज्ञा स्त्री० [फा०] धर्मोपाय ।

दीनदुनी—संज्ञा स्त्री० [सं० दीन + दुनिया] लोक परलोक

दीनधनु—संज्ञा पुं० [सं०] (१) दुर्घियों का सहायक । (२) ईश्वर का एक नाम ।

दीना—संज्ञा स्त्री० [सं०] मूर्खता । लुधिया ।

दीनानाथ—संज्ञा पुं० [सं० दीन + नाथ] (१) दीनों का स्वामी या १७७ । दुर्घियों का पातक भीर सहायक । (२) ईश्वर का एक नाम ।

दीनार—उंठा पुं० [सं०] (१) स्वयं भूषण। सोने का गहना।

(२) निष्क की तौल। (३) स्वयंपुत्रा। मोहर।

विशेष—दीनार नामक सिक्के का प्रचार किसी समय पुरिया और यूप के बहुत से भागों में था। यह कहीं सोने का और कहीं चांदी का होता था। देशभेद से इसके मूल्य में भी भेद था।

मुसलमानों के धाने के बहुत पहले से भारतवर्ष में दीनार चलता था। हरिवंश और महावीरचरित में दीनार का स्पष्ट उल्लेख है। सांची में बौद्ध स्तूप का जो पड़ा खंडहर है उसके पूर्वद्वार पर सम्राट चंद्रगुप्त का एक लेख है। उस लेख में 'दीनार' शब्द आया है। अमरकोश में भी दीनार शब्द मौजूद है और निष्क के बाबर अर्थात् दो तौले का माना गया है। शुनंदन के मत से दीनार ३२ रत्नी सोने का होता था। अकबर के समय में जो दीनार नाम का सोने का सिक्का जारी था उसका मान एक मिसकाल अथवा चारों तौले के बराबर था।

हिंदुकान की तरह अरब और फारस में भी प्राचीन काल में दीनार नाम का सिक्का प्रचलित था। अरबी फारसी के कोशकारों ने दीनार शब्द को अरबी लिखा है पर फारस में दीनार का प्रचार बहुत प्राचीन काल में था। इसके इतिहास रोमन (रोमक) लोगों में भी यह सिक्का दिनारियस के नाम से प्रचलित था। चावर्ष पर ध्यान देने से भी दीनार शब्द आर्यमंत्र या ही का प्रतीक होता है। अथ प्रजन शब्द होता है कि यह सिक्का भारत से फारस धरम होते हुए रोम में गया अथवा रोम से इधर आया। यदि हरिवंश आदि संस्कृत ग्रंथों की अधिक प्राचीनता रक्षिकार की जाय तो दीनार को इसी देश का मानना पड़ेगा।

दीनारी—उंठा पुं० [सं० दीनार] कोहलारों का उल्पा।

दीपकर—उंठा पुं० [सं०] बुद्ध के श्रवणारों में से एक।

दीप—उंठा पुं० [सं०] (१) दीया। चिराम। जलती हुई बत्ती।

धौ—दीपकलिका। दीपकटिका। दीपकरी। दीपदान। दीपपत्र। दीपपुत्र। दीपमात्र। दीपवृक्ष। दीपविला।

विशेष—किसी बुद्ध या समुदाय का दीप कहने से उस बुद्ध या समुदाय में श्रेष्ठ का अर्थ सूचित होता है, जैसे, निरखि भवन कदि भूप रजाई। रघुञ्जलीपि चक्षेव जियाई।— तुलसी।

(२) इस मायाओं का एक वृद्ध जिसके श्रंत में तीन कुम्भ फिर एक गुद और फिर एक कण होता है। उ०—जम सपति जगपद, मुनि मन कुमुद चंद्र। शैलोभय धननीप। इणराय कुञ्जदीप॥

उंठा पुं० दे० "दीप"।

दीपक—उंठा पुं० [सं०] (१) दीया। चिराम।

धौ—कुञ्जदीपक—वंश का उज्जाका करनेवाला पुत्र।

(२) एक अर्थात्कार जिसमें प्रस्तुत (जो अर्थन का विषय हो) और अस्तुत (जो अर्थन का उपस्थित विषय न हो और उपमान आदि हो) का एक ही धर्म कहा जाता है अथवा बहुत सी क्रियाओं का एक ही कारक होता है। जैसे, (क) सोहल भूपति दान तो फल फूलन चाराम। इस उदाहरण में प्रस्तुत 'भूपति' और अस्तुत 'चाराम' दोनों का एक धर्म 'सोहावन' कहा गया है। (ख) आर्षिंह देखि हार्ये हियो राम देखि कुम्हिलाय। धनुष देखि हार्ये महा चिंता चित्त जुलाय। इस उदाहरण में 'हार्ये' 'कुम्हिलाय' 'हार्ये' आदि क्रियाओं का एक ही कर्ता 'हियो' कहा गया है।

विशेष—दीपक चार आदि और प्रधान अलंकारों में से है। मुख्य योगिता में भी एक धर्म का कथन होता है पर उदा या सेा कई प्रस्तुतों या कई अस्तुतों का होता है। दीपक में प्रस्तुत और अस्तुत के एक धर्म का कथन होता है। दीपक चार प्रकार का होता है—आवृत्ति दीपक, कारक दीपक, मात्रा दीपक और देहली दीपक। (१) आवृत्ति दीपक में या तो एक ही क्रियापद मित मित अर्थों में बार बार आता है अथवा एक ही अर्थ के मित मित पद आते हैं। जैसे, (क) यई रहिपर सरिता, अई किरवाँन कड़ि कोस। धीरन वरहि बरंगमान, वरहि सुसरत रन गोस॥ (ख) दीपहिं संगर मत गज धावहिं हय समुदाय। (२) कारक दीपक। उ०—ऊपर देखिय। (३) मात्रा दीपक जिसमें एकवली और दीपक का मेल होता है। जैसे, जग की रवि मजवासर, मज की रवि मजचंद हरि। हरि रवि यंसी 'दास' यंसी रवि मन योंपियो। (४) देहली दीपक में एक ही पद दो और लगता है, जैसे, द्वे नरसिंह महा मनुजाद हयो प्रह्लाद को संकट भारी। इस उदाहरण में 'हयो' शब्द दो और आता है—'मनुजाद हयो' और 'भारी संकट भारी'। (५) संगीत में छः रागों में से एक।

विशेष—हनुमान के मत से यह छः रागों में दूसरा राग है। यह संपूर्ण भाति का राग है और पञ्च स्वर से आरंभ होता है। इसके गाने का समय प्रीत्य अथवा मध्यरात्र है। इसका सरगम यह है—स रे ग म प घ नि स।

इसकी पांच रागिनिर्वा मानी जाती हैं—देशी कामोदी, गारिका, केदारी और काण्डका। पुत्र छाट हैं—कुंज, कसल, कलिंग, चंपक, कुमुद, राम, लखि और दिवाज। भरत के मत से दीपक की पत्तियाँ हैं केदारा, गौरी, गौड़ी, गुर्जरी, रत्नायी; और पुत्र हैं कुमुद, टंक, तदनाशायक, विहागरा, किरोद्वर इससमगला, संगराष्टक और बजाना।

(६) एक ताज का नाम जिसमें प्लुत, कण और प्लुत

(६) देख भाङ्ग । देख रेल । गिरानी ।
क्रि० प्र०—रखना ।

(७) परर । पहचान । समीज । भटकल । संहाज ।
क्रि० प्र०—रखना ।

(८) कृपारि । हित का ध्यान । मिहरवानी की बगर ।
ब०—बिबाबा जाह म सूबाई दीजे । पाये पानि शीठि से
कीजे ।—जायली । (९) धारा की दृष्टि । धारने में खगी
हुई टकटकी । भास । इम्मीद ।

क्रि० प्र०—खगना ।—खगाना ।

(१०) ध्यान । विचार । संकल्प । बहेरय ।
क्रि० प्र०—रखना ।

दोठवंद—संज्ञा पुं० [दि० दोठ + सं० वं] इन्द्रजात्र की ऐसी भाषा
जिसमें खोनों के भीर का भीर दिखाई दे । नगरवंद । जादू ।
दोठवंदी—संज्ञा स्त्री० [दि० दोठ + वं] इन्द्रजात्र की ऐसी भाषा
जिससे खोनों के भीर का भीर दिखाई दे । नगरवंदी ।
जादू ।

दीत*—संज्ञा पुं० [सं० धादित्य] सूर्य । (दि०)

दीदा—संज्ञा स्त्री० [फा०] (१) दृष्टि । नजर । (२) दर्शन ।
देखा देखी ।

संज्ञा पुं० [फा० दीः] (१) आँसू । नेत्र ।

मुहा०—दीदा खगना = जो लगना । ध्यान लगना । चित्त रखना ।
जैसे, (क) वहाँ इसका दीदा क्यों खगना ? (ख)
काम में इसका दीदा नहीं खगता । दीदे का पानी छल
जाना = छुरे काम के करने में लगना न रह जाना । निरंतर
हो जाना । दीदे निखाखना = तोप की दृष्टि से देखना । आँखें
नोनी पीनी करना । दीदापोई = धी निगरी आँखों में शर्म
न हो । वैशर्म । निरंतर । (जि०) । दीदे परत होना =
आँखों का फूट जाना । (जि०) । दीदाफरी = धी निगरी
आँखों में शर्म न हो । निरंतर । (जि०) । दीदा फूटना =
आँखें फूटना । आँखें कपी होना । दीदे काइकर देखना =
अच्छी तरह आँसू खोलाकर देखना । ध्यानपूर्वक देखना । टक-
टकी बांधकर देखना । दीदे मतकाना = हाथ साथ सहित
आँखों की पुकरी चमकाना । आँखें चमकाना ।

(२) दिखाई । संकेप का अभाव । अनुचित साहस । जैसे,
बसका हाना बड़ा दीदा कि यह मर्दों के सामने पात
करे । (जि०)

दीदार—संज्ञा पुं० [फा०] दर्शन । देखा । देखी । साधारणकार ।

दीदारकी—वि० [फा० दीदार] दर्शनीय । देखने योग्य ।

दीदी—संज्ञा स्त्री० [दि० दादा = बड़ा मर्द] बड़ी यष्टि को पुकारने
का शब्द । अथवा भगिनी को खिये संशोधन शब्द ।

दीधिति—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सूर्य चंद्रमा आदि की
किरण । (२) वैजली ।

दीन—वि० [सं०] (१) दरिद्र । गरीब । जिसकी दशा हीन
हो । ब०—दानी ही सब जात के तुम एकें मंदार । दाम
दुप दुलियाय के अनिमित फल दातार ॥ अनिमित फल
दातार देवगन संघें दित से । सफल संपदा सोह फोह किन
शखन चित से । परने दीनदयाब छाँह तब मुखद बखानी ।
तोहि सोई जो दीन रई तो मुकस दानी ॥—दीनदयाल ।
(२) दुःखित । संतप्त । कातर । ब०—आश्रम देगिर जानकी
हीना । मय विरल जस प्राकृत दीना ।—तुबली ।

धी०—दीनदयाल । दीनबंधु । दीनापाय ।

(३) उदास । विरत । जिसमें किसी प्रकार का अपनाह या
प्रसन्नता न हो । जिसका मन भा दूषा हो । ब०—(क)
नवन सरल तप सन पुल दीना । मम भरोस दिय हारव न
होना ।—तुबली । (ख) ऐसेई दीन मज्जीन हुती मन
भरो भरो घब तो अति धारत ।—रसकुमुनाकर । (ग)
दुनिया या मय से अचीनता प्रकट करनेवाला । नगर ।
विनीत । ब०—दीन वधन सुनि प्रभु मन भाषा । मुज
विसाख गदि हृदय खगया ।—तुबली ।

संज्ञा पुं० [सं०] लगर का फूक ।

संज्ञा पुं० [फा०] मत । मनुइव । धर्मविरथात ।

धी०—दीन मुनिया = लोक परलोक ।

दीनता—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) दरिद्रता । गरीबी । (२)
कातरता । आसंभाव । (३) उदासी । विरता । (४) दुःख
से बन्धक अचीनता का भाव । नगरता । विनीत भाव ।

विशेष—कल्प या रस निरपव में दीनता एक संधारी भाव है ।

दीनतारी*—संज्ञा स्त्री० दे० "दीनता" ।

दीनतव*—संज्ञा पुं० [सं०] दीनता ।

दीनदयाल—वि० दे० "दीनदयालु" । ब०—कोमल चित्त अति
दीनदयाला ।—तुबली ।

दीनदयालु—वि० [सं०] दीनों पर दया करनेवाला ।

संज्ञा पुं० ईश्वर का एक नाम ।

दीनदार—वि० [फा० दीन + फा० दार] अपने धर्म पर विरवात
रखनेवाला । धार्मिक । जैसे, दीनदार मुसलमान ।

दीनदारी—संज्ञा स्त्री० [फा०] धर्मोपास्य ।

दीनदुनी—संज्ञा स्त्री० [फा० दीन + दुनिया] लोक परलोक

दीनबंधु—संज्ञा पुं० [सं०] (१) दुखियों का सहायक । (२)
ईश्वर का एक नाम ।

दीना—संज्ञा स्त्री० [उ०] मृषिका । चुड़िया ।

दीनानाथ—संज्ञा पुं० [सं० दीन + नाथ] (१) दीनों का स्वामी या
रक्षक । दुखियों का पात्रक और सहायक । (२) ईश्वर का
एक नाम ।

दीनार-संज्ञा पुं० [सं०] (१) स्वर्ण। मूषय। सोने का गहना।

(२) निष्क की तांब। (३) स्वर्णमुद्रा। मोहर।

विशेष—दीनार नामक सिक्के का प्रचार किसी समय एशिया और यूरप के बहुत से भागों में था। यह कहीं सोने का और कहीं चांदी का होता था। देशभेद से इसके मूल्य में भी भेद था।

मुसलमानों के आने के बहुत पहले से भारतवर्ष में दीनार चलता था। हरिवंश और महावीरचरित में दीनार का स्पष्ट उल्लेख है। सन्धि में भीद रूप का जो यद्वा खंडहर है उसके पूर्वद्वार पर सम्राट चंद्रगुप्त का एक कोष है। उस लेख में 'दीनार' शब्द आया है। अमरकोश में भी दीनार शब्द मौजूद है और निष्क के बराबर 'यार्वा' दो तोले का माना गया है। इबुनन्दन के मत से दीनार ३२ रती सोने का होता था। अक्षर के समय में जो दीनार नाम का सोने का सिक्का जारी था उसका मान एक सिसकाब अथवा आधे तोले के बराबर था।

हिंदुस्थान की तरह अरब और फारस में भी प्राचीन काल में दीनार नाम का सिक्का प्रचलित था। अरबी फारसी के कोशकारों ने दीनार शब्द को अरबी लिखा है पर फारस में दीनार का प्रचार बहुत प्राचीन काल में था। इसके इतिहास रोमन (रोमक) लोगों में भी यह सिक्का दिनारियस के नाम से प्रचलित था। धातुवर्ष पर ध्यान देने से भी दीनार शब्द आर्यभट्ट या ही का प्रतीत होता है। अथ प्रशन यह होता है कि यह सिक्का भारत से फारस अरब होते हुए रोम में गया अथवा रोम से अरब आया। यदि हरिवंश आदि संस्कृत ग्रंथों की अधिक प्राचीनता स्वीकार की जाय तो दीनार को इसी देश का मानना पड़ेगा।

दीनार-संज्ञा पुं० [सं० दीनार] लोहारों का टप्पा।

दीपक-संज्ञा पुं० [सं०] कुछ के अकृतारों में से एक।

दीप-संज्ञा पुं० [सं०] (१) दीया। चिराम। जलती हुई वृत्ती।

धौ०—दीपकलिका। दीपकित्त। दीपवृषी। दीपदान। दीपध्वज। दीपपुत्र। दीपमाळा। दीपवृक्ष। दीपशिला।

विशेष—किसी कुछ या समुदाय का दीप कहने से सब कुछ या समुदाय में श्रेष्ठ का अर्थ सूचित होता है, जैसे, निरालि पदन कवि। रूप रमाई। रघुकुलदीपिं चलेव जिवाई।— तुलसी।

(१) दस साक्षात्तों का एक छंद जिसके अंत में तीन, ऋगु किर एक गुह और फिर एक अणु होता है। २०—जय सयति जगबंध, मुनि मन कुमुद बंद। शैलोक्य अन्ननीप। दशरथ कुलदीप।

संज्ञा पुं० वे० 'दीप'।

दीपक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) दीया। चिराम।

धौ०—कुलदीपक—वंश का उजासा करनेवाला पुत्र।

(२) एक अर्थात्कार, निम्न में प्रस्तुत (जो वर्णन का विषय हो) और अग्रस्तुत (जो वर्णन का उपस्थित विषय न हो और उपमान आदि हो) का एक ही धर्म कहा जाता है—अथवा बहुत सी क्रियाओं का एक ही कारक होता है। जैसे, (क) मोहव भूपति दान से फल फूलन आताम। इस उदाहरण में प्रस्तुत 'भूपति' और अग्रस्तुत 'आताम' दोनों का एक धर्म 'सोहात' कहा गया है। (ख) अर्थात् देखि हारै हियो राम बुखि कुगिहलाय। धनुष देखि दरपै महा चिंता चित्त हुलाय। इस उदाहरण में 'हरवै' 'कुगिहलाय' 'दरपै' आदि क्रियाओं का एक ही कर्ता 'हियो' कहा गया है।

विशेष—दीपक चार आदि और प्रथान अलंकारों में से है। मुख्य योगिता में भी एक धर्म का कथन होता है पर यह या तो कई प्रस्तुतों या कई अग्रस्तुतों का होता है। दीपक में प्रस्तुत और अग्रस्तुत के एक धर्म का कथन होता है। दीपक चार प्रकार का होता है—आवृत्ति दीपक, कारक दीपक, माळा दीपक और देहली दीपक। (१) आवृत्ति दीपक में या तो एक ही क्रियापद भिन्न भिन्न अर्थों में बार बार आता है अथवा एक ही अर्थ के भिन्न भिन्न पद आते हैं। जैसे, (क) यई रहिपर सरिता, यई किरवान कड़ि कोस। धीरन वरहि बरोगना, वारहि सुभट रन रोस। (ख) दीपिंह सोर मत्त गज धावहि' इय समुदाय। (२) कारक दीपक। २०—उपर देखिप। (३) माळा दीपक जिसमें एक-एक ही और दीपक का मेळ होता है। जैसे, जग की रुचि प्रजवास, मन की रुचि प्रजचंद हरि। हरि रुचि यती 'दास' यंती रुचि मन धांचिबो। (४) देहली दीपक में एक ही पद दो बार लगाया है, जैसे, हरे नरसिंह महा मनुजाद हन्यो प्रहाद को संकट भारी। इस उदाहरण में 'हन्यो' शब्द दो बार लगता है—'मनुजाद हन्यो' और 'भारी संकट हन्यो'। (५) संगीत में छः रागों में से एक।

विशेष—हनुमत् के मत से यह छः रागों में दूसरा राग है। यह संपूर्ण आति का राग है और पञ्च स्वर से आरंभ होता है। इसके गाने का समय मीमं अतु का मन्पाठ है। इसका सरगम यह है—स रे ग म प ध नि स।

इसकी पाँच रागिनिर्वा मानी जाती हैं—देरी कायेरी, नाटिका, केदारी और काहदा। पुत्र आठ हैं—कुंज, कमल, कजिग, चंपक, कुसुम, राम, खदिर और हिमाज। मत के मत से दीपक की पतिनी हैं—केदाम, गौरी, गौरी, गुजरी, हदायी; और पुत्र हैं—कुसुम, रंक, नटनाथपण, विदारार, किरादल इतलमगया, संगलाएक और कन्या।

(७) एक ताल का नाम जिसमें पंचम, षड् और श्रुत

होते हैं। (२) भजवापन (जो अग्निदीपक होती है)। (३) केसर। कुंकुम। (७) धामनाम का पत्ती। (८) मयूर शिला। (९) एक प्रकार की आतिशयावाली। वि० [सं०] [श्री० दीपिका] (१) प्रकाश करनेवाला। उजाला फैलानेवाला। दीपिकाकार। (२) अठराभि को दीप करनेवाला। पांचन की अग्नि को तेज करनेवाला। (३) उत्तमक। शरीर में वेग या धमंग लानेवाला।

दीपकमाला—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक वर्षाहृत्प का नाम जिसके प्रत्येक चरण में मगध, मगध, जगध और गुरु होता है। ४०—आमम गो कन्या सखी बरी। देखत ही मेरे धनु वरी ॥ मंडप के भीचे बरी भवती। दीपकमाला सी फरती खली ॥ (२) दीपक अलंकार का एक भेद।

दीपकलिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दीप की टेम। चिराग की ली। दीपकली—संज्ञा स्त्री० [सं० दीपकलिका] चिराग की टेम। दीप-शिला। दीप की ली।

दीपकवृद्ध—संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह वृद्ध दीपक जिसमें दीप रखने के लिये कई शाखाएँ इधर उधर निकली हों। (२) माद।

दीपकसुत—संज्ञा पुं० [सं०] कज्जल। काजब। दीपकाल—संज्ञा पुं० [सं०] दीया बालने का समय। संध्या। दीपकावृत्ति—संज्ञा पुं० [सं०] (१) दीपक अलंकार का एक भेद। (२) पनसाख।

दीपकिंङ्क—संज्ञा पुं० [सं०] कज्जल। काजब। दीपकूपी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दीप की यत्ती। दीपत—संज्ञा स्त्री० [सं० दीपि] (१) कालि। चमक। प्रभा। ज्योति। (२) छटा। रोभा। (३) कीर्ति। चर।

दीपदान—संज्ञा पुं० [सं०] (१) किसी देवता के समने दीपक जलाने का काम जो पूजन का एक श्रेय समझा जाता है। (२) कालिक में यहूत से दीपक जलाने का कृत्य जो राधा दामोदर के निमित्त होता है। (३) एक कृत्य जिसमें भरद्वाजस्य व्यक्ति के हाथ से झटके के जलते हुए दीपों का संकल्प कराया जाता है।

दीपदानी—संज्ञा स्त्री० [सं० दीप + दान] धी बत्ती आदि दीया जलाने की सामग्री रखने की किविया जो पूजा के समानों में से है।

दीपध्वज—संज्ञा पुं० [सं०] काजल।

दीपन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० दीपनीय दीपित, दीपन, दीप्य] (१) प्रकाशन। प्रज्वलित या प्रकाशित करने का काम। प्रकाश के लिये जलाने का काम। (२) अठराभि को तीव्र करने की क्रिया। भूल को उबारने की क्रिया। (३) आगे बढ़ाने का काम। उत्तेजन। जैसे, काम का दीपन। वि० दीपन करनेवाला। अठराभि चर्क की अग्निमांश दूर करनेवाला।

संज्ञा पुं० (१) तगरमूल। तगर की अड़ या लकड़ी। (२) मयूरशिला नाम की वृद्धी। (३) कुंकुम। केसर। (४) पबांडु। प्याज। (५) कासमर्द। कसीदा। (६) मंत्र के वन दस संस्कारों में से एक जिनके बिना मंत्र सिद्ध नहीं होता। (७) रसेधर द्योन के अनुसार पारे का सातवाँ संस्कार। (८) इस द्योन को माननेवाले रस या पारे ही को संसार परंपरा-प्राप्ति का कारण और रसराज को देहधेध पूर्वक मुक्ति का साधन मानते हैं।

दीपनगद्य—संज्ञा पुं० [सं०] अठराभि को तीव्र करनेवाले पदार्थों का वर्ग। मूल जगानेवाली ओषधियों का वर्ग।

विशीय—इस वर्ग के अंतर्गत चित्त, चनिया, अशमोदा, जीरा, हाक्येर इत्यादि हैं।

दीपना—कि० अ० [सं० दीपन] प्रकाशित होना। चमकना। जगमाना।

कि० सं० प्रकाशित करना। चमकाना। ३०—द्वार में दिखान में हुनी में देस देलन में देख्यो दीप दीपन में दीपत दिगत है।—पद्मकर।

दीपनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मेथी। (२) भजवापन। (३) पाद।

दीपनीय—वि० [सं०] (१) प्रकाशन के योग्य। (२) उत्तेजन के योग्य।

दीपनीयधर्म—संज्ञा पुं० [सं०] चक्रदत्त के अनुसार एक ओषधि वर्ग जिसके अंतर्गत पिप्पली, पिप्पलामूल, चणप, चीता और नागर हैं। ये सब ओषधियाँ कफ और बात नाशक हैं।

दीपपादप—संज्ञा पुं० [सं०] दीपक।

दीपपुष्प—संज्ञा पुं० [सं०] चंपकवृद्ध। चंपा।

दीपमाला—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) अलते हुए दीपों की पंक्ति। जगमाने हुए दीपों की श्रेणी। (दीवाली में इस प्रकार दीपक जलाकर पंक्ति में रखे जाते हैं)। (२) दीपदान या धारती के लिये जलाई हुई बत्तियों का समूह।

दीपमालिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) दीपों की पंक्ति। अलते हुए प्रदीपों की श्रेणी (जैसी कि दीवाली में दिखाई देती है)। (२) दीवाली। (३) दीपदान या धारती के लिये जलाई हुई बत्तियों की पंक्ति। ४०—दीपमालिका रधि रधि साजत। पुहुपमाल संबळी विराजत।—सूर।

दीपमाली—संज्ञा स्त्री० [सं० दीपमालिका] दीवाली। ४०—आखिनि के संग दीपमाली के विलोकिये को औम्निक चककि औ न साँकती करोखे तें।—द्विजदेव।

दीपयती—संज्ञा स्त्री० [सं०] कालिका पुराण के अनुसार एक नदी जो कामाख्या में है और जिसके पूर्व अंगार नाम का प्रसिद्ध पर्वत है।

दीपवृक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] दीपयत् । दीपयत् ।
दीपशायु—संज्ञा पुं० [सं०] पतंग । कसिंगा (जो दीपक को
बुझा देता है) ।

दीपशिला—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) दीप की टेम । चिराग की
जो । प्रदीपपत्रिका । ३०—दीपशिला समं युवतिजन मन
जति हेसि पतंग।—गुजराती । (२) दीप का पुष्पा या
कावळ ।

दीपसुत—संज्ञा पुं० [सं०] कज्जल । काजल ।

दीपगनि—संज्ञा पुं० [सं०] दीप की टेम की भाँच । भाँच का
एक परिमाण जो प्रमाणित से चौगुना माना जाता है ।

दीपान्यता—संज्ञा स्त्री० [सं०] कार्तिक मास की अमावस्या
जिसके प्रदोष काल में लक्ष्मी का पूजन और दीपदान आदि
होता है । दीवाली ।

दीपावली—संज्ञा स्त्री० [सं०] दीपक और सरस्वती के योग से
उत्पन्न एक रागिनी ।

दीपावलि—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) दीपमेयी । दीमे की पंक्ति ।
(२) दीवाली ।

दीपिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) छोटा दीया । (२) एक
रागिनी जो हिंदोल राग की पत्नी मानी जाती है और
प्रदोषकाल में गाई जाती है ।

वि० स्त्री० प्रकाश करनेवाली । प्रकाश करानेवाली ।
दीपिकातेल—संज्ञा पुं० [सं०] एक आयुर्वेदिक तेल जो कान का
दर्द दूर करने के लिये कान में टपकाया जाता है ।

विशेष—हृसे प्रस्तुत करने की रीति यह है कि देवदार, सखई
या चीड़ की सात आठ अंगुल लंबी छकड़ी के और उसे सूए
आदि से सूजनी की तरह धारों धारें वेद डाले । फिर उसमें
रेगम छपेट कर तेल में लुप हुआये और बत्ती की तरह खला
दे । इस प्रकार ज्वलती हुई बत्ती में से जो गरम गरम तेल
बूँद बूँद गिरे उसे कान में टपकावे ।

दीपित—वि० [सं०] (१) प्रकाशित । प्रज्वलित । (२) चमकता
हुआ । जगमगाता हुआ । (३) इत्तेजित ।

दीपोत्सव—संज्ञा पुं० [सं०] दीवाली ।

दीप्त—वि० [सं०] (१) प्रज्वलित । ज्वलता हुआ । (२) प्रकाशित ।
जगमगाता हुआ । चमकता हुआ ।

संज्ञा पुं० (१) स्वर्ण । सोना । (२) हाँस । (३) नीबू । (४)
सिंह । (५) सुभुव के अनुसार नाक का एक रोग जिसमें
नाक से आप की तरह गरम गरम हवा निकलती है और
अधुने में ज्वलत होती है ।

दीप्तक—संज्ञा पुं० [सं०] श्लेष्मा । सुवर्ण ।

दीप्तकिरण—संज्ञा पुं० [सं०] (१) सूर्य । (२) मंदार का वीधा ।

दीप्तकेतु—संज्ञा पुं० [सं०] (१) दशसावर्णि मनु के एक पुत्र का
नाम । (मावत) । (२) एक राजा का नाम । (महाभारत) ।

दीप्तजिह्वा—संज्ञा स्त्री० [सं०] उष्णामुखी । श्याली । माया
गीड़ । स्यापारि ।

विशेष—गीड़ के मुँह का अंगला भाग कुछ कालापन लिए
होता है इसीसे उसका नाम उष्का (सुभावा) मुख पड़ा ।
उष्का जबसे हुए पिँच या प्रकाश को भी कहते हैं इसी
धम से दीप्तजिह्वा नाम रखा हुआ जान पड़ता है ।

दीप्तपिंगल—संज्ञा पुं० [सं०] सिंह ।

दीप्तरत्न—संज्ञा पुं० [सं०] कंबुजा ।

विशेष—राज को श्रेष्ठे में कंबुज के शरीर के रस से एक
प्रकार की चमक निकलती है ।

दीप्तेरोमा—संज्ञा पुं० [सं० दीप्तेरोमन्] एक विश्वदेव का नाम ।
(महाभारत)

दीप्तलोचन—संज्ञा पुं० [सं०] विहो । विहाल ।

दीप्तलौह—संज्ञा पुं० [सं०] (१) तपाया हुआ खाल ढोहा । (२)
काँसा ।

दीप्तवर्ण—वि० [सं०] जिसका शरीर कुंदन की तरह दमकता
हुआ हो ।

संज्ञा पुं० कार्तिकेय ।

दीप्तांग—वि० [सं०] जिस का शरीर चमकता हो ।

संज्ञा पुं० मौर । मूर

दीप्तांगु—संज्ञा पुं० [सं०] (१) सूर्य । (२) मंदार । भाक ।

दीप्ता—वि० स्त्री० [सं०] (१) प्रकाशित । प्रकाशयुक्ता । चमकती
हुई । (२) दिशा जिसमें सूर्य किसी समय स्थित हो ।
सूर्य से प्रकाशित । जैसे, दीप्ता दिशा ।

संज्ञा पुं० (१) जांगली बृष । कलियायी । (२) व्योति-
धमती । माळकंगनी । (३) सातवा नामक धूर ।

दीप्ताह—वि० [सं०] जिसकी आँखें चमकती हैं ।

संज्ञा पुं० विद्वाह । विहो ।

दीप्ताग्नि—वि० [सं०] (१) जिसकी अडराग्नि बहुत तीव्र हो ।
जिसकी पाचन शक्ति अत्यंत प्रबल हो । (२) जिसकी मूत्र
जगी हो । मूला ।

संज्ञा पुं० अगस्त्य मुनि (जिन्होंने समुद्र को पी लिया था
और वाष्पित नासक को पचा खाया था)

दीप्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) प्रकाश । जगल । शेरानी । (२)
प्रभा । आभा । चमक । सुक्ति । (३) काँति । शोभा । छवि ।
जैसे, अंग की दीप्ति । (४) ज्ञान का प्रकार जिससे विवेक
उत्पन्न होता है और अज्ञानाधिकार दूर हो जाता है । (मेरा) ।
(५) एक विश्वदेव का नाम (महाभारत) । (६) चाचा ।
जास । (७) काँसा । धूर ।

दीप्तिक—संज्ञा पुं० [सं०] शिरशोला । दुग्धपापाय बृष ।

दीप्तिमान्—वि० [सं० दीप्तिमन्] [स्त्री० दीप्तिमती] (१) दीप्तियुक्त ।
प्रकाशित । चमकता हुआ । (२) कांतियुक्त । शोभायुक्त ।

संघा पुं० सखामामा-के गर्भ से उत्पन्न श्रीकृष्ण के एक पुत्र का नाम ।

द्वीतोद-संघा पुं० [सं०] महाभारत के अनुसार एक तीर्थ जिसमें भूपुत्र नाम की एक नदी है । यहाँ कश्यपाने से स्नान करके अग्रना स्नाना हुआ वेज फिर से प्राप्त किया था । पूर्व काल में भृगु ने यहाँ पर कश्यप तपस्या की थी ।

द्वीतोपल-संघा पुं० [सं०] सुपुंकांत माथि ।
द्वीप्य-वि० [सं०] (१) जो जलाया जाना को हो । प्रवृत्तित किया जानेवाला । (२) जो जलाने योग्य हो ।

संघा पुं० (१) अग्रवायन । (२) जीरा । (३) मयूरशिखा । (४) रुद्रजटा ।

द्वीप्यक-संघा पुं० [सं०] (१) अग्रवायन । (२) अग्रमोदा । (३) मयूरशिखा । (४) रुद्रजटा ।

द्वीप्यमान-वि० [सं०] चमकता हुआ ।

द्वीप्या-संघा स्त्री० [सं०] पिंड बनर ।

द्वीप्र-वि० [सं०] धींसिमान् । प्रकाशयुक्त ।

द्वीप्या-संघा पुं० दे० "देना" ।

द्वीमक-संघा स्त्री० [का०] बाँटी की तरह का एक छोटा कीड़ा जिसे जाड़ीदार पर निकलते हैं । यह लकड़ी आदि में जग-कर उसे खोजती और नष्ट कर देता है । बरसीक ।

विशेष-इसका घड़ सफेद होता है और सिर लाल या नारंगी रंग का होता है । यह दल प्रायिक रहता है । दीमके चार दिशाओं में बहुत होती हैं और मिट्टी का घर बनाती हैं जिसकी दीवारें घानेदार पपड़ी की तरह होती हैं । कहीं कहीं ये घर इन्हें के आकार के हाथ डेढ़ हाथ ऊँचे होते हैं, और अक्सर या घेसैट कहलाते हैं । चींटियों की तरह ये कीड़े भी ढ़ड़े नियम और व्यवस्था के साथ रहते हैं । एक दल में अधिक संख्या तो क्लीव कीटों की होती है जो केवल काम करने के लिये होते हैं । कुछ क्लीव कीट लंबे लंबे सिंवाले होते हैं जो सिपाही कहलाते हैं । एक या अधिक स्त्रीकीट या रानियाँ होती हैं जिनका शरीर शंकों से भरे रहने के कारण कभी कभी बहुत फूला दिखाई पड़ता है । इनके प्रतिरिक्त सर भी होते हैं जो किसी किसी शत्रु में बहुत दिखाई पड़ते हैं और फसलों की तरह बढ़ते चिन्ते हैं । ये कीड़े काष्ठ और जंतु शरीर पर निर्वाह करते हैं । जिस वस्तु पर ये लगवें हैं उसे प्रायः मिट्टी की पपड़ी से आच्छादित कर देते हैं और भीतर ही भीतर वसे, पाले जाते हैं । वरसात में दीमके लगती हैं और कामना, लकड़ी आदि को इनसे बचाना कठिन हो जाता है ।

मुद्रा-द्वीमक शायद = (१) जिसे दीमके में खाकर नष्ट कर दिया हो । (२) दीमके की खाई हुई वस्तु की तरह स्थान स्थान पर खुदा हुआ या गड्ढेदार, जैसे, शीतला के शमावाला

चेहरा । द्वीमक का चाटना = द्वीमक का (किसी वस्तु में) खाकर नष्ट करना । जैसे, इस किताब को पढ़ने द्वीमके चाटें गइं ।

द्वीपट-संघा पुं० दे० "द्वीपट" ।

द्वीपमान-वि० [सं०] जो दिग्गम वाष्वा हो । जिसे किसी को देना हो । जो देने के लिये हो ।

द्वीप्या-संघा पुं० [सं०, द्वीपक, प्रा० द्वीप] (१) उजाले के लिये जलाई हुई बत्ती । जलती हुई बत्ती । चिराग ।

क्रि० प्र०-जलना ।-जलावा ।-यजता ।-धावना ।-सुकना ।-सुकाना ।

मुद्रा-द्वीप का ईसन = द्वीप की बत्ती से फूट आ गूला कहना । द्वीप की बत्ती में चमकते हुए शोभ गोत्र रखे दिखाई पड़ना । (इससे विवाह होने, लड़का होने आदि का शुभ राशुन समझा जाता है) द्वीप जलना = द्वीप जलने का समय होना । संघ्य होना । द्वीप जलाना = द्वीपाना निकालना । (पहले जो लोग दीवाला दिखाते थे वे दाट बलट कर बस पर एक चौमुखी दीवा जलाकर रख देते थे और काम धाम बंद कर देते थे) । द्वीप जलने के समय = संघ्य का । शाम का । द्वीप ठंडा करना = द्वीप सुकाना । द्वीप ठंडा होना = द्वीप सुकना । (किसी के घर का) द्वीप ठंडा होना = किसी के मन से कुल में औपचार हटा जाना । घर में शोक न रह जाना । दीवा दिखाना = रोयाना दिखाना । सामने उजाळा करना । दीवा बडाना = दीवा बुझाना । दीवा बत्ती करना = जलाने के लिये दीवा, चत्ता आदि ठीक करना । रोयाना का सामान करना । चिराग जलाना । दीवे बत्ती का समय = संघ्य का समय । द्वीप जोकर झूठना = चारों ओर हेरान होकर झूठना । बड़ी चुनिनीस से सोचना । दीवे से फूल कड़वा = दीप की जलती हुई बत्ती से समकते हुए गोत्र फूटने या रथे निकलना । शुभ कहना ।

(२) [स्त्री० अष्टप० दिक्की, दिक्की,] बत्ती जलाने का बरतन । वह बरतन जिसमें तेल भर कर जलाने के लिये बत्ती डाली जाती है ।

विशेष-द्वीप प्रायः मिट्टी के बनते हैं ।

मुद्रा-द्वीप में बत्ती पड़ना = दीप जलने का समय होना । संघ्य का समय होना ।

द्वीयासलाई-संघा स्त्री० [द्वि० दीया + सलाई] लकड़ी की छोटी सलाई या लकड़ जितका एक सिरा रागड़ने से जल उठता है । आग जलाने की लकड़ या सलाई ।

विशेष-इन सलाईयों का एक सिरा फालफरस, पोटागियम क्लोरोट आदि रागड़ खाकर जल उठनेवाले पदार्थों में डुबाया रहता है ।

द्वीप्य-वि० दे० "द्वीप्य" ।

द्वीप्य-वि० [सं०] (१) आयात । लंबा । (२) बड़ा । (देस और काल दोनों के लिये, जैसे, दीर्घपत्र, दीर्घबच, दीर्घकाल) ।

विशेष—क्याद में दीर्घत्व को परिमाणभेद कहा है। साव्य के मत से दीर्घत्व भद्रत्व का अव्ययंतर है।

संज्ञा पुं० (१) जता राजकुल। (२) माद हृत्। (३) राम-शर। नरकट। (४) ऊँट। (५) ताड़ का पेड़। (६) गुरु या दिग्मान्त बयौ। यह बयौ जिसका उच्चारण लौंचकर हो। इस का उलटा।

विशेष—धा, ई, ऊ, ष, प, ऐ, ओ, औ ये दीर्घस्वर कहलाते हैं। जिन व्यंजनों में ये लगते हैं वे भी दीर्घ कहलाते हैं, जैसे, का की कू ह्लादि। संगीत में भी दो मात्राओं का नाम दीर्घ है। अ—अ को एक साथ उच्चारण करने में जो काल लगता है वह दीर्घ काल कहलाता है।

(७) ज्योतिष में पंचिनीं छुटी, सातवीं और आठवीं अर्थात् सिंह, कन्या, तुला और वृश्चिक राशि को दीर्घराशि कहते हैं।

दीर्घकंटक—संज्ञा पुं० [सं०] बबूल का पेड़।

दीर्घकंठ—वि० [सं०] [स्त्री० दीर्घकंठी] जिसकी गरदन लंबी हो।

संज्ञा पुं० (१) बगला। बक। (२) एक दानव का नाम।

दीर्घकंद—संज्ञा पुं० [सं०] मूली।

दीर्घकंदिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] मूसजी। ताड़मूली।

दीर्घकंधर—वि० [सं०] [स्त्री० दीर्घकंधरी] जिसकी गरदन लंबी हो।

संज्ञा पुं० बगला पक्षी। बक।

दीर्घकण्ठा—संज्ञा स्त्री० [सं०] सफेद जीरा।

दीर्घकर्ण—वि० [सं०] जिसके कान बड़े बड़े हों।

संज्ञा पुं० एक जाति का नाम जिसका कवलेस प्राचीन ग्रंथों में है।

दीर्घकांड—संज्ञा पुं० [सं०] मुंडवृक्ष। मोदला।

दीर्घकांडा—संज्ञा स्त्री० [सं०] पाताल राक्षसीलता। विरहिया। चिरेठा।

दीर्घकाय—वि० [सं०] बड़े हीलंबाल का। लंबे चौड़े शरीरवाला।

दीर्घकील—संज्ञा पुं० दे० "दीर्घकीलक"।

दीर्घकीलक—संज्ञा पुं० [सं०] अंकेल का पेड़।

दीर्घकुल्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] गजपिण्डी।

दीर्घकुरक—संज्ञा पुं० [सं०] अंधदेश में होनेवाला एक प्रकार का धान।

दीर्घकेश—वि० [सं०] [स्त्री० दीर्घकेशी] जिसके लंबे लंबे बाब हों।

संज्ञा पुं० (१) भासू। (२) कूर्म विभाग के पश्चिमोत्तर में स्थित एक देश। (बृहत्संहिता)

दीर्घकाशिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] शुक्ति नामक जलजंतु। सुतुही।

दीर्घगति—संज्ञा पुं० [सं०] ऊँट (जो लंबे लंबे दग रखता है)।

दीर्घग्रथिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] राजपिण्डी।

दीर्घग्रीव—वि० [सं०] [स्त्री० दीर्घग्रीवी] जिसकी गरदन लंबी हो।

संज्ञा पुं० (१) नील कूर्मचपपी। सारस। (२) कूर्म विभाग के दक्षिण पश्चिम ओर स्थित एक देश। (बृहत्संहिता)

दीर्घघाटिक—वि० [सं०] लंबी गरदनवाला।

संज्ञा पुं० ऊँट।

दीर्घच्छद—वि० [सं०] जिसके लंबे लंबे पत्ते हों।

संज्ञा पुं० ईंख। जख।

दीर्घजंगल—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की मड़ली। बड़ा किंवा।

दीर्घलंब—वि० [सं०] जिसकी लंबी लंबी टाँगें हो।

संज्ञा पुं० (१) बक। बगला। (२) ऊँट।

दीर्घजिह्व—वि० [सं०] जिसकी लंबी जीभ हो।

संज्ञा पुं० (१) सर्प। (२) दानव विशेष।

दीर्घजिह्वा—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) विशेषतः की पुत्री एक राक्षसी जिसे इंद्र ने मारा था। इ०—वैरोचनमा दीर्घजिह्वा। सुरपति देहि करि स्त्रीसि जिह्वा।—विधाम। (२) मातृ-पत्तियों में से एक जो कार्तिकेय की अनुचरी है।

दीर्घजीवी—वि० [सं० दीर्घजीवीन] जो बहुत दिनों तक जीए। बहुत काल तक जीवित रहनेवाला।

दीर्घतपा—वि० [सं० दीर्घतपम्] जिसने बहुत दिनों तक तपस्या की हो।

संज्ञा पुं० हरिवंश के अनुसार भायुर्वंशीय एक राजा जिन्होंने बहुत काल तक तप किया था।

दीर्घतमा—संज्ञा पुं० [सं० दीर्घतमम्] एक ऋषि जो उतथ्य के पुत्र थे।

विशेष—महाभारत में इनकी कथा इस प्रकार लिखी है।

शथ्य नामक एक तेजस्वी मुनि थे जिनकी पत्नी का नाम ममता था। ममता जित समय गर्भवती थी उस समय शथ्य के छोटे भाई देवगुरु वृहस्पति उसके पास आए और सहा-पास की हल्का प्रकट करने लगे। ममता ने कहा "तुमने तुम्हारे बड़े भाई से गर्भ है अतः इस समय तुम जाओ"। वृहस्पति ने न माना और वे सहवास में प्रवृत्त हुए। गर्भस्थ बालक ने मीतः से कहा—"मम करो! एक गर्भ में दो बालकों की स्थिति नहीं हो सकती"। जब वृहस्पति ने इसने पर भी न सुना तब उस तेजस्वी गर्भस्थ शिष्य ने अपने पैरों से धीरे-धीरे रोक दिया। इस पर वृहस्पति ने क्रुपित होकर गर्भस्थ बालक को शाय दिया कि "तू दीर्घ-तामस में पड़ (अर्थात् अंधा हो जा)"। वृहस्पति के शाय से वह बालक अंधा होकर जन्मा और दीर्घतमा के नाम से प्रसिद्ध हुआ। प्रद्वेषी नाम की एक ब्राह्मण कन्या से दीर्घतमा का विवाह हुआ जिससे उन्हें गौतम आदि कई पत्र हुए। वे सब पत्र लोग मोह के मग्नियम हुए। इस पर

दीर्घतमा कामधेनु से गोधर्म शिषा प्राप्त करके उससे ध्रुवापूर्वक मैथुन धादि में प्रवृत्त हुए। दीर्घतमा को इस प्रकार मर्त्यादा भंग करते देख आश्रम के सुनि लोग बहुत विगड़े। उनकी स्त्री प्रद्वेपी भी इस बात पर बहुत चमत्कृत हुई। एक दिन दीर्घतमा ने अपनी स्त्री प्रद्वेपी से पूछा कि "तू सुकसे क्यों दुर्भाग्य रखती है ?" प्रद्वेपी ने कहा "स्वामी स्त्री का भाव्य पोषण करता है इसीसे भर्ता कह-जाता है पर तुम संभे हो, कुछ कर नहीं सकते। इतने दिनों तक मैं तुम्हारा और तुम्हारे पुत्रों का मरण रोपण्य करती रही, पर भय न करूँगी"। दीर्घतमा ने क्रुद्ध होकर कहा— "ले ! धाम से मैं यह मर्त्यादा बांध देता हूँ कि स्त्री एक मात्र पति से ही अनुसूक्त रहे ! पति चाहे जीता हो या माया यह कदापि दूसरा पति नहीं कर सकती। जो स्त्री दूसरा पति ग्रहण करेगी वह पतित हो जायगी !" प्रद्वेपी ने इस पर विगड़ कर अपने पुत्रों को धामा दी कि "तुम अपने संभे आप को बांध कर गंगा में डाल आओ"। पुत्र व्यासा-नुसा दधनमा को गंगा में डाल द्याए। उस समय यलि नाम के कोई राजा गंगा स्नान कर रहे थे। वे श्राप्यि के इस श्रवणा में देख अपने घर ले गए और वनसे प्रार्थना की कि "मदाराज ! मेरी भार्या से आप योग्य संतान उत्पन्न कीजिए ।" जब श्राप्यि सम्मन हुए तब राजा ने अपनी सुद्वेष्णा नाम की रानी को उनके पास भेजा। रानी उन्हें श्रेया और कुड्डा देल उनके पास न गई और उसने अपनी दासी को भेजा। दीर्घतमा ने उस शूद्रा दासी से कपीयान् धादि ग्यारह पुत्र उष्य किए। राजा ने यह जान कर फिर सुद्वेष्णा को श्राप्य के पास भेजा। श्राप्यि ने रानी का सारा श्रंग टरोल कर कहा "जाय तुम्हें श्रंग, श्रंग, कलिंग, पुंड्र और सुंभ नामक श्राप्यंत लेखस्वी पुत्र उत्पन्न होंगे जिनके नाम से देश विखरात होंगे।

क्रावेद के पहले मंडल में सूक्त १४० से १६० तक में दीर्घतमा के रचे मंत्र हैं। इनमें कई मंत्र ऐसे हैं जिन्हसे उनके जीभ की घटनाओं का पता चलता है। महाभारत में उनकी स्त्री के संबंध में जिस घटना का वर्णन है उसका उल्लेख भी कई ३ओं में है। सूक्त १७ मंत्र २ में एक मंत्र है जिसे दीर्घतमा ने वत समय कहा था जब खेतांगे ने उन्हें एक सूक्त में बंद कर दिया था। ह्य मंत्र में उन्होंने अश्विनी देवक से उद्धार पाने के लिये प्रार्थना की है।

दीर्घतम-संज्ञा पुं० [सं०] ताड़ का पेड़ ।

दीर्घतमा-संज्ञा स्त्री० [सं०] लंछनी, चूड़ा ।

दीर्घतमिषा-संज्ञा स्त्री० [सं०] ककड़ी। ककड़ी ।

दीर्घतुंडा-वि० स्त्री० [सं०] जिस का मुँह लंबा हो ।

संज्ञा स्त्री० घुँघरू ।

दीर्घतुंडा-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की घास जिसके खाने से पशु निर्यात हो जाते हैं। पडिवाह वृष। साप्रपौर्ण।

दीर्घदंड-संज्ञा पुं० दे० "दीर्घदंडक" ।

दीर्घदंडक-संज्ञा पुं० [सं०] परबहुप। श्रेष्ठी का पेड़। रेंड ।

दीर्घदंडी-संज्ञा स्त्री० [सं०] गोरणी। गोरखदमली।

दीर्घदर्शना-संज्ञा स्त्री० [सं०] बहुत दूर तक की बात का विचार।

परिधाय धादि या विचार करनेवाली बुद्धि। द्वादशिता।

दीर्घदर्शी-वि० [सं० दीर्घदर्शिन] (१) दूर तक की बात सोचने-

वाला। बहुत सी बातों का विचार करनेवाला। दूर तक सब

बातों का परिधाम सोचनेवाला। द्वादशीं। (२) विचारवान्।

संज्ञा पुं० (१) भारू। (२) गीध ।

दीर्घद्रु-संज्ञा पुं० [सं०] ताड़ का पेड़ ।

दीर्घद्रुम-संज्ञा पुं० [सं०] शाभ्रती वृक्ष। सेना का पेड़ ।

दीर्घदृष्टि-वि० [सं०] (१) जिसकी दृष्टि दूर तक जाय। बहुत

दूर तक देखनेवाला। (२) दूर तक की बात सोचनेवाला।

संज्ञा पुं० गीध ।

दीर्घद्वार-संज्ञा पुं० [सं०] विराहल देरा के शंतगत एक जनपद

जो गंडकी नदी के किनारे माना जाता था।

दीर्घाद-वि० [सं०] जिससे भारी शब्द निकले।

शशा० पुं० शंख ।

दीर्घाल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) दीर्घगह्विप। रोहिंस प्राप्त।

(२) गोदल घास। गुंड वृष। (३) उषर। यवनाड।

दीर्घनेद्रा-संज्ञा स्त्री० [सं०] मृ०पु। मौत। मरण।

दीर्घनेद्रास-संज्ञा पुं० [सं०] लंबी सांस जो दुःख या शोक

के भावेन के कारण ली जाती है।

दीर्घाक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] कलिंग पत्ती ।

दीर्घपत्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शत्रुपल्लव। काळ प्यास। (२)

विष्णुकर। (३) हरिदमं। एक प्रकार का कुत। (४)

कुचला। कुशील। (५) एक प्रकार की ईल (समुद्र)।

दीर्घपत्रक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) काळ लहसुन। (२) परंभ।

रेंड। श्रेष्ठी। (३) पंचम। पेत। (४) हिजल। समुद्र कज।

(५) कील। टंडी का पेड़। (६) जलमरू। जल महुषा।

दीर्घपत्रा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) केतकी। (२) जंगली आमन।

का पेड़ जो छोट्टा छोट्टा और नदियों के किनारे होता है।

(३) चित्रपत्ती। (४) शाकपत्ती।

दीर्घपत्रिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सफेद वच। (२) घृत-

मारी। घीकुशार। (३) शाकपत्ती। सतिवन। (४) रवेत पुष-

नंदा। सफेद गदहपुरना।

दीर्घपत्रो-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) पलाशी लता। कौरिया पलाश।

यह पलाश जो लता के रूप में फैलता है। (२) महाचंडु

शक। यद्वा चेना।

दीर्घपर्वी-वि० [सं०] जिसके लंबे लंबे पत्ते हों ।
 दीर्घपर्वी-संज्ञा स्त्री० [सं०] विद्यमान । पृथिवर्षी ।
 दीर्घपल्लव-संज्ञा पुं० [सं०] सन का पेड़ ।
 दीर्घपाद-वि० [सं०] लंबी टांगवाला ।
 संज्ञा पुं० (१) कंकणसी । (२) सारस ।
 दीर्घपादप-संज्ञा पुं० [सं०] (१) ताड़ का पेड़ । (२) सुपारी का पेड़ ।
 दीर्घपृष्ठ-संज्ञा पुं० [सं०] सपें । साँप ।
 दीर्घप्रज्ञ-वि० [सं०] दूरदर्शी ।
 संज्ञा पुं० द्वापर के एक राधा धृतराष्य का नाम जो असुर के शयतार थे ।
 दीर्घकल-संज्ञा पुं० [सं०] धमजतास ।
 दीर्घकलक-संज्ञा पुं० [सं०] अगस्त्य का पेड़ ।
 दीर्घकला-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) जतुका खता । पहाड़ी नाम की खता । (२) लंबा श्रेणू ।
 दीर्घकनिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कपिलदाघा । लंबा श्रेणू । (२) जतुका खता ।
 दीर्घकाला-संज्ञा स्त्री० [सं०] चमरी । सुगामाप ।
 दीर्घकाहु-वि० [सं०] जिसकी मुंजा लंबी हो ।
 संज्ञा पुं० (१) शिव के एक अनुचर का नाम । (हरिवंश) । (२) धतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम ।
 दीर्घमात-संज्ञा पुं० [सं०] हाथी ।
 दीर्घमूल-संज्ञा पुं० [सं०] एक वृक्ष का नाम ।
 दीर्घमूल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार की वेज । मोरखता । (२) वेना की तरह की एक पीली घास । कामजक वृक्ष । (३) विश्वोत्तर वृक्ष ।
 दीर्घमूलक-संज्ञा पुं० [सं०] मूलक । मूली ।
 दीर्घमूलत-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) शालिपर्णी । सरिवन । (२) शय मालता । कालीसर ।
 दीर्घमूली-संज्ञा स्त्री० [सं०] घमापा ।
 दीर्घमूल-वि० [सं०] जिसने बहुत काज तक यत्न किया हो ।
 संज्ञा पुं० अश्वमेध के एक राधा का नाम जो द्वापर में हुए थे । (महाभारत)
 दीर्घरत-वि० [सं०] जो बहुत देर तक मैथुन में रत रहे ।
 संज्ञा पुं० कुत्ता ।
 दीर्घरद-वि० [सं०] जिसके निचले हुए लंबे दाँत हों ।
 संज्ञा पुं० सुधार । सुधर ।
 दीर्घरसन-संज्ञा पुं० [सं०] सपें । साँप ।
 दीर्घरागा-संज्ञा स्त्री० [सं०] हविद्रा । हजदी ।
 दीर्घरागा-संज्ञा पुं० [सं०] दीर्घरोमण । (१) भावू । (२) शिव के एक अनुचर का नाम ।
 दीर्घरोहिण-संज्ञा पुं० [सं०] बड़ी शक्ति की रोहिण घास जो

माखवा, राजपुताणा और मध्यपदेश में बहुत होती है । इसमें से बहुत अच्छी सुगंध निकलती है जो नीच की सुगंध से मिश्रती जुड़ती होती है । इसकी जड़ से एक प्रकार का लेक निकाला जाता है ।
 दीर्घलोचन-वि० [सं०] बड़ी लंबलबाला ।
 संज्ञा पुं० (१) शिव के एक अनुचर का नाम । (२) धतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम ।
 दीर्घवंश-संज्ञा पुं० [सं०] नरसल । नाकट ।
 दीर्घवक्र-वि० [सं०] [स्त्री० दीर्घवक्रा] लंबे मुँहवाला ।
 संज्ञा पुं० हाथी ।
 दीर्घवज्रिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] कुंभीर । घड़ियाल ।
 दीर्घवह्नी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) बड़ा हृदापन । महेंद्र-वास्तवी । (२) पायाजगहरी खता । विटा । (३) एजारीखतर । वै रिया पल रा ।
 दीर्घवृत्त-संज्ञा पुं० [सं०] (१) रमोनाकवृक्ष । सोनापाठा । (२) खतशाल ।
 दीर्घवृत्ता-संज्ञा स्त्री० [सं०] इंद्रचिर्मिटी खता ।
 दीर्घवृत्तिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] एजायर्षी ।
 दीर्घवार-संज्ञा पुं० [सं०] जया । जुहरी ।
 दीर्घशाख-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सन का पेड़ । (२) शाल । सारू का पेड़ ।
 दीर्घशोचिक-संज्ञा पुं० [सं०] एव । एक प्रकार की राई ।
 दीर्घशूक-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का धान ।
 दीर्घश्रवा-संज्ञा पुं० [सं०] दीर्घश्रवस्] शीघ्रना श्रवि के एक पुत्र जिन्होंने अनावृष्ट होने पर जीविका के लिये वाणिज्य कर लिया था । इस बात का उल्लेख श्रावण्ड में है ।
 दीर्घभुत-वि० [सं०] (१) जो दूर तक सुनाई पड़े । (२) जिसका नाम दूर तक विख्यात हो ।
 दीर्घसत्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वाक्यजीवन कल्प्य अग्निहोत्र । (२) एक वज्र जो बहुत दिना में समाप्त होता था । (३) एक तीर्थ का नाम (महाभारत) ।
 वि० जिसने दीर्घ सत्र यज्ञ किया हो ।
 दीर्घसुरत-वि० [सं०] देर तक रति करनेवाला ।
 संज्ञा पुं० कुत्ता ।
 दीर्घसूक्ष्म-संज्ञा पुं० [सं०] प्राणायाम का एक भेद ।
 दीर्घसूत्र-वि० [सं०] दीर्घसूत्री ।
 दीर्घसूत्रता-संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रत्येक कार्य में निश्चय करने का स्थापना । हर एक काम से देर लगाने की चाहत ।
 दीर्घसूत्री-वि० [सं०] दीर्घसूत्री । प्रत्येक कार्य में निश्चय करनेवाला । हर एक काम में अज्ञान से उपादा देर लगानेवाला । प्रत्येक कार्य में अधिक समय बितानेवाला । देर से काम करनेवाला ।
 दीर्घस्कांध-संज्ञा पुं० [सं०] ताड़ का पेड़ ।

दीर्घतमा कामधेनु से मोघर्षं शिषां प्राप्त करके उससे अद्वापर्वकं मीथुन आदि में, प्रवृत्त हुए। दीर्घतमा को इस प्रकार मर्यादा भंग करते देख आश्रम के मुनि लोग बहुत विगड़े। इनकी स्त्री प्रद्वेयी भी इस बात पर बहुत अप्रसन्न हुई। एक दिन दीर्घतमा ने अपनी स्त्री प्रद्वेयी से पूछा कि "तू मुझसे क्यों दुर्भाव रखती है ?" प्रद्वेयी ने कहा "स्वामी स्त्री का भरण पोषण करता है इसीसे भर्ता कह-साता है पर तूम श्रेय हो, कुछ कर नहीं सकते। हमने दिनों तक मैं तुम्हारा धीर तुम्हारे पुत्रों का भरण पोषण करती रही, पर भय न कस्येगी। दीर्घतमा ने क्रुद्ध होकर कहा— "ले! आश्रम से मैं यह मर्यादा बांध देता हूँ कि स्त्री एक मात्र पति से ही अन्नरुच करे। पति चाहे जीता हो या मारा वह कदापि दूसरा पति नहीं कर सकती। जो स्त्री दूसरा पति प्रद्वेय करगी वह पतित हो जायगी।" प्रद्वेयी ने इस पर विगड़ कर अपने पुत्रों को घाशा दी कि "तूम अपने श्रेय बाप को बांध कर गंगा में डाल आओ।" पुत्र आशा-नुसार दर्घनमा को गंगा में डाल आए। उस समय यलि नाम के कोई राजा गंगा स्नान कर रहे थे। वे ऋषि का इस शवश्या में देख अपने घर ले गए और वनसे प्रार्थना की कि "महाराज ! मेरी भार्या से बाप योग्य संतान उत्पन्न कीजिए।" जब ऋषि सम्मन हुए तब राजा ने अपनी सुद्वेष्ट्या नाम की रानी को उनके पास भेजा। रानी वहाँ शंखा दासी सुद्वेष्टा देख उनके पास न गई और उसने अपनी दासी को भेजा। दीर्घतमा ने उस शूद्रा दासी से कपीवान् चादि ग्याह्य पुत्र उपन्न किए। राजा ने यह जान कर फिर सुद्वेष्ट्या को ऋषि के पास भेजा। ऋषि ने रानी का सारा श्रंग टोड़ कर कहा "जाय तुम्हें शंग, वंग, कलिंग, पुंड्र और सुंम नामक अर्यत तेजस्वी पुत्र उपन्न होंगे जिनके नाम से देश विद्यथात होंगे।

ऋग्वेद के पहले मंडल में सूक्त १४० से १६० तक में दीर्घतमा के रचे मंत्र हैं। इनमें कई मंत्र ऐसे हैं जिन्हसे उनके जीवन की घटनाओं का पता चलता है। महाभारत में इनकी स्त्री के संबंध में जिस घटना का वर्णन है उसका उल्लेख भी कई अंशों में है। सूक्त १२० मंत्र ५ में एक मंत्र है जिसे दीर्घतमा ने उस समय कहा था जब लोगों ने उन्हें एक संस्कृत में बंद कर दिया था। ह्य मंत्र में उन्होंने अश्विनी देखल से उद्गात पाने के लिये प्रार्थना की है।

दीर्घतम-संज्ञा पुं० [सं०] ताड़ का पेड़।

दीर्घतना-संज्ञा स्त्री० [सं०] लंबाई। बढ़ाई।

दीर्घतमिषा-संज्ञा स्त्री० [सं०] ककड़ी। ककड़ी।

दीर्घतुंडा-वि० स्त्री० [सं०] जिस का मुँह लंबा हो।

संज्ञा स्त्री० सुदूर।

दीर्घतुया-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की घास जिसके खाने से पशु नियाँल हो जाते हैं। पछिवाह तुष। तात्रपर्या।

दीर्घदंड-संज्ञा पुं० दे० "दीर्घदंडक"।

दीर्घदंडक-संज्ञा पुं० [सं०] परंशुवृक्ष। शंडी का पेड़। रेंड।

दीर्घदंडी-संज्ञा स्त्री० [सं०] गोरपी। गोरखहमली।

दीर्घदार्शन-संज्ञा स्त्री० [सं०] बहुत दूर तक की बात का विचार।

परिचाप आदि का विचार करनेवाली बुद्धि। दूरस्थिता।

दीर्घदार्श-वि० [सं० दीर्घार्थ] (१) दूर तक की बात सोचने-

बाधा। बहुत सी बातों का विचार करनेवाला। दूर तक सब

बातों का परिचाप सोचनेवाला। दूरदर्शी। (२) विचारवान्।

संज्ञा पुं० (१) मालू। (२) गीध।

दीर्घदु-संज्ञा पुं० [सं०] ताड़ का पेड़।

दीर्घदुम-संज्ञा पुं० [सं०] शाकमयी वृक्ष। सेना का पेड़।

दीर्घदृष्टि-वि० [सं०] (१) जिसकी दृष्टि दूर तक जाय। बहुत

दूर तक देखनेवाला। (२) दूर तक की बात सोचनेवाला।

संज्ञा पुं० गीध।

दीर्घद्वार-संज्ञा पुं० [सं०] विद्याल देव के श्रंतगत एक जनपद

जो गंडकी नदी के किनारे माना जाता था।

दीर्घनाद-वि० [सं०] जिससे भारी शब्द निकले।

संज्ञा पुं० शंख।

दीर्घनाल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) दीर्घगह्विप। रोहित घास।

(२) गौड़का घास। शुंड लृण। (३) उजार। यवनाल।

दीर्घनेद्रा-संज्ञा स्त्री० [सं०] मृगु। मौत। मरण।

दीर्घनेद्रास-संज्ञा पुं० [सं०] लंबी साँस जो दुःख या शोक

के भावने के कारण ली जाती है।

दीर्घाक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] कलिंग पक्षी।

दीर्घपत्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) रामवल्लु। छात्र पत्र। (२)

विष्णुकंद। (३) हरिदम। एक प्रकार का फल। (४)

कुचका। कुशीलु। (५) एक प्रकार की ईट (सधुन)।

दीर्घात्रक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) छात्र लहसुन। (२) परंशु।

रेंड। शंडी। (३) पेशम। वेत। (४) हिजमल। समुद्र फल।

(५) कलीक। टंडी का पेड़। (६) जलमर्क। ब्रह्म महुषा।

दीर्घपत्रा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) केतकी। (२) जंगली जामुन

का पेड़ जो छोट्टा छोट्टा फल मर्दिशों के किनारे होता है।

(३) चित्रपर्या। (४) शाक्यपर्या।

दीर्घपत्रिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सफेद पत्र। (२) पत्र-

माली। धीकुमार। (३) शाक्यपर्या। सविजन। (४) रवेत पुन-

नंगा। रुकेर महहपुरना।

दीर्घपत्री-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) पत्रादी लता। वीरिया पत्रादी।

यह पत्राक्ष जो लता के स्वर में फैला है। (२) मदाचंडु

शक। बढ़ा चेना।

दीर्घपर्व-वि० [सं०] जिसके लंबे-लंबे पचे हों ।
 दीर्घपर्वी-संज्ञा स्त्री० [सं०] पिटघन । कुक्षिपर्वी ।
 दीर्घपल्लव-संज्ञा पुं० [सं०] सन का पेड़ ।
 दीर्घपाद-वि० [सं०] लंबी टांगवाला ।
 संज्ञा पुं० (१) कंकणपत्नी । (२) सारस ।
 दीर्घपाद-संज्ञा पुं० [सं०] (१) हाथ का पेड़ । (२) सुपारी का पेड़ ।
 दीर्घपृष्ठ-संज्ञा पुं० [सं०] सपें । सापें ।
 दीर्घपञ्च-वि० [सं०] पञ्च ।
 संज्ञा पुं० द्वार के एक राजा वृषभर्वा का नाम जो अशुर के अघतार थे ।
 दीर्घफल-संज्ञा पुं० [सं०] अमलतास ।
 दीर्घफलक-संज्ञा पुं० [सं०] अमल का पेड़ ।
 दीर्घफला-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) जमुका जता । पहाड़ी नाम की जता । (२) लंबा अंगूर ।
 दीर्घफनिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कपिलदासा । लंबा अंगूर । (२) जमुका जता ।
 दीर्घबाला-संज्ञा स्त्री० [सं०] चमरी । सुरागाय ।
 दीर्घबाहु-वि० [सं०] जिसकी भुजा लंबी हो ।
 संज्ञा पुं० (१) शिव के एक अनुचर का नाम । (हरिवंश) । (२) एताग्र के एक पुत्र का नाम ।
 दीर्घमाहृत-संज्ञा पुं० [सं०] हापी ।
 दीर्घमूल-संज्ञा पुं० [सं०] एक यक्ष का नाम ।
 दीर्घमूला-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार की जेल । मोरजता । (२) बेना की लाइ की एक पीली घास । कामजक वृक्ष । (३) विश्वाकर वृक्ष ।
 दीर्घमूलक-संज्ञा पुं० [सं०] मूलक । मूली ।
 दीर्घमूला-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) शक्तिपर्वी । सखिन । (२) रथ मालता । काजीसर ।
 दीर्घमूली-संज्ञा स्त्री० [सं०] धमासा ।
 दीर्घगण्ड-वि० [सं०] जिसने बहुत काज तक यज्ञ किया हो ।
 संज्ञा पुं० अयोध्या के एक राजा का नाम जो द्वार में हुए थे । (महाभारत)
 दीर्घरत-वि० [सं०] जो बहुत देर तक मैथुन में रत रहे ।
 संज्ञा पुं० कुचा ।
 दीर्घरद-वि० [सं०] जिसके निचले हुए लंबे दाँत हो ।
 संज्ञा पुं० सुधर । शूकर ।
 दीर्घरसन-संज्ञा पुं० [सं०] सपें । सापें ।
 दीर्घरामा-संज्ञा स्त्री० [सं०] इतिदा । हजदी ।
 दीर्घरामा-संज्ञा पुं० [सं०] दीर्घराम । (१) माल । (२) शिव के एक अनुचर का नाम ।
 दीर्घरोहित-संज्ञा पुं० [सं०] बड़ी आति की रोहित घास जो

मालवा, राजपुताना और मध्यप्रदेश में बहुत होती है । इसमें से बहुत अच्छी सुगंध निकलती है जो गीच की सुगंध से मिलती जुलती होती है । इसकी जड़ से एक प्रकार का तेल निकाला जाता है ।

दीर्घलोचन-वि० [सं०] बड़ी आँखवाला ।
 संज्ञा पुं० (१) शिव के एक अनुचर का नाम । (२) एत-राष्ट्र के एक पुत्र का नाम ।

दीर्घवंश-संज्ञा पुं० [सं०] बरसल । नाष्ट ।
 दीर्घवक्त्र-वि० [सं०] [स्त्री० दीर्घवक्त्र] बड़े मुँहवाला ।
 संज्ञा पुं० हापी ।

दीर्घवण्डिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] कुंभीर । घड़ियाल ।
 दीर्घवह्नी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) बड़ा इंद्रायन । भेद-वायवी । (२) पानाअण्डकी जता । बिटा । (३) पञ्जारीलतर । ये शिव पत्न्य ।
 दीर्घवृन्-संज्ञा पुं० [सं०] (१) रथेनाकवृक्ष । सोनापाठा । (२) जतशाल ।

दीर्घवृन्-संज्ञा पुं० [सं०] (१) रथेनाकवृक्ष । सोनापाठा । (२) जतशाल ।

दीर्घवृन्ता-संज्ञा स्त्री० [सं०] इंदुचिर्मिटी जता ।

दीर्घवृत्तिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] एकापर्वी ।

दीर्घशर-संज्ञा पुं० [सं०] उभा । लुहरी ।

दीर्घशाख-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सन का पेड़ । (२) शाल । सालू का पेड़ ।

दीर्घदोषि-संज्ञा पुं० [सं०] छत्र । एक प्रकार की राई ।

दीर्घशूक-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का धान ।

दीर्घेप्रिया-संज्ञा पुं० [सं०] दीर्घधनुस् शोच्येना श्रुति के एक पुत्र जिसने अनाष्ट्र होने पर जीविका के लिये धार्मिक कर लिया था । इस बात का उल्लेख श्रावेद में है ।

दीर्घधृत-वि० [सं०] (१) जो दूर तक सुलाई पड़े । (२) जिसका नाम दूर तक विद्यमान हो ।

दीर्घलत्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) याज्ञकीय कर्मण्य अग्निहोत्र । (२) एक यज्ञ जो बहुत दिना में समाप्त होता था । (३) एक तीर्थ का नाम (महाभारत) ।

वि० जिसने दीर्घ सत्र यज्ञ किया हो ।

दीर्घलुरत-वि० [सं०] देर तक रति करनेवाला ।

संज्ञा पुं० कुचा ।

दीर्घसूक्ष्म-संज्ञा पुं० [सं०] प्राणायाम का एक भेद ।

दीर्घसूत्र-वि० दे० "दीर्घसूत्री" ।

दीर्घसूत्रता-संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रत्येक कार्य में टिल्लव करने का स्वभाव । हर एक काम में देर लगाने की आदत ।

दीर्घसूत्री-वि० [सं०] दीर्घसूत्र । प्रत्येक कार्य में टिल्लव करनेवाला । हर एक काम में अल्पत से उगादा देर लगानेवाला । प्रत्येक कार्य में अधिक समय बितानेवाला देर से काम करनेवाला ।

दीर्घसंक-संज्ञा पुं० [सं०] साधु का पेड़ ।

दीर्घस्वर—संज्ञा पुं० [सं०] द्विमात्रिक स्वर । दे० "दीर्घ"
 दीर्घी—संज्ञा स्त्री० [सं०] पिठवन । परिचरणी ।
 दीर्घीयु—वि० [सं०] जिसकी धातु बड़ी हो । बहुत दिनों तक
 जीनेवाला । दीर्घजीवी । चिरजीवी ।
 संज्ञा पुं० (१) सेमर का पेड़ । (२) कौवा । काक । (३)
 मर्कटिये । (४) जीवक वृक्ष ।
 दीर्घीयुध—संज्ञा पुं० [सं०] (१) कुंभाघ । (२) सूप्र । शकर ।
 दीर्घोलक—संज्ञा पुं० [सं०] सफेद मदार ।
 दीर्घीस्य—वि० [सं०] बड़े मुँहवाला ।
 संज्ञा पुं० (१) हाथी । (२) शिव के एक अनुचर का नाम ।
 (३) परिचमोत्तर दिशा में स्थित एक देश । (बृहत्संहिता)
 दीर्घोत्तर—संज्ञा पुं० [सं०] ग्रीष्मकाल (जिसमें दिन बड़ा
 होता है) ।
 दीर्घिका—संज्ञा पुं० [सं०] (१) भावली । छोटा जलाशय ।
 छोटा ठाकाप ।
 विशेष—किसी किसी के मत से ३०० अनुप लंबे जलाशय
 को दीर्घिका कहते हैं ।
 (२) हिंगुपत्ती ।
 दीर्घीर्वाच—संज्ञा पुं० [सं०] लंबी ककड़ी । टेंगरी ।
 दीर्घी—वि० [सं०] फटा हुआ । विदारित । दरका हुआ ।
 दीर्घीका—संज्ञा स्त्री० दे० "दीमक" ।
 दीर्घट—संज्ञा स्त्री० [सं०] शीपरय, प्रा० दौढट] पीतल, लकड़ी आदि
 का डंढे के आकार का आघार जिसपर दीया रखा जाता
 है । दीवाघार । चित्रागदान ।
 दीघला—संज्ञा पुं० [हिं० दीवा + ला(प्रत्य०)] [स्त्री० दिवली, दिवली]
 दीया ।
 दीघा—संज्ञा पुं० [सं० दीपक] दीपक । दीया ।
 संज्ञा पुं० दे० "पष" ।
 दीघान—संज्ञा पुं० [५०] (१) राजा या बादशाह के बैठने की
 जगह । राजसभा । दरवार । कचहरी ।
 शौ०—दीवान श्याम । दीवान खास ।
 (२) मंत्री । यज़र । राज्य का प्रबंध करनेवाला ।
 प्रधान । उ०—भक्त हुब की घटल पदवी राम के दीवान ।
 शौ०—दीवानखालसा ।
 (३) सबलों के समूह की पुस्तक ।
 दीघानश्याम—संज्ञा पुं० [५०] (१) श्याम दरवार । ऐसा दरवार
 जिसमें राजा या बादशाह से सब लोग मिल सकते हैं । (२)
 यह स्थान या भवन जहाँ श्याम दरवार लगता हो ।
 दीघानखाना—संज्ञा पुं० [५०] घर का वह बाहरी हिस्सा या
 कमरा जहाँ बड़े आदमी बैठते और सब लोगों से मिलते हैं ।
 बैठक ।
 दीघानखालसा—संज्ञा पुं० [५०] यह अधिकारी जिसके पास
 राजा या बादशाह की सुहर रहती है ।

दीघानखालसा—संज्ञा पुं० [५० + ५०] (१) खास दरवार । ऐसी
 सभा जिसमें राजा या बादशाह मंत्रियों तथा बुने हुए प्रधान
 लोगों के साथ बैठता है । (२) यह जगह या मकान जहाँ
 खास दरवार होता हो ।
 दीघाना—वि० [५०] [स्त्री० दीघानी] पागल । सिद्धी । विचित्र ।
 मुद्दा०—किसी के पीछे दीघाना होना = किसी के लिये हैरान
 होना । किसी (वस्तु या व्यक्ति) के लिये व्यथ होना ।
 दीघानापन—संज्ञा पुं० [५० दीघाना + पन (प्रत्य०)] पागल-
 पन । सिद्धीपन । विचित्रता ।
 दीघानी—संज्ञा स्त्री० [५०] (१) दीघान का पद । दीघान का
 ओहदा । (२) यह श्राद्धाल जिसमें दो फरीकों के बीच
 किसी तरह की हकीयत का फैसला हो । यह न्यायालय जो
 संपत्ति आदि संबंधी स्वत्व का निर्णय करे । व्यवहार संबंधी
 न्यायालय ।
 वि० स्त्री० [५० दीघाना] पागली । भावली ।
 दीघार—संज्ञा स्त्री० [५०] (१) पत्थर, ईंट, मिट्टी आदि को नीचे
 ऊपर रखकर ठाया हुआ परदा जिससे किसी स्थान को घेर
 कर मकान आदि बनाते हैं । भीत ।
 मुद्दा०—दीघार ठानना = दीघार बनाना । दीघार छाड़ी करना =
 दीघार बनाना ।
 (२) किसी वस्तु का घेरा जो ऊपर बड़ा हो । जैसे, टोपी की
 दीघार, जूते की दीघार, चूहे की दीघार ।
 दीघारगीर—संज्ञा स्त्री० [५०] दीघा आदि रखनेका आघार जो
 दीघार में लगाया जाता है ।
 दीघारगीरी—संज्ञा स्त्री० [५० दीघारगीर] एक प्रकार का छुपा हुआ
 कपड़ा जो दीघार में लगाया जाता है । पिछवाई ।
 दीघाल—संज्ञा स्त्री० "दे० दीघार" ।
 दीघालदंड—संज्ञा पुं० [५० दीघार + हिं० दंड] एक प्रकार की
 कसरत या दंड जो दीघार पर हाथ टिका कर करते हैं ।
 दीघाला—संज्ञा पुं० दे० "दिवाला" ।
 दीघाली—संज्ञा स्त्री० [सं० दीघाली] कार्तिक की अमावास्या
 को होनेवाला एक उत्सव जिसमें संध्या के समय घर में भीतर
 बाहर बहुत से दीपक जलाकर पंक्तियों में रखे जाते हैं और
 लक्ष्मी का पूजन होता है ।
 विशेष—जिस दिन प्रदोष काल में अमावास्या रहेगी उसी दिन
 दीघाली होगी और लक्ष्मी का पूजन किया जायगा । यदि
 अमावास्या लगतातर दो दिन प्रदोषकाल में पड़े तो दूसरे दिन
 की रात को दीघाली मानी जायगी और वह रात सुखरात्रिका
 कहाजावेगी । यदि अमावास्या प्रदोषकाल में पड़े ही न तो
 पहले दिन लक्ष्मीपूजा और दूसरे दिन दीघदान होना क्योंकि
 पावैय श्राद्ध उसी दिन होगा । दीघाली के दिन लोग अर्थात्
 खेलना भी कर्त्तव्य समझते हैं ।
 दीघि—संज्ञा पुं० [सं०] नीलकंठ नाम का पक्षी ।

दीर्घी—संज्ञा स्त्री० [हिं० दीर्घी] दीर्घतः। चिरामग्नान् ।
दीर्घाना—क्रि० प्र० [सं० दीर्घ = देहना] दिखाई देना । दिखाई
पड़ना । दृष्टिगोचर होना । ३०—विदुस्य मम विराट्मय
दीर्घा—पुल्लसी ।

दीर्घ—वि० [सं० दीर्घ] लंबा। बड़ा । ३०—बहुतामहं दीर्घपताक
कर्मिः। जनु धूम में अग्नि की ज्वाळ पसें।—केशव ।

दुंका—संज्ञा पुं० [सं० स्तोक] (अनाज का) छोटा कण । कन । दाना ।
किनकी ।

दुंगरी—संज्ञा स्त्री० [दे०] एक प्रकार का मोटा कपड़ा ।

हुंद—संज्ञा पुं० [सं० हुंद] (१) दो मनुष्यों के बीच होनेवाला
युद्ध या झगड़ा। (२) ऊषम। श्यात। उपद्रव। हलचल ।
३०—तय ही सूरज के सुमट निकट मचायो हुंद । निकसि
सकैं नहिं पकड़ करयो कटक मसमुंद ।—रूदन ।

फि० प्र०—सचना ।—सचाना ।

(३) ओड़ा। युगम । ३०—यने दीनदयाल दासि पबहुंद
अनेदीं—दीनदयाल ।

संज्ञा पुं० [सं० हुंदुमि] नगाड़ा । ३०—(क) चढ़ा घसता
गगन घन गाजा । सात्रा विरह हुंद दल बाजा ।—जायसी ।

(क) बाजत डोल हुंद भी मरी । मंदर पूर मर्मि चहुं
फेरी ।—जायसी ।

हुंदका—संज्ञा पुं० [दे०] गधा पेलने का ढोकूह ।

हुंदम—संज्ञा पुं० [सं०] तगारा । धौसा ।

हुंदुमि—संज्ञा पुं० [सं०] (१) वरुण । (२) विप । (३) मींच
हीप का एक विभाग । (४) एक पर्वत का नाम । (५) पासे
का एक दूँव । (६) एक राघव का नाम जिसे पाकि ने
मार कर श्वप्यमूक पर्वत पर फेंका था । इस पर मत्तंग
अपि ने शाप दिया था जिसके कारण पाकि उस पर्वत के
पास नहीं आ सकता था ।

संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) नगाड़ा । धौसा । ३०—(क) तब
देवन हुंदभी पभाई ।—पुल्लसी । (ख) मानद मदन हुंदुमी
दीन्धी ।—पुल्लसी ।

हुंदुमिक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का कीड़ा ।

हुंदुमिदधन—संज्ञा पुं० [सं०] सुभ्रत में लिखी हुई एक प्रकार
की विष-चिकित्सा ।

विशेष—बध, आम, गुलार, आंबजा, शंकोल इत्यादि बहुत सी
बकड़ियों का गोमूत्र में चार बनाकर और उसमें और बहुत
सी शोषणियाँ मिलाकर खेप बनावे । इस खेप को हुंदुमि,
तोराय, पताका इत्यादि में पीते । ऐसे तोराय, हुंदुमि आदि
के दूरान अथय से विष का प्रभाव दूर हो जाता है ।

हुंदुमी—संज्ञा स्त्री० दे० “हुंदुम” ।

हुंदुमार—संज्ञा पुं० दे० “हुंदुमार” ।

हुंदुद—संज्ञा पुं० [सं० हुंदम] पानी का सौर । उँहदा ।

हुंदा—संज्ञा पुं० [सं० हुंदाजः] एक प्रकार का मेड़ा जिसकी दुम

धकी के पाट की तरह गोज और भारी होती है । इसका
ऊन बहुत अच्छा होता है । इस प्रकार के मेड़े पंजाब और
काश्मीर से लेकर अफगानिस्तान और फारस तक होते
हैं । भारतवर्ष में कई स्थानों पर ऐसे मेड़ों की देगली
जाति बरपक की गई है पर इसमें विशेष सफलता नहीं
हुई है । बात यह है कि सीढ़वाले प्रदेशों में प्रायः दुम में
कई प्रकार की बीमारियाँ पैदा हो जाती हैं ।

हुंवाल—संज्ञा पुं० [सं० हुंवाळः] (१) चौड़ी रूँव । (२) नाथ
की पतवार । (३) जहाज का पिछला हिस्सा ।

हुंसुर—संज्ञा पुं० [सं० उडुंर] गुलार की जाति का एक पेड़ जो
हिमालय के किनारे चोनाब से लेकर पुरब की ओर बराबर
मिळता है । बंगाल, उड़ीसा और बामा में भी नदियों या
नालों के किनारे होता है । इस पर लाल पाई जाती है ।
इसकी छाल के रेशों से दुप्पर की काँड़ी धान आदि बांधी
जाती हैं । बरसात में इसके फल पकते हैं और खाए जाते
हैं । पर इन फलों का स्वाद फीका होता है । इसकी पत्तियाँ
कृष्ण खरदरी होती हैं और लकड़ी मात्रने के काम में जाती हैं ।

हुःकुंत—संज्ञा पुं० दे० “हुःकुंत” ।

हुःख—संज्ञा पुं० [सं०] (१) पैसी अवस्था जिससे सुटकारा पाने
की इच्छा प्राणियों में स्वाभाविक हो । कष्ट । झंझ । सुख
का विपरीत भाव । तर्कलीक ।

विशेष—सांख्यशास्त्र के अनुसार दुःख तीन प्रकार के माने
गए हैं—आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक ।
आध्यात्मिक दुःख के अंतर्गत रोग व्याधि आदि शारीरिक
दुःख और मोच, खोम आदि मानसिक दुःख हैं । आधि-
भौतिक दुःख वह है जो स्वाचर, जंगम (पशु, पक्षी, सर्प,
मच्छर आदि) भूतों के द्वारा पहुँचता है । आधिदैविक जो
देवताओं अर्थात् प्राकृतिक शक्तियों के द्वारा पहुँचता है, जैसे,
धंधी, बर्या, यज्ञघात, शीत, ताप इत्यादि । सांख्य दुःख
के शत्रुगुण का कार्य और चित्त का एक धर्म मानता है,
बामा को उससे बलगत रहता है । पर न्याय और वैशेषिक
दुःख को बामा का धर्म मानते हैं । त्रिविध दुःखों की
निवृत्ति को सांख्य ने अत्यंत पुरुषार्थ कहा है और शास्त्र-
विज्ञान का उद्देश्य बतलाया है । प्रधान दुःख जरा और
मरण हैं जिनसे लिंगशरीर की निवृत्ति के शिवा चेतन या
पुरुष सुटकारा नहीं पा सकता । इस प्रकार की मुक्ति या
अत्यंत दुःखनिवृत्ति तत्त्वज्ञान द्वारा—प्रकृति और पुरुष के
भेद ज्ञान द्वारा—ही संभव है । यदांत ने सुख-दुःख-ज्ञान
को अविद्या कहा है जिसकी निवृत्ति मद्रज्ञान द्वारा हो
जाती है ।

योग की परिभाषा में दुःख एक प्रकार का चित्तविषेप
या अंततम है जिससे समाधि में विघ्न पड़ता है । व्याधि

इत्यादि विषयिणों के अतिरिक्त योग ने चित्त के रामस कार्य को दुःख कहा है। किसी विषय से चित्त में जो खेद या कष्ट होता है वही दुःख है। इसी दुःख से द्वेष उत्पन्न होता है। जब किसी विषय से चित्त को दुःख होगा तब इससे द्वेष उत्पन्न होगा। योग परिश्राम, ताप और संस्कार तीन प्रकार के दुःख मानकर सब यस्तुओं को दुःख-मय कहता है। परिश्राम दुःख वह है जिसका अन्त्येष्टामात्र हो अर्थात् जो भविष्य में अवश्य पहुँचे, ताप दुःख वह है जो वर्तमान काल में कोई भोग रहा हो और जिसका प्रभाव या स्मरण बना हो।

क्रि० प्र०—होना।

मुद्गा—दुःख उठाना = कष्ट सहना। तर्कहीन सहना। ऐसी स्थिति में पढ़ना जिसमें सुख वा शांति न हो। दुःख पैना = कष्ट पहुँचाना। दुःख पहुँचना = दुःख होना। दुःख पहुँचाना = दे० “दुःख देना”। दुःख पाना = दे० “दुःख उठाना”। दुःख बटाना = सहानुभूति करना। कष्ट या संकट के समय धार देना। दुःख भरना = कष्ट या संकट के दिन काटना।

दुःख भुगतना या भोगना = दे० “दुःख उठाना”।

(२) संकट। आपत्ति। विपत्ति।

मुद्गा—(किसी पर) दुःख पढ़ना = आपत्ति आना। संकट उपस्थित होना।

(३) मानसिक कष्ट। खेद। रंज। जैसे, उसकी बात से मुझे बहुत दुःख हुआ।

मुद्गा—दुःख मानना = खिन्न होना। संतप्त होना। रंजीदा होना। दुःख बिसराना = (१) चित्त से खेद निकालना। शोक या रंज की बात भूलना। (२) जी बहुरतना। दुःख खगना = मन में खेद होना। रंज होना।

(४) पीड़ा। व्याधि। दर्द। (५) व्याधि। रोग। बीमारी। जैसे, इन्हें बुरा दुःख लगा है।

मुद्गा—दुःख खगना = रोग पैरना। व्याधि होना।

दुःखकर-वि० [सं०] जो दुःख उत्पन्न करे। बड़े बड़े पहुँचानेवाला।

दुःखप्राम-संज्ञा पुं० [सं०] संसार।

दुःखजीवी-वि० [सं०] कष्ट से जीवन पितानेवाला।

दुःखत्रय-संज्ञा पुं० [सं०] तीन प्रकार के दुःखों का समूह।

दुःखद-वि० [सं०] [की० दुःखदायी] दुःखदायी। कष्ट पहुँचानेवाला।

दुःखदग्ध-वि० [सं०] कष्ट में पड़ा हुआ। संतप्त। बलेशित।

दुःखदाता-संज्ञा पुं० [सं०] दुःखदग्ध। दुःख पहुँचानेवाला मनुष्य।

दुःखदायक-वि० [सं०] [की० दुःखदायिका] दुःख या कष्ट पहुँचानेवाला। जिससे दुःख हो।

दुःखदायी-वि० [सं०] दुःखदायक। [की० दुःखदायिनी] दुःख देनेवाला। जिससे कष्ट पहुँचे।

दुःखदोहा-वि० शी० [सं०] (गाय) जो कठिनाता से दुःखी जा सके। जो अर्द्धी दुःखने न दे।

दुःखनियह-वि० [सं०] दुःखद।

दुःखप्रद-संज्ञा पुं० [सं०] कष्ट देनेवाला। दुःखद।

दुःखबहुल-संज्ञा पुं० [सं०] दुःखपूर्ण। बड़े बड़े से भरा हुआ।

दुःखमय-वि० [सं०] दुःखपूर्ण। बड़े बड़े से भरा हुआ।

दुःखलभ्य-वि० [सं०] जो दुःख या कष्ट से प्राप्त हो सके। जो कठिनाता से मिल सके।

दुःखलोक-संज्ञा पुं० [सं०] संसार।

दुःखसाध्य-वि० [सं०] दुःख से होने योग्य। मुश्किल से होने वाला (काम)। जिसका करना कठिन हो।

दुःखांत-वि० [सं०] (१) जिसके अंत में दुःख हो। जिसके परिश्राम में कष्ट हो। (२) जिसके अंत में दुःख का वर्णन हो। जैसे, दुःखांत नाटक।

विशेष—प्राचीन यूनान के साहित्य-ग्रंथों में नाटक दो प्रकार के कहे गए हैं—सुखांत और दुःखांत। अतः योरप के साहित्य में नाटक वा धार्म्यांस के दो भेद माने जाते हैं। पर भारतीय साधारणों ने इस प्रकार का भेद नहीं किया है। संज्ञा पुं० (१) दुःख का अंत। बड़े बड़े की समाप्ति। (२) दुःख की पराकाष्ठा। अत्यंत अधिक कष्ट। तर्कहीन की हद।

दुःखायतन-संज्ञा पुं० [सं०] संसार। जगत्।

दुःखार्त्त-वि० [सं०] कष्ट से व्यकुल।

दुःखिन-वि० [सं०] पीड़ित। बलेशित। जिसे कष्ट या तर्क-हीन हो।

दुःखिनी-वि० शी० [सं०] [की०] जिस पर दुःख पड़ा हो। दुःखिया।

दुःखी-वि० [सं०] दुःखी [शी०] दुःखिनी] जिसे दुःख हो। जो कष्ट या तर्कहीन में हो।

दुःशाकुन-संज्ञा पुं० [सं०] बुरा शाकुन। यात्रा आदि में दिखाई पड़नेवाला कोई ऐसा चपप जिसका बुरा फल समझा जाता है। जैसे, यात्रा में तंबू का मिडना।

दुःशाला-संज्ञा शी० [सं०] गांधारी के गर्भ से उत्पन्न एतारुद्र की कन्या जो सिंधुदेश के राजा अश्वत्थ को ब्याही थी। जब महाभारत के युद्ध में अश्वत्थ मारा गया तब इसने अपने छोटे से भाइय सुगंध को रामसिंहासन पर बैठा कर बहुत दिनों तक रामकाज चलाया था। पांडवों के अरबमेघ के समय जब अर्जुन घोड़े को खेकर सिंधुदेश में पहुँचे तब सुगंध ने अपने पिता को मारनेवाले का मुद्गार्थ आगमन सुनकर भय से प्राण त्याग कर दिया। अर्जुन ने इस बात को सुन कर सुगंध के भाइय सुगंध को सिंहासन पर बैठाया।

दुःशासन-वि० [सं०] जिस पर शासन करना कठिन हो। जो किसी का दमन न माने।

संज्ञा पुं० छतरांश के १०० खण्डों में से एक जो बुद्धोंपन का अर्थात् प्रेमरात्र और संज्ञी था। यह अर्थात् स्वामाव था। पाँचव लोग जब जूए में द्वार गए थे तब यही द्वीपदी की पकड़ पर समाव्यल में खाया था और उसका वल खींचना चाहता था। इन पर भीमसेन ने प्रतिज्ञा की थी कि मैं इसका रक्षण करूँगा और जब तक इससे रक से द्वीपदी के बाहर न रँगूँगा तब तक वह बाहर न बाँचेगी। महाभारत के युद्ध में भीमसेन ने अपनी यह अर्थात् प्रतिज्ञा पूरी की थी।

- दुःशील-वि० [सं०] बुरे स्वभाव का।
 दुःशीलता-संज्ञा स्त्री० [सं०] दुष्टता। दुःस्वभाव।
 दुःशोच-वि० [सं०] (१) जिसका सुभार कठिन हो। (२) (घातु भादि) जिसका शोचना कठिन हो।
 दुःश्रय-संज्ञा पुं० [सं०] काव्य में वह श्रेय जो कर्मों को कर्करा करनेवाले यशों के धाने से होता है। श्रुतिकु श्रेय।
 दुःशर्म-वि० [सं०] निन्दनीय।
 दुःश्रेय-वि० [सं०] जिसका निवारण कठिन हो।
 दुःसंकल्प-संज्ञा पुं० [सं०] बुरा इच्छा। खोटा विचार।
 वि० बुरा संकल्प करनेवाला। बुरा इच्छा रखनेवाला। खोटी नीयत का।
 दुःसंग-संज्ञा पुं० [सं०] बुरा साथ। कुसंग। बुरी सोहबत।
 दुःसंघान-संज्ञा पुं० [सं०] केशवराज के अनुसार काव्य में एक रस जो इस स्थल पर होता है अर्थात् एक तो अनुकूल होता है और दूसरा प्रतिशूल, एक तो मेल की बात करता है दूसरा विगाड़ की। एक होय अनुकूल अर्थात् दूसरे हैं प्रतिशूल। केशव दुःसंघान इस शोभित तर्कों समूह ॥ यह पाँच प्रकार के अन्तर्गतों में से माना गया है।
 दुःसाह-वि० [सं०] जिसका सहन करना कठिन हो। जो कष्ट से सहता जाय। अर्थात् कष्टदायक। जैसे, दुःसाह पीड़ा।
 दुःसाहा-संज्ञा स्त्री० [सं०] नागरुणी।
 दुःसाध्य-वि० [सं०] (१) जिसका साधन कठिन हो। जिस का करना मुशकिल हो। जैसे, दुःसाध्य कार्य। (२) जिसका उपाय कठिन हो। जैसे, दुःसाध्य रोग।
 दुःसाधी-संज्ञा पुं० [सं०] दुःसाधिन द्वारापण।
 दुःसाहस-संज्ञा पुं० [सं०] (१) व्यर्थ का साहस। ऐसा साहस जिसका परिणाम कुछ न हो, या बुरा हो। ऐसी बात करने की हिम्मत जिसका होना असंभव हो या जिसका फल बुरा हो। जैसे, (क) इसे इस काम से रोकने जाना चाहता दुःसाहस मात्र है। (ख) खजती गाड़ी से हूँने का दुःसाहस मत करना। (२) अनुचित साहस। ऐसी बात करने की हिम्मत जो अर्थात् न समझी जाती हो।

- दिखाई। छटता। जैसे, बर्षों की बात का अन्तर देना तुम्हारा दुःसाहस है।
 दुःसाहसिक-वि० [सं०] जिसे करने का साहस करना अनुचित या निष्फल हो। जिसके लिये हिम्मत करना बुरा हो। जैसे, दुःसाहसिक कार्य।
 दुःसाहसी-वि० [सं०] बुरा साहस करनेवाला।
 दुःस्य-वि० [सं०] (१) जिसकी स्थिति बुरी हो। दुःस्यप्रसन्न। (२) दमिद। (३) सूखे।
 दुःस्थिति-संज्ञा स्त्री० [सं०] बुरी अवस्था। दुःखस्था। दुःस्य।
 दुःस्पर्श-वि० [सं०] (१) न छूने योग्य। जिसका छूना कठिन हो। (२) तिले पाना कठिन हो।
 संज्ञा पुं० (१) कपिकच्छ। फेंकाव। (२) जता करंज। (३) कटकारी। (४) आकारागंगा।
 दुःस्पर्शा-संज्ञा स्त्री० [सं०] कटिदार मकोय।
 दुःस्वप्न-संज्ञा पुं० [सं०] बुरा स्वप्न। ऐसा सपना जिसका फल बुरा माना जाता हो।
 विशेष - क्या क्या स्वप्न देखने से क्या क्या फल होता है इसका वर्णन विस्तार के साथ महावैवर्चुराण्य में है। स्वप्न में यदि कोई हँसे, नाचना गाना देखे तो समझे कि विपत्ति बानेवाली है। यदि अपने को तेज मजबूत, गद्दे, जैसे, या ऊँट पर सवार होकर दृष्टि दिखा के आते देखे तो समझना चाहिए कि शत्रु निकट है। इसी प्रकार और बहुत से फल कहे गए हैं।
 दुःस्वभाव-संज्ञा पुं० [सं०] बुरा स्वभाव। दुःशीलता। बद-मिज़ाजी।
 वि० दुःशील। दुष्ट स्वभाव का।
 दुःस्वरनाम-संज्ञा पुं० [सं०] वह पापकर्म जिससे बर्ष से प्रायश्चित्त के कठार धार हीनस्वर होते हैं। (जैन)
 दु-वि० [सं०] 'दो' शब्द का संक्षिप्त रूप जो समास बनाने के काम में आता है। जैसे, दुविधा, दुविच्छा।
 दुघन-संज्ञा पुं० दे० "दुघन"।
 दुधरघाई-संज्ञा पुं० दे० "दुधरघाई" "दुधरघाई"। व० - पियवा धार्य दुधरघा, अति किन देख। दुधरघा पाय विदेसिया, मुद धरवलय।—रहीम।
 दुधरियाई-संज्ञा स्त्री० दे० "दुधारी" "दुधारी"। छोटा दरवाजा। व०—दुधरघाई बहू दुधरिया, मीजहु पाय। पिय सन वेस्ति गामिया, विरन डोलाय।—रहीम।
 दुधा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) अर्पणा। दरवासा। विनती। पाचना।
 क्रि० प्र०—करना।
 मुद्गा—दुधा भोगना—अर्पणा करना।
 (२) आशीर्वाद। अर्पण।

क्रि० प्र०—देना ।

मुहा०—दुआ खगना = आशीर्वाद का फलीभूत होना ।

संज्ञा पुं० [हिं० दे०] गले में पहने का एक गहना ।

दुआदस—संज्ञा पुं० दे० "द्वयदस" ।

दुआय—संज्ञा पुं० दे० "दुआया" ।

दुआवा—संज्ञा पुं० [फा०] दो नदियों के बीच का प्रदेश ।

दुआर—संज्ञा पुं० [सं० द्वार] [श्री० दुआरी] द्वार ।

दुआरा—संज्ञा पुं० दे० "दुआरा" । व०—लंका बाँके चारि दुआरा ।—तुलसी ।

दुआरी—संज्ञा श्री० [हिं० दुआर] छोटा दरवाजा ।

दुआल—संज्ञा श्री० [फा०] (१) चमड़ा । चमड़े का तसमा । (२) रिकाम का तसमा ।

दुआला—संज्ञा पुं० [दे०] लकड़ी का एक वेहन जिसे सुनहरी धूपी हुई छींटे के छाये को बैठने के लिये फेरते हैं ।

दुआली—संज्ञा श्री० [फा० शक = तसमा] खराद का तसमा । खराद की यन्दी । सान की यन्दी । चमड़े का वह तसमा जिससे कतरे फूट, सिकलीगर सान और यकड़े खराद घुमाते हैं ।

दुहा—वि० दे० "दो" ।

दुहज—संज्ञा श्री० [सं० द्वितीय, प्रा० दुईज] पाल की बूसरी तिलिय । द्वितीया । दूज ।

संज्ञा पुं० [सं० द्विज] दूज का चीढ़ । द्वितीया का चंद्रमा ।

व०—कहीं लजाट दुहज कर जाती । दुहजदि जाती कहीं लग होती ?—जायसी ।

दुधौ—वि० दे० "दोनों" ।

दुकड़हा—वि० [हिं० दुकड़ + हा (प्रत्य०)] [श्री० दुकड़ी]

(१) जिसका मूल्य एक दुकड़ा हो । (२) तुच्छ । नाचीज ।

(३) नीच । कमीना । धनास्त ।

दुकड़ा—संज्ञा पुं० [सं० द्विक + ङा (प्रत्य०)] [श्री० दुकड़ी]

(१) वह वस्तु जो एक साथ या एक में लगी हुई दो दो

हो । जोड़ा । जैसे, घेतियों का दुकड़ा, रँगोछों का दुकड़ा ।

(२) वह जिसमें कोई वस्तु दो दो हो । वह जिसमें किसी वस्तु का जोड़ा हो । जैसे, चारपाई की दुकड़ी धुनावट, दुकड़ी गाड़ी । (३) दो दमड़ी । छद्राम । एक पैर का चौपाई भाग ।

विशेष—इसका हिसाब कौड़ियों से होता है । कहीं कहीं पाई

को दुकड़ा मान लेते हैं यद्यपि इसका मूल्य एक पैर का

तिहाई होता है ।

दुकड़ी—वि० श्री० [हिं० दुकड़ा] जिसमें कोई वस्तु दो दो हो ।

संज्ञा श्री० (१) चारपाई की वह धुनावट जिसमें दो दो

बाघ एक साथ बुने जाते हैं । (२) दो वृत्तियोंवाला तारा का

पत्ता । (३) दो घोड़ों की यन्वी । (४) घोड़ों का सामान जो दोहरा हो ।

संज्ञा श्री० [हिं० दो + कर्ष] वह लगाम जिसमें दो कर्षियाँ होती हैं ।

दुकना—वि० क्रि० अ० [दे०] लुकना । छिपना ।

दुकान—संज्ञा श्री० [फा०] वह स्थान जहाँ बेचने के लिये चीज़ें रखी होतीं और जहाँ प्राइक जाकर उन्हें खरीदते हों । सौदा बिकने का स्थान । माज बिकने की जगह । हट्ट । हट्टी । जैसे, कपड़े की दुकान, हलवाई की दुकान, बिसाती की दुकान ।

क्रि० प्र०—खोजना ।—बंद करना ।

मुहा०—दुकान छटना = (१) कारवार बंद करनेसे दुकान छोड़ देना । (२) दुकान बंद करना । दुकान करना = दुकान

जेकर किसी चीज की बिक्री आरंभ करना । दुकान जारी करना ।

दुकान खोलना । जैसे, एक महीने से उन्होंने चौक में गोटे

की दुकान की है । दुकान खोजना = दे० "दुकान करना" ।

दुकान चलना = दुकान में होनेवाले व्यवसाय की वृद्धि होना ।

जैसे, आनकज शहर में उनकी दुकान खूब चलती है ।

दुकान बगाना = दुकान बंद करना । दुकान में बाहर रखा

दुआ माल उठाकर किराड़े बंद करना । जैसे, (क) उनकी

दुकान रात को नी बने पड़ती है । (ख) आज न्योते में

माना था इसी लिये दुकान जल्दी बगाना । दुकान

खगाना = (१) दुकान का व्यवसाय फैलाकर ब्यापारपान बिक्री

के लिये रखना । वस्तुओं को बेचने के लिये फैलाकर रखना ।

जैसे, जरा ठहरो, दुकान खगा ले लो दे । (२) बहुत सी

चीजों को हजर उपर फैलाकर रख देना । जैसे, वह लड़का

जहाँ बैठता है वहाँ दुकान लगा देता है ।

दुकानदार—संज्ञा पुं० [फा०] (१) दुकान का मालिक । दुकान

पर बैठकर सौदा बेचनेवाला । वह जिसकी दुकान हो ।

दुकानवाला । (२) वह जिसने अपनी आय के लिये कोई

दौंग रख रखा हो । जैसे, उन्हें साधु या त्यागी कौन कहता

है, वे तो पूरे दुकानदार हैं ।

दुकानदारी—संज्ञा श्री० [फा०] (१) दुकान या बिक्री बट्टे का

काम । दुकान पर माल बेचने का काम । (२) दौंग रखकर

खयवा पैदा करने का काम । जैसे, यह सब बाबाजी की

दुकानदारी है ।

दुकाल—संज्ञा पुं० [सं० दुकाल] शकषट का समय । शकाल ।

दुमिंच । व०—(क) कलि नाम कामतूर राम को । दलन-

हार दारिद दुकाल दुख दोष धोर पवन घाम को ।—तुलसी ।

(ख) कलि बारहि बार दुकाल परे । बिन अन्न दुखी सब लोग

मरे ।—तुलसी ।

दुकुछी—संज्ञा श्री० [दे०] एक प्रकार का पुराना मात्रा जिस पर

चमड़ा मड़ा होता है ।

दुःखल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बीम वध । सन या तीसी के रते का बना कपड़ा । (२) महीन कपड़ा । भारीक कपड़ा । (३) वध । कपड़ा । ४०—साय श्या परिजनं, गार वन, बखकल विमल दुःख । नाय साय सुसदन सय, परनसाक सुखमूख । —तुवली । (४) बीहों के शाम जातक के अनुसार शाम के पिता का नाम जो एक मुनि ये ।

विरोध—शाम जातक में लिखा है कि एक दिन दुःखल अपनी पत्नी परिखा के सहित फल मूख की लोख में वन में गए । वहाँ किसी दुष्टना से ये दोनों धंघे हो गए । शाम दोनों को डूँड कर वन से खार्य और अनन्य भाव से वनकी सेवा करने लगे । एक दिन संध्या को ये धंघे माता पिता को छोड़ मदी से अक जाने गए वहाँ किसी राजा ने उन्हें श्या समझकर उनपर तीर चलाया । तीर लगने से शाम की शयु हो गई । राजा शाम के धंघे माता पिता के पास आए और कहोने वनसे सब समाचार कह सुनाया । सबके सब शत शाम के पास शोक करते हुए पहुँचे । परिवाने कहा "यदि मेरा पुत्र सखा मसचारी रहा हो, यदि बुद्धदेव में वसकी सच्ची मति रही हो तो मेरा पुत्र जी जाय" । इस प्रकार की सत्य किया करने पर शाम जी बड़े और एक देवी ने प्रकट होकर वनके माता पिता का धंधान भी दूर कर दिया ।

बीहों का यह आख्यान रामायण में दिए हुए धंधक मुनि के आख्यान का अनुकरण है जिसमें वनके पुत्र सिंधु का महाराज दुराय ने भ्रम से मारा था । धंत इतना है कि रामायण में बीनें धंधों का पुत्रोक्त में प्राय व्यापक करना लिखा है और शामजातक में शाम का जी बठना और धंधों का धंध पाना लिखा गया है ।

दुःखेला—[हि० दुःखा + एला (प्रत्य०)] [की० दुःखेला] जिसके साथ कोई दूसरा भी हो । जो अकेला न हो ।

धौ०—अकेला दुःखेला = जिसके साथ कोई न हो या एकही दो भादमी हैं । जैसे, (क) वहाँ कोई अकेला दुःखेला वस राते से निकला कि 'बाकुभी' ने का पीरा । (ख) कोई अकेली दुःखेला सवारी निभे तो धैरा सेना ।

दुःखेले—कि० वि० [हि० दुःखेला] किसी के साथ । दूसरे भादमी को साथ लिए हुए ।

यो०—अकेले दुःखेले = बिना किसी को साथ लिए या एक ही दो भादमियों के साथ । जैसे, (क) वह धुएँ अकेले दुःखेले पावेगा तो बल्य भारेगा । (ख) अकेले दुःखेले मत निक-बना ।

दुःखदुःख-संज्ञा पुं० [हि० दो + दुःख] (१) सबके की तरह का एक भासा । यह भासा गहनार्थ के साथ बनाया जाता है । इसमें एक रूँड बहुत बनी और दूसरी छोटी होती है । (२) एक में छोटी हुई या साथ पटी हुई दो भावों का जोड़ा ।

दुःका-वि० [सं० दिक] [की० दुःका] (१) जो एक साथ दो हो । जिसके साथ कोई दूसरा भी हो । जो अकेला न हो । (व्यक्ति) ।

यो०—इका दुःका = अकेला दुःका ।

(२) जो जोड़े में हो । जो एक साथ दो हो (वस्तु) ।

(३) जिसमें कोई वस्तु एक साथ दो हो ।

संज्ञा पुं० साथ का वह पचा जिसमें दो वृत्ति हो ।

दुःकी-संज्ञा स्त्री० [हि० दुःका] तारा का वह पचा जिस पर दो वृत्तियाँ बनी हैं ।

दुःखंडा-वि० [हि० दो + खंड] दो वला । जिसमें दो खंड हों । दो मरातिव का । जैसे, दुःखंडा मकान ।

दुःसंत-संज्ञा पुं० दे० "दुःसंत" ।

दुःख-संज्ञा पुं० दे० "दुःख" ।

दुःखडा-संज्ञा पुं० [हि० दुःख + डा (प्रत्य०)] (१) दुःख का वृत्त । दुःख की कथा जिसमें किसी के कष्ट या शोक का वर्णन हो । तकलीफ का हाज ।

कि० प्र०—कहना ।—सुनाना ।

मुहा०—दुःखड़ा रोना = अपने दुःख का शृणोत कहना । अपने कष्ट का हाल सुनाना ।

(२) कष्ट । तकलीफ । मुसीबत । विपत्ति ।

कि० प्र०—पढ़ना ।

मुहा०—(किसी की पर) दुःखड़ा पढ़ना = (किसी की का) रंड हो जाना । विषय हो जाना । (कि०) । दुःखड़ा पीटना = कष्ट भोगना । बहुत परिश्रम और कष्ट से जीवन बिताना । (कि०) । दुःखड़ा भरना = दे० "दुःखड़ा पीटना" ।

दुःखद०-वि० दे० दुःखद ।

दुःखदार्द०-वि० दे० "दुःखदार्दी" । ४०—खल कर संग सदा दुःखदार्दी ।—तुवली ।

दुःखदुःख-संज्ञा पुं० [सं० दुःखदुःख] दुःख का वद्वय । दुःख और आपत्ति । ४०—इन मई तकस गिशावर मारे । इरे सकल दुःखदुःख हमारे ।—सूर ।

दुःखाना-कि० अ० [सं० दुःख] (किसी धंग का) पीड़ित होना । रद करना । पीड़ापुक्त होना । जैसे, बाल दुःखाना, पैर दुःखता ।

दुःखरा०-संज्ञा पुं० दे० "दुःखरा" ।

दुःखबना०-कि० घ० दे० "दुःखाना" । ४०—माहितै केशव साख जिन्हें बकि के तिनसी दुःखये सुख हो, री ? ।—दंडव ।

दुःखाना-दि० सं० [सं० दुःख] (१) पीड़ा देना । कष्ट पहुँचाना । व्यथित करना ।

मुहा०—अ दुःखाना = मानसिक कष्ट पहुँचाना । मन में दुःख उत्पन्न करना । जैसे, कभी बात कह कर क्यों किसी का भी दुःखाते हो ?

(२) किसी के समंस्थान वा पके घास इत्यादि को छू देना जिससे वस्त्रमें पीड़ा हो। जैसे, कोड़ा दुखाना।

दुखारा-वि० [हिं ड्रुप + चार (प्रत्य०)] दुखी। पीड़ित। ४०— एक कल्प सूर देखि दुखारे।—मुजसी।

दुखारी-वि० [हिं ड्रुल + चार (प्रत्य०)] दुखी। व्यथित। लिख। ४०—जे न मित्र दुख दोहि दुखारी। तिनहिं थियोकत

पातक भारी।—मुजसी।

दुखारो-वि० दे० “दुखारा”।

दुखित-वि० दे० “दुःखित”।

दुखिया-वि० [हिं ड्रुल + इया (प्रत्य०)] दुखी। जो दुःख में पड़ा हो। जिसे किसी प्रकार का कष्ट हो।

धा०—दीन दुखिया।

दुखियारा-वि० [हिं ड्रुयिया] [स्त्री० दुखियारी] (१) दुखिया। जिसे किसी बात का दुःख हो। (२) जिसे कोई शारीरिक पीड़ा हो। रोगी।

दुखी-वि० [सं० दुःखित, दुःखी] (१) जिसे दुःख हो। जो कष्ट या दुःख में हो। ४०—पन हीन दुखी ममता बहुधा।—मुजसी। (२) जिसे मानसिक कष्ट पहुँचा हो। जिसके चित्त में खेद उत्पन्न हुआ हो। जिसके दिल में रंज हो। जैसे, उसकी बात सुनकर मैं बड़ा दुखी हुआ। (३) रोगी। बीमार।

दुखीला-वि० [हिं ड्रुल + ला (प्रत्य०)] दुःखपूर्ण। दुःख अनुभव करनेवाला। ४०—गर्भवती की चाह से दुखीले स्वभाव को पहुँच कर चलने जो कहा सोई जाया हुआ देला।—लक्ष्मणसिंह।

दुखोहा-वि० [हिं ड्रुल + होही] [स्त्री० दुखोही] दुःख-दायी। दुःख देनेवाला। ४०—सेहि पँडे कहा चखिये कपहुँ जेहि कठि लगे परा पीर दुखोही।—केशव।

दुग-संज्ञा स्त्री० दे० “धुक”।

दुगई-संज्ञा स्त्री० [दे०] ओसारा। बरामदा। ४०—अति अद्भुत धंभन की दुगई। गज दंत सुचंदन चित्रमई।—केशव।

दुगदुगी-संज्ञा स्त्री० [ऋ० ड्रुक ड्रुक] (१) वह गडबड़ा जो गरदन के नीचे और छाती के ऊपर बीचो बीच होता है। धुकधुकी।

मुद्रा—दुगदुगी में दम होना = प्राण का कंपन होना। (२) गले में पहनने का एक गहना जो छाती के ऊपर तक खटका रहता है।

दुगधा-संज्ञा स्त्री० दे० “दुग्धा”।

दुगन-वि० दे० “दुगना”।

संज्ञा स्त्री० बाजे की दूनी तेज आवाज। दून।

दुगना-वि० [सं० द्विगुण] [स्त्री० दुगनी] किसी वस्तु से उतना १२ गुणित अधिक जितनी कि बड़ाई है। द्विगुण। दुना नजीसे, (क) चार का दुगना आठ। (ल) यह चावर रसकी दुगनी है।

दुगर्दनिया घैटक-संज्ञा स्त्री० कुरती का एक पेष जो उस समय किया जाता है जब पहलवान का एक हाथ जोड़ की गरदन पर होता है और जोड़ का घड़ी हाथ पहलवान की गरदन पर होता है। इसमें पहलवान दूसरा छाकी हाथ बढ़ाकर जोड़ के जंघों में देता है और घैटक करके गर्दन दबाते हुए उसे फँक देता है।

दुगाड़ा-संज्ञा पुं० [दो + गाढ = गढ़ा] (१) दुनाजी घंटेक। दोनली घंटेक। (२) दोहरी गोली।

दुगासरा-संज्ञा पुं० [सं० दुर्ग + आस्य] वह गाँव जो किसी दुर्ग के किनारे हो। किसी दुर्ग के नीचे या चारों ओर बसा हुआ गाँव। ४०—गहो धंघेन दुर्ग आसरो। गरि गरी को इइ दुगासरो।—बाल।

दुगुण-वि० दे० “द्विगुण”।

दुगुन-वि० दे० “दुगना”। ४०—अस अस सुरसा वदन बढ़ाया। तामु दुगुन करिपु दिलाया।—मुजसी।

दुगुग-संज्ञा पुं० दे० “दुर्ग”।

दुग्ध-वि० [सं०] (१) दुधा हुआ। (२) भरा हुआ।

संज्ञा पुं० दूध।

दुग्धकूपिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] भावप्रकाश में लिखा हुआ एक पकवान जो पित्त दूध चावल और दूध के छेने से बनता है।

विशेष—उने के साथ पित्त दूध चावल की गोल लोई बनावे और इसमें गहड़ा करे। फिर इस लोई को पोड़ा धी में तब तक इसके गहड़े में एव गाड़ा दूध भर दे और गहड़े का मुँह मँदे से बंद कर दे। फिर इस दूध भरे हुए बड़े को धी में तल कर चाग्नी में ढाक दे। यह पकवान वायु-पित्त-नाशक, यक्षकारक, शुक्रवर्द्धक और दृष्टिवर्द्धक होता है।

दुग्धतालीय-संज्ञा पुं० [सं०] (१) दूध का फेन। (२) मज्जा।

दुग्धपापाय-संज्ञा पुं० [सं०] एक पेड़ जिसे बंगाल की और शिरगोबा कहते हैं।

दुग्धपुच्छी-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक पेड़ का नाम।

पर्याय—सेवकाल। नसेकरी। निगामंगा। दुग्धपैया।

दुग्धफेन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) दूध का फेन। (२) एक पौधा। चौर हिंदीर।

दुग्धफेनी-संज्ञा पुं० [सं०] एक छोटा पौधा। पयस्विनी। लुतारि। गोमापर्याय।

दुग्धबीजा-संज्ञा स्त्री० [सं०] ज्वार। जुहरी (जिसके दो दानों में से सफेद रस या दूध निकलता है)।

दुग्धसमुद्र-संज्ञा पुं० [सं०] और समुद्र। पुराणानुसार सात समुद्रों में से एक।

दुग्धाक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का नया या पत्थर जिसपर ४२ (अत्रेद सफेद कीटें होते हैं)। ४०—१०० ०६० ४३० ४४०

दुग्धाब्धि-संज्ञा पुं० [सं०] और समुद्र। ४०—४३० ४४० ४५० ४६०

दुग्धाभिव्यतनया—संज्ञा स्त्री० [सं०] बह्व्री।
दुग्धाभ्यां—संज्ञा पुं० [सं० दुग्धाभ्यां] दुग्धपायाण्य।

दुग्धिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) दुग्दी नाम की घास या घड़ी।
(२) गंधिका नाम की घास।

दुग्धिनिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] कांक्ष विषय। रक्तोरामागौ।

दुग्धी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुग्धिया नाम की घास। दुग्दी।

विं० [सं०] दुग्धिः । दुग्धयाज्ञां । जितमें दूध हो।

संज्ञा पुं० पीरदुग्ध।

दुग्धिया—वि० [हिं० दो घड़ी] दो घड़ी कां। जैसे, दुग्धिया
साथ, दुग्धिया सुहृत्।

दुग्धिया सुहृत्—संज्ञा पुं० [हिं० देवता + सं० सुहृत्] दो दो
घड़ियों के अनुसार निकाबा हुआ सुहृत्। द्विपटिका सुहृत्।

विशेष—यह सुहृत् होता के अनुसार निकाबा जाता है। रात
दिन की साठ घड़ियों को दो दो घड़ियों में विभक्त करते हैं
और फिर राशि के अनुसार शुभाष्टम समय का विचार करते
हैं। इसमें दिन का विचार नहीं किया जाता, सब दिन सब
ओर की यात्रा का विधान होता है। इस प्रकार का सुहृत् उस
समय देवा जाता है जब यात्रा किली प्रकार दूसरे दिन पर
शाली नहीं जा सकती।

दुग्धी—संज्ञा स्त्री० [हिं० दो + घड़ी] दुग्धिया सुहृत्। इ०—
दुग्धी साधि चले ततकाळा। किय विधाम न मण महिष
याळा।—तुजरी।

दुग्ध—वि० [का० दोघर्त्] दूध। द्विगुण। दूधना। इ०—(क)
पारन की पति मरा मंद मुख मैली गई, पीपति दुग्ध पीनी
घाम समाज की।—पराका। (ख) भात्र नंदनंद नू धानंद
भरे खेले काग, कोटि खंद ते दुग्ध माळदुति खास
की।—वीनदवाळ।

दुग्ध्या—संज्ञा पुं० [हिं० दो + बाण] यह क्षत्र जिसके दोनो ओर
बाण हो।

दुहित—वि० [हिं० दो + वित] (१) जिसका चित एक बात
पर स्थिर न हो। जो दुकिये में हो। जो कभी एक बात की
ओर प्रवृत्त हो, कभी दूसरी। अस्थिर चित। इ०—दुहित
कतहुं परितोष न सहरी।—तुजरी। (२) धितित।
किरुमंद। इ०—गीत गयो बहू काळ कपु भये न साके
याळ। नऊ मुचित सब दुखनि सो दुहित भयो भूपाल।—
गुमान।

दुहितार्थी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दुहित (१) एक बात पर चित के
न आने की क्रिया या भाव। चित की अस्थिरता। दुग्धया।
इ०—सोचत बनक पोच पंच परि गई है। जेति फारुमत
निदोरी कहे कैसिक सो पापुधु ओ शम को सो मेरे दुधि-
तई है। (२) सटका इ संसंका। चिंता। इ०—राधे-सुवन

वर इति रति भारी। तामु विदोह दुहितई गात्री।—
सुराज।

दुहितार्थी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दुहित (१) चित की अस्थिरता।
दुग्धया। संदेह। इ०—(क) सांची कइहु देखि सुनि के
सुख कइहु धिया कृतिल, दुहितार्थी।—सूर। (ख)
निकरी मन तें सिगरी दुहितार्थी।—केशव। (२) सटका।
चिंता। संसंका। इ०—जब धानि भई सबको दुहितार्थी।
कहि केशव काहु पी मेटि न जाई।—केशव।

दुहित्या—वि० [हिं० दो + वित] [स्त्री०] दुहित्या (१) जिसका चित
एक बात पर स्थिर न हो। जो कभी एक बात की ओर
प्रवृत्त हो कभी दूसरी। जो दुग्धे में हो। अस्थिरचित।
अन्यथास्थित चित। (२) संदेह में पड़ा हुआ। (३) जिसके
चित में सटका हो। धितित।

दुच्छक—संज्ञा पुं० [सं०] कपूर कचरी।

दुच्छक—संज्ञा पुं० [सं०] देवय = यमु सिंह। (हिं०)

दुज—संज्ञा पुं० दे० "दिग्म"।

दुजहु—संज्ञा स्त्री० [दे०] तखवार। (हिं०)

दुजड़ी—संज्ञा स्त्री० [दे०] कटाती। (हिं०)

दुजन्मा—संज्ञा पुं० दे० "दिग्जन्मा"।

दुजपति—संज्ञा पुं० दे० "दिग्पति"।

दुजराज—संज्ञा पुं० दे० "दिग्जराज"।

दुजाति—संज्ञा पुं० दे० "दिग्जाति"।

दुजानू—क्रि० वि० [का० दो जर्द] दोनो घुटनों के बल। जैसे,
दुजानू पैतना।

दुजीह—संज्ञा पुं० दे० "द्विजिह"।

दुजेश—संज्ञा पुं० दे० "द्विजेश"।

दुहक—वि० [हिं० दो + हक] दो दुहकों में किया हुआ। संहित।
इ०—किया दुहक चाप देसत ही रहे बकित सब ठाढ़े।
—सूर।

मुहा०—दुहक बात = सोड़े में कही हुई संकट बात। बिना पुनाव
फिराव की सख यात। मेथी बात जो खरी सिपरी न हो।
खरी बात। जैसे, हम सो दुहक बात कहते हैं चाहे खरी खरी
या भली।

दुडि—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुग्धि। कल्पुपी।

दुडियंद—संज्ञा पुं० [?] सूर्य। (हिं०)

दुत—अन्य० [चर्च०] (१) एक शब्द जो तिरस्कारपूर्वक हृदय
के समय बोला जाता है। दूर हो। (२) एक शब्द जो उस
मनुष्य के प्रति कहा जाता है जो कोई मूर्खता की या अनु-
चित बात कहता अथवा करता है। घृणा या तिरस्कार
सूचक शब्द।

विशेष—कभी कभी योग चर्चों आदि की बात पर व्यार से
भी 'दुत' कह देते हैं।

दुत्कार-संज्ञा स्त्री० [षु० दुत् + कार] वचन द्वारा किया हुआ अपमान । तिरस्कार । धिक्कार । फटकार ।

क्रि० प्र०—बतलाना ।

दुत्कारना-क्रि० सं० [हिं० दुत्कार] (१) दुत् दुत् शब्द काके किसी को अपमान पास से हटाना । (२) तिरस्कृत करना । धिक्कारना ।

दुत्फर्नी-वि० [फा० दो + फ० तारफ] [स्त्री० दुत्फर्नी] दोनों ओर का । जो दोनों ओर हो । जैसे, दुत्फर्नी, बाज, दुत्फर्नी रंग ।

दुत्तारा-संज्ञा पुं० [हिं० दो + तार] एक बाजा जिसमें दो तार खनो होते हैं और जो सैंगली से सितार की तरह बजाया जाता है ।

दुत्ति-संज्ञा स्त्री० दे० "दुत्ति" ।

दुत्तिमान-वि० दे० "दुत्तिमान" ।

दुत्तिय-वि० दे० "द्वितीय" ।

दुत्तिया-संज्ञा स्त्री० [सं० द्वितीया] वृज । पक्ष की दूसरी तिथि ।

दुत्तियंत-वि० दे० [हिं० दुत्ति + तंत (अप्य०)] (१) भ्रामायुक ।

चमडीला । (२) सुंदर ।

दुत्तिय-वि० "द्वितीय" ।

दुत्नीया-संज्ञा स्त्री० दे० "द्वितीया" ।

दुत्तियोरद्वीय-संज्ञा पुं० [सं०] गीलकंड ताजिक के अनुसार वर्ष प्रवेश में एक योग ।

दुत्तन-संज्ञा पुं० [दे०] पत्नी । जेरु । (कुमारक)

दुत्तरी-संज्ञा स्त्री० [दे०] एक प्रकार की मञ्जुली ।

दुत्तल-वि० [सं० द्विल] बूटने या टूटने पर जिसके दो बराबर बूख या खंड हो जायें । द्विल ।

संज्ञा पुं० (१) दाज । ४०—दुत्तल प्रकार अनेकन आने ।

बान बान के स्वाद मदाने ।—पुराण । (२) एक रीति जो हिमाचल के कम टंडे स्थानों में तथा नीबगिरी पर्वत पर बहुत होता है । इसकी बड़ बीपप के काम में आती है और

पहल के पुष्ट करनेवाली, पत्नीना और पेशाब जानेवाली होती है । जिसकी बीमारी, छाँव, चर्मरोग आदि में यह उपयोगी होती है । इसे कानकूल और बरल भी कहते हैं ।

दुत्ताना-क्रि० सं० [षु०] दुत्तकरण । ४०—भाँवे को ह आसता खगाई । सारी दोष देह दुत्तगाई ।—विश्राम ।

दुत्तद्वी-संज्ञा स्त्री० दे० "दुत्तद्वी" ।

दुत्तामी-संज्ञा स्त्री० [हिं० दो + दाम] एक प्रकार का सूती कपड़ा जो माजवे में बहुत बनता था । ४०—दुत्तामी के धान मालवा में पहले भी बनते थे, मगर शाहजहाँ बादशाह की कद्रदानी से बहुत बढ़िया बनने लगे थे ।—शाहजहाँनामा ।

दुत्तिला-वि० [हिं० दो + ला] (१) बुद्धि । दुत्तये में पढ़ा हुआ । (२) खटके में पढ़ा हुआ । धिंतिल । व्यम । धर-शायं हुआ । ४०—साँ रँग मध्ये दिजी में चौर । दुत्तिली भयो साह कित वौर ।—जाज ।

दुत्तुकारना-क्रि० सं० दे० "दुत्तुकारना" ।

दुत्तु-संज्ञा पुं० [सं०] अनुसंघीय एक राजा का नाम । (हरिवंश)

दुत्तु-संज्ञा स्त्री० [सं० दुत्तु] (१) जमीन पर फैलनेवाली एक घास जिसके डंठलों में थोड़ी दूर पर गाँठ होती है जिसके दोनों ओर एक एक पत्ती होती है । इन्हीं गाँठों पर से पतले डंठल निकलते हैं जिनमें फूलों के गोल गोल गुच्छे लगते हैं । दुत्तु दो प्रकार की होती है एक बड़ी, दूसरी छोटी । बड़ी दुत्तु की पत्ती दो बाँहे लंबी, एक लंबी चौड़ी तथा किनारे पर कुछ कुछ कटावदार होती है । बगले तिर की ओर यह चुकीली और पीछे डंठल की ओर गोल और चौकी होती है । छोटी दुत्तु के डंठल बहुत पतले और बाज हो

जाते हैं । दोनों ही बहुत महीन और दोनों तिरों पर गोल होती हैं । घेवक में दुत्तु गरम, भारी, कली, बाड़ी, कडुई, मजमून को निहालनेवाली तथा कोरु और कुमि को दूर करनेवाली मानी जाती है । बड़ी दुत्तु से बड़के गोदना गोदने का खेल भी खेलते हैं । के दूध से कुछ लिक्कर

होस पर कोयला घिसते हैं जिससे काले चिह्न बन जाते हैं ।

पर्या-संज्ञा स्त्री० । मरुद्भवा । प्राहिणी । कच्छरा । ताम्रपुत्रा ।

(२) दूर की भाति का एक छोटा पीया जो भारतवर्ष के सब गरम प्रदेशों में विशेष कर पंजाब और राजपूताने में होता है । इसका दूध दमे में दिया जाता है ।

संज्ञा स्त्री० [हिं० दूध] (१) एक प्रकार की सफेद मिट्टी । खड़िया मिट्टी । (२) सारिवा खता । (३) जंगली नीब । (४) एक पेड़ जो मद्रास, मध्य प्रदेश और राजपूताने में होता है । इसकी खकड़ी सफेद और बहुत भारी होती है और बहुत से कामों में आती है ।

संज्ञा स्त्री० [हिं० दूध] एक प्रकार का सफेद धान जिसका नाम सुभूत ने कुकुटाडक लिखा है ।

दुत्तियोर-दे० "दुत्तियोर" ।

दुत्तु-संज्ञा पुं० [सं०] व्याज का हरा पीया ।

दुत्तुपिठक-संज्ञा पुं० [सं० दुत्तु, हिं० दूध + सं० पिठक, हिं० पीज] एक प्रकार का पकवान जो गुँबे हुए जड़े की लंबी लंबी बसियों को दूध में पकाने से बनता है ।

दुत्तुमुल-वि० [हिं० दूध + मुल] दूधरीता । दूधमुह ।

दुत्तुमुह-वि० दे० "दूधमुह" ।

दुत्तुहड़ी-संज्ञा स्त्री० [हिं० दूध + हड़ी] मिट्टी का वह छोटा बरतन जिसमें दूध रखा या गरम किया जाता है । दूध की मटकी ।

दुत्तुड़ी-संज्ञा स्त्री० दे० "दुत्तुहड़ी" ।

दुत्तुधर-वि० [हिं० दूध + धर (अप्य०)] (१) दूध देनेवाली । जो दूध देती हो । जैसे, दुत्तुधर गैया । (२) जिसमें दूध हो ।

वि०, संज्ञा पुं० दे० "दुत्तुधर" ।

दुधारा-वि० [हि० दो + धार] दो धारा का । जिसमें दोनों धार धार हो (लज्जारा धुरी आदि) । जैसे, दुधारा खाई ।
 संज्ञा पुं० एक प्रकार का चौड़ा खाई या तलवार जिसके दोनों धार तेज धार होती है ।
 दुधारी-वि० स्त्री० [हि० दूध + धार (प्रत्य०)] दूध देनेवाली । जो दूध देती है । जैसे, दुधारी गाय ।
 वि० स्त्री० [हि० दो + धार] जिसमें दोनों धार धार हो ।
 व०—दुधारी तलवार ।
 संज्ञा स्त्री० यह कटारी जिसके दोनों धार तेज धार हो ।
 दुधारा-वि० दे० “दुधार”, “दुधारी” ।
 दुधिया-वि० [हि० दूध] (१) दूध मिला हुआ । जिसमें दूध पड़ा हो । जैसे, दुधिया भांग । (२) जिसमें दूध होता हो । (३) दूध की तरह सफेद । सफेद-जाति का । जैसे, दुधिया गेहूँ, दुधिया धान, दुधिया पत्थर, दुधिया कंकड़ ।
 संज्ञा स्त्री० [सं० दुग्धिका] (१) दुग्धी गाम की घास । (२) एक प्रकार की ज्वार या चरी जो बड़ौदे की धार बहुत होती है और चौपायों को खिन्नाई जाती है । (३) घड़िया मिठी । (४) कलियारी की जाति का एक विप । (५) एक चिड़िया जिसे चंडेरा भी कहते हैं ।
 दुधियाकंजई-वि० [हि० दुग्धिया + कंज] सफेदी लिए हुए कंजे के रंग का । नीलापन लिए भूरा ।
 संज्ञा पुं० एक रंग जो नीलापन लिए हुए भूरा अर्थात् कंजे के रंग से कुछ झुजता होता है ।
 विशेष—इस रंग में रंगने के लिये कपड़े को पहले हरे के काड़े में डुबाकर धूप में सुखाने हैं फिर कलीस में रंगते हैं ।
 दुधियापत्थर-संज्ञा पुं० [हि० दुग्धिया + पत्थर] (१) एक प्रकार का मुजायम सफेद पत्थर जिसके प्यासे ध्रादि घनते हैं । (२) एक गाय या शूद्र । विशेष—दे० “दुधिया” ।
 दुधियाविप-संज्ञा पुं० [हि० दुग्धिया + विप] कलियारी की जाति का एक विप जिसके सुंदर पीछे कारमीर चियाल हजारा के पहाड़ों तथा हिमालय के पश्चिमी भाग में मिलते हैं । पीछा इस का कलियारी ही कि तरह का सुंदर फूलों से सुशोभित होता है । इसकी जड़ में विप होता है । कलियारी की जड़ से इसकी जड़ छोटी और मोटी होती है । रंग भी कालापन लिए होता है । हजारा में इसे मोहरी और कारमीर में वनवज-नाग कहते हैं । इस विप को तेलिया विप और मीठा जहर भी कहते हैं ।

दुधेली-संज्ञा स्त्री० दे० “दुग्धी (२)” ।
 दुधेल-संज्ञा [हि० दूध + धल (प्रत्य०)] बहुत दूध देनेवाली । दुधार । जैसे, दुधेल गाय ।
 दुनया-संज्ञा पुं० [सं० दुन, हि० दो + सं० नदी, प्रा० नदी] यह

स्थान जहाँ दो नदियाँ एक दूसरे से मिलती हैं । दो नदियों का संयम स्थान ।
 दुनरना-वि०-क्रि० प्र० । क्रि० सं० दे० “दुनयना” ।
 दुनयना-वि०-क्रि० प्र० [हि० दो + नयना = जुगना] कितरी नरम या लचीली वस्तु का इस प्रकार मुकना कि इसके दोनों धार एक दूसरे से मिल जाय या पास पास हो जाय । लच कर दोहरा हो जाता । इस प्रकार नमित होना कि बीच से दोनों अर्द्धभाग प्रायः एक दूसरे के समांगतर हो जाय ।
 व०—कठिन न सोचिये जायक, रमत न भीति । दुनप केस न दूदत, यह परतीति ।—रहीम ।
 क्रि० सं० लचाकर दोहरा कर देना । इस प्रकार मुकाना कि दोनों धार एक दूसरे से मिल जाय या पास पास हो जाय ।
 दुनाली-वि० स्त्री० [हि० दो + नाल] दो नलवाली । जैसे, दुनाली बंदूक ।
 संज्ञा स्त्री० दुनाली बंदूक । यह बंदूक जिसमें दो दो गोलियाँ एक साथ भरी जायें ।
 दुनियाँ-संज्ञा स्त्री० [प्र०] (१) संसार । जगत् ।
 यौ०—वीन दुनियाँ = लोक परलोक ।
 सुहृ०—दुनियाँ के पादे पर = सारे संसार में । दुनियाँ की हवा खाना = सांसारिक अस्तुभव होना । संसारी विषयो का अस्तुभव होना । दुनियाँ भर का = बहुत या बहुत अधिक । जैसे, (क) दुनियाँ भर का सामान साथ ले जाकर क्या करोगे ? (ख) दुनियाँ भर का खेड़ा । दुनियाँ से उठ जाना = मर जाना । दुनियाँ से बच रहना = मर जाना । (२) संसार के जोग । लोक । जनता । जैसे, सारी दुनियाँ इस बात को जानती है । व०—ये तमसी है गरुड मरे दुनियाँ से द्यानिधि खोजत ना ।—दयानिधि । (३) संसार का जंगल । जगत् का प्रपंच ।
 दुनियाँ-वि० [प्र० दुनिया + हि० ई (प्रत्य०)] सांसारिक । व०—जापत खेद रहे दुनियाँ । मेव बूँद की गगन तारा ।—जायसी ।
 संज्ञा स्त्री० [फा० दुनिया + हि० ई (प्रत्य०)] संसार । व०—ते विप धान खिला कहँ तारै । रक्त जो चुवा भीज दुनियाँ ।—जायसी ।
 दुनियादार-संज्ञा पुं० [फा०] सांसारिक प्रपंच में फँसा हुआ । मनुष्य । संसारी । गृहस्थ ।
 वि० बंग रथ कर अपना काम निकालनेवाला । व्यवहार-कुशल ।
 दुनियादारी-संज्ञा स्त्री० [फा०] (१) दुनियाँ का कारबार । गृहस्थी का जंगल । (२) दुनियाँ में अपना काम निकालने का रथ । यह व्यवहार-जिससे अपने काम प्रयोजन सिद्ध

दुतकार-संज्ञा स्त्री [अनु० दुत + कार] यवन द्वारा किया हुआ भयमान । तिरस्कार । धिक्कार । फटकार ।

क्रि० प्र०—बतलाना ।

दुतकारना-क्रि० सं० [हिं० इतकार] (१) हुए हुए शब्द कर्के किसी को अपने पास से हटाना । (२)- तिरस्कृत करना । धिक्कारना ।

दुतकी-वि० [फा० दो + क० तकी] [स्त्री० दुतकी] दोनों धोर का । जो दोनों धोर हो । जैसे, दुतकी/चाब, दुतकी रंग ।

दुतारा-संज्ञा पुं० [हिं० दो + तार] एक बाजा जिसमें दो तार खनो होते हैं और जो डैंगली से सितार की तरह बजाया जाता है ।

दुति-संज्ञा स्त्री० दे० "मुति" ।

दुतिमान-वि० दे० "मुतिमान्" ।

दुतिय-वि० दे० "द्वितीय" ।

दुतिया-संज्ञा स्त्री० [सं० द्वितीया] दूज । पक्ष की दूसरी तिथि ।

दुतिर्वत-वि० दे० [हिं० दुति + वत (प्रत्य०)] (१) भ्रामायुक । चमकीला । (२) सुंदर ।

दुतीय-वि० "द्वितीय" ।

दुतीया-संज्ञा स्त्री० दे० "द्वितीया" ।

दुर्धरतद्वीय-संज्ञा पुं० [सं०] नीलकंठ ताजिक के अनुसार वर्ष प्रवेश में एक योग ।

दुधना-संज्ञा पुं० [दे०] पत्नी । जोरु । (कुमाऊँ)

दुधरी-संज्ञा स्त्री० [दे०] एक प्रकार की मछली ।

दुदल-वि० [सं० दिदल] फूटने या टूटने पर जिसके दो बराबर ढूज या खंड हो जायें । द्विपुल ।

संज्ञा पुं० (१) ढाल । ढ०—दुदल प्रकार के फनेकन भाते । बरन बरन के स्वाद महाने—रघुराज । (२) एक पौधा जो हिमालय के कम उंचे स्थानों में तथा नीलगिरि पर्वत पर बहुत होता है । इसकी जड़ औषध के काम में धाती है और पकृत को पुष्ट करनेवाली, पत्तीना और पेशाब जानेवाली होती है । जिनकी की घीमारी, श्राव, चर्मरोग भादि में यह धपकारी होता है । इसे कानकूज और बरन भी कहते हैं ।

दुदलाना-क्रि० सं० [अनु०] दुतकारना । ढ०—भावे कोह भासरा खगाई । लागी दोष देह दुदलाई ।—विभ्राम ।

दुदहँडी-संज्ञा स्त्री० दे० "दुधहँडी" ।

दुदामी-संज्ञा स्त्री० [हिं० दो + दाम] एक प्रकार का सूती कपड़ा जो माजबे में बहुत बनता था । ढ०—दुदामी के धान मालवा में पहले भी बनते थे, मगर शाहजहाँ बादशाह की कदरदानी से बहुत बढ़िया बनने लगे थे ।—शाहजहाँनामा ।

दुदिला-वि० [हिं० दो + ला० ढिल] (१) दुश्चिन्ता । दुःख में पड़ा हुआ । (२) लटके में पड़ा हुआ । चिंतित । व्यग्र । यश-रासं दूधा । ढ०—हो रँग मय्या दिदी में बीरे । दुदिलो मया साह किता बीरे ।—जाब ।

दुदकारना-क्रि० सं० दे० "दुतकारना" ।

दुदुह-संज्ञा पुं० [सं०] अनुवृत्तीय एक राजा का नाम । (हरिवंश)

दुदुकी-संज्ञा स्त्री० [सं० दुदुकी] (१) जमीन पर फैलनेवाली एक घास जिसके डंडलों में पौड़ी दूर पर गठें होती हैं जिनके दोनों धोर एक एक पत्ती होती है । इन्हीं गठों पर से पतले डंडल निकलते हैं जिनमें फूलों के गोख गोख गुच्छे खगते हैं । दुदुकी दो प्रकार की होती है एक बड़ी, दूसरी छोटी । बड़ी दुदुकी की पत्ती दो बाईं ओर गुञ्ज खंबी, एक ओर गुञ्ज पौड़ी तथा किनारे पर कुछ कुछ कटावदार होती है । अगले सिरे की धोर यह चुकीली धोर पीछे डंडल की धोर गोख और पौड़ी होती है । छोटी दुदुकी के डंडल बहुत पतले और जाब हो जायें भी बहुत महीन और दोनों सिरे पर गोख होती हैं । घेवक में दुदुकी गरम, भारी, क्ली, बादी, कडुई, मखनूज के निहालनेवाली तथा कौड़ और कुमि को दूर करनेवाली मानी जाती है । बड़ी दुदुकी से बड़के गोदना गोदने का खेव भी खेवते हैं । के दूध से कुछ लिबकर इस पर कोयला बिसते हैं जिससे काबे चिद्द बन जाते हैं ।

पूर्या-—शीरी । मरुदूजवा । माहिषी । कच्छा । तात्रदूजा ।

(२) पूर की जाति का एक छोटा पौधा जो भारतवर्ष के सब गरम प्रदेशों में विशेष कर पंजाब और राजपूताने में होता है । इसका दूध दमे में दिया जाता है ।

संज्ञा स्त्री० [हिं० दूध] (१) एक प्रकार की सफेद मिट्टी ।

सद्विया मिट्टी । (२) सारिया लता । (३) जंगली नीब ।

(४) एक पेड़ जो मद्रास, मध्य प्रदेश और राजपूताने में होता है । इसकी लकड़ी सफेद और बहुत सफेदी होती है और बहुत से कामों में धाती है ।

संज्ञा स्त्री० [हिं० दूध] एक प्रकार का सफेद घान जिसका नाम सुभ्रत ने कुकुटालक जिस्सा है ।

विशेष—दे० "दुधिया" ।

दुदुम-संज्ञा पुं० [सं०] प्याज का हरा पौधा ।

दुधपिठवा-संज्ञा पुं० [सं० दुध, हिं० दूध + सं० पिठक, हिं० पीठ] एक प्रकार का पकवान जो गुंघे हुए मैदे की खंबी खंबी बतियों को दूध में पकाने से बनता है ।

दुधमुख-संज्ञा-वि० [हिं० दूध + मुख] दूधपीता । दूधमुहा ।

दुधमुहा-वि० दे० "दूधमुहा" ।

दुधहँडी-संज्ञा स्त्री० [हिं० दूध + हँडी] मिट्टी का वह छोटा बरतन जिसमें दूध रखा या गरम किया जाता है । दूध की मंढकी ।

दुधौड़ी-संज्ञा स्त्री० दे० "दुधहँडी" ।

दुधार-वि० [हिं० दूध + ऋ (प्रत्य०)] (१) दूध देनेवाली । जो दूध देती हो । जैसे, दुधार गैया । (२) जिसमें दूध हो । वि०, संज्ञा पुं० दे० "दुधारा" ।

पीड़ा । पसेपेश । ४०—को जाने दुबरा सकोच में तुम हर निकट न आवैं।—सूर । (४) लटका । चिंता ।

दुबरा—वि० [सं० दुबंश] [की० दुबरी] दुबला । शरीर से पीया । ३०—करी खरी दुबरी खुज्जगि तेरी चाह खुरैक।—विहारी ।
दुबराही—संज्ञा स्त्री० [हिं० दुबरा + हीं. (प्रत्य०)] (१) दुबैलता । कृपाता । (२) कमजोरी । अशक्तता ।

दुबराणा—क्रि० अ० [हिं० दुबरा + ना (प्रत्य०)] दुबला होना । शरीर से पीया होना । ४०—जले न कंत सहदेवा फिरि दुबराय । धनिर्या कमल-वदनिर्या, गइ कुम्हिलाय ।—रहीम ।

दुबराल गोला—संज्ञा पुं० [हिं० दो + लं० गैल + हिं० गोला] तोप का लंबोत्तरा गोला ।

दुबराल पलंग—संज्ञा पुं० [हिं० दुबरा + लं० पुलिंग] पाख की वह दोरी जिसे लीच कर पाख के पीटे की हवा निकालते हैं ।

दुबला—वि० [सं० दुबल] [स्त्री० दुबली] (१) पीया शरीर का । जिसका वदन हलका और पतला हो । कृश ।

धै०—दुबला पतला ।

(२) शरणा । कमजोर ।

दुबलारपन—संज्ञा पुं० [हिं० दुबला + पन] कृपाता । पीयाता ।

दुबारन—संज्ञा स्त्री० [हिं० 'दूरे' का स्त्री०] दूरे की स्त्री ।

दुबागा—संज्ञा पुं० [हिं० दो + सं० प्रगह, हिं० पगहा, नगई] सन की मोटी रस्सी ।

दुबारा—क्रि० वि० दे० "दोबारा" ।

दुबाला—वि० दे० "दोबाला" । ३०—करैं हैं इस परी के घाबे जोघन को दुबाला सा ।—नजीर ।

दुबाहिया—संज्ञा पुं० [सं० दिवाह] दोनों हाथों से तलवार चबाने-बाबा योद्धा ।

दुबिद—संज्ञा पुं० दे० "द्विदिद" ।

दुबिध—संज्ञा स्त्री० दे० "दुबिधा" ।

दुबिधा—संज्ञा स्त्री० दे० "दुबिधा" । ४०—को जाने दुबिधा सँकोच में तुम हर निकट न आवैं।—सूर ।

दुबिसी—संज्ञा स्त्री० [हिं० दो + बीस] एक प्रकार का कमीशन जो गवर्नमेंट किसानों को देती है, अर्थात् बीस ४० के अंश पर दो रुपये ।

दुबीचा—संज्ञा पुं० [हिं० दो + बीच] (१) दो बातों के बीच किसी एक बात का निरचय न होना । दुबचा । (२) संशय । संदेह । (३) अस्पष्टता । आशा पीड़ा । (४) लटका । चिंता ।

दुबे—संज्ञा पुं० [सं० द्विदेरी] [स्त्री० दुबदन] भाक्षकों का एक भेद ।

दुभासी—संज्ञा पुं० दे० "दुभासी" । ४०—अगुन सगुन बिच नाम सुसाखी । हमय प्रबोधक चतुर दुभासी ।—गुलसी ।

दुभापिया—संज्ञा पुं० [सं० द्विभाषी] दो भाषाओं का जाननेवाला ऐसा मनुष्य जो वन भाषाओं के योद्धावले दो मनुष्यों को एक दूसरे का अभिप्राय समझावे । दो भिन्न भिन्न भाषाएँ योद्धावलों के बीच का मध्यस्थ ।

दुभापी—संज्ञा पुं० [सं० द्विभाषिन्] दुभापिया । ४०—अगुन सगुन बिच नाम सुसाखी । हमय प्रबोधक चतुर दुभासी ।—गुलसी ।

दुमंजिला—वि० [का०] [स्त्री० दुमजिनी] दोखंदा । दोमतात्तक का । जैसे, दुमंजिला मकान ।

दुम—संज्ञा स्त्री० [का०] (१) पूँछ । पुच्छ ।

मुदा०—दुम के पीछे फिरना=साथ साथ लग्न फिरना । पीछे पीछे घूमना । साथ न छोड़ना । दुम दबाकर भागना=हरकोक कुत्ते की तरह डरकर भागना । डर के मारे न उठना । दबकर भागना (कुत्ते जब अपने से अधिक कुत्ते को देखते हैं तब डर के मारे पूँछ दोनों दिशाओं के बीच दबा लेते हैं) । दुम दबा जाना=(१) डर के मारे हट जाना । डर से भागना । (२) डर के मारे किसी बात से हट जाना । भयवश किसी काम से पीछे हट जाना । डर के मारे किसी काम से अलग हो जाना । दुम में घुसना=गायब हो जाना । दूर हो जाना । जैसे, एक चाँदा दूँगा सारी मदमायी दुम में घुस जायगी । दुम में घुसा रहना=खुशामद के मारे साथ लग्न रहना । शुश्रूषा के बिगै सदा साथ में रहना । दुम में रक्सा बधि = नदखत बीयाए की तरह बाँध कर रक्खूँ । (एक विनोद-सूचक वाक्य जो प्रायः किसी पर विगड़ कर बोलाते हैं) ।

दुम हिलाना=कुत्ते का दुम हिला कर अश्रुता प्रकट करना ।

(२) पूँछ की तरह पीछे खगी या चँची हुई वस्तु । जैसे, सितारे की दुम, टेरी की दुम ।

धै०—दुमदार ।

(३) पीछे पीछे खगा रहनेवाला आदमी । विद्वग्गु ।

(४) किसी काम का सब से अंतिम योद्धा सा अंग ।

दुमची—संज्ञा स्त्री० [का०] (१) धोड़े के साथ में वह तसमा जो पूँछ के नीचे दबा रहता है । (२) दोनों निठों के बीच की हड्डी । पुट्टों के बीच की हड्डी । ४०—बरणे दूनी हट चढ़े ना सकुचे न सकाय । दूटति कटि दुमची मचक खचकि लचकि बधि जाय ।—विहारी ।

दुमदार—वि० [का०] (१) पूँछवाला । (२) जिसके पीछे पूँछ की सी कोई वस्तु खगी या चँची हो । जैसे, दुमदार सितारा, दुमदार टोपी ।

दुमन—वि० [सं० दुर्मन्स, दुर्मना] अनमना । अस्पष्ट । सिल ।

दुमाता—वि० [सं० इमट्ट] (१) पुत्री माता । (२) सौतेली माँ ।

हो। स्वार्थसाधन। (३) दिहाऊ या धनावधी व्यवहार।
दुगव। द्विगव।

मुहा०—दुनियावारी की बात = यनावटी बात। इपर उपर की
बात जो केवल प्रसन्न करने के लिये कही जाय। बड़ो चप्पो।
जैसे, दुनियावारी की बात रहने दो, अपना ठीक ठीक मत-
खय बतजायो।

दुनियासाज-वि० [फा०] (१) उंग रच कर अपना काम निका-
खनेवाला स्वार्थसाधक। (२) भ्रवसर देखकर सुहानेवाली
बात करनेवाला। बड़ो चप्पो करनेवाला। चापलूस।

दुनियासाजी-संज्ञा स्त्री० [फा०] (१) अपना मतखय निकालने
का उंग। स्वार्थसाधन की वृत्ति। (२) चापलूसी। बात
पनाने का उंग।

दुनी-संज्ञा स्त्री० [अ० दुनियाँ] संसार। जगद। व०—(क)
सातो द्वीप दुनी सत्र नये।—जायसी। (ख) कविरुंद
वदार दुनी न सुनी। गुण्य दूषण्य मात न कोपि गुनी।—
तुलसी। (ग) तुमही जग है जग है तुमही में। तुम ही
बिरची मर्याद दुनी में।—केशव।

दुपटा-संज्ञा पुं० दे० "दुपट्टा"। व०—पौढ़े हुते पलिंगा पर
थी मुख ऊपर छोट किए दुपटा की।—सुंदर।

दुपटी-संज्ञा स्त्री० [हिं० उपटा] चादर। दुपट्टा। व०—सम
भाति फटी हुल की दुपटी कपटी न रहे ऊँट एक घटी।
—देशय।

दुपट्टा-संज्ञा पुं० [हिं० दो + पाट] [खी० अल्प० दुपट्टी] (१)
छोढ़ने का वह कपड़ा जो दो पाटों को जोड़ कर बना हो।
दो पाट की चादर। चादर।

मुहा०—दुपट्टा तान कर सोना = निरिच्छत होकर सेना।
बेलटके सेना। दुपट्टा बदलना = छहेली बनाना। सखी
बनाना। (छि०)

(२) कंचे या गले पर ढाबने का लंबा कपड़ा।

दुपट्टी-संज्ञा स्त्री० दे० "दुपटी"।

दुपद-संज्ञा पुं० दे० "द्विपद"। व०—चारी वेद पड़े मुख-भाग
है वामन चतुष्पारी। अषट् दुपद पशु भाषा वृक्षे। अविगत
अल्प अहारी।—सूर।

दुपदी-संज्ञा स्त्री० [हिं० दो + फा० पदी] वह मिरजई, फतुदी
या नीमखीन जिसमें दोनों ओर पदे हों। मगलपदी।

दुपहर-संज्ञा स्त्री० दे० "द्वैपहर"। व०—जेहि निहाय दुपहर
रहै भई माह की राति। तेहि वसीर की रावटी खरी आवटी
जाति।—बिहारी।

दुपहरिया-संज्ञा स्त्री० [हिं० दो + पहर] †(१) मर्याद का
समय। दोपहर। (२) एक छोटा पीजा जो फूलों के लिये
सगीचों में लगाया जाता है। यह देढ़े दो हाथ ऊँचा
और एक सीपे छोड़े बंडल के रूप में होता है। इसमें

शाकाएँ या टहनियाँ रहतीं फूटतीं। पत्तियाँ इसकी आठ इस
अंगुल लंबी, अंगुल देढ़ अंगुल चौड़ी और किनारे पर कटाव-
वार और गहरे हरे रंग की होती हैं। फूल इसके गोख
कटोरे के आकार के और गहरे बाल रंग के होते हैं। इन
फूलों में पाँच दल होते हैं। फूलों के मूड़ जाने पर जो
धीजकौरा रह जाता है उसमें राई के दाने से काब्रे काब्रे
धीज पड़ते हैं। वैद्यक में दुपहरिया मलरोधक, ऊँड़ शाम,
भारी, कफकारक, ज्वरनाशक तथा वात पित्त को दूर करने-
वाली मानी जाती है। व०—पग पग मग अगमन परति
चरन अरुन दुति कूजि। ठीर ठीर अखियत वटे दुपहरिया
से फूजि।—बिहारी।

दुपटी-संज्ञा पुं० दे० "दुपहरिया"।
दुपी-संज्ञा पुं० [सं० द्विप] हाथी। (हिं०)
दुफसली-वि० [हिं० दो + फ० फल] दोनों फसलों में बल्ल
होनेवाला। यह जिस जो रबी और खरीफ दोनों में हो।
वि० स्त्री० दुबधे का। अनिश्चित। संदिग्ध। व०—दुफसली
बात कहना ठीक नहीं।

दुबकना-कि० अ० दे० "दुबकना"।
दुबगली-संज्ञा स्त्री० [हिं० दो + गल] मालखन की एक कस-
रत जिसमें बेंत को दोनों पगलों में से निकाल कर हाथ
जैचे करके उसे ऐसा जपेटले हैं कि एक कुंडल सा बन
जाता है। फिर दोनों पैरों को सिर की ओर उड़ाते हुए
वसी कुंडल में से निकल कर कलापाड़ी के साथ नीचे
गिरते हैं।

दुबज्योरा-संज्ञा पुं० [हिं० दू + ज्योरा] गले में पहनने का एक
गहना जिसकी बनावट गोप की तरह की होती है।

दुबड़ा-संज्ञा पुं० [हिं० दू] एक प्रकार की घास जो चारे के
काम में आती है।

दुबधा-संज्ञा स्त्री० [सं० द्विधा] (१) दो में से किसी एक बात
पर चित्त के न समने की क्रिया या भाव। अनिश्चय। चित्त
की अस्थिरता। व०—दुबधा में देख गए माया मित्रो न
राम।

मुहा०—दुबधे में राजना = अनिश्चित दशा में फटना।
दुबधे में पड़ना = अनिश्चित श्वरपा में पड़ना।

(२) संशय। संदेह। जैसे, दुबधे की बात मत कहो, ठीक
ठीक बताओ कि आवैतो या नहीं। (३) असमंजस। आगा-

पीड़ा। पसोपेय। व०—को जाने दुबरा सकोच में तुम वर निकट न आवैं।—सूर। (७) खटका। चिंता।

दुबरा—वि० [सं० दुर्वच] [स्त्री० इवरी] दुबला। शरीर से पीया। व०—करी खरी दुबरी सुचगि तेरी चाह सुरैल।—विहारी।
दुबराई—संज्ञा स्त्री० [हिं० दुबरा + ई (प्रत्य०)] (१) दुर्धृष्टता। क्रूरता। (२) कमजोरी। अशक्तता।

दुबराणा—क्रि० अ० [हिं० दुबरा + ना (प्रत्य०)] दुबला होगा। शरीर से पीया होगा। व०—बापे न कंत सहदेवा फिर दुबराय। घनियाँ कमल-वदनियाँ, गढ़ कुम्हियाय।—रहीम।

दुबराळ गोला—संज्ञा पुं० [हिं० दो + अ० नैल + हिं० गोक्ष] तोप का लंबोत्तार गोला।

दुबराळ पलंग—संज्ञा पुं० [हिं० दुबराळ + अ० पुलिंग] पाल की वह छोरी जिसे लीच कर पाल के पेटे की हवा निकालते हैं।

दुबला—वि० [सं० दुर्वच] [स्त्री० इवरी] (१) पीया शरीर का। जिसका वदन हलका और पतला हो। क्रूर।

धौ०—दुबला पतला।

(२) धराक। कमजोर।

दुबलायन—संज्ञा पुं० [हिं० दुबला + यन] क्रूरता। पीयता।

दुवाइन—संज्ञा स्त्री० [हिं० 'द्वै' का स्त्री०] दूधे की स्त्री।

दुवाणा—संज्ञा पुं० [हिं० दो + सं० प्रमह, हिं० पगह, वगई] सन की मोटी रस्ती।

दुबारा—क्रि० वि० दे० "दोबारा"।

दुबाला—वि० दे० "दोबाला"। व०—करैं हँ इस परी के बाळे जेयन को दुबाला सा।—मजीर।

दुबाहिया—संज्ञा पुं० [सं० दिवाह] दोनो हाथों से तलवार चखाने-पाखा योद्धा।

दुविद—संज्ञा पुं० दे० "द्विविद"।

दुविघ—संज्ञा स्त्री० दे० "द्विविघ"।

दुविधा—संज्ञा स्त्री० दे० "द्विविधा"। व०—को जानै दुविधा संशय में तुम वर निकट न आवैं।—सूर।

दुबिस्ती—संज्ञा स्त्री० [हिं० दो + बीस] एक प्रकार का कमीरान जो गयनमैट किसानों को देती है, अर्थात् बीस ह० के बगान पर दो रुपये।

दुबीचा—संज्ञा पुं० [हिं० दो + बीच] (१) दो यातों के बीच किसी एक बात का निरचय न होना। दुबचा। (२) संशय। संदेह। (३) अद्यमंजस। धागा पीचा। (४) खटका। चिंता।

दुचे—संज्ञा पुं० [सं० द्विदो] [स्त्री० इवदन] माहियों का एक भेद।

दुमासी—संज्ञा पुं० दे० "दुमापी"। व०—अगुन सगुन विच नाम सुसासी। उमय प्रबोधक चतुर दुमासी।—मुल्सी।

दुमापिया—संज्ञा पुं० [सं० दिमापी] दो भाषाओं का जानेवाला ऐसा मनुष्य जो उन भाषाओं के बोलनेवाले दो मनुष्यों को एक दूसरे का धर्मिप्राय समझावे। दो निम्न मित्र भाषाएँ बोलनेवालों के बीच का मध्यस्थ।

दुमापी—संज्ञा पुं० [सं० दिमापिन्] दुमापिया। व०—अगुन सगुन विच नाम सुसासी। उमय प्रबोधक चतुर दुमासी।—मुल्सी।

दुमंजिला—वि० [फा०] [स्त्री० इमजिली] दोखंडा। दो मरातिय का। जैसे, दुमंजिला मकान।

दुम—संज्ञा स्त्री० [फा०] (१) रूँड़। पुच्छ।

मुह०—दुम के पीछे चित्त=साप साप लगा करना। पीछे पीछे दुमना। साप न छोड़ना। दुम दबाकर भागना=वरजोफ कुत्ते की तरह डर कर भागना। डर के मारे न उठना। दबकर भागना (कुत्ते जब अपने से बलिष्ठ कुत्ते को देखते हैं तब डर के मारे पूँछ दोनों टंगों के बीच दबा खेतें हैं)। दुम दबा जाना=(१) डर के मारे हट जाना। डर से भाग जाना। (२) डर के मारे कित्ती बात से हट जाना। मजबूत किसी काम से पीछे हट जाना। डर के मारे कित्ती काम से अलग हो जाना। दुम में घुसना=जायब हो जाना। दूर हो जाना। जैसे, एक चिया दूँगा सारी बदमाशी दुम में घुस जायगी। दुम में घुसा रहना=खुरामद् के मारे साप लगा रहना। शुभ्रा के जिये सदा साप न रहना। दुम में रस्ता बाँधू=नटखट बौयाए की तरह बीच कर रक्खू। (एक चिनाद-सूचक वाक्य जो प्रायः किसी पर दिगाड़ कर बोलते हैं)। दुम हिलाना=कुत्ते का दुम हिला कर प्रश्रुता प्रकट करना। (२) पूँछ की तरह पीछे लगी या बँधी हुई वस्तु! जैसे, सितारे की दुम, टोपी की दुम।

धौ०—दुमदार।

(३) पीछे पीछे लगा रहनेवाला भादमी। विजलगू।

(४) किसी काम का तब से अंतिम योद्धा सा संशय।

दुमची—संज्ञा स्त्री० [फा०] (१) घोड़े के साम में वह तसमा जो पूँछ के नीचे दया रहता है। (२) दोनो नितंबों के बीच की हड्डी। घुड़ों के बीच की हड्डी। व०—बाजे दूनी हड चढ़े ना सकुचे न सकाय। दूटति कटि हुमची मचक खचकि लचकि बचि जाय।—विहारी।

दुमदार—वि० [फा०] (१) पूँछवाला। (२) जिसके पीछे पूँछ की सी कोई वस्तु लगी या बँधी हो। जैसे, दुमदार सितारा, दुमदार टोपी।

हुमन—वि० [सं० इमनस्, इमना] अममना। अग्रसख। रिजल।

दुमाता—वि० [सं० उमाटि] (१) बुरी माता। (२) सौतेली माँ।

४०—माते को मोह, न द्रोह दुमात को, सोच न तात के गात बूढ़े को। ता न भूमि में राम क्यो मोहिं सोच विभीषन रूप कहे को।—धीपति।

दुमाला-संज्ञा पुं० [हिं० दो+माला] पाश। फंदा।

दुमुह-वि० दे० "दोमुह"।

दुरंगा-वि० दे० "दुरंगा"।

दुरंगा-वि० [हिं० दो+रंग] [स्त्री०दुर्गा] (१) दो रंगों का। जिसमें दो रंग हों। जैसे, दुरंगा कपड़ा। (२) दो तरह का। दो प्रकार का। (३) दो तरह की चाल चलनेवाला। दो पक्ष अवलंबन करनेवाला।

दुरंगी-वि० स्त्री० दे० "दुरंगा"।

संज्ञा स्त्री० द्विविधा। कुछ इस पक्ष का कुछ उत पक्ष का अवलंबन। जैसे, दुरंगी छोड़ दे एक रंग हो जा।

दुरंत-वि० [सं०] (१) जिसका श्रत या पार पाना कठिन हो। अपार। बड़ा भारी। ४०—काल-कौट-सत सतिर अति दुस्तर, दुर्ग, दुरंत।—मुजसी। (२) दुर्गम। दुस्तर। कठिन। जिसे करना या पाना सहाज न हो। ४०—बह उ हृती प्रतिमा समीप की सुप्त संपत्ति दुरंत जई री।—सूर। (३) घोर। प्रचंड। भीषण। (४) जिसका श्रत या परिश्रम बुरा हों। अशुभ। बुरा। कुस्तित। ४०—पुत्र हैं विधवा करी सुन कर्म कीन दुरंत।—केशव। (५) दुष्ट। शूल।

दुरंतक-संज्ञा पुं० [सं०] शिव।

दुरंघा-वि० [सं० दिग्घ] दो छिद्रवाला। आर पार छेदा हुआ। ४०—अंधे कंधे दुरंधे करे अंग। सोंधे सुगंधेनू, कां पाह के अंग।—सूरत।

दुर-अभ्य० या उप० [सं०] इसका प्रयोग इन अर्थों में होता है। (१) दूषण, (बुरा अर्थ) जैसे, दुर्गाम, दुर्दिन, (२) निषेध, जैसे, दुर्बल। (३) दुःख या कष्ट, जैसे दुर्गम।

दुर-अभ्य० [हिं० दूर] एक शब्द जिसका प्रयोग तिरस्कारपूर्वक हटाने के लिये होता है और जिसका अर्थ है "दूर हो"।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग कुत्तों के लिये विशेष कर होता है। कभी कभी किसी बात पर योंही प्यार से भी लोग बच्चों आदि को "दुर" कह देते हैं, जैसे, "दुर! पगली, क्या यकती है?"।

मुहा०—दुर दुर करना=तिरस्कारपूर्वक हटाना। कुत्तों की तरह भगाना। दुर दुर फिट फिट=तिरस्कार।

संज्ञा पुं० [फा०] (१) मोती। मुका। (२) मोती का वह जटकन जो चाक में पहना जाता है। जोसक। (३) छोटी बाली। ४०—काल्ह कुंघर, को कनछेदना दे हाथ सुहारी भेजी गुर की।.....कंधन के है दुर मँगाय लिए कहे कहा छेदन आतुर की।—सूर।

दुरखा-संज्ञा पुं० [दे०] [स्त्री० दुरखी] एक प्रकार का फलना जो नील, लमख, सरसो, गेहूँ इत्यादि की फसल को सुकसान पहुँचाता है।

दुरखी-संज्ञा पुं० [दे०] बरी के ताने के दो दो सुतों को इस लिये एक में बाँधना जिसमें ये बलक न जाँय।

दुरजन-संज्ञा पुं० दे० "दुर्जन"। ४०—इग घरमत हूटत कुट्टम-अति चतुर संग मीति। परति गति दुरजन-हिये दई नई यह रीति।—विहारी।

दुरजोधन-संज्ञा पुं० दे० "दुर्जोधन"।

दुरतिक्रम-वि० [सं०] (१) जिसका अतिक्रमण न हो सके। जिसका बलघन न हो सके। जिसके बाहर या विरुद्ध कोई न हो सके। प्रबल। ४०—अंधकटाह अमित लपकारी काल सदा दुरतिक्रम भारी।—मुजसी। (२) अपार। जिसका पार पाना कठिन हो।

दुरत्यय-वि० [सं०] (१) जिसका पार पाना कठिन हो। अपार। (२) जिसका अतिक्रमण न हो सके। दुस्तर।

दुरद-संज्ञा पुं० दे० "द्विरद"।

दुरदाम-वि० [सं० दुर्दम] कठिन। कष्ट-साध्य। ४०—हरि राधा राधा रदन जगत मंत्र दुरदाम। विरह विराग महायोगी ज्यों वीतत हूँ सय याम।—सूर।

दुरदाल-संज्ञा पुं० [हिं० दिरद] हाथी।

दुरदुराना-किं० सं० [हिं० डडर] तिरस्कारपूर्वक दूर करना। अपमान के साथ भगाना या हटाना।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग विशेषतः कुत्तों के लिये होता है। संयोग क्रि०—देना।

दुरधिगम-वि० [सं०] (१) जो पहुँच के बाहर हो। दुष्प्राप्य। (२) जो समझ के बाहर हो। दुर्बोध।

दुरध्व-संज्ञा पुं० [सं०] कुपण। कुमार्ग। बुरा रास्ता।

दुरना-किं० अ० [हिं० दूर] (१) बाँधों के बागों से दूर होना। श्रत में होना। आद में जाना। (२) न दिखलाई पड़ना। न प्रकट होना। छिपना। ४०—वै मीति नहिं दुरत दुराद।—मुजसी। संयोग क्रि०—जाना।

दुरपदी-संज्ञा स्त्री० दे० "दुर्पदी"।

दुरवचा-संज्ञा पुं० [फा० दुर+हिं० वचा] एक मोती। छोटी याकी जिसमें एक मोती हो।

दुरबल-वि० दे० "दुर्बल"।

दुरवास-संज्ञा पुं० [सं० वास] दुर्गम बुरी गंध।

दुरवासा-संज्ञा पुं० दे० "दुर्वासा"।

दुरवीन-संज्ञा स्त्री० दे० "दुर्वीन"।

दुरभिप्रह-वि० [सं०] कठिनता से पकड़ में आनेवाला।

संज्ञा पुं० अणामारां । चिचद्दी ।

दुरभिग्रहा—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) केवाच । कपिकच्छु ।

(२) घमासा ।

दुरभिसेधि—संज्ञा स्त्री० [सं०] घुरा पदचक्र । घुरे अभिग्राय से गुट घांच कर की हुई संज्ञाह । मित्र शूलकर की हुई कुमंत्रया ।

दुरमेवां—संज्ञा पुं० [सं० इमीन वा दुमेद] घुरामाव । मनमोटाव । मनोमालिन्य । व०—योग विवस करि ध्यानतहै मूर घण्ण-सूत लेव । दुर्वासा बिय आनि सष मान्यो मन दुरमेव ।

—सुराज ।

क्रि० प्र०—मानना ।

दुरमुट—संज्ञा पुं० दे० "दुरमुस" ।

दुरमुस—संज्ञा पुं० [सं० डूर (मूल्य) + मुस = शून्य] गदा के आकार का ढंढा जिसके नीचे पत्थर या लोहे का भारी टुकड़ा लगा रहता है और जिससे फेंकड़ा या मिट्टी पीट कर बैठाई जाती है, धरवा मिट्टी तोड़ कर महीन की जाती है ।

दुरलभ—वि० दे० "दुर्लभ" ।

दुरवस्थ—वि० [सं०] जो अच्छी दशा में न हो ।

दुरवस्था—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) बुरी दशा । स्याव हावत ।

(२) हीम दशा । दुःख, कष्ट, या दरिद्रता की दशा ।

दुरव्याप—वि० [सं०] जो कठिनाता से प्राप्त हो सके । दुष्प्राप्य ।

दुरस—संज्ञा पुं० [हिं० दे० + सूर] सहोदर भाई ।

दुराड—संज्ञा पुं० दे० "दुराव" ।

दुराक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक मन्त्रेच्छा जाति का नाम ।

(२) एक देश का नाम ।

दुरागमन—संज्ञा पुं० दे० "द्विरागमन" ।

दुरागौन—संज्ञा पुं० [सं० द्विरागमन] बधू का वृत्तरी बार घपनी सुसाक्ष जाना ।

क्रि० प्र०—काना ।

मुहा०—दुरागौन देना = लड़की को दूसरी बार सुसाराज भेजना ।

दुरागौन लाना = बहू को दूसरी बार उसके पिता के घर से लाना ।

दुराग्रह—संज्ञा पुं० [सं०] (१) किसी बात पर घुरे रंग से चढ़ना । हट । झिड़ । (२) अपने मत के ठीक न सिद्ध होने पर भी उस पर स्थिर रहने का काम ।

क्रि० प्र०—काना ।

दुराग्रही—वि० [सं०] (१) जिना उचित अनुचित के विचार के अपनी बात पर चढ़नेवाला । हठी । जिद्दी । (२) अपने मत के ठीक न सिद्ध होने पर भी उस पर स्थिर रहनेवाला ।

दुराचरण—संज्ञा पुं० [सं०] बुरी पाव चलन । रौटा व्यवहार ।

दुराचार—संज्ञा पुं० [सं०] दुष्ट आचरण । बुरा पाव चलन । खोटी चाल । निन्दित कर्म ।

दुराचारी—वि० [सं० दुराचारि] [स्त्री० दुराचारिणी] दुष्ट आचरण करनेवाला । बुरी चाल चलन का । घुरे काम करनेवाला ।

दुराज—संज्ञा पुं० [सं० डूर + राज्य] बुरा राज्य । बुरा शासन । व०—दिन दिन दूनो देखि दारिद्र, दुकाह, दुःख, दुःखित, दुराज, सुख सुकृत सकोच है ।—गुजली ।

संज्ञा पुं० [हिं० दे० + राज्य] (१) एक ही स्थान पर दो राजाओं का राज्य या शासन । व०—(क) जोग विरह के बीच परम दुःख भरियत है यदि दुसह दुराजै ।—सूर । (ख) दुसह दुराज प्रजानि कैं क्यों न करै कति दूद । अधिक खैपेरी जग करत मिलि भावस रवि चंद ।—बिहारी । (२) वह स्थान जिस पर दो राजाओं का राज्य हो । दो राजाओं की प्रमल-दारी । व०—लाज विखोकरन देति नहीं रतिराज विखोकरन हो की दई मति ।.....कमल तिहारिये सौह कहीं वह पाव भई है दुराज की रैयति ।—तोष ।

दुराजी—वि० [सं० दुराज्य] दो राजाओं का । जिसमें दो राजा हों । व०—नगर धेन सब जानिये जय एकै राजा होय । यदि दुराजी राज में सुती न देखा होय ।—कवीर ।

दुरात्मा—वि० [सं० दुरात्मन्] दुष्टात्मा । नीचाचार्य । खोटा ।

दुरादुरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० दुराना = क्षिपण] क्षिपाव । गोपन ।

मुहा०—दुरादुरी करके = छिपे छिपे । गुप्त रूप से । व०—सिंह धाता के समय भीम तहै आषय । दुरादुरी करि नेग, सु नात जनायव ।—गुजली ।

दुराघन—संज्ञा पुं० [सं०] छतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम ।

दुराघर—संज्ञा पुं० [सं०] छतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम ।

दुराधर्य—वि० [सं०] जिसका दमन करना कठिन हो । जो बढ़ी कठिनाई से जीता जा सके । जो बच में न आ सके । प्रचंड । प्रबल । व०—(क) धूमकेतु शतकेटि सम दुराधर्य भग-वंत ।—गुजली । (ख) धवन धुवन हल दर्य दिख दुराधर्य दिगदंति । दशरथ के सामंत थस दशदिग कीर्ति करति ।—सुराज ।

संज्ञा पुं० (१) पीली सरसों । (२) विष्णु ।

दुराधर्पता—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रचंडता । प्रबलता ।

दुराधर्षी—संज्ञा स्त्री० [सं०] कुटुंबिनी का पौधा ।

दुराधार—संज्ञा पुं० [सं०] महादेव ।

दुराना—क्रि० प्र० [हिं० दूर] (१) दूर होना । हटना । टकना । भागना । व०—यापि सूर प्रताप खाम के दूरि दुरात ।—सूर । (२) छिपना । धाड़ में होना । छलछित होना । व०—श्रीवृषभमानुदिनी खलित दोरु वा मग जात । हमहूँ जाय माधुरी कुंजन पहिलेहि क्यो न दुरात ? ।—हरिवंश ।

क्रि० प्र० (१) दूर करना । हटाना । व०—रैया, केवट !

ले उताराई। रघुपति महाराम इत छोड़े सँ कहँ नाव दुराई।—
सूर। (२) छोड़ना। त्यागना। न रखना। उ०—भगदु
कृपानिधि कपट दुराई।—सूर। (३) छिपाना। गुप्त रखना।
प्रकट न करना। उ०—तुम सो तीन लोक के डाकुर तुम तँ
कहा दुराइय?—सूर।

दुराय-वि० [सं०] कठिनता से मिलनेवाला। दुष्प्राप्य। दुर्लभ।
दुरावाच-संज्ञा पुं० [सं०] शिव।
दुराराध्य-वि० [सं०] कठिनाई से आराधन करने योग्य। जिसको
पूजना या संतुष्ट करना कठिन हो।
संज्ञा पुं० विष्णु।

दुराकह-संज्ञा पुं० [सं०] (१) खेल। (२) नारियल।
दुराकह-संज्ञा स्त्री० [सं०] खरू का पेड़।
दुरारोह-वि० [सं०] जिस पर चढ़ना कठिन हो।
संज्ञा पुं० ताड़ का पेड़।
दुरारोहा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सेमा का पेड़। (२) खरू
का पेड़।

दुरालभ-वि० दे० "दुरालभ"
दुरालभ-वि० [सं०] जिसका मिलना कठिन हो। दुष्प्राप्य।
दुरालभा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) जवासा। घमासा। हिं गुवा।
(२) कपास।

दुरालाय-संज्ञा पुं० [सं०] (१) दुरा पवन। पुरी वातघोत।
(२) गाक्षी।
वि० दुर्बल कहनेवाला। कटुभाषी।

दुराय-संज्ञा पुं० [हिं० दुराना] (१) किसी बात को दूसरे से
छिपाने का भाव। अविश्वास या भय के कारण किसी से
बात गुप्त रखने का भाव। छिपाव। भेदभाव। उ०—सती
कीन्ह खद तहँ हूँ दुराज। देखहु गारि-सुमाउ-प्रभाज।
—तुलसी। (२) कपट। छल। उ०—भारत सपथ तोहिं
सत्य कहु परिहरि कपट दुराज। हरप सतप निसमय कारसि
कानव मोहिं सुनाव।—तुलसी।

दुराश-वि० [सं०] जिसे दुराशा हो। जिसे अच्छी उम्मीद
न हो।

दुराशय-संज्ञा पुं० [सं०] (१) झूठ आशय। पुरी नीयत।
वि० जिसका आशय दुरा हो। पुरी नीयतवाला। खोटा।
दुराशा-संज्ञा स्त्री० [सं०] ऐसी आशा जो पूरी होनेवाली न हो।
व्यर्थ की आशा। झूठी उम्मीद। उ०—(क) सहित दोष
दुख प्राप्त दुरासा। दबह नाम निमि रवि निमि नासा।—
तुलसी। (ख) दिन दिन अघिक दुराशा लागी सकळ लोक
भारमायो।—सूर।

दुरासद-वि० [सं०] (१) दुष्प्राप्य। (२) दुःसाध्य। कठिन।
दुरासा-संज्ञा स्त्री० दे० "दुराशा"।

दुरित-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पाप। पातक। (२) अपपातक।
छोटा पाप।

विशेष-उशना की रमृति में पातकों को दुरित और अपपातकों
को दुरित कहा गया है।

वि० पापी। पातकी। अशु। उ०—प्रबल दुनुज दत्त दक्षि
पक्ष आश में जीवत दुरित दसानन गदिहो।—तुलसी।
दुरितदमनी-वि० स्त्री० [सं०] पाप का नाश करनेवाली।

संज्ञा स्त्री० शमी वृक्ष।
दरियाना-वि० सं० [सं० दूर] (१) दूर करना। हटाना।
(२) दुरदुराना। विरहकार के साथ भगाना।

दुरिष्ट-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पाप। पातक।
विशेष-उशना की रमृति में पातकों को दुरिष्ट और अपपातकों
या छोटे पापों को दुरित कहा है।
(२) वह यज्ञ जो मास्य, मोहन, अचाटन आदि अभिचारों के
लिये किया जाय।

विशेष—स्मृति, पुराय आदि में ऐसा यज्ञ करना महापाप
लिखा है। विष्णुपुराय में लिखा है कि "देवता, ब्राह्मण और
पितरों से द्वेष करनेवाला, रज का अपहरण करनेवाला,
दुरिष्ट यज्ञ करनेवाला, कृमिपक्ष और कृमीय भरक में
जाते हैं।"

दुरिष्टि-संज्ञा स्त्री० [सं०] दुरिष्ट यज्ञ। अभिचारार्थ यज्ञ।
दुरीपणा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) अहित कामना। (२) शाप।
बददुश्चा।

दुरक्षा-वि० [सं०] (१) जिसके दोनों ओर सुँह हो।
(२) जिसके दोनों ओर कोई चिह्न या विशेष बस्तु हो,
जैसे, दोखला कागड़। (३) जिसके दोनों ओर दो रंग
हों। जैसे, दोखला किनारा।

दुरुत्तर-वि० [सं०] जिसका पार पाना कठिन हो। दुखर।
संज्ञा पुं० झूठ वक्ता। दुरा भाषाय।

दुरुधुरा-संज्ञा स्त्री० [पू० युरोपेरिया] बृहज्जातक के अनुसार जन्म-
कुंडली का एक योग जिसमें शनका और बुनका दोनों
योगों का मेल होता है।

विशेष-जन्मकुंडली में यदि सूर्य को छोड़ कोई दूसरा ग्रह
चंद्रमा से बाह्यवर्षे घर में हो तो शनका योग होता है और
चंद्रमा से दूसरे घर में हो तो बुनका योग होता है। जहाँ
ये दोनों योग हों वहाँ दुरुधुरा योग होता है। इस योग में
जिसका जन्म होता है वह बड़ा भारी वक्ता, धनी, वीर
और विख्यात पुरुष होता है।

दुरुपयोग-संज्ञा पुं० [सं०] दुरा उपयोग। अनुपयुक्त व्यवहार।
किसी बस्तु को पुरी तरह से काम में खाना। दुरा इस्तेमाल।
दुरुफ-संज्ञा पुं० [सं०] ? [सं०] नीबकंठ ताजिक के मसानुसार
कवित ज्योतिष का एक योग।

दुग्धम-संज्ञा पुं० [दे०] एक प्रकार का गेहूँ जिसका दाना पतला और लंबा होता है।

दुग्धस्त-वि० [का०] (१) जो अच्छी दशा में हो। जो दृढ बूटा या पिघला न हो। ठीक। जैसे, धड़ी दुग्धस्त करना। (२) जिसमें दोष या त्रुटि न हो। जिसमें दोष न हो। दीक्ष।

द्वि० प्र०—करना।—होना।

मुद्रा०—किसी को दुग्धस्त करना (१) किसी की चाल सुधारना। (२) किसी को दंड देना।

(३) अधिष्ठानासिब। (४) यथार्थ। 'वास्तविक। जैसे, धायका कदना दुग्धस्त है।

दुग्धस्ती-संज्ञा स्त्री० [का०] सुधार। संरोधन।

दुग्ध-वि० [सं०] जो विचार या ज्ञान में अक्षी न था सके। जिसका ज्ञानना कठिन हो। समझ में न आने योग्य। गूढ़। कठिन।

दुरेफ-संज्ञा पुं० दे० "द्विरेफ"। इ०—मुरज मुख इवि पर शाखा रग दुरेफ चरुयो।—सुर।

दुरोद-संज्ञा पुं० [सं०] (१) दुष्प्राप्ति। (२) गुणा। (३) पाठ-श्रीया। पासा।

दुरौघा-संज्ञा पुं० [सं० शरीर्य] दरवाजे के ऊपर की लकड़ी। भरेटा।

दुकुल-संज्ञा पुं० दे० "दुकुल"। इ०—ग्रमी विपद् से मझु से खेहू सोन करि यल। नीचहुँ से उत्तम गुनन दुकुल से तिय-रख।—चायक्यनीति।

दुर्गंध-संज्ञा स्त्री० [सं०] बुरी गंध। बुरी महक। बदबू। कुवास। सुगंध का उल्टा।

संज्ञा पुं० [सं०] (१) काका नामक। (२) प्याज। (३) धाम का पेड़।

दुर्गंधता-संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गंध का भाव।

दुर्ग-वि० [सं०] जिसमें पहुँचना कठिन हो। जहाँ जाना सहज न हो। दुर्गम।

दशा पुं० (१) पथर आदि की चीड़ी और पुष्ट वीनारों से मिला हुआ वह स्थान जिसके भीतर राजा, सरदार और सेना के सिपाही आदि रहते हैं। गढ़। केंद्र। किला।

विशेष—अत्येद तक में दुर्ग का बहल है। दुर्योधनों के ११ दुर्गों का हूँ ने ज्वल किया था। मनु ने ६ प्रकार के दुर्ग लिखे हैं—१ धनुदुर्ग, जिसके चारों थोर निजंल प्रदेश हो, २ महीदुर्ग जिसके चारों ओर देही मेड़ी जमीन हो, ३ अक्षदुर्ग (अगुर्ग) जिसके चारों थोर जल हो, (४) वृषदुर्ग जिसके चारों ओर घने वृष हैं, ५ नरदुर्ग, जिसके चारों ओर सेना हो और ६ गिरिदुर्ग जो पहाड़ पर हो या जिसके चारों ओर पहाड़ हों। महाभारत में जब युधिष्ठिर ने

भीष्म से पृथा है कि राजा को कैसे दुर में रहना चाहिये तब भीष्म जी ने वे ही ६ प्रकार के दुर्ग गिनाए हैं और कहा है कि दुर ऐसे ही दुर्गों के बीच होना चाहिये। मनुस्मृति और महाभारत दोनों में कोण, सेना, अक्ष, शिखरी, प्राण्य, माहन, लृष्य, जलाशय, अक्ष इत्यादि का दुर्ग के भीतर रहना धायप्रयत्न कहा गया है। अग्निपुराण, कालिकापुराण आदि में भी दुर्गों के उपयुक्त ६ भेद बतलाए गए हैं।

(२) एक असुर का नाम जिसे मारने के कारण देवी का नाम दुर्गा पड़ा।

दुर्गाकारक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) दुर्ग बनानेवाला मनुष्य। (२) एक वृष का नाम।

दुर्गच्छा-संज्ञा स्त्री० [सं०] जैन दर्शन में एक प्रकार का मोह-नीच कर्म जिसके बदय से मजिन पदार्थों से ग्वानि हलप्र होती है।

दुर्गत-वि० [सं०] (१) दुर्दशा-मस्त। जिसकी बुरी गति हुई हो। (२) द्रिद।

दुर्गातरणी-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक-देवी का नाम। (महाभारत)

दुर्गति-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) बुरी गति। दुर्दशा। बुरा हाल। निजलत। जैसे, (क) मरहटों ने गुजाम कादिर की यड़ी दुर्गति की, उसके नाक-कान काट कर बसे पिंजरे में बंद कर दिया। (ख) पानी बरस जाने से रास्ते में यड़ी दुर्गति हुई। (२) वह दुर्दशा जो परलोक में हो। नरक।

दुर्गपाल-संज्ञा पुं० [सं०] गढ़ का रक्षक। किलेदार।

दुर्गपुष्पी-संज्ञा पुं० [सं०] एक वृष का नाम। केशपुराण।

दुर्गम-वि० [सं०] (१) जहाँ जाना कठिन हो। जहाँ अक्षदी पहुँच न हो सके। अधोपट। इ०—दुर्गम दुर्ग पहाड़ तें भारे प्रचंड महा सुमदंड घने हैं।—तुलसी। (२) जिसे जानना कठिन हो। जो अक्षदी समझ में न आने। दुर्ज्ञेय। (३) दुस्तर। कठिन। विकट।

संज्ञा पुं० (१) गढ़। दुर्ग। किला। (२) विष्णु। (३) धन। (४) संकट का स्थान। कठिन स्थिति। (५) एक असुर का नाम।

दुर्गमता-संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गम होने का भाव।

दुर्गमनीय-वि० [सं०] जहाँ जाना कठिन हो। जिसके यहाँ तक अक्षदी पहुँच न हो।

दुर्गारक्षक-संज्ञा पुं० [सं०] किलेदार। गढ़पति।

दुर्गलंघन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) तीले दुर्गम स्थानों को पार करने-पावा। जैट।

दुर्गल-संज्ञा पुं० [सं०] एक देश का नाम।

दुर्गसंचर-संज्ञा पुं० [सं०] दुर्गम स्थानों तक पहुँचने का साधन, जैसे, सीढ़ी, पुल, पेड़ा इत्यादि।

दुर्गा-संज्ञा पुं० [सं०] आदि शक्ति। देवी।

विशेष—शुक्ल यज्ञवेद धारजनेय संहिता में रुद्र की भगिनी श्रिकिका का बड़े से इस प्रकार है—“हे रुद्र ! अपनी भगिनी श्रिकिका के सहित हमारा दिया हुआ भाग (पुरोधार) ग्रहण करो”। इससे जाना जाता है कि शत्रुओं के विनाश आदि के लिये जिस प्रकार प्राचीन आर्यगण रुद्र नामक क्रूर देवता का सारथ्य करते थे वसी प्रकार उनकी भगिनी श्रिकिका का भी करते थे। वैदिक काल में श्रिकिका देवी रुद्र की भगिनी ही मानी जाती थी। तलवकार (केन) उपनिषद् में यह आख्यायिका है—एक पार देवताओं ने समझा कि विजय हमारी ही शक्ति से हुई है। इस भ्रम को मिटाने के लिये ब्रह्म यज्ञ के रूप में दिखाई पड़ा, पर देवताओं ने उसे पहचाना नहीं। हाल चाल लेने के लिये पहले अग्नि उसके पास गए। यज्ञ ने पूछा “तुम कौन हो ?” अग्नि ने कहा “मैं अग्नि हूँ और सब कुछ भस्म कर सकता हूँ”। इस पर उस यज्ञ ने एक तिनका रख दिया और कहा “इसे भस्म करो”। अग्नि ने बहुत जोर मारा, पर तिनका ज्यों का त्यों रहा। इसी प्रकार वायु देवता भी गए। वे भी उस तिनके को न उड़ा सके। तब सब देवताओं ने इंद्र से कहा कि इस यज्ञ का पता लेना चाहिए कि यह कौन है। जब इंद्र गए तब यज्ञ अंतर्धान हो गया। थोड़ी देर पीछे एक स्त्री प्रकट हुई जो “हमा हैमवती” देवी थी। इंद्र के पछुने पर उमा हैमवती ने बतलाया कि यज्ञ ब्रह्म था उसकी विजय से तुम्हें महत्व मिला है। तब इंद्र आदिक देवताओं ने ब्रह्म को जाना। अथात्म पुरुषवाले ‘उमा हैमवती’ ने ब्रह्मविद्या का ग्रहण करते हैं। तैत्तिरीय आरण्यक के एक मंत्र में “दुर्गा देवी शरथमहं प्रपद्ये” वाक्य आया है और एक स्थान पर गायत्री छंद का एक मंत्र है जिसे सायण ने दुर्गा-गायत्री कहा है। देवी भागवत में देवी की उत्पत्ति के संबंध में कथा इस प्रकार है—महिषासुर से परास्त होकर सब देवता ब्रह्मा के पास गए। ब्रह्मा शिव तथा देवताओं के साथ विष्णु के पास गए। विष्णु ने कहा कि महिषासुर के मारने का उपाय यही है कि सब देवता अपनी क्षियों से मिल कर अपना योद्धा योद्धा तेज निकालें। सब के तेज-समूह से एक स्त्री उत्पन्न होगी जो उस असुर का वध करेगी। महिषासुर को वर था कि वह किसी पुरुष के हाथ से न मरेगा। विष्णु के आज्ञानुसार ब्रह्मा ने अपने मुँह से रक्त वर्ण का, शिव ने शैल्य वर्ण का, विष्णु ने नील वर्ण का, इंद्र ने विचित्र वर्ण का, इसी प्रकार सब देवताओं ने अपना अपना तेज निकाला और एक तेजस्वरूपा देवी प्रकट हुई जिसने उस असुर का संहार किया। कालिकापुराण में लिखा है परमब्रह्म के अंश स्वरूप ब्रह्मा, विष्णु और शिव हुए। ब्रह्मा और विष्णु ने ही सृष्टिसंस्थिति के लिये अपनी अपनी शक्ति को

ग्रहण किया पर शिव ने शक्ति से संयोग न किया और वे योग में मग्न हो गए। ब्रह्मा आदि देवता इस बात के पीछे पूछे कि शिव भी किसी स्त्री का पाणि ग्रहण करें। पर शिव के योग्य कोई स्त्री मिलती नहीं थी। बहुत सोच विचार के पीछे ब्रह्मा ने दक्ष से कहा—“विष्णु-माया के अतिरिक्त और कोई स्त्री ऐसी नहीं जो शिव को हृत्वा सके। अतः मैं उसकी स्तुति करता हूँ तुम भी उसकी स्तुति करो कि वह तुम्हारी कन्या के रूप में तुम्हारे यहाँ जन्म ले और शिव की पत्नी हो।” यही विष्णु की माया दक्ष प्रजापति की कन्या सती हुई जिसने अपने रूप और तप के द्वारा शिव को मोहित और प्रसन्न किया। दक्ष-यज्ञ-विनाश के समय जब सती ने देहत्याग किया तब शिव ने विज्ञाप करते करते उनके शव को अपने कंधे पर लाद लिया। फिर ब्रह्मा विष्णु और शनि ने सती के मृत शरीर में प्रवेश किया और वे उसे खंड खंड करके गिराने लगे। जहाँ जहाँ सती का अंग गिरा वहाँ वहाँ देवी का स्थान या पीठ हुआ। जब देवताओं ने महामाया की बहुत स्तुति की तब वे शिव के शरीर से निकलीं जिससे शिव का मोह दूर हुआ और वे फिर योग-समाधि में मग्न हुए। इधर हिमालय की भार्या मेनका संतति की कामना से बहुत दिनों से महामाया का पूजन करती थी। महामाया ने प्रसन्न हो कर मेनका की कन्या होकर जन्म लिया और शिव से विवाह किया। मार्कंडेय युगाण में चंडी देवी द्वारा शुंभ निशुंभ के वध की कथा लिखी है जिसका पाठ चंडी-पाठ या दुर्गा-पाठ के नाम से प्रसिद्ध है और सब जगह होता है। फारसीखंड में लिखा है कि रुरु के पुत्र दुर्गा नामक महा दैत्य ने जब देवताओं को बहुत तंग किया तब वे शिव के पास गए। शिव ने असुर को मारने के लिये देवी को भेजा।

पर्याय—आद्याशक्ति। उमा। काल्याणी। गौरी। काली। हैमवती। ईश्वरी। शिवा। भवानी। हृदायी। शर्वाणी। कल्याणी। अपर्णा। पार्वती। सृष्टायी। चंडिका। श्रिकिका। शारदा चंडी। गिरिजा। मंगला। नारायणी। महामाया। वैष्णवी। हिंडी। कोट्टी। पत्नी। माधवी। जयंती। भाग्यी। भा। सती। आमरी। दक्षकन्या। महिषमर्दिनी। हेरंब-जननी। सावित्री। कृष्णपिंगला। शूलधरा। भगवती। ईशानी। सगलंती। महाकाली। शिवांगी। चामुंडा। विधायी। आनंदा। महामाया। जौमी। कृष्णा। चार्यणी। वाषी। फाल्गुनी। मातृका। तारा। कालिका। कामेश्वरी। नैर्धी। भुवनेश्वरी। खरिता। महालक्ष्मी। वागीश्वरी। त्रिपुरा। उवालासुती। बगलासुती। अक्षरणी। अक्षदा। विशालाक्षी। सुभगा। सण्ड्या। धनला। धोरा। प्रेमा। वदेश्वरी। कीर्तिदा। सुमुखा। कामरूपा। जंभणी। मोहनी।

शक्ति। वेदमाता। त्रिपुरसुंदरी। क्षात्रिणी। चित्रा। धर्मता, हत्यादि, हत्यादि।

(३) नीली। नील का रौषा। (३) अपराधिता। कीवा-
ठेंडी। (४) श्यामा पक्षी। (५) नी व की कन्या। (६)
एक रागिनी जो गौरी, माळश्री, सारंग और लीलावती
के रंग से बनी है।

दुर्गाधिकारी-संज्ञा पुं० [सं०] गढ़ का अधिपति। किलेदार।

दुर्गाध्या-संज्ञा पुं० [सं०] गढ़ का प्रधान। किलेदार।

दुर्गानयमी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कार्तिकेश्वर नवमी। इस
दिन जगद्गुरु का पूजन होता है। (२) चैत्रशुक्ल नवमी।

(३) भाद्रपदशुक्ल नवमी।

दुर्गाष्टमी-संज्ञा स्त्री० [सं०] भाद्रपद और चैत्र के शुक्ल पक्ष की
अष्टमी।

दुर्गाष्ट-वि० [सं०] जिसका भवगाहन करना कठिन हो।

दुर्गाह-संज्ञा पुं० [सं०] भूमिगुहा।

दुर्गाय-संज्ञा पुं० [सं०] सुरा गुण। दोष। पेश। सुराई।

दुर्गादा-संज्ञा पुं० [सं०] दुर्गाध्या। दुर्गाधक। किलेदार।

दुर्गासव-संज्ञा पुं० [सं०] दुर्गा-पूजा का उत्सव जो नवरात्र में
होता है।

दुर्ग्रह-वि० [सं०] (१) जिसे कठिनता से पकड़ सकें। जो जवदी
पकड़ में न आये। (२) जो कठिनता से सम्म में आये।
दुर्ग्रह।

संज्ञा पुं० अपामार्ग। विचट्टी।

दुर्घट-वि० [सं०] जिसका होता कठिन हो। कष्ट-साध्य।
अधिकल से होने कायक।

दुर्घटना-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) अशुभ घटना। ऐसा व्यापार
जिससे हानि या दुःख पहुँचे। ऐसी बात जिसके होने से
बहुत कष्ट, पीड़ा या शोक हो। सुरा संयोग। वारदात। जैसे,
भरी का कुछ टूट गया, इस दुर्घटना से बहुत हानि पहुँची।
(२) विपद्। आफत।

दुर्घोष-वि० [सं०] जो सुरा स्वर निकाले। जो कड़ु या कर्करा
ध्वनि करे।

संज्ञा पुं० भालू।

दुर्जन-संज्ञा पुं० [सं०] दृष्ट जन। खल। सेटा भादमी। ३०—
दुर्जन बचन सुनत दुख जैसे। याच लागे दुख होइ न
सैसे।—सूर।

दुर्जनता-संज्ञा स्त्री० [सं०] दुष्टता। जोटापन।

दुर्जय-वि० [सं०] जिसे जीतना बहुत कठिन हो। जो जवदी
जीता न आ सके।

संज्ञा पुं० (१) विप्लव। (२) काचंवीर्यं संज्ञा में उत्पन्न अनंत
रामा का एक पुत्र। (इमें प्रमाण)। (३) एक राषस का
नाम।

दुर्जर-वि० [सं०] जो कठिनता से पवे। जो पकाने से जवदी
न पके। जिसका परिष्क करना कठिन हो।

दुर्जरा-संज्ञा स्त्री० [सं०] श्रेयतिष्मती ब्रता। माळकंगनी।

दुर्जात-वि० [सं०] (१) जिसका जन्म बुरी रीति से हुआ हो।

(२) जिसका कर्म धर्म्य हुआ हो। (३) नीच। कमीना।

(४) अशमा।

संज्ञा पुं० (१) व्यसन। (२) असमंजस। कठिनता। संकट।

दुर्जाति-संज्ञा स्त्री० [सं०] बुरी जाति। नीच जाति।

वि० (१) बुरे कल का। (२) जिसकी जाति विगड़ गई हो।

दुर्जाव-वि० [सं०] दूसरे के दिए धर्म पर रहनेवाला। बुरी
जीविका करनेवाला।

संज्ञा पुं० बुरा जीवन। निर्दिष्ट जीवन।

दुर्जय-वि० [सं०] जिसे जीतना अत्यंत कठिन हो। दुर्जय।

दुर्ज्ञेय-वि० [सं०] कठिनाई से ज्ञानने योग्य। जिसे ज्ञानना
अत्यंत कठिन हो। जो जवदी समझ में न आ सके।

दुर्ज्ञेय।

दुर्दम-वि० [सं०] (१) जिसका दमन बड़ी कठिनाई से हो सके।
जो जवदी दबाया या जीता न जा सके। (२) प्रचंड।
प्रबल।

संज्ञा पुं० रोहिणी के गर्भ से उत्पन्न वसुदेव के एक पुत्र
का नाम।

दुर्दमन-वि० [सं०] जिसका दमन करना कठिन हो।

संज्ञा पुं० जनमेजय के संश में उत्पन्न शतानीक राजा का पुत्र।

दुर्दमनीय-वि० [सं०] (१) जिसका दमन करना बहुत कठिन
हो। जो जवदी दबाया या जीता न जा सके। (२) प्रचंड।
प्रबल।

दुर्दम्य-वि० दे० "दुर्दम।"

संज्ञा पुं० गाय का बल्लू।

दुर्दर्शी-वि० [सं०] (१) जिसे देखना अत्यंत कठिन हो। जो
जवदी दिखाई न पड़े। (२) जो देखने में भयंकर हो।

दुर्दर्शन-वि० दे० "दुर्दर्श।"

संज्ञा पुं० कौरवों का एक सेनापति।

दुर्दशा-संज्ञा स्त्री० [सं०] बुरी दशा। संद अवस्था। दुर्गति।
सराय हावत।

क्रि० प्र०—काना।—होना।

दुर्दात-वि० (१) दुर्दमनीय। (२) प्रचंड। प्रबल।

संज्ञा पुं० (१) गाय का बल्लू। (२) कलह। (३) शिव।

दुर्दान-संज्ञा पुं० [?] रूपा। धात्री। (धनेकार्थे)

दुर्दिन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बुरा दिन। (२) ऐसा दिन जिसमें
बाध छाए हो, शानी बरसता हो और घर से निकलना
कठिन हो। मेघाच्छन्न दिन। (३) दुर्दशा का समय। दुःख
और कष्ट का समय। बुरा वक्त।

दुर्द्ध-संज्ञा पुं० [सं०] नास्तिक ।
 दुर्द्ध-वि० [सं०] (व्यवहार) जिसका राग, लोभ आदि के कारण सम्यक् निर्णय न हुआ हो। (सुकदमा) जिसका घूस, अदावत आदि के कारण झीक फैसला न हुआ हो।
 विशेष—याज्ञवल्क्य स्मृति में लिखा है कि ऐसे सुकदमे को राजा फिर से देखे और यदि अन्याय हुआ हो तो निर्णय करनेवाले सभ्यों (न्यायाधीश आदि) और सुकदमा जीतने-बालों को हसका दूना दंड दे जितना हारनेवाले को अन्याय से हुआ हो।
 दुर्द्ध-संज्ञा पुं० [सं०] (१) दुर्भाग्य। अभाग्य। बुरी किसमत। (२) बुरा संयोग। दिनों का बुरा फेर।
 दुर्द्ध-वि० [सं०] (१) जिसे कठिनता से पकड़ सकें। जो जल्दी पकड़ने में न आ सके। (२) प्रयत्न। प्रचंड। (३) जो कठिनता से समझ में आये।
 संज्ञा पुं० (१) एक नरक का नाम। (२) पारा। (३) मित्रावाँ। महासक। (४) महिपालुर का एक सेनापति। (५) शंकरासुर के एक मंत्री का नाम। (६) छतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम। (७) रावण का एक सैनिक जिसे बसने अशोकवाटिका बजाइने पर हनुमान को पकड़ने को भेजा था। यह रावण हनुमान के हाथ से मारा गया था। (८) विष्णु।
 दुर्द्ध-वि० [सं०] (१) जिसका दमन करना कठिन हो। जिसे जल्दी बच में न ला सकें। जिसे अधीन न कर सकें। (२) जिसे परास्त करना कठिन हो। (३) प्रयत्न। प्रचंड। उग्र।
 संज्ञा पुं० (१) छतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम। (२) रावण के दल का एक राक्षस।
 दुर्द्ध-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) नागदोना। (२) कंधारी का पेड़।
 दुर्द्ध-वि० [सं०] बुरी बुद्धि का। मंदबुद्धि।
 दुर्द्ध-संज्ञा पुं० [सं०] वह शिष्य जो गुरु की बात जल्दी न माने।
 दुर्द्धिता-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक जता का नाम।
 दुर्द्धम-संज्ञा पुं० [सं०] हरिपलांडू। हरा प्याज।
 दुर्द्ध-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कुनीति। बुरी चाल। नीतिविरुद्ध आचरण। (२) अन्याय।
 दुर्द्ध-संज्ञा पुं० [सं०] बुरा शब्द। अप्रिय ध्वनि।
 वि० कहेरा ध्वनि करनेवाला।
 संज्ञा पुं० राक्षस। (अनेकार्थ०)
 दुर्द्ध-संज्ञा पुं० [सं० दुर्भाग्य] (१) बुरा नाम। कुख्याति। बदनामी। (२) गाली। बुरा बचन। (३) बवासीर। (४) शुक्ति। सीप। सुवहरी।
 दुर्द्धमक-संज्ञा पुं० [सं०] अशं रोग। बवासीर।

दुर्द्धम-संज्ञा पुं० [सं०] (अशं रोग को दूर करनेवाला) सूत्र। जिमीकंद।
 दुर्द्ध-संज्ञा स्त्री० [सं०] शुक्ति। सीप। सुवहरी।
 दुर्द्ध-संज्ञा पुं० [सं०] होनेवाले अरिष्ट को सूचित करने-वाला अशकृन्। बुरा सपुत्र।
 दुर्द्ध-वि० [सं०] (१) जिसे देखते न घने। (२) भयंकर। (३) कुरूप।
 दुर्द्ध-वि० [सं०] (१) जिसे देखते न घने। (२) भयंकर। (३) कुरूप।
 दुर्द्ध-वि० [सं०] (१) जिसका निवारण करना कठिन हो। जो जल्दी रोकान न जा सके। (२) जो जल्दी हटाना न जा सके। जिसे जल्दी दूर न कर सकें। (३) जिसका होना प्रायः निश्चित हो। जो जल्दी टल न सके।
 दुर्द्ध-संज्ञा स्त्री० [सं०] कुनीति। कुचाल। अन्याय। अयुक्त आचरण।
 दुर्द्ध-वि० [सं०] (१) जिसे अच्छा बल न हो। कमजोर। अशक्त। (२) क्षया, दुबला पतला।
 दुर्द्ध-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) बल की कमी। कमजोरी। (२) कृशता। दुबलापन।
 दुर्द्ध-संज्ञा स्त्री० [सं०] जलसिरीस का पेड़।
 दुर्द्ध-संज्ञा पुं० [सं०] जिसके चमड़े पर रोग हो और बाज भड़ गए हों। गंजा।
 दुर्द्ध-वि० [सं०] जिसका बोध कठिनता से हो। जो जल्दी समझ में न आवे। गूढ़। क्लिष्ट। कठिन।
 दुर्द्ध-वि० [सं०] (१) जिसे खाना कठिन हो। जो जल्दी न खाया जा सके। (२) खाने में बुरा।
 संज्ञा पुं० वह समय जिसमें भोजन कठिनता से मिले।
 दुर्द्ध-वि० [सं०] [स्त्री० दुर्भाग] जिसका भाग्य बुरा हो। छोटे प्रारंभ का। अभाग्य।
 दुर्द्ध-वि० स्त्री० [सं०] मंदभाग्यवाली। अभागिन।
 संज्ञा स्त्री० वह स्त्री जो अपने पति के स्नेह से वंचित हो। वह स्त्री जिसे स्वामी न चाहे। विरक्ता।
 दुर्द्ध-वि० [सं०] (१) जिसे ठगना कठिन हो। जो लाला न जा सके। (२) भारी। गुरु। घबनी।
 दुर्द्ध-संज्ञा पुं० दे० "दुर्भाग्य"।
 दुर्द्ध-वि० [सं० दुर्भाग्य] अभाग्य। मंद भाग्य का।
 दुर्द्ध-संज्ञा पुं० [सं०] मंद भाग्य। बुरा अरिष्ट। छोटी किसमत।
 दुर्द्ध-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बुरा भाव। (२) द्वेष। मन-मोटाव। मनोमाखिल्य।

दुर्मावना-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) बुरी भावना। (२) सटका।
चिंता। धंदेवा।

दुर्माव्य-वि० [सं०] जिसकी भावना सहज में न हो सके। जो
अवदी ध्यान में न आसके।

दुर्मित्त-संज्ञा पुं० [सं०] ऐसा समय जिसमें मित्रा या भोजन
कठिनता से मिले। शकाल। कष्ट।

दुर्मिच्छ-संज्ञा पुं० दे० "दुर्मिच्छ"।

दुर्मेंद-वि० [सं०] (१) जो अक्षरी भेदा न आ सके। जो कठिनता
से सिद्धे। (२) जिसके पार कठिनता से आ सकें। जिसे
अक्षरी पार न कर सकें।

दुर्मेंच-वि० दे० "दुर्मेंद"।

दुर्मिति-संज्ञा स्त्री० [सं०] बुरी बुद्धि। नासमझी।

वि० (१) दुर्बुद्धि। जिसकी समझ ठीक न हो। कम अक्ल।

(२) खल। दुष्ट।

संज्ञा पुं० साठ संवत्सरों में से एक जिसमें दुर्मिच होता है।
(ज्योतिषशास्त्र)

दुर्मंद-वि० [सं०] (१) शून्यत। नरो आदि में पूर। ४०—कुंम-
करन दुर्मंद रनरागा—तुलसी। (२) अगिमान में पूर।
गर्व से भरा हुआ।

दुर्मना-वि० [सं० दुर्मन्य] (१) बुरे चित्त का। दुष्ट। (२)
वदास। खिल। झनमना।

दुर्मर-वि० [सं०] जिसकी गत्यु बड़े कष्ट से हो।

दुर्मरग-संज्ञा पुं० [सं०] बुरे प्रकार से होनेवाली गत्यु।

दुर्मरग-संज्ञा स्त्री० [सं०] दूरी। दूर।

दुर्मर्ष-वि० [सं०] जिसे सहन करना कठिन हो। तुःसह।

दुर्महिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] इरय काम्य के शतवर्षत वपुस्फों में से
एक जिसमें हास्य रस प्रधान होता है और जो चार संकों में
समाहृत होता है। इसमें गर्मांक नहीं होते। इसके तीन शंकों
में आमराग, विट्, विट्पक, पीठमर्द् आदि की विविध क्रोड़ाएँ
रहती हैं।

दुर्महो-संज्ञा स्त्री० दे० "दुर्महिका"।

दुर्मिल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) भरत के सातवें बड़के का नाम। (२)
एक युद्ध जिसके मारक चरण में १०, ८, और १४ के विराम
से ३३ मात्राएँ होती हैं। शंत में एक सगण्य और दो गुरु
होते हैं। इसमें अगाथ का नियेध है। ४०—जय जय शु-
नंदन, अमरु-विराटन, कुलमंडन यय के धारी। जनमन-
मुलकारी, विपिनविहारी, नारि अदिद्वयदि स्त्री हारी। (३)
एक वर्षोत्सव जिसके प्रत्येक चरण में अष्ट सगण्य होते हैं।
यह एक प्रकार का सवैया है। ४०—मयसें करि नेह भई
रुनंदन राजत हीरनमाव हिये।

दुर्मुस-संज्ञा पुं० [सं०] (१) घोड़ा। (२) राम की सेना का एक
वंदर। (३) महिषासुर के एक सेनापति का नाम। (४)

रामचंद्र जी का एक गुप्तचर जिसके द्वारा वे अपनी प्रजा का
वृत्तान्त जाना करते थे। इसी के मुहँ से उन्होंने सीता के
विषय में यह लोकापवाद सुना था जिसके कारण सीता का
द्वितीय वनवास हुआ था। (उत्तररामचरित)। (२) एक नाग
का नाम। (३) शिव। (४) छतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम।
(५) वह धीर जिसका द्वार बरत की धारा हो। (६) साठ
संवत्सरों में से एक। (१०) एक यय का नाम। (११)
गयोथनी का एक गण।

वि० [स्त्री० दुर्मुंछी] (१) जिसका मुख बुरा हो। (२) बुरे
वचन बोखनेवाला। कटुभाषी। अग्रियवादी।

दुर्मुंछी-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक राक्षसी जिसे शक्य ने जानकी को
समझाने के लिये नियत किया था।

वि० बुरे सुहृदायी।

दुर्मुत्त-संज्ञा पुं० दे० "दुर्मुत्त"।

दुर्मुत्त-संज्ञा पुं० [सं० (प्रय०) इर + मुत्त = मुत्तना] गदा के
धाकार का एक लंबा टंडा जिसके नीचे छोड़े या पर्यर का
भारी गोल डुकड़ा रहता है और जिससे सड़कों आदि पर
कंकड़ या मिट्टी पीट कर पैदाई जाती है। कंकड़ या मिट्टी
पीटने का मुगडर।

दुर्मूल्य-वि० [सं०] जिसका दाम अधिक हो। महँगा।

दुर्मूँध-वि० [सं० दुर्मूँधस्] मंदबुद्धि। नासमझ।

दुर्मोह-संज्ञा पुं० [सं०] कौवाठोड़ी। काकजुंभी।

दुर्मोहा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कौवाठोड़ी। (२) सफेद
चुंबची।

दुर्यश-संज्ञा पुं० [सं० इवेगस्] अययरा। अयकीर्ति।

दुर्योध-वि० [सं०] जो बड़ी बड़ी कठिनाइयों को सह कर भी
युद्ध में स्थिर रहे। विघ्न उड़ाका।

दुर्योधन-संज्ञा पुं० [सं०] कुशवर्तीय राजा छतराष्ट्र का ज्येष्ठ पुत्र
जो अपने चचेरे भाई पांडवों से बहुत बुरा मानता था। सय
से अधिक द्वेष यह भीम से रखता था। बात यह थी कि
भीम के समान दुर्योधन भी गदा चलाने में अत्यंत निपुण
था, पर भीम की बराबरी नहीं कर सकता था। पहले छत-
राष्ट्र युधिष्ठिर को ही सय में पड़ा समझ युवराज बनना
चाहते थे, पर दुर्योधन ने बहुत आपत्ति की और दुष्ट से
पांडवों को वन में भेज दिया। वनवास से लौट कर पांडवों
ने इंद्रप्रस्थ में अपनी राजधानी बसाई और युधिष्ठिर ने
धूमधाम से राजसूय यज्ञ किया। उस यज्ञ में पांडवों का
भारी वैभव देख दुर्योधन अन्न उठा और इनके नारा का
शपाय सोचने लगा। शंत में बसने युधिष्ठिर को अपने साथ
पासा खेकने के लिये बुलाया। उस खेल में दुर्योधन के
माना गांधार के राजकुमार शकुनि के सुल और कौरव से
युधिष्ठिर अपनी सारा राज्य और धन यहाँ तक कि श्रीयौ

को भी हार गए। दुर्भासन, द्रौपदी को बलात् सभा में लाया और दुर्वोधन उसे अपने जंघे पर बैठने के लिये कहने लगा। इस पर भीम ने क्रुद्ध होकर गदा से दुर्वोधन के जंघे को तोड़ने की प्रतिज्ञा की। शंत में घात के नियमानुसार धृतराष्ट्र ने यह निर्णय दिया कि पांडव पारह वर्ष वनवास और एक वर्ष अज्ञात वास करें। जब अज्ञातवास पूरा हो गया तब कृष्ण दूत होकर कौरवों के पास पांडवों की ओर से गए। पर दुर्वोधन ने पांडवों को राज्य का शंख क्या पांच गाँव तक देना अस्वीकार किया। शंत में कुरुपेय का प्रतिद्वन्द्व दुष्ट हुआ जिसमें कौरव मारे गए और भीम ने अपनी प्रतिज्ञा पूरी की। दुर्वोधन को सुधिष्टिर 'सुवोधन' कहा करते थे।

दुर्वेनि-वि० [सं०] जिसका जन्म नीच कुल में हो। नीच कुल का।

दुरी-संज्ञा पुं० [का०] कोड़ा। चाबुक। घुर्रा।

दुरीनी-संज्ञा पुं० [का०] धफनाओं की एक जाति।

दुर्लभ्य-वि० [सं०] दुःख से बहत्तन करने योग्य। जिसे जल्दी लाँघ न सकें।

दुर्लभ्य-वि० [सं०] जो कठिनाता से दिखाई पड़े। जो प्रायः अदृश्य हो।

संज्ञा पुं० बुरा बहरेय। बुरी नीयत।

दुर्लभ-वि० [सं०] (१) जो कठिनाता से मिल सकें। जिसे पाना सहज न हो। दुष्प्राप्य। (२) अनेखा। बहुतरु बड़िया। (३) भिद्य।

संज्ञा पुं० (१) कर्पूर। (२) विष्णु।

दुर्लभ्य-वि० [सं०] जो बुरा खिला हुआ हो। जिसकी खिलावट बुरी हो। जो ऐसा खिला हो कि जल्दी पढ़ा न जा सके। (स्मृति)

दुर्वच-वि० [सं०] (१) जो दुःख से कहा जा सके। जिसके कहने में कष्ट हो। (२) जो कठिनाता से कहा जा सके।

संज्ञा पुं० दुर्वचन। गाली।

दुर्वचन-संज्ञा पुं० [सं०] दुर्वचन्य। फटवचन। गाली।

दुर्वचनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) बर्दी। (२) पलुया।

दुर्वह-वि० [सं०] जिसका वहन करना कठिन हो। जिसे उठा कर ले चलना कठिन हो।

दुर्वाच-संज्ञा स्त्री० [सं०] बुरा वचन। निर्दित वाक्य।

दुर्वाद-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अववाद। निर्दा। बदनामी। (२) स्मृतिपूर्वक कहा हुआ अभिय वाक्य। (३) अनुचित अमुक वा निर्दित विवाद।

दुर्वादी-वि० [सं०] उर्वादीन् । कुतर्की। दुःजती।

दुर्वाह-वि० [सं०] जिसका निवारण कठिन हो। जो जल्दी रोका न जा सके।

दुर्वाहि-संज्ञा पुं० [सं०] कंधोज देव का एक वीर जो महाभारत की लड़ाई में लड़ा था।

दुर्वाय्य-वि० [सं०] जिसका निवारण कठिन हो। जो जल्दी रोका न जा सके।

दुर्वासना-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) दुरी इच्छा। छोटी आकांक्षा। दुष्ट कामना। (२) ऐसी कामना जो कभी पूरी न हो सके।

दुर्वासा-संज्ञा पुं० [सं०] दुर्वासत् । एक मुनि जो अग्नि के पुत्र थे। इनके नाम के विषय में महाभारत में लिखा है कि जिसका धर्ममें इष्ट निरचय हो उसे दुर्वासत् कहते हैं। ये अत्यंत क्रोधी थे। इन्होंने शीर्षे मुनि की कन्या केशवी से विवाह किया था। विवाह के समय इन्होंने प्रतिज्ञा की थी कि स्त्री के ली अपराध तक चमा रहेंगे। प्रतिज्ञानुसार, ली अपराध तक इन्होंने रुमा किए, अन्तर शाप देकर पत्नी को भग्न कर दिया। शीर्षे मुनि ने कन्या की शृणु से शोकानुत्तर होकर दुर्वासत् को शाप दिया कि "तुम्हारा दुर्प चूर्ण होगा" इसी शाप के कारण राजा शंखरीय के मामलों में इन्हें नीचा देखना पड़ा। इनका स्वभाव क्रुद्ध सनकी था। इनके शाप और वरदान की अनेक कथाएँ महाभारत तथा पुराण आदि में मरी पड़ी हैं। ये न तो किसी वेदमंत्र के श्रापि हैं और न वैदिक ग्रंथों में कहीं इनका नाम मिलता है।

दुर्विगाह-वि० [सं०] जिसका अवगाहन करना कठिन हो। जिसकी याह जल्दी न लग सके।

दुर्विज्ञेय-वि० [सं०] जिसका कष्ट या कठिनाता से ज्ञान हो सके। जो जल्दी जाना न जा सके।

दुर्विद-वि० [सं०] जिसे जानना कठिन हो। जो जल्दी जाना न जा सके।

दुर्विदग्ध-वि० [सं०] (१) जो अच्छी तरह जला न हो। अपक्वता। (२) जो पूर्ण परिपक्व न हो। (३) अहंकारी। धमंदा।

दुर्विदग्धता-संज्ञा स्त्री० [सं०] अपक्वकरण। पूरी निपुणता का अभाव।

दुर्विध-वि० [सं०] (१) वृद्धि। (२) सल। (३) मूर्ख।

दुर्विधि-संज्ञा स्त्री० [सं०] बुरी विधि। कुनियम।

संज्ञा पुं० दुर्वाण्य।

दुर्विनीत-वि० [सं०] अधिनीत। अशिष्ट। अदृष्ट। अक्वष्ट।

दुर्विपाक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बुरा परिप्याप्त। बुरा फल। (२) बुरा संयोग। दुर्घटना।

दुर्विभाव्य-वि० [सं०] जिसकी भावना न हो सके। जो मन में न धावे। जिसका अनुमान न हो सके।

दुर्विलसित-संज्ञा पुं० [सं०] दुष्काव्यं।

दुर्विवाह-संज्ञा पुं० [सं०] बुरा ब्याह। निर्दित विवाह।

विशेष—स्त्वितो में जो आठ प्रकार के विवाह कहे गए हैं इनमें प्राण आदि चार प्रकार के विवाह सुविवाह और शाशु आदि चार प्रकार के विवाह दुर्विवाह कहलाते हैं।

दुर्विप—संज्ञा पुं० [सं०] महादेव (जिन पर विप का कुल प्रभाव न हुआ)।

दुर्विपवह—वि० [सं०] जिसे सहना कठिन हो। दुःसह।

संज्ञा पुं० (१) महादेव। शिव। (२) छत्राष्ट के एक पुत्र का नाम।

दुर्वृत्त—वि० [सं०] जिसका आचरण बुरा हो। दुरचरित्र। दुराचारी।

संज्ञा पुं० बुरा आचरण। बुरा व्यवहार।

दुर्वृत्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] बुरी वृत्ति। बुरा पेशा। बुरा काम।
व०—सेवा समान शक्ति दुस्तर दुःखदाई। दुर्वृत्ति और श्रवणोक्तन में न आई—द्विवेदी।

दुर्व्यवस्था—संज्ञा स्त्री० [सं०] कुप्रबंध। बद-हंतनामी।

दुर्व्यवहार—संज्ञा पुं० [सं०] (१) बुरा व्यवहार। बुरा बर्ताव।
(२) बुरा आचरण। (३) वह मुकदमा जिसका फैसला बुरे अदावत आदि के कारण ठीक न हुआ हो। दे० 'दुर्दण्ड'।

दुर्व्यसन—संज्ञा पुं० [सं०] बुरी छत। सारा बुरावत। किसी ऐसी बात का अभ्यास जिससे कोई काम न हो।

दुर्व्यसनी—वि० [सं०] बुरी खतबाला।

दुर्मत—संज्ञा पुं० [सं०] बुरा मनोरथ। नीच आशय।

वि० जितने बुरा मत लिया हो। बुरे मनोरथोंवाला। नीचाशय।

दुर्दंड—संज्ञा पुं० [सं०] जो सुबह न हो। समिन्न। शम्भु।

दुलकी—संज्ञा स्त्री० [हिं० दलकना] घोड़े की एक खाल जिसमें बंद बरों पैर अलग अलग बटा कर कुछ बड़बुता हुआ चलता है।

क्रि० प्र०—चलना।—जाना।

दुलखना—क्रि० घ० [हिं० दो+खण] बार बार बदलाना। बार-बार कहना। बार-बार दोहराना।

दुलखी—संज्ञा स्त्री० [देग०] एक फतिंग जो उबार, नील, समाधि, सरसों और गेहूँ को मुकसान पहुँचाता है।

दुलड़ा—वि० [हिं० दो+लड़] [स्त्री० दुलड़ी] दो खड़ों का।

संज्ञा पुं० दो खड़ों की माहा।

दुलड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० दो+लड़] दो खड़ों की माहा।

दुलची—संज्ञा स्त्री० [सं० दो+चो] (१) घोड़े आदि चौपायों का पिछले दोनों पैरों को बटा कर मारना।

क्रि० प्र०—चलना।—मारना।

मुद्दारा—दुलची छटना या भाङना=दोनों हाथों का चताना।
दोनों हाथों से मारना। दुलची फेंकना=दोनों हाथ चताना।

(२) माखलम की एक कसरत जिसमें दोनों पैरों से माखलम को खपेट कर बाकी बदन माखलम से अलग दिला कर ताल आदि डेंकते हैं।

दुलदुल—संज्ञा पुं० [सं०] वह खड़ी जिसे हसकंदरिया (मिल) के हाकिम ने मुहम्मद साहब को नज़र में दिया था। साधारण लोग इसे घोड़ा समझते हैं और मुहर्रम के दिनों में इसकी नकल निकालते हैं। मुहर्रम की आठवों को अन्नात के नाम का और नवों को हुसैन के नाम का विना सवार का घोड़ा भीड़ भाड़ के साथ निकाला जाता है।

दुलन—संज्ञा पुं० दे० "दोलन"। व०—सूर स्वाम सरोज लोचन दुलन जन जल पार।—सूर।

दुलना—क्रि० घ० दे० "दुलना"।

दुलम ०—वि० दे० "दुलम"।

दुलराना ०—क्रि० सं० [हिं० दुलारना] लाड़ करना। बच्चों को पालना कर प्यार करना। व०—अप बागी मौको दुलारबन प्रेम करति ररि ऐसी ही। सुनहु सूर हमरे दित दिन मति बड़ी प्रेम की गैली हो।—सूर।

क्रि० घ० दुलारे बच्चों की ली घेरा करना। लाड़ प्यार का सा व्यवहार करना।

दुलरी—संज्ञा स्त्री० दे० "दुलड़ी"।

दुलरुपा—वि० दे० "दुलारा"।

दुलहन—संज्ञा स्त्री० [हिं० दुलहा] नवविवाहिता बच्ची। नई बहू। नई ब्याही हुई स्त्री।

दुलहा—संज्ञा पुं० दे० "दुलहा"।

दुलहिन—संज्ञा स्त्री० दे० "दुलहन"।

दुलहिया—संज्ञा स्त्री० दे० "दुलही"। व०—देह दुलहिया की बच्ची ज्यों ज्यों जोवन जाती।—विहारी।

दुलही—संज्ञा स्त्री० दे० "दुलहन"।

दुलहेटा—संज्ञा पुं० [सं० दुहेन, प्रा० दुल्ह+हिं० येटा] लाड़ला घेरा। दुलारा खड़का। व०—युग युग जियहि राजदुलहेटा वै असीत दिननारी। पार भील ली सीख जाइ पर कोउ आवती सुखारी।—रघुना।

दुलार—संज्ञा स्त्री० [सं० दुल=रुई, हिं० दुलई, दुलाई] छोड़ने का दोहरा कपड़ा जिसके भीतर रुई भरी हो। रुई भरा हुआ थोड़ना।

दुलाना ०—क्रि० सं० दे० "दुलाना"।

दुलार—संज्ञा पुं० [हिं० दुलारना] प्रसन्न करने की वह घेरा जो प्रेम के कारण योग बरकों वा प्रेमपात्रों के साथ करते हैं, जैसे, कुछ विलक्षण सेवोपायों से प्रकरना, शरीर पर हाथ फेरना, धूमना इत्यादि। लाड़ प्यार।

क्रि० प्र०—करना।—दोना।

दुलारना—क्रि० सं० [सं० दुलारन, प्रा० दुलहन] प्रेम के कारण

बर्चों या प्रेमपाशों को प्रसन्न करने के लिये इनके साथ अनेक प्रकार की खेला करना (जैसे, विवाहव्यय संशोधनों से पुकारना, शरीर पर हाथ फेरना, चूमना इत्यादि)। खाड़ करना। खाड़ना।

दुलारा-वि० [हि० दुलार] [श्री० दुलारी] जिसका बहुत दुलार या खाड़ प्यार हो। खाड़वा। जैसे, दुलारा खड़का।
संज्ञा पुं० खाड़वा घेठा। प्रिय पुत्र। ४०—रोकत मग शाल सखी नंद को दुलारो।—सूर।

दुलारी-वि० श्री० [हि० दुलारा] जिसका अधिक खाड़ प्यार हो। खाड़ली।

संज्ञा श्री० खाड़ली घेटी। प्रिय कन्या। ३०—सखियन सँग भूलति नृपभानु की दुलारी।—सूर।

संज्ञा श्री० नंदे "दुलारि"। ४०—इती धात को समुक्ति को पू छोपने मन पाब। प्रीति दुलारी बुझत है खदि कै मगनी खाल।—रसनिधि।

दुलीचा-संज्ञा पुं० [दे०] गलीचा। कालीन।

दुलेहटा नं० संज्ञा पुं० दे० "दुलहेटा"।

दुलैचा-संज्ञा पुं० [दे०] गलीचा। कालीन।

दुलोही-संज्ञा श्री० [हि० दो + होहा] एक प्रकार की तजवार जो लोहे के दो टुकड़ों को जोड़ कर बनाई जाती है।

दुल्लभ वि० दे० "दुल्लभ"।

दुल्लो-संज्ञा श्री० दे० "दुल्लो"।

दुल्लो-संज्ञा श्री० [हि० दो + ल (प्रत्य०)] गोली के खेब में वह गोली जो मीर या शगली गोली के पीछे हो। दूसरे नंबर की गोली।

दुल्लैया नं० संज्ञा श्री० दे० "दुल्लहन"।

दुल्ल वि० [सं० लि] दो।

दुवन-संज्ञा पुं० [सं० उर्मन्स्] (१) दुष्ट चित्त का मनुष्य। खल। हुज्जं। बुरा आदमी। ४०—कै धपनी हुनीति कै दुवन करता मानि। आवै घर में सोच छति सो संका पहि-धानि।—पद्मकर। (२) शयु। वैरी। दुश्मन। ४०—मतिराम सुनत दिन दिन बढ़त सुनत दुवन उर कटिपत।—मतिराम। (३) राघव। दैत्य। ४०—(क) धारन सुवन को तो दया दुवनहु पर मोहि सोच मेते सब विधि नसानि।—मुहली। (ख) पयज यथाय सेत उतरे कटक फलि आप देखि देखि नृत दाहन दुवन के।—मुहली।

दुवाज-संज्ञा पुं० [?] एक प्रकार का घोड़ा। ४०—त्रुका भीर दुवाज घोरता है छपि दूनी।—सूदन।

दुवादस वि० दे० "द्वादश"।

दुवादस धानी वि० [सं० द्वादस = वर्ष + धानी] बारह धानी का। सूर्य के समान दृग्गता हुआ। धामाधुक। खरा। (विशेषतः सोने के लिये)। ४०—कनक दुवादस मानि है चह

सुहाग वह मांग। सेवा करै नखत सति तरह भवै जस मांग।—जायसी।

दुवादसी नं० संज्ञा श्री० दे० "द्वादशी"।

दुवारा-संज्ञा पुं० दे० "द्वार"।

दुवारिका नं० संज्ञा श्री० दे० "द्वारका"।

दुवाल-संज्ञा श्री० [फा०] (१) चमड़े का तलमा। (२) रिक्राफ का तलमा। रिक्राफ में जगा हुआ चमड़े का चौड़ा फीता।

दुवालबंद-संज्ञा पुं० [फा०] चमड़े का चौड़ा तलमा जो कमर आदि में खपेटा जाय। चपरास या पेटी का तलमा।

दुवाली-संज्ञा श्री० [दे०] रंगे या छुपे हुए कपड़ों पर चमक खाने के लिये घोंदने का धागा। घोंदा।

संज्ञा श्री० [फा० दुवाल] चमड़े के चौड़े तलमे का परतला या पेटी जिसमें बंदूक, तलवार आदि छटकते हैं।

दुवालीबंद-संज्ञा पुं० [फा०] परतला आदि लगाए हुए तैवार सिपाही।

दुविद वि० संज्ञा पुं० दे० "द्विविद"।

दुविधा-संज्ञा पुं० दे० "दुवधा"।

दुवो नं० वि० [हि० दुव = दो + उ = धी] दोने।

दुशवार-वि० [फा०] [संज्ञा दुशवारी] (१) कठिन। दुर्ह। मुश्किल। (२) दुःसह।

दुशवारी-संज्ञा श्री० [फा०] कठिनता।

दुशाला-संज्ञा पुं० [सं० द्विशाल, फा० दोशाला] परामीने की चट्टों का जोड़ा जिनके किनारे पर परामीने की रंग चिरंगी बेलें बनी रहती हैं। ये यहुका कश्मीर और पेशावर से आती हैं। कश्मीरी दुशाले शरच्छे धार कीमती होते हैं। ४०—तान तुकताला हैं विनेद के रसाखा हैं, सुदाजा हैं दुशाला हैं विरावा चित्र-शाला हैं।—पद्मकर।

श्री०—दुशाला-पोश। दुशाला-करोव।

मुहा०—दुशाले में खपेट कर मारना या लगाना = आड़े हाथ लेना। छिपे छिपे आवेप करना। मोठी चुटकी लेना।

दुशाला-पोदा-वि० [फा०] (१) जो दुशाला जोड़े हो। (२) जो शरच्छे कपड़ा पहने हुए हो। (३) धमीर।

दुशाला-फरोशा-संज्ञा पुं० [फा०] दुशाला घेबनेवाला।

दुशासन वि० संज्ञा पुं० दे० "दुःशासन"।

दुश्चर-वि० [सं०] [संज्ञा दुश्चर्य] जिसका करना कठिन हो। कठिन। दुश्चर।

दुश्चरित-वि० [सं०] (१) बुरे आचरण का। बद्चलन। (२) कठिन।

संज्ञा पुं० (१) बुरा आचरण। कुखाल। बद्चलनी। (२) पाप।

दुश्चरित्र-वि० [सं०] [श्री० दुश्चरिशा] बुरे चरित्रवाला। बद्चलन।

संज्ञा पुं० सुती चाब। कुचाब। दुराचार।
दुश्चर्मा—संज्ञा पुं० [सं० दुश्चर्मन्] वह पुरुष जिसकी लिंगेन्द्रिय
 के मुख पर टाकनेवाला चमड़ा न हो। इस प्रकार के लोग
 जन्म से ही बिना इस चमड़े के होते हैं। चर्मशास्त्रों का
 मत है कि गुरुत्वपग जन्मदात में दुश्चर्मा उपपन्न होते हैं।
 ऐसे पुरुषों को बिना प्रायश्चित्त किए किसी कर्म के करने
 का अधिकार नहीं है, यहाँ तक कि बिना प्रायश्चित्त किए
 शनका दाहकर्म और मृतक-कर्म भी नहीं किया जा सकता।
दुश्चलन—संज्ञा स्त्री० [सं० दुः+चलन्] दुराचरण। खोटी
 चाब। उ०—जिस मनुष्य के स्वल्प से दुश्चलन भयवा
 दुराचरण की धारांका पाई जाय उसका निरीक्षण पूर्वतया
 हो।—वेगिस का बाँका।

दुश्चित्त्य—वि० [सं०] जो कठिणता से समझ में आये। जिसकी
 भावना मन में जल्दी न हो सके।
दुश्चिकित्स—वि० [सं०] दुरिचिकित्स। जिसकी चिकित्सा
 कठिन हो।
दुश्चिकित्सा—संज्ञा स्त्री० [सं०] आयुर्वेद संबंधी चिकित्सा के
 नियमों के विरुद्ध चिकित्सा करना। निन्दित चिकित्सा।
 विरोध—स्मृतिवेगों में इस प्रकार के अनाड़ी या दृष्ट चिकित्सकों
 के दंड का विधान है।
दुश्चिकित्सित—वि० [सं०] जिसकी चिकित्सा बढ़ी कठिनाई से
 हो सके। अचिकित्सनीय। दुःसाध्य (रोग)।
दुश्चिकित्स्य—वि० [सं०] जिसकी चिकित्सा कठिनाता से हो सके।
 जिसकी दवा जल्दी न हो सके। दुःसाध्य।
दुश्चिप्य—संज्ञा पुं० [सं०] फलित ज्योतिष के धनुषमार जन्म से
 तीसरा ध्यान।
दुश्चित्त—संज्ञा पुं० [सं०] (१) खटका। चिंता। धारांका। (२)
 चबराइट।

दुश्चेष्टा—संज्ञा स्त्री० [सं०] [सं० दुश्चेष्टित] दुरा काम। कुचेष्टा।
दुश्चेष्टित—संज्ञा पुं० [सं०] (१) दुष्कर्म। पाप। (२) नीच
 काम। सोटा काम।
दुश्च्यवन—वि० [सं०] जो जल्दी च्युत न हो सके। जो जल्दी
 विचलित न हो।
 संज्ञा पुं० इंद्र।
दुश्च्यवान—वि० [सं०] जो जल्दी च्युत न किया जा सके।
 संज्ञा पुं० शिव। महादेव।

दुश्मन—संज्ञा पुं० [फा०] [मूल० दुश्मनी] शत्रु। वैरी। द्वेषी।
 उ०—रथाम धृषि निरक्षति नागरि ऋरि। प्यारी द्रुषि निर-
 क्षत मनमोहन सकृत् न नैन पसारि। पिय सहृदय नहिं
 दिष्टि मिवावत सन्मुख होत क्षमत्। श्रीराधिका निडर
 श्वशोकच अतिदि छदय इरलात। अस परस मोहनि

मोहन मिबि सँग गोपी गोपाल। मूरदास प्रभु सय गुण-
 लायक दुरामन के हर साल—सूर।
दुश्मनी—संज्ञा स्त्री० [फा०] वैरी। शत्रुता। विरोध।
दुष्कर—वि० [सं०] जिसे करना कठिन हो। दुःसाध्य। जो
 मुश्किल से हो सके।
 संज्ञा पुं० आकार।
दुष्कर्षी—संज्ञा पुं० [सं०] धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम।
दुष्कर्मा—संज्ञा पुं० [सं० दुष्कर्मन्] [नि० दुष्कर्मा] दुरा काम।
 कुकर्मा। पाप।
दुष्कर्मा—वि० [सं० दुष्कर्मन्] दुरा काम करनेवाला। पापी।
 कुकर्मा।
दुष्कर्मा—वि० [सं० दुष्कर्मन् + ई (प्रत्य०)] दुरा काम करनेवाला।
 पापी। दुराचारी।
 संज्ञा पुं० पापी। उ०—मुझे अपने को बहुत से दुष्कर्मिणों
 का अग्रगण्य बना रखना है।—वेगिस का बाँका।
दुष्काल—संज्ञा पुं० [सं०] (१) दुरा वक्त। कुसमय। (२)
 दुर्मित्र। अकाल। (३) मदादेव।
दुष्कीर्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] कुकीर्ति। अपयश। बदनामी।
दुष्कुल—संज्ञा पुं० [सं०] नीच कुल। दुरा खानदान। अप्रतिष्ठित
 घराना।
 वि० नीच कुल का। दुष्कुल घराने का।
दुष्कुलीन—वि० [सं०] नीच कुल का। दुष्कुल घराने का।
दुष्कृति—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुरा काम। कुकर्मा।
 वि० [सं०] कुकर्मा। पापी।
दुष्कृती—वि० [सं० दुष्कृतिन्] दुरा काम करनेवाला। कुकर्मा।
 पापी।
दुष्कृत—वि० [सं०] मोक्ष लेने में जिसका दाम बचित से अधिक
 दिया गया हो। महंगा।
दुष्खदिर—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का वृक्ष जिसका पेड़ छोटा
 होता है। इसका कच्चा पीला और खाने में कड़ुआ और
 कसैला होता है। इसे पुद्ग खदिर भी कहते हैं।
 पर्याय—कालोजी। कालस्कंद। गोस्ट। अमरज। पत्रवह।
 बहुसार। महासार। पुद्ग खदिर।
दुष्ट—वि० [सं०] [फी० दुष्ट] (१) दूषित। दोष-भरत। जिसमें
 दोष हो। जिसमें दुष्प या ऐश हो। (२) पित्त आदि दोष
 युक्त। (३) दुर्जन। खल। दुराचारी। पापी। सोटा।
 संज्ञा पुं० (१) कुष्ट। कोढ़।
दुष्टचारी—वि० [सं० दुष्टचारिन्] [स्त्री० दुष्टचारीणी] (१)
 दुराचारी। दुरा भाषण करनेवाला। (२) दुर्जन। खल।
दुष्टचेता—वि० [सं० दुष्टचेतस्] (१) दुरी चिंतना करनेवाला।
 बुरे विचार का। (२) दुरा चाहनेवाला। अहिताकांक्षी।
 (३) कपटी।

बच्चों या प्रेमपाशों को प्रसन्न करने के लिये इनके साथ अनेक प्रकार की बेटा करना (जैसे, विजयपथ संवोधनों से पुकारना, शरीर पर हाथ फेरना, चूमना इत्यादि) लाड़ करना । लाड़ना ।

दुलारा-वि० [हि० दुलारा] जिसका बहुत दुबारा या लाड़ प्यार हो । लाड़वा । जैसे, दुलारा बच्चा ।

संज्ञा पुं० लाड़ला बेटा । प्रिय पुत्र । व०—रोकत मग आज सली मंद को दुलारो।—सूर ।

दुलारी-वि० स्त्री० [हि० दुलारा] जिसका अधिक लाड़ प्यार हो । लाड़ली ।

संज्ञा स्त्री० लाड़ली बेटा । प्रिय कन्या । उ०—सखियन सँग मूकति वृषमासु की दुलारी।—सूर ।

संज्ञा स्त्री० † दे० “दुलाई” । व०—दूती बात को समुक्ति से वृ अपने मन बाळ । भीति दुबारी खुलत है जहि के मानी बाळ ।—रसनिधि ।

दुलीचा-संज्ञा पुं० [दे०] गलीचा । कालीन ।

दुलेहटा †-संज्ञा पुं० दे० “दुलहेटा” ।

दुलैचा-संज्ञा पुं० [दे०] गलीचा । कालीन ।

दुलोही-संज्ञा स्त्री० [हि० रो + ओहा] एक प्रकार की लक्षार जो लोहे के दो टुकड़ों को जोड़ कर बनाई जाती है ।

दुल्लभ-वि० दे० “दुर्लभ” ।

दुल्ली-संज्ञा स्त्री० दे० “दुल्ली” ।

दुल्ली-संज्ञा स्त्री० [हि० रो + ला (प्रत्य०)] गोली के खेज में वह गोली जो मीर या भगली गोली के पीछे हो । दूसरे नंबर की गोली ।

दुल्लैया †-संज्ञा स्त्री० दे० “दुल्लहन” ।

दुव-वि० [सं० द्वि] दो ।

दुवन-संज्ञा पुं० [सं० दुर्गमन्] (१) दुष्ट चित्त का मनुष्य । खल । दुर्जन । बुरा आदमी । व०—कै अपनी दुर्निति के दुवन करता मानि । धार्ये घर में सोच धरति सो संज्ञा पहि-चानि ।—पद्माकर । (२) यज्ञ । घैरी । दुरमन । उ०—मतिराम सुजस दिन दिन बढ़त सुनत दुवन उर कटिपत ।—मतिराम । (३) राक्षस । दैत्य । व०—(क) भारत सुवन को तो दया दुवनहु पर मोहिँ सोच मोते सय विधि नसानि ।—तुलसी । (ख) पयज रँधाय सेत वतरे कटक कलि भाप देखि देखि दूत दाखन दुवन के ।—तुलसी ।

दुवाज-संज्ञा पुं० [?] एक प्रकार का घोड़ा । व०—जुका भीर दुवाज बोरता है क्षुधि दूनी ।—सूदन ।
दुवादस †-वि० दे० “द्वादश” ।
दुवादस बानी-वि० [सं० द्वादश = दस + बंध] बारह बानी का । सूर्य के समान दमकता हुआ । आमायुक्त । खरा । (विशेषतः सेने के लिये) । व०—कनक दुवादस यानि है चद

मुहाग वह माँग । सेवा करें नहत सति तरह हवै जस गाँग ।—जायसी ।

दुवादसी-संज्ञा स्त्री० दे० “द्वादशी” ।

दुवारी-संज्ञा पुं० दे० “द्वार” ।

दुवारिका-संज्ञा स्त्री० दे० “द्वारका” ।

दुवाल-संज्ञा स्त्री० [फा०] (१) चमड़े का तसमा । (२) रिकाम का तसमा । रिकाम में खगा हुआ चमड़े का चौड़ा फीता ।

दुवालवंद-संज्ञा पुं० [फा०] चमड़े का चौड़ा तसमा जो कमर आदि में लपेटा जाय । चपरास या पेटी का तसमा ।

दुवाली-संज्ञा स्त्री० [दे०] रंगे या छपे हुए कपड़ों पर चमक जाने के लिये घोंठने का औजार । घोटा ।

संज्ञा स्त्री० [फा० दुवाळ] चमड़े के चौड़े तसमे का परतजा या पेटी जिसमें बंदूक, तबघार आदि छटकते हैं ।

दुवालीबंद-संज्ञा पुं० [फा०] परतजा आदि लगाए हुए तैयार सिपाही ।

दुविद-संज्ञा पुं० दे० “द्विविद” ।

दुविधा-संज्ञा पुं० दे० “दुवधा” ।

दुवोर्-वि० [हि० द्व = दो + उ = शी] दोने ।

दुशधार-वि० [फा०] [संज्ञा दुशवारी] (१) कठिन । दुख । मुश्किल । (२) दुःसह ।

दुशधारी-संज्ञा स्त्री० [फा०] कठिनता ।

दुशाला-संज्ञा पुं० [सं० द्विशाल, फा० दोपाला] परामीने की चढ़ों का जोड़ा जिनके किनारे परामीने की रंग विरंगी बेलें बनी रहती हैं । ये यहुधा करमीर और पेरायर से जाती हैं । करमीरी दुशाले अच्छे धीर कीमती होते हैं । व०—तान तुक्ताबा हैं विनेद के रसाला हैं, सुपाला हैं दुशाला हैं विशाला चित्र-नाबां हैं ।—पद्माकर ।

धौ-दुशाला-पेरा । दुशाला-फरोरा ।

मुहा०—दुशाले में लपेट कर मारना या लगाना = आड़े हाथ लेना । छिपे छिपे आक्षेप करना । मोठी चुटकी लेना ।

दुशाला-पोशा-वि० [फा०] (१) जो दुशाला छोड़े हो । (२) जो अच्छा कढ़ा पहने हुए हो । (३) धमीर ।

दुशाला-फरोरा-संज्ञा पुं० [फा०] दुशाला बेचनेवाला ।

दुशासन-संज्ञा पुं० दे० “दुःशासन” ।

दुश्चर-वि० [सं०] [संज्ञा दुश्चरण] जिसका करना कठिन हो । कठिन । दुष्कर ।

दुश्चरित-वि० [सं०] (१) बुरे आचरण का । बदचलन । (२) कठिन ।

संज्ञा पुं० (१) बुरा आचरण । कुचाल । बदचलनी । (२) पाप ।

दुश्चरित्र-वि० [सं०] [स्त्री० दुश्चरित्रा] बुरे चरित्रवाला । बदचलन ।

संज्ञा पुं० बुदी बाल । कुचाख । दुराचार ।
 दुश्चर्मर्मा—संज्ञा पुं० [सं० दुश्चर्मर्] बद्ध पुरुष जिसकी किंग्रिय
 के मुझ पर डाकनेवाला चमड़ा न हो । इस प्रकार के बोधा
 सम्य से ही बिना इस चमड़े के होते हैं । धर्मशास्त्रों का
 मत है कि गुरुत्वयम जन्मांतर में दुश्चर्मर्मा व्यपन्न होते हैं ।
 ऐसे पुरुषों को बिना प्रायश्चित्त किए किसी कर्म के करने
 का अधिकार नहीं है, यहाँ तक कि बिना प्रायश्चित्त किए
 इनका दाहकर्म और शवकर्म भी नहीं किया जा सकता ।
 दुश्चलन—संज्ञा स्त्री० [सं० दुः+दि० चलन] दुराचरण । रोटी
 चाख । उ०—जित मनुष्य के स्वरूप से दुश्चलन अपयथा
 दुराचरण की आशंका पाई जाय उसका निरीक्षण पूर्वयथा
 दो।—वेनिस का यौका ।

दुर्दिक्त्य—वि० [सं०] जो कठिनता से समझ में आये । जिसकी
 भाषणा मूल में अर्थही न हो सके ।

दुश्चिकित्स—वि० [सं०] दुर्दिघकित्स्य । जिसकी चिकित्सा
 कठिन हो ।

दुश्चिकित्सा—संज्ञा स्त्री० [सं०] चातुर्वेद सर्वेपी चिकित्सा के
 नियमों के विरुद्ध चिकित्सा करना । निंदित चिकित्सा ।

विशेष—स्त्रियों में इस प्रकार के अनाड़ी या दुष्ट चिकित्सकों
 के दंत का विधान है ।

दुश्चिकित्सित—वि० [सं०] जिसकी चिकित्सा बड़ी कठिन है से
 हो सके । अचिकित्सनीय । दुःसाध्य (रोग) ।

दुश्चिकित्स्य—वि० [सं०] जिसकी चिकित्सा कठिनता से हो सके ।
 जिसकी दवा अर्थही न हो सके । दुःसाध्य ।

दुश्चिन्मय—संज्ञा पुं० [सं०] फलित ज्योतिष्य के अनुसार जन्म से
 तीसरा स्थान ।

दुश्चित्त—संज्ञा पुं० [सं०] (१) छटका । चिंता । आशंका । (२)
 यथाहट ।

दुश्चेष्टा—संज्ञा स्त्री० [सं०] [सं० दुश्चेष्टित] दुरा काम । कुचेष्टा ।
 दुश्चेष्टित—संज्ञा पुं० [सं०] (१) दुष्कर्म । पाप । (२) नीच
 काम । छोटा काम ।

दुश्च्यवन—वि० [सं०] जो अर्थही व्युत् न हो सके । जो अर्थही
 विचलित न हों ।

संज्ञा पुं० हूँद ।
 दुश्च्यवन—वि० [सं०] जो अर्थही व्युत् न किया जा सके ।
 संज्ञा पुं० शिव । महादेव ।

दुश्च्यवन—संज्ञा पुं० [फा०] [आठ० दुश्च्यवनी] शयु । घेरी । हूँपी ।
 उ०—यथा मृगि निरलक्षित नास्ति नारि । प्यारी-सुमि निर-
 लक्षत मगमोहन सक्त न गनन पसादि । पिय सङ्कृत नहि
 दिष्टि मिखावत समुख होत लक्षत । श्रोताधिका निर
 श्वकोक्त अतिहि हृदय हरलात । प्रस परस मोहनि

मोहन मित्रि सँग गोपी गोपाल । सुरदास प्रभु सप्त गुण-
 कायक दुरामन के घर साल—सूर ।

दुश्मती—संज्ञा स्त्री० [फा०] घेरी । शयुता । विरोध ।
 दुष्कर—वि० [सं०] जिसे करना कठिन हो । दुःसाध्य । जो
 मुश्किल से हो सके ।

संज्ञा पुं० आकार ।
 दुष्कार्य—संज्ञा पुं० [सं०] धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम ।
 दुष्कर्म—संज्ञा पुं० [सं० दुष्कर्म] [नि० दुष्कर्मा] दुरा काम ।
 दुष्कर्म । पाप ।

दुष्कर्मा—वि० [सं० दुष्कर्म्] दुरा काम करनेवाला । पापी ।
 दुष्कर्मी ।

दुष्कर्मी—वि० [सं० दुष्कर्म् + ई (प्रत्य०)] दुरा काम करनेवाला ।
 पापी । दुराचारी ।

संज्ञा पुं० पापी । उ०— तुमने अपने को बहुत से दुष्कर्मियों
 का अग्रगण्य बना रखा है।—वेनिस का यौका ।

दुष्काल—संज्ञा पुं० [सं०] (१) दुरा वक्त । कुसमय । (२)
 दुर्मिग । अकाल । (३) महादेव ।

दुष्कीर्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] कुकीर्ति । अपयश । बदनामी ।
 दुष्कुल—संज्ञा पुं० [सं०] नीच कुल । दुरा खानदान । अग्रतिष्ठित
 घातना ।

वि० नीच कुल का । तुच्छ घराने का ।
 दुष्कुलीन—वि० [सं०] नीच कुल का । तुच्छ घराने का ।
 दुष्कृति—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुरा काम । दुष्कर्म ।

वि० [सं०] दुष्कर्मी । पापी ।
 दुष्कृती—वि० [सं० दुष्कृति] दुरा काम करनेवाला । दुष्कर्मी ।
 पापी ।

दुष्कृति—वि० [सं०] मोक्ष लेने में जिसका दाम शक्ति से अधिक
 दिया गया हो । महंगा ।

दुष्कृतिर—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का खैर जिसका पेड़ छोटा
 होता है । इसका कच्चा पीला और खाने में कटुधा और
 कसैला होता है । इसे पुद्ग खदिर भी कहते हैं ।

पर्याय—कायोगी । कालकंद । गोष्ट । अमरन । पत्रतद ।
 बहुसार । महासार । पुद्ग खदिर ।

दुष्ट—वि० [सं०] [स्त्री० दुष्ट] (१) दूषित । दोष-मस्त । जिसमें
 दोष हो । जिसमें नुक्स या ऐष हो । (२) रिच आदि दोष
 युक्त । (३) दुर्जन । खल । दुराचारी । पापी । छोटा ।
 संज्ञा पुं० (१) हट । कोढ़ ।

दुष्टचारी—वि० [सं० दुष्टचारी] [स्त्री० दुष्टचारी] (१)
 दुराचारी । दुरा आचरण करनेवाला । (२) दुर्जन । खल ।
 दुष्टचेता—वि० [सं० दुष्टचेत] (१) बुद्धि चिंतना करनेवाला ।
 धरे विचार का । (२) दुरा चाहनेवाला । अहिताकांक्षी ।
 (३) कपटी ।

दुष्टता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) दोष । दुष्टत । ऐष । (२) बुराई ।
लायी । (३) बदमासी । दुर्जनता ।

दुष्टत्व-संज्ञा पुं० [सं०] दुर्जनता । खोटारी ।

दुष्टपना-संज्ञा पुं० [हिं० दुष्ट + पन (अप्य०)] दुष्टता । खोटारी ।
उ०—ने सत रहू न रात मेरे में । है अति दुष्टपना तेरे में ।—
गोपाल ।

दुष्ट ग्रण-संज्ञा पुं० [सं०] वह ग्रण का घाव जिसमें से दुर्गोप
आवे और जो अच्छा न हो । यह रोग पैरक में घसलाप्य
माना गया है और धर्मशास्त्र ने इस रोग को पूर्व-अन्नकृत
महा पातक का फल माना है । बिना प्रापरिबन्ध किए इस
रोग का रोगी अस्वस्थ माना गया है और उसके दाहकमें
और मृतक-संस्कार का निषेध है ।

दुष्ट-वि० दे० “दुस्तर” ।

दुष्टसाक्षी-संज्ञा पुं० [सं० दुष्टसाक्षिन्] गुरा साधी । पेमा गवाह
जो ठीक ठीक गवाही न दे । अप्रामाण्य साधी ।

विशेष—स्थितिमें में खिला है कि साधी सत्यवादी, कर्तव्य-
परायण और निष्ठा है । यदि साधी ऐसा हो जिसने
कभी झूठी गवाही दी हो, जो व्याधिग्रस्त हो, जिसने मदा-
पातक किए हों अथवा जिसका दोष पक्षों में से किसी पक्ष
के साथ आर्थिक संबंध, शत्रुता या मित्रता हो वह दुष्ट
साधी है । तबका साथ मद्दह्य न करना चाहिए ।

दुष्टा-वि० स्त्री० [सं०] खोटी । बुरे स्वभावी की ।

दुष्टाचार-संज्ञा पुं० [सं०] कुचाल । कुकर्म । खोटा काम ।
वि० दुराचारी । गुरा काम करनेवाला ।

दुष्टाचारी-वि० [सं० दुष्टाचारिन्] [स्त्री० दुष्टाचारीणी] कुकर्मों ।
जिनके आचरण अच्छे न हों । खोटा काम करनेवाला ।

दुष्टात्मा-वि० [सं०] जिनका अंतःकरण गुरा हो । दुराय ।
खोटी प्रकृति का ।

दुष्टात्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विगड़ । हुआ चरत । बानी या
सदा चरत । (२) कुस्मित अन्न । (३) वह चरत जो पाप की
कमाई हो । (४) नीच का अन्न ।

दुष्टि-संज्ञा स्त्री० [सं०] दोष । विकार । ऐष ।

दुष्टपच-वि० [सं०] (१) जो कठिनता से पके । (२) जो जल्दी न
पके ।

दुष्टपत्र-संज्ञा पुं० [सं०] चौर नामक गंधद्रव्य ।

दुष्टपद-वि० [सं०] दुष्प्राप्य ।

दुष्टपराजय-वि० [सं०] जिसका जीतना कठिन हो ।

संज्ञा पुं० धृतराष्ट्र का एक पुत्र ।

दुष्टपरिग्रह-संज्ञा पुं० [सं०] जो जल्दी पकड़ में न आ सके ।
जिसे जल्दी धर पकड़ न सके । जिसे धर में खाना कठिन हो ।

दुष्टपर्श-वि० [सं०] (१) जिसे स्पर्श करना कठिन हो । जिसे
छूने न चने । (२) जो जल्दी हाथ न छोड़े । दुष्प्राप्य ।

दुष्टपर्श-संज्ञा स्त्री० [सं०] जवासा ।

दुष्टार-वि० [सं०] (१) जिसे जल्दी पार न कर सकें । (२)
दुःसाध्य । कठिन ।

दुष्टूर-वि० [सं०] (१) जिसका भरना कठिन हो । जो जल्दी
पूरा न हो सके । कठिनता से पूर्ण होनेवाला । (२)
अनियाम्य ।

दुष्टप्रकृति-संज्ञा स्त्री० [सं०] बुरी प्रकृति । खोटा स्वभाव ।

वि० बुरे स्वभाव का । दुःखीक ।

दुष्टप्रधर-वि० [सं०] जो जल्दी धर पकड़ में न आसके ।

संज्ञा पुं० धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम ।

दुष्टप्रधर्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) जवासा । दिगुवा । (२)
खजूर ।

दुष्टप्रधिर्मिणी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कंठकारी । भटकटवा । (२)
वेगन । भंडा ।

दुष्टप्रवृत्ति-संज्ञा स्त्री० [सं०] बुरी प्रवृत्ति ।

दुष्टप्रवेशा-संज्ञा स्त्री० [सं०] कंधारी घृष ।

दुष्टप्राप्य-वि० दे० “दुष्प्राप्य” ।

दुष्टप्राप्य-वि० [सं०] जो सहज में न मिल सके । जिनका
मिलना कठिन हो ।

दुष्टप्रेक्ष-वि० दे० “दुष्टप्रेक्ष्य” ।

दुष्टप्रेक्ष्य-वि० [सं०] (१) जिसे देखना कठिन हो । (२) दुर्द-
शन । भीषण ।

दुष्मंत-संज्ञा पुं० दे० “दुष्मंत” ।

दुष्मंत-संज्ञा पुं० [सं०] पुरुवंशी एक राजा जो ऐति नामक
राजा के पुत्र थे । महाभारत में इनकी कथा इस प्रकार
लिखी है—

एक दिन राजा दुष्यंत शिकार खेलते खेलते यह कर कण्व
मुनि के आश्रम के पास आ निकले । उस समय कण्व मुनि
की पाली हुई जड़की शकुंतला ही वहाँ थी । उसने राजा का
वचन सकार किया । राजा उसके रूप पर मोह गए ।
पूछने पर राजा को मालूम हुआ कि शकुंतला एक अप्सरा
के गर्भ से उत्पन्न विश्वामित्र ऋषि की कन्या है । जब राजा
ने विश्वाह का प्रस्ताव किया तब शकुंतला ने कहा “यदि
मांशर्व-वियह में कुछ दौप न हो और यदि आप मेरे ही
पुत्र को सुवराज बनायें तो मैं सम्मत हूँ ।” राजा विश्वाह
करके और शकुंतला को कण्व ऋषि के आश्रम पर छोड़
अपनी राजधानी में चले गए । कुछ दिन बीतने पर
शकुंतला को एक पुत्र हुआ जिसका नाम आश्रम के
ऋषियों ने सर्वद्वन्द्वन रख्य । कण्व ऋषि ने शकुंतला को पुत्र
के साथ राजा के पास भेजा । शकुंतला ने राजा के पास
जाकर कहा “दे राजन् ! यह आपका पुत्र मैं गर्भ-से
उत्पन्न हुआ है और आपका औरस पुत्र है, इसे सुवराज

बनाए। राजा को सब बातें याद तो थीं पर लोकनिंदा के भय से उन्होंने उन्हें छिपाने की चेष्टा की और शकुंतला का विरस्कार करते हुए कहा—“रे दुष्ट ! तपस्विनी ! तू किसकी पत्नी है ? मैंने सुनते कोई संबंध कभी नहीं किया, धूल बूर हो।” शकुंतला ने भी बड़का खोड़कर जो जो जी में आया खूब कहा। इस पर देवबाणी हुई “हे राजन् ! यह पुत्र आप ही का है, इसे ग्रहण कीजिए। हम लोगो के कहने से आप इसका भाग्य करें और इस कारण इसका भरत नाम रखें।” देवबाणी सुनकर राजा ने शकुंतला का ग्रहण किया। आगे चलकर भरत बड़ा प्रतापी राजा हुआ।

इसी कथा को लेकर काव्यदास ने “मनिमान-शकुंतल” लिखा है। पर कवि ने कौशल से राजा दुर्व्यत को दुष्ट नायक होने से बचाने के लिये दुर्व्यत के शाप की कल्पना की है और यह दिखाया है कि वही शाप के प्रभाव से राजा सब बातें भूल गए थे। दूसरी बात कवि ने यह की है कि राजा के शस्त्रीकार करने पर जिस निलंग्रता और छटता के साथ शकुंतला का विवाहना महाभारत में लिखा है उसको वे पचा गए हैं।

दुष्टोदर-संज्ञा पुं० [सं०] एक उदार-रोग जो सिंह आदि पशुओं के मध्य और शोएँ अथवा मक्ख, मूष, आर्तमिश्रित अथवा एक साथ मिजा हुआ घी और मनु खाने तथा गंदा पानी पीने से हो जाता है। इसमें त्रिदोष के कारण रोगी दिन दिन दुबला और पीला होता जाता है। इसके शरीर में ज्वर होता है और कभी कभी बसे मूँछों भी आती है। जप बड़की होती है और दिन लाय रहता है तथा यह रोग प्रायः बमरता है।

दुसराना-किं० सं० [हिं० दे० वा दुसरा] दुहराना। सं०—वह कारण प्रविचारित कीजो। तादि न फिर दुसाह सुगीने ।—पद्माकर ।
दुसरिहा-संज्ञा-वि० [हिं० दुसर + हा (अप०)] (१) साथ रहनेवाला । दूसरा भादमी। साथी। संगी। सं०—कहो कि मृत्यु खोक के माहीं। सुदरा कोई दुसरिहा माहीं ।—विश्राम । (२) मविद्रही।

दुसह-वि० [सं० दुसह] जो सहा न जाय। असह्य । कठिन । सं०—जनि रिमि रोकि दुसह दुख सहह ।—सुबली ।

दुसही-वि० [हिं० दुसह + ई (अप०)] (१) जो कठिनता से सह सके। (२) दाही। हूँपाँलु। जैसे, असही दुसही । सं०—असही दुसही मरह मनवि मन रैनन पदह विषाद । उपसृत चारि चारि विरसीवह शंकर गौरि प्रसाद ।—सुबली ।

दुसाधा-संज्ञा पुं० [हिं० दो + धा] (१) एक प्रकार का शमान्दान जिसमें दो कनखे निकले होते हैं। सं०—आइ, दुसाधे, आम, बरुसा, बरम ह्योवा ।—सुदन । (२) हँडे के आकार की एक छोटी सफई जिसके धोर पर दो कनखे फूटे होते

हैं। इसमें साफी (छानने का कपड़ा) बांधकर धोय भाँय छानते हैं।

दुसाध-संज्ञा पुं० [सं० दोषद वा दुःसाध] हिंदुओं में एक नीच जाति जो सुधार पावती है।

वि० नीच। अघम। दुष्ट। पाती। (गाली)

दुसार-संज्ञा पुं० [हिं० दो + सारना] भर पाय छेद। वह छेद जो एक ओर से दूसरी ओर तक हो। सं०—(क) जागत कुटिल कटाइ सर क्यों न होय येहाल। जगत तु द्विये दुसार करि तत्र रहत नटसाल ।—विहारी। (ख) रहि न सको कस करि रसो वस करि लीनो मार। सेद दुसार किया दिवो तन हुनि भेदी सार ।—विहारी। (ग) जागी जागी क्या करै जागत रही छगार। जागी तप ही जानिए निरुसी जाय दुसार ।—कवीर ।

दि० प्र०—रता ।

कि० वि० धार पार। बार पार। एक पार से दूसरे पार तक।
दुसाल-संज्ञा पुं० [हिं० दो + यज] धार पार छेद। सं०—हाल से हवाल पृक चायते धारि पिट्टि। लाध नैन ज्वाल माल सी भरी दुसाल विट्टि ।—सूदन ।

दुसाला-संज्ञा पुं० दे० “दुरात्ता” ।

दुसासन-संज्ञा पुं० दे० “दुसासन” ।

दुसाहा-संज्ञा पुं० [दे०] दोफसली खेत। वह खेत जिसमें दो फसलें हों।

दुस्ती-संज्ञा स्त्री० [हिं० दो + स्त] एक प्रकार की मोटी चादर जिसमें दो तारों का ताना और धाना होता है। यह पंजाब से आती है और दो वा चार हाथों की होती है।

दुसेजा-संज्ञा पुं० [हिं० दो + सेज] बड़ी हाट। पल्लेय। सं०—वह पल्लेय मधान दुसेजा हलत सरीटी। सारसज ह्येदन बहज बहुत गाड़ी सु मयौटी ।—सुवन ।

दुस्तर-वि० [सं०] (१) जिसे पार करना कठिन हो। (२) दुपेट। विकट। कठिन ।

दुस्त्वज-वि० [सं० दुस्त्वज] जो कठिनाई से छेड़ा जा सके। जिसका व्यापना कठिन हो। सं०—देव गुरु गिरा गौरव सुदुस्त्वज राज्य त्पक श्री सकल सौमित्रि आता ।—मुजमी ।

दुस्साह-वि० दे० “दुसह” ।

दुदता-संज्ञा पुं० [सं० दोदिन] [सं० दुदह] वेदी का वेटा। माती। सं०—नूर जहाँ के साथ हौरे पर उसकी दुदती भी थी।—शिवप्रसाद ।

दुहत्या वि० [हिं० दो + ह्य] [सं० दुहाय] (१) दोनो हाथों से किया हुआ। जैसे, दुहती मार। (२) जिसमें दो मूँडे या दस्ते हों।

दुहृत्यो-संज्ञा स्त्री० [हिं० दो + ह्य] माधरंम की एक कसात जिसमें गिराड़ी माधरंम को दोनो हाथों से कुदनी तक

खपेटवा है और फिर जिधर का हाथ ऊपर होता है वधर की टांग को उड़ाकर मालखंभ पर सपारी बाँधता है और अपना हाथ पेट के नीचे से निकाल लेता है ।

दुहना—कि० सं० [सं० दोहन] (१) स्तन से दूध निचोड़ कर निकालना । दूध निकालना । व०—(क) तिल ली तो गाध है धोना नौ नौ हाथ । मटकी भरि भरि दुदिये, पूँछ अटाह हाथ ।—कबीर । (ख) राजनीति मुनि बहुत पढ़ाई गुरु सेवा करवाये । सुभी दुहत दोहनी मंगी यह पसारि देवाये ।—सूर ।

विशेष—‘दूध’ और ‘दूधवाला पशु’ दोनों इसके कर्म हो सकते हैं । जैसे, दूध दुहना, गाध दुहना ।

(२) निचोड़ना । तत्त्व निकालना । सार खींचना । व०—(क) पाठे पृथु को रूप हरि लीन्हें माना रस दुदि काढ़े । तापर रचना रची विधाता बहु विधि पखजन बाड़े ।—सूर । (ख) दीप दीप के दीप की दिपति दुदिन दुदि लीन । सय ससि दामिनि भा मिलै वा भामिनि को कीन ।—शु० सत० ।

मुहा०—**दुह लेना**=(१) निःसार कर देना । सार खींच लेना । (२) धन हार लेना । जहाँ तक है किसी से लाभ उठाना । लूटना । व०—बेचहि वेद धरम दुदि लेहीं । विघ्न पराय पाप कधि देहों ।—गुलसी ।

दुहनी—संज्ञा स्त्री० [सं० दोहनी] वरतन जिसमें दूध दुहा जाता है । दोहनी ।

दुहरना—कि० सं० दे० ‘दोहरना’ ।

दुहरा—वि० दे० ‘दोहरा’ ।

दुहराना—कि० सं० दे० ‘दोहराना’ ।

दुहाई—संज्ञा स्त्री० [सं० दि = दे + आहाय = प्रकार] (१) घोषणा । पुकार । वच्च स्वर से किसी बात की सूचना जो चारों ओर दी जाय । मुनादी ।

मुहा०—(किसी की) दुहाई फिरना=(१) राजा के सिंहासन पर बैठने पर उसके नाम की घोषणा होना । राजा के नाम की सूचना उसके आदि के द्वारा फिलना । व०—बैठे राम राज-सिंहासन जग में फिरी दुहाई । निर्णय राज राम को कदिपत सूर नर मुनि सुखबाई ।—सूर । (२) प्रताप का डंका पिटना । प्रभुत्व की डौडी फिलना । विजय-घोषणा होना । जय जयकार । व०—(क) शिंघ, उदयगिरि, धौलागिरी । कौपी सृष्टि दुहाई फिरी ।—जायसी । (ख) नगर फिरी रघुवीर दुहाई । तय प्रभु सीतहि बोलि पठाई ।—गुलसी । (२) सहायता के लिये पुकार । बचाव या रक्षा के लिये किसी का नाम लेकर चिलाने की क्रिया । सताए जाने पर किसी ऐसे प्रतापी या बड़े का नाम लेकर पुकारना जो बचा सके ।

मुहा०—**दुहाई देना**=(संकट या आपत्ति आने पर) रक्षा के लिये पुकारना । अपने बचाव के लिये किसी का नाम लेकर चिलाना । व०—(क) हम बचानेवाले कौन हैं, राजा दुह्यंत की दुहाई दे वही बचायेगा क्योंकि तपोयनों की रक्षा राजा के लिये है ।—लक्ष्मण सिंह । (ख) किसी ने ब्राह्मण दुहाई दी कि मेरी गाध चोर लिए जाता है ।—शिवमसाद । (३) शपथ । कसम । सोमद । जैसे, रामदुहाई । व०—(क) मन माला तन सुमिरनी हरि जी तिलक दियाय । दुहाई राजा राम की दूजा दूर कियाय ।—कबीर । (ख) अय मन मगन हो राम दुहाई । मन वच क्रम हरि राम हृदय परि जो गुरुवेद पताई ।—सूर । (ग) नाय सपथ पितृघरन दुहाई । भयन न युवन भरत सम भाई ।—तुलसी । (घ) आतु ते न जैहैं, दूधि बेचन दुहाई खाऊँ भैया की, कन्हैया उत ठाढ़ो रहत है ।—पद्माकर ।

क्रि० प्र०—लाना ।

संज्ञा स्त्री० [हिं० दुहना] (१) गाध मँच आदि को दुहने का काम । (२) दुहने की मजदूरी ।

दुहाग—संज्ञा पुं० [सं० दुर्भाग्य, प्रा० दुष्भाग] (१) दुर्भाग्य । (२) सोहाग का खलटा । वैषम्य । रूढ़ाग ।

दुहागिनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० दुहागिनी] विधवा । सुहागिन का खलटा । व०—(क) हँसि हँसि के तन पाहया जिन पाया तिन रोय । हाँसी खेलतु हरि मिलै तो नहीं दुहागिन होय ।—कबीर । (ख) सोच निहवाँ सुंदरी अंतर परदा होय । तन सोय मन दे नहीं सदा दुहागिन सोय ।—कबीर ।

दुहागिला—वि० [हिं० दुहाग + इल (प्रत्य०)] (१) अमागा । अनाय । बिना मालिक का । (२) घुना । खाली । व०—तजि के दिगीसन दुहागिल के दीनों दिसि मेले है बदन सई सोक की रगर को ।—गुमान ।

दुहागी—वि० [सं० दुर्भागिनी] [स्त्री० दुहागिन] दुर्भागी । अमागा । बदकिस्मत । व०—सय जग दीदी एकला सेयंक स्वामी दोह । जगत दुहागी राम विनु सातु सुहागी सोह ।—दादू ।

दुहाजू—वि० पुं० [सं० दिगमर्थ] जो पहली स्त्री के मर जाने पर दूसरा विवाह करे ।

वि० स्त्री० जो (स्त्री) पहले पति के मर जाने पर दूसरा विवाह करे ।

दुहाना—कि० सं० [हिं० दुहना का प्र०] दुहने का काम दूसरे से कराना । दूध निकलवाना । जैसे, दूध दुहाग, गाध दुहाना । व०—दूध बही उ दुहायो री वाही दूधी सु सही जो बही डरकायो ।—रसखानि ।

दुहाघ—संज्ञा स्त्री० [हिं० दुहना] (१) एक प्रथा जिसके अनुसार पति वर्ष जन्माष्टमी आदि त्योहारों को किसानों की गाध मँच

का दूध दुहाकर जमींदार ले लेता है। (२) वह दूध जो इस प्रथा के अनुसार किसान जमींदार को देता है।

दुहावनी-संज्ञा स्त्री० [हि० दुहना] वह धन जो ग्वाले की गाय दुहने के लिये दिया जाता है। दूध दुहने की मजदूरी।
 व०—(क) ब्राह्म औरन के घर तँ हम सँ तुम दूनी दुहावनी लैयो करो।—पद्माकर । (ख) मनभावनी देखौं दुहावनी पै यह गाय तुहीं पै दुहावनी है—गवाल ।

दुहिता-संज्ञा स्त्री० [सं० दुहितृ] कन्या । लड़की ।

दुहितृपति-संज्ञा पुं० [सं०] जामाता । दामाद ।

दुहिन-संज्ञा पुं० [सं० दुह्य] शला । व०—करहिं सुमंगल मान सुपर सहनाइह । जेई चले हरि दुहिन सदित सु-माइह ।—गुलसी ।

दुहनी-संज्ञा स्त्री० [हि० दुहना] दूध देनेवाली गाय ।

दुहेला-वि० [सं० दुहेला = कठिन खेप] [स्त्री० दुहेली] (१) दुःख-दायी । दुःसाध्य । कठिन । व०—(क) भक्ति दुहेली राम की महिं कायर को काम । निरोगी निरघार को छाट पहर संगमा।—कवीर । (ख) दाह मारग साधु का खरा दुहेला जान । जीवित मिरतक होइ खलिह रामनाम नीसान ।—कवीर । (२) दुःखी । दुःखिया । व०—(क) पद्मावति निज कंत दुहेली । यिनु अल कमल मूल अनु बेली।—जायसी । (ख) भई दुहेली टेक बिहूनी । यामि नाह वड सकै न यूनी ।—जायसी ।

संज्ञा पुं० विकट खेल । दुःखदायक कार्य । व०—(क) अघहिं यारि तँ प्रेम न खेला । का जानसि कस होय दुहेला।—जायसी । (ख) पहिल प्रेम है कठिन दुहेला । दोव जग ताा प्रेम जेह खेला।—जायसी ।

दुहोतरा-संज्ञा पुं० [सं० दोहितृ] लड़की का लड़का । कन्या का पुत्र । नाती ।

• वि० [सं० द्वि, हिं० दो, दु + उत्तर] दो अधिक । दो ऊपर । व०—उरै सो र दुहोतरा अगहन मास सुजान । बंदि सजल गत्र मीदि कै किय छाखेट विधान।—सूदन ।

दुहा-वि० [सं०] [स्त्री० दुहा] दुहने योग्य ।

दुहा-संज्ञा पुं० [सं०] शक्ति का गर्भ से उत्पन्न यथाति राजा के एक पुत्र का नाम । राजा यथाति जब दिग्विजय कर चुके तब इन्होंने भूमि को चरने पुत्रों में बाँटा था । उस बाँट के अनुसार दुहायु को पश्चिम दिशा के देश मिले थे । राजा यथाति ने लक्ष अथवा पुत्रों का देकर इनसे जवानी मांगी थी तब इन्होंने अस्वीकार कर दिया था । इस पर यथाति ने शपथ दिया था कि तुम्हारी कोई मिय अमिलायी पुर्यं न होगी । दे० “दुहायु”

दुं गरा-संज्ञा पुं० दे० “दुंगरा” ।

दुं गरा-संज्ञा पुं० दे० “दुंगरा” ।

दुंदा-संज्ञा पुं० [सं० दंड] (१) ऊपर । उपद्रव ।

कि० प्र०—मथाना ।

(२) दे० “दुंदा” ।

दुंदना-कि० अ० [हिं० दूँ] (१) उपद्रव करना । ऊपर मथाना । (२) घोर शब्द करना ।

दुं-वि० दे० “दो” ।

दुंदा-संज्ञा पुं० [दे०] एक गहना जो कलाई पर और सब गहने के पीछे की ओर पहना जाता है । पड़ेली ।

संज्ञा पुं० [हिं० दो + भा (स्य०)] (१) शपथ या गंजीफे में वह पत्ता जिस पर दो वृत्तियाँ या टिंरियाँ हों । दुष्पी । (२) सोरही के खेल में, दो कौड़ियों का चित्त (और बाकी चौदह कौड़ियों का पट) पड़ना । (छात्री) । जैसे, जिसका दुंदा, उसका दुंदा । (कहावत) । (३) किसी खेल विशेषतः जुए-खाने खेल में वह दांव जिसका दो चिट्ठों, वृत्तियों या कौड़ियों आदि से संबंध हो ।

संज्ञा स्त्री० दे० “दुंदा” ।

दुंदा-वि० दे० “दो” ।

दुंदा-संज्ञा स्त्री० [सं० द्वितीया] किसी पक्ष की दूसरी तिथि । दूज । द्वितीया ।

दुंदा-वि० दे० “दो” ।

दूक-वि० [सं० दूक] दो एक । कुछ । चंद । व०—जाब सरी के पाखिमो हानि समय की चूक । सदा विचारहिं धारमति सुदिन दुदिन दिन दूक।—सुलसी ।

दूकान-संज्ञा पुं० दे० “दूकान” ।

दूकानदार-संज्ञा पुं० दे० “दूकानदार” ।

दूकानदारी-संज्ञा स्त्री० दे० “दूकानदारी” ।

दूख-संज्ञा पुं० दे० “दूख” ।

दूखन-संज्ञा पुं० दे० “दूखण” ।

दूखन-संज्ञा-कि० सं० [सं० दूषण + ना (स्य०)] दोष लगाना । ऐन लगाना ।

कि० अ० दे० “दूखना” ।

दूखित-वि० दे० “दूषित” ।

वि० दे० “दूषित” ।

दूगला-संज्ञा पुं० [दे०] एक प्रकार का बड़ा टोकरा या दौरा । संज्ञा पुं० दे० “दोगला” ।

दूगुना-वि० [सं० द्विगुण] दूना । दुगुना ।

दूग-संज्ञा पुं० [दे०] एक तरह का बकरा जो हिमालय की तराई में होता है ।

दूज-संज्ञा स्त्री० [सं० द्वितीया, प्रा० इत्य, इज] किसी पक्ष की दूसरी तिथि । दुहज । द्वितीया ।

मुहा०—दूज का चंद होना = बहुत दिनों पर दिखाई पड़ना । कम दिखाई पड़ना । कम दर्शन देना ।

दूजा-वि० [सं० द्वितीय, प्रा० द्वय, द्वय] दूसरा । द्वितीय ।
 दूत-संज्ञा पुं० [सं०] [शी० दूत] (१) वह मनुष्य जो किसी विशेष कार्य के लिये शय्या कोई समाचार पहुँचाने वा खाने के लिये कहीं भेजा जाय । सँदेश ले जाने या ले आने-वाला मनुष्य । घर । बसीठ ।

विशेष—प्राचीन काल में राजाओं के यहाँ दूसरे राज्यों में संधि और विग्रह आदि का समाचार पहुँचाने या वहाँ का हाल चाल जानने के लिये दूत रखे जाते थे । अनेक ग्रंथों में योग्य दूतों के लक्षण विष्ट हुए हैं । उनके अनुसार दूत को यथोक्तवादी, देशभाषा का श्रद्धा जानकार, कार्यकुशल, सहनशील, परिश्रमी, नीतिज्ञ, बुद्धिमान, मंत्रणाकुशल और सर्वगुण-सम्पन्न होना चाहिए ।

आजकल एक राष्ट्र के जो प्रतिनिधि दूसरे राष्ट्र में स्थायी रूप से रहते हैं वे भी दूत या रामदूत ही कहलाते हैं ।
 (२) प्रेमी का सँदेश प्रेमिका तक या प्रेमिका का सँदेश प्रेमी तक पहुँचानेवाला मनुष्य ।

दूतक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) दूत । (२) वह कर्मचारी जो राजा की ही हुई आज्ञा का सर्वसाधारण में प्रचार करता है ।

दूतकत्व-संज्ञा पुं० [सं०] (१) दूत का काम । (२) दूतक का काम ।

दूतकर्म-संज्ञा पुं० [सं०] सँदेश वा खबर पहुँचाने का काम ।
 दूत का काम । दूतत्व ।

दूतप्री-संज्ञा शी० [सं०] गौरवमंडी । कदंबपुत्री ।

दूतता-संज्ञा शी० [सं०] दूतत्व । दूत का काम ।

दूतत्व-संज्ञा पुं० [सं०] दूत का काम । दूतता ।

दूतपन-संज्ञा पुं० [सं०] दूत + पन (प्रय०) । दूत का काम । दूतत्व ।

दूतर-वि० [सं०] "दूसरा" ।

दूति-संज्ञा शी० दे० "दूतिका" ।

दूतिका-संज्ञा शी० [सं०] दूती ।

दूती-संज्ञा शी० [सं०] प्रेमी का सँदेश प्रेमिका तक या प्रेमिका का सँदेश प्रेमी तक पहुँचानेवाली स्त्री । स्त्री और पुरुष को मिलानेवाली या एक का सँदेश-दूसरे तक पहुँचानेवाली स्त्री । कुटनी ।

विशेष—साहित्य में दूतियाँ तीन प्रकार की मानी गई हैं—
 उत्तमा, मध्यमा और अधमा । उत्तमा दूती यह कहलाती है जो मीठी मीठी बातें कहकर अच्छी तरह समझाती हो । मध्यमा दूती उसे कहते हैं जो कुछ मजुर और कुछ कटु बातें सुनाकर अपनी काम निकालना चाहती हो । केवल कटु बातें कहकर अपनी काम निकालनेवाली दूती को अधमा दूती कहते हैं । सखी, नन्दी, दासी, संन्यासिनी,

पोविन, वितरिन, तंबोलिन, गंधिन आदि दूतियाँ दूती के काम के लिये उपयुक्त समझी जाती हैं ।

पय्या—संचारिका । सारिका । दूतिका । कुटनी ।

दूय-संज्ञा पुं० [सं०] (१) दूत का भाव । (२) दूत का काम ।

दूदक-संज्ञा शी० [सं०] (१) धुंधा निकलने का मार्ग । वह सिद्ध या नव जिससे धुंधा बाहर निकल जाय । धुंधाहरा । चिमनी । (२) एक प्रकार का दमकला जिसमें धुंधा देख पौधों में लगे हुए कीड़े लुढ़ाए जाते हैं ।

दूदला-संज्ञा पुं० [दे०] एक प्रकार का पेड़ जिसे दुबला कहते हैं ।

दूदुह-संज्ञा पुं० [सं०] दुग्ध । पानी का संप । डेढ़हा । (वि०)

दूध-संज्ञा पुं० [सं०] दुग्ध । (१) सफेद रंग का वह प्रसिद्ध तत्व पदार्थ जो स्तनपायी जीवों की मादा के स्तनों में रहता है और जिससे उनके बच्चों का बहुत दिनों तक पोषण होता है । पम । दुग्ध ।

विशेष—दूध स्वाद में कुछ मीठा होता है और इसमें एक प्रकार की विद्युत्त्व हलकी गंध होती है । मित्र मित्र आतिथ्यों के प्राणियों के दूध के संयोजक शंश तो समान ही होते हैं पर उसके भाग में बहुत कुछ अंतर होता है । एक ही जाति के मित्र मित्र प्राणियों और कभी कभी एक ही प्राणी में मित्र मित्र समयों में भी दूध के भाग में बहुत कुछ अंतर होता है । दूध का रू से ३ तक शंश लज होता है और शेष भाग चरबी, शर्करा और ममक आदि का होता है । दूध जब पौड़ी देर तक पौं ही पौड़ा दिया जाता है तब इस की चरबी ऊपर आ जाती है और बड़ी परिवर्तित हो कर मलाई और मखन बन जाती है । दूध में जब खटाई का कुछ शंश मिल जाता है तब पौड़ी देर में यह जमकर बड़ी बन जाता है । कभी कभी ऐसा भी होता है कि दूध में से जब और उसके संयोजक शंश अलग हो जाते हैं । इसे दूध का फटना कहते हैं । (मनुष्य जाति की) बच्चों के दूध से बहुत अधिक मिलता सुलता दूध गाय या भैंस का होता है, इसी लिये मनुष्य बहुधा गाय या भैंस का दूध पीते, उसका बड़ी जमाते, मिठाइयों के लिये खोला और छेना बनाते तथा उसमें से मय कर मखन आदि निकालते हैं । कहीं कहीं बकरी और ऊँटी आदि का भी दूध पीया जाता है । वैद्यक में मित्र मित्र प्राणियों के दूध के मित्र मित्र गुण बतलाए गए हैं । आजकल पारबाल्य विद्वानों ने दूध का विश्लेषण करके उस के संयोजक पदार्थों के संबंध में जो कुछ निश्चय किया है उसके अनुसार १०० शंश दूध में ६.६ शंश पानी, ४.८ शंश चीनी, ३.६ शंश मेदा (मखन), ४.० शंश फेसिन

घौर (घंटे की) सकेरी, घौर ०.७ घंरा घनित पदार्थ (जैसे सड़िया, फास्फास आदि) होता है ।

मुहा०—दूध बगलना=बच्चे का दूध पी कर कै कर देना । दूध बगलना=सोलेते हुए दूध का टंडा करने के लिये कड़ाही आदि में से उठे धार घौर किसी छौंटे बरतन में निकालना घौर बहुत अच्छा हाथ करके उसमें से धार बांधकर कटार में दूध गिराना । दूध का टंडा करने के लिये धार धार उठे धार बांधकर नीचे गिराना । दूध बतरना=छातियों में दूध भर जाना । दूध का दूध घौर पानी का पानी करना=विभक्त ठीक ठीक न्याय करना । पूरा पूरा न्याय करना । ऐश्वर्य न्याय करना जिसमें किसी पक्ष के साथ तनिक भी अन्याय न हो । जैसे, आपने दूध का दूध घौर पानी का पानी कर दिया, नहीं तो ये लोगों बड़ते खटते मर जाते । ४०—हम जातहिं यह उचरि परंगी दूध दूध पानी से पानी ।—सूर । दूध का बघा=वह बच्चा जो केवल दूध के ही आहार पर रहता हो । बहुत ही छोटा घौर केवल दूध पीनेवाला बच्चा । दूध का सा बहाब=शिम सांत 'है। जानेबाना श्रेय या मनोपेय आदि दूध की मक्खी=सुन्द और विशिष्ट पदार्थ । दूध की मक्खी की तरह निकालना या निकाल कर फेंक देना=किसी मनुष्य को विभक्त सुच्छ घौर अनावश्यक समझकर अपने साथ या किसी कार्य आदि से पकड़म अलग कर देना । उस तरह अलग कर देना जिस तरह दूध में पड़े हुए मक्खी अलग की जाती हैं । जैसे, सच लोगों ने इनका समा से दूध की मक्खी की तरह निकाल दिया । ४०—मनसा बचन कर्मना भय हम कहत नहीं कछु राखी । सूर काङ्कि धारयो प्रज तें उथे दूध माँक ते माखी ।—सूर । मुहँ से दूध की घू घाना=अभी तक बच्चा और अनुभवहीन होना । विचार अनुभव और ज्ञान न होना । दूध के दाँत =वे दाँत जो बच्चे को पहले पहल दूध पीने की आरंभ में निकलते हैं घौर छः सात वर्ष की अवस्था में उनके गिर जाने पर दूसरे दाँत निकलते हैं । दूध के दाँत न दूढना=अभी तक बच्चा होना । ज्ञान और अनुभव न होना । जैसे, अभी तक तो उधके दूध के दाँत भी नहीं दूढे हैं, वह क्या मेरे सामने बात करेगा । दूध दुहना=खानों को दयाकर दूध की धार निकालना । दूध देना=अपने स्तनों में दूध छोड़ना । अपने पुत्रियों में से दूध निकालना । जैसे, उनकी मैंस धाड सेर दूध देती है । दूध चढ़ना=(१) स्तन से निकलनेवाले दूध की मात्रा का कम हो जाना । जैसे, इधर कई दिनों से हमको मा का दूध चढ़ गया है । (२) स्तन से निकलनेवाले दूध की मात्रा बढ़ना । दूध चढ़ाना=हुहते समय गाव का अपने दूध का स्तनों में ऊपर की ओर खींच खीना जिससे हुहते कड़ा बड़े खींच कर बाहर न निकल सकें । (प्रायः गायें

मैंसे आदि अपने बड़ों के लिये स्तनों में दूध सुरा रखती हैं, इसी को दूध चढ़ाना कहते हैं) । घड़ी का दूध याद खाना=दे० "घड़ी" के मुहा० । दूध छुड़ाना=बच्चे की दूध पीने की आदत छुड़ाना । किसी का दूध छोड़ने में प्रयत्न करना । दूध डालना=बच्चे का पीए हुए दूध की कौ फेर देना । दूध तोड़ना=(१) गाव आदि का दूध देना बंद या कम कर देना । (२) गरम दूध का टंडा करने के लिये हिलाना या घेंगलना । दूध नहाया पूँठा फजो=धन और संतान की हृदि हो । संपत्ति और संतान हूव बढ़े (प्रायःवाँद) । दूध पिलाना=बाबक का मुहँ स्तन के साथ लगाकर उसे दूध की धार खींचने देना । दूध पीता बघा=गोद का बघा । बहुत छोटा बच्चा । दूध पीना=स्तन को मुहँ में लगाकर उसमें से दूध की धार खींचना । स्तनगान करना । किसी स्त्री का दूध पीना=(किसी स्त्री का) ऐसी दशा में रहना जिसमें उसके नष्ट होने आदि का शयक न रहे । जैसे, आप चरारादू नहीं, आपके रूप दूध पीते हैं । दूध फटना=लटाई आदि पकने के कारण दूध का जल अलग और सार भाग या छेना अलग हो जाना । दूध विगड़ना । दूध काड़ना=किसी त्रिना से दूध का पानी और छेना या सार भाग अलग अलग करना । दूध चढ़ाना=दूध छुड़ाना । बच्चे की दूध पीने की आदत छुड़ाना । ४०—दूध चढ़ाने के पीछे गंगाजी ने दोनो बड़के शाबमीक जी को सौंप दिए ।—सीताराम । (स्तनों में) दूध भर खाना=बच्चे की ममता या स्नेह के कारण माता के स्तनों में दूध उतर खाना । माता का दूध बढ़ना । (२) बनाव के हरे बीजों का रस जो पीछे से जमकर सत्त हो जाता है ।

मुहा०—दूध पढ़ना=अनाज में रस पढ़ना । अनाज का तैयारी पर खाना ।

(३) दूध की तरह का वह सफेद तरल पदार्थ जो बनेक प्रकार के पौधों की पत्तियों और संतलों में रहता घौर उनके तोड़ने पर निकलता है । जैसे, मदार का दूध, चरगाद का दूध ।

दूधचट्टी—वि० शी० [हिं० दूध + चट्टना] दूध देने में बड़ी हुई ; जिसके स्तनों में दूध पूर्व की अपेक्षा बढ़ गया हो । ४०—गैवाँ गनी न जाहिं सरहिं सब बघड़ बड़ीं । ते चरहिं जमुन के कच्छ पूढे दूधचट्टीं ।—सूर ।

दूधपिलाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० दूध + पिलाना] (१) दूध पिबाने-वाली दाई । (२) ब्याह की एक रसम जिसमें पारात के समय घर के घोड़ी या पावकी आदि पर चढ़ने के पूर्व माता वर को दूध पिबाने की सी मुद्रा करती है । (३) वह धन या वेग जो माता को इस रिया के बच्चे में मिलता है ।

दूध-दूध-दूध [हिं. दूध + दूध] धन और संतति ।
३-—दूध दूध की दुग्धि मात्र । गोपन माता करे
विश्व । कंचे दिव हरि मों किये ।—मूर ।

दूध-दूध-दूध [हिं. दूध + दूध] ऐसी बालिका जो किसी
दुग्धि की का दूध पीकर पकी हो जिसका दूध पीकर
कोई और बालिक का बालक भी पका हो । (जब कोई
की किसी दुग्धि की का बालिका को अपना दूध पिनाकर
पावती है तब वह बालिका इस पहली की के लड़कों या
बच्चेयों की दूध-दूध कहलाती है)

दूध-माई-दूध [हिं. दूध + माई] [की० दूध-माई] ऐसे दो
बालकों में से कोई एक जो एक ही की के स्तन का दूध
पीकर बड़े हो पर विनमं कोई एक बालक दूसरे माता-
पिता से बड़ा हो । (जब कोई की किसी दुग्धि की के
बालक को अपना दूध पिना कर पावती है, तब उन दोनों
बच्चों के बालक परस्पर दूध-माई कहलाते हैं ।

दूध-मसहरी-दूध [हिं. दूध + मसहरी] एक प्रकार का रोमनी
करना ।

दूध-मुहा-दूध [हिं. दूध + मुहा] जो सभी तक माता का दूध
पीता हो, अथवा जिसके दूध के दाँत सभी न टूटें हो ।
दोटा बच्चा । बालक ।

दूध-मुख-दूध [हिं. दूध + सं० मुख] दोटा बच्चा । बालक । दूध-
मुहा । ३०—नाय करहु बालक पर छोह । सूय दूधमुख
करिय न कोह ।—नुबसी ।

दूध-राज-दूध [हिं. दूध + राज] (१) एक प्रकार की तुलतुल जो
भारत अफगानिस्तान और तुर्किस्तान में पाई जाती है ।
भारत में यह स्थिर रूप से रहती है । इसे शाह तुलतुल
भी कहते हैं । (२) एक प्रकार का साय जिसका फल
बहुत पका होता है ।

दूध-वाला-दूध [हिं. दूध + वाला (मूल०)] [की० दूध-वाली]
दूध बेचनेवाला । ग्वाला ।

दूध-वाही-दूध [हिं. दूध + वाही] मिठी की-वह हाँकी जिस-
में दूध रखकर भाग पर पकाते हैं । मेथिया ।

दूध-दूध-दूध [हिं. दूध] (१) एक प्रकार का धान जो अग-
हन के महीने में तीयार हो जाता है और जिसका पावल
पनों तक रह सकता है । (२) अन्न के कच्चे दाने में का
रस जो दूध के रंग का होता है ।

दूध-भाती-दूध [हिं. दूध + भात] विवाह की
शिरमें धर और कन्या दोनों अपने अपने हाथ
दूसरे की दूध और भात लिखाते हैं । यह रसम
जोधे दिव होती है ।

दूध-स-दूध [हिं. दूध + स (सम०)] (१) दूध-स-
से दूध पिना हो ।
वना हो । जैसे,

भाग । (२) दूध के रंग का, सफेद । श्वेत । (३) कथा होने
के कारण जिसके बंदर का दूध (सात पदार्थ) सभी तक सुखा
न हो । जैसे, दूधिया सिंचाया ।

संज्ञा पुं० (१) एक प्रकार का सफेद घड़िया चिकना और
चमकीला पत्थर जिसकी गिनती रत्नों में होती है । कभी
कभी इसके रंग में कुछ लाली, भूरापन या हरापन भी
रहता है । इसमें रेत का भाग अधिक होता है और कुछ
लोहा भी होता है । यह कई प्रकार का होता है और इसमें
धूप-छाँह की सी चमक होती है । अँगुठियों में इसका नग
जड़ा जाता है । (२) एक प्रकार का सफेद घड़िया सुलायम
पत्थर जिसकी प्याजियाँ आदि वनती हैं जिन्हें पयरी कहते
हैं । (३) एक प्रकार का हलुआ-सोहा जो दूध मिलाने के
कारण कुछ नरम हो जाता है ।

दूधिया खाकी-संज्ञा पुं० [हिं. दूधिया + खाकी] सफेद रस का
सा रंग ।

दूधी-संज्ञा स्त्री० दे० "दुग्धि" ।

दूना-संज्ञा स्त्री० [हिं. दूना] (१) दूने का भाव ।

मुहा०—दूना की लेना या हाँकना = बहुत बड़ बड़कर बातें
करना । अपनी शक्ति के बाहर की या अवंभव बातें कहना ।
हाँग मारना । शैली हाँकना । दूना की सूफना = अपनी शक्ति
के बाहर की बातें सूफना । बहुत बड़ी या अवंभव बातें का
प्यान में आना ।

(२) जितना समय लगाकर गाना या बजाना आरंभ किया
जाय आगे चलकर बसके आधे समय में गाना या बजाना ।
साधारण से कुछ जवदी जवदी गाना ।
† वि० दे० "दूना" ।

संज्ञा पुं० [देग०] दोपहाड़ों के बीच का मैदान । तराई । घाटी ।

दूना-दूना-दूना [सं० दिनप्र] जो लकड़कर दोहरा हो गया हो ।

३०—दूपति अथर दावि दूनारि भई सी चापि चौबर पची-
वर के चुनरि निचोरे है ।

दूना-सिरिसि-संज्ञा पुं० [देग०] सफेद सिरिसि का पेड़ जो बहुत
ऊँचा होता है और जवदी बड़ जाता है । इसकी लाल हरापन
जिए सफेद और हीर की लकड़ी मूरी चमकदार और मजबूत
होती है । तेल इसकी प्रति घन फुट १५ से २० सेर तक
होता है । इसकी लकड़ी से रस पाने का कोई नुसख,
पड़िय, और खेती के औजार बनाए जाते
हैं । इसके फूलों के काम में भी यह प्रयुक्त है और
इसका फूल पत्रे सुगंधित होते हैं । हिमा-
लय

लव [५] यार बतना ही ।

मुहा—दिन दूना होना = मन में खूब उरबाह और उमंग होना । दिन दूना रात चौगुना होना = दे० "दिन" के मुहा० ।

दूनोर्वा—वि० दे० "दूनोर्वा" ।

दूब—संज्ञा स्त्री० [सं० दूर्वा] एक प्रकार की बहुत प्रसिद्ध घास जो पश्चिमी पंजाब के मोट्टे से बलुच भाग के छोड़ कर सोप समस्त भारत में और पहाड़ों पर आठ हजार फुट की उँचाई तक बहुत अधिकता से होती है । यह सब तरह की जमीनों पर और प्रायः सब ज़रतों में होती है और बहुत जल्दी तथा सज्ज में फैल जाती है । इसकी याहरी गाँडे जहाँ जमीन से लू जाती हैं वहाँ जम जाती हैं और उनमें लंबी और बहुत पतली पत्तियाँ निकलने लगती हैं । गाँवों और छोटे इस्ते बड़े प्रेम से खाते हैं और इससे उनका बच्चा खूब बढ़ता है । गाँवों और भँसों आदि इस्ते खाकर खूब मोटी हो जाती हैं और अधिक दूध देने लगती हैं । यह सुष्वा कर भी बरसें तक रखी जा सकती हैं । जिस स्थान पर एक धार बह हो जाती है वहाँ से इस्ते बिलकुल निकास देना बहुत ही कठिन होता है । यह साधारणतः तीन प्रकार की होती है; हरी, सफेद और गाँडर [दे० "गाँडर" (२)] चैद्यक में दूब को साधारणतः कसीजी, मयूर, शीतल और पित्त, तृषा, अर्बुचि, दाह, मुँहवाँ, कफ, भूतबाधा और ग्रम को दूर करनेवाली कहा है । हिंदू लोग इसका व्यवहार लक्ष्मी और गणेश आदि के पूजन में करते और इस्ते मंगल द्रव्य मानते हैं । घोषी घास । हरियाली ।

दूधदू—क्रि० वि० [हि० दू या फा० स्वरू] सामने सामने । मुकाबले में । जैसे, जब तक इनसे दूधदू याते न हों, तब तक इस विषय में कुछ भी नहीं कहा जा सकता ।

दूबर्वा—वि० दे० "दूबर्वा" ।

दूबर्वा—वि० [सं० दुर्वर्त] (१) दुबला । पतला । धीण । कृश । (२) कमजोर । निबल । ग्राहक । (३) दुर्बल । दीन । ३०—श्री हरिदास के स्वामी स्वामी कुंजविहारी कर जेठि मान हैं दूररे की रीषी त्वीर कही कौने खाई है ? —हरिदास ।

दूबला—वि० दे० "दूबला" ।

दूबर्वा—संज्ञा स्त्री० दे० "दूबर्वा" ।

दूबिया—वि० [हि० दू + इया (प्रत्य०)] एक प्रकार का हरा रंग । हरी घास का सा रंग ।

दूबे—संज्ञा पुं० [सं० द्वितीय] द्वितीय प्राण्य ।

दूमर—वि० [सं० दुर्भर = बिलका विनाह कठिन हो] जिसके करने में बहुत कठिनता हो । कठिन । मुश्किल । दुःसाध्य । जैसे, इस दोपहर को तो इनके यहाँ जाना बहुत दूबर्वा मालूम होता है ।

दूमना—क्रि० प्र० [सं० दूम] दिखाना । सोलना ।

दूमा—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का चमड़े का छोटा घेडा जिसमें

तिग्मत से चाय भर कर खाती है । इसमें प्रायः तीन सेर तक चाय खाती है ।

दूमर्वा—वि० दे० "दुर्बर्वा" ।

दूरदेश—वि० [फा०] आगा पीछा सोचनेवाला । दूर तक की बात विचारनेवाला । होशियार । आग्रशीवी । दूरदर्शी ।

दूरदेशी—संज्ञा स्त्री० [फा०] दूर की बात को पहले ही से समझ लेना । दूरदर्शिता ।

दूर—क्रि० वि० [सं०, मि० फा० दूर] देय काल या संबंध आदि के विचार से बहुत अंतर पर । बहुत फासले पर । पास या निकट का उलटा । जैसे, (क) वे टहलते टहलते बहुत दूर चले गए । (ख) आप दूर ही से रास्ता धतलाना खूब जानते हैं । (ग) अभी लड़के की शादी बहुत दूर है । (घ) हमारा इनका बहुत दूर का रिश्ता है । (ङ) दिहगी करते करते ये बहुत दूर तक पहुँच गए, बाप-दादे तक की गालियाँ देने लगे ।

मुहा०—दूर करना = (१) अज्ञात करना । बुदा करना ।

अनने पास से छुटाना । (२) न रहने देना । मिटाना । जैसे, (क) कपड़े पर का धव्या दूर कर दो । (ख) वे धार दूरे थाने जाने से तुम्हारा डर दूर हो जायगा । दूर क्यों जायँ या जाइए = अपरिचित या दूर का दृष्टान्त न लेकर परिचित और निकटवाले का ही विचार करो । जैसे, दूर क्यों जायँ, अपने पड़ोसी की ही बात लीजिए । दूर दूर करना = पास न थाने देना । अत्यंत घृणा और तिरस्कार करना । दूर भागना या रहना = बहुत घृणा या तिरस्कार के कारण बिलकुल अलग रहना । बहुत बचना । पास न जाना । जैसे, हम तो ऐसे लोगों से सदा दूर भागते (या रहते) हैं । दूर रहना = कोई संबंध न रखना । बहुत बचना । जैसे, पेंसी बातों से जरा दूर रहा करो । दूर होना = (१) छूट जाना । अज्ञात हो जाना । छूट जाना । (२) मिट जाना । नष्ट होना । न रहना । दूर पहुँचना = (१) साधन या सामर्थ्य के बाहर । शक्ति आदि के बाहर (२) दूर की बात सोचना । बहुत बारीक बात सोचना । दूर की बात = (१) बारीक बात । (२) कठिन या दुःसाध्य बात । (३) बहुत आगे चला कर आनयादी बात । अनुपस्थित बात । दूर की कहना = बहुत समझदायी की बात कहना । दूरदर्शिता की बात कहना । वि० जो दूर हो । जो फासले पर हो । जैसे, दूर देश ।

दूरगामी—वि० [सं०] दूर तक चलनेवाला ।

दूरता—संज्ञा स्त्री० दे० "दूरता" ।

दूरतय—संज्ञा पुं० [सं०] दूर होने का माप । अंतर । दूरी । फासला ।

दूरदर्शक—वि० [सं०] दूर तक देखनेवाला ।

संज्ञा पुं० पंडित । बुद्धिमान् ।

दूधपूत-संज्ञा पुं० [हिं० दूध + पूत = पुत्र] धन और संतति ।
 ४०—दूध पूत की छाँड़ी आस । गोधन भरता करे
 निरास । लीचे हित हरि सों किये ।—सूर ।

दूधबहन-संज्ञा स्त्री० [हिं० दूध + बहन] ऐसी बालिका जो किसी
 ऐसी स्त्री का दूध पीकर बड़ी हो जाय जिसका दूध पीकर
 कोई और बालिका या बालक भी पला हो । (जब कोई
 स्त्री किसी दूसरी स्त्री की बालिका को अपना दूध पिनाकर
 पालती है तब वह बालिका इस पहली स्त्री के लटकों या
 लड़कियों की दूध-बहन कहलाती है)

दूधभाई-संज्ञा पुं० [हिं० दूध + भाई] [स्त्री० दूधबहन] ऐसे दो
 बालकों में से कोई एक जो एक ही स्त्री के स्तन का दूध
 पीकर पड़े हों पर जिनमें कोई एक बालक दूसरे माता-
 पिता से श्यव्य हो । (जब कोई स्त्री किसी दूसरी स्त्री के
 बालक को अपना दूध पिना कर पालती है, तब उन दोनों
 बालकों को बालक ब्रह्मर दूधभाई कहलाते हैं ।

दूधमसहरी-संज्ञा स्त्री० [हिं० दूध + मसहरी] एक प्रकार का रेशमी
 कपड़ा ।

दूधमुँहा-वि० [हिं० दूध + मुँहा] जो अभी तक माता का दूध
 पीता हो, अथवा जिसके दूध के दाँत अभी न हटते हों ।
 छोटा बच्चा । बालक ।

दूधमुल-वि० [हिं० दूध + सं० मुल] घोटा बच्चा । बालक । दूध-
 मुँहा । ४०—नाम करहु बालक पर छोहा । सूय दूधमुल
 करिय न कोह ।—बुलसी ।

दूधराज-संज्ञा पुं० [देग०] (१) एक प्रकार की सुलसुल जो
 भारत अफ़ग़ानिस्तान और तुर्किस्तान में पाई जाती है ।
 भारत में यह स्थिर रूप से रहती है । इसे शाह सुलसुल
 भी कहते हैं । (२) एक प्रकार का सौंप जिसका फल
 बहुत बड़ा होता है ।

दूधवाला-संज्ञा पुं० [हिं० दूध + वाला (प्रत्य०)] [स्त्री० दूधवाली]
 दूध बेचनेवाला । बाला ।

दूधहंडी-संज्ञा स्त्री० [हिं० दूध + हंडी] मिठी की वह हॉडी जिस-
 में दूध रखकर आग पर पकाते हैं । मोटिया ।

दूधा-संज्ञा पुं० [हिं० दूध] (१) एक प्रकार का धान जो अग-
 दन के महीने में तैयार हो जाता है और जिसका चावल
 वर्षों तक रह सकता है । (२) अल के कंधे वाले में का
 रस जो दूध के रंग का होता है ।

दूधामाती-संज्ञा स्त्री० [हिं० दूध + मात] विवाह की एक रसम
 जिसमें घर और कन्या दोनों अपने अपने हाथ से एक
 दूसरे को दूध और आल खिलाते हैं । यह रसम विवाह से
 चौपे दिन होती है ।

दूधिया-वि० [हिं० दूध + इया (प्रत्य०)] (१) दूध-संबंधी । जिस
 में दूध मिला हो अथवा जो दूध से बना हो । जैसे, दूधिया

भाँग । (२) दूध के रंग का, सफ़ेद । श्वेत । (३) कच्चा होने
 के कारण जिसके अंदर का दूध (सार पदार्थ) अभी तक सूखा
 न हो । जैसे, दूधिया सिंघाड़ा ।

संज्ञा पुं० (१) एक प्रकार का सफ़ेद बरिया चिकना और
 चमकीला परंपर जिसकी गिनती रसों में होती है । कभी
 कभी इसके रंग में कुछ लाली, स्यापन या हरापन भी
 रहता है । इसमें रेत का भाग अधिक होता है और कुछ
 खोटा भी होता है । यह कई प्रकार का होता है और इसमें
 भूप-छाँद की सी चमक होती है । अँगूठियों में इसको ना
 जड़ा जाता है । (२) एक प्रकार का सफ़ेद घटिया मुलापन
 परंपर जिसकी प्यालियाँ आदि बनती हैं जिन्हें पथरी कहते
 हैं । (३) एक प्रकार का हलुआ-सोहन जो दूध मिलावे के
 कारण कुछ मरम हो जाता है ।

दूधिया खाकी-संज्ञा पुं० [हिं० दूधिया + खाकी] सफ़ेद शार का
 सार रंग ।

दूधी-संज्ञा स्त्री० दे० "दुधी" ।

दून-संज्ञा स्त्री० [हिं० दूना] (१) दूने का माप ।

मुहा०—दून की लेना या हाँकना = बहुत बड़ बड़कर बातें
 करना । अपनी शक्ति के बाहर की या अश्रमव बातें कहना ।
 हाँक मारना । शैली हाँकना । दून की सूकना = अपनी शक्ति
 के बाहर की बातें सूकना । बहुत बड़ों या अश्रमव बातों का
 ध्यान में आना ।

(२) जितना समय लगाकर गाना या बजाना शरम किया
 जाय शाने चलकर उसके आचे समय में गाना वा बजाना ।
 साधारण से कुछ जरूरी जल्दी गाना ।

† वि० दे० "दूना" ।

संज्ञा पुं० [देग०] दोपहाड़ों के बीच का मैदान । तराई । घाटी ।

दूनराँ-वि० [सं० दिनरा] जो लचककर दोहरा हो गया हो ।
 ४०—दुंपति अघर दूवि दूनरि भाई सी चापि चौबर पचौ-
 बर के चूनरि निचौरै है ।

दूनसरिसि-संज्ञा पुं० [देग०] सफ़ेद सरिसि का पेड़ जो बहुत
 ऊँचा होता है और जल्दी बढ़ जाता है । इसकी छाल हरापन
 लिए सफ़ेद और हीर की लकड़ी गूरी चमकदार और मजबूत
 होती है । तौल इसकी प्रति घन फुट १२ से ३० सेर तक
 होता है । इसकी लकड़ी से रस पाने का कोहूँ, मुसल,
 पण्डि, चाप के सँदूक और लोती के आँजार बनाए जाते
 हैं । इसमें और पुलों के काम में भी यह आती है और
 इसका कोयला भी बनाया जाता है । इसमें से तेल बहुत
 निकलता है और इसके फूल यंत्र सुगंधित होते हैं । हिमा-
 लय पर्वत पर यह योढ़ी उँचाई तक होता है ।

दूना-वि० [सं० दिवण] दुपुना । दोपंद । दो बार बतना ही ।
 जैसे, यह दूनी कंकट का काम है ।

मुहा०—दिख दूना होना=मन में खूब उखाह और उमंग होना। दिन दूना रात चौगुना होना=दे० "दिन" के मुहा०।

दूनी-वि० दे० "दूनी"।

दूब-संज्ञा स्त्री० [सं० दूर्वा] एक प्रकार की बहुत प्रसिद्ध घास जो पश्चिमी, पंजाब के छोड़ से बलुच भाग को छोड़ कर शेष समस्त भारत में और पहाड़ों पर आठ हजार फुट की ऊँचाई तक बहुत अधिकता से होती है। यह सब तरह की जमीनों पर और प्रायः सब ऋतुओं में होती है और बहुत जल्दी तथा सहज में फूल जाती है। इसकी बाहरी गंठें जहाँ जमीन से छू जाती हैं वहाँ जम जाती हैं और वन में खोपी और बहुत पतली पतियाँ निकलने लगती हैं। गाँयँ और छोटे छोटे बड़े प्रेम से खाते हैं और इससे उबका सब खूब करता है। गाँयँ और भैंरें आदि इसे खाकर खूब मोटी हो जाती हैं और अधिक दूध देने लगती हैं। यह सुखा कर भी बरतों तक रगी जा सकती है। जिस स्थान पर एक बार यह हो जाती है वहाँ से इसे बिलकुल निकाल देना बहुत ही कठिन होता है। यह साधारणतः तीन प्रकार की होती है; हरी, सफेद और गौहर [दे० "गौहर" (२)] वैद्यक में दूध को साधारणतः कसीजी, मधुर, शीतल और विष, रुपा, अरुचि, दाह, मूच्छा, कफ, शूलनाशा और श्म को दूर करनेवाली कहा है। हिंदू लोग इसका व्यवहार लक्ष्मी और गणेश आदि के पूजन में करते और इसे मंगल द्रव्य मानते हैं। घोषी घास। हरियाली।

दूबदू-वि० वि० [हिं० दो का फ० रूपर] मामने सामने। सुका-बने में। जैसे, जब तक बनने दूबदू यारों न हों, तब तक इस विषय में कुछ भी नहीं कहा जा सकता।

दूरर्वा-वि० दे० "दूरवा"।

दूरवा-वि० [सं० दुर्वम] (१) दुर्बल। पतला। पीप। रुखा। (२) कमजोर। निर्यस। मातृक। (३) दयैल। दीन। व०—श्री हरिदास के स्वामी स्वामि कुंजविहारी कर जोरि मान है दूबरे की राधी खीर कही कौने खाई है ? —हरिदास।

दूबला-वि० दे० "दूबला"।

दूबा-संज्ञा स्त्री० दे० "दूब"।

दूबिया-वि० [हिं० दूब + ब्या (प्रत्य०)] एक प्रकार का हरा रंग। हरी पास का हरा रंग।

दूबे-संज्ञा पुं० [सं० द्विवेदी] द्विवेदी माह्वय।

दूमर-वि० [सं० दुमर = जिसका निर्वाह कठिन हो] जिसके करने में बहुत कठिनाता हो। कठिन। मुश्किल। दुःसाध्य। जैसे, इस दोपहर को तो वनके पहाँ आगा बहुत दूमरमालूम होता है।

दूमता-वि०-क्रि० अ० [सं० दुम] दिलता। सोजना।

दूमा-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का चमड़े का छोटा थैला जिसमें

तिर्यत से चाय भर कर धाती है। इसमें प्रायः तीन सेर तक चाय धाती है।

दुमुर्ही-वि० दे० "दुमुर्हा"।

दूरदेश-वि० [फा०] आगा पीछा सोचनेवाला। दूर तक की बात विचारनेवाला। होशियार। अग्रगोपी। दूरदर्शी।

दूरदेशी-संज्ञा स्त्री० [फा०] दूर की बात को पहले ही से समझ लेना। दूरदर्शिता।

दूर-क्रि० वि० [सं०, मि० फा० दूर] देना काळ या संघर्ष आदि के विचार से बहुत अंतर पर। बहुत फासले पर। पास या निकट का छलता। जैसे, (क) ये दहकते दहकते बहुत दूर चले गए। (ख) बाप दूर ही से रास्ता पतलाना खूब जानते हैं। (ग) अभी लड़के की शादी बहुत दूर है। (घ) हमारा बचका बहुत दूर का रिश्ता है। (च) दिलगी करते करते ये बहुत दूर तक पहुँच गए, बाप-दादे तक की मालियाँ देने लगे।

मुहा०—दूर करना = (१) अलग करना। बुदा करना। अपने पास से हटाना। (२) न रहने देना। मिथाना। जैसे, (क) कपड़े पर का धम्या दूर कर दे। (ख) दो चार दफे धाने जाने से तुम्हारां डर दूर हो जायगा। दूर क्यों जायँ या जाहदप = अतिरिक्त या दूर का दृष्ट न लेकर परिचित और निकटवाले का ही विचार करें। जैसे, दूर क्यों जायँ, अपने पड़ोसी की ही बात लीजिए। दूर दूर करना = पास न धाने देना। अत्यंत धृष्टा और तिरस्कार करना। दूर भागना या रहना = बहुत धृष्टा या तिरस्कार के कारण बिलकुल अलग रहना। बहुत बचना। पास नजाना। जैसे, हम तो ऐसे लोगों से सदा दूर भागते (या रहते) हैं। दूर रहना = कोई संघर्ष न रखना। बहुत बचना। जैसे, ऐसी बातों से जरा दूर रहा करो। दूर होना = (१) हट जाना। अलग हो जाना। हट जाना। (२) मिट जाना। नष्ट होना। न रहना। दूर पहुँचना = (१) साधन या सामर्थ्य के बाहर। शक्ति आदि के बाहर (२) दूर की बात सोचना। बहुत बारीक बात सोचना। दूर की बात = (१) बारीक बात। (२) कठिन या दुःसाध्य बात। (३) बहुत आगे चल कर आनेवाली बात। अत्युपस्थित बात। दूर की कहना = बहुत समझदारी की बात कहना। दूरदर्शिता की बात कहना। वि० जो दूर हो। जो फासले पर है। जैसे, दूर देश।

दूरगामी-वि० [सं०] दूर तक चलनेवाला।

दूरता-संज्ञा स्त्री० दे० "दूरता"।

दूरत्व-संज्ञा पुं० [सं०] दूर होने का भाव। अंतर। दूरी। फासला।

दूरदर्शक-वि० [सं०] दूर तक देखनेवाला।

संज्ञा पुं० पंडित। बुद्धिमात्र।

दूरदर्शक यंत्र-संज्ञा पुं० [सं०] दूरधीन नाम का यंत्र जिससे बहुत दूर की चीजें दिखाई देती हैं।

दूरदर्शन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विद्वान्। पंडित।

(२) समकक्षर। (४) दूरधीन।

दूरदर्शिता-संज्ञा स्त्री० [सं०] दूर की बात सोचने का गुण। दूरदर्शी।

दूरदर्शी-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पंडित। (२) गुरु। गीष।

वि० बहुत दूर तक की बात सोचने या समझनेवाला। जो पहले से ही भला बुरा परिणाम समझ ले। अमरोधी।

दूरदेश।

दूरदृष्टि-संज्ञा स्त्री० [सं०] नविव्य का विचार। दूरदर्शिता। दूरदर्शी।

दूरनिरीक्षण-संज्ञा पुं० [सं०] दूरधीन नाम का यंत्र।

दूरवा-संज्ञा पुं० दे० "दूरवा"।

दूरवीन-संज्ञा स्त्री० [का०] (१) एक प्रकार का यंत्र जिससे

दूर की चीजें बहुत पास और स्पष्ट या बड़ी दिखाई देती

हैं। यह यंत्र एक गोले नल के आकार का होता है जिस-

में आगे और पीछे दो गोले शीशे लगे होते हैं। आगेवाले

शीशे को प्रधान लेंस और पीछेवाले शीशे को उपनेत्र या

चतुर्लस कहते हैं। प्रधान लेंस अपने सामनेवाले पदार्थ का

प्रतिबिम्ब प्रद्वय करके पीछेवाले लेंस पर फेंकता है और

पीछेवाला लेंस या उपनेत्र उस प्रतिबिम्ब को विस्तृत करके

असिं के सामने उपस्थित करता है। आवश्यकतानुसार

प्रधान लेंस आगे पीछे हटाया बढ़ाया भी जा सकता है।

दर्शनीय पदार्थ की आकृति की छोटाई या बड़ाई इन्हीं

दोनों लेंसों की दूरी पर निर्भर रहती है। कभी-कभी दोनों

आँसों से देखने के लिये एक ही तरह के दो नली को एक

साथ जोड़ कर भी दूरधीन बनाई जाती है।

विशेष-दूरधीन का आविष्कार पहले पहल हार्लैंड देरा में

सत्रहवीं शताब्दी के आरंभ में हुआ था। एक बार एक

चरमेवाला अपनी दूकान पर रेंटा हुआ काम कर रहा था।

इतने में उसकी लड़की सहसा चिन्ता बठी कि देखो यह

सामने का छुन्न कितना पास आगया। चरमेवाले ने देखा कि

उसकी लड़की दो शीशों को आगे पीछे रख कर देख रही

है। जब उसने भी उसी प्रकार उन शीशों को रख कर देखा

तब उसे अचका उपयोग जान पड़ा। इसके उपरांत उसने

अनेक प्रकार की परीक्षाएँ कर के कुछ सिद्धांत स्थिर किए

और उन्हीं के अनुसार दूरधीन का आविष्कार किया। उस

के कुछ ही दिनों के उपरांत प्रसिद्ध ज्योतिषी गेलीक्रियो ने

भी स्वतंत्र रूप से एक प्रकार की दूरधीन का आविष्कार

किया था। तब से दूरधीन बनाने के काम में बराबर उन्नति

होती आई है। आजकल दूरधीन का उपयोग सैर के लिये, दूर

के अच्छे अच्छे दृश्य देखने, युद्ध-क्षेत्र में शत्रुओं की सेवा

आदि का पता लगाने और आकाशीय तारों आदि को देखने

में होता है। आकारा के तारे आदि देखने के लिये आजकल

की वेधशाखाओं में जो दूरधीन होती हैं वे बहुत ही भारी

होती हैं। इनके नली की लंबाई सात फुट तक और व्यास

तीन फुट तक होता है।

(२) छोटी दूरधीन के आकार का लड़कों का एक खेलैला

जिसमें एक चौर शीशा लगा रहता और जिसमें आँख

लगाकर देखने से रंग-विरंगे फूल आदि दिखाई देते हैं।

दूरमूल-संज्ञा पुं० [सं०] मूल।

दूरपत्तों-सिं० [सं०] दूर का। दूरस्थ। जो दूर हो।

दूरवीक्षण-संज्ञा पुं० [सं०] दूरधीन।

दूरस्थ-वि० [सं०] जो दूर हो। दूर का। समीपस्थ का उलटा।

दूरापात-संज्ञा पुं० [सं०] वह अन्न जिससे दूर से फेंक कर

मारा जाय।

दूरि-वि० दे० "दूर"।

दूरी-संज्ञा स्त्री० [सं० दूर + ई० (प्रत्य०)] दो वस्तुओं के मध्य का

स्थान। दूरत्व। अंतर। फासला। बीच। अचकार।

जैसे, जा इत दोनों खंमों के बीच की दूरी तो नापो।

संज्ञा स्त्री० [देण०] झाकी रंग की एक प्रकार की खवा

(चिड़िया)।

दूरदृष्टा-संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक के अनुसार एक प्रकार का छुद

रोग।

दूरे-अभिन्न-संज्ञा पुं० [सं०] वनचास मस्ती में से एक मस्त्

का नाम।

दूरोह-संज्ञा पुं० [सं०] आदित्यलोक जहाँ चढ़ कर जाना

असंभव है।

दूरोहय-संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य।

दूर्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) छोटा कपूर। (२) विद्या। पुरीप।

मल।

दूर्यो-संज्ञा स्त्री० [सं०] दूर्य नाम की घास।

विशेष-दे० "दूर्य"।

दूर्वाक्षी-संज्ञा स्त्री० [सं०] भागवत के अनुसार बसुदेव के भाई

शुक की स्त्री का नाम।

दूर्वाद्यघृत-संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक में एक विशिष्ट प्रकार से

बनाया हुआ बकरी का घी जिसमें दूध, मक्खन, पलुषा,

सफेद चंदन आदि मिलाया जाता है और जिसका व्यवहार

आँख, मुँह, नाक, कान आदि से रक्त वागे में होता है।

दूर्वाष्टमी-संज्ञा स्त्री० [सं०] भादों सुदी। अष्टमी जिस दिन मत

आदि करते हैं।

दूर्वासोम-संज्ञा पुं० [सं०] सुश्रुत के अनुसार एक प्रकार की

सोम लता।

द्वयिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] यज्ञ की वेदी में काम आनेवाली एक प्रकार की ईंट।

द्वलन-संज्ञा पुं० दे० "द्वलन"।

द्वलनी-वि० [सं०] दुर्गम। कठिनता से प्राप्त होने योग्य। दुर्बल।

द्वलह-संज्ञा पुं० [सं०] दुर्लभ, प्रा० दुर्लभ] (१) वह मनुष्य जिसका विवाह अभी हाल में हुआ हो अथवा शीघ्र ही होने को हो। दुल्हा। वर। नौया। (२) पति। स्वामी। स्वर्गिण।

द्वलिका-संज्ञा स्त्री० दे० "द्वली"।

द्वली-संज्ञा स्त्री० [सं०] नील का पेड़।

द्वल्हा-संज्ञा पुं० दे० "द्वलह"।

द्वया-संज्ञा पुं० दे० "द्वया"।

द्वय-संज्ञा पुं० [सं०] संव्। खेमा।

द्वयक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) दोष लगानेवाला मनुष्य। वह जो किसी पर दोषापीपण करे। (२) वह जो दोष उत्पन्न करे। दोष उत्पन्न करनेवाला पदार्थ।

द्वयण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) दोष। ऐय। सुराहै। अथगुण्य। ४०-तव हरिः क्लृप्तो हस्यो विन द्वयण हृष्यपर भेद यथाप्ये। यह आत्। खोज तुम कीजो हारावति घरि प्राये।—सूर। (२)

दोष लगाने की क्रिया या भाव। ऐय लगाना। ४०-संदेह के प्रनंतर स्वपक्ष के स्थान और प्रतिपक्ष के द्वयण करने पर जो धर्म का अथवायण होता है सो निर्वयण कहलाता है।—सिद्धांतसंग्रह। (३) शय्य के भाई एक शय्य का नाम जो खर के साथ पंचवटी में सूर्यनक्षत्र की रक्षा के लिये नियुक्त किया गया था और जो सूर्यनक्षत्र की नाक और कान कट जाने पर पीछे रामचंद्र के हाथ से मारा गया। (४) जैनियों के सामयिक व्रत में ३२ स्वाम्य वार्ते या अथगुण्य जिनमें से १२ कायिक, १० वाचिक और १० मानसिक हैं।

द्वयणारि-संज्ञा पुं० [सं०] द्वयण को मारनेवाले, रामचंद्र।

द्वयणीय-वि० [सं०] दोष लगाने योग्य। जिसमें दोष लगाना जा सके।

द्वयन-संज्ञा पुं० दे० "द्वयण"।

द्वयनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] द्वयण] दोष लगाना। कलंकित करना।

द्वयि-संज्ञा स्त्री० दे० "द्वयिका"।

द्वयिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] शाल की मंत्र।

द्वयित-वि० [सं०] जिसमें दोष हो। क्षयाय। घुरा। दोषयुक्त।

द्वयी विप-संज्ञा स्त्री० [सं०] सुधुत के अनुसार शरीर में रहनेवाला एक प्रकार का विप जो धातु को क्षुब्ध करता है और जिसे हीन विप भी कहते हैं।

विशेष—यदि किसी प्रकार का स्वापर, अंगम या क्षुत्रिम विप शरीर में प्रविष्ट हो जाने के उपरान्त पूरा पूरा बाहर नहीं निकलता, इसका कुछ अंश शरीर में रह कर जीव्य हो जाता

है अथवा विप-नाशक औषधों से दूराने या नष्ट करने पर भी पूर्ण रूप से नष्ट नहीं होता, तब यह कफ से आच्छादित होकर द्वयी-विप कहकराता और वासी। एक शरीर में अणु रहता है। जिसके शरीर में—यह विप रहता है इसका रंग पीला पड़ जाता है, मज्ज का रंग, बदल जाता है; सुगुण और विरसता होती है, प्यास लगती है, मूर्च्छा और के होती है और द्यूयादर के से अणुय दिखाने देने लगते हैं। जब यह विप पक्वताय में रहता है तब मनुष्य के शरीर और शरीर के भाग भङ्ग छाते हैं। मज्ज हस्तका कोप हो लगता है तब जैभाई आती है, अंग टूटते हैं, रोपुं लगे हो जाते हैं, शरीर पर बकसे पड़ जाते हैं; हाथ पैर सूज जाते हैं तथा इसी प्रकार के और अणुय होते हैं।

विशेष—दे० "दोषी"।

द्वय-वि० [सं०] (१) दोष लगाने योग्य। जिसमें दोष लगाना जा सके। (२) निन्दनीय। निन्दा करने योग्य। (३) तुच्छ। (४) शय्य को हानि पहुँचानेवाला (मनुष्य)।

संज्ञा पुं० (१) कपड़ा। यज्ञ। (२) संव्। खेमा।

द्वसना-क्रि० सं० दे० "द्वपना"।

द्वसरी-वि० दे० "द्वसरा"।

द्वसरा-वि० [हिं० दो] (१) जो क्रम में दो के स्थान पर हो पहले के बाद का। द्वितीय। जैसे, शाली में चारों हाथ का दूसरा मकान बन्दों का है। (२) जिसका प्रस्तुत विषय के व्यक्त से संबंध न हो। शय्य। अथर। और। और। जैसे हम लोग आपस में चारों बड़े और चारों बड़े, दूसरे मतलब ?

धौ०—द्वसरी मां=जो अपनी मां न हो। सौतेली मां।

द्वहना-क्रि० सं० दे० "द्वहना"।

द्वहनी-संज्ञा स्त्री० दे० "दोहनी"।

द्वहा-संज्ञा पुं० दे० "दोहा"।

द्वहिया-संज्ञा पुं० [दे०] एक प्रकार का वृहदा।

द्वह्य-संज्ञा पुं० दे० "द्वह्य"।

द्वह-संज्ञा पुं० [सं०] क्षिद्र। वेद।

संज्ञा पुं० [?] हीरा। ४०-निःकंठाक वज्र बुनि हीरा पद्म सुपेन। निष्क संकुच तिय निरालित न भूर भावन सुधि मैन—गंधर्वस।

द्वहाण-संज्ञा पुं० दे० "द्वहाण"।

द्वहायी-संज्ञा पुं० [सं०] साँप।

विशेष—येला मनाद है कि साँप मुनने का काम भी चाँक से होता है।

द्वहर्म-संज्ञा पुं० [सं०] अतीव में वह क्रिया या संस्कार जो प्रदों को अपने चित्त पर आने के लिये किया जाता है और जिससे प्रदों के योग, चंद्रमा की शृंगोक्ति तथा प्रदों की

नक्षत्रों के उद्धार का पता चलता है। यह संस्कार दो प्रकार का होता है, प्राचरक और भायनरक।

दृकाय-संज्ञा पुं० [यू० डेकानस] फलित ज्योतिष में एक राशि का तीसरा भाग जो दस धरों का होता है।

विशेष—प्रत्येक राशि तीस धरों की होती है। राशि को तीन भागों में विभक्त करके एक एक भाग को दृकाय कहते हैं।

इस प्रकार किसी एक राशि में प्रथम, द्वितीय और तृतीय तीन दृकाय होते हैं। इस राशि का ही अधिपति प्रथम दृकाय का स्वामी होता है, उससे पाँचवीं राशि का द्वितीय दृकाय का, और उससे नववीं राशि का तृतीय दृकाय का।

जैसे, मेष राशि का स्वामी मंगल है। अतः मेष राशि के प्रथम दृकाय का स्वामी मंगल, द्वितीय दृकाय का रवि (जो मेष से पाँचवीं राशि, सिंह, का स्वामी है) और तृतीय दृकाय का बृहस्पति (जो मेष से नववीं राशि, जनु, का स्वामी है) होगा। यह दृकाय फलित ज्योतिष में काम आता है।

शुभग्रहों के दृकाय का नाम जल और अशुभ ग्रहों के दृकाय का नाम दहन है। जल दृकाय में जिसका जन्म होता है उस की मृत्यु जल में होती है और दहन दृकाय में जिसका जन्म होता है उसकी मृत्यु अग्नि से होती है।

राशियों के अनुसार दृकायों के अनेक नाम और अनेक फल कथित किए गए हैं।

दृकक्षेप-संज्ञा पुं० [सं०] (१) दृष्टिपात। शबलोवन। (२) दूरत लय के नतारा की सुन जया। इसका काम सूर्यग्रहण के स्पष्टीकरण में पड़ता है। मध्यम्या को उदयम्या से गुणित कर गुणन फल को शिष्या से भाग देते हैं फिर भागफल को वर्ग करके और इसमें मध्यम्या के वर्ग को घटाने से जो शेष शक रहता है उसका वर्गमूल निकालते हैं। यही वर्गमूल का शक दृकक्षेप कहलाता है।

दृकपथ-संज्ञा पुं० [सं०] दृष्टि का मार्ग। दृष्टि की पहुँच।

मुहूर्त—दृकपथ में धाना = दिखाने पड़ना।

दृकपात-संज्ञा पुं० [सं०] दृष्टिपात। शबलोवन।

दृकप्रसादा-संज्ञा स्त्री० [सं०] कुल्लया। कुल्लयाभन।

दृकशक्ति-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) प्रकाशरूप चैतन्य। (२) आत्मा।

दृकश्रुति-संज्ञा पुं० [सं०] साँप।

दृकचल-संज्ञा पुं० [सं०] पक्षी। उ०—भद्र विभोचन चार श्यंचल। मनहु सकृपि निमि सजे दृकचल।—सुखती।

दृग-संज्ञा पुं० [सं० दृ, समस-दृक्] (१) दृष्टि। उ०—जया सुधेवन कति दृग साधक सिद्ध सुजान। कौतुक देखिँ सैख वन भूतक मुरि निधान।—सुखती।

मुहूर्त—दृग दृक्का वा देना = नजर दृक्काना। देलना। उ०—पाई परे देहि प्रीतम रंग कदि केयस क्योहेँ म मैं दृग दीनी।

—केशव। दृग फेरना = आल फेरना। अयसत्र रदुना। उ०—दुख और मैं काते कहीं को सुने पत्र की धनिता दृग फेरि रहें।—पद्माकर।

(२) देते की शक्ति। दृष्टि। उ०—अवध घटहु पुनि दृग घटहु घेतो मकल बलदेह। हते घटे घटिई कदा जो न घटे हरि नेह। (३) दो की संख्या।

दृगमिच्चाप-संज्ञा पुं० [हिं० दृग + मीनना] चाँसमिचोड़ी का खेज। उ०—मुरे सदाँ एक भायकोके बनोये दृग मुरग मिचाब नेक एयालनहिँ सै दितै।—पद्माकर।

दृगणित-संज्ञा पुं० [सं०] ग्रहों का वेध कर के गणित करना।

दृगणितैक्य-संज्ञा पुं० [सं०] ग्रहों को किसी समय पर गणित से स्पष्ट करके फिर उसे वेध कर मिजाना और न्युवता या अधिकता प्रतीत होने पर उसमें संस्कार करना जिससे ग्रहों के वेध और स्पष्ट में धागे भेद न पड़े।

दृगति-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) दृष्टि की गति या पहुँच। (२) दूरतमत्रा की गति या कोटिग्या।

विशेष—इसका काम सूर्यग्रहण निकालने में पड़ता है। इसकी रीति यह है कि मध्यम्या को उदयम्या से गुणित करे और गुणनफल को शिष्या से भाग दे। फिर भागफल का वर्ग करे और वर्गफल से शिष्या का वर्ग घटावे। इस प्रकार जो शेष शक बचेगा उसका वर्गमूल दृगति कहलावेगा।

दृगोचर-वि० [सं०] जो दृष्टि से दिखाई दे।

दृगोत्त-संज्ञा पुं० [सं०] यह मृत जिसे ऊपर स्वस्तिक और अधः स्वस्तिक में होता हुआ कथित करके विषय ग्रहों का वक्ष्य होता है उषर सुभाकर इनकी स्थिति का पता चलाया जाता है। इसे दृग्मंडल और दृगवलय भी कहते हैं।

दृग्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] दृक्मंडल वा दृगोत्त के स्वस्तिक से जो ग्रह जितना दूरका रहता है उसे गतारा कहते हैं और इती गतारा की ज्या दृग्या कहलाती है।

दृग्म-संज्ञा पुं० [सं०] (२) वज्र। (२) सूर्य। (३) सर्प।

दृग्वलय-संज्ञा पुं० [सं०] ग्रहण स्पष्ट करने में जब सूर्य चंद्र गर्भाभिप्राय से एक सूत में ब्रजते हैं पर शृष्टाभिप्राय से एक सूत में नहीं आते तब उन्हें शृष्टाभिप्राय से एक सूत में आने के लिये जो पूर्वापर संस्कार किया जाता है उसे दृग्वलय कहते हैं।

दृग्विप-संज्ञा पुं० [सं०] यह साँप जिसकी आँखों में विष होता है।

दृग्मुच-संज्ञा पुं० [सं०] चित्तिय।

दृकनति-संज्ञा स्त्री० [सं०] ग्रहण स्पष्ट करने में सूर्य चंद्र का जब अमातकालीन स्पष्ट करते हैं और वे गर्भाभिप्राय से एक सूत में आजाते हैं पर शृष्टाभिप्राय से नहीं आते, तब शृष्टाभिप्राय

से उन्हें एक सूत्र में बंधने के लिये जो वाय्मीतर संस्कार किया जाता है उसे दहनति कहते हैं ।

हरमंडल-संज्ञा पुं० [सं०] रमोज ।
हर-वि० [सं०] (१) जो शिथिल या ढीला न हो । जो खूब कर्म करे पंथा या सिद्धा हो । अग्राहृ जैसे, हर धंधन या गांड, हर शालिषग । (२) जो जवदी न टूटे फूटे । पुष्ट । मजबूत । कषा । दोस । जैसे, इस फल का छिन्नका बहुत हर होता है । (३) बलवान् । वलित । हृष्ट पुष्ट । जैसे, हर धंग । (४) जो जवदी दूर, नष्ट या विचलित न हो सके । स्थायी । जैसे, हर शासन, हर संकल्प, हर सिद्धति । (५) न भन्याया न हो सके । निश्चित । सुख । पका । जैसे, किसी बात का हर होना । (६) निदर । दौढ । कड़े दिल का । जैसे, हर मनुष्य ।
संज्ञा पुं० (१) बोहा । (२) विष्ट । (३) धतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम । (४) संगीत में सात रूपकों में से एक । (५) सेरहय मनु हवि के एक पुत्र का नाम । (६) गणित में यह श्रेष्ठ जो हमरे शंक से पूरा पूरा विनाशित न हो सके जैसे, १, २, ४, ७, ११, १७ इत्यादि ।

हरकंटक-संज्ञा पुं० [सं०] पुत्रफलक हृष ।
हरकर्मा-वि० [सं०] हरकर्मन्] जो अपने कर्म में हर रहे । धैर्य और स्थिरता के साथ काम करनेवाला ।

हरकांड-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बसि (२) रोहिस पास ।
हरकांडा-संज्ञा स्त्री० [सं०] क्षिप्रता । पातालवादी वना ।
हरकारी-वि० [सं०] हरकारि । (१) दृढ़ता से काम करनेवाला । (२) मजबूत करनेवाला ।

हरक्षत्र-संज्ञा पुं० [सं०] धनराष्ट्र के एक पुत्र का नाम ।
हरभुरा-संज्ञा स्त्री० [सं०] यवना नृप । सागे यागे ।
हरगात्रिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] राव । हाँफ ।
हरग्रथि-वि० [सं०] जिसकी गोंठें मजबूत हैं ।
संज्ञा पुं० बसि ।

हरच्छद-संज्ञा पुं० [सं०] दीवरीहिय नृप । यड़ी रोहिस ।
हरद्वयुत-संज्ञा पुं० [सं०] अगस्त्य मुनि के एक पुत्र का नाम जो परपुरंजय नामक राजा की कन्या के गर्भ से हल्पन था । (भागवत)

हरदत्त-संज्ञा पुं० [सं०] धन का पेड़ ।
हरदता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) हर होने का भाव । हरया । (२) मजबूती । (३) स्थिरता । (४) पकापन ।
हरदृष्य-संज्ञा पुं० [सं०] अज्ञ नाम की यास ।
हरदृष्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] यवना नृप ।
हरदृष्य-संज्ञा पुं० [सं०] दृढ़ता ।
हरदृष्य-वि० [सं०] जिसकी रथया या बाज कड़ी हो ।
संज्ञा पुं० जवार का पेड़ ।

हरदृशक-संज्ञा पुं० [सं०] एक बलजंतु ।
हरदृस्यु-संज्ञा पुं० [सं०] एक ऋषि जो दृक्षयुत के पुत्र थे ।
हरधन-संज्ञा पुं० [सं०] शाक्यमुनि । बुद्ध ।
हरधन्या-संज्ञा पुं० [सं०] हरधनन्] (१) जो धनुष चलाने में दृढ़ हो या जिसका धनुष दृढ़ हो । (२) एक पुरवंशीय राजा का नाम ।

हरधन्वी-वि० [सं०] हरधनिन्] जिसका धनुष दृढ़ हो ।
हरदनाम-संज्ञा पुं० [सं०] वाल्मीकि के अनुसार अर्जुन की एक रोक जिसे विरवाग्नि जी ने रामचंद्र को बतलाया था ।
हरदनिश्चय-वि० [सं०] जो अपनी बात पर जमा रहे । जो अपने संकल्प पर दृढ़ रहे । स्थिरप्रतिज्ञ ।
हरदनीर-संज्ञा पुं० [सं०] नारियल, जिसके भीतर का जल धीरे धीरे जम कर कड़ा हो जाता है ।

हरदनेत्र-संज्ञा पुं० [सं०] विरवाग्नि जी के चार पुत्रों में से एक । (वाल्मीकि)
हरदनेमि-वि० [सं०] जिसकी नेमि दृढ़ हो । जिसकी धुरी मजबूत हो ।
संज्ञा पुं० अन्नमीद्वंशीय एक राजा का नाम जो सत्यधति के पुत्र थे ।

हरदपत्र-वि० [सं०] जिसके पत्ते दृढ़ हैं ।
संज्ञा पुं० बसि ।
हरदपत्री-संज्ञा स्त्री० [सं०] यवना नृप । सागे यागे ।
हरदध्या-संज्ञा पुं० [सं०] तेहस मात्राओं का एक मायिक छंद जिसमें १३ और १० मात्राओं पर विश्राम होता है और श्लोक में दो गुरु होते हैं । इसे अमान भी कहते हैं । व०—बाहु, धंध करमूल में श्राद्धावलि रामे । छपटे फण्यि धीकुंड की लतिका जनु शनै । कुंड जु रच्यो सुहोम को, जनु गाभि सुहाई । रोमावलि मिस धम की रेखा चखि छाई ।

हरदाद-वि० [सं०] दृढ़निश्चय । विश्वास का पक्का ।
हरदादा-संज्ञा स्त्री० [सं०] यवतिसता ।
हरदादी-संज्ञा स्त्री० [सं०] मूर्यामलकी । मूर्यावला ।
हरददित्त-वि० [सं०] जो अपनी प्रतिज्ञा से न टके ।
हरदमरोह-संज्ञा पुं० [सं०] वट । बरंगद ।
हरदफल-संज्ञा पुं० [सं०] नारियल ।
हरदधिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] अन्नतमूल नाम की वता । श्यामा और सारिया भी हली को कहते हैं ।
हरदभूमि-संज्ञा स्त्री० [सं०] योगराज में मन को एकाम और स्थिर करने का एक धन्यास जिसमें मन अविचल हो जाता है, इधर बधरा नहीं जाता । इस धन्यास को प्राप्त कर लेने पर वैराग्य की प्राप्ति निश्चय हो जाती है ।
हरदमुष्टि-वि० [सं०] (१) जो मुट्टी में जैर से पकड़े । इस कर पकड़नेवाला (२) हरया । कर्म ।

संज्ञा पुं० (मुट्टी में पकड़ कर खलाए जानेवाले) खट्टादि
शब्द ।

दृष्टमूल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मूल । (२) मयाता नाम की
पासनाओं ताओं में होती है । मंगानक वृक्ष । (३)
नारियल ।

दृष्टरंगा-संज्ञा स्त्री० [सं०] फिटकरी (जिससे रंग पकका होता है)

दृष्टरोह-संज्ञा पुं० [सं०] पाकर का पेड़ । पकड़ ।

दृष्टलता-संज्ञा स्त्री० [सं०] पाताजगखड़ी जता । खिरौटा ।

दृष्टलोम-वि० [सं०] दृष्टलोमन् [स्त्री० दृष्टलोमी, दृष्टलोमा] जिसके
शेपें कड़े हों ।

संज्ञा पुं० सुधर ।

दृष्टवर्मा-संज्ञा पुं० [सं०] दृष्टवर्मन् । एताराष्ट्र के एक पुत्र का नाम ।

दृष्टवलकल-वि० [सं०] जिसकी छाज कड़ी हो ।

संज्ञा पुं० (१) सुपारी का पेड़ । (२) जलजु का पेड़ ।

दृष्टवदसा-संज्ञा स्त्री० [सं०] श्रेष्ठ ।

दृष्टवीज-वि० [सं०] जिसके धीत कड़े हों ।

संज्ञा पुं० (१) चकवड़ । (२) बर । (३) बज्र ।

दृष्टवृक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] नारियल ।

दृष्टव्य-संज्ञा पुं० [सं०] एक शक्ति का नाम ।

दृष्टमत-वि० [सं०] स्थिरसंकल्प । अपने संकल्प पर जमा
रहनेवाला ।

दृष्टसंध-वि० [सं०] संकल्प का पक्का । प्रतिज्ञा पर दृष्ट
रहनेवाला ।

संज्ञा पुं० धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम ।

दृष्टस्यिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] मूर्धा नाम की जता । सुरा ।

दृष्टस्कंध-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पंढरखर । (२) खिरनी का
पेड़ ।

दृष्टस्यु-संज्ञा पुं० [सं०] लोपासुद्रा के गर्भ से उत्पन्न अगस्त्य
ऋषि के एक पुत्र का नाम ।

दृष्टहस्त-वि० [सं०] जो हथियार आदि पकड़ने में पक्का हो ।

संज्ञा पुं० धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम ।

दृष्टांग-वि० [सं०] जिसके श्रेण दृष्ट हों । कड़े बदन का । दृष्ट
पुट ।

संज्ञा पुं० जीरक । जीरा ।

दृष्टाई*—संज्ञा स्त्री० [हिं० दृष्ट] दृष्टता । मजबूती ।

दृष्टाना-वि० सं० [सं० दृष्ट + आ (प्रत्य०)] दृष्ट करना । पका करना ।

मजबूत करना । ४०—(क) बड़े बात जो जनक दृष्टाई है । बड़े
धर्म विवेक दृष्टाई ।—कबीर । (ख) चखत गगन मद् गिरा
सुधाई । जप मदेश भलि भक्ति दृष्टाई ।—गुलसी । (ग)
यात दृष्टाई कुमति हैसि योजी । कुमत्त विद्वेगकुलह जनु
खोजी ।—गुलसी । (घ) पाड़े विविध ज्ञान जतनी को

दृष्टान् दीर्घा कपिल दृष्टाय । सोरुप योग प्रसू ज्ञान । भक्ति दृष्ट बानी
विविध बनाई ।—सूर ।

किं श्र० (१) कड़ा होना । पुष्ट या मजबूत होना । (२)
स्थिर या पक्का होना ।

दृष्टायु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) तृतीय मनु सावर्णि के एक पुत्र
का नाम । (२) अर्यशी के गर्भ से श्वशुरापेल राजा का एक
पुत्र । (महाभारत)

दृष्टायुध-वि० [सं०] अथ प्रदण करने में पक्का । युद्ध में
तयार ।

संज्ञा पुं० धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम ।

दृष्टाभ्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सुयुमार के एक पुत्र का नाम ।
(हरिवंश)

दृष्ट-वि० [स्त्री०] दृष्टा सम्मानित । आदर ।

दृष्टा-संज्ञा स्त्री० [सं०] जीरा ।

दृष्टि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चमड़ा । खाल । (२) खाल का पना
हुआ पात्र । (३) मराक । (४) मेघ । (५) एक प्रकार की
मड़ली । (६) गलकंठक । गाय, बैल आदि के गले के
नीचे झूलता हुआ चमड़ा ।

दृष्टिधारक-संज्ञा पुं० [सं०] एक पैया जिससे बंग देश में आकन-
पाता कहते हैं ।

पर्या०—शाम्बी । वामन ।

दृष्टिधातवतारप्यन-संज्ञा पुं० [सं०] एक अयनसत्र का नाम ।
एक प्रकार का यज्ञ ।

दृष्टिहरि-संज्ञा पुं० [सं०] खाल या चमड़ा सुरानेवाला कुत्ता ।

दृष्टिहार-संज्ञा पुं० [सं०] मराक होनेवाला । भिरती ।

दृष्ट्यू-संज्ञा पुं० [सं०] (१) यज्ञ । (२) सूर्य । (३) राजा । (४)
साँप । (५) पहिया ।

दृष्ट-वि० [सं०] (१) गणित । इतराया हुआ । (२) हप से
झूला हुआ ।

दृष्ट-वि [सं०] (१) प्रचंड । मजबूत । (२) इतराया हुआ । चमकी ।

दृष्ट-वि [सं०] (१) मंगित । गुया हुआ । (२) भीत । डरा
हुआ ।

दृष्ट-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० दृष्ट] (१) देखना । दरान ।
(२) प्रदर्शक । दिखानेवाला । (३) देखनेवाला ।

संज्ञा स्त्री० (१) दृष्टि । (२) साँप । (३) देा की संख्या (४)
ज्ञान ।

दृष्टा-संज्ञा स्त्री० दे० "दृष्ट" ।

दृष्टादी-संज्ञा स्त्री० दे० "दृष्टदी" ।

दृष्टा-संज्ञा स्त्री० [सं०] श्राव ।

दृष्टाकाक्ष्य-संज्ञा पुं० [सं०] कमज ।

दृष्टान-संज्ञा पुं० [सं०] (१) प्रकाश । धामा । (२) विरोधन

नामक दैत का नाम । (३) आचार्य्य । गुरु । (७) प्रजा का पावन करनेवाला राजा । (४) माहाय ।

हृदि—संज्ञा स्त्री० दे० "हृदि" ।

हृदि—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) दृष्टि । (२) प्रकाश । (३) चेतन पुरुष । (४) शास्त्र ।

हृद्योपम—संज्ञा पुं० [सं०] श्वेत कमल । पुंढरीक ।

हृद्य—वि० [सं०] (१) जो देखने में आ सके । जिसे देख सकें । हरीचर । जैसे, हृद्य पदार्थ । (२) जो देखने योग्य हो । दर्शनीय । (३) मनोरम । सुंदर (४) जानने योग्य । ज्ञेय । संज्ञा पुं० (१) देखने की वस्तु । वह पदार्थ जो आँखों के सामने हो । नेत्रों का विषय । जैसे, वन और पर्वत का हृद्य । (२) तमारा । वह मनोरंजक व्यापार जो आँखों के सामने हो । (३) वह काव्य जो अनियम द्वारा दर्शकों को दिखाया जाय । भाटक । (४) गणित में ज्ञात या ही हुई संख्या ।

हृद्यमान—वि० [सं०] (१) जो दिखाई पड़ रहा हो । (२) घमकीला । सुंदर ।

हृपद्—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) शिखा । पर्वत की चट्टान । (२) सिल । पट्टी । (३) पत्थर ।

हृपद्—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० "हृपद्" ।

हृपद्गती—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक नदी जिसका नाम शत्रुघ्न में आया है । इसे आनकल घावर और राक्षी कहते हैं । यह यानेघर से १३ मील दक्षिण है । महानगर में यह कुश्नेत्र के अंतर्गत मानी गई है । मनुस्मृति में इसे यद्रावण की सीमा पर लिखा है । (२) विश्वामित्र की एक पत्नी का नाम ।

वि० [सं०] पपरीली ।

हृपद्दान—वि० [सं०] हृपद्गति [सं०] हृपद्गति] पापाण्युक्त । शिखामय । पपरीला ।

हृपद्—वि० [सं०] (१) देखा हुआ । (२) जाना हुआ । ज्ञात । प्रकट । (३) लौकिक और गौण । प्रत्यक्ष ।

विशेष—पारंजल दर्शन में दो प्रकार के विषय 'दृष्ट' वस्तुवाच्य रूप हैं अर्थात् स्त्री, अन्न, पान आदि लौकिक विषय जिन्हें इंद्रियाँ भोगती हैं और आनुभविक विषय जो वेदप्रतिपादिन स्वर्ग आदि से संबंध रखते हैं । इन दोनों प्रकार के विषयों से एक साथ निरूद्ध हो जाने से बुरीकार नामक वैराग्य रूपस होता है ।

संज्ञा पुं० (१) दर्शन । (२) साक्षात्कार । (३) साध्य में तीन प्रकार के प्रमाणों में से एक । प्रत्यक्ष प्रमाण ।

हृपद्कूट—संज्ञा पुं० [सं०] (१) पहेली । (२) कोई ऐसी कविता जिसका अर्थ केवल शब्दों के वाचकार्य से न समझा जा सके बल्कि प्रसंग या रूढ़ अर्थों से जाना जाय । व०—दृष्टि-शुन पावक प्रगट भयो री । भास्तरुत जाता पित्त प्रोहित वा

प्रतिपादन झुंझि गये री । हस्तुत वाहन वा रिपु भोजन सेो लागत श्रंग धनक भयो री । शृगमर स्वाद भेद नहिं भावत दधिधुत आनु समान भयो री । वारिधुतपति क्रोध क्रियो सखि भेटि दकार सकार खयो री । सूरदास प्रभु सिंधुमुता विनु कोपि समर कर धाप खयो री ।—सूर ।

हृपद्मान—वि० [सं०] हृपद्मान] प्रकट । व्यक्त । व०—(क) हृपद्मान नास सव होई । साधु व्यापक नसे न सोई ।—सूर । (ख) हृपद्मान सय विनसे अदृष्ट लखै न कोइ । दीन कोइ गाहक मिलै बहुते सुख सो होइ ।—कबीर ।

हृपद्वत्—वि० [सं०] (१) प्रत्यक्ष के समान । (२) लौकिक । साक्षात्क ।

हृपद्वाद—संज्ञा पुं० [सं०] वह दार्शनिक सिद्धांत जो केवल प्रत्यक्ष ही को मानता है ।

हृपद्वात—संज्ञा पुं० [सं०] (१) अज्ञात वस्तुओं या व्यापारों का धर्म आदि वस्तुवाच्य रूप समझने के लिये समान धर्मवाची किसी ऐसी वस्तु या व्यापार का कथन जो सबको विदित हो । उदाहरण । मिसाल । व०—(क) बहुत से पत्ते गोज होते हैं, जैसे, कमल के । (ख) जब मनुष्य एक बार पतित हो जाता है तब वह बराबर पतित ही होता जाता है । जैसे पत्थर का गोला जब पहाड़ पर से लुढ़कता है तब बराबर गिरता ही जाता है ।

इस दूसरे वाक्य में पत्थर के गोले के दृष्टांत द्वारा मनुष्य के पतित होने की दशा समझाई गई है ।

विशेष—व्याय के सोलह पदार्थों में से दृष्टांत भी एक है । व्याय के अनुसार जिस पदार्थ के संबंध में लौकिक (साधारण) जनों और परीक्षकों (ताकिंके) का एकमत हो उसे दृष्टांत कहते हैं । ऐसी प्रत्यक्ष बात जिसे सब जानते या मानते हों दृष्टांत है । "जहाँ धूम्र होता है वहाँ आग होती है" इस बात को कहकर किसी ने कहा "जैसे रसोई घर में" तो यह दृष्टांत हुआ । व्याय के अथर्वणों में उदाहरण के लिये इसकी कल्पना होती है अर्थात् जिस दृष्टांत का अर्थ-हार तर्क में होता है उसे उदाहरण कहते हैं ।

(२) एक अर्थालंकार जिसमें एक श्रोत तो स्वभाव और उसके साधारण धर्म का वर्णन और दूसरी श्रोत विश्वप्रतिबंध भाव से स्वभाव और उसके साधारण धर्म का वर्णन होता है । व०—दुसह दुरास प्रजाति को बधों न करे अति दंड । अधिक धंधेरे जा करत मिलि मानस रविचंद्र ।—विहारी । यहाँ स्वभाव 'दुरास' में अधिक दंड या धंधेरे का होना और वसति के अनुसार स्वभाव रविचंद्र मिलन में अधिक धंधेरे का होना वर्णित है । प्रतिवस्तुपमा से इस अर्थालंकार में यह भेद है कि प्रतिवस्तुपमा में शब्दभेद से एक ही धर्म का कथन होता है पर इसमें धर्म भिन्न भिन्न (जैसे, दंड होना,

और अंधेरा होना) होते हैं। पंडितताज जगन्नाथ ने इन दोनों में बहुत कम अंतर माना है और कहा है कि इन्हें एक ही अलंकार के दो भेद 'समकला' चाहे। (३) शास्त्र। (४) मरण।

दृष्टार्थ—संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह शब्द जिसका अर्थ स्पष्ट हो। (२) वह शब्द जिसके अर्थ से श्रोता को किसी ऐसे अर्थ का बोध हो जिसका प्रत्यक्ष इस संसार में होता-हो। जैसे, 'गांवा' इस शब्द के अर्थ मात्र से मनुष्य को एक ऐसी नदी का बोध होता है जो भारतवर्ष के उत्तरीय भाग में प्रत्यक्ष देखी जा सकती है। यह दृष्टार्थ शब्द का विरोधी है। जैसे स्वर्ग, नरक, चौरसमुद्र, अस्तर, देवता आदि जो संसार के किसी स्थल में प्रत्यक्ष नहीं हो सकते।

दृष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) देखने की शक्ति या शक्ति। आँख की शक्ति।

मुहा०—दृष्टि मारी जाना=देखने की शक्ति न रह जाना। (२) देखने के लिये नेत्रों की प्रवृत्ति। देखने के लिये आँख की पुतली के किसी वस्तु की सीध में होने की स्थिति। टक। दृक्पात। अथलोकन। नजर। निगाह।

क्रि० प्र०—पढ़ना।—डाढ़ना।

मुहा०—दृष्टि करना=दृष्टि डालना। ताकना। दृष्टि बखाना=नजर डालना। दृष्टि बूकना=नजर का इधर उधर देना। आँख का दूसरी ओर फिर जाना। जैसे, जहाँ दृष्टि पकी कि गिरे। दृष्टि देना=नजर डालना। ताकना। दृष्टि फिरना= (१) नेत्रों का दूसरी ओर प्रवृत्त होना। आँख का दूसरी ओर हो जाना। (२) कृपादृष्टि न रखना। दृष्टि का ध्यान या श्रुति न रहना। चित्त अप्रसन्न या खिन्न होना। दृष्टि फेंकना=नजर डालना। ताकना। दृष्टि फेरना=नजर हटाना। दूसरी ओर देखना। (किसी ओर) ताकते न रहना। (किसी से) दृष्टि फेरना=(किसी पर) कृपादृष्टि न रखना। अप्रसन्न या विरक्त होना। खिन्न होना। (किसी की) दृष्टि पचाना=(१) (किसी के) सामने होने से वचन। आँख के सामने न आना। जान बूझ कर न दिखाई पड़ना (भय, लज्जा आदि के कारण)। (२) (किसी से) छिपाना। न दिखाना। दृष्टि दिखाना=इस प्रकार आदर करना कि आँखों को और का और दिखाई दे। इंद्रजात्र फेंकना। दृष्टि खगाना=(१) खिर होकर ताकना। टकटकी बाँधना। (२) (किसी ओर देखने के लिये) आँख ले जाना। ताकना। ४०—दूसी दुबार ताक का खेला। बजटि दृष्टि जो साथ सेवा देला।—जायसी।

(३) आँख की शक्ति का प्रसार जिससे वस्तुओं के धूलित्व, रूप, रंग आदि का बोध होता है। दृक्पथ।

मुहा०—दृष्टि आना=दे० "दृष्टि में आना"। दृष्टि पड़ना=दिखाई पड़ना। ४०—(क) दृष्टि परी इंद्रासन पुरी।—

जायसी। (ख) मेरी दृष्टि परे जा दिन तेँ ज्ञान मान हरि लीनेरी।—सूर। दृष्टि पर पड़ना=(१) देखने में बहुत अच्युता लगना। निगाह में आँचना। अच्युता लगने के कारण ध्यान में उदा बसा रहना। पवंद आना। माना। जैसे, वह बड़ी तुम्हारी दृष्टि पर चढ़ी हुई है। (२) आँखों में खटकना। किसी वस्तु का इतना बुरा लगना कि उसका ध्यान सदा बना रहे। जैसे, 'तुम इसकी' दृष्टि पर चढ़े हुए हो, वह तुम्हें बिना मारे न छोड़ेगा। दृष्टि सिंधाना=(१) प्रेम या श्रद्धावशा किसी के आँखों में खगातार ताकते रहना। उल्लंघापूर्वक किसी के आगमन की प्रतीक्षा करना। ४०—पवन स्वास तारो मय छाई। जीवै मारा दृष्टि सिंघाई।—जायसी। (२) किसी के आँखों पर अत्यंत श्रद्धा या प्रेम प्रकट करना। दृष्टि में आना=देख में आना। दिखाई पड़ना। ४०—जग को दृष्टि न आवै पूरन होय सकाम।—जायसी। दृष्टि में पड़ना=दिखाई पड़ना। (क०) दृष्टि से बतरना या गिरना=श्रद्धाविश्वास या प्रेम का पात्र न रहना। (किसी के) विचार में अच्युता न रह जाना। तुम्हें या बुरा ठहरना।

(४) देखने में प्रवृत्त नेत्र। देखनेके लिये खुली हुई आँख। मुहा०—दृष्टि बडाना=ताकने के लिये आँख ऊपर करना। दृष्टि गडाना या बमाना=दृष्टि खिर करना। एकटक ताकना। (किसी से) दृष्टि घुराना=(जजा या मय से) सामने न आना। जान बूझ कर दिखाई न पड़ना। नजर बचाना। (किसी से) दृष्टि छुड़ाना=आँख मिलाना। देखा देवी होना। सापात्कार होना। (किसी से) दृष्टि जोड़ना=आँख मिलाना। देखा देली करना। सापात्कार करना। दृष्टि फिसलना=चमक दमक के कारण नजर न ठहलना। आँख में चकाचौंध होना। दृष्टि भर देखना=जितनी देर तक इच्छा हो उतनी देर तक देखना। जी भर कर ताकना। ४०—रुच मन नंदनंदन ध्यान। सेह चरम परोज सीतल लउ विषय रसपान। सूर धी गोपाल की छवि दृष्टि भरि छलि खेहि। प्राणपति की निरखि शोभा पलक परन न देहि।—सूर। दृष्टि माना=(१) आँख से इशारा करना। प्रसन्न गिमाकर संकेत करना। (२) आँख के इशारे से येचना। दृष्टि मिलना=दे० "दृष्टि छुड़ना"। दृष्टि में समाना=नजर में आँचना। अच्युता लगने के कारण ध्यान में बना रहना। माना। ४०—बह सनें की दृष्टि में समा गया।—वेनिस का रीका। दृष्टि मिखाना=दे० "दृष्टि जोड़ना"। ४०—बिहरत दिया करहु पिय टेका। दृष्टि मया करि मिलवहु पूका।—जायसी। (किसी वस्तु पर) दृष्टि रखना=किसी वस्तु को देखते रहना जिसमें वह इधर उधर न हो जाय। निगाही रखना। (किसी पर) दृष्टि रखना=देख रेल में रखना।

चौकटी में रचना । दशा का निरीक्षण करते रहना । जैसे, इस खण्डके पर भी दृष्टि रतना, एषर वषर खेवने न पावे । दृष्टि खाना = नजर का पड़ना । दृष्टिपात होना । (२) देखा देखी होने से प्रेम होना । प्रीति होना । दृष्टि खगाना = (१) तिर शेरकर ताकना । टकटकी बर्षाना । व०—भूलि चबरेर दृष्टि जो लावा । मेघ घटा महे चंद्र दितावा ।—जायसी । (२) किसी और देखने के लिये आँख ले जाना । ताकना । (३) प्रेम करना । प्रीति करना । (४) नजर लगाना । घुरी दृष्टि का प्रभाव खानना । (किसी से) दृष्टि खड़ना = (१) (किसी की) आँख के सामने आँख होना । घुरी घुरी होना । देखा देखी होना (२) प्रेम होना (किसी से) दृष्टि खड़ाना = आँख के सामने आँख किये रहना । घूरना । लूव ताकना । देर तक आँख से आँख भिताना । (६) पारख । पदधाना । तमीज़ । घटकज । शंदात्र । (६) शूपा दृष्टि । दिव का ध्यान । मिहरधानी की नजर । जैसे, घात्र कल चापकी यह दृष्टि मेरे ऊपर नहीं है । व०—(क) तपे शीम जस धरती मुख विरह के घाम । कष सो दृष्टि करि बरसे तन सहर होइ जाम ।—जायसी । (घ) बिरसा खाइ न सुखन दीने । पावै पानि दृष्टि से कीने ।—जायसी । (७) भाषा की दृष्टि । भासरे में खगी हुई टकटकी । धास । उम्मीद । (८) ध्यान । विचार । अनुमान । जैसे, मेरी दृष्टि में तो ऐसा करना अनुचित है । (९) उद्देश्य । धर्मियाय । नीयत । जैसे, कुछ घुरी दृष्टि से मैंने ऐसा नहीं किया ।

दृष्टिकूट—संज्ञा पुं० दे० “दृष्टकूट” ।
 दृष्टिकूट—संज्ञा पुं० [सं०] (१) दर्यक । (२) स्थलक ।
 दृष्टिक्षेप—संज्ञा पुं० [सं०] दृष्टिपात ।
 दृष्टिगत—वि० [सं०] जो दिखाई पड़ा हो । जो देखने में आया हो ।
 कि० प्र०—होना ।
 संज्ञा पुं० (१) नेत्र का विषय । (२) आँख का एक रोग ।
 दृष्टिगोचर—वि० [सं०] नेत्रद्विप द्वारा जिसका बोध हो । जो देखने में आ सके ।
 कि० प्र०—करना ।—होना ।
 दृष्टिगुण—संज्ञा पुं० [सं०] रागा हृवबाहु के एक गुण का नाम ।
 दृष्टिनिपात—संज्ञा पुं० दे० “दृष्टिपात” ।
 दृष्टिपथ—संज्ञा पुं० [सं०] दृष्टि का कैलाव । नजर की पहुँच ।
 मुहा०—दृष्टिपथ में धाना—दिखाई पड़ना ।
 दृष्टिपात—संज्ञा पुं० [सं०] दृष्टि झुकने की क्रिया या भाव । ताकने या देखने की क्रिया । धवझोकन ।
 कि० प्र०—करना ।—होना ।
 दृष्टिपूत—वि० [सं०] (१) जो देखने में शुद्ध हो । जो देखने में शुद्ध जान पड़े । (२) जिसके देखने से आँखें पवित्र हों ।

दृष्टिकल—संज्ञा पुं० [सं०] फलित ज्योतिष में एक राशि में स्थित ग्रह के दूसरी राशि में स्थित ग्रह पर दृष्टि करने से जो फल होता है उसे दृष्टिकल कहते हैं । विशेष—दे० “दृष्टिकलान” ।
 दृष्टियंग—संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह क्रिया जिससे देखनेवालों की दृष्टि में ध्रम हो जाय । दीर्घदर्दी । इन्द्रबाह । माया । जादू । (२) चाखाही । हाथ की सफाई । हस्तलाभ । व०—राधो दृष्टिवंध कविह खेला । सभा मोक चेटक धम मेला ।—जायसी ।
 दृष्टियंजु—संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिष । जुगल ।
 दृष्टिमान्—वि० [सं० इष्टिमत्] [की० दृष्टिमती] जिसे दृष्टि हो । दीर्घबाला । कालिवाला ।
 दृष्टिरोध—संज्ञा पुं० [सं०] (१) दृष्टि की रोक । नजर पहुँचने में रुकावट । (२) धाड़ । श्रोत । व्यवधान ।
 दृष्टिपंत—वि० [सं० दृष्टि + पंत (प्रत्य०)] (१) दृष्टिवाला । (२) शानी । ज्ञानवान् । जानकार व०—ना यह मिजा न बिहारा ऐस रहा भरपूर । दृष्टयंत कहँ निवरें बंध मूरखहिँ दूर ।—जायसी ।
 दृष्टिवाद—संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह सिद्धांत जिसमें दृष्टि या प्रत्यक्ष प्रमाण ही की प्रमाणता हो । (२) जैनियों के चारह श्रंगों में से एक जिनकी रचना गणेशर कोम तीर्थंकरों के उपदेशों को लेकर करते हैं । ये द्वादश्यांग जैन धर्म के मूल ग्रंथ हैं । ग्यारह श्रंग तो मिळते हैं पर यह दृष्टिवाद नहीं मिळता । जैनाचार्य्ये सखलकीर्ति रचित तत्त्वार्थसार-दीपक में इसका जो उल्लेख मिळता है उससे पाया जाता है कि इसमें चंद्र सूर्य्य आदि की गति, प्रायु आदि, प्राणायाम धिक्खिता, मंत्र तंत्र तथा धनक प्रकार के विषय सम्मिलित हैं ।
 दृष्टिविप—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का साँप ।
 दृष्टिस्थान—संज्ञा पुं० [सं०] कुंडली में वह स्थान जिसपर किसी दूसरे स्थान में स्थित ग्रह की दृष्टि पड़ती हो ।
 विशेष—प्रदों की दृष्टि का साधारण नियम यह है कि जिस स्थान में ग्रह हो वससे तीसरे और दसवें स्थानों को वह एक चरय से, नवें और पाँचवें को दो चरयों से, चौथे और आठवें को तीन चरयों से और सातवें को एघे दृष्टि से देखेगा ।
 दीचका—संज्ञा पुं० दे० “दीमक” ।
 दे—संज्ञा स्त्री० [सं० देवी] देवी । क्षियों के बिये एक आदर-सूचक शब्द । व०—यह दृवि सुरदास सदा रहै बानी । नैदंनदन राता राधिका दे रानी ।—सूर ।
 संज्ञा पुं० [सं० देव] योगाती कायलों का एक भेद ।
 देई—संज्ञा स्त्री० [सं० देवी] (१) देवी । व०—देव ।

सबन बन देखियत कुंजन में सुनियत गुंजन अजीन की :-
देवं । (२) स्थियों के लिये एक आदासूचक शब्द ।

देउ-संज्ञा पुं० दे० "देव" ।

देउर-संज्ञा पुं० दे० "देवर" ।

देउरानी-संज्ञा स्त्री० दे० "देरानी" ।

देख-संज्ञा स्त्री० [हिं० देखना] देखने की क्रिया या भाव । अच-
लोकन । जैसे, देख रेख, देख भाख ।

विशेष-इस शब्द का प्रयोग अकेले कम होता है, समस्त
पदों में होता है ।

मुहा०-देख मैं = आँसु के सामने । समझ ।

देखन-संज्ञा स्त्री० [हिं० देखना] (१) देखने की क्रिया या
भाव । (२) देखने का ङग ।

देखनहारा-संज्ञा पुं० [हिं० देखना + हारा (प्रत्य०)] [स्त्री०
देखनहारी] देखनेवाला । व०-सखि, सब कौतुक देखन-
हारे ।-तुलसी ।

देखना-क्रि० स० [सं० दृग्, द्रव्यति, प्रा० देखइ] (१) किसी
वस्तु के अस्तित्व या उसके रूप, रंग आदि का ज्ञान नेत्रों
द्वारा प्राप्त करना । अचलोकन करना ।

संयोग क्रि०-लेना ।

धौ०-देखना भाखना = निरीक्षण करना । जांच करना ।

मुहा०-देखना सुनना = जानकारी प्राप्त करना । जानना बूझना ।
पता लगाना । जैसे, बिना देखे सुने उसके विषय में कोई
क्या कह सकता है ? देखने में = (१) आद्य लक्षणों के अनु-
सार । बाहरी चेष्टाओं से । साधारण व्यवहार में । जैसे, देखने
में तो यह बहुत सीधा है पर बड़ी बड़ी चालें चलता है ।
(२) रूप रंग में । वर्षा, आकृति आदि में । जैसे, यह पेड़
देखने में बड़ा सुंदर है । किसी के देखते = रहते हुए ।
समझ । सामने । उपस्थिति में । मौजूद रहते । जैसे, (१)
वसन्ते देखते तो ऐसा कभी नहीं हो सकता । (२) मेरे देखते
क्या कोई चीज़ खे जा सकता है ? देखते देखते = (१) आँसु
के सामने । (२) तुरंत । फौरन । चरमपट । जैसे, देखते देखते यह
पड़ी बड़ा ले गया । देखते रह जाना = हड़का बड़ा रह जाना ।
चपकना जाना । चकित हो जाना । ऐसी स्थिति में हो जाना जिसमें
कुछ करते धरते न बने । किंकर्तव्यविमूढ़ हो जाना । जैसे, यह
एकबारगी आकर वसे भारते खगा, मैं देखता रह गया । देखना
चाहिये, देखा चाहिये, देखो या देखिए = (क्या होगा)
मायूस नहीं । (आंग की बात) कौन जाने ? कुछ नहीं सकते
(कि ऐसा होगा या नहीं) । जैसे, आने के लिये तो बन्दहोने
कहा है, देखिये, आते हैं-या नहीं । (हम्) देख लेंगे =
उपय करेंगे । प्रतिवार करेंगे । जो कुछ करना होगा करेंगे ।
जैसे, बन्दे जो जी में आवे करने दो, हम देख लेंगे । देखा
जायगा = (१) फिर विचार किया जायगा । (२) पीछे, जो

कुछ करना होगा किया जायगा । जैसे, इस समय तो इन्हें
टाको, फिर देखा जायगा । देखो = (१) ध्यान दो । विचारो ।
सोचो । जैसे, देखो, इसी रूप के लिये लोग कितना कष्ट
उठाते हैं । (२) सावधान रहो । खयाल रखो । खबरदार ।
जैसे, देखो फिर कभी ऐसा न कला । (३) (पुकारते का
शब्द) सुनो । इधर आओ ।

(२) जांच करना । दृश या स्थिति जानने के लिये निरीक्षण
करना । मुआयना करना । जैसे, कब-इंस्पेक्टर साहब स्कूल
देखने आयेंगे । (३) हँडना । खोजना । तलाश करना । पता
खगाना । जैसे, तुम अपने संसूफ में तो देखो, शायद वही
में हो । (४) परीचा करना । भाजमाना । अनुभव करना ।
परखना । जैसे, (क) इस औषध का गुण देख लें, तो
कहें । (ख) सबको देख लिया है, इस समय किसी ने मेरा
साथ न दिया । (५) किसी वस्तु पर ध्यान रखना जिसमें
यह बिगड़ने या इधर उधर न होने पावे । निगरानी रखना ।
ताकते रहना । जैसे, मेरा सामान भी-देखते रहना, मैं योड़ा
पानी पीआऊँ । (६) समझना । सोचना । विचारना । जैसे,
भलाई धुराई देख कर काम करना चाहिये । (७) अनुभव
करना । भोगना । जैसे, (क) वसन्ते अपने जीवन में बहुत
दुःख देखा । (ख) इन्होंने अच्छे दिन देखे हैं । व०-एक
यहाँ दुःख देखत बेशय होत वहाँ सुरलोक विदारी ।-केशव ।
(ग) पढ़ना । बाँचना । जैसे, बन्दहोने बहुत ग्रंथ देखे हैं ।
(६) धृष्टि आदि जानने या दूर करने के लिये अवलोकन
करना । परीक्षा करना । जाँचना । गुण दोष का पता
लगाना । कैसे, (क) देखो तो इस श्रृंगरी का सोना
कैसा है । (ख) मेरे इस खेल को देख जायो । (१०)
ठीक करना । संशोधित करना । शोधना । जैसे, मूफ़ देखना ।
संयोग क्रि०-देना ।-जेना ।

देखनि-संज्ञा स्त्री० दे० "देखन" ।

देखनाल-संज्ञा स्त्री० [हिं० देखना + भालना] (१) जांच पड़-
ताल । निरीक्षण । निगरानी । (२) दर्शन । देखा देखी ।
साक्षात्कार ।

देखरानी १-क्रि० स० दे० "दिखलाना" ।

देखरायना १-क्रि० स० दे० "दिखलाना" ।

देख रेख-संज्ञा स्त्री० [हिं० देखना + सं० भ्रमण] देख भाख । निरी-
क्षण । निगरानी । जैसे, वनकी देख रेख में यह काम हो
रहा है ।

क्रि० प्र०-रखना ।

देखाऊ-वि० [हिं० देखना] (१) जो केवल देखने के लिये हो ।
जो केवल उरर से देखने में भड़कीला या सुंदर हो, काम
का न हो । झूठी तपक भड़कवाला । जैसे, देखाऊ चीज़ें ।

देखाक सामान । (२) जो ऊपर से दिखाने के लिये हो यात-
विक न हो । बनावटी । जैसे, देखाक प्रेम ।

देखा देखी-संज्ञा स्त्री० [हि० देखना] भाषिों से देखने की दशा
या भाव । दुराग । साधारण ।

कि० प्र०—करना ।—होना ।

कि० वि० दूसरों को करते देखकर । जो दूसरे करें उसके
अनुसार । दूसरों के अनुकरण पर । जैसे, (क) देखा देखी
पाप, देखा देखी पुण्य । (ख) उसकी देखा देखी तुम भी
ऐसा करने लगो ।

विशेष—यह वास्तव में संज्ञा शब्द है जिसके आगे 'से'
विभक्ति श्रुत है अतः किंग ज्यों का हों रहता है ।

देखाना * १-कि० सं० दे० "दिखाना" ।

देखामाली-संज्ञा स्त्री० दे० "देखमाकर" ।

देखाव-संज्ञा पुं० [हि० देखना] (१) दृष्टि की सीमा । नजर की
पहुँच ।

मुद्दा—देखाव में = नजर के सामने । समझ ।

(२) रूप रंग दिखाने की क्रिया या भाव । बनाव । (३)
ठाट बाट । तड़क भड़क ।

देखावट-संज्ञा स्त्री० [हि० दिखाना] (१) रूप रंग दिखाने की
क्रिया या भाव । बनाव । (२) ठाट बाट । तड़क भड़क ।

देखाचना-कि० सं० दे० "दिखाना" ।

देखाघा-वि० दे० "देखाऊ" ।

देग-संज्ञा पुं० [फा०] चीढ़े मुद्दे और चीढ़े पेटे का बड़ा बरतन
जिसमें खाना पकाया जाता है । तौलिया ।

संज्ञा पुं० [दे०] एक प्रकार का यात्र घड़ी ।

देगचा-संज्ञा पुं० [फा०] [स्त्री० अल्प० देगची] छोटा देग ।

देगची-संज्ञा स्त्री० [फा० देगचा] छोटा देगचा ।

देवीप्यमान-वि० [सं०] अत्यंत प्रकाशयुक्त । चमकता हुआ ।
दमकता हुआ ।

देन-संज्ञा स्त्री० [हि० देना] (१) देने की क्रिया या भाव ।
दान । (२) दी हुई चीज़ । प्रदत्त वस्तु । जैसे, यह तो
हरबर की देन है ।

देनदार-संज्ञा पुं० [हि० देना + फा० दार] श्रेणी । कर्मदार ।

देनदारी-संज्ञा स्त्री० [हि० देन + फा० दारी] श्रेणी होने की
व्यवस्था ।

देन लेन-संज्ञा पुं० [हि० देना + लेना] व्याज पर रुपया उधार
देने का व्यवहार । महाजनी का व्यवसाय ।

देनहार-वि० दे० "देनहारा" ।

देनहारी-वि० [हि० देना + हारा (अल्प०)] देनेवाला ।

देना-कि० सं० [सं० दान] (१) किसी वस्तु पर से अपना स्वत्व
हटाकर उतपर दूसरे का स्वत्व स्थापित करना । दूसरे के
प्रधिकार में करना । प्रदान करना । जैसे, (क) उसने अपना

मकान एक महाशय्य को दे दिया । (ख) जो दे वसका भला,
जो न दे वसका भला ।

संयोग कि०—हाजना ।—देना ।

(२) अपने पास से अलग करके दूसरे के पास करना ।
सौंपना । हवाजे करना । जैसे, इसे हमें दे दो हम खले रहें।
जब काम पूरे हो लेना । (३) हाथ पर या पास रखना ।
धरना । जैसे, (क) छड़ी उसे दे दो और छाता तुम ले लो,
तब चलो । (ख) जरा यह विट्टी उन्हें तो दे दो, वे पढ़कर
देख लें । (४) रखना, लगाना या हाजना । स्थापित, प्रयुक्त
या मिश्रित करना । जैसे, (क) सिर पर टोपी देना । (ख)
छाता देना । (ग) जोड़ में पड़ देना । (घ) तरकारी में चीनी
देना । (ङ) यहाँ से वहाँ तक सफ़ीर देना । ४०—बंक
बिकारी देव ज्यों दाम खीया होता ।—बिहारी । (५) मारना ।
प्रहार करना । जैसे, धपड़ देना, चाँटा देना, पेट में
कटारी देना ।

मुद्दा—दे मारना = पटक देना । पकड़ कर जमीन पर गिरा
देना (किसी व्यक्ति को) ।

(६) अनुभव कराना । भोगाना । जैसे, कष्ट देना, दुःख
देना, सुख देना, आराम देना । (७) शपथ करना । निका-
खना । जैसे, (क) यह माघ कितना दूध देती है ? (ख)
इस यकरी ने दो वषे दिए हैं । (८) धँस करना । भिड़ाना ।
जैसे, किबाड़ देना, बोतल में षाट देना ।

विशेष—इस क्रिया का प्रयोग प्रायः सब सर्वमक क्रियाओं
के साथ संयोग कि० के रूप में होता है जैसे, कर देना,
मार देना, गिरा देना, दे देना, बना देना, थिगाड़ देना,
निकाख देना इत्यादि । बहुत सी क्रियाओं में तो इसे खगाने
से यह भाव निकलता है कि वे क्रियाएँ दूसरे के लिये हैं
जैसे, (१) मेरा या उनका यह काम कर दो । (२) मेरी
घड़ी बना दो । (क) जो क्रियाएँ केवल कर्ता ही के लिये
होती हैं दूसरे के लिये नहीं उनके साथ 'लेना' का प्रयोग
होता है, जैसे, खा लेना, पी लेना । एक ही क्रिया केवल
कर्ता के लिये भी हो सकती है और दूसरे के लिये भी ।
जैसे, (१) अपना काम कर लो, मेरा काम कर दो । (२)
अपनी घड़ी बना लो, मेरी घड़ी बना दो । सं० कि० के
अतिरिक्त कुछ सं० कि० के साथ भी संयोग कि० के रूप में
"देना" का प्रयोग होता है, जैसे, चन्न देना, रो देना, हँस
देना, इत्यादि ।

संज्ञा पुं० श्रेण्य जिसे चुकाना हो । कर्ज । उधार किया हुआ
रुपया । जैसे, तुम अपना सप देना चुकता कर दो ।

देमान-संज्ञा पुं० [फा० दीवान] मंत्री । बमाल्य ।

देय-वि० [सं०] देने योग्य । दान योग्य । दातव्य ।

देर-संज्ञा स्त्री० [फा०] (१) अतिहाज । विरल्य । नियमित, उचित

या आवश्यक से अधिक समय । जैसे; (क) देर हो रही है, चलो । (ख) इस काम में देर मत करो ।

क्रि० प्र०—हरना—जानना ।—देना ।

(२) समय । वक्त । जैसे, तुम कितनी देर में आयोगे ।

विशेष—इस अर्थ में इस शब्द का प्रयोग तभी होता है जब उसके पहले कोई परिभाषावाचक विशेषण होता है, जैसे, कितनी देर, बहुत देर ।

देरा—संज्ञा पुं० दे० "देरा" ।

देरी—संज्ञा स्त्री० दे० "देर" ।

देवैक—संज्ञा स्त्री० दे० "दीमक" ।

देव—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० देवी] (१) स्वर्ग में रहने या श्रीपूजा करनेवाला धर्म प्राणी । विष्व-शरीर-धारी । देवता । सुर । (२) पृथ्वी भूत । (३) तेजोमय भूत । (४) मादर्यों की एक वर्ण । (५) बड़ों के लिये एक आदर-वचक शब्द या संबोधन । (६) राजा के लिये आदरवचक शब्द या संबोधन । (७) मेघ । बादल । (८) पाता । (९) देवदार । (१०) देव । (११) ज्ञानेंद्रिय । (१२) शक्ति ।

संज्ञा पुं० [का०] दैत्य । राक्षस । दानव ।

देवकीश्री-वि० [सं० देव + शीर] जो देवता के शरीर से उत्पन्न हो । जो किसी देवता का अवतार हो ।

देवकीश्री-संज्ञा पुं० [सं०] देवताओं के लिये कर्त्तव्य । पञ्चादि ।

देवकीश्री-संज्ञा पुं० [सं०] देवताओं के लोक में रहनेवाले नारद आदि ऋषि ।

विशेष—नारद, ऋषि, मरीचि, भरद्वाज, पुलस्त्य, उबह, क्रतु, श्रुत इत्यादि ऋषि देवर्षि माने जाते हैं ।

देवक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) देवता । (२) एक यदुवंशी राजा जो देवकी के पिता अर्थात् श्रीकृष्णचंद्र के नाग थे । इन्हें चार पुत्र और सात कन्याएँ थीं । सातों कन्याओं का विवाह इन्होंने यमुदेव के साथ कर दिया था । वरसेन इनके यदु भाई थे । (३) दुग्धिरि के एक पुत्र का नाम ।

देवकन्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] देवता की पुत्री । देवी ।

देवकपास—संज्ञा स्त्री० [दे०] नरमा । मनवा । रामकपास ।

देवकर्म—संज्ञा पुं० [सं०] एक सुगंध द्रव्य जो चंद्रन, अमर, कपूर और केसर को एक में मिलाने से बनता है ।

देवकर्म—संज्ञा पुं० [सं०] देवताओं को प्रसन्न करने के लिये किया हुआ कर्म, जैसे, यज्ञ, यज्ञिबैरवदेव इत्यादि ।

देवकीहर—संज्ञा स्त्री० [सं० देव + कर्] एक बहुत छोटा पीया जिसकी पत्तियों और रंजनों में राई की सी माला होती है । यह ऊँचे करारोवाली बड़ी नदियों के किनारे होता है । गंगा के तट पर बहुत मिलता है । इसकी पत्तियाँ कटावदार और फाँकों में विभक्त होती हैं । यह पीथा हमरी हुई

गिळठी यैठाने की अच्छी दवा है । अचार भी इसका पत्रता है । इसे बटपुरिया भी कहते हैं ।

देवकाय्य—संज्ञा पुं० [सं०] देवताओं को प्रसन्न करने के लिये किया हुआ कर्म । होम, पूजा आदि ।

देवकाष्ठ—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का देवदार ।

देवकीरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक रागिणी जो मेघराग की भाव्या मानी जाती है । लखिता मावती गौरी राट देवकीरी तथा ।

मेघरागस्य रागिण्यो भवन्तीनाः सुमध्यमाः । (संगीत दामोदर)

देवकी—संज्ञा स्त्री० [सं०] यमुदेव की स्त्री और श्रीकृष्ण की माता ।

विशेष—जब यमुदेव के साथ इनका विवाह हुआ तब नारद ने आकर मयुरा के राजा कंस से कहा कि मयुरा में तुम्हारी जो पत्थरी यहिन देवकी है उसके चाटवें गर्भ से एक ऐसा बालक उत्पन्न होगा जो तुम्हारा वध करेगा । कंस ने एक एक करके देवकी के छू दणों को मरवा डाला । जब सातवाँ शिशु गर्भ में आया तब योगमाया ने अपनी शक्ति से उस शिशु को देवकी के गर्भ से आकर्षित करके रोहिणी के गर्भ में कर दिया । चाटवें गर्भ के समय देवकी पर कड़ा पहरा बँधाया गया । चाटवें महीने में भादों बड़ी अष्टमी की रात को देवकी के गर्भ से श्रीकृष्ण का जन्म हुआ । वही रात को पशुदा को एक कन्या उत्पन्न हुई । यमुदेव रातोरात देवकी के शिशु श्रीकृष्ण को यरोदा के दे आए और यरोदा की कन्या को बाकर उठेही देवकी के पास सुजा दिया । कंस ने उस कन्या को परपर पर पटक । कहते हैं कन्या जो योगमाया थी उसके हाथ से छूट कर आकाशमार्ग से उड़ कर विष्व पर्वत पर आई । इधर कृष्ण यरोदा के यहाँ बड़े हुए । दे० "कृष्ण" ।

देवकीनन्दन—संज्ञा पुं० [सं०] श्रीकृष्ण ।

देवकीपुत्र—संज्ञा पुं० [सं०] श्रीकृष्ण ।

विशेष—छांदोग्य उपनिषद् में भी चार आंगिरस ऋषि के शिष्य देवकी-पुत्र श्रीकृष्ण का उल्लेख है ।

देवकीमातु—संज्ञा पुं० [सं०] श्रीकृष्ण (जिनकी माता देवकी हैं) ।

देवकीय—वि० [सं०] देवता संबंधी । देवता का ।

देवकुंड—संज्ञा पुं० [सं०] (१) प्राकृतिक जलाशय । आपसे आप बना हुआ पानी का गड्ढा या ताल । (२) वह जलाशय जो किसी देवता के निकट था नाम पर होने के कारण पवित्र माना जाता है ।

देवकुंड—संज्ञा पुं० [सं०] बड़ा गुमा । गोमा ।

देवकुल—संज्ञा पुं० [सं०] जेधुद्वीप के १ रंजों में से एक खंड जो सुमेरु और निषध के बीच माना गया है । (जैन-हरिवंश) ।

देवकुल—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का देवमंदिर जिसका द्वार आर्यत छोटा हो ।

देवकुल्या-संज्ञा पुं० [सं०] (१) गंगा नदी । (२) मरीचि और पृथ्विमा की कन्या ।

देवकुसुम-संज्ञा पुं० [सं०] लवंग । लौंग ।

देवकूट-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कुमेर के आठ पुत्रों में से एक जो शिवपूजन के लिये सूँघकर कमल ले गया था जिसके कारण वह कंस का भाई हुआ और श्रीकृष्णचंद्र के द्वारा मारा गया । (२) एक पवित्र आश्रम जो वसिष्ठ के आश्रम के निकट था । (महाभारत)

देवकेसर-संज्ञा पुं० [सं०] सुरसुखांग । एक प्रकार का पुष्प ।

देवस्नात-संज्ञा पुं० [सं०] अकृत्रिम अज्ञाप्राय । ऐसा ताज या गहना जो आपसे आप बन गया हो ।

विश्वोप-मनु ने लिखा है कि मीन, देवस्नात, तड़ाग, सरोवर, गर्भ और प्रथवण में नित्य स्नान करना चाहिए ।

देवगंगा-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक छोटी नदी का नाम जो आसाम में है । इसे वर्षा दिवंग कहते हैं ।

देवगंधा-संज्ञा स्त्री० [सं०] महामेधा ।

देवगङ्गी-संज्ञा स्त्री० [देग०] एक प्रकार की ईंख ।

देवगण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) देवताओं का वर्ग । देवताओं का शाला भलगा समूह ।

विशेष-वैदिक देवताओं के गण हैं-८ षण्णु, ११ रुद्र, १२ आदित्य । इतमें इंद्र और प्रजापति मित्रा देने से ३३ देवता होते हैं (रातपथ ब्राह्मण) । पीछे से इन गणों के अतिरिक्त वे गण और माने गए-३० तुषित, १० धिरवेदेवा, १२ साधु, ६४ धामास्वर, ४६ मल्ल, २२० महाराजिक ।

(२) क्वचित् ज्योतिष में नक्षत्रों का एक समूह जिसके अंतर्गत अश्विनी, रेवती, पुष्य, स्वाती, हस्त, पुनर्वसु, अशुलाभा, श्रुगशिरा और ध्रुवण हैं । (३) किसी देवता का अनुचर ।

देवगति-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मरने के उपरांत उत्तम गति । स्वर्ग-लाम । ४०-श्री शुभनाथ धनुष कर कीर्त्तना वागत थाय देवगति पाई-।-सूक्त । (२) मरने पर देवयोनि की प्राप्ति ।

देवगर्भ-संज्ञा पुं० दे० "देवगण" ।

देवगर्भ-संज्ञा पुं० [सं०] वह मनुष्य जो देवता के/वीर्य्य से उत्पन्न हो, जैसे, कर्ण, जो सूर्य्य से उत्पन्न हुए थे ।

देवगांधार-संज्ञा पुं० [सं०] एक राग का नाम जो भैरव राग का पुत्र माना जाता है । यह संपूर्ण जाति का राग है और इसमें अश्रम और पंचत कोमल लगते हैं । इसका स्वर-प्राम इस प्रकार है-रा म प ध नि स रे ।

देवगांधारी-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक रागिनी जो श्रीराग की माया मानी जाती है । यह शिशिर ऋतु में तीसरे पहर से लेकर आधी रात तक गाई जाती है ।

देवगायक-संज्ञा पुं० [सं०] गंधर्व ।

देवगायन-संज्ञा पुं० [सं०] गंधर्व ।

देवगिरि-संज्ञा स्त्री० [सं०] देववाणी, संस्कृत ।

देवगिरि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वैतक पर्वत जो गुजरात में है । गिरनार । (२) दक्षिण का एक प्राचीन नगर जो आज कल दौलताबाद कहलाता है और निजाम राज्य के अंतर्गत है । यह यादव राजाओं की बहुत दिनों तक राजधानी रहा । प्रसिद्ध कब्रजुरि घंघ का जब अश्र-पतन हुआ तब इसके पास पास का सारा प्रदेश द्वारसमुद्र के यादव राजाओं के हाथ आया । कई शिखालेलों में जो इन यादव राजाओं की वंशवली मिली है वह इस प्रकार है-

सिंघन (१ का)

मरलूगि

भिल्लम (शक ११०६-१११३)

जैगुगि (१ का) वा जैप्रवाल, जैप्रसिंह (शक १११३-११३१)

सिंघन (२ रा) वा त्रिभुवनमल्ल (शक ११३१-११६६)

जैगुगि (२ रा) वा चैत्रपाल

कृष्ण वा कन्दार (शक ११६६-११८२) महादेव (११८२-११९३)

रामचंद्र वा रामदेव (११९३-१२११)

द्वितीय सिंघन के समय में ही देवगिरि यादवों की राजधानी प्रसिद्ध हुआ । महादेव की सभा में वेपदेव और हेमाद्रि ऐसे प्रसिद्ध पंडित थे । कृष्ण के पुत्र रामचंद्र रामदेव बड़े मतापी हुए । उन्होंने अपने राज्य का विस्तार लूट पट्टाया । शक १२१६ में अलाउद्दीन ने देवगिरि पर अकस्मात् चढ़ाई कर दी । राजा जहाँ तक लड़ते बना वहाँ तक खड़े पर अंत में हुरंग के भीतर सामग्री घट जाने से उन्होंने आत्म-समर्पण किया । शक १२२८ में रामचंद्र ने कर देना अस्वीकार किया । उस समय दिल्ली के सिंहासन पर अलाउद्दीन बैठ चुका था । उसने एक लाख सवारों के साथ मलिक काफूर को दक्षिण भेजा । राजा हार गए और दिल्ली भेजे गए । अलाउद्दीन ने सम्मानपूर्वक कर्ण फिर देवगिरि भेज दिया । इधर मलिक काफूर दक्षिण के और राग्यों में लूट-पाट करने लगा । कुछ दिन बीतने पर राजा रामचंद्र का जामाता हरिपाल मुसलमानों को दक्षिण से भगा कर देवगिरि के सिंहासन पर बैठा । छ वर्ष तक उसने पूर्ण प्रताप के साथ राज्य किया अंत में शक १३४० में दिल्ली के बादशाह ने उसपर चढ़ाई की और कपटयुक्ति से उसके परास्त करके

या आवश्यक से अधिक समय। जैसे, (क) देर हो रही है, चले। (ख) इस काम में देर मत करो।

क्रि० प्र०—हरना।—जलाना।—देना।

(२) समय। वक्त। जैसे, तुम कितनी देर में आओगे।

विशेष—इस अर्थ में इस शब्द का प्रयोग तभी होता है जब इसके पहले कोई परिभाषावाचक विशेषण होता है, जैसे, कितनी देर, बहुत देर।

देराई—संज्ञा पुं० दे० “देरा”।

देरी—संज्ञा स्त्री० दे० “देर”।

देवैक—संज्ञा स्त्री० दे० “वीमक”।

देव—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० देवी] (१) स्वर्ग में रहने या मूर्तिका करनेवाला अमर प्राणी। दिव्य-शरीर-धारी। देवता। सुर। (२) पूज्य व्यक्ति। (३) सेजोमय व्यक्ति। (४) माण्डव्यों की एक वृषाधि। (५) बड़ों के लिये एक आदर्श-सूचक शब्द या संबोधन। (६) राजा के लिये आदर्शसूचक शब्द या संबोधन। (७) मेघ। बादल। (८) पार। (९) देवदार। (१०) देवर। (११) क्षान्द्रिय। (१२) ऋषिक।

संज्ञा पुं० [फा०] दैत्य। राक्षस। दानव।

देवघंशो-वि० [सं० देव + ंशो] जो देवता के शिर से शयन हो। जो किसी देवता का धवतरा हो।

देवग्रन्थ—संज्ञा पुं० [सं०] देवताओं के लिये कर्तव्य। यज्ञादि।

देवग्रन्थि—संज्ञा पुं० [सं०] देवताओं के लोक में रहनेवाले नारद आदि ऋषि।

विशेष—नारद, अत्रि, मरीचि, भद्राज, पुलस्त्य, सुबह, ऋतु, भृगु इत्यादि ऋषि देवर्षि माने जाते हैं।

देवक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) देवता। (२) एक यदुवंशी राजा जो देवकी के पिता भरतर्षि श्रीकृष्णचंद्र के नाना थे। इन्हें चार और सात कन्याएँ थीं। सातों कन्याओं का विवाह इन्होंने वसुदेव के साथ कर दिया था। इमसने इनके बड़े भाई थे। (३) सुषिष्टिर के एक पुत्र का नाम।

देवकन्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] देवता की पुत्री। देवी।

देवकपास—संज्ञा स्त्री० [देव०] नरमा। मनवा। रामकपास।

देवकहंम—संज्ञा पुं० [सं०] एक सुगंध द्रव्य जो चंद्र, अमर, कपूर और केसर को एक में मिलाने से बनता है।

देवकर्म—संज्ञा पुं० [सं०] देवताओं को प्रसन्न करने के लिये किया हुआ कर्म, जैसे, यज्ञ, बलिबैरयदेव इत्यादि।

देवकलहर—संज्ञा स्त्री० [सं० देव + कलं] एक बहुत छोटा पीथा जिसकी पत्तियों और छंदलों में सई की सी माख होती है। यह ऊँचे करारोवाली यड़ी नदियों के किनारे होता है। गंगा के तट पर बहुत मिलता है। इसकी पत्तियाँ कटावदार और फाँकों में विभक्त होती हैं। यह पीथा उमरी हुई

गिळटी बँडाने की अच्छी दवा है। अचार भी इसका पड़ता है। इसे कटपुरिया भी कहते हैं।

देवकाय्य—संज्ञा पुं० [सं०] देवताओं को प्रसन्न करने के लिये किया हुआ कर्म। होम, पूजा आदि।

देवकाष्ठ—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का देवदार।

देवकिरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक रागिणी जो नेवराग की भाव्या मानी जाती है। लखिता माखती गौरी नाट देवकिरी तथा।

मेघरास्य रागिण्या भवन्तीमाः सुमध्यमाः। (संगीत दामोदर)

देवकी—संज्ञा स्त्री० [सं०] वसुदेव की की और श्रीकृष्ण की माता।

विशेष—जब वसुदेव के साथ इनका विवाह हुआ तब नारद ने आकर मथुरा के राजा कंस से कहा कि मथुरा में तुम्हारी जो चचेरी बहिन देवकी है इसके आठवें गर्भ से एक ऐसा पात्रक उत्पन्न होगा जो तुम्हारा वध करेगा। कंस ने एक एक करके देवकी के छू बच्चों को मरवा डाला। जब सातवाँ शिशु गर्भ में आया तब योगमाया ने अपनी शक्ति से उस शिशु को देवकी के गर्भ से आकर्मित करके रोहिणी के गर्भ में कर दिया। आठवें गर्भ के समय देवकी पर कड़ा पहरा बँडया गया। आठवें महीने में मादो मरी अष्टमी की रात को देवकी के गर्भ से श्रीकृष्ण का जन्म हुआ। इसी रात को यरोदा को एक कन्या उत्पन्न हुई। वसुदेव रातेरात देवकी के शिशु श्रीकृष्ण को यरोदा को दे आए और यरोदा की कन्या को लाकर उन्होंने देवकी के पास सुखा दिया। कंस ने उस कन्या को पथर पर पटकवा। कहते हैं कन्या जो योगमाया थी इसके हाथ से छूट करे आकारामार्ग से बड़ करे दिव्य पवैत पर आई। इपर कृष्ण यरोदा के बर्हि बड़े हुए। दे० “कृष्ण”।

देवकीनन्दन—संज्ञा पुं० [सं०] श्रीकृष्ण।

देवकीपुत्र—संज्ञा पुं० [सं०] श्रीकृष्ण।

विशेष—ज्ञातोम्य उपनिषद् में भी घोर आंगिरस ऋषि के शिष्य देवकी-पुत्र श्रीकृष्ण का बख़्तव है।

देवकीमाता—संज्ञा पुं० [सं०] श्रीकृष्ण (जिनकी माता देवकी है)।

देवकीय—वि० [सं०] देवता संबंधी। देवता का।

देवकुंड—संज्ञा पुं० [सं०] (१) प्राकृतिक जलशय। थापसे थाप बना हुआ पानी का गड्ढा या ताल। (२) वह जलाशय जो किसी देवता के निकट या नाम पर होने के कारण पवित्र माना जाता है।

देवकुंड—संज्ञा पुं० [सं०] यज्ञ गुहा। गोमा।

देवकुल—संज्ञा पुं० [सं०] जूद्वीप के ६ खंडों में से एक खंड जो सुमेरु और तिपच के बीच माना गया है। (जैन-हरिवंश)।

देवकुल—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का देवमंदिर जिसका द्वार आर्यत छोटा है।

देवकुल्या—संज्ञा पुं० [सं०] (१) गंगा नदी । (२) मरीचि और पूषिमा की कन्या ।

देवकुलुम—संज्ञा पुं० [सं०] जवंग । हींग ।

देवकूट—संज्ञा पुं० [सं०] (१) कुबेर के षाड पुत्रों में से एक जो शिवपूजन के लिये सूंचकर कमल ले गया था जिसके कारण वह कंस का भाई हुआ और श्रीकृष्णचंद्र के द्वारा मारा गया । (२) एक पवित्र आश्रम जो वसिष्ठ के आश्रम के निकट था । (महानारत)

देवकेसर—संज्ञा पुं० [सं०] सुरपुत्राग । एक प्रकार का पुत्राग ।

देवखात—संज्ञा पुं० [सं०] थकुरिम जलाशय । ऐसा ताल या गडडा जो आपसे आप बन गया हो ।

विशेष—मनु ने लिखा है कि नदी, देवखात, लदाग, सरोवर, गर्भ और प्रसवण में निय स्नान करना चाहिए ।

देवगंगा—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक छोटी नदी का नाम जो थासात में है । इसे वहाँ दिव्य कहते हैं ।

देवगंधा—संज्ञा स्त्री० [सं०] महामेदा ।

देवगद्दी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की हूल ।

देवगाय—संज्ञा पुं० [सं०] (१) देवताओं का वर्ग । देवताओं का धरम धरम समूह ।

विशेष—बैदिक देवताओं के गण हैं—८ वसु, ११ रुद्र, १२ आदित्य । इनमें इंद्र और प्रजापति मिला देने से ३३ देवता होते हैं (शतपथ ब्राह्मण) । पीढ़े से इन गणों के अतिरिक्त ये गण और माने गए—३० तुषित, १० विरवेदेवा, १२ ताप्य, ६४ आभास्वर, ४३ मरु, २२० महाराजिक ।

(२) फलित ज्योतिष में नक्षत्रों का एक समूह जिसके अंतर्गत अश्विनी, रेवती, पुष्य, स्वाती, हस्त, पुनर्वसु, अशुलाभा, मृगशिरा और ध्रुव हैं । (३) किसी देवता का अलुचर ।

देवगति—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मरने के उपरांत उत्तम गति । स्वर्ग-लभ । ३०—श्री शुकनाथ धनुष कर जिनो जागत वाय देवगति पाई—सूर्य । (२) मरने पर देवयोगि की प्राप्ति ।

देवगाना—संज्ञा पुं० दे० "देवगाय" ।

देवगर्भ—संज्ञा पुं० [सं०] वह मनुष्य जो देवता के वीर्य से उत्पन्न हो, जैसे, कर्ण, जो सूर्य से उत्पन्न हुए थे ।

देवगांधार—संज्ञा पुं० [सं०] एक राग का नाम जो भैरव राग का पुत्र माना जाता है । यह संपूर्ण जाति का राग है और इसमें अंधप और धैरव कोमल लगते हैं । इसका स्वर-ग्राम इस प्रकार है—ग म प ध नि स रे ।

देवगांधारी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक रागिनी जो श्रीराग की मायां मानी जाती है । यह शिशिर ऋतु में तीसरे पहर से लेकर आधी रात तक गाई जाती है ।

देवगायक—संज्ञा पुं० [सं०] गंधर्प ।

देवगायन—संज्ञा पुं० [सं०] गंधर्व ।

देवगिरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] देवनाथी, संस्कृत ।

देवगिरि—संज्ञा पुं० [सं०] (१) रैवतक पर्वत जो गुजरात में है । गिरमार । (२) दक्षिण का एक प्राचीन नगर जो आज कल दौलताबाद कहलाता है और निजाम राज्य के अंतर्गत है । यह यादव राजाओं की बहुत दिनों तक राजधानी रहा । प्रसिद्ध कछुचुरि घंटा का जय अघ-पतन हुआ तब इसके आस पास का सारा प्रदेश द्वारसमुद्र के यादव राजाओं के हाथ आया । कई शिखारेलों में जो इन यादव राजाओं की घोरावली मिली है वह इस प्रकार है—

सिंघन (१ का)

↓
मल्लुगि

↓
मिहम (शक ११०२—१११३)

↓
जैगुगि (१ का) या जैत्रपाल, जैत्रसिंह (शक १११३—११३१)

↓
सिंघन (२रा) या मिशुवनमल्ल (शक ११३१—११६६)

↓
जैगुगि (२रा) या चैत्रपाल

↓
कृष्ण वा कन्हार (शक ११६६—११८२) महादेव (११८२—११६३)

रामचंद्र वा रामदेव (११६३—१२११)

द्वितीय सिंघन के समय में ही देवगिरि यादवों की रामधानी प्रसिद्ध हुआ । महादेव की समा में वैपदेव और हेमाद्रि ऐसे प्रसिद्ध पंडित थे । कृष्ण के पुत्र रामचंद्र रामदेव बड़े प्रतापी हुए । उन्होंने अपने राज्य का विस्तार खूब बढ़ाया । शक १२१६ में अलाउद्दीन ने देवगिरि पर आक्रमण चढ़ाई कर दी । राजा जहाँ तक लड़ते बना वहाँ तक बड़े पर अंत में हुगों के भीतर सामग्री घट जाने से उन्होंने आत्म-समर्पण किया । शक १२२८ में रामचंद्र ने कर देना अस्वीकार किया । उस समय दिल्ली के सिंहासन पर अलाउद्दीन बैठ चुका था । उसने एक लाख सवारों के साथ मलिक काफूर को दक्षिण भेजा । राजा द्वार गए और दिल्ली भेजे गए । अलाउद्दीन ने सम्मानपूर्वक बंधे फिर देवगिरि भेज दिया । द्वार मलिक काफूर दक्षिण के और राज्यों में लूट-पाट करने लगा । कुछ दिन बीतने पर राजा रामचंद्र का नामाता हरिपाल सुखमार्गे को दक्षिण से भाग कर देवगिरि के सिंहासन पर बैठा । छ वर्ष तक उसने पूर्ण प्रताप के साथ राज्य किया अंत में शक १२४० में दिल्ली के बादशाह ने बसपर चढ़ाई की और कपटयुक्ति से उसको परास्त करके

मार बाबा। इस प्रकार यादवराज्य की समाप्ति हुई। शुद्ध-
भक्त योगलक्ष पर जब अपनी राजधानी दिल्ली से देवगिरि
छे जाने की सनक चढ़ी थी तब उसने देवगिरि का नाम
दौलताबाद रखा था।

देवगिरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक रागिनी जो सोमेस्वर के मत से
षष्ठ राग की, भरत के मत से हिंदोल राग के पुत्र नाग-
ध्वनि की, संगीतदर्पण के मत से नटकल्याण की और
हनुमत के मत से मालकोय राग की भार्या मानी जाती
है। यह हेमंत ऋतु में दिन के पीछे पहर से लेकर राधे
रात तक गाई जाती है। किसी के मत से यह रागिनी संकर
है और शुद्ध पूर्वी और सारंग के मेल से, और किसी के मत
से सरस्वती, मालधी और गांधारी के मेल से बनी है।
यह संपूर्ण जाति की रागिनी है और इसमें सच शुद्ध
स्वर लगते हैं।

देवगुरु—संज्ञा पुं० [सं०] (१) देवताओं के गुरु। गृहस्वति।

(२) देवताओं के गुरु अर्थात् पिता। करपण।

देवगुह्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] सरस्वती।

देवगृह—संज्ञा पुं० [सं०] देवताओं का घर। देवालय।

देवघन—संज्ञा पुं० [सं०] एक पेड़ जो घगीचों में लगाया जाता है।

देवचक्र—संज्ञा पुं० [सं०] गवामयन यज्ञ के एक अग्निष्ठव का
नाम।

देवचाळी—संज्ञा पुं० [सं०] इंदुताज के छ भेदों में से एक।
(संगीतदामोदर)

देवचिकित्सक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) अरिबनीकुमार। (२) दो
की संख्या।

देवच्छंद—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का द्वार जो किसी के
मत से १०० या १०८ छदियों का और किसी के मत से ८१
छदियों का होता है।

देवज-वि० [सं०] देवता से उत्पन्न। देवसंभूत।

संज्ञा पुं० (१) सामभेद। (२) सूर्यवंशीय संसम राजा के
एक पुत्र का नाम।

देवजग्ध—संज्ञा पुं० [सं०] रोहित लृण। रोहित घास।

देवजन—संज्ञा पुं० [सं०] उपवेश। गंधर्व।

देवजनविद्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] गंधर्वविद्या।

देवजुष्ट-वि० [सं०] देवता को चढ़ा हुआ।

देवट—संज्ञा पुं० [सं०] शिल्पी। कारीगर।

देवठान—संज्ञा पुं० [सं० देवोत्थान] (१) विष्णु भगवान का सो
कर बठना। (२) कार्तिकशुक्ल पृष्ठादशी। इस दिन विष्णु
भगवान सो कर उठते हैं, इससे इसका माहात्म्य बहुत माना
जाता है।

देवडोंगरी—संज्ञा पुं० [सं० देव + दे० + गंगरी] देवदात्री जता।
वंदाज।

देवद्वी—संज्ञा स्त्री० दे० "ज्योती"।

देवतह—संज्ञा पुं० [सं०] देवताओं के वृक्ष।

विशेष—स्वर्ग के वृक्ष पांच माने जाते हैं—मंदार, पारिजात,
संतान, कल्पवृक्ष और हरिचंदन।

देवतर्पण—संज्ञा पुं० [सं०] ब्रह्मा, विष्णु आदि देवताओं के नाम
के ले कर पानी देने की क्रिया।

देवता—संज्ञा पुं० [सं०] स्वर्ग में रहनेवाला अमर प्राणी।

विशेष—वेदों में देवता शब्द से कई प्रकार के भाव लिए गए
हैं। साधारणतः वेदमंत्रों के जितने विषय हैं वे देवता
कहलाते हैं। सिल, लोहे, मूसल, शीशवी, नदी, पहाड़
इत्यादि से लेकर घोड़े, मेरुक मनुष्य (नारांग), इंद्र,
वरुण, आदित्य इत्यादि तक वेदमंत्रों के देवता हैं।
काव्यायन ने अतुकमयिका में मंत्र के वाच्य-विषय को
ही इसका देवता कहा है। निरुक्तकार यास्क ने 'देवता'
शब्द को दान, दीपन, और दुःस्थानगत होने से निकाला
है। देवता के संबंध में प्राचीनों के चार मत पाए जाते हैं—
पैतृहासिक, याज्ञिक, नैतिक और आध्यात्मिक।
पैतृहासिकों के मत से प्रत्येक मंत्र भिन्न भिन्न घटनाओं या
पदार्थों को लेकर बना है। याज्ञिक लोग मंत्र ही को
देवता मानते हैं जैसा कि जैमिनि ने मीमांसा में स्पष्ट
किया है। मीमांसा दर्शन के अनुसार देवताओं का स्पष्ट
रूप, विग्रह आदि नहीं, वे मंत्रात्मक हैं। याज्ञिकों ने
देवताओं को दो श्रेणियों में विभक्त किया है—सोमप और
असोमप। अष्टावसु, पृकादश रुद्र, द्वादश आदित्य, प्रजापति
और षण्णकार ये ३३ सोमप देवता कहलाते हैं। पृकादश
प्रजापति, पृकादश अनुप्राजा और पृकादश उपप्राजा ये असोमप
देवता कहलाते हैं। सोमपायी देवता सोम से संतुष्ट हो जाते
हैं और असोमपायी घृण-पशु से मृष्ट होते हैं। नैतिक
लोग स्थान के अनुसार देवता लेते हैं और तीन ही देवता
मानते हैं, अर्थात् पृथिवी का अग्नि, अंतरिक्ष का इंद्र वा धातु
और दुःस्थान (आकाश) का सूर्य। बाकी देवता वा
तो इन्होंने तीनों के अंतर्भूत हैं अथवा होता, अश्वत्थ, मूला,
वज्रता आदि के कर्मभेद के लिये, इन्होंने तीनों के अलग
अलग नाम हैं। अश्वत्थ में कुक्षु ऐसे मंत्र भी हैं जिनमें
भिन्न भिन्न देवताओं को एक ही के अनेक नाम कहा है,
जैसे, "बुद्धिमात्रं लोका इंद्र, मित्र, वरुण और अग्नि कहते
हैं"। इनके एक होने पर भी इन्हें बहुत-बहुत वतलाते हैं"
(आश्वत्थ १। १६४। ४६)। ये ही मंत्र आध्यात्मिक पद
या वेदांत के मूल धीज हैं। उपनिषदों में इन्होंने के अनुसार
एक ब्रह्म की भावना की गई है।

प्रकृति के धीज जो बल्यु प्रकाशमान, ध्यान देने योग्य और
बपकारी देख पड़ें उनकी स्तुति या बर्षण श्रितियों ने मंत्रों

द्वारा किया। जिन देवताओं को प्रसन्न करने के लिये यज्ञ आदि होते थे उनकी कुछ विशेष रीतिथि हुई। उनसे लोग धनधान्य, सुख में जय, शत्रुओं का नाश आदि चाहते थे। क्रमशः 'देवता' शब्द से ऐसी ही अगोचर सत्ताओं का भाव समझा जाने लगा और धीरे धीरे पौराणिक काळ में एहि के अनुसार और भी अनेक देवताओं की कल्पना की गई। श्रव्येद में जिन देवताओं के नाम आए हैं उनमें से कुछ ये हैं—

अग्नि, वायु, इंद्र, मित्र, वरुण, अरिषद्वय, विश्वेदेवा, मरुद्गण, शत्रुगण, महागणस्पति, सोम, त्वष्टा, सूर्य, विष्णु, प्ररिन, यम, पर्जन्य, अर्यमा, पूषा, रुद्रगण, यक्षगण, आदित्यगण, वराना, अित, प्रैतन, आदिवृषभ, अन्न, एकपाद, श्वसुचा, गरुमात्र इत्यादि। कुछ देवियों के नाम भी आए हैं—जैसे सरस्वती, सुन्दरा, इला, इंद्राणी, होत्रा, प्रथिवी, वषा, अग्नी, रोदसी, राका, सिनीवाली इत्यादि।

श्रव्येद में मुख्य देवता ३३ माने गए हैं जो शतपथ ब्राह्मण में इस प्रकार गिनाए गए हैं—८ वसु, ११ रुद्र, १२ आदित्य, तथा इंद्र और प्रजापति। श्रव्येद में एक स्थान पर देवताओं की संख्या ३३३६ कही गई है (३।६।३)। शतपथ ब्राह्मण और सांख्ययान श्रौतपूत्र में भी यह संख्या दी हुई है। इस पर सायण कहते हैं कि देवता ३३ ही हैं, ३३३६ नाम महिमा-प्रकारक हैं। देवता मनुष्यों से भिन्न अमर प्राणी माने जाते थे इसका बखेख श्रव्येद में स्पष्ट है—'हे शत्रु वरुण ! देवता हों या मर्त्य (मनुष्य) हों तुम सब के राजा हो।' (श्रु २।२०।१०)

पौष्टे पौराणिक काळ में जिसका योगा बहुत सूत्रपात शुक और सूत के समय में हो चुका था, वेद के ३३ देवताओं से ३३ कोटि देवताओं की कल्पना की गई। इंद्र, विष्णु, रुद्र, प्रजापति इत्यादि वैदिक देवताओं के रूप रंग, कुंडल आदि की भी कल्पना की गई। सुस्थान के वैदिक देवता विष्णु (जो १२ आदित्यों में थे) आगे चल कर चतुर्भुज, शंखचक्रनादायधारी, लक्ष्मी के पति हो गए। वैदिक रुद्र गरी, त्रिशूलधारी, पार्यंती के पति, गणेश और स्कंद के पिता हो गए, वैदिक प्रजापति वेद के धक्का, चार सुहृदोंके प्रसा हो गए। देवताओं की भावना और उपासना में यह भेद महाभारत के समय से ही कुछ कुछ पड़ने लगा। कृष्ण के समय तक वैदिक इंद्र की पूजा होती थी जो पीछे यंद हो गई, यद्यपि इंद्र देवताओं के राजा और स्वर्ग के स्वामी बने रहे। आज बल हिंदुओं में उपासना के लिये पाँच देवता मुख्य माने गए हैं—विष्णु, शिव, सूर्य; गणेश और दुर्गा। ये पंचदेव कहे जाते हैं।

यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद और पुराणों के अनुसार इंद्र,

चंद्र आदि देवता कश्यप से उत्पन्न हुए। पुराणों में लिखा है कि कश्यप की विति नाम की स्त्री से दैत्य और अदिति नाम की स्त्री से देवता उत्पन्न हुए।

वैद और जैन लोग भी देवताओं को मानते हैं और इसी पौराणिक रूप में, भेद केवल इतना है कि वे देवताओं को बुद्ध, बोधिसत्व या तीर्थंकरों से भिन्न श्रेणियों का मानते हैं। वैद लोग भी देवताओं के कई गण या धर्म मानते हैं, जैसे, चातुर्-महाराजिक, तुषिक आदि। जैन लोग चार प्रकार के देवता मानते हैं—वैमानिक या कल्पमय, कल्पातीत, प्रवेयक और अनुत्तर। वैमानिक १२ हैं—सीधर, ईशान, सनकुमार, महेंद्र, प्रज्ञा, श्रंतक, शुक, सहस्रार, नत, प्राणत, आश्रय और अच्युत।

देवताङ्ग-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार का लूण या पौधा जिसमें इधर उधर टहनियाँ नहीं निकलतीं, तलवार की तरह हो दाईं हाथ तक लंबे सीधे पत्ते पेड़ी से चारों ओर निकलते हैं जिससे यह देखने में पीड़वार के पौधे सा मालूम होता है। पत्ते कड़े होते हैं और कुछ नीलापन लिए होते हैं। इसके बीच का काँच बड़े की तरह लु सात हाथ ऊपर निकल जाता है जिसके सिरे पर फूलों के गुच्छे लगते हैं। पत्तों के रेशों से बहुत मजबूत रस्ते बनते हैं। इसे रामवास भी कहते हैं। (२) दे० "देवताङ्गी"।

देवताङ्गी-संज्ञा स्त्री० [सं० देवताङ्गी] (१) देवदाली जता। पैदा। (२) धुरई। तराई।

देवताधिप-संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र।

देवताध्याय-संज्ञा पुं० [सं०] सामवेद का एक ब्राह्मण।

देवतीर्थ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) देवपूजा के लिये उपयुक्त समय। (२) थंगूटे के थोड़े उँगलियों का अग्रभाग जिससे होकर संकल्प या तर्पण का जल गिरता है।

देवदत्त-वि० [सं०] देवता का दिया हुआ। देवदत्त।

द्वैतपत्नी-संज्ञा पुं० [सं०] प्रज्ञा, विष्णु और शिव, इन तीन देवताओं का समूह।

द्वैतत्व-संज्ञा पुं० [सं०] देवता होने का भाव या धर्म।

द्वैतदंडा-संज्ञा स्त्री० [सं०] नागबजा। गैंगरन।

द्वैतदत्त-वि० [सं०] (१) देवता का दिया हुआ। देवता से प्राप्त। (२) जो देवता के निमित्त दिया गया हो।

संज्ञा पुं० (१) देवता के निमित्त दान की हुई संपत्ति। (२) शरीर की पाँच वायुओं में से एक जिससे जैमाई धाती है। (३) अजुंन के शंख का नाम। (४) अष्टकुल नामों में से एक। (५) राक्षसवंशीय एक राजकुमार जो गौतम बुद्ध का चचेरा भाई था और उनसे बहुत बुरा मानता था।

बुद्ध और देवदत्त दोनों साथ ही पले थे, इससे सब बातों में बुद्ध को विशेष कुशल और तेजस्वी देखकर यह मन ही

मन बहुत चिड़ता था। यशोधरा से पहले यही विवाह करना चाहता था। जब यशोधरा ने पुत्र को स्वीकार किया तब यह और भी जला और बढ़ा खेने की ताक में रहने लगा। गौतम के पुत्राव प्राप्त करने पर भी इसने हँस न छोड़ा। अश्वत्थामात्मक में लिखा है कि जिस समय बुद्ध जेतवन धाराम में उठे वे देवदत्त ने उन्हें मारने के लिये बहुत से घातक भेजे थे। पीछे से यह बुद्ध के संघ में मिला गया था और अनेक प्रकार के बपाय बुद्ध और संघ को हानि पहुँचाने के किया करता था। कैश्यापी में आनंद और सारिपुत्र मीढु-गलायन की प्रधानता से कुछ कर यह संघ छोड़ राजगृह चला गया और यहाँ भ्रमागतनु को मिला कर इसने बुद्ध को अनेक प्रकार के कष्ट पहुँचाए, इन पर मत्त हाथी छुड़वाया, पत्थर लुढ़काया। अंत में जब यह कुछ रोग आदि से पीड़ित और जीवन से निराश हुआ तब बुद्ध से चमा मार्गने के लिये चला। बुद्ध ने उसे आता सुन कर कहा "यह मेरे पास नहीं आ सकता"। संयोगवश यह आने के पहले ताक्षाय में नहाने घुसा और वहाँ कीचड़ में फँस कर मर गया।

देवदर्शन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) देवता का दर्शन। (२) एक ऋषि का नाम।

देवदात्री-संज्ञा स्त्री० [सं०] यज्ञी तोरहि ।

देवदार-संज्ञा पुं० [सं० देवदार] एक बहुत ऊँचा पेड़ जो हिमालय पर ६००० फुट से ८००० फुट तक की उँचाई पर होता है। देवदार के पेड़ अस्सी गज तक लीधे ऊँचे चले जाते हैं और पच्छिमी हिमालय पर कुमाऊँ से लेकर कारमीर तक पाए जाते हैं। देवदार की अनेक जातियाँ संसार के अनेक स्थानों में पाई जाती हैं। हिमालयवाले देवदार के अतिरिक्त पुरियाई कोचक (तुर्की का एक भाग) तथा लुबगा और साहप्रस टापू के देवदार प्रसिद्ध हैं। हिमालय पर के देवदार की डाखियाँ लीची और कुड़ नीचे की ओर खुकी होती हैं, पत्तियाँ लीची मरिचि होती हैं। डाखियों के सहेत सारे पेड़ का घेरा ऊपर की ओर बराबर कम धरायं वायदुम होता जाता है जिससे देखने में यह सरे के आकार का जान पड़ता है। देवदार के पेड़ डेढ़ डेढ़ दो दो सौ वर्ष तक के पुराने पाए जाते हैं। ये जितने ही पुराने होते हैं वतने ही विशाल होते हैं। बहुत पुराने पेड़ों के धड़ या तने का घेरा १२-१५ हाथ तक का पाया गया है। इसके तने पर प्रति वर्ष एक मंडल या छेला पड़ता है, इसलिये इन छेलों को गिन कर पेड़ की अवस्था बताई जा सकती है। इसकी लकड़ी कड़ी, सुंदर, हलकी, सुगंधित और सफेदी लिये यादामी रंग की होती है और मत्स्यवृत्ति के लिये प्रसिद्ध है। इसमें पुन कीड़े कुछ नहीं खगते। यह हमारों में खगती है और अनेक प्रकार के सामान बनाने के काम में आती

है। कारमीर में बहुत से पेसे मकान हैं जिनमें चार चार सौ बरस की देवदार की धरें आदि लगी हैं और सभी ज्यों की लीं हैं। कारमीर में देवदार की लकड़ी पर नक्काशी बहुत अच्छी होती है। कान्गड़े में इसे घिस कर बंदन के स्थान पर खगाते हैं। इससे एक प्रकार का अलकतारा और तारपीन की तरह का सेल भी निकलता है, जो चीयों के भाव पर लगाया जाता है। देवदार को दिवार, केलु और कहीं कहीं केलोन भी कहते हैं।

पर्याय-शक्रपादप। पारिद्रक। भद्रवाह। हुकिबिम। पीड़वाह। दाह। पूतिकाठ। सुरदाह। सिन्धवाह। दाहक। अमदाह। शोभय। मूतहारि। भवदाह। मद्रवर्ध। ईन्द्रवाह। देवकाष्ठ।

देवदाह-संज्ञा पुं० [सं०] देवदार।

देवदार्यादि-संज्ञा पुं० [सं०] भावमंशका के अनुसार एक वनाय जिसे प्रसूता की को पिजाने से उबर, दाह, सिर की पीड़ा, श्मतीसार, मूत्राँ आदि बरद्व शान्त हो जाते हैं।

विशेष-इस काष्ठ में ये वस्तुएँ बराबर बराबर पड़ती हैं- देवदार, यच, कुड़, पिप्पली, सोंठ, चिरायता, कायफज, मोथा, कुटकी, धनिया, हड़, यमपिप्पली, अथासा, गोलरू, मटकट्या (कंठकारि), गुल्लकचंद, काकडासिंगी और स्याह बीरा। काष्ठ सँभार हो जाने पर इनमें हींग और नमक डाल देना चाहिए।

देवदालिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] महाकाल वृष।

देवदाली-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक खता जो देखने में तुरई की खेल से मिलती लुबती होती है। पत्तियाँ भी तुरई की पत्तियों के समान पर वनसे टोटी होती हैं और कोनों पर नुकीली नहीं होतीं। फूल पीले, खाल और सफेद तीन रंग के होते हैं। फल कफेड़े (सेसे) की तरह के कटिदार होते हैं। इस खता को धरावेख और बंदाल भी कहते हैं। वैद्यक में यह कडुई, तीक्ष्ण, यमनकारक, विरेचक, विपनाशक, चपरोग-नाशक, तथा उजर, खोली, मरचि, द्विषकी, कृमि, चूड़े के लिये इत्यादि को दूर करनेवाली मानी जाती है।

पर्याय-मीपूतक। कंठफला। गारागी। वेप्यी। सदा। केश-फला। कटुफला। घोरा। कदंबा। विषहा। ककंटी। सार-मूषिका। भ्रासुविषदा। वृत्तकोपा। पोपा। विपयी। दाती। लोमशपत्रिका। तुर्गिका।

देवदासी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) पेरया। (२) मंदिरों की दासी या मत्की।

विशेष-ये जगन्नाथ से लेकर दक्षिण के प्रायः सब मंदिरों में नाचती जाती हैं और वेदवाच्यता करती हैं। इनके माता पिता बचपन ही में उन्हें मंदिर को दान कर देते हैं अर्थात् बलाद लोग उन्हें नाचना गाना सिखाते हैं। मंदिराल के विंगलपट जिंके के कोरिमें (कपड़ा बुननेवालों) में यह रीति

हे कि वे अपनी सभ से बड़ी खड़की को किसी मंदिर को दान कर देते हैं। इस प्रकार दान की हुई कुमारियों को महाराष्ट्र देश में 'मुरली' और तैलंग देश में 'बलसा' कहते हैं। इन्हें मंदिरों से गुजारा मिलता है। मरने पर इनका उत्तराधिकारी पुत्र नहीं होता, कन्या होती है। मंदिरों में 'देवदासियाँ' रहने की प्रथा प्राचीन है। काश्मिर के मेघदूत में महाकाल के मंदिर में वेरवाणों के नृत्य की बात लिखी है। मिथ, पूनान, बाबिलन आदि के प्राचीन देवमंदिरों में भी देवदासियाँ होती थीं।

(२) विजौरा नीवू।

देवदीप-संज्ञा पुं० [सं०] (१) यह दीपक जो किसी देवता के निमित्त जलाया गया हो। (२) आल। नेत्र।

देवदुंदुभि-संज्ञा पुं० [सं०] जाल तुलसी।

देवदूत-संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि। अग्रा।

देवदूती-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) स्वर्ग की अस्तरा। (२) विजौरा नीवू।

देवदेव-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शिव। (२) ब्रह्मा। (३) विष्णु। (४) गणेश।

देवदुःख-संज्ञा पुं० [सं०] भारतवर्तीय एक राजा जो देवाजित् के पुत्र थे। (भागवत)

देवदुःख-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कश्यप, पारिजात आदि स्वर्ग के वृक्ष। (२) देवदार।

देवद्रोणी-संज्ञा स्त्री० [सं०] अरघा जिसमें स्वर्ग्यु लिंग स्थापित किया जाता है।

देवधन-संज्ञा पुं० [सं०] देवता के निमित्त उत्सर्ग किया हुआ धन।

देवधान्य-संज्ञा पुं० [सं०] अन्न।

देवधाम-संज्ञा पुं० [सं०] तीर्थस्थान। देवस्थान।

मुहा.—देवधाम करना=तीर्थयात्रा करना।

देवधुनि-संज्ञा स्त्री० [सं०] गंगा नदी। ध०—हमहि अगम अति दरस तुम्हासी। जस मरुपरनि देवधुनि-धारा।—तुलसी।

देवधूप-संज्ञा पुं० [सं०] गुग्गुलु। गुग्गुलु।

देवधेनु-संज्ञा स्त्री० [सं०] कामधेनु।

देवनेदी-संज्ञा पुं० [सं०] देवनिदि। इंदु का द्वारपाज।

देवन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) व्यवहार। (२) किसी से बड़ चढ़ कर देने की वासना। जिगीषा। (३) प्रीति। खेल। (४) लोभापान। बर्षीचा। (५) पत्र। कमल। (६) परिवेदना। खेद। रंज। शोक। (७) धृति। कांति। (८) स्तुति। (९) गति। (१०) पूत। शुभा। (११) पारसे का खेल। वीसतर।

देवनदी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) गंगा। (२) सरस्वती और रूपद्रती नदी।

देवनल-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का नरकट या नरसल।

देवना-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मीठा। खेल। (२) सेवा।

देवनागरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] भारतवर्ष की प्रचलित लिपि जिसमें संस्कृत तथा हिंदी, मराठी आदि देशभाषाएँ लिखी जाती हैं। उन अक्षरों का नाम जिनमें संस्कृत हिंदी आदि लिखी जाती है।

विशेष—'नागरी' शब्द की व्युत्पत्ति के विषय में मतभेद है। कुछ लोग इसका केवल 'नगर की' या 'नगरों में व्यवहृत' ऐसा अर्थ करके अपना पीछा छुड़ते हैं। बहुत लोगों का यह मत है कि गुजरात के नागर ब्राह्मणों के कारण यह नाम पड़ा। गुजरात के नागर ब्राह्मण अपनी व्युत्पत्ति आदि के संबंध में स्कंदपुराण के नागरखंड का प्रमाण देते हैं। नागरखंड में चमत्कारपुर के राजा का वेदवेत्ता ब्राह्मणों को बुला कर अपने नगर में बसना लिखा है। उसमें यह भी वर्णित है कि एक विद्येय घटना के कारण चमत्कारपुर का नाम 'नगर' पड़ा और वहाँ जाकर बसे हुए ब्राह्मणों का नाम 'नागर'। गुजरात के नागर ब्राह्मण आधुनिक बड़नगर (प्राचीन अर्धदुर्) ही को 'नगर' और अपना स्थान बतलाते हैं। अतः नागरी अक्षरों का नागर ब्राह्मणों से संबंध मान लेने पर भी यही मानना पड़ता है कि वे अक्षर गुजरात में वहाँ से गए जहाँ से नागर ब्राह्मण गए। गुजरात में दूसरी और सातवीं शताब्दी के बीच के बहुत से शिवा-लेख ताम्रपत्र आदि मिले हैं जो ब्राह्मी और दक्षिणी शैली की पश्चिमी लिपि में हैं, नागरी में नहीं। गुजरात में सभ से पुराना प्रमायिक लेख जिसमें नागरी अक्षर भी हैं गुर्जरवंशी राजा जयभट (तीसरे) का कलचुरि (चेदि) संवत् ४२६ (ई० स० ७०६) का ताम्रपत्र है। यह ताम्रपत्र अशोकिया गुजरात की तत्कालीन लिपि में है, केवल राजा के हस्ताक्षर (स्वहस्तो मम श्रीमहमत्स्य) वत्तरीय भारत की लिपि में हैं जो नागरी से मिलती जुलती है। एक बात और भी है। गुजरात में जितने दानपत्र बत्तरीय भारत की अर्थात् नागरी लिपि में मिले हैं वे बहुधा कान्यकुब्ज, पाटलिपुत्रवर्द्धन आदि से गए हुए ब्राह्मणों की ही प्रदत्त हैं। राष्ट्र-कूट (राष्ट्रकूट) राजाओं के प्रमाण से ही गुजरात में बत्तरीय भारत की लिपि विरोध रूप से प्रचलित हुई और नागर ब्राह्मणों के द्वारा व्यवहृत होने के कारण वहाँ नागरी कह-जाई। यह लिपि मध्य आर्यावर्ष की थी जो सभ से सुगम, सुंदर और नियमबद्ध होने के कारण भारत की प्रचलित लिपि बन गई।

'नागरी लिपि' का बड़ेसे प्राचीन ग्रंथों में नहीं मिलता है। इसका कारण यह है कि प्राचीन काल में यह माद्री ही कहलाती थी, उसका कोई अलग नाम नहीं था। यदि नगर

या नागर प्राइणों से 'नागरी' शब्द का संबंध मान लिया जाय तो अधिक से अधिक यही कहना पड़ेगा कि यह नाम गुनरात में जाकर पड़ गया और कुछ दिनों तक उपर ही प्रसिद्ध रहा। वैद्यों के प्राचीन ग्रंथ 'जलितविस्तर' में जो इन ६४ लिपियों के नाम गिनाए गए हैं जो बुद्ध के सिखाई गईं उनमें 'नागरी लिपि' नाम नहीं है, 'ब्राह्मीलिपि' नाम है। 'जलितविस्तर' का चीना भाषा में अनुवाद है ० स० ३०८ में हुआ था। जैनों के पत्रव्याय सूत्र और समवायांग सूत्र में १८ लिपियों के नाम दिए हैं जिनमें पहला नाम धंभी (ब्राह्मी) है। इन्हीं के भगवती सूत्र का आरंभ 'नमो धंभीय लिपि' (ब्राह्मी लिपि को नमस्कार) से होता है। नागरी का सब से पहला उल्लेख जैनधर्मग्रंथ नंदीसूत्र में मिलता है जो जैन विद्वानों के अनुसार ४२३ ई० के पहले का बना है। 'निलापोदशिकायव' के भाग में भास्करानंद 'नागरलिपि' का उल्लेख करते हैं और लिखते हैं कि नागरलिपि में 'ए' का रूप त्रिकोण है (कोणप्रव-दुद्धवो खेखो यस्य तत्। नागरलिप्या सम्प्रदायिकैरेकारस्य त्रिकोणकारतयैव लेखनात्)। यह बात प्रकट ही है कि श्रोत्रोक्तलिपि में 'ए' का आकार एक त्रिकोण है जिसमें फेर-फार होते होते ध्राज फल की नागरी का 'ए' बना है। शेषकृष्य नामक पंडित ने जिन्हें साढ़े सात सौ वर्ष के लगभग हुए, अपभ्रंश भाषाओं के गिनाते हुए 'नागर' भाषा का भी उल्लेख किया है।

सब से प्राचीन लिपि भारतवर्ष में श्रोत्रोक्त की पाई जाती है जो सिंध नदी के पार के प्रदेशों (गांधार आदि) को छोड़ भारतवर्ष में सर्वत्र बहुधा एक ही रूप की मिलती है। श्रोत्रोक्त के समय से पूर्व के अब तक दो छोटे से क्षेत्र मिले हैं। इनमें से एक तो वैपाल की तराई में विप्रवा नामक स्थान में शाक्य जातिवालों के बनवाए हुए एक बौद्धस्तूप के भीतर रखे हुए पत्थर के एक छोटे से पात्र पर एक ही पंक्ति में खुदा हुआ है और बुद्ध के घोड़े ही पीछे का है। इस लेख के अक्षरों और श्रोत्रोक्त के अक्षरों में अंतर नहीं है। अंतर इतना ही है कि इनमें शीर्षस्तर चिह्नों का अभाव है। दूसरा अजमेर से कुछ दूर पर बड़ली नामक गांव में मिला है जो [महा] वीर संवत् ८४ (= ई० स० पूर्व ४३३) का है। यह स्तंभ पर खुदे हुए किसी बड़े लेख का खंड है। इसमें 'वीराम' में जो 'वी' में दीर्घ 'ई' की मात्रा है वह श्रोत्रोक्त के लेखों की दीर्घ 'ई' की मात्रा से बिल्कुल निराजी और पुरानी है। जिस लिपि में श्रोत्रोक्त के लेख हैं वह प्राचीन भाषों या मालव्यों की निकाली हुई ब्राह्मी लिपि है। जैनों के प्रज्ञापनासूत्र में लिखा है कि 'भर्द्देनागरी भाषां तिललिपि में प्रकाशित की जाती है वह ब्राह्मी लिपि है'। भर्द्देनागरी भाषा मथुरा और पाटलि-

पुत्र के बीच के प्रदेश की भाषा है जिससे हिंदी निकली है। अतः ब्राह्मी लिपि मध्य आर्यावर्त की लिपि है जिससे क्रमशः इस लिपि का विकास हुआ जो पीछे नागरी कहलाई। मगध के राजा आदित्यसेन के समय (सातवीं शताब्दी ईसा की) के कुटिल मागधी अक्षरों में नागरी का वर्तमान रूप स्पष्ट दिखाई पड़ता है। ईसा की नवीं और दसवीं शताब्दी से तो नागरी अपने पूर्ण रूप में मिलने लगती है। किस प्रकार श्रोत्रोक्त के समय के अक्षरों से नागरी अक्षर क्रमशः रूपांतरित होते होते बने हैं यह पंडित गीरीशंकर हीराचंद शोभा ने 'प्राचीन लिपिमाला' पुस्तक में और एक नक़्शे के द्वारा स्पष्ट दिखा दिया है। यह नक़्शा पहली अक्षर छाप कर बना दिया गया है जिससे नागरी लिपि का क्रमशः विकास स्पष्ट हो जायगा। इन अक्षरों का पहला रूप श्रोत्रोक्त लिपि का है, उसके उपरांत दूसरे, तीसरे, चौथे रूप क्रमशः पीछे के हैं जो भिन्न भिन्न प्राचीन खेखों से चुने गए हैं।

सि० शारमराज्ञी ने भारतीय लिपि की उत्पत्ति के संबंध में एक नया सिद्धांत प्रकट किया है। उनका कहना कि प्राचीन समय में प्रतिमा बनने के पूर्व देवताओं की पूजा कुछ सांकेतिक चिह्नों द्वारा होती थी जो कई प्रकार के त्रिकोण आदि धर्मों के मध्य में लिखे जाते थे। ये त्रिकोण आदि धर्म 'देवनागरी' कहलाते थे। उन 'देवनागरी' के मध्य में लिखे जानेवाले अनेक प्रकार के सांकेतिक चिह्न कालांतर में अक्षर माने जाने लगे। इसीसे इन अक्षरों का नाम 'देवनागरी' पड़ा।

- देवनाथ-संज्ञा पुं० [सं०] शिव । महादेव ।
 देवनामा-संज्ञा पुं० [सं० देवनामन्] (१) कुछ हीर के एक धर्म का नाम । (२) कुछ हीर के राजा हिरण्यरेता के एक पुत्र ।
 देवनायक-संज्ञा पुं० [सं०] सुरपति । इंद्र ।
 देवनाल-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का नरसज । बड़ा गरुड ।
 देवनिर्काय-संज्ञा पुं० [सं०] (१) देवताओं का समूह । (२) देवताओं का स्थान । स्वर्ग ।
 देवनिर्मिता-संज्ञा स्त्री० [सं०] गृहणी । गुरुव ।
 देवपति-संज्ञा पुं० [सं०] सुरपति । इंद्र ।
 देवपत्तन-संज्ञा पुं० [सं०] सोमनाथ नामक देवस्थान जो काठियावाड़ में है ।
 विशेष-पुराणों में इस स्थान वा क्षेत्र का नाम प्रसास और शिवा-लेखों में देवपत्तन मिलता है। इसे देवनागरी भी कहते थे ।
 देवपत्नी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) देवता की स्त्री । (२) मन्वासु । एक प्रकार का कंद ।
 देवपथ-संज्ञा पुं० [सं०] छायापथ । आकाश ।
 देवपत्रिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] आकाश में बहनेवाली गंगा का एक नाम ।

अ=॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥
 अ=॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥
 इ=ः ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥
 उ=॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥
 ए=△ ∇ ▽ ▽ ▽
 क=+ + + क क
 ख=१ १ १ १ १ १
 ग=∧ ∩ ∩ ग
 घ=⊥ ⊥ ⊥ घ घ
 ङ=९ ९ ९ ९ ९
 च=∪ ∪ ∪ च च
 छ=⊝ ⊝ ⊝ छ छ
 ज=९ ९ ९ ९ ९ ज ज
 ङ=५ ५ ५ ५ ५
 झ=५ ५ ५ ५ ५ झ
 ञ=५ ५ ५ ५ ५
 ट=८ ८ ८ ८ ८
 ठ=० ० ० ० ०
 ढ=५ ५ ५ ५ ५
 ङ=५ ५ ५ ५ ५
 ट=६ ६
 ण=I Y X V W W W
 ण=I Y X W ण
 त=λ λ λ त
 थ=० ० ० थ थ थ

द=5 5 5 5 5 द
 ध=∇ ∇ ∇ ध ध
 न=I I I I न
 प=U U P प
 फ=6 6 6 6 6 फ फ
 ब=□ □ □ ब ब ब
 म=π π π म म
 म=8 8 8 म म
 य=J J J य य
 र=I I I र
 ल=J N N ल ल ल
 व=8 8 व व
 श=∩ ∩ ∩ श श श
 ष=U U ष ष
 स=6 6 स स स
 ह=U U ह ह ह
 ल=६ ६ ल ल ल
 झ=7 7 7 7 7 झ
 ङ=६ ६ ६ ६ ६
 का=+ + क का
 कि=+ + कि कि
 की=+ + की की
 कु=+ + क कु
 कू=+ + कू कू
 के=+ + के के

देवपर-संज्ञा पुं० [सं०] वह मनुष्य जो संकट पड़ने पर कोई उपाय न करे, किसी देवता का भरोसा किए बैठा रहे।

देवपर्य-संज्ञा पुं० [सं०] माधोपत्र।

देवपशु-संज्ञा पुं० [सं०] देवता के नाम पर बरतम किया हुआ पशु। (२) देवता का उपासक।

देवपात्र-संज्ञा पुं० [सं०] धर्म।

देवपान-संज्ञा पुं० [सं०] सोमपान करने का एक पात्र।

देवपाल-संज्ञा पुं० [सं०] शाकद्वीप के एक पर्यंत का नाम।

देवपालित-वि० [सं०] (देव) जिसमें वृष्टि ही के अन्न से खेती आदि का काम चल जाता हो।

देवपुत्र-संज्ञा पुं० [सं०] [श्री० देवपुत्री] देवता का पुत्र।

देवपुत्रिका-संज्ञा स्त्री० दे० "देवपुत्री"।

देवपुत्री-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) देवता की पुत्री। (२) हलायची। (३) कपूरी साग।

देवपुर-संज्ञा पुं० [सं०] अमरावती।

देवपुरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] इंद्र की राजधानी अमरावती जो स्वर्ग में है।

देवपूजा-संज्ञा स्त्री० [सं०] देवताओं का पूजन।

देवप्रयाग-संज्ञा पुं० [सं०] हिमालय में टिब्रू जिले के शतगंत एक तीर्थ जो गंगा और अलकनंदा के संगम पर है। स्कंद पुराण के हिमवद् खंड में इस तीर्थ का महारम्य बरित है।

देवप्रश्न-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह प्रश्न जो प्रह, नपत्र, प्रहय आदि के संबंध में हो। (२) शुभाशुभ संबंधी वह प्रश्न जो किसी देवता के प्रति समझ जाय और जिसका उत्तर किसी मुक्ति से निकाला जाय।

देवप्रद-संज्ञा पुं० [सं०] एक पुरी का नाम जो कुश्नेर से पूर्ण पड़ती थी और जिसका राजा सेनाविदु था।

देवप्रिय-संज्ञा पुं० [सं०] (१) भगवत् का पेट्ट या कूज। (२) पीत मृगशात्र। पीली औरैया।

देववंद-संज्ञा पुं० [सं०] २४वें] घोड़ों की एक भैंवरी जो वन की छाती पर होती है और शुभ लक्षण गिनी जाती है। जिस घोड़े में यह भैंवरी हो बलमें यदि थीर दोष भी हो तो ये सब निरफल समझे जाते हैं।

देवव्रता-संज्ञा पुं० [सं०] सद्देह। सद्देहना नाम की वृत्ति।

देवव्रीह-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का धान जो पूरबी घंगाख और अणसाम में बहुत होता है और बड़ीसा तक पाया जाता है। यह १२—२० हाथ से ४०—४२ हाथ तक ऊँचा होता है। यह मनुष्य होता है और मकानों की छानन में खराने तथा प्याईं डोकना आदि बनाने के काम में आता है। इसके नरम कल्लों का अचार भी पड़ता है।

देवव्रतान्-संज्ञा पुं० [सं०] नारद।

देवब्राह्मण-संज्ञा पुं० [सं०] वह ब्राह्मण जो किसी देवता की पूजा करके जीविका निर्वाह करे। पुजारी। पंडा।

देवभयन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) देवताओं का धर या स्नान। (२) स्वर्ग। (३) अरवत्य। पीपल।

देवभाग-संज्ञा पुं० [सं०] देवताओं को दिया जानेवाला भाग। किसी वस्तु या संपत्ति का वह अंश जो देवता के बिदे निकाला गया हो।

देवभाषा-संज्ञा स्त्री० [सं०] संस्कृत भाषा।

देवभिपक्-संज्ञा पुं० [सं०] देवभिपत्र] अखित्रीकुमार।

देवभू-संज्ञा स्त्री० दे० "देवभूमि"।

देवभूति-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) देवताओं का देववर्ग। (२) मंदाकिनी।

देवभूमि-संज्ञा स्त्री० [सं०] स्वर्ग।

देवभृत्-संज्ञा पुं० [सं०] (देवताओं का भरण करनेवाले) (१) इंद्र। (२) विष्णु।

देवभोज्य-संज्ञा पुं० [सं०] अमृत।

देवभंजर-संज्ञा पुं० [सं०] कैस्तुम मयि।

देवमंदिर-संज्ञा पुं० [सं०] वह घर जिसमें किसी देवता की मूर्ति आदि स्थापित हो। देवालय।

देवमयि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सूर्य। (२) कैस्तुम मयि। (३) घोड़े की भैंवरी। (४) महामेदा नाम की शोषधि।

देवमाता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) देवता की माता। (२) आदि। (३) दायायणी।

देवमातृक-वि० [सं०] (देव) जिसमें खेती आदि के बिदे वफा हो का अन्न पेटे हो। जहाँ इतनी वर्ष होती हो कि खेती आदि का सब काम उसी से चल जाता हो।

देवमादन-संज्ञा पुं० [सं०] देवताओं को मोहित या मत्त करनेवाला, सोम।

देवमान-संज्ञा पुं० [सं०] काल की गणना में देवताओं का मान, जैसे, मनुष्यों के एक और वर्ष का देवताओं का एक दिन।

देवमानक-संज्ञा पुं० [सं०] देवमयि। कैस्तुम मयि।

देवायमा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) देवताओं की माया। (२) परमेश्वर की भाषा जो अविद्या रूप होकर जीवों को संशय में डालती है।

देवमार्ग-संज्ञा पुं० [सं०] देवयान।

देवमास-संज्ञा पुं० [सं०] (१) गर्भ का आठवाँ महीना।

विशेष—आठवें महीने में गर्भ में स्तुति और भोजन की उपरति हो जाती है, इससे उसे देवमास कहते हैं। (२) देवताओं का माहीना जो मनुष्यों के तीस वर्ष के बराबर होता है।

देवमित्र-संज्ञा पुं० [सं०] शाकपत्र अथि का एक नाम।

देवमित्रा-संज्ञा स्त्री० [सं०] कुमार की अनुचरी एक मातृका।

देवमीढ़-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मिथिला के एक प्राचीन राजा

जो कीर्तिरथ के पुत्र और जनक (सीरपञ्च) के पूर्वज थे।
(बाहलीकि रा०)। (२) यदुवंशीय एक राजा।

देवमीडुप-संज्ञा पुं० [सं०] बसुदेव के पितामह का नाम।

देवमुष्वा-संज्ञा स्त्री० [सं०] कन्दुरी। कामांशु।

देवमुनि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मारद ऋषि। (२) सुर नामक ऋषि।

देवमूक-संज्ञा पुं० [सं०] एक पर्वत का नाम। (गर्गसंहिता)

देवमूर्ति-संज्ञा पुं० [सं०] देवता की प्रतिमा।

देवयजन-संज्ञा पुं० [सं०] यज्ञ की वेदी।

देवयजनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] पृथिवी।

देवयज्ञ-संज्ञा पुं० [सं०] होमादि कर्म जो पंचयज्ञों में से एक है और गृहस्थांशु का प्रतिदिन का कर्त्तव्य है।

विशेष—दे० “पंचयज्ञ”।

देवयात-वि० [सं०] देववप्रास। जो देवता हो गया हो।

देवयात्री-संज्ञा पुं० [सं०] देवयात्रिण एक दानव का नाम। (हरिवंश)

देवयान-संज्ञा पुं० [सं०] शरीर से अलग होने के उपरांत जीवामा के जाने के लिये दो मार्गों में से वह मार्ग जिससे होता हुआ यह महालोक को जाता है।

विशेष—उपनिषदों में जीवामा के उत्क्रमण अर्थात् एक शरीर से दूसरे शरीर या एक लोक से दूसरे लोक की प्राप्ति की कथा बहुत आई है। प्ररूपोपनिषद् में लिखा है कि संवत्सर ही प्रजापति है। दृषिय और उत्तर उसके दो अयन हैं। जो कोई हृदापूर्व और कृत (यज्ञ आदि कर्मकांड) की उपासना करते हैं वे चांद्रमस लोक को प्राप्त होते हैं और फिर वहाँ से लौट कर दक्षिणायन को पाते हैं जो रथी (साधु, धान्य) वा पितृपाय कहलाता है। इसी प्रकार जो तप, प्रत्ययार्थ अद्वा और विद्या से आत्मा का अन्वेषण करते हैं वे उत्तरायण मार्ग से आदित्य लोक को प्राप्त होते हैं। इस मार्ग से गमन करनेवाले वहाँ लौटते। छांदोग्य उपनिषद् में लिखा है कि ‘जो अद्वा और तप की उपासना करते हैं वे अर्चि’ (आंग की लौ) को पाते हैं, अर्चि से अद्वा (दिन), अद्वा से आर्ष्यमाण या शुक्लपत्र, आर्ष्यमाण पत्र से उत्तरायण के छ महीनों को, उत्तरायण से संवत्सर, संवत्सर से आदित्य को, आदित्य से चंद्रमा को, चंद्रमा से विष्णु को प्राप्त होते हैं और वहाँ अमानव (अर्थात् देव) हो जाते हैं। इसी मार्ग को देवयान कहते हैं जिससे मरनेवाला यज्ञ को पाना है। बृहदारण्यक उपनिषद् में सूर्य से एकवारगी विष्णु को प्राप्त होना लिखा है, चंद्रमा को छोड़ दिया है और ‘अमानव’ के स्थान पर ‘अमानस शब्द आया है जिस का अभिप्राय वही है। देवयान और पितृपाय का अभिप्राय केवल यही है कि प्रज्ञानी मरने पर उत्तरोत्तर प्रकाश-

मान लोकों या स्थितियों में होते हुए प्रसन्नोक्त वा अद्वा को प्राप्त करते हैं और कर्मकांड में तप मनुष्य, पुत्रोत्ति हृत्प-पत्र, दक्षिणायन आदि उत्तरोत्तर अंधकार की स्थिति को प्राप्त होते हैं और लौट कर फिर जन्म लेते हैं। सारांश यह कि एक गौर प्रकाश की उत्तरोत्तर वृद्धिपरंपरा का क्रम रखा गया है और दूसरी गौर अंधकार की। वेदांतसूत्र के तीसरे और चौथे अध्याय में जीव के इन दोनों मार्गों पर बहुत उदाहरण दिये गए हैं। गीता के आठवें अध्याय में श्रीकृष्ण ने भी इन मार्गों का उल्लेख किया है। उपनिषद् में जो उत्तरायण को देवयान और दक्षिणायन को पितृपाय कहा गया, इस कारण सूर्य जब उत्तरायण रहता है तब मरना मोक्षदायक माना जाता है। इसी लिये महाभारत में भीष्म का उत्तरायण सूर्य होने तक शरणागता परंपरा रहना लिखा गया है।

देवयानी-संज्ञा स्त्री० [सं०] शुक्राचार्य की कन्या जो राजा वयापि को ब्याही थी।

विशेष—बृहस्पति का पुत्र कच सृत्संजीवनी विद्या सीखने के लिये दैत्यगुरु शुक्राचार्य का शिष्य हुआ। शुक्राचार्य की कन्या देवयानी वसपुत्र अशुरक हुई। अशुरों को जब विदित हुआ कि कच सृत्संजीवनी विद्या लेने के लिये आया है तब बन्दोंने उसके मार डाला। इस पर जब देवयानी बहुत विज्वाल करने लगी तब शुक्राचार्य ने अपनी सृत्संजीवनी विद्या के बल से उसे जिवा दिया। इसी प्रकार कई बार अशुरों ने कच का विनाश करना चाहा पर शुक्राचार्य उसे बचाते गए। एक दिन अशुरों ने कच को पीस कर शुक्राचार्य के पीने की सुरा में मिला दिया। शुक्राचार्य कच को सुरा के साथ पी गए। जब कच नहीं मिला तब देवयानी बहुत विज्वाल करने लगी और शुक्राचार्य भी बहुत बराप गए। कच ने शुक्राचार्य के पेट में से तब स्वस्थ काह सुनाई। शुक्राचार्य ने देवयानी से कहा कि ‘‘कच तो मरे पेट में है, अब बिना मेरे मरे कच की रक्षा नहीं हो सकती। पेट में देवयानी को इन दोनों में से एक बात भी मंजूर नहीं थी। अंत में शुक्राचार्य ने कच से कहा कि यदि तुम कच रूपा इंद्र नहीं हो तो सृत्संजीवनी विद्या ग्रहण करो और उसके प्रभाव से बाहर निकल आओ। कच ने सृत्संजीवनी विद्या पाई और वह पेट से बाहर निकल आया। तब देवयानी ने उस से प्रेम प्रस्ताव किया और विवाह करने के लिये वह उसके कहने लगी। कच गुरु की कन्या से विवाह करने पर किसी तरह राश्री न हुए। इसपर देवयानी ने शाप दिया कि तुम्हारी सीखी हुई विद्या फलवती न होगी। कच ने कहा कि यह विद्या श्रेष्ठ है यदि मेरे हाथ से फलवती न होगी तो जिससे मैं सिखाऊँगा उसके हाथ से होगी। पर तुमने मुझे स्वयं शाप दिया।

इससे मैं भी शाप देता हूँ कि तुम्हारा विवाह मातृव्य से न होगा।

दौत्यों के राजा वृषपर्वा की कन्या शर्मिष्ठा और देवयानी में परस्पर सखी भाव था। एक बार दौत्यों किनारे पर कपड़े रख जल-विहार के लिये एक अखाद्य में हुई। इंद्र ने वायु का रूप धारकर दौत्यों के वस्त्र एक स्थान पर कर दिए। शर्मिष्ठा ने जवदी में देखा नहीं और निकल कर देवयानी के कपड़े पहन लिए। इसपर दौत्यों में क्रोध हुआ और शर्मिष्ठा ने देवयानी को हूए में डकेल दिया। शर्मिष्ठा यह समझ कर कि देवयानी मर गई अपने घर चली आई। इसी बीच नहुष राजा का पुत्र ययाति शिकार खेलने आया था। उसने देवयानी को हूए से निकाला और उससे दो बार बाते काके वह अपने भगवत की ओर चला गया। हूए देवयानी ने एक दासी से अपना सब वस्त्रांत शुक्राचार्य के पास कहवा भेजा। शुक्राचार्य ने आकर अपनी कन्या को घर चलने के लिये बहुत कहा, पर उसने एक न सुनी। वह शुक्राचार्य से कहने लगी कि "शर्मिष्ठा तुम्हारा बहुत बहुत तिरस्कार करती थी, अतः मैं अथ दौत्यों की राजधानी में कदापि न जाऊँगी।"

यह सब सुनकर शुक्राचार्य भी दौत्यों की राजधानी छोड़ अन्यत्र जाने को तैयार हुए। यह खबर राजा वृषपर्वा को लगी और वह आकर शुक्राचार्य से बड़ी विनती करने लगा। शुक्राचार्य ने कहा "देवयानी को प्रसन्न करो।" वृषपर्वा देवयानी को प्रसन्न करने की चेष्टा करने लगा। देवयानी ने कहा कि "मेरी हल्का है कि शर्मिष्ठा सहज और कन्याओं के सहित मेरी दासी हो। वहाँ मेरा पिता मुझे दान करे वहाँ वह मेरी दासी होकर जाय।"

वृषपर्वा इसपर समस्त हुआ और उसने अपनी कन्या शर्मिष्ठा को देवयानी की दासी बनाकर शुक्राचार्य के घर भेज दिया। एक दिन देवयानी अपनी नई दासियों के सहित कहीं मीठा कर रही थी, इसी बीच राजा ययाति वहाँ आ पहुँचे। देवयानी ने ययाति से विवाह करने की हल्का प्रकट की। राजा ययाति ने स्वीकार कर लिया और शुक्राचार्य ने कन्यादान कर दिया। कुछ दिन पीछे ययाति से शर्मिष्ठा को एक पुत्र हुआ। देवयानी ने जब पूजा सब शर्मिष्ठा ने कह दिया कि यह बड़का मुझे एक सेमली माहाद्य से हुआ है। इसके उपरांत देवयानी के गर्भ से यदु और तुर्वसु नाम के दो पुत्र और शर्मिष्ठा के गर्भ से द्रुहयु, ब्रह्म और पुरु मे तीन पुत्र हुए। ययाति से शर्मिष्ठा को तीन पुत्र हुए यह जानकर देवयानी अत्यंत कुपित हुई और उसने अपने पिता के पास इसका समाचार भेजा। शुक्राचार्य ने क्रोध में आकर ययाति को शाप दिया कि "मुझे अपना किया है,

इसलिये तुम्हें बहुत शरीर बुझापा घेरेंगा।" ययाति ने शुक्राचार्य से विनयपूर्वक कहा— "महाराज मैंने कामयरा होकर ऐसा नहीं किया, शर्मिष्ठा ने अतृप्तता होने पर अतृप्त रचा के लिये प्रार्थना की। उसकी प्रार्थना को अस्वीकार करना मैंने पाप समझा। मेरा कुछ दोष नहीं।" शुक्राचार्य ने कहा "अथ तो मेरा कहा हुआ निष्कल हो नहीं सकता। पर यदि कोई तुम्हारा बुझापा हो लेगा तो तुम फिर उभे के लिये जवान हो जाओगे।"

देवयुग—संज्ञा पुं० [सं०] सत्ययुग।

देवयोनि—संज्ञा स्त्री० [सं०] स्वर्ग अंतर्दिष्ट भादि में रहनेवाले उन जीवों की सृष्टि जो देवताओं के अंतर्गत माने जाते हैं।

विद्योष—विद्याघर, अयसरा, यष, रायस, गंधर्व, किशर, पिशाच, गुहयक और सिद्ध ये देवयोनि के अंतर्गत हैं। (अमर)

देवर—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० देवती] (१) पति का छोटा भाई।

(२) पति का भाई (छोटा या बड़ा)।

विशेष—मनुस्मृति में लिखा है कि यदि किसी विधवा को अपने पति से कोई संतान न हो तो वह अपने देवर या पति के किसी अन्य सपिंड से एक संतान उत्पन्न करा ले, एक से अधिक नहीं। पर पराशर ने कलिकाळ में इसका निषेध किया है।

देवरक्षित—वि० [सं०] जो देवताओं द्वारा रक्षित हो।

संज्ञा पुं० देवक राजा के एक पुत्र का नाम।

देवरक्षिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] देवक राजा की एक कन्या।

देवरथ—संज्ञा पुं० [सं०] (१) देवताओं का रथ। विमान। (२) सूर्य का रथ।

देवरा—संज्ञा पुं० [सं० देव] [स्त्री० देवरी] छोटा मोटा देवता।

४०—पुरुष पूजे देवरा, तिय पूजे रघुनाय।—रहाम।

संज्ञा पुं० [देव०] एक प्रकार का परसन जो सुवृत्ति बनाने के काम में आता है।

देवराज—संज्ञा पुं० [सं०] (देवताओं के राजा) इंद्र।

देवराज्य—संज्ञा पुं० [सं०] स्वर्ग।

देवराज—संज्ञा पुं० [सं०] (१) देवताओं से रक्षित राजा परीक्षित। (२) निमि के घंटा का एक राजा जो सुचेतु का पुत्र था। (३) शुनयोफ का एक नाम जो विशामित्र के यहाँ जाने पर पड़ा था। (४) याज्ञवल्क्य ऋषि के पिता का नाम। (५) एक प्रकार का वास।

देवराजनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० देव] देवर की स्त्री। पति के छोटे भाई की स्त्री।

संज्ञा स्त्री० [हिं० देव + रानी] देवराज इंद्र की रानी, राक्षी। इंद्रायी। ४०—देवराजा विपु देवराजनी मनो पुत्र संयुक्त भूलेक में सोहिए।—कैनाय।

देवराय—संज्ञा पुं० दे० "देवराज"।

देवरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० देवरा] छोटी मोटी देवी ।

देवर्द्धि—संज्ञा पुं० [सं०] जैनों के एक प्रसिद्ध स्वविर का नाम जिन्होंने जैनसिद्धांत विविध किया था ।

देवर्षि—संज्ञा पुं० [सं०] देवताओं में ऋषि ।

विशेष—नारद, अग्नि, मरीचि, भरद्वाज, पुलस्त्य, पुलह, मूढु, मृग, हत्यादि ऋषि देवर्षि माने जाते हैं ।

देवल—संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो देवताओं की पूजा करके जीविका निर्वाह करे । पुजारी । पंढा ।

विशेष—देवल ब्राह्मण पतिव्रत माना जाता है । हव्य कव्य, आद्र आदि में ऐसे ब्राह्मण का निषेध है ।

(२) शक्ति प्ररूप । (३) देव । (४) नारद मुनि । (५) धर्मशास्त्र के यक्ता एक मुनि जो अस्ति मुनि के पुत्र और वेदव्यास के शिष्य माने जाते हैं । (६) एक सृष्टिकार ।

सज्ञा पुं० [देवशब्द] देवालय । देवमंदिर ।

देवलक—संज्ञा पुं० [सं०] देवल । पुजारी ब्राह्मण । पंढा ।

देवलता—संज्ञा स्त्री० [सं०] नवमण्डिका । नेवारी ।

देवलांगुलिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] चुरिकाली ।

देवला—संज्ञा पुं० [हिं० देवा] [स्त्री०] शरप० देवश्री] छोटा दीया ।

देवलोका—संज्ञा पुं० [सं०] स्वर्ग ।

विशेष—मन्त्रपुराण में भू, भुव, हत्यादि सातों लोक देवलोका कहे गए हैं ।

देवली—संज्ञा स्त्री० दे० "दिबली" ।

देवयत्—संज्ञा पुं० [सं०] (देवताओं का मुँह) अग्नि ।

विशेष—देवताओं के निमित्त हव्य कव्य आदि का अग्नि में हवन होता है, इस कारण यह नाम पड़ा ।

देववती—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रामथी नामक गंधर्व की कन्या जो सुकेश राक्षस की पत्नी और माख्यवान्, सुभावी और माली की माता थी ।

देववधू—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) देवता की स्त्री । (२) देवी । (३) श्वसता ।

देववर्षिणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] भरद्वाज मुनि की कन्या जो विश्रवा मुनि की पत्नी और कुबेर की माता थी । (चारमिकि १०)

देववर्त्म—संज्ञा पुं० [सं० देववर्त्मन्] आकाश ।

देववर्द्धि—संज्ञा पुं० [सं०] विश्वकर्मा ।

देववर्द्धन—संज्ञा पुं० [सं०] राजा देवक के एक पुत्र का नाम ।

देवकी का एक भाई और श्रीहृष्य का मामा । (भागवत)

देववर्ष—संज्ञा पुं० [सं०] एक द्वीप का नाम । (भागवत)

देववल—संज्ञा स्त्री० [सं०] सहदेवी । सहदेई नाम की बूटी ।

देववल्लभ—संज्ञा पुं० [सं०] (१) देवताओं का मित्र । (२) सुरपुराण वृष । (३) कैसर । (अनेकार्थ)

देववाणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) संस्कृत भाषा । (२) आकाशवाणी । किसी ऋश्य देवता का वचन जो अंतरिक्ष में सुनाई पड़े । उ०—द्वि वलराम को देति उन वृत्त कियो रत्नम जीलो कहंग खगे सारे । देववाणी भई जीत भई राम की ताहु पै मूढ़ नाहीं सँभारे ।—सूर ।

देवचात—संज्ञा पुं० [सं०] एक वैदिक ऋषि का नाम ।

देवचायु—संज्ञा पुं० [सं०] बाराहवं मनु के एक पुत्र का नाम ।

देवचाहन—संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि (जो देवताओं का हव्य के जाकर पहुँचाते हैं) ।

देवविहाग—संज्ञा पुं० [सं० देवविभाग] एक राग जो कल्याण और विहाग अथवा सारंग और पूरवी के योग से बना है । यह संपूर्ण जाति का है ।

देववृक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] (१) मंदार वृक्ष । (२) गूगल । (३) सतिवन ।

देवयत—संज्ञा पुं० [सं०] (१) भीष्मपितामह का नाम । (२) एक प्रकार का साम गान ।

देवशत्रु—संज्ञा पुं० [सं०] असुर । राक्षस ।

देवशाक—संज्ञा पुं० [सं०] एक संकर राग जो शंकाभरण, कान्हड़ा और महार से मिलकर बना है । इसमें गंधार कोमल लगता है । इसका गान समय १० दंड से २० दंड तक है ।

देवशिली—संज्ञा पुं० [सं० देवशिलिन्] विश्वकर्मा ।

देवशुनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] देवलोक की कृतिया, सत्ता ।

विशेष—इस देवशुनी की एक कथा महाभारत में हस्त प्रकार लिखी है । राजा जनमेजय कोई बड़ा यज्ञ कर रहे थे । इसी बीच एक कुत्ता वहाँ आया । जनमेजय के भाइयों ने उसे मारकर भागा दिया । उस कुत्ते ने अपनी माता सरमा से जाकर कहा "मैंने कोई अपराध नहीं किया था, यज्ञ की कोई सामग्री नहीं छुई थी, इसपर नहीं बिना अपराध मुझे लोगों ने मारा" । देवशुनी सरमा यह सुनकर जनमेजय के पास जाकर बोली—"मेरे इस पुत्र ने कोई अपराध नहीं किया था । तुम्हारा भी आदि कुछ भी नहीं चाटा था । तुमने मेरे इस पुत्र को बिना किसी अपराध के मारा इससे तुम्हारे ऊपर शकसात कोई दुःख पड़ेगा" । यह श्राप देकर देवशुनी चली गई । विशेष—दे० "सरमा" ।

देवशेखर—संज्ञा पुं० [सं०] दमनक । दैनि का पौधा ।

देवश्रवा—संज्ञा पुं० [सं० देवश्रवस्] (१) विश्वामित्र के एक पुत्र का नाम । (२) वसुदेव के भाई ।

देवभूत—संज्ञा पुं० [सं०] (१) ईश्वर । (२) नारद । (३) शम्भु । (४) शुक्राचार्य के एक पुत्र का नाम । (५) अथसपिणी के एक जिन का नाम ।

देवश्रेणी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) देवताओं की पंक्ति। (२) मूर्त्ति। शरीरफली। मूर्त्ति।

देवश्रेष्ठ-वि० [सं०] (१) देवताओं में श्रेष्ठ। (२) बारहवें मनु के एक पुत्र का नाम।

देवसत्ता-संज्ञा पुं० [सं०] उत्तर दिशा का एक पर्वत। (वाल्मीकि रा०)।

देवसन्न-संज्ञा पुं० [सं०] एक यज्ञ का नाम।

देवसद-संज्ञा पुं० [सं०] देवस्थान।

देवसदन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) देवताओं का आवास। (२) देवालय। मंदिर। (३) स्वर्ग।

देवसामा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) देवताओं का समाज। (२) राजसमा। (३) सुधर्मा नामक समाज जिसे मय ने धर्मेण या सुधिष्ठिर के लिये बनाया था।

देवसमाज-संज्ञा पुं० [सं०] सुधर्मा नाम की समाज।

देवसरि-संज्ञा स्त्री० [सं०] गंगा नदी।

देवसर्प-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की सर्पों।

देवसहा-संज्ञा स्त्री० [सं०] सफेद बूझ का संज्ञापद।

देवसाक-संज्ञा पुं० दे० "देवसाक"।

देवसार-संज्ञा पुं० [सं०] इंद्रताक के छः भेदों में से एक।

देवसावित्री-संज्ञा पुं० [सं०] तैत्तिरीय मनु का नाम।

देवसदृश-संज्ञा स्त्री० [सं०] मंदिर। मय।

देवसेना-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) देवताओं की सेना। (२) प्रजापति की कन्या जो सावित्री के गर्भ से उत्पन्न हुई थी। इनका दूसरा नाम पृथी वा महापृथी भी है। ये मातृकामों में श्रेष्ठ हैं और शिशुओं का पालन करनेवाली हैं। इनको एक बार केटी दानव हर के गया। इंद्र ने इनकी रक्षा की और स्कंद के साथ इनका विवाह करा दिया। विवाह में यह स्थिति ने देग, जप आदि किया था। मातृक्यों ने देवसेना को पृथी, लक्ष्मी, प्राण, सुखप्रदा, सिनीवाली, कुह, सद्गुणि और अष्टाविता नामों से पुकारा। जिस पंचमी तिथि को स्कंद शीयुक्त हुए थे, वह श्रीपंचमी कहलाई। जिस पृथी को स्कंद कृताकर्ये हुए थे वह पृथी महातिथि कहलाई। (महाभारत)

देवसेनापति-संज्ञा पुं० [सं०] स्कंद।

देवस्थान-संज्ञा पुं० [सं०] (१) देवताओं के रहने की जगह। (२) देवालय। (३) एक ऋषि का नाम जिन्होंने पंडितों को इस समय सद्गुणदेव दिया था जब वे वनवास करते थे। पीछे जब सुधिष्ठिर ने राज्य प्राप्त किया तब इनके निश्चय प्रकार के उपदेश करके उन्हें राज्य छोड़ने से रोका था। (महाभारत)

देवस्थान-संज्ञा पुं० [सं०] (१) देवताओं के रहने की जगह। (२) देवालय। (३) एक ऋषि का नाम जिन्होंने पंडितों को इस समय सद्गुणदेव दिया था जब वे वनवास करते थे। पीछे जब सुधिष्ठिर ने राज्य प्राप्त किया तब इनके निश्चय प्रकार के उपदेश करके उन्हें राज्य छोड़ने से रोका था। (महाभारत)

देवस्थान-संज्ञा पुं० [सं०] (१) देवताओं के रहने की जगह। (२) देवालय। (३) एक ऋषि का नाम जिन्होंने पंडितों को इस समय सद्गुणदेव दिया था जब वे वनवास करते थे। पीछे जब सुधिष्ठिर ने राज्य प्राप्त किया तब इनके निश्चय प्रकार के उपदेश करके उन्हें राज्य छोड़ने से रोका था। (महाभारत)

देवस्थान-संज्ञा पुं० [सं०] (१) देवताओं के रहने की जगह। (२) देवालय। (३) एक ऋषि का नाम जिन्होंने पंडितों को इस समय सद्गुणदेव दिया था जब वे वनवास करते थे। पीछे जब सुधिष्ठिर ने राज्य प्राप्त किया तब इनके निश्चय प्रकार के उपदेश करके उन्हें राज्य छोड़ने से रोका था। (महाभारत)

देवस्थान-संज्ञा पुं० [सं०] (१) देवताओं के रहने की जगह। (२) देवालय। (३) एक ऋषि का नाम जिन्होंने पंडितों को इस समय सद्गुणदेव दिया था जब वे वनवास करते थे। पीछे जब सुधिष्ठिर ने राज्य प्राप्त किया तब इनके निश्चय प्रकार के उपदेश करके उन्हें राज्य छोड़ने से रोका था। (महाभारत)

देवस्थान-संज्ञा पुं० [सं०] (१) देवताओं के रहने की जगह। (२) देवालय। (३) एक ऋषि का नाम जिन्होंने पंडितों को इस समय सद्गुणदेव दिया था जब वे वनवास करते थे। पीछे जब सुधिष्ठिर ने राज्य प्राप्त किया तब इनके निश्चय प्रकार के उपदेश करके उन्हें राज्य छोड़ने से रोका था। (महाभारत)

देवस्थान-संज्ञा पुं० [सं०] (१) देवताओं के रहने की जगह। (२) देवालय। (३) एक ऋषि का नाम जिन्होंने पंडितों को इस समय सद्गुणदेव दिया था जब वे वनवास करते थे। पीछे जब सुधिष्ठिर ने राज्य प्राप्त किया तब इनके निश्चय प्रकार के उपदेश करके उन्हें राज्य छोड़ने से रोका था। (महाभारत)

देवस्थान-संज्ञा पुं० [सं०] (१) देवताओं के रहने की जगह। (२) देवालय। (३) एक ऋषि का नाम जिन्होंने पंडितों को इस समय सद्गुणदेव दिया था जब वे वनवास करते थे। पीछे जब सुधिष्ठिर ने राज्य प्राप्त किया तब इनके निश्चय प्रकार के उपदेश करके उन्हें राज्य छोड़ने से रोका था। (महाभारत)

देवस्थान-संज्ञा पुं० [सं०] (१) देवताओं के रहने की जगह। (२) देवालय। (३) एक ऋषि का नाम जिन्होंने पंडितों को इस समय सद्गुणदेव दिया था जब वे वनवास करते थे। पीछे जब सुधिष्ठिर ने राज्य प्राप्त किया तब इनके निश्चय प्रकार के उपदेश करके उन्हें राज्य छोड़ने से रोका था। (महाभारत)

विशेष—जो इस धन को लोभ से हरता है वह परलोक में गीब का यज्ञ खाकर जीता है।

देवहंस-संज्ञा पुं० [दे०] एक प्रकार की यक्ष।

देवहरा-संज्ञा पुं० [हिं० देव + हर] देवालय। मंदिर।

देवहरिया-संज्ञा स्त्री० [दे०] एक प्रकार की नाव।

देवहारा-संज्ञा स्त्री० [सं०] देवता वा देविका। सरयू नदी।

देवह-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) देवताओं का आधान। (२) धनाज से मरी गाड़ी। (३) वर्षों का। (भागवत)। (४) एक ऋषि का नाम।

देवहृति-संज्ञा स्त्री० [सं०] स्वार्थसुव मनु की तीन कन्याओं में से एक जो कई मनु को ब्याही थी। महर्षि ने इनकी सेवा से प्रसन्न होकर इनमें दिव्य ज्ञान दिया। इनके गर्भ से नौ कन्याएँ और एक पुत्र हुआ। सोम्य शाप के कर्त्ता कपिल इन्हीं के पुत्र हैं। (भागवत)

देवहेति-संज्ञा स्त्री० [सं०] देवाद्य।

देवहृद-संज्ञा पुं० [सं०] धीपर्वत पर एक शरोवर जिसमें स्नान करने से यज्ञ का फल होता है। (महाभारत)

देवोगना-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) देवताओं की स्त्री। स्वर्ग की स्त्री। धमरी। (२) अक्षरा।

देवोतक-संज्ञा पुं० [सं०] एक शरत् जो रावण का पुत्र था और जिसे हनुमान ने राम-रावण युद्ध में मारा था।

देवोचल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अमृत। (२) देवता के निवेद्य का अर्थ।

देवा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) पद्मधारिणी लता। (२) पटसन। † वि० [हिं० देना] (१) देनेवाला। जैसे, पानीदेवा। † (२) देनद्वार। धरणी।

देवामोक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] देवताओं का ब्रह्मान। इंद्र का वरणीवा।

देवाजीव-संज्ञा पुं० [सं०] देवताओं की पूजा करके जीविका करनेवाला। पुत्रारी। पंजा।

देवाट-संज्ञा पुं० [सं०] हरिहरचंद्र नामक तीर्थ। (वापहपुराण)

देवातिथि-संज्ञा पुं० [सं०] सुख्यरी एक राजा का नाम। (भागवत)

देवातिदेव-संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।

देवात्म-संज्ञा पुं० [सं०] देवतात्म। (१) देवस्वरूप। (२) अक्षय। पीपल।

देवाधिप-संज्ञा पुं० [सं०] (१) देवताओं के अधिपति। (२) परमेश्वर। (३) इंद्र।

देवान-संज्ञा पुं० [सं०] देवान। कचहरी। राजसभा। व०—नारि वागवान ते पुकारत देवान मे वजारे वाग चंदा देवाए धाय तन में।—तुजली। (२) अमात्य। मंत्री। यजीर। (३) प्रबंधकर्त्ता।

देवार्ना-प्रिय-संज्ञा पुं० [सं०] (१) देवताओं को प्रिय। (२) यकरा। (३) मूर्त्ति।

देवना-वि० दे० "दीवना" ।

संज्ञा पुं० एक चिह्निया ।

देवानीक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) देवताओं की सेना । (२) तीसरे मनु सावर्ण्य के एक पुत्र का नाम । (३) सगर के चंरा का राजा ।

देवानुचर-संज्ञा पुं० [सं०] देवताओं के साथ चलनेवाले विद्या-धर आदि उपदेव ।

देवाभ्र-संज्ञा पुं० [सं०] हवि । यह ।

देवाधि-संज्ञा पुं० [सं०] एक राजा का नाम ।

विशेष—इस राजा के संबंध में वैदिक कथा इस प्रकार है । ऋषियेय राजा के दो पुत्र थे, देवाधि और शांतनु । दोनों में देवाधि बड़े थे पर राज्य शांतनु को मिला और देवाधि तपस्या में लगे । शांतनु के राज्य में बारह वर्ष की भना-वृष्टि हुई । माहात्म्य ने शांतनु से कहा कि "तुम जेठे भाई के रहते राजसिंहासन पर बैठे हो इससे देवता लोग रुष्ट हो कर पानी नहीं धरसाते हैं । इस पर शांतनु ने देवाधि को सिंहासन पर बैठाया । देवाधि ने शांतनु से कहा कि "तुम यज्ञ करो, हम तुम्हारे पुरोहित होंगे" । देवाधि ने यज्ञ कराया जिससे खूब पानी बरसा । (निरुक्त २ । १०)

महाभारत के धनुसार देवाधि पुरुवंशी राजा प्रतीप के पुत्र थे । महाराज प्रतीप के तीन पुत्र थे—देवाधि, शांतनु और चाण्डिक । इनमें देवाधि अत्यंत धर्मात्मा थे । इन्होंने तपोव्रत से माहाणाल्य लाभ किया । ये बाल्यावस्था ही से संसारत्यागी हो गए थे । ये अन्न तक सुमेरु पर्वत पर कलाप-माम में योगी के रूप में हैं । कलियुग समाप्त होने पर सत्ययुग में ये चंद्रवंश स्थापित करेंगे ।

देवाब्ज-संज्ञा स्त्री० [दे०] एक प्रकार की खेई जो घोंसल, गोंद, चूना, वीरुन और पानी मिलाकर बनाई जाती है ।

देवाभियोग-संज्ञा पुं० [सं०] किसी ऐसे देवता का शरीर में प्रवेश जो अज्ञचित कर्म कराये । (जैन)

देवामीष्टा-संज्ञा स्त्री० [सं०] पान ।

देवायु-संज्ञा स्त्री० [सं० देवयु] देवताओं की आयु । देवताओं का जीवनकाल जो बहुत अधिक होता है ।

देवायुध-संज्ञा पुं० [सं०] (१) देवताओं का अस्त्र । (२) इंद्र-धनुष ।

देवारण्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) देवताओं का धन या उपवन । (२) एक तीर्थ का नाम । (महाभारत)

देवाराधन-संज्ञा पुं० [सं०] देवताओं की पूजा ।

देवारि-संज्ञा पुं० [सं०] अस्त्र ।

देवार्षण्य-संज्ञा पुं० [सं०] देवता के निमित्त किसी वस्तु का दान ।

देवार्य-संज्ञा पुं० [सं०] एक अर्थ के एक गण का नाम । (जैन)

देवाह-संज्ञा पुं० [सं०] सुरपण । माचीपत्र ।

देवाली-वि० [हि० देना] देनेवाला । दाता ।

देवालय-संज्ञा पुं० [सं०] (१) स्वर्ग । (२) यह घर जिसमें किसी देवता की मूर्ति रखी जाय । मंदिर ।

देवाला-संज्ञा पुं० दे० "दिवाला" ।

संज्ञा पुं० दे० "देवालय" ।

देवाली-संज्ञा स्त्री० दे० "दिवाली" ।

देवालेई-संज्ञा स्त्री० [हि० देना + लेना] देने और लेने का काम । लेनदेन ।

देवाघास-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पीपल का पेड़ । (२) स्वर्ग । (३) देवता का मंदिर ।

देवावृध-संज्ञा पुं० [सं०] एक पर्वत । (हरिवंश)

देवावृध-संज्ञा पुं० [सं०] एक राजा का नाम । (हरिवंश)

देवाश्व-संज्ञा पुं० [सं०] कच्छीश्रवा । इंद्र का घोड़ा ।

देवाहार-संज्ञा पुं० [सं०] अन्नत ।

देवाह्वय-संज्ञा पुं० [सं०] एक राजा का नाम ।

देविका-संज्ञा स्त्री० [सं०] पाघरा नदी जिसमें मित्रने के कारण सरयू को भी कोय देवहा कहते हैं । एक नदी का नाम जिसमें कालिकापुराण के मत से सरयू मिली है । पद्मपुराण के धनुसार यह आधा योजन चौड़ी और पाँच योजन लंबी है । मत्स्यपुराण के मत से यह नदी हिमालय के पांचदेश से निकली है ।

देवी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) देवता की स्त्री । देवगती । (२) दुर्गा । (३) यह राणी जिसका राजा के साथ अभिषेक हुआ हो । पटरानी । (४) माहात्म्य जियों की एक उपाधि । (५) दिव्य गुणवाली स्त्री । सुरग्रीवा और सदाचारिणी स्त्री । (आदर्शचक्र) । (६) मूर्त्ति । मरारफती । सुरा । (७) एक नाम की सुगंधित घास । असवरा । (८) आदिप-भक्ता । हुबहुब । हुडहुड । (९) लिंगिनी जता । पैचगुरिया । (१०) धन-करोड़ । धर्म छात्रता । (११) राजकन्या । सरिवन । (१२) महाद्रोणी । यज्ञ गुप्त । (१३) पाटा । (१४) नागरमेया । (१५) सफेद इंद्रायन । (१६) हरीतकी । हड़ । हर् । (१७) पखसी । तीसी । (१८) स्वामा पपी । (१९) रविसंक्रांति जो चण्डे पुण्यजनक समझी जाती है ।

संज्ञा स्त्री० [सं० केवियु] (१) लकड़ी का एक मजबूत चौखटा जिसमें दो चूड़े धर्मों के ऊपर आड़ा बंधा लगा रहता है । यह मखुल आदि के सहारे के बिदे होता है । (२) जहाज के किनारे पर खकड़ी या लोहे के दो पाँच की तरह बाहर की ओर मुके हुए धर्म जिनमें चिरिनियाँ लगी होती है । इन चिरिनियों पर चूड़े हुए रस्से के द्वारा किरितियाँ जहाज पर चढ़ाई या जहाज से नीचे उतारी जाती हैं । (वद्य०)

देवीकोट-संज्ञा पुं० [सं०] वायु की राजधानी शोधितपुर का दूसरा नाम ।

देवीपुराण-संज्ञा पुं० [सं०] एक उपपुराण जिसमें देवी का माहात्म्य आदि वर्णित है ।

देवीकीर्ति-संज्ञा पुं० दे० "देवीकीर्त्तय" ।

देवीभागवत-संज्ञा पुं० [सं०] एक पुराण जिसकी गणना बहुत से लोग उपपुराणों में और कुछ लोग पुराणों में करते हैं ।

विशेष—श्रीमद्भागवत के समान इस पुराण में भी चारह स्कंध और १८००० श्लोक हैं । अतः इसका निर्णय कठिन है कि दो में कौन पुराण है और कौन उपपुराण । पुराणों में एक दूसरे का विषय, श्लोकसंख्या आदि सी हुई है जिसके अनुसार पुराणों की प्रामाणिकता का प्रायः निर्णय किया जाता है । अस्यपुराण में लिखा है कि "जिस ग्रंथ में गायत्री का अवलोकन करके धर्मसंसार का सविस्तर वर्णन हो और दुरासुर के वध का पूरा वृत्तान्त हो, जिसमें सारस्वत कल्प के बीच नरों और देवताओं की कथा हो" और १८००० श्लोक हों वही भागवत पुराण है । शेष पुराण के वरत खंड में लिखा है कि जिसमें भगवती दुर्गा का चरित्र हो वह भागवत है, देवी पुराण नहीं । इसी प्रकार की व्यवस्था कालिका नामक उपपुराण में भी की है । यह तो शैव और शाक्त पुराणों का सत्य हुआ । अथ वैष्णव पुराणों की व्यवस्था सुनिप । पद्म पुराण में लिखा है कि "सब पुराणों में श्रीमद्भागवत श्रेष्ठ है जिसमें प्रति पद में ऋषियों द्वारा कहा हुआ वृष्ण का माहात्म्य है । इस कथा को परीछित की सभा में बैठकर शुकदेव जी ने कहा था ।" गौरव पुराण में भागवत वसकें कहा गया है "जिसके दशम स्कंध में वृष्ण का पाद और कामारचरित, प्रथम में स्थिति, किशोरावस्था में मधुरावास, जीवन में द्वारका-वास्त और और भूभार-हरण आदि विषय हों" ।

देवीभागवत में प्रथम ही त्रिपदा गायत्री है किंतु विष्णु भागवत में नहीं, इसमें केवल "थीमहि" इतना ही पद आया है । यज्ञासुर के वध की कथा दोनों में है । पर भद्रपुराण में बताया हुआ सारस्वतकल्प प्रसंग विष्णु भागवत में नहीं है, इसमें पाण्डुकल्प प्रसंग है । भद्रपपुराण में जो लक्ष्मण दिया हुआ है उसमें साम्प्रदायिक भाव की संघ नहीं जान पड़ती । शैव और वैष्णव विद्वानों में इन दोनों पुराणों के विषय में बहुत दिनों तक कलह चलता रहा । दुर्जनमुसलचण्डिका, दुर्जनमुसलचण्डिका, दुर्जनमुसल-पदप्रपादुका आदि कई ग्रंथ इस विवाद में लिखे गए । बात यह है कि ये दोनों पुराण साम्प्रदायिक विशेषताओं से परिपूर्ण हैं । ऐसा जान पतझ है कि भागवत नाम-का कोई प्राचीन पुराण या जो लुप्त हो गया था । नौद धर्म के उप-

रंत हिन्दुधर्म की अथ फिर नए रूप में स्थापना हुई और शैव वैष्णवों की प्रबलता हुई तब पुराणों में दिए हुए लक्ष्य के अनुसार वैष्णव पंडितों ने श्रीमद्भागवत की और शैव पंडितों ने देवीभागवत की रचना की । रचना के विचार से यदि देखा जाय तो देवीभागवत की शैली पुराणों के अधिक अनुसूक्त और भागवत की शैली पंडित्यपूर्ण काव्य की शैली को. विष्ट हुए है । जिस प्रकार श्रीमद्भागवत में दार्शनिक भावों की प्रधानता है वही प्रकार देवी भागवत में तांत्रिक भावों की है । इसमें देवी के गिरिता, कांडी, भद्रकांडी, महाभावा आदिक रूपों की वधासना की है । पार्वती के पीठस्थानों का वर्णन है । भैरव और वैताल विधि की व्यपत्ति और वनकी पूजा की विधि यतनाई गई है । यहाँ तक कि इस में आसाम देश के कामरूप देश और कामाची देवी का बड़े विस्तार के साथ वर्णन है । अस्तु अपने वर्तमान रूप में देवीभागवत ईसा की ६ वीं और ११ वीं शताब्दी के बीच बना होगा ।

देवीभोग्या-संज्ञा पुं० [हिं० देवी + भोग्या = भुजाना] देवी को भोगनेवाला । शोका । सोदा ।

देवीपीठ्य-संज्ञा पुं० [सं०] गंधक ।

देवीसूक्त-संज्ञा पुं० [सं०] ऋग्वेद शाकलसंहिता का एक सूक्त जिसका देवता देवी है ।

देवेंद्र-वि० [सं०] देवताओं का राजा इंद्र ।

देवेश-संज्ञा पुं० [सं०] (१) देवताओं का राजा इंद्र । (२) परमेस्वर । (३) महादेव । (४) विष्णु ।

देवेशाय-संज्ञा पुं० [सं०] परमेस्वर । (२) विष्णु ।

देवेदी-संज्ञा शी० [सं०] (१) पार्वती । (२) देवी ।

देवेष्ट-संज्ञा पुं० [सं०] (१) देवताओं को मिय । (२) युगुज । महादेव ।

देवेष्टा-संज्ञा शी० [सं०] यज्ञ विज्रीत ।

देवियाँ-संज्ञा पुं० [हिं० देना] देनेवाला ।

देवोत्तर-संज्ञा पुं० [सं०] यह संगति जो किसी देवता के नाम अल्प निकाल दी गई हो । देवता को अर्पित किया हुआ घन ।

देवोत्थान-संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु का शेष की शय्या पर से उठना जो कालिक श्रवण पृकदशी को होता है ।

देवोत्थान-संज्ञा पुं० [सं०] देवताओं के बगीचे जो चार हैं—मंदन, वैराय, वैश्राम और सन्तोमद । त्रिकांशरेष के अनुसार चार बगीचों के नाम ये हैं—वैश्राम, वैराय, सिधक, सिधकाण्य ।

देवोन्माद-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का भ्रमाद जिसमें रोगी पवित्र रहता है, सुगंधित फूलों की माजा पहनता है, शरीर बंद नहीं करता और संस्कृत बोलता है । यह देवता के कोप

से होता है। सुभ्रत में भूतविद्या में भ्रमातुष प्रतिषेध के अंतर्गत इसका उल्लेख है।

देवीकस्त-संज्ञा पुं० [सं०] देवताओं का स्थान सुमेरु पर्वत।

द्वेष्युन्माद-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का उन्माद या रोग जिसमें पंचायात होता है, शरीर सूख जाता है, मुँह और हाथ पवि टेंडे हो जाते हैं तथा स्मरण शक्ति जाती रहती है। कहीं कहीं इसे विज्ञासनी देवी या मावल्या भी कहते हैं।

देश-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विस्तार जिसके भीतर सब कुछ है। दिक्। स्थान।

विशेष-न्याय या वैशेषिक के अनुसार जिससे प्रांगे पीछे, ऊपर नीचे, उत्तर दक्षिण आदि का प्रत्यय होता है वह देश वा दिग्द्रव्य है। काळ के समान संख्या, परिमाण, प्रथकत्व, संयोग और विभाग देश के भी मुख्य हैं। देश के विस्तार और एक होने पर भी उपाधिभेद से उत्तर दक्षिण, प्रांगे पीछे आदि भेद मान लिए गए हैं। देश-संबंधी 'पूर्व' और 'पर' का विवरण्य हो सकता है पर काळ-संबंधी पूर्णापर का नहीं। पश्चिमी दार्शनिकों में कट आदि ने देश (और काळ) को मन से बाहर की कोई वस्तु नहीं माना है अंतःकरण का आरोप मात्र कहा है जो वस्तु-संबंध-ग्रहण्य के लिये वह अपनी ओर से करता है। दे० "काळ"।

धौ०—देशकाल।

(२) पृथ्वी का वह विभाग जिसका कोई जलज नग्न हो, जिसके अंतर्गत कोई प्रांत, नगर, ग्राम आदि हों तथा जिसमें अधिकतम एक जाति के और एक भाषा बोलनेवाले लोग रहते हों। जनपद।

विशेष—देश तीन प्रकार के होते हैं—जागरण्य, अनूप और साधारण। तीन प्रकार के और देश माने गए हैं—देवमातृक (जिसमें वर्षा ही के जल से खेती आदि के सारे काम हों), नदी मातृक और उभय मातृक।

(३) वह भूभाग जो एक ही राजा या शासक के अधीन अथवा एक शासनपद्धति के अंतर्गत हो। राष्ट्र। (४) स्थान। जगह। (५) शरीर का कोई भाग। अंग। जैसे, स्कंध देश, कटि-देश। ४०—नूपन सरुल सुदेस सुहाप। अंग अंग रचि सखिन अथाप।—तुलसी। (६) एक राग जो किसी के मत से संपूर्ण जाति का और किसी के मत से पाक्ष (अर्धजित) है। (७) जैन शास्त्रानुसार चौथा पंचक जिसके द्वारा अर्थानु-संचानपूर्वक तपस्या अर्थात् गुरु, वन, मुहा, श्मशान और व्रत की वृद्धि होती है।

देशक-संज्ञा पुं० [सं०] उपदेश करनेवाला। उपदेशक।

देशकली-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक रागिनी जिसमें गाँवार कोमल और माकी सब स्वर शब्द लगते हैं।

देशकार-संज्ञा पुं० [सं०] संपूर्ण जाति का एक राग जो सपेरे

एक दंड से पाँच दंड दिन चड़े तक गाया जाता है। यह राग परज, सोरठ और सरस्वती के मिलाने से बनता है। यह दीपक राग का पुत्र माना जाता है। इसका स्वरप्राम इस प्रकार है—

स श ग म प ध नि +

अथवा

ध नि स श ग म प +

देशाकारी-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक रागिनी जो इतुमल के मत से मेघ राग की पत्नी और किसी किसी के मत से हिंदाळ राग की पत्नी मानी जाती है। यह संपूर्ण जाति की है। इसका सरगम इस प्रकार है—

स श ग म प ध नि स +

इसके गाने का काळ वर्षा ऋतु का निरांत वा प्रातःकाळ है।

देशागंधार-संज्ञा पुं० [सं०] एक राग जो सपेरे एक दंड से पाँच दंड तक गाया जाता है।

देशचारित्र-संज्ञा पुं० [सं०] जैन शास्त्रानुसार गार्हस्थ्य धर्म जिसके यादव भेद हैं—(१) प्राणायतियात विरमण्य मत। (२) स्थूल शृणवादा विरमण्य मत। (३) धूल अद्भुतदान विरमण्य मत। (४) मीथुन विरमण्य मत। (५) स्थूल परिग्रह विरमण्य मत। (६) दिश परिमाण्य मत। (७) भोगोपभोग विरमण्य मत। (८) अन्नर्थ दंड विरमण्य मत। (९) सामयिक मत। (१०) दिशावकाशिकमत। (११) पीप-धोपवास मत। (१२) अतिथि संविभाग मत।

देशज-वि० [सं०] देश में उत्पन्न।

संज्ञा पुं० शब्द के तीन विभागों में से एक। वह शब्द जो न संस्कृत हो, न संस्कृत का अपभ्रंश हो बल्कि किसी प्रदेश में लोगों की बोलचाल से पैदा हो गया हो।

देशज्ञ-संज्ञा पुं० [सं०] देश का हाथ जाननेवाला। देश की दुरा, रीति नीति आदि जाननेवाला।

देशधर्म-संज्ञा पुं० [सं०] देश की रीति नीति आचार व्यवहार।

देशना-संज्ञा स्त्री० [सं०] उपदेश। (जैन)

देशनिकाला-संज्ञा पुं० [हिं०] देश + निकालना। देश से निकाल दिए जाने का दंड।

दि० प्र०—देशना—पाना।—दोना।

देशपाली-संज्ञा स्त्री० [सं०] देशकारी रागिनी का दूसरा नाम।

देशभाषा-संज्ञा स्त्री० [सं०] यह भाषा जो किसी देश या प्रांत विशेष में ही बोली जाती हो। जैसे, बंगला, मराठी, गुजराती इत्यादि।

देशमहारा-संज्ञा पुं० [सं०] संपूर्ण जाति का एक राग जिसमें सब स्वर लगते हैं।

देशराज-संज्ञा पुं० [सं०] ब्राह्मण उद्बल के पिता का नाम जो राजा परमाज (भ्रमर्दिदेव) के सामंतों में थे।

देशशय-वि० [सं०] देश में स्थित। देश में रहनेवाला।

संज्ञा पुं० महाराष्ट्र माहाराणों का एक भेद।

विशेष—महाराष्ट्र माहाराणों में दो भेद होते हैं—कैफयल्य और देशल्य।

देशांकी-संज्ञा स्त्री० [?] एक रागिनी हनुमत् के मत से जिसका स्वर ग्राम यो है—ग म प ध नी सा ग, अथवा ग म प ध नी सा रे ग।

देशांतर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अन्य देश। विदेश। परदेश। (२) भूगोल में भूवीं से होकर उत्तर दक्षिण गई हुई किसी सर्व-मान्य रेखा से पूर्व वा पश्चिम की दूरी। लंबाया।

विशेष—भारतवर्ष में पहले यह मध्य रेखा लंबा या उन्नतियनी से सुमेरु तक मानी जाती थी। अब यह यूरप और अमेरिका के मित्त मित्त स्थानों से गई हुई मानी जाती है। इस मध्य रेखा से किसी स्थान की दूरी उस कोण के क्षणों के हिसाब से मतकाई जाती है जो उस स्थान पर से हो। कर गई हुई रेखा भूधर मध्य रेखा से मित्त कर बनाती है।

देशांश-संज्ञा पुं० दे० "देशांतर"।

देशाका-संज्ञा पुं० [सं०] एक रागिनी। इसका सरगम यह है—
ग म प ध नि स +

देशाली-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक रागिनी जो हनुमत् के मत से हिंदोल की दूसरी रागिनी है। यह पाश्च्य आति की है। स्वर गांधार होता है। गाने का समय वसंत ऋतु का मध्यार्ध है।

देशाचार-संज्ञा पुं० [सं०] देश की चाल या व्यवहार।

देशाटन-संज्ञा पुं० [सं०] देशभ्रमण। मित्र मित्र देशों की यात्रा।

देशायकाशिक (ग्रतल)-संज्ञा पुं० [सं०] जैन शास्त्रानुसार एक शिष्यमन्त्र जिसमें स्वार्थ के लिये सय दियार्थों में भागे जाने के जो प्रतिबंध हैं उनको धीर भी संक्षिप्त और कठिन करके पालन किया जाता है।

देशिक-संज्ञा पुं० [सं०] पथिक। बटोही।

देशिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सूची। (२) तर्जनी अंगुली।

देशी-वि० [सं० देशीय] (१) देश का। देश संबंधी। (२) स्वदेश का। अपने देश का। (३) अपने देश में उत्पन्न या बना हुआ। जैसे, देशी चीनी, देशी माज।

संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक रागिनी जो हनुमत् के मत से दीपक राग की भाव्या है। इसमें पंचम वर्जित है। इसके गाने का समय श्रौत काल का मध्यार्ध है। यह मधुमाधव, सारंग पहाड़ी और टोड़ी के योग से बनी है। (२) संगीत के दो भेदों में से एक।

विशेष—संगीतदर्पण में नाचने गाने और यज्ञाने तीनों को संगीत कहा है। संगीत दो प्रकार का है—नाग और देशी।

(३) तांदव नृत्य का एक भेद जिसमें श्रगनिचेष अधिक और प्रमिनय कम होता है।

देशीय-वि० दे० "देशी"।

देश-संज्ञा पुं० दे० "देश"।

देशकार-संज्ञा पुं० दे० "देशकार"।

देशपाल-वि० [हिं० देश + पाल] स्वदेश का, दूसरे देश का नहीं (मनुष्य के लिये)। जैसे, देशपाल यनिवा।

संज्ञा पुं० एक प्रकार का पदसन।

देशायर-संज्ञा पुं० [सं० देश + ऋष] अन्य देश। विदेश। परदेश। देशांतर। जैसे, देशायर का माज।

देशायी-वि० [हिं० देशाय] देशायर का। दूसरे देश से आया हुआ। (वस्तु या माज के लिये)। जैसे, देशायी माज।

देशी-वि० [सं० देशीय] (१) स्वदेश का, दूसरे देश का नहीं। जैसे, देशी ब्राह्मणी, देशी माज।

देशभर-वि० [सं०] अपने ही शरीर का पोषण करनेवाला।

देह-संज्ञा स्त्री० [सं०] [वि० देश] (१) शरीर। तन। यदन।

उ०—(क) नाम एक तनु हेतु वेदि देह न धरी बहोति।—

तुलसी। (ख) अपराध विना अति देह धरी।—केशव।

(ग) है द्विष इति दई दई नई युक्ति यह जोष। अस्ति

अस्ति लगी रहै देह दूरी होय।—विहारी।

विशेष—शरीर आरंभ काल में कुछ दिनों तक धारण बहता है इसके उसका नाम देह (विह = शुद्धि) है। ज्यो के मत से पार्थिव देह दो प्रकार की होती है—योगिन और अयोगिन। ज्ञानियुज और श्रेष्ठ योगिन तथा स्वदेह और उद्भिन्न अयोगिन कहलाते हैं। शुक्र शोणित आदि की योजना से स्वतंत्र अजैविक देह को (जैसे, मारुद आदि की) भी अयोगिन कहते हैं। इसी प्रकार सांख्य आदि के मत से स्थूल और सूक्ष्म आदि भी शरीर के भेद माने गए हैं। विशेष—
दे० "शरीर"।

मुहा०—देह घटना=जीवन समाप्त होना। मृत्यु होना। देह छोड़ना=मरना। उ० मम कर तीरथ छोड़ि देहा।—
तुलसी। देह धरे कर यह फल भाई। मनु राम सब काम बिदाई।—तुलसी। देह लेना=दे० "देह धरना।"
देह विसारना=मन की सुष न रखना। शेष हवाप न रखना।

(२) शरीर का कोई अंग। (३) जीवन। जिंदगी। उ०—(क) सोह्य सद्धित सनेह देह भरि कामयेनु कलि कासी।—तुलसी।

(ख) जन्म जहाँ तहाँ रावरे सों निबई भरि देह सनेह समगई।—तुलसी। (घ) विमद। मूर्च्छि। चित्र।

संज्ञा पुं० [का०] शिव। खेड़ा। मौजा। जैसे, गंगाधरी, साकिन देह.....।

यो०—देहकान। देहात।

देहकान-संज्ञा पुं० [फा०] (१) किसान । कृषक । (२) गँवार ।

देहकान्ती-वि० [फा०] गँवारू । प्राम्नीय ।

देहत्याग-संज्ञा पुं० [सं०] मृत्यु ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

देहद-संज्ञा पुं० [सं०] पारा ।

देहधारक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शरीर को धारण करनेवाला ।

(२) अस्थि । हाड ।

देहधारण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शरीररक्षा । जीवनरक्षा ।

(२) जन्म ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

देहधारी-संज्ञा पुं० [सं० देहधारिन्] [स्त्री० देहधारिणी] शरीर

को धारण करनेवाला । जिसे शरीर हो । शरीरी ।

देहधि-संज्ञा पुं० [सं०] पद । चिद्रियों का पंख । डेना ।

देहधृज-संज्ञा पुं० [सं०] (शरीर को धारण करनेवाला) वायु ।

देहपात-संज्ञा पुं० [सं०] मृत्यु । मौत ।

क्रि० प्र०—होना ।

देहसुज-संज्ञा पुं० [सं०] (१) देहाभिमानी जीव । (२) सूर्य्य ।

देहभूत-संज्ञा पुं० [सं०] जीव ।

देहयात्रा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मरण । मृत्यु । (२) मरण

योग्य । पालन । (३) भोजन ।

देहर-संज्ञा स्त्री० [सं० देवहर] वह नीची भूमि जो किसी नदी

के किनारे हो और जहाँ नदी के बढ़ने पर पानी आ

जाता हो ।

देहरा-संज्ञा पुं० [हिं० देव + पर] (१) देवावास । देवालय ।

४०—देव विहना देहरा, देव विहना देव । कथिरा तहाँ

विलंधिया करे शबल की सेव ।—कवीर ।

संज्ञा पुं० [हिं० देह] नरशरीर । नर देह । ४०—छोटे ऊपर

दौराना सुख नौदरी न सोय । पुण्ये पाया देहरा ओछी

दोर न लोय ।—कवीर ।

देहरी [देह-संज्ञा स्त्री०] [सं० देहरी] (१) द्वार की चौखट की वह

लकड़ी जो नीचे होती है और जिसे खाँवते हुए लोग

भीतर घुसते हैं । दहलीज । ४०—(क) राम नाम मनि

दीप घर जोह देहरी द्वार । तुलसी भीतर बाहिरो जो चाहसि

कनियार ।—तुलसी । (ख) एक पग भीतर खु एक देहरी

पै करे, एक कर कंज एक कर है किंबार पर ।—पद्माकर ।

(२) दे० “देहर” ।

देहला-संज्ञा स्त्री० [सं०] (शरीर को पुष्टि देनेवाली) मदिरा ।

शराब ।

देहली-संज्ञा स्त्री० [सं०] द्वार की चौखट की वह लकड़ी जो

नीचे होती है और जिसे खाँव कर लोग भीतर घुसते हैं ।

दहलीज ।

देहलीदीपक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) देहली पर रखा हुआ

दीपक जो भीतर बाहर दोनों ओर प्रकाश फैलाता है ।

यौ०—देहली दीपक न्याय = देहली पर रखे हुए दोनों ओर

प्रकाश फैलानेवाले दीपक के समान दोनों ओर लगनेवाली

यात ।

(२) एक अर्थालंकार जिसमें किसी एक मन्थरा शब्द का

अर्थ दोनों ओर लगाया जाता है । ४०—हैं नरसिंह मर्दा

मनुभाद हन्यो प्रदलाद को संकट भारी । दास विभीषणी

लंक दुई निज रंक सुयामा को संगति भारी । दीपदी चीर

चढ़ाया जहान में पाँहव के यश की वजिपारी । गर्भिन के

खनि मय बहावत वीनन के दुख धीरिगधारी । (विरोध)

ऊपर जिसे हुए सर्वथे के प्रत्येक चरण में यह अलंकार है ।

हन्यो, दुई, यत्राये और बहावत शब्दों का अर्थ दोनों ओर

लगता है । इस अलंकार का लक्षण यह है—पर एक

पद बीच में कुछ विस जागी सोय । सो है दीपक देहरी जानत

है सय कोय ।

देहधंत-वि० [सं० देहधन् का बहु] जिसके देह हो । जो तनु-

धारी हो । ४०—(क) देहधंत प्राणी जो कसकधंत होता

कहूँ सेते में सुगंध के सराहिये की को हतो ।—शकु ।

(ख) नाक नथुनी के गज मोतिन की आभा, कैहीं देहधंत

प्रगटित हिये को टूलास है ।

संज्ञा पुं० वह जो शरीरवान् हो । शरीरधारी व्यक्ति । प्राणी ।

शरीरी । ४०—संतोष सम शीतल सदा दम देहधंत न

खेखिपु ।—तुलसी ।

देहदान-वि० [सं०] शरीरधारी ।

संज्ञा पुं० (१) शरीरधारी व्यक्ति । देही । (२) सजीव

प्राणी ।

देहशंकु-संज्ञा पुं० [सं०] पत्थर का खंभा ।

देहसंचारिणी-संज्ञा स्त्री० [सं०] कन्या । लड़की ।

देहसार-संज्ञा पुं० [सं०] मज्जा पातु ।

देहांत-संज्ञा पुं० [सं०] मृत्यु । मौत ।

क्रि० प्र०—होना ।

देहांतर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) दूसरा शरीर । (२) दूसरे

शरीर की प्राप्ति । जन्मान्तर । (३) मृत्यु । मरण ।

देहात-संज्ञा स्त्री० [फा०] [वि० देहली] गाँव । गाँव । ग्राम ।

देहाती-वि० [फा० देहात] (१) गाँव का । गाँव में होने-

वाला । जैसे, देहाती चीज । (२) गाँव में रहनेवाला ।

प्रारमिष्य । (३) गाँव ।

देहातीत-वि० [सं०] (१) जो शरीर से परे हो । जो देह से

स्वतंत्र हो । (२) जिसे देहाभिमान न हो । जिसे शरीर

की ममता न हो ।

देहात्मवादी-संज्ञा पुं० [सं० देहात्मवादित्] वह जो शरीर के

अतिरिक्त ध्यात्मा को न माने, शरीर ही को ध्यात्मा माने, जैसे कि चावक मानता है ।

देहाध्यास-संज्ञा पुं० [सं०] देह धर्म को ही ध्यात्मा समझने का भ्रम ।

देहिहा-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक कीड़े का नाम ।

देही-संज्ञा पुं० [सं० देहिन्] (देह को धारण करनेवाला) जीवात्मा । ध्यात्मा ।

विशेष-देह चैतन्य नहीं है, पर देही है । ध्यात्मा देह के धारण से सुख दुःख आदि का भोगनेवाला होता है । पर शुद्ध देही नित्य, अचक्षु आदि है । दे० "ग्रहमा", "जीवात्मा" ।

देहेश्वर-संज्ञा पुं० [सं०] देहाधिष्ठाता ध्यात्मा ।

देवी-संज्ञा स्त्री० दे० "देवी" ।

देजा-संज्ञा पुं० दे० "दहेज", "दायजा" ।

दैतेय-वि० [सं०] दिति से उत्पन्न ।

संज्ञा पुं० (१) दिति की संतति । दैत्य । (२) राहु का एक नाम ।

दैत्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) दिति की संतति । कश्यप के वे पुत्र जो दिति नाम्नी स्त्री से पैदा हुए । असुर ।

(२) जैसे डील या भ्रसाधारण बल का मनुष्य । जैसे, वह पूरा दैत्य है । (३) भक्ति करनेवाला आदमी । जैसे, वह खाने में दैत्य है । (४) हुराचारी । नीच । दुष्ट व्यक्ति । (५) बोहा ।

दैत्यगुह-संज्ञा पुं० [सं०] शुक्राचार्य्य ।

दैत्यदेव-संज्ञा पुं० [सं०] दैत्यों के देवता (१) वरुण, (२) वायु ।

दैत्यद्वीप-संज्ञा पुं० [सं०] गरुड़ के पुत्रों में से एक । (महा-भारत)

दैत्यभूमिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] तारा देवी की सांखिक उपासना में एक मुद्रा जिसमें उबटी हथेलियों को मिलाकर विशेष विशेष उंगलियों को एक दूसरे से फँसते हैं ।

दैत्यपुरोधा-संज्ञा पुं० [सं० दैत्यपुरोधन्] दैत्यों के पुरोहित शुक्रा-चार्य्य ।

दैत्यमाता-संज्ञा स्त्री० [सं० दैत्यमातृ] दैत्यों की माता दिति ।

दैत्यमेदज-संज्ञा पुं० [सं०] (१) गुणगुह । गुण । (२) देवी ।

दैत्ययुग-संज्ञा पुं० [सं०] दैत्यों का युग जो देवताओं के बारह हजार वारसों वा मनुष्यों के चार युगों के बराबर होता है ।

दैत्यसेना-संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रजापति की कन्या जो देवसेना की पतिन थी । यह केरी वानव को बहुत चाहती थी । केरी इसे हर ले गया था और उसने इसके साथ विवाह किया था ।

दैत्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) दैत्य जाति की स्त्री । (२) सुरा । कश्यकचरी । (३) यंत्रोपधि । (४) मय । मदिरा ।

दैत्यासि-संज्ञा पुं० [सं०] दैत्यों के शत्रु (१) विष्णु, (२) इन्द्र, (३) देवता माय ।

दैत्याहोरात्र-संज्ञा पुं० [सं०] दैत्यों का एक रात दिन जो मनुष्य के वर्ष के बराबर होता है ।

दैत्यैन्द्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) दैत्यों का राजा । (२) गंधक ।

दैत्येज्य-संज्ञा पुं० [सं०] दैत्यों के गुरु शुक्राचार्य्य ।

दैधिपय्य-संज्ञा पुं० [सं०] स्त्री के दूसरे पति का पुत्र ।

दीनदिन-वि० [सं०] प्रति दिन का । दिन दिन होनेवाला । निरर का ।

किं वि० (१) प्रति दिन । रोज रोज । (२) दिने दिन ।

दीन-संज्ञा पुं० [सं०] धीन होने का भाव । दीनता ।

वि० [सं०] दिन संबधी ।

* संज्ञा स्त्री० [हिं० देना] दे० "देन" ।

विशेष-इस शब्द का प्रयोग समास में विशेषणवत् भी होता है जैसे, सुखदीन=सुख देनेवाला । व०-नैन सुखदीन मन मैन मलय लेखिए ।-केशव ।

दीनिक-वि० [सं०] (१) प्रति दिन का । रोज रोज का । (२) जो रोज रोज हो । नित्य होनेवाला । (३) जो एक दिन में हो । (४) दिन संबधी ।

संज्ञा पुं० एक दिन का वेतन । रोजाना मजदूरी ।

दीन्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) दीनता । दरिद्रता । (२) गर्व वा अहंकार के प्रतिहृत भाव । विनीत भाव । अपने को तुच्छ समझने का भाव । (३) काव्य के संचारी भावों में से एक जिसमें दुःखादि से चित्त प्रसन्न हो जाता है । कातरता ।

दीयता-संज्ञा पुं० [सं० दीय] दीय । दानव । राक्षस । असुर ।

उ०-(क) वह हरी हडि हरिनाच दीयत देखि सुंदर देह सी ।-केशव । (ख) आपन ही रँग रच्यो साबरो शुक्र ज्यों वीटि पढ़ाय । दासी हूटी अमुर-दीयत की भय कुल-वधु कहाय ।-सूर ।

दीया-संज्ञा पुं० [हिं० दई] दई । दीव ।

मुद्रा०-दीयन की=दई दई करके । किसी प्रकार । कठिनता से ।

अव्य० आरधचर्य्य, भय या दुःख सूचक शब्द जिसे जियाँ बोझती हैं । हे दई ! हे परमेस्वर ! व०-सुकिई चर्वया सव कँहँ कहा, दीया ! इत पारिगो को, मैया, मेरी सेज पै कन्हैया को ।-पद्माकर ।

संज्ञा स्त्री० † दे० "दाई" ।

दीयागति-संज्ञा स्त्री० दे० "दीवगति" ।

दीय्य-संज्ञा पुं० [सं०] दीयता । लंभाई । यद्दाई ।

दीव-वि० [सं०] [स्त्री० देवी] (१) देवता-संबधी । जैसे, दीव कार्य्य,

द्वैतश्राद्ध । (२) देवता के द्वारा होनेवाला । जैसे, द्वैतगति, द्वैतघटना । (३) देवता को अर्पित ।
संज्ञा पुं० (१) वह अर्जित शुभाशुभ कर्म जो फल देनेवाला हो । प्रारम्भ । अष्ट । भाग्य । होनेवाली बात या फल । होनी ।

विशेष—भारतपुराण में जब मनु ने मरत्य से पूछा कि द्वैत और पुरुषरूप देवता में कौन श्रेष्ठ है, तब मरत्य ने कहा "पूर्व जन्म के जो भले बुरे कर्म अर्जित रहते हैं वे ही वर्तमान जन्म में द्वैत या भाग्य होते हैं । द्वैत यदि प्रतिकूल हो तो पौरुष से वसूला नारा हो सकता है । यदि पूर्व के कर्म अच्छे हों तो भी बिना पौरुष के वे कुछ भी फल नहीं दे सकते । अतः पौरुष श्रेष्ठ है ।

यो०—द्वैतगति । द्वैत ।

(२) विधाता । ईश्वर । जैसे, दुर्बल को द्वैत भी सत्ता है ।

मुहा०—(किसी को) द्वैत लगना = (किसी पर) ईश्वर का कोप होना । बुरे दिन आना । शांति आना ।

(३) आकाश । आसमान ।

मुहा०—द्वैत बरसना = मँह बरसना । पानी बरसना ।

द्वैतकोविद—संज्ञा पुं० [सं०] (१) देवताओं का विषय जाननेवाला । (२) द्वैतज्ञ । ज्योतिषी ।

द्वैत गति—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) ईश्वरीय वात । देवी घटना । (२) भाग्य । कर्म । अष्ट । प्रारम्भ ।

द्वैतचिन्तक—संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिषी ।

द्वैतज्ञ—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० देवज्ञा] (१) ज्योतिषी । गणक । (२) बंगदेश में ब्राह्मणों की एक जाति ।

द्वैततंत्र—वि० [सं०] भाग्यधीन ।

द्वैततंत्र—वि० [सं०] देवता संबंधी ।

संज्ञा पुं० (१) देवता संबंधी प्रतिमा आदि । (२) देवता । (३) निरुक्त का वह भाग जिससे वेदमंत्रों के देवताओं का परिचय होता है ।

द्वैतपति—संज्ञा पुं० [सं०] ईश्वर ।

द्वैततीर्थ—संज्ञा पुं० [सं०] आचमन करने में उँतलियों के अन्नमाग का नाम । उँतलियों की नोक ।

द्वैतदुर्घोषाक—संज्ञा पुं० [सं०] द्वैत की प्रतिक्रमता । भाग्य की खोटाई ।

द्वैतयुग—संज्ञा पुं० [सं०] देवताओं का युग जो मनुष्यों के चारों युगों के बराबर होता है ।

विशेष—मनुष्यों के एक वर्ष का देवताओं का एक रात दिन होता है ।

द्वैतयोग—संज्ञा पुं० [सं०] भाग्य का आकस्मिक फल । संयोग । हस्तिकाल । जैसे, द्वैतयोग से यह हमें मार्ग ही में मिल गया ।

द्वैतल—संज्ञा पुं० [सं०] देवत्व प्राप्ति की संतति ।

द्वैतलेखक—संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिषी । गणक ।

द्वैतवर्ष—संज्ञा पुं० [सं०] देवताओं का वर्ष जो ३३१२२१ सौर दिनों का होता है ।

द्वैतयज्ञ—कि० वि० [सं०] संयोग से । द्वैतयोग से । अकस्मात् । कदाचित् ।

द्वैतवचापत्ति—कि० वि० दे० "द्वैतवश" ।

द्वैतवचापी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) आकाशायात्री । (२) संस्कृत ।

द्वैतवादी—संज्ञा पुं० [सं०] (१) भाग्य के भरोसे रहनेवाला । पुरुषार्थ न करनेवाला । (२) आलसी । निरहयोगी ।

द्वैतविदु—संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिषी । गणक ।

द्वैतविवाह—संज्ञा पुं० [सं०] स्मृतियों में लिखे अथ प्रकार के विवाहों में से एक ।

विशेष—ज्योतिषीम आदि बड़ा यज्ञ करनेवाला यदि इसी यज्ञ के समय ऋत्विज या पुरोहित को अर्लंकता कन्या दान कर दे तो यह द्वैतविवाह हुआ ।

द्वैतश्राद्ध—संज्ञा पुं० [सं०] वह श्राद्ध जो देवताओं के उरस्य से हो ।

द्वैतसर्ग—संज्ञा पुं० [सं०] देवताओं की सृष्टि ।

विशेष—इसके अंतर्गत अथ भेद हैं—ब्राह्म, प्राज्ञापत्य, मूंद्र, पैत्र, गोधर्म, यश, राक्षस और पैशाच । (संख्यकारिका)

द्वैतकारि—संज्ञा पुं० [सं०] दिवाकर अर्थात् सूर्य के पुत्र, (१) शनि, (२) यम ।

द्वैतकरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (सूर्य की पुत्री) जमुना नदी ।

द्वैतगत—वि० [सं०] देवी । आकस्मिक । सहसा होनेवाला ।

द्वैतात्—कि० वि० [सं०] अकस्मात् । द्वैतयोग से । हस्तिकाल से । अचानक ।

द्वैतार्यय—संज्ञा पुं० [सं०] द्वैतकृत उपासना । अचानक आरसे अपा होनेवाला अर्थ ।

द्वैतारिप—संज्ञा पुं० [सं०] शंख ।

द्वैतिक—वि० [सं०] (१) देवता संबंधी । देवताओं का । जैसे, द्वैतिक श्राद्ध । (२) देवताओं का किया हुआ ।

ब०—द्वैतिक द्वैतिक भौतिक तापा । राम-राज्य काहुह नहीं ध्याया ।—तुलसी ।

द्वैती—वि० स्त्री० [सं०] (१) देवता संबंधिनी । (२) देवताओं की को हुई । देवकृत । जैसे, द्वैती लीला । (३) आकस्मिक । प्रारम्भ या संयोग से होनेवाली । जैसे, द्वैती घटना ।

(४) सात्विक । जैसे, द्वैती संरति ।

संज्ञा स्त्री० (१) द्वैतविवाह द्वारा ध्याही हुई परी । (२) एक वैदिक छंद ।

द्वैती गति—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) ईश्वर की की हुई बात । (२) प्रारम्भ । भावी । होनहार । अष्ट ।

द्वैत्य—वि० [सं०] देवता संबंधी ।

संज्ञा पुं० (१) दैव । (२) माय ।
 द्वैहिक-वि० [सं०] (१) देह संबंधी । शारीरिक । उ०—द्वैहिक
 द्वैहिक भौतिक तत्त्वा ।—मुलसी । (२) देह से उत्पन्न ।
 दोकना—कि० अ० [दे०] गुना ।
 दोकी—संज्ञा स्त्री० [दे०] धौकमी ।
 दोचा—संज्ञा स्त्री० दे० "दोच" ।
 दोचना—संज्ञा स्त्री० दे० "दोचना" ।
 दोचना—क्रि० घ० [हिं० दोचन] दयाव में डालना । उ०—
 तंबुल मोगि दोचि के जाई सं। दिल्हों उपहार ।—सूर ।

दोच—संज्ञा पुं० [दे०] एक प्रकार का ताप ।
 दो-वि० [सं० द्वि] एक और एक । तीन से एक कम ।
 मुहा०—दो एक = कुछ । गोड़े । जैसे, उनसे दो एक बातें
 करके चले भावोंगे । दो चार = कुछ । गोड़े । जैसे, वहाँ
 ज्यादा नहीं सिर्फ दो चार खादमी रहेंगे । दो चार होना =
 भेंट होना । मुद्राकत होना । खरिदें दो चार होना = सामना
 होना । दो दिन का = बहुत ही थोड़े समय का । दो दो दाने
 को फिरना = बहुत ही दृष्टि दशा में, दूसरे से मांगते हुए
 फिरना । दो दो बातें करना = संक्षिप्त प्रश्नोत्तर करना । कुछ
 बातें पूछना और कहना । दो नाथो पर रर रहना = दो
 पक्षों का अन्वर्तन करना । दो पदार्थों का आश्रय लेना ।
 उ०—हुइ तरंग हुइ नाथ पावैं धरि ते कहि कथन न
 सृष्टे ।—सूर । किस के दो सिर हैं ? = किसके फालतू सिर हैं ?
 किस में अशंभव सामर्थ्य है । कौन इतना समर्थ है कि मरने से
 नहीं डरता । उ०—अनहित तोर प्रिया कहै कीन्हा । केहि
 हुइ सिर, केहि जम चह लीमा ?—तुलसी ।

दो-भ्रातृश्रा-वि० [का०] जो दो बार भ्रमके में छोचा या
 चुभारा गया हो । दो बार का छोचा या उतारा हुआ । जैसे,
 दो-भ्रातृश्रा शराव, दो-भ्रातृश्रा गुलाब ।

विशेष—एक बार अर्क या शराव आदि खींच चुकने पर कभी
 कभी उसके बहुत तेज करने के लिये फिर से खींचते या
 चुभारते हैं । ऐसे ही अर्क या शराव आदि को दो-भ्रातृश्रा
 कहते हैं ।

दोभ्रातृ-संज्ञा पुं० [का०] दो नदियों के बीच का प्रदेश । किसी
 देश का वह भाग जो दो नदियों के बीच में पड़ता हो ।

दोघाघा-संज्ञा पुं० दे० "दोधाघ" ।
 दोहा-वि० दे० "दो" ।
 संज्ञा पुं० दे० "दो" ।
 दोड * + वि० [हिं० दो] दोहों ।
 दोऊ * + वि० [हिं० दो] दोहों ।
 दोक-संज्ञा पुं० [हिं० दो + का (प्रत्य०)] दो बप की उन्न का
 बड़ेका ।
 दोकड़ा-संज्ञा पुं० दे० "दुकड़ा" ।

दोकरा-संज्ञा पुं० दे० "दुकड़ा" ।
 दोकला-संज्ञा पुं० [हिं० दो + कल] (१) दो कल या पंचवाला
 ताता । वह ताता जिसके अंदर दो कलों या पंच होते हैं ।
 (२) एक प्रकार की मजबूत घेड़ी ।

दोकोहा-संज्ञा पुं० [हिं० दो + कोह = कूर] दो कूरवाला जूट ।
 वह जूट जिसकी पीठ पर दो कूर हों ।
 दोसंभा-संज्ञा पुं० [हिं० दो + संभा] एक प्रकार का नैचा जिसमें
 कुकरी नहीं होती । वह नैचा काट कर बोहे की कमली पर
 बनाया जाता है ।

दोख * + संज्ञा पुं० दे० "दोष" ।
 दोखना * + क्रि० घ० [हिं० दोष + ना (प्रत्य०)] दोष लगाना ।
 दोष लगाना ।

दोखी * + संज्ञा पुं० [हिं० दोष] (१) दे० "दोषी" । (२) दुर्बल ।
 जिसमें कोई दोष हो । (३) शत्रु । वीर । (हिं०)

दोगंग-संज्ञा स्त्री० [हिं० दो + गंग] दो नदियों के बीच का प्रदेश ।
 दोगंडी-संज्ञा स्त्री० [हिं० दो + गंडी = गण्ड संज्ञा या चिद्र] (१) वह
 चित्री या इमली का चौपाई जिसे लहके जूआ खेजने में येई-
 मानी करने के लिये दोनों ओर से घिस लेते हैं और जिसके
 दोनों ओर का काटा अंग निकल जाता और संकट अंग
 निकल आता है । (२) भगड़ा यखेड़ा करनेवाला मनुष्य ।
 फटादी । बपाती । इपदी ।

दोगरा-संज्ञा पुं० [हिं० दूंगर = पहाड़ी] दुंगर देश का निवासी
 जिसे दोगरा कहते हैं ।

दोगला-संज्ञा पुं० [का० दोगलः] [स्त्री० दोगली] (१) वह
 मनुष्य जो अपनी माता के असली पति से नहीं बल्कि
 उसके बार से उत्पन्न हुआ हो । गारज । (२) वह जीव
 जिसके माता-पिता भिन्न भिन्न जातियों के हों । जैसे, देखी
 और चिड़कपती से उत्पन्न दोगला कुत्ता ।

संज्ञा पुं० [हिं० दो + कल] घास की कमचियों का बना
 हुआ एक गोल और कुछ गहरा (टोकरी का सा) वाद्य
 जिससे किसान लोग पानी हलौचते हैं ।

दोगा-संज्ञा पुं० [सं० द्विक, हिं० दुका] (१) एक प्रकार का
 बिहाफ जो मोटे देखी कपड़े पर घेल घटे छाप कर बनाया
 जाता है । (२) पानी में घोला हुआ सूना जिससे सफेदी
 की जाती है ।

दोगाड़ा-संज्ञा पुं० [हिं० दो + ?] शोगली बंदूक ।
 दोगुना-वि० दे० "दुगना" ।
 दोखंद-वि० [का०] दुगना ।
 दोच-संज्ञा स्त्री० [हिं० दोच] (१) दुपचा । शसमंसल । (२)
 कटा । हुःल । उ०—मनदि यह परतीत आई दूरि हरिहौ ।
 दोच । सूर प्रभु द्विखि मिखि रहैगी लाज दारौ मोच ।
 —सूर । (३) दयाव । दयापू. जाने का भाव ।

दोचन-संज्ञा स्त्री० [हि० दोचन] (१) दुबघा। असमंजस। (२) दबाव। दबाव में पड़ने का भाव। (३) कष्ट। दुःख। व०—मनमोहिं भाटी सो खंगत मरति सोचरी सोचन। ऐसी गति मेरी तुम आगे करत कहा जियदोचन।—सूर।

दोचना-क्रि० सं० [हि० दोच] दबाव डालना। कोई काम करने के लिये बहुत जोर देना।

दोचछा-संज्ञा पुं० [हि० दो+चछा (पक्ष) ?] यह ध्वजन जो बीच में से छमरी हुई और दोनों ओर बाहुई हो। दोपखिया ध्वजन।

दोचिचा-वि० [हि० दो+चिचा] [स्त्री० दोचिची] जिसका चित्त एकाम न हो, दो कामों या बातों में बँटा हो। वद्विग्न-चित्त।

दोचिची-संज्ञा स्त्री० [हि० दो+चिच] "दोचिचा" होने का भाव। चित्त की वद्विग्नता। ध्यान का दो कामों या बातों में बँटा रहना।

दोचोचा-संज्ञा पुं० [हि० दो+चा० नीच] वह बड़ा सेना जिसमें दो दो चोचें लगती हों।

दोजा-संज्ञा स्त्री० [हि० दो] पक्ष की द्वितीया तिथि। दूज। व०—दोज सती उर्वी प्रेम, राजत स्वाम अकास में। आड़ी भीत लु नेम, ता ऊपर हो देख ले।—रसनिधि।

संज्ञा पुं० [सं०] संगीत में अष्टताल का एक भेद।

दोजई-संज्ञा स्त्री० [देश०] नकाशों का एक औजार जो गोलाकार वृत्त बनाने के काम में आता है। यह छेनी के आकार का होता है।

दोजल-संज्ञा पुं० [फा०] मुसलमानों के धार्मिक विश्वास के अनुसार मरक जिसके सात विभाग हैं और जिसमें छुट तथा पापी मनुष्य मरने के उपरांत रखे जाते हैं।

संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का पौधा जिसके फूल सुंदर होते हैं।

दोजखी-वि० [फा०] (१) दोजल संबंधी, दोजल का। (२) पापी। बहुत बड़ा अपराधी जो दोजल में भेजे जाने के योग्य हो।

दोजखी-संज्ञा स्त्री० [फा०] दोजल की बंदूक।
दोजा-संज्ञा पुं० [हि० दो] वह पुरुष जिसका दूसरा विवाह हो।
दोयारा व्यादा हुआ आदमी। कल्याण-साध्य।
† वि० दे० "दूजा"।

दोजान-क्रि० वि० [फा०] घुटने के धल या दोनों घुटने टेककर बैठना।

दोजिया-संज्ञा स्त्री० [हि० दो+यी या जीव] गर्भवती स्त्री। वह स्त्री जिसके पेट में बच्चा हो।

दोजीरा-संज्ञा पुं० [हि० दो+जीरा] एक प्रकार का चावल।

दोजीचा-संज्ञा स्त्री० [हि० दो+जीव] गर्भवती स्त्री। वह स्त्री जिसके पेट में बच्चा हो।

दोती-संज्ञा स्त्री० दे० "दावात"।

दोतरफा-वि० [फा०] दोनों तरफ का। दोनों ओर संबंधी।
क्रि० वि० दोनों तरफ। दोनों ओर।

दोतरफा-वि० पुं० दे० "दोतरफा"।

दोतला-वि० दे० "दोतला"।

दोतला-वि० [हि० दो+तल] दो खंड का। दो मंजिबा। जैसे, दोतला मकान।

दोतही-संज्ञा स्त्री० [हि० दो+तह] एक प्रकार की ऐसी मोटी चादर जो दोहरी करके बिछाने के काम में आती है। दोत्ती।

दोता-संज्ञा पुं० दे० "दोतही"।

दोतारा-संज्ञा पुं० [हि० दो+तार (युत)] एक प्रकार का दुखाल।

संज्ञा पुं० [हि० दो+तार (पाठ)] एकतारे की तरह का एक प्रकार का वाद्य। एकतारे की अपेक्षा इसमें यह विशेषता होती है कि इसमें पजाने के लिये एक के बदले दो तार होते हैं।

विशेष—दे० "एकतारा"।

दोदना-क्रि० सं० [हि० दो (दोहराना)] किसी की कही प्रत्यक्ष बात से इनकार करना। प्रत्यक्ष बात से मुकरना।

दोदरी-संज्ञा स्त्री० [नेपाली] एक प्रकार का सदाबहार पेड़ जो दारजिलिंग, सिक्किम, भूटान और पूर्वी बंगाल में पाया जाता है। इसकी लकड़ी काली, चिकनी और कड़ी होती है और इमारत के काम में आती है।

दोदल-संज्ञा पुं० [सं० द्विल] (१) चने की दाख या तरकारी। (२) कचनार की कलियाँ जिनकी तरकारी भी बनती है और अचार भी पड़ता है।

दोदस्ता खिलाड़ी-संज्ञा पुं० [फा०] तारा के तुड़प के खेल में किसी एक खिलाड़ी का एक साथ बाकी दोनों खिलाड़ियों का मात करना।

दोदा-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बड़ा कौवा (पक्षी) जिसकी लंबाई छेड़ दो हाथ होती है। इसका रंग काला, तथा चोंच और पैर चमकीले होते हैं। यह गाँव, देहात या जंगलों में बहुत होता है। इसकी आदतें मामूली कौवे की सी होती हैं। यह ऊँचे वृक्षों पर घोंसला बनाता है और पूस से फागुन तक अंडे देता है। एक बार में इसके पंच अंडे होते हैं।

दोदाना-क्रि० सं० [हि० दोरना] किसी को दोदने में प्रवृत्त करना। दोदने का काम दूसरे से कराना।

दोदामी-संज्ञा स्त्री० दे० "दुदामी"।

दोदिन-संज्ञा पुं० [देश०] रीठे की जाति का एक पेड़ जिसके फलों का व्यवहार साधुन की तरह कपड़े साफ करने में होता है। इसके पत्ते चौपायों को खिलाए जाते हैं और बीज दवा के काम में आते हैं।

दोदिला-वि० [हि० दो + िल] जिसका मन दो कामों या बातों में बँटा हो, प्रकाम न हो। जिसका चित्त एक बात पर जमा न हो वहिक दो तरफ बँटा हो। दोचिन्ता।

दोदिली-संज्ञा स्त्री० [हि० दो + िल] दोदिला होने का भाव। चित्त की अस्थिरता। दोचिन्ती।

दोघ-संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० दोघे] (१) ग्वाळा। चहिर। (२) बद्धा। माय का बच्चा। (३) वह कवि जो पुरस्कार के लिये कविता करता हो।

दोघक-संज्ञा पुं० [सं०] एक बर्षवृत्त जिसमें तीन भगण और श्रंत में दो गुहबर्ष होते हैं। इसका दूसरा नाम 'बंधु' भी है। ३०—मागु न गो दुहि दे नंदलाबा। पायि गहे कहलौं प्रथमाबा। दोघ करँ सब भारत यानी। या जिस लै घर जायँ सथानी।

दोघार-संज्ञा पुं० [हि० दो + धार] भाजा। बरफ़। (हिं०) दोघारा-वि० [हिं० दो + धार] [स्त्री० दोघारी] दोहरी बाइका। जिसके दोनों ओर धार या बाइ हो। संज्ञा पुं० एक प्रकार का धूर।

दोान-संज्ञा पुं० [हिं० दो] दो पहाड़ों के बीच की नीची जमीन। संज्ञा पुं० [हिं० दो + नद] (१) दो नदियों के बीच की जमीन। दोघाया। (२) दो नदियों का संगम स्थान। (३) दो नदियों का मेज। (४) दो बस्तुओं की संधि वा मेज। ३०—विष तिथि तरयि किरोर वय पुन्यकाज सम दोम। काह पुन्यनि पाह्यत यसै संधि सकोन ॥—विहारी।

संज्ञा पुं० [सं० द्रेण] काठ का वह लंबा और बीच से खोलला डुकड़ा जिससे धान के खेतों में सिंचाई की जाती है। यह धान फूटने की ढँकली के आकार का होता है और उसी की तरह जमीन पर लगा रहता है। पानी लेने के लिये इसका एक सिरा बहुत चौड़ा होता है जो ताल में रहता है। इस सिरे को पहले पानी में डुबाते हैं और जब उसमें पानी भर जाता है तब उसे ऊपर की ओर उठाते हैं जिससे उसका दूसरा सिरा नीचे हो जाता है और उसके खोलले मार्ग से पानी बाली में चला जाता है।

दोानली-वि० [हिं०] दो + नल] दो नाजबाली। जिसमें दो नालें हों। जैसे, दोानली बंदूक।

दोाना-संज्ञा पुं० [सं० द्रेण] [स्त्री० दोना] पत्तों का बना हुआ कटेरे के आकार का छोटा गहरा पात्र जिसमें पाने की चीज़ें आदि रखते हैं। ३०—कंद मूल फल भरि भरी दोाना। चबे रंक अनु लूटन सोना।—तुलसी।

मुदा०—दोाना चढ़ाना = किसी की समाधि आदि पर फूल मिठाई चढ़ाना। दोाना देना = (१) दोाना चढ़ाना। (२) अपने भोजन के पात्र में से कुछ भोजन किसी को देना जिससे देनेवाले की प्रसन्नता और पानेवाले को समान प्रगट होता

है। दोाना खाना या चारना = याजार की मिठाई आदि खाना। दोानों की घाट पढ़ना = याजारी भोजन का चक्का पढ़ना।

संज्ञा पुं० दे० "दोाना" (मरवा) दोनिया १—संज्ञा स्त्री० [हिं० दोना का स्त्री० रूप०] छोटा दोना। ३०—यक दोनिया मँहँ दियो बतसा। कथो देहू यक यक सब पास।—सुराज।

दोनी १—संज्ञा स्त्री० [हिं० दोना का स्त्री० रूप०] छोटा दाना। ३०—(क) तुलसी स्वामी स्वामिनी जेहे मोहौं हैं भासिनी, सोभा सुधा पियँ करि बैसियाँ दोनी।—तुलसी। (ख) दूध भात की दोनी देहौं सोने चोंच मटेहौं। जब सिय सहित विज्ञोकि नयन भरि राम लखन उर लैहौं।—तुलसी।

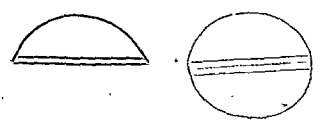
दोनेर-वि० [हिं० दो + नर (प्रत्य०)] एक और दूसरा। ऐसे विरिष्ट दो (मनुष्य या पदार्थ) जिसका पहले कुछ धर्पण हो चुका हो और जिनमें से फेई छोड़ा न जा सकता हो। समय। जैसे, (क) राम और कृष्ण दोनों गए। (ख) वह कल और आज दोनों दिन छाया। (ग) वह धन और मान दोनों चाहता है। (घ) उसके माँ बाप दोनों अचे हैं।

दोपंधी-संज्ञा स्त्री० [हिं० दो + पंध] एक प्रकार की दोहरे खाने की बाली, जिहाँ प्रायः जिसकी डुरतियाँ बनाती हैं।

दोपह्ला-संज्ञा पुं० दे० "दुपह्ला"। दोपलका-वि० [हिं० दो + पलक या पलक] (१) दो परले का नगीना। वह नगीना जिसके भीतर नकली या हल्का नगा हो और ऊपर असली वा बड़िया हो। दोहरा नगीना। (२) एक प्रकार का कव्तर।

दोपलिया १-वि०, संज्ञा स्त्री० दे० "दोपह्ला"। दोपह्ला-वि० [हिं० दो + पल्ला + ई (प्रत्य०)] दो परलेवाला। जिसमें दो परले हों।

संज्ञा स्त्री० मखमल, अढ़ी आदि की एक प्रकार की टोपी जिसमें कपड़े के दो डुकड़े एक साथ सिझे होते हैं। इसका व्यवहार खलनऊ, प्रयाग और कारी आदि में अधिकता से होता है।



दोपहर-संज्ञा स्त्री० [हिं० दो + पहर] मध्याह्नकाल। सवेरे और संध्या के बीच का समय। यह समय जब कि सूर्य मध्य आकाश में रहता है।

मुहा०—दोपहर टलना=दोपहर के उपरांत और समय बीतना।

दोपहरिया †-संज्ञा स्त्री० दे० “दोपहर”।

दोपहरी †-संज्ञा स्त्री० दे० “दोपहर”।

दोपीठा-वि० [हिं० दो + पठ] दोरखा। दोनों ओर समान रंग रूप का।

संज्ञा पुं० कागज आदि का एक ओर छपने के उपरांत दूसरी ओर छपना (मिस)।

दोपीठा-संज्ञा पुं० [हिं० दो + पाव] (१) पान की आधी टोली। (संबोली)। (२) किसी वस्तु का आधा।

दोप्याजा-संज्ञा पुं० [फा०] एक प्रकार का पका हुआ मांस जिसमें ताकारी नहीं पड़ती और प्याज दो बार पड़ता है।

दोफसली-वि० [हिं० दो + फ० फसल + ई० (प्रत्य०)] (१) दोनों फसलों के संबंध का। जैसे, दोफसली जमीन। (२) जो दोनों ओर लग सके। दोनों ओर काम देने योग्य। जैसे, दोफसली बात।

दोखल-संज्ञा पुं० [?] दोप। अर्थात् १० व०—

(क) दोखल कहा देति मोहिं सजनी तू तो बड़ी सुमान। अपनी सी मैं बहुवै कीन्ही रहति न तेरी धान।—सूर।

(ख) दोखल देति सबै मोही को वन पडयो मैं भ्रामे।—सूर।

क्रि० प्र०—देना।

दोबारा-क्रि० वि० [फा०] दूसरी बार। दूसरी दफा। एक बार हो चुकने के उपरांत फिर एक बार।

संज्ञा स्त्री० [फा०] (१) दो-आतश शराय। (२) दो-आतदा शरफ आदि। (३) दो बार साफ की हुई चीनी।

(४) एक बार तैयार करने के उपरांत वही तैयार चीज से फिर दूसरी बार तैयार की हुई चीज।

दोबाला-वि० [फा०] दूना। दुगना।

दोभापिया-संज्ञा पुं० दे० “दुभापिया”।

दोमंजिला-वि० [फा०] दो खंड का। दोखंड। जिसमें दो मंजिलें हो। जैसे, दोमंजिला मकान।

दोमट-संज्ञा स्त्री० [हिं० दो + मिट्टी] यह भूमि जिसकी मिट्टी में कुछ बालू भी मिला हो। दूमट भूमि।

दोमहला-वि० [हिं० दो + महल] दो खंड का। दो मंजिला। जैसे, दोमहला मकान।

दोमरगा-संज्ञा पुं० [हिं० दो + मार्ग] एक प्रकार का देरी मोटा कपड़ा जिसकी जनानी घेतियाँ बनाई जाती हैं। यह मिर्जापुर में बहुत बनता है।

दोमुह्रा-वि० [हिं० दो + मुँह] (१) दो मुँहवाला। जिसे दो मुँह हों। जैसे, दोमुँहा साँप। (२) दोहरी चाल चलने या बात करनेवाला। कपटी।

दोमुह्राँ साँप-संज्ञा पुं० [हिं० दो + मुँह + साँप] (१) एक प्रकार का साँप जो प्रायः हाथ भर लंबा होता है और जिसकी दुम मोटी होने के कारण मुँह के समान ही जान पड़ती है। न तो इसमें विष होता है और न यह किसी को काटता है। इसके विषय में लोगों में प्रसिद्ध है कि छ महीने तक इसका मुँह एक ओर रहता है और छ महीने इसकी दुम का सिरा मुँह बन जाता है और पहलेवाला मुँह दुम बन जाता है।

(२) दो तरह की बातें कहनेवाला। कुटिल। कपटी।

दोमुह्री-संज्ञा स्त्री० [हिं० दो + मुँह] सेनारों का एक औजार जो नकारी के काम में आता है।

दोय० †-वि० (१) दे० “दो”। (२) दे० “दोने”।

संज्ञा पुं० दे० “दो”।

दोयम-वि० [फा०] दूसरा। दूसरे नंबर का। जो क्रम में दो के स्थान पर हो।

दोयरी-संज्ञा स्त्री० [दे०] एक जंगली पेड़ जो दारजिलिंग के जंगलों में बहुत होता है। इसकी लकड़ी सफेद और मजबूत होती है और सेंद्रक आदि बनाने तथा इमारत के काम में आती है। इसकी लकड़ी का कोयला भी बनाया जाता है जो बहुत दूर तक दहता है।

दोयल-संज्ञा पुं० [दे०] बया पत्नी।

दोहरंगा-वि० [हिं० दो + रंग] (१) दो रंग का। जिसमें दो रंग हों। जैसे, दोहरंगा किनारा, दोहरंगा कागज। (२) जो दो-मुह्राँ या दो-तरफ हो। जो दोनों ओर लग या चल सके। दोनों पक्षों में धा सकनेवाला। (३) जो व्यभिचार से बचप हुआ हो। पर्येसकर। दोगला। (बव०)

दोहरंगी-संज्ञा स्त्री० [हिं० दो + रंग + ई० (प्रत्य०)] (१) दोरंगे या दोमुँहे होने का भाव। दोनों ओर चलने या लगने का भाव। (२) छल। कपट।

दोर्-संज्ञा स्त्री० [हिं० दो] दोबारा जाती हुई जमीन। यह जमीन जो दो दफे जाती गई हो।

दोर्दंड * †-वि० दे० “दुर्दंड”।

दोर्सा-संज्ञा पुं० दे० “दोसत”।

दोर्सा-वि० [हिं० दो + रस] दो प्रकार के स्वाद या रसवाला। जिसमें दो तरह के रस या स्वाद हों।

संज्ञा पुं० एक प्रकार का पीने का तमाह जिसका भूषण कटघा और सीधा मिला हुआ होता है।

दोरा †-संज्ञा पुं० [दे०] हब की मुठिया के पास खगी हुई बाल की वह नली जिसमें बौने के लिये बीज बाँधा जाता है। भाख।

दोराडा-संज्ञा पुं० [हिं० दो + राह] वह स्थान जहाँ से भारे की ओर दो मार्ग जाते हैं।

दोरी †-संज्ञा स्त्री० दे० “दोरी”।

दोहला-वि० [फा०] (१) जिसके दोनों ओर समान रंग या खेल बूटे हों जैसे, दोहला कपड़ा, दोहली साड़ी, दोहला साफा । (२) जिसके एक ओर एक रंग और दूसरी ओर दूसरा रंग हो। कपड़ों की इस प्रकार की रंगाई प्रायः खलनक और बीजानेर में होती है । (३) सेनाओं का एक योजनार जो हँसुली बनाने के काम में आता है ।

दोरेजी-उंठा खी० [फा०] नील की वह दूसरी नसल जो पहले साज की फसल कट जाने के उपरान्त उसकी जड़ों से फिर होती है ।

दोड़ियाँ-उंठा खी० [सं०] सूर्यमिदोत के अनुसार यह ज्या को भुज के आकार की हो ।

दोदंड-उंठा पुं० [सं०] सुमदंड ।

दोला-उंठा पुं० [सं०] (१) झूला । हिंदोला । (२) डोली । चंदोला ।

दोलाड़ा-वि० [हिं० दो + कड़] [खी० दोहड़ी] दो लड़कों का । जिसमें दो लड़के हों ।

दोलासी-उंठा पुं० दे० "दुलसी" ।

दोला-उंठा खी० [सं०] (१) नील का पेड़ । (२) हिंदोला । झूला । (३) डोली या चंदोला ।

दोलायंत्र-उंठा पुं० [सं०] वीथों का एक यंत्र जिसकी सहायता से वे ओपधियों के भ्रंशें बतारते हैं ।

विशेष—एक घड़े में कुछ द्रव पदार्थ (सेज घी पानी आदि) भरकर उसे आग पर चढ़ाते हैं । कुछ ओपधियों की पोखली भाँचकर इस पोखली को एक कोरे से घड़े के मुँह पर रखी हुई लकड़ी से इस तरह खटकाते हैं कि वह पोखली उस द्रव पदार्थ के बीच में रहे पर घड़े की पेंदी से म छू जाय । इस प्रकार इन ओपधियों का भ्रंशें उस तरह पदार्थ में बतर आता है ।

दोलायमान-वि० [सं०] झूला हुआ । हिलता हुआ ।

दोलालुद्ध-उंठा पुं० [सं०] यह युद्ध जिसमें बार बार दोनों पक्षों की हार जीत होती रहे और जयदी किसी एक पक्ष की अंतिम विजय न हो ।

दोलाया १-उंठा पुं० [?] यह झुआँ जिसमें दो ओर दो गराड़ियाँ लगी हों ।

दोलिका-उंठा खी० [सं०] (१) हिंदोला । झूला । (२) डोली ।

दोलोही १-उंठा खी० दे० "दुलोही" ।

दोल्-उंठा पुं० [?] क्षति । (हिं०)

दोलोत्सव-उंठा पुं० [सं०] वैष्णवों का एक त्यौहार जिसमें वे अपने डाऊट जी को फूलों के हिंदोले पर सुकाते हैं । यह उत्सव कागुन की पूर्विका को होता है ।

दोया १-उंठा पुं० [हिं० देववास] देववास नाम का बाल जो बंगाल में बहुत होता है ।

दोया-उंठा पुं० [देग०] एक प्रकार का बाल जिसका व्यवहार रंग बनाने में होता है ।

दोयामाल-उंठा पुं० [फा०] यह अंगोष्ठा या लीलिया जो कसाई अपने पास रखते हैं ।

दोयाखा-उंठा पुं० [फा०] (१) वह शमादान जिसमें दो बसियाँ हों । दो दावों की दीवारगीर । (२) भाँग छानने की लकड़ी जिसमें दो शाखें होती हैं और जिसमें साफ़ी पाँच कर भाँग छानते हैं । इसका आकार ऐसा होता है —<

दोयाला-उंठा पुं० दे० "दुयाला" ।

दोय-उंठा पुं० [सं०] (१) डुरापन । खराबी । अयगुण । ऐय । नुरस । जैसे, अराल या कान का दोय, किलने या पढ़ने का दोय, शासन के दोष आदि ।

मुहा०—दोय लगाना = किसी के संबंध में यह कहना कि उस में अयुक्त दोष है । दोष का आरोप करना । दोष निकालना = दोष का पता लगाना । अयगुण को प्रसिद्ध या प्रकट करना ।

धौ०—दोयदर्शी = दोष दिखलानेवाला । ऐय दिखलानेवाला । (२) लगाना हुआ अघराध । अभियोग । कलंडक ।

मुहा०—दोय देना या लगाना = कलंडन या कलंडक का आरोप करना ।

धौ०—दोयारोपण = दोष देना या लगाना ।

(३) अघराध । कसूर । जुर्म । (४) पाप । पातक ।

(५) वैद्यक के अनुसार शरीर में रहनेवाले वात, पित्त और कफ जिनके कुपित होने से शरीर में विकार प्रयत्न व्याधि उत्पन्न होती है । (६) न्याय के अनुसार वह मानसिक भाव जो मिथ्या ज्ञान से उत्पन्न होता है और जिसकी प्रेरणा से मनुष्य मझे या जुरे कार्यों में प्रवृत्त होता है ।

(७) नव्य न्याय में वह वृत्ति जो तर्क के अर्थव्यों का प्रयोग करने में होती है । यह तीन प्रकार की होती है—अतिव्याप्ति, अच्यवति और असद्वभाव । (८) सीमांता में वह अदृष्टकाल जो विधि के न करने या उसके विपरीत आचरण से होता है । (९) साहित्य में वे बातें जिनसे काव्य के गुण में कमी हो जाती है । यह पाँच प्रकार का होता है—पद-दोष, पदांश-दोष, वाक्य-दोष, अर्थ-दोष और रस-दोष । इनमें से हर एक के अलग अलग कई गीण भेद हैं । (१०) भागवत के अनुसार षाठ वसुधों में से एक का नाम ।

(११) प्रदोष ।

उंठा पुं० [सं० देय] दोष । विरोध । शत्रुता । ४०—तो जन जगत महान्त है जाके राग न दोष । तुलसी तृष्ण त्यागि के गहये शरील सतोष । —तुलसी ।

दोषक-उंठा पुं० [सं०] बड़ड़ा । गौ का बच्चा ।

दोपग्राही-संज्ञा पुं० [सं०] दुष्ट। दुर्जन ।
 दोपग्र-संज्ञा पुं० [सं०] वह औपच जिससे कुपित कफ, वात और पित्त का दोष शांत हो।
 दोपग्र-संज्ञा पुं० [सं०] पंडित ।
 दोपता-संज्ञा स्त्री० [सं०] दोष का भाव ।
 दोपत्व-संज्ञा पुं० [सं०] दोष का भाव ।
 दोपन-संज्ञा पुं० [सं०] श्लेष्मण दोष । दूषण । अपराध । उ०—
 महरी तुमहि कछु दोपन नाहीं । हम को देखि देखि
 सुसहाहीं।—चूर ।
 दोपना-क्रि० सं० [सं० दूषण + न (प्रत्य०)] दोष लगाना ।
 अपराध लगाना । उ०—(क) चौरा होय सुखि पर मोखी ।
 देय जो सूरी तेहिं नहिं देखी।—जायसी (ख) कहू कहू
 फेरा नित यह दोषे । बारहिं बार फिर संतोषे।—जायसी ।
 दोपपत्र-संज्ञा पुं० [सं०] यह कागज जिसपर किसी अपराधी
 के अपराधों का विवरण लिखा हो । फर्द करारदाद जुर्म ।
 दोपल-संज्ञा पुं० [सं०] जिसमें दोष हो । दोषयुक्त । दूषित ।
 दोषा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) रात्रि । रात ।
 यौ०—दोषाकर ।
 (२) संध्या । (३) सुजा । राई ।
 दोषाकर-संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा ।
 दोषाकलेशी-संज्ञा स्त्री० [सं०] वनतुलसी ।
 दोषाक्षर-संज्ञा पुं० [सं०] लगाया हुआ अपराध । अभियोग ।
 दोषातिलक-संज्ञा पुं० [सं०] मदीय । दीपक । दीभा ।
 दोषावह-वि० [सं०] दोषयुक्त । दोषपूर्ण । जिसमें दोष हो ।
 दोषिक-संज्ञा पुं० [सं०] रोग । बीमारी ।
 वि० दे० “दूषित” ।
 दोषिनी-संज्ञा स्त्री० [हिं० दोषी] (१) अपराधिनी । (२)
 पाप करनेवाली स्त्री । (३) वह कन्या जिसने कुंबारेपन
 ही में पुरुषप्रसंग किया हो ।
 दोषी-संज्ञा पुं० [सं० दोषिन्] (१) अपराधी । कसूरवार । (२)
 पापी । (३) मुजरिम । अभियुक्त । (३) जिसमें दोष हो ।
 जिसमें पेश या त्रुटि हो ।
 दोषी-संज्ञा पुं० दे० “दोष” ।
 दोषदात्री-संज्ञा स्त्री० [फा० दोस्तदारी] मित्रता ।
 दोसरता-संज्ञा पुं० [हिं० दूसरा + ता (प्रत्य०)] द्विरागमन ।
 गौना । मकलावा ।
 दोसरी-संज्ञा स्त्री० [हिं० दो] दो बार जाती हुई जमीन ।
 दोस्ता-संज्ञा स्त्री० दे० “दोषा” ।
 संज्ञा पुं० [दे०] एक प्रकार की घास जो पानी में होती
 है । इसका बहुत अधिक अंश पानी में दूबा रहता है और
 इसमें एक प्रकार के दाने अधिकता से होते हैं ।
 दोस्ताघ-संज्ञा पुं० दे० “दुस्ताघ” ।

दोस्ताल-संज्ञा पुं० [हिं० दो + ताल = वध] दो वर्ष का । दो वर्ष
 का पुराना ।
 दोसाही-वि० [हिं० दो + ही ?] दोकसला । (जमीन)
 जिसमें साल में दो फसलें पैदा हों ।
 दोसी-संज्ञा पुं० [दे०] दही ।
 संज्ञा पुं० दे० “घोसी” ।
 दोसूती-संज्ञा स्त्री० [हिं० दो + सूत] दोहती या दुसूती नाम की
 मोटी चादर जो बिछाने के काम में आती है ।
 दोस्त-संज्ञा पुं० [फा०] (१) मित्र । स्नेही । (२) वह जिस
 से अनुचित संबंध हो । वार । (बाजारू)
 दोस्तदार-संज्ञा पुं० दे० “दोस्त” ।
 दोस्तदारी-संज्ञा स्त्री० दे० “दोस्ती” ।
 दोस्ताना-संज्ञा पुं० [फा०] (१) दोस्ती । मित्रता । (२) मित्रता
 का व्यवहार ।
 वि० दोस्ती का । मित्रता का ।
 दोस्ती-संज्ञा स्त्री० [फा०] (१) मित्रता । स्नेह । (२) अनु-
 चित संबंध । वाराना । (बाजारू)
 दोस्ती रोटी [फा० दोस्ती + हिं० रोटी] एक प्रकार की रोटी जो
 आटे की दो लोदों के बीच में घी लगाकर और एक को
 दूसरी पर रखकर थेलते और तब तथे पर घी लगाकर पकाते
 हैं । दो परत की रोटी । हुण्डी
 विदोष-पकने पर इसमें की दोनों लोहर्वा अलग अलग हो
 जाती हैं ।
 दोहरी-संज्ञा पुं० दे० “दोह” ।
 दोहगा-संज्ञा स्त्री० [सं० डोंगा] वह स्त्री जिसका पति मर गया
 हो और जिसके किसी दूसरे पुरुष ने रख लिया हो ।
 रखनी । सुरतिन । डपगली । उ०—दोहगा सुतिय सोहागिन
 मेरी । गून जाति अच्युत कुल केरी।—विश्राम ।
 दोहज-संज्ञा पुं० [सं०] दूध ।
 दोहता-संज्ञा पुं० [सं० दोहित] [स्त्री० दोहती] लड़की का
 लड़का । नाती । नवासा ।
 दोहती-संज्ञा स्त्री० दे० “दोस्ती रोटी” ।
 दोहदहड-संज्ञा स्त्री० [हिं० दो + दाय] दोनों हाथों से माया
 हुआ धपड़ ।
 क्रि० प्र०—पीटना ।—मारना ।
 दोहदहा-क्रि० वि० [हिं० दो + दाय] दोनों हाथों से । दोनों हाथों
 के द्वारा ।
 वि० दोनों हाथों का । जो दोनों हाथों से हो ।

दोहद—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) गर्भवती स्त्री की इच्छा। वकौना।
 व०—प्रथम दोहदें क्यों करीं निष्फल सुनि यह बात।

—केशव। (२) गर्भवती स्त्री की मतली इत्यादि (३) गर्भावस्था। (४) गर्भ का चिह्न। (५) गर्भ। (६)

एक प्राचीन विश्वास जिसके अनुसार सुंदर स्त्री के स्पर्श से प्रियंगु, पान की पीक घूंकने से मौलसिरी, चरणाघात से अशोक, दृष्टिघात से तिलक, आलिंगन से कुर्वक, मृदुवाता से मंदा, हँसी से पट्ट, रूँक मारने से चंपा, मण्डूमान से धाम, और नाचने से कचनार इत्यादि वृक्ष फूलते हैं।

(७) फलित ज्योतिष के अनुसार यात्रा के समय दिशा, वार या तिथि के भेद से उनके दोष की शक्ति के लिये खाप या पीपू आनेवाले कुड़ू निरिच्छत पदार्थ। इनको अलग अलग दिग्दोहद, पारदोहद और तिथिदोहद कहते हैं। जैसे, यदि पूर्व की ओर जाने में कोई दोष हो तो उसकी शक्ति भी खाने से, होती है। पश्चिम जाने में कोई दोष हो तो वह मड़ली खाने से, दक्षिण की ओर का दोष तिल की नौर खाने से और उत्तर की ओर का दोष दूध पीने से शांत होता है। इसी प्रकार रविवार को धो, सोमवार को दूध, मंगल को गुड़, बुध को तिल, शुक्रस्पति को दही, शुक को जौ और शनिवार को बड़द खाने से यात्रा-संबंधी वार-दोष की शक्ति होती है। प्रतिपदा को मदार का पत्ता, द्वितीया को चावल का धोया हुआ पानी, तृतीया को धी आदि खाने से यात्रा-संबंधी तिथि-दोष की शक्ति होती है। इस प्रकार दोहद से किसी दिशा, वार या तिथि की यात्रा से होनेवाले समस्त अनिष्टों या दुष्ट प्रभों का निवारण हो जाता है।

दोहदवती—संज्ञा स्त्री० [सं०] गर्भिणी। गर्भवती स्त्री जिसने गर्भधारण किया हो।

दोहदान्विता—संज्ञा स्त्री० दे० "दोहदवती"।

दोहदोहीय—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का वैदिक गीत या साम।

दोहन—संज्ञा पुं० [सं०] (१) दुहन। गाय भैंस इत्यादि के साने से दूध निकालना। (२) दोहन।

दोहनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) दूध दुहने की इच्छा। मिट्टी का वह घातन जिसमें दूध दुहते हैं। व०—दोहनी हाथ की हाथी रही न रहयो मनमोहनी को मन हाथ में।—रंशु। (२) दूध दुहने का काम।

दोहर—संज्ञा स्त्री० [हिं० दो + हर + टट] एक प्रकार की चादर जो कपड़े की दो परतों को एक में नीकर बनाई जाती है। इसके चारों ओर गोठ लगी रहती है। इसमें कमी कमी कपड़े की दोनें तहें एक ही कपड़े की होनी हैं और कमी एक तह किसी मोटे कपड़े या छुई आदि की होती है और दूसरी तह मजबूल आदि महीन कपड़े की।

दोहरना—कि० अ० [हिं० दोहर] (१) दो बार होना। दूसरी आवृत्ति होना। (२) दोहरा होना। दो परतों का किया जाना।

संयो० कि०—उठना।—जाना।

कि० सं० दोहरा करना।

संयो० कि०—देना।

दो-हरफ—संज्ञा पुं० [फा०] थिहार। जानत।

कि० प्र०—भेजना।

दोहरा—वि० पुं० [हिं० दो + हर (प्रत्य०)] [स्त्री० दोहरी] (१)

दो परत या सह का। (२) दुगुना।

संज्ञा पुं० (१) एक ही पत्ते में लपेटे हुए पान के दो बीड़े। (संबोली)। (२) कतरी हुई सुपारी। सुपारी के छोटे छोटे टुकड़े। (३) दोहा नाम का छंद। विशेष—दे० "दोहा"।

दोहराना—कि० व० [हिं० दोहरा] (१) किसी बात को पुनः कहना या किसी काम को पुनः करना। किसी बात को दूसरी बार कहना या करना। किसी काम या बात की पुनरावृत्ति करना। † (२) किसी कपड़े या कागज आदि की दो नई करना। दोहरा करना।

कि० प्र०—जानना।—देना।

दोहरी पट—संज्ञा स्त्री० [हिं० दोहरी + पट] कुश्ती का एक पेंच।

दोहरी सखी—संज्ञा स्त्री० [हिं० दोहरी + सखी] कुश्ती का एक पेंच।

दोहल—संज्ञा पुं० [सं०] इच्छा।

दोहलवती—संज्ञा स्त्री० [सं०] गर्भवती स्त्री।

दोहला—वि० [हिं० दो + हल] दो बार की ब्याई हुई (गो आदि)। (बह गौ आदि) जिसने दो बार बच्चा दिया हो।

दोहली—संज्ञा पुं० [सं०] (१) अशोक वृक्ष। (२) आक का पेड़। मदार

संज्ञा स्त्री० वह भूमि जो ब्राह्मणों को दी गई हो।

दोहा—संज्ञा पुं० [हिं० दो + हा (प्रत्य०)] (१) एक हिंदी छंद जिसमें दोते हो चार चरण हैं, पर जो लिखा दो पंक्तियों में जाता है, अर्थात् पहला और दूसरा चरण एक पंक्ति में और तीसरा और चौथा चरण एक पंक्ति में लिखा जाता है। इस के पहले तथा तीसरे चरण में १३-१३ मात्राएँ और दूसरे तथा चौथे चरण में ११-११ मात्राएँ होती हैं। दूसरे और चौथे चरण का तुकत मिलना चाहिए। व०—राम नाम मण्डि दीप घर, जीह देहरी द्वार। तुलसी भीतर बाहिरो, ओ बाहसि छविधार।

विशेष—इसी के बलद देन से सोरठा हो जाता है।

(२) सहीये राग का एक भेद।

दोहाई—संज्ञा स्त्री० दे० "दुहाई"।

दोहाका—संज्ञा पुं० दे० "दोहाग" ।
 दोहागा—संज्ञा पुं० [सं० दोहाग्य] दुर्भाग्य । बदगलीबी । बद-
 किस्मती । अभाग्य । उ०—परम सोहाग निशहि न पारी ।
 भा दोहाग सेवा जय हारी ।—जायसी ।
 दोहागा—संज्ञा पुं० [हि० दोहाग] [स्त्री० दोहागिन] अभाग्य ।
 बदकिस्मत ।
 दोहाना—संज्ञा पुं० [दे०] नौ जवान बैल । घड़वा ।
 दोहापनय—संज्ञा पुं० [सं०] दूध ।
 दोहाव—संज्ञा पुं० [हि० दूहना] कारतकारों की गोरों का वह
 दूध जो जमींदार के घर जाता है ।
 दोहिता—संज्ञा पुं० [सं० दोहित] देवी का बेटा । नाती ।
 दोही—संज्ञा पुं० [हि० दो] एक छंद जो दोहों की भक्ति चार
 चरणों का होने पर भी दो ही पंक्तियों में लिखा जाता है ।
 इसके पहले और तीसरे चरण में पंद्रह पंद्रह मात्राएँ
 और दूसरे तथा चौथे चरण में ग्यारह ग्यारह मात्राएँ होती
 हैं । इसके अंत में एक लघु दोना चाहिए । उ०—विरद
 सुमिरि सुधि काव नित ही, हरि सुव धरन निहार । यह
 भव अवनिधि तें मुहिं हारत, कब प्रभु करिहूँ पार ।
 संज्ञा पुं० [सं० दोहिन] (१) दूध दुहनेवाला । (२)
 गवाला ।
 दोहिया—संज्ञा पुं० [?] एक प्रकार का पाँथा ।
 दोहरा—संज्ञा स्त्री० [दे०] वह भूमि जिसमें यालू अधिक हो ।
 बलुई जमीन ।
 दोहरा—वि० [सं०] दूहने योग्य । जो दूहा जा सके ।
 संज्ञा पुं० (१) दूध । (२) गाय, भैंस आदि जानवर जो
 दूध देते हैं ।
 दोह्य—अर्थ [सं० अपवा] घा । अपवा ।
 विशेष—दे० "दोह" ।
 दोहना—क्रि० प्र० दे० "दुसकना" ।
 दोहरा—संज्ञा पुं० [हि० दो = आग या गरमी] यह हलकी वर्षा जो
 गरमी के दिनों में तपी हुई धरती पर होती है ।
 क्रि० प्र०—पड़ना ।
 दोहच—संज्ञा स्त्री० दे० "दोच" ।
 दोहचना—क्रि० सं० [हि० दोहचना] (१) दूधवा ढाल कर लेना ।
 किसी न किसी प्रकार लेना । (२) लेने के लिये अचना ।
 विशेष—हलका प्रयोग, 'मांगना' क्रिया के साथ होता है ।
 उ०—संदुख मांगि दोहचि कं लाई सो बीना उपहार । फाटे
 पसन बाधि के द्विजवर अति दुखै तन हार ।—सूर ।
 दोहजा—संज्ञा पुं० [दे०] मधान । पाइ ।
 दोहीरा—संज्ञा स्त्री० [हि० दोहना वा दोहन] (१) एक साथ रस्ती में
 बंधे हुए बैलों का झुंड जो कठी फसल के चंटलों पर दाना
 फाड़ने के लिये फिराया जाता है ।

क्रि० प्र०—चलना ।—चलाना ।—वाधना ।—हांकना ।
 (२) यह रस्ती जिसे उन बैलों के गले में बालते हैं जो
 दाने के लिये फिराए जाते हैं । (३) झुंड ।
 दोह—संज्ञा स्त्री० [सं० दव] (१) आग । जंगल की आग ।
 उ०—(क) मन पाँचों के बस परा, मन के बस नहीं पाँच ।
 तित देखें तित दो कगी, तित भागीं तित आँच ।—कबीर ।
 (ख) सो बौं मातु घायु नीके रहियो । औं बौं हैं ल्यावों
 रघुबीहि दिन एस और दुखह दुख सहियो । लंक-
 वाहु धर आनि मानियो सोयु रामसेवक के कहियो ।
 तुलसी प्रभु को सुर सुख गँई मिटि जँई सप को सोच
 दो रहियो ।—तुलसी । (२) संताप । ताप । जहन । उ०—
 ससि से शीतल मेको खाये माई री तनि । याके बपु
 बरति अधिक अंग अंग दो, याके बपु मिटति रजनि जनि
 जनि । सय विपरीत भवे माधो विनु, हित जो करत
 अनहित सत की करनि । तुलसीदास स्वामसुंदर विरह
 की, दुसह दसा सो मोपे परति नहीं यरनि ।—तुलसी ।
 दोकूल—वि० [सं०] कपड़े का ।
 दोख—संज्ञा स्त्री० [हि० दोखना] (१) दोहने की क्रिया या भाव ।
 साधारण से अधिक वेग के साथ गति । द्रव्यगमन ।
 धावा । तेज़ी से चलने या जाने की क्रिया ।
 दो—दौड़पूर । दौड़धपाड़ । दौंदादौं ।
 मुहा०—दौड़ मारना = (१) वेग के साथ जाना । (२) दूर तक
 पहुँचना । लँवो यात्रा करना । जैसे, कलकत्ते से यहाँ आ
 पहुँचे, वहाँ लंबी दौड़ मारी या कगाई । दौड़लगावो = दे०
 "दौड़ मारना" ।
 (२) धावा । वेगपूर्वक आक्रमण । चढ़ाई । उ०—एक
 दौर करो दौर मेरो भर दौर कपि एक बार सिंधु पार सब
 को बहायहीं ।—हनुमान । (३) उद्योग में इधर उधर फिरने
 की क्रिया । प्रयत्न ।
 मुहा०—दौड़ मारना—उद्योग में इधर उधर फिरना । कोशिश में
 हेरान होना ।
 (४) हलगत । वेग । उ०—जेती खहर समुद्र की तेती
 मन की दौर ।—कबीर ।
 मुहा०—मन की दौड़—चित्त की एकता । कल्याण । उ०—भक्ति
 रूप भगवंत की भेव जो मन की दौर ।—कबीर ।
 (५) गति की सीमा । पहुँच । जैसे, मुहा की दौड़
 मसजिद तक ।
 (६) उद्योग की सीमा । प्रयत्नों की पहुँच । अधिक से अधिक
 ब्याप या यत्न जो हो सके । उ०—सीतापति रघुनाथ जी
 तुम खगि मेरी दौर । (७) बुद्धि की गति । अरु की पहुँच ।
 जैसे, जहाँ तक जिसकी दौड़ होगी वहाँ तक न अच्युत
 करेगा । (=) विस्तार । खंबाई । आयत । जैसे, दुहाले की

बेल या हाथियों की दीड़। (३) सिपाहियों का दल जो अपराधियों को एक धारणी कहीं पकड़ने के लिये जाय। जैसे, पुलिस की दीड़।

क्रि० प्र०—आना।—जाना।—पहुँचना।

(१) जहाज़ पर की वह चरखी जिसमें लकड़ी काट कर घुमाने से वह जंजीर खिसकती है जिसमें पतवार बँधा रहता है।

दोड़घपाड़—संज्ञा स्त्री० दे० “दोड़घूप”।

दोड़घूप—संज्ञा स्त्री० [हिं० दोड़ + घूप] किसी कार्य के लिये इधर उधर फिरने की क्रिया या भाव। किसी काम के लिये बार बार चारों ओर आना जाना। परिश्रम। प्रयत्न। ब्योग। जैसे, (क) बसने बहुत दोड़ घूप की है तब नौकरी मिली है। (ख) शमी रेशम का आरंभ है दोड़घूप करोगे तो अच्छा हो जायगा।

क्रि० प्र०—करना।—देना।

दोड़ना—क्रि० श्र० [सं० धोरण, हिं० धोरना] (१) साधारण से अधिक वेग के साथ गमन करना। द्रुतगति से चलना। मामूली चलने से ज्यादा तेज चलना। जैसे, (क) दोड़ कर न चले गिर पड़ोगे। (ख) वह लड़का उधर दोड़ा जा रहा है।

संयो० क्रि०—आना।—जाना।

मुहा०—दोड़ पड़ना = एक धारणी वेग के साथ गमन करना। जैसे, वहाँ वह दिखाई दिया कि आप उसकी ओर दोड़ पड़े। चढ़ दोड़ना = चढ़ाई करना। धाया करना। श्राकमण्य करना। दोड़ दोड़ कर आना = जल्दी जल्दी आना। बार बार आना। जैसे, मेरे पास क्या दोड़ दोड़ आते हो, मैं कुछ नहीं कर सकता। दोड़ दोड़ कर जाना = जल्दी जल्दी जाना। बार बार जाना। जैसे, उसके घर क्या रसदा है जो दोड़ दोड़ कर आते हो ?

(२) सहसा प्रयुक्त होना। झुक पड़ना। डबना। जैसे, तुम भन्ना घुरा नहीं देखते, जो बात हुई उसीके पीछे दौड़ पड़ते हो।

क्रि० प्र०—पड़ना।

(३) किसी प्रयत्न में इधर उधर फिरना। किसी काम के लिये चारों ओर बार बार आना जाना। ब्योग करना। कोशिश में हँरान होना। बग़ाय या चेष्टा करना। जैसे, (क) नौकरी के लिये वह बहुत दोड़ा, पर न मिली। (ख) उसकी बीमारी में वह बहुत दोड़ा।

दी०—दोड़ना पचना।

(४) फैलना। स्पष्ट होना। छा जाना। जैसे, स्याही, दोड़ना, छाकी दोड़ना, चेहरे पर खून दोड़ना। ४०—दुरिलीं दीरत उतन की हुति उरीं अघरा वर्यै अति नीडे।—तोप।

क्रि० प्र०—जाना।

दोड़ादोड़—क्रि० वि० [हिं० दोड़ + दोड़] [संज्ञा दोड़दोड़ी] अविध्रत। येतहाय। बिना कहीं रुके हुए। जैसे, शमी वहाँ से दोड़ादोड़ चला आ रहा हूँ। संज्ञा स्त्री० दे० “दोड़ादोड़ी”।

दोड़ादोड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० दोड़ना] (१) दोड़घूप। (२) बहुत से लोगों के एक साथ इधर उधर दोड़ने की क्रिया। उ०—आनंद प्रकाशी सय पुरवासी करत ते दीरादीरी। आरती बतारे सरबस वारै अपनी अपनी पीरी।—देशय। (३) वारवी। धारावत। हड़पड़ी। जैसे, दोड़ादोड़ा में कोई काम ठीक नहीं होता।

दोड़ाना—संज्ञा स्त्री० [हिं० दोड़ना] (१) दोड़ने की क्रिया या भाव। द्रुतगमन। (२) वेग। भेड़। (३) सिलसिबा। (४) फेरा। भारी। पारी।

दोड़ाना—क्रि० श्र० [हिं० दोड़ना का सकर्मक रूप] (१) दोड़ने की क्रिया कराना। साधारण से अधिक वेग से चलाना। जल्द जल्द चलाना। द्रुत गमन कराना। जैसे, घोड़ा दोड़ाना, सिपाही दोड़ाना। उ०—(क) भये रजायसु जन दीराये।—जायसी। (ख) दौरावत वहुँ धोर हय देखत बात खभावत।—गुमान।

संयो० क्रि०—देना।

(२) बार बार आने जाने के लिये कहना या विचार करना। हँरान करना। जैसे, चार खप के लिये क्यों बार बार दोड़ते हो ? (३) किसी वस्तु को वहाँ से वहाँ तक ले जाना। एक जगह से खींचकर दूसरी जगह करना। जैसे, इस चारपाई को जरा उधर दोड़ा दो।

संयो० क्रि०—देना।

(४) पीडाना। पोतना। जैसे, स्याही दोड़ाना।

संयो० क्रि०—देना।

(५) फेरना। जैसे, बीचार पर कूची दोड़ाना।

दीरय—संज्ञा पुं० [सं०] दूर का काम।
दीरनक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० “दमन”।
दीना—संज्ञा पुं० [सं० दमनक] एक पैधा जिसकी पश्चिमी गुल-जाकड़ी की तरह कटावदार होती है और जिसमें से तेज पर कुछ कड़ुई सुगंध आती है। पीपे की डालियों के सिरे पर एक पतली साँक में मंजरी लगती है जिसमें महीन महीन फूल होते हैं। फूलों के कड़ जाने पर इस मंजरी के बीज-कोशों में छोटे छोटे दाने पड़ते हैं जो पकने पर झड़ जाते हैं। पीपे कीनीं से बरख होते हैं और बरसात में उगते हैं पर पुराने पेड़ भी सालों रह जाते हैं। वैद्यक में दीना शीतल, कड़ुया, कसेला, हृदय को हितकारी तथा धुनवी, विस्कोटक आदि को दूर करनेवाला माना जाता है।

सिंहा पुं० दे० "दीना" । व०—घरी माई में। मन हरि
कीन्ही नंद को छोड़ना । चितवन मे जाके कछु देना ।
.....बोलत नहीं रहत बह मौना । दधि लै छुनि
खात रह्यो दीना ।—सूर ।

क्रि० सं० [सं० दमन, हिं० दैन] दमन करना । व०—
देखई करी धौं चतुराई कौन ? राम छलन सिय वनहिं
पठाप पति पठप सुरमीन । कहा भजो धौं भयो भारत को
सगो तरुन तन दीन ।—तुलसी ।

दीनागिरि—संज्ञा पुं० [सं० द्रोणगिरि] द्रोणगिरि नामक पर्वत
जो धौरेण्ड समुद्रस्य तिला गया है । यहाँ विशालकण्ठी
नाम की संजीवनी औषध होती थी । लक्ष्मण को शक्ति लगने
पर हनुमानजी यहाँ औषध लेने के लिये भेजे गए थे ।
व०—दीनागिरि हनुमान सिपायो । संजीवनी को भेद न
पाया तय सब शील उपायो ।—सूर ।

दीर—संज्ञा पुं० [सं० दीर] (१) चक्कर । भ्रमण । फेरा । (२)
दिनों का फेर । कालचक्र । (३) अशुभदयकाल । भड़ती
का समय ।

धी०—दीर दीरा = (१) प्रयानता । प्रव्रलता । चलती । व०—
क्रामनेत्र के समय में प्रजासत्तात्मक राज्य स्थापित होने पर
प्युरिटन लोगों का जैसा दीरा दीरा प्रेट मिटन में था, वैसा
ही, इस समय अमेरिका के न्यू इंग्लैंड नामक स्व में है ।
—स्वाधीनता ।

(४) प्रताप । प्रभाव । हुकूमत । (५) दे० "दीरा ।" व०—
वीर जीत पूरा दिसि लीन्हैं । वीर दीर पश्चिम कौ कीन्हैं ।
—हाल । (६) बारी । पारी ।

मुहा०—दीर चलना = शराब के प्याले का बारी बारी से चब के
सामने लाया जाना ।

(७) बार । दफा । जैसे, दूसरे दीर में यह हतना काम ही
पूरा हो जायगा ।
संज्ञा स्त्री० दे० "दीर" ।

दीरना * १—क्रि० अ० दे० "दीरना" ।

दीरा—संज्ञा पुं० [सं० दीर] (१) चारों ओर घूमने की क्रिया ।
चक्कर । भ्रमण ।

क्रि० प्र०—करना ।

(२) फेरा । भ्रमण । गरत । हथर बधर जाने या घूमने की
क्रिया । (३) अफसर का अपने हलाके में जांच परताल या
देख माल के लिये घूमना । निरीक्षण के लिये भ्रमण ।

क्रि० प्र०—करना ।

मुहा०—दीरे पर रहना या होना = जांच परताल या देख भाज के
लिये सदर से बाहर रहना या होना । (असामी या मुकुदमा)
दीरा मुकुदं करना = (असामी या मुकुदमे को) विचार या
फैसले के लिये सेशन-जज के पास भेजना । (फौजदारी के

भारी मुकुदमों को मजिस्ट्रेट सेशन-जज के पास भेज देते
हैं) । दीरा मुकुदं होना = सेशन-जज के पास विचार के
लिये भेजा जाना ।

(४) ऐसा धाना जाना जो समय समय पर होता रहता है ।
सामयिक आगमन । फेरा । जैसे, बाकुओं के दौरे अब हथर
फिर होने लगे हैं (५) बार बार होनेवाली बात का किसी
बार होना । ऐसी बात का प्रकट होना जो समय समय पर
होती रहती हो । (६) किसी ऐसे रोग का लक्षण प्रकट
होना जो समय समय पर होता हो । आवचन । जैसे,
मिरगी का दौरा, पागलपन का दौरा ।

संज्ञा पुं० [सं० द्रोण] [स्त्री० अल्प० दीरी] वांस की
फुटियों, काल, मूँज, येत आदि का बना हुआ टोकरा ।

दीरास्य—संज्ञा पुं० [सं०] (१) दुरात्मा का भाव । दुर्जनता ।
(२) दुरात्मा का काम । दुष्टता ।

दीरादीरा—क्रि० वि० [हिं० दीरना] (१) लगातार । अविश्रंत ।
(२) पुन से । तेजी से ।

दीरादीरी—संज्ञा स्त्री० दे० "दीरादीरी" ।
दीरान—संज्ञा पुं० [फा०] (१) दीरा । चक्र । (२) कालचक्र । दिनों
का फेर । (३) फेरा । बारी । पारी । (४) सिलसिला । भौंड ।

दीराना—क्रि० सं० दे० "दीराना" ।
दीरित—संज्ञा पुं० [सं०] छति । छानि ।

दीरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० दीर] वांस या मूँज की छोटी टोकरी ।
चौरी । बलिया ।

दीर्ग—वि० [सं०] (१) दुर्ग संबंधी । दुर्ग का । (२) दुर्ग
संबंधी । दुर्ग का ।

दीर्जन्य—संज्ञा पुं० [सं०] दुर्जनता । दुष्टता ।

दीर्घल्य—संज्ञा पुं० [सं०] दुर्घबता । कमजोरी ।

दीर्घान्य—संज्ञा पुं० [सं०] दुर्घान्य ।

दीर्घमनस्य—संज्ञा पुं० [सं०] 'दुर्घमनस' होने का भाव । दुर्जनता ।
चित्त की खोटाई ।

दीर्घ्य—संज्ञा पुं० [सं०] दूरी । व०—ज्योतिष-वसिष्ठादि ऋषियों
की छत है । वसमें वेद अन्वयाय तथा रेखा धीज गणित
तथा सूर्योदय प्रदीर्घ का दीर्घ्य सामीप्य और आपस का संयोग
विवेग आदिक व्यवहार लिखे हैं ।—भद्राराम ।

दीर्घ्याधिनि—संज्ञा पुं० [सं०] दुर्घ्याधन के गोत्र में ब्रह्मण्य व्यक्ति ।
दीर्घल्य—संज्ञा पुं० [सं०] दुर्घबता ।

दीर्घार्द—संज्ञा पुं० [सं०] (१) दुर्घ होने का भाव । दुष्ट
स्वभाव । (२) दुर्भाव । वैर ।

दीर्घदं—संज्ञा पुं० [सं०] (१) दुष्ट की खोटाई । दुष्टता । (२)
दोहाद ।

दीलत—संज्ञा पुं० [सं०] धन । संपत्ति । व०—साहिब के हमताब
जितेक सिया सत्ता सब खूटि जिए हैं । भूपन से विदु

दोबलित छैरै फुकीर ह्यै देश विदेश गपु ह्यै । लोग कह्यै दमि
दक्खिन जेय सिसौदिया रायरे हाब ठपु ह्यै ? देत रिसाय कै
वतर यो हमही दुनिया ते यदास भपु ह्यै । — भूपय ।

क्रि० प्र०—उठाना ।—छचना ।—जगाना ।

दीलतखाना—संज्ञा पुं० [फा०] निवासस्थान । घर ।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग दूसरे के लिये चादरार्थक होता
है । अपने लिये 'गरीबखाना' खाय जाता है । जैसे, चाप
का दीलतखाना कहाँ है ? मेरा गरीबखाना देहली है ।

दीलतमंद—वि० [फा०] धनी । संपन्न ।

दीलतमदी—संज्ञा स्त्री [फा०] संपन्नता । मातृकारी । धनाढ्यता ।

दीलतिय—संज्ञा स्त्री दे० "दीलत" ।

दीलेय—संज्ञा पुं० [सं०] कडुप । कडुवा ।

दीलिम—संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र ।

दीवारिक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) द्वारपाल । (२) एक प्रकार
का वास्तु शैल ।

दीवालिक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) देश का नाम । (२) उस
देश का निवासी । (महाभारत)

दीक्षर्ष्य—संज्ञा पुं० [सं०] दुरधर्मा होने का भाव । दे०
"दुरधर्मा" ।

दीर्घत, दीर्घमति—संज्ञा पुं० [सं०] दुर्घत का पुत्र । दुर्घत के
कुल में षटपथ व्यक्ति ।

दीहिय—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० रोहिणी] (१) खड़की का
खड़का । नाती ।

विशेष—धर्मशास्त्र में वीर और दीहिय में कुछ विशेष भेद
नहीं माना गया है । वीर के समान दीहिय सिंघदान आदि
द्वारा बढ़ा करता है । जय तक दीहिय न हो जाय तब तक
पिता कन्या के घर भोजन आदि नहीं कर सकता । यदि
करे तो मरकामाही होता है ।

(२) पद्म । सखार । (३) तिज । (४) गाय
का घी ।

दीहियक—वि० [सं०] दीहिय संबंधी ।

दीहद—संज्ञा पुं० [सं०] बह इच्छा जो शिष्यों को गर्भिणी होने की
इया में होती है । रोहद ।

दीहदिनी—संज्ञा स्त्री [सं०] गर्भवती स्त्री ।

दु—संज्ञा पुं० [सं०] (१) दिन । (२) आकाश । (३)
स्वर्ग । (४) अग्नि । (५) सूर्यलोक ।

दुग—संज्ञा पुं० [सं०] (१) आकाश में गमन करनेवाला ।
(२) पत्नी ।

दुगय—संज्ञा पुं० [सं०] मही की मय्यगति के साधक अंग
दिन ।

दुचर—संज्ञा पुं० [सं०] (१) प्रह । (२) पत्नी ।

दुज्या—संज्ञा स्त्री [सं०] अदोराय वृक्ष की व्यासरूप उषा ।

घुत्—संज्ञा पुं० [सं०] किरण ।

घुत्—वि० [सं०] प्रकाशवान ।

घुत्ति—संज्ञा स्त्री [सं०] (१) दीप्ति । कान्ति । चमक । (२)

शोभा । सुवि । (३) छायागण । (४) रश्मि । किरण ।

संज्ञा पुं० एक ऋषि का नाम जो षट्पथ मनु के समय में
थे । (हरिवंश)

घुत्तिकर—वि० [सं०] प्रकाश उत्पन्न करनेवाला । चमकनेवाला ।

संज्ञा पुं० ध्रुव ।

घुत्तिधर—वि० [सं०] प्रकाश या कान्ति को धारण करनेवाला ।

संज्ञा पुं० विद्युत् ।

घुत्तिमंत—वि० दे० "घुत्तिमान्" ।

घुत्तिमा—संज्ञा स्त्री [सं० घुत्ति + मा (प्रत्य०)] प्रभा । प्रकाश ।

तेज । इ०—आज जय मग भारती बलि कहई । घुत्तिमा भवन
कवन में बहई है ।—विश्राम ।

घुत्तिमान्—वि० [सं० घुत्तिमत्] [स्त्री० घुत्तिमती] प्रकाशवाला ।

जिस में चमक वा आभा हो ।

संज्ञा पुं० (१) स्वार्थमुच मनु के एक पुत्र का नाम । (२)

शाक्य देश के एक राजा का नाम । (महाभारत) । (३)

प्रियव्रत राजा के पुत्र जिन्हें अश्व द्वीप का राज्य मिला था ।
(विष्णुपुराण)

घुन—संज्ञा पुं० [सं०] कम से सातवाँ स्थान ।

घुनिश—संज्ञा पुं० [सं०] बहर्निश । दिन रात ।

घुपति—संज्ञा पुं० [सं०] (१) सूर्य । (२) इंद्र ।

घुपथ—संज्ञा पुं० [सं०] आकाशमार्ग ।

घुमयि—संज्ञा पुं० [सं०] (१) सूर्य । (२) मंदार । (३) परि-
शोधित तंबा । शोषा हुआ तंबा ।

घुमरसेन—संज्ञा पुं० [सं०] शाक्य देश के एक राजा जो सत्यवान्

के पिता थे । ये दुर्भाग्यवश अंधे हो गए । जब सब लोगों

ने पशुपंथ करके इन्हें गरी से उतार दिया तब वे अपनी
पत्नी और शिशु सत्यवान् को लेकर वन में चले गए ।
दे० "सत्यवान्", "सावित्री" ।

घुमदगान—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का साम गान ।

घुमयी—संज्ञा स्त्री [सं०] विरहकर्मा की कन्या । सूर्य की पत्नी ।

घुमान्—वि० [सं० घुमत्] [स्त्री० घुमती] प्रकाशवाला । कान्ति-
सुक्त । चमकीला ।

घुस्त—संज्ञा पुं० [सं०] (१) धान । (२) सूर्य । (३) धर । (४)

धवल ।

घुलोक—संज्ञा पुं० [सं०] स्वर्ग लोक ।

विशेष—वैदिक ग्रंथों में घुलोक की तीन कथाएँ कही
गई हैं, पहली उदन्वती, दूसरी भीलुमती, और तीसरी
प्रथी है । इन तीन कथाओं को ही क्रमशः माक, स्वर्ग और
विरुलोक कहते हैं । उदन्वती कथा में चंद्रमा है, भीलुमती

कचा में सूर्य्य हैं और तीसरी कचा में अनेक लोक लोकान्तार हैं । इन लोकों में जाना ही अरवमेधादि बड़े बड़े यज्ञों का फल कहा गया है ।

सुवन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सूर्य्य । (२) स्वर्ग ।

सुपद-संज्ञा पुं० [सं०] (१) देवता । (२) नक्षत्र । (३) मह ।

सुसप्त-संज्ञा पुं० [सं०] सुसप्तम्] स्वर्ग ।

सुसरित्-संज्ञा स्त्री० [सं०] स्वर्ग की नदी मंदाकिनी ।

सुसिंधु-संज्ञा स्त्री० [सं०] स्वर्ग की नदी मंदाकिनी ।

सु-वि० [सं०] सुखा खेलनेवाला । सुभारी ।

सूत-संज्ञा पुं० [सं०] जुआ । यह खेल जिसमें दांव यदा जाय और हारनेवाला जीतनेवाले को कुछ दे ।

विशेष—मनु ने लिखा है कि राजा को चाहिए कि जुआ भीर पशु पक्षियों का दंगल अपने राज्य में न होने दे । जो जुआ खेले या खेलावे उसे राजा यद्य तक का दंड दे सकता है । याज्ञवल्क्य ने द्यूतघ्न का इसी प्रकार निषेध किया है ।

सूतकर, सूतकार वि० [सं०] जुआ खेलनेवाला । सुभारी ।

सूतदास-संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० दूतदासी] वह दास जो जुए की भीत में मिला हो ।

सूतपूर्णिमा-संज्ञा पुं० [सं०] क्रोनागरी । आश्विन की पूर्णिमा । इस दिन प्रचीन काल में जुआ खेला जाता था और लोग रात को जागते थे ।

सूतिप्रतिपदा-संज्ञा स्त्री० [सं०] सूतिप्रतिपत्] कार्तिक शुक्ल प्रतिपदा । इस दिन लोग जुआ खेलते हैं ।

सूतफलक-संज्ञा पुं० [सं०] यह चौकी, तद्गता आदि जिसके ऊपर पासा बिछाया या खेला जाय । वह चौकी जिस पर जुए की कौड़ी फेंकी जाय ।

सूतबीज-संज्ञा पुं० [सं०] कौड़ी ।

सूतभूमि-संज्ञा स्त्री० [सं०] यह स्थान जहाँ जुआ खेला जाय । जुआखाना ।

सूतमंडल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सुभारियों की मंडली । (२) यह घर जहाँ जुआ खेला जाय । जुआखाना ।

सूतस्माज-संज्ञा पुं० [सं०] यह मंडली या स्थान जिसमें जुआ खेला जाय ।

सुन-संज्ञा पुं० [सं०] लग्न स्थान से सातवें राशि ।

सु-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) स्वर्ग । (२) आकाश । (३) शतपथ ब्राह्मण और देवीभागवत के श्रुतसार शाठ वसुधै मूं से एक ।

विशेष—महाभारत, अग्निपुराण और भागवत में आठ वसुधों के जो नाम दिए गए हैं उनमें यह नाम नहीं है । देवी भागवत में इस वसु के संबंध में यह कथा लिखी है । एक बार सप्त वसु अपनी अपनी स्त्रियों को लेकर मीढ़ा कर रहे थे । वे धूमते फिरते बसिष्ठ के आश्रम पर जा निकले । धो की

की ने बसिष्ठ की गाय नंदिनी को देखा और अपने स्वामी से बसे लेने के लिये कहा । धो गाय को खे गया । इस पर बसिष्ठ ने क्रुद्ध होकर शाप दिया । इस शाप के कारण धो का पृथ्वीतल पर भीष्म के रूप में जन्म हुआ ।

धोकार-संज्ञा पुं० [सं०] वह कारीगर जो प्रासादादि बनाने का काम करता हो । यवई । राजगीर ।

धोत-संज्ञा पुं० [सं०] (१) प्रकाश । (२) श्राप । धूप ।

धोतक-वि० [सं०] (१) प्रकाशक । प्रकाश करनेवाला । (२) दर्शक । मतलबनेवाला ।

धोतन-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० धोतित] (१) दर्शन । (२) प्रकाशन । प्रकाशित करने या जलाने का काम । (३) दिव्य दर्शन । दिखाने का काम । (४) दीपक । वि० प्रकाशमान् । चमकीला ।

धोतित-वि० [सं०] प्रकाशित ।

धोतिरिगण्य-संज्ञा पुं० [सं०] लघोत् । जुगनू ।

धोभूमि-संज्ञा पुं० [सं०] पथी ।

धोपद-संज्ञा पुं० [सं०] देवता ।

धोहरा-संज्ञा पुं० दे० "देवहरा" ।

धौस-संज्ञा पुं० [सं०] दिवस । दू०—(क) राति गौराई सोरह के, धौस गवैया छाप । हीरा जनम अमेलत है कौड़ी बखले आप ।—कबीर । (ख) दुःख देखि कै देखि हो तब सुख आनंदकेद । तपन ताप तपि धौस निसि, जैसे शीतल चंद्र ।—केशव । (ग) और गति और वचन भगे बदन-रंग और । धौसक तें विष चित बढ़ी, कहै चढ़ीहैं खौर ।—विहारी ।

द्रक्ष्य-संज्ञा पुं० [सं०] सौमने का एक मान जो दो कर्ष चर्याएँ एक तोले के बराबर होता था ।

पर्या०—कोल । घटक । कर्पाई ।

द्रंग-संज्ञा पुं० [सं०] वह नगर जो पत्तन से बढ़ा और कर्ष से छोटा हो ।

द्रगाय-संज्ञा पुं० [सं०] एक मात्र । दग्गा ।

द्रदिमा-संज्ञा पुं० [सं०] द्रदिमन्] दृढ़ता ।

द्रडिष्ठ-वि० [सं०] अधिक दृढ़ । बहुत दृढ़ ।

द्रप्स-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह पदार्थ जो गाढ़ा न हो । (२) मट्टा । (३) रस । (४) शुक ।

वि० द्रुतगतियुक्त । तेज चलनेवाला ।

द्रप्स्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह पदार्थ जो गाढ़ा न हो । (२) मट्टा । (३) शुक । (४) रस ।

द्रमिल-संज्ञा पुं० [सं०] एक देश का नाम । दे० "तामिल" ।

द्रम्म-संज्ञा पुं० [सं०] पा० द्रिम] सोहब पण्य मूल्य की एक सुद्रा । (लीलावती)

द्वयती—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) नदी। (२) मूककपर्णी। मूसा-
कारी। छियाँ।

द्वय—संज्ञा पुं० [सं०] (१) द्वयण। (२) बहाव। (३) पलायन।
दौड़। (४) वेग। (५) धातव। (६) रस। (७) परिहास।
(८) द्वयव।

वि० (१) तरल। पानी की तरह पतला। (२) आर्द्र।
गीला।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

(१) पिपळा हुआ। आँध छाकर पानी की तरह फैला हुआ।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

द्वयक—वि० [सं०] (१) भागनेवाला। भगदु। (२) रहनेवाला।
रहनेवाला।

द्वयज—संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह वस्तु जो रस से बनाई जाय।
(२) युद्ध।

द्वयण—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० द्वयण] (१) गमन। गति। दौड़।
(२) धारण। बहाव। (३) पिपळने या पसीजने की क्रिया
या भाव। (४) हृदय पर कल्याण्य प्रभाव पड़ने का भाव।
चित्त के कोमल होने की वृत्ति।

द्वयता—संज्ञा स्त्री० [सं०] द्वयत्व।

द्वयत्वप्रती—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक पौधा जिसे कहीं कहीं चोंचोनी
कहते हैं। बंगाल में इसे शिशुकी कहते हैं। यह औषध के
काम में आता है।

द्वयत्व—संज्ञा पुं० [सं०] (१) बहने का भाव। पानी की तरह
पतला होने का भाव।

विशेष—वैशेषिक के अनुसार यह एक गुण है जो द्रव्यों में
रहता है। यद्यपि वैशेषिक दर्शन में गुणों की परिगणना में
द्रव्यव गुण नहीं आया है पर प्रयस्तवाद भाव में इसे गुण
जिखा है। इस गुण के होने से वस्तुओं का बहना होता है।
प्राचीन काळ के विद्वानों ने द्रव्यव को भूल और सामान्य
गुण माना है और द्रव्यव के दो भेद किए हैं—सांख्यिक
अर्थात् स्वामाविक और नैमित्तिक अर्थात् जो कारणों से
व्यपन्न हो। ऐसे लोगों का मत है कि स्वामाविक वा सांख्यिक
द्रव्यव केवल जड़ में है और पृथ्वी में नैमित्तिक द्रव्यव
है जो अग्नि के संयोग से आ जाता है। आधुनिक विद्वान
द्रव्यव को द्रव्य का एक रूप या उसकी अवस्था मात्र मानते
हैं। उस पदार्थ का जिसमें यह गुण होता है कोई निज का
आकार नहीं होता, किंतु जिस वस्तु के आकार में यह रहता
है वही के आकार का बहता जाता है। वही पानी जब बोलब
में भर दिया जाता है तब बोलब के आकार का और जब
कटोरे, लोटे गिळार आदि में रहता है तब उन इन पात्रों
के आकार का हो जाता है। द्रव्यव और विद्युत्व में केवल

भेद इतना ही है कि द्रव्य पदार्थ परिमित अवकाश को घेरता
है और विद्युत्व पदार्थ पूरे अवकाश में व्याप्त रहता है।

(२) बहना। उड़ना।

द्वयना—क्रि० प्र० [सं० द्वयण] (१) प्रवाहित होना। बहना।
(२) पिपळना। उ०—निज परिहास द्रव्यव नवनीता। पर-
दुल द्रव्यवि सुसंत पुनीता।—तुलसी। (३) पसीजना।
दयाई होना। दया करना। उ०—(क) मूक होइ बाबाब
पंगु बद्ध गिरावर गहन। जानु कृपा, सो दयाल द्रव्य सकळ
कळि-मळ-बहन।—तुलसी, (ख) कहियत परम बदर
कृपानिधि संतर्पामी त्रिभुवन त्रात। द्रवत हैं आयु देत वासन
को रीमन्त हैं तुलसी के पात।—सूर।

द्वयरसा—संज्ञा स्त्री० [सं०] काज। काह।

द्वयिद्ध—संज्ञा पुं० [सं० त्रिविध] (१) दक्षिण भारत का एक देश
जो बङ्गाल के दक्षिण पूर्वीय सागर के किनारे रामेश्वर तक
है। (२) द्वयिद्ध देश का रहनेवाला।

विशेष—मनु ने द्वयिद्धों को सबर्ण स्त्री से उत्पन्न प्रायः पत्त्रियों
की संतति कहा है। महाभारत में भी लिखा है कि परशुराम
के भय से बहुत से पत्त्रिय दूर दूर के पदार्थों और जंगलों में
भाग गए। वहाँ वे अपने कर्म प्राणियों के अदर्शन आदि के
कारण भूल गए और वृषलत्व के प्राप्त हो गए। वे ही द्वयिद्ध,
धामीर, शवर-पुत्र आदि हुए। दे० "ताम्रिक"।

(३) प्राणियों का एक वर्ग जिसके अंतर्गत पक्ष प्राण्य हैं—
अभि, कर्पाटक, गुम्रेर, द्वयिद्ध और महाराष्ट्र।

द्वयिद्धी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक रागिनी का नाम।

द्वयिष्णु—संज्ञा पुं० [सं०] (१) घन। (२) कंचन। सोना। (३)
पराक्रम। बल। (४) वृषु राजा का एक पुत्र। (५) भागवत
के अनुसार कुरु द्वीप का एक सीमावर्त। (६) कंच द्वीप
के अंतर्गत एक वर्ष। (७) धुर नामक वस्तु के एक पुत्र का
नाम। (महाभारत)

द्वयिष्णुनाशन—संज्ञा पुं० [सं०] शोभाजन। सहजन का पेड़।

विशेष—स्मृतियों में शोभाजन-भयण का निषेध है।

द्वयिष्णोदा—संज्ञा पुं० [सं० द्वयिष्णु] वेद का एक देवता जो
घन देनेवाला कहा गया है। अग्नि।

द्वयिष्णुत्व—वि० [सं०] (१) जो द्रव हो गया हो। जो पानी की
तरह पतला हो गया हो। (२) पिपळा हुआ। गला हुआ।
(३) पसीजा हुआ। दयाई। दयालु।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

द्वय—संज्ञा पुं० [सं०] (१) वस्तु। पदार्थ। चीज। (२) वह
पदार्थ जो क्रिया और गुण अथवा केवल गुण का भाग्य हो।
वह पदार्थ जिसमें केवल गुण और क्रिया अथवा केवल गुण
हो और जो समवायि कारण हो।

विशेष—वैशेषिक में द्रव्य भी कहे गए हैं—पृथ्वी, जड़,

तेज, वायु, आकाश, काल, दिक्, आत्मा और मन । इनमें से पृथ्वी, जल, तेज, वायु, मन और आत्मा ये छः द्रव्य ऐसे हैं जिनमें क्रिया और गुण दोनों हैं । आकाश, दिक् और काल के तीन ऐसे हैं जिनमें क्रिया नहीं केवल गुण हैं । पांच द्रव्यों में बँवल बार सावयव हैं—पृथ्वी, जल, तेज और वायु । ये चार द्रव्य स्वपत्ति धर्मवाले माने गए हैं । ये परमाणु रूप से नित्य गौर कार्य (स्पृक्ष) रूप से अनित्य हैं । इन्होंने परमाणुओं के योग से सृष्टि होती है । प्रशस्तपाद भाष्य में लिखा है कि जीवों के कर्मफल-भोग का जब समय आता है तब जीवों के श्रष्ट के बल से वायु के परमाणुओं में चलन उत्पन्न होता है । इस चलन से परमाणुओं में परस्पर संयोग होता है । दो दो परमाणुओं के मिलने से द्वयणुक और तीन द्वयणुके के मिलने से त्रसरेणु उत्पन्न होता है । इस प्रकार एक मद्गन्ध वायु की श्रपत्ति होती है । मद्गन्ध वायु में परमाणुओं के परस्पर संयोग से क्रमशः जल द्वयणुक, जब त्रसरेणु और फिर मद्गन्ध जलनिधि उत्पन्न होता है । इस जल में पृथ्वी परमाणुओं के परस्पर संयोग द्वारा द्वयणुकादि क्रम से मद्गन्ध-पृथ्वी की श्रपत्ति होती है । फिर उसी जल-निधि में तैजस परमाणुओं के परस्पर संयोग से तैजस द्वयणुकादि क्रम से मद्गन्ध-तेजेराशि की श्रपत्ति होती है । इस प्रकार वैरोपिक ने चार भूतों के अनुसार चार तरह के परमाणु माने हैं, पृथ्वी परमाणु, जल परमाणु, तेज परमाणु और वायु परमाणु । इन्होंने परमाणुओं से ये चार मूल उत्पन्न होते हैं । पाँचवाँ द्रव्य आकाश निरवयव, विभु और नित्य है, न उसके टुकड़े होते हैं और न उसका नाश होता है । आकाश की तरह काल और दिक् भी विभु और नित्य हैं । आत्मा एक अमूर्त द्रव्य है जो ज्ञान का अधिकरण और किसी किसी के मत से ज्ञान का समवायि कारण है । मन नित्य और मूर्त माना गया है, क्योंकि यदि मूर्त न होता तो उसमें क्रिया न होती । वैरोपिक मन को अणुत्व मानता है क्योंकि एक पण्य में एक ही इंद्रिय का संयोग उसके साथ हो सकता है । जैने के अनुसार द्रव्य गुणों और पर्योगों का स्थान है और सदा पृथक् रहता है, उसके भीतर भेद नहीं पड़ता । जैन ६ द्रव्य मानते हैं—जीव, धर्म, अधर्म, उद्-गल, आकाश और काल ।

पर्याय ज्ञान में आन कल पदिक्रम के देवों में बहुत वदति हुई है । सावयव सृष्टि के वैरोपिक में चार मूल भूत कहे गए हैं और शक्ती के अनुसार चार प्रकार के परमाणु भी माने गए हैं पर आन कल की परीक्षाओं से ये चारों मूल-भूत कहे जानेवाले पर्याय कहे मूल द्रव्यों के योग से बने पाए गए हैं । जल और वायु कई मूल द्रव्यों के योग से बने परीक्षा द्वारा सिद्ध हो चुके हैं । पारवात्य रसायन में

७२ के लगभग मूल द्रव्य माने गए हैं जिनके परमाणुओं के रासायनिक संयोग से भिन्न भिन्न पदार्थ बने हैं । अतः इस हिसाब से परमाणु भी ७२ प्रकार के हुए । ७२ मूल-द्रव्यों के परमाणुओं के मुख्य का यदि परस्पर मिश्रण किया जाय तो उनमें एक हिसाब से चलता हुआ क्रम पाया जाता है जिससे सिद्ध होता है कि ये सब मूल द्रव्य भी एक ही परम द्रव्य से निकले हैं ।

- (३) सामग्री । सामान । उपानान । वद जिससे कोई वस्तु बनी हो । (४) धन । दीक्षत । रुपया पैसा । (५) पीतल । (६) शीपथ । भेषज । (७) मद्य । (८) जेप । (९) गोद । वि० (१) द्रुम संघी । पेड़ का । पेड़ से निकला हुआ । (२) पेड़ के पेना ।

द्रव्यत्व—संज्ञा पु० [सं०] द्रव्य का भाव । द्रव्यपन ।
 द्रव्यपति—संज्ञा पु० [सं०] कलित ज्योतिष के अनुसार मित्र मित्र द्रव्यों या पदार्थों की श्रपितति मित्र भिन्न राशियाँ । जैसे, कंबल, मसूर, रोहूँ, शाल वृष, जो इत्यादि की श्रपितति मेष राशि है । इसी प्रकार धान, कपास, खता, इत्यादि मिथुन राशि के श्रधीन हैं ।

द्रव्यवान्—वि० [सं० द्रव्यत्व] श्री० द्रव्यतते] धनवान् । धनी ।
 द्रव्यांतर—संज्ञा पु० [सं०] दूसरा द्रव्य ।
 द्रव्याधीश—संज्ञा पु० [सं०] कुंवर ।
 द्रष्टव्य—वि० [सं०] (१) देखने योग्य । दर्शनीय । (२) जिसे दिखाना हो । जो दिखाना जानेवाला हो । (३) जिसे मत-खाना या जताना हो । (४) साहाय्य कर्त्तव्य ।
 द्रष्टा—वि० [सं०] (१) देखनेवाला । (२) साहाय्य करनेवाला । (३) दूरक । प्रकाशक ।

संज्ञा पु० सांख्य के अनुसार पुरुष और योग के अनुसार आत्मा ।

विशेष—आत्मा द्रष्टा और श्रंतःकरण एव्य माना जाता है । इन दोनों का संयोग ही दुःख का कारण है । सुख, दुःख आदि ये बुद्धि-द्रव्य के विकार हैं । इंद्रियों का संघर्ष होने से श्रंतःकरण का बुद्धि-द्रव्य ही विषय या सुख दुःख रूप में परिणत होता है, आत्मा नहीं । आत्मा द्रष्टा के रूप में रहता है ।

द्रह—संज्ञा पु० [सं०] (१) हृद । ताल । मीज । (२) वह स्थान जहाँ गहरा जल हो । दह ।

द्रक्ष्ठा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दाल । शंशु ।
 द्राघिमा—संज्ञा पु० [सं० द्राघिमन्] (१) दीर्घता । लंबाई । (२) वे कल्पित रेखाएँ जो मूल्य रेखा के समानांतर पूर्व पश्चिम को मानी गई हैं । इन रेखाओं से अक्षांश सूचित होता है ।

द्राघ्य—वि० [सं०] (१) सुप्त । सोया हुआ । (२) पञ्चाधित । भगेद ।

संज्ञा पुं० (१) स्वयम् । (२) पञ्जायन । भागना ।
 प्राप-संज्ञा पुं० [सं०] (१) आकार । (२) कीर्ति ।
 वि० (१) सुख । (२) सुप्त ।
 द्रामिल-वि० [सं० द्रविड] द्रमिल या द्रविड देशवासी ।
 संज्ञा पुं० चापवय ।
 द्राव-संज्ञा पुं० [सं०] (१) गमन । (२) राग्य । (३) बहने या
 पत्तीने की क्रिया । गलने या पिघलने की क्रिया । (४)
 धनुताप । -
 द्रावक-वि० [सं०] (१) द्रवरूप में करनेवाला । टोस चीज़
 को पानी की तरह पतला करनेवाला । (२) बहानेवाला ।
 (३) गलानेवाला । (४) पिघलानेवाला । (५) हृदय
 पर प्रभाव डालनेवाला । जिससे चित्त आर्द्र हो जाय ।
 (६) चतुर । चालाक । (७) धीखा करनेवाला । भगाने-
 वाला । (८) बुरानेवाला । चोर । (९) हृदयघाही ।
 संज्ञा पुं० (१) चंद्रकांत मण्डि (२) जार । व्यभिचारी ।
 (३) मेम । (४) सुदागा ।
 द्रावकर-संज्ञा पुं० [सं०] सुदागा ।
 द्रावककंद-संज्ञा पुं० [सं०] सैलकंद । तिलकंदरा ।
 द्राव्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) द्रवीभूत करने का कार्य या
 भाष । गलाने या पिघलाने की क्रिया या भाव । (२)
 भगाने का काम । (३) रीडा ।
 द्राविका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) जार । (२) मेम ।
 द्राविड-वि० [सं०] [स्त्री० द्रविडि] द्रविड देशवासी ।
 संज्ञा पुं० [सं० द्रविड] (१) द्रविड देश । (२) कर्ण ।
 (३) धामिया हृदय ।
 द्राविडक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विट्त्ववय । सेरवर नमक ।
 (२) कविया हृदय ।
 द्राविडगोत्र-संज्ञा पुं० [सं०] एक राग जो रात के समय गाया
 जाता है । इसमें गंगार और घोर रस अधिक गाया जाता है ।
 द्राविडि-संज्ञा स्त्री० [सं०] छोटी हलायची ।
 संज्ञा स्त्री० [सं० द्रविड] द्रविड जाति की स्त्री ।
 वि० द्रविड संबंधी । द्रविड देश का ।
 मुहा०—द्राविडि प्रायापाम=किसी सीधे तरह होनेवाली
 फल को बहुत सुभाव फिरोव के साथ करना । (इस मुहा०
 की उत्पत्ति सीक सीक नहीं मालूम होती । द्रविड लोग प्राया-
 पाम करने में पहले दूधने हाथ की लुटकी बजाते हुए तिर
 के भास पास हाथ घुमाते हैं, पीछे नाक दयाकर प्रायापाम
 करते हैं । रापद इसीमें विशेषता देखकर उत्तरीय भारत के
 लोग ऐसा कहने लगे हैं ।)
 द्रावित-वि० [सं०] (१) द्रव किया हुआ । (२) गलाया
 या पिघलाया हुआ । (३) भगया हुआ ।
 द्रावायव-संज्ञा पुं० [सं०] एक ऋषि का नाम । ये द्रव ऋषि

के गोत्र में हयध हुप थे । सामवेद के कल्प, श्रौत और
 गृह्यसूत्र इनके बनाए हुए हैं ।
 द्रु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) द्रुष । (२) शाखा ।
 द्रुकिलिम-संज्ञा पुं० [सं०] देवदार ।
 द्रुघय-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बंहे का मुगदर । (२) पाछ
 या फरसे के आकार का एक अण जिसका सिरा मुगदा हुआ
 होता था । इससे मुकाने, गिराने, फोड़ने और चीरने का
 काम लेते थे । (३) कुडार । कुल्हाड़ी (४) मझा ।
 (५) मूयंवा ।
 द्रुय-संज्ञा पुं० [सं०] (१) धनुष । (२) छत्र । (३)
 बिच्छू । (४) मृगी कीड़ा ।
 द्रुया-संज्ञा स्त्री० [सं०] धनुष की ज्या । धनुष की डोरी ।
 द्रुयी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कहुडी । (२) कमलज्या ।
 (३) बटवत ।
 द्रुत-वि० [सं०] (१) द्रवीभूत । गन्ना हुआ । (२) शीमगामी ।
 तेज । (३) भागा हुआ ।
 संज्ञा पुं० (१) बिच्छू । (२) द्रुष । (३) बिही ।
 (४) ताख की एक मात्रा का प्राया जिसका चिह्न ० है ।
 इसके देवता शिव और इसकी इष्टपति यज्ञ से मानी जाती
 है । उच्चारण चिह्निया की योली के समान होता है ।
 पर्या०—विदु । व्यंजन । सत्य । अर्धमात्रक । प्राकार ।
 व्यंजन । ह्रप यवय ।
 (५) वह छय जो मध्यम से कुछ तेज हो । दून ।
 द्रुतगति-वि० [सं०] शीमगामी ।
 द्रुतगामी-वि० [सं० द्रुतगामिन्] [स्त्री० द्रुतगामिनी] शीमगामी ।
 तेज चलनेवाला ।
 द्रुतत्रिताली-संज्ञा स्त्री० दे० “जवद तिताला” ।
 द्रुतपद-संज्ञा पुं० [सं०] एक छंद जिसके प्रत्येक अक्षर में चारह
 अक्षर होते हैं, जिसमें चौथा, ग्यारहवाँ और बारहवाँ
 अक्षर गुरु और शेष छपु होते हैं ।
 द्रुतमय्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक अर्ध-सम-वृत्ति का नाम । इसके
 प्रथम और तृतीय पाद में ३ अक्षर और २ गुरु होते हैं
 (१ १ १ १ १ १ १) तथा द्वितीय और चतुर्थ पाद में १
 मध्य २ अक्षर और १ मध्य (१ १ १ १ १ १ १) होता
 है । इ०—रामहिं सेवदु रामहिं गामे । मन मन दे तित
 तीस मन्त्रो । जम जनेक के अक्षत्रो । हरि हरि गा निज
 जम सुपरो ।
 द्रुतविलिखित-संज्ञा पुं० [सं०] एक अर्धवृत्ति जिसके प्रत्येक पाद
 में १ मध्य २ अक्षर और एक अक्षर होता है (म म म र)
 (१ १ १ १ १ १ १) इसे मुंदरी भी कहते हैं । इ०—मजन
 जो सति बाजमुकुंदरी । जग न होदत यद्यपि मुंदरी ।
 द्रुति-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) द्रुष । (२) गति ।

दुनख-संज्ञा पुं० [सं०] कटा।

दुपद-संज्ञा पुं० [सं०] (१) महाभारत के अनुसार उत्तर पांचाल का एक राजा। यह चंद्रवंशी प्रपत का पुत्र था। द्रोणाचार्य और द्रुपद बचपन में साथ खेला करते थे और दोनों में बड़ी मित्रता थी। प्रपत के मरवाने पर द्रुपद पांचाल का राजा हुआ। उस समय द्रोणाचार्यजी उसके पास गए और इन्होंने श्रवणी बचपन की मित्रता का परिचय देना चाहा पर द्रुपद ने इनका तिरस्कार कर दिया। जब द्रोणाचार्यजी की सीधजी ने कौरवों और पांडवों को शिक्षा देने के लिये बुलाया और द्रोणजी ने इनके बाणविद्या की उत्तम शिक्षा दी तब गुरु-दक्षिणा में इन्होंने कौरवों और पांडवों से बड़ी माँग कि तुम द्रुपद को बाँध कर मेरे सामने ला दो। कौरव तो उनकी आज्ञापालन नहीं कर सके पर पांडवों ने द्रुपद को जीता और उसे बाँध कर अपने गुरु को अर्पित किया। द्रोणाचार्य जी ने द्रुपद से कहा कि तुम गंगा के दक्षिण किनारे राज्य करो, उत्तर के किनारे का राज्य हम करेंगे। द्रुपद उस समय तो मान गया पर इसके मन में द्रोणाचार्य की ओर से द्वेष बना रहा। उसने याम और उपयाम नामक दो ऋषियों की सहायता से ऐसे पुत्र की प्राप्ति के लिये जो द्रोणाचार्य की नारा कर सके यज्ञ करना प्रारंभ किया। यज्ञ के प्रसाद से एष्टगुप्त नाम का पुत्र और कृष्णा नाम की एक कन्या हुई। द्रुपद के एक और पुत्र था जिसका नाम शिखंडी था। कृष्णा अर्जुन आदि पांडवों से ब्याही गई थी। द्रुपद महाभारत के युद्ध में मारा गया था। (२) संज्ञे का पाया। (३) खड़ाई।

दुपदा-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक वैदिक ऋचा जिसके आदि में द्रुपद शब्द आता है।

दुपदात्मज-संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० दुपदात्मजा] (१) शिखंडी। (२) एष्टगुप्त।

दुपदादित्य-संज्ञा पुं० [सं०] काशीखंड के अनुसार सूर्य की एक मूर्ति जिसे द्रौपदी ने स्थापित किया था।

द्रुम-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वृष। (२) पारिजात। (३) कुशेर। (४) एक राजा का नाम जो पूर्वजन्म में शिवि नामक देव था। (५) हरिवंश के अनुसार कृष्णचंद्र के एक पुत्र का नाम जो रुमिण्यो से जन्म हुआ था।

द्रुमकंटिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] सेमर का पेड़।

द्रुमनख-संज्ञा पुं० [सं०] कटा।

द्रुमध्याधि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पेड़ का रोग। (२) खाह। लाख। छापा।

द्रुमभर-संज्ञा पुं० [सं०] कटा। कंटक।

द्रुमधोष्ठ-संज्ञा पुं० [सं०] ताड़ का पेड़।

द्रुमशीर्ष-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पेड़ का सिरा। (२) एक प्रकार की सूत या मोल मंडप जो पेड़ की तरह फैला हुआ होता है।

द्रुमसार-संज्ञा पुं० [सं०] दाढ़िम। अनार। व०—अस्वीज हानीक कर सूक पीक द्रुमसार। ये दाढ़िम इमि देल बलि कछु तुव दस्तनाकार।—नंददास।

द्रुमसेन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कौरवों के पंच का एक योद्धा जो एष्टगुप्त के हाथ से मारा गया था। (२) एक राजा जो पूर्वजन्म में गण्डिव नाम का असुर था। (महाभारत)

द्रुमामय-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पेड़ का रोग। (२) खापा। लाख।

द्रुमारि-संज्ञा पुं० [सं०] हाथी।

द्रुमालय-संज्ञा पुं० [सं०] जंगल।

द्रुमाश्रय-संज्ञा पुं० [सं०] (जो पेड़ पर चले) गिरमिट।

द्रुमिणी-संज्ञा स्त्री० [सं०] वन। जंगल।

द्रुमिल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक दानव का नाम। यह सौम देव का राजा था। (२) नव योगेश्वरों में से एक।

द्रुमिला-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक छंद जिसके प्रत्येक चरण में २२ मात्राएँ होती हैं। इसके प्रत्येक चरण के अंत में गुरु होता है तथा १० और १८ मात्रा पर गति होती है। व०—इतर यह दैके दूत पठे कै असद्वलान यह रोत भयो। दोष्यो सब वीरन कुल के धीरन, जिन न चरन रन उलटि धरयो। तुम करो तयारी सब इस धारी, मैं दिल् यह हतकाद करयो। सुम् को तो खरना देर न करना, आदह साह को काज करयो।—सूदन।

द्रुमेश्वर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चंद्रमा। (२) ताड़। ताड़ का पेड़। (३) पारिजात।

द्रुमोत्पल-संज्ञा पुं० [सं०] कणिकार वृक्ष। कनकचंपा। कनि-यारी।

द्रुघय-संज्ञा पुं० [सं०] (१) लकड़ों की माप। पैमाना। (२) परिमाण।

द्रुसहस्रक-संज्ञा पुं० [सं०] विषाल वृक्ष। चिरंजी का पेड़।

द्रुह-संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० दुही] (१) पुत्र। (२) वृष।

द्रुहय-संज्ञा पुं० [सं०] मध्या।

द्रुदिया-संज्ञा पुं० [सं०] मध्या।

द्रुही-संज्ञा स्त्री० [सं०] कन्या।

द्रुष्टु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) प्राचीन धार्यों का एक वंश या जन-समूह। (२) शर्मिष्ठा के गर्भ से उत्पन्न ययाति राजा का जेठ पुत्र जिसने ययाति का सुढ़ापा देना अस्वीकार किया था। इसने कहा था—“जराप्रत मनुष्य, स्त्री, रथ, हाथी इत्यादि को नहीं भोग सकता”। ययाति ने इस पर इसे शाप दिया कि “तरी कोई अन्निलापा पूरी न होगी। जहाँ रथ, पालकी, हाथी, घोड़े आदि की सवारी ही नहीं होती,

जहाँ दूद काँव कर चलाता पड़ता है, जहाँ "राजा" शब्द का व्यवहार ही नहीं है वहाँ तुम्हें रचना पड़ेगी। द्रुव्यु के वंश में कोई राजा नहीं हुआ (महाभारत)। आत्मान के पास त्रिपुरा राजवंश की जो वंशावली 'राजमाला' नाम की है उसमें त्रिपुरा राजवंश का चंद्रवंशी एक राजा द्रुह्यु से चक्रना खिला गया है। पर विष्णु पुराण और हरिवंश के अनुसार द्रुह्यु को वसु और सेतु नामक दो पुत्र हुए। सेतु के पौत्र का नाम पाँचर था जिसके नाम से देश का नाम पड़ा। अस्तु पुराणों के अनुसार द्रुह्यु भारत के पश्चिमी कोने पर गया था न कि पूरबी। राजमाला की कथा कल्पित है।

द्रु-वंश पुं० [सं०] सोना।

द्रुण-वंश पुं० [सं०] बुद्धिक। विच्छू।

द्रुका-वंश शी० [सं०] महानिध। वकायन।

द्रुका-वंश पुं० [द्रु० देवनत] राशि का तृतीयांश। दे० "दकाय"।

द्रुकाय-वंश पुं० [द्रु० देवनत] राशि का तृतीयांश। दे० "दकाय"।

द्रुकाय-वंश पुं० [द्रु० देवनत] राशि का तृतीयांश। दे० "दकाय"।

द्रोण-वंश पुं० [सं०] (१) जकड़ी का एक कलसा या बरतन जिसमें वैदिक काल में सोम रखा जाता था। (२) जब आदि रखने का जकड़ी आदि का बरतन। कठवत। (३) एक प्राचीन माप जो चार आठक या १६ सेर, किसी किसी के मत से ३२ सेर की मानी जाती थी।

पर्था — वट। कलस। चम्पान। वक्वण। धर्मय।

(४) पत्तों का देता। (५) नाय। डीगा। (६) अरणी की जकड़ी। (७) जकड़ी का रूप। (८) डोम कौधा। काजा कौधा। (९) विच्छू। (१०) वह जलाशय या तालाब जो चार से घुनुय लंबा चौड़ा हो। यह पुष्करिणी और दीर्घिका से बड़ा होता है। (११) मेघों के एक नायक का नाम। जिस वर्ष यह मेघ नायक होता है उस वर्ष बहुत अरुणी वर्षा होती है। (१२) वृष। वेड़। (१३) द्रोणाचल नाम का पहाड़ जो रामायण के अनुसार सीरोद समुद्र के किनारे है और जिसपर विश्वकर्माखिनी नाम की संजीवनी जड़ी होती है। पुराणों के अनुसार यह एक वर्ष पर्यंत है। (१४) एक झूल का नाम (१५) नील का पौधा। (१६) केला। (१७) महाभारत के प्रसिद्ध माहाय योद्धा जिनसे कौरवों और पांडवों ने अश्व-शिष्या पाई थी। दे० 'द्रोणाचार्य'।

द्रोणकल-वंश पुं० [सं०] जकड़ी का एक पात्र जिसमें यज्ञों में सोम छाना जाता था। यह वैकंठ की जकड़ी का बनाया जाता था।

द्रोणकाक-वंश पुं० [सं०] काजा कौधा। डोम कौधा।

द्रोणमथिका-वंश शी० [सं०] रास्ता।

द्रोणगिरि-वंश पुं० [सं०] एक पर्वत का नाम। पुराणानुसार यह एक वर्ष पर्यंत है। वासुकीकीय रामायण में इसे सीरोद समुद्र में खिला है। दनुमान् विश्वकर्माखिनी संजीवनी जड़ी लेने इसी पर्वत पर गए थे।

द्रोणगुर्णी-वंश शी० [सं०] भूकदली।

द्रोणगुर्णी-वंश शी० [सं०] गूसा।

द्रोणमुख-वंश पुं० [सं०] वह गाँव जो ४०० गाँवों के बीच प्रधान हो।

द्रोणशर्मपद-वंश पुं० [सं०] एक सीप का नाम। (महाभारत)

द्रोणाल-वंश पुं० [सं०] एक दानव का नाम।

द्रोणा-वंश शी० [सं०] गूसा।

द्रोणाचल-वंश पुं० [सं०] एक पर्वत। द्रोणगिरि।

द्रोणाचार्य-वंश पुं० [सं०] महाभारत में प्रसिद्ध माहाय कीर जिनसे कौरवों और पांडवों ने अश्व-शिष्या पाई थी।

विदोष—इनकी कथा इस प्रकार है। गंगा-द्वार (हर-द्वार) के पास भरद्वाज नाम के एक ऋषि रहते थे। वे एक दिन गंगा-स्नान करने जाते थे, इसी बीच धृताची नाम की धनसा गद्दा कर निकल रही थी। उसका बंध छूट कर गिर पड़ा। ऋषि उसे देख कामाच्छ हुए और वनका वीर्यपात हो गया। ऋषि ने वीर्य को द्रोण नामक यज्ञपात्र में रख छोड़ा। बत्ती द्रोण से जो तेजस्वी पुत्र उत्पन्न हुआ उसका नाम द्रोण पड़ा। भरद्वाज ने अपने शिष्य अग्निवेश को जो अश्व दिपु वे अग्निवेश ने वे सत्र द्रोण को दिए। भरद्वाज के शरीर-पात के उपरांत द्रोण ने शाहदाऊ की कन्या कृपी के साथ विवाह किया जिससे उन्हें अश्वत्थामा नामक घोर पुत्र उत्पन्न हुआ जिसने जन्म लेते ही वस्त्रैःश्रवा घोड़े के समान घोर शब्द किया। द्रोण ने महेंद्र पर्वत पर जाकर परशुराम से अश्व और राक्ष की शिष्या पाई। वहाँ से लौटने पर इनके दिन दरिद्रता में धीतने लगे। छत्रत नामक एक राजा भरद्वाज के सखा थे। वनका पुत्र हुपद अश्वत्थम पर आकर द्रोण के साथ खेला था। हुपद जय उत्तर-पंचाल का राजा हुआ तब द्रोण उसके पास गए और वन्देनि उन्हें अपनी वाद्य मैत्री का परिचय दिया। पर हुपद ने रामद के कारण वनका तिरस्कार कर दिया। इस पर दुःखित और क्रुद्ध होकर द्रोणाचार्य हस्तिनापुर चले गए और वहाँ अपने साले कृपाचार्य के यहाँ ठहरे। एक दिन युधिष्ठिर आदि राक्षसुमार गेँद देख रहे थे। वनका गेँद कृप में गिर पड़ा। बहुत बल करने पर भी वह गेँद नहीं निकलता था, इसी बीच में द्रोण वध से निकले और उन्होंने अपने यारों से मार मार कर गेँद को कृप से बाहर कर दिया। जब यह प्चर भीम को छगी तब उन्होंने द्रोण को राक्षसुमारों की अश्वशिष्या के जिये नियुक्त किया। तब

से थे द्रोणाचार्य के नाम से प्रसिद्ध हुए। इन्हींकी शिक्षा के प्रसार से कौरव और पांडव ऐसे बड़े धनुर्धर और अस्त्र-कुशल हुए। द्रोणाचार्य के सब शिष्यों में अर्जुन श्रेष्ठ थे। अस्त्र-शिक्षा दे चुकने पर द्रोणाचार्य ने कौरवों और पांडवों से कहा "हमारी गुरुदक्षिणा यही है कि हुएद राजा को बाँध कर हमारे पास लाओ।" कौरवों और पांडवों ने पंचाल देश पर चढ़ाई की। अर्जुन हुएद को युद्ध में हरा कर, उसे द्रोणाचार्य के पास पकड़ कर लाए। द्रोणाचार्य ने हुएद को यही कह कर छोड़ दिया कि "तुमने कहा था कि राजा का मित्र राजा ही हो सकता है, अतः भागीरथी के दक्षिण तुम राज्य करो, उत्तर में राज्य कर्होना।" हुएद के मन में इस बात की चढ़ी कटक रही। उसने ऋषियों की सहायता से पुत्रैष्टि यज्ञ द्रोण को मारनेवाले पुत्र की कामना से किया। यज्ञ के प्रभाव से उसे छटपुत्र नामक पुत्र और कृप्या (द्रौपदी) नाम की कन्या हुई। कुशवेत्र के युद्ध में द्रोणाचार्य ने नौ दिन कौरवों की ओर से चोर युद्ध किया। अंत में जब युधिष्ठिर के मुँह से "अश्वत्थामा मारा गया हाथी..." यह सुना तब पुत्रशोक में नीचा सिर करके वे भ्रान्त में दूरे। इसी अथर्वर पर छटपुत्र ने हनका सिर काट लिया।

द्रोणि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) द्रोण का पुत्र अश्वत्थामा। (२) अष्टम मन्वन्तर के एक ऋषि।
संज्ञा स्त्री० दे० "द्रोणी"।

द्रोणिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] नील का पौधा।
द्रोणी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सोंगी। (२) दोनियाँ। छोटा दोना। (३) लकड़ी का बना हुआ पाय। कदवत। (४) काठ का प्याला। डोकिया। (५) दो पर्वतों के बीच की भूमि। दून। (६) केला। (७) दर्रा। (८) इंद्रायन। (९) एक नदी। (१०) द्रोण की स्त्री, कृषी। (११) नील का पौधा। (१२) एक परिमाण जो दो सूर्य या १२८ सेर का होता था। (१३) एक प्रकार का नमक। (१४) शरीरता।

द्रोणील-संज्ञा पुं० [सं०] केतकी का फूल।

द्रोणीलघना-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का लवण जो कर्पाटक देश के आस पास होता है। इसे विरिया लोग भी कहते हैं। यह अति घण्ट, भेदक, स्निग्ध, शूलनाशक और अल्प पित्त-वर्द्धक माना गया है।

पय्यां०—द्रोण्येय। चर्द्धेय। द्रोणीम। वारिम। चार्द्धिमव।
द्रोणी। चित्रकूट-लवण।

द्रोणोदन-संज्ञा पुं० [सं०] सिंहदुज के पुत्र का नाम जो शाक्य सुनि युद्ध के चाचा थे।

द्रोण्यामय-संज्ञा पुं० [सं०] शरीर के भीतर का एक रोग।

द्रोणक-संज्ञा पुं० दे० "द्रोण"।

द्रोह-संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० द्रोही] दूसरे का अहितचिंतन। प्रसिद्धिहा का भाव। बैर। द्वेष।

द्रोहाट-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वैद्यक प्रतिक। ऊपर से देखने में साधु पर भीतर भीतर सुराई रखनेवाला। (२) मृगलक्षक। (३) वेद की एक शाखा।

द्रोही-वि० [सं० द्रोहित] [स्त्री० द्रोहिणी] द्रोह करनेवाला। सुराई चाहनेवाला।

संज्ञा पुं० यैरी। शयु।

द्रोणायन, द्रोणायनि-संज्ञा पुं० [सं०] अश्वत्थामा।

द्रोणि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अश्वत्थामा। (२) एक ऋषि जो पुरायानुसार उनतीसवें द्वार में रहेंगे।

द्रोणिक-संज्ञा पुं० [सं०] वह खेत जिसमें एक द्रोण (३८ सेर) बीज बोया जाय।

वि० "द्रोणसंघी"।

द्रोपद-संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० द्रोपदी] हुएद का पुत्र।

द्रोपदी-संज्ञा स्त्री० [सं०] राजा हुएद की कन्या कृप्या जो पाँचों पाँदवों को प्याही गई थी।

विशेष—राजा हुएद ने जब द्रोण को मारनेवाले पुत्र की कामना से पुत्रैष्टि यज्ञ किया था तब उसे छटपुत्र नाम का पुत्र और कृप्या नाम की कन्या उत्पन्न हुई थी। जब कन्या चढ़ी हुई तब हुएद ने उसका विवाह अर्जुन से करना विचारा। पर लखारगृह में आग लगने के पीछे जब पाँदवों का पता बहुत दिनों तक न लगा तब हुएद ने वयुक्त घर प्राप्त करने के लिये धूम धाम से एक स्वयंवर रचा। इसमें ऊपर एक मड़ली टाँग दी गई जिससे कुछ नीचे हट कर एक चक घूम रहा था। हुएद ने प्रतिज्ञा की कि जो कोई इस मड़ली की आँत को पाय से चोरेगा उसी को द्रौपदी दी जायगी। स्वयंवर में बहुत दूर दूर से रामा लोग आए थे, पचिों पाँदव भी धूमते धूमते माहाण्य के वेश में यहाँ पहुँचे। जब कोई अश्रिय लक्ष्य भेद न कर सका तब कर्ण उठा। पर द्रौपदी ने कहा कि मैं सुतपुत्र के साथ विवाह नहीं कर सकती। अंत में माहाण्य वेपचारी अर्जुन ने छटक लक्ष्य भेद किया। पचिों पाँदव उन दिनों सुत रूप से एक माहाण्य के यहाँ माता सहित रहते थे। अतः द्रौपदी को खेकर पचिों भाई माहाण्य के आश्रम पर गए और द्वार पर माता को पुकार कर बोले "माँ, आज हमलोग एक रमणीय निचा मँग कर लाए हैं।" लुंती ने भीतर से कहा "अच्छी बात है, पचिों भाई मिलकर भोग करो"। माता के चचन की रचा के लिये पचिों भाइयों ने द्रौपदी को ग्रहण किया। नारद के सामने यह प्रतिज्ञा की गई कि जिस समय एक भाई द्रौपदी के पास हो दूसरा उस समय वहाँ न जाय, यदि जाय तो याहद बर्ष उसे वनवास करना पड़े।

दुर्बोधन के साथ हुआ खेलेते खेलेते युधिष्ठिर जब सब कुछ हार गए तब द्रौपदी को भी हार गए। इस पर दुर्बोधन ने भी सभा में दुःशासन के द्वारा द्रौपदी को पकड़ उठाया, दुःशासन सभा के बीच बसका वस्त्र खींचना चाहता था, पर वस्त्र न खींच सका। इस अपमान पर क्रुपित होकर भीम ने प्रतिज्ञा की कि "दुर्बोधन, जिस अंग्रे के तूने द्रौपदी को दिखाया है उसे मैं अवश्य तोड़ूँगा, और तेरे कलेजे का रक्तान करूँगा"। क्रुशेत्र के युद्ध में भीम ने अपनी यह प्रतिज्ञा पूरी की। पुराणों में द्रौपदी की गणना पंच कन्याओं में है।

पर्यारो—कृष्णा। पांचाली। सैरिंध्री। नित्ययौवना। शास्त्रेनी। वेदिमा।

द्रौपदेय—संज्ञा पुं० [सं०] द्रौपदी के पुत्र।
 द्रौह्य—संज्ञा पुं० [सं०] द्रुह्य के गोत्र में उत्पन्न पुरुष।
 द्वंद्व—संज्ञा पुं० [सं०] (१) युग। मिथुन। जोड़ा। उ०—एवञ्ज कुबिरा शंभुना केश-युत धन पित्त कंतक जिन लहे। पद केश द्वंद्व मुकुंदराम भसेत्त निल भ्रामादे ।—पुत्रली।
 (२) जोड़ा। प्रतिद्वंद्वी। (३) द्वंद्वयुद्ध। दो आदमियों की परस्पर लड़ाई। (४) ऋगुद्गा। कलह। बलेड़ा। उ०—धनि यह द्वैज जहां लक्ष्यो तम्यो दगनि दुख द्वंद। एव मागनि पाव वयो बहो अपरव चंदे।—विहारी।

क्रि० प्र०—मचना।—मचाना।

(५) दो परस्पर विरुद्ध वस्तुओं का जोड़ा। जैसे गर्म-सर्दी, राग-द्वेष सुख-दुःख दिन-रात इत्यादि। उ०—रघुनेंद निकृष्य द्वंद धनं। महिपाल त्रिलोकिय दीनजनं ।—पुत्रली।
 (६) बलमन। बलेड़ा। कंकट। जंजाल। उ०—मो मन बागी रामचरन बस। देह गेह सुत वित कलत्र मई मगन होत विनु जतन किए जस। द्वंद्व-रहित गतमान ज्ञानरत विषय-विरत खदाई नाना कस ।—पुत्रली। (७) कष्ट। दुःख। उ०—सौरह सहस घोष-कुमारि। देखि सब को ख्याम रीमे रहैं गुमां पसारि। योकि लीन्हो कदम के तर हर्हा थावहु गारि। प्रमद भए तहई सयनि को हरि काम द्वंद निवारि।
 —सूर। (८) बपद्वय। ऋगुद्गा। उ०—कदा करों हरि बहुल सिराई। सहि न सकी रिस ही रिस भरि गई बहुतें वीठ कन्हारै। मेरो कहयो नेकु नहिं मानत करत आपनी टेक। मोर होत बरहन के आवत प्रम की चप धनेक। कित जहाँ तहै द्वंद मचायत धर न रहत छुन एक। नूरखाम त्रिभुवन को करता पद्यमति कहति जेकेक ।
 —सूर।

क्रि० प्र०—मचना।

(१) रहस्य। गुप्त बात। (१०) आशंका। भय। डर। (११) दुःख। दो-चिन्तापन। संशय।

विद्रोप—दे० "द्वंद्व"।
 संज्ञा स्त्री० [सं० द्वंद्वी] बुद्धिहीन। उ०—बाजे दोज द्वंद औ भेरी। मंदिर पूर कर्मक चहुँ फेरी।—जायसी।

द्वंद्वज-वि० दे० "द्वंद्वन"।
 द्वंद्वयुद्ध—संज्ञा पुं० दे० "द्वंद्वयुद्ध"।
 द्वंद्व-वि० [सं० द्वंद्वयु] ऋगुद्गा। उ०—दीन गरीबी दीन को द्वंद्व को अभिमान। द्वंद्व तो विप से भरा दीन गरीबी जान।—कबीर।

द्वंद्व—संज्ञा पुं० [सं०] (१) युग। दो वस्तुएँ जो एक साथ हैं। जोड़ा। (२) स्त्री पुरुष या नर मादा का जोड़ा। (३) दो परस्पर विरुद्ध वस्तुओं का जोड़ा। जैसे, शीत उष्ण, सुख दुःख, मला घृता, पाप पुण्य, स्वर्ग नरक इत्यादि। (४) रहस्य। भेद की बात। गुप्त बात। (५) दो आदमियों की लड़ाई। (६) ऋगुद्गा। बलेड़ा। कलह।

क्रि० प्र०—मचना।—मचाना।
 (७) एक प्रकार का समास जिसमें मिलनेवाले सब पद प्रधान रहते हैं और उनका अन्वय एक ही क्रिया के साथ होता है, जैसे, हाथ पाँव धोयो, रोटी दाल खाधो।

विद्रोप—यह समास "और" आदि संयोगक पदों का लोप करके बनाया जाता है, जैसे, 'हाथ और पाँव' से 'हाथ पाँव', 'रात और दिन' से 'रात दिन'।

(८) दुर्ग। किला।
 द्वंद्वचर-वि० [सं०] जोड़े के साथ चलने या रहनेवाला।
 संज्ञा पुं० चक्रवाक। चक्रवा।

द्वंद्वचारी—संज्ञा पुं० [सं० द्वंद्वचारि] स्त्री० द्वंद्वचारिणी] चक्रवा।
 द्वंद्वज-वि० [सं०] (१) सुख दुःख रागद्वेष आदि द्वंद्वों में उत्पन्न (मनोवृत्ति)। (२) बात, पित्त और कफ नाम के त्रिदोषों में से दो दोषों से उत्पन्न (राग)।
 द्वंद्वयुद्ध—संज्ञा पुं० [सं०] वह लड़ाई जो दो पुरुषों के बीच में हो। कुरती। हाथा पाई।

द्वय-वि० [सं०] दो।
 द्वयाग्नि—संज्ञा पुं० [सं०] बाल चीता।
 द्वयातिग-वि० [सं०] जिसके सत्वगुण ने शेष दो गुणों अर्थात् रजः और तमोगुण को दबा दिया हो। जिसमें सत्वगुण प्रधान हो, और शेष दो गुण दबकर अधीन हो गए हों।

द्वारः—संज्ञा पुं० [सं०] (१) द्वारपाल। (२) मंदिकेश्वर।
 द्वाचत्वारिंश-वि० [सं०] घयाद्धीसर्वा।
 द्वाचत्वारिंशत्-वि० [सं०] जो संख्या में चालीस से दो अधिक हो। बयालीस।

संज्ञा पुं० घयाद्धीस की संख्या।
 द्वज—संज्ञा पुं० [सं०] किसी स्त्री का वह पुत्र जो उसके पति से उत्पन्न न हो, दूसरे पुरुष से उत्पन्न हो। जात। दोगडा।

द्वात्रिंश-वि० [सं०] बत्तीसवाँ ।
 द्वात्रिंशत्-वि० [सं०] जो संख्या में तीस और दो हो । बत्तीस ।
 संज्ञा पुं० बत्तीस की संख्या या श्रृंख ।
 द्वादश-वि० [सं०] (१) जो संख्या में दस और दो हो । बारह ।
 (२) बारहवाँ ।
 संज्ञा पुं० बारह की संख्या या श्रृंख ।
 द्वादशक-वि० [सं०] बारह का ।
 द्वादशकर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कार्तिकेय । (२) वृद्धरपति ।
 (३) कार्तिकेय का एक अनुचर । (४) हवैय योग ।
 द्वादशभास्व-संज्ञा पुं० [सं०] फलित ज्योतिष में जन्मकुंडली के बारह घर जिनके क्रम से तनु, आदि नाम फलानुसार रखे गए हैं ।
 विशेष—जन्मकालीन लग्न से पहले घर से तनु (अर्थात् शरीर चीप होगा कि स्थूल, सबल-कि निर्बल, लंबा कि गाटा इत्यादि); दूसरे घर से धन और कुटुंब; तीसरे से बुद्ध और विक्रम आदि; चौथे से बंधु, वाहन, सुख और आलस्य; पांचवे से बुद्धि, मंत्रणा और पुत्र; छठे से पौष्ट और शत्रु; सातवें से काम, श्री और पथ; आठवें से श्राव्य स्यु, अथवाद आदि; नवें से गुरु, माता, पिता, पुण्य आदि; दसवें से मान, आशा और कर्म; ग्यारहवें से प्राप्ति और आय; बारहवें घर से मंत्री और ध्यय का विचार किया जाता है ।
 द्वादशरात्र-संज्ञा पुं० [सं०] बारह दिनों में होनेवाला एक यज्ञ ।
 द्वादशश्लोचन-संज्ञा पुं० [सं०] कार्तिकेय ।
 द्वादशशर्गा-संज्ञा स्त्री० [सं०] फलित ज्योतिष में नीलकंठ ताजिक के अनुसार वर्षकाल में ग्रहों के फलाफल निकालने के लिये बारह वर्गों की समष्टि ।
 विशेष—बारह वर्ग ये हैं—वैश्व, देवा, द्रेकाण्य, चतुर्भाय, पंचभाय, षोडश, सप्तमर्षा, अष्टभाय, नवमर्षा, दशमर्षा एकादशाय और द्वादशाय ।
 द्वादशशार्दिक-संज्ञा पुं० [सं०] बारह वर्ष का एक मत जो ब्रह्महत्या लगने पर किया जाता है ।
 विशेष—हूस में हत्यारे का वन में छुटी बनाकर, सब मांसार्थों को त्याग कर के रहना पड़ता है । यदि वनछलों से निर्वाह न हो तो एक चिह्न धारण करके घाटी में भिचा-माँगनी पड़ती है ।
 द्वादशशुद्धि-संज्ञा स्त्री० [सं०] वैष्णव संप्रदाय में तंत्रोक बारह प्रकार की शुद्धि ।
 विशेष—देवगृह परिष्कार, देवगृह गान, प्रदक्षिणा, ये तीन प्रकार की पद शुद्धि हैं । पूजा के लिये फूल पत्ते तोड़ना, प्रतिमात्तोषन (स्पर्श आदि) यह हस्तशुद्धि हुई, भगवान का नाम कीर्तन वाक्यशुद्धि है । हरिकथा श्रवण, प्रतिमा उत्सव

आदि का दर्शन यह श्रवण और नेत्रशुद्धि हुई । विष्णु-पादोद्भूत और निर्मात्य धारण तथा प्रणाम शिर की शुद्धि तथा निर्मात्य और गंधधुपगादि का सूँघना प्राणशुद्धि है ।
 द्वादशांग-वि० [सं०] जिसके बारह अंग या अवयव हैं ।
 संज्ञा पुं० (१) बारह गंधद्रव्यों के योग से यनी हुई पूजा में जलाने की पूरा ।
 विशेष—बारह द्रव्य ये हैं—गुरुज, चंदन, तेजपात, कुट, अमर, केसर, जायफल, कपूर, जटामाती, नागरमोथा, तज और लस ।
 (२) जैनों का वह ग्रंथ-समूह जिसे वे गंधर्षों का बनाया मानते हैं । इसके बारह भेद हैं—आचारान्त, सूत्रकृत, स्थानांग, समावायंग, भगवतीसूत्र, ज्ञानधर्म-कथा, उपासक दशांग, श्रंतकृद्दशांग, अनुत्तरोपपत्तिकंग, प्रदत्त-व्याकरण, विपाकसूत्र, और दृष्टिवाद ।
 द्वादशांगि-संज्ञा स्त्री० [सं०] जैनों के द्वादश अंग ग्रंथों का समूह ।
 द्वादशांशु-संज्ञा पुं० [सं०] बृहस्पति ।
 द्वादशाक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कार्तिकेय । (२) बुद्धदेव ।
 द्वादशाक्षर-संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु का एक मंत्र जिसमें बारह अक्षर हैं । वह मंत्र यह है, 'श्रीं नमो भगवते वासुदेवाय' ।
 द्वादशाक्षय-संज्ञा पुं० [सं०] बुद्धदेव ।
 द्वादशास्त्र-संज्ञा पुं० [सं०] द्वादशमंत्र [(१) सूर्य । (२) श्राक का पेट ।
 द्वादशायतन-संज्ञा पुं० [सं०] जैनियों के दर्शन के अनुसार पाँच द्वारोंद्विषे, पाँच कर्मद्विषे तथा मन और बुद्धि का समुदाय ।
 द्वादशाह-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बारह दिनों का समुदाय । (२) एक यज्ञ जो बारह दिनों में किया जाता था । (३) यह आह्न जो कितनी के निमित्त उसके भरने से बारहवें दिन किया जाय ।
 द्वादशी-संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रत्येक पक्ष की बारहवीं तिथि ।
 द्वापर-संज्ञा पुं० [सं०] बारह युगों में तीसरा युग । पुराणों में यह युग ८६४००० वर्ष का माना गया है ।
 विशेष—भार्गवों की कृष्ण प्रयोदशी बृहस्पतिवार को इस युग की उत्पत्ति मानी गई है । मत्स्यपुराण के अनुसार द्वापर लगते ही धर्म आदि में घटती शारंभ हुई । जिनके करने से प्रेता में पाप नहीं लगता था वे सब कर्म पाप समझे जाने लगे, प्रजा जोभी हो खली, अज्ञान के कारण धृति स्मृति आदि का यथार्थ बोध लुप्त होने लगा, माना प्रकार के भाव्य आदि बनने और शनैक प्रकार के मतभेद चलने लगे । एक पुराण के अनुसार द्वापर में मनुष्यों की परमाणु दो हजार वर्ष की थी ।

द्राम्यायण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह पुरुष जो दो मनुष्यों का पुत्र हो (एक का और दूसरे का दत्तक) ।
(२) वह पुरुष जो दो ऋषियों के गोत्र में वल्लभ हुआ हो । (३) बहालक मुनि का नाम । (४) गौतम मुनि का नाम ।

द्वार-संज्ञा पुं० [सं०] (१) किसी छोट करनेवाली या रोकनेवाली वस्तु (जैसे, दीवार, परदा आदि) में वह छिद्र या खुला स्थान जिससे होकर कोई वस्तु धार पर या भीतर बाहर जा सके । मुख । मुहाना । मुहड़ा । जैसे, गंगाद्वार । (२) घर में आने जाने के लिये दीवार में खुला हुआ स्थान । दरवाजा ।

मुहाना—(किसी बात के लिये) द्वार खुलना=किसी बात के वापर होने के लिये मार्ग या उपाय निकलना । द्वार द्वार फिरना=(१) कार्यतिद्धि के लिये चाँधे थोर वस्तु से लोगों के यहाँ जाना । (२) घर पर भील मँगना । द्वार खगना=(२) किवाड़ बंद होना । (२) किसी आखरे में दरवाजे पर लड़ा रहना । उ०—यह जान्यो जिय राधिका द्वारे हरि खारो । गर्व कियो जिय प्रेम को ऐसे अनुसारी ।—सूर । (३) चुपचाप किसी बात की आहट सेने के लिये किवाड़ के पीछे छिपकर लड़ा होना । द्वार खगना=किवाड़ बंद करना । (३) ईद्रियों के मार्ग वा छेद, जैसे ब्रह्म, कान, नाक, मुँह, आदि । उ०—ओ द्वारे का पीमा तामें पंढी पौन । रहने को धारचर्य है नष्ट अचंभा कौन ?—कबीर । (४) व्याप । साधन । कुरिया । जैसे, हयका कमाने का द्वार । विशेष—सांख्यकारिका में श्रतःकरण ज्ञान का प्रथम स्थान कहा गया है और शान्तद्विजों उसके द्वार बतलाई गई हैं ।

द्वारकटक-संज्ञा पुं० [सं०] किवाड़ । कपाट ।

द्वारका-संज्ञा स्त्री० [सं०] काठियावाड़ गुजरात की एक प्राचीन नगरी । पुराणानुसार यह सात पुरियों में मानी गई है । यहाँ द्वारकानाथजी का मंदिर है । हिंदू लोग इसे चार धामों में मानते हैं और यहाँ आकर यज्ञी श्रद्धा से धूप लेते हैं । द्वापती भी इसे कहते हैं । यहाँ श्रीकृष्णचंद्र जरा-संघ के अन्तर्गत के कारण मथुरा छोड़कर जा बसे थे । यहाँ उन समय यादवों की राजधानी थी । पुराणों में लिखा है कि श्रीकृष्ण के देहत्याग के पीछे द्वारका समुद्र में मग्न हो गई । पौराणिक से १२ कोस दक्षिण समुद्र में इस पुरी का स्थान खोग अथ तक बनजाते हैं । द्वारका का एक नाम कुरास्थली भी है ।

द्वारकाधोदा-संज्ञा पुं० [सं०] (१) श्रीकृष्णचंद्र । (२) कृष्ण की वह मूर्ति जो द्वारका में है ।

द्वारकानाथ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कृष्णचंद्र । (२) कृष्णचंद्र की वह मूर्ति जो द्वारका में है ।

द्वारकेश-संज्ञा पुं० [सं०] द्वारकानाथ ।

द्वारचार-संज्ञा पुं० [सं०] द्वार+चार=व्यवहार । वह रीति जो खड़कीवाले के दरवाजे पर धारात पहुँचने पर होती है ।

द्वि० प्र०—करना ।—होना ।

द्वारछेकाई-संज्ञा स्त्री० [द्वि० द्वार+छेकना] (१) विवाह में एक रीति । जब घर विवाह कर वधू समेत अपने घर आता है तब कोहबर के द्वार पर उसकी पहन उसकी राह को रोकती है । ऐसे समय वर कुछ नेग देता है तब वह राह छोड़ देती है । (२) वह नेग जो द्वारछेकाई में दिया जाता है ।

द्वारपंडित-संज्ञा पुं० [सं०] किसी राजा के यहाँ का प्रधान पंडित ।

द्वारप-संज्ञा पुं० [सं०] (१) द्वारपाल । उ०—दुपदभूप तप कोपित वेशा । दिपो द्वापन तुत सँदेवा ।—सबल । (२) विष्णु ।

द्वारपाल-संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० द्वारपाली, द्वारपालिनी, द्वारपालिनी] (१) वह पुरुष जो दरवाजे पर रक्षा के लिये नियुक्त हो । खोडीदार । दरवान ।

पर्या०—प्रतीहार । द्वास्थ्य । द्वारप । दर्राक । दीःसाधिक । वत्सक । गर्बाट । द्वारस्थ । वता । दीकारिक । दंडी ।

(२) तंत्र के अनुसार वह देवता जो किसी मुख्य देवता के द्वार का रक्षक हो । इन देवताओं की पूजा पहले की जाती है । (३) एक तीर्थ । महाभारत में इसे सरस्वती के किनारे लिखा है ।

द्वारपालक-संज्ञा पुं० [सं०] द्वारपाल ।

द्वारपंडी-संज्ञा स्त्री० [सं०] देहली । खोड़ी । दहलीज ।

द्वारपूजा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) विवाह में एक कृत्य जो कन्या-वाले के द्वार पर उस समय होता है जब धारात के साथ वर पहले पहल आता है । कन्या का पिता द्वार पर स्थापित कलरा आदि का पूजन करके अपने हृष्ट मित्रों सहित वर को उतारता और मधुपर्क देता है । (२) जैनों की एक पूजा ।

द्वारबलिभुक्त, द्वारबलिमुजु-संज्ञा पुं० [सं०] यक । बगला ।

द्वारव्यंघ-संज्ञा पुं० [सं०] ताला ।

द्वारवती-संज्ञा स्त्री० [सं०] द्वारवती । द्वारका ।

द्वारस्समुद्र-संज्ञा पुं० [सं०] दक्षिण का एक पुराना नगर । यहाँ कर्नाटक के राजाओं की राजधानी थी । इसके दक्षिण अथ तक श्रीरंगपट्टन से वायुकोण पर सौ मील पर है ।

द्वारस्थ-वि० [सं०] जो द्वार पर बैठा हो ।

संज्ञा पुं० द्वारपाल ।

द्वार-संज्ञा पुं० [सं०] द्वार । (१) द्वार । दरवाजा । फाटक उ०—मुनि के शब्द मँडक कनकारा । बँडेव धाय पुरुष के द्वार । —जायसी । (२) मार्ग । राह । उ०—साधन धाम मोच्छ कर द्वारा । पाह न जेहि परलोक सँवारा ।—तुलसी ।

द्विप-संज्ञा पुं० [सं०] (१) हाथी । (२) नागकेसर ।
द्विपक्ष-वि० [सं०] (१) जिसके दो पर हों । (२) जिसमें दो पक्ष हों ।

संज्ञा पुं० (१) पक्षी । चिड़िया । (२) मंहीना । मास ।

द्विपक्षमूली-संज्ञा स्त्री० [सं०] दूरमूल ।

द्विपथ-संज्ञा पुं० [सं०] वह स्थान जहाँ दो पथ आकर मिलते हों । श्रेयादा ।

द्विपद-वि० [सं०] (१) जिसके दो पैर हों । जैसे, मनुष्य, पक्षी । (२) जिसमें दो पद या शब्द हों ।

संज्ञा पुं० (१) वह जंतु जिसके दो पैर हों । (२) मनुष्य । (३) ज्योतिष के अनुसार मिथुन, तुला, कुंभ, कन्या और धनु लग्न का पूर्व भाग । (४) वास्तुमंडल का एक कोटा ।

द्विपदा-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह शब्दा जिसमें केवल दो पाद हों ।

द्विपदिक-संज्ञा पुं० [सं०] शुद्धराग का एक भेद ।

द्विपदी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वह छंद या वृत्ति जिसमें दो पद हों । (२) दो पदों का गीत । (३) एक प्रकार का चित्र-काव्य जिसमें किसी शोधे आदि को कोटों की तीन पंक्तियों में इस प्रकार लिखते हैं—दोहरे के पहले चरण का आदि अक्षर पहले कोठे में, फिर एक एक अक्षर छोड़कर पहली पंक्ति के कोठों में आते हैं, इसके उपरांत छंदे हुए अक्षरों का दूसरी पंक्ति के कोठों में एक एक करके रख देते हैं । इसी प्रकार तीसरी पंक्ति के कोठों में दोहरे के दूसरे चरण के अक्षर एक एक छोड़ते हुए रखते हैं । इन्हीं तीन कोष्ठ पंक्तियों से पूरा दोहा पढ़ लिया जाता है । पढ़ने का क्रम यह होना चाहिए कि पहले कोठे के अक्षर को पढ़कर उसके नीचेवाले कोठे के अक्षर को पढ़े, फिर पहली पंक्ति के दूसरे अक्षर को पढ़कर उसके नीचे के (दूसरी पंक्ति के दूसरे) कोठे के अक्षर को पढ़े । तीसरी पंक्ति के कोठों के अक्षरों को नीचे से ऊपर इस क्रम से पढ़े, जैसे,

रा	दे	न	दे	ग	प	शु	र	म	धा
म	ष	र	य	ति	र	घ	न	द	रि
वा	दे	शु	दे	ग	प	कु	र	ह	धा

रामदेव नरदेव गति परशु धारन मद् धारि ।

यामदेव गुरुदेव गति पर कुधरन हृद धारि ॥

द्विपद्यो-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार के जंगली बर का पेड़ । बनकेली ।

द्विपाद-वि० [सं०] (१) जिसे दो पैर हों । दो पैरोंवाला (पशु) । (२) जिसमें दो पद या चरण हों (छंद, आदि) ।

संज्ञा पुं० मनुष्य, पक्षी आदि दो पैरवाले जंतु ।

द्विपायी-संज्ञा पुं० [सं० द्विपायिन्] [स्त्री० द्विपायिनी] हाथी ।

द्विपाश्य-संज्ञा पुं० [सं०] गणेश (जिनका मुख हाथी के मुख के समान है) ।

द्विपृष्ठ-संज्ञा पुं० [सं०] जिनके दो पक्ष वास्तुद्वेषों में से एक ।

द्विबाहु-वि० [सं०] जिसके दो बाहु हों । द्विभुज ।

संज्ञा पुं० मनुष्य आदि दो पैरवाले जीव ।

द्विभाव-संज्ञा पुं० [सं०] दो भाव । हुराव ।

वि० जिसमें दो भाव हों । कपटी । बुरे स्वभाव का ।

द्विभाषी-संज्ञा पुं० [सं० द्विभाषिन्] [स्त्री० द्विभाषिणी] वह पुरुष जो दो भाषाएँ जानता हो । दुभाषिया ।

द्विभुज-वि० [सं०] जिसके दो हाथ हों । दो हाथवाला ।

द्विभूम-वि० [सं०] दो तटों (घर) ।

द्विमातृ-संज्ञा पुं० [सं०] (दो माताओं के गर्भ से उत्पन्न) जरासंध ।

द्विमातृज-संज्ञा पुं० [सं०] (दो माताओं के गर्भ से उत्पन्न)

(१) जरासंध । (२) गणेश ।

द्विमात्र-संज्ञा पुं० [सं०] वह वर्ण जो दो भाषाओं का हो । दीर्घ । जैसे, आ, ऊ, की इत्यादि ।

द्विमीठ-संज्ञा पुं० [सं०] हरिवंश के अनुसार इक्ष्वाणुर बसाने-वाले महाराज हन्ति का एक पुत्र । यह अजमीढ़ का भाई था ।

द्विमुख-वि० [सं०] [स्त्री० द्विमुखी] जिसके दो मुख हों ।

संज्ञा पुं० एक प्रकार के कृमि जो पेट के मज में उत्पन्न हो जाते हैं । (२) दो मुखवाला साँप । गूँगी ।

द्विमुखा-संज्ञा स्त्री० [सं०] जोक ।

द्विमुखी-वि० स्त्री० [सं०] दो मुखवाली ।

संज्ञा स्त्री० (१) वह गाय जो बचा दे रही हो । (बच्चा देते समय गाय के पीछे की धोर बच्चे का मुँह निकलता है इसके देखने में गाय के दोनों ओर मुँह दिखाई पड़ता है । ऐसी गाय के दान का बड़ा माहात्म्य समझा जाता है) ।

द्वियजुष-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की ईंट जो जलों में यजुष मंडप आदि के बनाने में काम आती थी ।

संज्ञा पुं० यजमान ।

द्विरद-संज्ञा पुं० [सं०] (१) हाथी । (२) हुबोधन का एक भाई । व०—द्विरद्वि बहुरि बोबाह नरेया । सौपि गयंद-यूप अषदेया ।—सम्बल ।

वि० दो दातोंवाला ।

द्विरदाशन-संज्ञा पुं० [सं०] सिंह ।

द्विरसन-संज्ञा पुं० [सं०] साँप ।

द्विरागमन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पुनरागमन । फिर दूसरी बार आना । (२) एक का अपने पति के घर दूसरी बार आना । दौंगा ।

द्विरात्र-संज्ञा पुं० [सं०] दो रातों में होनेवाला एक पक्ष ।

द्विराप-संज्ञा पुं० [सं०] हाथी ।

द्विरक्ति-संज्ञा स्त्री० [सं०] दो बार कथन ।

द्विकृदा-संज्ञा छी० [सं०] यह की जिसका एक बार एक पति से और दूसरी बार दूसरे पति से विवाह हुआ हो। पुनर्भू।

द्विरतस्त-संज्ञा पुं० [सं०] (१) दो निम्न निम्न पद्यभेदों से ब्यक्त पद्य, जैसे छोड़े और गढ़दे से ब्यक्त खरचर। (२) दोगना।

द्विरफ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अमर। (२) मर्वर।

द्विवज्रक-संज्ञा पुं० [सं०] घर जिसमें सोलह कोण हों। सोलह-बेना घर।

द्विविन्दु-संज्ञा पुं० [सं०] जिसमें।

द्विविन्दु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) रामायण के अनुसार एक यंदर जो रामचंद्र की सेना का एक सेनापति था। (२) विष्णु पुराणादि के अनुसार एक यंदर। यह गरकासुर का मित्र था। इसे बलदेवजी ने मारा था।

द्विविध-वि० [सं०] दो प्रकार का।

कि० वि० दो प्रकार से।

द्विविधा-संज्ञा पुं० [सं० द्विविध] दुबधा।

द्विवेद-वि० [सं०] दो वेद पढ़नेवाला।

द्विवेदी-संज्ञा पुं० [सं० द्विवेदि] ब्राह्मणों की एक उपजाति। दूधे।

द्विवेशर-संज्ञा छी० [सं०] दो पहियों की छोटी गाड़ी।

द्विव्यूष-संज्ञा पुं० [सं०] दो प्रकार के व्यूष का धावा।

विशेष-सुश्रुत ने व्यूष दो प्रकार के माने हैं। एक शरीर दूसरा आंगतुक। जो चाब धातु, रक्त, पित्त और कफ से ढोड़े भादि के रूप में होता है उसे शरीर प्रयु और जो किसी जंतु के काटने, चीरने अगने आदि से दो उसे आंगतुक प्रयु कहते हैं।

द्विद्राफ-संज्ञा पुं० [सं०] वह पद्य जिनके छुर पठे हों। दो सुरवाला पद्य। जैसे, गाय, अँड, हिरन हत्यादि।

द्विदारीर-संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिष के अनुसार कन्या, मिथुन धनु और मीन राशियाँ जिनका प्रथमादं स्थिर और द्वितीयादं चर माना जाता है।

द्विदशिर-वि० [द्वि० द्वि + शिर] दो खिरवाला। जिसके दो खिर हों।

मुहा०-कीन द्विदशिर है ?=कितने फाटनू खिर है ! कितने थपने मरने का मय नहीं है ? व०-गुहारे दुख का कारण न जानने से हमको बड़ा झेय होता है। क्या हमसे कोई अपराध हुआ, अथवा और किसी ने द्विदशिर होना चाहा है ?=कारंभती।

द्विदशीर्ष-वि० [सं०] जिसके दो खिर हों।

सत्ता पुं० अग्नि।

द्विप, द्विप, द्विपस्त-वि० [सं०] द्वेप रखनेवाला।

संज्ञा पुं० शत्रु। वैरी।

द्विष्ट-वि० [सं०] जिससे द्वेष हो।

संज्ञा पुं० सात्र। ताबा।

द्विसप्तति-वि० [सं०] (१) बहतर। (२) बहतर्या।

संज्ञा छी० बहतर की संख्या।

द्विस्वित्प्राण-संज्ञा पुं० [सं०] उवाके हुए घान का चावल।

मुजिया चावल।

विशेष-प्रतापवर्त पुराण में वति, विधवा और प्रजाचारी के विषे इसका खाना निषिद्ध कहा गया है। देवपूजन आदि में भी इसका व्यवहार अर्घ्या नहीं कहा गया है।

द्विहन्-संज्ञा पुं० [सं०] हाथी (जो सूँढ़ से मारता है)।

द्विह्रिद्रा-संज्ञा छी० [सं०] दाहदहरी।

द्विहृदया-वि० छी० [सं०] गर्भिणी। गर्भवती।

द्वीद्विप-संज्ञा पुं० [सं०] वह जंतु जिसके दोही द्विर्पा हों।

द्वीप-संज्ञा पुं० [सं०] (१) स्थल का वह भाग जो चारों ओर जल से घिरा हो।

विशेष-यड़े द्वीपों को महाद्वीप कहते हैं। बहुत से छोटे छोटे द्वीपों के समूह को द्वीपसुत्र या द्वीपमाला कहते हैं। द्वीप दो प्रकार के होते हैं-साधारण और प्रवालज। साधारण द्वीप दो प्रकार से बनते हैं- एक तो भूगर्भस्थ अग्नि के प्रकोप से समुद्र के नीचे से उमड़ आते हैं। दूसरे घास पाल की भूमि के चँस जाने से और यहाँ पानी छा जाने से बन जाते हैं। प्रवालज द्वीपों की पट्टी भूगर्भ से होती है। ये बहुत सूक्ष्म ऊँची हैं जो धूर के पेट के आकार के पिंड बनाकर समुद्रतल में जमे रहते हैं। इन्होंने छोटे छोटे कीड़ों के शरीर से सहस्रों वर्ष में इकट्ठा होते होते बड़ा सा पर्वत बन जाता है और समुद्र के ऊपर निकल आता है जिसे प्रवालज द्वीप कहते हैं। इन दोनों के अतिरिक्त एक तीसरे प्रकार का द्वीप भी होता है जिसे सतृप्तव्यव कह सकते हैं। इस प्रकार के द्वीप प्रायः बड़ी बड़ी नदियों के मुहानों पर नहों के समुद्र में गिरती हैं बन जाते हैं। उन द्वीपों में कितने तो बतने छोटे होते हैं कि समुद्र में एक छोटे से टीके से अधिक नहीं दिखाई पड़ते पर बड़े द्वीप भी होते हैं जिनमें पेट पौचे होते हैं और पद्य-पत्ती मनुष्य आदि रहते हैं।

(२) पुराणानुसार पृथ्वी के सात बड़े विभाग।

विशेष-पुराणों में पृथ्वी सात द्वीपों में विभक्त की गई है। समुद्र और द्वीपों की वयपति के संबंध में यह कथा है। महात्मा प्रियव्रत ने यह सोचा कि एक बार मैं सूर्य्य पृथिवी के एक ही ओर उजाला करता है जिससे दूसरी ओर अंधकार रहता है। उन्होंने एक पहिये की एक चमचमाली गाड़ी पर सवार होकर सात बार पृथिवी की परिक्रमा की। गाड़ी के पहिये के चँसने से पृथिवी पर सात बसुंधाकार गढ़े पड़ गए।

जो सात समुद्र हुए। इन्होंने सातों समुद्रों से वेष्टित होने से सात द्वीपों की सृष्टि हुई। इनमें सफेके बीच में जंबूद्वीप है जो चारों ओर से चार समुद्र से वेष्टित है और जिसके बीच में मोह पर्वत है। चार समुद्र के उस पार दूसरा द्वीप भ्रुकद्वीप है जो जंबूद्वीप से दूना बड़ा है। तीसरा द्वीप शाकद्वीप है। यह भ्रुकद्वीप से भी द्विगुण है। चौथे द्वीप का नाम ब्रह्मद्वीप है जो शारङ्गजी का भी दूना है। पाँचवाँ द्वीप क्रीचद्वीप है जो कुराद्वीप का दूना है। छठवाँ द्वीप शाकद्वीप क्रीच से दूना बड़ा है और सातवें द्वीप का नाम भ्रुकद्वीप है। यह क्रीचद्वीप का दूना है। पर भास्कराचार्य जी का मत है कि पृथ्वी के आधे भाग में चारसमुद्र से वेष्टित जंबूद्वीप है और आधे में शेष भ्रुक द्वीपादि छः द्वीप हैं। ये सातों द्वीप यथाक्रम चार, जवण, चौर, दधि, रस आदि के समुद्रों से आवेष्टित हैं।

(१) अवलंबन का स्थान। आचार। (४) व्याघ्रचर्म।

श्रीनक्षत्र-संज्ञा पुं० [सं०] चीनी कपूर।
श्रीपद्म-संज्ञा पुं० [सं०] जैनमतानुसार एक प्रकार का देवता। यह सुषन-पति नामक देवगण के शतमंत है।

श्रीपद्म-संज्ञा पुं० [सं०] महापरोवत।
श्रीपद्म-संज्ञा पुं० [सं०] (१) समुद्र। (२) मद।
श्रीपद्म-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक नदी का नाम। (२) भूमि।

श्रीपद्म-संज्ञा पुं० [सं०] शतावरी। सतावर।
श्रीपद्म-संज्ञा स्त्री० [सं०] शतावरी। सतावर।
श्रीपी-संज्ञा पुं० [सं०] देवित्र (१) व्याज। माघ। (२) चीता। (३) चित्रक वृक्ष। चीता।

श्रीपी-वि० [सं०] (१) जो देव का स्वामी हो। (२) जिसके दो स्वामी हों। (३) (चर आदि) जो देव देवताओं के लिये हो।
शंज्ञा पुं० विशाला नक्षत्र।

शुक्र-संज्ञा पुं० [सं०] दो षष्ठांशों का समूह। यह सूक्त जिसमें दोही षष्ठांश हैं।
शुक्र-संज्ञा पुं० [सं०] चित्र को समिप लगने की शक्ति। चित्र। शयुता। घैर।

शुक्र-वि०-योगशास्त्र में शुक्र उस भाग को कहा गया है जो दुःख का साधारण होने पर उससे या उसके कारण से हटने या बचने की प्रेरणा करता है।
शुक्र-वि० [सं०] देवित्र [श्री०] देवित्र। विरोधी। घैरी। चित्र करनेवाला।

शुक्र पुं० शयु। घैरी।
शुक्र-वि० [सं०] देवि [श्री०] देवि। शुक्र करनेवाला। विरोधी। घैरी। शयु।

शुक्र-वि० [सं०] (१) जिससे दोप किया जाय।
शुक्र पुं० शयु। घैरी।

शुक्र-वि० [सं०] दो। दोनें। उ०—(क) पुर से निकली शयुवीर भूप धरि धीर दियो मग ज्यों दग हूँ।—तुलसी।
(ख) गुन गेह सनेह को माजन से संसदी से उगह कहें मुम हूँ।—तुलसी।

शुक्र-वि० [सं०] द्विगुणमाही। दूना व्याज देनेवाला। दूना सूद खानेवाला।

शुक्र-वि० [सं०] द्विगुण, प्रा० उदय। द्वितीया। दूज। उ०—
द्वैज सुधा दीपित कला, यह जलिस दीठ लगाय। मनी प्रकास धगधिता, एकी कवी खलाय।—विहारी।

शुक्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) दो का भाव। युग्म। युगल। (२) अपने और पराये का भाव। भेद। अंतर। भेद-भाव। उ०—सेवत साधु द्वैत मय मार्ग। धीरसुधीर चान वित लागी।—तुलसी। (३) दुग्ध। अन्न। उ०—सुख संगति सुख द्वैत से समुझे नाहि गवार। रात करे अद्वैत की पड़ि गुनि भया क्षयर।—कवीर। (४) अज्ञान। उ०—माधव अथ न ब्रह्म केहि लेले। प्रणतपाल प्रण तोर, मोर प्रण जियों कमलपद देखे।.....अनक जननि गुद पंडु सुहृद पति सब प्रकार हितकारी। द्वैत रूप तम हूय परी गहिं सो कछु जतन विचारी।—तुलसी। (५) द्वैतवाद।

शुक्र-संज्ञा पुं० [सं०] एक लोपवन जिसमें बुधिचिह्न ने वनवास के समय कुछ काळ तक निवास किया था।

शुक्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) यह दार्शनिक सिद्धांत जिसमें आत्मा और परमात्मा अर्थात् जीव और ईश्वर दो भिन्न पदार्थ मान कर विचार किया जाता है।

शुक्र-वि०—उच्च मीमांसा या वेदान्त को छोड़ शेष पाँचों दर्शन द्वैतवादी माने जाते हैं। द्वैतवादियों का कथन है कि ब्रह्म और जीव का भेद नित्य है पर अद्वैतवादी कहते हैं कि यह भेदज्ञान अन्न है। जिस समय जीव अपने को ब्रह्मस्वरूप समझ लेता है उस समय वह मुक्त हो जाता है। केवल अर्थात् जीव अपने को ब्रह्म से भिन्न समझता है, अर्थात् हट जाने पर वह ब्रह्म में मिला जाता है। द्वैतवादी जीव की अर्थात् जीव को नित्य मानते हैं, पर अद्वैतवादी उसे हटाने की चेष्टा करने का उपदेश देते हैं। जिस प्रकार अद्वैतवादी 'तत्त्वमसि' अर्थात् तू तू मयावाच्य को मूल मान कर चलेते हैं उसी प्रकार द्वैतवादी भी। पर दोनों उससे भिन्न भिन्न अर्थ लेते हैं। अद्वैतवादी "तत्त्वमसि" का सीधा अर्थ लेते हैं कि "तू तू मया (ब्रह्म) हो" पर द्वैतवादी मयावाच्य में हीच तान कर उसका अर्थ लगाया है "तत्त्वमसि" अर्थात् तू तू उसके देव। मया और पैरोपिक में तीन नित्य पदार्थ माने गए हैं, जीवात्मा, परमेश्वर और

परमात्मा। इस प्रकार के द्वैतवाद का संरक्षक ही शंकर ने अपने अद्वैतवाद द्वारा किया है। जिस प्रकार शंकराचार्य ने वेदान्तसूत्र का भाष्य करके अपना अद्वैतवाद स्थापित किया है उसी प्रकार मध्वाचार्य ने उस सूत्र का एक भाष्य रच कर द्वैतवाद का संरक्षक किया है। इनके मत से परमेश्वर स्वतंत्र है और जीव परमेश्वर के अधीन है। वेदांती लोग जो जगत को ईश्वर से अभिन्न अथवा स्वयं-संपूर्ण अम मानते हैं और जीव में ईश्वर का आरोप करते हैं वह ठीक नहीं। जगत् और जीव सत्य हैं और ईश्वर से भिन्न हैं। 'एकमेवा द्वितीयं' वाक्य का अर्थ यह नहीं है कि ईश्वर के अतिरिक्त और कुछ है ही नहीं, जैसा कि अद्वैतवादी करते हैं। उसका अर्थ है कि ईश्वर बहुत नहीं एक ही है। 'एव' शब्द ही मध्वाचार्य यह ध्वनि निकालते हैं कि ईश्वर सदा एक ही रहता है, एकत्व बसका स्वभाव है वह अनेक हो नहीं सकता। अद्वितीय का अर्थ है कि द्वितीय जो जीव और जगत् है सो वह नहीं है। जीव और जगत् उसकी सृष्टि है। इस प्रकार मध्वाचार्य ने द्वैतभाव का संरक्षक किया है। रामानुज का विशिष्टाद्वैतवाद द्वैत और अद्वैत के बीच का मार्ग है, द्वैतवाद से उसमें बहुत अधिक भेद नहीं है। दे० "वेदान्त"।

(२) वह दार्शनिक सिद्धांत जिसमें भूत और चित् शक्ति अथवा शरीर और आत्मा दो भिन्न पदार्थ माने जाते हैं।

द्वैतवादी-वि० [सं० द्वैतवादिन्] [श्लो० द्वैतवादीशे] द्वैतवाद को माननेवाला। ईश्वर और जीव में भेद माननेवाला।

द्वैती-वि० [सं० द्वैतिन्] द्वैतवादी।

द्वैध-संज्ञा पु० [सं०] (१) विरोध। परस्पर विरोध। (२) राजनीति के पदगुणों में से एक जिसमें परस्पर के व्यवहार में गुप्त और प्रकट स्वभाव रचना पड़ता है अर्थात् मुख्य अक्षरय गुप्त रह कर दूसरा अक्षरय प्रकट किया जाता है।

द्वैधीकरण-संज्ञा पु० [सं०] किसी चीज के दो टुकड़े करना।

द्वैधीभाव-संज्ञा पु० [सं०] (१) द्विधा भाव। अनिरचय। (२) भीतर कुछ और भाव, बाहर कुछ और भाव।

द्वैप-संज्ञा पु० [सं०] (१) बाघ से संबंध रखनेवाली या बाघ से निकली या बनी हुई वस्तु। (२) व्याघ्रयम। बाघ का चमड़ा।

द्वैपायन-संज्ञा पु० [सं०] (१) व्यास जी का एक नाम।

विशेष-वेदव्यास का जन्म जमुना नदी के एक द्वीप में हुआ था इसीसे यह नाम पड़ा।

(२) एक हृद या ताल जिसमें कुरुक्षेत्र के युद्ध में दुर्योधन भाग कर छिपा था।

द्वैमातुर-वि० [सं०] जिसकी दो माताएँ हों।

संज्ञा पु० (१) गणेश।

विद्योप-स्कंदपुराण के गणेशखंड में लिखा है कि गणेश वरुण नामक राजा के घर उनकी रानी पुष्पका देवी के गर्भ से प्रसोक्त की विश्वांति के लिये उत्पन्न हुए। पर उनकी प्राकृति और तेज आदि को देख कर राजा डर गए और उन्होंने उन्हें पार्वी मुनि के आश्रम के पास एक जलाशय में फेंकवा दिया। वहाँ मुनि की पत्नी दीपवत्सला ने उन्हें पाला। इस प्रकार दो माताओं के द्वारा पलने के कारण गणेश का द्वैमातुर नाम पड़ा।

(२) जरासंध।

द्वैमातृक-संज्ञा पु० [सं०] वह भूमि या देश जहाँ खेती नदी के जल (सिंचाई) द्वारा भी की जाती है और वर्षा से भी होती है।

द्वैयल्लिक-वि० [सं०] जो दो दिन में किया जाय वा दो दिन का हो।

द्वैविषय-संज्ञा पु० [सं०] (१) दो प्रकार होने का भाव। (२) दुःख।

द्वैपयोया-संज्ञा श्लो० [सं०] नागवह्वी का एक भेद।

दो० वि० [हि० दो + क, दोउ] दोनों।

वि० दे० "दो"।

द्वयगुण-संज्ञा पु० [सं०] वह द्रव्य जो दो अणुओं के संयोग से उत्पन्न हो। दो अणुओं का एक संघात। वह मात्रा जो दो अणुओं की हो।

द्वयशीति-वि० [सं०] जो गिनती में अस्ती से दो अधिक हो। बयासी।

द्वयष्ट-संज्ञा पु० [सं०] ताग्र। ताँवा।

द्वयक्षायक-संज्ञा पु० [सं०] एक ऋषि का नाम।

द्वयात्मक-संज्ञा पु० [सं०] दो स्वभाव की राशियाँ जो वे हैं— मिथुन, कन्या, धनु और मीन।

द्वयामुप्यायण-संज्ञा पु० [सं०] वह पुत्र जो एक से तो उत्पन्न हुआ हो और दूसरे के द्वारा दत्तक के रूप में प्रदत्त किया गया हो और दोनों पिता वसके अपना अपना पुत्र मानते हों। ऐसा पुत्र दोनों को पिंढ दान देता है और दोनों की मंगल का अधिकारी होता है। दे० "दत्तक"।

ध

ध-हिंदी या संस्कृत वर्णमाला का उन्नीसवाँ व्यंजन और तयर्ग का चौथा वर्ण जिसका उच्चारण स्यान् दंतमूल है। इसके उच्चारण में आभ्यंतर प्रयत्न आवश्यक होता है और जीभ की

नेक ऊपरी दाँतों की जड़ में छगानी पड़ती है। वादा प्रयत्न संवार, नाद, घोष, महाप्राण हैं।

धंगर-संज्ञा पु० [रंग०] चरवाहा। ग्वाल। अक्षरी।

धंगारी—संज्ञा पुं० [दे०] छाँसी । छाँसी ।

धंदर—संज्ञा पुं० [दे०] एक प्रकार का घासीदार कपड़ा ।

धंधक—संज्ञा पुं० [हिं० धंधा] काम धंधे का आहंवर । जंजाड़ । खलेड़ा । ३०—तिन महे प्रथम रेल जग मेरी । धिग धरम ध्वज धंधकधोरी ।—तुलसी ।

धंश पुं० [अनु०] एक प्रकार का ढोल ।

धंधकधोरी—संज्ञा पुं० [हिं० धंधक + धोरी] काम धंधे का बोक खादे रहनेवाला । हर घड़ी काम में जुता रहनेवाला । ३०—तिन महे प्रथम रेल जग मेरी । धिग धरमध्वज धंधकधोरी ।—तुलसी ।

धंधकानी—संज्ञा पुं० [हिं० धंधक + धोरी] एक प्रकार का ढोल ।

धंधरक—संज्ञा पुं० [हिं० धंधा] काम धंधे का आहंवर । जंजाड़ । खलेड़ा । ३०—तिन महे प्रथम रेल जग मेरी । धिग धरम ध्वज धंधरकधोरी ।—तुलसी ।

धंधरकधोरी—संज्ञा पुं० [हिं० धंधरक + धोरी] काम धंधे का बोक खादे रहनेवाला । हर घड़ी काम में जुता रहनेवाला । ३०—तिन महे प्रथम रेल जग मेरी । धिग धरमध्वज धंधरकधोरी ।—तुलसी ।

धंधला—संज्ञा पुं० [हिं० धंधा] (१) छल छंद । कपट का आहंवर । सूझा डोंग । ढंग । (२) हीला । वहाना । (छि०)

क्रि० प्र०—करना ।

मुहा०—(किसी को) धंधले खाते हैं = छल छंद का अभ्यास है ।

धंधलाना—क्रि० प्र० [हिं० धंधला] छल छंद करना । ढंग रचना ।

धंधा—संज्ञा पुं० [सं० धनधन्य] (१) धन वा जीविका के लिये बधोग । काम काम । जैसे, वह धा का कुछ काम धंधा नहीं करता ।

ये०—काम धंधा । गोरखधंधा ।

(२) धमन । व्यावसाय । कारखाना । पेशा । रोजगार । जैसे, (क) उसे किसी काम धंधे में लगा दे । (ख) आज कल कोई काम धंधा नहीं है खाली ढेंडे हैं ।

विशेष—हल शब्द का प्रयोग लिखने पढ़ने की मापा में "काम" शब्द के साथ अधिक होता है ।

धंधार—संज्ञा पुं० [दे०] लकड़ी का लंबा खोखार जो भारी पत्थरों वा लकड़ियों को उठाने के काम में आता है ।

वि० [दे०] एकाकी । अकेला ।

धंधारी—संज्ञा स्त्री० [हिं० धंधा] गोरखधंधा जितने गोरखधंधी साधु लिये रहते हैं । ३०—मेखल, सिंधी, धक, धंधारी । लीन हाथ तिरखल सँमारी ।—जायसी ।

धंधा स्त्री० (१) एकलित । निर्जनता । अकेलापन । (२) सुनसान । सघाटा ।

धंधाला—संज्ञा स्त्री० [हिं० धंधा] कुटनी । वृत्ती । बूछाल ।

धंधेरा—संज्ञा पुं० [दे०] राजपूतों की एक जाति ।

धंधोर—संज्ञा पुं० [अनु० धंधे धंधे = धाग दूकने की ध्वनि] (१)

हेलिका । होली । (२) धाग की लपट । उबाला । ३०—

(क) रहे प्रेम मन बरना लटा । बिरह धंधोर परहिँ सिर जटा ।—जायसी । (ख) कंधा जरे अगिनि जनु बाए ।

विरह धंधोर जत न आए ।—जायसी ।

धँस—संज्ञा पुं० [हिं० धँसना] जल आदि में प्रवेश । डुबकी । गोता । ३०—दे० "धस" ।

क्रि० प्र०—लेना ।

धँसन—संज्ञा स्त्री० [हिं० धँसना] (१) धँसने की क्रिया वा ढंग ।

(२) घुसने या पैठने का ढंग । गति । चाल । ३०—तुलसी

मेढी की धँसनि जइ जनता सनमान ।—तुलसी ।

धँसना—क्रि० प्र० [सं० दंशन = दंत चुभना] (१) किसी कड़ी वस्तु

का किसी नरम वस्तु के भीतर दाब पाकर घुसना । गड़ना ।

जैसे, पैर में काँटा धँसना, दीवार में कील धँसना, कील या दलदल में पैर धँसना ।

संयो० क्रि०—जाना ।

विशेष—"सुभना" और "धँसना" में अंतर यह है कि "सुभना" का प्रयोग विशेषतः जीवधारियों के शरीर में घुसने के अर्थ में होता है । जैसे, पैर में काँटा सुभना । दूसरी बात यह है कि "सुभना" नुकीली वस्तुओं के लिये आता है, जैसे, काँटा, सूई आदि ।

मुहा०—जी या मन में धँसना = (१) चित्त में प्रभाव उत्पन्न करना । मन में निरचय वा विश्वास उत्पन्न करना । दिल में अंतर करना । जैसे, उसे लाल समझाओ, उसके मन में कोई बात धँसती ही नहीं । (२) हृदय में अंकित होना । अन्धा लगने के कारण ध्यान में बराबर रहना । चित्त से न हटना । ध्यान पर बराबर चढ़ा रहना । ३०—मन महे धँसी मनोहर सूरति टरति नहीं वह टारे ।—सूर ।

(२) किसी ऐसी वस्तु के भीतर जाना जिसमें पहले से प्रवेश न रहा हो । धापने लिये जगह करते हुए घुसना ।

इधर इधर दबा कर जगह खाली करते हुए बठना या पैठना । जैसे, पानी में धँसना, भीड़ में धँसना, दलदल में धँसना । ३०—(क) जोर जगी अनुना जल धार में धाप धँसी जबकेछिन की माती । (ख) धाये जौन तेरी धीरी धारी में धँसत जात तिनको न होत सुरपुर तें निपात है ।

—पद्माकर ।

संयो० क्रि०—जाना ।—पड़ना ।

*† (३) नीचे की ओर धीरे धीरे जाना । नीचे खसकना । बठना । ३०—(क) हरी बसति गोरे गरे धँसति पान की पीक ।—बिहारी । (ख) अनु कडिंदंदिनि मनि इंदनीक सिसर परसि धँसति बसति हंस श्रेणि संकूज अघिको है ।

—गुलसी। (ग) पति पढ़िचानि घँसी मंदिर तें, सूर, तिया
अभिराम। आबहु कंत खलहु हरि को हिस पाँव धारिपु धाम।

—सूर। (घ) तल के किसी श्रेय का दबाव आदि पाकर
नीचे होमाना जिससे गहटा सा पड़ जाय। नीचे की ओर
बैठ जाना। जैसे, (क) जहाँ गोला गिरा वहाँ जमीन नीचे
घँस गई। (ख) बीमारी से बसकी आँखें घँस गई हैं।

विशेष—घोड़ी वस्तु के बिये हस आर्य में 'पचकना' का
प्रयोग होता है।

(४) किसी गढ़ी या नीवें पर खड़ी वस्तु का जमीन में
ओर नीचे तक चला जाना जिससे यह ठीक खड़ी न रह
सके। बैठ जाना। जैसे, हस मकान की नीवें कमजोर है,
बारसाव में यह घँस जायगा।

क्रि० अ० [सं० धंसन] धका होना। नष्ट होना।
मिटना। उ०—निज आत्मन भ्रान्तन ते ई प्रतीति जग खेद।
घँसे सु ताके बोध ते यह भाखन मुनि वेद।—विचार-
सागर।

घँसनि—संज्ञा स्त्री० दे० "घँसन"।

घँसान—संज्ञा स्त्री० [हि० घँसना] (१) घँसने की क्रिया या अंग।

(२) ऐसी जमीन जिसपर कीचड़ के कारण पैर घँसता
है। दबदब। (३) ऐसी जमीन जिसपर नीचे की ओर
पैर फिसले। ढाब। बतार।

घँसाना—क्रि० सं० [हि० घँसना] (१) गड़ाना। बुमाना। नरम
चीज में घुसाना। (२) पैठाना। प्रवेश करना। जैसे, जब
में घँसाना। (३) तक या सतह को दबाकर नीचे की ओर
करना। नीचे की ओर बैठाना।

घँसाव—संज्ञा पुं० [हि० घँसना] (१) घँसने की क्रिया। (२)
ऐसी जमीन जिसपर पैर घँसे। दबदब।

घरँ—संज्ञा स्त्री० [दे०] एक बोधा जिसकी जड़ या कंद को छोटा
नागपुर की महाड़ी जातियों के लोग खाते हैं।

घबरहर—संज्ञा पुं० दे० "घोरहर"।

घक—संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) दिक् के धड़कने का शब्द या
भाव। हृत्कंठ का शब्द या भाव। हृदय के जल्दी जल्दी
हड़ने का भाव या शब्द। (भय या उद्वेग होने अर्थात् किसी
बात से चौंक पड़ने पर जी में धड़कन होती है)। उ०—
गुंथर हीं निरालें अच लीं सुख पीरी परी सुतिया घक छाई।
—गुंथर।

मुहा०—जी घक घक करना=भय या उद्वेग से जी घड़कना।
जी घक हो जाना=(१) भय या उद्वेग से जी घड़क
उठना। उर हो जी दहल जाना। (२) चौंक उठना। जी घक
होना, या घक से होना=(१) उद्वेग या पचराहट होना।
(२) आशंका होना। भय होना। जी दहलना।

विशेष—हस शब्द का प्रयोग खट, पट आदि और अतु०
शब्दों के समान प्रायः 'से' विभक्ति सहित क्रि० वि० वत
ही होता है।

(२) अंगम। उद्वेग। चोप। उ०—रहत अचक पे मिटे न
घक जोवन की निपट जो नागी बर काहू के डरै नहीं।—
भूपथ।

क्रि० वि० अचानक। एकपारगी। उ०—घानन सीकर सी
कहिपु घक सोवत ते अकुलाय उठी क्यों ?।—देशव।
संज्ञा स्त्री० [दे०] छोटी जूँ। लीस से बड़ी जूँ।

घकघकाना—क्रि० अ० [अतु० घक] (१) (हृदय का) घड़-
कना। भय, उद्वेग, आदि के कारण हृदय का जोर जोर
से जल्दी जल्दी हड़ना। उ०—घकघकात जिय बहुत
सँभारै। क्यों मारौं सो बुद्धि विचारै।—सूर। † (२)
(भाग का) दहकना। भगकना। लपट के साथ जलना।

घकघकाहट—संज्ञा स्त्री० [अतु० घक] (१) जी घक घक करने
की क्रिया या भाव। घड़कन। (२) खटका। आशंका।
(३) आगा पीछा।

घकघकी—संज्ञा स्त्री० [अतु० घक] (१) जी घकघक करने की
क्रिया या भाव। जी की घड़कन। उ०—(क) आगत देखो
विय जोरि कर रुभिमनि पाई। कडा कहैगो आगि हिये घक-
घकी लगाई।—सूर। (ख) दसकंथर उर घकघकी अच
अनि धावै धनुधारि।—गुलसी। (२) गले और छाती के
बीच का गहटा जिसमें स्पंदन मालूम होता है। धुकधुकी।
हुगदुगी।

मुहा०—घुकीघुकी धरकना=छाती घड़कना। जी घकघक
करना। अकस्मात् आशंका या खटका होना। उ०—मिळनि
विलोकि भरत रघुवर की। सुरगन समय घकघकी धरकी।
—गुलसी।

घकपक—संज्ञा स्त्री० [अतु०] जी की घड़कन। घकघकी। उ०—
(क) जूफत हकीमलां अमीरुजु की घक ही जी घकसी के
जिय में परी है धरुपकसी।—सूदन। (ख) ईदजू को अक-
यक, धातानू की घकपक, संभूजी की सकपक देखोदास
को कहै ?।—देशव।

क्रि० वि० घड़कते हुए जी के साथ। दहकते हुए। उरते
हुए। उ०—अक सक, घक पक थरथरत अदित जात।
—सूदन।

घकपकाना—क्रि० अ० [अतु० घक] जी में दहकना। दहगत
खाना। डाना। उ०—सूपन भगत दिखीपति सीं घकपकात
धाक मुनि राज छत्रसाल मरदाने की।—सूपन।

घकपेल—संज्ञा स्त्री० [अतु० घक + पेलना] घकमयका। रंजामेक।
उ०—अककंत सांग करै घकपेल।—सूदन।

घकाँ—संज्ञा पुं० दे० "घका"।

धकाधकी—संज्ञा स्त्री० [हिं० धका] धकमधका ।
 धकाना—कि० सं० [हिं० दहकाना] दहकाना । सुखयाना ।
 जलाना । उ०—धनी ध्यान धकासो रैन दिन फिकिर
 काहुरी खोई ।—कवरी ।
 धकार—संज्ञा पुं० “ध” धरत ।
 धकारा—संज्ञा पुं० [अतु० धक] धकधकी । आशंका । सतका ।
 उ०—तुम तो लीला करत सुरम मन परो धकारो ।—सूर ।
 कि० प्र०—पढ़ना । होना ।
 धक्रियाना—कि० सं० [हिं० धका] धका देना । टकेलना ।
 धकेलना—कि० सं० [हिं० धका] टकेलना । डेलना । धका देना ।
 संयोग कि०—देना ।
 विशेष—दे० ‘टकेलना’ ।
 धकेलू—संज्ञा पुं० [हिं० धकेलना] टकेलनेवाला । धका देनेवाला ।
 धकेत—वि० [हिं० धका + धत (प्रत्य०)] धका देनेवाला । धकम
 धका करनेवाला । उ०—हुत धीर धकेत गयो पँसि कै ।—
 गोपाल ।
 धकोना—कि० सं० दे० “धकियाना” ।
 धक—संज्ञा स्त्री० दे० “धक” ।
 धकपक—संज्ञा स्त्री० कि० वि०, दे० “धकपक” ।
 धकमधका—संज्ञा पुं० [हिं० धका] (१) बार बार, बहुत अधिक
 या बहुत से श्रावियों का परस्पर धका देने का काम ।
 धकापेठ । (२) ऐसी भीड़ जिसमें लोगों के शरीर एक
 दूसरे से रगड़ खाते हों । रेखापेठ । जैसे, मंदिर के भीतर
 बहुत धकमधका है ।
 धका—संज्ञा पुं० [सं० धम, हिं० धमक, धीक वा सं० धक = नष्ट करना]
 (१) एक वस्तु का दूसरी वस्तु के साथ ऐसा वेगयुक्त
 स्पर्श जिससे एक या दोनों पर एकबारगी भारी दबाव पड़
 जाय अथवा गति के वेग का बढ़ गइरा दबाव जो एक वस्तु
 के साथ दूसरी वस्तु के एकबारगी जा लगने से एक या
 दोनों पर पड़ता है । आघात या प्रतिघात । टकर । रेखा ।
 भौंका । जैसे, (क) निर में दीवार का धका लगना ।
 (ख) चलती गाड़ी के धके से गिर पड़ना ।
 कि० प्र०—देना ।—पहुँचना ।—मारना ।—
 लगना ।—जगाना ।—सहना ।
 धी०—धकापेठ । धकमधका ।
 विशेष—केवल मुख्य के कारण जो दबाव पड़ता है उसे
 “धका” नहीं कह सकते, गति के वेग के अवरोध से जो
 दबाव एकबारगी पड़ जाता है उसी को “धका” कहते हैं ।
 (२) किसी व्यक्ति या वस्तु को, उसकी जगह से हटाने,
 हिसकाते, गिराने आदि के लिये वेग से पहुँचाया हुआ दबाव
 अथवा इस प्रकार का दबाव पहुँचाने का काम । टकेलने की
 क्रिया । भौंका । धपेट । जैसे, इसे धका देकर निकाल दो ।

कि० प्र०—करना ।—देना ।—मारना ।—लगाना ।—
 सहना ।—होना ।
 मुहा०—धका खाना = धका सहना । धके देकर निकालना =
 तिरस्कार और अपमान के साथ सामने से हटाना ।
 (३) ऐसी भारी भीड़ जिसमें लोगों के शरीर एक दूसरे
 से रगड़ खाते हों । कसामस । जैसे, मंदिर के भीतर बड़ा
 धका है, मत जाओ । (४) शोक या दुःख का आघात ।
 दुःख की चोट । संताप । जैसे, भाई के मरजाने से उसे बड़ा
 धका पहुँचा ।
 कि० प्र०—पहुँचना ।—पहुँचाना ।
 (५) आघात । विपत्ति । आघात । दुर्घटना । (६)
 हानि । टोटा । घाटा । नुकसान । जैसे, इस व्यापार में उसे
 लाखों का धका बैठा ।
 कि० प्र०—खाना ।—पैठना ।
 (७) कुश्ती का एक पंच जिसमें बायाँ पैर बायो रखकर
 विपरी की छाती पर दोनों हाथों से गइरा धका या चपेट
 देकर उसे गिराते हैं । छाप । डोंड़ ।
 धकामुकी—संज्ञा स्त्री० [हिं० धका + मुका] ऐसी लड़ाई जिसमें एक
 दूसरे को टकेले और धूँतों से मारे । मुठभेड़ । मारपीट ।
 धगड़—संज्ञा पुं० [सं० धव = पति ?] झार । उपपत्ति ।
 धगड़बाज—वि० स्त्री० [हिं० धगड़ + बाज = बाज] जार के पास
 श्रावने जानेवाली व्यभिचारिणी । कुब्जटा ।
 धगड़ा—संज्ञा पुं० [सं० धव = पति ?] किसी स्त्री का झार । उप-
 पत्ति ।
 धगड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० धगड़ा] व्यभिचारिणी स्त्री । कुब्जटा स्त्री ।
 धगघागना—कि० अ० [हिं०] धकधकाना । धकधक करना ।
 धड़कना (छाती या जी का) । उ०—जब राजा तेहि मारन
 लाग्यो । देवी काली मन धगधायो ।—सूर ।
 धगरा—संज्ञा पुं० दे० “धगड़ा” ।
 धगरिन—संज्ञा स्त्री० [हिं० धगर] धांगर जाति की स्त्री जो
 जन्मे हुए बच्चों का नाक काटती है ।
 धगवरी—वि० [हिं० धगड़ा = पति या यार] (१) पति की दुबारी ।
 लसम की सुँहलगी । (२) कुब्जटा । जिनाल । व्यभि-
 चारिणी । उ०—जननी के स्तोक हरि रेये झूठहिं मोहिं
 जगावति धगरी ।—सूर ।
 धगा—संज्ञा पुं० दे० “धगा”, “तागा” । उ०—सूरज दास
 कर्च अरु कंचन एकहि धगा विरोयो ।—सूर ।
 धगुला—संज्ञा पुं० [दे०] हाथ में पहनने का कड़ा ।
 धगड़—संज्ञा पुं० दे० “धगड़” ।
 धक्कचाना—कि० सं० [दे०] धराना । दहलाना ।
 धक्कना—कि० अ० [दे०] दहलाने में पँसना ।
 धक्का—संज्ञा पुं० [दे०] धका । मटका । भौंका । आघात ।

मुहा०—घषका वजाना=नुकसान उठाना। घाटा सहना।
 धज-संज्ञा स्त्री० [सं० धज=चिड़ पतका] (१) सज्जवट। पनाव।
 सुंदर रचना।

धौ०—सजघन=तैयारी। सज सामान। जैसे, वरात बड़ी सज-
 घन से निकली।

(२) सुंदर रंग। मोहित करनेवाली चाल। तरह। (३)
 बैठने बठने का ढब। टयन। (४) ठसक। नखरा। (५)

रूप रंग। सोभा। आकृति या ढीक ढौल।

धजबड़-संज्ञा स्त्री० [?] सजवार। (डि०)

धजा-संज्ञा स्त्री० [सं० धज] (१) धज्जा। पताका। (२) कपड़े

की धज्जी। कतरा। चीर। (३) धज। रूपरंग। ढीक ढौल।

धजौला-वि० [हि० धज + ईला (प्रत्य०)] [मी० धजौली]
 सजीला। साहदर। सुंदर रंग का।

धजझी-संज्ञा स्त्री० [सं० धज] (१) कपड़े, कागज, चमड़े इत्यादि
 (घर के रूप की वस्तुओं) की कटी हुई लंबी पतली पटी।
 कटा हुआ लंबा पतला टुकड़ा। (२) छोड़े की चहर या
 लकड़ी के पतले तत्ते की अन्नक की हुई लंबी पटी।

मुहा०—धजिजवा बड़ना=(१) फट या फट कर टुकड़े टुकड़े
 हो जाना। पुरजे पुरजे होना। विदीर्य होना। (२) (किसी की)
 खूब दुर्गति होना। निंदा या तिरस्कार होना। दोषों का खूब
 उभेड़ा जाना। धजिजवा बड़ना=(१) टुकड़े टुकड़े बनना।
 विदीर्य करना। खंड खंड करना। (२) (किसी के दोषों को
 खूब उभेड़ना। दुर्गति करना। निंदा या उपहास करना। (३)
 मारकर टुकड़े टुकड़े करना। बेटी बेटी काट डालना।
 धजिजवा खरना=गरीबी से बगड़े फटे रहना। चीपड़े पहनने
 की नीवत आना। बहुत गरीबी आना। धजिजवा लेना=
 निंदा या उपहास करना। दोषों को उभेड़ना। बनाना। दुर्गति
 करना। धज्जी हो जाना=खूब कर ठठरी हो जाना। बहुत
 दुबता पतला हो जाना। अत्यंत दुर्बल और अशक्त हो
 जाना (रोग आदि के कारण)।

घट-संज्ञा पुं० [सं०] (१) तुला। तराजू। (२) तुला राशि। (३)
 तुलापरीक्षा। (४) धर्म।

घटक-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन तोल जो ४२ रतियों
 की होती थी।

घटिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) पांच, सेर की एक तोल।
 पंसेरी। (२) चीर। बज। (३) कौपीन। लिंगोटी।

घटी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) चीर। कपड़े की धज्जी। (२)
 कौपीन। लिंगोटी। (३) वह बज जो जियों को गर्माधान
 के पीछे पहनने को दिया जाता था।

विदोष—कलित प्रोत्थिष के अनुसार गर्माधान के पीछे कुंड,
 अथवा, हठ, पुष्य, उषावाण, उत्तराशाद्र का अशुभित
 मन्त्रों में की को अष्टके विष घटी पत्र

वि० [सं० घटेन्] [मी० घटेनी] तुलाधारक। डींठी
 पकड़नेवाला।

संज्ञा पु० (१) तुला राशि। (२) शिव।

घटंग-वि० [हि० घट + ङं] नंगा।

घौ०—नंग घड़ंग।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग प्रायः अकेले नहीं होता 'नंग'
 शब्द के साथ समस्त रूप में होता है।

घड़-संज्ञा पुं० [सं० घर=भरण करनेवाला] (१) शरीर का खूब
 मध्य-भाग जिसके शतगंत छाती, पीठ और पेट होते हैं।
 सिर और हाथ पैर (तथा पशु पक्षियों में पंख और पूंछ)
 को छोड़ शरीर का बाकी भाग। सिर और हाथों को छोड़
 कटि के ऊपर का भाग।

घौ०—घड़ट्टा।

मुहा०—घड़ में डालना या बतारना=पेट में डालना। साजाना।
 (किसी का) घड़ रह जाना=शरीर क्षय हो जाना। देह
 सुन हो जाना। लकवा मार जाना। घड़ से सिर अन्नग
 करना=सिर काट लेना। मार डालना।

(२) पेट का वह सत्र से मोटा कड़ा भाग जो जड़ से कुछ
 दूर ऊपर तक रहता है और जिससे निकल कर डालियाँ
 इधर उधर फैली रहती हैं। पेड़ी। तना।

संज्ञा स्त्री० [अनु०] वह शब्द जो किसी वस्तु के एकवारगी
 गिरने, वेग से गमन करने आदि से होता है। जैसे, (क) वह
 घड़ से नीचे गिरा। (ख) गाड़ी घड़ से निकल गई।

घौ०—घड़ घड़।

विशेष—'घट' 'घट' आदि अनु० शब्दों के समान प्रायः इस
 शब्द का प्रयोग भी 'से' विभक्ति के साथ क्रि० वि० वत् ही
 होता है।

घड़क-संज्ञा स्त्री० [अनु० घड़] (१) हृदय का स्फंदन। हृदय
 के आकुंचन प्रसारण की क्रिया जो हाथ रखने से मालूम होती
 है। दिल के कूटने या वज्जने की क्रिया। (२) हृदय के
 स्फंदन का शब्द। दिल के कूटने की आवाज़। तड़प।
 तपाक। (३) मय, आशंका आदि के कारण हृदय का
 अधिक स्फंदन। अशंका या दहशत से दिल का जर्दनी जर्दनी
 और जोर जोर से कूटना। जी घक घक करने की क्रिया।
 (४) आशंका। खटका। अंशंका। मय।

घौ०—वे-घड़क=विना किसी लज्जे के। विना किसी अस्-
 मंत्रता या आशंका पीड़ा के। निर्द्वंद। विना किसी रूकावट या
 संकेच के। जैसे, तुम वे-घड़क भीतर चले आओ।

घड़कन-संज्ञा स्त्री० [हि० घड़क] हृदय का स्फंदन। दिल का
 कूटना।

घड़कनी-संज्ञा स्त्री० [हि० घड़क] (१) हृदय का स्फंदन करना।
 कूटना या कूटने का शब्द। (२) घड़कन का शब्द।

संघो० क्रिया—उठना ।

मुहा०—झाती, जी या दिख घड़कना = भय या आशंका से हृदय का जोर जोर से और जल्दी जल्दी उछलना । जी दहलना । हृदय कांपना ।

(२) धड़ धड़ शब्द करना । किसी भारी वस्तु के गिरने का सा शब्द करना । जैसे, गोला घड़कना ।

घड़का—संज्ञा पु० [अनु० घड़] (१) दिल की धड़कन । (२) दिल धड़कने का शब्द । (३) खटका । शंभेया । भय । (४) गिरने पड़ने का शब्द । (५) पयाल का पुतला या ढंठे पर रखी हुई काबरी हाँड़ी आदि जिसे चिड़ियों को डराकर भगाने के लिये खेतों में रखते हैं । घोला ।

घड़काना—क्रि० सं० [हिं० घड़क] (१) दिल में धड़क पैदा करना । जी धक धक कराना । (२) जी दहलाना । डराना । टटका या थरंका उत्पन्न करना ।

संघो० क्रि०—देना ।

(३) धड़ धड़ शब्द उत्पन्न कराना । कोई ऐसी वस्तु फेंकना, गिराना, या छोड़ना जिससे भारी शब्द हो । जैसे, गोला धड़काना ।

घड़का—संज्ञा पु० दे० “घड़का” ।

घो०—भूम धड़का = लड़ भीड़ भाड़ और भूम धाम । गहरा समतल और टाटवाट ।

घड़ट्टा—वि० [हिं० घड़ + टटना] (१) जिसकी कमर मुकी हुई हो । (२) कुपड़ा

घड़ घड़—संज्ञा स्त्री० [अनु०] किसी भारी वस्तु के एक बारगी गिरने, फेंके जाने, गगन करने या टूटने से उत्पन्न लगातार होनेवाला भीषण शब्द ।

क्रि० वि० (१) घड़ घड़ शब्द के साथ । जैसे, धड़ धड़ गोले छूट रहे हैं । (२) वे-धड़क । बिना रुकावट के ।

घड़घड़ाना—क्रि० सं० [अनु० घड़घड़] धड़ धड़ शब्द करना । भारी चीज के गिरने, पड़ने की सी आवाज करना । जैसे, गोले धड़घड़ा रहे हैं ।

मुहा०—घड़घड़ाना हुआ = (१) धड़ धड़ शब्द और वेग के साथ । गड़गड़ाहट और भौंक के साथ । जैसे, गाड़ी घड़घड़ाने लगी है । (२) बिना रुकावट के और भौंक के साथ । बिना किसी प्रकार के टटके या संकोच के । वे-धड़क । जैसे, तुम घड़घड़ाने हुए भीतर चले जाना ।

घड़घड़ा—संज्ञा पु० [अनु० घड़] (१) धड़घड़ शब्द । धड़का । वेग के साथ गिरने, पड़ने, गगन करने आदि का शब्द ।

मुहा०—घड़घड़े से या घड़घड़े के साथ = (१) बिना किसी रुकावट के । भौंक से । (२) वेधड़क । बिना किसी प्रकार के भय या संकोच के । जैसे, जो कुछ कहना हो घड़घड़े के साथ कहे ।

(२) भूम धड़का । भीड़ भाड़ और भूम धाम । (३) कसामस । गहरी भीड़ ।

घड़वा—संज्ञा पु० [देग०] एक प्रकार की मैना ।

घड़वाई—संज्ञा पु० [हिं० भड़ा] तौलनेवाला । डाँड़ी उठानेवाला ।

घड़ा—संज्ञा पु० [सं० घट] (१) पत्थर लोहे आदि का बोझ जो चैंपी हुई तौल का होता है और जिसे तराजू के एक पलड़े पर रखकर दूसरे पलड़े पर वली के बराबर चीज रखकर तोलते हैं । घाट । बटखरा ।

मुहा०—घड़ा करना = कोई वस्तु रखकर तोलने के पहले तपत्र के दोनो पलड़ों को बराबर कर लेना । (जब किसी वस्तु को भरतन के सहित तौलना रहता है तब पहले भरतन को पलड़े पर रख कर दोनो पलड़ों को बराबर कर लेते हैं । वली को धड़ा करना कहते हैं) । धड़ा बाँधना = (१) दे० “घड़ा करना” । (२) दीपायिपया करना । कलंक लगाना ।

(२) चार सेर की एक तोल । (कहाँ कहीं पाँच सेर का घड़ा माना जाता है) । (३) तराजू । तुआ ।

मुहा०—घड़ा उठाना = तौलना । बटन करना ।

संज्ञा पु० [हिं० घड़का] दल । जल्पा । मुँड । समूह ।

मुहा०—घड़ा बाँधना = दल बाँधना ।

घड़ुका—संज्ञा पु० दे० “घड़ुका” ।

धड़ाका—संज्ञा पु० [अनु० धड़] “धड़” “घड़” शब्द । किसी भारी चीज के जोर से गिरने, छूटने, चलने आदि से उत्पन्न गोर शब्द । धमाके या गड़गड़ाहट का शब्द । जैसे, धड़क का धड़ाका, दीवार गिरने का धड़ाका ।

क्रि० प्र०—होना ।

मुहा०—घड़ाके से = फट से । जल्दी से । चटपट । बिना रुकावट के । जैसे, धड़ाके से यह काम कर बाओ ।

घड़ाघड़—क्रि० वि० [अनु० घड़] (१) लगातार “घड़” “घड़” शब्द के साथ । बार बार धड़ाके के साथ । जैसे, ऊपर से धड़ाघड़ हूँ गिर रही हूँ । (२) एक दूसरे के पीछे लगातार । बराबर जल्दी जल्दी । बिना रुके हुए । जैसे, वह सब बातों का घड़ाघड़ जबाब देता गया ।

घड़ाबंदी—संज्ञा स्त्री० [हिं० भड़ा + का० बंध] (१) धड़ा बाँधने का काम । (२) लड़ाई के पहले दो पक्षों का अपनी अपनी सेना का बल एक दूसरे के बराबर करना ।

घड़ाम—संज्ञा पु० [अनु० घड़] ऊपर से एकबारगी हूँ या गिर कर जोर से जमीन, पानी आदि पर पड़ने का शब्द । जैसे, छत पर से वह घड़ाम से हूँ पड़ा ।

विशेष—घट, घट आदि क्रुद्ध शब्दों के समान हूँ शब्द का प्रयोग केवल ‘से’ विभक्ति के साथ क्रि० वि० वच् ही होता है ।

घड़ी-संज्ञा स्त्री० [सं० घटिका, घटी] (१) चार या पाँच स्तर की एक लोख ।

मुहा०—घड़ी मारना = वज्रन करना । घड़ी घड़ी करके लुटना = तिनका तिनका लुटना । इस प्रकार लुटना कि पाश में कुल भी न रह जाय । घड़ी घड़ी करके लटना = तिनका तिनका लटना । खूब लटना । कुल भी न छोड़ना । घटियों = ढेर का ढेर । बहुत वा । बहुत अधिक ।

(२) पाँच सौ रूप की रकम । (३) रेखा । लकीर । (४) वह लकीर जो मिल्सी लगाने या पान धाने से बोटों पर पढ़ जाती है ।

क्रि० प्र०—जमाना ।

धत्-अन्व० [अन्व०] (१) हुतकारने का शब्द । तिरस्कार के साथ हटाने का शब्द । दूर हो । इट जा । (२) हाथी को पीछे हटाने का शब्द ।

धत-संज्ञा स्त्री० [सं० तत, हिं० ऋत] लत । सुती धान । सराय आदत । टेव ।

क्रि० प्र०—बड़ना ।

धतकारना-क्रि० सं० [अन्व० धत्] (१) हुतकारना । दुरदुराना । तिरस्कार के साथ हटाना । (२) पिछारना । खानत मजामत करना ।

संयो० क्रि०—देना ।

धता-वि० [अन्व० धत्] चञ्चलता । हटा हुआ । जो दूर हो गया हो या किया गया हो । जो भागा या भगाया गया हो । (शाब्दरू)

मुहा०—धता करना = चञ्चल करना । हटाना । मगाना । टालना । धना यजाना = (१) चञ्चलता करना । हटाना । (२) जो किसी बात के लिये अज्ञा हो बरसे इधर उधर का चहाना कर के अपना पीछा छुड़ाना । धोखा देकर टालना । टालटूल करना । धत होना = चञ्चल होना । चत देना ।

धतिया-वि० [हिं० धत्] जिसे किसी बात की धत पड़ गई हो । सुती लतवाञ्छा । खली ।

धतोगड्डा-संज्ञा पुं० [दे०] (१) बड़े ढोल का । मेडोल आदमी । मोटा ताजा आदमी । मुस्टब्द । (२) शरज । वेगगा ।

धतोगड्डा-संज्ञा पुं० दे० "धतोगड्डा" ।

घट्टा-संज्ञा पुं० दे० "घट्टा" ।

घटा पुं० [अन्व० घृ + सं० हृ] नरसिंहा नाम का याज्ञा । घृ । सिंहा । तराही । घं—दसरे भास मोहन भय भरे धौगन मात्र घट्टर ।—सुर ।

घट्टा-संज्ञा पुं० [सं० घट्टा] दो तीन हाथ कैंचा एक चौथा जिससे पत्ते साठ भांड ऊंचक तक लंबे और पाँच छः चौथक चौड़े तथा कौनदार होते हैं । इसमें घंटी के आकार के बड़े

बड़े और सुहावने सफेद फूज लगते हैं । फज इसके अंदरी के फलों के समान गोल और काँटेदार पा उनसे बड़े बड़े होते हैं । अंदरी के फज के ऊपर जो काँटे निकले होते हैं वे घने लंबे और मुलायम होते हैं, पर घट्टे के फज के ऊपर काँटे कम, छोटे और कुछ अधिक कड़े होते हैं । कंटकहीन फजवाला घट्टा भी होता है । फलों के भीतर बीज भरे होते हैं जो बहुत विपैले होते हैं । जब ये बीज पुष्ट हो जाते हैं तब फज फट जाते हैं । घट्टे कई प्रकार के होते हैं पर मुख्य भेद दो माने जाते हैं ।—सफेद घट्टा और काला घट्टा । काले घट्टे के बँटक, टहनियाँ और पत्तों की नसें गहरे बैंगनी रंग की होती हैं तथा फूलों के निचले भाग भी कुछ दूर तक रक्तकृष्णाम होते हैं । साधारणतः लोगों का विरवास है कि काला घट्टा अधिक विपैला होता है, पर यह भ्रम है । औषध में लोग काले घट्टे का व्यवहार अधिक करते हैं । वैद्य लोग घट्टे के बीज तथा पत्ते के रस का दूध में सेवन कराते और बात की पीड़ा में बसका यादही प्रयोग करते हैं । दावतों ने भी परीपा करके इन दोनों रोगों में घट्टे को बहुत बपकारी पाया है । सूखे पत्तों या बीजों के पुष्ट से भी दमे का कष्ट दूर होता है । पहले दावत लोग घट्टे के गुणों से अनभिज्ञ थे पर अब बहुत दिनों से उन्होंने इसे जो लिया है । पागल कुत्ते के काँटने में भी घट्टा बहुत ही लाभदायक सिद्ध हुआ है । घट्टे के फज शिव को चढ़ाए जाते हैं ।

वैद्यक में घट्टा कसैला, उष्ण, गुरु तथा मंदोष्ण और वात-कारक माना जाता है । औषध के अनिरीक विषप्रयोग और मादकता के लिये भी घट्टे का प्रयोग बहुत होता है । इसके बीज भाग और शराय को तैज करने के लिये कभी कभी मिलाए जाते हैं । घट्टा प्रायः गरम देतों में पाया जाता है । भारतवर्ष में यह सर्वत्र मिलता है । प्रदेश-भेद से पीधों में थोड़ा बहुत भेद पाया जाता है । दक्षिण देश का घट्टा उत्तरार्द्ध के घट्टे से देखने में कुछ भिन्न मालूम होता है । कारसी, कावुल और फारस तक से इसके बीज हिंदुस्तान में आते हैं । फारस से ये बीज तागे में गूँथ कर माला के रूप में आते हैं और बंधई में "परभुली" के नाम से विकते हैं ।

पर्या०—धन्त । कितव । पुँस । कनक । कन्काइय । मालुल । मदन । घट्टर । शठ । रयाम । शिकरोत्तर । खगुंन । काहजापुष्प । राख । कंटफल । मोहन । कृलम । मत् । शं । देविका । नृी । महामोह । शिवभिय ।

मुहा०—घट्टा खाए फिरना = पागल बना फिरना । उन्मत्त के समान घूमना । घं—मूढास प्रभु दरसन कारन मानहुँ फिरत घट्टा खाए ।—सुर ।

धत्त्रिया—संज्ञा पुं० [हिं० धत्त्र + इया (प्रत्य०)] ठोरा का यह दल या संप्रदाय जो पथिर्हों को धत्त्रा खिलानकर वेदोहा करता और लुटता था ।

धत्ता—संज्ञा पुं० [दे०] एक छंद जिसके विषय (पहले और तीसरे) चरणों में १८ और सम (दूसरे, चौथे) चरणों में १९ मात्राएँ होती हैं। अंत में तीन लघु होते हैं। यह छंद द्विपदी धत्ता कहलाता है और दोही पंक्तियों में लिखा जाता है। ४०—श्रीकृष्णसुरारी कुंजविहारी भजु जन-मनरंजन पदम । प्यावा धनवारी जन-दुख-हारी, जिहि नित शप गंगानमदन ।

संज्ञा पुं० [दे०] भाली की भारी का डालुवा भाग ।

धत्तानंद—संज्ञा पुं० एक छंद जिसकी प्रत्येक पंक्ति में ११ + ७ + १३ के विश्राम से ३१ मात्राएँ होती हैं। अंत में एक नगण होता है। ३०—जय कंदिय ल कैस, बलिचिखंस, केशिष यक दानव दहन। सो हरि दीनदयाल, भक्तकृपाल, कवि सुलदेव कृपा करन—सुखदेव ।

धत्तूर—संज्ञा पुं० [सं०] धत्त्रा ।

धधक—संज्ञा स्त्री० [भट्ट०] (१) आग की लपट के ऊपर उठने की क्रिया या भाव । आग की भड़क । (२) आंच । लपट । लौ ।

संज्ञा क्रि०—उठना ।—जाना ।

धधकना—क्रि० प्र० [हिं० धधक] आग का इस प्रकार जलना कि लपट ऊपर उठे । लपट के साथ जलना । धाँध धाँधे जलना । दहकना । भड़कना ।

संज्ञा क्रि०—उठना ।

धधकाना—क्रि० स० [हिं० धधकना] (१) आग को इस प्रकार जलाना कि उसमें से लपट उठे । (२) दहकाना । प्रज्वलित करना ।

संज्ञा क्रि०—देना ।

धाधाता—क्रि० प्र० दे० “धधकाना” ।

धनंजय—वि० [सं०] धन को जीतने अर्थात् प्राप्त करनेवाला ।

संज्ञा पुं० (१) अग्नि । इनकी पूजा से धन की प्राप्ति होती है। (२) चिप्रक वृष । चीता । (३) अर्जुन का एक नाम । (४) अर्जुन वृक्ष । (५) विष्णु । (६) एक नाम का नाम जो अज्ञातार्थों का अधिपति कहा गया है । (७) शरीरस्थ पाँच वायुओं में से एक ।

विशेष—यह वायु पोषण करनेवाली मानी गई है। (वेदांत सार) सुबोधिनी टीका में लिखा है कि यह मरने पर भी धनी रहती है। इससे शरीर मजबूत है। सज्जट, स्कंध, हृदय, नाभि, अस्थि और त्वचा इससे रहने के स्थान कहे गए हैं। (८) एक नोटा का नाम । (९) सोलहवें द्वापर के व्यास ।

धनंतर्—संज्ञा पुं० दे० “धनंतरि” ।

संज्ञा पुं० [सं० धनंतर् = रोम का एक भेद] एक पीथा जिसकी पत्तियाँ मोटी और फूल नीचे होते हैं ।

धन—संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह वस्तु या वस्तुओं की समष्टि जिससे किसी उपयोगी या हृद्य अर्थ की सिद्धि होती है और जो धन, पूँजी या समय लगाने से प्राप्त होती है, विशेषतः अधिक परिमाण में संचित उपयोग की सामग्री । संगति । द्रव्य । दौलत । रुपया पैसा, जमीन, जायदाद इत्यादि । जीवोपाय ।

क्रि० प्र०—कमाना ।—भोगना ।—लगाना ।

धा०—धनधान्य ।

मुद्रा०—धन बढ़ाना = धन को चट पट व्यर्ष खर्च कर डालना ।

(२) गोधन । धौपायों का मुँह जो किसी के पास हो ।

गाय, मँस खादि । (३) स्नेहपादि । शस्यंत म्रिय व्यक्ति ।

जीवनसर्वस्व । जैसे, प्राणधन । जीवनधन । (४) मणित में जोड़ी जानेवाली संख्या या जोड़ का चिह्न । योग संख्या या योग चिह्न (+) । श्रेय या श्य का बड्डा । (५) वह द्रव्य जिसमें वृद्धि या व्याज न सम्मिलित हो । मूज । पूँजी ।

(६) जन्मकुंडली में जन्म क्षण से दूसरा स्थान जिसे देव कर यह विचार किया जाता है कि क्या धनी होगा या

निर्धन । जैसे, यदि सूर्य धन स्थान में हो तो मनुष्य धन-

हीन होगा, चंद्रमा हो तो धनधान्य से पूर्ण होगा, इत्यादि ।

अश्विनी, पुनर्वसु, पुष्य, वृश्चिकार्युनी, हस्त, पूर्वाषाढ़ा,

धनुर, धनिष्ठा, शतभिषा, उत्तराशाढ़द्वार और रोहिणी ये धनप्रयोग नक्षत्र कहलाते हैं । (७) कधी धातु । खान से निकली हुई बिना साफ़ या छद्म की हुई धातु । (खानवाले)

*संज्ञा स्त्री० [सं० धनी] युवती स्त्री । धर् । ४०—(क)

पुनि धन भरि अंशुखि जल लीन्हा । नखत मोखु चोखावरी

कीन्हा ।—जायसी । (ख) सुरदास सोमा क्यों पाये पिप

विहीन धन मरके ।—सूर । (ग) गुरुर पायें उठे मन-

नाय सु जाय लगी धन धाय मरोले ।—देव ।

पुंवि० दे० “धन्य” ।

धनकर—संज्ञा पुं० [सं०] (१) धन की इच्छा । (२) राजा क्व-

वीर्य के पिता । (आगत)

संज्ञा पुं० [सं० धत्] (१) धत्तु । कमल । (२) एक प्रकार

का पतला गोदा जिसे टेपी खादि में लगाते हैं । (३) एक

प्रकार की शोषणी ।

धनकटी—संज्ञा स्त्री० [हिं० धन + कटा] (१) धान की कटाई

या कटाई का समय । (२) एक प्रकार का कपड़ा ।

धनकर—संज्ञा पुं० [हिं० धान + कला] (१) वह कड़ी मिट्टी जिस-

में धान बोया जाता है और जिसमें बिना अच्छी वर्षा हुए

हल नहीं चल सकता । (२) वह जेत जिसमें धान बोया

जाता है ।

धनकुटी-संज्ञा स्त्री० [हिं० धन + कूटना] (१) धन कूटने का काम । (२) धन कूटने के चौगार, बोगली, मूसल ।

मुहा०—धनकुटी करना = मारते मारते कचूमर निकालना । बहुत पीटना ।

(१) धनदेवाका लाल रंग का एक छोटा (जो के थरावर) कौड़ा जिसका मुँह काबा होता है । यह अपना अगला घड़ हार प्रकार नीचे ऊपर दिबाता है जैसे धान कूटने की देकली ।

धनकुबेर-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो धन में कुबेर के समान हो । अत्यंत धनी मनुष्य ।

धनकैलि-संज्ञा पुं० [सं०] कुबेर ।

धनकोटा-संज्ञा पुं० [देश०] एक माढ़ या पौधा जो हिमाचल के कम उँचे स्थानों में होता है और जिससे नैपाली कागज बनता है । चमोई । सतयथा । सतपुरा ।

धनखर-संज्ञा पुं० [हिं० धन] वह खेत जिसमें (कुधारी) धान बोया जाता हो । धनाऊँ ।

धनचिड़ी-संज्ञा स्त्री० [हिं० धन + चिड़ी] एक प्रकार की चिट्ठिया ।

धनतेरस-संज्ञा स्त्री० [हिं० धन + तेरस] कार्तिक कृष्ण त्रयोदशी जो दिवाली के दो दिन पहले होती है । इस दिन रात को लपनी की पूजा होती है ।

धनदंड-संज्ञा पुं० [सं०] वह दंड जिसमें अपराधी को कुछ धन देना पड़ता है । जुमाना ।

धनद-वि० [सं०] धन देनेवाला । दाता ।

संज्ञा पुं० (१) कुबेर । (२) हिमब्रह्म वृष । समुद्रफल । (३) धनपति वायु । (४) शनि । (५) चित्रक वृष । पीता । (६) हिमाचल या उत्तरालंकार के एक देश का नाम । (भारत)

धनदतीर्थ- [सं०] कुबेरतीर्थ जो ब्रज के अंतर्गत है ।

धनदा-वि० स्त्री० [सं०] धन देनेवाली ।

संज्ञा स्त्री० आश्विन कृष्ण पक्षादशी का नाम ।

धनदाक्षी-संज्ञा स्त्री० [सं०] कता करंज ।

धनदायन-संज्ञा पुं० [देश०] एक पौधा जिसके काढ़े से ऊनी कपड़ों पर सारी देले हैं ।

धनदेव-संज्ञा [सं०] कुबेर ।

धनधान्य-संज्ञा पुं० [सं०] धन और अन्न आदि । सामभी और संपत्ति । जैसे, धन-धान्य-पूर्णे देरा ।

धनधाम-संज्ञा पुं० [सं०] धरवार और रुपया पैसा ।

धननंद-संज्ञा पुं० [सं०] सिंहल के मदावंश नामक ग्रंथ के अनुसार मगध के नंदवंश का अंतिम राजा जिसका वाक्य्य द्वारा भाग हुआ । (दे० नंदवंश) ।

धननाथ-संज्ञा पुं० [सं०] कुबेर ।

धनपति-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कुबेर । (२) पुराण के अनुसार वायु का नाम ।

विशेष—वराहपुराण में लिखा है कि ब्रह्मा ने जब सृष्टि की तब वनके सुख से वायु देवता निकले । ब्रह्मा ने उनसे मुक्तिमान् होकर शक्ति भाव धारण करने के लिये कहा और वर दिया कि "देवताओं का जितना धन है सब के रक्कड़ तुम हो । जो एकदूरी के दिन बाग में पका अन्न पत्तयाग वसते प्रति प्रसन्न होकर तुम धनधान्य दोगे" ।

धनपत्र-संज्ञा पुं० [सं०] धनी लाता ।

धनपात्र-संज्ञा पुं० [सं०] धनवात् । धनी ।

धनपाल-वि० [सं०] धन का रक्षक ।
संज्ञा पुं० कुबेर ।

धनप्रयोग-संज्ञा पुं० [सं०] धन को किसी व्यापार में लगाने या व्याज पर उधार देने का कार्य । रुपया लगाने का काम ।

विशेष—मुहूर्तचिंतामणि, ज्योतिषप्रकाश आदि फलिज ज्योतिष के ग्रंथों में इस बात का विचार किया गया है कि किन किन नक्षत्रों या दिनों में धनप्रयोग करना चाहिए, किन किन में नहीं ।

धनप्रिया-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का छोटा जामुन ।

धनमद-संज्ञा पुं० [सं०] धन का धमंड ।

धनमाली-संज्ञा पुं० [सं०] एक अन्न का संहार ।

धनचंत-वि० दे० "धनवान्" ।

धनघती-वि० स्त्री० [सं०] धन रखनेवाली ।
संज्ञा स्त्री० धनिछान चंद्र ।

धनघा-संज्ञा पुं० [हिं० धन] एक प्रकार की घास ।

संज्ञा पुं० दे० "धन्वा" ।

धनघान्-वि० [सं०] [स्त्री० धनवती] जिसके पास धन हो । धनी । दौलतमंद ।

धनशाली-वि० [सं० धनशालिन्] [स्त्री० धनशालिनी] धनवान् । धनिक ।

धनसार-संज्ञा पुं० [हिं० धन + सार (याता)] अनाज भरने की कोइरी या घेरा जिसमें केवल दो सिलइकिया अनाज रखने और निकालने के लिये होती हैं ।

धनसिरी-संज्ञा स्त्री० [सं० धन + शी] एक चिट्ठिया ।

धनसु-संज्ञा पुं० [सं०] धनेस नाम की चिट्ठिया ।

धनस्यक-वि० [सं०] धन की खाजसा रखनेवाला ।
संज्ञा पुं० गोष्ठारक । गोष्ठरक ।

धनस्वामी-संज्ञा पुं० [सं०] कुबेर ।

धनहर-वि० [सं०] धन हरनेवाला ।

संज्ञा पुं० (१) घेरा । लुटेरा । (२) घेरा नामक मंधद्रव्य ।

धनहीन-वि० [सं०] निर्धन । दरिद्र । फंगाल ।

धन-संज्ञा स्त्री० [?] एक रागिनी ।

संज्ञा स्त्री० [सं० धनिका, हिं० धनिया=युवती] युवती। यष्।
(गीत वा कविता)

धनाढ्य-वि० [सं० धनवान् । माजदार ।

धनाधिप-संज्ञा पुं० [सं०] कुबेर ।

धनाध्यक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सखानची । (२) कुबेर ।

धनाना-कि० थ० [सं० धेनु = नवपूर्विका गाय] (१) गाय का गर्भवती होना । धच्चे से होना । (२) गाय का वरदान । गाय का साँझ से संयोग करना

धनार्थी-वि० [सं० धनार्थिन्] धन चाहनेवाला । रूपया पैसा माँगनेवाला ।

धनाश्री-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक रागिनी जो द्युमान् के मत से श्री राग की तीसरी पत्नी मानी जाती है । इसकी जाति पाद्व, ऋषभ वर्जित गृहान्ध्यास पद्वज । गाने का समय किसी किसी के मत से दिन का दूसरा पहर और किसी के मत से तीसरा पहर । इसका प्रयोग वीर रस में विशेष होता है । इसका सरगम इस प्रकार है—

स० ग म प ध नि सः :

भरत के मत से यह गांधार राग की आर्या और कलिनाय के मत से मेघराग की चतुर्थ आर्या है ।

धनिक-संज्ञा स्त्री० [सं० धनी] युवती । यष्। उ० धनि ये धनि सावन की रतियाँ पिय की दृष्टियाँ लागि सोवति हैं ।

वि० दे० 'धन्य' । इ०—धनि धनि । भारत की कुत्राणी । —हरिश्चंद्र ।

धनिक-वि० [सं०] धनी । जिसके पास धन हो ।

संज्ञा पुं० (१) धनी मनुष्य । (२) पति । स्वामी । (३) रूपया उधार देनेवाला मनुष्य । महाजन । उत्तमण । (४) धनिया ।

धनिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) धनी स्त्री । (२) अच्छी स्त्री । यष् । युवती । (३) मिरंगु वृक्ष ।

धनिता-संज्ञा स्त्री० [सं०] धनीपता । धनाढ्यता ।

धनिया-संज्ञा पुं० [सं० धन्याक, धनिका] एक छोटा वीषा जिसके सुगंधित फल मसाले के काम में आते हैं । यह वीषा हिंदुस्तान में सर्वत्र बोया जाता है । प्राचीन काल में धनिया प्रायः भारतवर्ष ही से मिश्र आदि पश्चिम के देशों में आता था पर अब उत्तरी अफ्रिका तथा रूस हंगरी आदि योरप के कई देशों में इसकी खेती अधिक होने लगी है । धनिये का वीषा हाथ भर से बढ़ा नहीं होता । इसकी टहनियाँ बहुत नरम और जला की तरह लचीली होती हैं । पत्तियाँ बहुत छोटी कुट्ट गोलाई लिए होती हैं पर वन में टेढ़े भेड़े तथा हथर हथर निकले हुए बहुत से कटाव होते हैं । इन पत्तियों की सुगंध बड़ी मनोहर होती है जिससे वे चटनी में हरी पीस कर डाली जाती हैं । टहनियों के छोर

पर हथर उभर कई सोंके निकलती हैं जिनके तिरों पर दूधे की तरह फैले हुए सफेद फूलों के गुच्छे लगते हैं । फूलों के ऋद्ध जाने पर गेहूँ से भी छोटे छोटे लंबोतरे फल लगते हैं जो सुखा कर काम में लाए जाते हैं ।

भारतवर्ष में इसकी खेती मिश्र मिश्र प्रदेशों में मिश्र मिश्र ऋतुओं में होती है । जैसे, बंगाल और युक्त प्रदेश में जाड़े में, बंबई प्रदेश में बरसात में और मद्रास में शिशिर ऋतु में । मसाले के आतिरिक्त योरप में धनिये का तेल भी इसके से अर्क निकाल कर निकाला जाता है, जो खाने और दवा के काम में आता है । धीक में धनिया शीतल, स्निग्ध, दीपन, पाचन, वीर्यकारक कृमिनाशक तथा पित्तज्वर, खाँसी, प्यास और दाढ़ को दूर करनेवाला माना जाता है । डाक्टर लोग भी पेट की वायु दूर करने और शरीर में फुरती खाने के लिये इसका प्रयोग करते हैं ।
पर्या०—धन्याक । धनिक । धानक । धनिका । छुप्राधान्य । कुस्तुवृक्ष । विदुद्रक । सुगंधि । सूत्रमध्व । जनपिय । वेधक । वजिपाच्य ।

मुहा०—धनिये की खोपड़ी में पानी पिबाना = प्यासों मारना । बहुवृत्त कठिन दंड देना । (बहुवृत्त तंग करना । (वि०)

संज्ञा स्त्री० [सं० धनिका = युवती] युवती । यष् । स्त्री । इ०—सहसानन गुन गौं गनत न धनियाँ । सूरस्याम सय भूर्वी गाय धनियाँ ।—सूर ।

धनियामाल-संज्ञा स्त्री० [हिं० धनी + माला] गले में पहनने का एक गहना ।

धनिष्ठ-वि० [सं०] धनी । धनाढ्य ।

धनिष्ठा-संज्ञा स्त्री० [सं०] सत्ताईस नक्षत्रों में से तेईसवाँ नक्षत्र जो ३ ऊर्ध्वमुख नक्षत्रों में से है और जिसमें पंच तारे संयुक्त हैं । इसके अधिपति देवता वसु हैं और इसकी आकृति मृदंग की सी है । फलित ज्योतिष के अनुसार धनिष्ठा नक्षत्र में जिसका जन्म हो वह दीर्घकाल, कामातुर, हृदयुक, उत्तम शास्त्रवेत्ता और कीर्तिमान् होता है ।

पर्या०—अविष्ठा । वसुदेवता । भूति । निधान । धनवती ।

विशेष—दे० "नक्षत्र"

धनी-वि० [सं० धनिन्] (१) धनवान् । जिसके पास धन हो । माजदार । रूपया पैसेवाला । दौखतमंद ।

यौ०—धनी घोरी = धन और मर्यादावाला । धानवाला । धनी मानी = धनी और प्रतिष्ठित ।

मुहा०—वात का धनी = वात का सच्चा । दृढ़प्रतिष्ठ । (२) जिसके पास कोई गुण आदि हो । दृढता-संपन्न । जैसे, तलवार का धनी ।

संज्ञा पुं० (१) धनवान् पुरुष । माजदार आदमी । (२) रखनेवाला आदमी । वह जिसके अधिकार में कोई हो । अधि-

पति । मालिक । स्वामी । जैसे, कोशलाचनी । ४०—सो राम रमानिकास संतत दास शत त्रिभुवन-धनी ।—गुह्यसी ।

(३) पति । शौहर ।

संज्ञा स्त्री० [सं०] युवती स्त्री । बधू । ४०—श्री हरिदास के स्वामी स्वाम समाली डडिंगि बैसै धनी ।—हरिदास ।

धनीयक—संज्ञा पुं० [सं०] पतिवा ।

धनुःपट—संज्ञा पुं० [सं०] पिपाळ वृक्ष ।

धनुःशास्त्रा—संज्ञा पुं० [सं०] पिपाळ वृक्ष ।

धनुःश्रेणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सुर्वा । सुर्ता । (२) मर्द्ध-वारुणी ।

धनुः—संज्ञा पुं० [सं०] (१) धनुस् । चाप । कमान ।

विशेष—दे० “धनुस्” ।

(२) ज्योतिष की बारह राशियों में से नववीं राशि जिसके श्रतगत मूल और पूर्वाषाढ नक्षत्र तथा उत्तराषाढा का एक चरण आता है । इसे लौकिक भी कहते हैं ।

विशेष—दे० “राशि” ।

(३) कजित ज्योतिष में एक लग्न विशेष जिसका परिमाण ४ । १० । २० है ।

विशेष—प्रत्येक दिन रात में बारह लग्न माने जाते हैं । पूर के महीने में सूर्योदय धनु लग्न में होता है ।

(४) उडयोग के एक आसन का नाम । (५) पिपाळ वृक्ष ।

(६) चार हाथ की एक माप । (७) गोज खेन के आधे से कम शंख का षेत्र ।

धनुः—संज्ञा पुं० [सं० धनुः, धनुः] (१) धनुस् । कमान ।

(२) तीर की डोरी की लंबी कमान जिससे धुनिप रहै धुनते हैं ।

धनुर्ही—संज्ञा स्त्री० [सं० धनु + ई (प्रत्य०)] छोटा धनुस् ।

धनुक—संज्ञा पुं० दे० “धनुस्” ।

धनुकना—किं० सं० दे० “धनुकना” ।

धनुकबाई—संज्ञा पुं० [हिं० धनुक + बाई] लकड़े की तरह का एक वायुरोग जिसमें लकड़े बैठ जाते हैं, और सुँह नहीं चुकता ।

धनुर्गुण्य—संज्ञा पुं० [सं०] धनुस् की डोरी । पतंगिका । चिह्ना ।

धनुर्गुणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] सुर्वा । मरोरफली । सुरनहार ।

धनुर्मह—संज्ञा पुं० [सं०] (१) धनुर्धर । (२) धनुर्विद्या । (३) धतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम ।

धनुर्द्व—संज्ञा पुं० [सं०] (१) धनुष धारण करनेवाला पुरुष ।

कमनैत । सीतदाम । (२) धतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम ।

धनुर्द्वारी—वि० [सं० धनुर्द्वारि] [स्त्री० धनुर्द्वारिणी] धनुष धारण करनेवाला ।

संज्ञा पुं० धनुर्द्वार । कमनैत । वीर । योद्धा ।

धनुर्द्वार—संज्ञा पुं० [सं०] बांस ।

धनुर्भूत्—संज्ञा पुं० [सं०] धनुस् धारण करनेवाला योद्धा । वीर ।

धनुर्मह—संज्ञा पुं० [सं०] धनुर्धर ।

धनुर्मौला—संज्ञा स्त्री० [सं०] सुर्वा । सुरनहार । मरोरफली ।

सुर्ता ।

धनुर्विद्या—संज्ञा पुं० [सं०] धनुस् संबंधी बरसव । एक यज्ञ जिसमें धनुस् का पूजन तथा उसके चबाने आदि की परीक्षा भी होती थी ।

विशेष—मिथिला के राजा जनक ने अपनी कन्या सीता के विवाहमें वर चुनने के लिये इस प्रकार का यज्ञ किया था ।

कंस ने भी द्रुपदपूर्वक कृष्य को चुनाने के लिये इस प्रकार के यज्ञ का अनुष्ठान किया था ।

धनुर्वास—संज्ञा पुं० [सं०] जवाला ।

धनुर्लता—संज्ञा स्त्री० [सं०] सेमझता ।

धनुर्वक—संज्ञा पुं० [सं०] कात्तिकेय के एक अनुचर का नाम ।

धनुर्चात—संज्ञा पुं० [सं०] (१) धनुकबाई । (२) एक वायुरोग जिसमें शरीर धनुस् की तरह झुक कर टेढ़ा हो जाता है ।

धनुर्विद्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] धनुस् चबाने की विद्या । तीरंदाजी का हुनर ।

विशेष—दे० “धनुर्वेद” ।

धनुर्वृक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] (१) धामिन का पेड़ । (२) बांस ।

(३) मिखावा । (४) पीपल का पेड़ ।

धनुर्वेद—संज्ञा पुं० [सं०] वह शास्त्र जिसमें धनुस् चबाने की विद्या का निरूपण हो ।

विशेष—प्राचीन काल में प्रायः सय सभ्य देशों में इस विद्या का प्रचार था । भारत के अतिरिक्त फारस, मिथ, यूनान, रोम आदि के प्राचीन इतिहासों और विद्वानों आदि के लेखने से उन सब देशों में इस विद्या के प्रचार का पता लगता है । भारतवर्ष में तो इस विद्या के बड़े बड़े ग्रंथ थे जिन्हें अग्निपुराण, अथर्वसूक्त पढ़ते थे । मनुस्मृतन सरस्वती ने अपने प्रस्थान-भेद नामक ग्रंथ में धनुर्वेद का धनुर्वेद का उपवेद लिखा है । आज कल इस विद्या का बर्षान् बृद्ध ग्रंथों में थोड़ा बहुत मिश्रता है । जैसे, शुकनिति, कामंदकी नीति, अग्नि-पुराण, वीरचिंतामणि, बुद्धराष्ट्रधर, युद्धभार्यष, सुष्टिकरप-तरु, नीतिमयूख, इत्यादि । ‘धनुर्वेद संहिता’ नामक एक अज्ञय पुस्तक भी मिलती है पर उसकी प्राचीनता और प्रामाणिकता में संदेह है । अग्निपुराण में प्रथम वीर महेश्वर इस वेद के आदि प्रकटकर्ता कहे गए हैं । पर मनुस्मृतन सरस्वती लिखते हैं कि विद्यामित्र ने जिस धनुर्वेद का प्रकाश किया था वहयुर्वेद का उपवेद बही है । उन्होंने अपने प्रस्थान-भेद में विद्यामित्रकृत इस उपवेद का कुछ संक्षिप्त ध्येरो भी दिया है । वसमें चार पाद हैं—दीक्षापाद, संप्रदाय, सिद्धि-

इंशा खी० [सं० धनिका, हि० धनिया = सुवर्ता] युवती । यद् ।
(गीत वा कविता)

घनाढ्य-वि० [सं०] घनवान् । मालदार ।

घनाधिप-संज्ञा पुं० [सं०] कुबेर ।

घनाध्यक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सखानची । (२) कुबेर ।

घनाना-कि० अ० [सं० धेनु = नवसृष्टिका गाय] (१) गाय का गर्भवती होना । धच्चे से होना । (२) गाय का घरदाना । गाय का साँझ से संयोग करना

घनार्थी-वि० [सं० धनार्थिन्] धन चाहनेवाला । रुपया पैसा मार्गनेवाला ।

घनाश्री-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक रागिनी जो हनुमान् के मत से श्री राग की तीसरी पत्नी मानी जाती है । इसकी जाति पाद्व, श्याम वज्रित गृहाराग्यास पड़ज । गाने का समय किसी किसी के मत से दिन का दूसरा पहर और किसी के मत से तीसरा पहर । इसका प्रयोग वीर रस में विशेष होता है । इसका सरगम इस प्रकार है—

स० ग म प ध नि सः :

भारत के मत से यह गांधार राग की भाव्या और कहलानाथ के मत से मेवराग की चतुर्थे भाव्या है ।

धनि-संज्ञा स्त्री० [सं० धनी] युवती । यद् । इ० धनि वे धनि साधन की रतिथों पिय की छुतिथों लगी सोवति है ।

वि० दे० 'धन्य' । इ०—धनि धनि ! भारत की छत्रानी ।

—हरिश्चंद्र ।

धनिक-वि० [सं०] धनी । जिसके पास धन हो ।

संज्ञा पुं० (१) धनी मनुष्य । (२) पति । स्वामी । (३)

रुपया वधार देनेवाला मनुष्य । महाजन । उत्तमार्थी । (४) धनिया ।

धनिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) धनी स्त्री । (२) अच्छी स्त्री । यद् । युवती । (३) प्रियंगु वृक्ष ।

धनिता-संज्ञा स्त्री० [सं०] धनीपत्नी । घनाढ्यपत्नी ।

धनिया-संज्ञा पुं० [सं० धन्यक, धनिका] एक छोटा पौधा जिसके सुगंधित फल मसाले के काम में आते हैं । यह पौधा हिंदुस्तान में सर्वत्र बोया जाता है । प्राचीन काल में धनिया प्रायः भारतवर्ष ही से सिंध आदि पश्चिम के देशों में जाता था पर अब उत्तरी अफ्रिका तथा रूस हंगरी आदि योप्य के कई देशों में इसकी खेती अधिक होने लगी है । धनिये का पौधा हाथ भर से बड़ा नहीं होता । इसकी टहनियाँ बहुत नरम और लता की तरह लचीली होती हैं । पत्तियाँ बहुत छोटी कुछ गोलाई लिए होती हैं पर उनमें टेढ़े भेड़े तथा इधर उधर निकले हुए बहुत से कटाव होते हैं । इन पत्तियों की सुगंध बड़ी मनाहर होती है जिससे वे चटनी में हरी पीस कर डाली जाती हैं । टहनियों के खोर

पर इधर उधर कई-साँके निकलती हैं जिनके तिरों पर छुत्ते की तरह फैले हुए सफेद फूलों के गुच्छे लगते हैं । फूलों के झड़ जाने पर गेहूँ से भी छोटे छोटे लंबेवारे फल लगते हैं जो सुखा कर काम में लाए जाते हैं ।

भारतवर्ष में इसकी खेती सिंध सिंध प्रदेशों में सिंध सिंध ऋतुओं में होती है । जैसे, बंगाल और युक्त प्रदेश में जाड़े में, बंबई प्रदेश में बरसात में और मद्रास में शिशिर ऋतु में । मसाले के अतिरिक्त योप्य में धनिये का तेल भी भवके से अर्कें निकाल कर निकाला जाता है, जो खाने और दवा के काम में आता है । वैद्यक में धनिया शीतल, स्निग्ध, दीपन, पाचन, वीर्यकारक कृमिनाशक तथा पित्तघ्न, खाँसी, प्यास और दाह को दूर करनेवाला माना जाता है । दाक्टर लोग भी पेट की वायु दूर करने और शरीर में फुरती लाने के लिये इसका प्रयोग करते हैं ।
पर्या०—धन्याक । धनिक । धनिका । छत्राधान्य । कुस्तुंबुद । वितुलक । सुगंधि । सुमपत्र । जनप्रिय । वेधक । वजिधान्य ।

सुहा०—धनिये की रोपड़ी में पानी पिजाना = प्यासों मारना । बहुत कठिन दंड देना । (बहुत तंग करना । (खि०)
संज्ञा स्त्री० [सं० धनिका = सुवर्ता] युवती । यद् । स्त्री । इ०—सहसानन गुण गर्भे गवत न धनियो । सूस्थान सत्र भूर्त्तो गोप धनियो ।—सूर ।

धनियामाल-संज्ञा स्त्री० [हि० धनी + माला] गले में पहनने का एक गहना ।

धनिष्ठ-वि० [सं०] धनी । घनाढ्य ।

धनिष्ठा-संज्ञा स्त्री० [सं०] सत्ताईस नक्षत्रों में से वेईसवाँ नक्षत्र जो ६ ऊर्ध्वमुख नक्षत्रों में से है और जिसमें पंच तारे अत्युक्त हैं । इसके अधिपति देवता वसु हैं और इसकी आकृति शूद्रंग की सी है । फलित ज्योतिष के अनुसार धनिष्ठा नक्षत्र में जिसका जन्म हो वह दीर्घकाल, कामातुर, कफपुत्र, उत्तम शास्त्रवेत्ता और कीर्तिमान् होता है ।

पर्या०—अधिष्ठा । वसुदेवता । भूति । निधान । धनवती ।

विशेष—दे० "नक्षत्र"

धनी-वि० [सं० धनिन्] (१) धनवान् । जिसके पास धन हो । मालदार । रुपया पैसेवाला । दौलतमंद ।

यौ०—धनी धोरी = धन और मर्यादावाला । चापवाला । धनी मानी = धनी और प्रतिष्ठित ।

सुहा०—शत का धनी = शत का सच्चा । दृढप्रतिष्ठ ।

(२) जिसके पास कोई गुण आदि हो । दक्षता-संपन्न । जैसे, तलवार का धनी ।

संज्ञा पुं० (१) धनवान् पुरुष । मालदार आदमी । (२) रखनेवाला आदमी । यह जिसके अधिकार में कोई हो । अधि-

पति । मालिक । स्वामी । जैसे, कोराबधनी । ४०—सो
राम स्वामिवास संतत दास बस विधुवन-धनी ।—तुषसी ।

(३) पति । शौहर ।

संज्ञा शी० [सं०] सुवती स्त्री । बधू । ४०—श्री हरिदास के
स्वामी स्वाम तमाले डरंगी बैरती धनी ।—हरिदास ।

धनीयक—संज्ञा पुं० [सं०] धनिया ।

धनुःपट—संज्ञा पुं० [सं०] विषाख वृक्ष ।

धनुःशाखा—संज्ञा पुं० [सं०] विषाख वृक्ष ।

धनुःश्रेणी—संज्ञा शी० [सं०] (१) सुर्वा । सुर्वा । (२) मर्हद-
वास्वती ।

धनुः—संज्ञा पुं० [सं०] (१) धनुस् । धाप । कमान ।

विशेष—दे० "धनुस्" ।

(२) ज्योतिष की बारह राशियों में से मर्वा राशि जिसके
शतगंत मूल और पूर्वाषाढ नक्षत्र तथा उत्तराषाढा का एक
चरण आता है । इसे तौषिक भी कहते हैं ।

विशेष—दे० "राशि" ।

(३) क्वचित् ज्योतिष में एक लग्न विशेष जिसका परिमाण
२ । ३७ । २० है ।

विशेष—अनेक दिन रात में बारह लग्न माने जाते हैं । पूस
के महीने में सूर्योदय धनु लग्न में होता है ।

(४) इश्याग के एक शासन का नाम । (५) विषाख वृक्ष ।

(६) चार हाथ की एक माप । (७) गोख चंद्र के साथे से
कन शंश का शत्रु ।

धनुष्मा—संज्ञा पुं० [सं० धनुव, धन्वा] (१) धनुस् । कमान ।

(२) तौषिक की वेरी की लंबी कमान जिससे पुनिए रई
धुनते हैं ।

धनुर्वा—संज्ञा शी० [सं० धनु + ई (अव्य०)] छोटा धनुस् ।

धनुक—संज्ञा पुं० दे० "धनुस्" ।

धनुकना—किं० सं० दे० "धनुकना" ।

धनुकवार—संज्ञा पुं० [हिं० धनुक + वार] लकड़े की तरह का
एक वायुरोग जिसमें जबड़े बैठ जाते हैं, और सुँद नहीं
सुखता ।

धनुगुण—संज्ञा पुं० [सं०] धनुस् की टोरी । पतंचिका । चिह्न ।

धनुगुणा—संज्ञा शी० [सं०] सुर्वा । मरोरफती । सुरनहार ।

धनुग्रह—संज्ञा पुं० [सं०] (१) धनुर्धर । (२) धनुर्विधा । (३)
एतद्रा के एक पुत्र का नाम ।

धनुर्धर—संज्ञा पुं० [सं०] (१) धनुष धारण करनेवाला पुत्र ।

कर्मनैत । तीरंदाज । (२) एतद्रा के एक पुत्र का नाम ।

धनुर्धरी—वि० [सं० धनुर्धर] शी० धनुर्धरीकी] धनुष
धारण करनेवाला ।

संज्ञा पुं० धनुर्धर । कर्मनैत । वीर । योद्धा ।

धनुर्मम—संज्ञा पुं० [सं०] बांस ।

धनुर्भद्र—संज्ञा पुं० [सं०] धनुस् धारण करनेवाला योद्धा । वीर ।

धनुर्मल—संज्ञा पुं० [सं०] धनुर्वेद ।

धनुर्माला—संज्ञा शी० [सं०] सुर्वा । सुरनहार । मरोरफती ।
सुर्वा ।

धनुर्वेद—संज्ञा पुं० [सं०] धनुस् संबंधी शास्त्र । एक यज्ञ जिस-
में धनुस् का पूजन तथा उसके चखाने आदि की परीक्षा
भी होती थी ।

विशेष—मिथिला के राजा जनक ने अपनी कन्या सीता के
विवाहार्थ पर सुनते के लिये इस प्रकार का यज्ञ किया था ।
कंस ने भी दुखपूर्वक कृष्ण को सुनाने के लिये इस प्रकार
के यज्ञ का अनुष्ठान किया था ।

धनुर्वास—संज्ञा पुं० [सं०] जवासा ।

धनुर्लता—संज्ञा शी० [सं०] सोमलता ।

धनुर्वक्त्र—संज्ञा पुं० [सं०] कर्णिकेय के एक अनुचर का नाम ।

धनुर्वीत—संज्ञा पुं० [सं०] (१) धनुकवाह । (२) एक वायु
रोग जिसमें शरीर धनुस् की तरह झुक कर टेढ़ा हो
जाता है ।

धनुर्विधा—संज्ञा शी० [सं०] धनुस् चखाने की विधा । तीरंदाजी
का हुनर ।

विशेष—दे० "धनुर्वेद" ।

धनुर्वृक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] (१) घामिन का पेड़ । (२) बांस ।

(३) मिर्जावा । (४) पीपल का पेड़ ।

धनुर्वेद—संज्ञा पुं० [सं०] वह शास्त्र जिसमें धनुस् चखाने की
विधा का निरूपण हो ।

विशेष—प्राचीन काल में प्रायः सब सभ्य देशों में इस विधा का
प्रचार था । भारत के अतिरिक्त फारस, मिथ्र, यूनान, रोम आदि
के प्राचीन इतिहासों और चित्रों आदि के देखने से इन सब
देशों में इस विधा के प्रचार का पता लगता है । भारतवर्ष
में तो इस विधा के यज्ञे बड़े प्रथं ये जिन्हें एशियटिकल
अभ्यासपूर्वक पढ़ते थे । मनुसूदन सरस्वती ने अपने प्रस्थान-
भेद नामक ग्रंथ में धनुर्वेद को यजुर्वेद का उपवेद लिखा
है । आज कल इस विधा का बर्णन कुछ ग्रंथों में योद्धा
महुत मिलता है । जैसे, शुक्रनीति, कामरंकी नीति, अग्नि-
पुराण, वीरचिंतामणि, शुद्धशास्त्र, युद्धमयायौव, युक्तिरूप-
तर, नीतिमयूख, इत्यादि । "धनुर्वेद संहिता" नामक एक
अलग पुस्तक भी मिलती है पर उसकी प्राचीनता और
प्रामाणिकता में संदेह है । अग्निपुराण में यथा और महेश्वर
इस वेद के आदि प्रकटकों कहे गए हैं । पर मनुसूदन
सारस्वती लिखते हैं कि विश्वामित्र ने विश्व धनुर्वेद का प्रकाश
किया था यजुर्वेद का उपवेद बही है । उन्होंने अपने प्रस्थान-
भेद में विश्वामित्रकृत इस उपवेद का इत्यु संक्षिप्त व्योरा भी
लिखा है । उसमें चार पाद हैं—रीषापाद, संप्रदापाद, सिद्धि-

पाद और प्रयोगपाद । प्रथम दीक्षापाद में धनुर्वेद (धनुस् के अंतर्गत सब हथियार लिए गए हैं) और अधिका-रिधों का निरूपण है । आनुष चार प्रकार के कहे गए हैं—मुक्त, अमुक्त, मुक्तामुक्त, और यंत्रमुक्त । मुक्ता-आनुष, जैले, चक्र । अमुक्त आनुष, जैले, खट्वा । मुक्ता-मुक्त, जैले, भाला, बाछा । मुक्त को अद्य और अमुक्त को शस्त्र कहते हैं । अधिकांश का लक्षण यह है कि फिर दीक्षा, अभिषेक, शकुन आदि का वर्णन है । संग्रहपाद में आचार्य्य का लक्षण तथा अन्न शस्त्रादि के संग्रह का वर्णन है । तृतीय पाद में संग्रहपाद सिद्ध विशेष विशेष शब्दों के अर्थ्यास, मंत्र, देवता और सिद्धि आदि विषय हैं । प्रयोग नामक चतुर्थपाद में देवार्चन, सिद्धि, अन्न शस्त्रादि के प्रयोगों का निरूपण है ।

वैशंपायन के अनुसार शास्त्रं धनुस् में तीन जगह मुक्ताव होता है पर वैष्णव अर्थ्यास वाँस के धनुस् का मुक्ताव बराबर क्रम से होता है । शास्त्रं धनुस् ३। हाथ का होता है और अश्वरोहिणियों तथा गजरोहिणियों के काम का होता है । रथी और पैदल के लिये वाँस का ही धनुस् ठीक है । अग्नि पुराण के अनुसार चार हाथ का धनुस् उत्तम, साढ़े तीन हाथ का मध्यम और तीन हाथ का अधम माना गया है । जिस धनुस् के वाँस में नौ गिट्टें हैं उसे 'कोदंड' कहना चाहिये । प्राचीन काल में दो टोरियों की गुलेज भी होती थी जिसे उपलक्ष्येपक कहते थे । दोरी पाट की और कनिष्ठा उँगली के बराबर मोटी होनी चाहिये । वाँस ढील कर भी दोरी बनाई जाती है । हिरन या भैंसे की ताँत की दोरी भी बहुत भजवृत्त बन सकती है । (बृहद् शास्त्रंधर)

बाण दो हाथ से अधिक लंबा और छोटी उँगली से अधिक मोटा न होना चाहिये । शर तीन प्रकार के कहे गए हैं—जिसका अग्रता भाग मोटा हो वह छो जातीय है, जिसका पिछला भाग मोटा हो वह पुरुष जातीय और जो सर्वत्र बराबर हो वह ननुंसक जातीय कहलाता है । छी जातीय शर बहुत दूर तक जाता है । पुरुष जातीय भिदता खर है और ननुंसक जातीय निराना साधने के लिये अच्छा होता है । बाण के फल अनेक प्रकार के होते हैं । जैसे, आरामुष, सुभ्र, गोपुच्छ, अर्द्धचंद्र, सूचीमुख, भल, बरसदंत, द्विभ्र, कापिक, काकतुंड, इत्यादि । तीर में गति सीधी रखने के लिये पीछे पंखों का लगाना भी आवश्यक बताया गया है । जो बाण सारा लोहा का होता है उसे नाराच कहते हैं ।

वक्त ग्रंथ में लक्ष्यभेद, शराकर्णण आदि के संबंध में बहुत से नियम बताए गए हैं । रामायण, महाभारत, आदि में शब्दभेदी बाण मारने तक का श्लेष है । अंतिम हिंदू-सम्राट

मदाराराज शृण्वराज के संबंध में भी प्रसिद्ध है कि वे शब्द-भेदी बाण मारते थे ।

धनुष—संज्ञा पुं० दे० "धनुस्" ।

धनुष्कोटि तीर्थ—संज्ञा पुं० [सं०] रामेश्वर से दक्षिण पूर्व एक स्थान जहाँ समुद्र में स्नान करने का माहात्म्य है ।

धनुष्मान्—संज्ञा पुं० [सं०] बत्तर दिशा का एक पर्वत । (यूदास-दिता)

धनुस्—संज्ञा पुं० [सं०] (१) फलदार तीर फेंकने का वह अस्त्र जो वाँस या लोहे के खचीले बंदे को मुका कर और उनके दोनों छोरों के बीच डोरी या ताँत बाँध कर बनाया जाता है । कमान ।

धी०—धनुषं । धनुर्विद्या । धनुर्वेद ।

विशेष—दे० "धनुर्वेद" ।

(२) ज्योतिष में एक राशि । धनुराशि । (३) एक क्षत्र । (४) दृष्टयोग का एक आसन । (५) पियाल वृक्ष । (६) चार हाथ की एक माप । (७) गोल क्षेत्र के आघे से कम अंश का क्षेत्र ।

धनुहार्—संज्ञा स्त्री० [हिं० धनु + हार्] धनुस् की लड़ाई । श०—परम कुबाल जे नृपाल लोक पाबनि ये धनुहार् हैं ही मन अनुमान कीं—तुलसी ।

धनुदिया—संज्ञा स्त्री० दे० "धनुदी" ।

धनुदी—संज्ञा स्त्री० [हिं० धनु + दी (अल०)] लड़कों के खेलने की कमान । श०—बहु धनुदी तोरें लरिकर्हि—तुलसी ।

धनेयक—संज्ञा पुं० [सं०] धनिया ।

धनेश—संज्ञा पुं० [सं०] (१) धन का स्वामी । (२) कुबेर । (३) लन से दूसरा स्थान । (४) विष्णु ।

धनेश्वर—संज्ञा पुं० [सं०] (१) धन का स्वामी । (२) कुबेर । (३) विष्णु ।

धनेस—संज्ञा पुं० [सं० धनस्] दगले के आकार की एक चिट्टिया जिसकी गरदन और चौंच लंबी होती है । यह धैर, धरगद आदि के पेटों पर रहती है । लोग खाने के लिये इसका शिकार करते हैं । इसे पकाकर एक प्रकार का तेल भी निकालते हैं जो घात के दर्द में लगाया जाता है ।

धनैयो—वि० [सं० धनेयि] धन का हृत्पुष्प । धन चाहनेवाला ।

धन्ना—संज्ञा पुं० दे० "धरना" ।

धन्नासिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक रागिनी जिसका ग्रह पद्म है और जो ऋ चर्चित है । यह धीर और शंभर रस के लिये गाई जाती है ।

धन्नासेठ—संज्ञा पुं० [हिं० धन + सेठ] बहुत धनी शायमी । प्रसिद्ध धन्नाश्व । भारी माखदार ।

मुदा०—धन्नासेठ का नाती—बहुत धनलभ कुल का । (व्यंथ)

धक्षी-संज्ञा स्त्री० [सं० (गो) धन] (१) गार्धो वैश्वे की एक जाति जो पंजाब में तमकवाले पहाड़ों के भास पास पाई जाती है। (२) घोड़े की एक जाति। व०—धक्षी, भीमा-धक्षी, काटिया, भाववाड़, मधिदेशी।—भुराज। (३) वेगार का सादमी।

धन्य-वि० [सं०] (१) पुण्यवान्। सुकृती। श्लाघ्य। प्रशंसा के योग्य। यहाँ के योग्य। कृतार्थ।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग साधुवाद देने के लिये प्रायः होता है। जैसे, किसी को कोई अच्छा काम करते देख या सुनकर लोग बोल उठते हैं—धन्य। धन्य !!

(२) धन देनेवाला। जिससे धन प्राप्त हो।

संज्ञा पुं० (१) अश्वकर्षणं वृष्ट। (२) धनिया। (३) विष्णु।

(४) नास्तिक।

धन्यवाद-संज्ञा पुं० [सं०] (१) साधुवाद। शायारी। प्रशंसा। बाह बाह। (२) किसी उपकार या अनुग्रह के बदले में प्रशंसा। कृतज्ञवासूचक शब्द। शुक्रिया।

क्रि० प्र०—करना।—देना।—लेना।

धन्या-वि० स्त्री० [सं०] प्रशंसायोग्य। पुण्यशरीर।

संज्ञा स्त्री० (१) धरमाता। (२) धनदेवी। (३) मनु की एक कन्या जिसका विवाह ध्रुव के साथ हुआ था। (४) धाम-लकी। छोटा चावल। (५) धनिया।

धन्याक-संज्ञा पुं० [सं०] धनिया।

धन्यंग-संज्ञा पुं० [सं०] धामिन का पेड़।

धन्यंतर-संज्ञा पुं० [सं०] चार हाथ की एक माप।

धन्यंतरि-संज्ञा पुं० [सं०] देवताओं के वैद्य जो पुराणानुसार समुद्रमंथन के समय और सब वस्तुओं के साथ समुद्र से निकले थे।

विशेष—हरिवंश में लिखा है कि जब वे समुद्र से निकले तब वेन से त्रिशूढ़ जगन्नाथ उठीं। ये सामने विष्णु को देखकर टिठर रहे, इसपर विष्णु भगवान ने इन्हें 'धन्य' कह कर पुकारा। भगवान् के पुकारने पर इन्होंने वनसे प्राणियों की कि यज्ञ में मेरा भाग और स्थान नियत कर दिया जाय। विशु ने कहा भाग और स्थान तो बँट गये हैं पर तुम दूसरे जन्म में विशेष सिद्धि लाभ करोगे, अग्निमादि सिद्धियाँ तुम्हें गर्भ से ही प्राप्त रहेंगी और तुम सर्वहीर देवकलाभ करोगे। तुम आयुर्वेद को आठ भागों में विभक्त करोगे।

द्वार युग में कारिराज 'धन्य' ने पुत्र के लिये उपस्था और धन्य देव की आराधना की। धन्य देव ने धन्य के पर स्वर्ण धवनार लिया और भद्राज ऋषि से आयुर्वेद शास्त्र का अध्ययन करके प्रजा को रोगमुक्त किया।

भावभक्त्या में लिखा है कि इंद्र ने आयुर्वेद शास्त्र सिखा कर धन्यतरि को लोक के कल्याण के लिये पृथ्वी पर भेजा।

धन्यतरि कारी में कल्प हृष्ट और मल्ला के घर से कारी के राजा हुए। महाराज विक्रमादित्य की समा के जो नवरत्न गिनाए गए हैं उनमें भी एक धन्यतरि का नाम है। पर जब नवरत्नवाली बात ही कल्पित है तब इस धन्यतरि का पता लगना कठिन ही है।

धन्यतरिग्रस्ता-संज्ञा स्त्री० [सं०] कुटकी।

धन्य-संज्ञा पुं० [सं०] धनुस्।

धन्यज-वि० [सं०] महर्ष्य में कल्प।

धन्यदुर्गा-संज्ञा पुं० [सं०] ऐसे दुर्ग या गढ़ जिनके चारों ओर पाँच पाँच योजना तक निर्जल और महर्षि हो।

धन्यन-संज्ञा पुं० [सं०] धामिन का पेड़।

धन्ययवास-संज्ञा पुं० [सं०] दुरालभा। जवासा।

धन्या-संज्ञा पुं० [सं० धन्यन्] (१) धनुस्। कमान। (२) जल-हीन देश। महर्षि। रेगिस्तान। (३) स्थल। सूखी जमीन। (४) आकार। अंतरिण।

धन्याकार-वि० [सं०] धनुस् के आकार का। कमान की रूत का। गोलार्ध के साथ झुका हुआ। टेढ़ा।

धन्यायी-वि० [सं० धन्यायिन्] धनुर्धर।

संज्ञा पुं० रूद्र।

धन्यिन-संज्ञा पुं० [सं०] शूकर। मूषर।

धन्यी-वि० [सं० धन्यिन्] (१) धनुर्धर। कमनैत। (२) निष्णु। चतुर।

संज्ञा पुं० (१) दुरालभा। जवासा। (२) अर्जुन वृक्ष। (३) बकुल। मीठसिरी। (४) अर्जुन पाँचव। (५) विष्णु।

(६) शिव। (७) सामय मनु के एक पुत्र।

धप-संज्ञा स्त्री० [धनु०] किसी भारी और मुलायम चीज के गिरने का शब्द।

संज्ञा पुं० भौल। धपड़। तमाचा।

क्रि० प्र०—देना।—मारना।

धपना-क्रि० प्र० [सं० धवन। वा० हिं० धप] (१) जोर से चलना। दौड़ना। (२) झपटना। लपकना। व०—शीला नाम ग्वालिनो सेहि गहे कृप्य धपि धाइ दे।—सूर।

धपानार्त्ता-क्रि० स० [हिं० धपना] (१) दौड़ना। इधर वधर फिराना। धुमाना। सैर कराना। टहलाना।

धप्या-संज्ञा पुं० [धनु० धप] (१) धपड़। भौल। तमाचा। (२) हाति का आघात। घाटा। टोटा। नुकसान।

क्रि० प्र०—बैठना।—लगाना।

मुहा०—धप्या मारना = नुकसान कृता देना। थोला देकर कुछ मास ले लेना। उठा लेना।

धप्याड-संज्ञा स्त्री० [हिं० धप] दीड़।

धय धव-संज्ञा स्त्री० [धनु०] (१) किसी भारी और मुलायम

चीज के गिरने का शब्द । (२) भटे, मोटे आदमी के पैर रखने का शब्द ।

धबला-संज्ञा पुं० [दे०] (१) कटि के नीचे का श्रेण ढाँकने के लिये कोई लीला ढाला पहनावा । लीला पायजामा । (२) खिणों का लहंगा । घायरा ।

धबला-संज्ञा पुं० [दे०] (१) किसी सतह के ऊपर थोड़ी दूर तक फैला हुआ ऐसा स्थान जो सतह के रंग के मेल में न हो और भद्र लगता हो । दाग । पड़ा हुआ चिह्न जो देखने में बुरा लगे । निशान । जैसे, कपड़े पर स्याही का धबला ।

क्रि० प्र०—पड़ना ।—लगना ।

(२) कलंक । दोष । पेष ।

क्रि० प्र०—लगना ।—लगाना ।

मुहा०—नाम में धबला लगाना = कीर्ति के मिटानेवाला काम करना । (किसी पर) धबला रखना = कलंक लगाना । दोषा-रोपण करना ।

धम-संज्ञा स्त्री० [अनु०] भारी चीज के गिरने का शब्द । धमाका । जैसे, धम से गिरना, धम से कुएँ में छूटना ।

विशेष—खट, पट, आदि और अनु० शब्दों के स्तम्भन इसका प्रयोग भी अधिकतर 'से' विभक्ति के साथ ही क्रि० वि० वच होता है ।

धमक-संज्ञा स्त्री० [अनु० धम] (१) भारी वस्तु के गिरने का शब्द । भार डालते हुए जमीन पर पड़ने की ध्वनि । आघात का शब्द । (२) पैर रखने की आवाज़ । पैर की आहट । (३) वह कंप जो किसी भारी वस्तु की गति के कारण ऊपर उभर मालूम हो । आघात आदि से उत्पन्न कंप या विचलता । जैसे, (क) पत्थर इतने जोर से गिरा कि धमक से मेज़ हिल गई । (ख) रेल के पास आने पर जमीन में धमक सी मालूम होती है । (घ) आघात । चोट । (ङ) वह आघात जो किसी भारी शब्द से हृदय पर मालूम हो । दहल । (६) गड्ढा (पाइकीवाड़े) ।

संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० धमिका] (१) धौंकनेवाला । (२) सोहार । कर्मकार ।

धमकना-क्रि० थ० [हिं० धमक] (१) 'धम' शब्द के साथ गिरना । धमाका करना ।

मुहा०—आ धमकना = आ पहुँचना । तुरंत आना । देखते देखते उपस्थित होना । आ धमकना = आ पहुँचना ।

(२) आघात सा होता हुआ जान पड़ना । रह रह कर दर्द करना । व्यथित होना (सिर के लिये) । जैसे, सिर धमकना ।

धमकाना-क्रि० स० [हिं० धमक] (१) धराना । भय दिखाना । दृढ़ देने या धमिका करने का विचार प्रकट करना । (२) धराना । धुक्कना ।

संज्ञा० क्रि०—देना ।

धमकी-संज्ञा स्त्री० [हिं०] (१) दृढ़ देने या धमिका करने का विचार जो भय दिखाने के लिये प्रकट किया जाय । धर दिखाने की क्रिया । धम दिखाने की क्रिया । (२) धुक्की । धटि धपट ।

क्रि० प्र०—देना ।

मुहा०—धमकी में आना = डराने से डरकर कोई काम कर बैठना ।

धमका-संज्ञा पुं० दे० "धमाका" ।

धमगज-संज्ञा पुं० [अनु० धम + सं० गज] (१) उत्पत्त । ऊधम । उपद्रव । (२) लड़ाई । युद्ध ।

धम धम-संज्ञा पुं० [सं०] कात्तिकेप के गण जो पार्वती के क्रोध से उत्पन्न हुए थे । (हरिवंश)

संज्ञा स्त्री० दे० "धम" ।

धमधमना-क्रि० थ० [अनु० धम] 'धम धम' शब्द करना । हृद फाँद या चल फिर कर कंप और शब्द उत्पन्न करना । जैसे, थोड़े धमधमाते हुए आ पहुँचे ।

धमधूसर-वि० [अनु० धम + सं० धूसर = मटभेरा, या गदरा] महा मोटा आदमी । स्थूल और बे-डौल मनुष्य ।

धमन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) हवा से झूंकने का काम । (२) पोली नली जिसमें हवा भरकर फूँके । जूँकनी । धौंकनी । (३) नरकट । गरसल । नल नामक वृक्ष ।

धमना-क्रि० स० [सं० धमन] धौंकना । झूंकना । नल आदि में हवा भरकर वेग से छोड़ना ।

धमनि-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) धमनी । नाड़ी । (२) प्रह्लाद के भाई हाद की स्त्री । वातापि और इक्षवल् की माँ । (३) वाक् । शब्द ।

धमनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) शरीर के भीतर की वह छोटी या बड़ी नली जिसमें रक्त आदि का संचार होता रहता है ।

विशेष—सुष्ठुम के अनुसार धमनियाँ २४ हैं और नाभि से निकल कर १० ऊपर की ओर गई हैं १० नीचे की ओर तथा चार भगल की ओर । ऊपर जानेवाली धमनियाँ द्वारा शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध, प्रकाश, शब्दवास, जैमाह, धौंक, हँसना, रोना, बोलना इत्यादि व्यापार होते हैं । ये ऊर्ध्वागमिनी धमनियाँ हृदय में पहुँचकर तीन तीन शाखाओं में विभक्त हो कर ३० हो जाती हैं । इनमें से २ वातवहा, २ पित्तवहा, २ कफवहा, २ रक्तवहा और २ रसवहा, दस तो ये हैं । इनके अतिरिक्त ८ शब्द, रूप, रस और गंध को वहन करनेवाली हैं । फिर २ से मनुष्य बोलता है, २ से धोप करता है, २ से सोता है, २ से जागता है, २ धमनियाँ अशु-धादिनी हैं और २ चियों के स्तनों में दूध या पुरुणों के शरीर में शुक्र प्रयत्नित करनेवाली हैं । यह तो हुई ऊर्ध्वागमिनी धमनियाँ की बात । अब इसी प्रकार अधोगमिनी

धमनियाँ वात, सूत्र, पुरीष, वीर्य, ब्राह्मण इनकी नीचे की ओर ले जाती हैं। ये धमनियाँ पहले पिताशय में जाकर साष्ट पीए हुए रस को वण्यता से शुद्ध करके उसे ऊर्ध्वगामिनी और तिर्ध्वगामिनी धमनियाँ तथा सारे शरीर में पहुँचाती हैं। ये १० अणुगामिनी धमनियाँ भी आमाशय और पकाशय के बीच में पहुँच कर तीन तीन भागों में विभक्त होकर ३० हो जाती हैं। इनमें से दो दो धमनियाँ वायु, पित्त, कफ, रक्त और रस को वहन करने के लिये हैं। श्रांतों से जगी हुई १ अन्नवाहिनी हैं, २ जलवाहिनी हैं और २ सूत्रवाहिनी। सूत्रवृत्ति से जगी हुई २ धमनियाँ शुष्क वृक्ष करनेवाली और २ प्रवर्धित करने या निष्काशनेवाली हैं। मोटी श्रांत से जगी हुई २ मज्जा को निष्काशती हैं। पाकी ८ धमनियाँ तिरछी जानेवाली धमनियाँ को पसीना देती हैं। ४ तिर्ध्वगामिनी धमनियाँ हैं। इनकी सहस्रों जालों गलाशय होकर शरीर के भीतर जाब की तरह फैली हुई हैं।

(२) वह नली जिसमें हृदय से शुद्ध खाद्य रक्त हृदय के स्पन्द द्वारा च्य च्य पर जा कर शरीर में फैलता रहता है। नाड़ी। (आधुनिक)

विशेष—'धमनी' शब्द 'धम' धातु से बना है जिसका अर्थ है धौकसा। हृदय का जो स्पन्द होता है वह भाभी के फूलने पचकने के समान होता है अतः शुद्ध रक्तवाहिनी नाड़ियों को धमनी कहना बहुत उपयुक्त है। दे० "नाड़ी"।

(१) हजरी।

धमसा—संज्ञा पुं० [दे०] धौसा। नगाड़ा।

धमाका—संज्ञा पुं० [अनु०] (१) भारी वस्तु के गिरने का शब्द। ऊपर से वेग के साथ नीचे पड़ने या झूटने का शब्द। (२) बंदूक का शब्द। (३) आघात। धका। (४) पयरकला बंदूक। (५) हाथी पर लादने की सेप।

धमाचौकड़ी—संज्ञा स्त्री० [अनु० धम + हिं० चौकड़ी] (१) बड़बड़। इद-काँद। कई आदमियों का एक साथ दौड़ना, झुटना, हाथ पैर चलाना या हड़ना करना। उपद्रव। ऊधम। जैसे, खड़को, यहाँ धमाचौकड़ी मत मचाओ और जगह लेवो। (२) धौसाधौगी। मार पीट।

क्रि० प्र०—मचना।—मचना।—होना।

धमाधम—क्रि० वि० [अनु० धम] (१) जगातार कई बार 'धम' 'धम' शब्द के साथ। जगातार कई धमाकों के साथ। जगातार गिरने का शब्द करते हुए। जैसे, खड़के धमाधम नीचे गिरे। (२) जगातार कई प्रहार शब्दों के साथ। कई आघातों के शब्द के साथ। जगातार मारने या पीटने की आवाज के साथ। जैसे (क) वह हसे धमाधम मार रहा है। (ख) इसपर धमाधम धन मारो तब यह टूटगा।

संज्ञा स्त्री० (१) कई बार गिरने से जगातार धम धम शब्द।

जगातार गिरने पड़ने की आवाज। (२) आघात प्रतिघात। प्रहार। मार पीट। उपद्रव। बरपात।

क्रि० प्र०—मचना।—मचना।—होना।

धमार—संज्ञा स्त्री० [अनु०] बड़बड़ हूँ। उपद्रव। बरपात। धमाचौकड़ी।

क्रि० प्र०—मचना।—मचना।—होना।

(२) नटों की बड़बड़ हूँ। कलावाजी।

क्रि० प्र०—करना—खेलना।

(३) विशेष प्रकार के साधुओं की दहकती भाग पर झूटने की क्रिया।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

संज्ञा पुं० (१) होली में गाने का एक ताब। (२) होली में गाने का एक प्रकार का गीत।

धमारिया—संज्ञा पुं० [हिं० धमार] (१) बड़बड़ हूँ करनेवाला नट। कलावाज। (२) होली के धमार गानेवाला। (३) भाग में झूटनेवाला साधु।

वि० उपद्रव करनेवाला। शान्त न रहनेवाला। बरपाती।

धमारी—वि० [हिं० धमार] उपद्रवी। बरपाती।

धमाल—संज्ञा पुं० स्त्री० दे० "धमार"।

धमाला—संज्ञा पुं० [सं० वलास] जयासा। हिंदुवा। हुकाह।

धमिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) लोहारिन। (२) लोहार की स्त्री।

धमुका—संज्ञा पुं० [अनु० धम] (१) धमाका। प्रहार। आघात।

(२) घूसा। मुक्का।

धमेख—संज्ञा स्त्री० [सं० धमचक] कारी से दो फोस पर वह स्तूप जो उस स्थान पर बनाया गया था जहाँ हुददेव ने अपना धमचक अर्थात् धर्मोपदेश आरंभ किया था। दे० "सारनाथ"।

धम्मन—संज्ञा पुं० [दे०] एक प्रकार की घास। दे० "बरवा"।

धम्माल—संज्ञा स्त्री० पुं० दे० "धमार"।

धम्मिल्ल—संज्ञा पुं० [सं०] खपेट कर बांधे हुए बाल। बँधी चोटी। जुड़ा।

धमहारा—संज्ञा पुं० [दे०] धातु गलाने की भट्टी।

धरतरा—क्रि० वि० [हिं० धरता] धरनेवाला। पकड़नेवाला।

धर—वि० [सं०] (१) धारण करनेवाला। ऊपर लेनेवाला। सँभालनेवाला। जैसे, गिरिधर, भूपर। (२) ग्रहण करनेवाला। ग्रामनेवाला। जैसे, चक्रधर, धनुर्धर, सुरजिधर।

विशेष—इन अर्थों में इस शब्द का प्रयोग समस्त पदों में ही होता है।

संज्ञा पुं० (१) पर्वत। पहाड़। (२) कलास का ढोका। (३) कूर्मराज। कच्छप जो पृथ्वी को ऊपर लिए है। (४) एक वस्तु का नाम। (५) विष्णु। (६) श्रीकृष्ण। (७) विट। व्यभिचारी पुरुष।

संज्ञा पुं० दे० "धड़" ।

संज्ञा स्त्री० [हिं० धरना] धरने या पकड़ने की क्रिया ।

धौ०—धर पकड़=भांगते हुए आदिमियों को पकड़ने का व्यापार । गिरफ्तारी । उ०—जैसे, जब धर पकड़ होने लगी तब हुदरे इधर उधर भाग गए ।

धरका^०—संज्ञा स्त्री० दे० "धड़क" ।

धरकना—कि० अ० दे० "धड़कना" ।

धरका—संज्ञा पुं० [सं०] (१) धारण । रखने, धामने, प्रहय करने वा संभालने की क्रिया । (२) एक तौल जो कहीं २४ रस्ती, कहीं १० पल, कहीं १६ माशे, कहीं १/२ शतमान, कहीं १६ निप्याच, कहीं ३ कर्पे, कहीं १/२ पल की मानी गई है । (३) बाँध । पुल । (४) संसार । जगत् । (५) सूर्य । (६) खान । (७) धान । (८) एक नाम का नाम ।

धरणि—संज्ञा स्त्री० [सं०] पृथ्वी । (२) शाश्वतलि वृक्ष ।

धरणिधर—संज्ञा पुं० [सं०] (१) पृथ्वी को धारण करनेवाला । (२) कच्छप । (३) पर्वत । (४) विष्णु । (५) शिव । (६) शेषनाग ।

धरणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) पृथ्वी । (२) शाश्वतलि वृक्ष । (३) नाड़ी ।

धरणीकंद—संज्ञा पुं० [सं०] एक कंद का नाम । धनकंद ।

धरणीकीलक—संज्ञा पुं० [सं०] (पृथ्वी को कील की तरह दबाए रहनेवाला) पर्वत । पहाड़ ।

विशेष—प्राणियों के अनुसार पृथ्वी को पहाड़ दबाकर सँभाले हुए है ।

धरणीधर—संज्ञा पुं० दे० "धारणिक" ।

धरणीपूर—संज्ञा पुं० [सं०] समुद्र ।

धरणीसुत—संज्ञा पुं० [सं०] (१) मंगल । (२) नरकासुर ।

धरणीसुता—संज्ञा स्त्री० [सं०] सीता ।

धरता—संज्ञा पुं० [हिं० धरना वा वैदिक धर्तु] (१) किसी का रूपवा धरनेवाला । देनदार । प्रायगी । कर्जदार । (२) किसी रज़म को देने हुए वस्त्रों से कुछ बँधा हक वा धर्मार्थ द्रव्य निकाल लेता । कटौती । (३) धारण करनेवाला । कोई कार्य्य आदि अपने ऊपर लेनेवाला ।

धौ०—कर्ता धरता = सब कुछ करने धरनेवाला ।

धरती—संज्ञा स्त्री० [सं० धरिती] (१) पृथ्वी । ज़मीन ।

मुद्दा०—धरती को मूल=(१) लुमी । छत्रक । कुकुरसुता ।

(२) नया उमर हुआ धनी । नया निकला हुआ अमीर ।

(३) मेढक । धरती बाहना=(१) जमीन जोतना । (२)

परिश्रम करना । मशकत करना ।

(२) संसार । दुनिया । जगत् ।

धरधर^०—संज्ञा पुं० दे० "धारण" ।

संज्ञा स्त्री० दे० "धड़ धड़" ।

धरधरना^०—संज्ञा पुं० [अ०] धड़कन । धकधकाहट । उ०—
कर धर देखो धरधरा झर्रीं न उरते जाव ।—विहारी ।

धरधराना^०—कि० अ० । कि० सं० दे० "धड़धड़ाना" ।

धरन—संज्ञा स्त्री० [हिं० धरना] (१) धरने की क्रिया, भाव, रंग ।

(२) लकड़ी लोहे आदि का वह लंबा लट्टा जो इसी प्रकार के और लट्टों के साथ दो लकड़ी समानांतर दीवारों या ऊँचे पर ठहराए हुए दो समानांतर लट्टों पर इसलिये बाँधा रखा जाय जिसमें उसके ऊपर पाटन (ब्रत आदि) या कोई धोम ठहर सके । कड़ी । धरनी । (३) वह नस जो गर्भाशय को दृढ़ता से जकड़े रहती है जिससे वह इधर उधर नहीं टूटता । गर्भाशय का आधार ।

मुद्दा०—धरन टलना, बिगना, खसकना या सरकना = गर्भाशय की नस का अपनी जगह से हट जाना जिससे गर्भाशय इधर उधर हो जाता है ।

(४) गर्भाशय । (५) टेक । हठ । अड़ ।

संज्ञा पुं० दे० "धरना" । उ०—सिंघुतीर शबुवीर गप पुनि
कियो धरन हतल को ।—रघुनाथ ।

संज्ञा स्त्री० [सं० रधि] धरती । जमीन ।

धरना—कि० सं० [सं० धरण] (१) किसी वस्तु को इस प्रकार दृढ़ता से स्पर्श करना या हाथ में लेना कि वह लकड़ी हट न सके। थपवा इधर उधर जा या हिल न सके। पकड़ना । धामना । प्रहय करना । जैसे, चोर धरना । (६) इसका हाथ जोर से धरे रहे, नहीं तो भाग जायगा । (ख) यह चिमटी लकड़ी तरह धरती नहीं ।

धौ०—करना धरना । धरना पकड़ना ।

संयोग क्रि०—लेना ।

मुद्दा०—धर दधाना वा द्योचना =(२) पकड़ कर धर में कर लेना । बलपूर्वक अधिकार में कर लेना । किसी पर इस प्रकार आ पड़ना कि वह विरोध या धचाव न कर सके । आक्रांत करना । जैसे, कुत्ते ने बिछी को धर द्योचा । (२) तर्क वा विवाद में परास्त करना । धर पकड़ कर = नुचरदस्ती । बलात् । जैसे, धर पकड़ कर कहीं काम होता है ?

(२) स्थापित करना । स्थित करना । रखना । ठहराना । जैसे, (क) पुस्तक धाले धर धर दो । (ख) धोम सिर पर रख दो ।

संयोग क्रि०—देना ।—लेना ।

(३) पास रखना । रण में रखना । जैसे, (क) वह हमारी पुस्तक धरे हुए है, देता नहीं । (ख) यह चीम उनके यहाँ धर दो, कहीं जायगी नहीं ।

संयोग क्रि०—देना ।—लेना ।

धौ०—धर रखना ।

मुद्दा०—धर दका = समय पर काम आने के लिये बचा कर

रली हुई वस्तु । संचित वस्तु । जैसे, कुछ धरा दका होगा, छाये। धरा रह जाना = काम न जाना । व्यर्थ हो जाना ।
(४) धार्य करना । देह पर रखना । पहनना । जैसे, सिर पर टोपी धरना ।

संयो० क्रि०—देना ।—लेना ।

(१) धारोपित करना । अथलंघन करना । शंकीकार करना । जैसे, रूप धरना, वेश धरना, धैर्य धरना । (१) व्यवहार के लिये हाथ में लेना । प्रहय करना । जैसे, हथियार धरना । (२) सहायता या सहारे के लिये किसी को घेरना । पहा पकड़ना । आश्रय प्रहय करना । जैसे, वन्दों को धरो, घेदी कुछ कर सकते हैं । (३) किसी फैलनेवाली वस्तु का किसी दूसरी वस्तु में जगना या छू जाना । जैसे, धूल गीला है इसीसे आग धरती नहीं है । (४) किसी वी को रखना । बैठा लेना । रखेकी की तरह रखना । व०—व्याहो जाल, धो दस कुबरी अंतदि कान्ह हमारो ।—सूर । (१०) गिरवी रखना । गहन रखना । रहन रखना । बंधक रखना । जैसे, (क) अपनी चीज धर कर तब रुपया लाए हैं । (ख) कोई चीज धर कर भी तो रुपया नहीं देता ।

संज्ञा पुं० कोई बात या प्रार्थना पूरी कराने के लिये किसी के पास या द्वार पर झड़कर बैठना और जब तक वह बात या प्रार्थना पूरी न कर दी जाय तब तक अन्न न प्रहय करना । जैसे, हमारा रुपया न दोगे तो हम तुम्हारे दरवाने पर धरना देंगे । दे० “धरन” ।

क्रि० प्र०—देना ।—बैठना ।

धरनि—संज्ञा स्त्री० दे० “धरणी” ।

धरनी—संज्ञा स्त्री० दे० “धरणी” ।

धरनेत—संज्ञा पुं० [हि० धरना + त (प्रत्य०)] धरना देनेवाला । किसी बात के लिये झड़कर बैठनेवाला ।

धरम—संज्ञा पुं० दे० “धर्म” ।

धरवाना—क्रि० सं० [हि० धरना का प्रे०] (१) धरने का काम कराना । पकड़ाना । यमाना । (२) रखवाना ।

धरपना—क्रि० सं० [सं० धरंण] दवाना । मर्दन करना । व०—(क) रिपुबल धरपि हरपि कपि धाखितनय बलपुत्र । पुलक शरीर नयन जल सरे राम पदकंज ।—मुजसी । (ख) दगो दिगकुंजर कमठ कोल कलमले सोले धराधर धारि धराधर धरया ।—मुजसी ।

धरसना—क्रि० सं० [सं० धरंण] दय जाना । धर जाना । सदम जाना । व०—विलसत अर बरदार लसत मणिय बडगन धरसत ।—गोपाल ।

क्रि० सं० दवाना । अग्रमानित करना ।

धरसनी—संज्ञा स्त्री० दे० “धरणी” ।

धरहरा—संज्ञा स्त्री० [हि० धरना + हर (प्रत्य०)] (१) धरपकड़ । लोगों को बस प्रकार पकड़ने का कार्य कि वे इधर उधर भाग न सकें । गिरफ्तारी ।

क्रि० प्र०—होना ।

(२) दे या अधिक लड़नेवालों को धर पकड़ कर खड़ाई बंद करने का कार्य । बीच बिचाव । व०—ललित बहिसिनु-निकर मनुहु ससि सन समर खरत धरहरि करत रुचिर जनु युग फनी ।—मुजसी । (३) सारे या पकड़े जाने से बचाने का काम । बचाव । रक्षा । व०—जब जमनाल पसार परैगो हरि विनु कौन करैगो धरहरि ।—सूर । (४) धैर्य । धीरज । व०—सन सुभयो, बीखी धनी, जली जहई बहारि । हरी हरी अरहर अजौ धर धरहर दिप नारि ।—विहारी ।

धरहरा—संज्ञा पुं० [हि० धर = ऊपर + धर] खंभे की तरह ऊपर बहुत दूर तक गया हुआ मकान का भाग जिसपर चढ़ने के लिये भीतर ही भीतर सीढ़ियाँ बनी हों । धीरहर । मीनार । जैसे, माधवराय का धरहरा ।

धरहरिया—संज्ञा पुं० [हि० धरहरि] बीच बिचाव करा देनेवाला । धर पकड़ करके बचानेवाला । बचाव करनेवाला । रक्षक । व०—जनहु दीन्ह ठग लाडू देल धाय तस मीच । रहा न कोइ धरहरिया करै जो दोइ मई बीच ।—जायसी ।

धरहरना—क्रि० प्र० [धनु०] धड़कड़ाना । धड़ धड़ शब्द करना । व०—रथ राजत बाका धरहरै धर परजा का धर है ।—गोपाल ।

धरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) पृथ्वी । जमीन । धरती । (२) संसार । दुनिया । व०—धरा को प्रमाय घरी मुजसी जो फल सो फल जो बरा सो सुताना ।—मुजसी । (३) गर्भाशय । (४) तौल की बराबरी । किसी वस्तु की तौल के बराबर का भात या मोल । घडलरा ।

क्रि० प्र०—बोधना ।—साधना ।

(५) धर सेर की एक तौल । (६) एक वर्ष वृत्त, जिसके प्रत्येक धराय में एक सय्य और शुभ होता है । व०—बाधा कहरौ । बाधा टरै । श्यामा कहरौ । कामा सरै । (७) मेद । (८) माड़ी ।

धराडरी—संज्ञा पुं० दे० “धरोहर” ।

धराऊ—वि० [हि० धरना + आऊ (प्रत्य०)] जो साधारण से अधिक श्रद्धा देने के कारण निल्य व्यवहार में न जाया जाय, यत्र के साथ रखा रहे और कभी कभी विशेष श्रवणों पर निकाला जाय । मावूली से श्रद्धा । बहुभूय । जैसे, धराऊ कपड़ा, धराऊ जोड़ा ।

धराकड—संज्ञा पुं० दे० “धड़ाक” ।

धराकद्व—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का कद्व । धाराकद्व ।

धराकद्व—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का कद्व । धाराकद्व ।

धराकद्व—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का कद्व । धाराकद्व ।

धराकद्व—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का कद्व । धाराकद्व ।

धराका—संज्ञा पुं० दे० “धराका” ।
 धरातल—संज्ञा पुं० [सं०] (१) पृथ्वी । धरती । (२) सतह ।
 क्षेत्र लंबाई चौड़ाई का गुणनफल जिसमें मोटाई गहराई
 या ऊँचाई का कुछ भी विचार न किया जाय । (३) रकबा ।
 लंबाई और चौड़ाई का गुणनफल ।
 धरात्मज—संज्ञा पुं० [सं०] (१) मंगल ग्रह । (२) नरकासुर ।
 धरात्मजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] सीता ।
 धराधर—संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो पृथ्वी को धारण करे ।
 (२) शेष नाग । (३) पर्वत । (४) विष्णु ।
 धराधरन—संज्ञा पुं० दे० “धराधर” ।
 धराधरा—संज्ञा पुं० [सं०] संगीत में एक ताल का नाम ।
 धराधार—संज्ञा पुं० [सं०] शेषनाग ।
 धी०—धराधारधारी = मशुदेव ।
 धराधिपति—संज्ञा पुं० [सं०] राजा ।
 धराधीश—संज्ञा पुं० [सं०] राजा ।
 धराना—क्रि० स० [हिं० ‘धरना’ का प्र०] (१) पकड़ाना । यमाना ।
 (२) स्थित कराना । रखाना ।
 संधे० क्रि०—देना ।—लेना ।
 (३) स्थिर करना । ठहराना । निश्चित कराना । सुकरं
 कराना । जैसे, दिन धराना, नाम धराना । ४०—(क)
 राम तिलक हित जगन धराई—मुजली । (ख) सुदिन,
 सुनखत, सुचरी सोचाई । वेगि वेद विधि जगन धराई ।
 —मुजली ।
 धरापुत्र—संज्ञा पुं० [सं०] मंगल ग्रह । ४०—धरापुत्र ज्यों स्वर्ग
 माला प्रकाशे ।—केशव ।
 धराचटा—संज्ञा स्त्री० [हिं० धरना] जमीन की वह माप या क्षेत्रफल
 जो कृत कर माग लिया गया हो ।
 धराचनार्त्ता—क्रि० स० दे० “धराना” ।
 धरासुरार्त्ता—संज्ञा पुं० [सं०] प्राण्य । ४०—भुजदंड पीन मनो-
 हरायत वर धरासुर-पद लख्ये ।—मुजली ।
 धराख—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का अन्न । विरवामित्र
 और वशिष्ठ की लड़ाई में विरवामित्र ने वशिष्ठ पर यह अन्न
 चढ़ाया था ।)
 धराहर—संज्ञा पुं० [हिं० धर = ऊपर + हर] संभे की शरह ऊपर
 बहुत दूर तक गया हुआ मकान का भाग जिसपर चढ़ने के
 लिये भीतर ही भीतर सीढ़ियाँ जगी हों । मीनार ।
 ४०—देखि धराहर कर बजियारा । छिपि गए चाँद सुरुम
 श्रौतारा ।—जायसी ।
 धरिना—संज्ञा पुं० [देग०] एक प्रकार का चावड़ ।
 धरित्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] धरती । पृथ्वी ।
 धरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० धर] चार सेर की एक तौल ।
 संज्ञा स्त्री० [हिं० धरना] रखनी । रखेली स्त्री ।

संज्ञा स्त्री० [हिं० धर] धार । विरिया । कान में पहनने का
 लिये का एक गहना ।
 धरेचा—संज्ञा पुं० दे० “धरेचा” ।
 धरेल—संज्ञा स्त्री० [हिं० धरना] रखेली स्त्री । ऐसी स्त्री जिसे कोई
 बिना ब्याह के घर में रख ले ।
 धरेला—संज्ञा पुं० [हिं० धरना] वह पति जिसे कोई स्त्री बिना ब्याह
 के ही प्रहय कर ले ।
 धरैया—संज्ञा पुं० [हिं० धरना] धरनेवाला । पकड़नेवाला ।
 धरोड़ा—संज्ञा स्त्री० दे० “धरोहर” ।
 धरोहर—संज्ञा स्त्री० [हिं० धरना] वह वस्तु या द्रव्य जो किसी के
 पास इस विरवास पर रखा हो कि उसका स्वामी जब मींगेगा
 तब वह दे दिया जायगा । धरती । अमानत । ४०—(क) प्राण
 धरान्द्र हैं धन भान्द्र ब्रेहु न तो अब लेहिं गे गाहक ।—
 यमानद । (ख) जो कोई धरी धरोहर नाटे । अरु पतिव्रत के
 पर जो काटे । साधुहिं दोष जगावे जेई । सोह विष्टा कर
 कीरा होई ।—विश्राम ।
 क्रि० प्र०—धरना ।—रखना ।
 धरौली—संज्ञा स्त्री० [देग०] एक छोटा पेड़ जो भारतवर्ष में प्रायः
 सब जगह विरोपतः हिमालय की तराई में ब्यास नदी के
 किनारे से लेकर सिक्किम तक पाया जाता है । यह अफ्रिका
 और ब्राज़ीलिया के गरम भागों में भी होता है । इसकी
 टहनियाँ लंबी और पतियाँ सॉक के दोनों ओर भ्रामने घामने
 लगती हैं । इसमें सफ़ेद लाल या पीले फूल लगते हैं । इस
 पेड़ के किसी भाग में यदि घाब किया जाय तो उसमें से
 पीला दूध निकलता है जिसे पानी में घोबने से खासा पीला
 रंग तैयार हो सकता है । इसके बीजों के ऊपर कुछ रोंडे ली
 होती है । बीजों का लेज दवा के काम में आता है । छाक
 और जड़ साँप काटने और विर्यू के डंक मारने की दवा
 समझी जाती है । लकड़ी इसकी भीतर से सफेद चिकनी
 और मजबूत निकलती है और इसपर खराद और नकारों
 का काम बहुत अच्छा होता है ।
 धरोचा—संज्ञा पुं० [हिं० धरना] बिना विधिपूर्वक विवाह किए स्त्री
 को रखने की चाल ।
 धर्त्ता—संज्ञा पुं० [सं० वैदिक, पशु] (१) धारण करनेवाला ।
 (२) कोई काम करनेवाला ।
 धी०—कर्त्ता धर्त्ता = जिते सब कुछ करने धरने का अधिकार हो ।
 धर्त्ता—संज्ञा स्त्री० दे० “धरती” ।
 धर्म—संज्ञा पुं० [सं०] (१) किसी वस्तु या व्यक्ति की वह वृत्ति
 जो उसमें सदा रहे, उससे कभी अलग न हो । प्रकृति ।
 स्वभाव, नियम नियम । जैसे, आँसू का धर्म देलना, शरीर
 का धर्म क्लेश होना, सँप का धर्म काटना, दुष्ट का धर्म
 दुख देना ।

विशेष—अवेद (१।२२।१८) में धर्म शब्द इस अर्थ में आया है। यह अर्थ सब से प्राचीन है।

(२) अर्द्धकार शास्त्र में यह गुण या वृत्ति जो अपने ही रूपमान में समान रूप से हो। वह एक ही बात जिसके कारण एक वस्तु की अपना दूसरी से दी जाती है। जैसे 'कमल के ऐसे कोमल और लाल चरण' इस उदाहरण में कोमलता और लालाई साधारण धर्म हैं। (३) किसी मान्य मंत्र, आचार्य या ऋषि द्वारा निर्दिष्ट वह कर्म वा कृत्य जो पारलौकिक सुख की प्राप्ति के अर्थ किया जाय। यह कृत्य वा विधान जिसका फल शुभ (स्वर्ग वा उत्तम लोक की प्राप्ति आदि) बढाया गया हो, जैसे अग्निहोत्र, यज्ञ, व्रत, होम, इत्यादि। शुभाष्ट।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

यो०—धर्म कर्म।

विशेष—मीमांसा के अनुसार वेदविहित जो यज्ञादि कर्म हैं वहाँका विधिपूर्वक अनुष्ठान धर्म है। जैमिनि ने धर्म का जो लक्षण दिया है उसका अभिप्राय यही है कि जिसके करने की प्रेरणा (वेद आदि में) हो यही धर्म है। संहिता से लेकर सूत्र-ग्रंथों तक धर्म की यही मुख्य भावना रही है। कर्मकांड का विधिपूर्वक अनुष्ठान करनेवाले ही धार्मिक कहे जाते थे। यद्यपि ऋषियों में "न हिंसासर्वभूतानि" आदि वाक्यों द्वारा साधारण धर्म का भी ब्यवहार है पर वैदिक काल में विशेष लक्ष्य कर्मकांड ही की ओर था।

(४) वह कर्म जिसका करना किसी संबंध, स्थिति या गुण-विशेष के विचार से उचित और आवश्यक हो। वह कर्म या व्यापार जो समाज के कार्य-विभाग के निर्वाह के लिये आवश्यक और उचित हो। यह काम जिसे मनुष्य को किसी विशेष कौटि या अवस्था में होने के कारण अपने निर्वाह तथा दूसरों की सुगमता के लिये करना चाहिए। किसी जाति, कुल, वर्ग, पद इत्यादि के लिये उचित उद्धारणा हुआ व्यवसाय वा व्यवहार। कर्त्तव्य। फलें। जैसे, मातृपूजा का धर्म, ऋषिय का धर्म, माता-पिता का धर्म, पुत्र का धर्म, इत्यादि।

विशेष—स्मृतियों में आचार ही को परम धर्म कहा है और वर्ण और आश्रम के अनुसार उसकी व्यवस्था की है, जैसे ब्राह्मण के लिये पढ़ना पढ़ाना, दान लेना, दान देना, यज्ञ करना, यज्ञ करवाना, ऋषिय का धर्म प्रजा की रक्षा करना, दान देना; वैश्य के लिये व्यापार करना और शूद्र के लिये तीनों वर्णों की सेवा करना। जहाँ देश-काल की विपरीतता से अपने अपने वर्णों के धर्म द्वारा निर्वाह न हो सके वहाँ शास्त्रकारों ने व्याप-धर्म की व्यवस्था की है जिसके अनुसार किसी वर्णों का मनुष्य अपने से निम्न वर्णों की वृत्ति स्वीकार कर सकता है,

जैसे ब्राह्मण—ऋषिय वा वैश्य की, ऋषिय—वैश्य की, वैश्य—शूद्र की, पर अपने से उच्च वर्णों की वृत्ति प्रहृत्य करने का व्यापकाल में भी निषेध है। इसी प्रकार ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ, और संन्यासी इनके धर्मों का भी अलग अलग निरूपण किया गया है। जैसे ब्रह्मचारी के लिये स्वाध्याय, निष्ठा मोग कर भोजन, जंगल से लकड़ी चुन कर खाना, गुरु की सेवा करना इत्यादि। गृहस्थ के लिये पंच महायज्ञ, यज्ञ, ऋत्विषियों को भोजन और मित्र संन्यासियों आदि को निष्ठा देना इत्यादि। वानप्रस्थ के लिये सामग्री सहित गृह की अग्नि को लेकर वन में वास करना, जटा, नल, रमयु आदि रखना। भूमि पर सोना, शीत, ताप सहना, अग्निहोत्र, दसपौर्णमास यज्ञिकर्म आदि करना इत्यादि। संन्यासी के लिये सब वस्तुओं को त्याग अग्नि और गृह से रहित होकर निष्ठा द्वारा निर्वाह करना, रमयु, नल आदि को कटाप और दंड कर्मंडलु लिए रहना। यह तीनों वर्णों और आश्रम के अलग अलग धर्म हैं। इन तीनों के संयुक्त धर्मों के वर्ण-धर्म-धर्म कहते हैं। जैसे ब्राह्मण ब्रह्मचारी का पञ्चाश-दंड धारण करना। जो धर्म किसी गुण या विशेषता के कारण हो उसे गुण-धर्म कहते हैं—जैसे, जिसका शास्त्रोक्त रीति से अभि-प्रेरक हुआ हो उस राजा का प्रशासक करना। निमित्त-धर्म वह है जो किसी निमित्त से किया जाय। जैसे शास्त्रोक्त कर्म न करने वा शास्त्रविरुद्ध करने पर प्रायश्चित्त करना। इसी प्रकार के विशेष धर्म कुल-धर्म, जाति-धर्म आदि हैं।

(५) यह वृत्ति वा आचार्य जो लोक वा समाज की स्थिति के लिये आवश्यक हो। यह आचार जिससे समाज की रक्षा और सुख-शांति की वृद्धि हो तथा परलोक में भी उत्तम गति मिले। कल्याणकारी कर्म। सुकृत। सदाचार। श्रेय। पुण्य। सत्कर्म।

विशेष—स्मृतिकारों ने वर्णों, आश्रम, गुण और निमित्त धर्मों के अतिरिक्त साधारण धर्म भी कहा है जिसका मानना ब्राह्मण से लेकर चांडाल तक के लिये समान रूप से आव-श्यक है। मनु ने वेद, स्मृति, साधुओं के आचार और अपनी आत्मा की वृद्धि को धर्म का साधारण लक्षण बताकर साधारण धर्म में दस बातें कही हैं—एति (धैर्य), चमा, दम, अस्तेय (चोरी न करना), शौच, इन्द्रियनिग्रह, धी, विद्या, सत्य और शक्रीय। मनुष्य मात्र के लिये जो सामान्य धर्म निरूपित किया गया है वही समाज को धारण करने-वाला है; उसके बिना समाज की रक्षा नहीं हो सकती। मनु ने कहा है कि रक्षा किया हुआ धर्म रक्षा करता है। अतः प्रत्येक सम्य देव के जन-समुदाय के बीच अग्ना, भक्ति, दया, प्रेम, आदि चित्त की उदात्त मनावृत्तियों से संबंध रख-नेवाले परोपकार धर्म की स्थापना हुई है, यहाँ तक कि

परलोक आदि पर विश्वास न रखनेवाले मोक्ष के आधि-
भौतिक तत्त्वज्ञानियों को भी समाज की रक्षा के निमित्त इस
सामान्य धर्म को स्वीकार करना पड़ा है। उन्होंने इस
धर्म का लक्षण यह बतलाया है कि जिस कर्म से अधिक
मनुष्यों को अधिक सुख मिले वह धर्म है। बौद्ध शास्त्रों में
इसी धर्म को शील कहा गया है। जैन शास्त्रों ने अहिंसा को
परम धर्म माना है।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

मुद्गा—धर्म कमाना = धर्म करके उसका फल संचित करना।
धर्म खाना = धर्म की शपथ खाना। धर्म की लुहाई देना।
धर्म बिगाड़ना = (१) धर्म के विरुद्ध आचरण करना। धर्म
भ्रष्ट करना। (२) धर्म का स्वीकार नष्ट करना। धर्म रखना =
धर्म के विरुद्ध आचरण करने से बचना या बचना। धर्म-
खगली कहना = धर्म का ध्यान रखकर कहना। ठीक ठीक
कहना। सत्य कहना। उचित बात कहना। जैसे, हम तो धर्म-
खगली कहेंगे, चाहे किसी को भला खरो या घुरा। धर्म से
कहना = सत्य सत्य कहना। ठीक ठीक कहना। उचित
बात कहना।

(१) किसी आचार्य या महात्मा द्वारा प्रवर्तित ईश्वर, पर-
लोक आदि के संबंध में विशेष रूप का विरयास और आरा-
धना की विशेष प्रणाली। इरासनाभेद। मत। संप्रदाय।
पंथ। मतद्वय। जैसे, हिंदू धर्म, ईसाई धर्म, इसलाम धर्म।

क्रि० प्र०—छोड़ना।—बदलना।

विशेष—इस अर्थ में इस शब्द का प्रयोग प्राचीन नहीं है।

(७) परस्पर व्यवहार संबंधी नियम जिसका पालन राजा,
आचार्य या मध्यस्थ द्वारा कराया जाय। नीति। न्याय व्यव-
स्था। कायदा। कानून। जैसे, हिंदू-धर्मशास्त्र।

धर्म—धर्मराज। धर्माधिकारी। धर्माध्यक्ष।

विशेष—आचार और व्यवहार दोनों का प्रतिपादन स्मृतियों
में हुआ है। पालनव्यय स्मृति में प्राचारध्याय और ध्यय-
राध्याय अलग अलग हैं। प्रायश्चित्त, सीमाविवाद, ऋणा-
दान, दंडयोग्य शपथ आदि सब विषय अर्थात् दीवानी
और जौनदारी के सब मामले व्यवहार के अंतर्गत हैं।
राजसभा में या धर्माध्यक्ष के सामने इन सब व्यवहारों
(सुकर्मों) का निर्णय होता था।

(८) न्यायसुद्धि। विवेक। उचित अनुचित का विचार
करनेवाली चित्तवृत्ति। ईमान। इ०—जैसा तुम्हारे धर्म में
माने करो, चाहे मारो चाहे छोड़ो।—अधमयसिंह।

मुद्गा—धर्म में धाना = धर्मकरण में उचित जान पड़ना।

(९) धर्मराज। यमराज। (१०) धनुष। कमान। (११)
सोमपाथी। (१२) वर्तमान अवसर्पिणी के १२ वें शकल का
नाम। (जैन)। (१३) कर्म लभन से बचने स्थान का नाम

जिसके द्वारा यह विचार किया जाता है कि बाहक कहाँ तक
आयवत् और धार्मिक होगा।

धर्मकर्म—संज्ञा पुं० [सं०] यह कर्म या विधान जिसका करना
किसी धर्म ग्रंथ में आवश्यक ठहराया गया हो। जैसे, संध्यो-
पासन आदि।

धर्मकील—संज्ञा पुं० [सं०] राज्यशासन। शासन।

धर्मकेतु—संज्ञा पुं० [सं०] (१) कश्यप-वंशीय सुकेतु राजा के पुत्र
का नाम। (२) बुद्धदेव।

धर्मक्षेत्र—संज्ञा पुं० [सं०] (१) कुण्डक्षेत्र। (२) भारतवर्ष जो धर्म
के संबंध के लिये कर्मभूमि माना गया है।

धर्मग्रंथ—संज्ञा पुं० [सं०] यह ग्रंथ या पुस्तक जिसमें किसी
जन-समाज के आचार व्यवहार और शपथना आदि के संबंध
में शिक्षा हो।

धर्मघट—संज्ञा पुं० [सं०] सुगंधित जड़ से भरा हुआ घड़ा
जिसके पैशाल में दान देने का माहात्म्य काशीखंड, हेमाद्रि-
दान चंद्र आदि में है।

धर्मघड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० धर्म + दि० घड़ी] घड़ी घड़ी जो ऐसे
स्थान पर लगी हो जिसे सब कोई देख सके।

धर्मचक्र—संज्ञा पुं० [सं०] (१) धर्म का समूह। (२) प्राचीन
काल का एक प्रकार का अस्त्र। (पाल्मीकी०)। (३) बुद्ध की
धर्मशिक्षा जिसका आरंभ काशी से हुआ था। (४) बुद्धदेव।

धर्मचर्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] धर्म का आचरण।

धर्मचारी—वि० [सं० धर्मचारे] [स्त्री० धर्मचारी] धर्म का
आचरण करनेवाला।

धर्मचिंतन—संज्ञा पुं० [सं०] धर्म की भावना। धर्मसंबंधी
बातों का विचार।

धर्मज्ञ—वि० [सं०] धर्म से शरपत्र।

संज्ञा पुं० (१) धर्मपत्नी से उत्पन्न प्रथम औरत पुत्र (क्योंकि
इसके द्वारा पिता पितृव्य से मुक्त होता है)। (२) धर्म-
पुत्र सुभिक्षि। (३) एक बुद्ध का नाम। (४) मर-
नारायण।

धर्मजीवन—संज्ञा पुं० [सं०] धर्मकृत्य का कर जीविका करने-
वाला माहात्म्य।

धर्मज्ञ—वि० [सं०] धर्म का जाननेवाला।

धर्मण्य—संज्ञा पुं० [सं०] (१) धार्मिक बुद्ध। (२) धार्मिक सौव।
(३) धार्मिक पत्नी।

धर्मतः—अव्य० [सं०] धर्म से। धर्म का ध्यान रखते हुए। धर्म
के साथी करके। सत्य सत्य। जैसे, जो कुछ हुआ हो
सुकसे धर्मतः कहो।

धर्मदान—संज्ञा पुं० [सं०] यह दान जो किसी निमित्त से या
विशेष फल की प्राप्ति (जैसे मर्हों की शक्ति आदि) के लिये

न किया जाय, केवल धर्म वा सार्विक बुद्धि की प्रेरणा से किया जाय।

धर्मदार—संज्ञा स्त्री० [सं०] धर्मपत्नी ।

धर्मद्वयी—संज्ञा स्त्री० [सं०] गंगा नदी ।

धर्मपक्षा—संज्ञा पुं० [सं० धर्म + पक्षि० भक्ष] (१) वह कष्ट जो धर्म के लिये बहाना पड़े । वह हानि या कठिनाई जो परोपकार भादि के लिये सहनी पड़े । (२) वह कष्ट या प्रयत्न जिससे निज का कोई काम न हो । व्यर्थ का कष्ट ।

धर्मधातु—संज्ञा पुं० [सं०] उद देव ।

धर्मध्वज—संज्ञा पुं० [सं०] (१) धर्म का झण्डा वह सबके साथ साधनेवाला मनुष्य । धार्मिकों का सा वेध और डंग बनाकर लोगों से पुजानेवाला मनुष्य । पालेडी । ३०—
ब्रिक धर्मध्वज चंद्रकपोरी ।—मुलसी । (२) सिधिया के एक लकड़वांशय राजा जिनकी कथा महामारत के सांति-पर्व में है । ये संन्यास-धर्म और मोक्ष-धर्म के जाननेवाले परम ब्रह्मज्ञानी राजा थे । एक बार सुलभा नाम की एक संन्यासिनी सारी पृथ्वी पर घूमती हुई धर्मध्वज की परीक्षा के लिये उनकी समा में योगबल से अत्यंत मनाहट रूप धारण करके आई । राजा चकित होकर उसका परिचय भादि पूछ ही रहे थे कि उसने अपनी बुद्धि द्वारा राजा की बुद्धि में और नेत्र द्वारा राजा के नेत्र में यह देखने के लिये प्रवेश किया कि वे मोक्षधर्म के चेता हैं या नहीं । राजा उसका अभिप्राय समझ गए और लिंग शरीर धारण करने बसते बसते परिषप पूजने लगे और उसे उसके धारण के लिये भला बुरा कहने लगे । राजा ने कहा—
“तुमने अपनी बुद्धि द्वारा जो हमारे शरीर में प्रवेश किया उससे अनुचित सहयोग हुआ; इससे तुम्हें तो व्यभिचार दोष लगा ही, मैं भी उसका भागी हुआ ।” सुलभा ने आत्म-ज्ञान की शनैक बातें कहकर राजा को इस प्रकार समझाया—
“मेरा संबंध तो अपने शरीर के साथ नहीं है आपके शरीर के साथ क्योंकि हो सकता है मैंने अपने सस्यगुण के बल से आपके शरीर में प्रवेश किया । यदि आप जीवन्मुक्त हैं तो मेरे प्रवेश से आपका कोई अपकार नहीं हो सकता । वन के बीच शूय कुटी में प्रवेश करना संन्यासी का धर्म है अतः मैंने भी आपके योगधर्या शरीर में प्रवेश किया है और आज मर रहकर कल चली जाऊँगी ।” राजा यह सुन कर खुश हो रहे ।

धर्मध्वजी—संज्ञा पुं० [सं० धर्मध्वजिन्] पालेडी । दे० “धर्मध्वज” ।

धर्मनदी—संज्ञा पुं० [सं०] एक बौद्ध पंडित जिन्होंने कई बौद्ध-शास्त्रों का चीनी भाषा में अनुवाद किया था ।

धर्मनाथ—संज्ञा पुं० [सं०] जैनों के पंद्रहवें तीर्थंकर ।

विशेष—जैन ग्रंथों के अनुसार ये रत्नपुरी नाम की नगरी में इक्ष्वाकु कुल में उत्पन्न हुए थे । इनके पिता का नाम अनु-राज और माता का नाम सुवतादेवी था । इनका कील ३२ धनुष का और धातु दस लाख वर्ष की थी । दीक्षा के लिये इन्होंने दो दिन का उपवास किया था । द्धिर्नयं वृष इनका दीक्षावृक्ष था । शुक्रज्जा मद्राप्रयोदशी को इनकी दीक्षा हुई थी । दीक्षा के पीछे दो वर्षों तक ये वृषभच्य रहे, फिर पूस की पूर्णिमा को इन्होंने ज्ञानलाम किया ।

धर्मनाम—संज्ञा पुं० [सं०] (१) विष्णु । (२) एक नदी का नाम ।

धर्मनिष्ठ—वि० [सं०] धर्मपरायण । धर्म में जिसकी आस्था हो । धार्मिक ।

धर्मनिष्ठा—संज्ञा स्त्री० [सं०] धर्म में आस्था । धर्म में ब्रह्मा, भक्ति और प्रवृत्ति ।

धर्मपट्ट—संज्ञा पुं० [सं०] वह व्यवस्थापत्र जो किसी राजा या धर्माधिकारी की ओर से दिया जाय ।

धर्मपति—संज्ञा पुं० [सं०] (१) धर्म पर अधिकार रखनेवाला पुरुष । धर्मात्मा । (२) वरुण देवता ।

धर्मपत्तन—संज्ञा पुं० [सं०] (१) बृहत्संहिता के अनुसार कूर्मविभाग में दक्षिण देश के पास का एक जनस्थान जो कदाचित् आधुनिक धर्मापठम (जिजा मलाबार) के पास रहा हो । (२) आवस्ती नगरी । (३) गोलबर्च ।

धर्मपत्नी—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जिसके साथ धर्मशास्त्र की रीति से विवाह हुआ हो । विवाहिता स्त्री ।

विशेष—बलस्थिति में लिखा है कि प्रथमा स्त्री ही धर्मपत्नी है । व्याह कर छाई हुई दूसरी स्त्री को कामपत्नी कहा गया है ।

धर्मपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] मूलर (जिसके पत्ते यज्ञादि धर्म-कार्यों में काम आते हैं) ।

धर्मपरिणाम—संज्ञा पुं० [सं०] योग दर्शन के अनुसार सच मूर्तों और इंद्रियों के एक रूप वा स्थिति से दूसरे रूप वा स्थिति में प्राप्त होने की वृत्ति । एक धर्म के निवृत्त होने पर दूसरे धर्म की प्राप्ति । जैसे, मिथी के पिंबतरास धर्म के निवृत्त होने पर घटवरूप धर्म की प्राप्ति ।

विशेष—पतंजलि ने अपने योगदर्शन में चित्त के जिस प्रकार तित्थ, समाधि और पृथग्भूतों से तीन परिणाम कहे हैं वसी प्रकार सूक्ष्म, स्थूल मूर्तों तथा इंद्रियों के भी तीन परिणाम बतलाए हैं—धर्मपरिणाम, लक्ष्यपरिणाम और अवस्थापरिणाम । पुरुष के अतिरिक्त और सच वस्तुएं इन परिणामों के अधीन अर्थात् परिणामी हैं । प्रत्येक धर्मा-प्रार्थना प्राकृतिक द्रव्य तीन प्रकार के धर्मों से युक्त है—शांत,

वदित और अल्पदेश्य । यस्तु का जो धर्म अपना व्यापार कर चुका हो वह शांतधर्म कहलाता है । जैसे, घट के फूट जाने पर घटख, बीज के अंकुरित हो जाने पर धीमत्व । जो धर्म विद्यमान रहता है उसे वदित कहते हैं, जैसे, घट के बने रहने पर घटत्व । जो धर्म प्राप्त होनेवाला है और ध्वज का निर्दिष्ट न हो सकने पर भी शक्ति रूप से स्थित या निहित रहता है उसे धर्म्यदेश्य कहते हैं, जैसे बीज में घृष्ट होने का धर्म ।

धर्मपाल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) धर्म का पावन या रक्षा करने-वाला । (२) धर्म का पावन करनेवाला । (३) दंड (जिस के भय से लोग धर्म का पावन करते हैं) । (४) राजा द्वाराय के एक मंत्रो का नाम ।

धर्मपीठ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) धर्म का प्रधान स्थान । (२) कारी । (३) वह स्थान जहाँ धर्म की व्यवस्था मिले ।

धर्मपीडा-संज्ञा स्त्री० [सं०] धर्म या न्याय के विरुद्ध आचारण ।

धर्मपुत्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) धर्म के पुत्र सुभिक्षि । (२) भक्तारायण । (३) धर्मोत्तुसार पुत्र कह कर जिसका प्रहय किया गया हो ।

धर्मपुरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) यमपुरी जहाँ शरीर छूटने पर प्राणियों के किए हुए धर्म अधर्म का विचार होता है । (२) कचरी । न्यायालय ।

धर्मप्रतिरूपक-संज्ञा पुं० [सं०] परातों को दिया हुआ ऐसे सराफ और संपन्न मनुष्य का दान जिसके अपने लोग (कुटुंबी आदि) कष्ट में हों ।

विशेष-मनु ने कीर्ति, यश आदि के लिये दिए हुए ऐसे दान को धर्म नहीं कहा है, धर्म का प्रतिरूपक (नकल) कहा है ।

धर्मप्रसास-संज्ञा पुं० [सं०] बुद्ध का एक नाम ।

धर्मप्रवचन-संज्ञा पुं० [सं०] बुद्ध का एक नाम ।

धर्मयुद्धि-संज्ञा स्त्री० [सं०] धर्म अधर्म का विवेक । भले बुरे का विचार ।

धर्मभायक-संज्ञा पुं० [सं०] कया पुताण भाँचनेवाला । कथकट ।

धर्मभिच्छुक्-संज्ञा पुं० [सं०] वह जिसने धर्मार्थ भिच्छावृत्ति प्रहय की हो ।

विशेष-मनु ने नौ प्रकार के धर्मभिच्छुक् गिनाए हैं-पुत्र की कामना से विवाह चाहनेवाला, यज्ञ की इच्छा रखनेवाला, पयिक, जो यज्ञ में अपना सर्वस्व लगा कर निर्वाण हो गया हो, शुभ, माता और पिता के भाग्य पोषण के लिये धन चाहनेवाला, धर्म्यय की इच्छा रखनेवाला, विधार्थी और रोगी । ये नव धर्मभिच्छुक् प्राक्षय श्रेष्ठ-स्नातक हैं । इन्हें यज्ञ की वेदी के भीतर पैदा कर दक्षिणा के सहित

अन्नदान देना चाहिए । इनके अतिरिक्त जो और दान्य हों उन्हें वेदी के बाहर पैठाना चाहिए ।

धर्मभीक्ष-वि० [सं०] जिसे धर्म का भय हो । जो अधर्म करते हुए बहुत करता हो ।

धर्ममेघ-संज्ञा पुं० [सं०] योग में असेमज्ञात समाधि के अंतर्गत एक समाधि जिसमें वैराग्य के अभ्यास से चित्त सब वृत्तियों से रहित हो जाता है अर्थात् इतना असमर्थ हो जाता है कि बसका रहना न रहना बराबर हो जाता है, केवल कुक्ष संस्कार मात्र रह जाता है ।

धर्मयुग-संज्ञा पुं० [सं०] सत्ययुग ।

धर्मयुद्ध-संज्ञा पुं० [सं०] यह युद्ध जिसमें किसी प्रकार का अन्याय या नियम का भंग न हो ।

धर्मरक्षित-संज्ञा पुं० [सं०] योग (यवन) देशीय एक बौद्ध धर्मोप-देशक या स्वधर जिसे महाराज अशोक ने अष्टासक (विलूचितान) देश में उपदेश के लिये भेजा था ।

धर्मराइ-संज्ञा पुं० दे० "धर्मराज" ।

धर्मराज-संज्ञा पुं० [सं०] (१) धर्म का पावन करनेवाला, राजा । (२) सुभिक्षि । (३) महाराज । (४) जिन ।

धर्मराज परीक्षा-संज्ञा स्त्री० [सं०] स्वृत्तियों के अनुसार धर्म में अभियुक्त दोषी है या निर्दोष, इसकी एक दिव्य परीक्षा ।

विशेष-यूद्धरति, पितामह आदि स्वृत्तिकारों ने जो विधान किये हैं वे थोड़े बहुत भिन्न होते पर भी बतुतः एक ही से हैं । धर्म और अधर्म की दो श्रेष्ठ और कृष्ण मूर्तिर्वा भोजपत्र पर बना कर और उनकी प्राण-प्रविष्टापूर्वक पूजा कर के मिट्टी के दो धरावर पिंडों में बण्डे रखे । फिर दोनों पिंडों को दो नए चण्डों में रख कर अभियुक्त को बुझावे और किसी घड़े पर हाथ रखने के लिये कहे । यदि बसका हाथ धर्म-पिंडवाले घड़े पर पड़े तो उसे निर्दोष समझे ।

धर्मराय-संज्ञा पुं० दे० "धर्मराज" ।

धर्मलुप्ता उपमा-संज्ञा स्त्री० [सं०] यह उपमा जिसमें धर्म अर्थात् धरमान और धर्ममेय में समान रूप से पाई आनेवाली बात का कथन न हो । दे० "इपमा" ।

धर्मवाहन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जिसका वाहन धर्म हो । शिव । (२) धर्मराज का वाहन महिष । भैंसा ।

धर्मविवेचन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) धर्म के संबंध में चिंतन । (२) धर्म अधर्म का विचार । (३) दूसरे के किए हुए कर्म का विचार के वह सदाप ही या निर्दोष । किसी के दोषी या निर्दोष होने का निर्णय ।

धर्मवीर-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो धर्म करने में साहसी हो ।

विशेष-रत्नसिंघेय के अंतर्ग में वीरस के अंतर्गत चार प्रकार के वीर कहे गए हैं युद्ध-वीर, धर्मवीर, दामवीर और दयावीर ।

धर्मवृद्ध-वि० [सं०] जो धर्मोत्तरय द्वारा श्रेष्ठ हो ।

धर्मवैतलिक—संज्ञा पुं० [सं०] वह जो पाप के द्वारा धन कमा कर लोगों को दिखाने और भासिक प्रसिद्ध होने के लिये बहुत धन पुण्य करता हो ।

धर्मव्याध—संज्ञा पुं० [सं०] मिथिबाबुल-निवासी एक व्याध जिसने कौशिक नामक एक तपस्वी वेदाभ्यायी ब्राह्मण को धर्म का तथ्य समझाया था ।

विरोध—महाभारत (वन पर्व) में इसकी कथा इस प्रकार है । कौशिक नामक एक तपस्वी ब्राह्मण एक पेड़ के नीचे बैठ कर वेद पाठ कर रहे थे तबने में एक घगली ने पेड़ पर से इनके ऊपर बैठ कर दी । कौशिक ने कुछ क्रुद्ध होकर उसकी ओर देखा और वह भर कर गिर पड़ी । इस पर कौशिक को बहुत क्रुद्ध हुआ और वे भिषा माँगने के लिये एक पतिव्रित गृहस्थ के घर पहुँचे । उसकी गृहणी उन्हें बैठा कर भीतर शयन आदि बाने गईं । पर इसी बीच में उसका पति भूखा व्यासा कहीं से आ गया और वह उसकी सेवा में लग गईं । पीछे जब उसे द्वार पर बैठे हुए ब्राह्मण की सुध हुई तब वह भिषा लेकर व्रत बाहर आई और विलंब का कारण बता कर धना प्रायना करने लगी । कौशिक इस पर बहुत दिगड़े और ब्राह्मण के कोष का भयंकर फल बता कर उसे डराने लगे । इस पर वह खी ने कहा—“मैंने कहा—नहीं हूँ । आपके क्रोध से मेरा क्या हो सकता है ? मैं पति को अपना परम देवता समझती हूँ । उनकी सेवा से छुटी पाकर तब मैं भिषा लेकर आई हूँ । क्रोध बहुत बुरी वस्तु है । जो क्रोध के बर में नहीं होता देवता वसी को ब्राह्मण समझते हैं । यदि आपको धर्म का यथायथ स्तुत जानना हो तो मिथिजा में धर्मव्याध के पास जाइए ।” कौशिक अत्यक्त हो गए और अपने को विश्कारते हुए मिथिला की ओर चल पड़े । वहाँ आकर उन्होंने देखा कि धर्मव्याध नाना प्रकार के पशुओं का मांस रत कर बेच रहा है । धर्मव्याध ने ब्राह्मण देवता को देखते ही आदर से बठ कर बैठाया और कहा—“आप को एक ब्राह्मणी ने मेरे पास भेजा है ।” कौशिक को बहुत आश्चर्य हुआ और उन्होंने धर्मव्याध से कहा—“तुम इतने शान्तस्वर होकर ऐसा निकृष्ट कर्म क्यों करते हो ?” धर्मव्याध ने कहा—“महाशय ! वह निरुपरंपरा से चला आता हुआ मेरा कुल-धर्म है अतः मैं इसी में स्थित हूँ । मैं अपने माता पिता और अतिथियों की सेवा करता हूँ, देवपूजन और शक्ति के अनुसार दान करता हूँ, शूद्र नहीं बोलता, भैरवानी नहीं करता । जो मांस बेचता हूँ वह दूसरों के मारे हुए पशुओं का होता है । मेरी वृत्ति भयंकर अवरत है, पर किया क्या जाय ? मेरे लिये वही निर्दिष्ट की गई है । वही मेरा कुलोचित कर्म है, उसे त्याग करना बचित नहीं । पर साथ ही सदाचार के आचरण में मुझे कोई बाधा नहीं ।”

इसके उपरांत धर्मव्याध ने अपने पूर्व जन्म का वृत्तंत इस प्रकार सुनाया—“मैं पूर्व जन्म में वेदाभ्यायी ब्राह्मण था । मैं एक दिन अपने मित्र एक राजा के साथ शिकार में गया और वहाँ आकर मैंने एक मुगी के ऊपर तीर चलाया । पीछे जान पड़ा कि मुगी के रूप में एक ऋषि थे । ऋषि ने मुझे शाप दिया कि—“तूने मुझे बिना अपराध मारा इससे तू शूद्रयोनि में जाकर एक व्याध के घर उत्पन्न होगा ।”

धर्मप्रता—संज्ञा स्त्री० [सं०] विश्वरूपा के गर्भ से उत्पन्न धर्म नामक एक राजा की कन्या जिस ने पातिव्रत्य की प्राप्ति के लिये घोर तप किया था । मरीचि ऋषि ने इसे पृथ्वी पर सप्त से बड़ी पतिव्रता देख उसके साथ विवाह किया था । (वायु-पुराण) धर्मशाला—संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह मछान जो पथिकों या यात्रियों के टिकने के लिये धर्मार्थ बना हो और जिसका कुछ भाड़ा आदि न लगता हो । (२) वह स्थान जहाँ पुण्य के लिये नियमपूर्वक दान आदि दिया जाता हो । सत्र । (३) वह स्थान जहाँ धर्म धर्मों का निर्णय हो । न्यायालय । विचारालय ।

धर्मशास्त्र—संज्ञा पुं० [सं०] किसी जन-समूह के लिये बचित आचार व्यवहार की व्यवस्था जो किसी महात्मा वा आचार्य की ओर से होने के कारण मान्य समझी जाती हो । वह ग्रंथ जिसमें समाज के शासन के निश्चित नीति और सदाचार संबंधी नियम हों । जैसे, मानव धर्मशास्त्र ।

विरोध—हिंदुओं के धर्मशास्त्र ‘स्मृति’ के नाम से प्रसिद्ध हैं । इनमें मनुस्मृति सप्त से प्रधान समझी जाती है । मनु के अतिरिक्त यम, पारिष्ट, अत्रि, दृष्ट, विष्णु, श्रीगिरा, हराना, बृहस्पति, व्यास, आपस्तंब, गौतम, कात्यायन, नारद, याज्ञवल्क्य, पराशर, सेवक, शंख, और हारीत भी स्मृतिकार हुए हैं । दे० ‘स्मृति’ ।

धर्मशास्त्री—संज्ञा पुं० [सं०] धर्मशास्त्र के अनुसार व्यवस्था देने-वाला । धर्मशास्त्र जाननेवाला पंडित ।

धर्मशील—वि० [सं०] धर्म के अनुसार आचरण करनेवाला । धार्मिक ।

धर्मशीलता—संज्ञा स्त्री० [सं०] धर्मशील होने का भाव । धर्मो-चर्य की वृत्ति । इ०—कह कपि धर्मशीलता तोरी । हमहुँ सुनी इत परतिय चोरी ।—मुबसी ।

धर्मसभा—संज्ञा स्त्री० [सं०] न्यायालय । कचहरी । वह स्थान जहाँ बैठ कर न्यायाधीश न्याय करे । अदालत । इ०—धर्म-सभा महँ रामहिं जाने । खान चलो निज पीर बसाने ।—केसव ।

धर्मसारी—संज्ञा स्त्री० [सं०] धर्मशास्त्र । धर्मशास्त्र । इ०—राजा एक पंडित पौर तुम्हारी ।.....हूँ दे दे वसुधा हमको तहाँ रची धर्मसारी ।—सूर ।

धर्मसाधिका—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणों के अनुसार ग्यारहवें मनु ।
 धर्मसू—संज्ञा पुं० [सं०] (१) धर्मशेखर । (२) धर्मशास्त्र ।
 धर्मसूत्र—संज्ञा पुं० [सं०] जैमिनि प्रणीत धर्मनियंत्रण पर एक ग्रंथ ।
 धर्मसंस्तु—संज्ञा पुं० [सं०] सेतु की तरह धर्म को धारण करने-
 वाला । धर्म का पालन करनेवाला ।

धर्मसेन—संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्राचीन महास्यविर या
 बौद्ध महात्मा जो श्रवणपत्तन (सारनाथ, काशी) सूच के
 प्रधान थे । अनुराधापुर (सिंहबद्धीपुर) के राजा हुतगामिनी
 ने ब्रह्म महास्यव की स्थापना की थी (ई० पू० १६७) तब
 वे बारह हजार अनुचरों के साथ उपस्थित हुए थे । (२)
 जैनों के द्वादश अंतविदों में से एक ।

धर्मस्कंध—संज्ञा पुं० [सं०] धर्मास्तिकाय पदार्थ । (जैन)

धर्मस्य—संज्ञा पुं० [सं०] विचारक । न्यायकर्त्ता ।

धर्मोग—संज्ञा पुं० [सं०] एक । रागना (जितका श्रेय धर्म के
 समान शुभ्र होता है) ।

धर्माचार्य—संज्ञा पुं० [सं०] (१) धर्म की शिक्षा देनेवाला
 गुरु । (२) श्रवणवेदियों में बन श्रवणियों में एक जिनके
 निमित्त तर्पण किया जाता है ।

धर्मात्मा—वि० [धर्मात्मन्] धर्मशील । धर्म करनेवाला । धार्मिक ।

धर्माधिकरण—संज्ञा पुं० [सं०] यह स्थान जहाँ राजा न्यायहारों
 (शुक्रदमों) पर विचार करता है । विचारालय ।

धर्माधिकारी—संज्ञा पुं० [सं०] (१) धर्म अधर्म की व्यवस्था
 देनेवाला । विचारक । न्यायाधीश । (२) वह जो किसी
 राजा या बड़े बादमी की ओर से धर्मार्थ निकाले हुए द्रव्य
 को पात्रापात्र का विचार करके बर्तने आदि का प्रवेप
 करता है । पुण्यक्षेत्र का प्रबंधकर्त्ता । दानाप्यक्ष ।

धर्माध्यक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] (१) धर्माधिकारी । (२) विष्णु ।
 (३) शिव ।

धर्मारण्य—संज्ञा पुं० [सं०] (१) तपोवन । (२) एक
 तीर्थ जिसके विषय में बराहपुराण में यह कथा लिखी है
 कि जब चंद्रमा ने गुणवती वारा का हरण किया तब धर्म
 न्यायकूल देखकर एक सपन वन में घुस गया । उस वन का
 नाम ब्रह्म ने धर्मारण्य रखा । (३) गया के अंतर्गत एक
 तीर्थस्थान । (४) कूर्मविभाग के मध्य भाग में एक
 देव । (बृहत्संहिता)

धर्मार्थ—वि० [सं०] धर्म के निमित्त । केवल धर्म या पुण्य
 के बढ़े हुए से । परोपकार के लिये । जैसे, बसने १००)
 धर्मार्थ दिए हैं ।

धर्मावतार—संज्ञा पुं० [सं०] (१) साधारण धर्मस्वरूप । अत्यंत
 धर्मात्मा ।

विद्वेष—इस शब्द का प्रयोग संवेदन के रूप में छोटों की
 ओर से बड़ों के प्रति आदर्श होता है ।

(२) धर्माधर्म का निर्णय करनेवाला पुरुष । न्यायाधीश ।

(३) बुधिर ।

धर्मासन—संज्ञा पुं० [सं०] वह आसन या चौकी जिस पर बैठ
 कर न्यायाधीश न्याय करता है । उ०—हे प्रतिहारी वृ
 हमारा नाम लेकर पिशुन मंत्री से कह दे कि बहुत मानने
 से हम में धर्मासन पर बैठने की सामर्थ्य नहीं रही, इस लिये
 जो कुछ काम काज प्रजारसेवधी हो लिखकर हमारे पास
 यहाँ भेज दे ।—लक्ष्मणसिंह ।

धर्मास्तिकाय—संज्ञा पुं० [सं०] जैन शास्त्रानुसार छः द्रव्यों में से
 एक जो एक अरूपी पदार्थ है और जीव और पुद्गल की
 गति का आधार या सहायक होता है ।

धर्मिणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) पत्नी । (२) रेणुका ।

वि० धर्म करनेवाली ।

विद्वेष—हिंदी में इसका प्रयोग समस्त पदों में ही होता है,
 जैसे, सहचरिणी ।

धर्मिष्ठ—वि० [सं०] धार्मिक । पुण्यात्मा । सदाचारी ।

धर्मो—वि० [सं० धर्मन्] [स्त्री० धर्मिणी] (१) जिसमें धर्म
 हो । धर्म वा गुणविशिष्ट । जैसे, प्रसवधर्मी । (२)
 धार्मिक । पुण्यात्मा । (३) मत या धर्म को माननेवाला ।
 जैसे, मिश्रधर्मी ।

संज्ञा पुं० (१) धर्म का आधार । गुण या धर्म का
 आश्रय । जैसे, द्रव्य धर्म का आधार ब्रह्म है । (२)
 धर्मात्मा मनुष्य । (३) विष्णु ।

धर्मोत्सव—संज्ञा पुं० [सं०] गड । गडक का कोई पात्र या अभि-
 नवकर्त्ता ।

धर्मोय—संज्ञा पुं० [सं०] सुरवंशी राजा रौद्राक्ष का एक पुत्र ।
 (महाभारत)

धर्मोपदेश—संज्ञा पुं० [सं०] (१) धर्म की शिक्षा । वह
 कथन वा व्याख्यान जो धर्म का तत्त्व समझाने या धर्म की
 ओर प्रवृत्त करने के लिये हो । (२) धर्म की व्यवस्था ।
 धर्मशास्त्र ।

धर्मोपदेशक—संज्ञा पुं० [सं०] धर्म का उपदेश देनेवाला ।

धर्मोपाध्याय—संज्ञा पुं० [सं०] उग्रसिंह ।

धर्मो—वि० [सं०] जो धर्म के अनुकूल हो । धर्म वा न्याययुक्त ।
 धर्मोपविवाह—संज्ञा पुं० [सं०] स्मृतियों में जो विवाह गिनाए
 गए हैं उनमें से शाक, शैव, शार्प, गांधर्व और मात्रापात्य ये
 पाँच धर्मोपविवाह कहलाते हैं ।

धर्मो—संज्ञा पुं० [सं०] (१) अविनीत व्यवहार । अविनय ।
 छटता । गुस्ताखी । संकोच या शिष्टता का अभाव । (२)
 असहजशीलता । अनुकूलिनी । (३) धर्म का अभाव ।
 अधीरता । बेतमी । (४) शक्तिबंधन । अशक्त होने या
 करने का अभाव । बेकाम करने या होने का अभाव । (५)

रोक । दबाव (६) नामदं करने या होने का भाव । (७) नामदं । नपुंसक । हिजड़ा । (८) हिंसा । जी दुखाने का कार्य । (९) अनादर । अपमान । हतक । (१०) (धी का) सतीत्वहरण ।

धर्यक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) दबानेवाला । दमन करनेवाला । (२) अपमान करनेवाला । तिरस्कार करनेवाला । (३) अस-
दनशील । (४) सतीत्व हरण करनेवाला । स्वनिचारी । (५) अभिनय करनेवाला । नकल करनेवाला । नट ।

धर्यकारी-वि० [सं० धर्यकारिन्] [को० धर्यकारिणी] (१) दबाने वा दमन करनेवाला । हरानेवाला । नीचा दिखाने-
वाला । (२) अपमान करनेवाला । अवज्ञा करनेवाला । धर्यकारिणी-वि० [सं०] जिसका सतीत्व नष्ट हुआ हो ।
असती । स्वनिचारीयि ।

धर्यक-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० धर्यक्य, धर्यत] (१) अनादर ।
अपमान । अवज्ञा । (२) दूषोचना । आक्रमण । दबाने वा
दमन करने का कार्य । हराने का कार्य । नीचा दिखाने का
कार्य । (३) असदनशीलता । (४) एक शब्द का नाम । (५) स्त्रीपरसंग । रति । (६) शिव ।

धर्यक-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) अनादरता । अवज्ञा । अपमान ।
हतक । (२) दबाने वा हराने का कार्य । नीचा दिखाने का
कार्य । (३) सतीत्वहरण । (४) समोग । रति ।

धर्यकी-संज्ञा स्त्री० [सं०] असती स्त्री । कुबला ।
धर्यकीय-वि० [सं०] धर्यक के योग्य ।
धर्यित-वि० [सं०] (१) जिसका धर्यक किया गया हो । दबाया या
दमन किया हुआ । परिभूत । हराया हुआ । (२) जिसे
नीचा दिखाया गया हो । अपमानित ।

संज्ञा पुं० रति । मैथुन ।
धर्यी-वि० [सं० धर्यी] [स्त्री० धर्यी] (१) धर्यक करनेवाला ।
(२) धर दबानेवाला । आक्रमण करनेवाला । दूषोचनेवाला ।
(३) हरानेवाला । (४) नीचा दिखानेवाला । (५) अपमान
करनेवाला ।

धर्यक-संज्ञा पुं० [सं०] धर्यक का पेड़ । डेरा ।
धर्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक अंगूठी पेड़ जिसकी पत्तियाँ धम-
रुत या शरीके की पत्तियों के प्येती होती हैं । इसकी छात्र
सफेद और चिकनी तथा हीर की लकड़ी बहुत कड़ी और
धमकीली होती है । फल छोटे छोटे होते हैं । इसकी कई
जातियाँ होती हैं जो हिमालय की तराई से लेकर दक्षिण
भारत तक पाई जाती हैं । बड़ी जाति का मो पेड़ होता है
जसे धीरा या माकड़ी कहते हैं । इसकी लकड़ी बहुत मज-
बूत होती है और भाव, खेती के सामान आदि बनाने के
काम में आती है । कोयला भी इसका बहुत अच्छा होता
है । पत्तियों से चमड़ा सिन्धाया और रुमाया जाता है ।

इसके पेड़ से एक प्रकार का गोंद निकलता है जिसे छोट
छापनेवाले काम में आते हैं । छोटी जाति का पेड़ विंध्य
पर्वत पर तथा दक्षिण भारत की घोर होता है । धर्य के नाम
से प्रायः यही अधिक प्रसिद्ध है और दबा के काम में आता
है । वैद्यक में धर्य चरपरा कसैला, कफवात-नाशक, पित्त-
कारक, शीतल, रुचिवर्द्धक और पांडु रोग को दूर करनेवाला
माना जाता है । पत्ती, फल और जड़ तीनों दवा के काम
में आते हैं ।

पय्यो०—पिशाचशृंग । शकटाक्ष । पुरंधर । दृष्टर । गौर ।
कपाप । मधुरत्वक । शुष्कांग । पांडुतर । धवल । पांडुर ।
घट । नंदितर । स्थिर । पीतफल ।
(२) पति । स्वामी । जैसे, माधव । (३) पुरुष । मर्द । (४)
धूर्त भावमीन । (५) एक वसु का नाम ।

धर्य-संज्ञा स्त्री० [सं० धर्य, धरणी] एक पेड़ जो हिमालय से
लेकर सारे भारतीय भारत में अधिकता से होता है । दक्षिण
में यह कम मिलता है । इसे घाय भी कहते हैं । इसकी
पत्तियाँ अनादर की पत्तियों से मिलती जुलती पर कुछ पीजा-
पन लिए और खुरदुरी होती हैं । फूल लाल रंग के होते हैं
और दबा दबा रंगों के काम में आते हैं । ये फूल शिथिल
से बसंत तक लगते हैं और इकट्ठे करके सुखाए जाते हैं ।
मदर रोग में वैद्य लोग इन फूलों का काढ़ा देते हैं । छात्र
भी दबा के काम में आती है । वैद्यक में धर्य या धाय
चरपरी, शीतल, कसैली, मङ्कारक, कटु, रक्तप्रवाहिका,
तथा पित्त, वृष, विषर्ष, मय, क्षुभ और अतिसार को दूर
करनेवाली मानी जाती है । पर और संज्ञा की अपेक्षा फूलों
में अधिक गुण कहा जाता है । धर्य के पेड़ से एक प्रकार
का गोंद भी निकलता है ।

पय्यो०—धाय । धातकी । तात्रपुष्पी । धात्री । धावनी ।
धात्रुपुष्पिका । यहिपुष्पी । अग्निज्वाला । मुनिपा । पार्वती ।
कुसुमा । सीधुपुष्पी । कुंभरा । मघवातिनी । गुच्छपुष्पी ।
वह्निशिला ह्ययादि ।

धर्यनी-संज्ञा स्त्री० [सं० धरनी] खोहारों की धौंकनी । मायी ।
४०—मट्टी मोह हृष्टानु रवि धरनि स्वास मद दार ।
निसिदिन धन दबी मरुप क्रम कुट काळ लोहाह ।
संज्ञा स्त्री० [सं०] आखिपर्थी । सरिबन ।

धर्य-संज्ञा पुं० [सं० धर्य] एक पत्ती जिसका कंठ छात्र और
सारा शरीर सफेद होता है ।
धिरोप—भायप्रकाश में धर्यक पत्ती का भास यात्म बताया
गया है ।

वि० [सं० धर्य] सफेद । धवल ।

धर्यहर-संज्ञा पुं० [हि० धर = धर + हर] रोने की तरह कपूर
दूर तक गया हुआ प्रधान का एक भाग जिस पर चढ़ने

के क्रिये भीतर स्त्रीद्वयों बनी हैं। धवरा। मीनार। व०—
चंद्र धवराहर विज्ञेकि वृत्तिन विसि मूक धी पथिक कहाँ से
भाए वे हैं।—मुजली।

धवरा—वि० [सं० धवरा] [की० धवरी] बजला। सफेद।

धवराहर—संज्ञा पुं० दे० "धवराहर"। व०—सात रंग धवराहर
सात्रा।—जायसी।

धवरी—वि० धी० [दि० धवरा] सफेद। बजली।

धंका धी० (१) धवर पथी की माया। (२) सफेद रंग की
माया।

धवल—वि० [सं०] (१) श्वेत। बजला। सफेद। (२) निर्मल।
कृष्णकृष्ण। (३) सुंदर। मनेाहर।

धंका पुं० (१) धव का वेद। (२) चीनिया कपूर। (३)
सिंदूर। (४) सफेद मिर्च। (५) धवर पथी। सफेद पथेवा।
(६) भारी बैल। मदीय। (७) सुप्यय पुंड्र का धं वी
मेद। (८) धनुंन वृष। (९) श्वेत छुट। सफेद कौट्ट।
(१०) एक राग जो मत्त के मत से हिंदोल राग का आठवाँ
पुत्र माना जाता है।

धवलकौली—संज्ञा धी० [?] धैर्यो की एक जाति।
धवलगिरि—संज्ञा पुं० [सं०] एक पर्वत का नाम। धवलगिरि।

धवलता—संज्ञा धी० [सं०] सफेदी। बजलापन।

धवलत्व—संज्ञा पुं० [सं०] सफेदी। बजलापन।

धवलना—क्रि० सं० [सं० धवल] बजला करना। निवारना। धन-
काना। प्रकाशित करना। व०—स्वामि कात्र करिहैं रन
शरी। जस धनवडिहैं सुवन दस थारी।—मुजली।

धवलपद्म—संज्ञा पुं० [सं०] (१) शुभल पद्म। बजला पात्र।
(२) हंस (जिसके पर सफेद होते हैं)।

धवलमूर्त्तिका—संज्ञा धी० [सं०] सरिया मिट्टी। दुबई।

धवलधौ—संज्ञा धी० [सं०] एक रागिनी जिसमें पंचम और
गांधार बजित हैं।

धवलगं—संज्ञा पुं० [सं०] हंस।

धवल—वि० धी० [सं०] सफेद। बजली।

धंका धी० सफेद माया।

धंका पुं० [सं० धवरा] सफेद बैल।

धवलहं—संज्ञा धी० [सं० धवरा + हं (मय०)] सफेदी।
बजलापन।

धवलगिरि—संज्ञा पुं० [सं० धवरा + गिरि] हिमालय पहाड़ की
एक प्रख्यात चोटी।

धवलित—वि० [सं०] (१) जो सफेद किया गया हो। जैसे,
नुषाचधवलित शंभ। (२) जो साफ कृष्ण किया गया हो।

धवली—संज्ञा धी० [सं०] (१) सफेद माया। (२) एक राग
जिसमें बाज सफेद हो जाते हैं। (३) सफेद मिर्च।

धवलीकृत—वि० [सं०] जो सफेद किया गया हो।

धवलीभूत—वि० [सं०] जो सफेद हुआ हो।

धवलोत्पल—संज्ञा पुं० [सं०] कुसुम।

धवा—संज्ञा पुं० दे० "धव"।

धवायक—संज्ञा पुं० [सं०] वायु।

धवाना—क्रि० सं० [दि० धवना का प्रे०] दौड़ाना। व०—(क)

तहाँ सुपथया रथिँ धवाई। धनुंन दस बालन करिकाई।—
धुराज। (ख) तिन के कात्र बहीर पठाए। विजय करहु
तिनि धुरत थवाए।—धूर।

धस—संज्ञा पुं० [दि० धसना=पैटना] (१) जल आदि में प्रवेश।
दुबकी। गोथा। व०—(क) जो पथ मिला महेसहिँ सेई।
गयो समुद थोही धस खेई।—जायसी। (ख) जस धस
खीन्ह समुद मरजीया।—जायसी। (ग) तेहि का कटिय रहन
कई जो है प्रीतम छाग। जो वहि सुनि खेद धस का पानी,
का धाय।—जायसी।

क्रि० प्र०—धेना।

(२) एक प्रकार की जमीन या मिट्टी जो सुरसुरी होती है।

धसक—संज्ञा धी० [धनु] (१) टन टन शब्द जो सूती रीसों में
गडे से निकलता है। (२) सूती रीसों। दसक।

धंका धी० [दि० धसकना] किसी के काम या बढ़ती को
देख हुस से दूध जाने की वृत्ति। बाह। ईप्यां।

धसकना—क्रि० ध० [दि० धसना] (१) नीचे को धंस जाना।
नीचे को धसक जाना। दूध जाना। घंड जाना। व०—(क)
धीरत पंडू रेत में नय सोम या द्वार। धागे रडि पावें
धसकि रहे नितंबन भार।—कर्मणसिंह। (ख) तनोँ पीर
धरनि धरनिधर धसकत धरापर पीर भार सदि न सकतु है।
—तुजली। (३) किसी का खाम या बढ़ती देख
हुस से दूधना। बाह करना। ईप्यां करना।

धसका—संज्ञा पुं० [दि० धसक] बीपियों का एक रोग जो फेफड़ों
में होता है। यह रोग एत से फैलता है।

धसना—क्रि० ध० [सं० धसना] धवल होना। मध होना।
मिटना। व०—निज धातम अज्ञान से है प्रतीत जग
वेद। धसै सुताके बोध तें यह भासत सुनि वेद।—
निरपल।

‡ क्रि० ध० दे० "धंसना"।

धसनि—संज्ञा धी० दे० "धंसनि", "धसन"।

धससासाना—क्रि० ध० [धसना] धंस जाना। धरती में समाना।

व०—मेद धसमसे समुद हुकाई।—जायसी।

धसान—संज्ञा धी० दे० "धंसान"।

धंका धी० [सं० धवरा] एक छोटी नदी जो पूरबी माजवा

और ईंदेकलक से होकर बहती है। पूरबी माजवा प्राचीन
काज में दयाव्य देश कहलाता था और यह नदी भी वही

नाम से प्रसिद्ध थी।

धसाना-कि० ए० दे० "धसाना" ।

धसाय-संज्ञा पुं० दे० "धसाय" ।

धाक-संज्ञा पुं० [दे०] एक जंगली जाति जिसकी रहन सहन
भीलों से बहुत कुछ मिलती जुलती है ।

धागड़-संज्ञा पुं० [दे०] (१) एक अनार्य जंगली जाति जो
विष्य और कर्मोरा पहाड़ियों पर रहती है । (२) एक जाति
जो कुएँ और तालाब खोदने का काम करती है ।

धांगर-संज्ञा पुं० दे० "धांगर" ।

धाघना-कि० ए० [दे०] (१) बंद करना । भेड़ना । उ०—
धारथ पागहि शंगन बांधी । राफये ताडि कोठरी धांधी ।
—रघुराज । (ख) बुनि लकरी पट शंगनि बांधी । श्रागि
जगामो कोठरि धांधी ।—कवीर । (२) बहुत अधिक खा
लेना । हसना ।

धांधल-संज्ञा स्त्री० [चनु०] (१) ऊचम । लपटन । नटखटी ।

कि० प्र०—मधाना ।

(२) करब । घोसा । दगा । (३) बहुत अधिक जल्दी ।
जैसे, तुम तो आते ही खाने के लिये धांधल मचाने लगते
हो ।

कि० प्र०—मधाना ।

धांधलपन-संज्ञा पुं० [हिं० धंधल + पन (प्रय०)] (१) पानीपन ।
शरारत । (२) धोखेबाजी । दगाबाजी ।

धांधा-संज्ञा स्त्री० [सं०] हजायची ।

धांधली-संज्ञा स्त्री० [हिं० धांधल + ई (प्रय०)] (१) बगदवी ।
शरीर । पाजी । नटखट । (२) धोखेबाज । दगाबाज ।

धांध-संज्ञा स्त्री० दे० "धांध" ।

धांस-संज्ञा स्त्री० [चनु०] सूखे संवाह या मिर्च आदि की तेज़
गंध जिससे खाँसी खाने लगती है ।

धांसना-कि० अ० [चनु०] पशुओं का खँसना ।

धांसी-संज्ञा स्त्री० [चनु०] घोड़े की खाँसी ।

धा-संज्ञा पुं० [सं०] (१) ब्रह्मा । (२) बृहस्पति ।

वि० धारक । धारण करनेवाला ।

प्रय० तरङ्ग । भोति । प्रकर । जैसे, नवधा भक्ति । उ०—
देरि देही सय कोटि धा के मनो । जीव जीवेश के बीच
माया मनो ।—केशव ।

संज्ञा पुं० [सं० धैवत] संगीत में "धैवत" शब्द या स्वर
का संकेत ।

संज्ञा पुं० [चनु०] तबले का एक बोल । जैसे, धा धा
धियूता ।

संज्ञा स्त्री० दे० "धाव" ।

संज्ञा पुं० दे० "धव" ।

धादी-संज्ञा स्त्री० दे० "धाव" ।

संज्ञा पुं० धव का पेड़ । उ०—रात्रति है वह ज्यों कुल-
कन्या । धाह विरात्रति है संग घन्या ।—केशव ।

धाई-संज्ञा स्त्री० दे० "धाव" ।

धाङ-संज्ञा पुं० [सं० धाव] भाव का एक भेद । उ०—बहु वदुपति
तियेगपति अझाङ । यह साग धाङ राय दिगाङ ।—केशव ।

धाङ्गी-संज्ञा पुं० [सं० धाव] वह आदमी जो धावरपक कार्यों के
लिये दंडाया जाय । हरकारा । उ०—ताक भारी मडर सभ
धाङ धाय समेत । नेगचार पाये अमिन रहयो जासु जस
हेत ।—रघुराज

धङ्गा पुं० [सं० धावकी] धव का पेड़ ।

धाक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वृष । (२) उगाहार । भोजन । (३)
अन्न । आनाज । (४) स्तंभ । संघा । (५) आचार ।

संज्ञा स्त्री० (१) रोष । दुःखदा । आतंक । उ०—(क) धाम
पुरंधर धाम में धाक धाए भुव भुव से ससुद्धत प्रताप सयं
काल है ।—रघुराज । (ख) महावीर शत्रुसाङ नंदराय भाव
सिंह तेरी धाक अरिपुर जात भय भोय से ।—मतिराम ।

मुहा०—धाक धँघना=रोष या दुःखदा होना । आतंक खाना ।
जैसे, शहर में उसके धोखने की धाक धँघ गई । धाक
धाघना=रोष खाना । जैसे, ये जहाँ जाते हैं वहाँ धाक
बाध देते हैं ।

(२) प्रसिद्धि । शोहरत । शौर । उ०—सुरदास प्रभु स्वात
मशाल सँग ब्रह्मलोक यह धाक ।—सूर ।

संज्ञा पुं० [हिं० धाक] टाक । पलास ।

धकार-संज्ञा पुं० [दे०] (१) कान्यकुब्ज और सरनूपारी
ब्राह्मणों में यह ब्राह्मण जो प्रसिद्ध कुलों के धंतगत न हो
और इससे नीचा समझा जाता हो । (२) रामश्रुतों की एक
जाति जो आगरे के आस पास पाई जाती है । (३) राजा
का एक धाम जो बिना पानी के पैदा होता है ।

वि० देगला ।

धका-संज्ञा स्त्री० दे० "धाक" ।

धाखा-संज्ञा पुं० [दे०] पलास का पेड़ ।

धागा-संज्ञा पुं० [हिं० धागा] डोरा । तागा । घटा हुआ सूत ।

मुहा०—धागा भरना=कपड़े के छेद आदि में तागे भरकर
उसे रूढ़ करना । धागे धारो करना=किसी कपड़े के बहुत
ही छोटे छोटे टुकड़े करना । चिपड़े चिपड़े करना ।

धाङ्गी-संज्ञा स्त्री० (१) दे० "डाङ्ग" । (२) दे० "दहाङ्ग" । (३)
दे० "दाङ्ग" ।

संज्ञा स्त्री० [हिं० धार] (१) डाकुओं का आक्रमण ।

कि० प्र०—पड़ना ।

मुहा०—धाङ्ग पड़ना=बहुत जल्दी होना । बहुत सीपदा होना ।
जैसे, देखी कौन सी धाङ्ग पड़ी है जो अभी लट कर लगे
चलें ।

(२) जया। मुंड। गगेह। जैसे, धाड़ की धाड़. धंदा आ गए।
धाड़ना-क्रि० अ० दे० "दहाड़ना"।

धाड़स-संज्ञा स्त्री० दे० "दास"।

धाड़क-संज्ञा पुं० [सं०] (१) प्राचीन काल का एक प्रकार का परिमाण। (२) एक अनार्य होटी जाति।

धाड़ो-संज्ञा स्त्री० [हिं० धाड़] भारी लुटेरा या डाहू।

धात-संज्ञा स्त्री० दे० "धातु"।

धात की-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) धव का पूज। (२) एक प्रकार का माइ जो सारे भारत में होता है और जिसके फूलों का व्यवहार रंगाई के काम में होता है। साल में एक बार इसके पत्ते ऋद्ध जाते हैं।

धाता-संज्ञा पुं० [सं० धत] (१) ब्रह्मा। (२) विष्णु। (३) शिव। महादेव। (४) भृगुमुनि के पुत्र का नाम। (५) ४६ वायुओं में से एक। (६) शोपनाग। (७) १२ सूर्यों में से एक। (८) ब्रह्मा के एक पुत्र का नाम। (९) विधाता। विधि। (१०) साठ संवत्सरों में से एक (११) राण्य के आठवें भेद की संज्ञा [III]।

धि० (१) पाबक। पालनेवाला। (२) रक्षक। रक्षा करनेवाला। (३) धारण करनेवाला।

धातु-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वह मूल द्रव्य जो अपारदर्शक हो, जिसमें एक विशेष प्रकार की चमक हो, जिसमें से होकर ताप और विद्युत् का संचार हो सके तथा जो पीटने अथवा तार के रूप में खींचने से खंडित न हो। एक छनित पदार्थ।

विशेष—प्रसिद्ध धातुएँ हैं—सोना, चाँदी, ताँबा, लोहा, सीसा और रंग। इन धातुओं में मुख्य होता है यहाँ तक कि रंग जो बहुत हल्का है वह भी पानी से सात गुना अधिक घना या भारी होता है। ऊपर लिखी धातुओं में केवल सोना चाँदी और ताँबा ही विशुद्ध रूप में मिलते हैं इससे इन पर बहुत प्राचीन काल में ही लोगों का ध्यान गया। कहीं कहीं विशेषतः बर्कापिण्डों में लोहा भी विशुद्ध रूप में मिलता है। युरोपिण्डों के जाने के पहले अमेरिकावाले बर्कापिण्डों के लोहे के अतिरिक्त और किसी लोहे का व्यवहार नहीं जानते थे। सीसा और रंग विशुद्ध धातु के रूप में प्रायः नहीं मिलते, बल्कि छनित पिण्डों का गन्ना कर साफ करने से निकलते हैं। रंग, सीसा, जस्ता आदि शुद्ध रूप में न मिलनेवाली धातुओं का ज्ञान लोगों को कुछ काल पीछे जब वे मिश्र धातु आदि बनाने लगे तब हुआ। बहुत दिनों तक लोग पीतल तो बना लेते थे पर जस्ते को अच्छी तरह नहीं जानते थे। यही हाल रंग का भी समझिए। पारे को भी लोग बहुत दिनों से जानते हैं। कोई आश्चर्य की बात नहीं है क्योंकि पारा शुद्ध धातु रूप में भी बहुत मिलता है। पारा अर्द्धद्रव अवस्था

में मिलता है इसी से युरोप में बहुत दिनों तक लोग उसे धातुओं में नहीं गिनते थे। पीछे मालूम हुआ कि वह सरसी से जम सकता है और उसका पार बन सकता है। मूल धातुओं के योग से मिश्र धातुएँ बनती हैं—जैसे ताँबे और जस्ते के योग से पीतल, ताँबे और रंग के योग से काँसा आदि। इनके अतिरिक्त अब अतुमिनियम, प्लेटिनम, निकल, कोबाल्ट आदि बहुत सी नई धातुओं का पता लगा है। इस प्रकार धातुओं की संख्या अब बहुत हो गई है। रेडियम नामक धातु का पता लगे अभी थोड़े ही दिन हुए हैं।

यद्यपि साधारणतः धातु बर्न्ही द्रव्यों के कहते हैं जो पीटने से बिना खंडित या चूर हुए बड़ सके पर अब धातु शब्द के अंतर्गत चूर होनेवाले द्रव्य भी लिए जाते हैं और अर्द्धधातु कहलाते हैं, जैसे सेलिया, हरताज, सुरमा, सज्जीवार इत्यादि। इस प्रकार चार वर्ण्य करनेवाले मूल पदार्थ भी धातु के अंतर्गत आ गए हैं। ऊपर कहा जा चुका है कि धातुओं की गणना मूल द्रव्यों में है। आधुनिक रसायन शास्त्र में मूल द्रव्य उसको कहते हैं जिसका विरक्षेयण करने पर किसी दूसरे द्रव्य का योग न मिले। इन्हीं मूल द्रव्यों के अशुयोग से जगत् के निम्न मिश्र पदार्थ बने हैं। आज तक ७२ के लगभग मूल द्रव्यों का पता लग चुका है जिनमें से गंधक, फास्फर, अम्लजन, उम्रन, इत्यादि १३ की गणना धातुओं में नहीं हो सकती बाकी मय धातु ही माने जाते हैं।

तबे हुए लोहे, सीसे, ताँबे आदि के साथ जब अम्लजन नामक वायव्य द्रव्य का योग होता है तब वे विकृत हो जाते हैं (सुरबा हली प्रकार का विकार है)। विह्वल होकर जो पदार्थ उत्पन्न होता है उसे मय या चार कह सकते हैं, यद्यपि वैद्यक में प्रचलित भस्म और दूसरे प्रकार से मास द्रव्यों को भी कहते हैं। देरी वैद्य मय, चार और लवण में प्रायः भेद नहीं करते; कहीं कहीं तीनों शब्दों का प्रयोग वे एक ही पदार्थ के लिये करते हैं। पर आधुनिक रसायन में चार और अम्ल के योग से जो पदार्थ उत्पन्न होते हैं उनको लवण कहते हैं। इस प्रकार आजकल वैज्ञानिक व्यवहार में लवण शब्द के अंतर्गत तृतिवा हीराकलीस आदि भी आ जाते हैं। लव्ये के चूरे को यदि हवा में (जिसमें अम्लजन रहता है) तथा या गला का द्रव्यमें घोड़ा सा गंधक का तेजाव डाल दें तो तेजाव का अम्लगुण्य नष्ट हो जायगा और हव्य योग से तृतिवा उत्पन्न होगा। अतः तृतिवा भी लवण के अंतर्गत हुआ।

इसके वैद्यक के अंगों में सोना, चाँदी, ताँबा, रंग, लोहा, ... ये सप्त धातु माने गए हैं। सोना-माली, ... काँसा, पीतल, सिंदूर और शिब-कहाते हैं। पारे को रस कहा है।

गंधक, ईशुप, अश्रक, हराहाल, मैनसिक, सुरमा, सुहागा, राश्टी, चूंकक, फिंररी, गेरु, जरिया, कसीस, खपरिया, बाद, सुपदालक, ये सब बरस कइलाते हैं। धातुओं के मसम का सेवन बंध लोग अनेक रोगों में कराते हैं।

(२) शरीर को धारण करनेवाला द्रव्य। शरीर को बनाए रखनेवाले पदार्थ।

विशेष—वैद्यक में शरीरस्थ सात धातुएँ मानी गई हैं—रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा और शुक्र। सुश्रुत में इनका विवरण इस प्रकार मिलता है। जो कुछ खाया जाता है उससे जो द्रवरूप सूक्ष्म सार बनता है वह रस कहलाता है और उसका स्थान हृदय है जहाँ से वह धमनियों के द्वारा सारे शरीर में फैलता है। यही रस अधिकृत श्रवस्था में तेज (पित्त के कार्य) के साथ मिश्रित होकर लाज रंग का हो जाता है और रक्त कहलाता है। रक्त से मांस, मांस से मेदा, मेदा से हड्डी, हड्डी से मज्जा और मज्जा से शुक्र बनता है। वात, पित्त और कफ की भी धातु संज्ञा है।

(३) बुद्ध या किन्हीं महात्मा की अस्थि आदि जिते वैदक लोग हिन्दू में बंद करके स्थापित करते थे।

यौं—धातुगर्भ।

(४) शुक्र। धर्म।

मुहूर्त—धातु गिरना—पेसाव के साथ या यो ही वीर्य गिरने का योग होता। प्रमेह होता।

संज्ञा पुं० (३) मूल। तब ४०—जाके शक्ति नचत नाना विधि धनि अर्पनी अर्पनी। सुरदास मय प्रकृति धातुमय शक्ति विचित्र सजनी।—सूर।

विशेष—पंचभूतों और पंचतन्मात्र के भी धातु कहते हैं। यौद्धों में अठारह धातुएँ मानी गई हैं—चक्षुधातु, घ्राणधातु, श्रोत्रधातु, जिह्वाधातु, कायधातु, रूपधातु, शब्दधातु, गंधधातु, रसधातु, स्वातन्त्र्यधातु, वस्तुविज्ञानधातु, श्लेषविज्ञानधातु, धानु, धाराविज्ञानधातु, जिह्वाविज्ञानधातु, कायविज्ञानधातु, मनोधधातु, धर्मधातु, मनोविज्ञानधातु।

(२) शब्द का मूल। क्रियावाचक प्रकृति। वह मूल जिससे क्रियाएँ बनी हैं या बनती हैं। जैसे, संस्कृत में मू, कृ, धृ इत्यादि। (व्याकरण)

विशेष—यद्यपि हिंदीव्याकरण में धातुओं की कल्पना नहीं की गई है परकी जा सकती है। जैसे, करना का 'कर' हंसना का 'हंस' इत्यादि

(१) पराधा।

धातु का सीस—संज्ञा पुं० [सं०] कसीस।

धातुक्षय—संज्ञा पुं० [सं०] (१) बाली का रोग जिससे शरीर बोज हो जाता है। (२) प्रमेह आदि रोग जिनमें शरीर से बहुत वीर्य निकल जाता है।

धातुगर्भ—संज्ञा पुं० [सं०] यह कंगूरेदार हिन्ना या पात्र जिसमें बीड़ लोग बुद्ध या अपने दूसरे भारी साधु-महात्माओं के शक्ति या हृदिकर्मा आदि रखते हैं। देहगोप।

धातुगोप—संज्ञा पुं० दे० "धातुगर्भ"।

धातुन्न—संज्ञा पुं० [सं०] वह पदार्थ जिससे शरीर का धातु नष्ट हो। जैसे, कर्जी, पारा आदि।

धातुचैतन्य—वि० [सं०] धातु (वीर्य) को क्षय या चैतन्य करनेवाला। जिससे वीर्य बड़े।

धातुद्रावक—संज्ञा पुं० [सं०] सोहागा, जिसके शब्दों से सोना आदि गल जाता है।

धातुनाशक—संज्ञा पुं० दे० "धातुगर्भ"।

धातुप—संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक के अनुसार शरीर में का वह रम या पतला धातु जो अोजन के उपरान्त तुरंत ही तैयार होता है और जिससे शेष धातुओं का पोषण होता है।

विशेष—दे० 'धातु'।

धातुपुष्ट—वि० [सं०] वीर्य को गाढ़ा करनेवाला। जिससे वीर्य गाढ़ा होकर बड़े।

धातुपुष्पिका; धातुपुष्पी—संज्ञा स्त्री० [सं०] धव का फूल।

धातुप्रधान—संज्ञा पुं० [सं०] वीर्य।

धातुभृत्—संज्ञा पुं० [सं०] पर्वत। पहाड़।

वि० जिससे धातु का पोषण हो।

धातुवैरी—संज्ञा पुं० [सं०] धनुवैरी। गंधक।

धातुमर्म—संज्ञा पुं० [सं०] कथी धातु को साफ करना, जो ६४ कलाओं के अंतर्गत है। धातुवाद। उ०—सूचकर्म धातु मर्म सूत्र क्रोड़नाजिन्।—विश्राम।

धातुमल—संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक के अनुसार कफ, पित्त, पसीने, मालुन, बाज, आंस या कान की मूत्र आदि जिसकी सृष्टि किसी धातु के परिपक्व हो जाने पर उसके बचे हुए निरार्थक अंश या मज से होती है।

धातुमाशिक—संज्ञा पुं० [सं०] मोनामक्ली नाम की वृषधातु।

धातुमारिणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] सुहागा।

धातुराग—संज्ञा पुं० [सं०] धातुओं से निकला हुआ रंग। जैसे, ईशुप, गेरु आदि। उ०—सिय रंग खिरी धातुराग सुमननि मूपन विभाग तिलक बरनि बयों कहीं कलाविधान की।—तुलसी।

धातुराजक—संज्ञा पुं० [सं०] शुक्र या वीर्य जो शरीर के सब धातुओं में धेर माना जाता है।

धातुरेचक—वि० [सं०] वीर्य को बहानेवाला। जो वीर्य को बहाकर निकाल दे।

धातुवर्द्धक—वि० [सं०] वीर्य को बढ़ानेवाला। जिससे वीर्य बड़े।

धातुवह्नम—संज्ञा पुं० [सं०] सोहागा।

धातुवाद—संज्ञा पुं० [सं०] (१) सैसड कलाभों में से एक, जिसमें कच्ची धातु को साफ़ करते, तथा एक में मिली हुई अनेक धातुओं को अलग अलग करते हैं। (२) रसायन बनाने का काम। (३) तबिये से सोना याना। (४) कीमियागिरी।
३०—धातुवाद निरुपाधि सव सद्गुण काम सुमीत। देव दरस कबिकाल में पेषिन दुरे समीत।—तुलसी।
धातुवादी—संज्ञा पुं० [सं०] रसायन की सहायता से सोना या चाँदी बनानेवाला। कारंघमी। रसायनी। कीमियागर।

धातुवीर्य—संज्ञा पुं० [सं० धातुवैरिय] गंधक।
धातुखर—संज्ञा पुं० [सं०] (१) कसीस। (२) सीस।
धातुसंज्ञ—संज्ञा पुं० [सं०] सीसा।
धातुस्तंभक—वि० [सं०] वीर्य को रोकनेवाला। जिससे वीर्य का संबंधन हो और वह देह में रखलित हो।
धातुहन—संज्ञा पुं० [सं०] गंधक।
धातू—संज्ञा स्त्री० दे० “धातु”।

धातूपल—संज्ञा पुं० [सं०] छरियामिठी। खरी। दुधिया या हुदी।

धातुपुत्र—संज्ञा पुं० [सं०] ब्रह्मा के पुत्र सप्तकुमार।
धातुपुष्पिका; धातुपुष्पी—संज्ञा स्त्री० [सं०] धव के फूल।
धात्र—संज्ञा पुं० [सं०] पात्र। भरतन।
धात्रिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] भाविका।

धात्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) माता। माँ। (२) वह स्त्री जो किसी शिशु को दूध पिलाने और उसका लाडलन पालन करने के लिये नियुक्त की जाय। धाय। दाई। (३) गायत्री-स्वरूपिणी भगवती। (४) गंगा। (५) भाविका। (६) मूमि। पृथ्वी। (७) सेना। फौज़। (८) गाय। (९) आर्या छंद का एक भेद जिसमें १६ गुरु और १६ लघु मात्राएँ होती हैं।
धात्रीपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] (१) ताहीस पत्र। (२) भाविके की पत्ती।

धात्रीपुत्र—संज्ञा पुं० [सं०] नट। धाय का लड़का।
धात्रीफल—संज्ञा पुं० [सं०] भाविका। आमला।
धात्रीविद्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह विद्या जिसकी सहायता से दाह्यार्थ भग्नेवती शिवों को प्रसव कराती और प्रभूता तथा शिशु की रक्षा आदि करती हैं। लड़का जनाने और इसे पालने आदि की विद्या।

धात्रेयी—संज्ञा स्त्री० [सं०] धात्री। धाय। दाई।
धात्र्यर्थ—संज्ञा पुं० [सं०] धातु से निकलनेवाले (किली शब्द का) अर्थ। मूल और पदका अर्थ।

धाधना—कि० सं० [?] देखना।
धान—संज्ञा पुं० [सं० धान्य] लृण जाति का एक पौधा जिसके धीन की गिनती अर्धे अक्षों में है। शालि। मीहि।
विशेष—भारतवर्ष तथा आस्ट्रेलिया के कुछ भागों में यह जंगली

होता है। इसकी बहुत अधिक खेती भारत, चीन, यमना, मलय, अमेरिका (संयुक्त राज्य और ब्रेजिल) तथा योशी बहुत इटली और स्पेन आदि युरोप के दक्षिणी भागों में होती है। इसके लिये तर जमीन और गरमी चाहिए। यह संसार के उन्हीं गरम भागों में होता है जहाँ वर्षा अच्छी होती या सिंचाई के लिये खूब पानी मिलता है। धान की खेती बहुत प्राचीन काल से होती आ रही है इसी से उसके अनेक भेद हो गए हैं।

अथर्ववेद में धाना और धान्य शब्द आए हैं। धाना शब्द का अर्थ सायण ने कृदा हुआ नौ किया है, पर 'धान्य' का अर्थ दूसरा नहीं किया है। इसके अतिरिक्त अथर्ववेद, शांखायन माहाण्य, उपनयष भाद्रथ, कात्यायन श्रौतसूत्र इत्यादि में धान्य शब्द का प्रयोग मिलता है। पर कहीं कहीं धान्य शब्द अन्न मात्र के अर्थ में भी है। तैत्तिरीय संहिता, वाजसनेय संहिता आदि में मीहि शब्द या अर आया है। कृष्ण यजुर्वेद में शुक्र और कृष्ण मीहि का उल्लेख है। फारसी में भी 'विरं' शब्द चावल के लिये बचमान है जो निश्चय मीहि से संबंध रखता है। वससे स्पष्ट है कि प्राचीन ऋषियों को धान का पला बस समय भी था जब इनका विस्तार मध्य एशिया तक था। ईसा से २८०० वर्ष पूर्व शिवर्ष राता के समय में चीन में एक स्योहार मनाया जाता था जिसमें ५ प्रकार के अन्नों की बोआई आरंभ होती थी। इन पाँच अन्नों में धान का नाम भी है। चीन में धान जंगली भी पाए जाते हैं और धान की खेती भी बहुत दिनों से होती आ रही है।

जापान, चीन, हिंदुस्तान, यमना मलया इत्यादि में चावल बहुत उगाया जाता है। यद्यपि इसमें मांस बनानेवाला अंश बहुत कम होता है पर गरम देशों के लिये यह अन्न बहुत उपयुक्त होता है।

भारतवर्ष में सब से अधिक धान बंगाल में होता है। वहीं इसके तीन मुख्य भेद माने जाते हैं—(१) आमन (भग-हनी), जो जेठ आषाढ़ में बोया जाता, है और अगहन पूष में कटता है। (२) भाउस (भदई) जो वैशाख जेठ में बोया जाता है और भादों कुभार में कटता है, और (३) वोरें, जो पूस माघ में बोया जाता और वैशाख जेठ में कटता है। जो धान एक स्थान से बहाड़ कर दूसरे स्थान पर लगा कर पैदा किया जाता है उसे जड़हन कहते हैं, क्योंकि वह जाड़े में तीव्र होता है। यों तो भिन्न भिन्न स्थानों में धान की बोआई पूस से लेकर आषाढ़ तक, होती है और कटाई जेठ से अगहन तक, पर उत्तरीय भारत में अधिकतर धान आषाढ़ सावन में बोया जाता है। साधारण धान तो भादों कुभार तक तीव्र हो जाता है पर जड़हन अगहन में कटता है। महीन चावल के धान अच्छे समझे जाते हैं। अच्छी

जाति के बड़िया चावल प्रायः जड़हन के ही होते हैं। धान या चावल के बहुत अधिक भेद हैं। सन् १८७२ में ब्रमायव धर में रत्ने के लिये जो चावलों का संग्रह हुआ था उसमें पाँच हजार प्रकार के चावल रसनाए गए थे। इस संख्या को हीक न मानकर प्राचीन निहाड़े भी लें तो भी बहुत भेद होते हैं। महीन सुगंधित चावलों में बासमती सबसे प्रसिद्ध है। जड़हनिया चावलों में बासमती के अतिरिक्त लहरा, राम-भोग, शानीकाज, गुलसीवास, मोलीचूर, समुद्रफेन, कनक-जीरा इत्यादि भी अरुदे चावल समझे जाते हैं। साधारण धान भी बहुत प्रकार के होते हैं जैसे, यमी, हुदी, साठी, सरया, रामजवाहन इत्यादि। पहाड़ों के बीच की तर जमीन में भी धान अच्छे होते हैं—जैसे कांगड़े में, हरिद्वार के पास तवोरन में। काश्मीर में भी अनेक प्रकार के अरुदे अच्छे चावल होते हैं।

धानक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) धनिया। (२) एक रत्ती का चौथाई भाग।

संज्ञा पुं० [सं० धनुष्क] (१) धनुष चलायेवाला। धनुर्दारी। तीरंदाज। कमनैत। उ०—भौंई धनुष धन धानक दूसर सरि क धराय। गगन धनुक जो उगवे लामहिं सो लिपि जाय।—जायसी। (२) धुनिया। रुई धुनेवाला। (३) एक पहाड़ी जाति का नाम जो पृथ्वी में पाई जाती है।

धानकी—संज्ञा पुं० [हिं० धानुक] (१) धनुर्दर। धनुर्धारी। (२) कमरेश्वर। (दि०)

धानजर्—संज्ञा पुं० [हिं० धान + जर्] एक प्रकार का धान।
धानपान—संज्ञा पुं० [हिं० धान + पान] विवाह से कुछ ही पहले होनेवाली एक रसम जिसमें घर-पक्ष की ओर से कन्या के घर धान और हलदी भेजी जाती है। इस रसम के उपरान्त विवाह-संबंध प्रायः पूर्ण रूप से निश्चित हो जाता है।
वि० दुबका पतला। नाशुक। (यात्रारु)

धानमाली—संज्ञा पुं० [सं०] किसी दूसरे के चलाए हुए घर को रोकने की एक क्रिया। उ०—अरु विनीत तिमि मच्छि प्रसमन तैसदि सारधिमानी। रुचिर वृत्ति मत विनु खीमनस धन धानहुँ एत माली।—रघुराज।

धानानवर्त—संज्ञा पुं० [सं०] एक गोपर्व का नाम।
धाना—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) भूना हुआ औ या चावल। यहुरी। (२) धनिया। (३) अना का कण। सुदो। (४) सत्। (५) धान। (६) अन्न मात्र।

धौं हिं० अ० [सं० धान] (१) चौड़ना। तेजी से चलना। भागना। उ०—पुन रथान. धौरी धन धाये। सेत युजा धग पति दिलाये।—जायसी।
मुहा०—धाय पूसना—दूर रहना। अना रहना। हाथ जोटना। संबंध न गलना। उ०—धाय पूजे इस नीकी से।

(२) कोशिश करना। प्रयत्न करना।
धानाचूर्य—संज्ञा पुं० [सं०] सत्।

धानी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वह जो धारण करे। यह जिसमें कोई वस्तु रखी जाय। (२) स्थान। जगह। जैसे, राज-धानी। उ०—समथल जैव नीच नहीं कतहुँ पूर्ण धर्म धनी धानी। सरत सुरस रंजित नीरसमदत कोसखपति रम-धानी।—रघुराज। (२) पीलू का पेड़। (३) धनिया। संज्ञा स्त्री० [हिं० धान + ई (प्रत्य०)] एक प्रकार का हलका हरा रंग जो धान की पत्ती के रंग का सा होता है। यह प्रायः पीले और नीले रंग को मिलाकर बनाया जाता है। तैतई।
वि० धान की पत्ती के रंग का। हलके हरे रंग का।
संज्ञा स्त्री० [सं० धान] (२) भूना हुआ औ या गोहूँ।

धौ०—धुंधधानी।
संज्ञा स्त्री० धौं धौं “धान्य”।
संज्ञा स्त्री० संपूर्ण जाति की एक संकर रागिनी।

धानुक—संज्ञा पुं० [सं० धानुक] (१) धनुर्दर। धनुर्धारी। धनुस् चलायेवाला। कमनैत। (२) एक नीच जाति। इस जाति के लोग प्रायः ब्याह शब्दी में सुरही शब्दि बजाते हैं।

धानुष्क—संज्ञा पुं० [सं०] धनुस् चलाकर अपनी जीविका का निर्वाह करनेवाला। कमनैत। धनुर्धर।

धानुष्का—संज्ञा स्त्री० [सं०] अयामार्ग। चिबड़ा।
धानुष्प—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का वस्त्र।
धान्य, धयक—संज्ञा पुं० [सं०] धनिया।

धान्य—संज्ञा पुं० [सं०] (१) चार तिल का एक परिमाण या तौल। (२) धनिया। (३) कैपर्सो मुस्तक। एक प्रकार का नागरमोषा। (४) धान। जिसके समेत चावल। (५) अन्न मात्र।
विशेष—अन्न मात्र को धान्य कहते हैं। किसी किसी स्थिति में लिखा है कि पेत में के अन्न को शस्य और जिबके सहित अन्न के दाने को धान्य कहते हैं।

धौ०—धनधान्य।
(६) प्राचीन काल का एक प्रकार का अन्न जिसका प्रयोग शत्रु के शस्त्र निष्फल करने में होता था और जो पाषाणिक के अनुसार विश्वामित्र से रामचंद्र को मिला था।

धान्यक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) धनिया। (२) धान्य। धान।
धान्यकोष्ठक—संज्ञा पुं० [सं०] धानान भरने के लिये बना हुआ घर या मरतन। कोठिबा। गोला।
धान्यधेनु—संज्ञा पुं० [सं०] कांजी।
धान्यधेनु—संज्ञा स्त्री० [सं०] पुराणानुसार दान के लिये एक

धातुवाद—संज्ञा पुं० [सं०] (१) सैलस कलाओं में से एक, जिसमें कच्ची धातु को साफ़ करते, तथा एक में मिली हुई अनेक धातुओं को मलय मलय करते हैं। (२) रसायन बनाने का काम। (३) तबे से सोना बनाना। (४) कीमियागिरी।

३०—धातुवाद निरुपाधि सव सद्गुह लाभ सुगीत। देव दरस कञ्जिकाल में पोगिम दुरे समीत।—तुलसी।

धातुवादी—संज्ञा पुं० [सं०] रसायन की सहायता से सोना या चाँदी बनानेवाला। कारंधमी। रसायनी। कीमियागर।

धातुवेदी—संज्ञा पुं० [सं०] धतुवेदिन] गंधक।

धातुवेदार—संज्ञा पुं० [सं०] (१) कसीस। (२) सीसा।

धातुसंज्ञ—संज्ञा पुं० [सं०] सीसा।

धातुस्तंभक—वि० [सं०] वीथ्यं को रोकनेवाला। जिससे वीथ्यं का स्तंभन हो और वह ढेर में रखलित हो।

धातुहन—संज्ञा पुं० [सं०] गंधक।

धातू—संज्ञा स्त्री० दे० "धातु"।

धातुपल—संज्ञा पुं० [सं०] छरिपामिठी। पत्ती। दुधिया या दुबो।

धातुपुत्र—संज्ञा पुं० [सं०] मल्ला के पुत्र सप्तकुमार।

धातुपुष्पिका; धातुपुष्पी—संज्ञा स्त्री० [सं०] धव के फूल।

धात्र—संज्ञा पुं० [सं०] पात्र। भरतन।

धात्रिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] श्राविका।

धात्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) माता। मां। (२) वह स्त्री जो किसी शिशु को दूध पिलाने और उसका लाजान पालन करने के लिये नियुक्त की जाय। धाय। दाई। (३) गायत्री-स्वरूपिणी भगवती। (४) गंगा। (५) श्राविका। (६) सूयि। (७) पृथ्वी। (८) सेना। कौत्र। (९) नाय। (१०) श्राय्यां दृढ़ का एक भेद जिसमें १६ गुरु और १६ लघु मात्राएँ होती हैं।

धात्रीपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] (१) तालीस पत्र। (२) श्राविके की पत्ती।

धात्रीपुत्र—संज्ञा पुं० [सं०] नट। धाय का लड़का।

धात्रीफल—संज्ञा पुं० [सं०] श्राविका। श्यामला।

धात्रीविद्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह विद्या जिसकी तथायता से दाहर्षा गभंयती स्त्रियों को प्रसव कराती और प्रसूता तथा शिशु की रक्षा श्रादि करती हैं। लड़का जनाने और हसे राखने श्रादि की विद्या।

धात्रेयी—संज्ञा स्त्री० [सं०] धात्री। धाय। दाई।

धात्वर्थ—संज्ञा पुं० [सं०] धातु से निकलनेवाले (किसी शब्द का) अर्थ। मूल और पदका अर्थ।

धाधनार्थ—वि० सं० [?] देवता।

धान—संज्ञा पुं० [सं०] धान्य। वृष्य जाति का एक पौधा जिसके बीज की गिनती अच्चे अन्न में है। शालि। मीहि।

विशेष—भारतवर्ष तथा आस्ट्रेलिया के कुछ भागों में यह जंगली

होता है। इसकी बहुत अधिक खेती भारत, चीन, यमना, मलयवा, अमेरिका (संयुक्त राज्य और ब्रिजिन) तथा थोड़ी बहुत इटली और स्पेन आदि यूरोप के दक्षिणी भागों में होती है। इसके लिये तर जमीन और पानी चाहिए। यह संसार के उन्हीं गरम भागों में होता है जहाँ वर्षा अच्छी होती या सिंचाई के लिये खूब पानी मिलता है। धान की खेती बहुत प्राचीन काल से होती चर रही है इसी से उसके अन्नत भेद हो गए हैं।

अग्नेय में धाना और धान्य शब्द आए हैं। धाना शब्द का अर्थ सायण ने कृदा हुआ जो किया है, पर 'धान्य' का अर्थ कृदा नहीं किया है। इसके अतिरिक्त अयर्वेद, शांखायन ब्राह्मण, मतपथ ब्राह्मण, कात्यायन श्रौतसूत्र इत्यादि में धान्य शब्द का प्रयोग मिलता है। पर कहीं कहीं धान्य शब्द अन्न मात्र के अर्थ में भी है। तैत्तिरीय संहिता, याज्ञन्येय संहिता आदि में मीहि शब्द बार बार आया है। कृष्ण यजुर्वेद में शुक्र और कृष्ण मीहि का उल्लेख है। फारसी में भी 'चिरंज' शब्द चावल के लिये वर्तमान है जो मिश्रव मीहि से संबंध रखता है। इससे स्पष्ट है कि प्राचीन ऋषियों का धान का पता बल समय भी था जब इनका विद्वान् मध्य एशिया तक था। ईसा से २००० वर्ष पूर्व शिवनेग राजा के समय में चीन में एक लोहार मनाया जाता था जिसमें ५ प्रकार के अन्नों की बोझाई आरंभ होती थी। इन पाँच अन्नों में धान का नाम भी है। चीन में धान जंगली भी पाए जाते हैं और धान की खेती भी बहुत दिनों से होती चर रही है।

जापान, चीन, हिंदुस्तान, यमना मलयवा इत्यादि में चावल बहुत खाया जाता है। यद्यपि इसमें मांस बनानेवाला अंश बहुत कम होता है पर गरम देशों के लिये यह अन्न बहुत उपयुक्त होता है।

भारतवर्ष में सव से अधिक धान बंगाल में होता है। यहाँ इसके तीन मुख्य भेद माने जाते हैं— (१) आमन (अग्र-दनी), जो जेठ आषाढ़ में बोया जाता, है और अगहन पूष में कटता है। (२) आइस (भदई) जो वैशाख जेठ में बोया जाता है और भादों कुम्भार में कटता है, और (३) योरो, जो पूष माघ में बोया जाता और वैशाख जेठ में कटता है। जो धान एक स्थान से छत्राङ्क कर दूसरे स्थान पर लगा कर पैदा किया जाता है उसे जड़हन कहते हैं, क्योंकि यह जाड़े में तैयार होता है। यों तो मित्र मिल स्थानों में धान की बोझाई पूस से लेकर आषाढ़ तक, होती है और कटाई जेठ से अगहन तक, पर वस्तीय भारत में अधिकतर धान आषाढ़ सावन में बोया जाता है। साधारण धान से भादों कुम्भार तक तैयार हो जाता है पर जड़हन अगहन में कटता है। महीन चावल के धान अच्चे समझे जाते हैं। अच्ची

जाति के बड़िया चावल प्रायः जड़हन के ही होते हैं। धान या चावल के बहुत अधिक भेद हैं। सन् १८०२ में अजायब घर में रखने के लिये जो चावलों का संग्रह हुआ था उसमें पंच हजार प्रकार के चावल इतलाए गए थे। इस संख्या को ठीक न मानकर आधी तिहाई भी लें तो भी बहुत भेद होने हैं। महीन मुगंधित चावलों में चासमती संघ से प्रसिद्ध है। जड़हनिया चावलों में चासमती के अतिरिक्त लरेरा, राम-भोग, शानीकांजर, गुलसीवास, मोतीधूर, सयुद्धफेन, कनक-जीरा इत्यादि भी अच्छे चावल समझे जाते हैं। साधारण धान भी बहुत प्रकार के होते हैं जैसे, बगरी, दुद्धी, साठी, सरवा, रामनवाहन इत्यादि। पहाड़ों के बीच की तर जमीन में भी धान अच्छे होते हैं—जैसे कागड़े में, हरिद्वार के पास सोधवन में। कारमौर में भी अनेक प्रकार के अच्छे अच्छे चावल होते हैं।

धानक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) धनिया। (२) एक रत्ती का चौथाई भाग।

संज्ञा पुं० [सं० धनुष्क] (१) धनुष खलानेवाला। धनुर्दारी। तीरंदाज। कर्मनैत। उ०—भौंह धनुष धन धानक दूसर सहि म कराय। गगन धनुक जो उगरी जाग्रहिं सो विपि जाय।—जायसी। (२) धुनिया। हई धुननेवाला। (३) एक पहाड़ी जाति का नाम जो पूरब में पाई जाती है।

धानकी—संज्ञा पुं० [हिं० धानुक] (१) धनुर्दर। धनुर्धारी। (२) कामदेव। (वि०)

धानजरी—संज्ञा पुं० [हिं० धान + जरी] एक प्रकार का धान।

धानपान—संज्ञा पुं० [हिं० धान + पान] विवाह से कुछ ही पहले होनेवाली एक रसम जिसमें घर-पक्ष की और से कच्चा के धा धान और दही भेजी जाती है। इस रसम के उपरान्त विवाह-संबंध प्रायः पूर्ण रूप से निश्चित हो जाता है।

वि० दुबका पतला। नातुक। (धानारू)

धानमाली—संज्ञा पुं० [सं०] किसी दूसरे के खलाए हुए घर का रोकने की एक क्रिया। उ०—बह विनीत सिमि मत्तदि प्रसन्न हैसहि सात्विमाली। रुचि वृत्ति मत्त विवृत्तीमन्नस धन धानहुँ छत माली।—रघुनाज।

धानान्नचरत—संज्ञा पुं० [सं०] एक संघर्ष का नाम।

धाना—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) भूना हुआ जौ या चावल। बहुरी। (२) धनिया। (३) घस का कण। चुट्टी। (४) सत्तू। (५) धान। (६) ब्रह्म मान।

वि० धि० धा० [सं० धवन] (१) दौड़ना। तेजी से चलना। भागना। उ०—पूत दयाम धोरी धन धाये। सेत धुना दग पति दिखाने।—जायसी।

मुहा०—धाप पसना—दूर रहना। अलग रहना। हाप जोटना। संवेध न रखना। उ०—धाप पूने हस नौकी से।

(२) कोशिश करना। प्रयत्न करना।

धानाचूकै—संज्ञा पुं० [सं०] सत्तू।

धानी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वह जो धारण करे। वह जिसमें कोई वस्तु रखी जाय। (२) स्थान। जगह। जैसे, राज-धानी। उ०—समयध ऊँच नीच नहिं कतहुँ पूर्ण धर्म धन धानी। सरस सुरस रंजित गीरसमहत कोसलपति रज-धानी।—रघुनाज। (२) पीलू का पेड़। (३) धनिया। संज्ञा स्त्री० [हिं० धान + ई (प्रत्य०)] एक प्रकार का हलका हरा रंग का धान की पत्ती के रंग का सा होता है। यह प्रायः पीले और नीले रंग का मिलाकर बनाया जाता है। तोताई।

वि० धान की पत्ती के रंग का। हलके हरे रंग का।

संज्ञा स्त्री० [सं० धाना] (२) भूना हुआ जौ या गेहूँ।

यौ०—गुड़धानी।

संज्ञा स्त्री० धि० दे० “धान्य”।

संज्ञा स्त्री० संपूर्ण जाति की एक संकर रागिनी।

धानुक—संज्ञा पुं० [सं० धानुष्क] (१) धनुर्दर। धनुर्धारी। धनुस् खलानेवाला। कर्मनैत। (२) एक मीच जाति। इस जाति के बोम प्रायः ब्याह शारी में तुरही खादि बजाते हैं।

धानुष्क—संज्ञा पुं० [सं०] धनुस् बजाकर अपनी जीबिका का निर्वाह करनेवाला। कर्मनैत। धनुर्दर।

धानुष्का—संज्ञा स्त्री० [सं०] अणामार्ग। चिचदा।

धानुष्य—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का शर्म।

धान्य, धयक—संज्ञा पुं० [सं०] धनिया।

धान्य—संज्ञा पुं० [सं०] (१) बार तिल का एक परिमाण या तौल। (२) धनिया। (३) कर्पूरों सुरतक। एक प्रकार का नारमोया। (४) धान। जिसके समेत चावल। (५) अन्न मात्र।

विशेष—अन्न मात्र को धान्य कहते हैं। किसी किसी स्थिति में लिखा है कि चेत में के अन्न को शस्य और सुिकके सहित अन्न के दाने को धान्य कहते हैं।

यौ०—धनधान्य।

(६) प्राचीन काल का एक प्रकार का अन्न जिसका प्रयोग अन्न के अन्न निष्कृत करने में होता था और जो पारसीकी के अनुसार विश्वामित्र से दामचंद्र को मिला था।

धान्यक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) धनिया। (२) धान्य। धान।

धान्यकोष्टक—संज्ञा पुं० [सं०] अनाज भरने के लिये बना हुआ घर या बरतन। कोठिका। गोला।

धान्यतुषोद—संज्ञा पुं० [सं०] कमी।

धान्यधेनु—संज्ञा स्त्री० [सं०] पुष्पायुनुमार दान के लिये एक

कल्पित गाय जिसकी कल्पना धान की डेरी में की जाती है। इसका दान विपुत्र संकृति या कार्शिक मास में सब प्रकार का सुख, सीमाय, और पुण्य संवय करने के लिये होता है।

धान्यपंचक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) भावप्रकाश के अनुसार गालि, मोदि, शूक, तिथी और चुद्र वे पंचों प्रकार के धान। (२) वैद्यक में एक प्रकार का पाचक का पानी जो पंचों प्रकार का धान, वेक और आम, आदि के मिलाकर बनाया जाता है और जिसका व्यवहार आम, शूल तथा अतिसार आदि रोगों में होता है। (३) वैद्यक में एक पाचक औषध, जिसे धनिया, सेंद्र, बेल्गिरी, नागरमोषे और प्रायमाण को मिलाकर बनाते हैं। इसका व्यवहार आमातिसार तथा श्वरशूल आदि रोगों में होता है।

धान्यपति-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चावल। (२) जो।

धान्यपानक-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का पन्ना जो धनिपू से बनाया जाता है। इसके बनाने के लिये पहले धनिपू को सिल पर पीस कर पानी के साथ छान लेते हैं और तब इसमें नमक, मिर्च, चीनी और सुगंधित पदार्थ आदि मिला देते हैं।

धान्यबीज-संज्ञा पुं० [सं०] धनिया।

धान्यमालिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] राधक के यहाँ रहनेवाली एक राक्षसी जिसे बसने जानकी को समझाने के लिये नियुक्त किया था।

विशेष—किसी किसी का मत है कि राधक की छोटी मंदोदरी का ही दूसरा नाम धान्यमालिनी था।

धान्यमाष-संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का एक परिमाण जो दो धान के बराबर होता था।

धान्यमुस-संज्ञा पुं० [सं०] सुधुत के अनुसार एक प्रकार का अन्न जिसका व्यवहार प्राचीन काल में वीर-हाड़ में होता था।

धान्यमूल-संज्ञा पुं० [सं०] कांजी।

धान्ययूप-संज्ञा पुं० [सं०] कांजी।

धान्यपेलि-संज्ञा स्त्री० [सं०] कांजी।

धान्यराज-संज्ञा पुं० [सं०] जो।

धान्यवर्ग-संज्ञा पुं० [सं०] पंचों प्रकार के धान। धान्य-पंचक।

धान्यवधन-संज्ञा पुं० [सं०] अन्न उधार देने का व्यवहार जिसमें ऋणी से उचढ़ा या सवाया लिया जाता है।

धान्यबीज-संज्ञा पुं० [सं०] (१) धान का बीज। (२) धनिया।

धान्यवीर-संज्ञा पुं० [सं०] हरद। माप।

धान्यवाकर्ता-संज्ञा स्त्री० [सं०] चीनी मिला हुआ धनिपू का पानी जो अंतर्दाह शांत करने के लिये पिया जाता है।

धान्यशीर्षक-संज्ञा पुं० [सं०] धान की मंत्री।

धान्यशुद्धी-संज्ञा स्त्री० [सं०] वैद्यक में एक औषध जो उबराति-सार और कफ के प्रकोप को शांत करता है। इसके बनाने के लिये १ तोला धनिया और २ तोला सोड बूट कर भाप सेर पानी में मिलाते और इसे भाप पर चढ़ा देते हैं, और जब, भाप पाव पानी बच जाता है तब इसे अतार लेते हैं।

धान्यशूल-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार दान करने के लिये वह कल्पित पर्वत जिसकी कल्पना धान की डेरी में की जाती है। कहते हैं कि इसके दान करनेवाले को स्वर्ग में सेवा के लिये भस्पाई और गंधर्व मिलते हैं और यदि वह किसी प्रकार इस लोक में आ जाय तो राजा होता है।

धान्यसार-संज्ञा पुं० [सं०] सेंद्रुल। चावल।

धान्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] धनिया।

धान्याक-संज्ञा पुं० [सं०] धनिया।

धान्याकृत-संज्ञा पुं० [सं०] रेतिवर। कृपक।

धान्यान्नक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वैद्यक में अन्न बनाने के लिये धान की सहायता से रोधा और साफ़ किया हुआ अन्नक।

विशेष—पहले अन्नक को सुखा कर खाल में खूब महीन पीस लेते हैं और तब उस पूर्ण को चौथाई धान के साथ मिला कर एक कंवल में बांध कर तीन दिन तक पानी में रखते हैं। तीन दिन बाद उस पोदली को हाथ से दूतना मजते हैं कि वह छन कर नीचे पानी में गिर जाता है। उसी अन्नक को निधार कर सुखा लेते हैं। अन्न बनाने के लिये देस अन्नक बहुत अच्छा समझा जाता है।

(२) अन्नक को इस प्रकार रोधाने की किया।

धान्याम्लक-संज्ञा पुं० [सं०] धान से बनाई हुई पटाई या कांजी।

विशेष—दूने जल के साथ धान को एक अंद घरतन में रख कर गाड़ दे। सात दिन पीछे उसे निकाल कर उसका पानी छान ले। यही खाहा पानी कांजी है।

धान्यारि-संज्ञा पुं० [सं०] चूहा।

धान्याशय-संज्ञा पुं० [सं०] अन्नशाला। भंडाराघर।

धान्योत्तम-संज्ञा पुं० [सं०] शाख। धान।

धान्य-वि० [सं०] धन्य देश संबंधी। धन्य देश का।

धान्यंतरी-संज्ञा पुं० [सं०] धन्यंतरी देवता के होम आदि। यह होम आदि जिनमें धन्यंतरी आदि देवता प्रथान हैं।

धाप-संज्ञा पुं० [हिं० टपा] (१) दूरी की एक माप जो प्रायः एक मील की और कहीं दो मील की मानी जाती है। (२) लंबा चौड़ा मैदान। (३) खेत की माप या लंबाई चौड़ाई। संज्ञा पुं० [हिं० धार] पानी की धार। (लघु०)

संज्ञा स्त्री० [हिं० धापना] जी भरना। ठूसि। संतोष।

धापना-क्रि० अ० [सं० धपय] सेतुत होना। ठूस होना। अथाना। जी भरना। उ०—(क) लंपट धूत धूत दमरी के

विषय जाय को जाती। अथ कथय श्रयेष पान करि क्यहूँ
न मनसा धात्री।—सूर। (२) दूतन बहो बहो यह
पापी। इतना पाप किए हैं धात्री।—सूर। (३) कविरा
सौंधी शेषवही क्यहूँ धापी नाहिं। सीन लोक की संपदा
कब धापी घर मोहि।—कबीर।

कि० सं० संयुक्त करना। गुप्त करना।

कि० प्र० [सं० धवन] दीडना। भागना। जायी जल्दी
चलना। उ०—मुसल धड़े सय सजा पुकारत मधुर सुनावहु
येन। जनि धापहुँ धलि घरत मनोहर कठिन काँट मग येन।
—सूर।

धात्री-संज्ञा स्त्री० [देण०] क्यूतों का द्रव्य।

धात्रा-संज्ञा पु० [देण०] (१) दूत के ऊपर का कम्मर।
धराती। (२) वह स्थान जहाँ पर कच्ची या पकी रसोई
(मोल) मिलती हो।

धामार्ह-संज्ञा पु० [हि० धा = धाम + आर्ह] दूधमार्ह।

धाम-संज्ञा पु० [सं०] (१) महाभारत के अनुसार एक प्रकार
के देवता। (२) विष्णु।

संज्ञा पु० [सं० धाम्] (१) गृह। घर। प्रकान।
(२) देह। शरीर। तन। (३) बागडोर। लगाम।
(४) शोभा। (५) प्रभाव। (६) देवस्थान या
पुण्यस्थान। जैसे, परम धाम, गोब्रोक धाम, चारो धाम
आदि। (७) जन्म। (८) विष्णु। (९) ज्योति।
(१०) ब्रह्म। (११) चारङ्गीवारी। शहरपनाह।
(१२) किराया। (१३) तैज। (१४) परलोक।
(१५) स्वर्ग। (१६) व्यवस्था। गति।

धामक-संज्ञा पु० [सं०] मारा (तौल)।

धामन-संज्ञा पु० [देण०] (१) फाड़से की जाति का एक
प्रकार का पेड़ जो देहरादून से आसाम तक साल आदि के
जंगलों में होता है। इसकी लकड़ी प्रायः बहोली के डंडे
या छुरहाड़ी आदि के दस्ते बनाने के काम में आती है।
(२) एक प्रकार का वॉस।

संज्ञा स्त्री० दे० "धामिन"

धामनिका-संज्ञा स्त्री० दे० "धमनी"।

धामनिधि-संज्ञा पु० [सं०] सूर्य।

धामनी-संज्ञा स्त्री० दे० "धमनी"।

धाममाङ्ग-संज्ञा पु० [सं०] यज्ञस्थान में भाग लेनेवाला देवता।

धामश्री-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की रागिनी जिसके गाने
का समय दिन में २५ दंड से २८ दंड तक है।

धामा-संज्ञा पु० [हि० धाम] भोजन का निमंत्रण। खाने का
नेवता।

धामागव्य-संज्ञा पु० [सं०] (१) साक्ष चिचड़ा। (२) घोषा-
वैती।

धामासा-संज्ञा पु० दे० "धमासा"।

धामिन-संज्ञा स्त्री० [हि० धाम = दीडना] (१) एक प्रकार का हाँप
जो कुछ हरापन या पीलापन लिए सफेद रंग का होता है।
यह बहुत लंबा होता है और इसकी पूँछ में बहुत विप होता है।
यह काटता नहीं अधिक पूँछ से ही कोड़े की तरह
मारता है। शरीर के जिस स्थान पर इसकी पूँछ लग जाती
है उस स्थान का मांस गल गल कर गिरने लगता है। यह
बहुत तेज दौड़ता है। (२) एक प्रकार का वृक्ष जो दक्षिण
भारत, राजपूताने तथा आसाम की पहाड़ियों में अधिकता से
होता है। इसकी लकड़ी मजबूत और भूरे रंग की होती है
और मेजू, डुरसी और अलमारी आदि बनाने के काम में
आती है।

धामिया-संज्ञा पु० [हि० धाम] (१) एक पंथ का नाम।

(२) इस पंथ का आदमी।

धार्य-संज्ञा स्त्री० [प्रयु०] किसी पदार्थ के जोर से गिरने या
तोप बंदूक आदि छूटने का शब्द।

विशेष—छट, पट आदि शब्दों के समान इसका प्रयोग भी
'से' विभक्ति के साथ क्रि० वि० वर्त्ती प्रायः होता है।

धार्य-संज्ञा स्त्री० [सं० धार्य] वह स्त्री जो किसी दूसरे के बालक
को दूध पिलाने और उसका पालन पोषण करने के लिये
नियुक्त हो। धारी। दाई।

संज्ञा पु० [सं० धात्री] धवाई का पेड़।

विशेष—दे० 'धुंधवाई'।

धायी-संज्ञा स्त्री० दे० "धाय"।

धारय-संज्ञा पु० [सं०] पुरोहित।

धाय्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह वेद मंत्र जो अग्नि प्रज्वलित करते
समय पढ़ा जाता है।

धार-संज्ञा पु० [सं०] (१) जोर से पानी बरसना। जोर की
वर्षा। (२) इकट्ठा किया हुआ वर्षा का जल जो वैद्यक
के अनुसार विशेषनाशक, लघु, सौम्य, रसायन, यक्षका-
रक, मृत्तिकर और पाचक तथा मूर्च्छा रोग, दाह, यक्ष-
वट और व्यास आदि को दूर करनेवाला है। कहते हैं कि
सावन और भादों में यह जल बहुत ही हितकारक होता है।

विशेष—वैद्यक के अनुसार यह जल दो प्रकार का होता
है—गांग और सामुद्र। आकाश गंगा से जल लेकर
मेघ जो जल धरसाते हैं वह गांग कहलाता है और अधिक
उत्तम माना जाता है, और सामुद्र से जो जल लेकर मेघ
वर्षा करते हैं वह जल सामुद्र कहलाता है। अरविन
मास में यदि सूर्य स्वाती और विशाखा नक्षत्र में हो तो
वस महीने का वर्षा हुआ जल गांग होता है। इसके अति-
रिक्त शेष जल सामुद्र होता है। साधारणतः सामुद्र जल
खारा, नमकीन, द्यकनाशक, दृष्टि के लिये हानिकारक,

यज्ञनामक श्रौत शेषमन्त्राद्यक माना जाता है । पर शगन तारे के उदय होने के उपरान्त सामुद्र जल भी गंगा जल की तरह ही गुणकारी माना जाता है ।

(३) ध्वज । धधार । कर्ज । (४) मात । प्रदेश ।

वि० [सं०] गंभीर । गहरा ।

संज्ञा स्त्री० [सं० धार] (१) किसी आधार से लगे हुए अथवा निराधार द्रव पदार्थ की गति-परंपरा । अस्पंद प्रवाह । पानी आदि के गिरने या बहने का तार । जैसे, नदी की धार, पेशाब की धार, दूध की धार ।

यो०—धारधारा ।

मुहा०—धार चढ़ाना = किसी देवी देवता या पवित्र नदी आदि पर, दूध, जल आदि चढ़ाना । धार टूटना = गिरने का प्रवाह खंडित होना । लगातार गिरना या निकलना बंद हो जाना । धार देना = (१) दूध देना । (२) कोई उपयोगी काम करना । (व्यंग्य) । जैसे, वहाँ घंटे हुए क्या धार देते हो ? धार निकालना = दूध दूहना । सानों से दूध निकालना । धार मारना = जोर से पेशाब करना । (किसी भीत्र पर) धार मारना या (किसी चीज को) धार पर मारना = किसी चीज को बहुत ही चुस्त शौर आग्नाह समझना । जैसे हम, ऐसे शय्य पर धार मारते हैं, या देना शय्या धार पर मारते हैं । धार बँधना = किसी तल्ल पदार्थ का धार बन कर गिरना । धार बाँधना = किसी तल्ल पदार्थ को इस प्रकार गिराना जिसमें उसकी धार बन जाय ।

(१) पानी का सोना । धरमा । (२) जल उमरू-मध्य । (लश०) । (३) किसी काटनेवाले हथियार का यह तेज तिरा या किनारा जिससे कोई चीज काटते हैं । चाकू । जैसे, तलवार की धार, चाकू की धार, कैंची की धार ।

मुहा०—धार बँधना = मंत्र आदि के बल से काटनेवाले अथ की धार का निकरमा हो जाना । धार बाँधना = मंत्र आदि के बल से किसी हथियार की धार को निकरमा कर देना । (प्राचीनों का विश्वास था कि मंत्र के बल से हथियार की धार निकरमी की जा सकती है और तब यह हथियार काट नहीं करता ।)

(६) किनारा । तिरा । छोर । (७) सेना । फौज । (८) किसी प्रकार का डाकू, आक्रमण या हथका । वः—ज्ञात सधन कहें देखिय कहें कभीर पुकारा । चेतका होइ तो चेत के दिवस परत है धार ।—कबीर । (९) शौर । तरफ़ । दिशा । वः—महरी पैतल सधन भीतर छोकें बाँईं धार ।—सूर । (१०) जहाजों के तल्लों की संधि या जोड़ । कस्तूरी । (लश०)

संज्ञा पुं० [सं० धारण] (१) चोरदार या हारपाल । (हिं०)

संज्ञा पुं० [सं० धारण] (२) वह पेड़ का तना या काठ का टुकड़ा जो कच्चे कूट के मुँह पर इस लिये लगा दिया जाता है जिसमें बसका ऊपरी भाग अंगूर न गिरे ।

धारक-वि० [सं०] (१) धारण करनेवाला । धारनेवाला । (२) रोकनेवाला । (३) ध्वज लेनेवाला । कर्जदार ।

संज्ञा पुं० [सं०] कलश । घड़ा ।

धारका-संज्ञा स्त्री० [सं०] यैति । यज्ञ की सूत्रद्विप ।

धारण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) किसी पदार्थ को अपने ऊपर रखना अथवा अपने किसी अंग में लेना । धारमना, लेना या अपने ऊपर टहराना । जैसे, शेष जी का पुष्पी को धारण करना, शिव जी का गंगा को धारण करना, हाथ में छड़ी या चक्र धारण करना । (२) परिधान । पहनना । जैसे, बख या आभूषण धारण करना । (३) सेवन करना । खाना या पीना । जैसे, शिवजी का विष धारण करना, शीघ्र धारण करना । (४) अवलंबन करना । अंगीकार करना । ग्रहण करना । जैसे, पदवी धारण करना । मौग धारण करना । (५) अद्य लेना । कर्ज लेना । धार लेना । (६) करप के एक पुत्र का नाम । (७) शिवजी का एक नाम ।

धारणा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) धारण करने की क्रिया या भाव । (२) यह शक्ति जिससे कोई बात मन में धारण की जाती है । समझने या मन में धारण करने की शक्ति । बुद्धि । अकल । समक । (३) इन्द्र निरवप । पढा विचार । (४) मर्यादा । जैसे, नीति की यह धारणा है कि पानी में मुँह न देला जाय । (५) मन या ध्यान में रखने की शक्ति । यद् । स्मृति । (६) योग के छाट अंगों में से एक । मन की यह स्थिति जिसमें कोई और भाव या विचार नहीं रह जाता, केवल प्रज्ञ का ही ध्यान रहता है । इस समय मनुष्य केवल ईश्वर का चिंतन करता है; इसमें किसी प्रकार की बासना नहीं उत्पन्न होती और न इंद्रियों विचलित होती हैं । यही धारणा पीछे स्वाध्याय होकर "ध्यान" में परिणत हो जाती है । (७) घृष्टसंहिता के अनुसार एक योग जो उषेष्ट शूरता अष्टमी से पूजादरती तक एक विशिष्ट प्रकार की याग्य चलने पर होता है और जिससे इस बात का पता लगता है कि आगामी वर्षा ऋतु में वर्षेष्ट पानी बरसेगा या नहीं । यह वर्षा के गर्भधारण का योग माना जाता है, इसी लिये इसे धारणा कहते हैं ।

धारणायानु-संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० धारणावती] वह जिसकी धारणायाक्ति बहुत प्रबल हो । मेधाशाली ।

धारणी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) नादिका । नाड़ी (२) धेयी । पंक्ति । (३) धारण करनेवाली । पुष्पी । (४) स्तीथी लकी । (५) बौद्ध तंत्र का एक अंग जो प्रायः हिंदू तंत्र के कवच के समान है और जिसका प्रचार नेपाल, तिब्बत तथा चरमा के यौद्धों में अधिकता से है । बौद्ध तंत्रिक इसे अमीष्ट सिद्धि और दीर्घ जीवन का साधन मानते हैं । इसके अधिकारता के बपदेश बुद्ध और श्रोता आनंद या यजुपाथि माने जाते हैं ।

धारणीमति—संज्ञा स्त्री० [सं०] योग में एक प्रकार की समाधि ।
 धारणीया—वि० [सं०] धारण करने योग्य । रखने योग्य । जो धारण किया जा सके ।

धारणी पुं० [सं०] (१) धार्योक्तं (२) तांत्रिकों का एक प्रकार का मंत्र जो सोने की कलम से कैसर, रोचन, ज्ञाप, कस्तूरी, चंद्र और हाथी के मूत्र से लिखा जाता है । यह मंत्र पूजा के मंत्र से भिन्न होता है और शरीर पर धारण किया जाता है । जमीन या शव से छू जाने, जलने अथवा छायें जाने से यह मंत्र अशुद्ध हो जाता है और धारण करने के योग्य नहीं रहता ।

धारणी—संज्ञा पुं० [हिं० धार + धृ (धूल)] नदी की रेत से बनी हुई या नदी के हट जाने से निकली हुई जमीन । गोबरधार ।

धारण—संज्ञा पुं० [सं० धारण] (१) हाथी के खिलाने के लिये सैयार की हुई दवा । (२) दे० "धारण्य" ।

धारणा—वि० सं० [सं० धारण] (१) धारण करना । अपने ऊपर लेना । (२) श्रम्य करना । बंधार लेना ।

धारिणी—संज्ञा पुं० [सं० धारिणी] धारण करने-वाला ।

धारिणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] धारण करनेवाली । (२) पृथ्वी ।

धारण्य—संज्ञा स्त्री० दे० "धारण्य" ।

धारकुर—संज्ञा पुं० [सं०] (१) सरल का गोद । (२) घनेपल ।

धारग—संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्राचीन तीर्थ का नाम । (२) सङ्ग ।

धार—संज्ञा स्त्री० [सं०] घोड़े की चाल । घोड़े का चरना ।

धारिण्य—प्राचीन भारतवासियों ने घोड़ों की पाँच प्रकार की चालें मानी थीं—धास्फणित, धैरितिक, रेचित, वहित और ध्युत ।

(२) किसी द्रव पदार्थ की गति-परंपरा । पानी आदि का बहाव या गिराव । अर्थात् प्रवाह । धार । (३) लगातार गिरता या बहता हुआ कोई द्रव पदार्थ । (४) पानी का झरना । सीता । चरमा । (५) बहनेवाले हथियार का तेज सिरा । बाण । धार । (६) बहुत अधिक वर्षा । (७) समृद्ध । (८) सेना अथवा उस का शगला भाग । (९) चढ़े आदि में बनाया हुआ चेद या सुरास । (१०) सीतान । सीतास । (११) बहने । बहति । सरकी । (१२) रथ का पहिया । (१३) धरा । कीर्ति । (१४) प्राचीन काल की एक नगरी का नाम जो दक्षिण देश में थी । (१५) महाभारत के अनुसार एक प्राचीन तीर्थ । (१६) वास्तविक । पंक्ति । (१७) बकीर । रस्ता । (१८) पहाड़ की चोटी । (१९)

मालवा की एक राजधानी जो राता भोज के समय में प्रसिद्ध थी । कहते हैं कि भोज ही उज्जयिनी से राजधानी धारा जाए थे ।

धारारक्त—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का कदम का पेड़ ।

धारारुह—संज्ञा पुं० [सं०] वह स्थान या घर जिसमें कुहाहा लगा हो ।

धारारुह—संज्ञा पुं० [सं०] (१) चातक । (२) मेघ । बादल । (३) घोड़ा । (४) मल हाथी ।

धारधर—संज्ञा पुं० [सं०] (१) मेघ । बादल । (२) छत्र । तलवार ।

धारपूप—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का पूवा (पकवान) जो मँदे को धी मिले हुए दूध में सान कर और तब धी में छान कर बनाया जाता है और जिसमें पीछे से खाँड़ या चीनी मिला दी जाती है । भावपकार के अनुसार यह यककारक, रुचिकारक और पित्त तथा वातनाशक है ।

धारफाल—संज्ञा पुं० [सं०] मदन वृक्ष । मैनफ्रज वृक्ष ।

धारार्यक—संज्ञा पुं० [सं०] वह मंत्र जिससे पानी की धार छूटे । कुहासा ।

धाराल—वि० [सं०] जिसकी धार तेज हो । धारदार (हथियार) ।

धाराली—संज्ञा स्त्री० [सं० धाराल] (१) तलवार । छत्र । (२) कटारी । (डि००)

धारारवि—संज्ञा पुं० [सं०] वायु । हवा ।

धारारवर—संज्ञा पुं० [सं०] मेघ । बादल ।

धारार्याही—वि० [सं०] जो धारा के रूप में बग्गे बहता हो ।

धारारिण्य—संज्ञा पुं० [सं०] सङ्ग । तलवार ।

धारारसंपात—संज्ञा पुं० [सं०] बहुत तेज और अधिक वृष्टि । जेरो की धारि ।

धारारसार—वि० [सं०] लगातार वृष्टि । बराबर पानी बसना ।

धारारुही—संज्ञा स्त्री० [सं०] तिघारा वृक्ष ।

धारारि—संज्ञा स्त्री० [सं० धारा] (१) दे० "धार" । (२) समृद्ध । भूँड । ४०—(क) धारो धारो धरो मुनि धाए जागधान वारिधार इते दे शब्द ज्यो मसायनो ।—तुलसी । (ख) रामकृपा अत्रोय सुधारी । विबुध धारि गुनद गोहाती ।—तुलसी । (३) एक वर्षावृष्टि जिसके प्रत्येक क्षण में एक रणधर और एक क्षण होता है । जैसे, री बर्या न । जात कौन । बर हारि । मौन धारि ।

धारिणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) धरणी । पृथ्वी भूमि । जमीन ।

(२) शारमली । सेमर का पेड़ । (३) शीतल देवताओं की छियाँ जिनके नाम से हैं—शशी । वनस्पति । धारिणी ।

धूम्रोर्णा । रुधिराकृति । सिन्धुवावा । कुह । राका । धनु-
गति । धायाति । प्रजा । सेला । वेला ।
वि० शी० धारण्य करनेवाली ।

धारी-वि० [सं० धारि] [शी० धारिणी] (१) धारण्य करने-
वाला । जिसने धारण्य किया हो ।

विशेष—इस शब्द में इसका प्रयोग धार्मिक राज्यों के श्रेष्ठ में
होता है । जैसे, सुवधारी ।

(२) किसी ग्रंथ के तात्पर्य को मञ्जी भांति जाननेवाला ।
(३) शरण्य देनेवाला । कर्जदार । (४) धीनू का पेड़ ।

धारा पु० (१) एक वर्षापूर्व जिसके प्रत्येक चरण में पहले
तीन जगण्य धीर तप एक जगण्य होता है । जैसे, छु कात्र
मेंह क्षुचि देवत वीते । तुम्हार प्रभू गुण गायत ही ते । क्षुचा
करि देहू बड़े गिरिधारी । यार्गी कर जोरि मुमक्ति तिहारी ।
(२) दे० "धारि" (३) ।

धारा शी० [सं० धारा] (१) सेना । फौज । (२) समूह ।
कुट्ट । (३) रेला । लकीर । जैसे, यदि इस कण्ठ पर इष्ट
धारिवा होती तो धीर भी शरणा होता ।

धा०—धारीदार ।
(४) पुरता ।

धारीदार-वि० [हिं० धारी + धार] जिसमें लंबी लंबी धारियाँ
या लकीरें पड़ी श्रधवा यती हैं । जैसे, धारीदार मलमल ।

धारुजल-धारा पु० [हिं०] धार । तलवार ।

धारोष्ण-धारा पु० [सं०] धन से निकला हुआ ताजा दूध जै
प्रायः कुछ गरम होता है धीर रतन से निकलने के कुछ
समय बाद तक गरम रहता है । चैक के अनुसार ऐसा दूध
शमूत के समान धीर धम हारनेवाला, विद्रा खानेवाला,
वीर्य धीर गुरुपाये बढ़ानेवाला, पुष्टिकाक, शक्ति को बढ़ाने-
वाला, शक्ति स्वादिष्ट धीर विशेष को हारनेवाला होता है ।

धारुसारा-धारा पु० [सं०] (१) काले रंग की चौध धीर धीर-
वाला हंस । (२) एक नाग का नाम । (३) [शी० धारुसारी]
धरातल के बंध का आदमी ।

धारुसारा-धारा पु० [सं०] हंसपत्नी बत्ता । लाल रंग का
लज्जाल ।

धार्म-वि० [सं०] धर्म संबंधी ।

धार्मिक-वि० [सं०] (१) धर्मशील । धर्मात्मा । धर्माचरण
करनेवाला । पुण्यात्मा । जैसे, धार्मिक ही धार्मिक हैं ।
(२) धर्म-संबंधी । जैसे, धार्मिक क्रियाएँ ।

धार्मिकता-धारा शी० [सं०] धर्मशीलता । धार्मिक होने का
भाव ।

धार्मिक्य-धारा पु० दे० "धार्मिकता" ।

धार्म-वि० [सं०] धारण्य करने के योग्य । धारणीय ।

धारा पु० [सं०] धार । कपड़ा ।

धार्ष्ट, धार्ष्ट्य-धारा पु० [सं०] श्रुतता ।

धार्ष्ट्य-धारा पु० [सं० धा] एक प्रकार का लंबा धीर चट्टक सुंदर
पेड़ जिसे गोखरा, धारवा, चकली धीर धाराधा भी कहते हैं ।
विशेष—दे० "धय" ।

धायक-धारा पु० [सं०] (१) दौड़कर चलनेवाला । हरकारा ।
(२) धोवी । रमक । (३) संस्कृत साहित्य के एक आचार्य
धीर कवि तिनका नाम काश्मिरास के माधविकातिमिर
माटक तथा काव्यमकाश धीर साहित्यसार में धारा है ।

धायक-धारा पु० [हिं० धा] धय का पेड़ ।

धायक-धारा पु० [सं० धायक] दूत । हरकारा । (हिं०)

धायक-धारा पु० [सं०] (१) बहुत जल्दी या दौड़ कर जाना ।

(२) दूत । हरकारा । चिट्ठी या संदेश पहुँचानेवाला ।
ध०—(क) द्विविध करि कोप हरी पुरी धार्या । नृप सुदचिया
नारयो जरी धाराणसी धाय धायन जयहि यह सुभागे ।—
सूर । (ख) एहि विधि सोचत मरत मन धायन पहुँचे आइ ।
गुन अनुसासन धयन सुनि चचे तनेस मनइ ।—तुलसी ।

(३) धोने या साफ करने का काम । (४) बट धीम जिससे
कोई धीर धोई या साफ की जाय । ध०—विद्रा हास्यम-
रौत धोई । तसि इधुधायन मूठ न धोई ।—विश्वाम ।

धायना-धारा-कि० श्र० [सं० धायन = धयन] योग से चञ्चला ।
दौड़ना । भागना । जल्दी जल्दी जाना ।

धायनी-धारा शी० [सं० धयन = धयन] (१) जल्दी जल्दी चलने
की क्रिया या भाव । दौड़ । ध०—वापट पीत की फदरान । कर
धरि चक धरन की धायनि नहि बिरसति यह धान ।—सूर ।
(२) धावा । चण्डाई । ध०—सिंघु पार परे सब आनंद सो
भरे कपि गात्रे शंख धामे धय लंका पर धायनी ।—हनुमान ।

धारा शी० [सं०] चिञ्चन । धृतिवर्षी जाता ।

धायनिका-धारा शी० [सं०] (१) कंठकारिका । कटेरी । (२)
चिञ्चन । धृतिवर्षी । (३) कैंटीली मकौप ।

धायनी-धारा शी० [सं०] (१) धृतिवर्षी जाता । चिञ्चन । (२)
कंठकारी । (३) धय का फूल ।

धायनी-धारा पु० दे० "धय", "धयना" ।

धायनी-धारा शी० [सं० धयन] सफेद धाव । धीर ।

वि० सफेद । उज्ज्वल । ध०—गागन लतात धलित हैं जहँ
तमाल तरुना । धेनु धायरी रावरी बरि आई गोपाल ।—
रामसहाय ।

धायनी-धारा पु० [सं० धयन] (१) राग से लड़ने के लिये दल
बल सहित सैन्य होकर जाना । आक्रमण । हमला । चण्डाई ।
सुहा०—धायन धोलना = अधिपति का अपने सैनिकों को
आक्रमण करने की आज्ञा देना ।

(२) किसी काम के लिये जल्दी जल्दी जाना । दौड़ ।

मुहा०—धावा मारना = जल्दी जल्दी चलना । जैसे, इस धूप में हम तीन कोस का धावा मार कर आ रहे हैं ।

धाह-संज्ञा स्त्री० [धनु०] जोर से चिला कर रोना । धाड़ । उ०—
(क) देले मंद चले घर धावत । पैठत गौरि धुँक भद्र बाँदि
तेह दाहिने धाह सुनावत ।—सूर । (ख) ऊँचै आइँ बाहरी
बासन लगा खँगार । जठि करीस पाह दै दाम्कत है संसार ।
—कबीर । (ग) गिन्ह विपु मारि सुरारि मारि तेह रीस
बघारि दिवाइँ धाईँ ।—तुलसी ।

धाही—संज्ञा स्त्री० [सं० धात्री] दूध पिलानेवाली स्त्री । द्राई ।
धाप । उ०—तस्य देवान् पृथुधि नामा । रक्षी आह धाही
तेहि धामा ।—विभाम ।

धिंंग संज्ञा स्त्री० [सं० द्योङ्ग या धीङ्गा धीङ्गी धनु०] धींगा धीङ्गी ।
ऊधम । उपद्रव । शरारत । उ०—अह ल्यो मयानी सिंह ।
गढ़ बैन रक्षिय धिंंग ।—सूरन ।

धिंंगरा—संज्ञा पुं० दे० “धींगरा” ।

धिंंगा—संज्ञा पुं० [सं० द्योङ्ग] (१) यदमाश । शरीर । उपद्रवी ।
(२) बेरुमी । निर्लज्ज ।

धिंगाई—संज्ञा स्त्री० [सं० द्योङ्गी] (१) शरारत । उपद्रव । ऊधम ।
यदमाशी । उ०—जानि धुँक इन करी धिंगाई । मेरी बलि
पर्वतहि चढ़ाई ।—सूर । (२) बेरुमी । निर्लज्जता ।

धिंगाधिंगी—संज्ञा स्त्री० दे० “धींगा धीङ्गी” ।

धिंंगाना—संज्ञा पुं० [हिं० धिं] धींगा धीङ्गी करना । उपद्रव
करना । ऊधम मचाना ।

धिंगी—संज्ञा स्त्री० [सं० द्योङ्गी] यदमाश स्त्री । निर्लज्ज स्त्री ।
हुबुदगी ।

धिघा—संज्ञा स्त्री० [सं० दुहित, प्रा० धीष्ण] (१) बेटी । कन्या ।
(२) कोई छोटी लड़की ।

धिघान—संज्ञा पुं० दे० “ध्यान” ।

धिघाना—संज्ञा पुं० दे० “ध्यान” या “ध्यायना” ।

धिक्—अव्य० [सं०] (१) तिरस्कार, अन्याय या घृणापूर्वक एक
शब्द । जानत । (२) निंदा । शिक्षायत्र ।

धिक्—अव्य० [सं० धिक्] धिक् । जानत । उ०—धिक् धर्मध्वज
धंधकधोरी ।—तुलसी ।

धिक्काना—कि० प्र० [सं० दध या हिं० ददकना] गरम होना ।
संत होना । भाग की गरमी से जाह हो जाना । उ०—
अहिं जो पर्वत धाग अकाला । बनखंड धिक्हिं पलास
कोबासा ।—जायसी ।

धिक्काना—कि० प्र० [सं० दध या हिं० ददकना] तपाना । खूब
गरम करना । तपा कर जाल करना ।

धिक्कार—संज्ञा स्त्री० [सं०] तिरस्कार, अन्याय वा घृणापूर्वक
शब्द । जानत । फटकार ।

धि० प्र०—करना ।—देना ।

धिक्कारना—कि० प्र० [सं० धिक्] “धिक्” कह कर बहुत तिर-
स्कार करना । बहुत बुरा भला कहना । जानत मलामत
करना । फटकारना ।

धिक्कृत—वि० [सं०] जो धिक्कार जाय । जिसे “धिक्” कहा
जाय । जिसका तिरस्कार हो ।

धिक्क्रिया—संज्ञा स्त्री० दे० “धिक्कार” ।

धिग्—अव्य० दे० “धिक्” या “धिक्कार” ।

धिगवय—संज्ञा पुं० [सं०] मनु के अनुसार एक संकर जाति जो
प्राण्य पिता और अयोगवी माता से उपन्न मानी जाती है ।

धिमचा—संज्ञा पुं० [दे०] एक प्रकार की हमली ।

धिय—संज्ञा स्त्री० [सं० दुहिता] (१) कन्या । बेटी । उ०—शमी
गरम में बनल उधैँ ल्यो तेरी धिय संत । धारति सेज दियो
जो चुप प्रजा देत दुप्यंत ।—ब्रह्मवर्षिंह । (२) लड़की ।
बालिका ।

धिया—संज्ञा स्त्री० दे० “धिय” ।

धिरकारा—संज्ञा स्त्री० दे० “धिक्कार” ।

धिरचनार्थ—कि० प्र० [सं० धपंच] धमकाना । उ०—(क) समय
परे की बात बात कहँ धिरवै कुदकी ।—गिरधर । (ख)
मुल भगवति ध्यानंद वर धिरवति है घर जाइ ।—सूर ।
(ग) कोइ बडि भागत पुनि नहिँ आवत धिरवत खँगुलि
दियाई ।—रघुराज ।

धिरानार्थ—कि० प्र० [हिं० धिराना] डराना । धमकाना । भय
दिखाना । उ०—(क) जाति पाति सेँ कह्य अघरी यह
कहि सुतहिँ धिरावति ।—सूर । (ख) आता मारन मोहिँ
धिरावै देले मोहिँ न भावत ।—सूर ।

धि० प्र० [सं० धीर] (१) धीमान होना । गति में मंद
पड़ना । उ०—उपचार विचार किये न धिरानी ।—देशव ।
(२) स्थिर होगा । धैर्य धारण करना ।

धिधावसु—संज्ञा पुं० [सं०] सारस्वती के बर्ग के एक वैदिक
देवता जो “धी” अर्थात् बुद्धि के देवता माने जाते हैं ।

धिधवा—संज्ञा पुं० [सं०] (१) बृहस्पति । (२) महा । (३)
नारायण । विष्णु । (४) युध । शिवक ।

धि० [सं०] बुद्धिमान् । अथर्वमंद । समभदार ।

धिधवा—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) बुद्धि । अथर्व । (२) रतुति ।
(३) वाक्शक्ति । (४) धृष्टी । (५) स्थान ।

धिधवाधिप—संज्ञा पुं० [सं०] बृहस्पति ।

धिष्ट्य—संज्ञा पुं० [सं०] (१) स्थान । जगह । (२) घर । (३)
नपत्र । (४) धाम । (५) शक्ति । (६) शुक्राचार्य ।

धींग—संज्ञा पुं० [सं० धिंंग = गठ या द्योङ्ग] दहा कटा
मनुष्य । उ०—धींगरी धींग चाचरि कहँ मोहि बुलावत
सासि ।—सूर ।

वि० (१) मजबूत। जोरावर। (२) शरीर। बधमाश।
 इपद्वरी। (३) कुमारी। पावी। बुरा। उ०—अपनाये।
 तुलसी से धीमा धमधूसरो।—तुलसी।

धौगधुकड़ी—संज्ञा स्त्री० [हि० धौग] (१) धौगासुरनी। (२)
 पाजीपन।

धौगरा—संज्ञा पुं० [सं० ङिर] (१) हटा कटा। सुसंड। मोटा
 ताजा। (२) शठ। बधमाश। कुकर्म। गुंडा।

धौगरी—संज्ञा स्त्री० [हि० धौग + री (प्रत्य०)] पाजी। इपद्व
 करनेवाली स्त्री। उ०—धीमा तुम्हारे पूत धौगरी हमके
 कीन्ही।—सूर।

धौगा—संज्ञा पुं० [सं० ङिर = गठ] शरीर। बधमाश। इपद्वनी।
 पाजी।

धौ०—धौगासुरती।

धौगाधौगी—संज्ञा स्त्री० [हि० धौग] (१) शरासत। बधमाशी। इप-
 द्व। पाजीपन (२) जयरदस्ती। यल-प्रयोग।

धौगामुदती—संज्ञा स्त्री० [हि० धौग + मुदती] (१) शरासत। बध-
 माशी। इपद्व। पाजीपन। (२) जयरदस्ती लड़ना। दाया-
 वादी।

धौगडू—वि० [सं० ङिर] [स्त्री० धौगडू] (१) पाजी। बधमाश।
 दुष्ट। (२) हटा कटा। हट पुष्ट। (३) चर्चसेकर। दोगला।
 हरामी।

धौगडू—संज्ञा पुं० दे० "धौगडू"।

धौन्द्रिय—संज्ञा स्त्री० [सं०] बहु इंद्रिय जिससे किसी बात का ज्ञान
 प्राप्त किया जाय। जैसे, मन, अस्ति, कान, त्वक्, जीभ,
 नाक। ज्ञानेंद्रिय।

धौवर—संज्ञा पुं० दे० "धीवर"।

धी—संज्ञा स्त्री० [सं०] बुद्धि। अरु। समक।

धौरीप—दे० "धुद्धि"।

(२) मन। (३) कर्म।

संज्ञा स्त्री० [सं० दुद्धि, प्रा० धीमा] लड़की। बेटी।

धीमा—संज्ञा स्त्री० दे० "धीमा"।

धीङ्गना—कि० सं० [सं० धृ, धार्य, धैर्य] (१) ग्रहण करना। स्वीकार
 करना। श्रंगीकार करना। उ०—(क) पाती लैके क्येया विप्र
 क्षिप्रबहि पुरी गये, भये चाव जाव्यो परे कैसे तिया धीजिए।
 कही तुम जाइ रानी बैठी सत आई मोको बोल्यो न सोहाय
 प्रभु सेवा मार्क भीजिए।—प्रियादास। (ख) धरियाहूँ धीजै
 नहीं गहूँ अघर की बाहिं। धरिया अघर पदिकाधियाँ लीं
 कहुँ धरौबहि नाहिं।—कबीर। (२) धीरज धरना। धैर्य-
 युक्त होना। उ०—आय मिली अखिन में, लाजन के
 ध्यान दिये, पिये मद मानो गृह आहूँ तब धीजी है।—प्रिया-
 दास। (३) अति प्रसन्न होना। संतुष्ट होना। उ०—(क)
 धरे सब जाप प्रभु सुकर बनाय दिया कियो सरबोपरि ले

बधयो मनि धीजिए।—प्रियादास। (ख) उज्ज्वल देखि न
 धीजिए चग उगे मंदिं ध्यान। धीरे बैठि चपेटिली बे ले
 बुद्धि ज्ञान।—कबीर।

धीत—वि० [सं०] (१) जो पिया गया हो। (२) जिसका अना-
 दर हुआ हो। (३) जिसकी आराधना की जाय।

धीति—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) पान करने की क्रिया। पीना।
 (२) प्यास।

धीदा—संज्ञा स्त्री० [सं० दुद्धिता का प्रा० रूप] (१) कन्या।
 कुँवारी लड़की। (२) पुत्री। बेटी।

धीन—संज्ञा पुं० [हि०] लोहा। (हि०)

धीपति—संज्ञा पुं० [सं०] बृहस्पति।

धीमर्ष—वि० दे० "धीमा"।

धीमर—संज्ञा पुं० दे० "धीमर"। उ०—धरे मंच्छ पहिना धौ
 रोहू। धीमर धरत करे नहिं छेहू।—जायसी।

धीमा—वि० [सं० मध्यम] [स्त्री० धीमा] (१) जिसका वेग या
 गति मंद हो। जिसकी चाल में-बहुत तेजी न हो। जो
 आदित्तः चलै। जैसे, धीमी चाल, धीमी हवा। (२)
 जो अधिक प्रचंड, तीव्र या, व्रम न हो। हलका। जैसे,
 धीमी आँच, धीमी रोशनी। (३) कुछ नीचा और
 साधारण से कम (स्वर)। जैसे, धीमा स्वर, धीमी आवाज।
 (४) जिसका जोर घट गया हो। जिसकी तेजी कम हो
 गई हो। जैसे, (क) पहले तो वह बहुत शिगड़ा पर
 पीछे धीमा हो गया। (ख) जब बनका गुस्ता कुछ
 धीमा हुआ तब चलने सारा हाज बनसे कुछ हनाया।

कि० प्र०—करना।—पढ़ना।—होना।

धीमा तिताला—संज्ञा पुं० [हि० धीमा + तिताला] संगीत में
 सोलह मात्राओं का एक ताल जिसमें तीन आघात और
 एक खाली होता है। इसके सृष्टं के बोझ ये हैं,—
 × ३
 धेत धेत धेने नाग, देगे तेते केते ताग, नोदँताक धागे;
 तेते के तागादि धेने। और इसके तबले के बोझ ये हैं,—
 × ३
 धा दिन दिन धा, दिनु धागे तेरेकेते दिन नादिन तिन ता,
 १ ×
 दिन धागे तेरेकेते दिन। धा ॥

धीमान्—संज्ञा पुं० [सं० धीमन्] [स्त्री० धीमती] (१) बृहस्पति।
 (२) बुद्धिमत्। समझदार। अथकमंड।

धीयन्—संज्ञा स्त्री० [सं० दुद्धिता] (१) दे० "धी"। (२)
 जमाई। जामाता। दामाद। (हि०)

धीया—संज्ञा स्त्री० [सं० दुद्धिता, प्रा० धीरा, धीया] लड़की। बेटी।

धीर—वि० [सं०] जिसमें धैर्य हो। जो जल्दी धरत न जाय।
 दृढ़ और शांत चित्तवाला। (२) यत्नवान्। ताकतवर।

(३) विनीत । (४) सत्र । (५) गंभीर । (६) मनोहर ।
 सुंदर । (७) मंद । धीमा ।
 संज्ञा पुं० [सं०] (१) बेसर । (२) श्रमण औपध । (३)
 मंत्र । (४) राजा बलि ।
 * संज्ञा पुं० [सं० धैर्य] (१) धैर्य । धीरज । डाढ़स ।
 मन की स्थिरता । (२) संतोष । सत्र ।

क्रि० प्र०—हरना ।—परना ।—रखना ।

धीरज—संज्ञा पुं० दे० "धैर्य" ।

धीरज्ञमान—संज्ञा पुं० दे० "धैर्यवान्" या "धीर" ।

धीरत—संज्ञा पुं० [?] हंस पक्षी । (हिं०)

धीरता—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) चित्त की स्थिरता । मन की
 दृढ़ता । धैर्य । (२) स्थिरता । (३) संतोष । सत्र ।

धीरत्व—संज्ञा पुं० [सं०] धीर होने का भाव । धीरता ।

धीरपथी—संज्ञा स्त्री० [सं०] जमीकंद ।

धीरललित—संज्ञा पुं० [सं०] साहित्य में वह नायक जो सदा
 रूप बना ठना और प्रसन्नचित्त रहता हो ।

धीरज्ञात—संज्ञा पुं० [सं०] साहित्य में वह नायक जो सुरीज,
 दयावान्, गुणवान् और पुण्यवान् हो ।

धीरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) साहित्य में वह नायिका जो
 अपने नायक के शरीर पर पर-स्त्री-रमण के चिह्न देख कर
 व्यंग्य से कोप प्रकाशित करे । ताने से अपना क्रोध प्रकट
 करनेवाली नायिका । (२) गुरिच । गिलोय (३)
 काशैली । (४) माककंगनी ।

धि० [सं० धीर] मंद । धीमा ।

धेना [सं० धैर्य] धीरज । धैर्य्य ।

धीराधीरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] साहित्य में वह नायिका जो अपने
 नायक के शरीर पर पर-स्त्री-रमण के चिह्न देख कर कुछ
 गुप्त और कुछ प्रकट रूप से अपना क्रोध जनना दे ।

धीराधी—संज्ञा स्त्री० [सं०] शीघ्रता का पेड़ ।

धीरी—संज्ञा स्त्री० [?] आँसु की पुतली ।

धीरे—क्रि० वि० [हिं० धीर] (१) धादिस्ते से । मंद । मंद । धीमी
 गति से । (२) 'जेर से' का उलटा । (३) चुपके से । इस प्रकार
 जिसमें कोई सुन या देख न सके । इस प्रकार जिसमें किसी
 को आहत न मित्रे । जैसे, धीरे से चल दे ।

विरोध—इस शब्द का प्रयोग कहीं कहीं एक साथ दो
 बार भी होता है । जैसे, धीरे धीरे चलते, धीरे धीरे खोजे ।

धीरादाघ—संज्ञा पुं० [सं०] (१) साहित्य के अनुसार वह
 नायक जो निरगिमाना, दयालु, प्यारील, यक्षवान्, धीर,
 दृढ़ और योग्य हो । जैसे, रामचंद्र, युधिष्ठिर आदि । (२) वीर-
 रत्न-प्रधान नाटक का मुख्य नायक ।

धीरादत—संज्ञा पुं० [सं०] साहित्य में वह नायक जो बहुत
 मंद और धैर्य हो और दूसरे का गर्व न सह सके

और सदा अपने ही गुणों का वक्षान किया करे । जैसे,
 भीमसेन ।

धीर्या—संज्ञा पुं० [सं०] कातर ।
 संज्ञा पुं० दे० "धैर्य्य" ।

धीवर—संज्ञा पुं० [सं०] [श्री० धीवरी] (१) एक जाति विरोध
 जो प्रायः मधुली पकड़ने और बँचने का काम करती है । इस
 जाति का छुआ जब द्विज लोग महय्य करते हैं । मनुष्य ।
 महाह । केवट । (२) विद्वमतगार । सेवक । (३) काळा
 मनुष्य । (४) मत्स्यपुराण के अनुसार एक देव । (५)
 उक्त देव का निवासी ।

धीवरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) महादिन । (२) मधुकी मारने
 की कटिया ।

धुँगा—संज्ञा पुं० दे० "धुँगा" ।

धुँह—संज्ञा स्त्री० दे० "धुँह" ।

धुंकार—संज्ञा स्त्री० [सं० ध्वनि + कार] जेर का शब्द । गज ।
 गड़गड़ाहट । व०—(क) धुंकार धौंसन की यड़ी हुंकार
 भूमिपतीन की ।—गोपाल । (ख) कड़े पमाकर लौं हुंहुमी
 धुंकार सुनि शक्यक बोले यौं गनीम श्री गुनाही हैं ।—
 पमाकर ।

धुँगार—संज्ञा स्त्री० [सं० धू + धार] यवार । तड़का । धुँक ।
 व०—तुराई चचेड़े देउस तरे । जीर धुँगार मेल सब धरे ।—
 जायसी ।

धुँगारना—क्रि० ग० [हिं० धुँगर] बघारना । धौंकना । तड़का
 देना । व०—झाड़ झुकीकी धरी धुँगारी । कहरें उठत प्यार
 की ग्यारी ।—सूर ।

क्रि० सं० [धुं०] मारना । पीटना ।

धुंजा—वि० [हिं० धुंघ] धुंघली । मंद दष्टि । व०—विनु गोपाध
 बैरिनि मह कुंजै ।सूरदास प्रभु तुम्हरे
 दरस को मग जोयत बैरिनि मह धुंजै ।—सूर ।

धुंदा—संज्ञा स्त्री० दे० "धुंघ" ।

धुंदा—वि० [हिं० धुंघ] धंधा ।

धुंदल—संज्ञा पुं० [वि०] मम्मोजे कद का एक पेड़ जो पंगान्न और
 मजादार में अधिकता से होता है । इसकी लकड़ी सफेद
 रंग की होती है और गादियों के पड़िये तथा नेत्र कुशली
 आदि बनाने के काम में आती है । इसके फलों से एक
 प्रकार का सेब निकलता है जो अज्ञात और सिर में सगाया
 जाता है । इसमें से एक प्रकार का गाँद भी निकलता है ।

धुंघ—संज्ञा स्त्री० [सं० धू + धंघ] (१) वह सैपरा जो हवा में
 मिली धूल के कारण हो ।

यी०—धौपाधुंघ ।

(२) हवा में उड़ती हुई धूल । (३) धान का एक रोग

जिसके कारण ज्योति मंद हो जाती है और कोई वस्तु स्पष्ट नहीं दिखाई देती।

पुंयक-संज्ञा पुं० दे० "पुंय"।

पुंयका-संज्ञा पुं० [हिं० पुंय] शीवार या छत आदि में बना हुआ वह थड़ा छेद जो धारा निकलने के लिये बनाया जाता है। धोषका। पुंयारा।

पुंयकार-संज्ञा पुं० [हिं० पुंकार] (१) पुंकार। राजा। गड़गड़-हट। (२) अंधकार। अंधेरा।

पुंयमार-संज्ञा पुं० दे० "पुंयुमार"।

पुंयमाल-संज्ञा पुं० दे० "पुंयुमार"।

पुंय-संज्ञा स्त्री० [हिं० पुंय] (१) गर्द-गुथार। हवा में उड़नी हुई धूल। (२) गर्द धा धूल उड़ने के कारण होनेवाला अंधेरा। तारीकी।

पुंयाराना-कि० अ० दे० "पुंयताना"। व०—नवपरत्रय शीलत पुंयारये। होम शुभा जिन ऊपर धारये।—लक्ष्मणसिंह।

पुंयलका-संज्ञा वि० दे० "पुंयलका"।

पुंयला-वि० [हिं० पुंय + ला] (१) कुछ कुछ काला। धूँ के रंग का। (२) अस्पष्ट। जो साफ दिखाई न दे। (३) कुछ कुछ अंधेरा।

मुद्गा-पुंयले का वक्क = यह समय जब कि कुछ अंधेरा हो जाय और स्पष्ट दिखाई न दे। बहुत खेरे या अंधा का समय।

पुंयलाई-संज्ञा स्त्री० दे० "पुंयलापन"।

पुंयलाना-कि० अ० [हिं० पुंयला] पुंयला पड़ना।

पुंयलापन-संज्ञा पुं० [हिं० पुंयला + पन] पुंयले या अस्पष्ट होने का भाव। कम दिखाई देने का भाव।

पुंयली-संज्ञा स्त्री० दे० "पुंय"।

पुंयु-संज्ञा पुं० [सं०] एक राक्षस का नाम जो मनु राक्षस का पुत्र था। हरिवंश में लिखा है कि पुंयु एक बार एक मह-भूमि में बालू के नीचे छिप कर संसार को नष्ट करने की कामना से कठिन तपस्या कर रहा था। वह जब सति होता था तब उसके साथ पुंयु शीर अंगारे निकलते थे, मूर्खप होता था और बड़े बड़े पहाड़ तक हिलने लगते थे। जब महाराज बुद्धद्वय वानप्रस्थ प्रहण करके और अपना राज्य अपने लड़के कुवलयारव को देकर घन की ओर जाने लगे तब महर्षि उत्तक ने जाकर उनसे पुंयु की शिकायत की और कहा कि यदि भाव इस दुष्ट राक्षस को न मारेंगे तो थपा अर्थ हो जायगा। बुद्धद्वय ने कहा कि मैं तो वानप्रस्थ प्रहण कर चुका हूँ और भव शून्य नहीं उठा सकता; हाँ, मेरा लड़का कुवलयारव उसे अवश्य मार दालेगा। तदनुसार कुवलयारव अपने ही लड़कें को लेकर उत्तक के साथ पुंयु को मारने चला। उस समय विष्णु ने भी भोलाहित के विचार से उसके शरीर में प्रवेश किया था। कुवलयारव और उसके

लड़कें को देख कर पुंयु क्रोध से कुफकार होकरने लगा जिससे कुवलयारव के १० लड़के मर गए। अंत में कुवलयारव ने उसे मार डाला। तभी से कुवलयारव का नाम पुंयुमार पड़ गया।

पुंयुकार-संज्ञा पुं० [हिं० पुंयु + कार] (१) अंधकार। अंधेरा। (२) पुंयलापन (३) नगाड़े का शब्द। पुंयुका। व०—धराधर हाथे धरधर पुंयुकारन से धीर नर तजेंगे परेया बल पाई के।—गुमान।

पुंयुमार-संज्ञा पुं० [सं०] (१) राजा शिरांकु का पुत्र। (२) कुवलयारव का एक नाम।

विशेष—दे० "पुंयु"

पुंयुरि-संज्ञा स्त्री० [हिं० पुंयु] गर्द गुथार या धूँ के कारण होनेवाला अंधेरा। व०—(क) होल यमावती गावती गीत मघावती पुंयुरि पूरि के धारनि।—द्विजदेव। (ख) धीर धवीर की पुंयुरि में कथु केर से के मुल केरि के भाकी।—पद्माकर। (ग) विरुट कटक सति नख के चवत्त दल पुंयुरि मगार शिपी धूम मखिनाई है।—गुमान।

पुंयुरित-वि० [हिं० पुंयुरि] (१) पुंयुला किया हुआ। धूमिल। व०—सुवन पुंयुरित धूलि धूलि पुंयुरित सुभमह।—पद्माकर। (२) दृष्टिहीन। पुंयुली दृष्टियाला। व०—कलि गुलाब से पुंयुरित सकज खालिनी खाल। रोरी मीड़न के सुमिस गोरी गहे गोपाल।—पद्माकर।

पुंयुरी-संज्ञा स्त्री० [पुंयुरि] (१) गर्द गुथार से उत्पन्न अंधेरा। (२) पुंयुलापन। (३) अंधा का पुंयु नामक रोग।

पुंयुवाना-संज्ञा स्त्री० अ० [सं० पूज, हिं० पुंयु] पुंयु देना। पुंयु दे देकर जलना। व०—चिंता ज्वाल शरीर वन दूया लगि लगि जाय। प्रगट पुंयु नहिं देखिय उर अंतर पुंयुपाय।—गिरिधर।

पुंयुरी-संज्ञा स्त्री० [हिं० पुंयु वा पुंयुरि] पुंयु। गर्द गुथार के कारण होनेवाला अंधेरा। व०—दिग्गज दहत दधकत दिग्पाल मूरि, पूरि की पुंयुरी से अंधेरी धामा मातु की।—गुमान।

पुंयुला-संज्ञा पुं० [हिं० पुंयु + ला (प्रय०)] (१) बदनारा। पानी। (२) दगाबाज़। धोखेबाज़।

पुंयु-संज्ञा पुं० दे० "पुंयु"।

पुंयुका-संज्ञा पुं० दे० "पुंयुका"।

पुंयुदान-संज्ञा पुं० दे० "पुंयुदान"।

पुंयुधार-वि० और कि० वि० दे० "पुंयुधार"।

पुंयु-संज्ञा पुं० दे० "पुंयु"।

पुंयु-संज्ञा पुं० [सं० पूज] (१) सुखगती या जलती हुई चीजों से निकट कर हवा में मिलनेवाली भाप जो कोयले के सूदन अथवा से लड़ी रहने के कारण कुछ नीलापन या

काकापन लिए होती है। धूम। ३०—चिंता ज्वाड शरीर वन दावा करि करि जाय। प्रगट धुम्रां नहिं देखिए वर श्रत पुपुशाय।—गिरिधर।

क्रि० प्र०—उटना।—घूटना।—छोड़ना।—निकलना।—होना।

मुदा०—धुएँ का धौरहर=घोड़े ही काल में मिटने या नष्ट होनेवाली वस्तु यां आशोचन। चक्राभंगुर वस्तु। ३०—(क) कनिरा हरि की भक्ति विन चिक जीवन संसार। धुम्रां का सा धौरहर मत न लौगी धार।—कवीर। (ख) धुम्रां रो सो धौरहर देखि वू न भूख रे।—तुलसी। धुएँ के बादल उड़ाना=भारी गर हकाना। झूठ मूठ वड़ी बड़ी बातें कहना। धुम्रां देवा=(१) मुसमती हुईं वस्तु पर धुम्रां छोड़ना। धुम्रां निकालना। जैसे, यह तेल जलने में बहुत धुम्रां देता है। (२) धुम्रां लगाना। धुम्रां पछुंचाना। जैसे, इसकी नाक में मिर्चों का धुम्रां दो। धुम्रां निकालना या काटना=बढ़ बढ़ कर बातें कहना। शोली हकाना। ३०—नस अपने सुंद काड़े धुम्रां। चाहेसि परा नाक के कुम्रां।—नायसी। धुम्रां रमना=धुएँ का छाया रहना। धुम्रां सा सुंद होना=चेहरे की रंगत उड़ जाना। चेहरा फीका पड़ जाना। लगना से मुल मलिन हो जाना। (किसी वस्तु का) धुम्रां होना=काला पड़ना। भाँवर होना। धूमना होना। सुंद धुम्रां होना=देखो "धुम्रां सा सुंद होना"। (२) घटाये। बमइती हुईं वस्तु। भारी समूह। (३) धुम्रां। धजनी। ३०—धुम्रां देखि पारदूपण केरा। जाय सुन नवा रावण मेरा।—तुलसी।

मुदा०—धुएँ उड़ाना=धुम्रिया उड़ाना। द्रिज भिल करना। टुकड़े टुकड़े करना। नारा करना। धुएँ बलोरना=दे० धुएँ उड़ाना।

धुम्रांका-संज्ञा पुं० [हिं० धुम्रां + का०] कग = रचिना] भाप के जोर से चकनेवाली भाव या जहाज़। प्रगिनघोट। स्टीमर। धुम्रांदान-संज्ञा पुं० [हिं० धुम्रां + सं० श्वात से हिं० प्रत्य० दान] दान में धुम्रां निकलने के लिये बना हुआ छेद। चिमनी।

धुम्रांधार-वि० [हिं० धुम्रां + धार] (१) धुएँ से भरा। धूममय। (२) गहरे रंग का। भड़कीला। तड़क भड़क का। मध्य। (३) धुएँ का सा। काजा। स्याह। (४) बड़े जोर का। बड़े वेग का और बहुत अधिक। प्रचंड। घोर। जैसे, धुम्रांधार वर्षा, धुम्रांधार घटा, धुम्रांधार नशा। हिं० वि० बड़े वेग से और बहुत अधिक। बहुत जोर से। जैसे, धुम्रांधार चलना।

धुम्रांनि-क्रि० अ० [हिं० धुम्रां + नि (प्रत्य०)] धुएँ से बस जाना। अधिक धुएँ में रहने के कारण स्वाद और गंध में बिगड़ जाना। (पकवान आदि के लिये)

धुम्रांयध-वि० [हिं० धुम्रां + यध] जिसमें धुएँ की महक बस गई हो। धुएँ की तरह महकनेवाला।

संज्ञा छी० धरत न पचने के कारण धानेवाली उकर। धूम।

धुम्रांर-संज्ञा पुं० [हिं० धुम्रां] धूम में धुम्रां निकलने के लिये बना हुआ छेद या खिड़की। चिमनी।

धुम्रांस-संज्ञा छी० दे० "धुम्रांस"

धुम्रांसा-संज्ञा पुं० [हिं० धुम्रां] धर की दृत्त में जमी हुई धुएँ की कजली। आग जलने के स्थान के ऊपर की दृत्त में जमा कालिल या धुम्रां।

वि० धुएँ से घसा हुआ। आँच ठीक न लगने के कारण स्वाद और गंध में बिगड़ हुआ। (पकवान आदि के लिये)

धुक-संज्ञा छी० [रग०] कलायत्त पत्ते की सजाई।

धुकड़ धुकड़-संज्ञा पुं० [अ०] (१) भय आदि की धारांका से होनेवाली चित्त की बस्थिरता। धरावाद। (२) धारा-पीछा। पसेपेय।

धुकड़ी-संज्ञा छी० [रग०] छोटी थैली। बटुआ।

धुकधुकी-संज्ञा छी० [धुकधुक से अ०] (१) बसस्थर का वह भाग जो नीचे होता है। पेट और छाती के बीच का भाग जो कुछ गहरा सा होता है। (२) कलेजा। हृदय। (३) कलेजे की धड़कन। कंप। (४) दर। मय। लीक।

क्रि० प्र०—लगाना।

(२) एक गहना जो गले में पहना जाता है और छाती पर लटकता रहता है। पदिक। जुगन्।

धुकना-क्रि०-क्रि० अ० [हिं० धुकना] (१) झुकना। नीचे की ओर उड़ना। निहुरना। नवान। ३०—डगमगात गिरि परत पहन पर धुम ध्राज नैदवाळ। जनु धीधर धीधरत शोधोमुख धुकत धरनि माने नमि नोळ।—सूर। (२) गिर पड़ना। ३०—(क) लेत बसास नवन जल भरि भरि धुकि जु परी धरि धरणी।—सूर। (ख) रंड पर रंड धुकि परे धरि धरि पर गिरत उँसै संग करि वज्र वारे।—सूर।

(३) वेग से दूटना। झपटना। दूट पड़ना। ३०—(क) तुळसिदास श्नुनाथ नाम धुनि धरुनि गीध धुकि धायो।—तुलसी। (ख) माने प्रतच्छ परधुन की नम कीछ जसै कपि उँसै धुकि धायो।—तुलसी।

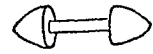
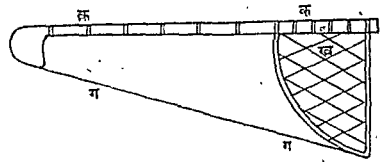
धुकनी-संज्ञा पुं० दे० "धुनी"।

धुकनार्-संज्ञा छी० [हिं० धुकना] धुंकार। धुंकार। घोर शब्द। गड़गड़ाहट का शब्द। ३०—सैयद समये भूप धरली धरकर दख, चक्रत पजाय मारु हुंदुमी धुकन की।—गुमान।

धुकनार्-क्रि०-क्रि० अ० [हिं० धुकना] (१) झुकाना। नवान। (२) गिराना। डकनेजना। (३) पड़ाड़ना। पटकना। ३०—करत सरस जत्र-हेलि कपहुँ नीनहिं गदि लावत। क्यहुँ है अतवार धाय उद्वार धुकावत।—सूदन।

कि० सं० [सं० धू + कण] धूती देना ।
 धुकार-संज्ञा स्त्री० [धु से ऋजु०] नगाड़े का शब्द । इ०—दे हुंहुमी
 धुकार गान मँहें वरसै फूल बराने ।—रघुराज ।
 धुकारी-संज्ञा स्त्री० दे० “धुकार” ।
 धुस्कना-क्रि० अ० दे० “धुक्ना” ।
 धुक्कारना-क्रि० अ० दे० “धुक्ना” ।
 धुगधुगी-संज्ञा स्त्री० दे० “धुक्कुकी” ।
 धुज-संज्ञा पुं० दे० “ध्वजा” ।
 धुजा-संज्ञा स्त्री० दे० “ध्वजा” ।
 धुजिनी-संज्ञा स्त्री० [सं० ध्वजा] सेना । फौज । उ०—फपि
 धुजिनी मँहें धैसे धाय खल खलमख भयो न धोरा ।—
 रघुराज ।
 धुङ्गी-संज्ञा वि० [हिं० धू + ङी] जिसके शरीर पर कोई वस्त्र
 न हो, केवल धूल ही धूल हो ।
 धुत-अव्य० दे० “धुत” ।
 धुतकार-संज्ञा स्त्री० दे० “धुतकार” ।
 धुतकारना-क्रि० सं० दे० “धुतकारना” ।
 धुतार-संज्ञा स्त्री० दे० “धूर्तता” ।
 धुत्-संज्ञा पुं० दे० “धूत” ।
 धुत्तर-संज्ञा पुं० दे० “धुत्तरा” ।
 धुत्तार-संज्ञा पुं० [सं० धूर्तता] धूर्तता । दगाबाजी । कपट । धूल ।
 कि० प्र०—देना ।—धताना ।
 संज्ञा स्त्री० [दे०] एक प्रकार की मछली ।
 धुधुकार-संज्ञा स्त्री० [धुधु से ऋजु०] (१) धू धू शब्द का शोर ।
 (२) घोर शब्द । कड़ा शब्द । गरज के समान शब्द । इ०—
 धाजन धावाजन को कहाँ लौं गानाये कोठ धमकनि धँसा
 की धुकारन की धुधुकार ।—गोपाल ।
 धुधुकारी-संज्ञा स्त्री० दे० “धुधुकार” । इ०—माची धँसन की
 धुधुकारी ।—रघुराज ।
 धुधुकी-संज्ञा स्त्री० दे० “धुधुकार” ।
 धुन-संज्ञा पुं० [सं०] कानिपे की क्रिया या भाव । कंपन ।
 संज्ञा स्त्री० [हिं० धुनना] (१) किसी काम को निरंतर
 करते रहने की अनिवाय प्रवृत्ति । बिना आगा पीछा सोचे और
 रुके कोई काम करते रहने की हल्का । लगन । जैसे, धाज
 कल धनँहें रुपया पैदा काने की धुन ही है ।
 कि० प्र०—लगना ।—समाना ।
 धी०—धुन का पका = यह जो आरंभ किए हुए काम को बिना
 पूरा किए न छोड़े ।
 (२) मन की तरंग । मोम । जैसे, धुन ही तो है, उठे और
 चल पड़े । (३) सोच । विचार । फिक । चिंता । खयाल ।
 जैसे, इस समय वे किसी धुन में घेरे हैं, इनसे बोझना
 शक नहीं है ।

संज्ञा स्त्री० [सं० ध्वनि] (१) स्वरों के शतार चक्राव आदि
 के विचार से किसी गीत को गाने का ढंग । गाने का तर्ज ।
 जैसे, यह भजन कई धुनों में गाया जा सकता है । (२)
 संसर्ग जाति का एक राग जिसमें स्वयं शुद्ध स्वर लगने
 हैं । (३) दे० “ध्वनि”
 धुनकना-क्रि० सं० दे० “धुनना” ।
 धुनकी-संज्ञा स्त्री० [सं० धनुस्] (१) धुनियों का यह धनुस् के
 आकार का धौज़ार जिससे वे रुई धुनते हैं । पिंजा । फटका ।



विशेष—इसमें (दे० चित्र) क क हलकी पर मजबूत बड़की का
 एक टंडा होता है और इसके सिरे पर काठ का एक
 और टुकड़ा ख होता है । इस सिरे से क क लकड़ी के
 दूसरे सिरे तक एक तंतु ग ग खूब कस कर बँधी होती है ।
 धुननेवाला क क खंडे को बाँध हाथ में पकड़ कर उकड़ पैठ
 जाता है और तंतु को रुई के ढेर पर रख कर उस पर धार
 धार प्रायः हाथ भर लंबी लकड़ी के एक इस्ते से, जिसके
 दोनों सिरे अधिक मोटे और खट्टदार होते हैं और जिसे
 मुठिया, येजन या हथ्या कहते हैं, आघात करता है जिससे
 रुई के रेशे धलंग अलग हो जाते और बिनीले निकल
 जाते हैं । कभी कभी अधिक सुवीले के बिये क क खंडे
 को ऊपर खूब में खटकते हुए किसी छोटे धनुस् से भी बाँध
 देते हैं ।
 (२) छोटा धनुस् जो प्रायः लकड़ों के खेजने धाया कभी
 कभी थोड़ी बहुत रुई धुनने के भी काम में आता है ।
 धुनना-क्रि० सं० [हिं० धुनकी] (१) धुनकी से रुई साफ करना
 जिसमें उसके बिनीले धलंग हो जाय, गर्दे निकल जाय
 और रेशे अलग अलग हो जाय । (२) खूब मारना पीटना ।
 मुहा०—सिर धुनना = दे० “सिर” के मुहा० ।
 संयोग क्रि०—डाखना ।—देना ।
 (३) धार धार कहना । कहते ही जाना । जैसे, तुमसे अपनी
 ही धुनते हो, दूसरे की सुनते ही नहीं । (४) किसी काम
 को बिना रुके बराबर करते जाना । जैसे, धुने चलो अथ
 धोरी ही बुर है ।

धुनवाना-कि० घं० [हि० धुनना] "धुनना" का प्रेरणार्थक रूप । धुनने का काम दूसरे से करना । दूसरे को धुनने में प्रवृत्त करना ।

धुनवी-संज्ञा स्त्री० दे० "धुनकी" ।

धुना-संज्ञा पुं० दे० "धुनिया" ।

धुनि-संज्ञा स्त्री० [सं०] नदी ।

संज्ञा स्त्री० दे० "ध्वनि" ।

धुनिया-संज्ञा पुं० [हि० धुनना] वह जो रहै धुनने का काम करता हो । बेहना । विशेष—भारत में प्रायः सुसज्जमान ही रहै धुनने का काम करते हैं ।।

धुनिहाथ-संज्ञा पुं० [?] इहड़ी में का दर्द ।

धुनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] नदी ।

धुनी-संज्ञा स्त्री० दे० "ध्वनि" । दे० "धूनी" ।

धुनी-सुरधुनी ।

धुनीनाथ-संज्ञा पुं० [सं०] सागर । समुद्र ।

धुनेचा-संज्ञा पुं० [देग०] एक प्रकार के सन का पीया जिसमें बंगाल में काली मिर्च की बेलों पर छाया रखने के लिये लगाते हैं ।

धुनेहा-संज्ञा पुं० दे० "धुनिया" ।

धुपना-कि० अ० [हि० धुपना] धुपना । घेरना । व०—(क) सेहूँके को सों आँक तपायें प्रगट लखायो । सैन नीर सों धुयो और हू जम चमकायो ।—घ्यास । (ख) मरत नैन समाय धुपै केहूँ गहिं घोये ।—घ्यास ।

धुपाना-कि० घं० [हि० धूप = दुर्गंधि द्रव्य] धूप देना । धूप के धूप से सुवासित करना ।

कि० घं० [हि० धूप = यथावत्] किसी चीज को सुगाने आदि के लिये धूप में रखना । धूप दिवाना ।

धुपेना-संज्ञा पुं० [हि० धूप + पना (प्रत्य०)] वह पात्र जिसमें धाग रखकर ऊपर से धूप डाल देते हैं । धूप सुजगाने का पात्र । धूपदानी ।

धुपेटी-संज्ञा स्त्री० [हि० धूप + पता (प्रत्य०)] गरमी में पसीने के कारण निकलनेवाली फुंती । खमीरी । पित्ती ।

धुपला-संज्ञा पुं० [सं०] बहैगा । धपरा ।

धुमई-नीं वि० [सं० धूम + ई (प्रत्य०)] धूप के रंग का । जिसका रंग धूप की तरह काळा हो ।

संज्ञा पुं० [सं० धूम] वह बैल जिसका रंग धूप का सा हो । देसा बैल साधारणतः मजबूत और तेज समझा जाता है ।

धुमरा-नीं वि० दे० "धूमिल" ।

धुमला-नीं संज्ञा पुं० [सं० धूप + ला (प्रत्य०)] जिसे दिखाई न दे । धंधा ।

धुमलाई-नीं संज्ञा स्त्री० [हि० धूमिल + लाई (प्रत्य०)] (१) धूमिल होने का भाव । (२) धंधकार । धंधेरा ।

धुमारा-वि० [सं० धूम + आरा (प्रत्य०)] धूप के रंग का । धूमिल ।

धुमिला-वि० दे० "धूमिल" ।

धुर्-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) जूधा जो बँडों आदि के कंधे पर रखा जाता है । (२) बोक । भार । (३) गाड़ी आदि का धुरा । अष्ट । (४) लुँटी । (५) शीपस्थान । अच्छी और ऊँची जगह । (६) डँगली । (७) चिनगारी । (८) भाग । धंरा । (९) धन । सम्पत्ति । (१०) गंगा का एक नाम ।

धुरंधर-वि० [सं०] (१) भार उठानेवाला । (२) जो सब में बहुत बड़ा, भारी या बली हो । जैसे, धुरंधर पंडित । (२) श्रेष्ठ । प्रधान ।

धंरा पुं० [सं०] (१) बोक डोनेवाला जानवर । जैसे, बैल, हाथर, गधा आदि । (२) वह जो बोक टोता हो । बोक डोनेवाला कोई जीव । (३) रामायण के अनुसार एक राक्षस जो प्रहस्त का मंत्री था । (४) धौ का पेड़ ।

धुर-संज्ञा पुं० [सं० धुर] (१) गाड़ी या रथ आदि का धुरा । अष्ट । (२) शीप या प्रधान स्थान । (३) भार । बोक । व०—जो न होत जग जन्म भरत को । सकल धर्म-धुर धरणि धरत को ।—तुलसी । (४) धारम । धुर । व०—धुर ही से खोयो खायो है लिए फिरत सिर भारी ।—सूर ।

मुहा०—धुर सिर से = बिलकुल धारम से । बिलकुल शुरु से । जैसे, धुनेने बना बनाया काम बिगाड़ दिया, अथ हमें फिर धुर सिर से करना पड़ेगा ।

(२) जूधा जो बँडों आदि के कंधे पर रखा जाता है । (६) जमीन की माप जो बिल्के का पीसवाई भाग होता है । विस्थापिता । अर्थ० [सं० धुर] न इधर न उधर । बिलकुल ठीक । सटीक । सीधे । जैसे, धुर ऊपर, धर नीचे । व०—धंतःपुर धुर जाय उतारै धारती । निरलि पुत्र को रूप सरूप विस्तारती ।—रघुनाथ । (२) एक दम दूर । बिलकुल दूर । व०—मोती लादन पियण्ण धुर पटना गुजात ।—गिरिधर ।

वि० [सं० धुन] पक्का । दृढ़ । व०—तय लागि साधु न धुर कब लागि परस न प्रेम को ।—इनुमान ।

धुरई-नीं संज्ञा स्त्री० [हि० धूर] धूप के रंग में धाँधे टिकाए हुए वे रंगों काँस या लंबी बकदियाँ जिनके जमीन पर वाले सिरे धाँधे में सटाकर मजबूती से बाँधे रहते हैं और दूसरे सिरे के बीच में वह छोटी लकड़ी या लुँटी जड़ी रहती है जिसमें गाराही पढ़नाई होती है ।

धुरकट-संज्ञा पुं० [हि० धुर = सिर (धारम) + कट = कटीका] वह लगान जो धरामी निमीदार को जेठ में वेगनी देते हैं ।

धुरिकःहली-संज्ञा स्त्री० [हि० धुरा + कील] गाड़ी में वह कील जो धुरी को धाँक से घटकने के लिये मीतार की धोर धुरी के सिरे पर लगा दी जाती है ।

धुरचट-नीं संज्ञा पुं० [सं० धूर + चट] अधिकता । प्रचुरता ।

धुरजटी—संज्ञा पुं० दे० "पूजटी" ।

धुरना—क्रि० सं० [सं० धुरंण] (१) पीटना । मारना । (२) बजाना । उ०—पहुँचे जाय राजगिरि द्वारे धुरे निशान सुरेश ।—सूर । (३) दारुण हृष्ट धान के पयाज के भूसा बनाने के लिये फिर से दाना । पुधारी करना ।

धुरपद—संज्ञा पुं० दे० "धूपद" ।

धुरमुट—संज्ञा पुं० दे० "दुरमुस" ।

धुरवा—संज्ञा पुं० [सं० धुर + वाह] बाइल । मेघ ।

धुरा—संज्ञा पुं० [सं० धुर] लकड़ी या लोहे का वह हंडा जो पहिए की गराड़ी के बीचों बीच रहता है और जिसके चारों ओर पहिया घूमा करता है । वह डंडा जिसमें पहिया पहनाया रहता है और जिस पर वह घूमता है । भ्रम ।

संज्ञा पुं० [सं०] मार । धोमक ।

धुरियाधुरंग—वि० [दे०] (१) वह गाना जो पात्रे या साज के साथ न गाया जाय । जिस (गाने) को बाने या साज की अपेक्षा न हो । (२) बरबेला । जिसके माथ और कोई न हो ।

धुरियाना—क्रि० सं० [हिं० धुर] (१) किसी वस्तु को धूल से ढँकना । किसी वस्तु पर धूल डालना । (२) ऊपर के खेत को पहले पहल गोदना । (३) किसी गेय या बदनामी को किसी युक्ति से दबा देना ।

क्रि० सं० (१) किसी चीज का धूल से ढँका जाना । (२) ऊपर के खेत को पहले पहल गोदना जाना । (३) किसी गेय या बदनामी का किसी प्रकार दबना या दबाया जाना ।

धुरियामदलाट—संज्ञा पुं० [दे०] धुरिया + मरगर] एक प्रकार का मछार जो सखें जाति का है और जिसमें सष शुद्ध स्वर लगते हैं ।

धुरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० धुर] छोटा धुरा । विशेष—दे० "धुरा" ।

धुरीय—वि० [सं०] (१) धोमक सेनाबनेवाला । (२) सुल्य । प्रधान । (३) धुरंधर ।

धुरीन—वि० दे० "धुरीय" ।

धुरेंडी—संज्ञा स्त्री० दे० "धुलेंडी" ।

धुरेटना—क्रि० सं० [हिं० धुर + टना (प्रत्यय)] धूल से छपेटना । धूल लगाना । उ०—(क) संग ऊँचरेटे चाह पट को खरेटे ध्रज गोरज धुरेते मे हैं सेटे नंदराय के ।—दीनदयाल । (ख) लोईं दिजदेवे जू नाइक ही सुख भोरे घने अरविंद धुरेटव ।—दिग्देव ।

धुर्य—संज्ञा पुं० [सं०] (१) अप्पन नामक योपधि जो बहसुन की तरफ देती और हिमालय पर मिलती है । (२) विल्यु । (३) बेल ।

वि० [सं०] (१) धुरंधर । (२) श्रेष्ठ । (३) धोमक बनेवाला ।

धुरी—संज्ञा पुं० [हिं० धुर] किसी चीज का अत्यंत छोटा भाग । कण । रजकण । जरा । भुसा ।

मुदा०—धुरें बड़ाना वा घड़ा देना—(१) किसी वस्तु के अर्थात् छोटे छोटे टुकड़ें कर उड़ाना । (२) छिन्न मित्र कर डालना । अन्न व्यक्त या नष्ट भ्रष्ट कर डालना । बहुत बुर्पति करना । (३) बहुत अधिक मारना या पीटना ।

धुलना—क्रि० सं० [हिं० धोना का सं० रूप] पानी की सहायता से साफ़ या स्वच्छ किया जाना । धोया जाना । जैसे, कपड़े धुल गए हैं तो ले लो ।

धुलवाना—क्रि० सं० [हिं० धुलना का प्रे० रूप] धोने का काम दूसरे से कराना । किसी को धोने में प्रवृत्त करना ।

धुलाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० धोना] (१) धोने का काम । (२) धोने का भाव । (३) धोने की मजदूरी ।

धुलाना—क्रि० सं० [सं० धुल] धोने का काम दूसरे से कराना । धुलवाना ।

धुलियापीर—संज्ञा पुं० [हिं० धूल + फा० पीर] एक कश्चित पीर जिसका नाम यच्चे खेज छादि में किया करते हैं ।

धुलियामिटिया—वि० [हिं० धूल + मिठी] (१) जिस पर धूल या मिठी पड़ी हो । भयवा डाली गई हो । (२) दबाया या शांत किया हुआ (मगड़ा बसेड़ा छादि) ।

धुलेंडी—संज्ञा स्त्री० [हिं० धूल + उड़ाना] (१) हिंदुओं का एक त्योहार जो होली जलने के दूसरे दिन बौत बदी १ को होता है । इस दिन प्रतःकाज लोग होली की राख मस्तक पर लगाते और दूसरों पर शरीर गुवाज छादि सूखे चूर्ण डालते हैं । (२) एक त्योहार का दिन ।

धुय—संज्ञा पुं० दे० "धुव" ।

संज्ञा पुं० [हिं०] कोय । कोय । गुस्सा

धुयका—संज्ञा स्त्री० [सं० धुयक] गीत का पहला पद । टेक ।

धुवन—संज्ञा पुं० [सं०] धारा ।

वि० चबानेवाला । कँपानेवाला । हिलागेधवा ।

धुवाँ—संज्ञा पुं० दे० "धुवाँ" । उ०—नयपखव शील छुंभाय, हेम धुवाँ जिन ऊपर छाए ।—लक्ष्मणसिंह ।

धुवाँकदा—संज्ञा पुं० दे० "धुवाँकश" ।

धुवाँघार—वि०, क्रि० वि० दे० "धुवाँघार" ।

धुवाँधज—संज्ञा पुं० [सं० धुवधज] अग्नि । (हिं०)

धुवाँरी—संज्ञा पुं० [हिं० धुवाँ + री] सुत में धुवाँ निकलने के लिये बना हुआ छेद या सिद्धी । चिमनी ।

धुवाँस—संज्ञा स्त्री० [हिं० धु + माप । वा० धुवाँसी] बरद का साटा जिससे पापड़ या कचौड़ी बनती है ।

धुवाना—क्रि० सं० दे० "धुलाना" ।

धुवित्र—संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का एक प्रकार का पंखा जो हिरन के चमड़े छादि से बनाया जाता था और जिसका

व्यवहार 'यासिक लोग बड़ा की आग बूझने के लिये करते थे।

धुस्तर-संज्ञा पुं० [सं० धुस्तर]

धुस्तर-संज्ञा पुं० [सं० धुस्तर] (१) गिरे हुए धरों की मिट्टी या हट पत्थर का ढेर। मिट्टी आदि का ऊँचा ढेर। टीला। (२) नदी आदि के किनारे पर बाँधा हुआ बाँध। बंद।

धुस्तरा-संज्ञा पुं० [सं० दिग्घट] मोटे ऊन की छोई जो जोड़ने के काम में आती है।

धुँध-संज्ञा स्त्री दे० "धुँध"। उ०—धूम धुँध छाई धर थंवर बमकत विच विष आब।—सूर।

धुँधर-वि० [सं० धुँध] धुँधला।

संज्ञा स्त्री (१) हवा में छाई हुई धूल। (२) धँधरा जो हवा में छाई हुई धूल के कारण हो।

धुँधला-वि० दे० "धुँधला"।

धुँसा-संज्ञा पुं० दे० "धुँसा"।

धू-वि० [सं० ध्रुव] स्थिर। अचल।

संज्ञा पुं० (१) ध्रुव तारा। (२) राजा उत्तानपाद का पुत्र जो भगवान् का भक्त था। उ०—रामकृपा मनी न वनाय, सुनी कथा प्रह्लाद न धू की।—तुलसी। (३) धुरी। उ०—धी हरिदास के स्वामी ध्यामा के समये सब नींदो दिखि मिलि केलि अटल भई धूपर।—स्वामी हरिदास।

धूर्धा-संज्ञा पुं० दे० "धूर्धा"।

धूर्धाधार-संज्ञा पुं० दे० "धूर्धाधार"।

धूर्ध-संज्ञा स्त्री [हि० धूर्ध] धूर्ती।

धूर्क-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वायु। (२) धूर्त मनुष्य। (३) काल।

संज्ञा पुं० [फा० दूक=तकता] कलाशय घटने की सड़ाई।

धूर्कना-क्रि० अ० दे० "दुर्कना"।

धूर्जाट-संज्ञा पुं० [सं० धूर्जटि] शिव। महादेव।

धूर्त-वि० [सं०] (१) कर्षित। कर्षता हुआ। धरधराना हुआ। बगमनाता हुआ। दिक्कता हुआ। (२) जो धमकाया गया हो। जो डाँटा गया हो। (३) लक। छोड़ा हुआ। (४) उर्कित।

धूर्त-वि० [सं० धूर्त] धूर्त। दगावान्। उ०—(क) तेसेई अन धूर्त कहावत।—सूर। (ख) समय सगुन मारग सिद्धहि धूर्क-मन्वीन राख धूर्त।—तुलसी।

धूर्तना-क्रि० सं० [हि० धूर्त] धूर्तता करना। धोखा देना। उ०—(क) हौं तेरे ही संग जाँगी यह कहि प्रिया पति धन राधाये।—सूर। (ख) मय्य पचन मानस विमल कपट-रहित करवति। तुलसी रघुबर सेवकहिं सर्क न कलिपुग पति।—तुलसी। (ग) तुम राखनि निय अनि करहु समुक्ति

मातृ-करवति। तात कैकइहि दोष नहिं गई गिरा मति पति।—तुलसी।

धूर्तपाप-वि० [सं०] जिसके पाप दूर हो गए हों। जो पाप या दोष से रहित हो गया हो।

धूर्तपापा-संज्ञा स्त्री [सं०] कारी की एक पुरानी छोटी नदी या नाला जिसके विषय में कहा जाता है कि वह पंचगंगा के पास गंगा में मिलती थी। यह नदी अब पट गई है।

विशेष—कार्यालंठ में इसके माहात्म्य के संबंध में एक कथा है। पूर्वे काल में वेदशिरा नामक एक ऋषि वन में तपस्या कर रहे थे। उस वन में शुचि नाम की एक अक्षरा का देव मुनि ने कामातुर हो कर उसके साथ संयोग किया। संयोग से धूर्तपापा नाम की कन्या उत्पन्न हुई। पिता की आज्ञा से यह कन्या भी वन ही में बसने लगी। अंत में ब्रह्मा ने प्रसन्न होकर उठे वर दिया "तू संसार में सबसे पवित्र होगी, तेरे राम राम में सब तीर्थ निवास करेंगे"। एक दिन धूर्तपापा को अकेले देव धर्म भाग्य एक मुनि उससे विवाह करने के लिये कहने लगे। धूर्तपापा ने पिता की आज्ञा लेने के लिये कहा। पर धर्म धार धार उल्टी समय गांधर्व-विवाह करने का हठ करने लगे। इस पर धूर्तपापा ने क्रुद्ध होकर शपथ दिया कि "तुम जड़ नद होकर बहो"। धर्म ने धूर्तपापा को शपथ दिया कि "तुम पत्थर हो जाओ"। पिता ने जब यह वृत्तान्त सुना तब कन्या से कहा "अच्छा तू कारी में चंद्रकोट नाम की शिक्षा होगी। चंद्रोदय होने पर तुम्हारा शरीर द्रवीभूत हो। कर नदी के रूप में बहोगी और तुम अत्यंत पवित्र होगी। उल्टी स्थान पर धर्म भी धर्मनद होकर बहोगी और तुम्हारा पति होगा"।

महाभारत (भीष्म पर्व ३ अ०) में भी धूर्तपापा नाम की एक नदी का उल्लेख है पर कुछ विवरण नहीं है। इससे कहा नहीं जा सकता कि इसी नदी से अग्निप्राय है या किसी दूसरी से।

धूर्ता-संज्ञा स्त्री [सं०] स्त्री। भार्या।

धूर्ती-संज्ञा स्त्री [दे०] एक चिड़िया। उ०—भांसा बरेर लव और सिचान। धूर्ती र चिप्यका अटक मान।—सुदन।

धूर्धू-संज्ञा पुं० [चतु०] आग के दूझने का शब्द। आग की लपट उठने का शब्द।

धून-वि० [सं०] कर्षित।

संज्ञा पुं० दे० "धून"।

धूनक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) दिखाने हुआनेत्रावा। पावाक। (२) साल का गोंद। राख। धूप।

धूनना-क्रि० सं० [हि० धूनी] धूर्ती देना। किसी वस्तु को जलाकर उसका धूर्धा घटाना। गुलगुना। जवाना। उ०—

ध्वानि पानड़े परे हैं पुर दौरि लगि धाम धाम धूपनि के धूस धूपनियत हैं।—देव ।

क्रि० सं० दे० “धुनना” ।

धूना—संज्ञा पु० [हिं० धूनी] गुग्गुलु की जाति का एक बड़ा पेड़ जो आसाम तथा खसिया की पहाड़ियों पर बहुत होता है । इसका गोंद भी धूप की तरह जलाया जाता है और यह वास्तविक धनाने के काम में आता है ।

धूनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० धुँ] (१) गुग्गुलु, लोथान आदि गंध द्रव्यों या और किसी वस्तु को जलाकर उठाया हुआ धुआँ । धूप ।

मुहा०—धूनी देना = गंध मिश्रित या विशेष प्रकार का धुआँ, उठाना या पहुँचाना । जैसे, इसे मिर्चों की धूनी देा तो मूल छोड़ना ।

(२) वह आग जिसे साधु या तो ठंड से बचने के लिये शय्या शरीर को तपाने या कष्ट पहुँचाने के लिये अपने सामने जलाए रहते हैं । साधुओं के तापने की आग ।

मुहा०—धूनी लगाना या खगना = (साधुओं के पास की) आग जलाना । धूनी लगाना या लगाना = (१) साधुओं का अपने सामने आग जलाना । (२) शरीर तपाना । तप करना । (३) साधु होना । विरक्त होना । योगी होना । धूनी रमाना = (१) सामने आग जलाकर शरीर तपाने बैठना । तप करना । (२) साधु हो जाना । विरक्त हो जाना । पर बार छोड़ देना ।

धूप—संज्ञा पु० [सं०] (१) देवपूजन में या सुगंध के लिये कण्ड, अगार, गुग्गुलु, आदि गंधद्रव्यों को जला कर उठाया हुआ धुआँ । सुगंधित धूम ।

क्रि० प्र०—देना ।

(२) गंधद्रव्य जिसे जलाने से सुगंधित धुआँ उठता और फैलता है । जलाने पर महकनेवाली चीज़ ।

विशेष—धूप के लिये पाँच प्रकार के द्रव्यों में से किसी न किसी का व्यवहार होता है—(१) निर्यात सर्वादि गोंद । जैसे, गुग्गुलु, रास । (२) चूर्ण । जैसे, जायफल का चूर्ण । (३) गंध । जैसे, कस्तूरी । (४) काष्ठ । जैसे, अगार की लकड़ी । (५) कृत्रिम अर्थात् कई द्रव्यों के योग से बनाई हुई धूप । कृत्रिम धूप कई प्रकार की होती है; जैसे पंचांग धूप, अष्टांग धूप, दशांग धूप, द्वादशांग धूप, योद्धांग धूप । इनमें से दशांग धूप अधिक प्रसिद्ध है जिसमें दस चीजों का मेल होता है । ये दस चीजें क्या क्या होनी चाहियें इसमें मतभेद है । पञ्चगुराण्य के अनुसार कण्ड, कुष्ठ, अगार, गुग्गुलु, चंदन, बेंसर, सुगंधवालाम, तेलपत्ता, वस और जायफल ये दस चीजें होनी चाहियें । सारांश यह कि साज और सजाई का गोंद, नैगसिद्ध, अगार, देवदार, पत्राळ,

मोग्रास, मोया, जडामाली इत्यादि सुगंधित द्रव्य धूप देने के काम में आते हैं ।

(३) सूर्य का प्रकाश और ताप । धाम । धातप । जैसे, धूप में मत निकलो ।

मुहा०—धूप खाना = इस स्थिति में होना कि धूप ऊपर पड़े । धूप में गरम होना या तपना । जैसे, (क) चार दिन धूप खावगी तो लकड़ी सूख जावगी । (ख) जाड़े में लोग बाहर धूप खाते हैं । धूप खिलाना = धूप में रखना । धूप लगने देना । धूप चढ़ना = सूर्योदय के पीछे प्रकाश का बढ़ना या फैलना । धाम निकलना । दिन चढ़ना । धूप दिखाना = धूप में रखना । धूप लगने देना । धूप देना = दे० “धूप दिखाना” । धूप निकलना = सूर्योदय के पीछे प्रकाश और ताप फैलना । धाम खाना । धूप पड़ना = सूर्य का ताप अधिक होना । धूप में बाज या चूँड़ा लकड़ करना = धुँदा हो जाना और कुछ जानकारी न प्राप्त करना । बिना कुछ अनुभव प्राप्त किए जीवन का बहुत सा भाग बिताना । धूप खेना = गरमी के लिये शरीर को धूप में रखना । धूप ऊपर पड़ने देना । जैसे, जाड़े में धूप खेने के लिये बाहर बैठना ।

धूपछाँही—संज्ञा स्त्री० [हिं० धूप + छाँही] एक यंत्र जिससे धूप में समय का ज्ञान होता है ।

विशेष—काठ या धातु का एक गोला चक्कर बना कर उसके चार भाग कर ले और एक एक भाग में छू छू तामान भाग करे और उस चक्कर की कोर थोड़ा छोड़ दे । उस कोर में साठ भाग करे और बीच में एक एक अंगुल चौड़ी दो पट्टियाँ ऐसी लगावे जिनसे उस चक्कर के चार विभाग परे हो जाय । दोनों पट्टियाँ जहाँ मिलें वहाँ बीचोबीच एक छेद करके एक कील लगा दे और चुंबक की सुई से या और किसी प्रकार उत्तर दक्षिण दिशा ठीक ठीक ज्ञान ले । इस स्थान के जितने पराश हो वतनी वह कील उत्तर की ओर घटी रहे । उस कील की छाया मध्याह्न से पहले पश्चिम की ओर और मध्याह्न के पीछे पूर्व की ओर पड़ेगी । मध्याह्न के चिह्न से पश्चिम की ओर जिस चिह्न पर छाया हो वतनी ही पड़नी मध्याह्न में घटती जाने, इसी प्रकार पूर्व का भी ज्ञान हो ।

धूपछाँह—संज्ञा स्त्री० [हिं० धूप + छाँह] एक रंगीन कपड़ा जिसमें एक ही स्थान पर कभी एक रंग दिखाई पड़ता है कभी दूसरा ।

विशेष—यह कपड़ा इस प्रकार बुना जाता है कि ताने का सूत एक रंग का होता है और धाने का दूसरे रंग का । इसी से देखनेवाले की स्थिति और कपड़े की स्थिति के अनुसार कभी एक रंग दिखाई पड़ता है, कभी दूसरा ।

दो रंगों में से एक रंग बाज होता है, दूसरा हर, नीला या बैंगनी।

धूप—धूपहुँह का रंग=दो रंग प्रकार मिलते हुए रंग कि एक ही स्थान पर कभी एक रंग दिखाई पड़े, कभी दूसरा।

धूपदान—छंटा पुं० [सं० धूप + धान] (१) धूप रखने का दिग्मा या बरतन। (२) वह बरतन जिसमें गंध द्रव्य या धूपबत्ती रख कर सुगंध के लिये जलाई जाती है। अगिवासी।

धूपदानी—छंटा स्त्री० [हिं० धूपदान] धूप रखने का छोटा बरतन।

धूपन—छंटा पुं० [सं०] [वि० धूपित] धूप देने की क्रिया। गंधद्रव्य जला कर सुगंधित धुआँ उठाने का कार्य।

धूपना—कि० अ० [सं० धूपन] धूप देना। गंधद्रव्य जलाना। कि० सं० धूप देना। गंधद्रव्य जला कर सुगंधित धुआँ पहुँचाना। सुगंधित धुएँ से बालना। व०—बारन धूपि अगारन धूपि के धूम धूप्याती पसारी महा है।—मतिराम कि० सं० [सं० धूपन = संवत या यांत होना] दीड़ना। दौरान देना।

विशेष—केवल समस्त पद में इसका प्रयोग होता है।

धूप—दीड़ना धूपना।

धूपपात्र—छंटा पुं० [सं०] धूप रखने का पातन। यह बरतन जिसमें गंधद्रव्य जला कर धूप देते हैं।

धूपबत्ती—छंटा स्त्री० [हिं० धूप + बत्ती] मत्स्यजा कगी हुई सोंठ या बत्ती जिसे जलाने से सुगंधित धुआँ उठ कर फैलता है।

धूपवास—छंटा पुं० [सं०] स्नान के पीछे सुगंधित धुएँ से शरीर, बाज आदि धांसने का कार्य।

विशेष—प्राचीन काळ में भारतवासी स्नान के उपरांत कुण्ड काज सुगंधित धुएँ में रह कर गीजे शरीर या यात को सुवाते थे जिसमें वह सुगंध से यस जाय। शुभंय, मेघवृत्त आदि कार्यों में इस प्रथा का इस्तेमाल है।

धूपवृक्ष—छंटा पुं० [सं०] सखई या गुग्गुलु का पेड़ जिसका गोंद धूप की सामग्री है।

धूपायित—वि० [सं०] (१) सुगंधित धुएँ से घसा हुआ। धूप दिया हुआ। (२) चकने आदि से घसा हुआ। दौरान। अंत और संतत।

धूपित—वि० [सं०] (१) धूप दिया हुआ। सुगंधित धुएँ से घसा हुआ। (२) चकने आदि से घसा हुआ। दौरान। अंत और संतत।

धूम—छंटा पुं० [सं०] (१) धुआँ। धुआँ। पर्याय—महदाह। खतमाज। शिशिलेधन। अग्निवाह। तरी।

(२) अजीर्ण का अपच में उठनेवाली डकार। (३) विशेष प्रकार का धुआँ जिसका कई रंगों में सेवन कराया जाता है।

विशेष—सुधुत ने पाँच प्रकार के धूम कहे हैं—प्रायोगिक (जो मसाले से लपेटे हुए सोंठ जलाने से हो), स्नेहन

(जो बत्ती में मसाला लपेट कर धी या तेल में जलाने से हो), वैरेचन (जो पिप्पली, पिचंग, अणामार्ग इत्यादि मध्य द्रव्यों की बत्ती से हो), कासज (जो ककड़ासिंगी, कंतकारी, वृद्धती आदि कासज औषधों की बत्ती से हो), और वामनीय (जो स्नायु, चमड़े, सोंठ, सूखी मसुली या हृमि आदि को जलाने से हो)।

(४) भूमकेतु। (५) उपकागत। (६) एक अग्नि का नाम। छंटा स्त्री० [सं० धूम = धुआँ] (१) बहुत से लोगों के इकट्ठे होने, आने जाने, योग गुल करने, दिलने सोचने आदि का व्यापार। रेलपेज। हलचल। आंदोलन। जैसे, मेले तमारे की धूम, बरतन की धूम, लूटमार की धूम।

क्रि० प्र०—मचना।—मचाना।

(२) हला और उड़ल हूँ। उपद्रव। उपात। ऊपम। जैसे, यहाँ धूम मत मचाओ, और जगह खोजो। व०—बंदर की तरह धूम मचाना नहीं अच्छा।—हरिचंद्र।

मुहा०—धूम डालना—ऊपम करना। हला गुला करना।

(१) मीढ़ भाड़ और तैयारी। टाट बाट। समाराह। भारी आयोगन। जैसे, धारात बड़ी धूम से निकली।

धूम—धूमयुक्ता। धूमधाम।

(४) कोलाहल। हला। शोर। (२) धारों शोर सुनाई देनेवाली बत्ती। जनरव। छहरत। प्रसिद्धि। जैसे, शहर में इस बाट की बड़ी धूम है।

छंटा स्त्री० [दे०] एक घास जो तालों में होती है।

धूमक—छंटा पुं० [सं०] (१) धुआँ। (२) एक शाक का नाम।

धूमकधैया—छंटा स्त्री० [हिं० धूम] बड़ल हूँ और हल्का गुल्का। उपद्रव। उपात। शोरगुल।

क्रि० प्र०—मचना।—मचाना।

धूमकेतन—छंटा पुं० [सं०] (१) अग्नि (जिसकी पताका धुआँ है)। (२) केतु ग्रह।

धूमकेतु—छंटा पुं० [सं०] (१) अग्नि (जिसकी पताका धुआँ है)। (२) केतुग्रह (जिसका चिह्न है धुएँ या भाप के आकार की पूँछ)। पुच्छल तारा।

विशेष—दे० “केतु”।

(३) शिव। महादेव। (४) वह घोड़ा जिसकी पूँछ में मवरी हो। (ऐसा घोड़ा बहुत अमंगलकर समझा जाता है)।

(५) शबय की सेना का एक राक्षस। व०—कुमुल, अकंपन, कुलिसरद, धूमकेतु अतिकार्य।—तुलसी।

धूमगंधि—छंटा पुं० [सं०] रोहिण्य ग्रह। कृता घास।

धूमग्रह—छंटा पुं० [सं०] राहु ग्रह।

धूमज—छंटा पुं० [सं०] (१) धुएँ से उपज) बाहल। (२) मुखक। मोया।

धूमजागज—छंटा पुं० [सं०] वज्रपात। नीसादर।

धूमदर्शी—वंशा पुं० [सं० धूमराशिर] वह मनुष्य जिसकी आँख के सामने धुआँ सा दिखाई पड़ता हो। सुँघना देखनेवाला भादमी।

विशेष—सुप्त के अनुसार सुँघना दिखाई पड़ने का रोग शोक, धम और सिर की पीड़ा के कारण होता है।

धूम धडुका—वंशा पुं० [हिं० धूम + धडुका] भीड़ भाड़ और तैयारी। समारोह। भारी आयोजन। ठाठ बाट। जैसे, प्याह में धूम धडुका मत करना।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

धूमधर—वंशा पुं० [सं०] अग्नि। आग।

धूमधाम—वंशा स्त्री० [हिं० धूम + धाम (धनु०)] भीड़ भाड़ और तैयारी। ठाठ बाट। समारोह। भारी आयोजन। जैसे, बड़ी धूम धाम से सवारी निकली।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

धूमध्वज—वंशा पुं० [सं०] अग्नि। आग।

धूमपथ—वंशा पुं० [सं०] (१) धुआँ निकलने का रास्ता। (२) पितृदान।

धूमपान—वंशा पुं० [सं०] (१) सुप्त के अनुसार विशेष प्रकार का धुआँ जो नख के द्वारा रोगी को सेवन कराया जाता है।

विशेष—नेत्र रोग तथा फोड़े कुँसी आदि में सुप्त ने कुछ मसालों तथा औषधियों के धुएँ को नख के द्वारा सुँद में लोंपने का विधान बताया है।

(२) तमाकू, सुष्ट आदि पीने का कार्थ्य।

धूमपोत—वंशा पुं० [सं०] धुआँकटा। अग्निबोट।

धूमप्रभा—वंशा स्त्री० [सं०] नरक जो सदा धुएँ से भरा रहता है।

धूमयोनि—वंशा पुं० [सं०] (धुएँ से बण्ड) बादल।

धूमरा^१ वि० रे० "धूमरा"।

धूमरज—वंशा पुं० [सं०] (१) घर का धुआँ। (२) घर के धुएँ का कालिख जो सूत और दीवार में लग जाता है।

धूमरा^२ वि० [सं० धूम] [स्त्री० धूमरी] कृष्य जोहित वर्ण का। धुएँ के रंग का। कालापन लिए हुए आँख। सुँघनी रंग का।

धूमल—वि० [सं०] धुएँ के रंग का। कालिमा युक्त काले रंग का। सुँघनी रंग का।

धूमला—वि० [सं० धूमल] [स्त्री० धूमली] (१) धुएँ के रंग का। कालाई लिए काले रंग का। सुँघनी रंग का। (२) सुँघना। जो चटकीला न हो। जो शोख न हो। (३) जिसकी कान्ति मंद हो। मलिन। व०—जैसे वह बात सुनते ही बसका चेहरा धूमला पड़ गया।

क्रि० प्र०—करना।—पढ़ना।—होना।

धूमवान्—वि० [सं० धूमवान्] [स्त्री० धूमवती] जिसमें या जहाँ धुआँ हो। धुएँवाला।

विशेष—बाहुल्य या अधिकता के अर्थ में धूमी विशेष्य होता है।

धूमसार—वंशा पुं० [सं०] घर का धुआँ।

धूमली—वंशा स्त्री० [सं०] धुआँल उरद का भाँटा।

विशेष—यह शब्द भावप्रकाश में मिलता है, किसी प्राचीन ग्रंथ में नहीं; इससे गढ़ा हुआ जान पड़ता है।

धूमांग—वि० [सं०] जिसका अंग धुएँ के समान हो।

वंशा पुं० शीशम का पेड़।

धूमाग्नि—वंशा पुं० [सं०] बिना आलावा लापट की आग (जैसी लपट निकल जाने पर गोदरे या उपजे की होती है)

धूमाम—वि० [सं०] धुएँ के रंग का।

धूमवती—वंशा स्त्री० [सं०] दश महा विद्याओं में से एक देवी।

विशेष—तंत्रों में इनकी उपासना की कथा इस प्रकार है।

एक बार पार्वती को बहुत सूख लगी और उन्होंने महादेव से कुछ खाने को माँगा। महादेव ने थोड़ा उड़रने के लिये कहा। पर पार्वती चुपचा से शय्यत आतुर हो कर महादेव को निगल गई। महादेव को निगलने पर पार्वती के शरीर से धुआँ निकलने लगी। शयत में महादेव ने प्रकट हो कर कहा—“तुमने जब हमें खाया तब विषया हो चुकी। हमारे घर से तुम इस वेश में पूजी जाओगी।” धूमवती देवी का ध्यान बढ़ा मलिन और भयंकर बताया गया है।

धूमित—वि० [सं०] जिसमें धुआँ लगा हो।

वंशा पुं० तंत्रों के अनुसार वह दूषित मंत्र जो सादे अक्षरों का हो।

धूमिता—वंशा स्त्री० [सं०] वह दिशा जिसमें सूर्य जानेवाला हो।

धूमिल^१—वि० [सं० धूमिल] (१) धुएँ के रंग का। कालाई लिए काले रंग का। (२) सुँघना। व०—सुप्त अरविंद घर मिलि सोमित धूमिल नील अगाध। मनहु वाल रवि रस समीर संकित तिमिर कूट ह्ये प्राथ।—सूर।

धूमि^२—वि० [सं० धूमि] जिसमें या जहाँ बहुत धुआँ हो। धुएँ से भरा हुआ।

विशेष—जहाँ बाहुल्य या अधिकता का भाव नहीं होता वहाँ धूमवान् रूप होता है।

वंशा स्त्री० (१) अजमीठ की एक पत्ती का नाम। (२) अग्नि की एक जिह्वा का नाम।

धूमोत्थ—वि० [सं०] धुएँ से निकला हुआ।

वंशा पुं० वज्रदार। नौशाबर।

धूमोद्धार—वंशा पुं० [सं०] अजीर्ण या अपच के कारण आनेवाली धुएँ की सी कड़वी दकार।

धूमोर्ध्व—वंशा स्त्री० [सं०] (१) यमपत्नी। (२) मार्कण्डेयपत्नी।

धूम्याट—वंशा पुं० [सं०] एक पक्षी। निगारा नाम की एक चिट्ठी। धुंग।

धूम-विं [सं०] धुएँ के रंग का । कृष्णबोधित । लज्जाई लिप काका रंग का । सुँवनी या मूरे रंग का ।
 संज्ञा पुं० (१) कृष्णबोधित वर्ण । लज्जाई लिप काका रंग । सुँवनी या मूरा रंग । (२) शिवान्त नाम का गंध द्रव्य । (३) एक भ्रतुर का नाम । (४) शिव । महादेव । (५) मेड़ा (६) हुमार के एक भ्रतुर का नाम । (७) फलित उग्रतिथि में एक योग का नाम । (८) मानिक या लाल का धूपलापन जो एक दोर समझा जाता है । (९) राम की सेना का एक भाग ।

धूमक-संज्ञा पुं० [सं०] ऊँट ।
 धूमकानि-संज्ञा पुं० [सं०] एक रत्न या नग का नाम ।
 धूमकेतु-संज्ञा पुं० [सं०] भरताराजा के एक पुत्र का नाम । (भागवत) ।
 धूमकेश-संज्ञा पुं० [सं०] (१) राजा ध्रुव के एक पुत्र का नाम । (२) कृष्णारव का एक पुत्र जो अर्चिर्च नाम की छी से शयन हुआ था । (भागवत) ।

धूमपत्रा-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक रौप्य का नाम जो आयुर्वेद में सीता, रुचिकारक, गरम, अग्निदीपक तथा शोथ, कुमि और खाँसी को दूर करनेवाला माना गया है ।

पण्यां—सुभभा । स्वयंभुवा । गृध्रपत्रा । गृध्राणी । कुमिमी ।
 धूममूलिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] शूल नामक वृक्ष ।
 धूमलोचन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कथुर । (२) शंभु नामक शानव का एक सेनापति ।

विशेष—शंभु निरुम के वध के लिये जय देवी ने एक परम सुंदरी का रूप धारण करके कहा था कि जो मुझे युद्ध में जीतेगा उसे मैं बरमादा पदनाईगी तब शंभु ने उन्हें पकड़ खाने के लिये इसी धूमलोचन को भेजा था ।

धूमवर्ण-विं [सं०] धुएँ के रंग का । लज्जाईपन लिप काका । भूमका ।
 संज्ञा पुं० धुएँ का रंग । लज्जाई लिप काका रंग ।

धूमवर्णा-संज्ञा स्त्री० [सं०] शक्ति की सात जिह्वाओं में से एक ।
 धूमवक्र-संज्ञा पुं० [सं०] ऊँट ।
 धूम्रा-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की ककड़ी ।
 धूम्राक्ष-विं [सं०] जिसकी आँखें भूमरे रंग की हैं ।
 संज्ञा पुं० (१) रावण का एक सेनापति जो राम-रावण युद्ध में हनुमान के हाथ से मारा गया था । (२) विंदुवर्णीय राजा हेमचंद्र के पुत्र । (भागवत)

धूम्राट-संज्ञा पुं० [सं०] धूम्राट पर्वी । भिंगराज ।
 धूम्रानि-संज्ञा स्त्री० [सं०] अग्नि की दस कलाओं में से एक । (शारदातिलक)
 धूम्रादव-संज्ञा पुं० [सं०] इक्ष्वाकुवंशीय एक राजा ।
 धूम्रका-संज्ञा स्त्री० [सं०] शीतल का पेड़ ।

धूर-संज्ञा स्त्री० दे० "धूल" ।
 संज्ञा स्त्री० एक घास ।
 अर्थ दे० "धुर" ।

धूरकट-संज्ञा पुं० [हिं० धूर+कट] लगन का कुछ पेशगी जिसे घासामी जेठ असाढ़ में जमींदार को देते हैं ।

धूरजटी-संज्ञा पुं० दे० "धूर्जटि" ।
 धूरडांगर-संज्ञा पुं० [दे०] लोंगवाला चौपामा । ढोर ।
 धूरत-विं दे० "धूर्त" ।

धूरधान-संज्ञा पुं० [हिं० धूर+धान] धूल की राशि । गर्द का ढेर । व०—धान के बाहिये को कर में फमान कसि भाई धूरधान घासमान में मड़े लगी । - पदाकर ।

धूरधानी-संज्ञा स्त्री० [हिं० धूरधान] (१) गर्द की ढेरी । धूल की राशि । (२) ध्वंस । विनाश । व०—लंकपुर जाति, मछरी विदारि धार धार जातुधान धारि धूरधानी करि डारी है ।— तुलसी । (३) पपरकला बंधक ।

धूरसंभ्रा-संज्ञा स्त्री० [सं० धूलि+संभ्रा] गोधूली का समय । संभ्रा ।

धूरा-संज्ञा पुं० [हिं० धूर] (१) धूल । गर्द । (२) चूर्ण । बुकनी । प्या ।

मुहा०—धूरा करना या देना = शीत से अंग सुन्न होने पर गरम राख, सेंक की बुकनी आदि मलना । धूरा देना = इपर उधर की बात कहकर या चापट्टी करके गों पर जाना । अपने अनुकूल करना । बहुकाना । धोला देना ।

धूरि-संज्ञा स्त्री० "धूल" ।
 धूरिया घेला-संज्ञा पुं० [हिं० धूर+वेश] एक प्रकार का बेल ।
 धूरिया मल्लार-संज्ञा पुं० [हिं० धूर+मलार] मल्लार राग का एक भेद ।

धूर्जटि-संज्ञा पुं० [सं०] शिव । महादेव ।
 धूर्त-विं [सं०] (१) मायावी । तुली । चाकबाज । (२) बंधक । प्रतारक । धोला देनेवाला । दगाबाज ।
 संज्ञा पुं० (१) साहित्य में शठ नायक का एक भेद । (२) विद खवण । (३) लोहकटि । लोहकटि । लोहे की नेल । (४) धतूरा । (५) चोर नामक गंधद्रव्य । (६) जुधारी । दौब पंच करनेवाला धादमी ।

धूर्तक-संज्ञा पुं० (१) जुधारी । (२) शृगाळ । गीदड़ । (३) कौरव्य कुल का नाम । (महाभारत)

धूर्तचरित-संज्ञा पुं० [सं०] (१) धूर्त का परिचय । (२) लकीर्य नाटक का एक भेद ।

धूर्ता-संज्ञा स्त्री० [सं०] माया । चाकबाजी । बंधकता । ठग-पना । धाढाकी ।

धूर्तमानुषा-संज्ञा स्त्री० [सं०] रास्ता ।
 धूर्धर-संज्ञा पुं० [सं०] बोझा ढोनेवाला । भारवाही ।

संशा पुं० (१) चेदिवंशाय कुंति का पुत्र । (हरिवंश) ।
(२) सप्तम मनु के एक पुत्र का नाम । (भागवत) । (३)
अर्जों का संहार । (वाल्मीकि०) ।

भृष्टकेतु-संशा पुं० [सं०] (१) चेदि देश के राजा शिशुपाल का
पुत्र जो कुरुक्षेत्र के युद्ध में पांडवों की ओर से लड़ा था और
द्रोणाचार्य के हाथ से मारा गया था । (२) जनकवंशीय
सुप्रति के पुत्र । (रामायण) । (३) मयें मनु रोहित के पुत्र ।
(४) सप्तति-राजवंशीय सुकुमार का एक पुत्र । (हरिवंश)

भृष्टता-संशा स्त्री० [सं०] (१) दिवार्ह । अशुचित साहस ।
गुस्ताली । (२) निलम्बता । संश्लेष का भाव । बेधयार्ह ।

भृष्टसुप्त-संशा पुं० [सं०] राजा हुपद का पुत्र और द्रौपदी का भाई
जो पांडवों की सेना का एक नायक था ।

विशेष—शुपत राजा का हुपद नामक एक पुत्र था । शुपत
राजा से महाद्वाम ऋषि की बहुत मित्रता थी, इससे वे नित्य
हुपद से। लेकर ऋषि के आश्रम पर जाया करते थे । क्रमशः
हुपद और ऋषिपुत्र द्रोण में बढ़ा स्नेह हो गया । हुपद जब
राजा हुआ तब द्रोण उसके पास गए पर उसने उनकी भयज्ञा
की । इस पर द्रोण दीन भाव से हृदय उभर घूमने लगे
और शंत में उन्होंने कौरवों और पांडवों की अशुचितता का
भार लिया । अशुप्त गुरु के अपमान का बदला सुकाने के
लिये हुपद को संघी करके छाए । हुपद ने द्रोण को शापा
राज्य हेंकर सुटकारा पाया । इस अपमान का बदला खेने
के लिये हुपद ने बाज और अनुशाज नामक दो ऋषिकुमारों
की सहायता से एक बड़े यज्ञ का अनुष्ठान किया । इस यज्ञ
से एक अत्यंत तेजस्वी गुरुप लक्ष्म, बर्मे, धनुर्वीय से सुसज्जित
वपुत्र हुआ । देवतायो हुई कि यह राजपुत्र हुपद के शोक
का नाश करेगा और द्रोणाचार्य का यध हूनी के हाथ से
होगा । कुरुक्षेत्र के युद्ध में जिस समय द्रोणाचार्य अपने
पुत्र ऋष्याश्रमा की शत्रुयु की बात सुन कर योग में मग्न
हुए थे उस समयवसी छष्टद्वाम ने इनका सिर काटा था । महा-
भारत के युद्ध के पीछे शरवस्थामान ने अपने पिता का बदला
लिया और सोते में छष्टद्वाम का सिर काट लिया ।

भृष्टि-संशा पुं० [सं०] (१) हिरण्यवाह का एक पुत्र । (३) दरारण
के एक मंत्री का नाम । (३) वज्रपात्र ।

भृष्टता-संशा स्त्री० [सं०] छष्टता ।

भृष्टाख-संशा पुं० [सं०] छष्टता ।

भृष्टि-संशा पुं० [सं०] किरण ।

भृष्टु-वि० [सं०] (२) छष्ट । प्रगल्भ । (२) वीट । उद्वत ।

संशा पुं० (१) वैवस्वत मनु के एक पुत्र । (२) सामर्थ्य मनु
के एक पुत्र । (३) एक रुद्र का नाम ।

भृष्टधोजा-संशा पुं० [सं० भृष्टवर्ण] कांसवीर्य के एक पुत्र ।

भृष्ट-वि० [सं०] धर्मय योग्य । धर्महीन ।

धेड़ी कौवा-संशा पुं० [दे०० धेड़ा + हि० कौवा] बड़ा कावा
कौवा । बोल कौवा ।

धेन-संशा पुं० [सं०] (१) समुद्र । (२) नद ।

‡ संशा स्त्री० दे० 'धेनु' ।

धेनु-संशा स्त्री० [सं०] (१) वह गाय जिसे पचका जने बहुत दिन
न हुए हो । सवसा गो ।

पच्यो—नववपुत्तिका । नववृत्तिका ।

(२) गाय । उ०—कौसल्यादि मातु सय भाई । निरसि
पच्यु ननु धेनु खंवाई ।—नुजसी ।

धेनुक-संशा पुं० [सं०] (१) एक राक्षस का नाम जिसे बलदेव-
जी ने मारा था । (हरिवंश) । (२) महाभारत के अनुसार
एक तीर्थ । यहाँ स्नान करके तिख की धेनु दान करने का
विधान है । (३) रतिमंजरी के अनुसार सोखड़ प्रकार के
रतिबंधों में से एक ।

धेनुका-संशा स्त्री० [सं०] (१) धेनु । (२) हस्तिनी स्त्री ।

धेनुदुग्ध-संशा पुं० [सं०] (१) गाय का दूध । (२) चिनिंटा ।

धेनुदुग्धकर-संशा पुं० [सं०] गाजर ।

धेनुमद्भिक्का-संशा स्त्री [सं०] बड़े मच्छड़ जो चौपायों को खगते
हैं । मांस । बंस ।

धेनुमती-संशा स्त्री० [सं०] (१) गोमती नदी । (२) भरत-
वंशीय देवद्वाम की पत्नी ।

धेनुमुख-संशा पुं० [सं०] गोमुख नाम का यज्ञा । उ०—बाजे
विपुल शंख धनियाया । भेरि धेनु सुवर्णवरी टुकाया ।—सख-
सिंह ।

धेनुप्या-संशा स्त्री० [सं०] वह गाय जो शंभु करती हो ।

धेय-वि० [सं०] (१) धारण करने योग्य । धार्य । (२)
प्रेमय करने योग । प्रेम्य । (३) पीने योग्य । पीने का ।
पेय ।

धेर-संशा पुं० [दे००] एक अनार्य्य जाति । इस जाति के लोग
राजपुताने, पंजाब और कहीं कहीं संयुक्त प्रांत के पश्चिमी
जिलों में पाए जाते हैं । ये लोग गाँव के बाहर रहते हैं
और मरे चौपायों आदि का मांस खाते हैं । राजपुताने में
मरे हुए गाय बैल आदि का चमड़ा निकालकर ये चमारों के
हाथ बँचते हैं । राजपुताने के घेर सुभर का मांस नहीं
खाते ।

धेरा-वि० [दे००] मोगा ।

धेलचा-संशा पुं० [हिं० धेला] बाधे पैसे के यशस्व का सिक्का ।
अधेजे के मूद्रय का सिक्का ।

धेला-संशा पुं० दे० 'अधेला' ।

धेली-संशा स्त्री० [हिं० धेलक] धाया रुपया । बाट बाने का
सिक्का । धटली ।

धौताल-वि० [धनु० धौ + हि० ताल] (१) चपल । चंचल ।
 (२) हलहल । ष०—छोड़ विचारे को धौताल ।—प्रताप ।
 धौनव-वि० [सं०] गाय से शयन ।
 संज्ञा पुं० गाय का बधुदा ।
 धौना-संज्ञा स्त्री [हि० धना वा धना] (१) पकड़ी हुई टेव ।
 भादत । स्वभाव । ष०—कह गिरधर कविराय फुदर के
 याही धौना । कजरीटा नदि होइ लुकाठे धौनी मैना ।—गिरि-
 पर । (२) काम-धौवा ।

धौयै-संज्ञा पुं० [सं०] (१) धीरता । चित्त की स्थिरता । संदृष्ट,
 भाषा, कठिनाई या विपत्ति आदि उपस्थित होने पर धय-
 राहट का न होना । धन्यप्रता । धन्यकुलता । धीरता । जैसे,
 बुद्धिमान् विपत्ति में धौयै रखते हैं । (२) शतावका न
 होने का भाव । धानुर न होने का भाव । हनुवड़ी न मचाने
 का भाव । सज । जैसे, धौवा धौयै धौरी, धनी से धौते होंगे ।
 (३) चित्त में उद्वेग न शयन होने का भाव । निर्विकार
 चित्तता ।

धौशय-साहित्यदर्पण के अनुसार धौयै भावक या पुरुष के
 श्राद्ध सायन गुणों में से एक है ।

धौ० प्र०—धौवाधौना ।—धौना ।—रखना ।

धौवत-संज्ञा पुं० [सं०] संगीत के सात स्वरों में से छठवाँ स्वर
 जो मध्यम के धागे खींचा जाता है ।

धौशय-नारदीय शिष्या के अनुसार धौशे के दिनदिनाने के
 समान जो स्वर निकले वह धौवत है । तानसेन ने इस स्वर को
 मेढक के स्वर के समान कहा है । संगीतदामोदर के मत
 से जो स्वर नाभि के नीचे जाकर बसित स्थान से फिर ऊपर
 दीढ़ता हुआ कंठ तक पहुँचे वह धौवत है । संगीतदर्पण के
 मत से यह स्वर अष्टशुद्ध बंध शयन और अत्रिय वर्णों का
 है । इसका वर्ण पीत, अम्भस्थान श्वेच्छरीय, अष्टि शुंवर,
 श्वेता गणेश और शुंद्ध उष्णिक (मवांतर से जगती)
 माना गया है और यह भीमसर और भयानक रस के उपयोगी
 कहा गया है । यह पाद्व आदि का स्वर माना गया है ।
 इसकी ७२० तानें मानी गई हैं जिनमें प्रत्येक के धम
 मंद होने से सब ३७२६० तानें हुईं । धुतियाँ इसकी तीन
 हैं—रम्या, शैविणी और मद्धती ।

धौवाल-वि० [हि० धौवा ?] (जनीन या मिट्टी) जिसमें देके
 कंकड़ पत्थर के टोके हों ।

धौधका-संज्ञा पुं० [सं० धध, हि० धुध] [सं० धौधका] धा
 का धुधान निकलने के लिये धौरी की तरह निकला हुआ
 धुध ।

धौधा-संज्ञा पुं० [सं० धुधि = गणेश ?] (१) धौधा । बेटीज
 पिंदा । ष०—मैं भी मिट्टी का धौधा ही हूँ ।—सखती ।
 (२) भंडा और बेटीज शरीर । भोटी और बेटीज मूर्ति ।

मुहा०—मिठी का धौधा = (१) मूल । नालमक । जड़ ।
 (२) निकम्मा । आलसी ।

धौरी-संज्ञा स्त्री [हि० धौरी] (१) धुलका निकाली हुई शरद
 या सैम की दाब ।

धौशय-पानी में मिठाई हुई दाब को हाथ से मल कर
 धुलका धुलका करते हैं इसी लिये दाब को धौरी कहते हैं ।

(२) अफीम के धरतन का धौवन ।

* संज्ञा पुं० [हि० धवई] राजगीर । धवई । ष०—राजा के
 लाग गठ धौई । फुटे जहाँ सँवारे सोई ।—जायसी ।

धौकड़-वि० [देव०] हटा कटा । मोटा सामा । हट पुष्ट ।
 मुट्टंटा ।

धौना-संज्ञा पुं० [सं० श्लोक, प्रा० धौक] पांच मुट्टी भर उठेली
 का पूजा ।

संज्ञा पुं० दे० “धौता” ।

धौवा-संज्ञा पुं० [सं० धूवा = धूवा] (१) मिथ्या व्यवहार
 जिससे दूसरे के मन में मिथ्या प्रतीति उत्पन्न हो । धूवता
 या धूल जिससे दूसरा भ्रम में पड़े । ऐसी युक्ति या
 धौवाकी जिसके कारण दूसरा कोई धरना कथ्ये भूल
 जाय । मुलाभा । धूल । दगा । जैसे, हमारे साथ ऐसा धौवा ।
 धौ०—धौला धौरी । धौलेशज ।

(२) किसी की धूवता, चालाकी, मूठ बात आदि से
 शयन मिथ्या प्रतीति । ऐसी बात का विश्वास ओ टीक न
 हो और जो किसी के रंग रंग या बात चीत आदि से हुआ
 हो । दूसरे के धूल द्वारा उपस्थित भ्रमि । दाबा हुआ
 भ्रम । मुलाबा ।

मुहा०—धौला धौना = किसी की धूवता या चालाकी न
 समझ कर कोई ऐसा काम कर बैठना जो विचार करने पर
 टीक न ठहरे । किसी के धूल या कथ्ये के कारण भ्रम में
 पड़ना । ठगा जाना । प्रतारित होना । ष०—धीर न धौला देव
 ओ धावुधि धौला खत ।—ध्याम । धौला देना = (१)
 ऐसी मिथ्या प्रतीति उत्पन्न करना जिससे दूसरा कोई अयुक्त कार्य
 कर बैठे । भ्रम में डालना । धुलावा देना । धुता देना । धुलना ।
 जैसे, धौगाँ के धौला देने के लिये बसने यह सब रंग
 रचा है । (२) भ्रम में डाल या रस कर अनिष्ट करना ।
 मूठ विश्वास धिला कर धुनि करना । विश्वाशघात करना ।
 किसी को ऐसी धुनि पहुँचाना जिसके संघ में वह धावधान
 न हो । जैसे, यह नौकर किसी न किसी दिन धौला देगा ।
 ष०—रहिण लउपट काटि दिन यह धामहिं में सोय । धुहि
 न बाकी बैदिणु ओ सप पतरो होय । ओ सप पतरो होय एक
 दिन धौला देई । धा धिन बई बयार टुटि यह जर से जई ।
 —गिरिपर । (३) व्यकरमात् मर कर या नष्ट होकर धुल
 पहुँचाना । जैसे, (क) इस धुपाये में वह पुत्र को लेकर दिन

काटता था, उसने भी धोखा दिया (अर्थात् यह चतन बस)।

(ख) यह चिमनी बहुत कमजोर है किसी दिन खोला देगी।

(३) शीक प्यान न देने या किसी वस्तु के बाहरी रूप रंग आदि से अल्पत्र मिथ्या प्रतीति। असत् प्रारणा। भ्रम। भ्रान्ति। मूल। जैसे, (क) इस रंगे परवार को देखने से असब नग का धोखा होता है। (ख) सुपहारे सुनने में धोखा हुआ, मैंने देखा कभी नहीं कहा था। ३०—पंडित हिंये परे नहिं धोखा।—जायसी।

क्रि० प्र०—होना।

मुहा०—धोखा खाना = भ्रम में पड़ना। भ्रंत होना। और का और समझना। ३०—जिमि कपूर के इस सेां हंसी धोखा खाय।—हरिश्चंद्र। धोखा पड़ना = भूल चुक होना। भ्रम होना।

(४) ऐसी वस्तु या विषय जिससे मिथ्या प्रतीति अल्पत्र है। भ्रंति दल्पत्र करनेवाली वस्तु या आयोगन। भ्रम में डालने वाली वस्तु। असत् वस्तु। माया। जैसे, (क) यह संसार धोखा है। (ख) राम भरोसा मारी है और सब धोखा घारी है।

मुहा०—धोखे की टट्टी = (१) बहुत परदा या टट्टी जिसकी ओट में छिप कर शिकारी शिकार खेलते हैं। (२) यथायं वस्तु वा यात को छिपानेवाली वस्तु। भ्रम में डालनेवाली चीज। ३०—मैं वनके धाने से धोखे की टट्टी हटाता हूँ।—शिव-प्रसाद। (३) ऐसी वस्तु जिसमें कुछ तथ्य न हो। दिक्कत चीज। धोखा खड़ा करना या रचना = भ्रम में डालने के लिये आश्चर्य खड़ा करना। माया रचना। ३०—चित्त धोला, मन निर्मला, बुधि उत्तम, मति धीर। सो धोखा नहि विरचदो संतगुह मिले कबीर।—कबीर।

(४) अज्ञान। जानकारी का अभाव। प्यान का न होना।

मुहा०—धोखे में या धोखे से = जान में नहीं। जान बूक कर नहीं। भूल वे। जैसे, धोखे से छग गया चम। करना। ३०—(क) जिमि धोखे मद्यान करि सखिब सोच तंदि भंति।—तुलसी। (ख) काज कहा नरतन परि सारयो। पर-अपकार सार धुति को सो धोखेहू में न विचारयो।—तुलसी।

(६) अनिष्ट की संभावना। जोखों। जैसे, (क) यह बड़े धोखे का काम है। (ख) इसमें जान जाने का धोखा रहता है।

मुहा०—धोखा बटाना = झूठी बात का विश्वास करके हानि रहना। भ्रम में पड़कर हानि या घट उठाना। साधवान न रहने के कारण नुकसान रहना। ३०—अच्छी तरह जान लिया करो, नहीं तो धोखा बटायोगे।—शिवप्रसाद।

(७) अन्ध्या होने की संभावना। जैसे समझा या कहा

जाय उसके विरुद्ध होने की धारणा। संशय। शक। ३०—(क) या में कबु धोखो नहीं नेही सूर समान। दोरु सग्मुख रहत हैं दग अनियारे धान।—रतनहजारा।

मुहा०—धोखा पड़ना = कल्पना होना। और का और होना। जैसे समझा या कहा जाय उसके विरुद्ध होना। ३०—पंडितन कहा परा नहिं धोखा। कौन अगस्त समुद्रहिं सोखा।—जायसी।

(८) मूल। चूक। प्रमाद। भ्रुटि। कसर। जैसे, जितना काम मुक्त से हो। सकेगा वसमें धोखा नहीं लगाऊंगा।

मुहा०—धोखा लगना = चूक या कसर होना। भ्रुटि होना। कमी होना। ३०—हीरामन तैं प्रान परेवा। धोख न खान बरत तुयं सेवा।—जायसी। धोखा लगाना = चूक या कसर करना। भ्रुटि करना। कमी करना। जैसे, कहने में अपनी ओर से मैं धोखा नहीं लगाऊंगा। ३०—माहदु खावतु धोख अनि धानु काज यद मोहिं। सुनि सरोय धोखे सुनद वीर यधीन न होहिं।—तुलसी। (इन दोनों मुहावरों का प्रयोग प्रायः नियेध वाक्य (या काकु से प्रश्न) में ही होता है।)

(६) लकड़ी में पयाज कपड़ा आदि छपेट का बनाया हुआ पुतला जिसे किसान चिट्ठियों के ढराने के लिये खेत में रक्का करते हैं। विज्ञान। भुचकाक। ३०—तुला विनाक साहू नृप त्रियुवन भट बटोरि सप के यज जोखे। परसुराम से सूर सितोमनि पज महे भय खेत के धोखे।—तुलसी।

(१०) रस्ती लगी हुई लकड़ी जो फलदार पेड़ों पर हसलिये बांधी जाती है कि नीचे से रस्ती खींचने से खटखट शब्द हो और चिट्ठियाँ दूर रहें। खटखट। (११) येसन का एक पकवान जिसके भीतर नरम बटहल, मसालों आदि इस प्रकार भरा रहता है कि देखने से कषाय का भ्रम होता है।

धोखेवाज-वि० [हिं० धोखा + वाज] संज्ञा धोखेवाजी धोखा देनेवाला। छुनी। कपटी। भूतं।

धोखेवाजी-संज्ञा स्त्री० [हिं० धोखेवाज] छुल। कपट। भूतंवा।

घोट-संज्ञा पुं० दे० 'घोटा'।

घोड़-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का सर्प।

घोतर-संज्ञा पुं० [सं० कपोल] एक मोटा कपड़ा जो गाड़े की तरह का होता है। अघोतर।

† संज्ञा स्त्री० 'धोती'।

धोती-संज्ञा स्त्री० [सं० कपोलक, हिं० कपोतर] नौ दस हाथ लंबा और दो चौड़े हाथ चौड़ा कपड़ा जो पुरुष का कटि से लेकर घुटनों के नीचे तक का शरीर और चित्ठियों का प्रायः सर्वोपयुक्त होने के लिये कमर में लपेट कर जोड़ा या ओढ़ा जाता है। ३०—(क) सूरम जेहि की तपे रसोई। नितहि बसेद

धोती धोई।—जायसी। (ख) पीत पुनीत मनोहर धोती।
हात बाब-रवि दामिनि जोती।—तुलसी।

क्रि० प्र०—पहनना।

मुहा०—धोती बांधना = (१) धोती पहना। उ०—मुद्रा अवन
अनेज कंधे। कनक पत्र धोती कटि बांधे।—जायसी। (२)
तैयार होना। धन्य होना। धोती ढोली करना = डर जाना।
भयभीत होना। डर कर भागना। धोती ढीली होना = भय
होना। डर होना। उ०—यह सामान देखकर धोतीपीड़ी की
धोती ढीली हुई।—गदाधरसिंह।

संज्ञा स्त्री [सं० धोति] (१) योग की एक क्रिया दे०
“धोति”। (२) एक श्रृंगुल चौड़ी और लंबान (२४) श्रृंगुल
की कपड़े की धोती जिसे हठयोग की “धोति” क्रिया में
सुई से निगलते हैं।

संज्ञा पुं० [दे०] एक प्रकार का याज जिसकी मादा को
वेसरा कहते हैं।

धोना-क्रि० सं० [सं० धवन] पानी साब कर किसी वस्तु पर से
मैल गद् धादि हटाना। पानी से साफ करना। मज से
रखने करना। प्रकाशित करना। पखारना।

विशेष—जिस वस्तु पर से गर्द मैल धादि हटाई जाती है
तथा जो लंबी हुई वस्तु (गर्द मैल धादि) हटाई या
छुकाई जाती है दोनों का धोना कर्म में होता है जैसे, हाथ
धोना, कपड़ा धोना, घर धोना, वस्त्र धोना, हस्ती प्रकार
मैल धोना, कालिल धोना, रंग धोना इत्यादि। उ०—(क)
जिन रहि वारि न मानस धोए। ते कायर कृत्तिकाळ विगोए।
—तुलसी। (ख) सूर दरस हरि कृपा धारि सैं कृत्तिकाळ
धोए पहवै।—सूर।

संयो० क्रि०—ढालना।—देना।—जोना।

मुहा०—(किसी वस्तु से) हाथ धोना = लो देना। गँवा
देना। मंचित रहना। जैसे, जो कृष्ण इनके पास था चे उससे
भी हाथ धो बैठे। हाथ धोकर पीछे पड़ना = ख. काम धाम
छोड़ कर प्रव्रत होना। ख. छोड़ कर लग जाना। धोया
धाया = (१) निःशर्तक। निर्दोष। साफ। (२) ऐंठा मनुष्य
जो धुराई करके भी शीशों के सामने उर्ध्वी प्रकार खजित न हो
जिस प्रकार निर्दोष आदमी। निर्जल उ. वैद्यना। घृष्ट।

(२) दूर करना। हटाना। मिटाना। उ०—(क) करी
गोपाय की सब होय। जो अपने पुढपायस मानत अति
कूरे है सोय। साचन मंत्र, यंत्र, इयम, बल यह सब धारी
धोय। जो कंडु लिखि रागी मँदनदन मेदि सके नहिं
कोय।—सूर। (ख) वृ ने शकुंतला के अचमान का दुःख
सब धो दिया है।—कल्मषसिंह।

संयो० क्रि०—ढालना।

मुहा०—धो पहाना = न रहने देना। छोड़ देना या लो देना।

धोप-^१ संज्ञा स्त्री० [सं० धो ; धप = काटनेवाला ?] तखवार।
खल। उ०—(क) छत्रसाज जेहि दिसि पिले काढ़ि धोप
कर माहिं। तेहि दिसि सीस गिरिस पै ननत बटोरत माहिं।
—जाज। (ख) भूपय हाखि बडे गढ़ भूमि पदान कर्बधन के
धमके से। मीरन के अयसान गये मिटि धोयनि सैं चपला
चमके से।—भूषण। (ग) एक हाथ धोप द्वै सैं कोप यह
जानत है एक तीव्र हाथ पर खँवयो एक भाळ सैं।—
हनुमान। (घ) अंगद सुमीव एक दोनें गए राम दिग सुने
महाराज सिंधु करी धात धोप की।—हनुमान।

धोब-संज्ञा पुं० [हिं० धोवना] धुलावट। धोए जाने की क्रिया।

मुहा०—धोब पड़ना = धोया जाना। धुलने की क्रिया होना।
जैसे, इस कपड़े पर कई धोब पड़े पर रंग नहीं पड़।

धोबइन्-संज्ञा स्त्री० दे० “धोयिन”।

धोबन-संज्ञा स्त्री० दे० “धोयिन”।

धोबिघटा-संज्ञा पुं० [हिं० धोबी + घट] बड़ घाट वहाँ धोबी
कपड़ा धोते हैं।

धोयिन-संज्ञा स्त्री० [हिं० धोबी] (१) कपड़ा धोनेवाली स्त्री।
धोबी आति की स्त्री। (२) धोबी की स्त्री। (३) दस
बारह श्रृंगुल लंबी एक चिड़िया जो जल के किनारे रहती है
और पत्थर धादि के नीचे छंदे देती है। यह श्रृंगुल के अनु-
सार रंग बदलती है।

धोबी-संज्ञा पुं० [हिं० धोवना] [स्त्री० धोयिन] कपड़ा धोनेवाला।
यह जो मैले कपड़ों को धो और साफ करके अपनी जीविका
करता हो। रत्नक। उ०—गुद धोबी, सिद्ध कपड़ा साधुन
सिरजनहार। सुरति सिद्धा पर धोइए निकसी रंग अवार।
—कवीर।

विशेष—हिंदुओं में जो जाति यह व्यवसाय करती है यह
नीच और अशुभरव समझी जाती है।

मुहा०—धोबी का कुत्ता = बहू जो एक दिवाने जम कर कोई
काम न करे। शर्ष इधर उधर फिरनेवाला। निकम्मा आदमी।
धोबी का बैला = (१) दूर के गाँव पर इशतनेवाला।
मँगनी या पराई चीज का चमड़े करनेवाला। (२) मँगनी
कपड़े पहन कर निकतनेवाला।

धोबीघास-संज्ञा स्त्री० [हिं० धोबी + घास] बड़ी दूध। दूध।

धोबीपछाड़-संज्ञा पुं० [हिं० धोबी + पछाड़ना] कुत्ती का एक
पेच जिसमें जोड़ का हाथ पकड़ कर अपने कंधे की ओर
लींचते हैं और उसे कमर पर बाँधकर चित गिरा देते हैं।

धोबीपाट-संज्ञा पुं० दे० “धोबीपछाड़”।

धोयी-संज्ञा पुं० [सं०] संस्कृत का एक कवि। इसका
बख्शेस अर्पण में शीतलोविंदु में किया है जिससे यह पता
चलता है कि यह कहाँ का राजा था। इसका १५५ हुमा

वायुदूत ग्रंथ अथ तक मिलता है और मेघदूत के वंग का है ।

घोर-संज्ञा स्त्री० [सं० धर = किनारा] (१) पास । सामीप्य । निकटता । (२) किनारा । धार । यात्रु । उ०—खोदि कई मणिकरिका, भूमि चक की घोर । सो धल भरयो प्रस्वेद-जल भयो हृग अथ घोर ।—केशव ।

घोरख-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सयारी । (२) घोड़े की सरपट चल । (३) दौड़ ।

घोरणि-संज्ञा स्त्री० [सं०] भ्रष्टी । परंपरा ।

घोरी-संज्ञा पुं० [सं० घोरेय] (१) घुरे की उठानेवाला । भार उठानेवाला । उ०—(क) फेरत मगहिं मातुकुत ग्येरी । चलत भगति बख धीरज घोरी ।—तुलसी । (ख) तिन महँ प्रथम रेख जगमोरी । धिग धरमवज्र धंयक घोरी ।—तुलसी । (२) बैल । चूपम । उ०—समरघ घोरी कंध धरि शय ले और निबाहिं । मारग माहिं न भेलिप पीछहिं विरह कजाहिं ।—दादू । (३) प्रथान । सुखिया । सरदार । उ०—(क) मन में मंजु मनोरथ जेरी । सोहर गीरि प्रसाद एक तें कौसिक कृपा चौगुनी भोरी । कुँवर कुँवरि सय मंगल मूरति नृप देव धरम धुरंधर घोरी । राज समाज भूरि भागी जिन्ह चौगुन जाहु लही पृथि डोरी ।—तुलसी । (ख) अथ यह कौज लुट ही लीनै । धोरिन घाव न कोऊ कीनै ।—लाल । (४) अष्टे घुसप । बड़ा आदमी । उ०—ग्लेच्छु चमार चुहरे कोरी । तिनतें भरवावत द्विज घोरी ।—निश्चल ।

घोरे-^१कि० वि० [सं० धर = किनारा] पास । निकट । समीप । उ०—(क) उबल देखि न धीजिपु यग ज्यों मंडि ध्यान । धोरे दंडि चपेटली यो ली चूई ज्ञान ।—कबीर । (ख) विनवै चतुरान कदि भोरे । एउ प्रताप जान्यो नदि प्रभु नू का स्तुति कर जेरे । अघापी मतिहीन नाथ हैं चूक परी निज भोरे । हम कून दोष हमी करुणामय ज्यों भू परलत शोरे ।—सूर । (ग) भौंभरियाँ भनकैगी ली लनकैगी चुरी तनिकी तन तोरे । दास नू जागती पास अहाँ परिहास करैगी सबै छदि मोरे । सोहि विहारी हैं भगि न जाहुँगी आहूँ हैं लाल तिहारे ही धोरे । केलि को रैनि परी है घरीक गई करि जाहु दूई के निदोरे ।—दास ।

घोरो—घोरे धारे = आत पास ।

घोलधक-संज्ञा पुं० [सं०] एक पेड़ का नाम ।

घोला-संज्ञा पुं० [सं० डुलगाय] जवाला । धमासा । हिं गुवा ।

घोलाना-^१कि० सं० दे० "घुलाना" ।

घोवती-^१संज्ञा स्त्री० [सं० ऋषोवत्] घोती । (क०) । उ०—टटकी घोई घोवती, षटकीली मुख जोति । फितति रसेई के बगर जगर मगर दुति होति ।—विहारी ।

घोवन-संज्ञा पुं० [हिं० घोना] (१) धोने का भाव । पद्मार्त्ने की क्रिया । (२) यह पानी जिससे कोई वस्तु धोई गई हो । जैसे, पैर का धोवन, चायख का धोवन ।

मुहा०—किसी के पैर का धोवन होना = किसी की श्रेयदा अत्यंत सुख्य होना । किसी के मुकाबले विजकुल नाचीन होना ।

घोवा-^१संज्ञा पुं० [हिं० घोना] (१) धोवन । (२) जल । अकै । उ०—संग नील बधू लिये दोई अटा पर चैंठे बिलोकत जोन्ध अरी । रघुनाथ गुलाब को धोवो बनाइ मगाहूँ के याहणी पास धरी ।—रघुनाथ ।

घोवाना-^१कि० सं० [हिं० घोना] धुलाना । उ०—कोइ परात कोइ छोटा लाई । शाह सभा सय हाप घोवाई ।—जायसी । कि० अ० [हिं० घोना का प्रकर्म] धुलना । धो जाना । साफ होना । उ०—गोये गोय न जाहिं से धोये ते न धोवाई । भली खाज लाली जुई खोपन कोयन माहिं ।—शं० सत० ।

घोसा-संज्ञा पुं० [हिं० ठोस] गुड़ आदि का सूखा हुआ खोदा । निस्तार । भोली ।

घों-^१अव्य० [सं० अथवा हिं० दँव, दहुँ] (१) एक अव्यय जो ऐसे प्रश्नों के पहले लगाया जाता है जिनमें जिज्ञासा का भाव कम और संशय का भाव अधिक होता है । बिचि-किस्ता सूचक एक शब्द । न जाने । कौन जाने । मालूम नहीं । कहा नहीं जा सकता । उ०—(क) कौन मोहनी धौं हुत सोही । जो सोदि बिया सो अपनी मोहौं ।—जायसी । (ख) कला-निधान सकल गुन आगर गुरु धौं कहा पड़ाप ।—सूर । (ग) लीय स्वयंवर देखिय जाई । ईस कहि धौं देखि पड़ाई ।—तुलसी । (घ) चितवत मोहि लगी चौबीसी जानौं न कौन कहाँ तें धौं आप ।—तुलसी । (२) प्रश्न के रूप में धानेवाले दो विकल्प या संदेहसूचक वाक्यों में से दूसरे या दोनों के पहले लगने-वाला शब्द । कि । या । अथवा । (इस अर्थ में प्रायः 'कि' या 'कै' के साथ आता है) । उ०—(क) गुनत सुदामा जात मनहि मन चीन्हैयो धौं नाहौं ।—सूर । (ख) की धौं वह पर्यङ्कटी कहुँ और, किधौं वह लक्ष्मण होय नहीं ।—केशव । (३) एक शब्द जिसका प्रयोग जोर देने के लिये ऐसे प्रश्नों के पहले 'तो' या 'सत्ता' के अर्थ में होता है जिनका उत्तर काकु से 'नहीं' होता है । यह प्रायः 'कहु' या 'कहो' के साथ आता है और 'कहो तो' का अर्थ देता है । उ०—(क) तुलसी जेहि के रघुबीर से नाथ समर्थ सो सेवत रीमत योरे । कहा भवमीर परी तेहि धौं विचरें धरनी तिनसो तिन तोरे ।—तुलसी । (ख) कंध न देह मसखरी कहै । कहु धौं कौन भाति निस्तारै ।—जायसी । (ग)

मेहिं परतीति यदि भांति नहिं धावई । प्रीति कहु धौं सु
नर वानरहि क्यों भई ।—देश्य । (घ) बानी जगरानी
की बराबरी यक्षानी जाय ऐसी मति कहे धौं उदार कौन
की भई ।—केशव । (ङ) किसी वाक्य के पूरे होने
पर उससे मिले हुए प्रत्यय वाक्य का आरंभ सूचक शब्द जो
'कि' का अर्थ देता है । उ०—(फ) हमहु न जानें धौं
सो कहा ।—त्रायसी । (ख) कहे सो विपिन है धौं
केति दूर ?—तुलसी । (र) विधि, आदेश आदि वाक्यों
के पहले आनेवाला एक शब्द जो क्लेश जोर देने के लिये
इसी प्रकार आता है जिस प्रकार 'सोचिए तो' 'कर तो'
'समझ तो' आदि वाक्यों में 'तो' । उ०—जिगि भानु विनु
दिन, भानु विनु तनु, चंद विनु जिमि जागिनी । तिमि
अवध तुलसी दास प्रभु विनु समुक्त धौं जिय भागिनी ।
—तुलसी ।

धौक-संज्ञा स्त्री० [हि० धौकना] (१) आग दहकाने के लिये
भायी के दशकर निकाला हुआ हवा का झोंका । अग्नि
पर पहुँचाया हुआ वायु का आघात ।

क्रि० प्र०—मारना ।—लगाना ।

(२) गरमी की लपट । ताप । लू ।

मुहा०—धौक लगना = शरीर पर ताप का प्रभाव पड़ना । लू
लगना ।

धौकना-क्रि० सं० [सं० धक् + धौकना, फूँकना । धक्क = धौकनेवाला]

(१) आग पर, उसे दहकाने के लिये, भायो दशकर हवा का
झोंका पहुँचाना । अग्नि को प्रयत्नित करने के लिये उस
पर वायु का आघात पहुँचाना ।

संयो० क्रि०—देना ।—लेना ।

(२) ऊपर डालना । भार डालना या सदन कराना । (३)
दंड आदि लगाना । जैसे, किसी पर शरमाना धौकना ।

धौकनी-संज्ञा स्त्री० [हि० धौकना] (१) बाल या घातु की एक
नली जिससे बोझार सोनार आदि आग फूँकते हैं । (२)
भायी ।

मुहा०—धौकनी लगना = लाल चढ़ना । दम फूटना ।

धौका-संज्ञा स्त्री० [हि० धौकना] गरमी में चलनेवाली गरम
हवा । तप्त वायु । लू ।

क्रि० प्र०—चलना ।

मुहा०—धौका लगना = गरमी के दिनों में तपी हुई हवा का
शरीर में अघर करना । लू लगना ।

धौकिया-संज्ञा पुं० [हि० धौकना] (१) भायी चलानेवाला ।
आग फूँकनेवाला । (२) एक प्रकार के व्यापारी जो भायी
आदि विपु नगरों की गलियों में फिर कर दूटे फूटे बरतने
की मर्यादा किया करते हैं ।

धौकी-संज्ञा स्त्री० [सं० धौकना] धौकनी ।

धौज-संज्ञा स्त्री० [हि० धौजना] (१) दौड़-धूप । धाव-धूप । उ०—
एक करे धौज एक सोज लै निहारै एक भोजि पानी पीके लीके
बनत न आबने ।—तुलसी । (२) धराराहट । उद्विग्नता ।
हैरानी । व्याकुलता । उ०—आयो आयो आयो सोह पावर
पहुरि भयो सोर चहुँ ओर लंका आयो युवराज के । एक
काँठे सोज एक धौज करे कह हूँ ही पोच भई महा सोच सुभट
समाज के ।—तुलसी ।

धौजन-संज्ञा स्त्री० दे० "धौज" ।

धौजना-क्रि० सं० [सं० ध्वेज = चलना फिरना] दौड़ना धूपना ।
दौड़ धूप करना ।

क्रि० सं० (१) किसी वस्तु को परे से रौंदना । (२) रौंदकर
या मलदल कर तह बिगाड़ना (कपड़े आदि की) जैसे,
विस्तर धौजना ।

धौटा-संज्ञा पुं० [हि० धप + धोट] शैध्यारी । टोका । कोई में
चलनेवाले पैल की श्रिलों का उकन ।

धौताल-वि० [हि० धुन + ताल] (१) जिसे किसी बात की धुन
लग जाय । फुरतीला । सुल चालाक । काम को कुछ न
समझनेवाला । (२) साहसी । दड़ । (३) हट्टा कट्टा । मज-
बूत । हेकड़ । (४) निपुण । पटु । तेज़ । जैसे, वह खाने में
बड़ा धौताल है ।

धौधौमार-संज्ञा स्त्री० [धनु० धम धम + हि० मार] हड़बड़ी ।
उतावली । शीघ्रता ।

क्रि० प्र०—करना ।—मथाना ।—होना ।

धौर-संज्ञा स्त्री० [सं० धवज] एक प्रकार की ईल जो सफेद
होती है ।

धौस-संज्ञा स्त्री० [सं० दृष] (१) धमकी । धुंकी । घाँट ।
लपट । उ०—कोई रोता है कोई हैलता है कोई नाचै है
कोई गाता है । कोई छीने मरते जे भागे कोई धौस का डर
दिलखता है ।—नज़ीर ।

क्रि० प्र०—दिलाना ।—देना ।

(२) धाक । अधिकार । रोव दाव ।

क्रि० प्र०—जमाना ।—जमाना ।—बैचना ।—धाँचना ।

(३) भाँसा पट्टी । खुशाना । धोखा । धुल ।

क्रि० प्र०—देना ।

यो०—धौस पट्टी ।

मुहा०—धौस की चलना = चाल चलना ।

(४) बद रूप्य जो मालगुजारी या लगान टोक समय पर न
देने के कारण दंड स्वरूप जमींदार या असामी से वसूल
किया जाय । धाकी वसूल होने का लख जो जमींदार या
असामी को देना पड़े ।

मुहा०—धौस धौचना = लख जिम्मे करना । लख मढ़ना ।

धौंसना—क्रि० सं० [सं० द्यस्तन, दंपन] (१) दयाना। दंड देना। दमन करना। (२) धमकी देना। धुड़की देना। डराना। व०—अपने सूप को बड़े सुनायो। मजबूती वशपरिन हैं सय सुगली आबुदि जाय बगयो। राजा बड़े बात यह समनी तुम धौ हन पै धौंसि पठयो। फौंसिदारिन कैसे तुम जानी तुम कहुँ नाहिन प्रगत देलायो। मजबूतना फौंसिदारी जो सब मस्तारी काडे न बनायो। फंदा फौंसि धनुष विप लाह सूर श्याम नहि हमें बतायो।—सूर। (३) मारना। पीटना। धौंस पट्टी—पंजा धौं० [हिं० धौंस + पट्टी] भुज्जना। मारना पट्टी। दम दिवाला।

क्रि० प्र०—देना।

मुहा०—धौंस पट्टी में धाना = भुलाने में धाना। बहकाने से फेर काम पर बैठना।

धौंसा—संज्ञा पुं० [हिं० धौंसना] (१) बड़ा पागारा। डंका। व०—(क) दादुर दामन में फौंसि मिली गरजनि धौंसा दामिनि मसाले देखि दुरे जगजीव से।—देव। (ख) जरासंध सध असुर सेना ले धौंस दे चला।—छरलू। (ग) धुंकार धौंसन की बड़ी हुंकार भूमिपतीन की।—नोवाला। (घ) धौंसा लगे धहरान संख लगे हहरान सुत्र जामे धहरान केतु लगे फहरान।—गोपाल।

क्रि० प्र०—बजवाना।—बजाना।

मुहा०—धौंसा देना वा बजाना = चढ़ाई का डंका बजाना। चढ़ाई की घोषणा करना। व०—जरासंध सध असुर सेना ले धौंसा दे चला।—छरलू।

(२) सामर्थ्य। शक्ति। इष्टिपार। बूला। व०—उसका क्या धौंसा है जो इतना लचके उठाये।

धौंसिया—संज्ञा पुं० [हिं० धौंसना] (१) धौंस जमानेवाला। धौंस से काम चलायेवाला। (२) मारना पट्टी देनेवाला। धौंसेवाला। (३) धौंसेवाला। नगारा बजानेवाला। (४) वह जो मालगुजारी के बाकीदारों से मालगुजारी समूह करने का खर्च लेता है।

धौं—संज्ञा पुं० [सं० धव] एक ऊँचा क्लाया सदावाहार पेड़ जो हिमालय पर २००० फुट की उँचाई तक होती है और भारतवर्ष में प्रायः सर्वत्र जंगलों में मिलता है। इसकी पत्तियाँ अमरुद की पत्तियों से मिलती जुड़ती होती हैं और छाज सफेद होती है जो चमड़ा सिक्काने के काम में आती है। इसके फूल बड़े रंगसाना आक के रंग में मिला कर लाल रंग बनाते हैं। इससे एक प्रकार का गोंद निकलता है जिसे छोटी रंगों में मिला कर कपड़ा छापते हैं। लकड़ी इसकी सफेद होती है और हल मसल कुबड़ाई का बंद आदि बनाने के काम में आती है। इसका प्रयोग औषध में भी होता है और वैद्यक में यह चरपरा, कनैला, कण-वात-

नाशक, हृषिकारक और दीपन यतत्राया गया है। श्वेप लोग इसका प्रयोग पांडुरोग, प्रमेह, चर्म और वात-रोग में करते हैं।

पर्या०—पियाचवृक्ष। सुरंघर। गौर। पांडुर। नंदितह। स्थिर। शुक्र तह। धवळ। शाकटायव।

धौत—वि० [सं०] (१) धोया हुआ। साफ। जैसे, धौतवसन। धौतपाप हत्यादि। (२) उजला। सफेद। जैसे, धौतशिला। (३) महाया हुआ। छात। व०—हरि को विमल यश गावत गोदंगना। मथिमय आंगन नंदराय के। बाल गोपाल तहाँ करे रँगना। गिरि गिरि परत सुदुस्वनि टेकत लेखत हैं देव छुगन मंगना। धूसरि धूरि धौत तनु मंडित मागि यगोदा लेत उदंगना।—सूर।

संज्ञा पुं० रूपा। चाँदी।

धौतशिला—संज्ञा धौं० [सं०] स्फटिक। बिहौर।

धौतात्मा—वि० [सं० धौतात्मन्] जिसकी आत्मा शुद्ध हो गई। पवित्रात्मा।

धौति—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) शुद्ध। (२) दृष्टेय के एक क्रिया जो शरीर को भीतर और बाहर से शुद्ध करने के लिये की जाती है।

विशेष—वेदंशसंहिता में इसका पूरा वर्णन है। उसमें धौति चार प्रकार की कही गई है—श्रंतधौति, दंतधौति, हृदधौति और मूलरोधन। श्रंतधौति के भी चार भेद हैं—बातसार, वारिसार, वहिसार और बहिष्कृत। बातसार में मुँह को कौचे की बाँच की तरह निकाल कर हवा खींचकर पेट में भरते हैं और उसे फिर मुँह से निकालते हैं। वारिसार में गले तक पानी पीकर अघोमाग से निकालते हैं। अद्रिसार में साँस को रोक्कर और पेट को पचका कर नाभि को सौ बार मेरुदंड (रीढ़) से छानना पड़ता है। बहिष्कृत में कौचे की बाँच की तरह मुँह करके पेट में हवा भरते हैं और उसे चार दंड वहाँ रख कर अघोमाग से निकालते हैं। इससे पीछे नाभि तक जल में ढाढ़े होकर आँतों को बाहर निकाल कर मल धोते हैं और फिर उठते धुएँ में स्थापित करते हैं। दंतधौति भी पाँच प्रकार की होती है—दंतमूल, जिह्वामूल, रंध, कर्णधार और कणालरंध। इनमें से जिह्वामूल की शुद्धि जीम को चिमटी से खींच कर करते हैं। रंध धौति में नाक से पानी पीकर मुँह से और मुँह सुद्ध कर नाक से निकालना पड़ता है। इसी प्रकार और भी शुद्धियों को समझिए।

(३) योग की एक क्रिया जिसमें दो शंखुल चौड़ी और आठ दस हाथ लंबी कपड़े की धरती मुँह से पेट के नीचे धारते हैं, फिर पानी पीकर उभे धीरे धीरे बाहर निकालने

हैं। इस क्रिया से आँतें शुद्ध हो जाती हैं। (४) योग की क्रिया में काम आनेवाली कपड़े की लंबी धन्नी।
 धोय्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक ऋषि जो देवव्रत के माई और पांडवों के पुरोहित थे। ये इत्येव नामक तीर्थ में रहते थे। चित्राक्ष के आदेशानुसार युधिष्ठिर ने इन्हें अपना पुरोहित बनाया था। (२) एक ऋषि जो महाभारत के अनुसार ध्या-प्रपद नामक ऋषि के पुत्र और बड़े शिवभक्त थे। ये सतयुग में थे और बचपन में ही माँ से इष्ट होकर शिव का तप करके अन्न अन्न और दिव्यज्ञान-संपन्न हो गए थे। (३) एक ऋषि का नाम जिन्हें आयोद भी कहते थे। इनके आरुधि, उपमन्यु और वेद नामक तीन पुत्र थे। (४) एक ऋषि जो सारा रूप में परिचय दिशा में स्थित हैं। इनका नाम महाभारत में उर्षु, कवि और परिव्याध के साथ आया है।
 धौर-संज्ञा पुं० [हिं० धौर = सफेद] एक चिड़िया। सफेद परेवा।
 धौरहर-संज्ञा पुं० दे० "धौरहर"।

धौरा-वि० [सं० धवल] [सं० धौर] (१) श्वेत। सफेद। उज्ज्वल।
 ध०—(क) धूम, श्याम, धवरे धन धाए। सेत धुवा बग पति दिलाए।—जायसी। (ख) धौरी धेनु वज्रवन कारन मधुरे धेनु बनावै।—सूर। (ग) धायो जैन तेरी धौरी धारा में धैसत जात तिनको न होत सुखर तें निपात है।—पद्माकर। (२) सफेद रंग का बैल। (३) धौ का पेड़। (४) एक पत्नी। एक प्रकार का पंडुक जो कुछ बड़ा और तुलते रंग का होता है। उ०—धौरी पंडुक कदि पिय टाऊं। धौ चितरोष न दूसर नाऊं।—जायसी।
 धौरादित्य-संज्ञा पुं० [सं०] शिवपुराण के अनुसार एक तीर्थ का नाम।

धौराहर-संज्ञा पुं० [हिं० धुर = ऊपर + धर] ऊँची अटारी। भवन का वह भाग जो रामे की तरह बहुत ऊँचा गया हो और जिसपर चढ़ने के लिये भीतर भीतर सीढ़ियाँ बनी हों। धरहरा।
 धुनै। उ०—(क) पदुमापति-धौराहर चढ़ी।—जायसी। (ख) राम जय राम जय राम जय धावरे। धौर धर नीर तिथि नाम निग नाच रे।.....अग नमवाटिका रही है फलि फूलि रे। धुवा के सो धौराहर देखि दू न भूखि रे।—तुलसी। (ग) धौर मन रहन अटक करि जाना। धन दारा सुत बंधु कुटुंब कुल निरति निरति बौराना। जीवन जन्म सपनों से समुक्ति देखि अस्वप्न माहीं। बाहर छाने भूम धौराहर जैसे धिर न रहाहीं।—सूर।

धौरितक-संज्ञा पुं० [सं०] घोड़े की पाँच बालों में से एक।
 धौरिय-संज्ञा पुं० [सं० धौरिय] बैल। उ०—नैन कचे धौरियन धरे नहीं धुर जाह। कैसे मन को योग धरि धर बाँ सके चत्राय।—रसनिधि।
 धौरी-संज्ञा स्त्री० [हिं० धौर] सफेद रंग की माय। कवित्रा।

ध०—सामक की कारी घटा विरि चाई महा भर से बरसे भरि सानन। धौरिहु कारिहु चाह गइ सु रम्हार के धाह के लागीं चुआवन।—देव।

धोरि-कि० वि० दे० "धोरि"।
 धोरिय-वि० [सं०] धुर लौचनेवाला। रथ आदि लौचनेवाला।
 संज्ञा पुं० वह बैल जो गाड़ी लौचता है।
 धौर्य-संज्ञा पुं० [सं०] धूर्सता।
 धौर्य-संज्ञा पुं० [सं०] घोड़े की एक चाल।
 धौल-संज्ञा स्त्री० [अनु०] (१) हाथ के पंजे का भारी आवात जो सिर या पीठ पर पड़े। धप्या। चाँटा। धप्यड़। उ०—धुनि भापू तो हक धौल लगी सव पदति दूर दुरे चट ते।—गोशाल।
 कि० प्र०—देना।—पढ़ना।—मारना।—लगना।—लगाना।

धौ०—धौल धप्यड़। धौल धप्य। धौल धक्का।
 मुहा०—धौल कसना, धा जमाना = चाँटा लगाना। धप्यड़ मारना। धौल खाना = चाँटा सहना। धप्यड़ की मार सहना। (२) हानि का आघात। नुकसान का घनका। हानि। टोटा। जैसे, घंटे बैठाए २००) की धौल पड़ गई।

कि० प्र०—पढ़ना।—लगाना।
 संज्ञा स्त्री० [सं० धवल] (१) धौर नाम की ईंध जिसकी खेती कानपुर, धरौली आदि में होती है। (२) ज्वार का हरा बंडल।

संज्ञा पुं० [सं० धवल] धौ का पेड़। धौरा। पकड़ी।
 वि० [सं० धवल] वज्रता। सफेद। उ०—देव कई अपनी अपनी अबजोकन तीरधाराज खले रे। देखि मिटै अघराध अगाध निमग्नत साधु समाज मले रे। सोई सितामित को मिलियो तुलसी दुलसे हिय हेरि दिखारे। मानो हरो एन चारु चरें बगरे सुधेनु के धौल कजारे।—तुलसी।

मुहा०—धौल धूर्स = हाहा धूर्त। पढ़ना चालवाज। उ०—ऊयो।—हम यह कैसे मानें। धूत लौल लंपट जैसे पट हरि जैसे धौरन जाने।—सूर।
 संज्ञा पुं० [हिं० धौर] धरहरा। धौराहर। उ०—कटक बनाए वेश राम ही को जाये पायी मेते मन धुमाँ को सो धौल नम दायो है।—हनुमान।

धौलधकड़-संज्ञा पुं० [हिं० धौर + धका] मारपीट। दंगा। क्रोध। उपद्रव।
 धौल धका-संज्ञा पुं० [हिं० धौर + धका] आघात। चोट। उ०—तुलसी जिन्हें धाए सुके पारनीधर, धौरधकान तें मेद हरी है।—तुलसी।
 धौल धप्यड़-संज्ञा पुं० [हिं० धौर + धप्य] (१) मार पीट। चक्का मुका। (२) दंगा। उपद्रव। क्रोध।

क्रि० प्र०—करना ।—मघना ।—मघाना ।

धौल धय्या—संज्ञा पुं० दे० "धौलधय्यम्" ।

धौलहर—संज्ञा पुं० [हिं० धौलहर] धौराहर । उ०—कषिरा हरि की मक्ति बिनु थिक जीवन संसार । पूँसा का सा धौल-हर जात ग जागी बार ।—कथीर ।

धौलहरा—संज्ञा पुं० दे० "धौराहर" ।

धौलाजर—संज्ञा पुं० [सं० भवशापश] एक पर्वत जो पंजाब के कांगड़ा जिले में है ।

धौला—वि० [सं० भवश] [सं० भौली] सफेद । उजला । श्वेत । संज्ञा पुं० (१) धी का वेड़ । धौरा । (२) सफेद बैल ।

धौलाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० धौल + आई (प्रत्यय)] सफेदी । उजलापन ।

धौला खैर—संज्ञा पुं० [हिं० धौला + खैर] यकूल की जाति का एक पेड़ जिसकी छाँट सफेद होती है । यह बंगाल, बिहार, आसाम और दक्षिण भारत में होता है ।

धौलागिरि—संज्ञा पुं० दे० "भवलगिरि" ।

धौली—संज्ञा स्त्री० [सं० भवल] एक बड़ा वेड़ जो गाड़ों में पत्थियाँ मारता है । इसकी लकड़ी गरम और भूरी होती है तथा पालकी, झिलीने, खेती के सामान बनाने के काम में आती है । इसकी भीतर की छाँट दवाओं में पड़ती है और चमड़ा सिम्ताने के काम में भी आती है । यह वेड़ पंजाब, अवध, मध्य प्रदेश तथा मद्रास में भी योद्धा बहुत होता है ।

संज्ञा पुं० [सं० भवलगिरि] एक पर्वत जो 'उड़ीसा' में सुवनेरवर के दक्षिण है । यहाँ अनेक प्राचीन मंदिर हैं । इसके शिखर पर महाराज शशोक के अशुवासन खुदे हैं ।

धर्माक्ष—संज्ञा पुं० दे० "ध्यांक्ष" ।

धर्माक्षनाशिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] हाऊबर ।

धर्माक्षबल्ली—संज्ञा स्त्री० [सं०] कीर्वाडोडी ।

धर्माक्षादनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] काकतुंडी ।

धर्माक्षी—संज्ञा स्त्री० [सं०] ककोलिका । शीतलघीनी ।

धर्माक्षोली—संज्ञा स्त्री० [सं०] काकोली ।

धमाकार—संज्ञा पुं० [सं०] बोहार ।

ध्यात—वि० [सं०] चिंतित । विचारा हुआ । ध्यान किया हुआ ।

ध्याता—वि० [सं० ध्यातृ] [सं० ध्यात्री] (१) ध्यान करनेवाला ।

(२) विचार करनेवाला । उ०—ज्ञाता ज्ञेयस्य ज्ञान जो ध्यात ज्ञेयस्य ध्यान । दृष्टा दृश्यस्य दृश्य जो ध्रियुरी शब्दानान ।—कथीर ।

ध्यान—संज्ञा पुं० [सं०] (१) बाह्य इंद्रियों के प्रयोग के बिना

केवल मन में जाने की क्रिया या भाव । श्रंतःकरण में

व्यवस्थित करने की क्रिया या भाव ; मानसिक प्रत्यक्ष । जैसे,

किसी देवता का ध्यान करना, किसी प्रिय व्यक्ति का ध्यान

करना । उ०—बहुरि गौरि कर ध्यान करेहू । भूपकिडोर

देखि किन लेहू ?—गुजरी ।

क्रि० प्र०—करना ।—लगाना ।—लगाना ।

मुहा०—ध्यान में डूबना या मग्न होना = कोई बात इतना मन में खाना कि और सब बातें भूल जायें । ध्यान करना = मन में स्थापित करना । स्वरूप आदि को मन में खाना । (किसी के) ध्यान में लगना = मन में लाकर मग्न होना । उ०—परसर पोंदुत लखि रहत लगि कपोल के ध्यान । करलै विप पाटक विमल प्यारी पठए पान ।—विहारी ।

(२) सोच विचार । चिंतन । मनन । जैसे, भाज कछ तुम किस ध्यान में रहते हो । (३) भाषना । प्रत्यक्ष । विचार । खयाल । जैसे, (क) चकते समय तुम्हें यह ध्यान न हुआ कि धोती लेते चलें ? (ख) मन में इस बात का ध्यान बना रहता है ।

क्रि० प्र०—होना ।

मुहा०—ध्यान खाना = भाषना होना । विचार व्यक्त होना । ध्यान जमना = विचार स्थिर होना । स्थान बैठना । ध्यान बैठना

= विचार का बराबर या बहुत देर तक बना रहना । लगातार ख्याल बना रहना । जैसे, उसे जिस बात का ध्यान बँध जाता है, वह उसके पीछे पड़ जाता है । ध्यान रखना = विचार बनाए रखना । न भूलना । ध्यान लगना = मन में विचार बराबर बना रहना । बराबर खयाल बना रहना । जैसे, सुके तुम्हारा ध्यान बराबर लगा रहता है । उ०—ध्यान लगी मोहिं तीरा रे ।—गीत ।

(४) स्वप्न या भावों के भीतर लेने या उपस्थित करनेवाला श्रंतःकरण-विधान । चित्त की महद्य-वृत्ति । चित्त । मन । जैसे, तुम्हारे ध्यान में यह बात कैसे आई कि मैंने तुम्हारे साथ प्यार किया होगा ।

क्रि० प्र०—में खाना ।—में खाना ।

मुहा०—ध्यान में न खाना = (१) चिंतन न करना । परवाह न करना । (२) न सोचना समझना, न विचारना ।

(२) चित्त का झकड़े या इंद्रियों के सहित किसी विषय की ओर खरप जिससे उस विषय का स्थान श्रंतःकरण में सब के ऊपर हो जाय । किसी संबंध में श्रंतःकरण की अप्रवृत्ति । चेतना की प्रवृत्ति । चेत । खयाल । जैसे, (क) इसकी कारीगरी को ध्यान से देखो तब खूबी मालूम होगी । (ख) मेरा ध्यान दूसरी ओर था, फिर से कहिये । (ग) दूध ध्यान दो और मुनो ।

मुहा०—ध्यान जमाना = मन का एक ही विषय के ग्रहण में बराबर तय रहना । खयाल दूधर उभर न जाना । चित्त एकाग्र होना । ध्यान जाना = चित्त का किसी ओर प्रवृत्त होना । दृष्टि पड़ना और बोध होना । जैसे, जब मेरा ध्यान उभर गया तब मैंने उसे दृढ़ते देखा । ध्यान दिखाना = दूसरे को चित्त प्रवृत्त करना । स्थान करना, दिखाना वा जताना । चेत

करना । वेतना । सुम्नाना । ध्यान देना = (धरना) चित्त प्रवृत्त करना । चित्त एकाग्र करना । ख्यात करना । गौर करना । ध्यान पर चढ़ना = मन में स्थान कर देना । चित्त से न हटना । अर्चने लगने या और किसी विशेषज्ञ के कारण न भूलना । जैसे, तुम्हारे ध्यान पर तो यही चीज बची हुई है, और कोई चीज पसंद ही नहीं आती । ध्यान बैठना = चित्त का इधर भी रहना उधर भी । चित्त एकाग्र न रहना । ख्यात इधर उधर होना । जैसे, काम करते समय कोई बात धीत करता है तो ध्यान बैठ जाता है । ध्यान बैठाना = चित्त को एकाग्र न रहने देना । ख्यात इधर उधर ले जाना । ध्यान बैठना = किसी और चित्त स्थिर होना । चित्त एकाग्र होना । ध्यान खगलना = चित्त प्रवृत्त होना । मन का विषय के ग्रहण में लक्ष्य होना । चित्त एकाग्र होना । जैसे, इसका ध्यान खगो तब तो यह पढ़े । ध्यान खगलना = दे० "ध्यान देना" ।

(६) शोध करनेवाली वृत्ति । समझ । बुद्धि ।

मुहा०—ध्यान पर चढ़ना = दे० "ध्यान में आना" । ध्यान में आना = श्रेय या अत्रुमान होना । समझ में आना । ध्यान में आना = मन में बैठना । चित्त में निरिच्छा होना । विश्वास के रूप में स्थिर होना ।

(७) धारणा । स्मृति । याद ।

क्रि० प्र०—होना ।

मुहा०—ध्यान आना = स्मरण होना । याद होना । ध्यान दिखाना = स्मरण कराना । याद दिखाना । जैसे, जब भूलोगे तब मुझे ध्यान दिखा दोगे । ध्यान पर चढ़ना = स्मृति में आना । स्मरण होना । याद होना । ध्यान रखना = स्मृति बनाए रखना । याद रखना । न भूलना । ध्यान रहना = स्मरण रहना । याद रहना । ध्यान मे इतरना = स्मृति में न रहना । याद न रहना । विस्मृत होना । भूलना ।

(८) चित्त को धारों धारों से टटा कर किसी एक विषय (जैसे, परमाणुचिंतन) पर स्थिर करने की क्रिया । चित्त को एकाग्र करके किसी धार/धाराने की क्रिया । जैसे, योगियों का ध्यान क्षणान्त ।

विशेष—योग के षाठ श्रेणियों में 'ध्यान' सातवां श्रेण है । यह धारणा और समाधि के बीच की अवस्था है । जब योगी प्राणदाहर द्वारा अपने चित्त की वृत्तियों पर अधिकार प्राप्त कर लेता है तब तब्यों धारों धारों से टटा कर भाषि भाषि स्थानों में नै किसी एक में खगलना है । इसे धारणा कहते हैं । धारणा जब इस अवस्था को पहुँचनी है कि धारणाएँ बाधु के साथ चित्त के प्रत्यय की एकतायन हो जाती है तब उसे ध्यान कहते हैं । यही ध्यान जब परमावस्था को पहुँच जाता है तब समाधि कहलाता है जिसमें ध्येय के प्रतिरिच

धार क्लृप्त नहीं रह जाता क्योंकि ध्याता ध्येय में इतना लग्न हो जाता है कि उसे अपनी सत्ता भूल जाती है । बौद्ध धार जैन धर्मों में भी ध्यान एक आवश्यक श्रेण है । जैन शास्त्र के अनुसार उत्तम सौहमन युक्त चित्त के धरनाएँ का नाम ध्यान है

क्रि० प्र०—करना ।—खगलना ।—खगलना ।

मुहा०—ध्यान हटना = चित्त की एकाग्रता का नष्ट होना । चित्त इधर उधर हो जाना । उ०—रेखन खगो मुन मृतक जान । खदन करत दृष्टी प्रायि ध्यान ।—सूर । ध्यान धरना = ध्यान खगलना । परमाणुचिंतन आदि के लिये चित्त को एकाग्र करके बैठना ।

ध्यानना^०—क्रि० सं० [सं० ध्यान] ध्यान करना । (वच०) । उ०—चिनु हरि भक्त सख जगत की यही रीति भयो हरि भक्ति की अर्नत पर ध्यानियो।—भियादास ।

ध्यानयोग—शंशा पुं० [सं०] (१) यह योग जिसमें ध्यान ही प्रधान श्रेण हो । (२) तंत्र वा इंद्रजाल की एक क्रिया जिसके द्वारा मन में किसी प्राकृति की कल्पना कर के शब्द का नाश किया जाता है ।

ध्यान^०—क्रि० सं० [सं० ध्यान] (१) ध्यान करना । उ०—(क) हिन्दू ध्यावहिं देहरा, मुसलमान मर्गीत । दास कबीर तहै ध्यावहिं जहाँ देवोने परगीत ।—कबीर । (ख) गजु मन नंद नंदन धरन । परम पंकज छगि मनोहर सकल सुख के करन । सनक शंकर जादि ध्यावण निगम कवचन धरन । शेष शाश्वत प्रायि सुनाइ मंत चिंतन धरन ।—सूर । (२) स्मरण करना । सुम्नाना । उ०—हरि हरि हरि सुम्नो सय कोई । हरि हरि सुम्नित सय सुख होई ।.....हरिदि मित्र बिंदा चित्त ध्यावो । हरि तहई जाइ विषय न जावो ।—सूर ।

ध्यानवचन—शंशा पुं० [सं०] बौद्ध शास्त्रानुसार एक प्रकार के देवता ।

ध्यानिक—वि० [सं०] ध्यानमाध्य । जिसकी प्राप्ति ध्यान द्वारा हो ।

ध्यानियुद्ध—शंशा पुं० [सं०] एक प्रकार के युद्ध । इनकी संख्या कोई २ या ६ और कोई १० में भी अधिक बताते हैं । वे धरतीरी हैं ।

ध्यानी—वि० [सं० ध्यानि] (१) एकपुत्र । समाधिस्थ । (२) ध्यान करनेवाला । जो ध्यान में रहता हो ।

ध्यान—शंशा पुं० [सं०] (१) समनक । दीक्षा । (२) संनपुत्र ।

वि० समनक । धारणा ।

ध्यामक—शंशा शं० [सं०] रोहिम फल । रोहिम संविधा ।

ध्येय—वि० [सं०] (१) ध्यान करने योग्य । (२) जिसका ध्यान किया जाय । जो ध्यान का विषय हो ।

भाषा—संज्ञा स्त्री [सं०] भाषा । दास ।

ध्रुवपद—संज्ञा पुं० [सं० ध्रुवपद] एक गीत जिसके चार भेद या तुक होते हैं—अस्थायी, श्रंतारा, सेवारी और आभोग । कोई मिलातुक नामक इसका एक पंचवर्षी भेद भी मानते हैं । इसके द्वारा देवताओं की लीला, राजाओं के यज्ञ तथा युद्धादि का कथन गूढ राग रागिनियों से सुक गाना जाता है । इसके गाने के लिये स्त्रियों के कोमल स्वर की आवश्यकता नहीं । इसमें यद्यपि द्रुतलय ही बपकारी है किंतु यह विस्तृति स्वर से तथा विलंबित लय से गाने पर भी भला मालूम होता है । किसी किसी ध्रुवपद में अस्थायी और श्रंतारा दो ही पद होते हैं । ध्रुवपद कान्दवा, ध्रुवपद वेदांग, ध्रुवपद पमन आदि इसके भेद हैं । ये सब के सब चौताल पर गाए जाते हैं । इन राग को संस्कृत में भ्रुवक कहते हैं । संगीतदासोदर के मत से ध्रुवपद सोलह प्रकार का होता है—जयंत, शेषर, बसाह, मयुर, निर्मल, कुंतल, कमल, सानंद, चंद्रशेखर, सुषद, कुसुद, जायो, कंदर्प, जयसंगल, तिलक और लज्जित । इनमें से अर्धत के प्रति पाद में ग्यारह अक्षर होते हैं फिर आगे प्रत्येक में पहले से एक एक अक्षर अधिक होता जाता है; इस प्रकार लज्जित में सय २६ अक्षर होते हैं । छ पदों का ध्रुवपद उत्तम, पांच का मध्यम और चार का अधम होता है ।

ध्रुव—वि० [सं०] (१) स्थिर । अचल । सदा एक ही स्थान पर रहनेवाला । इधर उधर न हटनेवाला । (२) सदा एक ही व्यवस्था में रहनेवाला । तिल । (३) निश्चित । दृढ । ठीक । पक्का । जैसे, बनका आना ध्रुव है ।

संज्ञा पुं० (१) आकाश । (२) शंकु । फील । (३) पर्वत । (४) स्थानु । संज्ञा । धून । (५) घट । सरगद । (६) छाट वसुधों में से एक । (७) भ्रुवक ध्रुवपद । (८) एक यज्ञपात्र । (९) शरारि नामक पत्नी । (१०) विष्णु । (११) हर । (१२) कलित ज्योतिष में एक शुभ योग जिसमें अक्षर यालक धड़ा विदाम्, बुद्धिमान् और प्रसिद्ध होता है । (१३) ध्रुवतारा । (१४) नाक का अगला भाग । (१५) गठि । (१६) उराय के अनुसार राजा अज्ञानपाद के एक पुत्र जिसकी माता का नाम सुनीति था । राजा अज्ञानपाद की दो किर्या थीं; सुरवि और सुनीति । सुरवि से उत्तम और सुनीति से ध्रुव उत्पन्न हुए । राजा सुरवि को बहुत चाहते थे । एक दिन राजा उत्तम को गोद में लिए बैठे थे इसी बीच में ध्रुव खेलेते हुए वहाँ आ पहुँचे और राजा की गोद में बैठ गए । इस पर उनकी विमाता सुरवि ने उन्हें अशुभ के साथ वहाँ से उठा दिया । ध्रुव इस अपमान को सह न सके; और घर से निकल कर तप करने चले गए । विष्णु

भगवान उनकी भक्ति से बहुत प्रसन्न हुए और उन्हें घर दिया कि "तुम सब लोगों और यहाँ नदियों के ऊपर उनके आचार स्वरूप होकर अचल भाव से स्थित रहोगे और जिस स्थान पर तुम रहेगो वह ध्रुव लोक कहलावेगा" । इसके उपरांत ध्रुव ने घर आकर पिता से राज्य प्राप्त किया और विशुमार की कन्या अंमि से विवाह किया । इस नाम की इनकी एक और पत्नी थी । अमि के गर्भ से कल्प और वत्सर तथा इसा के गर्भ से अकल नामक पुत्र उत्पन्न हुए । एक बार इनके सौतेले भाई अत्तम को यहाँ ने भला ढाला इसलिये उन्हें वनसे युद्ध करना पड़ा जिसे पितामह मनु ने शक्ति किया । शंत में छत्तीस हजार वर्ष राज्य करके ध्रुव विष्णु के दिए हुए ध्रुवलोक में चले गए । (१७) शरीर की शक्ति ।

विशेष—अपस्थल, मलक, रंभ, उपरंभ, भाल और अथान इन स्थानों की शीर्षार्थ ध्रुव कहलाती हैं । (शब्दार्थचिंतामणि) ।

(१८) भूगोल विद्या में पृथ्वी का अक्ष देश । पृथ्वी के दो दोनो सिरे जिनसे होकर अक्षरेखा गई हुई जाती जाती है ।

विशेष—सूर्य की परिक्रमा पृथ्वी लट्टू की तरह घूमती हुई करती है । एक दिन रात में इसका इस प्रकार का घूर्णन एक बार हो जाता है । जिस प्रकार लट्टू के घीघो घीघ एक कील गई होती है जिस पर वह घूमता है वही प्रकार पृथ्वी के गर्भकेंद्र से गई हुई एक अक्ष रेखा मानी गई है । वह अक्ष रेखा जिन दो सिरे पर निकली हुई मानी गई है उन्हें ध्रुव कहते हैं । ध्रुव दो हैं—उत्तर ध्रुव या सुमेरु और दक्षिण ध्रुव या कुमेरु । इन स्थानों से २३ १/२ अंश पर पृथ्वी के तल पर एक एक वृत्त माने गए हैं जिन्हें उत्तर और दक्षिण शतकर्दियंथ कहते हैं । ध्रुवों और इन वृत्तों के बीच के प्रदेश अर्धत उंडे हैं, वनमें समुद्र आदि का जल सदा जमा रहता है । ध्रुव प्रदेश में दिन रात २४ घंटों का नहीं होता, वर्ष भर का होता है । जब तक सूर्य उत्तरायण रहते हैं तब तक उत्तर ध्रुव पर दिन और दक्षिण ध्रुव पर रात और जब तक दक्षिणायन रहते हैं तब तक दक्षिण ध्रुव पर दिन और उत्तर ध्रुव पर रात रहती है । अर्धत नोट दिशाएँ से कहा जा सकता है कि वहाँ छः महीने की रात और छः महीने का दिन होता है । इसी प्रकार वर्षा संख्या और उपा काल भी लंबा होता है । वहाँ सूर्य और चंद्रमा पूर्व से पश्चिम जाते हुए नहीं मालूम होते बल्कि चारों ओर कोलह के बौल की तरह घूमते दिखाई पड़ते हैं । ध्रुव प्रदेश में वर्षा काल और संख्या काल की लंबाई पश्चिम के ऊपर धीरे-धीरे दिन तक घूमती दिखाई पड़ती है । यहाँ तक नहीं ग्रह नक्षत्र युक्त राशिचक्र भी ध्रुव के चारों ओर घूमता दिखाई पड़ता है । शब्द की गति ध्रुव प्रदेश में बहुत तेज

हे ती है, मीलों पर होनेवाला शब्द ऐसा जान पड़ता है कि पास ही हुआ है। इस भूभाग में सब से मनोहर मेरु ज्योति है जो चित्र विचित्र और नाना वर्णों के आलोक के रूप में कुछ काल तक दिखाई देती है।

(११) कश्चित् ज्योतिष में एक नक्षत्रगण जिसमें उत्तराश्रा-
द्विगी, उत्तराषाढा, उत्तर भाद्रपद और रोहिणी हैं। (२०)
राण्य का अठारहवां मेरु जिसमें पहले एक जघु, फिर एक
गुरु और फिर तीन खडु होते हैं। (२१) तालू का एक रोग
जिससे जलाई और सूजन आ जाती है। (२२) सोमरस का
वह भाग जो प्रातःकाल से सायंकाल तक बिना किसी
देवता को अर्पित हुए रहता रहे।

ध्रुवक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) स्यात्। ध्रुव। खंवा। (२) ध्रुव
नामक गीत। (३) नक्षत्र की दूरी।

विशेष—मीन राशि के शेष से जिस नक्षत्र का योग-तारा
वितनी दूर पर रहता है वतने को उस नक्षत्र का ध्रुवक
कहते हैं।

ध्रुवका—संज्ञा स्त्री० [सं०] ध्रुवद।
ध्रुवकेतु—संज्ञा पुं० [सं०] यूहसंहिता के अनुसार एक प्रकार का
केतु तारा।

विशेष—इस प्रकार के केतुओं का न तो आकार नियत है, न
वर्ण वा प्रमाण, यहाँ तक कि उनकी गति भी नियत वा
नियमित नहीं होती। देखने में वे स्तम्भ होते हैं और कश्चित्
ज्योतिष में इनके तीन भेद माने गए हैं, दिव्य, आंतरिक्ष
और भीम। इनका फल भी अनियत है कभी अशुद्धा, कभी
शुभा, कभी सम।

ध्रुवचरण—संज्ञा पुं० [सं०] रत्नताल के बारह भेदों में से एक
भेद।

ध्रुवता—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) स्थिरता। अचञ्चलता। (२) दृढ़ता।
प्रकाशन। (३) निश्चय।

ध्रुवतारा—संज्ञा पुं० [सं०] ध्रुव + तारा, हिं० तारा। वह तारा जो
सदा ध्रुव अर्थात् मेरु के ऊपर रहता है, कभी ह्वर
उभर नहीं होता।

विशेष—यह तारा बहुत चमकीला नहीं है और सतर्पि के
सिरे पर के दो तारों की सीध में उत्तर की ओर कुछ दूर पर
दिखाई पड़ता है। इसकी पहचान यही है कि अथवा स्थान
नहीं बदलता। साथ राशिचक्र इसके किनारे फिरोता हुआ
जान पड़ता है और यह अपने स्थान पर अचञ्चल रहता है।
रात के अत्यंत पहर में ७३ ठक कर इसके साथ सतर्पि को
ही देखने से इसका अनुभव हो सकता है। जिस प्रकार
सतर्पि में सात तारे हैं वसी प्रकार जिस किशुमार नामक
तारकुंड के अंतर्गत ध्रुव है उसमें भी सात तारे हैं। इन सातों
में ध्रुव पहला और सबसे बड़ा है। ध्रुव तारा सदा एक

ही नहीं रहता। पृथ्वी के अथ वा मेरु से जिस तारे का
व्यवधान सबसे कम होता है अर्थात् पृथ्वी के परबिंदु की
सीध से जो तारा सब से कम दूरी पर होता है वही ध्रुव
तारा होता है। आज कल जो ध्रुव तारा है वह मेरु वा
अर्धबिंदु से १ १/२ अंश पर है। अथवा उत्तर के धारों और नाडी-
मंडल के मेरु की गति के अनुसार बारह हजार वर्ष बीतने
पर यह तारा मेरु की पीछे छोड़ता हुआ इसकी सीध से
बहुत दूर जायगा और तब अनिजित नामक नक्षत्र ध्रुव तारा
होगा। आज से पाँच हजार वर्ष पहले ध्रुव नामक तारा
ध्रुव तारा था। वर्तमान ध्रुव का व्यवधानांतर आठकल
मेरु से १ १/२ अंश है, पर सन् १७८२ ई० में २ अंश २ कला
था और दो हजार वर्ष पहले १२ अंश था।

भारतवासियों को ध्रुव का परिचय अत्यंत प्राचीन काल से
है। विवाह के वैदिक मंत्र में ध्रुव तारा का नाम आता है।
भारतीय ज्योतिर्विदों के मतानुसार दो ध्रुव तारे हैं—
एक उत्तर ध्रुव की सीध में, दूसरा दक्षिण ध्रुव की सीध में।
ध्रुवदर्शक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) सतर्पि मंडल। (२) कुतुब-
खाना।

ध्रुवदर्शन—संज्ञा पुं० [सं०] विवाह के संस्कार के अंतर्गत एक
कृत्य जिसमें पर बपू को मंत्र पढ़ कर ध्रुवतारा दिखाया
जाता है।

ध्रुवधेनु—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह गाय जो दुहते समय पुत्र थाप
पड़ती रहे।

ध्रुवनंद—संज्ञा पुं० [सं०] नंद के एक भाई का नाम।
ध्रुवपद—संज्ञा पुं० [सं०] ध्रुवक। ध्रुवद।
ध्रुवमत्स्य—संज्ञा पुं० [सं०] एक यंत्र जिसके द्वारा दिशाओं का
ज्ञान होता है। कुतुबखाना। (नवीन)

ध्रुवदत्ता—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक मातृका जो इमार वा कारिगरेय
की अनुचरी है।

ध्रुवलोक—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक लोक जो सत्यलोक
के अंतर्गत है और जिसमें ध्रुव स्थित है।

ध्रुवसाध—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्यवंशीय राजा सुधेयि के पुत्र।
(रामायण)

ध्रुवा—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) यज्ञपात्र को वैश्वं देवी की बकड़ी का
बनता है। (२) मूर्त्ति। मरोड़कली। (३) राजपूर्या।
सरिबन। (४) ध्रुवद गीत। (५) साध्वी स्त्री। सती स्त्री।
ध्रुवाधर्त—संज्ञा पुं० [सं०] (१) फोड़ों की मीठी जो सजावट,
वेश, रंग, डारंग, घण हत्यादि में होती है। (२) घट
घोड़ा जिसके देवती भीरियाँ होती हैं।

ध्रुवस—संज्ञा पुं० [सं०] विनायक। नारा। पण। हानि।
विशेष—आप और वैशेषिक में ध्रुवस एक अभाव माना
गया है। पर सकार्यवादी तंत्र और वैदिक ध्रुवस को

अभाव नहीं मानते केवल तिरोगभाव मानते हैं। वे वस्तु का नाश नहीं मानते, उसका अन्वयान्तर मानते हैं।

ध्वंसक-वि० [सं०] नाश करनेवाला।

ध्वंसन-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० ध्वंसनीय, ध्वंसित, ध्वस्त] (१)

नाश करने की क्रिया या (२) नाश होने का भाव। ध्वय। विनाश। तबाही।

ध्वंसित-वि० [सं०] विनाशित। नष्ट किया हुआ।

ध्वंसी-वि० [सं० ध्वंसिन्] [स्त्री० ध्वंसिनी] नाश करनेवाला। विनाशक।

सज्ञा पुं० पहाड़ी पीलू का पेड़।

ध्वज-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चिह्न। निशान। (२) वह लंबा या ऊँचा डंडा जिसे किसी घात का चिह्न प्रकट करने के लिये खड़ा करते हैं या जिसे समारोह के साथ लेकर चलते हैं। ध्वंस, बोदे, लकड़ों आदि की लंबी छड़ जिसे सेना की चढ़ाई या और किसी सैनारी के समय साथ लेकर चलते हैं और जिसके सिरे पर कोई चिह्न बना रहता है, या पताका बँधी रहती है। निशान। मंडा।

विशेष—राजाओं की सेना का चिह्न-स्वरूप जो लंबा दूँद होता है वह ध्वज (निशान) कहलाता है। यह दो प्रकार का होता है—सपताक और निष्पताक। ध्वजदंड बकुल, पलाश, कदंब आदि कई लकड़ियों का होता है, पर भास का सबसे अच्छा होता है। ध्वजा परिमाण भेद से श्राद्ध प्रकार की होती है—जया, विजया, भीमा, चपळा, वैज-यंतिका, दीर्घा, विशाला और लोला। जया पाँच हाथ की होती है, विजया छः हाथ की, इसी प्रकार एक एक हाथ बढ़ता जाता है। ध्वज में जो धौलूटा या तिकेना कपड़ा बँधा होता है उसे पताका कहते हैं। पताका कई धवों की होती है और ध्वज में चित्र आदि भी बने रहते हैं। जिस पताका में हाथी, सिंह आदि बने हों वह जयंती, जिसमें हंस मोर आदि बने हों वह अष्टमंगला कहलाती है; इसी प्रकार और भी समकिए। (युक्ति-कवचपत्र)

(२) ध्वजा लेकर चलनेवाला श्राद्धमी। शौडिक।

विशेष—मनु ने शौडिक को अतिथय नीच लिखा है।

(३) छाट की पट्टी। (४) लिंग। पुरंद्रिय।

शो०—ध्वजमंग।

(६) वर्ष। गर्व। परमद। (७) वह घर जिसकी स्थिति पूर्व की ओर हो।

ध्वजप्रीय-संज्ञा पुं० [सं०] एक राजस। (शामायण)

ध्वजद्रुम-संज्ञा पुं० [सं०] दाल। ताड़ का पेड़।

ध्वजभंग-संज्ञा पुं० [सं०] एक रोग जिसमें पुरुष के खी-संयोग की शक्ति नहीं रह जाती। वलीयता। नष्टकृता।

विशेष—इस रोग में पुरंद्रिय की वैशियाँ और नादियाँ

शियिज पड़ जाती हैं। चरक आदि आयुर्वेद के भाषाओं के मतानुसार यह रोग शूल, चार आदि के अधिक भोजन से, दुष्ट योनि-गमन से, शत आदि लगने से, वीर्य के प्रतिरोध से तथा ऐसेदी और कार्यों से होता है। भावप्रकाश में लिखा है कि संयोग के समय भय, शोक, क्रोध आदि का संघाव होने से ध्वजभिद्रेता या दूय रखनेवाली स्त्री के साथ गमन करने से मानस बलैष्य बल्य होता है। यह रोग अधिकतर अधिक शुक्रव्य और इन्द्रिय चालन से उत्पन्न होता है।

ध्वजवान्-वि० [सं०] [स्त्री० ध्वजवती] (१) ध्वजवाला। जो ध्वजा या पताका लिए हो। (२) चिह्नवाला। चिह्नयुक्त। (३) जो (महाद्य) अन्य महाद्य की हत्या कर्त्तव्य प्रायश्चित्त के लिये उसकी खोपड़ी बँकर भिजा मँगता हुआ तीर्थों में घूम। (स्थिति)। (४) शौडिक। कलवार।

ध्वजा-संज्ञा स्त्री० [सं० ध्वज] (१) पताका। मंडा। निशान। व०—(क) ध्वजा फरकें शून्य में बाँजे अनहद त्व। तक्रिया हे मंदान में पहुँचेंगे कोहनु।—कबीर। (ख) करि कपि कटक चजे लंका को द्विज में बाँधो सेत। उतरि गए पहुँचे लंका वै विजय ध्वजा संकेत।—मूर।

विशेष—दे० "ध्वज"।

(२) एक प्रकार की कसरत। यह दो प्रकार की होती है एक मखलं पर की दूसरी चौरंगी। मखलं पर यह कसरत तौल के ही समान की जाती है। केवल विशेष हतना ही करना पड़ता है कि इसमें मखलं को हाथ से छपेट कर उसकी एक बगल में सारा शरीर सीधा दंडाकर लौलगा पड़ता है। इसे संस्कृत में "ध्वज" कहते हैं। चौरंगी में हाथ पाँव फैला कर चार कोने ठीक दिखाए जाते हैं और दोनों पाँव धंडी से बाँध कर खड़े रखे जाते हैं। (३) छुंद-शास्त्रानुसार उगय का पदवा भेद जिसमें पहले लघु फिर गुरु आता है।

ध्वजादि गणना-संज्ञा स्त्री० [सं०] फलित ज्योतिष के अनुसार एक प्रकार की गणना जिससे धरन के फल कहे जाते हैं। इसमें नौ कोशों का एक ध्वजाकार चक्र बनाया जाता है। इनमें से पहले घर में धरन रहता है, फिर आगे यथाक्रम ध्वज, धूम, सिंह, श्वान, घुष, शर, राज और ध्वज रहते हैं। प्रत्येकका को किसी फल का नाम लेना पड़ता है, फिर फल के आदि वर्णों के अनुसार उसका वर्ण निरचय करके ज्योतिषी राशि प्रहादि द्वारा फल बतलाता है। "ध्वज" के कोठे में श्वर, धूम में कवर्ग, सिंह में तवर्ग, श्वान में टवर्ग, घुष में तवर्ग, शर में पवर्ग, राज में श्रंतस्थ, ध्वज में श प स द समकना आदि।

ध्वजाहृत-संज्ञा पुं० [सं०] (१) स्थितियों के अनुसार पंद्रह प्रकार

के शरीरों में से एक। यह दास जिसे खड़ाई में जीत कर पकड़ा हो। (२) यह धन जो खड़ाई में शत्रु को जीतने पर मिले। यह धन अविभाज्य कहा गया है।

व्यक्ति-वि० [सं०] धर्मध्वनी। पारशी।

व्यक्ति-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) पंच प्रकार की सीमाओं में से एक। यह सीमा या हद जिस पर निशान के लिये पेड़ खादि बनें हैं। (२) सेना का एक भेद जिसका परिमाण कुछ लोग बाहिनी का दूना मानते हैं।

व्यक्ति-वि० [सं० ध्वनि] [स्त्री० ध्वनि] (१) ध्वजवाजा।

जो ध्वज पताका लिए हो। (२) चिह्नवाजा। विह्वलुक।

संज्ञा पुं० (१) माहाय। (२) पर्वत। (३) रथ। संप्राम।

(४) सार। (५) घोड़ा। (६) मयूर। मोर। (७) स्त्री।

(८) ध्वजा लेकर चलनेवाला। शौद्धिक। कलवा।

व्यक्ति-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) अथर्ववेद में शपथ सेवेदन अथवा

यह विषय जिसका ग्रहण अथर्ववेद में है। शब्द। नाद।

ध्यावा। जैसे, सृदंग की ध्वनि, कंठ की ध्वनि।

विशेष—भाषापरिच्छेद के अनुसार अथर्व के विषय मात्र को

ध्वनि कहते हैं, चाहे वह वर्णात्मक हो, चाहे अक्षरात्मक।

दे० "शब्द"।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

मुहा०—ध्वनि उठना = शब्द उठाने देना या फैलना।

(२) शब्द का स्फोट। शब्द का फूटना। ध्यावाज की गूँज।

शब्द का धारा। ध्वज। जैसे, सृदंग की ध्वनि, गीत की

ध्वनि।

विशेष—शारीक माध्य में ध्वनि इती को कहा है जो दूर से

पेना सुना जाय कि वर्षे वर्षे अलग और साफ न मालूम

हो। महाभाष्यकार ने भी शब्द के स्फोट को ही ध्वनि

कहा है। पाणिनि-वृत्त में वर्णों का वाचकत्व न मान कर

स्फोट ही के बल से अर्थ की प्रतिपत्ति मानी गई है। वर्णों

द्वारा जो स्फुटित या प्रकट हो उसके स्फोट कहते हैं, यह

वर्णात्मिक है। जैसे, 'कमल' कहने से अर्थ की जो प्रतीति

होती है वह 'क' 'म' और 'ल' इन वर्णों के द्वारा नहीं,

हमके उच्चारण से उत्पन्न स्फोट द्वारा होती है। यह स्फोट

निल है।

(३) यह काव्य या रचना जिसमें शब्द और उसके साक्षात्

अर्थ से व्यंग्य में विशेषता या चमत्कार हो। यह काव्य जिसमें

वाच्यार्थ की अपेक्षा व्यंग्यार्थ अधिक विशेषतावाला हो।

विशेष—जिस काव्य में शब्दों के नियत अर्थों के योग से

सूचित होनेवाले अर्थ की अपेक्षा प्रसंग से निकलनेवाले

अर्थ में विशेषता होती है वह 'ध्वनि' कहलाता है। यह वस्तु

माना गया है। वाच्यार्थ या अभिधेयार्थ से अतिरिक्त जो अर्थ

सूचित होता है वह व्यंग्यार्थ द्वारा। जैसे, छुट्टो सथे कुच के

तट चंदन, गैन निरंजन दूर खलाई। रोम उठे तब गात खलात

५५ साफ भई अघरात खलाई। पीर दिव्य की जानति

तू न, धरी। घब खोजत मूठ सदाई। न्यायवे धारी

गई इतसों, तिहि धारी के पास गई न तहई ॥ अपनी

दृष्टी से नायिका कहती है कि तेरी पान की खलाई,

चंदन, अंजन आदि छूटे हुए हैं, तू यावली में नहाने गई,

अथर ही से जरा उस पापी के यहाँ नहीं गई। यहाँ चंदन,

अंजन आदि का छूटना नायक के साथ समागम प्रकट करता

है। 'पापी' शब्द भी 'तू समागम करने गई थी' यह यात

व्यंग्य से प्रकट करता है। इस पद्य में व्यंग्य ही प्रधान है—

इसी में चमत्कार है।

(४) धाराय। गूड़ अर्थ। मतलब। जैसे, इनकी बातों से यह

ध्वनि निकलती है कि बिना गए रुखा नहीं मिल सकता।

ध्वनिप्रह—संज्ञा पुं० [सं०] कान।

ध्वनित—वि० [सं०] (१) शब्दित। (२) व्यंजित। प्रकट किया

हुआ। (३) ध्वजवाजा हुआ। वादित।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

संज्ञा पुं० वाजा, जैसे सृदंग आदि।

ध्वनिनाला—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वीणा। (२) वेणु।

ध्वन्य—संज्ञा पुं० [सं०] (१) व्यंग्यार्थ। (२) एक प्राचीन राजा जो

जड़मय का पुत्र था। इसका नाम अश्वेद में थाया है।

ध्वन्यात्मक—वि० [सं०] (१) ध्वनि स्वरूप या ध्वनितमय। (२)

(काव्य) जिसमें व्यंग्य प्रधान हो।

ध्वन्यार्थ—संज्ञा पुं० [सं० ध्वन्यार्थ] वह अर्थ जिसका बोध वाच्यार्थ

से न होकर केवल ध्वनि या व्यंजना से हो।

ध्वस्त—वि० [सं०] (१) व्युत्। गलित। गिरा पड़ा। (२)

खंडित। टूटा फूटा। भंग। (३) नष्ट। अट। (४) पराजित।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

ध्वस्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] धारा। विनाया।

ध्व्यक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] (१) काक। कौआ। (२) मछली खाने-

वाजी एक चिड़िया। (३) तचक। (४) भिन्नक।

ध्व्यांत—संज्ञा पुं० [सं०] (१) अंधकार। अंधेरा। (२) एक नरक

का नाम। तामिष। (३) एक मरुत का नाम।

ध्व्यांतचर—संज्ञा पुं० [सं०] निशाचर। राक्षस। उ०—जैति

मंगलागार संसार-भारापहर धानराकार विप्रद पुराती। राम-

रोपानज्ज ज्वालामालाभिध्व्यांतचर-सलज-संहराकारी।—

सुलती।

ध्व्यांतविच—संज्ञा पुं० [सं०] खडोत। शयन।

ध्व्यांतशत्रु—संज्ञा पुं० [सं०] (१) सूर्य। (२) अग्नि। (३)

चंद्रमा। (४) द्रव्ये वर्ण। (५) खोनाक। लौटा।

ध्व्यान—संज्ञा पुं० [सं०] शब्द।

